Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामेश्वर टांटिया समग्र

संपादन— विश्वनाथ मुखर्जी

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पिशाचमोचन, वाराणसी-२०१०१०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

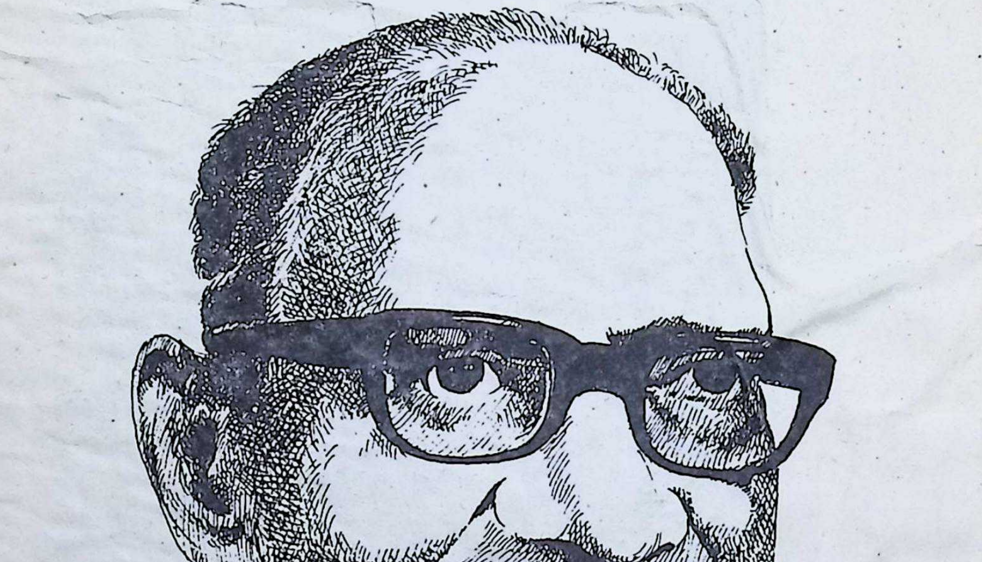

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Recd on 19/11/99

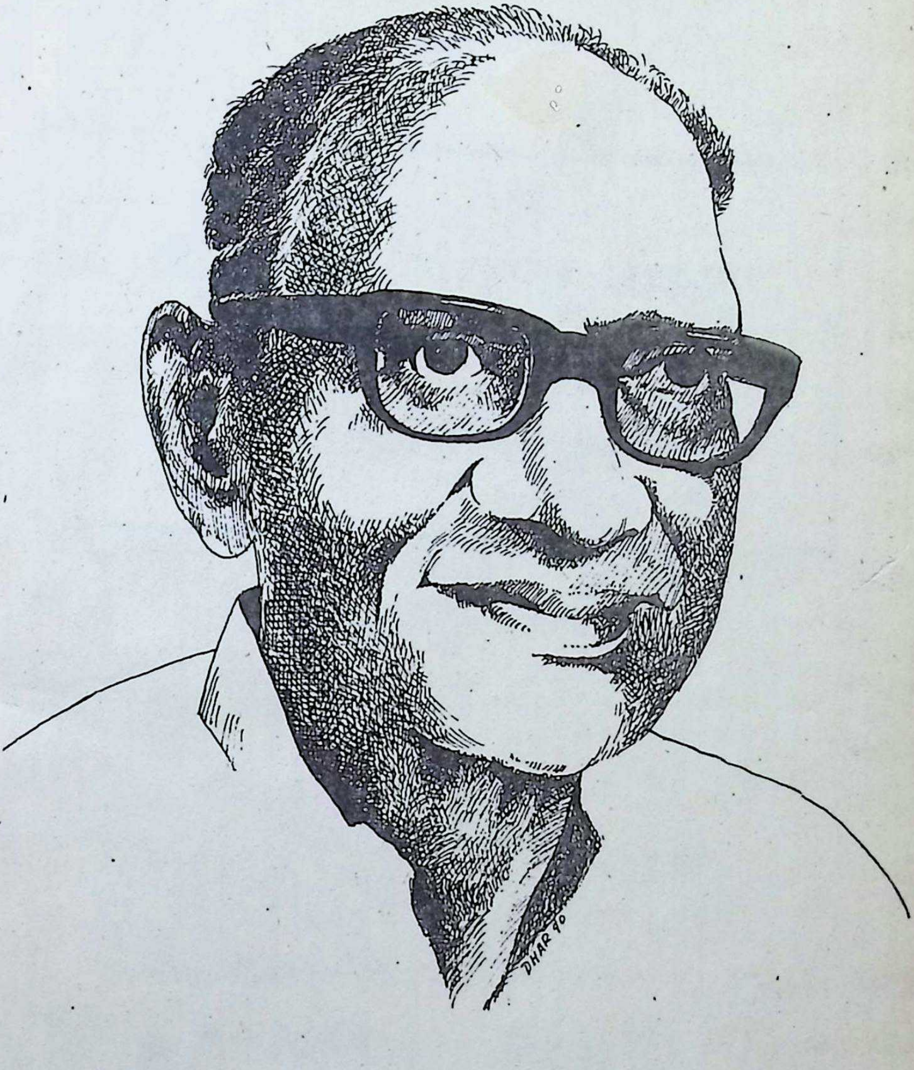

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामेश्वर टांटिया समग्र

संपादन— विश्वनाथ मुखर्जी

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पिशाचमोचन, वाराणसी-२०१०१०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो०ब० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० के लिए विजयप्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा मोनार्क इण्डस्ट्रीज जौनपुर में मुद्रित

©श्री नन्दलाल टांटिया

मूल्य ५०.००

प्रचारक ग्रंथावली योजना — ६

प्रकाशन तिथि - अप्रैल, १९९०

रामेश्वर टांटिया समग्र

RAMESHWER TANTIA SAMAGRA

COLLECTED WORKS OF RAMESHWER TANTIA

EDITED BY VISWANATH MUKHERJEE

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकाशकीय

श्री रामेश्वर टांटिया की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे केवल प्रसिद्ध उद्योगपति ही नहीं, बल्कि कुशल प्रशासक, मिलनसार और उदार प्रवृत्ति के थे। वैभवशाली होते हुए भी सरलता की प्रतिमूर्ति थे। अपने समकालीन गांधीवादी मित्रों के कारण उन्होंने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया। सर्वश्री मातृका प्रसाद कोइराला, जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं के सम्पर्क में आने के कारण उनकी राजनीति में दिलचस्पी बढ़ी। पं० जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई से लेकर इन्दिरा गांधी तक के निकट आये।

आप सीकर से लोकसभा के दो बार सदस्य बने। कांग्रेस संसदीय दल के कोषाध्यक्ष के अलावा कलकत्ता की मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी के प्रधान मंत्री रहे। राजस्थान तथा बिहार के अकाल के समय तथा उत्तर प्रदेश के बाढ़-पीड़ितों की सहायता तन-मन-धन से करते रहे। आपने अपने गृह-नगर सरदार शहर एवं कलकत्ता में बच्चों के लिए हाई स्कूल स्थापित किया। इसके अलावा अन्य सेवा कार्यों को करते हुए आपने टांटिया वंश का मुख उज्जवल किया।

कानपुर में जब आप ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन के प्रबंध-निदेशक नियुक्त हुए, तब साहित्य के प्रति आपकी गहरी दिलचस्पी बढ़ी। इसके पूर्व आप छिटफुट लिखते रहे। कानपुर के प्रवासकाल में आप नगर महापालिका के मेयर बने। इसी बीच आपने सर्वश्री सीमान्त गांधी अब्दुल गफ्फार खां, चन्द्रभानु गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर आदि लोगों को सम्मानित किया। तीन बार विश्व भ्रमण करने का लाभ उन्होंने अच्छी तरह उठाया। इसका प्रमाण है—विश्वयात्रा के संस्मरण।

टांटियाजी की कहानियों में एक विशेषता यह है कि इनकी कहानियां पुरुष, नारी और बालक समान रूप से पढ़ सकते हैं। सरल भाषा और ज्ञानवर्द्धक होने के कारण प्रत्येक कहानी पाठकों पर एक छाप छोड़ती है।

आपकी आत्मकथा—'मेरा गाँव-मेरा बचपन' संस्मरण-साहित्य की अमूल्य निधि है। राजस्थान के जन-जीवन का एक आइना है। राजस्थानी किस प्रकार कष्ट सहते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण—'मेरा संघर्ष : मेरे कलकत्ता' में देखा जा सकता है।

भारतेन्दु समग्र, बंकिम समग्र, देवकीनन्दन समग्र, शरत् समग्र, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र के पश्चात् आज हिन्दी के पाठकों के सम्मुख रामेश्वर टांटिया समग्र रखने में हर्ष का अनुभव हो रहा है। जिस प्रकार पाठकों ने हमारे अन्य समग्रों का स्वागत किया है, आशा करते हैं कि उसी प्रकार रामेश्वर टांटिया समग्र का स्वागत होगा।

इसी प्रकार पाठकों का सहयोग प्राप्त होता रहा तो हम हिन्दी पुस्तकें काफी महँगी हैं, इस शिकायत को दूर करने में सहायक होंगे।

प्रकाशक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय सूची

कहानियां (कुछ देखी : कुछ सुनी)

स्नेह सूत्र	...	२
पिता का कर्ज	...	४
राजा और रंक	...	७
चन्दरी बुआ	...	९
उतार-चढ़ाव	...	१२
आत्मीयता	...	१४
पाप का धन	...	१६
दान	...	१८
बलजी-भूरजी	...	२०
भूरी की नानी	...	२२
दुःख में सुख	...	२४
लक्ष्मी बहन	...	२६
हजारी दरोगा	...	२९
हरखू की मां	...	३२
जाको राखे सांइयां	...	३५
अछूत	...	३७
परोपकार	...	४०
मजदूर से मालिक	...	४२
बलिदान की परम्परा	...	४६
आत्माभिमान	...	४९
हमीद खां भाटी	...	५१
लक्ष्मी दरोगी	...	५४
शिवाजी भैया	...	५९
धर्म की समाधि	...	६०
भाग्य-चक्र	...	६३
मोती काका	...	६६
चोर	...	६९
प्रभु का प्यारा	...	७२
एक मनुष्य : तीन रूप	...	७५
मन्त्री का जन्मदिन	...	७७
कितना जमीन : कितना धन	...	७९
सम्राट और साधु	...	८१
सती	...	८३
प्रतिशोध	...	८६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(इतिहास के निर्झर)

साकूत वाचा (आचार्य सीताराम चतुर्वेदी)

सती का शाप ... ८६

गोगा बापा ... ६१

अपूर्व त्याग ... ६४

चित्तौड़ का तीसरा साका ... ६७

प्यार की समाधि ... ६६

तानसेन और ताना-रीरी ... १०२

जित्यो जी टोडरमल वीर ... १०६

मरण त्यौहार ... १११

दोहरा बलिदान ... ११४

बुन्देलों की आन ... ११६

दो शेरों की लड़ाई ... ११८

जगत सेठ हीरानन्द ... १२१

राजसंन्यासी दुर्गादास ... १२४

कुंवर हरदौल ... १२६

सिहंगढ़ विजय ... १२६

शाहजी-शिवाजी मिलन ... १३३

मातृ-दर्शन ... १३६

अफजल खां का बध ... १३६

मातृत्व ... १४२

कालजयी शिवाजी ... १५०

शिवाजी और धोखेबाज अंग्रेज ... १५३

शिवाजी का ऐतिहासिक पत्र ... १५६

प्यार की कीमत ... १५८

नंगा फकीर सरमद ... १६३

मां की ममता ... १६६

सती मस्तानी ... १७०

सती माता ... १७३

ह्दय परिवर्तन ... १७६

चौधरीजी का मायरा ... १७६

... १८२

आत्मकथा (मेरा गांव मेरा बचपन)

घणी-घणी खम्मा अन्नदाता ... १८५

बिना हुक्म भगवान के, पंछी बोले कूण ... १६६

सुरंगी रुतआई म्हारे देस ... २०१

गुरु की चोट, विद्या की पोट ... २१४

टोडरमल जीत्याजी ... २२०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जलम जलम गुण गाऊं रे कागा ... २२६
इत्ती कहाणी, गोगा राणी ... २३३
लोक-जीवन ... २४०
पुरजन-परिजन ... २४६
लोकाचार ... २५२
मारु म्हारा थे चाल्या परदेश ... २५६
(मेरा संघर्ष—मेरा कलकत्ता)
मत ना सिधारो पूरब री चाकरी जी ... २६३
मरुथर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागेजी ... २७४
करा जिसने फाटका, घर का रहा न घाट का ... २८२
सिन्धु सयानो सापुरुष, ए लोरा न कहाय ... २८८
बेनियनशिप ... २६५
पैरों का चक्कर ... ३०१
बीन के मुंडे लार पड़ै तो जनैती के करै ... ३०५
यात्रा के पथ पर ... ३१४
आजादी और उसके बाद ... ३२०
सार्वजनिक जीवन और कलकत्ते का मारवाड़ी-समाज ... ३२६
राजनीति में प्रवेश ... ३४०
बी०आई०सी० और कानपुर की मेयरशिप ... ३५०
और वे चले गये (श्री बालकृष्ण गर्ग) ... ३५६
विश्वयात्रा के संस्मरण
भूमिका-मातृका प्रसाद कोइराला ... ३६५
अपनी ओर से ... ३६८
बर्मा ... ३७३
मलयेशिया ... ३८१
हांगकांग ... ३८८
जापान-१ ... ३६४
टोकियो ... ४०१
जापान-२ ... ४०७
हवाई ... ४११
कैलिफोर्निया ... ४१६
सानफ्रांसिस्को ... ४२१
शिकागो ... ४२६
नियाग्रा ... ४३२
वार्शिगटन ... ४३७
न्यूयार्क ... ४४८
न्यूयार्क विश्वमेला ... ४६३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रेट ब्रिटेन		
लन्दन-१	...	४७०
लन्दन-२	...	४७७
स्काटलैण्ड	...	४८५
पेरिस में एक रात	...	४९६
पेरिस	...	५०६
गिरजों का देश बेल्जियम	...	५१०
हीरों के देश बेल्जियम में	...	५१४
स्विट्जरलैण्ड	...	५१८
आल्प्स की गोद में	...	५२४
हालैण्ड	...	५२८
गिरजों-गोंदालों के बीच	...	५३४
योरुप की अमरपुरी रोम	...	५४०
पांपियाई की भस्म समाधि पर	...	५४४
ग्रीस	...	५४९
ताशकन्द	...	५५३
मास्को-१	...	५५७
मास्को-२	...	५६४
मास्को-३	...	५७३
लेनिनग्राद-१	...	५७८
लेनिनग्राद-२	...	५८५
पिरामिडों के देश में	...	५९४
फिनलैण्ड	...	६००
नार्वे	...	६०६
स्वीडन	...	६१३
डेनमार्क	...	६२४
वियेना	...	६२९
जरमनी	...	६३६
बर्लिन	...	६४४
ब्रिमेन-हंबर्ग	...	६५४
तुर्की	...	६६३
बेरूत	...	६७३
पाकिस्तान	...	६८१
नेपाल	...	६९०
कुछ अपनी—कुछ जग की (निबन्ध)		-
विश्व का सबसे बड़ा मासिक पत्र	...	७०६
जी, मैं मारवाड़ी हूँ	...	७०८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मारवाड़ी-समाज की नई पीढ़ी	...	७१२
नई पीढ़ी का दूसरा पहलू	...	७१५
चरित्र-निर्माण में साहित्य का स्थान	...	७१७
एक विचित्र अनुभूति	...	७१८
उद्योगों का राष्ट्रीयकरण का नया प्रयोग	...	७२२
गुनाहों का बादशाह	...	७२४
शरणागत की रक्षा	...	७२६
सम्बन्ध बराबरी का	...	७३२
चोंच दी, वह चुग्गा भी देगा	...	७३४
जिस देश में गंगा-जमुना बहती है	...	७३६
जीवन की उपलब्धि	...	७३९
फूलों की घाटी	...	७४१
लोकपाल हेमकुण्ड	...	७४५
विश्व का सबसे धनी हावर्ड हयूजेस्	...	७५०
वैभव, विलास और अन्त	...	७५३
आज का विद्यार्थी	...	७५६
यह भूख-यह ऐयाशी	...	७५९
समय बदला पर हम नहीं	...	७६१
ये विदेशी पुतले	...	७६४
अंग्रेज गये, पर अंग्रेजियत नहीं	...	७६६
यमुनोत्तरी	...	७६८
गंगोत्तरी	...	७७३
बदरीनाथ	...	७७७
केदारनाथ	...	७८१
शेषनाग, पंचतरणी-अमरनाथ	...	७८६
राजगिर	...	७९०
गांधीजी का स्वराज	...	७९३
वामपंथी कांग्रेस	...	७९६
भारतीय साम्यवादी	...	७९२
डायरी के कुछ पृष्ठ (क्या खोया क्या पाया)		
रामेश्वर टांटिया	...	८०१
(श्री घनश्यामदास बिड़ला)		
प्रस्तावना	...	८०३
(पं० श्री नारायण चतुर्वेदी)		
यह रचना	...	८०८
(श्री गंगाशरण सिंह)		
डायरी के पृष्ठ	...	८११

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपनी बात

सार्वजनिक और व्यावसायिक जीवन में देश-विदेश घूमने के अनेक सुयोग मिले। जन-जीवन के निकट आ सका और बहुत-कुछ देखा, सुना और समझने की कोशिश की।

अनुभव हुआ, मानवीय चेतना का उद्बोधन् संस्कारों पर निर्भर है न कि धन-वैभव अथवा पांडित्य-विद्वत्ता पर। शायद, इसीलिये भारतीय संस्कृति में आत्मशुद्धि, अपरिग्रह और संयम पर अधिक बल दिया गया है। प्रकृत शिक्षा, वस्तुतः वही है जो संस्कारों को परिमार्जित कर मनुष्य को ऊपर उठाती है। इस प्रकार, स्वतः ही लोक-कल्याण सहज संभव हो जाता है।

अपने पर्यटन-काल में समय-समय पर बहुत से ऐसे ही आदर्शों को व्यक्तिगत रूप से जान पाया, कुछेक के बारे में सुना भी। अनकहे-अनजाने और प्रचार-प्रसार से विरत इन विभूतियों से प्रभावित हुआ।

पिछले दस वर्षों में देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इन पर लिखता रहा हूँ। मित्रों को अच्छी लगीं। सुझाव मिले कि कथाओं का संकलन प्रकाशित हो। कुछ अंशों तक समय का अभाव एवं कुछ सीमा तक, साहित्यकार न होने के कारण मेरी हिचक बाधक रही।

प्रस्तुत संकलन में कथाओं के अलावा निजी अनुभव भी हैं, जिन्हें यथावत् रखने का प्रयास किया गया है। औचित्य की दृष्टि से पात्र और स्थान के नाम में परिवर्तन किये गये हैं किन्तु घटनाएं और तथ्य वास्तविक हैं।

मां-भारती को यह छोटा-सा अर्घ्य भेंट।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्नेह सूत्र

बात शायद बीसवीं शताब्दी के शुरू की है। राजस्थान के किसी क़स्बे में राधेश्याम और रामस्वरूप दो सगे भाई थे। सम्पन्न परिवार था। व्यापार और धन-दौलत के अतिरिक्त दो-तीन गांवों की जमींदारी थी। जमींदारी और व्यापार के सब काम को छोटा भाई राधेश्याम सँभालता था। बड़े भाई के जिम्मे गाँव की पंच-पंचायती, अपना धर्मादा खाते का काम और परिवार वाले तथा पड़ोसियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान करना था। दोनों भाइयों के प्रेम को देख कर लोग उन्हें राम-लक्ष्मण की जोड़ी बताते थे। उन दोनों के बीच में रामस्वरूप के केवल एक ३ वर्ष का लड़का था। बच्चा अधिकतर अपनी चाची के ही पास रहता था। रात में भी उसी के साथ सोता था। कभी-कदाच उसकी माँ ले लेती तो जोर-जोर से रोने लग जाता था। वह हंस कर कहती–'छोटी बहू, तुमने किशन पर टोना कर दिया है'।

वास्तव में, वह टोनों का युग था। राधेश्याम की पत्नी सन्तान प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के जप-तप, देवी-देवताओं की पूजा आदि करती थी।

एक बार बालक किशन बीमार पड़ा। लगातार ज्वर रहने से बहुत दुबला हो गया। वैद्य-डाक्टरों के अनेक उपचारों के बावजूद बीमारी बढ़ती गई। पड़ोस की एक महिला ने बड़ी बहू के मन में विश्वास जमा दिया कि तुम्हारी देवरानी बाँझ है इसलिए उसने बच्चे पर टोना कर दिया है। वैसे वह देवरानी को बहुत प्यार करती थी। दोनों की आयु में पर्याप्त अन्तर था। वही अपनी पसन्द से उसे घर की बहू बनाकर लायी थी। परन्तु दुर्भाग्य से उस दिन इस अनहोनी बात को उसने सच मान लिया।

पत्नी की बात में आकर रामस्वरूप ने दूसरे दिन छोटे भाई को बुला कर बहुत बुरा-भला कहा। क्रोध में मनुष्य की मति मारी जाती है। उसने यहाँ तक कह दिया कि तुम पति-पत्नी चाहते हो कि बच्चा न रहे तो सारी सम्पत्ति तुम्हें मिल जाए।

राधेश्याम बड़े भाई को पिता-तुल्य मानता था। कभी उसके सामने सिर उठा कर बात भी नहीं की थी। इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से ऐसा लांछन सुन सुबक-सुबक कर रोने लगा। कहने लगा कि भैय्या जी, इतना बड़ा कलंक लेकर अब हम किस मुंह से यहाँ रह सकेंगे ? थोड़ी देर बाद स्वस्थ होकर बड़े भाई के पैरों में गिर कर कहा कि हम आज ही नगर छोड़ कर गाँव के घर में चले जायेंगे। मुन्ना जितना आपको प्यारा है, उससे कम हम लोगों को नहीं। उसकी चाची तो उसके बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकती। हमारे भाग्य फूट गये कि आपके मन में इस प्रकार के विचार आये। आपके चरणों की सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि आगे आप हमें कभी इस घर की देहली पर नहीं पायेंगे।

अपना जन्मस्थान सभी को प्यारा होता है। अगर चाहता तो राधेश्याम घर का आधा हिस्सा लेकर वहीं रह सकता था। परन्तु उसको किसी प्रकार भी यह स्वीकार नहीं था कि उसके कारण से परिवार का अनिष्ट हो। विदा के समय पति-पत्नी दोनों ने भाभी-भैय्या के पैर छुए, परन्तु बहुत मन होने पर भी कमरे में जाकर बीमार बच्चे के सिर पर हाथ नहीं फेर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सके ।

उनके जाने के बाद रामस्वरूप गुमसुम सा रहने लगा । कुछ इस प्रकार का मानसिक कष्ट हुआ कि उसने खाट पकड़ ली । थोड़े दिनों बाद बच्चा भला-चंगा हो गया परन्तु वह दिन पर दिन सूखने लगा । उसको लगातार ज्वर रहने लगा । उस समय तक क्षय-रोग का निदान नहीं था ।

पत्नी से बीमारी का कारण छिपा नहीं था । परन्तु संकोचवश गाँव जाकर देवर-देवरानी को मना कर लाने का साहस नहीं हुआ । उधर आरम्भ में तो राधेश्याम लोगों द्वारा बड़े भाई की बीमारी के समाचार मंगवाता रहा परन्तु जब नहीं रहा गया तो गाँव से आकर हवेली के बाहर बैठ जाता और वैद्य-डाक्टरों से पूछ-ताछ कर चिकित्सा की व्यवस्था करता रहता । सौगन्ध खाई हुई थी, इसलिए बहुत इच्छा होते हुए भी घर में जाकर अन्तिम घड़ी में भी भाई की सेवा नहीं कर सका । चलावे मृतक के क्रियाकर्म) के सारे कामों के लिए पति-पत्नी पास के एक घर में आकर ठहर गए । बारह गाँवों के गरीबों को भोजन कराया गया । काशी के पण्डितों को श्राद्ध-कर्म के लिए बुलाया । इतना बड़ा आयोजन आज तक इस कस्बे में कभी नहीं हुआ था । तेरहवें दिन पूरी बिरादरी को न्योता गया और चौदहवें दिन वे पुनः अपने गाँव चले गए ।

समय बीतता गया; किशन का बड़ी धूम-धाम से विवाह हुआ । उसकी माँ बीमार रहने लगी थी । इसलिए चाचा-चाची ने दिन-रात परिश्रम करके सारे नेगचार बड़ी अच्छी तरह से निपटाए ।

राजस्थान में नई बहू से पैर-छुआई और उसकी मुंह-दिखाई का नेगचार होता है । परिवार के और पास-पड़ोस के लोग उसके घर आकर कुछ-न-कुछ भेंट देते हैं ।

जब वह पड़ोस के घर में चाची जी के पैर छूने को गई तो उन्होंने सन्दूक में से एक डिब्बा निकाला और अपना सारा गहना जो उन्हें विवाह के समय मिला था—बहू को पहना दिया । कहा कि इस शुभ दिन के लिए मैंने भगवान से न जाने कितनी मनौतियाँ मानीं और कितने व्रत-उपवास किए । उन्होंने मेरी लाज रख ली, मेरा कलंक मिट गया । पितरों के आशीर्वाद से मेरा किशन फले-फूले और तुम सदा सुहागिन रहो । दूधों नहाओ और पूतों फलो । इसके बाद उसका गला भर आया । शुभ घड़ी में आँसुओं से कहीं अमंगल न हो जाए इसलिए शीघ्र ही भीतर के कमरे में चली गई ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिता का कर्ज

राजस्थान में चुरू एक पुराना कस्बा है। आज से सवा-सौ, डेढ़ सौ-वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार रहता था जिसका मालवा में बड़े पैमाने पर व्यापार था। जब अफीम को लेकर ब्रिटेन और चीन का युद्ध हुआ तो इनको घाटा लग गया, काम बन्द हो गया और देनदारी रह गई।

इसके बाद परिवार के स्वामी सेठ उजागरमल को घर के बाहर निकलते कभी नहीं देखा गया। कभी-कदाच कोई आदमी उनसे मिलने भी गया तो उनका चेहरा नहीं देख पाया, क्योंकि वे अपना मुंह चद्दर से ढके रहते थे। इसी शोक से उनका छोटी उम्र में ही देहान्त हो गया। परिवार में उनकी विधवा पत्नी और तेरह वर्ष का पुत्र, रामदयाल रह गए।

गहने और जमीन-जायदाद बेचकर उजागरमल ने अपना बहुत-सा कर्ज़ तो चुका दिया था, फिर भी मरते समय कुछ कर्ज बाकी रह गया था। अन्तिम समय में उन्होंने पत्नी और पुत्र रामदयाल को एक काग़ज दिया जिस पर कर्ज़दारों के नाम और रकमें लिखी थीं। पुत्र को उनका अन्तिम आदेश था कि मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिल पायेगी, जब किसी दिन तुम यह सारा कर्ज ब्याज समेत चुका दोगे।

दो वर्ष बाद रामदयाल का विवाह हुआ। इस मौके पर विधवा माँ ने थोड़ा-बहुत कर्ज़ लेकर पूरी बिरादरी को न्यौता दिया। बहू की अगवानी के समय किसी ने ताना कस दिया कि बाप का कर्जा तो चुका ही नहीं और विवाह में इतनी घूमधाम है! किशोर रामदयाल को यह बात चुभ गई और विवाह के कगन-डोरे खुल भी नहीं पाए थे कि उसने सुदूरपूर्व असम जाने का निश्चय कर लिया। माँ और पड़ोसियों ने रामदयाल को बहुत समझाया कि कुछ दिन ठहर जाओ और थोड़े बड़े हो जाने पर चले जाना, पर उसने किसी की भी न सुनी और रोती बिलखती माँ और बालिका बहू को छोड़कर, कुछ लोगों के साथ, ज़ो पूरब की यात्रा पर जा रहे थे, वह भी चल पड़ा।

उस समय असम की यात्रा में तीन-चार महीने लग जाते थे। ट्रेन कलकत्ते से कानपुर तक ही बनी थी। राजस्थान से कानपुर जाने में २५-३० दिन लगते थे। कलकत्ता से नौका में बैठकर असम जाने में भी डेढ़-दो महीने लग जात्ते थे। रास्ते में पद्मा नदीं पडती थी जिसके तेज बहाव में कभी-कभी नौकाएँ डूब जाती थीं। इसके सिवाय जल-दस्युओं का भी डर बना रहता था, इसलिए कई आदमी एक साथ मिलकर और पूरा बन्दोबस्त कर असम-यात्रा पर जाते थे। एक बार जाकर लोग ८-१० वर्ष की मुसाफिरी करके लौटते थे। रास्ते इतने संकटमय थे कि बहुत-से लोग तो वापस ही नहीं आ पाते थे। यात्रा के समय रामदयाल के पास संबल स्वरूप एक धोती, एक लोटा और कुछ चना-चबैना था और दृढ़ विश्वास एवं साहस।

असम की आबहवा बहुत ही नम रहने के कारण वहाँ मलेरिया और काला-ज्वर का प्रकोप बना रहता था पर व्यापार में गुंजाइश थी, इसलिए लोग पानी की जगह चाय पीकर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहते थे। बुखार हो जाने पर दवाइयाँ खाते। कुनैन का तो उस समय तक आविष्कार ही नहीं हुआ था।

रामदयाल को राजस्थान से तिनसुकिया (असम) पहुँचने में चार महीने लग गए। वहाँ जाकर उसने कपड़े की फेरी का काम शुरू किया। सुबह कन्धे पर कपड़े लादकर गांवों में निकलता और शाम को एक या दो रूपये कमाकर अपने डेरे पर वापस आ जाता।

इस समय तक वहाँ मारवाड़ियों की कुछ दूकानें हो गई थीं और यह आम-रिवाज़ था कि नया आया हुआ कोई भी व्यक्ति निस्संकोच उनके बासे में खाना खा सकता था। जब अच्छी कमाई होने लगती तब अपनी अलग व्यवस्था कर लेता। इसके सिवाय पहले से बसे हुए मारवाड़ियों से व्यापार में भी वाजिब सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहता था। रामदयाल को इनका पूरा सहयोग मिला।

कड़ी मेहनत और ईमानदारी से दस वर्षों में उसने इतना धन कमा लिया जिससे वह अपने पिता का पूरा कर्ज़ ब्याज सहित चुका सका। वर्ष में एक-दो बार किसी पड़ोसी से लिखाया हुआ माँ का पत्र मिल जाता, जिसमें देश आने का तक़ाजा रहता था। उन दिनों बेचारी पत्नी पति को पत्र देने का साहस ही नहीं कर सकती थी।

इसी प्रकार ६-७ वर्ष और व्यतीत हो गए। इस बीच में रामदयाल के पास ४०-५० हजार की पूंजी हो गयी और अपनी निज की दूकान भी। एक दिन अचानक ही पत्र मिला कि उसकी माँ सख्त बीमार है और अन्तिम समय में उसको देखना चाहती है।

अपनी दूकान की सारी व्यवस्था मुनीमों को सौंपकर वह देश के लिए रवाना हुआ और जैसे आया था, उसी प्रकार तीन महीने में भिवानी पहुँचा इस समय तक रेल कानपुर से भिवानी तक बन गयी थी। असम जातें वक्त तो रुपयों के अभाव में रामदयाल अपने घर (राजस्थान) से पैदल ही कानपुर तक आया था, पर अब उसकी स्थिति अच्छी हो गयी थी, इसलिए भिवानी से ऊंट किराए पर लेकर वह अपने गाँव के लिए रवाना हुआ। १६-१७ वर्ष के लम्बे समय के बाद वह राजस्थान लौट रहा था। असम की हरी-हरी उपजाऊ भूमि से उसका इतना सान्निध्य हो गया था कि इस रेतीली मरुभूमि को एक प्रकार से भूल-सा गया था। परन्तु जैसे ही उसने बड़े-बड़े टीबों और उनकी चमचम करती हुई बालू को देखा तो उसे अपने बचपन के दिन याद आ गए जब वह इन पर हम-उम्र संगी-साथियों के साथ खेलता और लोटता था। उसका मन हुआ कि ऊँट पर से इसी दम उतर पड़े और जी-भरकर एक बार फिर इस रेत का आलिंगन करे।

चार दिन बाद, एक सुबह जब वह अपने गाँव के कांकड़ (किनारे) पर पहुँचा तो देखा कि कुछ व्यक्ति एक सधवा स्त्री की अर्थी लिये हुए जा रहे हैं। रामदयाल १६-१७ वर्ष के बाद गाँव लौटा था, इसलिये न तो वह किसी को पहचानता था और न कोई उसे ही। अर्थी के साथ जा रहे लोग आपस में बातें कर रहे थे कि इस बेचारी (मृत महिला) ने जीवन में देखा ही क्या? १७ वर्ष पहले ब्याह होते ही पति परदेश चला गया और अभी तक वापस नहीं लौटा। एकमात्र सास का सहारा था वह भी तीन महीने पहले इसे सदा के लिए छोड़ गई।

रामदयाल के मन में कुछ आशंका और जिज्ञासा हुई। उसने लोगों से पूछा तो पता चला कि यह तो उसकी ही पत्नी की ही अर्थी है।

जिस वात्सल्यमयी माँ और पत्नी से मिलने की आकांक्षा लिये वह आया था, वे दोनों ही अब नहीं रहीं। जो कुछ शेष रहा, वह था गाँव-पड़ोस के लोगों के कटु वचन और निन्दा-स्तुति। रामदयाल बिना किसी को अपना परिचय दिए उल्टे पैरों चुपचाप वापस लौट गया। उसका पैत्रिक मकान अभी था, परन्तु सूने मकान में जाने की हिम्मत नहीं हुई। इतने बड़े संकट में भी उसे सबसे बड़ा संतोष और सहारा इसी बात का था कि उसने अपने पिता का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सारा कर्ज़ ब्याज सहित चुका दिया था।

रामदयाल के पिता ने उसे केवल काग़ज दिया था जिस पर लेनदारों के नाम और रकमें लिखी थीं। उस समय न तो स्टाम्प के कागज पर ही कर्ज़ की लिखा-पढ़ी होती थी और न कोई गवाह या जामिन होते। परन्तु वे लोग सबसे बड़ी लिखा-पढ़ी और गवाह-जामिन ईश्वर को मानते थे और पिता-पितामह का कर्ज़ चुकाए बग़ैर सार्वजनिक उत्सवों में कभी-कदाच ही शामिल होते थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि ३०-४० वर्ष बाद तक पुत्र और पौत्रौं ने अपने पिता और पितामह के कर्ज़ चुकाए हैं।

यही कारण है कि हाल के वर्षों तक हमारे पूर्वजों के, बिना-मात्रा के हरफों में लिखे बही-खातों की अदालत में भी साख और इज्जत थी।

●

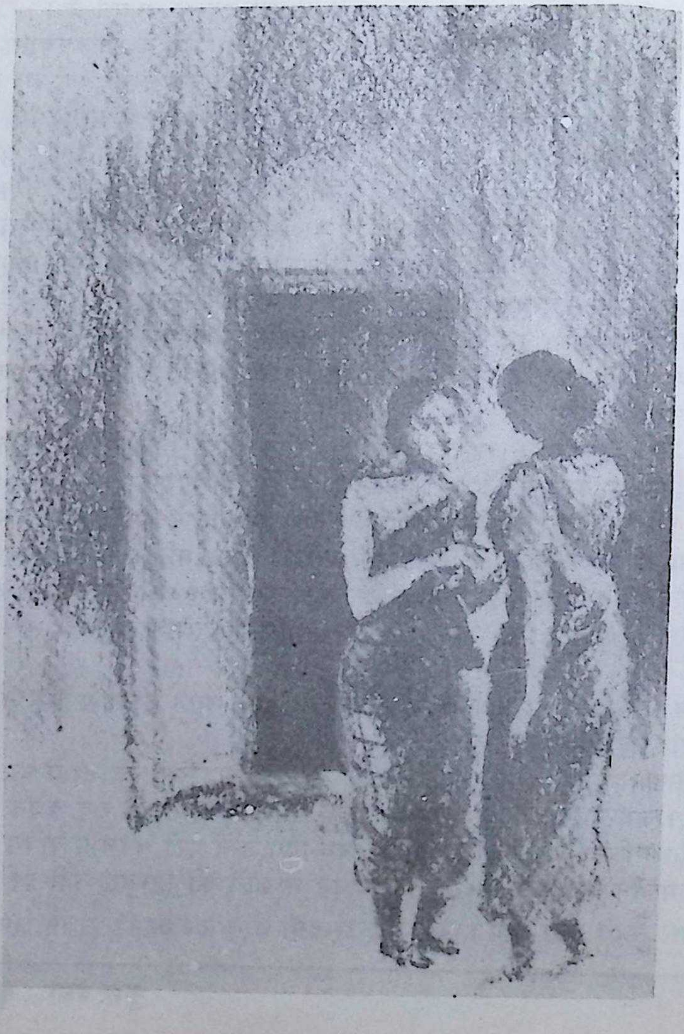

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजा और रंक

राजस्थान के बूंदी राज्य में हाड़ा-राजपूतों का शासन था। सन् १७५० ई० में महाराज उमेद सिंह यहाँ राज्य करते थे। छोटी आयु में ही पिता की मृत्यु हो जाने से इन्हें राजगद्दी मिल गयी। आपको शिकार खेलने का बड़ा शौक था। प्रायः ही, १०-१५ मुसाहबों और शिकारियों को साथ लेकर पहाड़ों और जंगलों में शिकार के लिए चले जाते।

माघ का महीना था। एक दिन महाराज अपने सरदारों और शिकारियों के दल के साथ पास के पहाड़ों में शिकार के लिए गए। शाम होते-होते एक बड़े चीतल को देखा तो राजा ने अपना घोड़ा उसके पीछे छोड़ दिया। दौड़ते-दौड़ते जंगल में रास्ता भूलकर बहुत दूर निकल गये। सभी साथी पीछे छूट गए।

रात हो गई और भयंकर तूफान के साथ ओले और वर्षा शुरू हो गई। रास्तों में चारों तरफ पानी जमा हो गया। ऊपर से बर्फीली हवा साँय-साँय करके चल रही थी।

ऐसी भयंकर सर्दी में महाराज ठिठुर कर बेहोश हो गए, किन्तु घोड़ा बहुत ही समझदार था। वह उन्हें अपनी पीठ पर लादे घूमता हुआ एक झोंपड़ी के द्वार पर आया और हिनहिनाने लगा। जब कुछ देर तक किवाड़ नहीं खुले तो घोड़े ने दरवाजे पर पैरों की टाप लगाई। हाथ में दीपक लिए एक वृद्ध बाहर आया और कुछ क्षणों में सारी परिस्थिति समझकर बेहोश युवक को पीठ पर लादकर भीतर ले गया। कीमती कपड़े और गहने देखकर वह यह तो समझ गया कि यह अवश्य ही कोई बड़े घर का युवक है, परन्तु उसने स्वप्न में भी यह न सोचा कि स्वयं महाराज उसके अतिथि बने हैं।

झोंपड़ी में उसकी किशोरी पुत्री रूपमती के सिवाय और कोई न था। पिता-पुत्री दोनों ने मिलकर युवक के भींगे वस्त्र उतारे और उसे आग के पास लिटा दिया। चम्मच से मुँह खोलकर गरम दूध पिलाने लगे। बहुत प्रयत्न करने पर भी युवक की बेहोशी दूर नहीं हुई। शरीर ठंडा ही बना रहा। डर लगा कि कहीं वह मर न जाय। एक क्षण को वृद्ध विचलित-सा हुआ किन्तु वह अनुभवी था, वैद्यक का ज्ञाता भी। उसने पुत्री को सकुचाते हुए कहा—"बेटी, इसके शरीर में गरमी लाने का अब एक ही उपाय है। तुम इसकी शय्याचारिणी बनो, इसके शरीर को अपने शरीर की गर्मी पहुँचाओ। बेटी को लज्जित देखकर वृद्ध ने दृढ़ स्वरों में कहा—"घर आए अतिथि के प्राण बचाना हमारा कर्तव्य है। इससे बड़ा पुण्य पृथ्वी पर नहीं है। तुम संकोच त्यागकर धर्म का पालन करो अन्यथा नर-हत्या का पाप हम दोनों के मत्थे चढ़ेगा।"

उच्च आचार-विचार वाली कुमारी कन्या के लिए, जिसने पिता के सिवाय किसी पर-पुरुष को छुआ तक नहीं था, उसके लिए पिता की यह आज्ञा बहुत ही कठोर थी। गहरे मानसिक द्वन्द्व के उपरान्त वह पिता के आदेश को मानते हुए मेहमान को भीतर ले गयी।

बहुत देर बाद युवक के शरीर में गरमी आयी। उसने अपने आपको एक किशोरी की नग्न बाहों में पाया तो विचलित हो उठा। जब सुबह हुई तो कुमारी रूपमती स्त्री बन चुकी थी।

महाराज ने अपने वृद्ध मेजवान के कुल, जाति आदि की जानकारी ली तो ज्ञात हुआ कि वह भी राजपूत सरदार है, अपनी स्त्री के किसी सामाजिक अपराध से दुःखी होकर एकमात्र कन्या के साथ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोगों की दृष्टि से दूर १४ वर्षों से इस निर्जन गाँव में रहने लगा है। परन्तु अब उसे अपनी जवान पुत्री के विवाह की चिन्ता है।

दूसरे दिन सुबह महाराज के साथी उन्हें खोजते हुए इसी झोंपड़ी के पास आए, बाहर खड़े अश्व ने हिनहिनाकर स्वामी के अन्दर होने का संकेत दिया। महाराज को सुरक्षित पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजा ने वृद्ध को बहुत-सा धन उपहार में देना चाहा, परन्तु बाप-बेटी दोनों ने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। कहने लगे कि हमने जो कुछ किया, वह सब कर्त्तव्य के वश किया है न कि धन के लोभ में।

विदा होते समय महाराज ने वृद्ध के समक्ष उसकी पुत्री को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव रखा। एक बार तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब हीरेजड़ी अँगूठी पहना दी गयी तो उसकी आँखों में हर्ष के आँसू आ गए।

तीन-चार महीने बीत गए। इस बीच बेटी के कहने से पिता दो-बार बूंदी गए। महाराज से भेंट हुई, कन्या के विवाह की उन्हें याद दिलाई तो वह क्रोधित हो उठे। कहा—"आदमी को अपनी हैसियत देखकर संबंध की बात करनी चाहिए। तुम लोग चाहो तो सौ-दो-सौ रुपये महीने का वसीका राज्य से मिल सकता है। फिर कभी मत आना, नहीं तो अपमानित होकर जाना पड़ेगा।"

आखिर, एक दिन रूपमती ने अपने पिता को संकोच त्यागकर सारी बात कह दी और बता दिया कि उसे महाराज का गर्भ है। यह सुनकर वृद्ध को ऐसा सदमा पहुँचा कि वह थोड़े दिनों में मर गया।

समय पाकर रूपमती ने एक बहुत ही सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेवा-सुश्रूषा के लिए देहाती स्त्रियाँ थीं जो इस पितृहीन युवती को प्यार करती थीं।

पूछने पर रूपा बराबर यही कहती कि उसका पति एक बहुत बड़ा राजा है और जल्द ही उसे राजधानी ले जायेगा।

एक दिन उसने सुना कि महाराज आमेर की राजकुमारी से विवाह करके बारात लिए लौट रहे हैं। यद्यपि रूपमती ने राजधानी न जाने की एक प्रकार से सौगन्ध खा ली थी, पर उस दिन मन को कड़ा करके, बच्चे को जुलूस दिखाने नगर की ओर चल दी।

सारे शहर में अपूर्व सजावट हुई थी। चारों तरफ तोरण-बन्दनवार बँधे थे। शहनाइयाँ बज रही थीं, पटाखे छूट रहे थे, पुर-नारियाँ मधुर गीत गा रही थीं।

रूपवती ने देखा गाजे-बाजे सहित महाराज की सवारी आ रही है। सोने के हौदे सजे हाथी पर महाराज और उनके पीछे रथ में नव-विवाहिता महारानी। लोग गर्व से एक दूसरे कह रहे थे कि महाराज कितने प्रतापी हैं तभी तो आमेर की राजकुमारी से सम्बन्ध हुआ है, आदि।

लोगों के धक्कों से किसी प्रकार बचती हुई रूपवती अपने शिशु को लिए राजा के सामने जा पहुँची। महाराज ने उन्हें क्षण भर के लिए देखा और मुँह फेर लिया।

थोड़ी देर बाद भीड़ में शोर मचा, कुछ हलचल हुई। लोगों ने देखा कि अतीव सुन्दर नवयौवना अपने नवजात शिशु के साथ जमीन पर कुचली पड़ी थी। चारों तरफ ताजे लहू की धार बह रही थी। उनमें से कुछ लोग कह रहे थे—"हमने इसे, दौड़कर हाथी के पैरों के नीचे जाते देखा था"।

लाशों को रास्ते से अलग हटा दिया गया। बाजे और नगाड़े फिर जोरों से बजने लगे। आखिर किसी पगली के पीछे इतने बड़े उत्सव में व्यवधान क्यों आये?

छज्जों से महाराज के हाथी पर पुष्पों की वर्षा हो रही थी। 'महाराज की जय हो', 'अन्नदाता घणी खम्मा' की आवाजों से आकाश गूँज रहा था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चन्दरी बुआ

राजस्थान में पुराने जमाने में ऐसी प्रथा थी कि एक ही गाँव में शादी-विवाह नहीं होते थे। लड़की को दूसरे गाँव में देते और दूसरे गाँव की लड़की को बहू बनाकर लाते थे। यहाँ तक होता था कि अगर किसी गाँव में बारात आतीं तो वर-पक्ष के गाँव की जितनी भी लड़कियाँ वहाँ ब्याही हुई होतीं, सबको मिठाइयाँ भेजी जाती थीं।

अपने गाँव की लड़की को, चाहे किसी भी जाति की हो, आयु के अनुसार भतीजी, बहिन या बुआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि घर के पास मुसलमान लखारों का एक घर था, हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कहकर पुकारते थे।

अब गाँव, कस्बों में परिवर्त्तित हो गए हैं और यातायात के साधन सुलभ होने से आवागमन भी बढ़ गए हैं, इसलिए यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथा की नायिका चन्दरी बुआ का जन्म राजस्थान की बीकानेर रियासत के एक गाँव मेंआज सेकरीब ११० वर्ष पहले एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था।

जब चन्देरी १२ वर्ष की हुई तो उसका विवाह हुआ। पास के गाँव से बारात आई और सारे कार्य धूम-धाम से सम्पन्न हूए।

उसका पिता साधारण स्थिति का ब्राह्मण था, परन्तु उन दिनों विवाह-शादियों में घर वालों को कुछ विशेष नहीं करना पड़ता था। गाँव के पुरुष और स्त्रियाँ सारे कामों का आपस में बँटवारा कर लेते थे। प्रति घर से एक-दो रुपए टीके या दान के रूप में दिए जाते जिससे माँ-बाप के लिए खर्च का बोझ भी कम हो जाता था।

विवाह तो बचपन में हो जाते, पर गौना तीन या पाँच वर्ष बाद होता था। इससे पहले बहू ससुराल नहीं जाती थी। चन्दरी के पति का देहान्त गौनां होने के पूर्व ही हो गया, फिर वह ससुराल नहीं गई और मायके में ही रहने लगी।

पहले तो वह शायद बेटी या बहन के नाम से पुकारी जाती होगी, पर मैंने जब होश संभाला, तब तक वह प्रौढ़ा हो चुकी थी और उसे बुआ का पद मिल चुका था। उसके माँ-बाप स्वर्गवासी हो चुके थे। वह सारे मुहल्ले की बुआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा लेने में उसे प्रारम्भ से ही ग्लानि थी इसीलिए वह सबके साथ अच्छे सम्बन्धों के कारण श्रम करके ही अपना जीवन-निर्वाह करती थी। सुबह ४ बजे उठकर चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदय तक ८ से १० सेर तक अनाज पीस लेती। इससे प्रतिदिन २ से २॥ आने तक कमाई हो जाती। उसे कभी काम का अभाव न रहता, क्योंकि एक तो वह काम में स्वच्छता रखती तथा दूसरे अनाज को साफ करके पीसती तथा पिसाई में आटा घटाती न थी।

जब कभी हमारी नींद पहले खुल जाती तो चन्दरी बुआ के भजन तथा उनकी चक्की की आवाज सुनाई पड़ती। उन दिनों एलार्म घड़ियाँ तो सुलभ थीं नहीं, अतः जिसे कभी मुहूर्त साधकर जाना होता या पहले उठना होता, वह चन्दरी बुआ को समय पर जगाने को कह जाता और वह उसे नियत समय पर जगा देती। उस समय तारों को देखकर समय का ज्ञान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बड़ी- बूढ़ी स्त्रियों को रहता था ।

उनकी आवश्यकताएँ कम थीं । इसलिए दो-ढाई आने में सामान्य जीवन-निर्वाह हो जाता था । चन्दरी बुआ ने इससे अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं समझी । दिन में वह मुहल्ले के बच्चों की देखभाल करती तथा कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती । उन दिनों प्रसव का काम सयानी स्त्रियाँ या दाइयाँ ही संभालती थीं । कठिन-से-कठिन समय में भी चन्दरी के आ जाने पर घर वालों को और जच्चा को सान्त्वना व साहस मिल जाता था ।

उसने जीवन का सारा प्रेम और ममत्व दूसरों के बच्चों पर उँड़ेल दिया था । मुहल्ले के बच्चे सारे-दिन उसे घेरे रहते । किसी को पतंग के लिए लेई चाहिए तो किसी को अपनी गुड़िया के विवाह के लिए रंग-बिरंगे कपड़े । उसके दरवाजे से निराश जाते किसी को नहीं देखा ।

संगीत की शिक्षा लिए बिना ही उसे ताल और स्वर का यथेष्ट ज्ञान था । विधवा होने के कारण विवाह-शादी के गीत तो नहीं गाती, परन्तु भजन और 'रतजगा' (रात्रि-जागरण) उसके बिना नहीं जमते थे । मीरा और सूर के पदों को इतनी लवलीन होकर मधुर रागिनी से गाती कि सुनने वाले भावविभोर हो जाते ।

जब वह काफी वृद्धा हो चली तब भी मैंने उसे देखा था । उस समय अनाज पीसना तो उसके वश की बात नहीं थी, फिर भी कुछ छोटा-मोटा काम करती रहती थी । वह इतनी बूढ़ी हो चुकी थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लग गये थे और आवाज में भी हकलाहट-सी आ गई थी ।

प्रति वर्ष गर्मी के मौसम में लोग हरिद्वार और बदरीनाथ जाते थे । चन्दरी बुआ से लोगों ने बहुत बार आग्रह किया, परन्तु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिन के भाग्य में तीर्थ-यात्रा कहाँ है, यह सब तो भाग्यशाली लोगों को मिलता है ।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी–"आजकल स्वास्थ्य जरा ठीक नहीं रहता, पता नहीं कब शरीर छूट जाय । मेरे मन में अपनी ससुराल के गाँव में एक कुंआ बनाने की साध है । वहाँ एक ही कुंआ है इसलिए गर्मी में गायें और ढोर तो प्यासे रहते ही हैं, मनुष्य को भी पूरा पानी नहीं मिलता । तुम पता लगाकर बताओ कि कुंए पर कितना खर्च बैठेगा । मैं सोचने लगा कि बुढ़ापे में बुआ का दिमाग खराब हो गया है । आजकल दोनों वक्त का खाना तक खुद नहीं जुटा पाती, इस पर भी कुआँ बनाने की धुन लगी है ।

बात आई- गई हो गई, परन्तु १०–१२ दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती बुआ सुबह ही सुबह हाजिर है । मन में अपने ऊपर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसके स्नेह की छाया में बचपन के इतने वर्ष बिताए, जिससे नाना-प्रकार के छोटे-मोटे काम लिए, बहुत रात तक गए कहानियाँ सुनीं, उसके एक छोटे-से काम पर भी मैंने ध्यान नहीं दिया !

मैने कहा," वहाँ पानी बहुत नीचा है, इसलिए कुए पर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होंगे । यदि कुंई (छोटा कुंआ) बनायी जाय तो शायद डेढ़ हजार तक में बन सकेगी ।"

मेरा उत्तर सुनकर बुआ के झुर्रियों से भरे चेहरे पर एक गहरी उदासी छा गयी मन-ही-मन कुछ हिसाब-सा लगाने लगी । दूसरे दिन मुझे अपने घर आने को कहकर चली गई ।

अगले दिन जब मैं उसके यहाँ पहुँचा तो देखा कि वह मेरा इन्तज़ार कर रही है । थोड़ी देर इधर-उधर देखकर मुझे भीतर की एक कोठरी में ले गयी । खाट के नीचे से एक पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उड़ेल दिया ।

विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचम की छाप के पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी । थोड़े-से चाँदी के गहने और सोने की मूरत थी. जो शायद उसकी माँ ने उसके विवाह के समय उसको दी होगी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं रूपये गिन रहा था और पिछले ६०-७० वर्षों का इतिहास मेरे मानस में तैर रहा था। सोच रहा था, इस वृद्धा की सारी उम्र की गाढ़ी कमाई का यह पैसा है जो उसने कठिन जीवन बिताकर, यहाँ तक कि तीर्थयात्रा की बलवती इच्छा को दबाकर इकट्ठा किया है। आज जीवन के संध्याकाल में सारा-का-सारा परोपकार में लगा देना चाहती है। गिनकर मैंने बताया कि लगभग ६००) रुपये हैं। ३००) रुपये के गहने होंगे। इतने में काम बन जायेगा; जो कुछ थोड़ी कमी रहेगी, उसकी व्यवस्था हो जायगी; कोई चिन्ता की बात नहीं है।

वह बोली—"बेटा, मेरे पति के निमित्त कुआँ बनेगा। इसमें दूसरों का पैसा नहीं ले सकूंगी। नहीं होगा तो एक मज़दूर कम रख कर कुछ काम मैं कर दिया करूँगी।" मैने पूछा, 'बुआ कुंए पर किसके नाम का पत्थर लगेगा?" अपनी धुंधली आँखों को कुछ फैलाने की चेष्टा करते हुए बुआ ने जवाब दिया—"नाम की इच्छा से पुण्य घट जाता है फिर मानुष तो स्वयं क्षणभंगुर है, उसके नाम का मूल्य ही क्या ?"

मुझे इस अपढ़ वृद्धा के तर्क पर आश्चर्य के साथ श्रद्धा हो रही थी, यह कुआँ बनाने के परोपकारी काम के लिए सर्वस्व लगाकर भी न तो अपना और न अपने पति के नाम का पत्थर लगाने की इच्छा रखती है—जबकि आज १ लाख लगाकर ५ लाख की इमारत या संस्था पर नाम लगाने की खींच-तान धनवान और विद्वानों में लगी रहती है तथा उद्‌घाटन-समारोह किस मंत्री या नेता से करायें, इस परकाफी सोच-विचार होते हैं। तय नहीं कर पा रहा था कि कौन बड़ा दानी है और किसका दान अधिक सात्विक है।

कुछ दिनों बाद उस गाँव में गया तो कुंआ बन रहा था और चन्दरी बुआ भी मजदूरों के साथ टोकरी ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर-कारीगर भी जी-जान से काम में जुटे थे।

किसी ने कहा—"बुआ, तुम्हारे कुंए का पानी तो बहुत मीठा निकला है, परन्तु तुम तो बहुत दिन नहीं पी न सकोगी।" वह बोली, "मेरा इसमें क्या है ? तुम सब लोगों में रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काम में लग गया। दूसरों के कुओं से सारी उम्र पानी पिया है, इसलिए इस छोटे-से प्रयत्न के द्वारा मैंने अपना ऋण चुकाने का प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकलें तो गंगाजल की जगह इसी कुएं का पानी मेरे मुंह में डालना।"

कुंआ बनकर तैयार हो गया, परन्तु बुआ थक कर बीमार हो गई। जिस दिन हनुमान जी का जागरण और प्रसाद हुआ, वह बेहोश-सी थी।

जागरण में आस-पास से देहात के काफी लोग इकट्ठे थे। भजन-कीर्तन चल रहा था; थोड़ी देर बाद वहीं सबके सामने बुआ का देहान्त हो गया।

आज वह गाँव बड़ा हो गया है और दूसरे कुएं भी बन गए हैं, परन्तु चन्दरी-कुएं के पानी के समान मीठा पानी किसी का भी नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उतार-चढ़ाव

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण की बात है। करांची के एक मध्यमवर्गीय सिन्धी परिवार में हरनाम नाम का बालक था। मां बचपन में ही मर चुकी थी। बाप ने प्रौढ़ावस्था में फिर से एक गरीब घर की लड़की से विवाह कर लिया। उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गए थे।

हरनाम की शादी-शुदा अपनी एक बड़ी बहन थी परन्तु उसे कभी त्योंहार पर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी छुपकर भाई की पाठशाला में आती और कुछ चीजें दे जाती। घर में छोटे भाई-बहन के लिए विशेष अवसरों पर नए कपडे और तरह-तरह की मिठाइयां बनतीं, परन्तु हरनाम को कोई भी नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आंखों से देखता रहता। कभी-कदाच, वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो मां उन्हें मना कर देती।

एक दिन, किसी साधारण से कसूर पर विमाता ने हरनाम को बहुत पीटा। पिता भी पत्नी के डर से कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बच्चा घर से भागकर समुद्र किनारे खडे किसी भार-वाही जहाज में जाकर छिप गया।

थोड़ी देर बाद जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तुस्थिति का भान हुआ और सुबक-सुबक कर रोने लगा। परशियन ऑयल कम्पनी का जहाज था। ज्यादातर मल्लाह अरब थे, दो-चार आफिसर भी थे। जब उन्होंने १२-१३ वर्ष के एक अति सुन्दर बालक को इस स्थिति में देखा तो आश्चर्य चकित रह गए। धीरे-धीरे सारी बातों की जानकारी ली। जहाज का करांची वापस जाना सम्भव नहीं था। बालक पर कप्तान का स्नेह हो गया। उसने अपनी कैबिन में रख उसे लिया। ईरान पहुंचकर कप्तान ने उसे एक धनी ईरानी परिवार में नौकर रखा दिया। हरनाम की बुद्धि कुशाग्र थी। थोड़े दिनों में ही उसे अरबी, फारसी और अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया।

उन दिनों, ईरान में तेल कम्पनी के बहुत से अंग्रेज अधिकारी थे। परशियन ऑयल कम्पनी का बड़ा साहब वहां ब्रिटेन की तरफ से सर्वोच्च राजदूत भी था। एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुए किसी अरबी शब्द के बारे में बहस कर रहे थे। हरनाम उधर से गुजर रहा था। उसने क्षमा मांगते हुए विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबा का जमला सही है।

अब तो हरनाम पर उन दोनों की पूर्ण कृपा हो गई। उसे उन्हीं के बंगले में रहने, खाने की सुविधा मिल गई। हाथ-खर्च के लिए दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था, मेम साहिबा को अरबी और फारसी पढ़ाना।

प्रथम महायुद्ध में ईरान, मध्यपूर्व का सप्लाई केन्द्र बना। करोड़ों रुपये महीने का सामान वितरण होने लगा। तेल-कम्पनी का बड़ा साहब निर्देशक नियुक्त हुआ।

अधिकांश सामान के वितरण का काम मिला हरनाम दास एण्ड कम्पनी को। सन् १९१८ ई० तक हरनाम दास करोड़पति सेठ बन गया। वहीं चार-छः मुताह (कन्ट्रैक्ट मैरिज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये। इन बीबियों के अलावा उसके रंगमहल में एक-से-एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुन्दरी दासियां थी। सैकड़ों नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते घर और आफिस का काम देखते। उसके दरवाजे पर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

संयोग से एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहां जा पहुंचा। स्वदेश के संयासी की दूसरों की अपेक्षा अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीने तक किसी राजा-महाराजा का-सा आयोजन उनके लिए हुआ। विदाई की दक्षिणा में कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रकम नकद दी गई।

पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय के बाद, एक साधु महाराज हरिद्वार के पास मुनि की रेती में एक बड़े-पकौड़ी की दूकान पर खड़े होकर, दूकानदार को वे बड़े ध्यान से देख रहे थे। महाराज को प्रेम से नाश्ते का निमन्त्रण मिला। पहले से ही ५-४ संन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकान पर ग्राहकों की अच्छी भीड़ थी।

दूकानदार ने पूछा कि महाराज आप इतने ध्यान से मुझे क्यों देख रहे थे?

संन्यासी ने १५ वर्षों पहले के ईरान प्रवास की अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदास का चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।

जब उन्हें पता चला कि वे उस हरनामदास से ही बातें कर रहे हैं तो उनके आश्चर्य को ठिकाना नहीं रहा।

जो कहानी उन्हें सुनाई गई, वह इस प्रकार थी

आपके चले जाने के एक वर्ष बाद बड़े साहब का तबादला हो गया और छोटे साहब ने काम सम्हाला। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की थी, इसलिए वह और उसके मुंहलगे दोस्त एवं कर्मचारी मुझ से जलते रहते थे। कुछ ही दिनों बाद मुझ पर जालसाजी का मुकदमा चलाया गया जिसकी सजा होती मौत।

जल्दी से व्यवस्था करके, मुनीमों को काम सम्हलाकर मैं ४-५ लाख की सम्पत्ति लेकर अपने सचिव के साथ ईरान से छद्मवेश में रवाना हुआ। रास्ते में मेरा सचिव सन्दूकें लेकर न जाने कहां उतर गया। मैं जब बम्बई बन्दरगाह पहुंचा तो मेरे पास थोड़े से रुपये और एक बहुमूल्य हाथ-घड़ी बची थी।

घड़ी बेंचने के लिए दो-तीन दूकानों में गया। दूकानदार मेरी मैली वेश भूषा और बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर सन्देह करने लगे कि शायद मैं घड़ी चुराकर लाया हूं। केवल ५०), ६०) रुपये तक देने को तैयार हुए। मैने क्रोध में आकर घड़ी को समुद्र में फेंक दिया।

जगह-जगह मजदूरी करता हुआ, संयोग से यहां आकर बड़े-पकौड़ी की यह दूकान कर ली। थोड़े दिनों तक तो मन में संताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपेदेश था, "बच्चा, धन और मान में सच्चा सुख नहीं है। ईश्वर के बन्दों की सेवा करो, शान्ति मिलेगी।" तब से महात्माओं को प्रसाद देकर जो बच जाता है उसी से दो जून की खुराक आराम से मिल जाती है। सुबह ६ बजे से लेकर रात के १२ बजे तक मेहनत करने से शरीर स्वस्थ रहता है और मन भी नाना चिन्ताओं से मुक्त है। भगवती गगा का तट है और साधु-महात्माओं का संग-लाभ; सचमुच, बहत आनन्द में हूं।

संन्यासी ने प्रसाद पाकर हरनामदास को प्रणाम किया और कहा कि वास्तव मे ही आप सुख-दुःख के समदर्शी-समभोगी हैं।

सन् १९६१ में हरनामदास की मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल भारत) के घर पर एक-दो बार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी होने पर भी आदतें पहले जैसी ही थीं। एक-दो कम्बल या कोट पास में होता तो वह किसी जरूरतमन्द को दे देता। कई दिनों तक कड़ाके की सर्दी भुगतने के बाद फिर बना पाता परन्तु कभी उसके चेहरे पर दीनता के भाव नहीं दिखाई दिए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मीयता

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी भी नहीं; क्योंकि ४०-५० वर्ष पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने सेठ जी को देखा था। उनका अपना गाँव तो राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में था, परन्तु ज्यादा-तर वे रहते थे बम्बई में। वहाँ बड़े पैमाने पर रूई और आढ़त वगैरह का उनका कारोबार था।

वर्ष में एक बार गाँव जाते तो ग़रीब और जरूरतमन्दों में महीनों पहले से चर्चा शुरू हो जाती। गाँव के सैकड़ों व्यक्ति दो-चार कोस अगवानी करने के लिए जाते। सेठजी भी छोटे-बड़े सबको उनके नाम से सम्बोधित करके राजी-खुशी का हाल पूछते। इतने बड़े व्यक्ति से अपना नाम सुनकर लोगों के मन में गुदगुदी-सी होती और अपने को भाग्यवान् मानते।

जितने दिन वे वहाँ रहते, प्रायः रोज ही कभी हनुमानजी के प्रसाद में तो कभी सत्यनारायण भगवान् की कथा-उद्यापन के उपलक्ष्य में गांव के लोगों को भोजन के लिए बुलाते रहते। ब्राह्मणों को प्रति-घर एक रुपया एक धोती और एक साड़ी भेंट दी जाती। यद्यपि आज के बड़े धनिकों के अनुपात में उनके पास रुपया कम था, परन्तु उन दिनों चीजें बहुत सस्ती थीं और उनका मन बहुत ऊंचा था, इसलिए जितनी आय होती उसका अधिकांश दान-धर्म में खर्च कर देते।

उनके एक-मात्र लड़के का विवाह द्रेश के गांव में ही होना निश्चित हुआ। उन दिनों छपे हुए निमंत्रण-पत्र भेजने की प्रथा नहीं थी। नाई या ब्राह्मण गांव के सब घरों में जाकर न्यौता-बुलावा देते थे। परन्तु जो गोत्र-भाई थे उनको न्यौता देने सेठजी स्वयं गये। वैसे उनके साथ पाँच-दस दूसरे व्यक्ति तो हमेशा रहते ही थे।

संयोग से उनकी बिरादरी में एक घर ऐसा भी था जिनके भुने हुए चने, मुरमुरे की दूकान थी। लोगों को बड़ा ताज्जुब हुआ जब इतने बड़े सेठ एक गरीब भाई की दुकान पर रखी हुई मूंज की खाट पर बैठ गए।

दो-तीन बार निमंत्रण की याद दिलाने के बाद भी सामने वाला व्यक्ति चुप रहा। शायद सेठजी उसकी चुप्पी का मतलब समझ गए। उन्होंने कहा, "भाई, सुबह से घर से निकला हुआ हूँ, प्यास लग रही है, थोड़ा-सा पानी मंगवा दो।' दूकानदार जब लोटे में पानी लेकर आया तो सेठजी ने हँसकर कहा, कि "तुम इतना तो जानते ही हो कि खाली पेट पानी पीने से वायु हो जाती है, इसलिए थोड़ा-सा गुड़ और चने-मुरमुरे खाकर पीऊंगा।" उसने सहमते हुए ये दोनों चीजें लाकर दीं, जिन्हें खाकर बड़े प्रेम से सेठजी ने पानी पीया।

पास खड़े हुए लोगों ने देखा कि उस गरीब की आंखों में हर्ष की अश्रुधारा बह चली। इतने बड़े व्यक्ति उनके दरवाजे पर बड़े प्रेम से चना-मुरमुरा खा रहे थे। उसने हाथ जोड़कर कहा—"पूज्यवर, भोज में शामिल होने का मन तो नहीं था,क्योंकि मेरा ऐसा ख़याल था कि मेरे यहां काम पड़ने पर आप आएंगे नहीं। परन्तु मेरी धारणा गलत निकली, इसलिए मैं लज्जित हूं और हम सपरिवार भोजन के लिए आपके यहां आएंगे।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा जाता है कि दावत चार-पांच दिनों तक चलती रही। आसपास के गांवों से हजारों व्यक्ति आए। सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया गया।

विवाह के कामों में व्यस्त रहते हुए भी सेठजी के ध्यान में यह बात आई कि घर की भंगिन 'भूरी' की जगह काम करने के लिए कोई दूसरी ही आ रही है। उसे बुलाकर पूछा तो कहने लगी कि आपकी भंगिन की लड़की के विवाह पर रुपये की अटक पड़ गई थी, इसलिए मैंने १००) रू० उधार देकर आपका घर गिरवी रख लिया है। उसकी बात सुनकर सेठजी बहुत गुस्सा हुए और उन्होंने उसी समय 'भूरी' को बुला भेजा।

बम्बई से वीसों दोस्त-मित्र शादी में आए हुए थे, उन सबके सामने ही सेठजी ने कहा, "भूरी चाची, भला तुमने गलत काम क्यों किया ? जब-जब तुम्हारे यहां से समाचार गए तब-तब तुम्हें बम्बई से रुपए भिजवा दिए थे।" भूरी ने कुछ सहमते हुए-सि स्वीकार किया कि पहली तीनों लड़कियों के विवाह के रुपये तो आपके यहां से आ गए थे, उस समय आपके काका भी जीवित थे। इस समय कुछ जल्दी में थी, अच्छा घर और वर मिल रहा था, इसलिए एक बार जीवणी से रुपये उधार लेकर धापी (लड़की) का विवाह कर दिया है, उसी की एवज में आपका घर गिरवी रखना पड़ा, चार-छः महीनों में छुड़ा लूँगी।"

एक गरीब भंगिन के प्रति सेठजी द्वारा 'चाची' का सम्बोधन सुनकर उपस्थित लोगों को आश्चर्य होना स्वाभाविक था और भूरी बिना झिझक के अपने स्वर्गीय पति को सेठजी का चाचा बना रही थी।

जीवणी किसी तरह भी विवाह के पहले घर छोड़ने को तैयार न थी, किसी तरह समझा-बुझाकर उसे २००) रुपये देकर वापस भूरी को काम सौंप दिया गया।

आजकल की मान्यताओं और तहजीब के आधार पर ये बातें अटपटी-सी लगेंगी, परन्तु उस समय तन की छुआछूत रखते हुए भी लोगों के मन में प्यार था, एक दूसरे के दुःख-सुख में शामिल रहते और आत्मीयता के साथ आपस में सम्बोधन भी चाचा, ताऊ, मामा, इत्यादि का था।

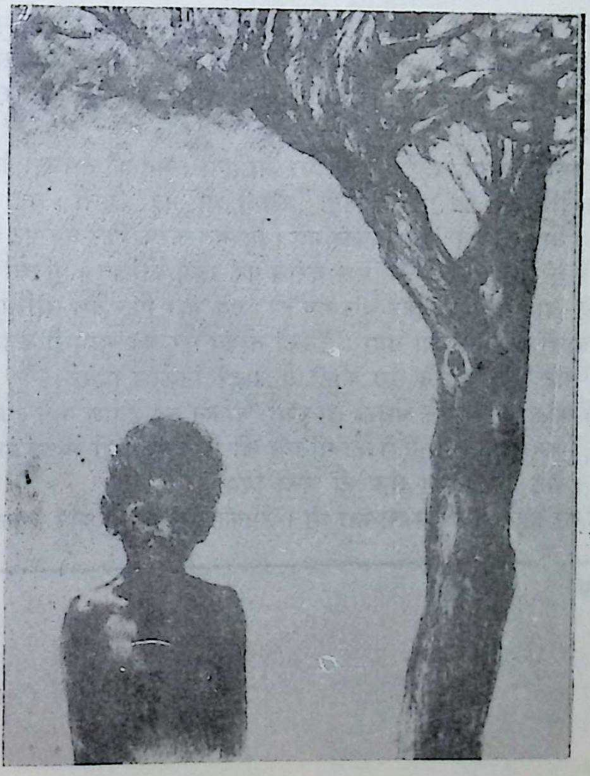

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाप का धन

कुछ वर्षो पहले बम्बई में अशरफ भाई नामक व्यक्ति जवाहरातों का एक दलाल था। धनवान तो नहीं, परन्तु नेक और मेहनतकश इतना था कि व्यापारियों का उस पर पूर्ण विश्वास था ; इसलिए वे बहुत रुपयों का माल उसे बेहिचक सौंप देते थे। एक बार, एक सेठ के यहाँ हीरों की खरीददारी थी। अशरफ भाई सेठ की पसन्द के लिए एक पुड़िया ले गया। सेठ ने कहा, "पुड़िया छोड़ जाओ, दो एक दिन में जवाब दे दूँगा।"

सेठ काफी धनी और नामी-गरामी था। अशरफ ने पुड़िया छोड़ दी और घर लौट आया। रास्ते में उसे ख़याल आया कि एक छोटी-सी पुड़िया जिसमें १५ बेशकीमती हीरे थे, सेठ के वहीं छूट गई। वह उल्टे पैरों भागा-भागा सेठ की कोठी पर पहुँचा और बहुत ही संकोच के साथ बोला, "सेठ जी, मैंने अभी जो पुड़िया आपके पास छोड़ी है, उसमें एक छोटी पुड़िया और थी; भूल से वह भी उस बड़ी पुड़िया में रह गई है। कृपया देख कर मुझे लौटा दें।" सेठ जी ने अपनी अलमारी से पुड़िया निकाल कर ज्यों-की-त्यों अशरफ के सामने रख दी। काफी उलट-पुलट कर देखने के बाद भी उसमें छोटी पुड़िया नहीं मिली। अशरफ के पैरों तले से जमीन खिसक गई। वह रुंधे गले से सिर्फ इतना ही बोल पाया, सेठ जी, मैं तो मर गया। जिस जौहरी से वे हीरे लाया था, उसे क्या जवाब दूँगा ?"

सेठ ने सहानुभूति दिखाते हुये कहा, "भाई, तुम अच्छी तरह याद करो, जल्दी में कहीं भूल गये होंगे, घर जाकर तलाश करो। मेरे यहाँ तो, जो पुड़िया तुम दे गये थे, वैसी-की-वैसी तुम्हारे सामने है। अभी हड़बड़ाए हुए हो, आश्वस्त होकर शान्ति से घर में ढूँढ़ोगे तो कहीं मिल जाएगी।"

अशरफ ने कहा, "सेठ जी वह छोटी पुड़िया इसी बड़ी पुड़िया में थी, ऐसा मुझे याद है। इसे छोड़ कर जैसे ही मैं आपके यहाँ से गया मुझे रास्ते में ही याद आई और वापस यहाँ आया हूँ। आप अपनी आलमारी में फिर से देख लें।" सेठ ने आलमारी खोल कर अशरफ को दिखा दी, वहाँ कोई पुड़िया नहीं थीं।

हताश और चिन्तित अशरफ वहाँ से अपने घर आ गया। मन की तसल्ली के लिए उसने अपने यहाँ भी खोज-बीन की, पर पुड़िया नहीं मिलनी थी, नहीं मिली। वह रोने लगा। खाना-पीना सब छूट गया। दो एक दिन निकल गए। हिम्मत करके फिर वह सेठ के यहाँ गया और गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "सेठ जी, मुझ गरीब पर रहम कीजिए। पुड़िया आपके यहीं छूटी है। हो सकता है, आप कहीं रख कर भूल गए हों। एक बार फिर देख लीजिए।" सेठ जी को अशरफ की इन बातों से गुस्सा आ गया। उनकी नीयत पर एक मामूली दलाल शक़ करे यह असहनीय था। डाँट कर उन्होंने उसे कोठी से बाहर निकाल दिया।

अब अशरफ की आँखों के सामने अंधेरा छा गया, लेकिन वह हताश नहीं हुआ। वह उस ज़ौहरी के पास गया, जिससे कीमती हीरों की पुड़िया ली थी। बहुत ही स्पष्ट शब्दों में उसने सारी बात वता दी। सेठ पर अपना शक़ भी जता दिया।

जौहरी अशरफ को बहुत समय से जानता था। उसकी ईमानदारी और नेकनीयती में भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
शक करने की गुंजायश नहीं थी। वह उसे ढाढ़स देते हुए बोला, "घबराने की कोई बात नहीं, कहीं इधर-उधर रख कर भूल गए होगे, या सेठ के यहां कहीं भूल से रखी पड़ी होगी, दस पाँच दिन में मिल जायगी।" अशरफ को सन्तोष तो नहीं हुआ, परन्तु करता भी क्या? घर आ गया।

लेकिन मन को चैन नहीं मिला। ३-४ दिन बाद ही वह फिर जौहरी के पास पहुँचा और बोला—"भाई साहब, वह पुड़िया तो मिली नहीं। मैं जानता हूँ कि इस समय उन हीरों की कीमत इतनी अधिक है कि उसे चुकाना मेरे बस की बात नहीं। बड़ी कृपा होगी, यदि आप उनकी लागत कीमत मुझसे ले लें। अधिकांश तो अभी चुका दूँगा, बाकी रकम का रुक्का लिख दूँगा।"

जौहरी ने धीरज से सब कुछ सुना और अशरफ को सलाह दी कि तुम एक बार पुनः सेठ के यहाँ जाओ, शायद पुड़िया मिल जाए। अशरफ ने दिल कड़ा किया और एक बार फिर सेठ जी के घर पहुँचा और उनके पैर पकड़ कर रोने लगा कि सेठ जी मैं बाल-बच्चों वाला आदमी हूँ, वे सब बरबाद हो जाएंगे। आइंदा कौन मेरा विश्वास करेगा? कौन मुझे जवाहरात सौंपेगा? मेरा धन्धा ही चौपट हो जाएगा। आप एक बार फिर तलाश लें।" सेठ ने सब कुछ सुना और उसे पहले की भांति इस बार भी दुत्कार कर घर से निकाल दिया।

इसके बाद अशरफ को इतना सदमा पहुँचा कि वह विक्षिप्त-सा रहने लगा। कभी-कभी रात में चौंक कर उठ बैठता और रोने लगता। जौहरियों से अशरफ की यह अवस्था छिपी नहीं थी, उन्होंने सेठ से बातचीत की और इन दोनों के बीच एक पंच नियुक्त कर दिया।

पंच के सामने अशरफ ने अपना बयान देते हुए बताया कि जिस दिन मैं सेठ जी के पास हीरे रख कर गया था, उस दिन और कहीं नहीं गया। १५ हीरों की पुड़िया उस बड़ी पुड़िया में थी, ऐसा मुझे याद है। सेठ जी के यहां पुड़िया छोड़ कर घर आ रहा था कि रास्ते में ही दूसरी पुड़िया की याद आई और उल्टे पैर लौट कर सेठ जी की कोठी पर आया। मुझे यकीन है कि पुड़िया वहीं रह गई है। पंच ने प्रत्यक्ष प्रमाण मांगा तो उसने 'ना' कह दी और बताया कि न तो मेरे पास कोई तीसरा प्रत्यक्ष गवाह है और न मैंने इन्हें अपनी जानकारी में वह पुड़िया ही दी थी। इधर, सेठ ने अपने जवान लड़के के सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध खाई कि मेरे पास इसकी कोई दूसरी पुड़िया नहीं आई थी। फैसला अशरफ के खिलाफ हो गया।

अचानक अशरफ सेठ के पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा, "यह आपने क्या किया? आपका चेहरा बताता है कि हीरे आपके पास हैं। क्यों आपने इकलौते जवान बेटे के सिर पर हाथ रख कर इतनी बड़ी कसम खाई? खुदा का दिया आपके पास सब कुछ है।"

संयोग से तीन-चार दिनों बाद ही सेठ के लड़के को गर्दन तोड़ (मैनेनजाइटीज) बुखार हो गया और दूसरे दिन ही चल बसा। उस घर में तो शोक हुआ ही, परन्तु अशरफ भी दुःखी होकर रोने लगा कि उसके कारण से यह संयोग बना।

दो-तीन दिन बाद सेठ हीरे की पुड़िया लेकर अशरफ के पास आया और उसके गले लगकर बिलख-बिलख कर कहने लगा, "अशरफ भाई, मेरे मन में लालच समा गया और मैंने बेटे से अधिक धन को तौला 'किन्तु, भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं। मेरी पत्नी कहती है कि मेरे ही पापाचार ने बेटे के प्राण ले लिए।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दान

एक दिन किसी मित्र के साथ एक संस्था देखने गया वहाँ के पंखों की तीनों ताड़ियों पर बड़े-बड़े अक्षरों में उनके द्वारा प्रदान की घोषणा लिखी हुई थी। जब मैंने इस सन्दर्भ में कुछ नहीं कहा तो वे कहने लगे कि पिछले वर्ष ये चारों पंखे हमने ही दिये हैं। मुझे ऐसा लगा कि वे यहाँ आने वालों में से अधिकांश लोगों से यही बात दोहराते हैं। मैंने हँसकर कहा कि यह तो इतने बड़े-बड़े अक्षरों के विज्ञापन से ही पता चल जाता है। देखा कि मेरी बात सुनकर वे कुछ झेंप-से गए।

वैसे दान देकर नाम-बड़ाई सभी व्यक्ति चाहते हैं। परन्तु इसकी भी एक सीमा होनी उचित है। आज अधिकांश दानी सौ देकर पाँच सौ का नाम चाहते हैं परन्तु आज से चार सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध दानवीर रहीम को किसी ने पूछा था कि आप दान देते समय आँखें नीची क्यों रखते हैं ? इस पर उनका जवाब था कि–

"देनहार कोऊ और है भेजत है दिन रैन
लोग भरम हम पर धरैं यातै नीचे नैन"

खानखाना अब्दुल रहीम अद्भुत दानी थे, परन्तु उस तरह के कुछ व्यक्ति बिरले ही होते हैं। इस सन्दर्भ में विभिन्न समय के तीन चित्र उपस्थित करता हूँ।

देश के प्रसिद्ध नेता श्री श्रीप्रकाशजी के पूर्वजों में दो सौ वर्ष पहले इसी प्रकार के एक दानवीर हो गये हैं। उनके यहाँ बीसों नौकर, मुनीम-गुमाश्ते थे, जिनका वेतन था, एक रूपया से दस रूपया माहवार। एक बार लगातार दो वर्षों तक अकाल पड़ा, चीजों के दाम महँगे होते गए। सर्वसाधारण के भूखों मरने की नौबत आ गई। शाहजी ने एक दिन तीन-चार मुनीमों को बुलाकर कहा कि बहुत दिनों से तहखाने में पड़ी रहने के कारण अशर्फियाँ गीली हो गई हैं इसलिए उनको धूप में सुखा लो। शाम को तौलने पर अशर्फियाँ उतनी ही रहीं, भला सोने का क्या सूखता ? शाहजी ने उनको कहा, "तुम लोग कुछ काम करना नहीं जानते, कल इनको अच्छी तरह से सुखाओ।" इशारा स्पष्ट था। दूसरे दिन अशर्फियाँ एक पाव कम थीं, शाहजी खुश थे। सूखी हुई अशर्फियाँ वापस तहखाने में रख दी गयीं। इसी तरह जब तक वे जीये जरूरतमन्दों को गुप्त-रूप से हर प्रकार की सहायता देते रहे। यहाँ तक कि एक हाथ का दिया दूसरे हाथ को भी पता नहीं चलता। लोग उन्हें झक्की समझते और प्यार और हँसी में 'झक्कड़शाह' कहने लगे। उनके परिवार वालों ने बड़ाबाजार के प्रसिद्ध मनोहरदास कटरा के साथ-साथ धर्मतल्ला के मैदान में मनोहरदास तालाब बनवाया था। इसके चारों तरफ की छतरियों में आज भी सैकड़ों व्यक्ति धूप और वर्षा में आश्रय लेते हैं और उनके द्वारा छोड़ी हुई गोचर-भूमि में सैकड़ों जानवर चरते रहते हैं।

इस प्रसंग में, रामगढ़ (शेखावाटी) के एक सेठ की बात याद आ जाती है. पौष-माघ में, इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती है। कभी-कभी तो रात में बाहर रखा हुआ पानी जम कर बर्फ हो जाता है। ऐसी ही एक रात में सेठ जी ने गीदड़ों की 'हुँआ-हुँआ' सुनी। दूसरे दिन पण्डितों को बुलाकर पूछा तो उन्होंने बताया कि ज्यादा सर्दी के कारण सब ठिठुर रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गीदड़ों की संख्या पूछने पर चौदह-सौ, पन्द्रह-सौ बता दी और उतनी ही रजाइयों की आवश्यकता भी। सेठ जी ने गुस्से से कहा कि महाराज ऐसा अंधेर क्यों करते हैं। पन्द्रह सौ में पाँच सौ बच्चे भी तो होंगे, उनको अलग रजाई की क्या दरकार है ? वे तो माँ-बाप के साथ ही सो जायेंगे।

खैर, दो-तीन दिनों में ही हजार रजाइयाँ भरवाकर पण्डितों की मार्फत भेज दी गयीं। सेठ जी मित्रों और सेठानी को हँसकर कह रहे थे कि मुझे ठगना सहज नहीं हैं; देखो-किस प्रकार पाँच सौ रजाइयों की बचत कर ली !

दूसरी रात फिर गीदड़ों की दर्द-भरी पुकार सुनकर सेठ जी की नींद उचट गयी। पूछने पर उत्तर मिला कि श्रीमान् ! रजाइयों से सर्दी तो मिट सकती है परन्तु पेट की भूख नही; बेचारे कई दिनों से भूखे हैं इसलिये रो रहे हैं। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ-पूड़ी बनवाकर भेज दिया गया। अगली रात फिर वही आवाजें आयीं। लिहाजा, फिर पण्डितों को बुलाया गया। इस बार हँसते हुए उन्होंने कहा—"सेठ जी ! वे अच्छी तरह खा-पीकर आराम से रजाइयाँ ओढ़कर बैठे हैं। आपको आशीर्वाद दे रहे हैं और रोज इसी तरह देते रहेंगे।"

मुनीमों ने सेठ जी को बहुतेरा कहा कि इन पण्डितों ने आपको ठग लिया है, भला कहीं गीदड़ भी रजाइयाँ ओढ़ते हैं या पंगत लगाकर हलुआ-पूड़ी खाते हैं ? परन्तु सेठ जी किसी तरह यह स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। शायद मन में तो वे भी जानते थे। परन्तु उनको इस प्रकार के कार्यों से एक नैसर्गिक आनन्द मिलता था और इस बहाने गाँव के गरीब ब्राह्मणों के पास कुछ चीजें पहुँच जाती थीं।

ये बातें सौ डेढ़-सौ वर्ष पहले की हैं, परन्तु इन दिनों में भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं। मेरे मित्र श्री महावीर त्यागी ने भारत-सरकार के तत्कालीन खाद्य-मन्त्री स्वर्गीय रफ़ी अहमद किदवई की एक घटना सुनायी थी ; जिसे सुनकर वहाँ बैठे हुये मित्रों की आँखें गीली हो गयी थीं।

एक दिन किदवई जी की नई दिल्ली वाली कोठी में ५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना कांग्रेस कार्यकर्त्ता आकर उदासी भरे लहजे में कहने लगा—"रफ़ी भाई ! लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह तय हो गया है; तीन हज़ार की ज़रूरत है इससे कम में किसी तरह भी काम पार नहीं पड़ेगा।" रफ़ी साहब के पास अपना तो था ही क्या ? परन्तु उनके कुछ ऐसे मित्र थे जो उनकी ऊलजलूल फर्माइशों को पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जाने के बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने कहा—"रफ़ी तुम भी अव्वल दर्जे के बेवकूफ़ हो, फ़िजूल में रुपये ठगा बैठे। उस साले की शादी तो हुई ही नहीं, फिर यह बेटी कहाँ से आ टपकी ?" किदवई जी ने मंजूर किया कि वे भी जानते हैं कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसके बेटी ही है। फिर तो त्यागी ज़ी ने किदवई जी को बुरा-भला कहना शुरू किया—"वज़ारत से कुल बाइस सौ रुपये मिलते हैं, वे तो नवाब साहब पाँच-ज्ञार दिनों में खर्च कर दिया कहते हैं। भला, यह भी कोई बात हुई ?"

देखा गया कि किदवई जी की आँखों में आँसू आ गये, कहने लगे—"भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफ़त में पड़ गया होगा तभी तो बेटी की शादी का नाम लेकर रुपया माँगने आया था। भला मैं उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबत में थोड़ी-सी सहायता करता ? जिनसे दिलाता हूं, वे तो लखपति-करोड़पति हैं। उनके लिए १०-२० हजार में क्या फर्क पड़ता है।"

कहते हैं कि जब पंडित नेहरू स्वर्गीय किदवई जी के गाँव गये और उन्होंने टूटे खपरैलों का उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हें रुलाई आ गयी थी। चारों तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होंने बेगम से पेंशन लेने को बहुतेरा कहा, परन्तु उनका जवाब था, "जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्स की बेवा होने का फख्र हासिल है जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी फ़ाका-मस्ती में गुजार दी परन्तु उम्र-भर दोनों हाथों से ज़रूरतमन्दों को दिया ही दिया। भला, अब मैं ज़िन्दगी के आखिरी दिनों में सरकार से पेंशन लेकर क्या करूँगी ? आख़िर मेरा अकेली का खर्च ही कितना है ?"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बलजी-भूरजी

आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पहले राजस्थान के शेखावाटी अंचल में बलजी-भूरजी धाड़ैतों (डाकुओं) का बड़ा दबदबा था। लोग उनके नाम सुनकर ही कांपने लगते। ऐसी भी घटनाएं सुनने मे आईं कि १००-१५० बारातियों के हथियारों से लैस दल को बलजी-भूरजी के ५-६ साथियों के सामने अपना सामान और धन-दौलत रख देना पड़ता था।

जो भी हो, उनका एक नियम था; उन्होंने कभी भी ब्राह्मण, हरिजन, गांव की बहन-बेटी अथवा दुःखी-दरिद्र को नहीं सताया। इनके प्रति वे इतने सदाशय रहे कि कई बार तो प्राणों की बाजी लगाकर या गिरफ्तारी की जोखिम उठाकर भी वे गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के विवाह में मायरा (भात) भरने के लिए आया करते थे।

कुछ वर्षों बाद, उनके नाम का नाजायज़ फ़ायदा उठाकर नानिया नाम का एक रूंगा (राजस्थान की एक नीच जाति) अपने को बलजी बता कर निरीह लोगों को सताने लगा। इस बात की चर्चा बलजी-भूरजी तक भी पहुंची, किन्तु उन्होंने इसे गम्भीरता से नहीं लिया।

इसी बीच एक वारदात हो गई। बिसाऊ नाम का कस्बा शेख़ावाटी के उत्तरी कोने में है। यहां के सेठ खेतसीदास पोद्दार अत्यन्त सरल और धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दान-पुण्य की चर्चा पास पड़ोस के अंचल में फैली हुई थी। लोग उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया करते थे। जरूरतमंन्दों को वे गुप्तरूप से सहायता करते, नाम या शोहरत की उन्होंने परवाह कभी की नहीं।

एक दिन सेठ जी अपने चीलिये ऊंट पर सवारी कर पास के गाँव में रिश्तेदारी में जा रहे थे। उनके इस ऊंट की चर्चा आस-पास गावों और कस्बों में थी। वह सवारी में जितना आरामदेह था, उतना ही चाल में चील की तरह तेज था, इसीलिये उसका नाम चीलिया पड़ गया था। आमतौर से सेठजी के साथ सफ़र में हमेशा एक-दो ऊंट या घोड़े और दो-चार सरदार रहते थे किन्तु संयोग की बात है कि उस दिन वे अकेले ही थे।

पौष की संध्या थी। हल्की सर्दी पड़ने लगी थी, झुरपुटा हो चला था। सेठजी ने देखा कि कुछ दूर रास्ते के किनारे एक अर्धनग्न वृद्ध उन्हें रुकने का संकेत कर रहा है। तेजी से ऊंट बढ़ाकर वे उसके पास पहुंचे।

पूछने पर पता चला कि वह भी उसी गांव जा रहा है जहाँ सेठजी जा रहे थे। पैर में मोच आ गयी इसलिए लाचारी से बैठ जाना पड़ा। जाना जरूरी है, यदि सेठजी उसे साथ ले लें तो बड़ी कृपा हो।

सेठजी ने ऊंट को जैका (बैठा) लिया और सहारा देकर वृद्ध को अपने पीछे बैठाकर ऊंट को आगे बढ़ाया।

थोड़ी देर में ही उन्हें पीछे से जोर का एक झटका लगा वे ऊंट पर से नीचे गिर पड़े। दौड़ते ऊंट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें गश आ गया, किन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर के घुटने की हड्डी टूट गयी, पीड़ा जोरों से बढ़नें लगी।

ऊंट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खींचातानी पर भी वह आगे नहीं बढ़ा। अड़ गया और टरडाने (आवाज करने) लगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेठजी ने देखा, ऊंट के सवार की सफेद दाढ़ी-मूंछें हट चुकी थीं, उसकी शक्ल बड़ी भयावनी दिखाई दे रही थी। असह्य पीड़ा से वे विकल हो रहे थे, फिर भी स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने सवार से कहा–"तुम्हारा परिचय जानना चाहूंगा।"

डाकू ने मूंछों पर हाथ फेरते हुए प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए कहा–"मैं बलजी का आदमी हूं, उनका मन इस ऊंट पर बहुत दिनों से था, पर मौका नहीं लग रहा था। अब आप या तो इस ऊंट को अपने संकेत से मेरे साथ जाने के लिए राजी कर दें, नहीं तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पड़ेगा।"

सेठजी बड़े मर्माहत हुए, उन्हें बलजी-भूरजी से इस प्रकार के धोखे की कल्पना नहीं थी। उन्हे सहसा विश्वास भी नहीं हो पा रहा था। उन्होंने कहा कि बलजी-भूरजी डाकू ज़रूर हैं, पर इस ढंग की धोखेबाजी उन्होंने की है, ऐसा सुनने में अब तक नहीं आया। मुझे इस बात में कुछ धोखा-सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो, तुम्हें जीण माता की सौगन्ध है कि आज की इस घटना की बात कहीं भी नहीं कहना। तुम चाहो तो ऊंट के साथ सौ-दो सौ रुपये और दे दूंगा!

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पड़ा है। ऊंट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये देने को तैयार है। ताज्जुब तो यह घटना के बारे में चुप रहने की शर्त रखता है!

कुछ असमंजस से उसने सेठजी से शर्त को समझाने के लिए कहा। सेठजी ने बताया कि वे डरते हैं कि इस घटना की चर्चा यदि फैली तो भविष्य में लोग अपरिचित बूढ़ों या असहाय राहगीरों की सहायता करने से डरेंगे। उन्हें इसमें धोखा नज़र आएगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जाएगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हें ऊंट इतना पसन्द था, मुझसे यूं ही माँग लेते।

इतनी बातें सुनने पर भी डाकू ने सेठजी से ऊंट को चलाने के लिए इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊंट चल पड़ा। डाकू ने उन्हें उसी घायल हालत में बियावान जंगल में छोड़ दिया।

दूसरे दिन सेठजी को ढूंढ़ते हुए लोग वहाँ पहुंचे और उन्हें घर ले गए। क्या हुआ, ऊंट कैसे गया, इसकी चर्चा को उन्होंने टाल दिया।

असलियत बहुत दिनों छिपाये छिपती नहीं। बलजी-भूरजी को सेठजी के ऊंट ग़ायब हो जाने की खबर लग गयी और यह भी पता चला कि नानिया रूंगा के पास वह ऊंट है। वे सारी बातें समझ गए।

कुछ ही दिनों बाद सेठजी का ऊंट उनके नोहरे में बंधा हुआ मिला। उसके गले में बंधी एक दफ्ती पर लिखा था–"सेठ खेतसीदासजी को बलजी-भूरजी की भेंट। वे डाकू जरूर हैं, पर धोखेबाज नहीं।"

ठीक इसी के दूसरे दिन नानिया रूंगा की लाश झुझनू के पास की पहाड़ी की तलहटी में पाई गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भूरी की नानी

बात बहुत पुरानी है, पर लगता जैसे कल की हो। भूरी की नानी जाति से वैश्य, दूबली-पतली-सी काठी, साँवले रंग और साधारण नाक-नक्शे की थी। प्रौढ अवस्था पार कर वह बुढ़ापे की ओर बढ़ रही थी। प्रातः ४ बजे से रात्रि के १० बजे तक काम करती रहती। अपना काम तो था ही क्या ? परन्तु लोग उसकी कमजोरी पहचान गए थे। "नानी तुम्हारे बिना यह काम पार नहीं पड़ेगा" बस इतना कहना ही पर्याप्त था। फिर तो वह काम में जी-जान से जुट जाती और रात-दिन एक कर देती।

नानी की बेटी या दोहती 'भूरी' को शायद ही किसी ने देखा होगा। दोनों बहुत पहले ही मर गईं थीं। परन्तु भूरी का नाम सुनकर उसे ३० वर्ष पहले की एक बालिका की याद आ जाती थी और आँखें गीली हो जातीं। अब तो वह बच्चों से लेकर प्रौढ़ों तक सब की नानी बनै गई थी।

प्रति वर्ष गर्मी में गाँव के लोग बदरी-केदार की यात्रा पर जाते। रास्ते बीहड़ थे। आवागमन के साधनों के अभाव में नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते थे। परन्तु "गया बदरी काया सुधरी" की एक ऐसी मान्यता थी कि बीमार और वृद्ध व्यक्ति भी इस विकट और दुर्गम यात्रा के लिए तैयार हो जाते थे।

महीनों पहले से ही साथ ले जाने वाले सामान की तैयारी होने लग जाती; जैसे गरम कपड़े, छाता, सूखा साग, फीके-मीठे पकवान, लौंग, जावित्री, जायफल आदि। पास-पड़ोस के लोगों से मिलकर क्षमा-याचना भी कर ली जाती कि शायद वापस आना न हो सके।

उन दिनों नौकरों का २) रु० माहवार वेतन भी लोगों को भारी लगता था। अतः यात्रा में सब लोग आपस में मिलकर सारा काम कर लेते थे। वैसे तो यात्रियों की संख्या २५-३० तक हो जाती थी, परन्तु वे सब ५-७ दलों में बँट जाते। यात्रा के बहुत दिनों पहले से ही भूरी की नानी से लोग वचन ले लेते कि वह उनके साथ जायगी क्योंकि, सिवाय खाने के उसे और कुछ तो देना नहीं पड़ता था और काम करती चार आदमियों के बराबर। इसके सिवा कई बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी, अतः एक अच्छे 'गाइड' का काम देती थी। किस चट्टी में ठहरने की सुविधा है, कहाँ देखने योग्य क्या-क्या है—यह सब उसे भलीभाँति मालूम था।

नानी जिनको पहले वचन दे देती, उनके ही साथ जाती। उसके बाद नजदीक के सम्बन्धियों के दबाव पर भी अपनी बात नहीं बदलती।

लगभग २५ वर्ष पहले हम लोग बदरी-केदार गए थे। भूरी की नानी को हमने पिछले वर्ष से ही कह रखा था—इसलिए वह हमारे दल के साथ थी।

ऋषिकेश से ही पैदल, टट्टू पर अथवा डांडी में जाना पड़ता था। उन दिनो साबित रुपये को भुनाना आज के एक सौ के नोट के बराबर होता था। सामान ढोने के लिए लोग कुली नहीं करते थे। अपना-अपना बोझा स्वयं लेकर चलते थे। शुरू के दिनों में तो सभी राजी-खुशी जाते, परन्तु बाद में किसी को दस्त, किसी को बुखार या किसी को सिर-दर्द की बीमारी हो जाती। तब नानी अपनी गठरी के अलावा बीमार व्यक्तियों का बोझा भी जिद्द करके ले लेती।

सात-आठ मील चलने के बाद लोग जब किसी चट्टी पर पहुंचते तब थकावट से चूर-चूर होकर लेट जाते। जितने ज्यादा पैर दुखते, उससे कही अधिक पेट की भूख बढ़ी हुई होती। ऐसी हालत में खाना बनाना भी एक समस्या थी। परन्तु नानी को कहने की आवश्यकता नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पड़ती। चूल्हे पर दाल चढ़ाकर आटा गूँधने बैठ जाती। कभी-कदाच हम लोग पूछते—"नानी, कितनी बार बदरी आ चुकी हो?" उत्तर में वह दोनों हाथों की ८ या ९ अंगुलियाँ दिखा देती। वह कहती कि मुँह से कहने पर 'पुन्न' घटता है।

जैसे-जैसे ऊपर पहुँचते सर्दी बढ़ने लगती। नानी के पास ओढ़ने के दो कम्बल और बिछाने की एक चादर थी। जोशीमठ पहुँचने के पहले ही नानी ने अपना एक कम्बल किसी दक्षिणी साधु को दे दिया। जब हम जोशीमठ पहुँचे तब रात हो गई थी। थोड़ी वर्षा भी शुरू हो गई थी। चट्टी के बारामदेमें एक वृद्धा सर्दी से ठिठुर रही थी। भूरी की नानी ने अपना बचा हुआ कम्बल उसको ओढ़ा दिया। साथ वालों ने इस पर उसे बहुत बुरा-भला कहा।

सर्दी से बचाव के लिए साथ की एक महिला ने उसे अपना एक कम्बल उधार दे दिया।

जहाँ भी हम लोग पहुँचते, पता नहीं क्यों भूखे व नंगे लोग उसे ही घेरे रहते। हनुमान चट्टी पहुँचे तब तक सर्दी बहुत बढ़ गई थी। नानी ने उधार लिया हुआ कम्बल एक गरीब महिला-यात्री को दे दिया। जिस महिला का कम्बल था, वह गाली-गलौज पर उतर आयी। "पास नहीं धेला, चली है दानी-कर्ण बनने को"। दूसरे लोग शायद बीच-बचाव करते, परन्तु वे नानी की इस आदत से खिंचे हुए थे।

वैसे रसोई बनाते समय दोनों वक्त दो-चार व्यक्तियों को वह चुपचाप रोटी दे देती थी और यह बात बर्दाश्त भी कर ली जाती। लेकिन धीरे-धीरे किसी की जाकेट कम होने लगी तो किसी की चद्दर; जिन्हें नानी दूसरे जरूरतमन्द लोगों को चुपके से दे देती थी।

मैंने देखा कि उसे लोग चोट्टी तक कहे जा रहे थे और वह सबके कटु-वाक्य चुपचाप सुन रही थी। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

अगले दिन नानी को दल से एक प्रकार अलग-सा कर दिया गया। जब दूसरे साथी पीछे रह गए, मैंने उससे पूछा कि उसने ऐसा काम क्यों किया? थोड़ी देर बाद उदास मनसे कहने लगी, "इन लोगों के पास तो जरूरत से ज्यादा कपड़े हैं, पर जिनको दिया गया, वे सर्दी से ठिठुर रहे थे। बच्चों के साथ भला वे इस प्रकार की ठंढक कैसे सह पाते? मैं देश जाकर मजदूरी करके इन सबकी कीमत चुका दूँगी।"

सोचने लगा कि नानी ने न तो मार्क्स पढ़ा और न एन्जिल्स्। फिर पता नहीं किस प्रकार से इन अपरिग्रह व समता के सिद्धान्तों का उसे ज्ञान हो गया। शायद, मानवीय संवेदना सिद्धान्तों की मुखापेक्षी नहीं होती। सहज करुणा की अनुभूति किसी भी पुस्तकीय ज्ञान से बड़ी है।

लौटते समय भी वह रसोई वगैरह का काम तो उसी प्रकार से करती रही, परन्तु अब उसमें वह उत्साह नहीं रह गया था। सदैव उदास, डरी-डरी और सहमी हुई-सी रहती। जब भी दो-चार व्यक्ति कोई बात करते तो वह समझती कि उसकी ही चर्चा हो रही है।

हरिद्वार आने पर कुछ लोग मथुरा-वृन्दावन चले गए, कुछ वापस राजस्थान। सभी लोगों ने आपस में एक दूसरे से क्षमा-याचना की, आलिंगन किया। परन्तु नानी सबसे अलग एक कोने में खडी थी; उससे बातचीत करने की शायद किसी ने जरूरत ही नहीं समझी। लोगों ने यह नहीं पूछा कि उसके पास वापस देश जाने के लिये खर्चा है या नहीं!

हमें वहां से काशी जाना था। हमने नानी को साथ चलने के लिए कहा परन्तु उसने ना कह दिया, उसके मन में एक प्रकार की झेंप-सी आ गई थी। ऐसा लगा कि कुछ दिनों के लिए वह एकान्त चाहती है। विदा होते समय मैंने नानी को कुछ रुपये देने चाहे; परन्तु उसने नम्रतापूर्वक मना कर दिया। वैसे उसकी अपनी जरूरते थी कितनी?

ट्रेन में बैंठा हुआ मैं समाचार-पत्र पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु रह-रह कर नानी की बात याद आ जाती थी। सोचने लगता था कि क्या वास्तव में नानी चोर हैं? उसके पास तो दो धोती और दो चद्दर के सिवा कुछ भी नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुःख में सुख

पुराने जमाने में राजस्थान में ऐसी मान्यता थी कि अगर व्यक्ति की अर्थी में पुत्र का हाथ नहीं लगे या क्रिया-कर्म करने के लिए पुत्र न हो तो उसे मोक्ष नहीं मिलती । इसीलिए वहाँ निपूते की बहुत खराब गाली मानी जाती थी । पुत्र प्राप्ति के लिए लोग व्रत-पूजन और कठिन तपस्या करते थे ।

शेखावाटी अंचल के एक शहर में धनाढ्य सेठ थे । सब प्रकार की धन सम्पत्ति से भरा-पूरा घर होने पर भी सन्तान के बिना पति-पत्नी दुःखी रहते थे । अनेक प्रकार के व्रत उपवास, दान-धर्म और तीर्थ-यात्रा की, परन्तु परमात्मा ने उनकी नहीं सुनी । प्रौढ़ावस्था होने लगी तब एक प्रकार से निराश हो गए । पड़ोस में उन्हीं की जाति का एक गरीब परिवार था जिनके यहाँ सात लड़के थे । एक दिन पति-पत्नी उनके घर गये । देखा कि डेढ़-दो वर्ष से लेकर १४-१६ वर्ष तक के बच्चे आंगन में खेल रहे थे । उन्हें देख कर दोनों की आँखें भर आईं । सठानी ने गृह-स्वामिनी से कहा कि बहिन, लोग मुझे निपूती कहकर ताना देते हैं । तुम्हारे सेठजी जब दूकान से सूने घर में आते हैं तो दुःखी से रहते हैं । मैं तुम्हारे से आँचल पसार एक की भीख माँग रहीं हूँ । परमेश्वर ने तुम्हें सात दिये हैं, इनमें से सात सौ हो जायें ।

बहुत आरजू-मिन्नत के बाद भी उन लोगों को निराश वापस लौटना पड़ा ।

फतेहपुर (शेखावाटी) के पास एक टीले पर नाथ सम्प्रदाय के एक महात्मा जी रहते थे । सब प्रकार से निराश होकर एक दिन वे उनकी शरण में गए और पैर पकड़कर रोने लगे ।

कहते हैं कि नाथजी महाराज वचनसिद्ध थे । उन्होंने कहा कि अकाल का वर्ष है । भूखे-नंगें बच्चों का पालन करो, भगवान तुम्हारी सुनेगा ।

अपने गाँव आकर एक बड़े नोहरे में गरीबों के भूखे बच्चों को खिलाने-पिलाने लगे । दोनों पति-पत्नी सारे दिन उनकी देख-भाल करते रहते ।

भगवान कृपा से एक वर्ष के भीतर ही उनके घर में पुत्र-जन्म हुआ । उस अवसर पर सेठजी ने जी खोलकर दान-धर्म और पूजा-पाठ किया । सारे गाँव में मिश्री-बादाम भेजे ।

बच्चे को लेकर वे नाथजी महाराज की सेवा में गए । महाराज जी ने कहा कि आप दोनों की अवस्था भगवान के भजन करने की है । संसार की मोह-माया में जितना कम पडोगे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उतना ही अच्छा है ।

सेठ-सेठानी उस समय इतने हर्ष-विभोर थे कि नाथ जी की इस गूढ़ बात पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया ।

सुख के दिन बीतते देर नहीं लगती । देखते-देखते बिहारी सोलह वर्ष का हो गया; बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित और विनयी ।

दीपावली के बाद वे प्रतिवर्ष महाराज जी के पास धोक खाने को बिहारी के साथ जाते थे । उस बार उन्होंने जब उसके विवाह करने की आज्ञा चाही तो महाराज जी ने टाल-मटोल कर दी और कहा कि इतनी जल्दी क्या है ?

लाड-प्यार का इकलौता बालक था । सेठ-सेठानी कभी उसे आँखों से ओझल नहीं होने देते । कभी-कदाच उसका पेट या सिर दुखने लगता तो वैद्य-डाक्टर से घर भर जाता । परन्तु कहते हैं कि मृत्यु सौ रास्ते बना लेती है ।

राजस्थान में जिस दिन अच्छी वर्षा हो जाती है, लोग हर्ष विभोर होकर जोहड़-तालाब में कितना पानी जमा हुआ है, यह देखने को जाते हैं । पानी को माथे से लगाकर आचमन करते हैं ।

ऐसे ही एक दिन बिहारी मित्रों के साथ गाँव के जोहड़े पर गया था । आचमन करते समय पैर फिसल गया और क्षण भर में ही जलमग्न हो गया । बहुत बड़ा तालाब भी नहीं था, परन्तु साथियों के बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ फल नहीं निकला ।

सेठ-सेठानी का बुरा हाल था । पागल-से हो गए, तालाब में डूबने के लिए ज़िद्द करने लगे; लोगो ने मुश्किल से पकड़ रखा ।

दूसरे दिन ही दोनों महाराज जी के टीले पर जाकर उनके पैर पकड़कर बैठ गए । कहने लगे कि आपने हमें इस बुढ़ापे में उल्टा दुःखी कर दिया, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पुत्र पैदा ही न होता ।

महाराज जी ने समझाने का प्रयत्न किया कि जो कुछ होता है सब ईश्वर की इच्छा से होता है और मनुष्य को उसे शिरोधार्य करना ही चाहिए । बिहारी से तुम्हारा इतने दिनों का ही सम्बन्ध था ।

बहुत विनती-प्रार्थना पर महाराज ने कहा कि गरीब और अनाथ बच्चों के लिए एक स्कूल खोलकर उनकी पढाई की और रहने-खाने की व्यवस्था करो ।

सेठ जी ने अपने एक मकान में इस प्रकार के छोटे बच्चों का एक स्कूल खोल दिया । दोनों पति-पत्नि दूसरे सारे कार्यों को छोड़कर सुबह से शाम तक उनकी शिक्षा, देखभाल और खाने-पिलाने की व्यवस्था करने लगे ।

बच्चे उनसे इतने हिल-मिल गए कि उन्हें 'माताजी', 'पिताजी' कहने लगे । वे कभी उनकी गोद में आकर बैठ जातें तो कभी पीछे से आकर आँखें बन्द कर देते । कभी-कदाच कोई बच्चा बीमार हो जाता तो उनके हाथ से दवा लेने की जिद्द करने लगता ।

सदा की भांति, दीपावली के बाद वे दोनों दर्शन और चरण-स्पर्श के लिए महाराज जी के पास गए । उन्होंने पति-पत्नि को सुखी रहने का आशीष दिया और हाल चाल पूछा ।

सेठ सेठानी का उत्तर था, "महाराज आपके आदेश का हम पालन कर रहे हैं । अब हम सुखी हैं, परम सुखी! हमें पाठशाला के बच्चों में अपना बिहारी मिल गया ।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लक्ष्मी बहन

बचपन में देखते थे कि माँ और चाची जब बड़ी-बूढ़ियों के पैर छूतीं तो उन्हें सात पूत की माँ होने की आशीष मिलती। हमारे मुहल्ले में एक माँजी थीं। उनके सात लड़के, उनकी बहुएँ और बहुत से पोते-पोतियाँ थीं।

बार-त्यौहार पर सधवा स्त्रियाँ उनसे आशीर्वाद लेने के लिए जाती थीं, क्योंकि सात पुत्रों की माँ होना उस समय गौरव और शुभ-लक्षणों की बात मानी जाती थी।

ऐसा लगता है कि उन दिनों जमीन के अनुपात में जनसंख्या बहुत कम थी। यांत्रिक खेती थी नहीं, इसलिए हर प्रकार के उत्पादन के लिए ज्यादा आदमियों की आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें आपस में आए दिन लड़ाइयाँ होती और उनमें भी लड़ने के लिए सिपाहियों की जरूरत रहती।

विधवा और बाँझ महिला को अशुभ माना जाता था। परदेश विदा होते समय यदि संयोग से कभी इस प्रकार की स्त्री रास्ते में मिल जाती तो बुरा मुहूर्त समझ कर वह यात्रा स्थगित कर दी जाती। विदा के समय सगी चाची या ताई भी अगर विधवा होती तो सामने आकर आशीष नहीं देती थी। इसी सन्दर्भ में उन दिनों की एक घटना मुझे याद है।

हमारे मोहल्ले में लक्ष्मी बहिन सर्वमान्य और सर्वप्रिय थी। छोटे-बड़े सब उसका आदर करते थे। अपने माता-पिता की वह पहली सन्तान थी। उसके बाद लगातार पाँच पुत्र हुए और घर में धन-सम्पदा भी बढ़ती गई।

उन दिनों, लड़कियों के विवाह बचपन में ही हो जाते थे। परन्तु लक्ष्मी अपने पिता की लाडली बेटी थी, इसलिए वे १८ वर्ष तक उसे बालिका ही समझते रहे। आखिर बहुत खोज-बीन के बाद एक सम्पन्न परिवार में उसकी शादी तय हुई। विवाह में माता-पिता ने दिल खोलकर सब किया। वर-पक्ष को बहुत बड़े दहेज के अलावा, लड़की को कीमती गहने-कपड़ों से लादकर बिदाई दीं। उसकी सास का तो विवाह से पहले देहान्त हो गया था। ससुराल में जेठानियाँ थीं। उसके रूप और धन से उन्हें ईर्ष्या होने लगी। उसे हर समय उनके कटु वचन सुनने पड़ते। उन सबकों खुश करने के लिए वह रात-दिन काम में जुटी रहती। पीहर से जो चीजें आतीं, वे सब उनके पास ही भेजती, परन्तु उनको इसमें भी लक्ष्मी के पिता का दिखावा नज़र आता।

तीन-चार वर्ष तक जब उसके सन्तान नहीं हुई तो उन्होंने देवर के कान भरने शुरू कर दिए कि बहू बाँझ है। दूसरी शादी करनी चाहिए। पति अपनी बीमारी के बारे में जानता था। परन्तु पुरुष भला अपना दोष कब स्वीकार करता है ?

लक्ष्मी जब पीहर आती बहुत ही उदास और मुरझाई हुई रहती। माता या भौजाई के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
बहुत पूछने पर भी बात टाल देती । थोड़े दिनों बाद क्षय-रोग से पति मर गया । उस समय तक यह रोग असाध्य-सा माना जाता था । बाईस वर्ष की अवस्था में लक्ष्मी विधवा होकर रोती-बिलखती पिता के घर आ गई । उसके बाद भी दो-एक बार ससुराल गई थी. परन्तु उसके साथ वहाँ बहुत ही अशोभनीय व्यवहार किया गया । तरह-तरह की भद्दी गालियाँ भी दी गईं । शुरू से ही वह स्वाभिमानी स्वभाव की थी तथा मान-सम्मान के वातावरण में पली थी इसलिए सारे गहने और कपड़े उन्हें सौंपकर केवल एक साड़ी पहने पिता के घर आ गई । इसके बाद, ससुराल वालों ने उसकी खोज-खबर कभी नहीं ली ।

कुछ वर्षों बाद माता-पिता का देहान्त हो गया । अब लक्ष्मी बहिन ही उस सम्पन्न परिवार की वास्तविक मालकिन थी । भाई और भाभियाँ उसकी हर इच्छा को आज्ञा की तरह मानकर चलते ।

सुबह से शाम तक साधु-संन्यासी, गरीब और जरूरतमन्द उसे घेरे रहते । सबको प्रेमपूर्वक उत्तर देती और सहायता करती । अपनी कोई सन्तान नहीं हुई, परन्तु गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के बहुत से विवाह उसने सम्पन्न कराये, जिनमें कन्यादान अपने हाथों कराया । विवाह के बाद भी बार-त्यौहार पर उनको बुलाती रहती ।

राजस्थान के उस इलाके में कई बार अकाल पड़े । उन दिनों लक्ष्मी बहिन को उसके भाइयों के आसामी घेरे रहते । किसी को अपने कर्ज की अदायगी में मोहलत चाहिए तो किसी को नया कर्ज़ । उसके पास से निराश होकर शायद ही कोई लौटता था । कभी-कभी भाई नाराज भी होते, परन्तु बहिन की बात टालने की हिम्मत उन्हें नहीं होती । अपने माँ-बाप से बच्चे नहीं डरते थे, पर क्या मजाल कि बुआ के सामने कुछ भी गलत-सही बात करें या झगड़ा-झंझट करें । कभी-कदाच आपस में लड लेते तो दोनों पक्ष उसके पास शिकायत लेकर पहुँचते ।

समय पाकर पहले भतीजे का विवाह भडा (तय हुआ) । बारात पास के गाँव में जाने को थी । निकासी पर वर की घुड़चढ़ी के समय आरती करने का नेग बुआ का होता है । वर को बुआ ने ही पाल-पोसकर बड़ा किया था । वह उसे अपने पेट के जन्मे पुत्र से भी ज्यादा प्रिय था । स्वयं विधवा और निस्सन्तान थी, इसीलिए अमंगल के डर से आरती के लिए उसने किसी दूर के सम्बन्ध की बुआ को बुला लिया था । यहाँ तक तो सब ठीक चल रहा था, परन्तु एक बार वह अपने भतीजे को वर-राजा के वेश में सेहरा पहने हुए देखना चाहती थी । उसके मन में बहुत दिनों से इसकी साध थी ।

नेगचार के बाद जब बारात की रवानगी का समय आया तो प्रथानुसार घोड़ी पर चढ़ने के पहले वर बड़े-बूढ़ों के पैर छूने लगा । माता-पिता के पैर छूकर वह जब बुआ की तरफ आने लगा तो उसके पिता ने रोक लिया । बहन को भी गुस्से में बुरा-भला कह दिया, "इस शुभ बेला में तुम्हें कुछ तो ख़याल रखना चाहिए था । असगुन करने को हर समय बीच में आ जाती हो ।"

शायद, एकान्त में समझा कर कहने से वह स्वयं ही नहीं आती, परन्तु सैकड़ों सगे-सम्बन्धियों के बीच इस प्रकार के अनधारे अपमान से बुआ का हृदय तिलमिला गया । उसे लगा जैसे वह सिंहासन से उतार कर कीचड़ में गिरा दी गई है । थोड़ी देर तक तो वह फटी-फटी आँखों से देखती रही, फिर जोर-जोर से रोते हुए कहने लगी—"वर्षों से घर में रात-दिन मेहनत करती रही हूँ । सर्दी-गर्मी की परवाह किए बिना तुम्हारे बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा किया है । आज मैं कुलक्षणी और अमंगली हो गई ! इसलिए अपने गिरधारी की बारात भी नहीं देख सकती ! जिसको मैंने बीस वर्ष तक पाला-पोसा है, भला उसका मैं अमंगल चाहूँगी ? इसके पहले ही मेरी आँखें न फूट जायँगी !" रोते हुए अचेत होकर कटे वृक्ष की तरह गिर गई ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसके प्रति लोगो के मन में अटूट श्रद्धा-भक्ति थी। इस अप्रत्याशित काण्ड से उन सबके मन में भय-सा समा गया। अब तो भाई भी बहुत पछता रहे थे, परन्तु कही हुई बात तो वापस आ नहीं सकती। बारात का मुहूर्त टला जा रहा था, परन्तु वर अन्य सब बच्चों के साथ बुआ के पास बैठकर बच्चों की तरह रोने लग गया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह उठना नहीं चाहता था। थोड़ी देर बाद लक्ष्मी बहन को चेत होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित घराने की बेटी थी। अच्छे-बुरे की पहचान भी पूरे तौर थी। शीघ्र ही एक नतीजे पर पहुँच गई। वर को उठाकर छाती से लगाकर विदा होने का आदेश देकर जल्दी से कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिए।

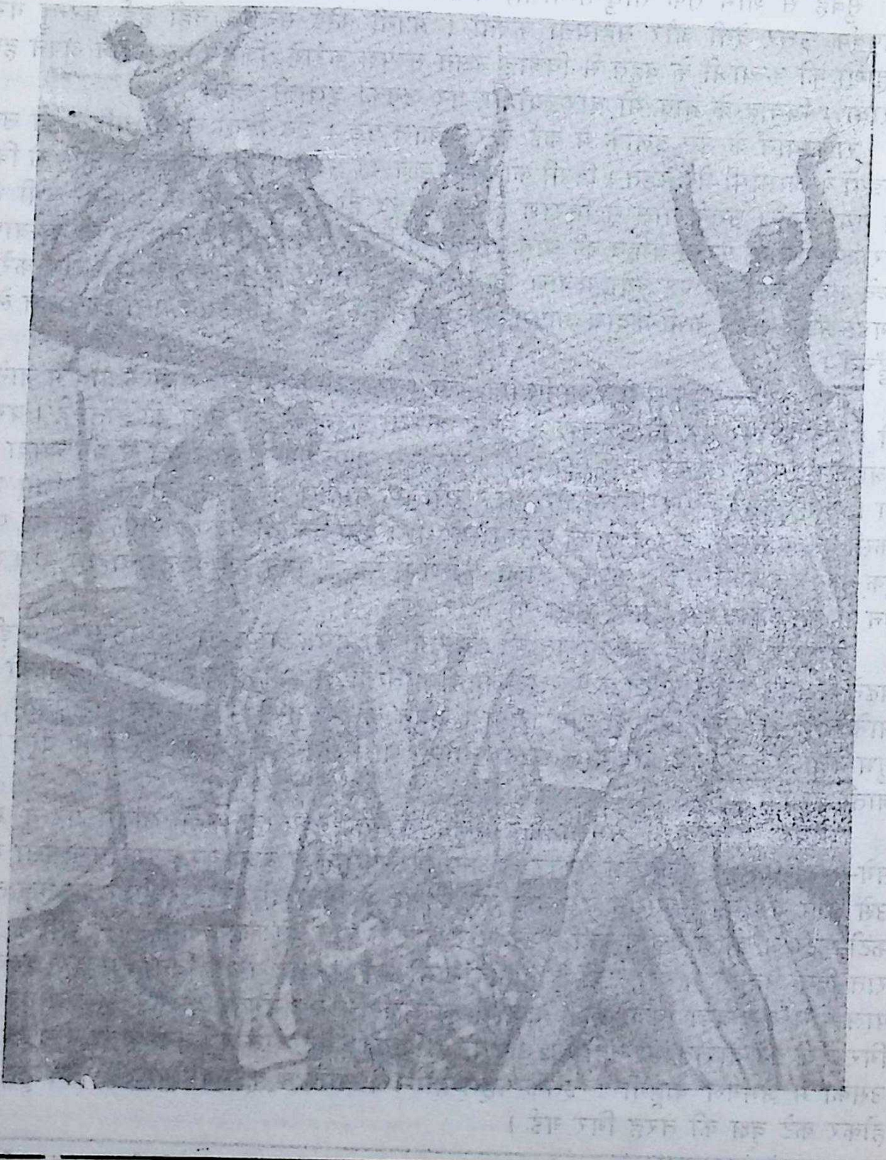

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हजारी दरोगा

राजस्थान के बीकानेर राज्य में उस समय एक महाराजा का शासन था। खुशामदी लोग कहते थे कि चोर-डाकू राज्य की सीमा में घुसने की हिम्मत नहीं करते, अन्नदाता के पास घूसखोर अफ़सरों की शिकायत पहुँचते ही उन्हें बेइज्जत करके निकाल दिया जाता है आदि। वैसे इन सब बातों में कुछ तो तथ्य था। जो भी हो, उन दिनों जनता को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं थी। यहाँ तक कि तहसीलदार को भी अन्नदाता और मालिक कहकर पुकारते थे। बड़े ओहदे आमतौर पर राजपूत छुटभैयों को दिए जाते, चाहे वे पढ़े-लिखे बिलकुल न हों।

ठाकुरों के गाँव में दूसरी जातिवाले घोड़े या ऊँट पर चढ़कर नहीं जा पाते थे। बेगार में मजदूरी ली जाती थी। किसी ठाकुर के मरने पर गाँव के बड़े-बूढ़ों को भी सिर मुँड़ाना पड़ता था।

दूसरे सब देशों में गुलामी प्रथा समाप्त हो गई थी, परन्तु हमारे राजस्थान में दरोगा जाति के रूप में बहुत बाद तक यह प्रथा चालू थी। राजाओं और ठाकुरों के विवाह में दरोगा लड़कियों को दहेज में दिया जाता था। नाम-मात्र के लिए उनके विवाह तो कर दिए जाते, परन्तु वे आमतौर पर कुँवर-साहब की उप-पत्नी के रूप में रहती थीं।

बीदासर के पास के गाँव का एक बड़े ठिकाने का जागीरदार महाराजा के यहाँ ऊँचे ओहदे पर था, महाराज का मुँह-लगा था; उसे हर प्रकार के अत्याचार करने की छूट थी। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि उसके सात खून माफ़ हैं। उसी गाँव में हजारी नाम का दरोगों का लड़का था। बचपन से ही कुश्ती-दंगल लड़ता था। घर में गाय-भैंस थीं, खाने-पीने की कमी नहीं थी। १८ वर्ष की उम्र में ही पास-पड़ोस में उसके बल-पौरुष की ख्याति फैल गई थी।

एक दिन पास के कस्बे में एक राजपूत पहलवान आया। पैर में साँकल डाले सात दिन तक घूमता रहा, परन्तु किसी की हिम्मत साँकल रोकने की नहीं हुई। लोग हजारी के बाप के पास जाकर कहने लगे, गाँव की इज्जत का प्रश्न है। हमेशा के लिए यह बात चालू रह जायगी कि अमुक गाँव में कोई भी मर्द नहीं था। बहुत डरते हुए उसने बेटे को उनके साथ भेज दिया। कस्बे में जाकर हजारी ने पहलवान के पैर की साँकल रोक ली—जिसका अर्थ था, उससे दंगल करना।

कुश्ती के दिन आस-पास के गाँवों के भी हजारों व्यक्ति जमा हो गए। वे सब सहमे-से थे, कहाँ तो दैत्य-सा पहलवान और कहाँ बेचारा हजारी जिसकी अभी मसें ही नहीं भीगी थीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जोड़ शुरू होते ही लोगों ने देखा कि हजारी ने पहलवान को सिर पर उठा लिया और थोड़ी देर तक इधर-उधर घुमाकर बड़े जोर से एक तरफ फेंक दिया। फिर तो भिड़ने की हिम्मत ही उसकी नहीं हुई। शर्मिन्दा-सा एक तरफ के रास्ते से बाहर चला गया। वहाँ जो राजपूत सरदार मौजूद थे, उन्होंने इसमें अपनी जाति का अपमान महसूस किया। एक दरोगा के छोकरे ने नामी राजपूत घराने के सरदार की हजारों व्यक्तियों के सामने बेइज्जती कर दी! वे लोग ठाकुर साहब के पास शिकायत लेकर गढ़ में पहुँचे। परन्तु उस समय लोगों का रुख देखकर बात आई-गई कर दी गई। फिर भी वे सब मौका देखकर बदला लेने की ताक में रहने लगे।

थोड़े दिनों बाद हजारी का विवाह हुआ। प्रथा के अनुसार बहू रावले में ठाकुरानी जी के पैर छूने गयी। नई बहू बहुत ही सुन्दरी थी। संयोग से ठाकुर साहब ने उसे देख लिया और खवास को उसे रात में हाज़िर करने को कहा। जाति-बिरादरी के लोगों को बहुत समझाने पर भी हजारी बहू को रावले में भेजने को तैयार नहीं हुआ। खवास को एक प्रकार से धमकाकर अपने घर से निकाल दिया। दूसरे दिन गढ़ में उसकी बुलाहट हुई। उसने खवास को गाली-गलौज दी, इसकी कैफियत माँगी गई। उसका कहना था कि महाराज आप तो मेरे पिता जी की आयु के हैं और गाँव के मालिक होने के कारण हमारे पिता-तुल्य हैं, इसलिए मेरी पत्नी आपकी पुत्री के समान है परन्तु इस खवास ने उससे बहुत ही गन्दी बातें कही, इसलिए मैंने भी इसे गुस्से में कुछ कह दिया था।

एक दरोगा के लड़के की ठाकुर साहब के सामने ऊँची नजर करके यह सब कहने की हिम्मत उस जमाने में अभूतपूर्व घटना थी। कुछ पुरानी अदावत थी ही, मुसाहिबों ने कहा कि महाराज, यह तो आँखें दिखाता है और अपनी पत्नी को आपकी पुत्री बनाकर स्वयं जमाई बनता है, इसलिए इसकी आँखें निकाल देनी चाहिए।

ठाकुर साहब गहरे नशे में थे, हुक्म हुआ, "इसकी आँखों में लोहे की गरम सलाखें डाल दी जाएं!"

उसी समय उसे पकड़ कर बाँध दिया गया। लोहे की बड़ी-बड़ी सलाखें गरम की गईं और गाँव के सैकड़ों लोगों के सामने उसकी आँखों में भोंक दी गयीं। उसके बाप-माँ और पत्नी एक कोने में खड़े उसकी करुणा-भरी चीख-पुकार सुनकर सुबुक रहे थे।

महाराज को सूचना दी गयी, परन्तु वहाँ से भी न्याय नहीं मिला, क्योंकि ठाकुर उनका ए० डी० सी० था।

हजारी के घरवालों ने सोचा कि अब बहू की इज्जत भो श।यद ही बच पाये, इसलिए सब दूसरे गाँव में जाकर रहने लगे।

बीदासर के एक सेठ उस ठाकुर के मित्र थे। एक दिन वे ठाकुर साहब की न्याय-प्रियता की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि हजारी को दण्ड तो कुछ कड़ा जरूर दिया गया, परन्तु इन छोटी जातिवालों को सिर पर चढ़ाना भी अच्छा नहीं रहता। पद और उम्र में वे मेरे से बड़े थे, परन्तु मुझे उस दिन कुछ ज्यादा ही गुस्सा आ गया था इसलिए कह बैठा—"आप शायद ठाकुर साहब की हुक्म-उदूली नहीं करते और रावले में अपनी बहू को भेज देते।" मैंने देखा कि वे मेरी बात सुनकर बहुत ही क्रोधित हो गए हैं।

मैंने हजारी को सन् १९५७ के शुरू में देखा था। राजाओं के राज्य समाप्त हो चुके थे। वे भी साधारण लोगों की तरह वोट माँगते फिर रहे थे। उस समय वह ५०-५५ वर्ष का हो गया था। झुर्रियों से भरे चेहरे पर एक असीम शोक की छाया नजर आती थी। दुःख और सन्ताप ने उसे असमय में ही वृद्ध बना दिया था। पत्नी दूसरों के घर झाड़ू बर्त्तन का काम करके कुछ कमा लेती थी, जिससे दोनों किसी तरह उदर-पूर्ति करते थे।

विवाह होते ही जो घटना हो गई थी, उससे कुछ ऐसी ग्लानि उन दोनों के मन में हुई कि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि 'ठकुरों के लिए गुलाम बच्चे पैदा नहीं करेंगे' और वे वानप्रस्थियों की तरह रहने लगे थे।

मेरे साथ उसी कस्बे के कुछ कार्यकर्त्ता थे, उनका हजारी से अच्छा सम्पर्क था। उनके साथ हजारी के घर गया। जीवन-चर्या के बारे में पूछताछ की। शुरू में तो हजारी की पत्नी को थोड़ी-सी झिझक हुई, परन्तु कुछ देर के बाद ऐसा लगा कि बहुत दिन पहले की ढँकी हुई परतें उधेड़ने में उसके दिल का बोझ हलका हो रहा है। कहने लगी, उस दिन इसकी करुणा-भरी चीख सुनकर मैं तो बेहोश हो गई थी। होश आया तो देखा कि बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों की जगह खून से सने दो गड्ढे हो गए हैं। शायद लोहे की सलाखों में कुछ जहर जैसी चीज थी। पास में साधन भी नहीं था कि कुछ दवा-पानी करते। किसी तरह नीम के पानी और पत्तों की सेंक से ३-४ महीनों में घाव भरे। इसी दुःख से मेरे सास-ससुर की मृत्यु हो गयी। भला हो, इन गाँववालों का, जिन्होंने हमें सहारा देकर बचा लिया। परन्तु मेरे पति को उस घटना से कुछ इस तरह का सदमा पहुँचा कि बराबर रोगी रहने लगा। इस समय भी कभी-कभी बरसात की रातों में आँखों में टीस चलती है तो दर्द से चिल्ला उठता है। ठाकुर के तीन-तीन जवान बेटे हैं, गाँव की बहू-बेटी की जब चाहे इज्जत ले लेते हैं। जमींदारी चली गई, परन्तु जमीनें तो हैं ही। इसके सिवा पहले का भी बहुत है। लोग कहते हैं कि परमात्मा के घर में न्याय है, परन्तु मुझे तो इसका विश्वास नहीं होता।

मैंने देखा कि बात करते हुए, उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली थी।

राजा भी चुनाव लड़ रहा था, उसी गाँव में उसकी मीटिंग थी। लोगों ने स्वागत में तोरण-दरवाजे बनाए थे। 'अन्नदाता की जय', 'घणी खम्मा' आदि कह रहे थे। कांग्रेसी शासन से राजाओं का राज्य अच्छा बता रहे थे। मेरे मन में हुआ कि हजारी को और उसकी बहू को ले जाकर उन सबके सामने मंच पर उपस्थित करूँ।

परन्तु पैंतीस वर्ष पहले की घटना पर अब हजारी को रोष नहीं रह गया था। उसका कहना था कि पूर्व-जन्म के पाप थे, जिससे दरोगा की जाति में हमने जन्म लिया, इसमें दूसरे किसी को क्यों दोष दिया जाय?

अनायास ही उस सहिष्णु-वीर के प्रति मेरा सिर झुक गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरखू की माँ

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहले की है। उस समय राजस्थान के प्रायः प्रत्येक गाँव मे किसी बट या पीपल के वृक्ष पर या किसी सूने कुएँ की सारन (सहन) में भूत-प्रेत या जिन्न का निवास माना जाता था। गाँव में बहुत से ऐसे व्यक्ति मिल जाते थे जो कसम खाकर कहते कि उन्होंने अपनी आँखों से एक रात अमुक स्थान पर सफेद कपड़े पहने बड़े-बड़े पैरों वाले, वृक्ष की ऊँचाई-के एक भूत को देखा था।

भूत-भूतनी के सिवाय प्रत्येक कस्बे या गाँव में एक-दो डाकी या डांकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँव की एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखू की माँ वहाँ डाकिन के रूप में प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढ़ावस्था में थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था। परन्तु लोग उससे डरते थे इसलिए किसी घर में उसे काम-काज मिलता नहीं था। कमाने वाला कोई था नहीं, भीख माँगकर किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। जब मोहल्ले में आती तो सारे घरों में पहले से ही उसके आने की खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चों को छिपा लेती और घर के दरवाजे पर से ही जल्दी से अनाज या रोटी देकर उसे वापस कर देतीं। हम बच्चे सहमे हुए से उसे जाते हुए पीछे से देखने का प्रयत्न करते।

उन दिनों गांवों में डाक्टर-वैद्य तो थे नहीं। बच्चों को 'डब्बा' या अन्य किसी प्रकार की बीमारी होने पर हरखू की माँ पर सन्देह जाता था। दो-तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चों पर छिड़कते थे। उनमें से बहुत-से तो अपने आप ठीक हो जाते, मगर कुछ रोगों के कारण मर जाते। मरने वालों की जिम्मेदारी हरखू की माँ समझ जाती। हरखू की माँ ने भी इस अपमानित जीवन से एक प्रकार का समझौता-सा कर लिया था, क्योंकि जीवन-यापन करने के लिए किसी-न-किसी प्रकार से अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करना तो जरूरी था ही!

कई वर्षों बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातों के साथ-साथ हरखू की माँ की भी चर्चा आई तो पता लगा कि वह बहुत दिनों से बीमार है, इसलिए भिक्षा के लिए नहीं आ पाती। उसे नजदीक से जानने की जिज्ञासा तो बहुत वर्षों से थी और अब मेरे लिए उसका कोई भय नहीं रह गया था, इसलिएं लोगों के मना करने पर भी एक मित्र के साथ उसके घर मिलने के लिए गया।

वह गाँव से बाहर एक झौंपड़ी में रहती थी। वहां जाकर देखा कि एक टूटी-सी खाट पर वह लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टी के और अलुम्युनियम के बरतन इधर-उधर बिखरे हुए पड़े थे। कई दिनों से शायद सफ़ाई नहीं की गई थी इसलिए कूडा-करकट भी फैला पड़ा था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो-तीन बार आवाज़ देने पर वह उठी और फटी-फटी आँखों से हमे देखने लगी। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई उसे भी पूछने के लिए आ सकता है! दुखी मनुष्य को जब सान्त्वना मिलती है तो वह द्रवित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियाँ बँध गईं अतः कह न सकी। फ्लास्क में चाय ले गए थे, एक बड़े कटोरे में पीने को दी, सब पी गई। शायद बहुत भूखी-प्यासी थी।

मैंने अपने मित्र को मोहल्ले में से किसी एक मजदूर को लाने के लिए भेजा परन्तु कोई भी उसके पास आने को तैयार नहीं हुआ। मेरे साथ कलकत्ते से एक नौकर आया हुआ था। उसे साथ लेकर मैं शाम को पुनः उसके यहाँ गया था। साथ में गरम दूध, दलिया तथा साधारण ताकत की औषधि ले गया था। जितनी राहत उसे पथ्य और दवा से नहीं मिली, शायद उससे ज्यादा इस बात से मिली कि उस उपेक्षिता के प्रति भी किसी की सहानुभूति है।

दूसरे दिन समझा-बुझाकर एक वैद्यजी को ले गया और उनकी चिकित्सा शुरू की। उचित पथ्य और दवा की समुचित व्यवस्था से थोड़े दिनों में ही वह स्वस्थ हो गई। फिर तो कई बार वहाँ गया, उसके प्रति एक आत्मीयता-सी हो गई थी। मन में एक कचोट-सी भी थी कि इस असहाय के साथ अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर, समाज और गाँव के लोगों ने एक बहुत बड़ा अन्याय किया है।

एक दिन मैने कहा, हरखू की माँ! मैं तुम्हारे बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ, अगर बुरा न मानो तो मुझे अपने जीवन की सारी बातें बताओ। थोड़ी-सी हिचकिचाहट के बाद जो इतिहास उसने बताया, वह इस प्रकार है—

"जब मैं १३ वर्ष की थी तब अमुक गाँव के ठाकुर साहब की बाई-सा के विवाह में दायजे में दे दी गयी। उनकी ससुराल में आकर मेरा विवाह वहाँ के एक दरोगा के लड़के के साथ कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी रावले की चाकरी में रहते थे। साधारण खाने-पहिनने को मिल जाता था। पति कँवर साहब का काम करता और मैं कँवरानी जी का।"

"कुछ वर्षों बाद हमें एक बच्चा हुआ, प्यार का नाम रखा गया हरखू! एक बार गाँव में हैजा फैला। मेरा पति भी इस से अछूता न बचा। गाँव का एकमात्र वैद्य दूसरे बड़े लोगों की चिकित्सा में लगा हुआ था। बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी वह मेरे पति को देखने नहीं आया और दवा-दारू के अभाव में वह मर गया। रावले में खबर भेजी गयी परन्तु वहाँ से कोई भी श्मशान तक साथ जाने के लिए नहीं आया क्योंकि हैजे के रोग से मृत व्यक्ति की छूत लग जाने का डर जो था! मैंने दो-चार पड़ोसियों की सहायता से किसी प्रकार उसकी दाह-क्रिया की। घर आने पर बच्चे को भी दस्त और उल्टी होते हुए पाया। दवा के नाम पर भगवान का नाम लेकर प्याज का रस देने की तैयारी कर ही रही थी कि ठाकुर साहब के यहाँ से बुलावा आ गया। बहुत रोने-गिड़गिड़ाने पर भी छुटकारा नहीं मिला। कँवरानी जी की चोटी-कंघी करके जब मैं भागती हुई घर लौटी तो मेरा हरखू सारे दुःखो को भूलकर सदा के लिए सोया हुआ मिला। इसके बाद मैं पागल-सी रहने लगी, रात-दिन हरखू को पुकारती रहती। थोड़े दिनों के बाद ही फिर से मुझे रावले के काम पर जाना पड़ा। हम दरोगे एक प्रकार से ठाकुरों के ज़र-खरीद गुलाम की तरह थे।

"संयोग से उन्हीं दिनों कँवरानी जी के दोनों पुत्र मर गए। मुझे कुलक्षणी समझ कर वहाँ से निकाल दिया गया और फिर मैं इस कस्बे में आकर मेहनत-मजदूरी करके निर्वाह करने लगी। मुझे बच्चों से कुछ इस प्रकार का मोह हो गया था कि बिना मेहनताने के ही मोहल्ले के बच्चों का काम करती रहती, उन सबमें मुझे अपने हरखू की झलक मिलती थी।

"शायद पूर्व-जन्म में मैंने बड़े पाप किए थे। एक दिन एक बच्चे को मैं उसकी माँ से लाकर खेला रही थी कि थोड़ी देर में ही कमेडा आकर उसका देहान्त हो गया। उसके बाद तो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं गाँव में डाकिन के नाम से बदनाम हो गई। औरतें मुझे देखते ही बच्चों को छिपा लेती थी। गाँव के बडे बच्चे पीछे मे पत्थर मार कर चिल्लाते 'हरखू की माँ डाकिन है' पहले तो लोगों के घर में कुछ मिल जाता था अब वह भी बन्द हो गया। पचास वर्ष हो गए तबसे भीख माँगकर ही किसी प्रकार अपना यह पापी पेट पालती हूँ. परन्तु आज भा जब मैं किसी छोटे बच्चे को देखती हूँ तो मुझे अपना हरखू याद आ जाता है।"

उसने खाट के नीचे से एक टीन का गोल डिब्बा निकाला और उसमें से गोट लगे हुए टोपी-कुरते निकाल कर दिखाने लगी। वे सब उसके हरखू के थे। दो छोटे-छोटे चाँदी के कड़े और एक हनुमान जी की मूर्ति भी थी। यह सब दिखाते-दिखाते वह अपने-आपको और ज्यादा न रोक सकी। उसके धीरज का बाँध टूट गया और आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बड़े जोर से रोते हुए कहने लगी, "परमात्मा जानता है, मैंने गाँव में किसी का कोई नुकसान नहीं किया। फिर भी पिछले ५० वर्षों से इन लोगों ने मुझे बदनाम कर रखा है और मेरा इतना बड़ा अपमान करते आ रहे हैं, अब और सहा नहीं जाता। दुनिया में इतने लोग मरते है पर मुझ अभागिन को मौत भी नहीं आती!"

बहुत भारी मन से मैं उस दिन उसे सान्त्वना देकर घर लौटा। दो-तीन दिन बाद ही आवश्यक कार्य से मुझे अपने गाँव से रवाना होना पड़ा। कलकत्ता आकर अनेक प्रकार के झंझटों में फँसकर हरखू की माँ की बात भूल गया। तीन-चार वर्ष बाद मैं पुनः गाँव गया तब पता चला कि हरखू की माँ की गाँव के लोगों ने दिन-दहाड़े हत्या कर दी थी।

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गाँव के एक प्रतिष्ठित सेठ का बच्चा बीमार हो गया। संयोग से उसके पहले दिन हरखू की माँ उनके यहाँ रोटी लेने गई थी अतः उस पर उनका शक़ जाना स्वाभाविक था। चार-पाँच व्यक्ति उसके यहाँ गए और एक कटोरी में थूकने के लिए कहा। उस दिन उसे भी कुछ इस प्रकार की ज़िद्द हो गई कि वह थूकने को तैयार ही नहीं हुई।

निरीह बुढ़िया का थूक निकालने के लिए उनमें से दो-तीन व्यक्तियों ने जोर से उसका गला दबाया। बीमार और कमजोर वृद्धा भला कहाँ इतना जोर-जुल्म सह पाती? झाग और थूक के साथ-साथ उसके प्राण भी निकल गए।

घर आकर देखा गया कि बच्चा-भला चंगा खेल रहा है। परन्तु गाँव के 'समझदार' लोगों की धारणा थी कि अगर उससे जबरन थूक नहीं लिया जाता तो शायद बच्चे की जान नहीं बचती। डाक्टर और पुलिस को किसी प्रकार राजी करके मामला दबा दिया गया। उस गरीब औरत के लिए किस को पडी थी कि सेठ जी से बैर मोल लेता?

थोड़े दिनों बाद सेठ जी के यहाँ बच्चे के स्वास्थ्य-लाभ की खुशी में हनुमान जी का प्रसाद भोज हुआ। गाँव के पचासों व्यक्ति दाल-चूरमा खाते हुए हरखू की माँ की मौत के बारे में इस प्रकार से बात कर रहे थे जैसे वह एक साधारण-सी घटना थी। मैं भी तो निमंत्रण में गया था परन्तु किसी प्रकार भी भोज में सम्मिलित न हो सका। मुझे वहाँ की हवा में उस वृद्धा के अन्त समय की चीख-पुकार सुनाई पड़ रही थी।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाको राखे साँइयाँ

दिल्ली में मई-जून में, भयंकर गरमी पड़ती है। रेत की आँधियाँ शुरु हो जाती हैं। कभी-कभी तो पारा ११६ डिग्री तक पहुंच जाता है। सन् १९६२ की बात है, उस वर्ष की गर्मी शायद पिछले पचास-साठ वर्षों में अधिक़तम थी। गरम लू से आस-पास के गाँवों में प्राय नित्य ही एक-दो व्यक्तियों के मरने के समाचार आते रहते थे।

वैसे इन दिनों लोकसभा का सत्र नहीं रहता परन्तु उस वर्ष मार्च में चुनाव सम्पन्न हुए थे इसलिए अधिवेशन मई से अगस्त तक था।

मेरी पत्नी और १२ वर्ष का छोटा पुत्र राजू, दिल्ली में थे। वे प्रायः ही कलकत्ता में रहते थे इसलिए उनके लिए यह गर्मी एक नई बात थी। हम लोग रात में बहुत-सा पानी छिड़क कर बँगले के बाहर के बगीचे में सोते परन्तु जमीन से आग-सी निकलती और १२ बजे तक नींद नहीं आती। पड़ोस के लोग शिमला, मसूरी या कश्मीर जाने लगे।

पत्नी और राजू का आग्रह रहा कि हमें भी कश्मीर चलना चाहिए। एक तो कश्मीर में मेरा छोटा भाई सपरिवार पहले गया हुआ था, दूसरे उन्होंने कभी कश्मीर देखा नहीं था।

मई की २३ तारीख को हम पठानकोट-एक्सप्रेस से रवाना हुए। मेरे पास एक नयी एम्बेसेडर कार के सिवाय ४५ माडल की एक स्टूडीबेकर स्टेशन वैगन थी।

पत्नी ने उस पुरानी गाड़ी के बदले में नयी एम्बेसेडर ले जाने को कहा, परन्तु मैंने देखा कि उस बड़ी गाड़ी में सारा सामान और सब लोग आराम से चले जायेंगे। गाड़ी भी बेचनी है इसलिए क्यों नहीं उसी से काम ले लिया जाय इसलिए इसे रवाना होने से दो दिन पहले नौकरों के साथ भेज दिया।

पठानकोट स्टेशन पर मोटर तैयार मिली। संयोग से वहीं पर हमारे वयोवृद्ध मित्र श्री मुनीश्वरदत्त उपाध्याय एम पी. मिल गये। मोटर में जगह थी इसलिए उन्हें भी साथ बैठा लिया।

जम्मू से आगे जब चढ़ाई शुरू हुई तो मोटर हर पाँच मील पर गरम होने लगी, हम पानी डालते रहे। कभी-कभी सब मिल कर ठेलते भी रहे। यद्यपि उपाध्याय जी काफी वृद्ध थे, परन्तु संकोचवश वे भी इसमें सहायता देते। ३०-३५ मील जाने के बाद एक कड़ी चढ़ाई पर वह अड़कर रुक गयी। बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ रही थी। पास के गाँव में एक छोटा-सा मोटर-मरम्मत का कारखाना था। थोडी देर में ही बहुत से लोग इकट्ठे हो गए। उनमें दो-एक मिस्त्री भी थे। वे हँसकर कहने लगे कि सेठ जी इस मोटर को तो आपको विन्टेज कार-रैली (बहुत पुरानी मोटर-दौड़-प्रतियोगिता) में भेजनी चाहिए थी। कहां यह पहाड़ों की चढ़ाई, कहाँ यह बेचारी बूढ़ी गाड़ी! मुझे उनकी बातें सुनकर गुस्सा और झेंप हो रही थी परन्तु चुपचाप सुनने के सिवा चारा भी क्या था?

पत्नी भी उलाहना देने लगी कि आपने सोचा, नई मोटर खराब हो जायगी, इसलिए इस खटारे को मेरे रोकने पर भी ले आए। उस दिन दिशाशूल था, इसका विचार भी आपने नहीं किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आखिर एक घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद मोटर रवाना हुई। पहले और दूसरे गेयर में चलाते हुए, दूसरे दिन शाम तक किसी प्रकार श्रीनगर पहुंच गये। १०-१५ दिन वहां रहने के बाद समाचार मिला कि दिल्ली में वर्षा हो गयी है। हमने वापस आने का प्रोग्राम बनाया।

पत्नी और राजू की इच्छा थी कि हवाई जहाज से चलें परन्तु में फ़िज़ूल में ६००) रु० खर्च करना नहीं चाहता था। उन्हें समझाया कि आते समय तो मोटर खराबी के कारण रास्ते के दृश्य नहीं देख पाये थे परन्तु अब ठहरते हुए चलेंगे। स्टूडीबेकर को वहाँ छोड़कर हम लोग वहां से एक नयी एम्बेसेडर पर रवाना हुए।

बठोठ के पास पहुचे तब शाम हो गई थी। रास्ते के किनारे कोट-पैंट पहने युवक खड़ा था। उसने हाथ से गाड़ी रोकने का संकेत किया। हमने गाड़ी रोक ली। कहने लगा कि बड़ी कृपा होगी अगर आप मुझे अगले गाँव तक पहुंचा देंगे। मैं अपना ठेकेदारी का काम सम्हालने आया था। यहाँ देर हो गयी। ट्रकें सब पहले ही जा चुकी हैं। हमारे पास जगह थी। युवक की वेश-भूषा और बातचीत का भी प्रभाव पड़ा; उसे मोटर में बैठा लिया।

हमारा ड्राइवर पहाड़ों के लिए नया था, गाड़ी धीरे-धीरे चला रहा था। थोड़ी देर बाद युवक ने कहा कि मेरा इस तरफ मोटर चलाने का नित्य का अभ्यास है, अगर आप कहें तो मैं चलाऊं। ड्राइवर को भी आराम मिल जायेगा और बठोठ कुछ जल्दी पहुंच जायेंगे।

हमें ऐसा लगा कि युवक का वह रास्ता पूरी तौर पर जाना हुआ था। ३५-४० मील की स्पीड से वह मोटर चला रहा था। मोड़ने की भी अच्छी तरह जानकारी थी।

थोड़ी देर बाद गहरा उतार आया, गाड़ी की स्पीड बढ़ी। एक घुमावदार मोड़ आया और युवक से गाड़ी बेकाबू होकर सामने के खड्ड की तरफ तेजी से बढ़ी।

आसन्न मृत्यु को सामने पाकर मनुष्य किस प्रकार का हो जाता है, इसका उस दिन मुझे पता चला। सामने तीन-चार हजार फीट गहरा खड्ड अजगर की तरह मुंह बाये था और गाड़ी उसी तरफ बढ़ रही थी! उस कड़ी सर्दी में भी हम सब पसीने से तर थे। आंखों के आगे अँधेरा छा गया और होश-हवास गुम हो गए।

हमारे दादाजी कहा करते थे कि संकट के समय राम का नाम लेने से कष्ट कट जाते हैं। मुझे वह बात याद आई और मैंने ज़ोर-ज़ोर से राम का नाम लेना शुरु किया। जीवन में शायद ही कभी इतने सच्चे मन से मैंने प्रभु का नाम लिया होगा।

हम सब आंखे मींचे मृत्यु की राह देख रहे थे। कुछ ही क्षण बीते होंगें कि गाड़ी को एक ज़ोर का धक्का लगा। आंखें खोलीं तो देखा कि सड़क के किनारे मरम्मत करने के लिए पत्थरों के छोटे टुकड़ों का ढ़ेर है और गाड़ी उनमें फँस गयी है। किसी प्रकार साहस कर नीचे उतरे; तब भी शरीर काँप रहा था, सिर चकरा रहा था। देखा गाड़ी के आगे का हिस्सा थोड़ा-सा टूट गया है; रेडियेटर में से सारा पानी निकल गया है।

एक मील पर ही बठोठ था, किसी प्रकार पैदल वहाँ पहुंचे। रात में एक होटल में ठहरे। युवक बहुत ही सहमा हुआ और शर्मिंदा था परन्तु उसे भला-बुरा कहने से क्या फ़ायदा था—आखिर वह भी तो साथ में ही मरता? दूसरे दिन कुलियो को भेजकर गाड़ी ठेलकर बठोठ लाये। वहाँ एक कारखाने में टंकी मरम्मत करायी। दो दिन इसके लिए रुकना पड़ा।

रास्ते में हम लोग आपस में बात करते रहे कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है — "जाको रखे साँइयां मार सकै नहिं कोय।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अछूत

सेठ रामजीलाल अपने कस्बे में ही नहीं बल्कि प्रान्त-भर में प्रसिद्ध थे। उनके विभिन्न प्रकार के पाँच-छः कारखाने थे जिनमें हज़ारों मज़दूर काम करते थे। विदेशों के साथ भी आयात-निर्यात का करोड़ों रुपये का कारोबार था। व्यापार के सिवा सार्वजनिक-क्षेत्र में भी अच्छा नाम था। उनके द्वारा संचालित कई स्कूल, कॉलेज, छात्रावास और अस्पताल थे। वे निम्बार्क-सम्प्रदाय के वैष्णव थे इसलिए उन्होंने अपनी हवेली के पास ही श्रीनाथजी का एक विशाल मन्दिर बनवाया था जिसमें घर के हर व्यक्ति के लिए नित्य दोनों समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

सब तरह से सम्पन्न और सुखी परिवार था परन्तु सन्तान न होने से पति-पत्नी दुखी रहते थे। एक बार वे कुम्भ के पर्व पर यात्रा के लिए हरिद्वार गये। वहीं उन्हें दो वर्ष का एक बच्चा, सेवा-समिति के स्वयंसेवकों द्वारा मिला। सेठानी लड़के को गोद लेते ही निहाल हो गयीं। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप-रंग देखकर ही अनुमान लगा लिया कि जरूर किसी कुलीन घराने का है। अपने गाँव आकर बहुत धूम-धाम से गोद के नेगचार किए गए। हज़ारों व्यक्तियों को भोज दिया गया। इस अवसर पर एक अस्पताल और एक कॉलेज की नींव डाली गयी। बच्चे का सुन्दर-सा नाम रखा गया, गोपाल कृष्ण। उस समय लोगों ने भी ज्यादा पूछताछ की जरूरत नहीं समझी।

बच्चे का आना कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्ष के भीतर ही उनके एक पुत्री हुई। धन-दौलत भी रात-दिन बढ़ती गयी।

इसी प्रकार १७-१८ वर्ष आनन्द से व्यतीत हो गये। गोपाल और छोटी बहिन सुमन दोनों कॉलेज में पढ़ते थे। आपस में सगे भाई-बहन से भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढ़ने के सिवा खेल-कूद में भी हमेशा प्रथम या द्वितीय रहता था। एम० ए० में उसे कालेज में प्रथम स्थान मिला।

एम० ए० करने के बाद पढ़ने के लिए वह विदेश जाना चाहता था परन्तु सेठजी शादी करके उसे व्यापार में लगा देना चाहते थे। सुमन ने अपनी एक सुन्दर और सम्पन्न सहेली का चयन भी कर लिया था—यहाँ तक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता-पिता को दिखा भी दिया था। एक तरह से बात पक्की हो गयी थी, केवल नेगचार होने बाकी थे।

उसी वर्ष बीकानेर के उत्तरी हिस्से में बड़ा अकाल पड़ा। हजारों व्यक्ति अपने गाँव छोडकर पशुओं के साथ मालवा की तरफ जाने लगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेठजी ने अपने कस्बे में उनके विश्राम के लिए व्यवस्था कर रखी थी। एक दो दिन वहा रहकर सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वयं-सेवकों के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम में दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकार के एक यात्री-दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमें से एक अधेड़-सा व्यक्ति गोपाल को घूर-घूर कर देखने लगा, थोड़ी देर में अपनी पत्नी को भी बुला लाया।

सुमन ने हँसकर कहा कि बाबा इस प्रकार आप क्या देख रहे हैं; और आपकी आँखों में आसूँ क्यों हैं ? थोड़ी देर तो वृद्ध चुप रहा फिर सहमते हुए कहा—"बाई-सा! मेरा लड़का रामू आज से १८ वर्ष पहले हरिद्वार के कुंम्भ मेले में गुम हो गया था। उसका रंग भी इसी तरह साफ था। उसके बायें गाल पर भी इसी प्रकार का निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमें अपने खोये हुए पुत्र की याद आ गई है।"

घर जाकर सुमन ने पिता जी को जब यह बात कहीं तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गई थी।

रात में उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गई तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार हैं। उस वर्ष कुम्भ-स्नान करने के लिए गए थे। वहीं उनका एकमात्र पुत्र भीड़ में खो गया, जिसका आज तक पता नही चला। लड़के के कुछ और चिन्ह था क्या ? यह पूछने पर उसने कहा कि उसके दायें हाथ में भी चोट का एक निशान था।

यह सब बातें गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थीं। उस समय वृद्ध को १००), २००) रुपये देकर उसे यह कह कर विदा किया कि तुम्हें इस प्रकार की फ़िजूल बातें नहीं करनी चाहिए। अच्छा हो तुम लोग कल यहाँ से चले जाओ।

परन्तु ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। लोगों को अपना हर्ज करके भी दूसरों के छिद्र ढूँढ़ने का शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे कस्बे में फैल गई।

इधर सेठ जी और सेठानी दोनों कमरा बन्द करके भीतर बैठ गए। बहुत कहने-सुनने पर भी भोजन के लिए बाहर नहीं निकले।

गोपाल हर प्रकार से योग्य और समझदार था। वस्तु-स्थिति उसकी समझ में आ गई थी। वह एक निश्चय पर आकर दूसरे दिन सुबह सुमन के पास जाकर कहने लगा, "बहन जी, जो कुछ होना था, वह तो हो गया। परमात्मा जानता है कि उसमें मेरा कुछ कसूर नहीं है। फिर भी, मेरे कारण आप लोगों को इतना बड़ा अपमान सहना पड़ा। अब किसी तरह पिता जी और माताजी को भोजन कराने का उपाय करो, वे कल से ही भूखे प्यासे हैं।"

सुमन ने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हँसी-मजाक़ करता रहता और सुमन कहकर पुकारता था, वह 'बहन जी' कह रहा है और सहमा-सा थोड़ी दूरी पर बैठा हुआ है।

उन दोनों ने बहुत अनुनय-विनय करके कमरे का दरवाज़ा खुलवाया। देखा कि एक दिन में ही पिताजी वृद्ध से लगने लगे हैं। माता एक तरफ अचेत पड़ी हुई हैं। अन्य दिनों की तरह आज गोपाल ने पिता के पैर नहीं छूए। कुछ दूरी से ही कहा, "पिताजी, मेरा आपका सम्बन्ध इतने दिनों का ही ईश्वर को मंजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा दें। माता जी का बुरा हाल है, उन्हें भी सान्त्वना दें। आपने जितना लिखा-पढ़ा दिया है, उससे २००), ३००) रु० माहवार आसानी से कमा सकूँगा।"

बहुत देर का रोका उद्वेग एक बरसाती नाले के बाँध की तरह टूट गया। इतने बड़े प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चे की तरह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे! कहने लगे, "मैं भले ही चमार हो जाऊँगा, परन्तु किसी हालत में भी तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। हो सकता है, तुमने जन्म अछूतों के घर लिया हो, परन्तु भला कोई बताये तो कि तुम जैसे धार्मिक और निष्ठावान युवक ऊँची जातिवालों में भी कितने हैं ? राम तो १४ वर्ष के लिए ही बनवास गए थे परन्तु तुम मुझे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बुढ़ापे में, सदा के लिए छोड़कर जाना चाहते हो !"

इधर हवेली में सुबह से ही किसी-न-किसी बहाने सगे-सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गए थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब कुछ जानते-बूझतें हुए भी 'क्या हुआ ' 'कैसे हुआ ' आदि पूछ रहे थे। साथ में उन चमारों में से कुछ को ले आए थे।

थोड़ी देर में ही गोपाल उन सबके सामने जाकर कहने लगा कि आपने जो कुछ सुना है, वह सब सत्य है। मैं कोलायत के चमारों का लड़का हूँ। इसी समय घर और आपका गांव छोड़कर जाने को तैयार हूँ। कृपा करके आप सेठजी को क्षमा कर दें। उन्होंने जो कुछ किया, बिना जानकारी के किया है फिर, बड़े से बड़े कसूर का भी प्रायश्चित्त तो होता ही है।

परन्तु सेठजी किसी तरह भी गोपाल को छोड़ने को तैयार नहीं थे। आँसू की धारा बह रही थी, वे उसे जबर्दस्ती गले लगाकर कहने लगे, "सुमन भी कपड़े बाँधकर तुम्हारे साथ जाने की तैयारी कर रही है, फिर भला हम अकेले इस घर में रह कर ही क्या करेंगे ? किसी दूसरे गाँव में जाकर चमारों के साथ रह लेंगे।"

गोपाल चाहता तो सेठजी के इन स्नेहपूर्ण उद्गारों का लाभ उठा सकता था परन्तु उसने सुमन और सेठ जी को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर वहाँ से विदा ली। दूसरे दिन ही एक यात्री-दल के साथ मालवा के लिए रवाना हो गया। बहुत अनुनय-विनय के बावजूद घर से दो-चार धोती-कुर्त्तों के सिवा अन्य कोई भी वस्तु साथ में नहीं ली।

विदा के समय एक प्रकार से सारा गाँव ही उमड़ पड़ा था। कल तक इस घटना में लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे परन्तु आज वे फूट-फूट कर रोते हुए देखे गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परोपकार

आज से पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थान में बड़े शहरों के सिवा अन्यत्र कहीं भी डॉक्टर नहीं थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा बीमार हो जाता तो इलाज के लिए जोधपुर या बीकानेर से डॉक्टर को बुलाया जाता। हमारे कस्बे में एक बार एक सेठ के इलाज के लिए कलकत्ता से एक बंगाली डॉक्टर आये थे। इन्हें देखने के लिए स्थानीय लोगों के अलावा बहुत से ग्रामीण भी आये थे क्योंकि एक-सौ रुपया प्रति दिन की फ़ीस उस समय एक अद्‌भुत और अनोखी बात थी।

बीमारियाँ तो उस समय भी होती थीं, परन्तु डाक्टरी इलाज का प्रचलन नहीं के बराबर था। सर्दी, जुक़ाम, सिर-दर्द और यहाँ तक कि मलेरिया और मियादी बुखार में कालीमिर्च और लौंग की चासनी या दशमूल का काढ़ा दे दिया जाता। अधिकांश रोग इन्हीं देशी जड़ी-बूंटियों से दूर हो जाते।

वैद्यों के अलावा हर मोहल्ले में एक दो सयानी स्त्रियाँ रहतीं जिनकी कोथली (थैली) में जच्चा और बच्चा दोनों के लिए दवाएं रहतीं। बीमार के घरवालों को इन्हें बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ख़बर पाकर वे स्वयं ही पहुँच जातीं और रोगी की सेवा में लग जातीं। किसी प्रकार की फ़ीस या औषधि के मूल्य का तो प्रश्न ही नहीं था बल्कि ऐसे मौकों पर पुराने बैर-बदले भी समाप्त हो जाते।

थोड़े वर्षों बाद, शायद सन् १९३० के लगभग एकाध डाक्टर भी आ गए थे जिनके गले में या कोट के ऊपर की जेब में रबर का स्टेथिस्कोप पड़ा रहता। फ़ीस अधिकतम दो रुपया होती किन्तु उस समय लोगों को यह भी अखरती थी इसलिए अधिकांश रोगी झाड़-फूँक या स्थानीय वैद्य जी का सहारा ही लेते।

वैद्य का बेटा अपने आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेद की डिग्रियाँ तो नहीं थीं परन्तु बड़ों द्वारा प्राप्त नाड़ी और औषधि का ज्ञान उन्हें यथेष्ट रहता। आजकल की तरह थूक-खून और मूत्र की परीक्षा के साधन न होने पर भी नाड़ी-ज्ञान द्वारा ये लोग रोग का सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्यों के पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवाएं अच्छी मात्रा में पाई जातीं जिनका असर अचूक होता।

शायद, सन् १९३६ की बात है। हमारे कस्बे और आस-पास के गांवों में बड़े ज़ोर का हैज़ा फैला। प्रतिदिन २०, ३० आदमी मरने लगे। लोगों में घबराहट फैल गई। जिनके पास साधन थे, वे दूर के गांवों और कस्बों में अपने सगे-सम्बन्धियों के यहा चले गए। यहा तक कि डॉक्टर और वैद्य भी गांव छोडकर चले गए क्योंकि जिनसे फ़ीस मिलने की आशा थी, वे तो पहले से ही जा चुके थे। बच गए थे ग़रीब लोग जिनके पास फ़ीस तो क्या दवा के दाम भी नहीं थे। इतना ही नहीं, रोग का प्रकोप ज़्यादा बढ़ा तो घरवाले भी रोगियों को छोड़कर भागने लगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घर-घर में रोगी पड़े थे और डाक्टर-वैद्यों में केवल एक ही रह गए थे, कविराज बृजमोहन गोस्वामी। यद्यपि परिवारवालों ने और मित्रों ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे भी कस्बा छोड़ दें; आखिर, अकेले कर ही कितना जाएंगे ? साथ ही, जान जोखिम में रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुए वैद्यराज थे। उन्होंने कभी संकट के समय रोगी को नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि ग़रीबों के लिए दवा के सिवा कभी-कभी पथ्य की भी व्यवस्था उन्होंने अपने पास से की। इस समय अगर मैं भी भागकर चला जाऊंगा तो इन असहायों का क्या होगा ? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, एक दिन होगी ही. फिर कर्तव्य-विमुख होकर अपकीर्ति का बोझ क्यों उठाऊं ?

हैज़े का सबसे ज़्यादा प्रकोप था चमारों और भंगियों के मुहल्लों में। वीरान गांव, भयावह गलियां, सूने घर और मुर्दों की सड़ांध से पूरा गांव श्मशान सा नज़र आता था। गोस्वामी जी सुबह ६ बजे उठते और दोपहर १२ बजे तक बीमारों को देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रात १० बजे तक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समय तक हैज़े के इंजेक्शन और एलोपैथिक दवाएं ईज़ाद हो चुकी थीं, पर वहां न तो इंजेक्शन देने वाले डाक्टर या कम्पाउण्डर थे और न दवाफ़रोश ही। वैद्यजी को तीन-चार हिम्मतवाले युवकों ने साथ दिया, मनों प्याज का रस निकाल कर मटके भर लिए और ऊंटों का मूत्र भी बड़ी मात्रा में इकट्ठा कर लिया। रोगियों को भगवान का नाम लेकर वे दोनों औषधि पिलाने लगे और इनसे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थान में छूआछूत बहुत थी। गोस्वामी जी परम वैष्णव थे. परन्तु उन्हें तो इन भंगी-चमारों में वास्तविक हरि के दर्शन होने लगे। बहुत बार तो उनके मल-मूत्र भरे कपड़े धोने पड़ते और जगह की सफ़ाई भी करनी पड़ती। बीमार माता और छोटे बच्चों को लोरी देकर सुलाना पड़ता। जान और माल का मोह छोड़ भी दे तो भी नाम और यश की कामना तो रहती ही है और इसी के चलते ऐतिहासिक बलिदान हुए हैं. परन्तु उस बीमार इलाके में न तो समाचार-पत्रों के संवाददाता थे जो वैद्य जी के सेवा-कार्य को प्रचार-प्रसार देते और न वैद्य जी ही अपने नाम और काम का ढिंढोरा पीटना चाहते थे। उन्होंने तो अपना कर्त्तव्य समझ कर ही मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार किया था।

उनका शरीर भारी था, वृद्धावस्था हो चली थी। रात को थक कर चूर हो जाते. परन्तु जैसे ही थोड़ा-सा खा-पीकर सोने जाते कि रोती हुई कोई महिला आती और अपने बच्चे के उल्टी-दस्त की बात कह कर गिड़गिड़ाने लगती। वैद्य बृज मोहन का मनुष्यत्व जाग उठता और वे प्रभु का नाम लेकर उसी समय चल देते। सारी रात बाहर ही बीत जाती। इस प्रकार कई बार हुआ। एक कहावत है कि जाको राखे साइयां मारि सके न कोय। महामारी समाप्त हो गयी, लोग वापस आने लगे। उन्होंने देखा कि गोस्वामी जी सही-सलामत हैं। हां. शरीर से काफी थक गए हैं, एक प्रकार टूट-से गये हैं।

आसपास के कस्बों के लोग उन्हें देखने आने लगे। उनके सार्वजनिक अभिनन्दन का प्रस्ताव रखा गया परन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक इसकी मनाही कर दी। उनका कहना था—"मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही तो भारतीय परम्परा रही है और यही भगवान धन्वन्तरी की आज्ञा है। बचानेवाले तो ईश्वर हैं, मैं तो केवल निमित्त-मात्र हूँ।"

कुछ दिनों बाद ही गोस्वामी जी बीमार पड़े। सैकड़ों व्यक्ति रोज उनके दर्शनों को आते. लेकिन आयु समाप्त हो चुकी थी, वैद्य जी का देहान्त हो गया। सारे गांव में, विशेषकर हरिजनों और ग़रीबों की बस्ती में शोक छा गया। उनके दाह-कर्म में इतने स्त्री और पुरुष गए जितने आज तक किसी भी व्यकित के नहीं गए थे।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मज़दूर से मालिक

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी नहीं। यही कोई साठ-सत्तर वर्ष पहले की होगी। उस समय खत्री समाज का कलकत्ते के व्यवसाय-वाणिज्य में विशिष्ट स्थान था, बड़े-बड़े अंग्रेजी ऑफिसों की बेनियनशिप इनके पास थी। उस समय तक देश में कारखाने बहुत कम बन पाए थे इसलिए अधिकांश आवश्यक वस्तुएं विदेशों से, खासकर ब्रिटेन से आयात की जाती थीं। १६१०-११ ई० तक भी पालकी-गाड़ी और फिटन-गाड़ियो का युग था। शौक़ीन रईसों के पास दो घोड़ों की गाड़ियाँ तो थीं हीं, परन्तु किसी-किसी के यहाँ ४ घोड़ों की भी थी, जिन्हें चौकड़ी कहा जाता था। कोचवान और साईस की पोशाकें बहुत ही आकर्षक होती थीं। उन वेलर घोड़ों की फिटनों के सामने आज की बड़ी-से-बड़ी मोटरों का भी कोई मुक़ाबला नहीं है।

सेठ निक्कामल घोड़ों की रास थामे अपनी सोने की नक्काशी की हुई सुन्दर फिटन में बैठे हुए जिधर से निकलते तो लोग घर के भीतर से दौड़कर देखने को बरामदे में आ जाते थे। कहा जाता है कि उनके घोड़ों को बेहतरीन गुलाब और केवड़ा-जल से स्नान कराया जाता था और जिधर से उनकी गाड़ी निकलती, वहाँ सुमधुर सुगन्ध का समाँ बँध जाता था। ऐसे थे सेठ निक्कामल खत्री, कार-तारक कम्पनी के बेनियन और सर्वेसर्वा। यद्यपि उनकी वार्षिक आय १-१॥ लाख से ज़्यादा नहीं थी। चूँकि प्रथम महायुद्ध के पहले वस्तुएं बहुत सस्ती थीं और प्रचुर मात्रा में दैनिक आवश्यक चीजें उपलब्ध थीं, इसलिए उस समय आज से पाँच प्रतिशत की आय में भी लोग अच्छी तरह से रह सकते थे।

सेठ बहुत देर से सोकर उठते। उसके बाद ताश-शतरञ्ज से फ़ुरसत मिलने पर जब वे खा-पीकर ऑफिस आते तब तक ३-३॥ बज जाते। वे ऑफिस का काम स्वयं बहुत कम देखते थे। उनके नीचे क़ई दलाल और दूसरे लोग काम करने वाले थे। उनमें से गिरधारीलाल नामक एक १५ वर्ष का मारवाड़ी-लड़का भी था। इसका मासिक वेतन १४) रु० और क़ाम था बाजार के पुर्जा चुका लाने का। इन चौदह रुपयों में ही गिरधारी को अपने छोटे भाई और विधवा माँ का खर्च भी चलाना पड़ता था। यद्यपि अभाववश स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई तो नहीं हो पाई थी फिर भी, वह शुरू से ही परिश्रमी और होशियार होने के अलावा देखने में सुन्दर और सुशील भी था।

पुर्जे चुकाने के सिलसिले में उसे दूकानदारोंके पास प्रायः नित्य ही जाना पड़ता था इसलिए विभिन्न तरह के कपड़ों के दाम भी उसे याद हो गए थे। सेठ के कुछ अपने बँधे हुए दूकानदार थे जिन्हें किसी कारणवश बाज़ार से कुछ सस्ते दर पर कपड़ा दिया जाता था। एक दिन बड़ी नम्रता से उसने सेठ का ध्यान किसी एक सौदे के बारे में आकर्षित किया जो बाजार-भाव से कुछ नीचे में हुआ था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसे बड़ा दुःख हुआ जब सेठ ने शाबाशी देने के बजाय उसे धमका दिया कि उसका काम केवल पुर्जा चुंका लाना है, उसे इन सब बातों से कोई प्रयोजन नहीं रखना चाहिए।

ऑफिस के बड़े साहब का ध्यान गिरधारीलाल के व्यवहार और परिश्रम की ओर गया। वह कभी-कभी उसको अपने कमरे में बुलाकर बातचीत करने लगा। उस समय के अधिकांश अंग्रेज-व्यापारी साधारण हिन्दी और बंगला बोल लेते थे। सेठ को यह मेल-जोल अच्छा नहीं लगा और उसने गिरधारीलाल को साहब से मिलने की मनाही कर दी।

गिरधारी स्वामी-भक्त था और उसे साहब से कुछ आशा-भरोसे का सवाल नहीं था। इसलिए वह उनसे अलग-सा रहने लगा।

कुछ दिनों बाद एक दिन साहब ने उसे बुलाकर नहीं मिलने का कारण पूछा। चूँकि वह किसी प्रकार भी मालिक की शिकायत नहीं करना चाहता था इसलिए उसने सच्ची बात न बताकर दूसरे कामों में फँसे रहने का बहाना कर दिया। इतने में ही सेठ निक्कामल वहाँ आ गए। साहब को इस मामूली 'छोकरे' से हँस-हँस कर बातें करते देखकर उन्हें बहुत ही गुस्सा आया परन्तु उस समय वह कुछ बोले नहीं। दूसरे दिन गिरधारीलाल को घर पर बुला कर एक-सौ रुपया देते हुए सेठ ने उसे नौकरी से अलग कर दिया और कहा कि आइन्दा वह ऑफिस की तरफ न आये।

यद्यपि उस समय एक-सौ रुपया उस ग़रीब युवक के लिए बहुत बड़ी राशि थी परन्तु उसने नम्रतापूर्वक वह रक़म वापस कर दी, क्योंकि बिना-कमाई का पैसा वह नहीं लेना चाहता था। उसने सेठ को विश्वास दिलाया कि मैंने आपका नमक खाया है, मेरे से आपका किसी प्रकार का भी अहित नहीं होगा।

घर आने पर माँ के पास जाकर उसे रुलाई आ गई। उसे नौकरी से क्यों हटाया गया, इसका वह कोई कारण नहीं बता सका। अपने पुत्र की ईमानदारी और मेहनत पर माँ को पूरा भरोसा था। फिर भी उसने यही सीख दी, "बेटा, कुछ-न-कुछ तो गलती हुई ही है, नहीं तो तुम्हें मालिक क्यों छोड़ते ? खैर, अपने शरीर में उनका नमक है इसलिए उनकी बुराई हो, ऐसा काम कभी मत करना।"

सेठ निक्कामल का इतना दबदबा था कि उनके छोड़े हुए व्यक्ति को रखने का किसी को साहस नहीं होता था इसलिए बेचारा युवक रोज इधर-उधर घूम-फिर कर वापस घर आ जाता। जो कुछ पास में था, वह समाप्त हो गया और अन्त में उन लोगों के भूखे रहने की नौबत आ गई

गिरधारीलाल को विश्वास था कि साहब के पास जाने पर कुछ-न-कुछ जरूर मिल जायेगा किन्तु मालिक ने ऑफिस में जाने की मनाही जो कर दी थी !

दस-पन्द्रह दिन बाद साहब ने सेठ से उसके बारे में पूछा तो बीमार होने का बहाना कर दिया गया।

कुछ दिन और बीत जाने पर एक दिन साहब ने अपने बड़े दरबान को बुलाकर कहा कि वे गिरधारीलाल के घर उसे देखने जाएंगे, वह शायद ज्यादा बीमार है। दरबान से पता चला कि वह बीमार तो नहीं है वरन् उसको नौकरी से अलग कर दिया गया है।

उस दिन शनिवार था। सेठ ऑफिस नहीं आए थे क्योंकि वे नियमानुसार शुक्रवार की शाम को चुने हुए मुसाहिबों के साथ अपने लिलआ के बगीचे चले गए और सोमवार सुबह वापस आने को थे।

गिरधारीलाल को बुलाकर जब साहब ने पूछ-ताछ की तो उस स्वामी-भक्त युवक ने सेठ को बचाने के लिए कहा, "मेरे से एक बड़ी गलती हो गई इसलिए उन्होंने मुझे हटा दिया है।"

बात तो उसने कह दी, परन्तु आधा-पेट भूखे छोटे भाई और माँ का ख़्याल आने पर उसे बरबस रुलाई आ गई। प्रयत्न करने पर भी आँसूओं को नहीं रोक सका।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साहब ने कहा, "तुम तो विभिन्न प्रकार के कपड़ों के दाम और व्यापारियों को जानते हो अगर तुम्हें कपड़े बेचने का काम दिया जाय तो कर सकोगे ?" उसने जवाब दिया, "श्रीमान् यह मेरे मालिक का हक़ है। आज यद्यपि मैं उनके यहाँ नहीं हूँ पर मैंने उनका नमक खाया है इसलिए मैं यह काम नहीं करूँगा।"

उस फटेहाल लड़के की इस बात ने साहब को और भी प्रभावित किया और उसने हर प्रकार से उसे समझाया कि इससे सेठ को किसी प्रकार की क्षति नहीं होगी। यह तो नया काम है। उसे कुछ कपड़ों के नमूने देकर और कीमतें बताकर १००० गाँठ तक बेच देने का आदेश दिया।

बनिये का लड़का था, व्यावसायिक बुद्धि प्रचुर-मात्रा में थी ही। वह उन दूकानदारों के पास गया जो इस ऑफिस का माल लेने को तरसते रहते थे। साहब ने जो भाव बताए थे, उससे प्रति गज एक-दो पैसे ऊँचे में सौदे पक्के कर लिए और खरीदारों को ऑफिस में लाकर साहब से रजू करा दिया।

सारे बाजार में चर्चा फैल गई कि कार्रतारक-कम्पनी का कपड़ा गिरधारीलाल ने बेचा है। निक्कामल के व्यापारी घोड़े-गाड़ियाँ लेकर लिलुआ के बगीचे खबर देने पहुँचे।

सेठ मुसाहिबों से घिरे हुए नाच-गाना देखने-सुनने में मस्त थे परन्तु जब इस बात का पता चला तो नशा हिरन हो गया। तबले की थाप और सारंगी की तान बन्द हो गई और उसी समय फिटन दौड़ाते हुए ऑफिस पहुँचे।

वे ऑफिस के पुराने बेनियन थे और उनकी इज्जत तथा धाक भी थी। शायद अपनी गलती मंजूर कर लेने पर साहब मान जाता परन्तु क्रोध में मनुष्य की मति भ्रष्ट हो जाती है।

उन्होंने आते ही बड़े साहब पर रोब गाँठना शुरू किया परन्तु साहब झगड़ा बढ़ाना नहीं चाहता था। उसने कहा—"एक महीने से यह माल बिक नहीं रहा था और जिन दामों में हम बेचना चाहते थे, उससे भी चार-पाँच पाई प्रति गज ऊँचा बिका है। गिरधारीलाल की तो केवल दलाली ही रहेगी, बाकी बेनियनशिप-कमीशन तो आपका ही है।"

साहब की नम्रता को कमजोरी समझकर सेठ निक्कामल ने विलायत के बड़े साहबों से अपनी मित्रता और प्रभाव की धौंस जताते हुए कहा कि दलाल चुनना मेरा काम है न कि ऑफिस का इसलिए इस सौदे की जिम्मेदारी मैं नहीं लूँगा। गिरधारीलाल के पास तो एक कानी कौड़ी भी नहीं है कि वह आपको जमानत के रूप में दे सके। मैं अब आपकी ऑफिस से किसी प्रकार का सम्बन्ध भी नहीं रखना चाहता। उसी समय सेठ ने बेनियनशिप से इस्तीफा लिखकर दे दिया।

सेठ को पूरा भरोसा था कि साहब दब जायेगा और मान-मनुहार करके इस्तीफा वापस कर देगा परन्तु जब टाइपिस्ट को बुलाकर इस्तीफे की मजूरी लिखा दी गयी तो निक्कामल सेठ की आँखों के आगे अँधेरा छा गया क्योंकि उनकी शान-शौक़त और मौज़-बहार तो सब इस ऑफिस के भरोसे ही थी ! उन्होंने साहब से ग़लती और गुस्से के लिए क्षमा भी माँगी। परन्तु बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी और अब किसी प्रकार का समझौता सम्भव नहीं था।

कलकत्ते की ऑफिस से बिना रुपये जमा लिए ही गिरधारीलाल के लिए बेनियनशिप की सिफारिश लन्दन ऑफिस को की गयी। इधर सेठ निक्कामल ने भी पूरा ज़ोर लगाया। अपने तीस वर्षों के सम्बन्ध और गिरधारीलाल की नाजुक आर्थिक स्थिति और नातजुर्बेकारी के बारे में बड़े-बड़े तार दिए। दूसरे व्यापारियों से भी तार दिलाए परन्तु बात बड़े साहब की ही रही।

अब कार्रतारक-कम्पनी के बेनियन बने सेठ गिरधारीलाल मटरूमल; कल के १४) महीने में पुर्जी चुकाने की नौकरी करने वाले ! बहुत वर्षों तक दोनों भाइयों ने ईमानदारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और कड़ी मेहनत से काम किया। ऑफ़िस के काम की भी उनके समय में अच्छी तरक्क़ी हुई। उनके अपने लाभ के सिवा व्यापारियों को भी उनके द्वारा अच्छा मुनाफ़ा होता रहा।

धनाढ्य हो जाने पर भी उन्होंने अपने रहन-सहन में सादगी रखी और ग़रीबी के दिनों को नहीं भूले। जो भी कोई ग़रीब युवक उनके पास आया, उसे हर प्रकार की सहायता दी। कुछ वयोवृद्ध लोग अभी तक हैं जिन्होंने गिरधारीलाल को देखा है। हरिसन-रोड में उनकी धर्मशाला है। राजस्थान में भी कुआँ, तालाब और धर्मशाला हैं। गरीब विद्यार्थियों के लिए अन्नक्षेत्र भी शायद कुछ समय पहले तक था। ऐसा कहा जाता है कि गरीब लड़कियों की तो गुप्त-रूप से उन्होंने बीसियों शादियाँ कराई थीं।

आज न तो गिरधारीलाल हैं और न कार तारक-कम्पनी का साहब। परन्तु उनके स्मारक और भलाई की बातें लोगों के मन में अभी तक बसी हुई हैं और दूसरे व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं।

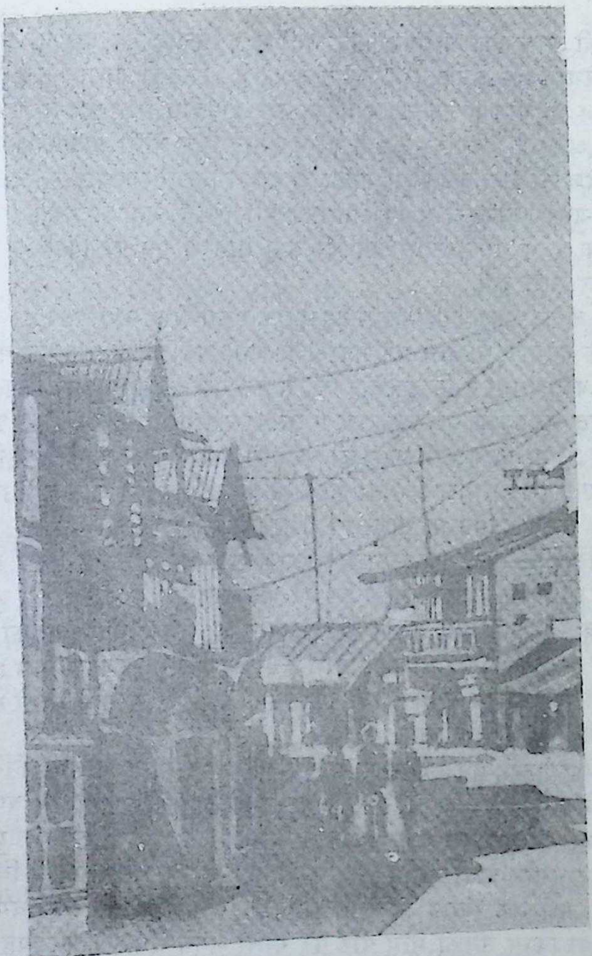

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बलिदान की परम्परा

राजस्थान की भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है। चित्तौड़ का यश तो सर्वविदित है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत में अनेक वीर पैदा होते रहे हैं जिनकी गाथाएं उन क्षेत्रों के चारण गद्‌गद् होकर आज भी गाते हैं। बाबा रामदेव, वीर दुर्गादास और प्रण-वीर पाब्रजी राठौर का नाम आज भी अमर है। सन् १९६२ में मेजर शैतान सिंह चीनी आक्रमणकारियों से बहुत बहादुरी के साथ, देश की रक्षा करते हुए शहीद हो गये थे। उसी मरुधारा की 'ढाणियों' की एक छोटी-सी राजपूत-बस्ती, वीरपुरी में एक साधारण परिवार है, जहां की यह परम्परा चली आ रही है कि प्रत्येक पुरुष तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र पाने से पूर्व ही किसी-न-किसी युद्ध में वीरगति प्राप्त कर लेता है।

इस परिवार को जोधपुर रियासत से सिरोपाव सोना और नगारे की इज्जत मिली हुई थी। यहाँ तक कि दरबार में जाने पर महाराजा स्वयं खड़े होकर परिवार के सरदार का स्वागत करते थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वजों में कई ऐसे अद्‌भुत जुझार पैदा हुए जो सिर कट जाने के पश्चात् भी काफी देर तक हाथ में तलवार लिए युद्ध करते रहे। इसी घराने के ठाकुर हीर सिंह ने प्रथम महायुद्ध में, फ्रांस की रणभूमि में जर्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। स्वयं घायल होकर भी एक दूसरे घायल सिपाही को कन्धे पर डालकर ले जाते हुए उसको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाते समय दुश्मन की गोलियों से उनका प्राणान्त हो गया।

ठाकुर हीर सिंह की मृत्यु का समाचार, उनकी विधवा माँ और पत्नी को मिला तो शोकाकुल माता ने सर्वप्रथम यह बात पूछी कि मेरे पुत्र के शरीर में गोली किस जगह पर लगी, यद्यपि उसको यह पता चल गया था कि किस प्रकार वह जर्मन सिपाहियों को मौत के घाट उतारता रहा और अन्त में घायल साथी के प्राण बचाते हुए धोखे से मारा गया। फिर भी वह अपने शेष जीवन में इसी संताप से ग्रस्त रही कि उसका पुत्र पीठ में लगी गोली से मारा गया, जो उस परिवार के लिए कलंक था।

विधवा-माँ और पत्नी, मृत ठाकुर के मासूम बच्चे पर सारी आशाएँ केन्द्रित कर उसे वीरता-भरी कहानियाँ सुनाया करती थीं। जब उसकी आयु तेईस-चौबीस वर्ष की हुई तो द्वितीय विश्व-महायुद्ध का प्रारम्भ हो चुका था। जोधपुर नरेश के बुलाने पर युवक भूरसिंह परिवार की परम्परानुसार दादी, माता और पत्नी के पास विदा लेने गया। विदा करते हुए माँ ने कहा, "बेटा, मुझे एक संताप आज भी खाए जा रहा है, यद्यपि तेरे स्वर्गीय पिता को यथेष्ट यश मिला था किन्तु उनकी मृत्यु पीठ पर गोली लगने से हुई। अतः यह ध्यान रखना कि इसकी पुनरावृत्ति न हो। पित्रेश्वरों के आशीर्वाद से तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो, मेरी कोख व परिवार के नाम को उज्ज्वल करना।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

युवक भूरसिंह ने अपने पिता से भी ज़्यादा यश प्राप्त किया। सैंकड़ों दुश्मनों को इटली के रणक्षेत्र में मौत के घाट उतार कर वह वीरगति को प्राप्त हुआ। गोलियों से छलनी हुई लाश को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाकर शत्रु-सेना के अफ़सरों ने भी सलामी दी और सम्मानपूर्वक उसे दफना दिया गया।

ज़ब भूरसिंह घर से चला था तो पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्यु के समय बालक पुत्र की आयु केवल दो वर्ष की थी। सरकारी पेंशन से किसी प्रकार घर का निर्वाह होता रहा। वैसे उनकी थोड़ी-सी जमीन भी थी किन्तु परिवार में कोई पुरुष सदस्य खेती को देखने वाला था नहीं अतः जो कुछ बँटाई से प्राप्त होता उससे गुजारे में मदद मिल जाती थी।

बचपन से ही बालक बड़ा हृष्ट-पुष्ट था इसलिए उसका नाम रखा गया जोरावरसिंह! दस साल की उम्र में जोरावर सिंह में इतनी ताकत व हिम्मत थी कि स्कूल में अपने से दुगुनी उम्र के लड़कों को पछाड़ दिया करता था फलतः आसपास के गाँवों में कई प्रकार की किंवदन्तियाँ उसके बल के बारे में प्रचलित हो गईं। उन बातों को सुनकर विधवा-माँ का हृदय सदैव भयभीत रहता था। वह पुत्र को सैनिक स्कूल में भर्ती न करवा कर घर पर ही दूसरे प्रकार की शिक्षा दिलाना चाहती थी। परन्तु जोरावर सिंह, माँ से बिना कुछ कहे एक दिन छुपकर घर से चल दिया और सैनिक-स्कूल में भर्ती हो गया। स्कूल से उसने अपनी विधवा माँ को पत्र लिखा, "………यद्यपि देश स्वतन्त्र हो गया है पर हमारी उत्तरी सीमा पर दुश्मन चढ़ आया है। इस हालत में भारत-माता को किसी भी समय वीरों के बलिदान की आवश्यकता हो सकती है और यदि उसमें सर्वप्रथम हमारे परिवार का योग न रहा तो आपकी कोख से मेरा जन्म लेना ही व्यर्थ होगा।" पत्र पढ़ते समय माँ की दाहिनी आँख फड़क रही थी फिर भी उसने आशीर्वाद सहित जोरावर को सैनिक शिक्षा की मंजूरी दे दी।

अक्टूबर-नवम्बर १९६२ का समय था। चीन का आक्रमण हुआ। जोरावर सिंह सेना की सर्वोच्च परीक्षा में सफलता से उत्तीर्ण होकर निकला था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसे लड़ाई में जाने का अवसर मिले परन्तु यह इच्छा पूर्ण हो, इसके पहले ही युद्ध-विराम हो गया।

कुछ अर्से बाद पाकिस्तान ने हमारे देश पर हमला किया। काश्मीर पंजाब व राजस्थान के बाड़मेर की सीमाओं पर हमलावरों को रोकने के लिए जिन फौजों को भेजा गया था, उनमें एक टुकड़ी नायक था युवक जोरावर सिंह। मोर्चे पर जाने से पूर्व वह अपने गाँव, माँ से मिलने आया।

विदा के समय माँ को 'असगुन' हो रहे थे। बहुत यत्न करने पर भी वह अपने आँसू न रोक सकी। उसने अपने पुत्र को छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया और इतना ही कहा, "बेटा! मुझ से भी बड़ी तुम्हारी भारत-माँ है, उस पर आज दुश्मनों ने हमला किया है। कुलदेवता तुम्हें विजयी बनायेंगे परन्तु याद रखना अगर युद्ध में वीरगति प्राप्त हो तो दुश्मन की गोली पीठ में न लगे।"

मरुभूमि-बाड़मेर के सूने इलाक़े में सिर्फ, सात अन्य जवानों के साथ इस बहादुर रण-बाँकुरे को एक सीमा चौकी की रक्षा का भार सौंपा गया। युद्ध का अधिक जोर काश्मीर और पंजाब की सीमा पर ही था अतः राजस्थान के इस वीरान इलाक़े में थोड़े-से सिपाहियों को साधारण हथियार व गोलियाँ देकर ही तैनात किया गया था।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह में एक दिन अचानक ही इस चौकी पर सत्तर-अस्सी पाकिस्तानी सिपाहियों ने गोला-बारूद और हथियारों से लैस होकर हमला बोल दिया। दुश्मन के बहुत से सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए किन्तु इस तरफ भी केवल तीन ही जवान शेष बचे। वे बुरी तरह घायल हो चुके थे तथा उनकी गोलियाँ भी समाप्त हो गई थीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज़ोरावर सिंह घायल अवस्था में ही दो-बार मरे हुए दुश्मनों के पास जाकर हथियार व गोला-बारूद लाने में सफल हुआ, परन्तु, तीसरी बार आगे बढ़ते ही सामने से शत्रु-दल ने उस पर एक साथ गोलियों की बौछार शुरू कर दी और वह बेहोश होकर गिर गया। कुछ समय पश्चात् दूसरी चौकी के हमारे सिपाही वहाँ पहुँच गए और उनको देखकर बुज़दिल पाकिस्तानी हमलावर भाग गए। इस समय तक ज़ोरावर सिंह को भी कुछ होश आ चुका था परन्तु उसके शरीर से इतना खून निकल गया कि वह अन्तिम साँसें ले रहा था।

मरते समय उसने अपने साथियों से कहा, "गोलियाँ सीने में लगी हैं......... । अगर सम्भव हो तो मेरी लाश को मेरे गाँव भेज देना, क्योंकि मेरी माँ ने कहा था .... । "मैं चाहता हूँ कि मेरी माँ देखे कि मैंने कुल की परम्परा का पूर्णतया पालन किया है .... ।" इतना कहने के पश्चात् उसका शरीर शान्त हो गया। पास में खड़े उसके साथी सिपाहियों ने देश के प्रति कुर्बान हुए उस शहीद को सैनिक सलामी दी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्माभिमान

विशेसर बहुत वर्षों बाद बम्बई से राजस्थान अपने गांव आया था। साथ में पत्नी और बच्चा भी था। दो-तीन नौकर-दाई भी थे। बहुत बड़ा कारबार छोड़कर १०-१५ दिनों के लिए आता तो नहीं परन्तु बच्चा, वर्षों बाद हुआ था। 'उसके मुडंन की मनौती थी, सालासर के हनुमान जी की। पत्नी बहुत बार याद दिला चुकी थी, इसीलिए आना पड़ा। गांव में उसके मामा-मामी थे जिन्होंने उसे पाल-पोस कर और पढ़ा-लिखा कर होशियार किया था अतएव अपनी सूनी हवेली में न रुक कर ननिहाल में ही ठहरना उचित समझा।

बम्बई के अपने कारबार में उसे अभूतपूर्व सफलता मिली इसीलिए पिछले पन्द्रह वर्षों से रहन-सहन एकदम बदल गया था। वहाँ के बंगले मे एयर-कन्डीशन्ड, बेहतरीन फर्नीचर, बड़ी-बड़ी मोटरें और अन्य सब प्रकार की सुख-सुविधाएं थीं।

देश में गल्ले की छोटी सी दुकान, मामा की थी। गरीबी तो नहीं थी, फिर भी साधारण सा घर था। मामी चूल्हे-चौके से लेकर घर को झाड़ने-बुहारने तक के सब काम हाथ से करती थी। विशेसर और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसलिए एक कमरे को अच्छी तरह सँवार दिया था। दो-एक निवार के पलंग डाल दिए आगरे की एक दरी बिछा दी।

सुबह मामी ने चाय-नाश्ता दिया तो बिशेसर ने देखा कि चीनी-मिट्टी के बर्तनों की जगह कांसे के बर्तन हैं। खैर, वह मामी का बहुत अदब रखता था, कुछ नहीं बोला परन्तु उसकी पत्नी ने तो कह ही दिया कि मामाजी, इस प्रकार के बर्तनों में तो हमारे यहां दाई-नौकर भी चाय नहीं पीते। मामी के मन पर चोट तो लगी पर कुछ बोली नहीं।

दूसरे दिन पास के शहर से बिशेसर के दो मित्र मिलने आए। मामा भी वहीं बैठे थे, परन्तु वे देहाती वेश-भूषा में थे इसलिए मित्रों से इनका परिचय कराना उचित नहीं समझा। उसी दिन वह बाज़ार से स्टेनलेस-स्टील के बर्तन, अच्छे किस्म का एक टी सेट और बहुत से सामान खरीद लाया। मामी के पूछने पर कहा कि उसके दोनों मित्र बड़े आदमी हैं वे भला कांसे के बर्तनों में भोजन कैसे करेंगे?

मामी बड़े घर की बेटी थी। उसके पीहर में स्टील के सिवा चांदी के बर्तन भी थे किन्तु अपने घर में हैसियत और आय के अनुरूप सम्हाल कर खर्च करती थी, पर उसमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उसे बहू का तौर-तरीका अच्छा नहीं लगा। उसकी बातचीत में धन के अभिमान की स्पष्ट झलक दिखाई दी. फिर भी, मामी ने सोचा कि दो-चार दिनों की ही तो बात है अतः चुपचाप सह लेना ही उचित है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक दिन बिशेसर और उसकी पत्नी बाते कर रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि मामी पास ही रसोई में हैं। पत्नी कह रही थी, "अच्छा किया जो आपने तीन-चार सौ इन सारी चीजों पर खर्च कर दिए। हमारे ऊपर इनका भी तो खर्च हो जायेगा। देखती हूं कि मामा जी की हालत अच्छी नहीं है। स्वयं तो वे शायद ही कुछ कहें।"

थोड़े दिनों बाद ही वे बम्बई के लिए रवाना हुए। विशेसर ने औपचारिकता के तौर पर मामी से कहा कि मुझे यहां आकर बहुत अच्छा लगा, बचपन के दिन याद आ गए। बहुत बार आने की सोचता रहा परन्तु काम के झंझटों से आ नहीं सका। एक बार तो उसके जी में आया, मामाजी को बता दूँ कि उनके लिए स्टील के अच्छे बर्तन और टीसेट छोड़कर जा रहा हूँ परन्तु फिर सोचा कि दो-चार दिन बाद उन्हें स्वयं पता चल ही जायेगा।

ट्रेन के पहले दर्जे के डिब्बे में सारे सामान रख दिए गए। रास्ते के लिए खाने-पीने की अनेक तरह की सामग्री मामी ने दी और विदा के समय पुनः आने का आग्रह भी किया परन्तु दो-तीन दिनों से उसके चेहरे पर एक संजीदगी-सी थी जो विशेसर से छिपी नहीं रही।

अगले स्टेशन पर जब खाने-पीने के सामान की टोकरी खोली गयी तो देखा कि सारे बर्तन, टीसेट तथा जो दूसरे सामान जिन्हें वे खरीद लाए थे, सहेज कर रखे हुए हैं। साथ में, एक पुर्जा था इस पर लिखा था कि हम आप लोगों की तरह धनवान नहीं हैं, परन्तु घर आए मेहमानों से रहने-खाने के बदले में कुछ कीमत लेनी पड़े, ऐसे ग़रीब भी नहीं। पति-पत्नी के चेहरे शर्म से झुक गए। वे मन-ही-मन अपने को छोटा, बहुत छोटा अनुभव कर रहे थे।

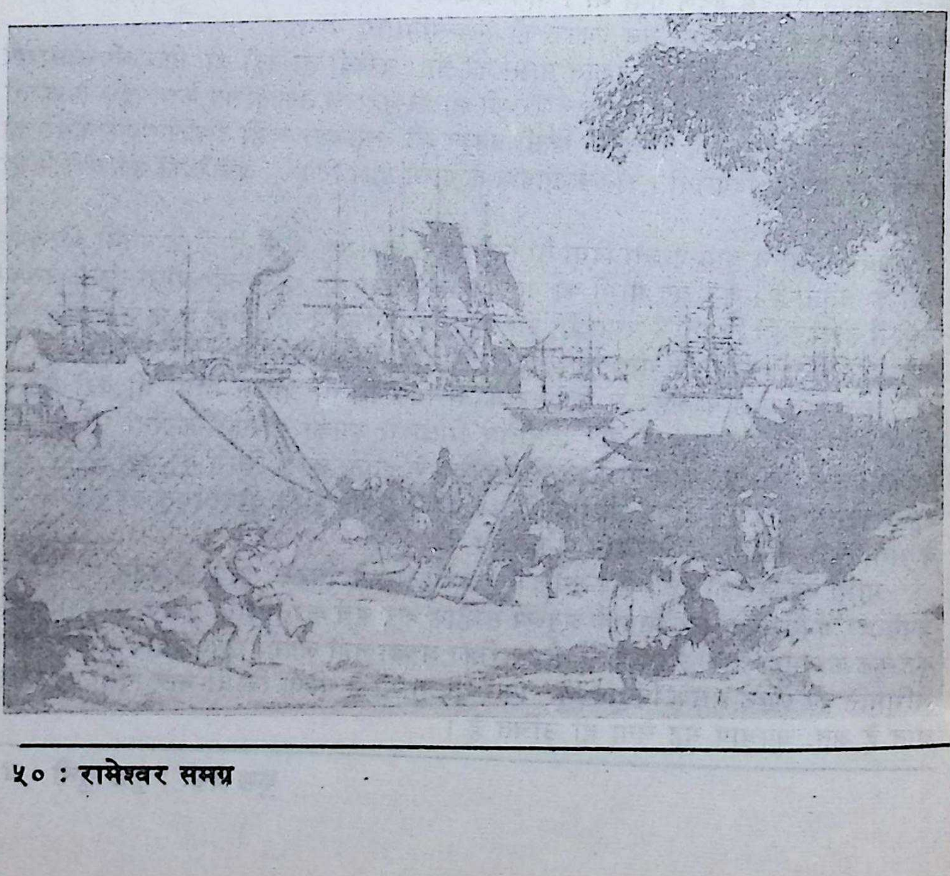

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमीद खां भाटी

प्रत्येक गांव या कस्बे में कभी-कभी ऐसे व्यक्ति हो जाते हैं जिनको बहुत समय तक लोग याद किया करते हैं और उनकी अमिट छाप जनमानस पर अंकित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्य केवल धनी अथवा विद्वान घरानों में ही पैदा होते हैं, ऐसी बात नहीं है।

बीकानेर के उत्तर में पूगल नाम का इलाक़ा है। कहा जाता है, किसी समय में यहां पद्मिनी स्त्रियां होती थीं। जो भी हो आजकल तो यहां वीरान, रेतीली बंजर-भूमि है। पीने के पानी की कमी रहती है, इसलिए गांव भी छोटे और दूर-दूर हैं।

यहां के बासिन्दों का मुख्य धन्धा भेड़ पालना है। थोड़े से ब्राह्मण और बनिये हैं जो लेन-देन या दूकानदारी का काम करते हैं। उनके सिवा यहां मुसलमान गूजरों की पर्याप्त संख्या है जिनके पास बेहतरीन किस्म की गाएं रहती हैं। वे इनका दूध-घी बेचकर अपना निर्वाह करते हैं। कहावत है— 'सेवा से मेवा मिलता है' शायद इसीलिए इनकी गाएं दूध ज़्यादा देती हैं और अच्छी नस्ल के बछड़े-छड़ियां भी।

सन् १९५१ में इस तरफ भयंकर अकाल पड़ा था। कुओं में पानी सूख गया। घरों में जो थोड़ा-बहुत घास और चारा था, उससे उस वर्ष किसी प्रकार पशुओं की जान बची। जब दूसरे वर्ष भी वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ गया तो यहां लोगों की हिम्मत टूट गई।

कलकत्ते की मारवाड़ी-रिलीफ सोसाइटी ने दोनों वर्ष ही वहां राहत का काम किया था। मैं भी दूसरे वर्ष कुछ समय तक उस सिलसिले में वहां रहा। हम देखते कि नित्य-प्रति हज़ारों स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने ढोरों को लिए पैदल कोटा, बांरा और मालवा की तरफ जाते रहते थे। ४-५ महीनों के बाद वापस आने की संभावना रहती. इसलिए घर का सारा सामान भी गाय और बैलों पर लदा हुआ रहता। घर छोड़कर जाने में दुःख होना स्वाभाविक है और फिर अभावों से घिरी हुई हालत में। बीहड़ लम्बा रास्ता, वैशाख की गर्मी, इसलिए सबके चेहरों पर दुःख एवं थकान की स्पष्ट छाया नज़र आती थी। रास्ता काटने के लिए स्त्रियां भजन गाती हुई चलतीं। उन लोगों से पूछने पर प्रायः एक सा-ही उत्तर देते कि पानी, अनाज, घास और चारा मिलता नहीं है, क्या तो हम खाएं और क्या इन पशुओं को खिलाएं ?

हमें पूंगल के गांवों के सीमान्त पर गाय-बैलों के बहुत से कंकाल और लाशें देखने को मिलीं। पता चला कि बूढ़े बैलों और गायों को उनके मालिक जंगलों में छोड़ गए। यहां भूख, प्यास और गर्मी से इनके प्राण निकल गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कई बार तो सिसकती हुई गाए भी दिखाई दीं। उनके लिए यथाशक्ति चार-पानी की व्यवस्था की गई परन्तु समस्या इतनी कठिन थी कि यह बन्दोबस्त बहुत थोड़े पैमाने पर ही हो सका। यह भी पता चला कि अच्छी हालत के लोगों ने भी पानी और चारे की कमी के कारण बेकाम गाय-बैलों को मरने के लिए जंगल में छोड़ दिया है।

ज्यादातर घरों में इस प्रकार की वारदातें हो चुकी थीं इसलिए आपस की निन्दा-स्तुति की गुंजाइश भी नहीं थीं।

यहीं के किसी गांव में एक दिन दोपहर के समय पहुंचा। धरती गर्मी से धू-धू करके जल रही थी। अंगारों के समान तपती हुई रेत की आंधी चल रही थी। तालाबों और कुओं में पानी क़भी का सूख गया था। लोग १०-१५ मील की दूरी से पानी लाकर प्यास बुझाते। अधिकांश लोग गांव-इलाका छोड़कर चले गए थे, कुछ ब्राह्मण और बनिये बचे हुए थे। यहीं मैंने हमीद खां भाटी के बारे में सुना और उसके घर जाकर मिला।

घर कच्चा था पर साफ-सुथरा और गोबर से लिपा-पुता। हमीद खां की उम्र ६५-७० वर्ष के लगभग थी। शरीर का ढांचा देखकर पता लगा कि किसी समय काफी बलिष्ठ रहा होगा। अब तो हड्डियां निकल आई थी, चेहरे पर गहरी उदासी छाई हुई थी।

दुआ-सलाम के बाद मैंने पूछा "खां साहब गांव के प्रायः सारे लोग चले गए फिर आप क्यों यहां इस तरह की किल्लत में अकेले रह रहे हैं?"

वह कुछ देर तक तो मेरी तरफ फटी-फटी आंखों से देखता रहा फिर कहने लगा, "अल्लाह मालिक है, उसका ही भरोसा है। कभी-न-कभी तो वर्षा होगी ही। बेटे और बहुएं, बच्चों और धन (यहां गाय-बैल, ऊंट आदि को धन कहते हैं) को लेकर एक महीने पहले ही मालवा चले गये हैं। मुझे भी साथ ले जाने की बहुत ज़िद्द करते रहे पर भला आप ही बताइये, अपनी धौली और भूरी, दोनों को छोड़कर कैसे जाऊं? इन दोनों से तो एक कोस भी नहीं चला जाता। (धौली और भूरी इसकी बूढ़ी गाएं थी जिनमें एक लंगड़ी और दूसरी बीमार थी)।

"आज इनकी इस प्रकार की हालत हो गई है नहीं तो दोनों ने न जाने कितने नाहर-भेंड़ियों से मुठभेड़ ली है। आस-पास में, इनके बराबर दूध भी गांव में किसी गाय के नहीं था। ३-४ सेर तो बछड़े ही पी जाते, फिर भी १०-१२ सेर प्रत्येक का हमारे लिए बच जाता।"

"ये दोनों मेरे घर की ही बेटिया हैं, जिस वर्ष मेरे छोटे लड़के फत्ते का जन्म हुआ था, उसके लगभग ही ये दोनों जन्मीं थीं। बीस वर्ष तक हम लोग इनका दूध पीते रहे। अब आप ही बताइये बुढ़ापे में इन्हें कहां निकाल दूँ? भला कोई अपनी बहन-बेटी को घर से थोड़े ही निकाल देता है?" बातें करते हुए उसकी आवाज रुआंसी हो गई थी। देखा, उसकी धुंधली आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे हैं।

बातें तो और भी करना चाहता था परन्तु इतने में सुनाई दिया कि बाहर के सहन में धौली और भूरी रम्भा रही हैं, शायद भूखी या प्यासी होंगी। हमीद खां उठकर बाहर चला गया।

गांव के मुखिया पं० बंशीधर के साथ ८-१० व्यक्ति रात में मिलने को आए। उनके कहने के अनुसार ५० वर्ष में ऐसा भयंकर अकाल नहीं पड़ा था। उन्होंने कहा, "हमीद खां भी ज़िद्दी कम नहीं। अपने लिए दो जून खाना तक नहीं जुटा पाता पर इन दोनों गायों पर जान देता है। दिन में धूप बहुत हो जाती है इसलिए रात को दो बजे उठकर ५ मील दूर स्थित तालाब से दोनों के लिए एक मटका पानी लाता है। घरवाले जो अनाज छोड़कर गए थे, उसमें से बहुत-सा बेचकर इनके लिए चारा और भूसा खरीद लाया। जब वह चुक गया तो अपना मकान ऊंचे ब्याज़ पर गिरवी रखकर और चारा लिया है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गर्मी के मौसम में भी इस तरफ रातें ठंडी हो जाती हैं परन्तु मुझे नींद नहीं आ रही थी। सोच रहा था—क्या वास्तव में ही हमीद खां मूर्ख और ज़िद्दी है ? बातचीत से तो ऐसा नहीं लग रहा था। हां, एक बात समझ में नहीं आई, वह तो मुसलमान है जिसके लिए गाय 'माता' नहीं है फिर क्यों इन दो बेकाम गायों के पीछे नाना प्रकार के कष्ट सहकर, तिल-तिल करके स्वयं मृत्यु की तरफ अग्रसर हो रहा है ? अपना एक-मात्र मकान इनके चारे-पाले के लिए गिरवी रख दिया है। थोड़े दिनों बाद मूल और ब्याज बढ़कर इतना होगा कि चुकाना असम्भव हो जायेगा। जब उसके बाल-बच्चे मालवा से थके-हारे वापस आएंगे तो उन्हें शायद अपना पैतृक घर छोड़ देना पड़ेगा।

जाने से पहले एक बार फिर हमीद खां से मिलने की इच्छा हुई। वहुत सुबह वहा जाकर देखा कि वह धौली और भूरी के शरीर पर तन्मय होकर हाथ फेर रहा है और वे दोनों बड़ी ही करुण दृष्टि से उसकी तरफ देख रही हैं, शायद कह रही होंगी कि गाव छोड़कर सब चले गए फिर भी तुम इस प्रकार भूखे-प्यासे रहकर मृत्यु के मुख में जा रहे हो हमें अपने भाग्य पर छोडकर बच्चों के पास चले जाओ।

सोसाइटी की तरफ से थोड़ी-बहुत व्यवस्था कर मन-ही-मन उस अपढ़ मुसलमान को प्रणाम करके भारी मन से उस गांव से रवाना हुआ। १५ वर्ष बाद भी हमीद खां का वह ग़मगीन चेहरा आज तक भुला नहीं पाया हूं।

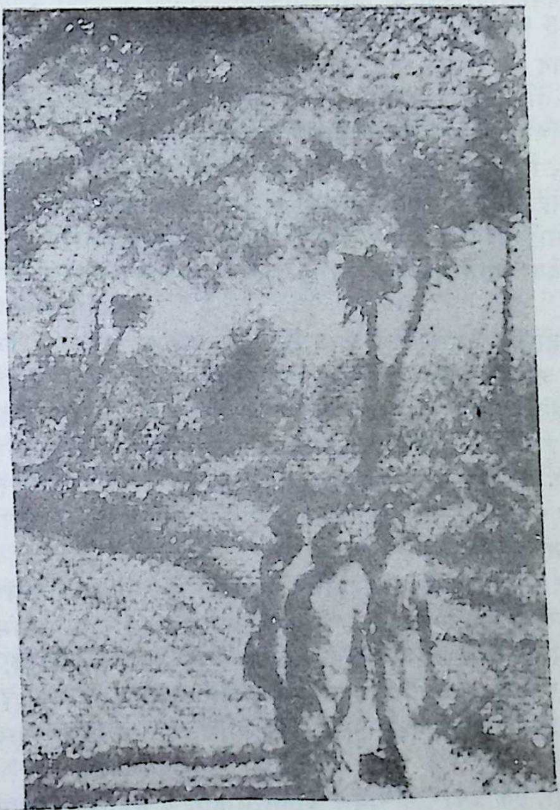

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लक्ष्मी दरोगी

श्रीमती स्टो की विश्व प्रसिद्ध कृति 'अंकल टाम्स कैबिन' का हिन्दी अनुवाद 'टाम काका की कुटिया' बहुत वर्षों पहले पढ़ा था, उस पुस्तक में अमेरिका के हब्शी गुलामों का कुछ ऐसा हृदयद्रावक वर्णन है कि ४० वर्ष बाद भी वह मेरे मानस-पटल पर अंकित है।

बहुत वर्षों बाद अगर स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन और डचों द्वारा हब्शी-गुलामों और दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ किए गए अत्याचारों के वर्णन नहीं पढ़ लेता तो ऐसा लगता कि शायद मिसेज स्टो ने अतिशयोक्ति से काम लिया है।

वैसे मौर्य-काल में हमारे यहां भी दासियों के बारे में वर्णन मिलते हैं, किन्तु भारत में यह प्रथा ज्यादा दिन नहीं रही और यहां गुलामों के साथ व्यवहार भी यूरोप और अमेरिका के सदृश नृशंसतापूर्ण नहीं था। वाल्मीकि रामायण में भी राजा जनक द्वारा सीताजी के दहेज में दास-दासियों का दिया जाना लिखा है परन्तु ये सब गुलामों की कोटि में ही थे या नहीं, यह विवादास्पद है।

मुगल बादशाहों द्वारा आए-दिन अपमानित और लांछित राजपूत राजाओं को अपना आक्रोश निकालने और ऐय्याशी के लिए कोई साधन चाहिए था, इसी दौर में सत्रहवीं शताब्दी में दूसरी अनेक बुराइयों के साथ-साथ राजस्थान के राज-घरानों में दारोग़ा या गोला-प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में राजाओं के अलावा छोटे-छोटे सरदारों के यहां भी दस-बीस गोले-गोलियां रहते थे। इनके पुरुषों का काम होता था, ठाकुर या कंवर-साहब की चाकरी करना और स्त्रियों ठकुरानी या कुंवरानी का साज-श्रृंगार करने के सिवा पलंग-सेवा।

बहुत-से पाठक जो राजस्थानी सामन्तों की प्रथाओं से अनभिज्ञ हैं, पलंग-सेवा का अर्थ नहीं समझ पायेंगे। राजा या ठाकुर जब रानी या कृपापात्री रखेल के साथ काम-क्रीड़ा में रहते तो उस समय पलंग के इर्द-गिर्द २-४ गोलियां शराब के गिलास, तौलिये, रूमाल अथवा केसरिया दूध आदि पौष्टिक पदार्थ लेकर खड़ी रहती थीं। कभी-कभी, मन हो जाने पर रानी को अलग हटाकर इन गोलियों में से किसी एक या दो को पलंग पर बुला लिया जाता था।

गोले और गोली, एक प्रकार से रावले के गुलाम होते थे। इनकी सन्तानों पर राजाओं और ठाकुरों का पूर्ण अधिकार था। अधिकांश तो उनकी अपनी नाजायज सन्तति ही होती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुवरानी के विवाह में अपनी हैसियत के मुताबिक ५ से लेकर १०० तक अविवाहित गोलियों को दहेज में दिया जाता था।

इनका नाम-मात्र का विवाह वर-पक्ष के गोलों से कर दिया जाता परन्तु उन सबको रहना पड़ता था कुँवर-साहब या उनके कृपापात्र मुसाहिबों की रखैलों के रूप में।

आकृति-विशेषज्ञों का कहना है कि वर्ण-संकर सन्तानें ज्यादा सुन्दर और कुशाग्रबुद्धि की होती हैं। शायद, इसीलिए ये गोले और गोलियाँ राजकुमार और राजकुमारियों से अधिक आकर्षक होते थे। इनमें से बहुत से रावले की सुविधाओं के कारण अच्छी शिक्षा भी प्राप्त कर लेते।

मेरे राजनैतिक क्षेत्र के एक जागीरदार के गाँव में एक दारोगा कांग्रेस-कार्यकर्ता है, बहुत ही परिश्रमी और सूझ-बूझ वाला, एक प्राईमरी स्कूल में अध्यापक है। मासिक वेतन ११०) रुपया। हिन्दी-साहित्य में उसकी रुचि है। अध्ययन भी पर्याप्त है इसलिए समय निकाल कर आपस में हम कुछ साहित्य-चर्चा कर लेते थे

उन दिनों शक्ल-सूरत से वह किसी आंग्ल-राजकुमार-सा लगता था। शिक्षा साधारण सी थी, परन्तु स्मृति और प्रतिभा इतनी थी कि अगर मौका मिलता तो शायद बडा विद्वान होता।

पहली बार देखने पर ही उसके प्रति मेरा आकर्षित हो जाना स्वाभाविक था। जान-पहचान बढ़ जाने पर एक दिन उसने मुझे अपने घर भोजन पर बुलाया। दही छाछ की राबड़ी, शुद्ध घी और शक्कर के साथ बाजरे की रोटी और कैर-सांगर का साग। आज भी वह सुस्वादु भोजन याद आता है।

छोटे-से संस्कृत परिवार में मां पति-पत्नी और एक बच्चा था। वैसे, पत्नी भी सुन्दरी थी परन्तु मां तो उस प्रौढ़ अवस्था में भी अप्सरा-सी लगती थी। उसकी बातचीत और तौर-तरीकों में राज-घराने की तहज़ीब स्पष्ट थी।

पता नहीं क्यों, इन लोगों के प्रति सहानुभूति बढ़ती गई। जब भी गांव में जाता, इनसे मिलता। शायद ही कभी उन्होंने अपने किसी कार्य के लिए मुझसे कहा होगा। खेती और स्कूल की शिक्षकी से जो आय होती, उसी में अपना खर्च चला लेते।

असेम्बली के चुनाव में उस क्षेत्र से मेरा कांग्रेस-मनोनीत साथी बुरी तरह हार गया और वहां का जागीरदार जीत गया। वैसे बहुत प्रकार की गन्दी बातें उस ठाकुर के बारे में प्रचलित थीं परन्तु न जाने क्यों लोगों ने उसे इतने अधिक मत दिए।

वहां इस बात की आम-चर्चा थी कि मेरे मित्र की मां उस ठाकुर के पिता के गढ़ में थी। वह पर्दायत तो नहीं हो पायी परन्तु कुछ वर्षों तक बड़े ठाकुर की उस पर विशेष कृपा रही थी। ठाकुर की और मेरे मित्र की शक्ल-सूरत इतनी मिलती-जुलती थी कि वहां के लोगों में धारणा थी कि वह वर्तमान ठाकुर के पिता का औरस-पुत्र है।

चुनाव के नतीजे के बाद एक दिन मैं उनके घर गया हुआ था। ठाकुर के बारे में बातें हो रही थीं। मैंने देखा कि वृद्धा की आंखें गीली हो गई हैं। शायद, उसे बीते जमाने की बातें याद आ गईं।

वैसे, वह मितभाषिणी थी, परन्तु उस दिन शायद बहुत मुखर हो गई, संकोच भी नही रहा। उसने जो आत्मकथा सुनाई उसका संक्षेप यह है—

"मेरी मां एक बड़े जागीरदार की उपपत्नी थी। मैं अपनी मां की इकलौती संतान थी। वह ठाकुर मुझे अपनी पुत्री की तरह ही प्यार करता था। चूंकि मुझ पर बाई सा (कुंवरानी) का बहुत स्नेह था इसलिये मां के बहुत आरजू-मिन्नत के बावजूद मुझे उनके साथ दहेज में दे दिया गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"इस ठिकाने में आकर मेरे दुःखों का पार नहीं रहा। विवाह तो एक प्रथा के अनुसार एक दरोगा से कर दिया गया परन्तु रहती थी मैं कुँवर-साहब की सेवा में ही; कभी-कभी वे मुझे कुंवरानी जी के सामने ही पलंग पर बुला लेते थे।"

"दो वर्ष बाद रामू का जन्म हुआ। कुंवर साहब इसको बहुत प्यार करते थे। परन्तु बाई सा हम दोनों से बहुत नाराज रहने लगी। रात दिन जली-कटी सुनाती रहती। एक दो बार तो बच्चे को ज़हर देने का भी प्रयास किया गया।"

"थोड़े दिनों बाद ही कुँवर-साहब की कृपा एक दूसरी दरोगी लड़की पर हो गयी और मुझे अपने घर भेज दिया गया। ठाकुर साहब के स्वर्गवासी होने के बाद कुँवर-साहब ठाकुर बने। फिर तो उनके ऐशो इशरत की कोई सीमा नहीं रही। एक दिन उन्होंने मुझे पलग-सेवा के लिए बुलाया। उस दिन मेरे पति बहुत बीमार थे, उन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकी। दूसरे दिन रावले से तीन-चार व्यक्ति आए और मेरे पति को और मुझे पकड़ कर गढ़ में ले गए उस दिन ठाकुर ने अपने मुसाहिबों द्वारा बारी-बारी से मेरे पति के सामने ही मुझ पर जो अत्याचार कराया, वह वर्णन योग्य नहीं है। मेरे बीमार पति ने कुछ रोक-थाम का प्रयत्न किया तो हत्यारों ने तत्काल उसको गला घोंटकर मार दिया।"

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहा—

"विक्षिप्त और आधी-बेहोशी की हालत में रोती-विलखती मैं अपने घर आ गई। इसके थोड़े दिन बाद ही वर्तमान ठाकुर का जन्म हुआ। इनकी और मेरे रामू की शक्ल इतनी मिलती-जुलती थी कि ठाकुर-साहब को बाई-सा पर बहम हो गया और उनमें आपस में अनबन हो गयी। कुछ समय बाद बाई सा ने ठाकुर-साहब को जहर देकर मरवा दिया। राज घरानों में इस प्रकार की घटनाएं प्रायः ही होती रहती थीं।"

"बाई-सा अपने एक कृपा-पात्र मुसाहिब के जरिये ठिकाने का कार्य सभालने लगी। पता नहीं क्यों, पुनः उनका मेरे प्रति स्नेह हो गया और मुझे रावले में बुला लिया गया। रामू कुँवर-साहब के साथ-साथ पढ़ने लगा।" मैंने देखा कि उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे हैं। उसने मुंह फेर लिया और शीघ्रता से घर के भीतर चली गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिवजी भैया

कुछ इस प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिनसे मिलते-जुलते लोग हर काल, समाज और देश में मिल जाते हैं। मैं शरत बाबू का उपन्यास 'विराज बहू' पढ़ रहा था। उसमें नीलाम्बर चक्रवर्ती के प्रसंग में मुझे राजस्थान के शिवजीरामजी की याद आ गई। अगर यह पुस्तक उस अंचल के किसी लेखक द्वारा लिखी गई होती तो जानकार लोगों को नीलाम्बर के चरित्र में शिवजी रामजी का भ्रम होता।

इस कथा के नायक का जन्म आज से सौ वर्ष पहले शेखावाटी के कस्बे में हुआ था। पिता का देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण-सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घर में माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पति के मरने के बाद दोनों पुत्रों को अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थी को भी सम्भाल कर रक्खा। दोनों भाइयों में आपस में इतना प्रेम था कि गाँव के लोग इनको राम-लक्ष्मण की जोड़ी उपमा देते। उस समय की रीति के अनुसार दोनों के विवाह बचपन में ही हो गए वहाँ

एक दिन, बड़े भाई रामकिशन ने बम्बई जाकर काम करने का विचार माता के र रक्खा। यद्यपि उसकी आयु केवल बीस वर्ष की ही थी, परन्तु पिता का साया सिर प और नहीं। जो कुछ पास में था, वह पिछले वर्षों में खर्च हो गया था, इसलिए भारी मन से माता ने आज्ञा दे दी। कुल

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नी को वृद्धा माता की सेवा के लिए घर पर छोड़ कर बम्बई के लिए विदा हो गया। शिवजीराम के जिम्मे कुछ काम तो था नहीं, इसलिए भाई के छोटे बच्चे को खेलाता रहता और गांव में कभी साधु–सन्त आते तो उनकी सेवा में सबसे आगे पहुँच जाता।

तीन मील दूर जंगल में एक कुआँ था, सुबह जल्दी उठकर नित्यकर्म के लिए, वहाँ चला जाता। साथ में चार-पाँच सेर अनाज ले जाता जो वहाँ पक्षियों को चुगा देता। वहाँ से आकर अपनी दो गायों को दाना-पानी खिलाता, उनके ठाण की सफाई आदि का सब काम वही करता। फिर स्नान करके नियम से रामजी के मन्दिर जाता, वे उनके कुल–देवता थे। गांव रहकर वैद्यक और नाड़ी-परीक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था इसलिए बचे हुए समय में ग़रीब रोगियों की चिकित्सा करता और बहुतों को दवा के सिवा पथ्य भी अपने पास से देता था।

इन सबके अलावा, उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गाँव में किसी की भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर पहुँच जाता और चलावे सारे कामों में पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता। चाहे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बैशाख-जेठ की गर्मी हो या पूस-माघ की सर्दी की रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजीराम ऐसे मौके पर नहीं पहुँचा हो।

उन दिनों छुआछूत का बहुत विचार था परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद भगवान की जोत में जोत मिल जाती है। मृतक की कोई जाति नहीं होती इसलिए गरीब हरिजनों के यहाँ भी ऐसे मौकों पर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस-पास के देहात में सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।

माता धार्मिक-भावना की थी और उसकी प्रेरणा से ही शिवजीराम की इन काम रुचि हुई थी परन्तु पत्नी और भौजाई बराबर नाराज रहतीं। वे कहतीं—"सब ऊलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पड़े हैं।"

कभी-कभी गांव के मंडे-मुसंडे भी बीमारी या कष्टो का बहाना करके ठग ले जाते थे। शिवजीराम के पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई तीन-चार वर्षों के अन्तराल से गांव आता और दो-तीन महीने रहकर बम्बई चला जाता। माता का देहान्त होने के बाद पत्नी और पुत्र को भी वह अपने साथ बम्बई ले गया। गाँव में अब पत्नी और बच्चों के साथ शिवजीराम अकेले रह गये।

सन् १९०१ में बम्बई में जो महामारी हुई, उसमें रामकिशन की मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी और चौदह वर्ष का पुत्र रामदयाल दोनों रोते-बिलखते अपने गाँव वापस आ गये। शिवजीराम ने तो कभी कमाया नहीं था परन्तु अब सारा भार उस पर पड़ा। बम्बई न जाकर अपने कस्बे में ही गल्ले की दूकान कर ली, भतीजे को भी साथ ले जाकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारी में जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिए, उसका शिवजीराम में सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते, रुपया-पैसा देते नहीं। वे जानते थे, शिवजीराम कभी कचहरी जाकर अदायगी के लिए नालिश नहीं करेगा। आखिर, दो-तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दूकान उठानी पड़ी। इसी बीच, भतीजा रामदयाल अपने पिता की तरह ही काफी होशियार हो गया सो उसने बम्बई चला गया।

रामदयाल के पिता का वहाँ के बड़े व्यापारियों से अच्छा सम्पर्क था और उसकी दारी की साख भी थी। बम्बई जाकर उसने कॉटन एक्सचेंज में अपने पिता के नाम के फर्म को फिर से चालू कर लिया। संयोग ऐसा बना कि थोड़े वर्षों में ही काम जम और उसके पास लाखों रुपये हो गये।

कई बार चाचा को बम्बई आने के लिए रामदयाल ने लिखा परन्तु गाँव में इतने तरह के म रहते कि शिवजीराम बम्बई न जा सका। बाद में द्वारका-धाम की यात्रा के समय उसको सपरिवार बम्बई ठहरने का मौका मिला। वहां अपने भतीजे का वैभव और सुनाम देखकर उसे बडी प्रसन्नता हुई। रामदयाल ने और उसकी पत्नी ने उन्हें सदा के लिए वहीं रहने का आग्रह किया परन्तु उसका मन इस महानगरी में नहीं लगा और थोड़े दिनों बाद ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्म की मात्रा बढ़ गई परन्तु प्रौढ़ हो गया था इसलिए पहले जितनी भागदौड नहीं कर पाता था।

इतने गुणों के बावजूद उसमें एक कमी रही कि घर की समस्याओं की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। दोनों लड़कियों का विवाह तो अच्छे घरों में हो गया परन्तु एकमात्र लड़का लिख-पढ़ नहीं पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको शिवजीराम के यश और मान-बड़ाई से ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने बम्बई में रामदयाल के कान भरने शुरू किए इतनी मेहनत करके कमाते तो तुम और वाह-वाही तथा सेठाई सब तुम्हारे चाचाजी की होती हैं। उसकी स्त्री तो पहले से ही भरी बैठी थी पर पति के डर से चुप थी। रामदयाल स्त्री-बच्चों सहित बम्बई से अपने गाँव

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आया। वास्तव में ही, जो बात लोगों ने कही थी, वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीराम की प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफ भी निकल जाते लोग खड़े होकर, राम-राम करते सुबह-शाम सैंकड़ों अभ्यागतों के लिए अन्न-क्षेत्र चालू था। मौक़ा देखकर रामदयाल ने चाचा से बँटवारे के लिए कहा। एक बार तो शिवजीराम को बहुत ही कष्ट हुआ पर तुरन्त ही सम्हल कर बोले, "बेटा, कमाया हुआ तो सब तुम्हारे पिताजी का ही है। मैंने तो उम्र-भर केवल खर्च ही किया, इसलिए जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है?" एक काग़ज पर सम्पत्ति का ब्यौरा लिखा गया।

बड़ी हवेली और बम्बई का फर्म रामदयाल ने अपने लिए रखना चाहा। नक़द रुपयों का दो बराबर का हिस्सा हुआ। अपना मकान छोड़कर जाने में बहुत क्लेश होता है परन्तु शिवजीराम के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने कहा, "तुम्हारी मान-बड़ाई और इज्जत के लिए बड़ी हवेली में रहना सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेली में चला जाऊँगा। अब रही नक़द रुपयों की बात, सो मुझे तो अन्दाज ही नहीं था कि अपने पास इतना सारा रुपया है! मैं इनको कहाँ सम्हाल पाऊंगा? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयों को तुम अपने पास ही रहने दो। खर्च के लिए जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।" अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखे जरूर गीली हो गई थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न तो चाचा जी ने हिसाब की जाँच की, न हवेली छोड़ने में आपत्ति की और न बम्बई के फर्म की साख (गुडविल) के बदले में ही कुछ चाहा; बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड़ रहे हैं।

उसे अपने आप पर ग्लानि और लज्जा हो आयी। रोता हुआ चाचा के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, "लोगों के बहकावे में आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकार का भी बँटवारा नहीं करना है। बड़े भाग्य से आप सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपन में ही छोड़कर चले गए। मगर आप पढ़ा-लिखाकर मुझे योग्य नहीं बनाते तो भला आज हम सबका क्या होता?"

कुछ दिनों बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे भाई देवदत्त को भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी आदतें छूट गयीं और वह भी काम में लग गया।

मैंने जब शिवजीरामजी को देखा था, उस समय वे अस्सी वर्ष के वृद्ध थे। संयम और त्याग का जीवन रहा, इसलिए उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान-धर्म के तौर-तरीके बदल गए थे। सदाव्रत और ब्राम्हण-भोजन के साथ-साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल अस्पताल और जच्चाघर भी जनता की सेवा कर रहे थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धर्म की समाधि

दिल्ली से ७० मील उत्तर में सरधना नाम का एक छोटा सा कस्बा है। इस समय इसकी दशा खराब है। टूटे हुए पुराने महल, दो-चार गिरजे, थोड़े से जैन-मन्दिर एवं कुछ पुराने जीर्ण-शीर्ण मकानात हैं। इन सबके सिवा एक छोटा-सा बाज़ार है जिसमें स्थानीय दूकानदारों के अलावा बीस-तीस शरणार्थियों की दूकानें हैं। परन्तु आज से लगभग २०० वर्ष पहले इस कस्बे का अपना महत्त्व था। देश-विदेश के अनेक प्रकार के सामानों से यहां की दूकानें भरी रहतीं। पंजाब से दिल्ली के रास्ते में यह कस्बा पड़ता है इसलिए यहां प्रायः बड़े-बड़े सरदार, फौजी अफसर व्यापारी एवं अन्य लोग आते-रहते थे। यहां का शासन बेगम समरू नाम की एक दुर्धर्ष, बहादुर परन्तु कामुक एवं सुन्दरी विधवा के हाथ में था।

बेगम समरू की भी अपनी एक कहानी है। ऐसी औरतें सौ-पचास वर्षों में दो-चार ही पैदा होती हैं। इस सन्दर्भ में इंगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ, आस्ट्रिया की मैरिया थेरेस्सा और हमारे यहां की रज़िया बेगम के नाम लिए जा सकते हैं। बचपन में सकूर खां नाम के एक सरदार ने इसे गुलामों के सौदागरों से खरीदा था। सकूर खां के मरने के बाद उसके लड़के बशीर खां के हरम में वह पांच वर्ष तक रही। एक दिन मेरठ के नौचन्दी के मेले में प्रसिद्ध फ्रांसीसी जनरल समरू ने उसे देख लिया और उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर १० हज़ार सोने की अशर्फियों में मुन्नी उर्फ दिल-आराम को बशीर खां से खरीद लिया। वहां जाकर मुस्लिम मजहब छोड़कर वह ईसाई हो गई नाम भी दिल-आराम से बदल कर हो गया जुबाना उर्फ समरू बेगम।

दोनों, पति-पत्नी बहादुर और सूझ-बूझ वाले थे। एक अच्छी सुशिक्षित फौज इनके पास थी जिसको किराये पर भेजते रहते। उन दिनों, छोटी-छोटी लड़ाइयां होती रहती थीं जिनसे इन्हें अच्छी आय हो जाती थी। सेना की शिक्षा एवं संचालन का कार्य दोनों स्वयं करते। रुहेलों से दिल्ली के बादशाह शाह-आलम को बचाने के कारण इन्हें शाही ख़िलअत और सरधना का उपजाऊ परगना इनाम में मिला। थोड़े वर्षों बाद ही संदेहात्मक ढंग से बूढ़े नवाब का देहान्त हो गया और तब सत्ता रह गई, एक मात्र विधवा बेग़म के हाथ में। उसके बाद, इसने अपनी फौजी ताकत और भी बढ़ाई। विदेशी विशेषज्ञों द्वारा उन्हें नए ढंग से सुसज्जित किया। बड़ी-बड़ी तोपें, बेहतरीन बन्दूकें और तेज दौड़ने वाले घोड़े दूर-दूर से मंगाए गए। टामस और लवसुल नाम के दो बहादुर विदेशी सेनापतियों के संरक्षण में इसकी फौजें थी, दोनों उसके प्रेमी थे। उस समय के जागीरदार लड़ाइयां न होने पर डाके डलवाते थे परन्तु बेगम ऐसे कार्यों को बुरा समझती। यहां तक कि उसके परगने में डाकुओं की लूट-मार करने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की हिम्मत कभी भी नही हुई । वह अपराधियो को बहुत कड़ा दण्ड देती । किसी की आंख निकलवा लेती तो किसी को जमीन में गड़वा कर उस पर कुत्ते छुड़वा देती थी । उन दिनों लोगों में आतंक उत्पन्न करने के लिए ये सभी बातें ज़रूरी भी थीं ।

वैसे सरधना में अब भी सौ-पचास घर अग्रवाल-जैनियों के हैं, परन्तु उस समय तो वहां उनकी प्रधानता थी । वे बेग़म के खजांची, अर्थ-मंत्री एवं गृह-प्रबन्धक जैसे ऊँचे ओहदे पर थे ।

ज्ञानचन्द नाम के एक वैश्य की वहां मोदीखाने की बड़ी दूक़ान थी । यहां से बेगम की फौज़ों के लिए रसद आती थी । ज्ञानचन्द दूक़ान का काम सँभालता और उसका एक-मात्र पुत्र रतनचन्द रसद का आर्डर लाने के लिए क़िले में जाता था । रतनचन्द की आयु लगभग २९-३० वर्ष की थी । घर में बहुत सी गाय-भैंस थीं, खाने-पीने के लिए कमी नहीं थी । बचपन से ही कसरत-कुश्ती करता रहा इसलिए चेहरे पर सुन्दरता के साथ पौरुष की आभा भी यथेष्ट थी । एक दिन, किले में वह गया हुआ था कि बेग़म की नज़र उस पर पड़ी । इसके बाद, महल से बुलावे आने शुरू हो गए । बेग़म के कहने पर गल्ले के सिवा उसने एक कपड़े की दूकान भी कर ली । दोनों दूकानें बहुत अच्छी चलने लगीं ।

पौष-माघ की एक रात्रि में रतनचन्द के लिए बेगम साहिबा के यहा से बुलावा आया । खिदमतगार उसे ख्वाबगाह में छोड़कर बेगम को खबर देने चली गई । रतनचन्द पहली बार ही महल के उस हिस्से में गया था । बिल्लौरी शीशे के झाड़-फानूसों में हजारों मोमबत्तियां रोशन थीं, हिना की खूशबू चारों तरफ फैल रहीं थी । नंगी औरतों की आदमक़द बड़ी-बड़ी तस्वीरें विभिन्न कामोत्तेजक मुद्राओं में दीवारों पर लगी हुई थीं । बीच में सोने-चाँदी का एक बहुत बड़ा पलंग था जिसके पास ही तरह-तरह की शराब की सुराहियां और खाली प्यालियां रखी थीं । हीरे-पन्नोंसे जड़ा हुआ मोतियों की झालर का एक हुक्का भी रक्खा हुआ था । थोड़ी देर बाद बेगम आई, उसके साथ चार पांच दासियाँ हमेशा रहती थीं पर आज वह अकेली थी । कपड़े भी कुछ अजीब ढंग से पहने हुए थे । रतनचन्द ने बाअदब उठकर सलाम अता किया और कहा कि "हुजूर ने इस वक्त गुलाम को किस लिए याद फर्माया ?"

जान-बूझ कर कमरे में केवल एक पलंग रखा गया था, बेगम ने रतनचन्द से खड़े न रहकर अपने पास बैठने को कहा । जिसके भय और प्रताप से लोग कांपते रहते, वह बेग़म आज उस साधारण से व्यक्ति से जिस प्रकार पेश आ रही थी, वह बात रतनचन्द थोड़ी ही देर में समझ गया । बेगम ने अपने हाथों से फ्रांस की बेहतरीन शराब डालकर एक जाम रतनचन्द को दिया परन्तु उसने डरते हुए पीने से 'ना' कर दी । इसके बाद जब इशारे ज्यादा साफ़ होने लगे तब उसने हाथ जोड़कर कहा कि आप हमारी पूज्या हैं; अन्नदाता हैं, आयु में और पद में भी बड़ी हैं । शायद, आज आप की तबीयत परेशान है इसलिए मैं कल हाजिर होऊंगा । फन कुचली विषैली नागिन की सी फुफकार से बेगम ने डपटकर कहा कि नादान छोकरे या तो तुम अव्वल दर्जे के बेवकूफ़ हो या हिंजड़े; जिसकी इनायत की एक नज़र के लिए बड़े-बड़े सरदार और जमींनदार तरसते रहते हैं, वह मुल्के जमानिया बेग़म समरू तुम्हारी मोहब्बत मांगती है और तुम हो कि फिजूल बकवास की जुर्रत करते जा रहे हो ? खैर, मैं तुम्हें सात दिन की मोहलत देती हूं, इस बीच में मेरी मोहब्बत के साथ लाखों रुपयों की तिजारत या मौत, दोनों में से एक को तुम्हें चुनना है । खबरदार, अगर एक लफ़्ज भी इस के बारे में बाहर निकाला तो तुम्हें जंगली कुत्तों से नुचवा दिया जायेगा ।

दूसरे दिन से रतनचन्द उदास रहने लगा । पिता-माता और पत्नी ने बहुत कुछ पूछ-ताछ की परन्तु बेगम के डर से कुछ भी न कह सका । आधी रात में पत्नी के अनुनय-विनय पर उसने सारी बातें खोल कर बता दीं ।

भारतीय पतिव्रता स्त्री थी, बेगम की क्रूरता से परिचित भी । पति को बहुत प्रकार समझाने-बुझाने लगी कि जान है तो जहान है, आप बेगम की बात मान लीजिए । अगर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बापको कुछ हो गया तो फिर माता-पिता, मेरा और इन बच्चों का क्या होगा .. दूसरे दिन रतनचन्द एक निश्चय पर पहुंच गया और पत्नी से कहा कि भगवान को साक्षी देकर सौगन्ध ली थी कि मैं एक पत्नी व्रत रहूंगा फिर भला इस क्षण-भंगुर जीवन के लिए यह पाप क्यों ? थोड़ी देर में ही दोनों पति-पत्नी ने सोते हुए बच्चों को प्यार किया और संखिया खाकर सो गए।

दूसरे दिन हो सारे कस्बे में इनकी दर्दनाक मौत की खबर फैल गई। लोगों को संदेह तो पहले ही हो गया था क्योंकि ऐसी बातें छिपी नहीं रहतीं। रतनचन्द सर्वप्रिय व्यक्ति था, जब पति-पत्नी दोनों की अर्थियां उठीं तो सारे कस्बे के लोग रोते-बिलखते साथ थे। बेगम का भय यहां तक फैल गया कि कई माता-पिता ने तो अपने जवान पुत्रों को सरधना से बाहर भेज दिया।

कहते हैं कि पाप का फल अवश्यम्भावी है, गरीब और अमीर, सबके लिए। थोड़े दिनों बाद ही विद्रोही फौज ने बेगम के प्रेमी लवसुल की हत्या कर दी और बेगम को बेइज्जत करके एक खम्भे में बांध दिया। अगर समय पर टामस नहीं पहुंचता तो उसका भी बोटियां नोच लेते।

रतनचन्द और उसकी पत्नी की समाधि सरधना के वीरान गांव में इस समय भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। यहां आस-पास के गांवों से विवाहित जोड़े मनौती के लिए आते रहते हैं और भादों के महीने में एक मेला लगता है।

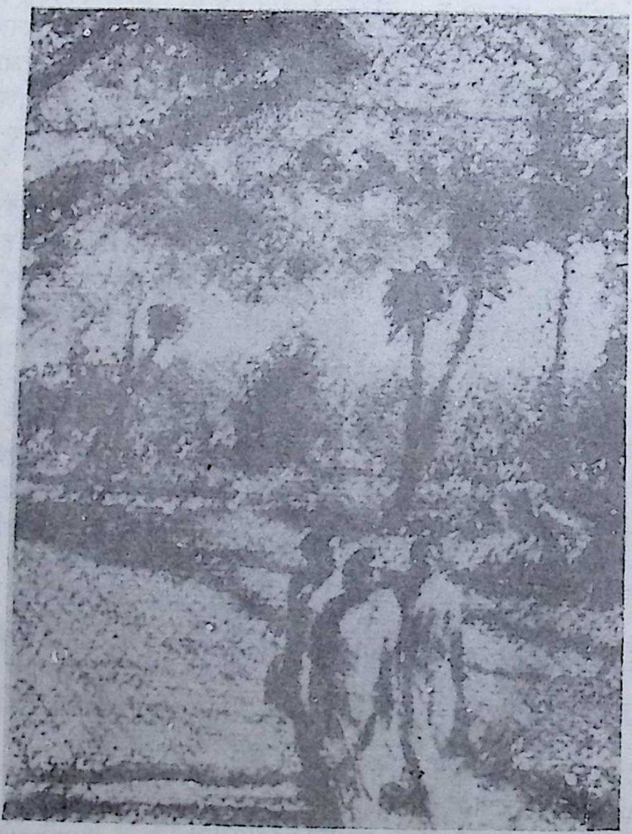

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भाग्य-चक्र

उन्नीसवीं सदी की बात है। रामगढ़ से फतेहपुर (शेखावाटी) बारात जा रही थी। बहुत से हाथी, घोड़े, रथ और ऊँट थे, जो ज़रीदार रेशमी कपड़ों की 'झूल' के साथ चाँदी और सोने के गहनों से सजे थे। बारातियों की संख्या हज़ार तक पहुँच गयी थी। गाँव के गरीब-से-गरीब घर का आदमी भी बारात में निमन्त्रित था। यह बारात थी सेठ रामविलास के पुत्र नन्दलाल के विवाह की, जिसकी चर्चा बाद के बहुत वर्षों तक होती रही।

उनका बड़े पैमाने पर भिवानी में कारबार था। उन दिनों व्यापार की वह बड़ी मंडी थी। राजस्थान की चीजें दूसरे प्रान्तों में और वहाँ से राजस्थान में, भेजने-मंगाने का भिवानी ही माध्यम था।

सेठ के अपने परिवार में कुल चार व्यक्ति थे। स्वयं, पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू। परन्तु वे इतने उदार और कुटुम्ब-वत्सल थे कि दूर के बहुत से सम्बन्धी भी उन पर आश्रित रहते। उनके दरवाज़े से शायद ही कभी कोई अतिथि या याचक निराश लौटा हो। यह उदारता यों किंवदन्ती बन गयी थी कि उन्होंने गीदड़ों के लिए भी सर्दी से बचाव के लिए रजाइयाँ बनवायी थीं।

प्रौढ़ होने के पहले ही सेठ का देहान्त हो गया और इसके साथ ही इस परिवार का संकट-काल भी प्रारम्भ हो गया। गाँव के सारे लोग दुखी होकर रो रहे थे, जैसे कि उनके कुटुम्ब का ही कोई मर गया हो। साथ ही एक और दुर्घटना घट गई। उनके शव की प्रदक्षिणा के लिए स्त्रियाँ जब सेठानी को लाने गईं तो देखा कि वह भी इहलोक छोड़कर पति की आत्मा के पास जा चुकी हैं। दोनों की अर्थी साथ-साथ उठी और एक ही चिता में दाह-संस्कार किया गया। शायद ही गांव और आस-पास का कोई आदमी बचा होगा जो इनकी शवयात्रा में शामिल न हुआ हो।

विशाल हवेली में अब उनका पुत्र, अपनी पत्नी तथा दो बच्चों के साथ रह गया था। मनुष्य के भाग्य और फिरत-घिरत की छाया को एक ही उपमा दी गई है। 'सूतक' की समाप्ति के बाद आए हुए मेहमान जब चले गए तो नन्दलाल कारबार सम्हालने के लिए भिवानी गया। वहाँ उसे अपनी आर्थिक स्थिति की जो जानकारी मुनीमों से मिली, उससे आश्चर्य और दुःख का ठिकाना न रहा। पिछले कई वर्षों से व्यापार तो घाटे में चल रहा था. जबकि दान-पुण्य और दूसरे खर्चे प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे थे।

धन्धा बन्द हो गया। मुनीम-गुमाश्ते छोड़कर चले गए। कर्ज चुकाने में पत्नी के सारे गहने बिक गए और बडी हवेली रेहन रख दी गई। वे सब किराये के एक छोटे-से मकान में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहने लगे। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ती गई कि दोनों समय का खाना जुटाना भी मुश्किल हो गया। पत्नी बड़े घर की बेटी थी और बड़े घर में ही बहू बनकर आई थी। किसी समय बीसों नौकर और नौकरानियाँ घर के काम के लिए थे, पर अब रसोई के अलावा बर्तन मांजना और बुहारना-झाड़ना आदि सब काम उसे स्वयं करने पड़ते। थोड़ी-बहुत सहायता बच्चे कर देते थे। मुँह-अँधेरे ही पति-पत्नी कुएँ से पानी ले आते क्योंकि दिन चढ़ने के बाद लोगों की भीड में उन्हें संकोच होता था।

जब कष्ट सीमा से बाहर होने लगे तो पत्नी ने अपने भाइयों के पास सहायता के लिए जाने को कहा जिनका मालवा तथा दूसरे देशावरों में बड़े पैमाने पर कारबार था। जिन लोगों ने सब कुछ जानते हुए भी,बहन और उसके बच्चों की संकट के समय खबर तक नहीं ली, उनके यहाँ सहायता के लिए जाने की इच्छा तो नहीं थी पर पत्नी द्वारा बार-बार आग्रह के कारण उसने उज्जैन जाना तय कर लिया। विदा के समय पत्नी ने किसी तरह व्यवस्था की, रास्ते के लिए खाने का सामान तैयार कर एक कपड़े में बाँध दिया।

एक शाम, तालाब के किनारे हाथ-मुँह धोकर खाने की तैयारी में था कि कुछ साधु-महात्मा आ गये और भिक्षा माँगी। जिसके घर में पिता के समय सैकड़ों अतिथि-अभ्यागत नित्य भोजन पाते थे वह भला ना कैसे करता? स्वयं भूखा रहकर सारा सामान उन्हें दे दिया।

दूसरे दिन, दोपहर के बाद जब वह ससुराल की कोठी पर पहुँचा तो रास्ते की थकावट एवं भूख के कारण कैसा ही लग रहा था। उसके दोनों साले वहाँ कई मित्रों के साथ बातचीत कर रहे थे। उन्होंने न तो उसकी आवभगत की और न बहन या बच्चों की कुशल-क्षेम ही पूछी। शाम होने पर मुनीमों को उसे ढाबे में खिलाने को कहकर घर चले गए।

इस प्रकार अपमानित होने पर उसके दुःख और ग्लानि की सीमा न रही। परन्तु गाँव लौटने का किसी प्रकार का साधन नहीं था इसलिए उसी शहर में अपने एक मित्र के यहां गया जिसकी किसी समय उसके पिता ने सहायता की थी।

सब मनुष्य एक से नहीं होते। मित्र बहुत ही प्रेम से मिला और सारी स्थिति की जानकारी के बाद हर प्रकार की सहायता का वचन दिया। दूसरे दिन से ही, रामविलास नन्दलाल की फर्म फिर से स्थापित हो गई। देशावरो में इस फर्म की ईमानदारी और कार्य-क्षमता की साख थी इसलिए पहले के व्यापारिक सम्बन्ध फिर से जुड़ गए तथा थोड़े समय में ही व्यवसाय जम गया।

एक वर्ष बाद वह लखपति बनकर घर लौटा। पत्नी ने भाइयों के बारे में समाचार पूछा तो राजी-खुशी की कहकर दूसरी बातों में टाल दिया। उसकी पत्नी को तो यही विश्वास था कि मायके-वालों के सहयोग और कृपा से ही यह सब हुआ है।

एक महीने बाद ही फिर वह उज्जैन आ गया और इस बार ज़्यादा हिम्मत से व्यापार करने लगा। भाग्य ने साथ दिया और दो वर्ष बाद, दूसरी बार अपने गाँव लौटा, तब नन्दलाल करोड़पति हो गया था। कर्ज चुका कर पिता की बनाई हुई बड़ी हवेली छुड़ा ली। फिर से एक बार मुनीम-गुमाश्ते, नौकर-चाकरों तथा कुटुम्बियों से घर भर गया।

ससुराल में साले के लड़के का विवाह था। निमन्त्रण देने के लिए स्वयं वर का बड़ा भाई कुंकुम-पत्रिका लेकर आया। जो पत्र वह साथ लाया था, उसमें बहुत वर्षों से बहन और बच्चों को नहीं भेजने का उलाहना था एवं इस अवसर पर सबको जरूर-जरूर बुलाया था।

नन्दलाल की इच्छा वहाँ जाने की नहीं थी परन्तु पत्नी बार-बार भाइयों के उपकार का बखान कर रही थी। इस बीच में उसने मायके जाने की सारी तैयारी भी कर ली थी अतः विवाह में शामिल होने के लिए वे सब रवाना हुए। वह स्वयं तो घोड़े पर था, पत्नी और बच्चे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रथों में तथा दूसरे राजपूत-सरदार, नाई, नौकर-दाई ऊँटों पर। फतेहपुर से एक कोस दूर पर ही अगवानी के लिए दोनों सालों के सिवा गाँव के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आए। पत्नी तो हवेली में चली गयी और सेठ नन्दलाल के डेरे लगे एक बहुत सजी हुई कोठी में। रात्रि में भोजन के लिए हवेली में तैयारी की गई थी। चाँदी-सोने के थालों में नाना प्रकार के व्यंजन सजे थे। खातिरदारी में परिवार के सारे लोग हाथ बाँधे खड़े थे। स्त्रियाँ मधुर रागिनी में सीठणें गा रही थीं।

भोजन के लिए कहा गया तो उसने अपने हाथ की हीरे की अंगूठी को थाल में रखकर उसे खाने के लिए कहा। उन लोगो की समझ में बात नहीं आई। दूसरी बार आग्रह करने पर उसने गले से पन्ने के हार को निकाल कर उसे भोजन करने को कहा। किसी बड़े-बूढ़े ने कहा, "जमाई, हँसी-दिल्लगी बहुत हो चुकी, अब कृपया भोजन कीजिये।"

वह बिना भोजन किये ही उठ गया और कहने लगा कि यह मान-सम्मान तो मेरे हीरे-पन्ने और धन-दौलत का हो रहा है अन्यथा जब मैं ३ वर्ष पूर्व इनके यहाँ आया तो इन्होंने मुझे पहिचाना तक नहीं था। पत्नी को वास्तविकता की जानकारी कराने के लिए मुझे आना पड़ा वरना मैंने उसी दिन इन लोगों से किसी प्रकार भी सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

महिलाओं में बैठी पत्नी को बुलाकर, अपने बच्चों तथा दूसरे साथ के लोगों को लेकर उसी समय रामगढ़ रवाना हो गया।

विवाह का अवसर था। घर नाते-रिश्तेदारों से भरा था परन्तु इतनी बड़ी घटना के बाद किसी की भी हिम्मत उन्हें रोकने की नहीं हुई।

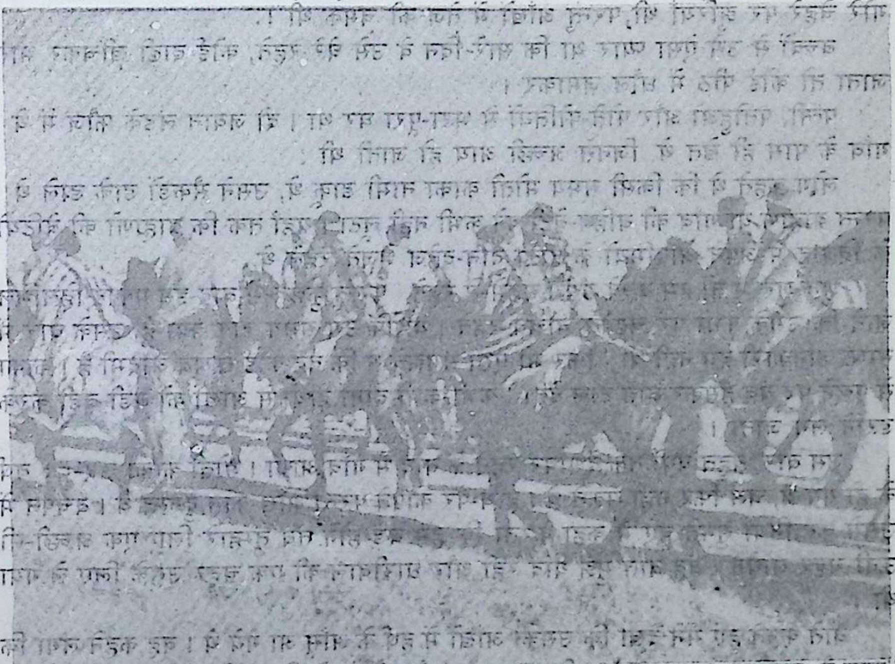

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मोती काका

हमारे गाँव में बाहर से साधु-महात्मा आते रहते थे। उनके प्रवचनों के समय देखा जाता कि एक वृद्ध नियमित रूप से सबसे पहले आता और सबके बाद जाता। लोगों की जूतियों के पास बैठकर हाथ में माला लिए जाप करता रहता। आयु प्रौढ़ावस्था को पार कर चुकी थी, परन्तु शरीर की काठी देखकर लगता कि किसी समय बहुत सुन्दर और बलवान रहा होगा। गोरे चेहरे पर झुर्रियाँ थी, परन्तु आँखों में तेज की चमक थी।

बच्चों से उसे ऐसा प्यार था कि सारे दिन वे उसे घेरे रहते, कोई दाढ़ी खींचकर भाग जाता तो कोई पीठ में धौल जमाकर।

पत्नी, पतोहुओं और पोते-पोतियों से भरा-पूरा घर था। दो जवान लड़के फौज में थे। गाँव के पास ही खेत थे जिनसे अच्छी आय हो जाती थी।

लोग कहते थे कि किसी समय मोती काका नामी डाकू थे, उसने सैकड़ों डाके डाले थे परन्तु ब्राह्मण या गाँव की बहिन-बेटी को कभी नहीं लूटा। यहाँ तक कि ब्राह्मणों की बेटियों के विवाह में अपने आदमियों के द्वारा दान-दहेज भेजते रहते थे

शुरू-शुरू में तो हम बच्चे उससे सहमे-से रहते परन्तु कुछ अर्से बाद इस प्रकार हिलमिल जाते कि उसके कंधों पर चढ़कर नाचते रहते। यद्यपि उस समय डाकू क्या है, इसके बारे में स्पष्ट जानकारी हमें नहीं थी; फिर भी ऐसा समझते थे कि वह कोई खराब आदमी है। काका से पूछने पर वह हँसकर बात टाल देता। कभी-कभी दोनों हाथों से आँखों को बड़ी-बड़ी करके डराने लग जाता।

उस बार, बहुत वर्षों तक देशावर रहने के बाद मैं गाँव आया। मोती काका ७५-८० वर्ष के हो गये थे, चल फिर नहीं सकते थे। हाथ-पैर काँपते परन्तु आँख-कान दुरुस्त थे। बचपन में उससे कहानियाँ सुनते हुए मैं कहा करता कि हम बड़े होंगे तब तुम्हारे लिए एक अच्छी-सी ऊनी चद्दर लायेंगे। वह बात मुझे याद रही और धारीवाल की एक चद्दर उसके लिए ले गया था।

बातें करते हुए मैंने देखा कि उसकी आँखों में हर्ष के आँसू आ गये थे। वह कहने लगा कि "सुना है, तुम्हारी १०,०००) महीना तनख्वाह है; मैं इसके लिए हमेशा भगवान से प्रार्थना किया करता था। रामजी ने मेरी बात सुन ली।"

उन दिनों काका को गांधी जी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। हमारे उधर, राजस्थान के गावों में, उनके बारे में बहुत सी किंवदन्तियाँ फैली हुई थीं; जैसे 'उनको भगवान्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के साक्षात दर्शन होते हैं,' 'जेल के फाटक अपने-आप खुल गए,' 'चोर-डाकू भी उनके सामने जाकर सच्ची बात कहने से पाप-मुक्त हो जाते हैं, आदि ।

काका का शरीर इतना अस्वस्थ रहने लग गया कि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई परन्तु उन्हीं दिनों हरिद्वार से एक बड़े महात्मा अपने कई शिष्यों के साथ आये । मोती काका ने बड़े आग्रहपूर्वक उनको निमंत्रित किया और साथ-ही-साथ गाँव के दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी ।

भोजन के पहले काका ने सैकड़ों आदमियों के सामने हाथ जोड़कर कहा कि मेरा अन्त समय अब नजदीक है । जीवन में मैंने जघन्य पाप किये हैं । मुझे कल रात में सपना आया है कि तुम महात्मा जी और गाँव के लोगों के समक्ष अपने पापों को स्वीकार करो, इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी । अपने जीवन की जो घटनाएँ बताईं, उन्हें सुनकर यह निश्चय नहीं कर सका कि वह पापी है या धर्मात्मा ।

मोती काका ने अपनी जीवन-गाथा इस प्रकार सुनायी—

"मैं अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा था । विवाह होकर बारात वापस आई थी । अभी कंगन-डोरे भी नहीं खुले थे कि गाँव का महाजन अपने कर्ज के तकाजे के लिए आकर बैठ गया । उन दिनों कर्ज न चुकाने पर कैद की सजा होती थी, बहुत-से सगे-सम्बन्धियों के बीच बापू को पुलिस के सिपाही हथकड़ी डाल कर ले गए । उस दिन के बाद तो शर्म के मारे मेरा घर से निकलना दुश्वार हो गया ।

"मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि जैसे भी होगा, कर्ज चुका कर पिता को जेल से छुड़ाऊँगा किन्तु बहुत प्रयत्न करने के बावजूद काम नहीं मिल पाया । संयोग से, मेरी जान-पहिचान प्रसिद्ध डाकू ठाकुर राम सिंह के साथियों से हो गयी और मैं उनके दल में शामिल हो गया । हिम्मत, सूझ और शारीरिक बल के कारण रामसिंह के मरने के बाद दल का मुखिया मुझे ही चुना गया ।"

"कर्ज से दुगुना रुपया लेकर एक रात को सेठ के घर पहुँचा । उस सेठ के प्रति मेरे मन में ऐसी घृणा हो गयी थी कि कर्ज चुकती की रसीद लेकर लौटते समय मैंने उसके नाक-कान काट लिये । उसके बाद तो मैंने सैकड़ों डाके डाले पर परमात्मा जानता है कि मैंने कभी ब्राह्मणों और गाँव की बहू-बेटियों को नहीं सताया, न गरीब और निम्नवर्ग के लोगों को ही ।"

"मुझे प्रायः ही खबरें मिलतीं कि मेरे माँ-बाप को नाना-प्रकार की यातनाएँ दी जा रही हैं । एक दिन यह भी सुना कि मेरी पत्नी को थाने में बन्द कर रखा है और उसके साथ बहुत ही आमानुषिक वर्ताव किया जा रहा है ।"

"एक अँधेरी रात में १०-१२ साथियों के साथ मैंने उस पुलिस चौकी पर हमला कर दिया । ८-१० सिपाही और अफसर मारे गए, हमारे भी ३-४ साथी खेत रहे । पत्नी दर्द से कराह रही थी । उसकी हालत देखकर लज्जा और ग्लानि से मन भर गया, परन्तु पास के थानों से कुमुक पहुँचने के अंदेशे से भागकर हमें जगंल में जाना पड़ा ।"

"माँ-बाप और पत्नी की दुर्दशा के समाचारों से मैं रात-दिन बेचैन रहने लगा । उधर पुलिस की सतर्कता भी बहुत ज्यादा बढ़ गई । मेरे जिन्दा या मरे पकड़ा देने पर सरकार द्वारा १०,०००) रुपये इनाम की घोषणा की गई ।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"गाँव की एक गरीब बेटी का विवाह, रुपये के बिना अटक रहा था। मेरे पास रुपये की व्यवस्था उस समय थी नहीं। समय कम था, मैं पशोपेश में पड़ गया कि कैसे मदद करूँ। सरकारी-घोषणा की बात याद आ गयी। मगर मेरे साथी इसके लिए तैयार नहीं हुए। आखिर, मैं अकेले ही उस ब्राह्मण के पास गया और समझाया कि "मुझे थाने में हाज़िर करने से उसे १०,०००) रुपये मिल जायँगे।"

पहले तो वह तैयार नहीं हुआ, परन्तु बहुत समझाने-बुझाने पर मान गया।

"विभिन्न अपराधों में मुझे १५ वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा हुई, परन्तु मेरे अच्छे चाल-चलन के कारण १० वर्ष में ही छोड़ दिया गया।"

"अब उन बातों को प्रायः २५-३० वर्ष हो गए हैं, परन्तु मेरे मन में अपने पुराने पापों की याद से अब भी ग्लानि और लज्जा भरी पड़ी है। कहते हैं कि परमात्मा के भक्तों की सेवा करने से जघन्य पाप भी दूर हो जाते हैं, इसलिए कथा-वार्त्ता में आने वालों की जूतियों की सम्हाल रखता हूँ। बहिन-बेटियों के बच्चों को बहलाता रहता हूँ।........."

काका की बातें सुनकर लोगों के साथ महात्मा जी भी गदगद हो गए। उन्होंने उठकर उसे छाती से लगा लिया।

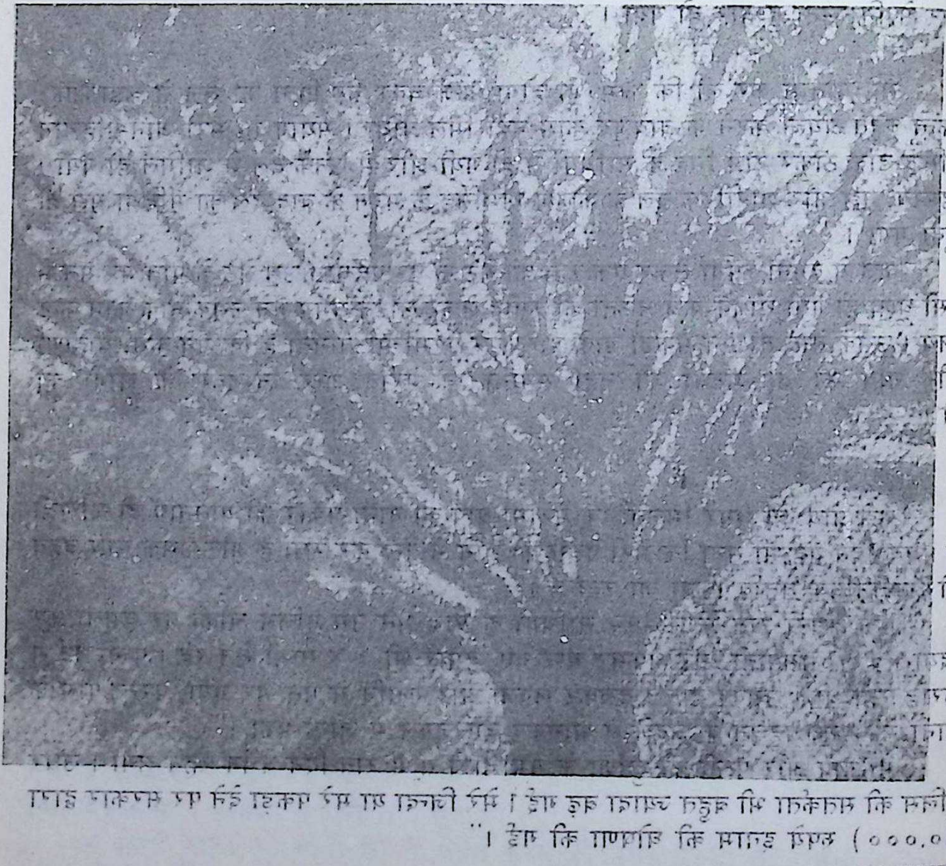

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चोर

रात को नौ बजे थे। भोजन करके कुछ पढ़ रहा था कि मकान के फाटक पर शोरगुल-सा सुनाई दिया। थोड़ी देर तो ध्यान नहीं दिया परन्तु जब आवाजें रोने-चिल्लाने में बदल गईं तो नीचे जाना पड़ा।

देखा, २०-३० व्यक्ति एक १२-१३ वर्ष के दुबले-से लड़के को घेरे हुए हैं, उसकी नाक और मुँह से खून निकल रहा है। लोग बीच-बीच में उसके दो-एक धौल भी जमा रहे हैं।

पूछने पर पता चला कि पास के सिनेमा-घर के बाहर मूड़ी-चनों के खोमचे से दूकानदार की आँख बचा कर मुड़ी लेकर भागता हुआ यह लड़का पकड़ा गया, फिर तो मोहल्ले के बदमाश लड़कों को अपना जोर आजमाइश करने का मौका मिल गया और मारते-मारते इसकी यह हालत कर दी।

उस मासूम बच्चे के चेहरे पर करुणा की मार्मिक याचना देखी तो खोमचे वाले को दो रुपये देकर विदा किया और अन्य सब लोगों को समझा बुझाकर वहाँ से हटा दिया।

दरबान से लड़के को भीतर लाने के लिए कहा। लड़का उस समय भी भय से काँप रहा था और अन्दर जाने में झिझक रहा था। शायद डरता था कि और मार न लगे या कोई नई विपत्ति न आ पड़े। एक प्रकार से धकेलते हुए ही उसे लाया गया। मैंने प्यार से सिर पर हाथ रख कर पूछा कि उसने ऐसा बुरा काम क्यों किया तो सुबुक-सुबुक कर रोने लगा। थोड़ी देर तो कुछ बोल ही नहीं पाया। ऐसा लगता था कि मार और भूख से बहुत ही व्याकुल हो गया है। उसे बेहोशी-सी आ रही थी। खाने के साथ एक गिलास गर्म दूध दिया तब कहीं थोड़ा सँभल पाया।

मैंने उसे दूसरे दिन सुबह तक वहीं रहने को कहा तो रोकर कहने लगा, "मेरी बीमार माँ घर पर अकेली है और कल से भूखी है, वह मेरी राह देख रही होगी। मुझे इतनी रात तक नहीं पाकर बहुत चिंतित होगी इसलिए अभी घर जाने दीजिए।" कुछ खाने-पीने का सामान देकर दूसरे दिन उसे फिर आने को कह कर भेज दिया।

दो-तीन दिन बीत गए। लड़के की भोली सूरत भूल नहीं सका। दरबान को उसे बुलाने भेजा। देखा कि बालक के सिर एवं हाथ पर पट्टी बँधी है और उनके साथ एक युवा किन्तु कृशकाय और बीमार-सी स्त्री भी है। साड़ी में जगह-जगह पैबन्द लगे हुए थे, चेहरे पर दैन्य और बीमारी की स्पष्ट छाया। फिर भी उसके नाक-नक्श की सुघराई से लगता था शायद किसी समय बहुत ही रूपवती रही होगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहने लगी कि उस दिन मार से बच्चे को बुखार आ गया था, कहीं-कहीं सूजन भी। स्त्री के बोलने के लहजे से समझ पाया कि पूर्वी बंगाल की है। जो आत्मकथा उसने सुनाई वह इतने दिनों बाद भी भूल नहीं सका हूं। कभी-कभी जब दुबले-पतले बच्चों को भीख मांगते देखता हूँ तो उस मासूम बच्चे की तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है।

खुलना के पास के किसी देहात में उनकी अच्छी-खासी खेती की जमीन थी। एक छोटा पोखर भी था। सब प्रकार से सुखी गृहस्थी थी। देश के विभाजन के बाद भी वे लोग वहीं रह गए। यद्यपि नाना प्रकार के कष्ट और अपमान झेलने पड़ते थे परन्तु एक तो कहीं अन्यत्र आसरा नहीं था, दूसरे पूर्वजों के घर और जमीन आदि के प्रति मोह-ममता भी थी जो उन्हें गाँव छोड़कर चले जाने से रोके हुए थी।

सन् १९५८ में एक दिन अचानक ही गाँव के हिन्दुओं पर हमला बोल दिया गया। जो मुसलमान हो गए, उनके जान-माल बच गये जिन्होंने सामना किया वे कत्ल कर दिए गए।

उसका पति वैष्णव, कंठीधारी कायस्थ था। किसी समय गाँव का मुखिया भी था और दोनों समय घर के ठाकुरजी की पूजा-अर्चना करता था। वह किसी प्रकार भी धर्म त्याग करने को तैयार नहीं हुआ। उसे खुदा के बन्दों ने काट कर पास के पोखर में डाल दिया। पड़ोसियों के बीच-बचाव से किसी प्रकार बेचारी विधवा अपने ८ वर्ष के बच्चे को साथ लेकर सीमा पार करके भारत के 'बन गाँव' में आकर रहने लगी। जो कुछ थोड़ा-बहुत सामान साथ में था, वह सब रास्ते में लोगों ने लूट लिया।

उसने देखा कि वहाँ पर पहले से ही पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी बड़ी संख्या में हैं और सरकारी कैम्पों में किसी प्रकार पेट पाल रहे हैं। 'परमात्मा की दया' से इनमें से बहुत से अनेक प्रकार की बीमारियों से जल्दी-जल्दी मर कर रोज-रोज की यातनाओं से शीघ्र मुक्ति भी पा रहे हैं।

२६-२७ वर्ष की आयु, सुगठित अंग-प्रत्यंग, चेहरे पर लावण्य की स्पष्ट आभा। विपत्ति में सुन्दरता भी अभिशाप बन जाती है। कैम्प के लिए नाम दर्ज कराने वाला इन्सपेक्टर रात में उसकी 'सरकी' में आकर लेट गया। शरणार्थियों के पुनर्वास और उनकी देखभाल के लिए रखे गए लोग इतने बेशर्म और निधड़क हो गए थे कि न तो उन्हें किसी की निन्दा का डर था और न मान-मनुहार की आवश्यकता। किसी भी शरणार्थी लड़की या स्त्री के साथ मनचाहा व्यवहार करना ये अपना अबाध अधिकार मानते थे। वह बेचारी विपत्ति की मारी, भूखे पेट और थके तन को लेकर आखिर विरोध कहाँ तक कर पाती? कैम्प में स्थान और सरकारी सहायता न मिलने पर सन्तान सहित तिल-तिल कर मरना पड़ता इसीलिए, जीवित रहने के लिए ऐसे अपमान को भी आवश्यक मान लिया गया था।

लेकिन सुरमा उस धातु की नहीं बनी थी। वह अपना शरीर नहीं दे सकी और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। खैर, उस समय तो वह इन्सपेक्टर चुपचाप खिसक गया : परन्तु दूसरे दिन तो फिर दरख्वास्त लेकर उसी के पास जाना होता। सुरमा को यह स्वीकार न था 'अतः रजिस्ट्री-ऑफिस में न जाकर उस ने अपने बच्चे को साथ लिया और रास्ते के अनेक कष्ट झेलते हुए कलकत्ता आ गई। यहाँ उसे एक घर में दाई का काम मिल गया, रहने को एक छोटी-सी कोठरी भी।

रूपवती विधवा युवती मोहल्ले के युवकों के लिए अपने आप में एक आर्कषण है। वे बिना काम ही उसके घर के आसपास मँडराते। कभी सीटी और कभी गन्दी आवाजें कसते। लिहाजा उसे वह आसरा भी छोड़ देना पड़ा। सोचा तो यह था कि भारत-भूमि में सहधर्मी बन्धुओं के बीच जीवन के बाकी दिन किसी प्रकार चैन से बिता पाएगी, अपने बच्चे की जैसे-तैसे परवरिश करेगी किन्तु उसे क्या पता था कि पाकिस्तान की तरह यहाँ भी मनुष्य के रूप में भूखे भेड़ियों की कमी नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कई बार मन में आया कि तेजाब छिड़क कर मुँह को बदरंग कर ले परन्तु कुछ तो पीड़ा के भय से और कुछ बच्चे का ख्याल करके वह यह सब नहीं कर पाई।

कई जगह भटकते हुए उसे ढाकुरिया लेक के पास एक शरणार्थी-परिवार के यहाँ रहने का सहारा मिल गया परन्तु केवल आवास की व्यवस्था से पेट की भूख नहीं मिटती। भीख मांगने में पहले-पहल तो झिझक हुई, फिर आदत पड़ गयी और किसी तरह दो जून खाना मिलने लगा।

लड़का देखने में सुन्दर और बातचीत में चतुर था। सुबह-शाम जो सैलानी लेक पर आते, उनकी मोटरों की सफाई और सम्हाल करता रहता। वे दो–चार आने बख्शीश के तौर पर उसे दे देते या कभी धमका कर ऐसे ही भगा देते।

एक दिन माँ को बुखार आ गया। सीलन भरी जमीन पर बिना चारपाई के सोने से और भूखजनित कमजोरी से यह साधारण और स्वाभाविक बात थी। डाक्टर को दिखाने का प्रश्न ही नहीं था। पड़ोस की एक वृद्धा ने उसे दो गोली कुनैन की लाकर दी और लाई खाने को कहा। बच्चा उसे लाने के लिए घर से निकला। दिन भर खड़ा रहने पर भी उस दिन जब कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई तो माँ की भूख का खयाल करके सड़क पर के खोमचे से उसने कुछ लाई चुरा ली परन्तु भागते हुए पकड़ लिया गया।

यही कहानी थी जो उसकी माँ की जुबानी मैंने उस दिन सुनी।

लड़के की पढ़ाई नहीं के समान थी इसलिए उसे अपने ऑफिस में चपरासी के रूप में रख लिया। यह कई वर्ष की बात है। सुरेन अब बड़ा हो गया है, कुछ अंग्रेजी और हिन्दी भी पढ़ ली है। मेरे यहाँ जितने कर्मचारी हैं, उनमें वह सबसे मेहनती और ईमानदार है। गरीब बंगालियों में लड़कियों की कमी नहीं है। सम्भव है, थोड़े वर्षों में उसका विवाह हो जाय तब उसकी दुखिया माँ को भी बहुत वर्षों बाद गृहस्थी का थोड़ा-सा सुख देखने को मिलेगा।

आज भी मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या उस दिन सचमुच सुरेन ने चोरी की ? बाद में तो कभी भी कोई शिकायत नहीं मिली ! मनुष्य स्वभाव से चोर होता है या परिस्थितियाँ उसे मजबूर करती हैं ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभु का प्यारा *

उत्तराखण्ड केबदरीकेदार की यात्रा का महत्त्व हज़ारों वर्ष से हमारे देश के लोगों के मन और जुबान पर है। जनश्रुति है कि द्वापर में पाण्डवों ने केदारनाथ की यात्रा की थी और आद्य शंकराचार्य केरल से ढाई-हजार मील चलकर बदरीनाथ आये थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान पीठ उन्हीं की स्थापित की हुई है।

अठारहवा शताब्दी के प्रारम्भ की बात है, पूना के श्रीमन्त पेशवा के दीवान वृद्धावस्था मे राजकाज छोड़कर घर ही पर विश्राम करते थे। उनके मन में बहुत वर्षों से बदरी-केदार-यात्रा की कामना थी किन्तु कोई-न-कोई कारण उपस्थित हो जाता और वे तीर्थयात्रा पर निकल नहीं पाते। आखिर एक बार उन्होंने सब तैयारियां कर लीं। कौन-कौन से मुसाहिब, नौकर, रसोइये सिपाहियों आदि को साथ रखा जाए और कैसी सवारियाँ, यान-वाहन आदि रहें, इन सबों की सूचीं बन गयी। यहाँ तक कि रसद के सामान की भी सावधानी से सूची बना डाली गयी।

उनके पडास म हीरू नाम का एक दर्जी रहता था। उसके मन में भी बदरी-केदार जाने की इच्छा थी किन्तु अच्छा साथ नहीं मिल पाया इसलिए जा नहीं सका था।

उसने भी कई अन्य लोगों की तरह दीवान जी से चलने की स्वीकृति ले ली। उन दिनों रास्ते बीहड़ थे, सड़कें भी अच्छी न थीं। चोर-डाकुओं का डर बना रहता। इसके अलावा, साँप-बिच्छू और जंगली हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय तो था ही। बीमारियाँ भी होती रहतीं। इन्हीं कारणों से लोग ऐसी महा-यात्राओं में बड़े लोगों के किसी दल में शामिल होने का सुयोग ढूँढ़ते थे।

दीवान जी ने महीनों पहले से ही अपने बेटों और पोतों को काम की सम्हाल देनी शुरू कर दी थी। कारिन्दों और पटवारियों को कहाँ से कितनी अदायगी करनी है और उनके हल्के की जमीन-जायदाद के पट्टे आदि के बारे में क्या और कैसे करना है, इसकी भी हिदायतें देकर आदेश दिया कि पीछे से किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे।

---

* टाल्स्टाय की एक कहानी की प्रेरणा से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हीरू ने चलते समय पत्नी और पुत्र को केवल इतना ही कहा कि भगवान का स्मरण करते रहना, यदि उनकी कृपा रही तो फिर मिलेंगे।

निश्चित मुहूर्त पर यात्री-दल ने प्रस्थान किया। शंख बजाए गए, मन्दिरों के घन्टे बजे। विदा देने के लिए लोग उमड़ पड़े। लगभग एक कोस तक स्त्री-पुरुष और बच्चे पहुँचाने के लिए साथ चले। बड़ी श्रद्धा से सब ने 'पालागन' किया।

तेरह-सौ मील की लम्बी यात्रा थी। रोज पन्द्रह-बीस मील चलते। रात में किसी निरापद स्थान पर रुक जाते। भजन-कीर्तन होता रहता। इसी तरह चलते-चलते मालवा के किसी गाँव के पास एक दिन इनका पड़ाव हुआ। जगह सूनसान-सी लगी। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि गाँव में हैजे का प्रकोप है। इसलिए अधिकांश लोग यहाँ से चले गए हैं। कुछ गरीब और हरिजन बच गए हैं। चिकित्सा के अभाव में उनमें से भी कई एक रोजाना भगवान के यहाँ चले जाते हैं।

रात घनी हो गई, भजन-कीर्तन समाप्त हो गए और यात्री सो गए। हीरू को नींद नहीं आई। एक अजीब-सी बेचैनी उसे सता रही थी। वह चुपचाप उठा और पहरेदारों की नज़र बचाकर गाँव की ओर चल पड़ा। पास पहुँचते-पहुँचते हवा के झोकों के साथ सड़ांध आने लगी। वह तेज़ी से बढ़ा। एक घर से किसी छोटे बच्चे की रोने की आवाज उसे सुनाई पड़ी। भीतर जाकर देखा कि दो-तीन वर्ष का एक बालक पास में लेटी हुई अपनी माँ का आंचल खींच-खींच कर रो रहा है। माँ विसूचिका-जनित गन्दगी में लिपटी सिसक रही है। सारी बातें एक क्षण में उसके मस्तिष्क में घूम गईं। दौड़कर उसने आंगन में बँधी बकरी को दूहा और बच्चे को दूध पिलाया। फिर, उसे एक ओर बैठाकर उस महिला को धो-पोंछकर साफ किया। उसे ख्याल आया कि दवाइयों की पोटली तो उसकी पेटी में है, क्यों न वह ले आए ? इसकी जान बच जाएगी।

फौरन वह उल्टे पाँव पड़ाव की ओर भागा। लोग गहरी नींद में थे। 'पेटी में खोलने पर खुटका होगा,' 'बिस्तर में धोती और कपड़े हैं, शायद जरूरत पड़ जाये'—सोचते हुए, उसने चुपचाप बिस्तर और पेटी उठाई और गाँव में लौट आया। वहाँ आकर देखा कि बच्चा आराम से सोया है और महिला को भी राहत मिली है। उपचार के लिए साथ लाई हुई दवा दी, ईश्वर-कृपा के उसे लाभ हुआ। सुबह होने पर वह दूसरे घरों में गया। वहाँ भी हैज़े के रोगी कराह रहे थे। वह उन्हीं की सेवा में लग गया।

उधर तीर्थयात्रियों का पड़ाव उठने लगा। थोड़ी देर तक लोगों ने हीरू की प्रतीक्षा की, फिर आगे के लिए चल पड़े।

लगभग एक महीने तक हीरू उस गांव में रहा। यात्रा के लिए जो पूँजी लेकर चला था, समाप्त हो चुकी थी। महामारी के हट जाने पर लोग गाँव में वापस आने लगे। सभी कृतज्ञ थे, उसका गुणगान करते थे। परन्तु हीरू मौन रहता। उसके मन में रह-रह कर यही बात उठती कि तीर्थयात्रा न कर शायद उससे कोई अपराध हो गया। एक दिन वह अपने घर के लिए रवाना हुआ। विदा के समय गाँव के लोगों ने अपने घरों से गुड़-चने-चिड़वे दिए, गांव की सीमा तक पहुँचाने आए। उन सब की आँखें गीली थीं। श्रद्धा और स्नेहभरी शुभाकांक्षा के अलावा वे गरीब दे भी, क्या सकते थे ?

कुछ दिनों बाद, थका-हारा हीरू अपने घर वापस पहुँचा। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यात्रा पूरी न कर वह बीच में क्यों लौटा ? तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाते। 'क्यों आए ?' क्या बीमार हो गए ?' 'झगड़ा तकरार हो गया ?' आदि। वह चुपचाप गर्दन झुकाए रहता। पत्नी से केवल इतना कहा कि तीर्थयात्रा का पुण्य उसके भाग्य में बदा न था। परनिन्दा और आलोचना में लोगों को आनन्द आता है किन्तु हीरू ने कोई सफाई नहीं दी। सिर्फ इतना कह देता, "मेरे-जैसे पापी की पहुँच प्रभु के दरबार में कहाँ ?"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो महीने बाद दीवान जी का दल पूना लौट आया । शहर के लोग उनके स्वागत और चरण-रज के लिए आए । हीरू भी दुबका-सा आया और पैर छूकर एक ओर बैठ गया। उन्होंने एक बार उसकी ओर देखा मगर कुछ कहा नहीं ।

यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई, इस उपलक्ष्य में अगले दिन बारह गांव के लोगों का भगवान के प्रसाद के लिए भोंज हुआ । सभी दीवानजी का यशोगान और जय-जयकार कर रहे थे ।

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया । उसे लगा दीवान जी बुरा-भला जरूर कहेंगे । सहमा-सा वह उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को खबर दी। दीवान जी खुद ही निकल आए और उसे साथ लेकर अपने निजी कक्ष में गए । एकान्त में उन्होंने हीरू से कहा "जब से मैं आया तुमसे एक बात पूछने की मन में थी किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगो की भीड़भाड़ में मौका ही नही लग पाया । तुम्हे भगवान की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना । ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हम लोगो को उस गाँव के पड़ाव पर छोड़कर अकेले ही आगे चले गए । मैंने देखा कि तुम भगवान बदरी विशाल का श्रृंगार कर रहे हो और पास में बड़े पुजारी जी आरती कर रहे हैं । कई आवाजें देकर तुम्हें बुलाया भी, परन्तु भीड़ में तुम न जाने कहाँ समा गए ? इसके बाद केदार जी की आरती और श्रृंगार में भी देखा कि तुम जगमोहन कक्ष में हो । वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते हैं, तुम्हें कैसे जाने दिया ? मैंने भगवान की भेंट में सोने के गहने और ज़री की पोशाकें दीं, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया ।"

हीरू ने दीवान जी के पैर पकड़कर रोते हुए कहा कि बाप जी आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं तो उस गाँव में रोगियों की सेवा के लिए कुछ दिनों तक रुका रहा और फिर वहीं से घर वापस आ गया । मुझ से बड़ा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे दल छोड़ दिया । आप-जैसे महापुरुषों के साथ का सुयोग पाने पर भी भगवान के दर्शन-लाभ से वंचित रह गया ।

दीवान जी को असमंजस हुआ । कानों-सुनी बात झूठी हो सकती है, पर आँखों देखी नहीं । उन्हें हीरू की आँखों मे अब भी भगवान बदरी-विशाल की मूर्ति दिखाई दे रही थी । "भाई तुम सचमुच ही प्रभु के प्यारे हो," यह कहते हुए उन्होंने गद्‌गद् होकर हीरू को गले लगा लिया ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक मनुष्य : तीन रूप

मेरी जान-पहचान के एक मित्र हैं, जिनके घर की स्थिति शुरू से ही साधारण थी। मित्रों की सहायता और छात्र-वृत्ति से वे किसी प्रकार पढ़-लिख कर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में काम करने लगे। सन् १६५७ में उन्हें विधान-सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र में वे चुन लिए गए। नए मन्त्रि-मण्डल में उनको भी लिया गया। मैंने उनको बधाई का तार भेजा। उसके बदले में धन्यवाद-ज्ञापन का जो पत्र उनका आया, उसमें मुझे थोड़ा-सा अहंभाव लिए हुए कुछ औपचारिकता लगी लेकिन उस समय मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया।

कुछ महीनों बाद जब मैं राजधानी गया तो उनके बँगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको में बड़ी-सी कार। अर्दली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही हैं। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइङ्गरूम में प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाँच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

ड्राइङ्गरूम का फर्नीचर ऊँचे दर्जे का था। फर्श पर कीमती गलीचा बिछा था। कमरे में गांधीजी और नेहरू जी की तसवीरें टँगी थीं। तीन-चार उनके अपने स्वागत-समारोहों की भीं। बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि गाँधी जी ने स्वराज्य मिलने के कुछ ही दिनो पहले कहा था कि यदि स्वराज्य मिल गया तो राष्ट्रपति-भवन और राज्यपाल भवन, अस्पताल, गरीब विद्यार्थियों के लिए आवासगृह तथा स्कूल व कालेजों के काम में लाए जाएंगे। राष्ट्रपति और राज्यपाल साधारण भवनों में रहेंगे।

आपसी बैठकों में मेरे यह मित्र भी अक्सर कहा करते कि "राष्ट्रपति और राज्यपालों की बात छोड़ भी दें तो हमारे केन्द्र और राज्यों के मंत्री राज्य-मंत्री, उप-मन्त्री और संसदीय सचिव जिनकी संख्या ३५०० के करीब है-इन मब पर भी करदाताओं की एक बहुत बड़ी रकम प्रतिवर्ष खर्च होती है। इनके दफ्तरों का काम प्रायः सचिव या अफसर देखते हैं, क्योंकि इन लोगों को तो विभिन्न प्रकार के जलसों और उद्घाटनों से ही फुरसत नहीं मिलती ताकि अन्य कामों में समय दे सके; यहाँ तक कि कई बार मन्त्री-महोदय किसी पेट्रोल पम्प या बीड़ी के कारखाने का उद्घाटन करने के लिए भी चले जाते हैं। इन दौरों के लिए मोटरों और अफसरों का खर्च तो सरकारी है ही, इसके अलावा डी० ए० और टी० ए० के रूप में भत्ता अलग से बनता है।"

यहाँ बैठे-बैठे मैंने लक्ष्य किया कि मेरे मित्र को समय का ज्ञान कम रह गया है। बड़ा खेद हो रहा था कि एक संघर्षशील कार्यकर्ता को मंत्रित्व के पद ने अकारण ही विलासप्रिय बनाकर जन-समाज से छीन लिया। सोच रहा था कि आखिर पिछले तीन महीनों में ऐसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कौन-सी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन-सहन में इतना फर्क आ गया !

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वे भीतर से आये । कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होंने पूछा । मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातों में बड़प्पन का आभास है । हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहां बैठे थे इसलिए उनके सामने उन्होंने इस ढंग से बात करना जरूरी समझा हो ।

थोड़े दिनों के बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आये । उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आए हुए हैं और मुझे मिलने के लिए बुलाया है । वैसे मैं खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता, लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नहीं और मैंने नम्रतापूर्वक टाल दिया । इससे पहले उनके यहाँ आने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि यह इत्तिला दूसरे कई लोगों को भी दी गई थी ।

कुछ दिनों बाद, मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वे कह रहे थे कि आप कलकत्ता में न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आये और न उनसे मिले ही इसलिए वे आपसे कुछ नाराज़ हैं ।

जब नया मन्त्रिमण्डल बना तो उनमें वे नहीं लिए गए । उसके बाद जैसा कि आम तौर से लोग करते हैं, उन्होंने भी खादी की एक संस्था और सहकारी-समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे ।

एक दिन अचानक ही वे दिल्ली स्टेशन पर मिल गए । छोटा-सा बिस्तर उनकी बगल में था और थर्ड क्लास में जगह खोज रहे थे । वैसे मन्त्री बनने के पहले भी तीसरे दर्जे में ही यात्रा करते थे पर इस बार मुझे देखकर वे बहुत झेंपे ।

मैंने तीन वर्षों में एक मनुष्य के तीन रूप देखे । पहला : खादी की ऊँची धोती, बिना इस्त्री किये हुए कपड़े, अभावग्रस्त परिवार, लेकिन हर प्रकार का सेवा-कार्य करने के लिए तैयार । दूसरा, बगुले के पंख से सफेद कपड़े, सजा हुआ शीत-ताप नियन्त्रित बँगला, बड़ी कार और तौर-तरीकों में अभिमान की स्पष्ट झलक । अब तीसरा रूप था—बिगड़ी हुई आदतों के कारण बढ़े हुए खर्चे की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी-संस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमें भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन-सहन; पर अब झेंप के साथ ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन्त्री जी का जन्म-दिन

किसी एक मन्त्री जी के जन्म दिन के उत्सव का निमन्त्रण-पत्र मिला। आयोजकों के नामों की तीन पेज की सूची थी। एक आयोजन-कमेटी भी बनी थी जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, संयोजक, कोषाध्यक्ष के सिवा ३१ व्यक्तियों की कार्यकारिणी थी।

जितनी बड़ी सूची थी, उसके अनुरूप ही जलसा था। ऐसा लगा कि १५००-२००० निमन्त्रण-पत्र जरूर भेजे गए हैं क्योंकि ७००-८०० दर्शक थे जिनके लिए बड़े-से लॉन में छोलदारी लगाकर कुर्सियाँ सजाई गई थीं। विशिष्ट अतिथियों के लिए सुसज्जित ऊँचा मंच बनाया गया जिसे नाना-प्रकार के फूलों से सजाया गया था। मंच पर गांधी जी, राष्ट्रपति, नेहरू जी के बड़े-बड़े चित्रों के साथ मन्त्री जी का अपना बड़ा-सा चित्र भी था।

उत्सव प्राय: २-२॥ घण्टे चला। चाय, हल्का नाश्ता और ठंढे पेय की सुव्यवस्था थी। मंत्री जी के बारे में इतनी बड़ी-बड़ी बातें कही गयीं जिनका पता शायद स्वयं उनको भी नहीं रहा होगा। गौरव गाथा गाने वालों में आपस में होड़ लगी हुई थी। आम-तौर पर किसी भी समझदार व्यक्ति को अपने बारे में अति रंजित बड़ाई सुनकर संकोच-सा होता है परन्तु यहाँ तो मंत्री-महोदय बड़े चाव से मुस्करा रहे थे।

सबसे पहले स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ (वे मंत्री जी के ही किसी विभाग में ठेकेदारी काम करते हैं)। उन्होंने कहा कि मुझे मंत्री जी को बचपन से ही जानने का सौभाग्य रहा है और लोगों को इनकी मेधाशक्ति, वाक्चातुर्य और श्रमशीलता को देखकर पहले से ही यह पता चल गया था कि आगे जाकर ये देश के भाग्य-विधाता होंगे। दूसरे व्याख्यानदाता नगर के मेयर थे, उन्होंने स्वागताध्यक्ष द्वारा की गयी बड़ाई की ताईद तो की ही, परन्तु साथ में इतना जोड़ और दिया कि शुरू से ही ये ऊँचे दर्जे के ईमानदार और सच्चरित्र रहे हैं। अन्तिम वाक्य सुनकर वहाँ बैठे हुए बहुत से जानकार स्त्री-पुरुषों को मुस्कुराते हुए देखा गया।

इसी प्रकार एक के बाद एक, कई प्रभावशाली व्यक्तियों के भाषण हुए, इन सबका प्रयत्न केवल यह दिखाना था कि वे मंत्रीजी के अधिक-से-अधिक नजदीकी मित्रों में हैं।

सोचने लगा कि पुराने राजा-बादशाहों के बन्दीगणों तथा भाटों में और इन आयोजकों में क्या फर्क है ? उन राजाओं को तो हम आज मूर्ख और खुशामद-पसन्द कहते हैं, परन्तु आज के इन राजाओ को स्पष्ट बात कहकर नाराज करने की हिम्मत हमारे में नहीं है।

इतिहास में पढ़ा था कि रोम में एक सनकी बादशाह हुआ जिसे कविता करने की धुन सवार हुई। मुशायरों में वह भी स्वरचित कविताएँ सुनाता था परन्तु उससे ज्यादा दाद (वाह-वाही) दूसरे कुछ बड़े कवियों को मिलती। नतीजा यह हुआ कि सारे बड़े-बड़े कवि पकड कर जेल भेज दिए गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बादशाह ने अपनी कविता सुनाने के लिए ५०० मुसाहिब नौकर रख लिए जिनका काम कविता सुनने के समय वाह-वाह करना और हाथ-ताली देना ही था।

एक प्रकार से हमारे आज के शासकों में भी कुछ उसी प्रकार की खुशामद सुनने की भावना बनती जा रही है जबकि बादशाहों का राज्य तो पैतृक और स्थायी था, पर इनकी वजारत जोड़-तोड़ से मिली हुई और अस्थायी है। ऐसे जलसों में दूसरे बड़े-बड़े नेता और मन्त्रीगण काफी संख्या में आते हैं, क्योंकि उनको भी तो कुछ समय बाद अपने जन्मदिन पर इसी प्रकार की भीड़ और उत्सव की आकांक्षा लगीं रहती है।

आज से सौ-दो-सौ वर्ष पहले सम्पन्न व्यक्ति कुएँ, बावड़ी, धर्मशाला और प्याऊ लगाकर यश और नाम कमाते थे। आज वे बातें पुरानी हो गयी हैं और उनकी जगह स्कूल, कालेज और अस्पतालों ने ले ली है परन्तु ये सब तो बहुत अर्थ-साध्य काम हैं इसलिए बिना हर्रे और फिटकरी लगे चोखा रंग लाने का मार्ग भी निकाल लिया गया है। वह है अनेक चित्रों सहित अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार कराके बड़े जलसे में स्वयं को समर्पित करवाना।

मेरे एक बुजुर्ग मित्र हिन्दी के मूर्धन्य कवि थे। वे राम के भक्त थे और आमतौर पर दूसरें, किसी की भी प्रशंसा में कविता नहीं लिखते थे। एक दिन एक प्रभावशाली व्यक्ति का उनके पास किसी अभिनन्दन-ग्रन्थ में कविता के लिए फोन आया। उन्होंने नम्रतापूर्वक अस्वस्थता के कारण लिखने से नाहीं कर दी।

उसके बाद भी हर प्रकार से उन पर दबाव डाला गया फिर भी उन्होंने तो कविता नहीं दी। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर देखा गया कि देश के प्रसिद्ध लेखकों, कवियों और नेताओं की रचनाएँ तथा सन्देश मन्त्रीजी के यशोगान में भरे पड़े थे। ग्रन्थ की साज-सज्जा तो हर प्रकार से दर्शनीय थी ही!

अभिनन्दन के सिवा अपने नाम के पहले 'डॉक्टर' लिखना भी इन विशिष्ट लोगों के लिए आजकल साधारण प्रथा-सी हो गई है। विश्वविद्यालयों के महत्त्पूर्ण पदों पर पहले से ही अपने आदमियों को सिफारिश-कोशिश कर नियुक्त करवा दिया जाता है। वे जोड़-तोड़ बैठाकर वर्ष-दो-वर्ष में इन्हें डाक्टरेक्ट दिला देते हैं।

कई मन्त्रियों और नेताओं के तो हर बड़े शहर में कुछ वैतनिक कार्यकर्त्ता रहते हैं, जिनका वेतन उनसे सम्बन्धित किसी संस्था द्वारा दिया जाता है। उनका काम मन्त्रीजी की उस शहर या आस-पास की यात्रा के समय भीड़ को इकट्ठी करके जय बुलवाना और फूल-मालाएँ पहनाना रहता है। इसके लिए कभी-कभी तो जय बोलने वालों को और माला पहनाने वालों को पैसा भी देना पड़ता है।

वैसे, विश्व में उचित मान और बड़ाई पाने की इच्छा सबकी रहती है परन्तु इसके लिए जिस प्रकार के प्रयत्न आजकल हमारे यहाँ होने लग गए हैं वे बहुत ही अवांछनीय और लज्जास्पद हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कितनी जमीन : कितना धन ?*

राजस्थान के किसी गांव में एक सुखी किसान-परिवार था। पति-पत्नी और एक पुत्र, पचास बीघा जमीन और दो फसली खेती। रहने के लिए अपना छोटा सा मकान था। कड़ी मेहनत कर निर्वाह के लायक पैदा कर लेते। कुछ बच जाता तो वह पास पड़ोस, अतिथि और साधु-सन्तों के काम आ जाता।

एक दिन एक रिश्तेदार शहर से आकर किसान के घर ठहरा। उसके बच्चे जरी-गोटे के कपड़े पहने थे और स्त्री आभूषणों से लदी थी। किसान-पत्नी के पूछने पर अतिथि की स्त्री ने बताया कि ये गहने सोने के हैं और उनमें सच्चे हीरे-जवाहरात जड़े हैं। यह भी कहा कि बड़े आदमियों के लिए यही शोभा है।

दो-तीन दिन रहकर मेहमान तो चले गए परन्तु कृषक-पत्नी के मन में एक तीव्र आकांक्षा छोड़ गए। उसे रात दिन उन गहनों का ख्याल बना रहता। सोती तो सपने में जड़ाऊ गहने नजर आते। बच्चा भी गोटे-किनारी के कपड़ों के लिए मचल उठता। पत्नी के बारम्बार कहने पर कुछ दिनों बाद, किसान अपने गाँव के जमींदार के यहाँ गया और उधारी पर पचास बीघे जमीन खरीद ली। दोनों ने डटकर मेहनत करनी शुरू कर दी। संयोग से, वर्षा भी समय पर होती गई। दो-तीन वर्षों में ही जमीन की कीमत अदा कर दी। आगे चल कर एक-सौ बीघा जमीन और ले ली। अब उसके पास दो-सौ बीघा जमीन हो गई और वह सम्पन्न किसानों में गिना जाने लगा। किसी समय का परसा किसान अब परसराम जी बन गया। ड्योढ़ी पर चार जोड़ी अच्छे बैल, एक रथ और दो ऊँट शोभा बढ़ाते। पत्नी के पास सोने के तरह-तरह के जड़ाऊ गहने हो गए। बच्चा भी बड़ा होकर स्कूल जाने लगा। घर में बहुत-से नौकर-चाकर थे।

खेती-बारी के अलावा, वह बोहरगत (उधार का व्यापार) भी करने लगा। इससे आमदनी के साथ-साथ साख भी बढ़ी। इतना सब होने पर भी परसराम का चित्त अशान्त रहने लगा। पड़ोसी-गांव के जमींदार की उससे भी ज्यादा जमीन थी। वह सोचता कि उसके दरवाजे पर हाथी कितनी मस्ती से झूमता रहता है जबकि मेरे पास तो केवल ऊँट है। उसे यह धुन सवार हुई कि किसी प्रकार जमींदार से वह अधिक समृद्ध बन सके? संयोग से, एक दिन खबर मिली कि बीकानेर रियासत के गंगानगर इलाके में नहर आने वाली है और वहाँ बहुत सस्ते दामों में जमीन मिल रही है जो आगे चलकर सोना उगलेगी। यह बात उसके मन में बैठ गयी। पत्नी और पुत्र को गंगानगर में जमीन लेने का अपना विचार बताया। उन लोगों ने

*| एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा, "सुना है कि वहाँ आबादी नहीं है। वीरान जगह है, बाघ-भेड़िये घूमते रहते हैं। हमें ईश्वर ने सब कुछ दे रखा है, फिर क्या जरूरत है कि इस ढलती उम्र में आप वहाँ जाकर खतरा मोल लें ?" परन्तु परसराम को तो ज्यादा से ज्यादा जमीन और धन की चाह लगी थी। कड़ी मेहनत से वह जीवन में कभी पीछे हटा नहीं, उसे इसका फल भी मिला अतः अपने निश्चय पर अटल रहा। साथ में यथेष्ट रुपये लेकर गंगानगर के लिए रवाना हो गया। कई दिनों की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। काफी थक गया था, कुछ ज्वर भी हो आया। अगले दिन, अधिकारियों से मिला। पता चला कि जमीन की कीमत प्रति मुरब्बा सात-सौ रुपये हैं। नहर के किनारे चकबन्दी में जितनी चाहे उतनी खरीद सकता है। परन्तु नहर निकल आने पर तीन बर्षों के अन्दर ही जुताई शुरू कर देनी होगी और दस वर्ष तक वह किसी को जमीन बेच नहीं सकता। परसराम खेती की नस-नस पहचानता था। निजी अनुभव था। नहर के आने पर जमीन क्या-से-क्या हो जायेगी, वह जानता था। पंजाब से बहुत-से समृद्ध किसान भी इसी लिए आएं हुए थे। उसने सोचा, ज्यादा-से-ज्यादा ले ली जाय वरना मौका हाथ से निकल जायेगा।

उन दिनों, सवारियों की व्यवस्था वहाँ नहीं थी। बीमारी के बावजूद वह पैदल ही निकला और उसे अच्छी-से-अच्छी जमीन की जाँच के लिए दूर-दूर तक चलना भी पड़ा। कड़ी मेहनत से उसका बदन टूटने लगा, बुखार तेज हो गया, परन्तु जैसे ही लौटने की सोचता तो सामने और भी अच्छी जमीन नजर आती, बीमारी की परवाह न करके फिर आगे बढ़ जाता। जब वह डेरे पर वापस पहुँचा, उस समय उसकी हालत बहुत ही खराब हो गई थी।

समाचार पाकर चार-पांच दिन बाद जब उसकी पत्नी और पुत्र गांव से वहाँ पहुँचे तो उस समय वह सन्निपात में बड़बड़ा रहा था, "जमीन बहुत है......खूब पैदा होगी......अनाज की जगह......सरसों......कपास लगायेंगे ......" आदि।

जो भी थोड़ा-बहुत उपचार वहाँ सम्भव था, सब किया गया किन्तु वह बचाया न जा सका।

वहाँ के लोगों ने परसराम के पुत्र के हाथ से उसकी दाह-क्रिया करा दी। उसे मिली सिर्फ पांच हाथ जमीन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्राट और साधु

तेइस सौ वर्ष पहले की बात है, यूनानी विजेता सिकन्दर तुर्की, आदि देशों को रौंदता हुआ पंजाब और सिन्ध प्रान्त में पहुँच गया। उसके साथ साठ हजार फौज थी जिनमें प्रशिक्षित घुड़सवार, तीरन्दाज और पैदल सैनिक थे। इनके पास बेहतरीन किस्म के तीर-धनुष, भाले और तरह-तरह के नए हथियार थे। वर्षों पहले यूनान से रवाना हुआ, कहीं भी पराजय नहीं देखी, इसीलिए मनोबल ऊँचा था।

पंजाब में उस समय पुरु नाम का पराक्रमी और वीर राजा था। वह औरों की तरह सहज में ही परास्त न किया जा सका। अनेक प्रकार के छल-कपट और देशद्रोही सैनिक अधिकारियों से भेद लेकर सिकन्दर ने उसके राज्य को जीत लिया। वहाँ की व्यवस्था करने के बाद वह पाटलिपुत्र, मगध और वैशाली की ओर बढ़ना चाहता था जो उन दिनों भारत के समृद्धतम राज्यों में थे।

इसी बीच, उसने सुना कि रावी के तट पर एक त्रिकालदर्शी महात्मा रहते हैं। सिकन्दर के मन में उनसे मिलने की इच्छा हुई। दूसरे दिन अपने कुछ अधिकारियों को उन्हें बुलाने के लिए एक सुसज्जित रथ के साथ भेजा। साधु के आश्रम पर पहुँचकर उन्होंने सिकन्दर का सन्देश सुनाया। महात्माजी ने कहा भाई, मैं यहाँ वन में रहकर जितना हो पाता है परमात्मा के चिन्तन में लगा रहता हूँ। राजा-महाराजाओं को मुझ जैसे व्यक्तियों से भला क्या काम? सेना के अधिकारी पशोपेश में पड़ गये। सम्राट सिकन्दर महान के निमन्त्रण को आज तक किसी ने अस्वीकार करने का साहस नहीं किया था। उन्हें चिन्ता हुई कि वे क्या उत्तर देंगे। सिकन्दर के चलते समय यह भी कहा था कि सन्यासी से जोर-जबर्दस्ती न की जाय। उन लोगों ने बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु महात्मा जी नहीं गए।

डरते-डरते सैनिक अधिकारी सिकन्दर के शिविर में आए। सम्राट ने जब सुना कि उसके आदेश की अवज्ञा हुई तो नथुने फड़क उठे। महात्मा जी को हाजिर करने के लिए कड़क कर आदेश देने को था कि उसे अपने गुरु अरस्तु की बात याद आ गई। विश्व-विजय अभियान के पूर्व उसने कहा था कि भारत विचित्र देश है, धन-धान्य और शौर्य से पूरित; किन्तु वहाँ वैभव माना जाता है त्याग में, भोग में नहीं। तुम देखोगे कि वहाँ के लोग अध्यात्म चिन्तन में अतुलनीय हैं।

सिकन्दर ने सोचा कि गुरु की बात परखने का अच्छा मौका है। आदेश की प्रतीक्षा में खड़े अधिकारियों से गंभीरतापूर्वक इतना ही कहा कि वह खुद ही जायगा।

अगले दिन सैकड़ों घोड़ों, हाथी और सैनिकों के साथ वह महात्मा जी की पर्णकुटी पर पहुँचा। जाड़े के दिन थे, ठंड तेज हवा चल रही थी। वैसे भी पंजाब की सर्दी कड़ी होती है। उसने देखा, वे सिर्फ एक लंगोटी लगाए ध्यान में बैठे हैं। वह आगे बढ़ा और अपने सेनापतियों के साथ उनके बिल्कुल करीब आकर खड़ा हो गया, फिर भी महात्मा जी का ध्यान न टूटा। उनके मुखमण्डल पर ऐसी आभा दिखाई पड़ी कि विश्वविजेता सिकन्दर आत्म-विस्मृत-सा देखता रहा। कुछ देर बाद समाधि भंग हुई। उनके सामने भेंट लाए हुए फल-फूल, शाल-दुशाले, रत्नादि सोने के थालों में सजा कर रख दिए गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महात्मा जी ने कहा "भाई, ईश्वर के दिए ताजे फल मुझे वृक्षों से हमेशा मिल जाते हैं। माता रावी दूध के समान स्वच्छ जल पीने के लिए दे देती हैं। दिन में भगवान सूर्य गरमी पहुँचा देते हैं और रात में कुटी में जाकर वल्कल ओढ़ लेता हूँ। फिर भला, मुझे इन चीजों की क्या आवश्यकता है ?"

सिकन्दर ने कहा, "इतनी ठंड हवा चल रही है और आपके शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं, हम पाँच-पाँच गर्म कपड़े पहने हुए हैं, फिर भी सर्दी लग रही है।" महात्मा जी का उत्तर था, "राजन, यह तो अभ्यास की बात है; जैसे, तुम्हारी नाक और मुँह को ठंड सहने का अभ्यास हो गया है, वही बात मेरे सारे शरीर पर लागू होती है।"

सिकन्दर घुटने टेक कर उनके पास बैठ गया। वह कहने लगा, "महाराज, मैंने इतने सारे देश जीते, मेरे पास अपार धन राशि है और असंख्य दास-दासियाँ; फिर भी न जाने क्यों मेरे मन में अशान्ति बनी रहती है और अधिक पाने की लालसा मिटती नहीं।" महात्मा जी ने उसके ललाट की ओर देखते हुए कहा, "युवक सम्राट, जिसकी तृष्णा मिटी नहीं, वह चाहे कितना ही धनी हो, मन से भिक्षुक होता है; यह बात तुम्हारे लिए भी है। अपनी महात्वाकांक्षा के आवेश में तुमने इस छोटी सी आयु में कितनी महिलाओं को विधवा किया, कितने बच्चों को अनाथ बनाया, कितने गाँव और खेत उजाड़ दिए, मगर अतृप्त ही रहे ! अब भी तुम्हारे मन में इसी प्रकार की भूल करने की प्रवल इच्छा है। परन्तु यह सब किस लिए ? ये सारे धन दौलत, फौज, हथियार तुम्हारे काम नहीं आएंगे। तुम्हारे जीवन की घड़ी को एक पल भी नहीं बढ़ा पाएंगे।"

सिकन्दर के साथी आश्चर्य कर रहे थे कि जिसके सामने बड़े से बड़े पराक्रमी योद्धा, राजा और सम्राट सर झुकाते रहे, वह आज एक मामूली फकीर से हाथ बाँधे कह रहा है कि मेरा भविष्य क्या है, इसे बतानें की कृपा करें।

महात्मा जी थोड़ी देर मौन रहे। फिर उन्होंने कहा, "ऐसा लगता है कि जीवन की उपलब्धियों की सीमा पर अब तुम आ गए हो। इस समय तुम्हारी आयु ३३ वर्ष की है। आज से एक सौ बीस दिन बाद तुम्हारा ऐहिक जीवन समाप्त हो जायगा। दुर्योग से तुम अपने परिवारवालों से भी नहीं मिल पाओगे। क्योंकि तुम्हारी मृत्यु रास्ते में एक गांव में होगी। जीवन के इस थोड़े से समय को यदि भगवत् भजन और अच्छे कामों में लगा पाओ तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। आज तक जोर जुल्म कर बहुतो से लिया, अब जरूरतमन्दो को, दीन-दुखियों को देने का आयोजन करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। यह शाश्वत सत्य है कि धन और धरती किसी के साथ जाती नहीं। मनुष्य जैस खाली हाथ आता है, वैसे ही संसार से चला जाता है।"

महात्मा जी का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सिकन्दर महान विजय अभियान के लिए पूर्व की ओर न बढ़कर वहीं से वापस लौट गया। महात्मा जी के बताए हुए दिन उसकी मृत्यु हो जायगी, इसका एक भय-सा उसके मन पर छा गया।

कहा जाता है कि आखिरी दिनों में उसकें मनोभावों में परिवर्तन आ गए। वह पहले जैसा नहीं रह गया जिसकी भृकुटि मात्र से बड़े-बड़े सेनापति और राजा आतंकित हो उठले थे।

इतिहास प्रसिद्ध है कि वेबीलोन के एक गाव में मृत्यु के दिन सम्राट ने सभी प्रमुख दरबारियों एवं सेनानायकों को बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि सभी जवाहिरात, आभूषण, हाथी-घोडे, रथ और मेरी निजी तलवार को मृत्यु के बाद मेरे शव के पास सजा देना। ध्यान रहे, दोनों हाथ चादर से बाहर निकले रहें ताकि लोग देख सकें कि विश्वविजेता सम्राट सिकन्दर अपना समस्त वैभव पृथ्वी पर छोड़कर खाली हाथों जा रहा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सती

सन् १९६४ की बात है। संसद के कई मित्र सदस्यों के साथ राजस्थान के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करते हुए जोधपुर में ठहर गया। पता चला, पास ही मंडावर की ऐतिहासिक स्थली है।

अगले दिन, हम इसे देखने गए। वीरान सी जगह, लगता था जैसे अभिशापग्रस्त हो। पत्थर की छोटी-बड़ी बहुत सी छतरियां देखने में आईं। मकराने के बेहतरीन पत्थरों की बनी थीं, नक्काशी का काम भी इन पर उम्दा था।

एक स्थानीय वयोवृद्ध रामू जी दरोगा हमारे गाइड थे। मेरे एक मित्र ने इन्हें साथ कर दिया था। उन्होंने मुझे प्रायः सारी छतरियाँ दिखायीं। पिछले साठ वर्षों से वे इन छतरियों की देखरेख करते आ रहे हैं। मृत राजाओं की जन्मतिथि, राज्यकाल मृत्यु तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएं उन्हें कंठस्थ सी थीं।

लगभग चार सौ वर्षों से इस स्थान पर स्थानीय राजाओं की दाहक्रिया सम्पन्न होती रही है। उन्हीं की यादगार में ये छतरियाँ बनीं। कई एक, रेत से ढंकी सी थीं। कुछ पर झाड़ियाँ उग आई थीं। उपेक्षित और बेमरम्मत होने की वजह से ढह भी रही थीं।

ऐतिहासिक स्मारक एक बार तो मनुष्य को अपने युग में ले ही जाते हैं। उन्हें देखकर भावना और कल्पना के पंखों पर बैठा सुदूर अतीत की एक झांकी वह कुछ क्षणों के लिए पा जाता है। दिल्ली के लाल किले में जहाँ सल्तनते मुगलिया की शानोशौकत, के साथ 'बाअदब बामुलाहिजा होशियार' की गूंज दीवारों से निकलती है, वहीं अभागे दाराशिकोह के कटे सिर की अधखुली आंखे आज भी कुछ कह ही जाती हैं।

मंडावर का ऐतिहासिक वैभव इस टक्कर का नहीं है। फिर भी, राजस्थान के रजवाड़ों का एक ऐसा पृष्ठ यहाँ मेरी आँखों के सामने उभरा जो अब तक अन्यत्र कहीं मिला नहीं। एक बड़ी सी छतरी के पत्थरों पर नागरी में एक लेख देखा। पढ़ने पर पता चला कि अमुक महाराजा युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और प्रजावत्सल थे। उनके साथ तीन रानियाँ और बाइस दरोगनें सती हुईं। एक अन्य छतरी महाराजा अजित सिंह की यादगार में बनी थी। इसके शिलालेख में सहमरण की रानियों की संख्या थी छः और दरोगनों की बाइस। इस प्रकार विभिन्न छतरियों पर कम या अधिक संख्या का उल्लेख था।

बरबस खो सा गया, उस प्राचीन सामन्त-युग में। राजपूती आन ने धरती और धर्म के लिए सर भले ही कटा दिया, पर सर झुकाया नहीं। एक नहीं अनेकों दृष्टान्त हैं। चित्तौड़ की साकाओं का चित्र सामने अंकित हो आया। मैं सोचने लगा कि रानियों का सहमरण तो पत्नी होने के नाते तत्कालीन प्रथा और परम्पराओं के अनुसार गौरवपूर्ण माना जा सकता है। किन्तु दरोगनें स्वेच्छा से सती हुई या इन्हें विवश किया गया?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामूजी दारोगे के समक्ष मैने अपने प्रश्न रखे और यह भी पूछा कि यदि वाध्यतामूलक सहमरण रहा होगा तो विरोध भी होता था या नहीं ?

उन्होंने कहा—"यह सर्वविदित है कि मुगलों के सम्पर्क में आने के कारण राजपूत सामन्त एवं सरदार ऐय्याश एवं आराम-तलब हो गए। कामपिपासा की तृप्ति के लिए ज्यादा से ज्यादा रानियां, उपत्नियाँ और रखैले रख लेते। रनिवास में ऐसी औरतों की अधिकाधिक संख्या उनके पौरुष और वैभव का प्रतीक मानी जाती थी। यह प्रथा सत्रहवीं से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक प्रचलित रही। कहा जाता है कि जयपुर नरेश स्वर्गीय महाराज माधोसिंह की सब मिलाकर सात-आठ सौ रानियाँ और रखैलें थीं।"

इस प्रथा की शुरुआत के बारे में एक जनश्रुति उन्होंने बतायी—"राजपूतों में नियम था कि केवल रानियाँ ही पति के शव के साथ चिता में अपने को भस्म कर सती होने का गौरव प्राप्त करें। एक बार एक बड़े माने-जाने महाराजा की मृत्यु हो गई। युवराज को किसी मुसाहिब ने सुझाव दिया कि दिवगत महाराजा पुण्यात्मा थे। इसीलिए, आजीवन उन्होंने ऐश्वर्य भोग किया। अब उनकी मृत्यु के उपरान्त हमारा यह धर्म है कि परलोक में भी उनकी सेवा के लिए रनिवास की उनकी बांदियाँ भी भेज दी जाएं।

"बस, फौरन हुक्म हुआ कि आठ दस बांदियां महाराज के शव साथ जला दी जाएं। परम्परा बन गई। आगे चलकर तो पचास-साठ तक यह संख्या पहुंची। जिन औरतों को इस प्रकार जलाने के लिए बाध्य किया जाता, उनके पति और बच्चों का रोना-चीखना स्वाभाविक था। मगर उन दिनों परवाह ही कौन करता इन बातों की ? राज्य अपना, हुकूमत अपनी, सर उठाने की बात तो दूर, उंगली तक उठाने की हिम्मत किसी की नहीं होती थी ?"

कहते-कहते रामू जी की आवाज कांपने लगी, वे पास के एक चबूतरे पर बैठ गए। मैने समझा, वृद्ध शरीर है, थक गए होंगे। कुछ पूछना चाहता था कि देखा, उनकी आंखों से आंसू उमड़ रहे हैं। कहने लगे, "मेरी अभागिन परदादी की बात याद आ गई। उसे भी जबरन जलाया गया था।"

मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होंने यह घटना सुनायी—

"सन् १८०४ में जोधपुर में महाराजा भीम का राज्य था। उनके पास बड़ी-छोटी कुल मिलाकर सैकड़ों रानियां और रखैलें थीं, जिनमें उनकी अपनी समवयस्का से लेकर ४० वर्ष के अन्तर तक थीं। उस समय ऐसा रिवाज था कि जब कभी महाराज का मन हुआ, किसी छोटे-बड़े जमींदार की लड़की को मांग लेते। वह बेचारा कन्या ऋण से तो मुक्त होता ही, साथ ही लड़की को भी राजरानी देखने का स्वप्न देखता। दरबार में उसका रुतबा भी बढ़ जाता। इस प्रकार रानियों की एक बड़ी फौज महलों में एकट्ठी हो जाती। इन सबके साथ दरोगा जाति की कुंवारी कन्याएं भी दहेज में आतीं। उन सबका, नाम मात्र का विवाह तो उसी जाति के लड़को से कर दिया जाता, परन्तु वे रहतीं महाराज की रखैल के रूप में। इनमें से किसी-किसी के पास तो महाराजा दो-चार वर्षों में भी नहीं जा पाते थे।

"महाराज की आयु ६० वर्ष की हो गई थी। उनका शरीर अफीम, शराब और औरतों के कारण समय से पहले ही जर्जर हो गया। हकीमों, कविराजों की एक लम्बी कतार उनकी हाजिरी में रहती, जिनका काम था, उनके लिए ज्यादा से ज्यादा उत्तेजक और स्तंभक दवाइयां तैयार करते रहना।

"परन्तु जिसकी नींव खोखली हो गई हो, वह मकान भला कितने दिन टिक पाता ? आखिर, उन्हें असाध्य बीमारी ने धर दबोचा। सारे हकीम और वैद्य देखते रह गए। मृत्यु के कुछ दिनों पहले ही उन्होंने अपने मुसाहबों से सलाह करनी शुरू कर दी कि कौन-कौन सी रानियाँ और दरोगिनें उनकी परलोक सेवा के लिए सहमरण करेंगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"इधर, रानिवास में कोहराम मच गया, महाराज की जान से ज्यादा अपनी जान के लिए, जो छोटी सी उम्र की रानियाँ या दरोगने थीं; वे और भी ज्यादा डरती थीं, क्योंकि स्वर्ग में भी महाराज के लिए उनकी ही जरूरत समझी जाती थी। खैर, मृत्यु के समय महाराज ने श्रीमुख से रानियों के नाम बता दिये और प्रत्येक के साथ चार-चार दरोगनें सेवा के लिए।

"मेरी परदादी की आयु उस समय केवल १६ वर्ष की थी। विवाह हुए चार वर्ष हुए थे। केवल दो वर्ष का एक पुत्र था। पति और पुत्र को बहुत प्यार करती थी। महाराज की सेवा से छुट्टी मिलते ही दौड़कर घर आ जाती।

"जब उसे भी महाराज के साथ सहमरण का हुक्म हुआ तो वह सन्न रह गई। परदादा तो एक प्रकार विक्षिप्त से हो गए। दो दिनों तक पुत्र को छाती से लगाए इस क्षीण आशा में पड़ी रही कि शायद अन्तिम समय तक कुछ रद्दोबदल हो जाए। परन्तु कछ भी नहीं हुआ। रावले से १०-१५ व्यक्ति आये, उसे जबरन भांग, धतूरा और अफीम खिला दिया गया। स्नान कराके नए कपड़े पहना दिए और सजे हुए रथ पर बैठाकर श्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे। कहा जाता है कि किसी बहुत अशुभ घटना की आकांक्षा पशुओं और अबोध बच्चों को भी हो जाती। उस दिन मेरे दादा अपनी मां को किसी प्रकार भी छोड़ने को तैयार नहीं हुए। जब देर होने लगी तो दरबार के निर्दयी मुसाहिबों ने उसके जबड़ों पर जोर का मुक्का मारा, जिसके निशान उसकी मृत्यु पर्यन्त थे।

"श्मशान में पहले से ही तीस-पैंतीस स्त्रियां सुबुक-सुबुक कर रो रही थीं। लोग कह रहे थे कि महाराज के शोक में रोती हैं। सबनें कूसमल (लाल) रंग के नये कपड़े पहन रखे थे। हाथ-पैरों पर मेंहदी रची थी। सुहागन का बाना सजा हुआ था, क्योंकि वे अपने पति देवता से मिलने के लिए स्वर्ग जा रही थीं।

"चन्दन काठ की बहुत बड़ी चिता सजाई गई। पहले बड़ी महारानी को बैठाकर उनकी गोद में महाराजा का सिर रख दिया गया। चारों तरफ दूसरी रानियां बैठ गई। इनके पीछे गोलियों को बैठा दिया गया।

"पंडितों ने उच्च स्वरों में मन्त्रोचार आरम्भ किया। चिता में आग लगा दी गई करुणा- भरी चीख-पुकार सुनाई पड़ने लगी, परन्तु जोर-जोर से बजते हुए ढोल, नगारों और बाजों के शोर-शराबे में इनका कुछ भी पता नहीं चला। कहते हैं, मेरे परदादा अपने पुत्र को गोद में लिए वहीं खड़े हुए यह सब देख रहे थे। एक बार तो मेरी परदादी ने चिता से बाहर कूदने का प्रयत्न भी किया, परन्तु हत्यारों ने उसे बांसों से ढकेल कर चिता की तरफ कर दिया। धधकती आग में थोड़ी देर में ही सब कुछ स्वाहा हो गया।

"महाराज की जय हो, महाराज बड़े प्रतापी और पुण्यवान थे, इन आवाजों के साथ जो रानियां और दरोगने जला दी गई थीं, उनके पति, पुत्र और पुत्रियों की सिसकती आहें भी हवा मे फैल गई।"

आसू पोंछते हुए रामूजी कहने लगे, इन बातों को दोहराते समय घाव हरे हो जाते हैं।"

मैंने हाथ का सहारा देकर उन्हें उठाया। छतरियों के चबूतरे की सीढ़ियों से हम उतर रहे थे।

दिन ढल चुका था। ऐसा लगा कि अस्ताचल का सूर्य इन घटनाओं को सुनकर तेजी से कहीं दूर छिपना चाहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रतिशोध

राजस्थान में डूंगजी जुहारजी नाम के दो धाड़ैतों का उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरार्ध में बड़ा आतंक था। उनके नाम से ही लोग थर्राते थे। सैकड़ों आदमियों की बारात को वे दोनों दो, ही चार साथियों के साथ लूट लेते थे। परन्तु एक बात का उनके नियम था कि ब्राह्मण और अछूतों को कभी नहीं छेड़ते। कभी-कभी दूसरी जाति के लोग भी अपने को ब्राह्मण बताकर बच जाते। यह सब जानते हुए भी वे इसलिये उन्हें छोड़ देते कि कहीं भूल से भी ब्रह्महत्या का पाप न पड़े। इसके अलावा, ससुराल से पीहर जाती हुई लड़की को भी वे कभी नहीं सताते।

सन् १८५६-६० के आसपास की बात है। एक बार आगरे के पास वें पकड़े गये। कड़े पहरे में उन्हें वहाँ के केन्द्रीय कारागार में रखा गया। उस जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट था एक अंग्रेज। नाम था अलबर्ट, भयंकर क्रूर और परम दाम्भिक। कैदियों को नाना प्रकार की अमानुषिक यन्त्रणा देकर उन्हें सताने में उसे बड़ा मजा आता था।

डूंगजी-जुहारजी के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रखा था। अपनी कैद में उन्हें पाकर उसके मन की पाशविकता भड़क उठी। बहादुरी साबित करने के लिए दूसरे कैदियों के सामने उन्हें टूटी-फूटी हिन्दी में भद्दी और गन्दी गालियाँ दिया करता। कभी-कदाच दो-चार ठोंकरे भी मार देता। आँखों से अंगारे बरसते मगर वे मन मसोस कर रह जाते, उनके दोनों हाथों और पैरों में लोहे की मोटी-मोटी भारी बेड़ियां पड़ी थीं।

कैदियों के साथ रहने के कारण अलबर्ट बहुत सी देशी गालियां सीख गया था। एक दिन बड़े ही भद्दे तरीके से उसने जुहारजी को माँ-बहन की गाली दी। अपमान और क्रोध के आवेश में वे उछल पड़े, हाथ-पैरों की जंजीरें झनझना उठीं। दांत पीसते हुए उन्होंने कहा, "अगर मैने राजपूतनी का दूध पिया है तो इसका बदला तुझसे लूंगा, तेरे वंश को मिटाकर।"

अलबर्ट आग बबूला हो उठा। उसने जुहारजी की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि उनका सारा बदन सूज गया। इतना ही नहीं, उनके घावों पर उसने सबके सामने पेशाब भी किया।

ये खबरें जेल की ऊँची और मोटी दीवारों के बाहर फ़ैली और बढ़-चढ़ कर उनके साथियों के पास पहुँचीं। उन सबकी एक गुप्त बैठक हुई। चार आदमियों को डूंगजी-जुहारजी को जेल से बाहर निकालने का भार दिया गया। योजना बना ली गई और इसकी खबर जेल के अन्दर उन तक पहुँचा दी गयी।

अमावस की अँधेरी रात, घनघोर वर्षा। निश्चित समय पर चारो साथी जेल की दीवार के किमारे पहुँचे। कमन्दें डाल दी गयीं। डूंगजी-जुहारजी ने अन्य कैदियों के कन्धों पर चढ़कर छोरें पकड़ लीं। साथियों ने बाहर से रस्से खींचे। दीवार लांघ कर वे दोनों बाहर आ गये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अगले दिन जब अलबर्ट को पता चला तो उसके हाथ के तोते उड़ गए। उसकी कैद से निकल जाना मामूली बात नहीं थी। अपनी शान और इज्जत पर पहला प्रहार लगा देख वह तिलमिला उठा, मन में भय भी हुआ। "इसका बदला लूगा, तेरे वंश को मिटा कर" ये शब्द बार-बार उसके कानों में गूंज उठते। उसने पता लगाने की बहुत कोशिशें की। भेदिये छोड़े, इनाम की घोषणा की, गाँव उजाड़े, बेगुनाह लोगों को बहुत सताया, मगर डूंगजी-जुहारजी पकड़ में न आए; उनका कोई भी सुराग न मिल सका। आए दिन सरकारी खजाने लुट जाने लगे। साथ के सिपाहियों में इतना आतंक फैल गया कि वे इनका नाम सुनते ही माल-असबाब छोड़कर भाग खड़े होते।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के घर के आसपास छाया की तरह उनके आदमी मंडराने लगे। वह भी सतर्क रहने लगा। एक रात, पत्नी और बच्चें के साथ वह किसी जलसे में जा रहा था। बग्घी के आगे-पीछे हथियार-बन्द सिपाही घोड़ो पर थे। सुनसान सड़क, सनसनाती हवा चल रही थी। काफी दूर निकल जाने पर कुछ देहाती आग तापते मिले। गाड़ी इनके पास से होती हुई थोड़ी ही आगे बढ़ी होगी कि आँधी के वेग से साहब के सिपाहियों पर देहाती झपट पड़े। एक ने बग्घी पर चढ़ कर अलबर्ट की पिस्तौल छीन ली। सिपाही भाग चुके थे, कोचवान को धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया। गाड़ी लेकर वे बीहड़ जंगल के रास्ते बढ़ने लगे। साहब को अचानक इस हमले के कारण यह पता नहीं चला कि वे डूंगजी-जुहारजी के साथी हैं। वह चिल्ला-चिल्ला कर गालियां बक रहा था। अगले दिन फाँसी पर लटकाने की धमकी दे रहा था। इधर उसके हाथ-पैर मजबूत रस्सियों से बाँधे जा चुके थे। उसकी पत्नी सिमटी सी एक कोने में बैठी थी, बच्चा उसकी गोद में था।

आगरे से थोड़ी दूर जमुना और चम्बल की कटान के इतने गहरे खड्ड हैं कि उसमें हाथी भी छिप सकते हैं। इन्हीं के आस-पास की एक सड़क के किनारे गाड़ी खड़ी हुई। अलबर्ट और उसकी पत्नी की आँखों पर पट्टियां बाँध दी गयीं और उन्हें पैदल ले जाने लगे। काफी घुमावदार और ऊँची-नीची जगह थी। कहाँ से जाया जा रहा है, इसका अन्दाज तक लगाना सम्भव न था। एक निर्जन स्थान पर पहुँच कर उनकी पट्टियाँ खोल दी गयीं। गुफानुमा एक मकान के अन्दर पहुँच कर अलबर्ट ने देखा, मशालों की रोशनी के बीच एक ऊँची चौकी पर बैठे थे डूंगजी-जुहारजी। उनके इर्दगिर्द हाथों में भाले, तलवारें और बन्दूकों से लैस बीस-पच्चीस व्यक्ति आदेश की प्रतीक्षा में थे।

अलबर्ट को देखकर जुहारजी के ओठों पर मुस्कुराहट खेल गई। उन्होंने कहा, "आइये अलबर्ट साहब, बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए!" फिर गम्भीर गूंजती आवाज में उन्होंने कहा, "साहब, हम तुम्हारी कैद में थे, तुम्हारे कानून के लिहाज से सजा भुगत रहे थे। बेड़ियों में भी जकड़े थे। फिर भी, तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया!" उसकी ओर उंगली उठाकर कड़कती आवाज में बोले, "तुमने हमारी माँ-बहनों को गालियाँ दीं और हमारे घावों पर सब के सामने पेशाब किया!!"

साहब का कंठ तो इन्हें देखते ही सूख चुका था। उनकी आवाज से उसकी घिग्घी बँध गई।

जुहारजी ने हँसकर कहा, "कायर मरने से इतना डरता है? हमने सुना था कि अंग्रेजों की कौम बहादुर होती है, वे मरना जानते हैं। ऐसा लगता है, जरूर तुम उनमें से किसी नीच जाति के हो।"

जुहारजी ने साथियों की तरफ देखा। अभिप्राय समझकर उन्होंने राय दी कि अलबर्ट के शरीर को लोहे की गरम सलाखों से दागकर उसे भूखे भेड़ियों के बीच छोड़ दिया जाय। इस तरह दो-चार घंटों में इसके लोथड़े नुच जायेंगे और धीरे-धीरे प्राण भी निकल जायेंगे। इसकी पत्नी और बच्चे को पहले ही इसके सामने गोली से उड़ा दिया जाए।

अब जुहारजी ने बड़े भाई डूंगजी की ओर देखा। उनका निर्देश ही अन्तिम आदेश था। उन्होंने संयत भाव से कहा, "उस दिन तुमने इसके वंश को नाश करने का व्रत लिया था। इसलिए इसके पुत्र को मार डालना भी उचित है। किन्तु इस तीन वर्ष के अबोध बालक का कसूर क्या है ? अब रही इसकी पत्नी। सो, अब तक हमने किसी स्त्री की हत्या नहीं की। मेरी राय है कि इसे वापस सकुशल भेज दो। बच्चे को अपने पास रखकर ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाये कि इस प्रकार के घृणित अंग्रेजों से बदला लेने वाले सेनानियों में हमारे एक विश्वस्त साथी की संख्या बढ़े। इस प्रकार यह बच्चा इसका उत्तराधिकारी नहीं रहेगा। इसके गुण-दोष भी नहीं सीखेगा। वह हमारा होगा, हमारा रहेगा। इसका वंश ही मिट जायेगा। जहाँ तक अलबर्ट को मारने का सवाल है, दूसरों में दहशत पैदा करने के लिए दुश्मन को क्रुरता से मारा जाता है। इसलिए जिस बेरहमी से इसने और इसके तबके के लोगों ने हाल के गदर में हमारे आजादी के सिपाहियों को मारा है, उसका नमूना जरूर दिखाना चाहिए।"

थोड़े दिनों बाद, आगरे के अंग्रेज मुहल्ले में अलबर्ट का क्षत-विक्षत लाश टंगी मिली। आंखों की जगह दो जले गड्ढे थे और गले में तख्ती झूल रही थी। इस पर लिखा था, "आगरा सेन्ट्रल जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट अलबर्ट जिसने बहुत से बेकसूरों को सताया और देशभक्तों की आँखों में गरम सलाखें डलवाईं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इतिहास के निर्झर

साकूत वाचा

श्रीरामेश्वरजी टाँटिया बड़े सहृदय सैलानी, भावुक पर्यटक और जिज्ञासु घुमक्कड़ हैं। अपने विस्तृत व्यवसाय की व्यस्त वात्या से मुक्त होकर जब वे बाहर निकल पड़ते हैं तो सम्पूर्ण भू-प्रकृति, अपना समस्त भव्य वैभव, उनके जिज्ञासु मानस को गुदगुदाती चलती है, समग्र मानव-विभूति अपने समस्त भूत और वर्तमान प्रपंच के साथ अपनी मधुर और अमधुर गाथाएँ लेकर उनके मर्मस्थल को झकझोरने लगती है और व्यापक मानव-समाज अपनी विविधता के आडंबर में अपना कल्मष और अकल्मष लेकर उनकी बुद्धि को उद्वेलित करने लगता है। टाँटियाजी की दुर्बलता कहिए या उदारता, वे इस समस्त नैसर्गिक और मानवीय सृष्टि के कूट-अकूट अनुभवों को अपने हृदय में ही छिपाये रखने की कृपणता नहीं कर पाते। अपने अनुभवों में दूसरों को भी साझीदार बनाते चलने के लिए, अपने राग और विराग का रस दूसरों को भी देकर उन्हें भी विभावित कर डालने के लिए, टाँटियाजी का हृदय कुलबुला उठता है, मचल उठता है, व्याकुल और व्यग्र हो उठता है और इस सात्विक आकुलता में वे पुस्तक के रूप में अपना समस्त संचित अनुभव समेट कर सबके मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, भावपरिष्कार और मनस्तोष के लिए प्रकाशित कर डालते हैं।

इस संग्रह में संकलित कहानियाँ भी ऐसे ही पर्यटनों के अवसर पर अथवा व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन के माध्यम से संप्राप्त अनुश्रुतियों, जनश्रुतियों अथवा ऐतिहासिक गाथाओं का ऐसा भूतिमय भंडार है जिसमें उन तेजस्वी पुरुषों और मनस्विनी महिलाओं की ज्वलंत गाथाएँ हैं जिनकी उपेक्षा इतिहास-लेखक करना चाहें तो भले ही करें, किंतु कृतज्ञ और भावुक जन-मानस जिन्हें भुला सकने की धृष्टता और कृतघ्नता कभी नहीं कर पा सका। किसी सामान्य या विशेष अवसर पर, किसी सामान्य या विशेष व्यक्ति द्वारा सहसा कोई ऐसा अकल्पनीय कार्य हो जाता है कि युगों तक संसार भर का मानव-समाज आश्चर्य और श्रद्धा के साथ उसे सुनकर ही चकित रह जाता है कि क्या ऐसा भी संभव है ? किंतु हो जाता है यह सत्य है और आगे आनेवाली सारी पीढ़ी परंपराक्रम से कथा के रूप में, कविता के रूप में, नाटक के रूप में उस गाथा की आवृत्ति करता हुआ उसके द्वारा कृपण को उदार, कापुरुष को शूर और दुर्बल को पराक्रमी बनने की प्रेरणा देती रहती है।

'सत्य तो कल्पना से कहीं अधिक विचित्र होता है', इसलिए स्वभावतः किसी अकल्पित मार्मिक घटना के लिए कोई निश्चित कारण नहीं बताये जा सकते कि केवल अमुक परिस्थिति में ही, केवल अमुक प्रकार का व्यक्ति ही, अमुक प्रकार का व्यवहार कर सकता है। सत्य तो यह है अकस्मात् किसी ऐसे क्षेत्र के, किसी ऐसे सामान्य व्यक्ति के द्वारा कोई ऐसा अद्भुत कार्य हो निकलता है कि सम्पूर्ण मानव-समाज उसके त्याग और बलिदान की, उसके शौर्य और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मोत्सर्ग की गाथा सुनकर ही श्रद्धावनत हो उठता है। हमारा यह देश तो त्याग और तपस्या की उस गोद में पला है जहाँ स्वार्थ का कोई महत्व रहा ही नहीं। शिवि, दधीचि, हरिश्चद्र आदि ने वह साके कर दिखाये कि आज भी हमारा इतिहास उनकी अमर कहानी कह कर फूला नहीं समाता। किंतु राजस्थान, बुंदेलखंड, गुजरात और महाराष्ट्र ने तो इस युग में भी उन ज्वलंत गाथाओं को जिलाये रक्खा है जहाँ मृत्यु के भय से न पुरुषों को कभी आतंकित किया, न महिलाओं को और न बालक-बालिकाओं को ही। कैसी वह वीर जाति थी जो अपनी आन के लिए अपने प्राणों को कुछ नहीं समझती थी, जहाँ के वीर-बाँकुरे लड़ाई में लड़ते हुए प्राण-विसर्जन करने के लिए तरसते रहते थे, जहाँ की महिलाएँ अपने पतियों के स्वर्गस्थ हो जाने पर सोलह शृंगार करके हँसती हुई चिताओं पर कूद पड़ती थीं। टाँटियाजी ने राजस्थान, गुर्जर प्रदेश, महाराष्ट्र और बुंदेलखंड की ऐसी ही मर्मस्पर्शिणी गाथाओं का संकलन इस संग्रह में किया है। विस्मृत प्रेरक कालचक्र न तो मनुष्य की महत्ता को ही चिरजीवित रहने देता, न तो किसी घटना का वर्चस्व ही उसके चक्र से स्थिर रह पाता। इसलिए पुस्तक ही प्रारंभ से ऐसा साधन रहा है जिसके माध्यम से ऐसे महापुरुषों और सतियों की समुज्ज्वल गाथाओं को कालकवलित होने से बचाया जा सकता है। टाँटियाजी ने वही लोक-कल्याण का मार्ग अपनाया है और इस प्रयास के लिए वे निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

टाँटियाजी बहुश्रुत भी हैं, बहुपठ भी। उन्हें पुस्तकों से भी बहुत अधिक स्नेह है और सत्संग से भी। प्रायः सैलानी लोग नयन-सुख अधिक चाहते हैं और उसके साथ भोजन-सुख। ऐसे लोग अपने साथ कैमरा भी लिये रहते हैं और मनोरम दृश्य का चित्र संग्रह करके वे समझते हैं कि हमने यात्रा का फल पा लिया। किंतु वास्तविक पर्यटक वही है जो प्रत्येक नवीन स्थान, प्राचीन खंडहर, किसी देश के मानव-समाज के विषय में परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक होकर अपने कान भी खुले रखे, आतुर होकर उनके संबंध में प्रश्न भी करे और जान लेने पर विवेकपूर्वक उसकी वास्तविकता पर विचार भी करे। टाँटियाजी ऐसे ही जिज्ञासु पर्यटक हैं और इसीलिए इनकी कहानियों में वह जिज्ञासु-वृत्ति पग-पग पर प्रकट होती चलती है।

टाँटियाजी की भाषा में किसी प्रकार की बनावट, मिलावट, दिखावट या सजावट नहीं है। वे अत्यंत सीधी, सरल और सर्वबोध्य भाषा में इस प्रकार अपनी बात समुपस्थित करते चलते हैं कि किसी दृश्य या घटना से जो मार्मिक प्रतिक्रिया उनके मस्तिष्क और हृदय पर हुई है उस प्रतिक्रिया से पाठक भी अछूता न बचा रह जाए। इसलिए ये कथाएँ अधिक सुगमता से वाचनीय और हृदयंगमनीय हो गई हैं।

मैं हृदय से टाँटियाजी के इस सत्प्रयास की सराहना करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि भारतीय समाज इन ओजस्विनी गाथाओं से विभावित होकर अपने चरित्र का विकास कर सकेगा। मैं आशा करता हूँ कि हमारे शिक्षा-विधायकगण ऐसी पुस्तकों को छात्रों के हाथ में देकर उन छात्रों के साथ-साथ देश का भी बहुत अधिक कल्याण करेंगे।

उत्तर बेनिया बाग,
काशी

सीताराम चतुर्वेदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सती का शाप

पिछले वर्ष सौराष्ट्र की यात्रा के समय वहाँ के ऐतिहासिक शहर और किसी समय की गुर्जर देश की राजधानी अन्हिलवाड़ पाटन भी गया।

आज से १०००-१२०० वर्ष पहले यह बहुत बड़ा और भव्य शहर रहा होगा। परन्तु इस समय तो टूटे-फूटे खण्डहर, कुछ पुराने मन्दिर और कुएँ-बावड़ी बच गये हैं। अधिकांश पाटनवासी रोजगार-धन्धे के लिए अहमदाबाद, सूरत और बड़ौदा की तरफ चले गये हैं, इस लिए अब यह एक छोटा-सा कस्बा मात्र रह गया है।

मुन्शी जी के 'पाटन के प्रभुत्व' और 'गुजरात के नाथ' के कोट्यधीश सेठ सज्जन मेहता और मुंजाल मेहता के महल भी बड़े-बड़े भयावने खंडहरों में बदल गये हैं।

वहाँ पर जाने वाले पर्यटकों को एक विशाल तालाब अवश्य दिखाया जाता है। इसके चारों तरफ पक्का पुश्ता बँधा हुआ है। चार बड़ी-बड़ी कलात्मक मकराने पत्थरों की छतरिय हैं। घाटों की सीढ़ियाँ जैसलमेर के लाल-पीले पत्थरों से मढ़ी हुई हैं। यद्यपि वर्षा का मौसम था, परन्तु तालाब में पानी बिल्कुल नहीं था। कुछ गाय-भैंसें चारों तरफ घूम-फिर रही थीं

मैंने गाइड से इसके बारे में पूछा तो वह कुछ उदासी-भरे लहजे में कहने लगा कि यही दिखाने के लिए तो मैं आप को यहाँ लाया हूँ।

इस तालाब के चारों तरफ कँकरीला मैदान है, इसलिए वर्षा के दिनों में इसमें अथाह पानी आता है, परन्तु थोड़ी देर में ही सारा विलय हो जाता है। बड़े-बड़े इंजीनियरों ने इसकी जाँच की, पेंदें में बहुत-सी सीमेंट की ढलाई की, मजबूत पत्थर जड़े गये, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। हमारे यहाँ इसका नाम 'शापित तालाब' है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक कथा है।

आज से ८५० वर्ष पहले गुजरात में एक प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह का राज्य था। वे अपने शौर्य और दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। मुंजाल मेहता जैसा प्रतापी उनका प्रधानमन्त्री तथा काकभट्ट जैसा प्रसिद्ध योद्धा सेनापति था। एक से लेकर ग्यारह ध्वजा वाले वहाँ कई एक सेठ थे (एक ध्वजा एक करोड़ रुपये की कीमत की थी)।

जब जयसिंह छोट-सा बच्चा था, तभी उसके पिता कर्णदेव का देहान्त हो गया। माता मीनल देवी अत्यन्त चतुर, विदुषी परन्तु दुर्धर्ष थी। उनके कड़े नियंत्रण में रह कर जयसिंह अपने समय का प्रसिद्ध युद्ध-विशारद हुआ। गुजरात के नाथ के सिवाय उसे सिद्धराज भी कहा जाने लगा। पाटन की प्रभुता गुजरात के सिवाय अन्य दूसरे प्रान्तों में भी फैल गयी। कहा जाता है कि रुके हुए पानी का बाँध टूट जाता है तो फिर वह अत्यन्त वेग से बढ़ चलता है, किसी भी अवरोध अटक की परवाह नहीं करता कुछ ऐसा ही मीनल देवी के देहान्त के बाद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुआ। सिद्धराज जयसिंह के रण-वास में बहुत ही सुन्दर रानियाँ और दासियाँ थीं, परन्तु उसके मुसाहिब नित्य नई सुन्दरियों की खोज में रहते थे। आयु के साथ-साथ राजा की कामलिप्सा बढ़ती जा रही थी।

जूनागढ़ का राजा रा-खेंगार उस समय का अद्भुत वीर था। उसका किला पश्चिम भारत में ही नहीं, बल्कि देश के इने-गिने किलों में से था। रानी का नाम था राणकदेवी, जो अपनी सुन्दरता और शालीनता के लिए देशभर में प्रसिद्ध थी, दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने के लिए जूनागढ़ आते थे।

जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था, परन्तु वह हृदय से चाहती थी रा-खेंगार को। जयसिंह के कड़े अवरोध की बिना परवाह किये रा-खेंगार उसके साथ विवाह करके जूनागढ़ ले गया।

मन्त्रियों, सभासदों और सेनाध्यक्षों के विरोध के बावजूद जयसिंह ने एक बड़ी फौज लेकर जूनागढ़ के किले को घेर लिया। जब बहुत दिनों तक सफलता नहीं मिली और उसकी फौजें थकने लगीं, तब उसने वहाँ के किलेदार को मिलाकर किला फतह कर लिया। रा-खेंगार दूसरे साथियों के साथ बहादुरी से जूझता हुआ मारा गया। जिस समय जयसिंह राणकदेवी से मिलने के लिए किले में पहुँचा तो वहाँ महल के एक कोने में उस सती के जले हुए शरीर की राख की ढेरी मात्र थी। पैरों में महावर लगाकर और सोलह शृङ्गार करके सती अपने पति के सिर को गोद में लेकर भस्म हो गयी थी। उसके पैरों के निशानों को आज तक हजारों-लाखों सधवा और कुमारी कन्याएं पूजती हैं। मैंने जूनागढ़ में राणकदेवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज तक गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान में उसके नाम के गीत गाये जाते हैं।

कामी और क्रोधी की विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। बौखलाया हुआ जयसिंह और भी ज्यादा क्रूर और कामुक हो गया। रात-दिन प्रजा की बहू-बेटियों को फुसला-धमका कर महल में बुलाने लगा। पाटन में उसने अपने नाम पर एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाना शुरू किया। हजारों मजदूर-मजदूरनी माटी खोदने और ढोने के काम में लगे थे। राजा बीच-बीच में स्वयं वहाँ चला जाता था। एक दिन उसने देखा कि दो-चार मजदूर स्त्रियाँ मिट्टी की कठौती लिए चुहल करती जा रही हैं। उनमें से एक अत्यन्त सुन्दरी पर उसकी नजर टिक गई। यद्यपि उसके महल में देश भर की चुनी हुई सुन्दरियाँ थीं जिन्हें नाना प्रकार के उबटन और शृङ्गार से ज्यादा मोहक बनाने के प्रयत्न होते रहते थे, परन्तु उसे मिट्टी से सने चेहरे पर के पवित्र सौन्दर्य और कड़ी मेहनत से मँजे हुए सुडौल शरीर वाली गरीब युवती के वे सब पासंग में भी ठहरने लायक नहीं थीं। राजा ने पता लगाया कि उसका नाम जस्सो है, और उसका पति टिकू भी तालाब पर ही मजदूरी करता है। वे लोग दूसरे औड़ों (मिट्टी खोदने वालों की जाति) के साथ पश्चिमी राजस्थान से यहाँ आये हैं।

दूसरे दिन टिकू को बुलाकर मजदूरों का सरदार बना दिया गया। मजदूरी २ पैसे प्रतिदिन की जगह १० पैसे मिलने लगी (उस समय १ पैसे में ५ सेर अनाज मिलता था)। काम भी केवल दूसरे मजदूरों की सम्हाल रखना ही था। रहने के लिए तालाब के पास ही एक अलग झोंपड़ा मिल गया।

राजा के मुसाहिब जस्सो के लिए कुछ न कुछ भेंट-सौगात लाने लगे।

वे बेचारे देहाती इन सब कुचालों को क्या समझते? उन्हें लगा कि परमात्मा ने उनके कष्ट के दिन दूर कर दिये। अब कमाई में से बचाकर कुछ देश में अपने वृद्ध माता-पिता को भेज सकेंगे।

एक दिन राजा के यहाँ से एक दासी आई और टिकू से कहने लगी कि महाराजा के महल में एक दासी की आवश्यकता है। जस्सो को वह काम मिल सकता है। १० पैसे रोजाना मेहनताना के सिवाय रोटी-कपड़े भी मिलेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टिकू तो राजी हो गया। सोचा बेचारी सारे दिन कड़ी मेहनत से थक जाती है। वहाँ आराम से रहेगी, परन्तु न जाने क्यों जस्सो के मन में कुछ अशुभ का सा आभास हुआ। उसने पति के पास रहकर मिट्टी ढोने का काम ही करना चाहा। पर भला पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर कैसे निभता ?

दो-तीन दिन बाद राजा के सिपाही टिकू और जस्सो को पकड़कर महल में ले गये। पहले तो हर प्रकार से उन दोनों को अलग-अलग समझाया गया। नाना प्रकार के प्रलोभन दिये गये, परन्तु जब वे किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए तो राजा को क्रोध आ गया और टिकू को जस्सो के सामने खड़ा करके कोड़े मारने की आज्ञा दी। कोड़ों की मार से टिकू लहू-लुहान होकर बेहोशी में एक तरफ लुढ़क गया। मुँह से खून आता देखकर जस्सो ने समझा कि वह मर गया है।

घर से आते समय वह अपनी चोली में एक तेज कटार ले गई थी। उसे छाती में भोंकते हुए उसने कहा—"हे दुष्ट और कामी राजा, यदि मैं मन, वचन और कर्म से पवित्र हूँ तो तुझे श्राप देती हूँ कि तेरे इस बड़े तालाब में एक घड़ा पानी भी नहीं ठहरेगा, चाहे कितनी ही वर्षा हो। लोग जब इस सुन्दर और बड़े तालाब को सूखा देखेंगे तो तेरे इस दुष्कर्म की याद करके युग-युग तक तुझे शाप देते रहेंगे। यही नहीं, तेरे इस बड़े राज्य को भोगने वाला वंशधर भी नहीं पैदा होगा।"

सती के दोनों शाप सत्य हुए। जयसिंह को पुत्र नहीं हुआ। उसका राज्य उसके प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र कुमारपाल को मिला।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गोगा-बापा

राजस्थान के शौर्य और बलिदानों का इतिहास विश्व में बेजोड़ माना जाता है। सम्मान और सतीत्व की रक्षा के लिए बच्चों को गोद में लिए हुए हजारों महिलाओं का धधकती आग में कूदकर प्राण दे देना, अपने-आप में एक अद्वितीय दृष्टांत है। भारत के सिवा ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व में और कहीं मिल पायेंगे। रणथंभौर और चित्तौड़ में इस प्रकार के कई जौहर हुए हैं। सबसे पहला जौहर बीकानेर के भादरा गाँव के पास गोगामढ़ी में सन् १०२४ में हुआ था। इसमें ७०० कुलवधुएँ अपने बच्चों को गोद में लिए हुए जलकर भस्म हो गई थीं। जब ग़जनी की फौज़ गोगामढ़ी में पहुंची तो उसे राख की ढेरी, कुछ अधजले मांस के लोथड़े और उन पर मंडराते हुए गिद्ध दिखाई दिए थे।

गोगामढ़ी के चौहान सरदार गोगाजी का अद्‌भुत इतिहास है। यूरोप के १२ वीं शताब्दी के क्रुसेड अभियान के कई एक नेता, भारत के जयमल, फत्ता और वीर चूड़ावत सरदार के बलिदानों से भी गोगाजी का बलिदान अधिक उज्ज्वल और अनोखा है।

मुहम्मद गजनवी की पचास हजार की सुसज्जित फौज के डर से लोहकोट (लाहौर) और मुलतान के हिन्दू राजा मुँह में तिनका लेकर अपनी फौज सहित उसके साथ हो गये थे। रास्ते के सामन्तों की बिसात ही क्या थी? मरुभूमि की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते उसके पास तीस हजार सवार और पचास हजार पैदल फौज थी।

जहाँ तक संभव हुआ, मुहम्मद रास्ते के सामन्तों से समझौता करता हुआ, सोमनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति ध्वंस करने के लिए आगे बढ़ रहा था। उसने गुर्जर देश की समृद्धि के बारे में सुन रखा था। वहाँ जाकर सिपाहियों को लूट का लालच था और गजनवी को महादेव की मूर्ति तोड़कर गाजी बनने का।

उसे भाटी प्रदेश (इस समय का बीकानेर क्षेत्र) होते हुए जालौर मारवाड़ के मार्ग से गुजरात सौराष्ट्र जाना था। रास्ते में गोगामढ़ी थी, वहाँ के वृद्ध सरदार गोगाजी की यशोगाथा उसने सुन रखी थी।

गजनवी ने एक देश-धर्मद्रोही तिलक नाम के भारतीय के साथ अपने सेनापति सालार महम्मद को गोगा-बापा के पास हीरे-जवाहरातों का थाल देकर भेजा। उसने कहा कि अमीर गजनवी अपनी फौजों के साथ आपके क्षेत्र से होकर प्रभास-पाटन जा रहा है, उसे आपकी सहायता चाहिए।

नब्बे वर्ष के गोगा-बापा का शरीर क्रोध से काँपने लगा। गम्भीर गर्जन करते हुए उन्होंने कहा –"तेरा अमीर भगवान सोमनाथ के विग्रह को तोड़ने जा रहा है और मुझसे सहायता मांगता है! तू हिन्दू होकर उसकी हिमायत के लिए आया है!! जा, अपने मालिक से कह दे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि गोगा-बापा रास्ता नहीं देगा।" यह कह कर उन्होंने हीरे-मोतियों के थाल को ठोकर से दूर फेंक दिया।

बापा के इक्कीस पुत्र, चौहत्तर पौत्र और सवा सौ प्रपौत्र थे। इनके सिवा उनके पास नौ सौ-शूरवीरों की छोटी-सी सेना थी। पन्द्रह दिनों तक तैयारी होती रही। गढ़ की मरम्मत हुई। हथियार संवारे गये। चण्डी का और महारुद्र का पाठ होने लगा। एक दिन देखा कि गजनवी की फौजें एक विशाल अजगर की तरह सरकती हुई गोगामढ़ी से आगे निकल रही हैं। शायद वह बापा से उलझना नहीं चाहता था।

प्रधान पुजारी नन्दीदत्त ने कहा—"बापा संकट टल गया है—यवन फौजें आगे बढ़ती जा रही हैं।" बापा की सफेद मूँछें और दाढ़ी फड़कने लगी।

उन्होंने कहा—"महाराज, हमारे शरीर में रक्त की एक बूँद के रहते भगवान शंकर के विध्वंस के लिए म्लेच्छ कैसे जा सकता है? हम लोग उनका पीछा करेंगे। आप गढ़ी में रहकर महिलाओं और बच्चों की सद्गति कर दें। ऐसा न हो कि उनके हाथों में मेरे वंश का कोई जीवित व्यक्ति पड़ जाय।"

युद्ध की तैयारी के बाजे बजे। घोड़े और ऊँट सजाये गये। केसरिया बाना पहने ११०० वीर हाथों में तलवार, तीर और फरसे लिये हुए गजनवी की सवा लाख फौज को विध्वंस करने चले।

दस वर्ष से छोटे बच्चों और स्त्रियों की एक बड़ी चिता तैयार करके पुरोहित नन्ददत्त ने उसमें अग्नि प्रज्वलित कर दी। उसका अपना जवान पुत्र तो बापा के साथ जूझने चला गया था। पत्नी, पुत्र-वधू और बच्चे सब जौहर की आग में कूद गये।

गढ़ के नीचे खड़ी यवन सेना देख रही थी कि तीर की तरह तेजी से केसरिया वस्त्रों में थोड़े से वीर आ रहे हैं। 'अल्लाह हो अकबर' की गर्जना हुई। हरी पगड़ी और लाल दाढ़ीवाला अमीर हाथी पर चढ़ा हुआ अपनी फौजों को बढ़ावा देने लगा।

नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध बापा बिजली की तरह कड़ककर यवन फौजों का नाश कर रहे थे। एक बार तो गज़नवी की फौज में तहलका मच गया, परन्तु संख्या का और साज-सामान का इतना अन्तर था कि दो घड़ी में सारे के सारे चौहान वीरगति को प्राप्त हो गये। दुश्मन के दसगुने आदमी मारे गये। गोगाबापा के वंश में बच गया एक पौत्र सज्जन और उसका पुत्र सामन्त। वे दोनों मुहम्मद के आक्रमण की अग्रिम सूचना देने प्रभास पाटन गए हुए थे। वापस आते समय उन्होंने रास्ते में भागते हुए लोगों से सारी बातें सुनीं। एक बार तो दुख से रोने लगे, परन्तु तुरन्त ही संभलकर अपना कर्तव्य निश्चित किया। सामन्त तेज ऊँटनी पर चढ़कर गुर्जर नरेश भीमदेव के पास चला गया।

सज्जन चौहान जालौर के रावल से मिलने गये। बहुत समझाने-बुझाने पर भी रावल नहीं माने। उन्होंने कुछ दिन पहले ही गजनवी के दूत को रास्ता देने की स्वीकृति दे दी थी। उनका कहना था कि गुर्जर नरेश भीमदेव इतना अभिमानी हो गया है कि हम लोगों को कुछ गिनता ही नहीं। अब जब उस पर संकट आया है तो मैं क्यों उसकी सहायता करूँ? सज्जन ने बहुत-कुछ समझाया कि 'महाराज, यह तो भीमदेव और आपके वैमनस्य का प्रश्न नहीं है। देश-धर्म पर संकट आया है! इस समय पारस्परिक भेदभाव को भूल कर यवनों का नाश करना चाहिए।' इस पर भी जब रावल नहीं माना तो व्यर्थ में देर न करके सज्जन ने अपनी ऊँटनी गजनवी की फौजों की तरफ बढ़ा दी। तीन-चार दिन तेजी से चलने पर उसे गजनवी का दूत अपने सैनिकों की टुकड़ी के साथ मिला। सात आदमियों सहित उसको मारकर रावल का स्वीकृति-पत्र, दूत की कटार और गुप्त निशान लेकर वह गजनवी की फौजों की तरफ बढ़ा। उस समय तक उसकी फौज में तीस हजार घुड़सवार, पचास हजार तीरंदाज और तीन सौ हाथी थे। चार हजार ऊँटों पर केवल रसद और पानी था। इसके पहले इतनी बड़ी फौज किसी भी सम्राट के पास नहीं सुनी गयी थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नायक को उसने निशान दिखाया। वह गजनवी के पास ले जाया गया।

एक बडे तख्त पर अमीर बैठा था। चारों तरफ नंगी तलवारें लिये तातारी सिपाही खड़े थे। सज्जन ने दुभाषिये के माध्यम से बताया कि आपके दूत को रक्षकों सहित जालौर के रावल ने मार दिया है। रावल और मारवाड़ के राजा रणमल्ल की सम्मिलित फौजें लड़ाई के लिए तैयार हैं। निशानी के लिए दूत की कटार गजनवी के पैरों के पास रख दी। तीन-चार दिन के थके हुए और भूखे चौहान की बातों पर मुहम्मद को यकीन आ गया।

उसने अपना परिचय जैसलमेर के एक जागीरदार के रूप में दिया और कहा कि अगर अमीर चाहें तो वह उन्हें सीधे रास्ते से केवल बीस-बाइस दिनों में सोमनाथ पहुँचा सकता है। उस रास्ते पर किसी प्रकार की रोक-थाम का अंदेशा भी नहीं है। इसके बदले में उसने अपनी जागीर के पास के एक सौ गाँव चाहे। इतनी अच्छी तरह से उसने रास्ते के गाँव और खेड़ों का परिचय दिया कि सेनापति तथा अन्य हलकारे उसकी बात को प्रामाणिक मान गये।

दूसरे दिन गजनवी ने अपनी फौजों को रास्ता बदलने का हुक्म दे दिया। अब वे सीधे कोलायत, बाप और जैसलमेर के रेगिस्तान होकर जाने लगे। सज्जन अपनी प्रिय ऊँटनी पर सबके आगे चला। चार दिन की यात्रा के बाद हलकारों ने शोर मचाना शुरू किया कि आगे बीहड़ रेगिस्तान है जहाँ आदमी तो क्या पक्षी भी नहीं जा सकते। सेनापति सालार महमूद ने सज्जन को धमकाया, परन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहा। वापस जाने में फिर पाँच दिन लगते, इसलिए हिम्मत करके वे आगे बढ़े। पाँचवें दिन दोपहर होते ही सामने भयानक अंधड आता हुआ दिखाई दिया। जलती हुई गरम रेत मुँह बाए हुए राक्षसी-सी बड़े वेग से बढ़ रही थी। चौहान की ऊँटनी जान की जोखिम लेकर तेजी से बढ़ने लगी। पीछे-पीछे मुहम्मद की सेना। थोड़ी देर में ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। गर्म रेत के उमड़ते हुए ढेर के ढेर पशुओं और मनुष्यों को अंधा बनाने लगे। फौज बेतहाशा पीछे लौटी, परन्तु प्रलयकारी तूफान की सी तेजी थके-मांदे पशुओं में कहाँ से आती? दसों हजार ऊँट-हाथी और सिपाही गरम रेत के नीचे दबकर मर गये। जो बचे, उनमें से बहुतों को रात में बिलों में से निकले हुए क्रुद्ध काले-पीले साँपों ने डस लिया। ऐसा लगता था कि शिव ने अपने गणों को यवनों की फौज का नाश करने के लिए भेजा है।

वीर चौहान ने भी अपनी ऊँटनी सहित वहीं मरु-समाधि ली। उसके चेहरे पर उल्लास और आनन्द था कि उसने दुश्मनों को इस प्रकार समाप्त कर दिया।

गोपा-बापा और उसके वंशजों की पुण्य कहानी यहीं समाप्त हो जाती है। उनका यशोगान उत्तर भारत के हर व्यक्ति की जबान पर आज भी है। भाद्र मास में गोगामढ़ी में उनकी पुण्य-स्मृति में एक बड़ा मेला लगता है। मुहम्मद ने अपनी बची हुई सेना को सँभाल कर किस प्रकार जालौर-मारवाड़ के रास्ते में सोमनाथ पर हमला किया, यह कथा देश के इतिहास में प्रामाणिक रूप से उल्लिखित है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपूर्व त्याग

भीष्म की प्रतिज्ञा और त्याग सर्वविदित है। १५वीं शताब्दी की एक ऐतिहासिक कथा इसी प्रकार की है। मेवाड़ के राणाओं में सांगा, कुम्भा, प्रताप और राजसिंह के नाम वीरता और देशभक्ति में बड़े गौरव से लिए जाते हैं। उसी तरह राणा लाखा का नाम वीरता के साथ-साथ दानियों में लिया जाता है। अलाउद्दीन खिलजी के तोड़े हुए मन्दिरों का इन्होंने पुनर्निर्माण कराया, बहुत से नए मंदिर, कुएँ और बावड़ियाँ बनवाईं। पिछोला झील इन्हीं के समय में बनी थी।

सन् १४१३ की बात है—लाखा को गद्दी पर बैठे ३० वर्ष हो चुके थे। वृद्ध हो गये थे दाढ़ी मूँछें सफेद हो गई थीं, चेहरे पर सलवटें पड़ गई थीं। राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र चण्ड को सौंपकर पहाड़ों में तपस्या के लिए जाने का विचार कर रहे थे।

एक दिन सरदारों से घिरे हुए चितौड़ के किले के दरबार में बैठे थे। युवराज चण्ड अभी तक नहीं आया था।

उसी समय मारवाड़ का दूत आया और कहने लगा—महाराणाजी, मारवाड़पति महाराज रणमल ने अपनी प्रिय बहिन हंसा का युवराज चण्ड के साथ विवाह के अभिप्राय से नारियल भेजा हैं। कृपया स्वीकार करके मारवाड़ का गौरव बढ़ावें। राजकुमारी रूप और गुणों में सब प्रकार से युवराज के अनुरूप है।

महाराणा ने सारी बात ध्यान से सुनी फिर अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए हँसकर कहा कि क्या आपके महाराज हमारे जैसे वृद्धों पर यह कृपा नहीं करेंगे। जब इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी हो रही थी, राजकुमार सभा में आया। राणा की कही हुई बात उन्होंने सुनी। इस परिहास की बात को सुनकर वह गम्भीर चिंता में हो गये। सोचने लगे कि मारवाड़ की राजकुमारी के लिए स्वयं महाराणा ने इच्छा व्यक्त कर दी, अब वह मेरी माता के तुल्य हो गयी है। भला अब मैं उसे अपनी पत्नी के रूप में कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।

राणाजी ने युवराज को बहुत प्रकार से समझाया। कहने लगे कि साधारण हँसी में कही हुई बात को तुम इतनी गम्भीरता से क्यों लेते हो। भला यह भी कोई अस्वीकृति का कारण है।

परन्तु चण्ड अपने निर्णय पर दृढ़ रहा। राणा ने क्रुद्ध होकर कहा कि आज तक तुमने मेरी आज्ञा का उल्लघंन नहीं किया, फिर आज क्यों इस प्रकार का हठ कर रहे हो। आज मारवाड़ हमारा मित्र राज्य है, परन्तु इस अपमान के बाद वे शत्रु हो जायेंगे। दोनों राज्यों में युद्ध होकर हजारों वीरों की मृत्यु अवश्यम्भावी है। पहले से ही तुगलकों की हमारे पर नजर है, फिर इस हालत में हम मारवाड़ से बैर कैसे ले सकेंगे। अगर मैं अपने लिए टीका मंजूर करता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
भी हूँ तो मारवाड़-नरेश अपनी प्रिय बहिन का मुझ जैसे वृद्ध के साथ विवाह करके उसे क्या दुखी बनायेंगे ?

पिताजी मेरा निश्चय तो अटल है, अगर वे आपका रिश्ता मंजूर नहीं करते हैं तो मैं युद्ध करके उनकी बहिन को लाकर आपके चरणों पर गिरा दूँगा ।

राणा उद्विग्न होकर कहने लगे—"अगर तुम इसी बात पर अड़े हुए हो तो तुम्हें यह राज्य भी त्याग करना होगा । मारवाड़ की राजकुमारी से जो पुत्र होगा, वही मेवाड़ का राणा होगा, बोलो यह मंजूर है ?"

"हाँ, महाराज मुझे मंजूर है ।"

दूत ने मण्डावर जाकर सारी बातें रणमल से कहीं । १४ वर्ष की राजकुमारी हंसा का विवाह ६० वर्ष के वृद्ध राणा से हो गया । उन दिनों राजाओं में इस प्रकार बेमेल विवाह होते भी थे ।

दूसरे वर्ष एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मोकल रखा गया । उसका लालन-पालन भविष्य के मेवाड़ के अधिपति की तरह होने लगा । मोकलजी पाँच वर्ष के हुए तब गया तीर्थ पर तुगलकों के आक्रमण की सूचना मिली । राणा लाखा ने कुमार चण्ड और सरदारों को अपनी चुनी हुई सेना के साथ इस धर्मयुद्ध में शामिल होने का निर्णय बताया । कहने लगे—तुर्कों की बड़ी सेना से हम एक प्रकार से केशरियां पहिनकर साका (मरने का निश्चय) करने जा रहे हैं । मुझे केवल एक ही चिन्ता है कि मेरे पीछे बालक मोकल का क्या होगा ?

राणा को भय था कि सरदार सब चण्ड की तरफ हैं, वह अपूर्व वीर है, शायद बालक मोकल को मारकर स्वयं गद्दी पर बैठ जायेगा । प्रिय पत्नी हंसा की भी दुर्गति होगी ।

चण्ड समझ गया कि महाराणा का इशारा उसकी तरफ था । उसने खड़े होकर कहा—"महाराज आप मोकल जी की चिन्ता न करें, वे मेवाड़ के महाराणा होंगे । हम सब उनके राज्य और मान के लिए जरूरत पड़ने पर जीवन की आहुति देंगे । अच्छा होगा, आपके सामने ही उन्हें राजतिलक कर दिया जाय ।"

राणा तो मन से यही चाहते थे । दो-चार दिनों में तिलक की रस्म बडी धमधाम से हुई । सबसे पहले युवराज चण्ड ने राज्यभक्ति की शपथ खाकर बालक मोकल का अभ्यर्थना की । चण्ड के इस अद्भुत त्याग की पावन कथा आज भी राजस्थान में बड़े गर्व से कही जाती है । मेवाड़ राज्य का हरा वल उसी के वंशधरों के पास रहता है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चित्तौड़ का तीसरा साका

सन् १९६४ में भारत के विभिन्न प्रदेशों के हम पचास संसद-सदस्य चित्तौड़ गए थे। वैसे तो सारा गढ़ ही अनूठा है, किन्तु सूरजपोल और किले का भीतरी आंगन विशेष रूप से पवित्र है, क्योंकि यहाँ तीन बार "जौहर" हुआ, इन्हें देखकर मन में एक सिहरन-सी हो उठती है।

केरल से हिमांचल प्रदेश तक के संसद-सदस्यों के हमारे दल में महिला सदस्याएँ भी थीं। राजस्थान सरकार ने सुचारु व्यवस्था की दी थी। प्रदेश के पर्यटन विभाग के मंत्री के अतिरिक्त स्थानीय अधिकारी एवं सुदक्ष गाइड भी साथ थे।

चित्तौड़गढ़ अपने आपमें गौरवमय इतिहास की परतों को समेटे हुए है। सूरजपोल उसका मुख्य दरवाजा है। पिछले आठ सौ वर्षों में इसने बहुत सी लड़ाइयाँ और तीन प्रसिद्ध "साका" देखे। "परिचय-पत्रिका" हमे पहले से दे दी गई थी, फिर भी गाइडों ने जो कुछ भी बताया, वह काफ़ी लोमहर्षक रहा।

मेवाड़ के इतिहास में प्रतापी प्रताप का शौर्य स्वर्णाक्षरों में रहेगा। आश्चर्य है कि राणा उदय सिंह जैसे विलासी और भीरु को प्रताप सा सिंहपुरुष पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ। शायद राणा सांगा की आत्मा इसे सहन न कर सकी और सिसौदियों की आन अक्षुण्ण रखने के लिए उन्हें प्रताप बन फिर से आना पड़ा।

सन् १५४० में उदयसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। दिल्लीश्वर हुमायूँ उन दिनों दर-दर की ठोकरें खा रहे थे। राजस्थान इसीलिए मुग़ल आक्रमण से बचा था। उदयसिंह निश्चिन्त थे, भोग-विलास में भरपूर डूबे हुए।

पानीपत की दूसरी लड़ाई में अकबर ने हेमू को पराजित किया। महत्वाकांक्षी अकबर राज्य-विस्तार में योजनाबद्ध रूप से लग गया। युद्ध और कूटनीति की दुधारी तलवार से वह सफलता की सीढ़ियों को पार करता गया। आमेर के राजा भारमल की कन्या जोधाबाई से विवाह कर राजपूतों के एक बड़े वर्ग की सहानुभूति उसे मिली। बाप्पा रावल के वंशज महाराणा उदयसिंह ने समय के संकेत को पहचानने की कोशिश नहीं की। सन् १५६७ तक अकबर ने संपूर्ण राजस्थान पर विजय प्राप्त कर ली, केवल चित्तौड़ बच रहा। अकबर मेवाड़ी तलवार के पानी को समझता था। उसने तैयारियाँ शुरू कर दीं और स्वयं एक बड़ी फौज लेकर चित्तौड़ पर चढ़ आया। उसकी सेना में तुर्क-पठानों के अलावा बहुत बड़ी संख्या में देशद्रोही राजपूत भी थे।

मेवाड़ी सामन्तों ने महाराणा को सलाह दी कि शाही फौज का मुकाबला उनके नेतृत्व में किया जाय। चित्तौड़ की यही परम्परा रही है, किन्तु सब व्यर्थ गया। उदयसिंह चुपचाप अपने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रनिवास के साथ दूर अरावली की पहाडियों में जा छिपे। मेवाड़ के लिए यह पहला अवसर था जब उसका नेता ही भाग खड़ा हुआ।

स्वदेश-भक्त राजपूत वीरों ने निर्णय लिया कि वे भागेंगे नहीं; बल्कि मुगलों का मुकाबला डटकर करेंगे। आसपास के सामन्त और सरदार अपनी-अपनी फौज की टुकड़ियों को लेकर चित्तौड़गढ़ में आ गये। अकबर की अपार सेना के सामने मुट्ठी भर राजपूत! मृत्यु का साक्षात् वरण ही कहा जायगा। इतिहास में ऐसे उदाहरण यूरोप के पूर्वमध्यकालीन क्रूसेड (धर्मयुद्ध) के ही मिलते हैं जिनमें अपने देश, धर्म एवं तीर्थ की रक्षा करने के लिए ईसाइयों ने जान-बूझकर मुस्लिम अत्याचारियों से वीरतापूर्वक जूझते हुए मौत को गले लगाया था।

चित्तौड़ के इस युद्ध में जूझने वाले सभी राजपूतों की वीरता अद्भुत थी। शायद ही कोई वीर बचा। इसे चित्तौड़ का तीसरा "साका" कहा जाता है। बिदनौर के सरदार जयमल और बेलवाड़ा के किशोर सरदार पत्ता ने आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ा दिये। बहुत दिनों तक घेरा डालने पर भी अकबर जब गढ़ में प्रवेश नहीं कर पाया तो उसने अपनी सेना के मुख्य भाग को गढ़ के प्रमुख द्वार सूरजपोल पर भीषण आक्रमण करने का आदेश दिया। यहाँ चन्द्रावत सरदार साहीदास अपने साथियों की एक छोटी-सी टुकड़ी के साथ रक्षा का दायित्व सम्हाले था। मुगल सेना ने जबर्दस्त हमला बोल दिया। साहीदास के गिने-चुने साथी कब तक टिकते। एक-एक कर सभी वीरगति को प्राप्त हुए। फिर भी मुगल दुर्ग में प्रवेश नहीं कर पाये।

इसी तरह भदारिया का रावत दूदा बेदला; कोठरी और बिजोली के सरदार तथा सादड़ी के झाला—सब अपने साथियों के साथ जूझते हुए बलिदान हो गये। ऐसे संकट के समय चूड़ावत रानी ने अपने किशोर पुत्र पत्ता और पुत्रवधू के साथ वीरवेश में दुर्ग-द्वार की रक्षा का भार सम्भाला। दोनों वीरांगनाएँ कवच पहने हाथों में नंगी तलवार लिए डट गईं। मौत सामने मुस्कुरा रही थी, किन्तु रानी एक मात्र पुत्र को रणसंचालन के लिए प्रोत्साहित करती रही। उसके साथ ही अपना जीवन उत्सर्ग करना चाहती थी, न कि जौहर की ज्वाला में। रानी के युद्ध कौशल को देखकर शत्रु भी चकित रह गए। रणचण्डी की तरह जिधर जाती, नरमुण्ड कट-कट कर गिरते। शत्रुदल लहरों की तरह बढ़ता जाता था। पत्ता अपनी माता और पत्नी के साथ लहरों से खेलता हुआ इन्हीं में समा गया।

रात का समय था और घोर अंधेरा। जयमल दुर्ग के प्राचीरों में टूटे-ढहे स्थान की मरम्मत रोशनी में करा रहा था। किले पर उसने आग, पत्थर और गोले बरसा कर मुगल सेना पर कहर ढा दिया था। अकबर की तोपों ने जगह-जगह दीवार में गड्ढे कर दिये थे। कई बार तो उसने कोशिश की कि सुरंग लगाकर फाटक और दीवार उड़ा दिये जायँ, किन्तु असफल रहा। मुगल सेना मेवाड़ी वीरों की बहादुरी देखकर हैरान थी। वे यही ताज्जुब कर रहे थे कि मुकाबले में इन्सान रहे हैं या जिन्नात।

उस रात युवक अकबर भी चिन्तित मन से किले की दीवारों का मुआइना कर जानना चाहता था कि अगले दिन किस भाग पर चोट की जाय। मशाल की रोशनी में जयमल दिखाई पड़ा। अकबर अचूक निशानेबाज था। उसने अपनी "संग्राम" बंदूक उठायी और जयमल पर निशाना दाग दिया। गोली जांघ में जा धँसी, वह बुरी तरह घायल हो गया। मशालें बुझा दी गयीं। अंधेरे में कहाँ, क्या हुआ—कुछ पता नहीं चला।

सबेरा हुआ। घमासान युद्ध छिड़ा। मुगलों में जोश था कि जयमल बादशाह की गोली का शिकार हुआ। किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह एक राजपूत के कन्धे पर चढ़ा दोनों हाथों से तलवार चलाता उनकी सेना को काटता हुआ चला जा रहा है तो दंग रह गए अकबर के मुँह से निकला "काश! मेरे साथ भी कोई ऐसा बहादुर होता।"

सूरजपोल आखिर टूटा। मुगल सेना टिड्डी की तरह फाटक के भीतर पिल पड़ी। बाजी जाती देखकर भी राजपूत हिम्मत हारे नहीं। बचे हुए मेवाडी वीर केसरिया बाना पहने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शत्रुसेना से जूझते हुए मर मिटे। महिलाएँ बच्चों के साथ जौहर की ज्वाला में कूदकर सती हो गईं।

किले के आँगन में अब भी आग जल रही थी। धुआँ और गर्द का गुबार उठ रहा था। अकबर ने देखा जयमल की मुट्ठियों में तलवार कसी है, जांघ से खून बह रहा है, अधखुली आँखों में चिर शांति। वह देखता ही रह गया। सोचने लगा कि इस जीत में भी शायद मेरी हार हुई है। मौत का चिराचंध गंध आँगन में बच्चों और महिलाओं की जली-अधजली लाशें और राख के ढेर। वह चुपचाप एक ओर हट गया।

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर राजपूतों के इस "साका" को भूला नहीं। जयमल और पत्ता उसके दिल-दिमाग में जम चुके थे। आगरे जाकर उसने अपने किले के मुख्य द्वार पर इन दो वीरों की हाथी पर सवार मूर्तियाँ स्थापित कर दीं। शाहजहाँ के समय तक ये वहाँ रहीं। बाद में सन् १६६३ में औरंगजेब ने इन्हें हटवा दिया।

तीन सौ वर्ष बाद भी उस दिन हमने उस किले के आंगन में ईंटों के बीच भस्मी चिपकी देखी। हममें से कई लोगों ने उन्हें खुरच कर माथे लगाया। महिलाओं ने कुछ अंश रूमाल में बाँधे, शायद घर जाकर बच्चों के मस्तक पर लगायें। शाम हो आई। सूर्य किले की दीवारों के पीछे चला गया था। हम भारी मन से अपने शिविर की ओर चले आए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्यार की समाधि

बादशाह अकबर एक शाम को अपने दीवान-ए-खास में मुसाहिबों से घिरा हुआ गमगीन बैठा था। किसी की हिम्मत बात करने की नहीं हो रही थी। दूसरे लोगों के चले जाने पर बीरबल ने पूछा–"हुजूर क्या कारण है कि आप आज उदास-से लग रहे हैं ?"

लम्बी साँस लेते हुए बादशाह ने कहा कि "कल मालवा से जो दूत आया है, वह कह रहा था कि मांडू का युवक सुल्तान बाजबहादुर अद्भुत वीर और अचूक निशानेबाज है, विद्वान और संगीतज्ञ है। उसके दरबार में बहुत से शायर और कलाविद् रहते हैं। हमारे दूत ने यह भी कहा है कि उसकी नई रानी रूपमती अपने समय की सर्वगुणसम्पन्न और खूबसूरत है। चित्तौड़ की पद्मिनी के रूप की कहानी रूपमती के रूप के सामने फीकी हो गयी है। हम इतनी बड़ी सल्तनत के बादशाह हैं; परन्तु हमारे हरम में ऐसी सुन्दरी आज तक नहीं आयी।"

बीरबल ने कहा–"हुजूर, बन्दे की गुस्ताखी माफ हो। बात यह है कि आप औरतों को हमेशा पैर की जूती समझते रहे हैं, जब चाहा काम में लिया फिर सड़क पर फेंक दिया, जबकि सुलतान बाजबहादुर उनकी इज्जत करता है। रूपमती को उसने बड़ी तपस्या के बाद पाया है। कई बार भेष बदलकर उसके गाँव सारंगपुर जाता रहा, वहाँ रेवाशंकर के मन्दिर में तन्मय होकर उसके भजन सुनता रहा। दो-एक बार तो रूपमती उसे दुत्कार भी दिया परन्तु सुलतान ने धैर्य नहीं खोया।"

रूपमती और बाजबहादुर के मिलन की भी एक अनोखी घटना है। एक शाम को शिकार में भटकता हुआ वह सारंगपुर में रेवाशंकर के मन्दिर के पास जा पहुँचा। वहाँ संगीत की अद्भुत तान आ रही थी। स्वयं कलाबिद् तो था ही, वह भी सुर में सुर मिलाकर गाने लगा। भजन गायिका तन्मय होकर उसके आलाप "अँखिया हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी" सुनती रही।

आखिर एक दिन किशोरी ने पूछा–"युवक तुम कौन हो ? हमारे गाँव के तो नहीं हो, फिर हमारी गढ़ी के मन्दिर में बार-बार क्यों आते हो ? अगर मेरे पिताजी को पता चल जायगा तो तुम्हारी जान की खैर नहीं है।"

"सुन्दरी, मैं एक भटका हुआ इन्सान हूँ, यद्यपि मैं मुसलमान हूँ परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दोनों मजहबों का आदर करता हूँ। तुम्हारा यह भजन जब से सुना है, मेरे पैर अपने-आप मुझको यहाँ ले आते हैं। ठाकुर साहब के गुस्से के बारे मे मैंने सुन रखा है, परन्तु प्रेम चाहे संगीत के प्रति हो या, संगीतज्ञा के प्रति, वह बाधा नहीं मानता। न चाहते हुए भी खतरा उठा लेता है। परवाने को यह परवाह नहीं रहती कि वह शमां के पास जाकर जल-भन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जायगा ।''

रूपमती ने अपने साथ की युवती से कहा कि अज़ीब बहशी से पाला पड़ा है । इसे न पिताजी का डर है, न अपने मज़हबी मौलवियों का । यहाँ मन्दिर में बैठकर भजन गाता रहता है ।

इसके बाद युवक को एक प्रकार से छूट मिल गयी । वह नित्य प्रति नया भजन बनाकर मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठकर गाने लगा ।

एक बार कई दिनों तक वह युवक नहीं आया । रूपमती मन्दिर में उसकी प्रतीक्षा करती रही । पता-ठिकाना नहीं जानती थी वर्ना किसी को बुलाने के लिए भेजती ।

एक शाम को उसके पिता घायल अवस्था में गढ़ी में आये । संयोग से साथ में वही युवक था ।

कहने लगे—''बेटी आज इस युवक की बहादुरी के कारण तुम मुझे जिन्दा देख रही हो, वर्ना अब तक मैं बाघ के पेट में जा चुका होता । इसने एक प्रकार से बिना हथियार के ही उस नरभक्षी को मार गिराया । मेहमान हारा-थका है, इसकी अच्छी तरह से खातिरदारी करो

ठाकुर की परिचर्या के लिए वैद्य-हकीमों ने घेर लिया । रूप और युवक को बात करने के लिए एकान्त मिल गया ।

ऐसे में शिकवा शिकायत तो होता ही है, परन्तु सुलतान भला उस भोली किशोरी को कैसे समझाता कि वह सियासी मामलों में उलझ गया था । बादशाह अकबर के दूत दो-तीन बार आ कर धमकी दे गये थे कि वह आगरे के मातहत मालवे की सूबेदारी मंजूर कर लें, वर्ना मुगलिया फौज उसे नेश्त-नाबूद कर देगी ।

तीन-चार दिन बाद युवक फिर सारंगपुर आया । साथ में प्रसिद्ध संगीतज्ञ रामचन्द्रजी थे । उन्होंने कहा—''ठाकुर साहब, आपकी पुत्री की बड़ाई हुजूर सुलतान के यहाँ पहुँची है । वे उसे अपनी महारानी बनाना चाहते हैं, उसका दर्जा दूसरी सब बगमों से ऊँचा रहेगा । सुलतान की दरियादिली तथा बहादुरी के बारे में तो आप जानते ही हैं, वैसे भी आप की तीन पीढ़ी उनके बुजुर्गों के मातहत रहती आयी है । आपकी पुत्री को अपना धर्म नहीं बदलना होगा, उसकी पूजा-पाठ के लिए वहीं मांडू में भगवान रेवाशंकर का मन्दिर बना दिया जायगा ।

उस समय तक कई-एक राजपूत लड़कियों का विवाह मुसलमान नवाबों और शाहजादों से हो चुका था । आमेर के राजा बिहारीमल की पुत्री जोधा बाई बादशाह अकबर की बड़ी बेगम थी ।

यद्यपि ठाकुर के लिए यह रिश्ता बहुत ऊँचा था । सुलतान के गुणों के बारे में भी वह जानता था, परन्तु फिर भी मन में ऊहापोह तो थी ही ।

कहने लगा—''यद्यपि हम साधारण जागीरदार हैं और सुलतान माडू जैसी बड़ी सल्तनत का मालिक है । फिर भी हम आमेर की तरह डोला नहीं भेजते । यदि सुलतानको मेरी रूप से विवाह करना हो तो उन्हें स्वयं आकर याचना करनी होगी, हमारे यहा की यहीरीति है । मुझे रूप की भी सम्मति लेनी होगी, यदि वह राजी नहीं होगी तो यह रिश्ता नहीं होगा, चाहे जो अंजाम हो ।''

युवक ने आदाब करते हुए कहा—''वा साहब, स्वयं बाजबहादुर ही आप के पास याचना के लिए आया है । आपकी मर्जी है बख़्शें या इन्कार कर दें । रूप हिन्दू है—सदा हिन्दू रहेगी । यही नहीं अगर आप का जिद्द हो तो मैं खुद मज़हब बदलकर हिन्दू हो जाऊँगा । मगर उस हालत में मेरी फौजों में बलवा हो जायगा. मालवा सल्तनत खत्म हो जायगी । आप रूप से पूछ लें, उसकी रजामंदी से ही रिश्ता होगा, नही तो हमे वापस चले जायेंगे, किसी प्रकार का जोर-जबर्दस्ती का तो सवाल ही नहीं है ''

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पास के कमरे में बैठी रूपमती सारी बातें सुन रही थी। ठाकुर जब उससे पूछने गये तो गले से लगाकर फफक कर रोने लगी। पिता, पुत्री की मंशा समझ गये। रिश्ता मंजूर कर लिया।

बहुत धूम-धाम से रूपमती का विवाह मांडू के सुलतान के साथ हिन्दू-रीति से हो गया।

मांडू के बड़े सरोवर के किनारे भगवान शंकर का सुन्दर मन्दिर बना और महारानी के रहने के लिए कलापूर्ण विशाल गगनचुम्बी महल।

दोनों प्रेमियों के दिन प्यार और आराम के साथ गुजरने लगे। रानी राजकाज में भी सलाह देती रहती, शिकार में तो हमेशा साथ रहती ही। वह स्वयं अच्छी शिकारी थी। मन्दिर में रोज पूजा करने जाती तो कभी-कदाच मस्जिद में भी जाती रहती। वहाँ फकीरों और भिखारियों को खुले हाथ से दान देती। हिन्दू-मुसलमान दोनों उसकी इज्जत करते थे। सुलतान राजकाज भूलकर रात-दिन उसके महल में रहने लगा। रानी आगाह करती कि राजा का पहला कर्तव्य है अपने राज्य की देखरेख करना, उसके बाद दूसरी बातें।

इधर अम्मा माहम अंगा ने रूपमती के रूप और गुणों का बखान करके बादशाह को मांडू पर चढ़ाई करने को तैयार कर लिया। अकबर इसके पहले चितौड़ से निपट लेना चाहता था, परन्तु मांडू की नई महारानी को अपने हरम में लाने की उस कामुक के मन में तीव्र लालसा जाग उठी।

आगरे का दूत खत लेकर मांडू पहुँचा। इस बार मालवा के साथ रूपमती की भी माँग की गयी थी। सोचने के लिए दो दिनों का समय दिया गया था। आगरे के मातहत मालवे की सूबेदारी बाजबहादुर को देने को लिखा था।

खत की इबादत सुनकर सुलतान का चेहरा गुस्से से लाल हो गया—वज़ीर और सेनापति की तरफ़ देखने लगे। वृद्ध वज़ीर उनके पिता के समय का था, बहुत ऊँची-नीची देख चुका था। आने वाले खतरे से वाकिफ़ था। कहने लगा—"हुजूर मुगलिया सल्तनत काबुल से लेकर ग्वालियर तक फैली हुई है। बेइन्तहा ताकत है उनके पास। हमारे पन्द्रह हजार सैनिक यद्यपि बहादुरी में किसी से कम नहीं हैं, फिर भी मुगलों की सवा लाख फौज से केवल तीर-कमान और तलवारों से कैसे लड़ सकेंगे, जबकि उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें और बेहतरीन बन्दूकें हैं। परन्तु आप महारानी को पूछ लें, खत में एक शर्त उनके लिए भी है।"

रानी बोलीं—"मेरे सरताज, अगर मेरी माँग होती तो मैं जहर खाकर अपने को खत्म कर लेती, परन्तु यहाँ तो आपको सुलतान मिटाकर सूबेदार बनाने की भी माँग की है। वैसे मालवा और मैं दोनों आपके हैं, जो चाहें सो करें। दूसरे दिन दूतों के सामने खत को जला दिया गया, उन्हें सही सलामत सरहद पर छोड़ दिया।

आगरे में मालवा पर चढ़ाई की तैयारी होने लगी। उस बड़ी फौज का आला सेनापति बनाया गया माहम अंगा के नालायक और ऐय्याश बेटे आदम खाँ को। वह राजधानी की मौज-शौक छोड़कर मालवी वीरों से लड़ने का खतरा मोल लेना नहीं चाहता था, परन्तु अंगा ने जब रूपकुमारी की सुंदरता का बयान किया तो राजी हो गया।

बादशाह आदम खाँ की कमजोरी जानता था, इसलिए अपने विश्वस्त सेनापति पीर मोहम्मद को उसके साथ भेजा और पोशीदा तौर पर हिदायत कर दी कि बाइज्जत महारानी को आगरे लाया जाय।

मुगलों की बड़ी फौज में सैकड़ों हाथी, हजारों घोड़े, बीसियों बड़ी तोपें तथा ४० हजार सिपाही थे। इधर मालवा की सेना की कुल संख्या पन्द्रह हजार थी। मालवी, पठान और हिन्दू दोनों जी-जान से लड़े। तीन दिनों तक दुश्मनों के हजारों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया। घायल हो जाने के बावजूद खुद सुलतान चारों तरफ घूम-घूमकर अपने थके माँदे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिपाहियों को धीरज बँधाता रहा। परन्तु दुश्मनों की फौज संख्या में तिगुनी थी, बेहतरीन शस्त्रों से लैस थी, नयी कुमुक पहुँचती जा रही थी। अन्त में सारे मालवी वीर मारे गये या घायल हो गये। माँडू के किले पर आदमखाँ का कब्जा हो गया। सुलतान सारंगपुर में लड रहा था। इधर किले की रक्षा का भार रूपमती पर था। वह घायल अवस्था में दुश्मनों द्वारा गिरफ्तार कर ली गयी।

कुछ दिनों बाद जब महारानी की बेहोशी मिटी तो उसने अपने को महल के एक सजे हुए कक्ष में पाया। इर्द-गिर्द तीन-चार अजनबी आदमी बैठे थे। उनमें से एक ने कहा—हकीम साहब, हमारी प्यारी मलका को तन्दुरुस्त होने में कितने दिन और लगेंगे। इनके बिना हमें करार नहीं है।

पास के दूसरे आदमी ने कहा कि जनाब आदम खाँ, यह आप क्या कह रहे हैं ? यह बादशाह सल्तनत की अमानत हैं। मुझे शाहंशाह का हुक्म है कि इन्हें बाइज्जत उनके हरम में पहुँचा दिया जाय।

मुल्ला पीर माहम्मद 'तुम्हें अपनी औकात समझकर बात करनी चाहिए। आखिर यहाँ तुम हमारे मातहत हो। फौज के सिपहसालार हम हैं। यहाँ की दौलत पर और हूरों पर पहला हक हमारा है।'' आदमखाँ ने कहा।

रूपमती फिर बेहोश हो गयी। वे सब चले गये। दूसरे दिन सुलतान की बड़ी बेगम खुलाजान उसके पास आयीं। वह रूपमती से पहले सुलतान की सबसे चहेती बेगम थी। कहने लगी—''बहिन अब जिद्द करने से कोई फायदा नहीं है। सुलतान पिछले पाँच दिनों से गायब है। पता नही जिन्दा है या मर गये। हमारे ज्यादातर फौजी मारे गये या कैद हो गये हैं। मेरी राय में तुम्हें भी मुगलों के आला सेनापति आदम खाँ की बात मान लेनी चाहिये। फिर हम दोनों साथ रहकर हँसी-खुशी में वक्त गुजार देंगी, जो बीत गया उसे भुला देना चाहिए।

खुला बेगम—यह मैं क्या सुन रही हूँ जिनके साथ जिन्दगी के बेहतरीन दिन गुजारे, जिनको हम तन-मन का मालिक समझती रही—आज बुरा वक्त आने पर उनको धोखा देकर दुश्मन के हरम में दाखिल होने को तुम कह रही हो। यह जिस्म मिट्टी से बना है—एक दिन मिट्टी में मिल जायगा, फिर थोड़े दिनों के आराम के लिए इतनी बेइज्जत और छिछलेदारी किसलिए है ?''

रूपमती जब स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगी तो एक दिन रेवाशंकर के मंदिर में गयी—देखा मूर्ति नदारद है—मन्दिर टूट चुका है, उसकी जगह मस्जिद बन गयी है। फिर भी भगवान को सर्वव्यापी समझकर अपना पुराना भजन ''अखियाँ हरि दर्शन की प्यासी'' गाने लगी, जिसे बहुत वर्षों पहले युवक सुलतान के साथ सारंगपुर के मंदिर में गाती थी।

दूसरे दिन रानी रूपमती ने सेनापति आदमखाँ को अपने महल में बुलाया था। उसकी खुशी का पारावार नहीं था। बेहतरीन अतर-फुलेल लगाये, हाथ में फूलों का गजरा लिए पहुँचा, देखा रानी चादर ओढ़े पलँग पर लेटी हुई है।

साथ की दासियों को बिदा करके एक किनारे बैठ गया। कहने लगा—''मलका शायद हमसे नाराज़ हैं। परन्तु मैं अल्लाह की कसम खाकर कहता हूँ कि आपसे निकाह करके दूसरी सब बेगमों को आपकी खिदमत में रख दूँगा।''

जब उसने चद्दर हटायी तो देखा कि रूपमती का चेहरा जहर से काला पड़ गया है। सकते में आ गया, उस कामुक के लिए यह नयी बात थी कि इतनी मौज-शौक का लोभ छोड़कर कोई खुदकुशी भी कर सकता है। पास में एक पत्र पड़ा था, खोलकर पढने लगा।

आदम खाँ,

कहते हैं समय बड़ा बलवान होता है। हम सुखी थे, परमसुखी परन्तु तुमने हमारी जिन्दगी में बूरे ग्रह की तरह आकर हमें नेश्त-नाबूद कर दिया। हम हार गये, हमारा सितारा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डूब गया। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि मेरे जिस्म पर भी तुम्हारा हक हो गया। मेरी जिन्दगी तो सुलतान के साथ बँधी हुई थी, पता नहीं वे इस धरती पर हैं या नहीं। मैं खुला बेगम की तरह उनके साथ दगा नहीं करूँगी। जहर खाकर मर रही हूँ। परन्तु यदि मैं मन-वचन-कर्म से पतिव्रता हूँ तो अन्तिम समय में श्राप देती हूँ कि तुम भी जल्द ही कुत्ते की मौत मरोगे। (यह ऐतिहासिक तथ्य है कि आगरा लौटने पर जब बादशाह ने सारी बातें सुनीं तो आदमखाँ की बदतमीजी पर गुस्सा होकर उसे किले की दीवार से ढकेलकर मार दिया)।

दूसरे दिन संध्या के समय दो थके हारे घायल मालवी नागरिकों ने सारंगपुर के रेवाशंकर के मंदिर में रात्रि में विश्राम लिया। थोड़ी देर बाद उन्हें एक कोने से धीमे स्वर में एक भजन सुनायी दिया—"अँखियाँ हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी।"

आवाज पहचानी हुई सी लगी। चकमक से रोशनी करने पर देखा कि एक घायल व्यक्ति मैले-कुचैले फटे कपड़ों में धीरे-धीरे तन्मय होकर भजन गा रहा था—

"हुज़ूर—सुलतान आज इस हालत में"

"रायचन्द जी आप अचानक भले मिले, कहिये मेरी रूपमती की क्या खबर है।

"हजूर महारानी पतिव्रता थी" अन्तिम समय तक उसने अपने फर्ज को निभाया। आदम जब उनके महल में गया तो उसे महारानी की जगह उनकी लाश मिली। उन्होंने तेज जहर खाकर जिन्दगी का खातमा कर लिया था।

"रायचन्दजी, जब मेरी रूप मर गयी तब फिर मैं किसके लिए जिन्दा रहूँ?" पास में पड़े एक बड़े पत्थर को उठाकर जोर से सर पर दे मारा। लहू की धार बह निकली। थका-हारा शरीर मृत होकर एक तरफ लुढ़क गया।

पति-पत्नी दोनों की समाधि आज भी सारंगपुर में मौजूद है। कहते हैं—वहाँ पर अगर कोई पुकारता है तो "बाज" तो प्रतिध्वनि होती है—"रूप"।

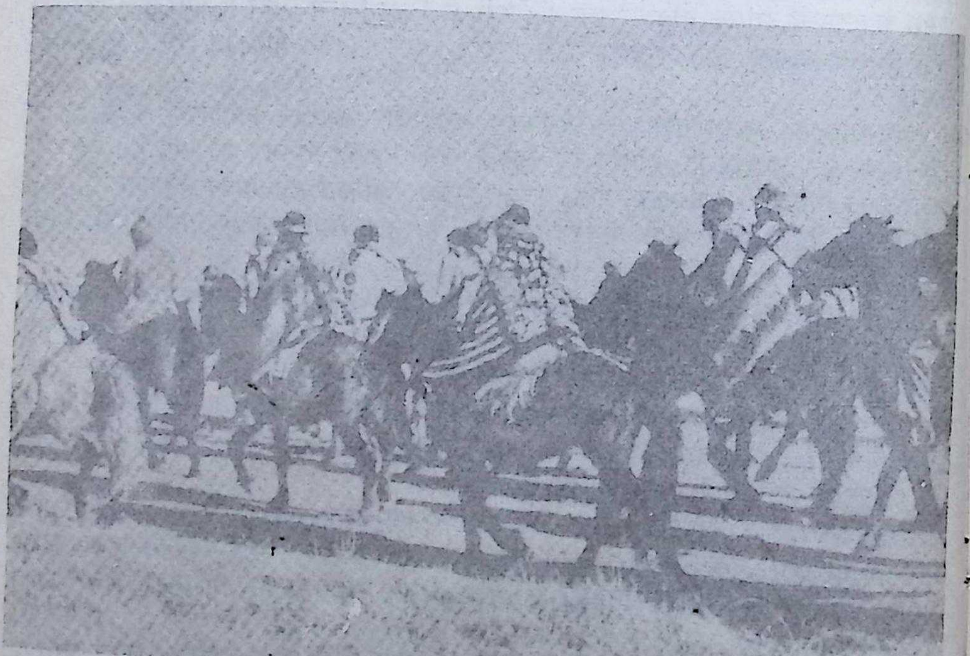

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानसेन और ताना-रीरी

बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगाई जाती हैं। सन्त कबीर को हिन्दू कहा जाता है और मुसलमान भी। इसी प्रकार संगीत-सम्राट तानसेन को कुछ लोग मुसलमान बताते हैं तो कई हिन्दू। परन्तु इतिहास के अनुशीलन पर अब जो तथ्य प्रकाश में आये हैं, उनके आधार पर सिद्ध होता है कि तानसेन नागर ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज गुजरात से बेहट (ग्वालियर) की ओर आकर बस गये थे।

वे अकबर के नवरत्नों में थे और अकबर प्यार से उन्हें मिया तानसेन कहा करते। शायद इसी 'मियां' शब्द के कारण पंडित तानसेन के सम्बन्ध में भ्रम की श्रृंखला बढ़ती गयी। वे अद्भुत प्रतिभासम्पन्न थे, स्वर मधुर था—हृदय रसपूरित। नागर कुल में जन्म लेने के कारण सात्विकता के संस्कार जन्मजात थे। घर में भक्तिभाव, भजन एवं कीर्त्तन आदि का वातावरण होने के कारण उनकी प्रतिभा को मुखरित होने का अवसर मिला। पिता के निर्देश से वृन्दावन धाम गये और वहीं स्वामी हरिदास के पास रहकर संगीत साधना की। उन्हीं के आशीर्वाद से तानसेन को दीपक राग के स्वरों के सही संधान का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त हुआ।

संगीत में निष्णात होने पर उन्हें बांधवगढ़नरेश राजा रामचन्द्र ने अपने दरबार में बुला लिया। इन्हीं दिनों उन्होंने विभिन्न राग-रागिनियों की काव्य-रचना की। कबीर, सूर, तुलसी के भजनों की तरह उनकी रचनाएँ भी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में घरों, मंदिरों और दरबारो तक प्रसिद्धि पाने लगीं।

सम्राट अकबर ने तानसेन के बारे में सुना। मंत्रों से यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने की बात हिन्दुओं के लिए भले ही अविश्वनीय न हो, किन्तु मुसलमान के लिए एकाएक काबिले एतबार नहीं। शाहंशाह को जब दीपक राग की खूबियों का पता चला तो वह तानसेन को अपने दरबार में रखने के लिए आकुल हो उठे। उन्होंने सेनापति मिर्ज़ा अज़ीज को बांधवगढ़ भेजकर तानसेन को आगरा बुलवा लिया। राजा रामचन्द्र को मनसबदारी और खिलअतें बख्शी गयीं।

तानसेन आगरा में रहने लगे। बादशाह के साथ शिकार या सैर पर जाते, वहीं उनकी फरमायश पर संगीत सुनाते। धीरे-धीरे दोनों आपस में एक दूसरे के नज़दीक होते गए। इसी बीच दरबारियों ने बादशाह से गुज़ारिश की कि उन्हे भी तानसेन का संगीत सुनने का मौका दिया जाय। बादशाह ने मंजूरी दे दी।

दरबार खचाखच भरा था। कुछ तानसेन के हुनर और इल्म की गहराई परखना चाहते थे तो कई ऐसे भी थे जो दोष निकालने के लिए बेताब हो रहे थे। अकबर ने मुस्कुराकर कहा—"मिर्ज़ा आज हम ध्रपद सुनना चाहेंगे।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानसेन ने सर झुकाया। साजिन्दों की ओर संकेत किया जिन्हें वे अपने साथ बांधवगढ़ से ले आये थे। तानपूरे के लहराते राग में उनका कंठस्वर मृदंग की ताल पर गूँजने लगा। बादशाह और दरबारी, सभी तन्मय हो उठे। लगभग तीन घंटे तक सुधबुध खोये से रहे। गायन की समाप्ति पर सारा दरबार एक स्वर में कह उठा—"आफरीन, बेहतरीन, लाजवाब!" तानसेन को दरबार के नवरत्नों में शामिल किया गया और खिलअतें बख्शी गईं।

चित्तौड़ पर फतह हासिल हो चुका था। जशन मनाए जा रहे थे। मगर अकबर का दिल हल्दीघाटी पर मचाई गई खूँरेज़ी से बेचैन था। उसकी आँखों के सामने चित्तौड़ के साके के धुएं के अम्बार उठने लगते, दिल में अंधेरा सा छाया रहता। भयानक सूनापन! अपनी परेशानी किसी से ज़ाहिर भी कर नहीं पाता। हँसी-दिल्लगी, नाच-गाने, हरम की खूबसूरत बेगमें, अफ़ीम, शराब—सब कुछ नाकाम साबित हुए। एकाएक उसे ख्याल आया, मियां तानसेन! यह खौफ़नाक अंधेरा वही हटा सकते हैं। फौरन तानसेन को तलब किया गया।

शाम हो रही थी। बादशाह अपने खास-महल में तकिए के सहारे बैठे क्षितिज पर बढ़ते अंधेरे को देख रहे थे। तानसेन हाज़िर हुए। बादशाह ने कहा—"मियां तानसेन, माबदौलत को बेहद परेशानी है। आँखों के सामने और दिल में एक अंधेरा महसूस हो रहा है। हमने सुना है, दीपक राग में अंधेरा दूर करने की ताकत है। तुम्हें इसका इल्म और हुनर हासिल है। सुनाओ, ताकि इस मनहूस अंधेरे से निजात पा सकूँ। आज इसीलिए शमादानों में रोशनी की इजाज़त नहीं दी गयी है। गाओ मियां, ऐसा गाओ कि गम व खौफ का अंधेरा काफूर हो और सारा आलम रोशन हो जाये।"

तानसेन स्तब्ध रह गये। दीपक राग छेड़ने का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है इसे सोचकर उनका मन काँप उठा किन्तु शाही हुक्म को टालना संभव नहीं था। सरस्वती और गुरु का स्मरण कर सर्वप्रथम वैदिक मंत्रों के उच्चारण से अग्नि का आवाहन कर दीपक राग में गाना शुरू किया—

"निसदिन सिलगत रहत महान अग्नि
ओंकार पृथिवी पाताल आकाश तिनके वसन
दरशन प्रकाश आधार।
सकल ज्योति अग्नि ज्वालामय ओंकार
तू विचार आगम निगम
दूरि करौ सकल अंधकार।
कहै मिया तानसेन सुन गुनी अकब्बर साहिं
धरनि उद्धारकरन मंगलदीप मान ज्ञान
ब्रह्मावतार शिव ओंकार.........॥

मृदंग निनाद के साथ ओंकार की ध्वनि बारम्बार गूँज उठी। ऐसा लगा मानो दिशाएँ तरंगित हो उठी हों। तानसेन स्वयं आँखें मूँदे हुए ओंकार ध्वनि पर झूम उठते।

एकाएक बिजली सी कौंधी। शमादान जल उठे। खास महल जगमगा उठा। बादशाह ने कहा, "हमने दीपक राग की करामात के बारे में सिर्फ सुना था, आज चश्मदीद हुआ। तस्कीन के साथ सुकून भी हासिल हुआ। तुम्हारे इस हुनर की कीमत चुकाई नहीं जा सकती, फिर भी हम तुम्हें दो लाख अशर्फी भेंट करते हैं।"

अनुकूल परिस्थिति न होने पर दीपक राग गाने का वही परिणाम हुआ जिसका अन्देशा था। तानसेन के तनबदन में जलन होने लगी। मेघमल्हार राग ही इसे शान्त कर सकता था किन्तु गायक के लिए इसका स्वयं गाना नहीं, बल्कि सुनना जरूरी था। तानसेन ने बादशाह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को अपनी समस्या बतायी और उनसे आदेश लेकर सोमनाथ महादेव के दर्शन के लिए सौराष्ट्र चल पड़े।

मार्ग में बड़नगर के शिवमन्दिर में ठहरे। पूर्वजों की भूमि में आकर उन्हें मानसिक शान्ति का अनुभव हुआ। भादों बीत रहा था, फिर भी वर्षा नहीं हुई थी। धरती तप रही थी, अनावृष्टि और अकाल से त्राहि-त्राहि मची हुई थी।

परम्परा के अनुसार महिलाएँ भजन-कीर्तन करती हुई भगवान से वर्षा के लिए प्रार्थना कर रही थीं। सहसा तानसेन को लगा उनके देह की तपन धीरे-धीरे कम हो रही है मेघ-मल्हार में उन्होंने अपनी ही रचना के शब्द सुने।

नाचति चपल चचल गति
ध्वनि मृदग घन भेदत जात,
कोकिल अलापत, पपैया आस देत
सुघर सुर मोर ध्यावत,
दादुर तार धार धुनि सुनियतु
रुनझुन धुनि पर नाचत
तानसेन प्रभु शिव सोमनाथ
रस पीयूष सरसावत॥

अपूर्व माधुर्य था, स्वरों में। सचमुच मानों कानों में अमृत रस पड़ने लगा। शरीर की जलन मिट गयी। वीणा, मृदंग और स्वर की दुनिया में वे आत्म-विस्मृत से हो गये।

थोड़ी देर बाद आकाश में घटाएँ उमंड़ आईं। जोरों की वर्षा होने लगी। तानसेन का तनमन स्निग्ध हो उठा। उधर सूखे तालाब भरने लगे। धरती की प्यांस मिटी, जनता में हर्षोल्लास छा गया।

तानसेन ने उसी मन्द्रिर में रात बितायी। एक ही प्रश्न उनके मन में बराबर उठ रहा था कि इतने शुद्ध रूप से मेघ-मल्हार गाने वाली वे ललनाएँ कौन थीं। पुजारी से पता चला कि स्थानीय जमींदार नीलकण्ठ राय की वे दोनों पुत्रवधुएँ हैं और भक्त नरसिंह मेहता की पुत्री नानीबाई की दौहित्री। नाम था, ताना और रीरी।

बड़नगर में बात छिपी नहीं रही कि मन्दिर में तानसेन ठहरे हुए हैं। राय नीलकण्ठ स्वयं उनसे मिलने आये। पता चला वे भी संगीत-प्रेमी हैं और गुरुभाई भी। भजन-कीर्तन का विशेष आयोजन किया गया। तानसेन सहर्ष सम्मिलित हुए। ताना-रीरी के गायन के उपरान्त उन्होंने भगवान हाटकेश्वर पर स्वरचित एक भजन सुनाया। लोग भाव-विभोर हो उठे।

तानसेन आगरा लौटे। इस घटना की चर्चा उन्होंने किसी से नहीं की, क्योंकि वे जानते थे ताना-रीरी के सौन्दर्य और गुण की विशेषता की बातें आगरे में क्या परिणाम उपस्थित कर सकती हैं। फिर भी, उनके पहुँचने से पहले ही अकबर को पूरी जानकारी मिल चुकी थी। नीलकण्ठ राय के किसी द्वेषी ने ताना-रीरी के सौन्दर्य और गायन कला की बातें बढ़ा-चढ़ा कर बादशाह को लिख भेजी थीं। बादशाह को तो ऐसे मौकों की तलाश रहती ही थी। फौरन एक वरिष्ठ सरदार को बड़नगर भेजा और जैसे भी हो दोनों बहिनों को हाजिर करने का हुक्म दिया।

बड़नगर पहुँचकर सरदार ने नीलकंठ राय को शाही हुक्म सुनाया। चारों ओर हाहाकार मच गया। ताना और रीरी ने भी स्थिति की गम्भीरता को समझा कि बादशाह का इरादा केवल मेघ-मल्हार सुनना नहीं, बल्कि कुछ और भी है।

गाँव के बड़े-बूढ़े और विशिष्ट जनों की सभा बुलायी गयी। अकबर से टकराने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता था। दोनों बहनों को आगरा भेज दिया जाय या सारे गाँव को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मटियामेट होने दिया जाय। ताना और रीरी ने अपने श्वसुर और दादा को विश्वास दिलाया कि उन्हें आगरा जाने दिया जाय। कुल की मर्यादा और सतीत्व को वे अक्षुण्ण बनाये रखेंगी। भगवान हाटकेश्वर उनकी रक्षा करेंगे।

चुने हुए दरबारियों और नवरत्नों के साथ दीवानेखास में गाने की महफ़िल का इन्तजाम किया गया। तानसेन के विशेष आग्रह पर दोनों बहनें पर्दे के पीछे बेग़म और शहज़ादियों के बीच बैठीं। बादशाह ने मेघ-मल्हार गाने का हुक्म देते हुए मुस्कुरा कर कहा, "हम देखना चाहेंगे कि कार्तिक के महीने में बारिश मुमकिन है या नहीं।"

इधर साज़िन्दों ने सुर सम्हाला, उधर पर्दे के पीछे से उदासी भरी स्वर लहरी फूट निकली। ऐसा लग रहा था जीवन का समस्त रस शतधार होकर चतुर्दिक् फैल रहा है। बारिश कब शुरू हुई, इसका किसी को आभास तक न हो पाया। स्वर लहरी थम चुकी थी। पर्दे के पीछे फर्श पर पानी बढ़ने लगा। बेगम और शहज़ादियाँ उठकर अपने-अपने महलों में जाने लगीं। उन्होंने देखा कि खून के सैलाब में दोनों बहनें एक दूसरे का हाथ पकड़े चिरनिद्रा में शान्त भाव से सो रही हैं। उनके वक्षस्थल से रक्त की धारा बह रही थी, पास ही दो कटारें पड़ी थीं।

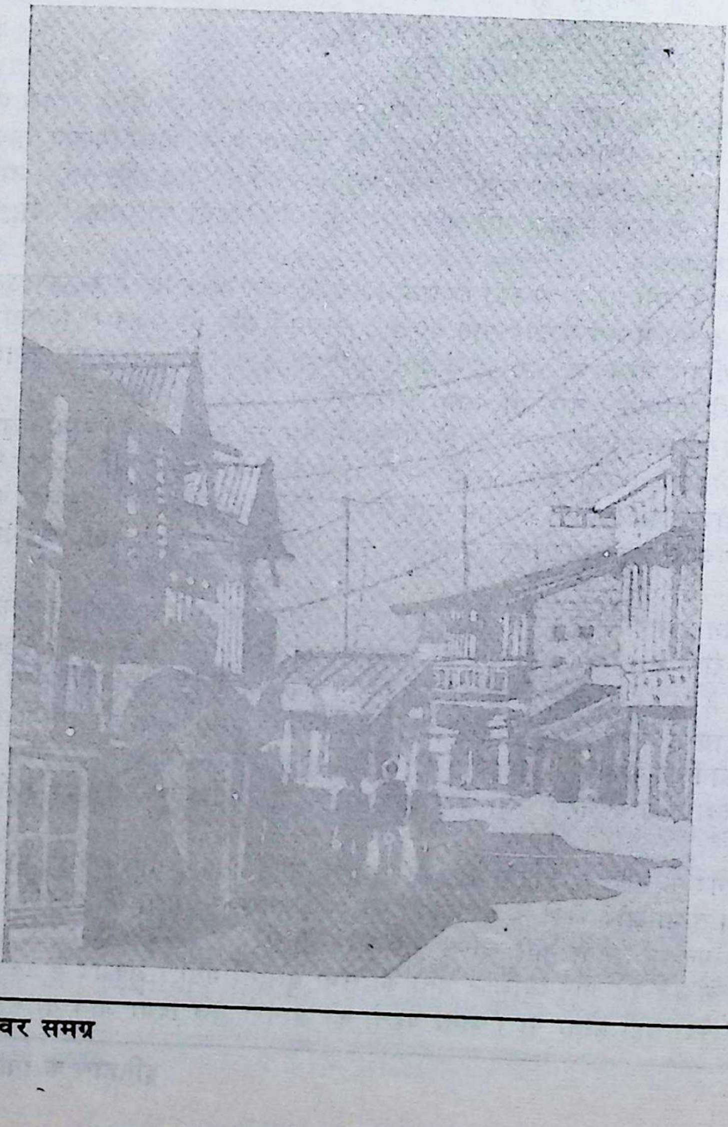

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जित्यो जी टोडरमल वीर

लगभग चार सौ वर्ष पहले की बात है। प्रतापी सम्राट अकबर का शासन था। उसके मन्त्रिमण्डल में नौ मन्त्री थे जिन्हें 'नवरत्न' कहा जाता था। उसमें टोडरमल का विशेष आदरपूर्ण स्थान था। वे वित्त और माल जैसे महत्त्वपूर्ण विभागों को सम्हालते थे। राज्य के काम से उन्हें प्रायः ही पंजाब, सिंध और काश्मीर यात्राएँ करनी पड़तीं।

आगरा से २०० मील दूर राजस्थान की सीमा पर नारनौल एक कस्बा है, वहाँ अग्रवाल समाज का एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार था। टोडरमल का इस परिवार से मैत्री का सम्बन्ध था। वे आते-जाते उनके यहाँ एक-दो दिन आराम करने के लिए ठहर जाते थे। ठहर जाते थे।

एक बार, दो-तीन वर्ष तक वे नारनौल नहीं आए। इस बीच में उस परिवार पर संकट के बादल छा गए। सेठ का देहान्त हो गया, जो धन-सम्पत्ति थी, वह मुनीमों की बदइन्तजामी से समाप्त हो गई। घर में रह गई, विधवा सेठानी और १५ वर्ष का किशोर पुत्र।

उन दिनों बहुत छोटी उम्र में बच्चों के सगाई-विवाह हो जाते थे। पुत्र की सगाई सेठजी के रहते ही पास के कस्बे में एक सम्पन्न स्वजातीय घराने में हो गई थी। अब वह विवाह के योग्य हो गया। लड़की वाले उनकी नाजुक हालत को जान चुके थे। परन्तु उन दिनों बिना पर्याप्त कारण के सम्बन्ध नहीं छोड़े जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट जाने पर वरपक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु और मित्रों के साथ हथियारों से सुसज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध में जीत करके बहू को ले आते।

कन्या पक्षवालों ने सुपारियों की एक कोथली नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लगन फाल्गुन में है। आपके और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुए आप कम से कम इन सुपारियों जितने प्रतिष्ठित बाराती अवश्य लावें। हमारे यहाँ हमेशा वर हाथी के हौदे पर आता है इसलिए कम से कम दो-तीन हाथी भी बारात में रहने जरूरी हैं।

सेठानी समझदार महिला थी, वह उन लोगों की चालाकी समझ गई। सैकड़ों व्यक्तियों की बारात के लिए उसी अनुपात में रथ, घोड़े और ऊँट चाहिए। आने-जाने के समय उन सबके लिए भोजन और पशुओं के लिए दाना-चारा। वह सब अब उनके बस की बात नहीं थी। परिवार के स्वजन और मित्रों से सलाह की, परन्तु कोई उपाय नजर नहीं आया।

सेठानी कई दिनों मे इसी चिन्ता में थी कि अचानक पंजाब जाते हुए टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनों उत्तर भारत में पर्दाप्रथा थी, परन्तु सेठानी उनकी मूँह-बोली बहिन थी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसलिए उनसे बोलती और पर्दा नहीं करती थी। टोडरमल ने महसूस किया कि बहिन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह कुछ बोल नही पायी और सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोड़ी देर में जब आश्वस्त हुई तब बताया कि लड़की वाले बहुत धनाढ्य हैं, वे अब सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं। सीधे तौर पर कहने से उन्हें अपनी बदनामी का डर है, इसलिए ऐसी शर्तें रख रहे हैं—जिससे हमलोग स्वयं सगाई तोड़ दें। आज हमारी ऐसी दयनीय दशा हो गयी है कि हमें अपनी माँग (वाग्दत्ता) को छोड़ना पड़ रहा है।

सारी बातें सुनकर टोडरमल ने कहा कि आप चिन्ता मत करिये—जो कुछ जवाब देना होगा, मैं आपकी तरफ से भिजवा दूँगा। कुछ दिनों बाद कन्या पक्ष वालों के यहाँ मूँगों से भरी हुई एक कोथली लिए कासिद पहुँचा। पत्र में यथायोग्य के बाद लिखा था कि विवाह की तिथि हमें मंजूर है, परन्तु आपकी और हमारी इज्जत का ख्याल करके हम इतने बाराती लाना जाहते हैं, जितने मूंग इस कोथली में हैं। स्वर्गीय सेठ जी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगों से स्नेह-सम्पर्क था, भला इकलौते पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते हैं ? आप खातिर जमा रखें, बारात में बड़े से बड़े लोग आयेंगे। हम लोग बारात लेकर फलाँ दिन पहुँच रहे हैं, आप सारी तैयारी रखियेगा।

पत्र पढ़कर उन लोगों ने मूँग गिने, जिनकी सख्या करीब २ हजार थी। वे मन ही मन हँस रहे थे कि अधिक दुख से सेठानी शायद विक्षिप्त हो गयी है। इतने बारातियों के लिए जितने हाथी, घोड़े, ऊँट और रथ चाहिए—उन सबकी व्यवस्था तो शायद नगर सेठ भी नही कर सकते। रास्ते में इन सबके खाने-पीने और आराम के लिए भी लाखों रुपये चाहिये। खैर, उन्होंने कासिद के साथ उत्तर दे दिया कि हमें आपकी बात मंजूर है। बारातियों की खातिर-तवज्जह के लिए आप बेफिक्र रहें। हम शुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं।

इधर टोडरमल ने आगरा आकर अपने मित्रों और साथियों से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज की कि हुजूर मेरे भानजे की बारात जायगी, इसलिए शाही दरबार से पचास हाथी, पाँच सौ घोड़े और एक हजार रथ और ऊँट चाहिए। उस मौके पर शाही बाजे और तोपें भी बारात के साथ जाने की इजाजत बख्शी जाय।

बड़े-बड़े राजे-रईस, सरदार और आला अफसरों को बारात के लिए न्यौता दिया गया। रास्ते में भोजन वगैरह की व्यवस्था के लिए पहले से ही सैकड़ों आदमी सरजाम के लिए भेज दिये गये। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखों रुपयों का भात भरा। बहिन (वर की माता) के लिए मोतियों जड़ी चुनरी और वर-वधू के लिए कीमती गहनों और कपड़ों का अम्बार लगा दिया। वर पक्ष के लोगों के लिए यथायोग्य भेंट और सिरोपाव।

सारे कस्बे में चर्चा फैल गई कि नरसी मेहता के मुनीम साँवरिया सेठ जैसा भात सेठजी के यहाँ आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी-सुनी नहीं गयी थी, घोड़े, रथ, ऊँट, पालकी और सुखपालों की लम्बी कतार मीलों तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि। इनके सिवाय बाजे वाले गाने वाले और नर्तकियों की भी एक बड़ी तादाद थी।

कन्या पक्ष वालों ने जब सुना बारात में जयपुर महाराज मानसिंह, अर्थमन्त्री टोडरमल, खानखाना (प्रधानमन्त्री) अब्दुल रहीम और राजा बीरबल आदि देश के बड़े से बड़े लोग आ रहे हैं। साथ में हाथी, घोड़े, रथ और ऊँटों का एक बड़ा काफिला है तो वे घबरा गये—यद्यपि वे नगर सेठ थे, लखपती थे परन्तु फिर भी इतनी बड़ी बारात की व्यवस्था करनी उनके वश की बात नहीं थी।

अगवानी के लिए कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साथ लेकर गया। टोडरमल के पैरों में पगड़ी रखकर कहने लगा कि हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की, जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोड़ना चाहते थे, परन्तु अब हमारी इज्जत आपके हाथ है। इतनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बड़ी बारात ठहराने का न तो हमारे गाँव में स्थान है और न हम इन सबके लिए भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकड़ों वर्षों से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी है, आपकी दया से आस-पास के गाँवों में इज्जत है। परन्तु जहाँ हमारे अनेक स्वजन मित्र हैं, वहाँ ईर्ष्यालु दुश्मनों की संख्या भी कम नहीं है। उन्हें हमारी बेइज्जती से जग-हँसाई करने का मौका मिल जायगा। कन्यादान मेरे परिवार का भाई कर देगा। मैं जिल्लत और बेइज्जती देखने के पहले गाँव छोड़ कर सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ।

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले लगाते हुए कहा—"जो कुछ हुआ उसे भूल जाइये, अब तो आप हमारे सम्बन्धी हैं। आपकी मान-वड़ाई में ही हमारी शोभा है। आप चिन्ता न करें, किसी को भी पता नहीं चलेगा। सारी व्यवस्था हमलोगों की तरफ से है। आप केवल प्रवेश के समय शर्बत-पान से बारातियों की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिए आस-पास के गाँवों से हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिए यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मोतियों की झूल पहने हाथी और घोड़े झूम रहे थे। चार-पाँच तरह की शाही बाजें थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियों का नाच-गाना हो रहा था और तरह-तरह की आतिशबाजियों की रोशनी से आसमान चमक रहा था। सारे विवाह-कार्य आनन्दपूर्वक समाप्त हुए। वधू को बिदा करकर जब वे नारनौल पहुँचे और द्वारचार हुआ तो वर पक्ष की महिलाओं ने जो गीत गाया वह था—

"अंतो जीत्याजी, जीत्या म्हारा टोडरमल बीर,
केशरियो बनड़ो जीत्यो म्हारे बीरैजीं के पाण।"

आज उस बात को ४०० वर्ष हो गये; अभी तक बहू की अगवानी के समय राजस्थान में उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य-स्मृति में यही गीत गाया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मरण त्यौहार

सन् १६०० की बात है। मुग़लों के लगातार हमलों से मेवाड़ जर्जर हो चुका था, खेती-बाड़ी सब उजड़ गयी थी। राणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह तीन वर्ष पहले मेवाड़ की गद्दी पर बैठ चुके थे। आगरे के सिंहासन पर प्रतापी बादशाह अकबर था। चित्तौड़, उँटाला, माही और मांडल के किले मुग़लों के पास थे। अकबर को हर कीमत पर मेवाड़ के राणाओं का सिर नीचा करना था। शाहज़ादे सलीम को एक बड़ी फौज के साथ मेवाड़-विजय के लिए भेजा।

दुर्भाग्य से उसी समय मेवाड़ के दो प्रमुख स्तम्भ चूड़ावत और शक्तावत घरानों में हरावल (युद्ध में सबसे आगे रहने का निशान) को लेकर वाद-विवाद खड़ा हो गया।

दोनों पक्ष के मुखिया महाराणा के पास आए। चूड़ावतों ने कहा कि हमारे पूर्वज वीर चूड़ा के अद्भुत बलिदान के कारण हरावल का अधिकार हमें मिला था। इसकी मान-रक्षा के लिए न जाने कितना बलिदान हमें करना पड़ा है। अब शक्तावत अधिक शक्तिशाली हो गए हैं, इसलिए हमारा पीढ़ियों से चला आता अधिकार छीन लेना चाहते हैं। हम न्याय माँगते हैं महाराज न्याय करें।

शक्तावत सरदार बल्लूजी ने कहा—"महाराज मेरे २१ पुत्रों में से अधिकांश पिछले युद्ध में वीर गति को प्राप्त हो चुके हैं। अब बचे हुए सब युवक और किशोर पौत्र मातृभूमि के लिए जीवन उत्सर्ग करने को तैयार हैं। चूड़ावतों ने बहुत वर्षों तक हरावल रंखा है। अब वह इज्जत हमें मिलनी चाहिए।"

महाराज सोचते कि दोनों सरदार अद्भुत माँग पर अड़े हुए हैं। हरावल-रक्षक की मृत्यु प्रायः निश्चित रहती है, क्योंकि वह युद्ध में सबसे आगे—हाथी या घोड़े पर रहता है। इसी की रक्षा के लिए वीर चूड़ा के वंशज बहुत बार मर मिटे। अब चाचा शक्तिसिंहजी के पुत्र-पौत्र जान-बूझकर यह ख़तरा उठाने की जिद्द पर अड़े हैं।

राणा अमरसिंह, प्रतापसिंह सरीखे नहीं थे कि निडरता से छोटे-बडे सरदारों को डाँट देते। लगातार के युद्धों से वे थक भी गए थे। वे निश्चित राय देने में डरने लगे। माँग तो चूड़ावतों की वाजिब थी, परन्तु शक्तावत अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। उन्हें किसी कीमत पर नाराज़ नहीं कर सकते थे।

राज्य के सभी सरदारों की सभा जुड़ी हुई थी। उन्होंने अपना मत ऊँची आवाज में इस प्रकार दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिताजी के स्वर्गवास के बाद आपलोग इस प्रकार के आपसी झगड़ों में उलझ गए हैं, यह मेवाड़ के लिए दुर्भाग्य की बात है। मुग़लों की फौजें बढ़ी आ रही हैं। साथ में आमेर की राजपूती सेना भी है, ऐसे संकट के समय आप यह आपसी विवाद ले बैठे। खैर। मेरा एक सुझाव है। उँटाला का किला बहुत वर्षों से मुग़लों के पास है, आप में से जो पहले उसे सर करके उसपर मेवाड़ी झण्डा फहरा देगा, वही हरावल का अधिकारी होगा।

दोनों पक्षों ने यह बात मान ली, युद्ध की तैयारी करने लगे। दोनों परिवारों के १३ वर्ष से लेकर ६५ वर्ष तक के पुरुषों में से शायद ही कोई घर में रहा हो। महिलाएँ अपने पति, पुत्रों और किशोर पौत्रों को कुंकुम का टीका लगाकर शंख-ध्वनि करके उँटाले के लिए विदा कर रही थीं। एक प्रकार से यह आख़िरी विदाई थी।

किले में ये ख़बरें बढ़-चढ़ कर पहुँचीं। मुग़लों के पास राजपूताने में उन दिनों तुर्कों और राजपूतों की बड़ी सेना थी। उसमें से चुनी हुई उँटाला के किले में आकर इकट्ठी हो गई।

शक्तावतों ने किले के मुख्य द्वार पर हमला किया, जबकि चूड़ावत पीछे की दीवार पर सीढ़ी लगाकर चढ़ने की कोशिश करने लगे। ऊपर से तीर, गर्म तेल और अंगारों की वर्षा हो रही थी। अनेक राजपूत वीर घायल होकर गिर रहे थे, परन्तु तुरन्त ही उनका स्थान दूसरे ले लेते।

मुग़लों ने देखा कि शत्रुओ को तो जैसे मौत की परवाह ही नहीं है, एक की जगह फिर चार ले लेते हैं। वे थक कर सुस्तानें लगे। इतने में चूड़ावत सरदार जेते सिंह किले की दीवार पर पहुँच गया। साथ में उसके दो पौत्र थे। तुरन्त ही दो-तीन गोली लगी और वह धराशायी हो गया। परन्तु उसके आदेशानुसार उसके पौत्रों ने उसका सिर काटकर किले के भीतर फेंक दिया और वहाँ मेवाडी झण्डा लगा दिया। बचे हुए सैनिक भी पहुँच गए, मुग़लों ने हथियार डाल दिए।

इधर सशक्त शक्तावतों ने एक बड़े हाथी को किले का फाटक तोड़ने के लिए आगे बढ़ाया, परन्तु दरवाजे के लोहे के तीखे शूलों से घायल होकर हाथी बार-बार पीछे हटता गया। शक्तावत सरदार बल्लूजी हाथी के हौदे से कूदकर किले की शूलों के आगे भिड़ गये और महावतों को आज्ञा दी कि अब जोर से हाथी को आगे बढाओ।

महावत इस अद्भुत आज्ञा को सुन कर डर-सा गया, परंन्तु उन्होंने कड़कती आवाज में कहा कि उम्र भर तुम जान की जोखिम उठाकर भी हमारी सेवा करते रहे हो, क्या अब मेरे वंश की बेइज्जती कराओगे। देर मत करो,हाथी पर अंकुश का प्रहार करके आगे बढ़ाओ।

उनका शरीर शूलो में क्षत-विक्षत होकर विंध गया, रक्त की धारा बहने लगी, परन्तु मज़बूत दरवाजा चरमरा कर टूट गया। बचे हुए शक्तावत हर-हर महादेव कहते हुए किले में पहुँचे, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि पहले से ही चूड़ावतों का झण्डा फहरा रहा है।

चूंड़ावतों के पाँच-दस वीरों ने कहा कि हरावल का अधिकार हमेशा हमारा रहा है— हमारा रहेगा। अब व्यर्थ में आपस का बैर-भाव छोड़कर हमें मुग़लों की फौज से सम्मिलित रूप में लड़ना चाहिए।

महाराणा अमरसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ी फौज बादशाही सेना से लड़ने जा रही थी। हरावल एक चूड़ावत किशोर के हाथ में था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोहरा बलिदान

अजमेर से अठारह मील दूर किशनगढ़ नाम का एक कस्बा है। तीन सौ वर्ष पहले इसका नाम रूपनगर था। सन् १६६० की बात है। मानसिंह राठौर की यह एक छोटी-सी रियासत थी। उनकी बहन राजकुमारी चारुमती अपने रूप और गुणों के कारण सारे राजस्थान में सुविख्यात थी। इसकी चर्चा बादशाह औरंगजेब के कानों तक पहुँची। यद्यपि वह अन्य मुग़ल सम्राटों की तरह ऐय्याश नहीं था, फिर भी चारुमती के सौन्दर्य पर रीझकर उसे हरम में दाख़िल करने के लिए बेताब हो उठा। कासिद के ज़रिये रूपनगर-नरेश को ख़बर भेज दी कि अमुक दिन जहाँपनाह आलमगीर पहुँच रहे हैं, राजकुमारी के निकाह की सारी तैयारी ठीक रखें।

राजकुमारी चारूमती सुन्दर होने के साथ विदुषी भी थी। उन दिनों मेवाड़ के महाराणा थे, राजसिंह। धीर, वीर, गंभीर ३१ वर्षीय राणा की प्रतिष्ठा सर्वत्र थी। उसने राणा के शौर्य की गाथा सुनी थी। मन ही मन पति के रूप में उनका वरण भी कर रखा था। बादशाह के फरमान को सुन कर वह चिन्तित हो उठी। मुग़ल सम्राट की शक्ति और सामर्थ्य के आगे रूप नगर की क्या बिसात। उसके कारण कितने प्राण चले जायेंगे। यदि वह स्वयं बलिदान हो जाए तो कम से कम व्यर्थ का रक्तपात बचेगा और राज्य भी।

राजकुमारी की एक मुँहबोली सखी ने सुझाव दिया कि इस प्रकार स्वयं को बलि देने से पहले मेवाड़ के राणा राजसिंह को एक पत्र भेजना चाहिए। राजस्थान में वे ही केवल एक ऐसे वीर हैं, जो औरंगजेब से लोहा ले सकते हैं। आख़िर उसने अपने राजपुरोहित के हाथ एक पत्र महाराणा को भेजा। सन्देश में लिखा था कि "मैंने मन ही मन स्वयं को आपके अर्पण कर दिया है। आपकी सेवा के सौभाग्य की कामना थी, किन्तु दुराचारी औरंगजेब बलात् मुझे अपने हरम में ले जाना चाहता है। यदि आप एक अबला नारी की मान-मर्यादा और शील की रक्षा करना कर्तव्य समझें तो अमुक दिन के पूर्व ही रूपनगर पधारें। यदि किन्हीं कारणों से ऐसा संभव न हुआ तो आत्मघात द्वारा मैं नारीत्व के सम्मान की रक्षा के लिए बाध्य होऊँगी।"

पत्र पढ़कर महाराणा चिन्तित हो उठे। वे अपने सीमित साधन और मुग़ल सम्राट की अथाह शक्ति को जानते थे। पहले से ही मेवाड़ अनवरत युद्धों के कारण थका और शिथिल-सा था। वे नया ख़तरा उठाना नहीं चाहते थे, किन्तु यहाँ प्रश्न था एक निरपराध राजपूत रमणी के शील-रक्षा का। उन्होंने अपने सामन्तों को बुलाया और परामर्श के लिए सारी स्थिति स्पष्ट रख दी। भला राजपूत युद्ध के खतरों से कब घबराते? महाराणा अमरसिंह के बाद लंबे अर्से तक उनकी तलवारें म्यान में सोई पड़ी थीं। इस घटना के पीछे उन्होंने उपयुक्त अवसर देखा। केलवाड़ा के सरदार ने कहा कि बादशाह ने जो तारीख दी है, वह अत्यन्त निकट है। कितनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी शीघ्रता की जाय, हम उस दिन तक रूपनगर नहीं पहुँच पायेंगे। अतएव, राजकुमारी की रक्षा हम शायद ही कर पायें। सभी सामंत और सरदार चिन्तामग्न हो मौन बैठे थे। इसी बीच अठारह वर्ष के चूड़ावत सरदार ने उठकर कहा—महाराणा, मैंने उसका उपाय सोच लिया। आप तुरन्त रूपनगर जाकर राजकुमारी से विवाह कर उदयपुर आ जायँ। मैं चूड़ावतों की सेना लेकर दिल्ली से रूपनगर के रास्ते को रोक रखूँगा। जबतक आप उदयपुर नहीं पहुँच जायेंगे, मुग़ल सेना आगे नहीं बढ़ पायेगी, यह हमारी टेक है। पायेगी, यह हमारी टेक है।

राणा राजसिंह ससैन्य रूपनगर जाने की तैयारी में लग गये। इधर चूड़ावत सरदार ने अपने भाई-बन्धुओं को एकत्रित कर स्थिति से परिचित कराया। तीन हजार किशोर, युवा और वृद्ध चूड़ावतों ने मृत्यु से जूझने के लिए कूँच का धौसा बजा दिया। संयोग से चूड़ावत सरदार का विवाह हाडी राजकुमारी से दो दिन पूर्व ही हुआ था। अभी कंगन-डोरे भी नहीं खुले थे, बाहर से सगे-सम्बन्धी और अतिथि आए हुए थे। चहल-पहल और उल्लास का वातावरण था, ऐसे में वे रनिवास पहुँचे। उन्होंने हाडी रानी को सारी बात बताते हुए कहा कि इस पुण्यदायित्व के निर्वाह में मेरा वापस आना संभव नहीं। खेद है, दो-चार दिन का भी दाम्पत्य सुख तुम्हें दे न सका।

हाडी रानी ने सरदार को उदास देखकर कहा—"आप अकारण मन में अवसाद न लायें। मैं आपसे पीछे न रहूँगी। यहाँ नहीं तो स्वर्ग में आपसे अवश्य मिलूँगी।" सरदार को प्रोत्साहित करते हुए उसने बिदा किया।

फिर भी युवक चूड़ावत का मन उन्हें पीछे खींच रहा था। वह यही सोच रहा था कि काश! एक रात वह अपनी नवविवाहिता वधू के साथ बिता पाता। घोड़े पर चढ़ते हुए बरबस उनकी निगाहें झरोखे की ओर चली जाती थीं। रानी ने यह देखा कि सरदार का चित्त यदि इसी प्रकार दुविधाग्रस्त रहा तो कर्त्तव्य-निर्वाह में बाधा होगी। उसने फौरन सरदार के पास सूचना भेजी कि आप कुछ क्षण रुकें, मैं एक सेनाणी भेज रही हूँ।

इसी बीच उसने दासी के हाथ से तलवार लेकर अपनी गर्दन पर झटका दिया। वह सुन्दर सुकुमार मुख धड़ से अलग हो गया। हाडी रानी के आदेशानुसार सेवकों ने एक थाल में मुण्ड रख फूलों से सजा दिया और सौभाग्य-चिह्नों से सजे उस थाल को चूड़ावत सरदार को भेंट कर दिया।

सरदार एक बार तो सकते में आ गया, फिर उसने रानी के मुण्ड को डोरी से बाँधकर गले में लटका लिया और घोड़े को एड़ लगा दी।

बादशाह औरंगजेब की सेना रूपनगर की तरफ बढ़ती आ रही थी। ६० हजार की विशाल सेना को रोकने के लिए चूड़ावत वीरों कीं तीन हजार की टोली दीवार बनकर खड़ी हो गई। सात दिन तक बहुत दमखम लगाने पर भी शाही फौज आगे बढ़ न पायी। बादशाह औरंगजेब ने स्वयं दूरवीन से देखा किशोर चूड़ावत सरदार मुण्डमाल पहने काल-भैरव की तरह युद्ध कर रहा है। उसके मुँह से निकला—"अल्लाह, काश, मेरे बेटों-पोतों में ऐसा कोई जाँबाज़ होता।"

ऊँची लहरों के सामने छोटी दीवार कब तक टिकती। सारे राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। शाही फौज रूपनगर की ओर बढ़ गयी। किन्तु जब वे वहाँ पहुँचे तब तक चारुमती से विवाह कर महाराणा राजसिंह सकुशल उदयपुर वापस आ गए थे।

अपमान की ज्वाला में औरंगजेब भुन उठा, पर करता भी क्या? मुट्ठी को कसकर उसने अस्फुट शब्दों में कहा—इंशा अल्लाह, इस तौहनी का बदला लेकर रहूँगा।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बुन्देलों की आन

सन् १९६१ की बात है। चिरगाँव से राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी औरसियारामशरणजी के साथ इतिहास प्रसिद्ध बुन्देलों की राजधानी ओरछा देखने गया था। वहाँ के दुर्ग में और महलों में सैकड़ों वर्ष पहले के तोपों और गोलों के चिह्न अभी तक दिखाई देते थे।

बेतवा नदी के किनारे अब ओरछा एक साधारण-सा गाँव रह गया है। परन्तु आज से तीन सौ वर्ष पहले यह एक समृद्ध नगर था। सन् १६६३ में महाराज चम्पतराय यहाँ से चले गये। उसके बाद यह मुगलों के अधीन रहा। यद्यपि उनके पुत्र छत्रसाल इतिहास प्रसिद्ध वीर हुए। परन्तु वे ओरछा को वापस नहीं ले पाए।

गुप्ताजी ने महल के एक कक्ष में बैठकर हमें दो कथाएँ सुनाईं, जिनको सुनकर मन में सिहरन और आँखों में आँसू आ गये।

पहली तो कुँवर हरदौल की थी और दूसरी महाराज चम्पतराय की रानी सारंधा की।

उन्होंने कहा कि द्विजेन्द्रलाल राय और कर्नल टाड ने सिसोदिया और राठौड़ों को इतिहास में अमर कर दिया, वर्ना बुन्देलों की वीरता किसी से कम नहीं थी।

इस कथा की नायिका सारंधा बुन्देलखण्ड के एक साधारण जमींदार की पुत्री थी। अपनी सुन्दरता और साहस के लिए दूर-दूर तक उसकी प्रसिद्धि थी। उन दिनों बुन्देलखण्ड में मुग़लों और पठानों के आक्रमण बार-बार होते रहते थे, इसलिए स्त्रियाँ भी शस्त्र-संचालन जानती थीं।

ओरछा नरेश महाराज चम्पतराय ने उसके सौन्दर्य और शौर्य के बारे में सुन रखा था। उन्होंने सारंधा के बड़े भाई ठाकुर अनुरुद्धसिंह के पास विवाह का पैगाम भेजा।

ठाकुर फूले नहीं समाये, कहाँ तो इतने बड़े राज्य के अधिपति और कहाँ वे छोटे से जागीरदार।

फिर भी उन्होंने कहलवाया कि महाराज की चार रानियाँ पहले से हैं। अगर वे मेरी बहिन को पटरानी बनावें और इसका पुत्र ही राज्याधिकारी हो तो रिश्ता हमें मंजूर है।

बड़ी धूमधाम से विवाह होकर वह ओरछा रहने लगी। उसके चार पुत्र हुए, जिनमें एक परम प्रतापी छत्रसाल भी थे।

चम्पतराय, शाहजहाँ के दरबार में बड़े मनसबदार थे। ओरछा के सिवाय कालपी भी उनकी जागीर में थी। जब औरंगजेब तख्त पर बैठा तो उसने उनका दर्जा बढ़ाकर बारह हजारी मनसबदार कर दिया। उस समय हिन्द राजाओं में सिवाय जयपुर के मिर्जा राजा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जयसिंह के इतना बड़ा सम्मान और किसी का नहीं था ।

रानी सारंधा और पुत्रों के साथ चम्पतराय बीच-बीच में दिल्ली रहते थे । उनके पास एक इराकी घोड़ा था, जिसका जोड़ा सल्तनत में दूसरा नहीं था । किसी समय यह घोड़ा शाहजहाँ के सेनापति वली बहादुर का था, जिसे चम्पतराय युद्ध में जीतकर अपने अस्तबल में ले आया था । अब वली बहादुर औरंगजेब का आला सेनापति हो गया था और घोड़े को वापस लेने का मौका ढूँढ़ रहा था ।

एक दिन कुँवर छत्रसाल घोड़े पर चढ़कर सैर को गया था तंजवली बहादुर के सिपाहियों ने घोड़ा छीन लिया ।

छत्रसाल उस समय केवल १४ वर्ष का बालक था । रानी को घर आकर सारी वारदात बताई, उसके चेहरे पर उदासी छायी हुई थी । उस समय चम्पतराय किसी युद्ध पर गए हुए थे । दिल्ली में रानी अकेली थी । उसने अपने पच्चीस विश्वस्त सिपाहियों को साथ में लिया और बादशाह के दरबार में जाकर वली बहादुर को ललकारा ।

"खां साहब ! एक बच्चे पर हाथ उठाते आपको शर्म नहीं आई, अगर मर्द थे तो घोड़े को लड़ाई में न छोड़ आते ।"

बादशाह और मुसाहिबों ने देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी और रूपवती महिला तलवार हाथ में लिए खां साहब को ललकार रही है ।

बादशाह औरंगजेब अपने मुस्लिम सेनापति का भरे दरबार में अपमान होता देखकर गुस्से से काँपने लगा, परन्तु वह बड़ा कूटनीतिज्ञ था । राजा चम्पतराय की वीरता और साहस को जानता था । उसने रानी की तरफ मुखातिब होकर कहा—"रानी साहिबा, माँ-बदौलत आपकी बहादुरी से बहुत खुश हैं; परन्तु अपने एक घोड़े के लिए सल्तनत के आला सेनापति को नाराज करना आपके और राजा साहब के हक में अच्छा नहीं होगा ।"

"बादशाह सलामत, सवाल घोड़े का नहीं है—बल्कि आन का है । हम बुन्देले अपनी इज्जत और मान के लिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं ।

"रानी, अगर राजा यहाँ होते तो हमारे हजूर में शायद ऐसे अल्फाज कहने की गुस्ताखी न करते, खैर ! आप लोग अपने डेरे पर जाइये घोड़ा आपको मिल जायेगा, परन्तु उसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी ।"

जब राजा चम्पतराय दिल्ली आये और सारी बातें सुनीं तो बहुत चिन्तित हुए, परन्तु उन्होंने भी अन्त तक रानी और कुँवर का साथ दिया । उनकी मनसबदारी और जागीर छीन ली गई । वे ओरछा में आकर रहने लगे ।

वली अहमद अपमान को भूला नहीं था । कुछ दिनों बाद उसने एक बड़ी फौज लेकर ओरछा को घेर लिया । उसकी फौज में देश-धर्म-द्रोही कुछ राजपूत भी थे ।

यद्यपि बुन्देले बड़ी बहादुरी से लड़े, भला बादशाही फौज के सामने उनकी क्या हस्ती थी ? धीरे-धीरे सारे सिपाही मारे गये, किले में केवल स्त्रियाँ और बच्चे रह गए, राजा ने घायल होकर खाट पकड़ ली । रानी रात-दिन पति की सेवा में रहती, परन्तु उसे बार-बार अपशकुन होने लगे । ऐसा लगा कि अब किले को बचाना मुश्किल है । सोचा, अगर हम स्वयं किसी प्रकार बाहर निकलकर दूर स्थान पर चले जायँ तो शायद दूसरे लोगों की जान बच जाएगी ।

केवल मात्र दस सिपाहियों के साथ राजा और रानी अन्धेरी रात में किले के गुप्त दरवाजे से बाहर निकले । रानी घोड़े पर थी, जब कि बीमार राजा पालकी में ।

दूसरे दिन मुगलों के सिपाहियों ने घेर लिया। दसों सिपाही वीरता से जूझते हुए मारे गए । रानी भी काफी हिम्मत और बहादुरी से लड़ी, परन्तु बड़ी फौज के सामने उस अकेली की भला क्या हस्ती थी ? संगीन रूप से घायल-हो गयी । जल्दी से वार बचाती हुई महाराज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की पालकी के पास आकर कहने लगी "महाराज अंतिम विदाई लेने आयी हूँ—भूल-चूक क्षमा करेंगे। आपके चरणों की सेवा करने के लिए वहाँ प्रतीक्षा करूँगी।"

महाराज ने कहा—"रानी, बीस वर्षों से सुख-दुख की साथी थी, आज मुझे इन दुश्मनों के हाथ बीमारी हालत में छोड़कर जाते हुए तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती है ? क्या मुझे उम्रभर मुगलों की कैद में छोड़ जाओगी ?"

"महाराज कल तक मैं ओरछा राज्य की रानी थी, परन्तु आज हर प्रकार से असहाय हूँ—फिर भी मुझे आप जो आज्ञा देंगे, शिरोधार्य करूँगी।"

"सारंधा तुमने सदा मेरी बात मानी है। यद्यपि आज मैं बीमार और असहाय हूँ, फिर भी मुझे भरोसा है कि मेरी अन्तिम बात को भी तुम मानोगी। मेरा मन कहता है कि तुम्हारा वीर पुत्र जिन्दा है, वह दुश्मनों से अवश्य बदला लेगा। तुम अपनी यह तलवार पहले मेरी छाती में चुभो दो और फिर अपनी में।"

रानी सकते में आकर रोते हुए कहने लगी—"महाराज, आप यह कैसी आज्ञा दे रहे हैं ? क्या कहीं आज तक ऐसा हुआ है ? मुझे आप क्या सदा के लिए पतिहन्ता बना जाना चाहते हैं ?"

"रानी यह समय निजी जज्बातों का नहीं है, तुमने मुझे वचन दिया है, उसे पूरा करो।"

बादशाही सिपाही जब वहाँ पहुँचे तो दो तड़पती हुई लाशों को देखा। रानी का सिर पति की छाती पर टिका हुआ था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो शेरों की लड़ाई

१७ वीं शताब्दि में राजस्थान के विभिन्न राज्यों में कुछ अद्भुत प्रतिभाशाली और वीर राजा हुए हैं—इस संदर्भ में मेवाड़ के राणा राजसिंह, जोधपुर के जसवंतसिंह और जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह का नाम लिया जा सकता है। जसवंत सिंह और जयसिंह तो शाहजहां और औरंगजेब के आला सेनापतियों में थे।

सन् १६४० के लगभग की बात है। औरंगजेब २२ वर्ष का युवक था। दक्षिण को कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ जीत कर आया था।

मुल्ला और मौलवी उसकी बहादुरी और इस्लाम-परस्ती का प्रचार जनता में करते रहते थे। उन्हीं दिनों जोधपुर के युवक राजा जसवंत सिंह मुग़ल दरबार में रहने के लिए आगरा आए। यह एक प्रकार से रिवाज सा था कि रियासतों के राजा या युवराज में से कोई एक बादशाह की सेवा में रहे।

महाराज के साथ में उनकी रानियाँ, मुसाहिब तथा कुछ जागीरदार भी आए। इन्हीं जागीरदारों में आसोप के युवक ठाकुर मुकुन्ददास भी थे। जोधपुर में ही नहीं, बल्कि आगरा तक उनकी बहादुरी की बातें बढ़चढ़ कर फैल चुकी थीं।

बादशाह शाहजहाँ का दरबार लगा हुआ था। सल्तनत के अमीर-उमरा अपनी-अपनी जगह पर बैठे या खड़े थे। बादशाह की दाहिनी तरफ युवराज दाराशिकोह बैठा था, बायीं तरफ औरंगजेब।

महाराज जसवंत सिंह अपने सरदारों के साथ नजर करने आए। लोगों ने देखा कि एक दैत्य सा लम्बा-चौड़ा युवक सिंह की सी मस्तानी चाल सेआ रहा है। चौड़ी छाती, लम्बे हाथ तथा उन्नत ललाट। सबकी आँखें जसवंत सिंह से हटकर इस युवक पर जा टिकीं। नया-नया शाही दरबार में आया था, वहाँ के रीति-रिवाजों को नहीं जानता था। बादशाह को नजर करके पीठ फिरा कर वापस आ गया, परन्तु बादशाह उसके सौन्दर्य से इतना विमुग्ध हो गया था कि इस घटना पर उनका ध्यान नहीं गया।

औरंगजेब ने उन्हीं दिनों एक मस्त बिगडे हाथी को वश में किया था। वह अपने को अद्वितीय बहादुर समझता था; परन्तु मुकुन्ददास को देखकर उसके मन में ठेस सी लगी, बिना कारण के ईर्ष्या उमड़ आयी।

आये दिन बादशाह के कान भरने लगा—"अब्बा हुजुर, यह नया राजपूत उजड्ड तथा मूर्ख है, इसको अपनी ताकत का घमंड भी है। कभी न कभी रियासत को इससे खतरा हो सकता है—समय रहते ही इसे कुचल देना चाहिए।"

कुछ दिनों तक तो बादशाह ने तवज्जह नहीं दिया, परन्तु उसकी प्यारी बेटी रोशन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आरा ने भी औरंगजेब के कहनें से पिता के कान भरने शुरू कर दिये ।

एक दिन भरे दरबार में बादशाह ने महाराज जसवन्त सिंह को कहा कि "आपके युवक सरदार मुकुन्ददास की बहादुरी और जिस्मानी ताकत के बारे में बहुत-कुछ सुना है, मा-बदौलत उसका मुआइना करना चाहते हैं। हमारी मंशा है कि शाही शेर बाजबहादुर से यह कुश्ती लड़े ।"

महाराज तो सकते में आ गये, कहने लगे— हुजूर शायद इस युवक की नातजुर्बेकारी से नाराज हो गये हैं, इस बार इसे माफ़ किया जाय, आइन्दा शिकायत का मौका नहीं मिलेगा ।"

इतने में शाहजादाऔरंगजेब कहने लगा—"महाराज जसवंत सिंह सुना है इसको किसी हिन्दू देवी का इष्ट है, जिसकी सवारी सिंह है, फिर भला आप क्यों डरते हैं—वह देवी खुद इसकी जान की हमारे सिंह से हिफाजत करेंगी ।"

जसवंत सिंह सारे षड़यंत्र को समझ गए। उन्हें यह भी पता लग गया था कि शाहजादा औरंगजेब मुकुन्ददास को मार डालना चाहता है ।

बचाव का कोई उपाय न देखकर उसने बादशाह की बात को मन्जूर कर लिया। युवक मुकुन्ददास को महारानी महामाया तथा दूसरे लोग बहुत प्यार करते थे। उसके शौर्य पर उन्हें गर्व था। सारे हिन्दुस्तान में उसके जोड़ का दूसरा कोई ताकतवर नहीं था। इधर महाराज स्वीकृति दे चुके थे। अब सिवाय सिंह के साथ लडाई का दूसरा उपाय नहीं था।

आगरे और दिल्ली में मुनादी कर दी गयी कि फलां तारीख़ को जोधपुर के मुकुन्ददास कुम्पावत के साथ बादशाह के बब्बर शेर की कुश्ती होगी ।

कुश्ती के दिन आगरे के किले के चारों तरफ हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गए। हिन्दू सहमे हुए और दुःखी थे जबकि ज्यादातर मुसलमान खुश थे ।

बादशाह और शाहजादे किले के ऊपर के बरामदे में बैठे थे। झालर के पीछे बेगमें और शाहजादियाँ थीं। खाई के चारों तरफ जनता की बहुत बड़ी भीड़ थी, जैसी आगरे में आजतक नहीं देखी गई थी ।

जब मुकुन्ददास कटार-तलवार से लैस होकर किले की खाई में आया तो लोग उसकी निर्भयता को देखकर चकित रह गए। आसन्न मृत्यु को सामने देखकर भी वह वीर युवक निडर होकर सर ऊँचा किए, मस्त हाथी की चाल से आ रहा था। शेर को कई दिनों से भूखा रखा गया था, उसका पिंजरा खाई में लाया गया। वह जोर-जोर से दहाड़ रहा था। मुकुन्ददास पिंजरे के पास पहुँचा। इतने में शाहजादे औरंगजेब ने कहा कि "हमारा शेर निहत्था है जबकि आपके शेर के पास तलवार-कटार है। यह लड़ाई के कानून के खिलाफ़ है। बहादुरी तो इसमें है कि मुकुन्ददास भी बिना हथियारों से लड़े ।"

महाराज ने इशारा किया और कुम्पावत ने अपनी तलवार-कटार अलग फेंक दी। पिंजरे का फाटक खोला जा चुका था, लोग भयभीत होकर इस घिनौने दृश्य को देखने की तैयारी में थे ।

मुकुन्ददास ताल ठोक कर पिंजरे के सामने खड़ा शेर को ललकार रहा था। उसकी आँखों में अंगारों की सी चमक थी। बड़े जोर से दहाड़ता हुआ शेर बाहर आया। लेकिन मुकुन्ददास ने हिम्मत नहीं हारी। जल्दी से उसके दोनों पंजे पकड़ कर पिंजरे में फेंक दिया। संयोग से शेर का सर लोहे की मोटी छड़ों से भिड़ा और वह थोड़ी देर के लिए संज्ञाहीन-सा हो गया। इसके बाद तो कई बार मुकुन्ददास ने शेर को बाहर आने के लिए ललकारा, परन्तु वह तो गीदड़ की तरह एक तरफ दुबककर बैठ गया ।

बादशाह को इसमें अपनी तौहीन लगी। उसने अपने आदमियों को शेर को बाहर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निकालने के लिए हुक्म दिया, परन्तु किसी तरह भी वह पिंजरे से नहीं निकला।

जनता जोर-जोर से वीर मुकुन्ददास की जय ध्वनि करने लगी। लोगों का रुख देखकर बादशाह ने कुश्ती खत्म करने का हुक्म दिया।

मुकुन्ददास को पास बुलाकर अपने गले की मोतियों का हार पहनाया। दूसरे दिन दरबार में घोषणा की कि "महाराज जसवंत सिंह, आपका शेर वाकई में बहुत बहादुर है—सल्तनत को ऐसे जवां मर्दों पर फ़क्र है। हम इसे 'नाहरसिंह' का खिताब देते हैं। जसवन्त सिंह को अंदेशा हो गया कि यद्यपि इस बार तो बचाव हो गया, परन्तु कभी-न-कभी मुकुन्ददास का औरंगजेब धोखे से खून करा देगा।

थोड़े दिनों बाद उसे वापस जोधपुर भेज दिया गया।

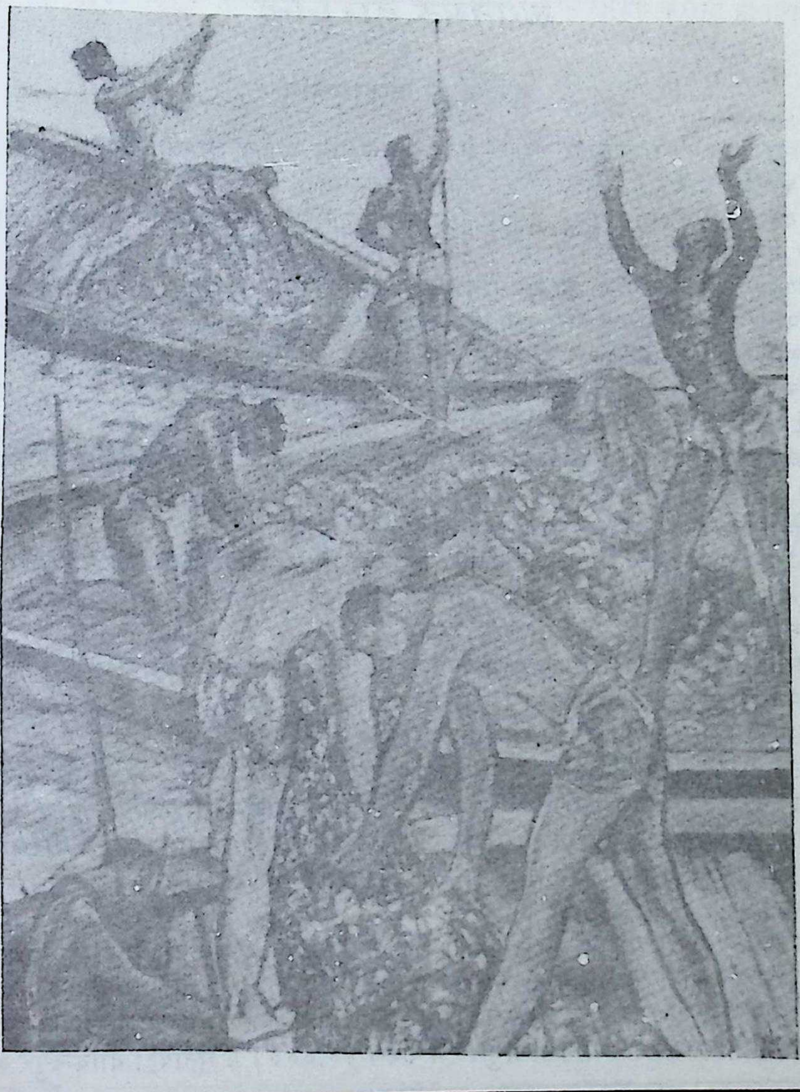

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जगतसेठ हीरानन्द

गरीब से करोड़पति

सन् १६५२ की घटना है, नागौर से हीरानन्द नाम का एक ओसवाल युवक वहाँ के जैन यती के पास जाकर परदेश जाने का मुहूर्त्त पूछने गया।

यतीजी ने पंचांग देखकर बताया कि तुम इसी समय पूर्व दिशा की ओर चले जाओ, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी गरीबी मिट जायगी, बहुत बड़े व्यक्ति हो जाओगे।

युवक बिना घर वालों को सूचना दियें ही, लम्बी यात्रा पर रवाना हो गया। थोड़ी दूर जाने पर उसे रास्ते में एक काला सर्प फण उठाये मिला। डरकर वापस यतीजी के पास आया और सारी घटना बतायी। उन्होंने कहा होते तो तुम छत्रपति, परन्तु खैर, अभी भी धनपति बनने का सुयोग तो है ही, भगवान का नाम लेकर तुरन्त रवाना हो जाओ। तुम्हारे घर वालों को मैं सूचना दे दूँगा।

बीहड़ रास्ते, चोर-डाकुओं का डर, पास में सम्बल नहीं, फिर भी भगवान की कृपा से पन्द्रह दिनों में सही-सलामत आगरे पहुँच गया। शाहजहाँ बादशाह का राज्य था। आगरे की उन दिनों विश्व में सबसे सम्पन्न शहरों में गिनती थी।

यद्यपि हीरानन्द की बहुत पढ़ाई तो नहीं हुई थी, परन्तु वह गणित में होशियार था, मेहनती और ईमानदार था, देखने में बहुत सुन्दर भी था। उसे एक मोदीखाने की दुकान पर तीन रुपये महीने में नौकरी मिल गई।

सस्ती का जमाना था। एक रुपये के पाँच मन गेहूँ और पाँच सेर घी मिलता था। एक रुपये में वहाँ का खर्च चलाकर दो रुपये महीना नागौर भेजने लगा। घर में खुशहाली हो गई। वहाँ उसकी माता, पिता और पत्नी तथा एक पुत्र था।

उस दुकान के ग्राहकों में कुछ मुसलमान सरकारी अधिकारी भी थे। वे सब हीरानन्द के व्यवहार से बहुत खुश थे। उनमें से मीरजुमला नामं के एक हाकिम की पटने बदली हुई तो वह हीरानन्द को अपने साथ ले गया और वहाँ उसे एक दुकान करा दी। समय पाकर मीरजुमला ऊँचे पद पर पहुँचता गया और उसके साथ ही हीरानन्द साह की दुकानों का कारबार भी बढ़ने लगा।

पटना उन दिनों वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ से शोरा, शक्कर, लाह, कस्तूरी, अफीम और रंगीन छीटें दूसरे मुल्कों को जाती थीं। दूसरे मुल्कों से सब तरह से मसाले तथा अन्य प्रकार की बहुत सी चीजें आयात होती थीं। कलकत्ता उस समय बस रहा था। औरंगजेब के पोते अजीमुशन ने केवल १४,०००) में सूतापट्टी गोविन्दपुर और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कलकत्ता अंग्रेजों को बेच दिया था। परन्तु पूर्व के बड़े शहरों में चिनसुरा, हुगली, राजमहल, ढाका और पटना की गिनती होती थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पटना में शाखा खोली और उन्होंने सेठ हीरानन्द को अपना बेनियन नियुक्त किया, उस समय यह कम्पनी साधारण स्थिति में थी, हीरानंद मौके-बेमौके इसे रुपया भी ऊँचे ब्याज पर उधार देता था। इस प्रकार सन् १६८५ तक के ३३ वर्षों में गरीबी से ऊँचा उठकर बीस-तीस लाख का आदमी हो गया था। चारों तरफ उसकी इज्जत हो गयी—बिहार के सिवाय बंगाल के राजमहल और ढाका में भी शाखाएं खुल गईं। उस समय के बीस-तीस लाख आज के बीस-तीस करोड़ के बराबर हैं, क्योंकि वस्तुओं के भावों में एक और सौ का अनुपात था।

मीरजुमला के बाद शाइस्ता खां और औरंगजेब का बेटा मोहम्मद आजम नाजिम हुए, परन्तु हीरानन्द उन सबका विश्वासपात्र बना रहा और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही। अंग्रेजों का कोई काम अटक जाता था, नाजिम से सिफारिश करानी होती तो वे सेठ हीरानन्द के पास आकर खुशामद करते।

१६८५ से लेकर १७११ तक के २६ वर्षों में साह घराना करोड़पति हो गया। हीरानन्द के सात पुत्र और एक पुत्री हुई। उसने, बिहार, बंगाल और राजस्थान में अनेक प्रकार के धर्म-स्थानों का निर्माण कराया। व्यस्त रहते हुए भी जन्मभूमि भूली नहीं। बराबर वहाँ वे आते-जाते रहते थे। मारवाड़ से बहुत से युवकों को लाकर पटना और राजमहल में बसाया। उन्हें हर प्रकार की सहायता दी।

६० वर्ष पहले वह २० वर्ष की आयु में, नागौर से पैदल चलकर आगरा पहुँचा था। रास्ते में कुछ मजदूरी करके आगे बढ़ता गया था। उसके जीवन में ही ५० वर्ष राज्य करके औरंगजेब मर गया। फिर उसका बड़ा पुत्र मुअज्जम बहादुर शाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। यद्यपि मुग़ल सल्तनत का सितारा फीका होता जा रहा था, फिर भी आज की कीमत में ३०० करोड़ का तख्त ताऊस सिंहासन और अमूल्य कोहिनूर हीरा तो मुग़लों के पास था ही, सालाना आय भी ३० करोड़ के लगभग थी। हिन्दुओं पर जजिया लगा हुआ था। बंगाल, बिहार के बहुत से गरीब हिन्दुओं का कर सेठ हीरानन्द की कोठी से दिया जाता रहा।

सन् १६९६ में उड़ीसा के अफगानों ने और मेदनीपुर के जमींदार शोभासिंह ने मिलकर बड़ी बगावत की थी। औरंगजेब पिछले १५ वर्षों से दक्षिण में उलझा हुआ था। उत्तर भारत में सल्तनत कमजोर हो गयी थी। ऐसे संकट के समय में सेठ हीरानन्द ने बिहार के नाजिम बादशाह के पोते अजीमुशन को बड़ी मदद दी। दुर्भाग्य से वह दिल्ली के तख्त पर नहीं बैठ सका, वरना हीरानन्द को जगतसेठ की पदवी मिल जाती, फिर भी लोग उन्हें जगतसेठ कहने लगे थे।

सन् १७११ में ८७ वर्ष की लम्बी आयु पाकर सेठ हीरानन्द ने इहलीला समाप्त की। उस समय तक उनका घराना बंगाल, और बिहार प्रांत में प्रसिद्ध हो चुका था। वे स्वयं कारबार से अलग होकर भगवत्-भजन में लगे थे—विभिन्न शाखाओं का काम उनके ७ लड़के सम्हालते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजसंन्यासी दुर्गादास

राठौड़ दुर्गादास युवावस्था में बहुत सुन्दर और स्वस्थ था। कुछ वर्षों तक औरंगजेब के दरबार में था। बादशाह की प्रिय उदयपुरी बेगम ने उसे कई बार वहाँ देखा था। मन-ही-मन चाहने भी लगी थी। बहुत वर्षों बाद अनायास ही एक मौका आ गया।

बागी शाहजादा अकबर को लेकर जब वह पूना में शम्भाजी के पास गया तो वहाँ कुछ दिनों तक ठहर गया था। लगातार के युद्धों से थका हुआ था, आराम कर रहा था।

जिस दिन मारवाड़ लौट रहा था, उसके पहले एक दिन रात में उसे एक स्त्री के चिल्लाने की आवाज सुनायी दी—तलवार लेकर बाहर निकला तो देखा शम्भाजी शराब के नशे में चूर होकर एक बालिका को निर्वस्त्र कर रहा है और वह चिल्ला रही है।

"शम्भाजी, तुम इस तरह शिवाजी महाराज के उज्ज्वल नाम में कालिख लगा रहे हो. तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

दोनों की बातचीत बढ़कर झगड़े में बदल गई। युवक शम्भाजी को दुर्गादास ने धर दबोचा, परन्तु जान से नहीं मारा, चेतावनी देकर छोड़ दिया। आवाजें सुनकर सिपाही आ गए और शम्भाजी के हुक्म से दुर्गादास को कैद कर लिया।

दूसरे दिन दुर्गादास बेड़ियों में जकड़ा हुआ दिल्ली भेजा जा रहा था, जाते समय उसने शाप दिया कि अगर मैंने जीवन में मन-वचन-कर्म से कोई पाप नहीं किया है तो यह भविष्यवाणी करता हूँ कि तुम्हारी औरंगजेब के हाथ से घिनौनी मौत होगी।

दिल्ली के लाल किले में हथकड़ी-बेड़ियों से लैस दुर्गादास को बादशाह के सामने हाजिर किया गया। औरंगजेब उससे नाराज़ तो बहुत था, परन्तु उसकी स्वामिभक्ति और बहादुरी के कारण मन-ही-मन आदर भी करता था।

"दुर्गादास, तुमने सल्तनत के हुक्कामों को बहुत तंग किया है, शाही चौकियों को लूटा है, आग लगा दी है, शाहजादे अकबर को बागी बनाने की कोशिश की, बताओ तुम्हें क्या सजा दी जाय?"

"बादशाह सलामत, मैंने जो कुछ भी किया अपने महाराज और वतन की वफादारी के लिए किया। आपके हुक्काम हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे, मन्दिरो को तोड़ रहे थे, बहिन-बेटियों की अस्मत लूट रहे थे।"

पहरेदारों को हुक्म हुआ कि उसको किले के नीचे के तहखाने में बन्द कर दिया जाय।

जब बादशाह सलामत महल में गये तो उनकी पोती (शाहजादे अकबर की लड़की) ने कहा कि "दादाजान, यह आवाज तो मेरे बाबा की सी थी, क्या वे यहाँ आये हैं?"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"बेटी तेरे सामने ही तो दुर्गादास खड़ा था, तुम उनके यहाँ दस वर्ष रही—क्या उसे पहचानती भी नहीं ?"

"नहीं दादा हजूर, वे हमेशा मुझे सख्त परदे में रखते थे—कुरानशरीफ पढ़ाने के लिए एक मुसलमान आलिम फाजिल मामानी को रखा था। अगर कभी बात करनी होती तो उसी के मार्फत करते थे।"

औरंगजेब को ताज्जुब हो रहा था कि इतनी परी सी सुन्दर युवती को अपने पास इतने वर्षों तक रखकर न तो कभी उसके मज़हब बदलने की सोची और न किसी राजपूत शाहजादे से शादी करने की। मैंने इसका गाँव जला दिया, सैकड़ों मन्दिर तोड़ दिये, परन्तु ऐसा मौका हाथ में आने पर भी इसने छोड़ दिया, कुरान-शरीफ की पढ़ाई करायी। अजब किस्म का इन्सान है यह दुर्गादास। परन्तु औरंगजेब इन जज्बातों में यकीन करने वाला नहीं था। दुर्गादास का मारवाड़ में ही नहीं, बल्कि सारे राजस्थान में सुयश फैल रहा था। वह उसे खत्म कर देना चाहता था। अब वह उसकी कैद में था। ऐसा मौका फिर नहीं आने का। यह सोचकर अपने सरदारों से दरबारे खास में उसे कत्ल करने की योजना बना रहा था।

संयोग से उदयपुरी बेगम पर्दे में बैठी हुई सारी बातें सुन रही थी। सोचा दो-एक रोज में दुर्गादास को फाँसी होने वाली है, क्यों नहीं आज रात में जाकर एक बार उससे मिलूँ। खूब बन-ठनकर रात के १२ बजे तहखाने की तरफ चली। संयोग से औरंगजेब जग गया, वह अव्वल दर्जे का शक्की तो था ही। थोड़े दिनों पहले ही शाहजादी जेबुन्निसा का वाकया हो चुका था। वह छिपकर बेग़म के पीछे चलने लगा।

बेग़म कैदखाने के फाटक पर पहुँची। मुगलों के कैदखाने के पहरेदार गूंगे व बहरे हब्शी होते थे। बेग़म ने पंजा दिखाकर चाभी माँगी और फाटक खोलकर भीतर चली गयी। दुर्गादास को पता लग गया था कि दो-एक दिनों में उसे कत्ल किया जायगा। उसे किशोर अजीत सिंह को जोधपुर राज्य पर बैठाने की चिन्ता थी। १७ वर्षों से वहाँ मुगलों की सल्तनत थी, उसपर मुसलमान फौजदार राज्य करता था। उसके कारनामों से प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। हिन्दुओं पर जजिया कर लग चुका था। कुछ राजपूत तथा अन्य जाति वाले मुसलमान बन गये थे।

बेगम ने पुकारा "दुर्गादासजी, जागते हैं क्या ?"

"मलक एआलम, जिसको जल्द ही फाँसी होने वाली हो, वह भला निश्चितता की नींद कैसे सो सकता है ? परन्तु आप इस समय यहाँ कैदखाने में ?"

"आपको छुड़ाने आयी हूँ। आप चाहें तो इसी समय हम दोनों यहाँ से दूर चले जा सकते हैं। बादशाह की फिक्र मत करो, वह चाहे कितना ही शक्की हो, मेरे वश में है। मैं दिलोजान से आप पर फिदा हूँ। पन्द्रह वर्ष पहले आपको देखा था, तभी से मन में मिलने की तमन्ना लिये हुए हूँ।"

"नहीं मलिका, मेरी पत्नी है, पुत्र है, भरापूरा परिवार है। आप मेरी छोटी बहिन या बेटी की तरह हैं, आप ऐसी बातें न करें।"

बादशाह की बुढ़ौती में चहेती उदयपुरी बेगम और पैर पटकती फुँफकारती हुई कहने लगी कि "आप अजीब शख्स हैं, तभी तो दुश्मन की पोती जवान शाहजादी आपके देहात के गाँव में इतने वर्षों तक रहकर अछूती चली आयी और अब जबकि आपको जिन्दगी ओर मौत के चुनाव का मौका मिल रहा है तो आप जिन्दगी की बहार छोड़कर कुत्ते की मौत मरना चाहते हैं।"

"बेटी ! दुर्गादास पराई स्त्री के बारे में माँ-बहिन या बेटी के सिवाय कुछ सोच ही नहीं सकता। मरना तो एक दिन है ही, चाहे कल मरूँ या दस-बीस वर्ष बाद।"

औरंगजेब ने सारी बातें सुन ली थीं। उसके मन में इस बेग़म तथा उसके लड़के कामबक्श

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लिए शुरू से कमजोरी थी। फिर भी ऐसी वारदात के बाद उसे दण्ड देना जरूरी हो गया था, मौके की तलाश में था।

संयोग से दूसरे दिन से ही कुछ ऐसे वारदात हो गये कि दुर्गादास की फाँसी टल गयी।

शम्भाजी को आगरे बुलाकर मार दिया गया।मराठे कुछ समय के लिए ठंढे पड़ गये। शाहजादा अकबर मक्का चला गया। तहव्वर खां अपने आप मर गया। औरंगजेब बहुत खुश था कि एक साथ ही इतने संकट टल गये।

सोचा, अब दिखाने के लिए दुर्गादास से मित्रता कर लेनी ठीक रहेगी। उसे दसरे दिन दरबार में बुलाकर खिल्लत, बख्शी, लूनवा की जागीर वापस दे दी।

वह राजपूताना आकर मेड़तिया के ठाकुर श्यामसिंह के पास जाकर ठहर गया। इधर औरंगजेब ने उसे कत्ल कर देने के लिए एक बड़ी फौज पीछे लगायी।

दुर्गादास के पास उस समय एक हजार जवान थे, जबकि मुगलों की २० हजार की बड़ी सेना, परन्तु इन्हें देवारी की घाटी का सहारा मिल गया। मुगल सेना अनजान घाटी में घुस गई। राजपूतों ने उन्हें चारों तरफ से घेर लिया। पहाड़ों के ऊपर से विषैले तीर और पत्थर आने लगे। मुगल फौज बहुत से सिपाही खोकर दिल्ली की तरफ भाग गई। देवारी से जोधपुर आकर मेवाड़ के पहाड़ों से राजा अजीत सिंह को बुला लिया। १८ वर्ष बाद आज उसकी महाराज जसवंतसिंह के सामने की हुई प्रतीज्ञा पूरी हो रही थी।

मेवाड के राणा जयसिंह ने अपनी भतीजी का विवाह अजीतसिंह से कर दिया था—नयी रानी भी साथ में थी।

सन् १६९८ में जोधपुर में बड़ा दरबार हुआ। सारे राजस्थान के राजा और जागीरदार भेंट लेकर आये, यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी एक जड़ाऊ तलवार और मनसब की सनद भेजी। मरते समय जसवंत सिंह ने दुर्गादास को एक डब्बा दिया था—उसे सबके सामने खोला गया। उसमें एक रत्न जड़ित मुकुट और कटार थी। मुकुट नये महाराज के सर पर रखकर कटार उनकी कमर में बाँध दी गयी।

"महाराज, आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, मेरे हर्ष का पारावार नहीं है। भगवान ने मेरी तलवार और पगड़ी की लाज रख ली। अब मैं अपना अन्तिम समय सुधारने के लिए आपसे छुट्टी लेता हूँ।" इतना कहकर उसने अपनी राजसी पोशाक उतार दी और साथ की झोली में से गेरुए कपड़े निकाल कर पहन लिए। सारी सभा ने नारा लगाया—"राजसंन्यासी वीर दुर्गादास की जय।"

सभी की आँखें गीली थीं। वृद्ध सन्यासी कमडल हाथ में लिए धीरे-धीरे दरबार से बाहर जा रहा था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुँवर हरदौल

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि किसी प्रकार के लालच या यंत्रणा के भय से बहुत से समर्थ लोगों ने अपनी बहन-बेटियों का मुगलों के साथ विवाह कर दिया या धर्म-परिवर्तन कर लिया।

परंतु इतिहास में बहुत से ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सब तरह के कष्ट और यातनाओं के बावजूद कुछ महापुरुषों ने अद्भुत बलिदान किया है। इस संदर्भ में सिखों के गुरु अर्जुन देव और गुरु गोविंद सिंह के दो बच्चों के बलिदान का उदाहरण दिया जा सकता है। हम यहाँ बुंदेलखंड की एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करेंगे जो अपने आप में अनुपम और शायद अकेली है।

बचपन से ही बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल के बारे में सुनता आ रहा था। महाकवि भूषण का छत्रसाल शतक मध्यमा के कोर्स में पढ़ा था। छत्रपति शिवाजी और मरहठों के इतिहास में भी उनका कई स्थानों पर वर्णन है।

संयोग से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और मैं, दोनों नई दिल्ली में लम्बे समय तक पड़ोसी रहे। उन्होंने कई बार बुन्देलखण्ड देखने का निमंत्रण दिया। ओरछा, झाँसी और बेतवा नदी के बारे में इतनी कविताएँ सुन चुका था कि उन स्थानों से बिना देखे ही जान-पहिचान हो गयी थी। इसी संदर्भ में कुँवर हरदौल के बारे में भी उनसे एक कविता सुनी थी।

१९६४ के अगस्त में एक दिन मित्रवर गंगाशरणजी सिन्हा (संसद-सदस्य) के साथ चिरगाँव जाकर "दद्दा' (यह राष्ट्रकवि का बोल-चाल का नाम था) के यहाँ हाजिर हो गया। उनके परिवार के आतिथ्य-सत्कार के बारे में मित्रों से पहले ही सुन रखा था। हमें दद्दा के साथ-साथ उनके अनुज सियारामशरणजी तथा अन्य घर के लोग घेरे ही रहते।

मैंने कहा—आपकी कविता तो पढ़ते और सुनते ही रहते हैं, झाँसी भी देखी हुई है। हमें तो आप वीरसिंहदेव की जन्मभूमि ओरछा दिखा दें। वहीं दो गोते बेतवा में लाकर कुछ पुण्य अर्जन कर लेंगे। अगर अभी तक मौजूद हैं तो कविवर केशोदास और वीरसिंहदेव की प्रेयसी कवयित्री 'राय प्रवीण' के निवास-स्थान भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।

यद्यपि दद्दा ७०-७२ वर्ष के थे, परन्तु उनमें बालकों की सी सरलता और चपलता थी। दूसरे दिन सुबह का प्रोग्राम रखा गया। झाँसी से अपने मित्र वृन्दावनलालजी वर्मा को ले लिया। वर्माजी का इस भूमि का चप्पा-चप्पा छाना हुआ था। 'झाँसी की रानी', 'गढ़कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' उन्होंने बहुत खोजबीन के बाद लिखी थी।

हाँ, तो हमलोग छः व्यक्ति दद्दा की कार में चिरगाँव से रवाना हुए। साथ में खाने-पीने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का पूरा सामान रख लिया। वर्माजी किसी समय प्रसिद्ध शिकारी थे। वन-जंगल में शायद कोई हिंसक पशु मिल जाय, इसलिए अपनी दोनाली बंदूक साथ में रख ली। दद्दा उन्हें धमका कर कहने लगे कि "दुष्ट, अब बुढ़ापे में तो यह हत्याकाण्ड बंद करो।" वर्माजी सरल-भाव से हँसने लगे। हम जब ओरछा पहुँचे, दोपहर हो गयी थी। सबसे पहले नदी के किनारे एक बड़े से खँडहर में गये, किसी समय यह अठपहलू महल रहा होगा।

कहते हैं, राय प्रवीण यहीं बैठकर संगीत-साधना किया करती थी। शायद पास में ही किसी तख्त पर बैठे हुए वीरसिंहदेव उसकी रूप-सुधा का पान करते हुए राग-रागिनी सुना करते होंगे। ऐसी भी किवदंती है कि उसकी सुरीली तान को सुनकर अनेक प्रकार के पशु-पक्षी आकर वहाँ इकट्ठे हो जाते थे।

यहाँ से हमलोग महाराज के महल में गये। इसमें ५२ कक्ष हैं, जो सन् १६०६ में वीरसिंह देव ने बनवाये थे। अब तो यह एक बड़ा-सा खँडहर रह गया है; फिर भी बड़े-बड़े सहन कमरे और वीथिकाएँ देखकर मन में अतीत के इतिहास की परतें उभड़ आती हैं।

महल के विभिन्न कक्षों को देखते-देखते शाम हो गयी। कुछ थकावट भी आ गयी। भूख तो लग ही गयी थी। हाथ-मुँह धोकर डटकर नाश्ता किया। पास में ही बेतवा बह रही थी, या ऐसा कहना चाहिए कि वर्षा के कारण उंफन रही थी। यद्यपि मैं तैरना अच्छी तरह जानता था। कई बार काशी में गंगा पार कर चुका हूँ, तथापि दद्दा की मनाही और अनजान जगह के कारण नदी में नहीं उतरा।

महल देखकर हमलोग फूलबाग में आ गये। किसी समय यह बहुत ही सुन्दर उद्यान रहा होगा। अब तो एक दुःखद स्मृति मात्र रह गया है।

यहीं हमने कुँवर हरदौल का चबूतरा देखा। दद्दा कुछ पूजा-सामग्री साथ लाए थे। हमने वह सब श्रद्धा से चढ़ाकर चबूतरे की परिक्रमा की।

वहीं बैठकर वर्माजी ने उस पवित्र प्रेम और बलिदान की कहानी को विस्तार से सुनाया। बीच-बीच में कुछ गीत और कविता भी सुनाते रहे, जिन्हें आज तक बुंदेलखंड के घरों में लड़की के विवाह के समय गाया जाता है।

हरदौल का जन्म सन् १६०८ में ओरछा में हुआ था। महाराज वीरसिंहदेव के बारह पुत्र थे। जुझार सिंह सबसे बड़ा था और हरदौल १०वाँ पुत्र था। जब महाराज का देहांत हुआ, तब हरदौल केवल सात वर्ष का बालक था। जुझार सिंह का उन्हीं दिनों विवाह हुआ था। महारानी ने सती होते समय हरदौल को १४ वर्ष की नव-वधू की गोद में देते हुए कहा—"आज से तुम्हीं इस बालक की मां हो—यह मुझे प्राणों से प्यारा है। अगर इसे किसी तरह का कष्ट होगा तो उसकी पीड़ा मुझे परलोक में होगी। अगर कटुवचन या अन्य किसी कारण से इसका जी दुखाया तो तुम्हें मेरे आराध्यदेव श्रीराम की सौगंध है।"

उन दिनों शाहजहाँ का शासन था। मुगल बादशाहों में अकबर को छोड़कर सभी ने हिन्दुओं पर नाना प्रकार के कम-बेशी आत्याचार किये। मंदिर तोड़ दिए गए, जजिया कर लगाया गया तथा जबरन या लोभ-लालच देकर लोगों को मुसलमान बनाया गया।

हरदौल यद्यपि १६ वर्ष का युवक था, फिर भी उसके मन में हिंदुओं पर आए दिन के अत्याचारों का पुरजोर असर पंड़ा। समय आने पर बदला लेने की भावना प्रबल होती गई। उसने कुछ युवकों की टोली बनाई। वे नित्य घुड़सवारी और शस्त्र-विद्या के साथ-साथ फूलबाग में कुश्ती-कसरत सीखने लगे। वे सब हफ्ते में १-२ बार गुप्त मंत्रणा भी करते कि किस प्रकार यवनों के अत्याचार से हिंदू-धर्म की रक्षा की ज़ाय।

शाहजहाँ के दरबार में ये खबरें बढ़-चढ़कर पहुँचीं। उसने राजा जुझार सिंह को ओरछा से आगरा बुलाकर अपने पास जमानत के तौर पर रख लिया।

उन दिनों मेंहदी हुसेन नाम का एक हिंदू-धर्म द्वेषी और क्रूर पठान बुंदेलखंड का नाजिम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

। आए दिन वह मंदिरों को तोड़ता और नाना प्रकार के अत्याचार हिन्दुओं पर करता रहता। मनचाहे जिस युवती को जबरन अपने हरम में बुला लेता।

जब उसके अत्याचार से लोग त्रस्त हो उठे तो एक दिन भाभी के पास जाकर हरदौल कहने लगा—"भाभी, अब ये अत्याचार नहीं सहे जाते। तुम्हारे चरणों की सौगंध खाकर कहता हूँ कि अगर असल बुंदेला हूँ तो उस अत्याचारी यवन को मार कर ही तुम्हें मुँह दिखाऊँगा।"

उसकी बात सुनकर माता-समान भाभी डर गई। सोचने लगी—कहाँ तो यह बीस वर्ष का युवक और कहाँ हाथी के समान बलवान और सर्वशक्तिमान पठान सरदार।

हरदौल ने मेंहदी हुसेन को उसकी निजामत में जाकर ललकारा। पठान यद्यपि ऐय्याश और अफीमची था तथापि बहादुर और युद्ध-विशारद था। इसके बावजूद वह वीर हरदौल के वार को नहीं झेल सका; थोड़ी देर में ही वह घायल होकर धराशायी हो गया।

अतिरंजित होकर ये खबरें आगरा पहुँचीं। ओरछा से भागकर गए हुए पठानोंने कहा कि वहाँ के लोग हरदौल के बहकावे में आकर बाग़ी बनते जा रहे हैं। वैसे भी बुंदेले मरने-मारने में चित्तौड़ के सिसोदियों से कम नहीं हैं, इसलिए सीधी चढ़ाई न करके कूटनीति से काम लेना चाहिए।

इधर बुंदेलखंड में कुँवर की वीरता के गीत गाए जाने लगे। इससे वहाँ के पुराने सरदारों के मन में ईर्ष्या-भाव जग गया। ये खबरें भी गुप्तचरों द्वारा आगरे पहुँचीं। बादशाह ने ओरछा के मंत्री बहादुर सिंह को आगरे बुलाया। उसे नाना प्रकार के प्रलोभन देकर विश्वासघात करने पर तैयार कर लिया। हरदौल के विरुद्ध एक घृणित योजना बनी। बारी-बारी से कुछ लोग आगरा जाकर राजा जुझार सिंह से रानी और कुँवर हरदौल के बारे में कुत्सित बातें करते।

वड़ा भाई जुझार सिंह भिन्न प्रकार का था। आगरे में रहकर मौज, शौक और ऐय्याशी में पड़ गया। छोटे भाई की वीरता के लगातार बखान से वह मन ही मन जलने लगा था। दरवार में जाकर अर्ज किया कि मुझे ओरछा जाने की मंजूरी दी जाय, जैसे भी होगा अमन-चैन कायम कर दूँगा।

एक दिन अचानक बिना सूचना दिये वह ओरछा पहुँचा। सीधा महल में गया—देखा, देवर-भाभी आपस में हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं। वैसे दोनों में माँ-बेटे का संबंध था, परन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति को तो बुरा-ही-बुरा दीखता है। रानी और कुँवर हर्षविभोर हो गये, दोनों ने उठकर उसके पाँव छुए। उन्होंने इस प्रकार बिना सूचना दिये आने का कारण पूछा। राजा ने न तो राजी-खुशी का हाल पूछा और न कोई बातचीत की। रानी ने समझा कि शायद बादशाह नाजिम के मरने से नाराज हो गया है। जब वह विस्तार से सारी बातें बताने लगी तो राजा ने हरदौल को बाहर भेज दिया। कहने लगा—"रानी, तुमने मुझे कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रखा। सारी दुनिया में तुम्हारे गुप्त-प्रेम की चर्चा फैली हुई है। दिखाने के लिए माँ-बेटे का संबंध रखती रही और छिपकर प्रणय-लीला।"

रानी तो सकते में आ गयी। रोती हुई कहने लगी—

जननी मरी तब सौंप्यो मम गोद लाल,
पाल पाल पलना में कीन्हों जस धौल है।
ईश की दुहाई तुम चरनन संपथ नाथ,
पुत्र के समान मोरे लाला हरदौल है।

परंतु पापी के मन में परतीत कहाँ। कहने लगा—"यदि तुम वास्तव में पतिव्रता हो तो कल सुबह कुँवर को बुलाकर अपने हाथ से विष-पान कराओ। अगर यह नहीं करोगी तो मैं माता गणेश कुँवर की सौगंध खाकर कहता हूँ कि इस तलवार से अपना शीश काट लूँगा। फिर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भले तुम दोनों उम्र भर काला मुँह करते रहना।"

रानी ने रोते हुए कहा कि "आपको उस पुण्यात्मा सती की सौगंध खाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अपना और पुत्र-समान देवर का नाम उज्ज्वल रखने के लिए हम दोनों कल सुबह विष-पान करेंगे।"

दूसरे दिन सुबह रानी ने कुँवर को कलेवा के लिए महल में बुलाया। वहाँ जाकर देखा कि मातृ-समान भाभी बिलख-बिलखकर बिसूर रही है। दूध का कटोरा देती हुई कहने लगी—"बेटा, मै जानती हूँ कि फौज-पल्टन सब तुम्हारे साथ है। किसी की मज़ाल नहीं कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके। परंतु मैने सब तरह से सोच-विचार कर देख लिया है कि हमें कुल का नाम उज्ज्वल रखने के लिए आत्मबलिदान करना ही होगा। आज तुम और मैं दोनों एक साथ विष-पान करेंगे। यहाँ तो पानी-धरती है, परंतु स्वर्ग में हम माँ-बेटे को कोई अलग नहीं कर सकेगा।

जौन हाथ रोज लाल गोद में खिलाया तुम्हें,
आज सोई हाथ दूध गरल का पिलाती हूँ।

हरदौल को अशुभ का आभास तो पिछले दो दिनों में हो ही गया था, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी। भाभी को सांत्वना देते हुए कहा—

सपथ हमारी है माता जहर खाइयो ना,
खात मैं अकेलो तुम परजा समझाइयो।
ओरछा की भूमि हमें स्वर्ग के समान लागे,
बेतवा किनारे पर चौतरा बनाइयो।

इतना कहकर कटोरे को मुँह से लगाकर सारा दूध पी लिया।

थोड़ी देर में ही जो स्वस्थ और सुन्दर शरीर था, वह विष से काला पड़कर मुरझा गया। सारे ओरछा में बिजली की तरह खबर फैल गयी। नगरवासी शोक से छाती पीटने लगे। राजा को हत्यारा, कसाई, भ्रातृ-हता कहकर कोसने लगे।

मनुष्य क्रोध के आवेश में आकर जघन्य कार्य कर बैठता है। परंतु आगे जाकर उसे भय और संताप भी कम नहीं होता। जुझारसिंह ने सुना कि प्रजा विद्रोह करने पर तुली हुई है तब रात में छिपकर थोड़े दिनों के लिए ओरछा से भाग गया।

आस-पास के गाँवों के हजारों स्त्री-पुरुष अर्थी के साथ श्मशान गये और रोते बिलखते हुए प्रिय कुँवर को श्रद्धाजलि दी।

जिस स्थान पर दाह-संस्कार हुआ था, वहीं वह चबूतरा बना हुआ है। आज भी नित्य-प्रति सैकड़ों स्त्री-पुरुष वहाँ दर्शन करने आते हैं। थोड़े से फूल और दूध चढ़ा जाते हैं। बुंदेली भाषा में एक गीत भी गाते रहते हैं—

लाला तोरे भले हैं लछारे नाम—
गाँवन गाँवन चौतरा देशन देशन नाम बुंदेला देशा के।

जिस कटोरे में हरदौल ने विष-पान किया था, वह भी वहीं एक कक्ष में रखा हुआ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिंहगढ़ विजय

खड़े सिंहगढ़ के अजय, ये गर्वित कंगूर ।
शिब्बा बेटा जगत में, वृथा कहाया शूर ।।

ऊपर एक प्र
था । अगर को सिद्ध मराठी दोहे का अनुवाद है जिसे माता जीजाबाई ने शिवाजी से कहा
देवीस्वरूपा ई दूसरा व्यक्ति ऐसा कहता तो उसकी जीभ खींच ली जाती, परंतु यह तो
परामर्शदात नाँ साहिबा ने स्वयं कहा था जो न केवल उनकी पूज्य जननी थी, बल्कि
शिवा और शिक्षिका थी ।

गए तब जी अभी जंजीरा के बड़े अभियान से लौटे थे–थके हुए थे । जब माँ को प्रणाम करने
बा उन्हें यह सुननी पड़ी । विजय-गर्व जाता रहा और चेहरे पर उदासी छा गई ।
का ऊँच्त ऐसी हुई कि जीजाबाई जब भवानी के मंदिर में पूजा करने जाती तो सामने सिंहगढ़
कारण ा किला दिखाई देता । कभी यह उनके पुत्र शिवाजी का था जो पुरंदर की संधि के
टीस मुगलों को दे देना पड़ा था; इसलिए पिछले चार वर्षों से उनके मंन में एक दुःखभरी
लेकि उठती रहती थी । बहुत बार शिवाजी के मन में उस किले को वापस लेने की बात उठती
न वे मौके की ताक में थे ।

सा औरंगजेब ने किले की रक्षा का भार एक अजेय राजपूत वीर उदयभानु को बड़ी फौज के
साथ दे रखा था । किला इतना सुदृढ़ और सीधी चढ़ाई का था कि मनुष्य की तो बात ही क्या,
ांप और गिलहरी भी उस पर नहीं चढ़ सकते थे ।

महाराज की बायीं आँख फड़क रही थी, अपशकुन भी हो रहे थे, परंतु माँ की इच्छा के आगे कोई चारा नहीं रह गया । उन्होंने अपने सर्वोच्च सेनापति और मित्र तानाजी मालसरे के गाँव सूचना भेजी कि वे सब काम छोड़कर तुरंत सिंहगढ़ का किला फतह करके आयें ।

उन्हीं दिनों तानाजी के इकलौते बेटे का विवाह था । सगे-संबंधी सब आये हुए थे, औरतें मंगलाचार के गीत गा रही थीं, शहनाई बज रही थी, ऐसे में महाराज का दूत यह समाचार लेकर पहुँचा ।

तानाजी उसी समय अपने एक हजार घुड़सवार वीरों को लेकर सिंहगढ़ जाने की तैयारी करने लगे । घर में उदासी छा गयी । पत्नी कहने लगी कि "आप विवाह के बाद तुरंत चले जाइएगा । दो-चार दिनों की तो बात ही है, अगर बीच में जाएंगे तो आए हुए मेहमान अपना अपमान समझेंगे और विवाह का सारा उत्सव फीका पड़ जायगा ।"

"बावली, महाराज की सेना की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है । जब उन्होंने इस काम के लिए मुझे चुना है तो फिर मैं एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता । तुम लोग सब काम सम्हालो । –छोटा भैया है ही, मै शीघ्र ही सिंहगढ़ विजय करके वापस आता हूँ ।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जब विदा की बेला आई तो छोटा भाई सूर्याजी जिरह-बख्तर पहनकर पहले से ही तैयार था। इतने दिनों तक जिस अजेय किले को वापस लेने की हिम्मत महाराज स्वयं नहीं कर सके वह आसानी से जीत लिया जायगा, यह बात उसे जँचती नहीं थी। सोचा—भाई साहब के जान की बहुत बड़ी कीमत है। वे मराठा फौज के सर्वोच्च सेनापति हैं। खतरे के समय मुझे उनके साथ रहना ही चाहिए। बहुत समझाने-बुझाने पर पैर पकड़कर रोने लगा, आखिर उसे साथ लेना ही पड़ा।

अँधेरी वर्षा की रात। अपना हाथ भी नहीं दिखाई देता था। परंतु रास्ते में चप्पा-चप्पा ... मराठा फौज का जाना हुआ था। मन में उत्साह था कि आज अपना गया हुआ किला वापस लेकर अपमान की कालिमा को मिटायेंगे।

सभी किले की ऊँची दिवारों के नीचे पहुँच गये, परन्तु भीतर जाने का कोई उपाय नहीं था। अगर दस-बीस सिपाही भी पहुँच जायँ और किसी तरह किले का फाटक खोल सकें तो फिर आमने-सामने युद्ध हो सकता है।

तानाजी के पास 'यशवंती' नाम की गोह (एक प्रकार की बड़ी छिपकली जो जमीन, दिवार पर चिपक जाती है) थी, जो उन्हें बेटी की तरह प्यारी थी, उसे पुचकार कर किले की दिवार पर चढ़ने के लिए फेंका। शायद जानवरों को भी शुभ-अशुभ का अंदेशा रहता है। आज वह किसी प्रकार भी आगे नहीं बढ़ रही थी; बारंबार नीचे चली आती। तानाजी ने प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, मेरी इज्जत का सवाल है। तुमने आज तक मेरे आदेशों का पालन किया। मुझे इस संकट के समय धोखा मत देना।"

इस बार गोह किले के ऊपर जाकर चिपक गयी। सबसे पहले ऊपर चढ़े स्वयं तानाजी।

सिपाहियों ने बहुत-कुछ आरज़ू-मिन्नत की कि ऊपर पहरेदारों का खतरा है, पहले हम जाकर आपको बुला लेंगे। परंतु मराठा सरदारों का यह नियम था कि संकट के समय हमेशा आगे रहते थे और यही कारण था कि सैनिक उनके लिए जान देने को तैयार रहते थे।

ऊपर जाकर मजबूती से एक महराब से रस्सा बाँध दिया गया और बहुत से सैनिक बारी-बारी से किले में पहुँचने लगे।

किले के भीतर पहरे का पूरा बंदोबस्त था। बहुत सावधानी बरतने पर भी पहरेदारों को पता लग गया और उसी समय खतरे की घंटी बजी। चारों तरफ से राजपूत मुगल-सैनिकों ने थोड़े से मराठों को घेर लिया।

दैत्य के समान शरीरवाला दुर्गाध्यक्ष उदयभानु राठौर भी अपनी बहुत बड़ी तलवार लेकर आ गया। उसके बल-पौरुष की सारे महाराष्ट्र में चर्चा थी।

तानाजी ने सोचा कि जब महाराज ने अफजल खाँ जैसे लम्बे-चौड़े राक्षस को मार गिराया तो क्यों न मैं इस धर्मद्रोही को मारकर यश हासिल करूँ।

दोनों वीर तलवारें लेकर भिड़ गये। बहुत देर तक दोनों लड़ते हुए थक गए। परंतु तानाजी तो जान की बाजी लगाकर लड़ रहा था। आखिर उदयभानु करारी चोट खाकर बेहोश होकर गिर गया।

उसे गिरते देखकर उसके अंगरक्षक ने पीछे से तानाजी पर वार करके उनका सिर काट लिया। दोनों एक साथ प्राण-विहीन होकर गिरे। अपने समय के दो अद्वितीय वीर आस-पास लेटे हुए थे। अब उम्र भर का वैर-विरोध समाप्त हो गया था।

सेनापति की मृत्यु की सूचना से बची हुई थोड़ी-सी मराठा फौज में भय समा गया। वे हथियार डालकर आत्मसमर्पण की सोच रहे थे कि सूर्याजी ने जोर से चिल्लाते हुए कहा—"वीरो, भैया तो वापस आने से रहे, अगर उनके प्रति तुम्हारी कुछ श्रद्धा रही हो तो आज जैसा मौका फिर नहीं आयेगा। मरना तो दोनों तरह से है। क्योंकि हमारे नायक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किले से नीचे उतरने की रस्सियों को काट दिया है; फिर कायर की मौत मरकर महाराज और भैया के नाम पर बट्टा मत लगाओ।"

थके हुए मराठों में नया जोश आ गया। बढ़-बढ़कर वार करने लगे। एक ही धुन थी कि किसी प्रकार किले के फाटक को खोलकर बाहर के बचे हुए सैनिकों को भीतर आने का मौका मिल जाय।

मुगल और राजपूत फौज भी अपने अजेय सेनापति की मौत को सुनकर डर गयी थी। वे मराठों की तलवार और भालों के सामने नहीं ठहर सके। फाटक खुल गया। बचे हुए पाँच सौ मराठा वीर हर-हर महादेव कहते हुए भीतर आ गये। राजपूतों ने हिम्मत हारकर हथियार डाल दिये।

एक तेज घुड़सवार को महाराज को सूचना देने रायगढ़ भेजा गया। वे प्रतीक्षा कर रहे थे। सारा समाचार सुनकर उनकी आँखों में आँसू आ गये। सोचने लगे—'बहुत महँगी पड़ी यह जीत!'

माता के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगे—"माँ साहिबा, गढ़ आला पण सिंह गेला।" अर्थात् किला आया, पर सिंह चला गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजी-शिवाजी मिलन

"शिब्बा बेटा, आजकल शरीर अस्वस्थ रहता है। वैसे तुम्हारे साम्राज्य में मुझे सब तरह का आराम है। तीनों बहुएं रात-दिन सेवा में रहती हैं, परंतु एक बार तुम्हारे पिताजी को देखने का मन होता है। ३२ वर्ष पहले उन्होंने हमारा त्याग किया था, उस समय तुम जन्मे भी नहीं थे। भवानी की दया से अब ५२ किलों के अधिपति हो, सारे महाराष्ट्र में तुम्हारी तूती बोलती है। एक बार वे आकर देखें तो सही कि १८ वर्ष पहले एक किशोर को पूने के छोटे से गाँव की जागीर दी थी, अब उसका न केवल बीजापुर बल्कि दिल्ली सल्तनत तक लोहा मानती है। उन्हें यह सब देखकर खुशी ही होगी।"

"माँ साहिबा, मैंने भी कई बार पिताजी को बुलाने की सोचा। परंतु जिन्होंने हमें एक प्रकार से त्याग दिया, ३२ वर्ष के लम्बे समय से सुध नहीं ली, १८ वर्ष पहले जब आप मुझे लेकर बंगलोर गईं तब उस समय भी आपको अपमानित होकर वापस आना पड़ा; वे सब बातें भुलाई नहीं जा सकतीं। बीजापुर से हमारी दुश्मनी है और वे वहाँ के सूबेदार हैं। इसलिए भी उनका यहाँ आना खतरे से खाली नहीं है। उनके साथ पठान और तुर्क जासूस भी आ सकते हैं।

"शिब्बा ! तुम यह क्यों भूल जाते हो कि वे तुम्हारे पिता और मेरे आराध्य हैं। तुमने छोटे से जीवन में बहुत से खतरे उठाए हैं, फिर तुम्हें डर किस बात का है। दो महीने बाद होली का त्यौहार है, जेजूरा के खंडोबा भगवान के उत्सव में उन्हें बुलाने के लिए निमंत्रण देकर सेनापति तानाजी को भेजो। जरूरत समझो तो साथ में शम्भा को भी भेज दो। मेरा मन कहता है कि वे अवश्य आवेंगे।"

फरवरी १६६१ की बात है, रायगढ़ के किले के फाटक में चार सुसज्जित आदिलशाही घुड़सवार आये। लोग समझ गये कि कई दिनों से जो चर्चा चल रही थी, वह सफल हुई है। शाहजी महाराज जल्द ही राजगढ़ पधारेंगे। एक व्यक्ति ने कहा—"इन शत्रुओं के आदमियों का क्या भरोसा ? यहाँ की सारी जानकारी बीजापुर में दे देंगे।" दूसरा कहने लगा—"जब मुगल बादशाह औरंगजेब का मामा शाइस्ता खाँ और बीजापुर के दैत्य के समान सेनापति अफ़जल खाँ को यहाँ मुँह की खानी पड़ी तो फिर हमें डर किस बात का है ? हमारे महाराज को देवी भवानी का इष्ट है। देख लेना उनका बाल भी बाँका नहीं होगा।"

थोड़ी देर बाद किले के फाटकों पर तुरही बजने लगी, तोपें छूटने लगीं। लोग समझ गये कि महाराज के पिता शाहजी जल्द ही पधारेंगे। शिवाजी महाराज के मंत्री, सेनापति और सेठ-साहूकार स्वागत के लिए बाजे-गाजे के साथ गये। पिता-पुत्र के मिलने का स्थान जेजूरी में खंहोबा के मंदिर में निश्चित हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजी सुदूर बंगलोर से सदल-वल आ रहे थे । रास्ते में जिन गाँवों से गुजरते, तोरन-वंदनवार सजे थे । लोग झुक कर जुहार करते । शिवाजी महाराज के साथ उनकी भी जय-जयकार करते ।

इस प्रकार १५ दिनों में वे जेजुरी पहुँचे । वहाँ के सारे घरों में नया रंग किया गया, रास्ते में तोरण बने, स्त्रीं-पुरुष नये-नये कपड़े पहने अगवानी के लिए उमड़ पड़े । मंदिर के दरवाजे पर उन्हें हाथी पर से चाँदी की सीढ़ी लगाकर सम्मानपूर्वक प्रधान मंत्री नेताजी पालकर ने उतारा । वे मंदिर में गये, वहाँ जीजा माता उपस्थित थीं । किसी समय की युवती अब वृद्धा हो चुकी थीं, सलवटें पड़ गई थीं, परंतु चेहरा ओजपूर्ण था । महाराष्ट्र-मंडल के अधीश्वर की जननी और प्रजा की पूजनीया माँ साहिबा थीं ।

३२ वर्षों के लम्बे समय के बाद पति से मिल रही थीं, अगर एकांत होता तो शिकवा-शिकायत भी करतीं, परंतु मंदिर में सैकड़ों विशिष्ट व्यक्ति मौजूद थे । झुककर पति के पैरों में गिर पड़ी । पुरानी यादें आ गईं –आँसू उमड़ पड़े । आज सम्माननीय माताश्री भूल गई कि उसे इस हालत में बहुत से लोग देख रहे हैं, वे मन में क्या समझेंगे ?

दोनों स्वर्णसिंहासन पर बैठे, पंडितों ने मंत्रोच्चार करके भगवान खंडोबा की पूजा सम्पन्न की । भोग के बाद आए हुए लोगों को प्रचुर प्रसाद दिया गया । न्यौछावर करके हजारों रुपये वहाँ पर इकट्ठे हुए भिखमंगों को बाँटे गए ।

शिवाजी महाराज अपने शिविर से पिता से मिलने चले । साथ में भेंट के लिए अनेक प्रकार के चाँदी-सोने के सामान और मोती-हीरों से लदे घोड़े और हाथी थे ।

एक थाल में घृत भरा हुआ था । उस समय की रीति के अनुसार दोनों ने उस थाल में एक-दूसरे की परछाईं देखी, इसके बाद पर्दा हटा दिया । नगारे और दुंदुभी बजने लगी । पुत्र पिता के पैरों पर गिर पड़ा । शाहजी ने उठाकर छाती से लगा लिया । चारों तरफ से जय-जयकार होने लगी । इतने में सेवक बालक शम्भाजी को ले आये । आज पहली बार दादा अपने पोते को देख रहे थे । प्यार से उसे गोद में बिठाकर चूमने लगे । जीजा माता पति, पुत्र और पौत्र के मिलन को देखकर आत्मविभोर हो रही थी । आज वह परित्यक्ता विरहिणी नहीं, बल्कि गौरवशालिनी पत्नी, माता और दादी थी ।

महाराज ने पिता से राजगढ़ पधार कर भोजन और आराम करने की प्रार्थना की ।

सोने की पालकी थी, हीरे-मोती जड़े थे । शाहजी जूते उतार कर पालकी में जा बैठे । शिवाजी महाराज उनके जूते अपने हाथों में लिये पैदल चल रहे थे । प्रजाजन ऐसी पितृभक्ति देखकर धन्य-धन्य कहने लगे । माता के चेहरे का भाव देखकर वे पुरानी बातों को भूल गये थे ।

दादा, पुत्र और पोता सोने के थाल में भोजन कर रहे थे, जीजा बाई परोस रही थी । आज उसका जीवन धन्य हो गया था । भोजन करने के बाद शाहजी पलंग पर लेटकर आराम करने लगे । पुत्र शिवाजी बैठकर पैर दबाने लगे ।

"पिताजी, इन पैरों में धर्म-देशद्रोही बाजीराव घोरपड़े ने बीजापुर सल्तनत के आदेश से जंजीर डालीथी । मैंने उसे मारकर उसकी जागीर में गधों से हल चला दिये हैं । आज वहाँ के महलों में नाचरंग की जगह चील और कौए बोल रहे हैं ।"

"बेटा, मैंने तुम्हारी सारी शौर्यगाथा सुनी थी, परंतु तुम दुश्मन की रियासत में केवल १०० सिपाहियों को लेकर चले गये, यह बात युद्ध-नीति के प्रतिकूल है । हमेशा शत्रु के घर में पूरी तैयारी करके जाना चाहिए ।"

रात में दरबार का आयोजन हुआ । कवि अज्ञानदास के सिवाय जयपुर से युवक कवि भूषण भी आये थे । शिवाजी की जो यश-गाथा गायी गई, उसे सुनकर शाहजी की आँखों में हर्षाश्रु आ गये । कवि भूषण ने अपनी तेजस्वी आवाज में यह छंद कहा था ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राखी हिन्दुवानी हिंन्दुवान को तिलक राख्यो, अस्मृति पुरान राखे बेद बिधी सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की, धरा में धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी में।
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की, देस-देस कीरति बखानी तव सुनी में।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरो, दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी में।

दोनों कवियों को चाँदी के हौदे सहित घोड़े और अशर्फी के तोड़े भेंट में दिये गये। अन्य सबको सोने की कंठी और कपड़ों के पाँच बक्स दिये गये।

शाहजी महाराज १५ दिनों तक शिवाजी के साम्राज्य में रहे और उनके विभिन्न किलों का निरीक्षण किया।

२५ वर्ष पहले का पूना गाँव अब बड़ा शहर हो गया था। जीजा माता ने ५ वर्ष के शिवा से सर्वप्रथम यहाँ की जमीन में सोने का हल चलवाया था। आज वह पथरीली जमीन हरीभरी शस्य श्यामला हो गयी थी। शाहजी हर्ष और गर्व से फूले नहीं समाते थे। सबसे सुखी थी जीजा माता, जो साधारण गृहस्थ स्त्री की तरह पति, पुत्र और पौत्र को हाथ से नाना प्रकार के व्यंजन बनाकर खिला रही थी। विदा-वेला आयी। शिवाजी ने जब पैर छुए तो पिता ने उन्हें अंक में भर लिया—शम्भाजी को छाती से लगाकर सिर सूँघते रहे।

जीजा माता, जिनके सामने बड़े-बड़े सरदार और सेनापति कांपते रहते थे, आज सब प्रकार के संयम और लाज के बाँध तोड़कर सुबक-सुबक कर रोने लगी थी।

"प्रभु, मेरी विनती है कि आप बगलोर छोड़कर काशी बहिन और चिरंजीव व्यंकोजी सहित यहाँ आकर रहें। वैसे शिब्बा और बहुएँ मेरी हर तरह से सेवा करती हैं, परन्तु लोग चाहे मुँह से न कहें, मन में तो मुझे परित्यक्ता पत्नी ही मानते हैं। मैं आजकल अस्वस्थ रहती हूँ। अंतिम दिनों में आप रायगढ़ में रहकर हमें चरण-सेवा का सौभाग्य दें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मातृ-दर्शन

सन् १६५७ की अक्टूबर की एक साँझ—सुहावनी संध्या—गुलावी मौसम। शिवाजी देवी भवानी के मंदिर से बाहर आये तो चकित रह गये !

खच्चरों और बैलों का लम्बा सा-कारवाँ—हीरे, पन्नों और जवाहरातों से भरे सोने-चाँदी से दबे पशु धीरे-धीरे किले में प्रवेश कर रहे थे। पंतप्रधान मोरोपंत ने जिज्ञासा शांत की—"महाराज, अम्बाजी सोनदेव ने कल्याण के सूबे पर आधिपत्य कर लिया है और लूट का सामान लेकर आये हैं।" शिवाजी ने अम्बाजी को गले से लगाया और बहुमूल्य कंठहार से पुरकृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याण का शक्तिशाली सूबेदार इतनी आसानी से कैसे हार गया।

"शाबाश अम्बाजी, तुम्हारी स्वामिभक्ति और बहादुरी पर हमें गर्व है।" शिवाजी की छाती फूल उठी अपने बहादुर सेनापति को देखकर। पर वे चौंके, पूछा—"इस पालकी में क्या है ?"

अम्बाजी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"महाराज, इस पालकी में कल्याण की सबसे सुंदर नाजनीन है—मुल्ला अहमद की पुत्र-वधू सलमा, जिसकी खूबसूरती की शोहरत सारे महाराष्ट्र में फैली हुई है। इसके क्रूर श्वसुर ने सैकड़ों हिन्दू ललनाओं की आबरू के साथ खेला है—आज उससे बदला लेने का सुंदर अवसर मिला है।"

अम्बाजी अपनी सफलता पर फूले नहीं समा रहे थे। परंतु शिवाजी विचलित हो उठे। उन्होंने आँखें मूँद लीं—उन्हें अपना बचपन याद आने लगा। पिता शाहजी बीजापुर के सुल्तानों के यहाँ जागीरदार एवं फौजी अफसर थे। तीन हजार मराठा घुड़सवार और पैदल सिपाहियों की उनकी निजी फौज थी। माता जीजाबाई कर्तव्यनिष्ठ, साहसी एवं धर्मपरायणा थीं, किन्तु परमात्मा ने उन्हे रूप नहीं दिया था।

शाहजी ने तीस वर्ष की अवस्था में तुका बाई नाम की एक युवती से विवाह कर लिया और उसी के साथ बंगलौर में रहने लगे। सन् १६२६ में उन्होंने जीजाबाई को शिवनेर के किले में भेज दिया। दुखिया जीजाबाई ने अपना सारा प्यार बालक शिवा पर उड़ेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन बिताने लगी।

सौभाग्य से दादाजी कोणदेव जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थ गुरु रामदास का मार्गदर्शन मिला। इस कारण बचपन से ही शिवा में अच्छे संस्कार जमने लगे, साहस और वीरता के साथ धर्म के प्रति आस्था के लक्षण नजर आने लगे।

उन दिनों विवाह बचपन में हो जाते थे। जब वे चौदह वर्ष के हुए तब जीजाबाई ने पति को पुत्र के विवाह के लिए लिखा। शाहजी ने उन दोनों को बंगलौर में अपने निवास-स्थान पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बुलाया। वहाँ सौत तुका बाई ने उनका तरह-तरह से अपमान किया। परंतु जीजाबाई ने बारह वर्ष की कठिन तपस्या से अपने को बहुत संयत कर लिया था।

उन्होंने शाहजी से केवल इतना कहा—"आपके सुख में ही मेरा सुख है। आपका सारा धन और जागीर तुका बाई और उनके पुत्र ब्यंकोजी को फूले-फले। शिवा को केवल पूना का गाँव दे दीजिए। यदि उसमें योग्यता होगी तो वह उसे बढ़ा लेगा।

इस प्रकार पंद्रह वर्ष की छोटी-सी अवस्था में शिवाजी पूना के जागीरदार बने। उन्होंने घुड़सवारों की एक छोटी-सी टुकड़ी तैयार कर ली और मौका देखकर आस-पास में इलाकों पर छापे मारने लगे। मुसलमान सूलतानों और अधिकारियों के अत्याचार से लोग बहुत दुःखी थे, इसलिए उनकी विशेष रोकथाम नहीं हुई। लूट का सामान लाकर माता के सामने रख देते। इसमें से तीसरा हिस्सा सिपाहियों में बाँट दिया जाता। कुछ अंश जीर्ण-शीर्ण मंदिरों के पुनरुद्धार में, कुएँ, बावड़ियों की मरम्मत या निर्माण में व्यय किया जाता। बाकी बचा हुआ धन बेहतरीन घोड़े और नए-नए अस्त्र-शस्त्र के खरीदने में लगाया जाता था।

सब प्रकार से साधनसंपन्न होते हुए भी वे अपने को स्वामी रामदास का सेवक मात्र मानते थे, इसलिए अपने ध्वज का रंग भी भगवा (गेरूआ) रखा। सन् १६५७ में उनकी अवस्था केवल तीस वर्ष की थी, किन्तु इसी बीच महाराष्ट्र के बहुत से किलों पर उनका कब्जा हो गया। बीस हजार सुसज्जित मराठा वीरों की उनके पास फौज थी। दुश्मनों की बड़ी से बड़ी फौज पर बाज की तरह झपटते और लूटकर वापस रायगढ़ के अपने अभेद्य दुर्ग में चले आते। पचीस कोस का धावा मारकर मराठा फौज रायगढ़ बेखटके वापस पहुँच जाती तो लोगों को शुरू-शुरू में विश्वास नहीं होता। बाद में अफगानों और पठानों में धारणा बन गई कि शिवाजी को जिन्नातों का सहारा मिल गया है। फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड़ कर भाग खड़े होते।

दिन-रात युद्ध में लगे रहने पर भी अपनी माता से उन्हें धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि हिंदू-धर्म के प्रति पूरी आस्था थी, यवनों के आए दिन के अत्याचार और मंदिरों के विध्वंस से उनका चित्त बहुत खिन्न हो उठता; फिर भी दूसरे धर्मों की उन्होंने कभी निंदा नहीं की और न किसी मस्जिद अथवा गिरजे को नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नहीं, उन्होंने जीर्ण-शीर्ण मस्जिदों की मरम्मत भी करायी। अपने सेनापतियों को भी आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थान को हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनों की किसी स्त्री की बेइज्जती हो।

शिवाजी ने देखा कि जवाहरातों से सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और सिमटी सी एक ओर खड़ी है। कुछ देर तक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—"बहन, उम्र में तुम मुझसे छोटी हो पर तुझमें मुझे अपनी माताजी दिखाई देती हैं। फर्क इतना ही है कि परमात्मा ने तुम्हें अतुलनीय रूप-सम्पत्ति दी है, लगता है, फुर्सत के समय अत्यंत साध से तुम्हारी रचना की है। सौभाग्य से इस सौन्दर्य का थोड़ा सा अंश भी अगर मेरी माँ को मिल जाता तो उसे दुहाग का दुःख नहीं सहन करना पड़ता और मैं भी सुन्दर होता। मेरे सेनापति ने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हें बिना वजह तकलीफ दी। जिस धारणा से वह तुम्हें यहाँ ले आया, उसे सोचकर लज्जा से मेरा सर झुका जा रहा है। यदि माँ और गुरुजी सुनेंगे तो सोचेंगे इसके लिए शिवा का संकेत रहा होगा। तुम चिंता न करो। तुम्हें इज्जत के साथ तुम्हारे खाविंद के पास पहुँचा दिया जायगा। मेरी बहन नहीं है, आज से तुम मेरी छोटी बहन हुई और मैं तुम्हारा भाई।"

पास खड़े सैनिकों ने देखा शिवाजी की आँखें गीली हो गई हैं। थोड़ी देर बाद आश्वस्त होकर क्रोध में काँपते हुए उन्होंने कहा—"अम्बाजी, तुमने अपनी मूर्खता से इतनी बड़ी जीत को हार में बदल दिया। लोग जब सुनेंगे कि शिवाजी अपने हरम के लिए परायी बहू-बेटियों को लूटता है तो हमारे बारे में क्या सोचेंगे। कहाँ रह जायगी मेरी इज्जत? फिर तो मराठे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिपाही और सरदार औरतों को दिन-दहाड़े बेआबरू करेंगे।पिछले चौदह वर्षों से तुम मेरे साथ हो । क्या कभी इस प्रकार की इच्छा या लालसा का आभास भी तुम्हें दिखाई दिया ? फिर कैसे तुम्हें हिम्मत हुई कि मेरे आदेश की उपेक्षा कर एक अबला दुखी नारी को यहाँ ले आये । अम्बाजी, तुमने मेरी आवरू में बट्टा लगा दिया । यदि राजा स्वयं अपना शील खो बैठेगा तो सैनिकों का तो बाँध ही टूट जायगा । क्या यही मेरी हिंदू पद-पादशाही का रूप होगा ? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि तुम्हें फाँसी पर लटका दिया जाय । चूँकि इस समय मैं, स्वयं क्रोध में हूँ, इसलिए तुम्हारा फैसला मैं प्रधानमंत्री मोरोपंत पर छोड़ता हूँ ।"

कहाँ तो अम्बाजी विजय की खुशी में झूमता हुआ आया था और कहाँ सबके सामने उसे यह अपमान सहना पड़ा । पंतप्रधान मोरोपंत का अम्बाजी पर स्नेह था । उसने अपनी देख-रेख में उसे सब प्रकार से योग्य बनाकर इतने बड़े ओहदे पर पहुँचाया था । हाथ जोड़ते हुए शिवाजी से उन्होंने प्रार्थना की कि "अम्बाजी अभी युवक है और कुछ अबोध भी, किंतु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है । यह इसका पहला अपराध है, इसे क्षमा किया जाय ।"

सलमा समझने की कोशिश करने लगी कि शिवाजी इंसान हैं या फरिश्ता । उसके श्वसुर के यहाँ लड़ाई में जीती हुई सैकड़ों स्त्रियाँ लायी जातीं । कुछ को तो चुनकर वह अपने लिए रख लेता और बाकी को सिपाहियों में बाँट देता । उसकी आँखों से अश्रुओं की अविरल धारा फूट पड़ी ।

कुछ दिन बाद सलमा विदा हो रही थी, भाई के यहाँ से अपने ससुराल । शिवाजी ने अपनी मुँहबोली बहन को गले लगाकर विदाई दी । खच्चरों और घोड़ों पर दहेज का सामान था । सुनहरे-रुपहले पर्दे से ढँकी पालकी, बगल में सुरक्षा के लिए घोड़े पर चढ़ा हुआ जा रहा था सेनापति अम्बाजी सोनदेव । अब वह अपने महाराज की थाती को वापस लौटाने जा रहा था ।

पालकी जब आयी थी, तब वह सिसक रही थी—भय, चिंता और आशंका के आँसुओं से और जब पालकी जा रही थी तब सिसक रही थी—प्यार, आनन्द और उल्लास भरे आँसुओं से ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अफ़जल खाँ का वध

जब भी समय मिला, घूमता रहा हूँ। पिछले दिनों महाराष्ट्र के ऐतिहासिक स्थलों को देखने की इच्छा हुई। मराठों का इतिहास बहुत-सी जिज्ञासाएँ एवं कौतूहल जगाता है। मराठी में यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है, अंग्रेजी में भी, किन्तु आश्चर्य है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी में इतनी नहीं है।

जून १९७४ में महाबलेश्वर से प्रतापगढ़ का ऐतिहासिक दुर्ग देखने गया। यद्यपि अब ऊपर तक पक्की सड़क बन गई है, फिर भी रास्ता बहुत ही घुमावदार और उतार-चढ़ाव से भरा है। आज भी इसे दुर्गम कहा जा सकता है। फिर तीन शतक पहले तो अगम ही रहा होगा।

ऊपर चिलचिलाती धूप, पथरीला इलाका। कुछ समय पहले ही मेरी जाँघ की हड्डी टूट चुकी थी, इसलिए किले तक नहीं जा पाया। नीचे घाटी में एक समतल चट्टान पर सहारा लेकर बैठ गया। बच्चे दौड़ते हुए ऊपर किला देखने चले गये। दूर-दूर तक सह्याद्रि की शृंखलाएँ जंगलों से भरी थीं। आँखें उन पर टिक जातीं तो मराठों के इतिहास की घटनाएँ मानस पर उभर आतीं।

इधर-उधर देख ही रहा था कि कुछ दूर समतल जमीन पर बना एक खूबसूरत मकबरा दिखाई पड़ा। कौतूहल जगा, इस वीरान पहाड़ियों के बीच घने जंगल में यह मकबरा!

सहसा स्मृति जाग उठी। यही तो वह स्थान है जहाँ शिवाजी ने आदिलशाही फौज़ को शिकस्त दी थी। धीरे-धीरे मकबरे की ओर बढ़ा। अन्दर जाकर देखा कि दो कबरें हैं। एक लम्बी और बड़ी, दूसरी औसत साधारण-सी। पता चला कि पहली है कद्दावर अफ़जल खाँ और दूसरी उसके अंगरक्षक सैयद बण्डा की।

हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब और न जाने कितने बादशाहों और पीरों की कबरें देखीं, मगर वे इतनी बड़ी नहीं थीं। बरबस स्मृति के परदे पर इतिहास की परतें उभरनें लगीं।

मुग़ल बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब के पास बहुत बड़ी शक्ति थी। लगभग सम्पूर्ण भारत पर उनकी सार्वभौम सत्ता की धाक थी।

महाराणा प्रताप के बाद राजस्थान के राजपूत भी मुग़लों के साथ हो गए थे। उनमें मुग़लों के विरोध का जोश उतर चुका था। जसवन्त सिंह और मिर्जा राजा जयसिंह जैसे तलवार के धनी और कुशल राजनीतिज्ञ मुग़ल दरबार की इज्जत तथा शान थे।

एक प्रकार से सारा भारत मुग़लों की आधीनता स्वीकार कर चुका था। फिर भी दक्षिण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में गोलकुण्डा और बीजापुर की दो ऐसी रियासतें थीं जिन्होंने मुगल सत्ता के आगे घुटने नहीं टेके। वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। शाहजहाँ और औरंगजेब दोनों ने बहुतेरी कोशिश की, मगर तोपों और तलवारों की चोटें इन रियासतों को गिरा न सकीं।

शाहजहाँ का जीवन खप गया। खुद के बनाये ताजमहल में मुमताज महल के कब्र की बगल में दफना दिया गया। औरंगजेब की जिन्दगी का बहुत बड़ा समय इन दोनों रियासतों को उखाड़ने में लगा; किन्तु कामयाबी हासिल न हो पाई। बाद में छल-कौशल से बीजापुर और गोलकुण्डा को सर कर पाया। दोनों रियासतों को धोखा दे गये—उन्हीं के विश्वस्त सरदार और सामन्त।

बीजापुर के पास प्रतिरोध की शक्ति थी। यदि उसके दरबारियों को औरंगजेब न फोड़ता तो बीजापुर की सल्तनत गिंरती नहीं। सुलतान अली आदिलशाह के पास पठान, मराठे और तैलंगों की बड़ी फौज थी। ये कौमें आज भी मशहूर लड़ाकू मानी जाती हैं। अफ़जल खाँ, इखलास खाँ, सिद्दी इब्राहिम जैसे दिलेर और माहिरे जंग ज़वानों के अलावा शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले, चाचा मालोजी, बीजाराव घोरपड़े जैसे वीर और युद्धप्रवीण मराठे बीजापुर की फौज में थे।

भारत के लिए यह समय अत्यंत संकटपूर्ण था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता उत्तर भारत में तुर्कों के आगमन से ही विपन्न थी। तुर्क, पठान और मुग़लों ने जिस प्रकार उत्तर भारत में हिंदू-सस्कृति को नेस्त-नाबूद करने की जिहाद बोल रखा था, उसी प्रकार दक्षिण में आदिलशाह इस्लामी जोश में हिन्दू-धर्म पर कठोर प्रहार कर रहा था। दुर्भाग्य यह था कि इस कार्य का विरोध करने वाला कोई नहीं था।

उन दिनों शिवाजी ३०-३२ वर्ष के युवक थे। छोटी-सी सेना उनके पास थी, साधन अत्यन्त सीमित। माता जीजाबाई और समर्थ गुरु रामदास की शिक्षा-दीक्षा से संस्कारित होने के कारण अपने देश की संस्कृति पर आए दिनों के अत्याचार और प्रहार उनकी सहन-शक्ति को चुनौती दे चुके थे।

अंत में हिंदुओं पर किए जाने वाले अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए उन्होनें अपने से कई गुनी बड़ी शक्ति दिल्ली और बीजापुर से टकराने का निश्चय कर लिया।

दिल्ली दूर थी, पर बीजापुर तो उनके कोंकण से सटा हुआ था। शिंवाजी ने आए दिन बीजापुर की फौजों पर छापे मार ने शुरू कर दिए। आदिलशाह को खबरें मिलने लगीं, आज यहाँ शिवाजी ने धावा किया तो कल वहाँ। धीरे-धीरे यह खबरें भी आईं कि किले भी छीने जा रहे हैं।

आदिलशाह को यह अहसास होने लगा कि यदि शिवाजी को न दबाया जा सका तो उसकी सल्तनत खतरे में आ सकती है। अंकुर को वृक्ष बनने से पहले ही नष्ट कर देना चाहिए अतएव उसने खवास खाँ और बाजीराव घोरपड़े को जिम्मेदारी सौंपी कि शिवाजी ने जिन इलाकों पर दखल कर लिया है, उसे वापस छीन लें। उसे पकड़कर बीजापुर लाया जाय। सुल्तान के इरादों की खबर गुप्तचरों ने शिवाजी तक पहुँचायी। बाजीराव घोरपड़े भोसला वंश का ही था, किन्तु तन और मन से आदिलशाह का खादिम था। इसी ने अफजल खाँ के साथ जाकर मध्य रात्रि में शिवाजी के पिता शाहजी को अचानक बन्दी बना लिया गया था। अपने ही हाथों से उनके हाथों और पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाल दी।

अभी युद्ध की तैयारियाँ हो ही रही थीं कि शिवाजी अचानक अपने थोड़े से बहादुर घुड़सवारों को लेकर घोरपड़े की जागीर मुधेल में जा पहुँचे। हालाँकि घोरपड़े की फौज ज्यादा थी, किन्तु उसके सैनिकों के हृदय में शिवाजी की राष्ट्रभक्ति ने प्रभाव बना लिया था। वे जानते थे कि हिन्दुवानी की रक्षा के लिए यह नौजवान अकेला ही दो बड़ी ताकतों से जूझ रहा है!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

थोड़ी-सी लड़ाई के बाद शिवाजी घोरपड़े के महल में जा पहुँचे। वह चकित रह गया। फिर भी हिम्मत हारा नहीं। वीर था ही, साहसी भी कम नहीं था; अनेक युद्ध उसने स्वयं संचालित किये थे। लपक कर तलवार सम्हाली और शिवाजी से भिड़ गया। मगर उसकी शकल बता रही थी कि वह इस बार मानो साक्षात् काल से लड़ रहा हो। समय अधिक नहीं लगा। शिवाजी की तलवार के एक झटके ने उसका सर धड़ से अलग कर दिया।

खवास खाँ को जब यह खबर मिली तो वह सकते में आ गया, हिम्मत पस्त हो गयी। आदिलशाह के पास दरख्वास्त पेश की कि हुजूर, वाक़यात कुछ ऐसे हो रहे हैं कि फौजों में घबराहट है और मेरी तबीयत इन दिनों नाशाज रहती है। लिहाज़ा यह अहम् जिम्मेदारी किसी दूसरे सेनापति के सुपुर्द की जाय तो अच्छा रहे।

आदिलशाह भाँप गाया कि खाँ शिवाजी से डर गया है। अगर इसे जंग के लिए भेजा गया तो शिकस्त खानी पड़ेगी, इसलिए उसने सबसे बड़े सेनापति अफ़ज़ल खाँ को बुलाया।

अफ़जल कद्दावर और हिम्मती था। लड़ाई और मोर्चेबंदी का उसे अच्छा अनुभव था। इसके अलावा वह राजनीतिक चालबाजियों में भी कुशल माना जाता था। सैनिकों के मन में ऐसा यकीन था कि उसके साथ रहने पर जीत अवश्य होगी। तहेदिल से बीजापुर के सुलतान के प्रति वफादार भी था। औरंगजेब ने कई बार कोशिश की बहुत बड़े-बड़े प्रलोभन दिये, मगर वह बीजापुर छोड़ने को राज़ी,नहीं किया जा सका।

आदिलशाह ने अफ़जल से शिवाजी के मसले पर बात की। खाँ ने कहा—हजूर, "आप फिक्र क्यों करते हैं। उस छोटे से पहाड़ी चूहे को पकड़ने के लिए तो मेरे बेटे फाज़िल खाँ और मूसे खाँ ही काफी हैं। अगर आपका यही हुक्म है तो खुद बड़ी फौज के साथ कूच करता हूँ और दो महीने के दरम्यान उसे लाकर आप के कदमों के डाल दूँगा।"

अफ़जल खाँ के हरम में जब रामगढ़ कूच करने की खबर पहुँची तो कोहराम मच गया। पिछले दस वर्षों में शिवाजी की कामियाबियों ने दुश्मनों में कुछ ऐसा आतक फैला दिया था कि बड़ी से बड़ी फौज भी उनका मुकाबला करने में घबरातीं थी। बेगमों ने रोना-पीटना शुरू करदिया। बेटे समझाने लगे कि आप आदिलशाही सल्तनत के सबसे आला सिपहसालार हैं, लिहाजा इस छोटे से काम के लिए आपका जाना वाजिब नहीं लगता। आपके मातहत इतने सारे हिन्दू-मुसलमान सरदार हैं, उनके जिम्मे चाहे जितनी बड़ी फौज देकर भेज़ दें।

अफ़जल खाँ मुस्कुराता रहा। उसने बड़ी बेगम से कहा, "बिला वजह आप परेशान नज़र आती हैं। मेरे साथ चलिए। खुद देखेंगी कि कितनी आसानी से उस बदतमीज शिवा को सुलतान की कदमबोसी के लिए पेश कर देता हूँ। बित्त भर का इन्सान, मामूली-सी बेतरतीब फौज और वह भी जंगली मवालियों की। मेरी ताकत के सामने कब तक टिकेंगी।"

१६५९ ई० की मई का महीना था। अफ़जल खाँ बीजापुर से अपनी फौज के साथ रवाना हुआ। ५०० हाथी, १२ हजार घुड़सवार, ३० हजार पैदलों की सजी-सजायी फौजों के साथ छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की तोपें भी थीं। अफ़जल के बेटे फजल खाँ और मूसे खाँ, मराठा सरदार प्रतापराव मोरे, नाइकजी पानचड़े, कल्याणजी यादव और शिवाजी के सगे चाचा संबाजी भोसले भी साथ थे। इन देश-धर्म-द्रोहियों को शिवाजी के पहाड़ी क्षेत्र और किलों की पूरी जानकारी थी।

आदिलशाही फौज की व्यवस्था विस्तृत थी। तम्बू, कनातें, शामियाने, दुकानें, नौकर, खिदमतगारों की तायदाद भी बदस्तूर बड़ी थी। सामान ढोने के लिए बैलगाड़ियों की कतार साथ चल पड़ी। फौज के साथ चल रहा था अफ़जल खाँ का शानदार और रंगीन हरम। लिहाज़ा जहाँ भी डेरा पड़ता, एक अच्छा-खासा शहर बस जाता।

कहा जाता है कि अफ़जल खाँ डील-डौल का कुछ इतना बड़ा था कि घोड़े उसका बोझ सम्हाल नहीं पाते थें, इसलिए वह अपने प्रिय हाथी 'फतहलश्कर' पर सवारी करता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुर्योग से कूच के ठीक एक दिन पहले वह हाथी मर गया। बेगमों ने समझाया कि असगुन के आसार नजर आ रहे हैं, खुदा जाने क्या होने वाला है।

अफ़जल खाँ के दिल में भी शिवाजी से दहशत-सी तो थी ही। उसके अलावा बेगमें, बेटे, रिश्तेदारों और मुसाहिबों की आरजू-मिन्नत के दरम्यान, फतहलश्कर की अचानक मौत ने एक प्रकार भय-सा उत्पन्न कर दिया, परन्तु वह सुलतान से वादा कर चुका था। अब कूच के अलावा और कोई चारा नहीं था।

शिवाजी के राज्य में पहुँच कर उसने पूरे जोश और दमखम के साथ प्रजा पर जोर-जुल्म शुरू कर दिए। जिस ओर बढ़ता, मन्दिरों को तोड़ देता, गाय-बैलों को कत्ल कर देता। उसके सिपाही मराठा स्त्रियों का शीलहरण करते। आत्मरक्षा के लिए बहुत-सी स्त्रियाँ कुएँ और तालाबों में डूबकर प्राण देने लगीं।

माता जीजाबाई और शिवाजी के पास समाचार पहुँच रहे थे। वे मन मसोसकर रह जाते। सागर-सी उमंडती शाही फौजों से टकराने की बात साधारण न थी। रामगढ़ का दुर्ग तो सुरक्षित था, किन्तु खुले मैदान में अफ़जल की विशाल वाहिनी से मोर्चा लेना निश्चित रूप से आत्महत्या कही जाती। अफ़जल ने देखा कि दुश्मन मैदान में मुकाबले में नहीं आ रहे हैं, उसने जुल्म का कहर ढा दिया। शिवाजी व्याकुल हो उठे, किंतु किसी प्रकार का कदम उठने के पहले पूरी तौर पर हार-जीत के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरता से विचार करना नितांत आवश्यक था, इसीलिए वे आगे बढ़ नहीं रहे थे।

जब जुल्मोक़हर से भी शिवाजी मैदान में नहीं आये तो खान ने एक आखिरी दाँव फेंका। शिवाजी की कुलदेवी तुलजा भवानी के मन्दिर को तोड़कर उसके आँगन में गोहत्या कर दी।

अन्याय की पराकाष्ठा हो चुकी थी। इस समाचार ने शिवाजी को विचलित कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि दुश्मन का खात्मा करना नितांत आवश्यक हैं, भले ही प्राणों का बलिदान करना पड़े। माता जीजाबाई के चरण छूकर उन्होंने अत्यन्त हृदयबेधक शब्दों में निवेदन किया—"माताजी, अब तो यह अत्याचार सारी सीमाओं को तोड़ चुका है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। कुल-बधुओं और कुमारी कन्याओं का शीलहरण हो रहा है, बिठोवा और कुलदेवी तुलजा भदानी के मन्दिर ध्वस्त और अपवित्र किये जा चुके हैं। आपके चरणों की सौगंध है मैं या तो इस राक्षस का वध करके भवानी के अपमान का प्रतिशोध लूँगा या फिर आपको मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

माता जीजाबाई साधारण महिला नहीं थीं। धर्म, संस्कृति और देश के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना उन्होंने ही शिवाजी के हृदय में भरी थी। फिर भी माँ का हृदय था। स्वीकृति देने का स्पष्ट अर्थ था—पुत्र को अग्निकुंड में झोंक देना। मन में विचार आया—'कहाँ महिषासुर के समान अफज़ल खाँ और कहाँ मेरा दुबला-पतला शिवा! अफ़जल की सुसज्जित पचास हजार की सेना का सामना करने के लिए केवल सात हजार की सेना!'

फिर भी धर्म, देश और प्रजा की रक्षा की भावना ने उन्हें बल दिया। पुत्र को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया और कहा—"वत्स, प्रस्थान करो; विजयश्री तुम्हारा वरण करेगी। मेरी बायी आँख फड़क रही है, भगवती तुलजा तुम्हारी रक्षा करेगी।"

रायगढ़ के किले से, सह्याद्रि पर्वत के जंगलों में स्थित प्रतापगढ़ के लिए शिवाजी ने प्रस्थान किया। उन दिनों उनकी बड़ी रानी सईबाई मरणासन्न थी। पुत्र सम्भाजी केवल दो वर्ष का था। शिवाजी ने रानी से विदा ली; पुत्र को प्यार किया और वे किले से बाहर निकल पड़े। सावन का महीना, अँधेरी रात और घनघोर वर्षा!! — मगर उन्हें तो उस महान असुर का वध करना था। रुकते कैसे? स्वप्न में उन्हें कुलदेवी तुलजा भवानी के दर्शन पिछली रात में हुए थे। उन्होंने आशीर्वाद भी दिया—"शिवा, चिंता मत करो। दैत्य का नाश होगा और तुम विजयी बनोगे।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किसी तरह वे प्रतापगढ़ जा पहुँचे। एक दिन जब अपने सरदारों के साथ आक्रमण-प्रत्याक्रमण पर वे परामर्श कर रहे थे, उन्हें रानी सई बाई के देहान्त का मर्मभेदी दु:संवाद मिला। इस आघात से उनका हृदय विचलित हो उठा; किन्तु कर्त्तव्य-पालन को उन्होंने पत्नी के मोह और औपचारिकता से अधिक महत्व दिया। वे रायगढ़ नहीं गए।

अफज़ल खाँ को खबर मिली कि शिवाजी रायगढ़ से प्रतापगढ़ चले गए। उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी जबर्दस्त घेरेबंदी के बावजूद यह सब कैसे मुमकिन्न हुआ। दिन बीत रहे थे, मगर शिवाजी खुले मैदान में लड़ने नहीं आ रहे थे। इस बार उसने एक नई चाल खेली। वह जानता था कि शिवाजी गौ-ब्राह्मण के भक्त हैं, इसलिए अपने सरदार कृष्णाजी ब्राह्मण के हाथ एक पत्र शिवाजी के पास भेजा। कृष्णाजी शिवाजी से मिले। उन्होंने समझाया कि अफज़ल खाँ आपके पिता शाहजी राजा के मित्र हैं। आयु में आपसे बड़े हैं और हकीकत तो यह है कि वह आप से मित्रता चाहते हैं। यह सुनकर शिवाजी ने अफज़ल खाँ का पत्र पढ़ा। उसमें बेहद धमकी भरी थी और लिखा था कि, तुम्हारी शरारत से हम बेहद नाखुश हैं। खैरियत इसी में है कि तुम अपने सारे किले हमारे सुपुर्द करो और सुलतान के हुजूर में हाजिर होने के लिए मेरे साथ बीजापुर दरबार चलो; वर्ना तुम्हारी इस छोटी-सी बेतरतीब मावली फौज को हम कुचल देंगे और रायगढ़ और प्रतापगढ़ के तुम्हारे किले नेश्त-नाबूद कर दिए जाएंगे।

दी। कृष्णाजी को आदर सहित ठहराया। दूसरे दिन अपने एक विश्वस्त साथी पंताजी गोपीनाथ के हाथ अफ़ज़ल के नाम एक पत्र लिखा और कृष्णाजी को सम्मानसहित पंताजी के साथ विदा कर दिया। साथ में खान के लिए उपहार भी भेजे।

पंताजी धैर्यवान और कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने बाअदब कोर्निश करते हुए अफ़ज़ल खाँ से कहा—"शिवाजी महाराज ने आपको सलाम कहा है; उन्हें आप की सारी शर्तें मंजूर हैं। परंतु इसके पहले कि वे आपकी और सुलतान की ख़िदमत में हाजिर हों, आप से कुछ गुफ्तगूँ करना चाहते हैं। पर इसमें दिक्कत यह है कि आपकी इस बड़ी और बेशुमार फ़ौज, तोपों, हाथियों और घोड़ों की जमात का उनके दिल में एक खौफ़-सा बैठ गया है। लिहाज़ा हम यह दरख्वास्त करना चाहेंगें कि हुजूर प्रतापगढ़ तशरीफ़ लायें और हमें इज्जत बख़्शें।"

पंताजी की बातों का अफ़ज़ल पर पूरजोर असर पड़ा। वह तो मौके के ताक में ही था। सोचा, क्यों न उस पहाड़ी चूहे को उसके बिल में ही खत्म कर दिया जाय। अपने सरदारों के विरोध के बावजूद उसने मंजूरी दे दी। बिना देर किये वह पूरी सेना सहित जावली घाटी के लिए रवाना हो गया। हरम, खेमें, तम्बू और शमियाने भी साथ चले।

जावली के क्षेत्र में घनघोर बारिश होती है। घने जंगल, पहाड़ी रास्ते, दर्रे पानी और कीचड़ से भर जाते हैं। उसमें फँसकर अफ़ज़ल खाँ के बहुत से हाथी-घोड़े मरने लगे, बहुत से बीमार हो गए। काफी सिपाही भी बीमारी से मर गये। आए दिन कई दलदल में फँसते तो कई फिसल कर मरते। जहरीले कीड़े और साँपों ने तो और भी परेशानी पैदा कर दी। इस प्रकार मुसीबतें झेलते हुए आखिरकार अफ़ज़ल खाँ मय फौज के प्रतापगढ़ के नीचे पहुँच सका।

पंताजी फिर खान से मिलने आये। कहने लगे— "मैंने पहले ही हुजूर से अर्ज की थी कि शिवाजी को आप की फौज से बड़ा खौफ है। परन्तु वे आप से मिलने के लिए बेचैन हैं। एक सूरत यह है कि आप हमारे प्रतापगढ़ तशरीफ लायें। आप के साथ दस हथियारबन्द सिपाही रहेंगें और इतने ही महाराज के साथ। वे सब दूर रहेंगे; आप दोनों की बातचीत तखलिया में होगी।"

अफ़जल खाँ अपने शिकार को नजदीक पाकर उतावला हो रहा था। उसे अपनी जिस्मानी ताकत पर पूरा गुमान था। उसका इरादा था कि शिवाजी को दबोच कर सुलतान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
के कदमों में पटक दूँगा। वह इस कामयाबी से अपनी इज़्जत में चार चाँद लगाना चाहता था। उसनें फौरन मंजूरी दे दी। तारीख और वक्त भी मुकर्रर कर दिया।

प्रतापगढ़ में तैयारियाँ शुरू हो गईं। शिवाजी जानते थे कि अफ़जल परले सिरे का धूर्त और धोखेबाज है। उसकी फौज भी बहुत बड़ी है। मगर माँ भवानी पर उनका अखंड विश्वास था और सहारा था सह्याद्रि की पेचीली घाटियों और जावली के घने जंगलों का। इन स्थानों के कोने-कोने की जानकारी उनके साथियों को थी। उधर अफ़्ज़ल खाँ की फौज के लिए उक्त अनजान जगह एक फंदे का काम कर सकती थी।

उन्होंने अपने सेनापतियों के साथ योजना बना ली। अफ़जल खाँ की फौज को चारों तरफ से घेरने की व्यवस्था भी बन गई। उनके पास सैनिक कम थे, किन्तु सह्याद्रि की पहाड़ियाँ दीवार बनीं और तग घाटियों पर मराठे सरदार अपनी छोटी टुकड़ियों के साथ डट गए। आदेश था कि प्रतापगढ़ दुर्ग के तोपों की तीन आवाजें सुनते ही दुश्मन की फौज पर टूट पड़ा जाए ताकि कोई भागने न पाए। इस प्रकार पूरी फौज ही नष्ट कर देना उनका लक्ष्य था।

दुर्ग के नीचे की घाटी में मुलाकात की जगह तय की गई थी। जंगल का एक हिस्सा साफ कर बहुत ही शानदार शामियाना ताना गया। सजावट के लिए वंदनवार और तोरण बाँधे गये।

दीपावली के दस दिन बाकी थे। इस त्योहार पर सिपाहियों को बारी-बारी से अपने घर जाने की छुट्टी मिलती थी ताकि वे अपने बीबी-बच्चों से मिल सकें। ऐसे मौके पर सिपाही, माँ-बाप, पत्नी और बच्चों के लिए कमाई से बचाए रुपयों से कुछ नए कपड़े और बच्चों के लिए मिठाइयाँ आदि ले जाते। इस अवसर की प्रतीक्षा हर सिपाही करता है। मगर इस मौके पर छुट्टी नहीं दी गई।

११ नवम्बर, १६५९ शिवाज़ी और अफ़जल की मुलाकात का दिन। स्नानादि से निवृत्त होकर नित्य की भाँति शिवाजी ने भवानी का पूजन किया। लगभग ८ बजे हल्का-सा जलपान किया। फिर उन्होंने कपड़े पहनने शुरू किए। शरीर पर लोहे की महीन जंजीरों का बख़्तर और सिर पर लोहे के चादर की टोपी। ऊपर से सदा की भाँति अंगरखा पहना और सिर पर पाग बाँध ली। बायें हाथ की मुट्ठी में तेज बघनखा दबा लिया। ललाट पर रक्त-कुकुम का तिलक। एक बार फिर भवानी का स्मरण किया और बस वे अफ़्ज़ल खाँ से मिलने चल पड़े। साथ में चुने हुए ऐसे दस साथी थे जो शिवाजी महाराज के संकेत पर अनेक बार अपनी जान की बाजी लगा चुके थे।

अफ़जल का दिल बल्लियों उछल रहा था। उसे पूरा इतमीनान था कि उसके सरदार ऐन वक्त पर उसकी हिदायत को बख़ूबी अंजाम देंगे। पहले ही आकर वह ऊँचे से मंच पर बैठ गया। उसके दस हथियारबंद अंगरक्षक एक तरफ पूरी चौकसी के साथ खड़े थे। इनमें सैयद बंडा नाम का मशहूर जाँबाज और ख़ूँखार सरदार भी था। इन्हीं दसों में कृष्णाजी ब्राह्मण भी मौजूद थे।

समय करीब आ गया। अफ़जल ने देखा कि ३२-३४ वर्ष की उम्र का एक साँवला-सा युवक चला आ रहा है। औसत कद, मगर शेर बब्बर-सी फुर्तीली और शानदार चाल, शक्ल पर दहशत की शिकन तक नहीं। उसे तो लोगों ने बताया था कि शिवाजी खौफ़से परेशान और बीमार-सा रहता है। परन्तु यहाँ तो कुछ और ही नजर आ रहा था। पहले से तय था कि दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए आगे बढ़ेंगे। मगर अफ़जल बैठा रहा। शिवाजी आगे बढ़े और बदस्तूर उन्होंने खाँन को आदाब किया। खाँन ने बहुत ही गुरूर के साथ धमकाते हुए कहा—"ख़ैरियत है कि तुम आए। मगर हम यह पूछना चाहते हैं कि आदिलशाही सल्तनत में तुमनें इतनी फसाद क्यों मचा रखी है? तुम्हारी लूट-खसोट, छापेमारी रोज़मर्रा की बात हो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गई है। मुल्क और रिआया के अमन-चैन को बरबाद करने के लिए तुम जिम्मेदार हो। सुलतान तुम पर बेहद नाराज़ है।"

बलवान शत्रु उन्हें फटकार रहा था, उन्हीं के इलाके में। मगर शिवाजी ने साहस, धैर्य और बुद्धि का संतुलन बिगड़ने नहीं दिया। उन्होंने कहा—"खाँ साहब, आपको गलत खबरें मिली हैं। मुल्क में चारों तरफ डाकू और लुटेरे फैले हुए थे। मैंने तो उन्हें खतम करके उल्टा अमन और चैन कायम करने की कोशिश की है।"

खाँन की आवाज कुछ नरम पड़ी। कहने लगा—"खैर जो कुछ हुआ, उसे गुज़रा समझ लेते हैं। तुम हमारे साथ बीजापुर चलो, सुलतान से मुआफ़ी माँगो। यकीन करो हम खुद तुम्हारी सिफारिश करेंगे।"

इतना कहकर वह शिवाजी से मिलने के लिए आगे बढ़ा। करीब आकर उसने उन्हें बाँहों में कस लिया। दूर से ऐसा लग रहा था मानो खाँन बहुत दिनों से बिछुड़े अपने किसी भाई से मिल रहा हो। मगर शिवाजी ने महसूस किया कि अफ़ज़ल की बाँहें अजगर की तरह उन्हें कसती जा रही हैं। उन्होंने ज्योंही उस गिरफ्त से अपने को छुड़ाने की कोशिश की कि उस दैत्य ने शिवाजी के सिर पर एक छोटी, मगर तेज कुल्हाड़ी से वार किया। यह कुल्हाड़ी अफ़ज़ल अपने चोगे में छिपाये था। पाग के नीचे लगी लोहे की टोपी ने वार सह लिया। महाराज का सिर बच गया, मगर खून छलक आया। शिवाजी ने अद्‌भुत वेग से तुरंत पैंतरा बदला और बायें हाथ की मुट्ठी में दबे बघनखे से अफ़ज़ल के पेट की अतड़ियाँ खींच निकालीं। "या अल्लाह ! मार डाला।" दर्द और घबराहट से खाँन की आँखें बाहर निकल रही थीं। एक हाथ से वह बाहर निकलती अँतड़ियों को सम्हाल रहा था दूसरे हाथ को ऊँचा कर आवाज़ें देने की कोशिश कर रहा था। पर उसकी शक्ति क्षीण होने लगी और वह लड़खड़ाने लगा।

सब कुछ मानों मिनटों में गुजर गया। खाँन के आदमियों ने ऐसी उम्मीद नहीं की थी कि शिवाजी अफ़ज़ल की गिरफ्त से निकल सकेंगे। उनका अंदाज था कि इनको तो वह अपनी बाँहों में ही पीस डालेगा। कराहते हुए अफ़ज़ल की चीख सुनकर कृष्णाजी और सैयद अफ़ज़ल की रक्षा के लिए दौड़े। दोनों ने एक साथ शिवाजी पर आक्रमण किया।मगर महाराज ने एक वार में ही सैयद का सर काट दिया। ब्राह्मण को मारना धर्मविरुद्ध जानकर कृष्णाजी के वार को केवल बचाते रहे। कुछ देर यह क्रम चलता रहा। आखिर शिवाजी के एक अंगरक्षक जीवा महाला ने धर्मद्रोही कृष्णाजी का सर काट गिराया। दोनों ओर के अंगरक्षक आपस में गुँथ चुके थे। शोर-शराबा बढ़ने लगा। अफ़ज़ल खाँ जमीन पर गिरा, भागने के लिए वह अपने शिथिल शरीर को घसीट रहा था। इसी बीच उसके कुछ आदमी आए और फुर्ती से एक पालकी में उसे लिटाकर घटनास्थल से ले भागे। किंतु शिवाजी महाराज के एक सरदार काकाजी ने यह देख लिया। लपक कर उन्होंने पालकी को गिराया और अफ़ज़ल का सिर काटकर अलग कर दिया। इस प्रकार अपने समय के दुर्दान्त दैत्य का अंत हो गया।

पूर्व निश्चित संकेत पाते ही प्रतापगढ़ दुर्ग से तोपों ने तीन बार गर्जना की। आदिलशाही फौज ने यह समझा कि खाँन साहब की अगवानी के लिए तोपें छोड़ी जा रही हैं। वे निश्चित थे। मौज-मस्ती का दौर चल रहा था। मगर एकाएक "हर-हर महादेव ! जय अम्बे भवानी !" कहते हुए तलवार और भालों को साधे मराठे आकर टूट पड़े। पहाड़ियों, घाटियों और जंगलों से वही नारा गूँजने लगा। इसी बीच फौज में खबर फैल गई कि अफ़ज़ल खाँ मारा गया। इस खबर को सुनते ही सिपाहियों की हिम्मत छूट गई। फौज में बड़ी भगदड़ मची। जो जिधर रास्ता देखता उधर भागता। मगर घाटियों की ऐसी नाकेबन्दी ऐसी थी कि कोई भी बचकर निकल न पाया। आदिलशाह की बहुत बड़ी फौज मय हथियार और सामान के वहीं पर बिखर गई। बहुत बड़ी संख्या में सैनिक मारे गए। अफ़ज़ल खाँ के दो लड़के और बीजापुर के कई मराठे सरदार भी काम आए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिवाजी के इस गौरवपूर्ण विजय की खबर बिजली की तरह फैल गई। सारे प्रदेश में हर्ष की लहर दौड़ गई। एक तेज घुड़सवार की मार्फत रायगढ़ में माता जीजाबाई के पास इस विजय की सूचना भेजी गई। वहाँ भी हर्ष की दुंदुभी बज उठी। स्त्रियाँ शंखध्वनि करने लगीं, प्रजा आश्वस्त हुई और सभी लोगों ने यह महसूस किया कि अब उसे आदिलशाही असुरों के महानायक दुर्दमनीय अफ़जल के अत्याचारों से निस्तार मिल गया!

इस युद्ध के पूर्व तक शिवाजी मध्यम श्रेणी के जागीरदार गिने जाते थे। किंतु अफ़जल की फौज पर विजय प्राप्त करने पर उनकी शक्ति और बुद्धि का लोहा सभी मानने लगे। कीर्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी। हाथी, घोड़े, ऊँट, तोपें और तोपों को खींचने वाली बैलगाड़ियाँ और असंख्य हथियार और गोले उनके हाथ लगे। तम्बू, शामियाने, कनातें और रसद भी खूब मिली। हरम के बेशुमार हीरे-जवाहिरात भी प्राप्त हुए। महाराज का नियम था कि शत्रुओं की स्त्रियों पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने पाए, इसलिए बेगमों को वापस बीज़ापुर भेज दिया गया।

इस महत्वपूर्ण युद्ध ने उनकी धाक दक्षिण के गोलकुण्डा से सुदूर उत्तर दिल्ली तक जमा दी। सताए गए हिन्दुओं के मन में आशा बँधी और उन्हें यह विश्वास हुआ कि अब उनके धर्म, प्राण की रक्षा अवश्य होगी और यही कि शिवाजी के रूप में हिन्दू धर्म के रक्षार्थ कोई अवतार आया है।

टॉड तथा कई दूसरे अंग्रेज इतिहासकारों ने मराठों का जिक्र बड़े हेय दृष्टिकोण से किया है। अधिकांश अंग्रेज और मुस्लिम इतिहासकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि शिवाजी ने धोखे से अफ़जल की हत्या की। किंतु आदिलशाही सल्तनत के प्रसिद्ध और प्रामाणिक इतिहासकार नशस्ता ने बीजापुर के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि "सुलतान ने अफ़जल और कान्होंजी जेदे को हिदायत दी थी कि चाहे जिन्दा या मुर्दा, किसी भी हालत में शिवाजी को हाजिर किया जाय।"

मुगल और मराठा इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य सर यदुनाथ सरकार ने पुरानी पांडुलिपियों एवं अन्यान्य प्राप्त सामग्रियों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि अफ़जल खाँ ने ही पहला वार किया। यदि शिवाजी बख्तर और लोहे की टोपी न पहने होते तो कुल्हाड़ी के वार से उनकी मृत्यु निश्चित थी। अफ़जल की अजगरी गिरफ्त में ही उनकी पसलियाँ चूर-चूर हो जातीं। परंतु बघनखा के सामयिक प्रयोग ने उन्हें बचा लिया, जिसे होंने केवल सुरक्षा के लिए ही मुट्ठी में दबा रखा था।

धोखे और फ़रेब का सहारा प्रायः हर मुस्लिम शासक ने उन दिनों लिया। हिन्दुओं के विरुद्ध इसका प्रयोग तो उनके लिए 'जिहाद' था, शबाब का सीधा रास्ता।

मैं मकबरे में बैठा रहा। अंधेरा हो आया था। बच्चे कब ऊपर दुर्ग देखकर आ गए, पता नहीं चला। एकाएक मेरी छोटी दौहित्री ने कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "नानाजी, इन चबूतरों में क्या है?"

मैंने कहा—"बेटी, तुम बड़ी होगी तब इतिहास में पढ़ोगी तब तुम्हें मालूम होगा कि इन मकबरों में शुम्भ-निशुम्भ नाम के दो राक्षस हैं जिन्हें शिवाजी ने यहाँ हमेशा के लिए सुला दिया है। चलो चलें.........।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मातृत्व

महाराष्ट्र केशरी शिवाजी ने २० वर्ष की आयु में ही तोरना, कोंडाना और पुरंदर के किले जीत लिए थे। उनका यश कोंकण से लेकर कल्याण तक फैल गया। उनकी फौजों में मवालों के सिवाय उच्च जाति के मराठे, पठान और सैयद भी भर्ती होने मेंगौरव काअनुभव करते। मुग़ल बादशाह और बीजापुर के सुलतान दोनों को ही उनकी बढ़ती हुई शक्ति से खतरा महसूस होने लगा। वे उन्हें नेश्त-नाबूद कर देने का मौका देख रहे थे।

महाराज ने सुरक्षा क़ी दृष्टि से महाबलेश्वर के पास जावली नाम के घने जंगल में सह्याद्रि पर्वत पर प्रतापगढ़ नाम के एक सुदृढ़ और अभेद्य किले का निर्माण कराया। किले की दीवारें प्राकृतिक ऊँचे-सीधे पहाड़ों से बनी थीं; उन पर चढ़ना-उतरना मनुष्य की तो औकात ही क्या, साँप-गिलहरी के बस की भी बात नहीं थी। देवगिरि, गोलकुण्डा और रणथम्भोर के किले की पंक्ति में इसकी गणना होने लगी।

यहीं उन्होंनें तुलजापुर की भवानी की मूर्ति स्थापित की। वे स्वयं रायगढ़ से आकर बीच-बीच में यहाँर रहने लगे। किले के भीतर फौजियों, कारकूनों तथा अन्य कर्मचारियों का एक छोटा-सा गाँव बस गया था।

एक शाम को एक अहीर युवती किले के फाटक पर दौड़ती हुई पहुँची। दूध वेच कर आई थी, अव घर जाने की जल्दी में थी।

वह रोज दो बार जावली गाँव से दूध लेकर कोस भर आती-जाती। इसके सिवाय घर की खेती-बारी, गाय-भैंस का भी काम रहता ही, इसलिए स्वस्थ शरीर पर सौंदर्य का अद्भुत निखार था।

देश के दूसरे हिस्सों में, जहाँ मुसलमानों का अमल हो गया था, शायद जवान स्त्रियों की इतनी चुहल-कूद नहीं चलती थी। परंतु शिवाज़ी महाराज के राज्य में किसी की हिम्मत नहीं थी कि स्त्रियों की तरफ बुरी नज़र से देख ले।

किले के फाटक पर रात-दिन ८ सशस्त्र सिपाहियों का पहरा रहता। उनका हवलदार एक वृद्ध मराठा सरदार था, जो महाराज़ का अत्यंत विश्वासपात्र था। उन लोगों के रहने की कोठरियाँ भी फाटक के ऊपर क़ी बुर्जियों पर थीं।

युवती ने कहा—"बाबाजी, आज आप ने इतनी जल्दी फाटक क्यों बंद कर दिया? अभी तो सूरज भी नहीं छिपा है, जल्दी खोल दीजिए, मुझे घर जाना है। दो घड़ी पहले बच्चे को पड़ोसिन के पास छोड़कर आई थी, वह भुखाया होगा।"

हवलदार ने कहा—"बेटी, अगहन लग गया है, इसलिए आज से फाटक एक घड़ी पहले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बद हो जायेगा।"

"बाबाजी, कल से जल्दी आ जाऊँगी—आज तो जाने दें, वहाँ मेरा बच्चा रोता होगा।"

"बावली, गढ़ का फाटक खोलना-बन्द करना क्या हमारे वश में है। अब तो तुम कल सुबह ही जा सकोगी।" हवलदार ने जवाब दिया।

युवती ने बहुत आरज़ू-मिन्नत की, परंतु फाटक नहीं खुला। वहीं बैठकर कुछ देर तक वह रोती रही, फिर अंधेरा होने पर वापस भीतर चली गई।

दूसरे दिन सुबह फाटक खुलने के समय देखा गया कि वही युवती दूध का कलश लिकरए बाहर की तरफ खड़ी थी। पहरेदारों ने हवलदार को बुलाकर उसे दिखाया, सब अचम्भे में थे कि रात में यह किले के भीतर थी, फिर बाहर कैसे गयी।

पूछने पर वह जोर-जोर से हँसने लगी। बाद में बोली—"बाबाजी, आपने तो नहीं जाने दिया, पर मैं जादू-मंतर से चली गई।"

हवलदार डरते हुए उसे दुर्गाध्यक्ष के पास ले गया। उन दिनों दुर्गाध्यक्ष का पद बहुत ऊँचा माना जाता था। लोग उसका अदब करते और भय मानते थे, परंतु यह अल्हड़ युवती तो जैसे एकदम निडर थी। उसने कहा—"बाबाजी, मैंने इन लोगों की बहुत आरजू-मिन्नत की, परंतु इन्होंने फाटक नहीं खोला। मुझे घर जाना जरूरी था, इसलिए किले की दीवार फाँदकर चली गई।"

दुर्गाध्यक्ष की समझ में बात नहीं आ रही थी। उसने महाराज को जाकर सारी घटना बताई। युवती को महल में बुलाया गया।

सुबह का समय था। महाराज भवानी की पूजा करके मंदिर से बाहर आए। देखा सीधे-सादे वेश में एक अपूर्व सुन्दरी युवती सहमी-सी एक तरफ खड़ी है।

"बेटी, सच-सच बताओ, तुम कौन से फाटक से बाहर गयी ? तुम्हें दण्ड नहीं मिलेगा। महाराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा।

"बापजी, बहुत खुशामद करने पर भी पहरेदारों ने फाटक नहीं खोले। मुझे भूखे बच्चे की जोर जोर से रोने की आवाज़ सुनाई दी, इसलिए रुक नही सकी और दक्षिण की तरफ की दीवार फाँदकर चली गई। अभी तक मेरी ओढ़नी वहीं टँगी है।" युवती ने नम्रतापूर्वक बातें स्पष्ट कीं।

किसी को भी उसकी असंभव बात पर विश्वास नहीं हुआ। जिस किले की ऊँचाई १२५ फीट हो, उसे भला कोई कैसे फाँद सकता है।

महाराज ने कहा—"हमारे साथ चलकर वह जगह दिखाओ।"

अब तक युवती का डर मिट गया था। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई वह आगे बढ़ी। महाराज, सेनापति और दुर्गाध्यक्ष भी साथ-साथ चले।

सुरक्षा की दृष्टि से बात को गोपनीय रखने का प्रयत्न किया गया, परंतु ऐसी बातें छिपती नहीं—बल्कि बढ़-चढ़कर फैल जाती हैं। एक ने कहा—"इसे भवानी का इष्ट है।" दूसरे ने कहा—"हमने स्वयं देखा है, एक बड़ा बंदर अपने कंधे पर चढ़ाकर इसे नीचे उतार रहा था। शायद स्वयं हनुमानजी थे।"

घटना स्थल पर आकर देखा गया तो सचमुच ही दक्षिण तरफ की दीवार के एक पत्थर से उसकी ओढ़नी बँधी हुई थी। उसने बताया—"महाराज, मैं इस ओढ़नी से लटककर नीचे कूद गयी, फिर वहाँ से दौड़ती हुई घर चली गयी।"

नीचे खाई में जाकर देखा गया तो वहाँ अभी तक वृक्षों के पत्ते बिखरे और टूटे हुए थे। संयोग से जहाँ वह गिरी थी, वहाँ उन पत्तों का ढेर था, इसलिए चोट नहीं आयी।

किला तैयार हो जाने के बाद सेनापति और दुर्गाध्यक्ष ने महाराज को विश्वास दिलाया था कि दुर्ग पर से चढ़ना उतरना आदमी तो क्या साँप-गिलहरी के बस की बात ही नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन्होंने स्वयं भी निरीक्षण किया था। वे सोचने लगे कि ईश्वर की कृपा से जैसे पंगु पहाड़ लाँघ जाता है, उसी तरह यह युवती इस ८० हाथ ऊँची दीवार पर से कूद कर बच गई।

अन्त में उन्होंने कहा—"तुमने एक तो राज्य का कानून तोड़ा, दूसरे जान की जोख़िम ली; इसलिए तुम्हें कड़ा दण्ड मिलना चाहिए। फिर भी तुम्हारी छोटी आयु और हिम्मत देखकर हम क्षमा कर दे रहें हैं। पर एक बात पर हमें विश्वास नहीं हो रहा है वह यह कि तुम्हारा गाँव यहाँ से दो मील की दूरी पर है, भला उतनी दूर से तुम्हें बच्चे के रोने की आवाज़ कैसे सुनाई दी ?"

महराज के पैर पकड़कर युवती ने रोते हुए कहा—"मेरे माता-पिता बचपन में ही मर गए थे। आप ही मेरे माँ-बाप हैं। आप के यहाँ पिछले दो वर्षों से दूध बेचकर अपने छोटे से परिवार का भरण-पोषण कर रही हूँ। पति थोड़ी-सी खेती करता है, परन्तु पथरीली जमीन के कारण खाने लायक अनाज भी नहीं होता। परमेश्वर की सौगन्ध खाकर, आपके पैर छूकर कहती हूँ कि मुझे सचमुच ही मेरे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी थी, तब मैं अपने वश में नहीं रही और जो कुछ कसूर हुआ वह आपको बता दिया—आप जो दण्ड देंगे—भुगत लूँगी।"

महाराज ने उसे चाँदी की हँसली, नए कपड़े और बच्चे के लिए बहुत प्रकार के खिलौने और मिठाई लेकर विदा किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कालजयी शिवाजी

१६५६ में २६ वर्ष के दुबले-पतले शिवाजी ने अफ़जलखाँ जैसे दैत्य को मार गिराया था। खाँ के साथ ४० हजार सुसज्जित फ़ौज थी, जबकि शिवाजी के पास केवल १०-१२ हजार मराठों और मावलों की बेतरतीब सेना। इसी प्रकार देशद्रोही बाजीराव घोरपड़े को तो उसके किले में जाकर मारा था। उनके नाम से बीजापुर तथा दिल्ली की फौजों में डर बैठ गया था।

बीजापुर की राजमाता ने अपने सरदारों को इकट्ठा करके बहुत बुरा-भला कहा। लानत-मलानत की। आखिर उनका आला सरदार सिद्दी जौहर शिवाजी को जिंदा या मुर्दा पकड़ लाने के लिए तीस हजार फौज लेकर पन्हालगढ़ किले की ओर चल पड़ा और चारों तरफ से घेरा डाल दिया। यह सल्तनत का सबसे बड़ा किला था।

औरंगज़ेब तो पहले से ही बौखलाया हुआ था। अच्छा मौका जानकर उसने अपने मामा आला सेनापति शाइस्ता खाँ को एक लाख फौज के साथ शिवाजी को पकड़ने के लिए भेज दिया। उसकी २० हजार फ़ौजों ने चाकण का किला घेर लिया और ८० हजार फ़ौज के साथ वह स्वयं शिवाजी के पूना के लालमहल में जाकर डट गया। सदा की तरह धर्म-देशद्रोही कुछ राजपूत राजाओं की और कुछ मराठा सरदारों की फ़ौज भी उनके साथ थी। इस प्रकार महाराज चारों तरफ से घिर गये, परन्तु उन्होंने धीरज नहीं खोया।

जब चार महीने पन्हालगढ़ में घिरे हुए हो गए और उन्हें चाकण किले की हार तथा पूना के समाचार मिले तब उन्होंने सोचा कि अब मुझे जैसे भी हो, यहाँ से निकल जाना चाहिए। परन्तु आखिर इतने मजबूत घेरे को तोड़कर जाए भी तो कैसे ?

जुलाई १६६० की एक घनघोर वर्षा की रात, महाराज केवल ६०० सैनिकों के साथ किले के गुप्तद्वार से ५० मील पर के विशालगढ़ किले में जाने के लिए निकले। अँधेरी रात, झाड़-झंखाड़ों का पहाड़ी रास्ता और हर समय दुश्मनों के हमले का डर, परंतु जब तक उन्होंने विशालगढ़ पहुँचकर तोप की आवाज नहीं की, सेनापति बाजी प्रभु ने अपनी थोड़ी-सी फौज के साथ सिद्दी की फौजों को रोक रखा। वे सब के सब मराठे वीर अपने से दस गुने दुश्मनों को मारकर स्वयं भी जूझते हुए मर गए। ऐसा उदाहरण केवल चित्तौड़ के सिसोदियों का ही मिलता है। विशालगढ़ पहुँचकर भी शिवाजी को चैन नहीं थी। उनके मन में पूना के लालमहल में मुग़ल सेनापति का रहना और वहाँ पर गोवध तथा प्रजा की बहू-बेटियों पर अत्याचार के समाचार सुनकर बड़ी चिंता लगी रहती थी।

लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे—मराठा सैनिक हतोत्साह होकर रायगढ़, विशालगढ़ और प्रतापगढ के किलों में बैठे थे। कभी-कदाच बाहर निकलकर मुग़लों के और बीजापुर के गाँवों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को लूट लेते थे। शिवाजी ने अपने मुख्य सरदारों को मन्त्रणा के लिए रायगढ़ बुलाया। मोरोपंत पिंगले, चिमणाजी, जेधे आदि सब ग़मगीन से बैठे थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि शाइस्ता खाँ को लालमहल से कैसे भगाया जाय।

महाराज ने कहा कि हमारे इन छिटपुट हमलों से विशाल मुग़ल-सेना का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। यद्यपि खाँ अव्वल दर्जे का ऐयाश और शराबी है, परंतु उसके साथ बहादुर पठान और सैयद भी तो हैं। देशद्रोही राजपूतों की फौज भी यथेष्ट मात्रा में है। इनके सिवा गायकवाड़, कोकाट और जाधवराव की मराठा फौजें भी हैं। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वह डर कर पूना छोड़ कर भाग जाय।

महाराज ने एक योजना प्रस्तुत की। सरदारों ने पक्ष-विपक्ष में अपने मत व्यक्त किए। उनके यहाँ इस बात की स्वतंत्रता थी। आखिर जोखिम भरी बातें होने पर भी केवल महाराज की बात रही और आगे के लिए तैयारी होने लगी।

सन् १६६२ के चैत्र सुदी ६, भगवान राम का पवित्र जन्म-दिन। महाराज ने माँ साहिबा से सारी बातें बताईं। वे बहुत बहादुर और सूझ-बूझ वाली महिला थीं। शिवाजी की क्षमता और हिम्मत के बारे में भी यथेष्ट जानती थी, परंतु उन्हें एक लाख मुग़ल-फौज के घेरे में जाकर खाँ को मार कर वापस सही-सलामत चले आना असम्भव बात-सी लगी।

परंतु उन्होंने तो तीन वर्ष पहले दैत्य अफ़जल खाँ के पास पुत्र को भेजकर इससे भी बड़ी जोखिम ली थी। भारी मन से पुत्र को गले लगाया और उस दुर्गम पथ पर भेज दिया। साथ में केवल चार सौ सैनिक थे। एक लाख के मुकाबले में केवल चार सौ—इतिहास में यह अकेला उदाहरण है। उन दिनों रमजान का महीना था। मुग़ल सैनिक खूब पेट भर कर खाना और शराब पीकर सोने की तैयारी में थे, अधिकांश सो गए थे, ऐसे में शिवाजी अपने चार सौ सैनिकों के साथ निधड़क होकर मुग़ल-शिविर से होते हुए लालमहल के लिए रवाना हुए।

चौकीदारों ने पूछताछ की तो विश्वास से उत्तर दिया कि बाहर के पहरे पर से जा रहे हैं। आपने तो मजे में रोजा खोल लिया, परंतु हम तो अभी तक भूखे ही हैं। मुग़ल फौजों को इस असंभव बात पर यकीन भी कैसे होता कि केवल चार सौ व्यक्ति महल पर धावा करने जा रहे हैं।

आला सेनापति और औरंगजेब का मामा शाइस्ता खाँ अपने बड़े हरम में शराब पीकर आराम से सो रहा था कि इतने में शिवाजी खिड़की तोड़कर अन्दर चले गए। कुछ पहरेदारों को उनके साथ के मवाले सैनिकों ने मौत के घाट उतार दिया। लगातार आती हुई आवाजों से खाँ की नींद टूट गई, अभी होश में भी नहीं आ पाया था कि तलवार लिए शिवाजी दिखाई दिये।

परंतु उसका नसीब अच्छा था कि बेग़मों ने उसी वक्त रोशनी बुझा दी और खाँ पीछे की खिड़की से नीचे कूद गया। उसकी तीन अँगुलियाँ महाराज की तलवार से कट गयीं और लालमहल सचमुच ही खाँ के खून से लाल हो गया।

खाँ बच गया। शिवाजी ने सोचा अब यहाँ ठहरना मौत को बुलाना है। उनके सैनिक भी मराठा आए, मालवा आए, चिल्लाते हुए मुख्य-द्वार पर पहुँच गए। वहाँ महाराज के लिए मोरोपंत और नेताजी घोड़े लेकर तैयार खड़े थे। वे तुरंत रायगढ़ के लिए रवाना हो गए।

मुग़ल सैनिक तो सकते में आ गए, कहने लगे—"सचमुच ही कम्बख्त शिवाजी के वश में जिन्नात है, नहीं तो इतने बड़े पहरे में खाँ की अँगुलियाँ तराश कर वापस कैसे चला जाता।"

इधर खाँ घायल होकर गालियाँ बक रहा था। दो बजे रात को बहुत से मुग़ल-सैनिक शिवाजी को पकडने निकले।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परंतु वे तो पहले से ही पूरी योजना बनाकर तैयार होकर आयं थे। बहुत से बैलों को इकट्ठा कर रखा था। उनके सींगों पर कपड़ा लपेट कर तेल में भिगोकर आग लगा दी। बैल जोर से भागने लगे। मुग़ल-सैनिकों ने अँधेरी रात में मशालों की रोशनी देखकर समझा कि मराठे भाग रहे हैं। उन्होंने जोर से पीछा किया। भोर के झुटपुटे में देखा कि मराठों की जगह बैल और भैंसें हैं। वे शर्मिंदा होकर वापस आ गये।

इधर महाराज ने रायगढ़ पहुँचकर माताजी के चरण स्पर्श किये। कहने लगे—"माँ साहिबा, आपकी दया से हम सब सही-सलामत वापस आ गए हैं। आपने तो भगवान रामजन्म का व्रत रखा है, परंतु मैं तो भूख से बेहाल हूँ; अपने हाथ का प्रसाद देने की कृपा करें।"

जीजा माता शिवाजी को एक छोटे बालक की तरह पास में बैठाकर खिला रही थी और लालमहल का वाकया सुनकर हँस रही थी। शिवाजी महाराज की वीरता की बातें सुनकर संताए हुए लोगों में विश्वास पैदा हो रहा था। वे ख़ुश हो रहे थे कि उनका भी कोई रक्षक पैदा हो गया है।

अफ़जल खाँ और सिद्दी जौहर से भी लालमहल का हमला ज्यादा महत्वपूर्ण था। शाइस्ता खाँ की हिम्मत जवाब दे गयी। अब पूना या मंहाराष्ट्र में रहने में उसे जान की जोखिम लगी। थोड़े दिनों में ही वह पूना छोड़कर आगरा चला गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिवाजी और धोखेबाज अंग्रेज

"कहते क्या हैं, दारोजी, क्या सचमुच अंग्रेज हमारे विरुद्ध सिद्दी जौहर से मिल गए और अपनी बड़ी-बड़ी तोपें लड़ाई में ले आए ? अभी डेढ़ महीने पहले ही तो हमने उनके जहाज छोड़े हैं। हमारे पास वे बहुत प्रकार की भेंट लाए थे, खुशामद कर रहे थे। उन्होंने संधिपत्र पर सौगंध खाकर हस्ताक्षर किए थे कि वें बीजापुर के विरुद्ध हमें मदद देंगे।"

"महाराज, आपने तो कहा भी था कि ये अंग्रेज बड़े धूर्त होते हैं, इनसे सावधान रहना चाहिए। परंतु मैंने गलती से इनकी बातों का विश्वास कर लिया। अब जब उन्होंने देखा कि सिद्दी की फौजें हमसे तगड़ी हैं, शिवाजी किले में घिर गये हैं; तो उसकी सहायता पर आ गये।"

मार्च, १६६० में सिद्दी ने तीस हजार फौज के साथ पन्हालगढ़ पर हमला किया था। राजापुर अंग्रेजी गोदाम का एजेन्ट बेईमान हेनरी रेंक्गिटन अपनी अंग्रेजी फौजी टुकड़ी के साथ उसमें मिल गया था। किले पर तोपों की मार कर रहा था।

जुलाई में किसी प्रकार महाराज किले से निकलकर विशालगढ़ पहुँच गए। किला सिद्दी के हाथ आया। लूट की सामग्री में अंग्रेजों को भी यथेष्ट हिस्सा मिला। महाराज के मन में कसक थी, नेताजी पालकर से कहने लगे—"हमने इनकी कोठियों को यह जानकर नहीं लूटा कि हमारी लड़ाई तो मुग़लों से है, ये बेचारे तो विद्रेशी व्यापारी हैं। राजापुर में भी इनके साथ रियायत बरती। उसका बदला उन्होंने इस प्रकार विश्वासघात करके लिया ? खैर समय आने पर इनसे बदला लिया जायगा।"

और सचमुच थोड़े दिनों में ही बदला लेने का समय आ गया। मराठा सैनिकों ने राजापुर स्थित अंग्रेजों के गोदाम पर धावा बोल दिया। लाखों का सोना-चाँदी और दूसरा सामान मिला। रेंविगटन तथा द्रसरे अंग्रेजों को महाराज के सामने हाथ-पाँव बाँधकर हाजिर किया गया।

हेनरी रेंविगटन तथा उसके साथी गिड़गिड़ाकर नतजानु होकर क्षमा माँगने लगे। यद्यपि महाराज शांत स्वभाव के थे, परंतु उस दिन तो उन्हें सचमुच बहुत क्रोध हो आया। कहने लगे—"कमबख्तों, मैं समझता था तुम लोग व्यापारी हो, आयात-निर्यात का धंधा करते हो, राजनीति से तुम्हें कोई मतलब नहीं है। यद्यपि मुझे यह सूचना कई बार मिली कि तुम लोगों में समुद्री डाकू भी हैं, मेरे समुद्र तट की गरीब प्रजा को तंग करते हो, परंतु मैंने उन अफवाहों पर ध्यान नहीं दिया। इस बार केवल एक महीने पहले ही तो तुमनें वचन दिया था कि सिद्दी से जब हमारा जंग होगा, तुम अपनी तोपों सहित हमारे पास आ जाओगे। परंतु जब तुमने देखा कि शिवाजी पन्हालगढ़ में घिर गया है तो उस संकट के समय तुम अपनी तोपें

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेकर सिद्दी के साथ चले गए। मेरा मन कहता है कि जिन तोपों से तुमने पन्हालगढ़ पर गोले छोड़े, उन्हीं तोपों के मुँह के आगे बाँधकर तुम लोगों को बारूद से उड़ा दिया जाए। तुम खटमलों की तरह धोखे से काटते हो, इस लिए तुम्हें खटमलों की कोठरी में रखा जायगा। सूरत को सूचना भेजी गई है। अगर वे हमारे हर्जाने की रकम जुर्माने सहित दे देते हैं तो तुम्हें छोड़ने का विचार किया जाएगा।"

एक वर्ष से जेल में पड़े-पड़े अंग्रेज सड़ रहे थे। वहाँ न तो शराब थी और न नाच-रंग। यद्यपि शारीरिक दंड तो उन्हें नहीं दिया जाता था, परंतु खाना-पीना तीसरे दर्जे के कैदियों का सा था।

ज्वार की मोटी रोटी और छिलके सहित चने की दाल। बार-बार सूरत में अपने बड़े साहब को पत्र लिख रहे थे कि "शिवाजी से समझौता करके हमें इस दोज़ख से निकलवाइए। हमारा वजन घटकर आधा रह गया है। हमारे शरीर खटमलों के काटने से सूज गए हैं। हमें बिना सालन के चोकड़ की मोटी रोटियाँ मिलती हैं।

सूरत से महाराज के पास कई बार उन्हें छोड़ने की दरख्वास्त आई। परंतु वे हर्जाना देने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि जो कुछ राजापुर में हुआ है। वह बिना सूरत के मंजूरी के किया गया है।

इस बीच जेल में दो अंग्रेज मर गये और हेनरी रेविंगस्टन बीमार रहने लगा।

उसने महाराज को अर्जी भेजी की उसके और साथी तो जेल में हैं ही, उसे दो महीनों की पैरोल पर छुट्टी दी जाय, वह सूरत जाकर प्रेसिडेन्ट एन्ड्रूज से मिलकर हर्जाने की शर्तें तय करेगा।

उसे छुट्टी मिल गयी। वह सूरत की बड़ी कोठी में गया। गंदे कपडे. सूखा चेहरा और सूखा हुआ शरीर। पहले तो पहचानने में ही नहीं आया। जब उसने जेल के कष्टों का वर्णन किया तो बड़ा साहब उस पर बिगड़ गया। कहने लगा—"बेवकूफ, तुम्हें शिवाजी से लड़ने को किसने कहा था? क्यों उस बाघ की माँद में गये? हम धीरे-धीरे पैर फैला रहे थे कि इस बीच में यह झंझट मोल लेकर तुमने उन्हें हमारे विरुद्ध कर दिया। वह कई लाख का सामान तो राजापुर के गोदाम से ले गया और अब कई लाख की माँग और करता है। किसके हुक्म से तुमने सिद्दी को तोपें भेजीं और लड़ाई करने गये? जो किया उसका फल भोगो। यहाँ कुछ नहीं हो सकता।"

रेविंगटन फिर से शिवाजी के कैदखाने में किसी भी हालत में नहीं जाना चाहता था। थोड़े दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी, और इस प्रकार वह घोर कष्टों से मुक्ति पा गया। बाकी अंग्रेज कैदी जेल में रस्सियाँ बँटते और चक्कियाँ पीसते रहे। धीरे-धीरे उन्हें जेल में ३३ महीने गुजारने पड़े। इन सभी की स्थिति खतरनाक हो गयी। आखिर एक दिन महाराज को इन पर दया आई। उन्होंने मुचलके लेकर फरवरी सन् १६६३ ई० को सभी को मुक्त कर दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिवाजी का ऐतिहासिक पत्र

मामा शाइस्ता खाँ पूना से भागकर दिल्ली आया और औरगजेब को लालमहल पर शिवाजी के हमले की घटना बताई, साथ ही अपने दाहिने कटे हाथ को दिखाया। बहुत ग़मगीन था आला सेनापति। इतने में सूरत की लूट की खबर पहुँची। औरंगजेब गुस्से से बौखला गया। बीस हजार की बेतरतीब मावलों की भीड़वाला शिवाजी मुग़ल बादशाह की एक लाख बेहतरीन फौज से लोहा ले रहा था। बात यकीन करने की नहीं थी, परंतु थी सच।

औरंगजेब अद्भुत कूटनीतिज्ञ था। उसने सोचा की इस बार हिंदुओं की बड़ी फ़ौज दक्षिण में भेजी जाय। दोनों तरफ हिंदू मरेंगे। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह को यह भार सौंपा गया। वे मुगलों के बड़े सेनापति थे। पाँच पीढ़ी से उनकी गुलामी करते आ रहे थे। सूझ-बूझ और सैनिक-संधान में वे अद्वितीय गिने जाते थे।

औरंगजेब अव्वल दर्जे का धूर्त और बहमी था। सावधानी के लिए उसने एक दूसरे सेनापति दिलेर खाँ को राजा के साथ लगा दिया। फौज अधिकांश हिंदुओं की थी, १६६५ की फरवरी में मुगल फौज बुरहानपुर पहुँच गयी। यह दक्खिन का दरवाजा गिना जाता था।

राजा जयसिंह शिवाजी से मैदान में लड़ना चाहता था, परंतु शिवाजी उससे भी अधिक बुद्धिमान थे। वे अपनी सीमित शक्ति को जानते थे। बीजापुर का डर भी बना हुआ था। कहीं दो पाटों के बीच में नहीं फँस जायँ, यह चिंता थी।

उन्हें यह भी सूचना मिल गई थी कि इस बार अधिकांश हिंदू फौजें हैं। उनके पास उस समय बीस हजार फौज थी, परंतु बेहतरीन हथियारों की कमी थी जबकि मुगल-फौज में हाथी, घोड़े, ऊँट, छोटी-बड़ी तोपें और बंदूकें बड़े पैमाने पर थीं। वे जयसिंह को लम्बे अरसे तक सुलझा कर रखना चाहते थे।

यह भी जानते थे कि जयसिंह कट्टर धार्मिक है, नित्य पूजा-पाठ करता है और गोविंददेव जी का भक्त है। औरंगजेब ने पिछले वर्षों में मथुरा, काशी तथाखास जयपुर के बहुत मंदिर तोड़े हैं, इसलिए मन ही मन दुःखी भी है। वे उसकी हिंदुत्व की भावना जागृत करके एक बड़ा सम्मिलित मोर्चा बनाना चाहते थे। उन्हें यह आकांक्षा नहीं थी कि वे स्वयं नेता बने। मेवाड़ के राणा जयसिंह, राजा जयसिंह या जोधपुर के राजा जसवंत सिंह में से किसी को भी नेता बनाने को तैयार थे। उनका एकमात्र लक्ष्य था कि किसी तरह बढ़ती हुई विदेशी मुग़ल-शक्ति को छिन्न-भिन्न किया जाय, जिससे हिंदू-धर्म मजबूत होकर देश में आर्य-संस्कृति फले-फूले।

शिवाजी ने सोचा क्यों न एक बार राजा जयसिंह से मिलकर सारी बातें स्पष्ट कर ली जायँ। आखिर वह भी देश-धर्म की भली-बुरी सोचता ही है, उसके मन में भी इष्टदेवता के मन्दिर टूटने का भय तो है ही।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आख़िर उन्होंने जयसिंह को वह प्रसिद्ध पत्र लिखा, जो इस समय भी राष्ट्रीय संग्रहालय में मौजूद है। इसे पढ़ने पर पता चलता है कि धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति इस महामानव के मन में थी।

रायगढ़, फरवरी १६६५।

"ऐ रामचन्द्र के हृदयांश! तुझसे राजपूतों का सर उन्नत है। बुद्धिमान जयशाह! शिवा का प्रणाम स्वीकार कर। जगत का जनक, तुझको धर्म-न्याय का मार्ग दिखायें।

मैंने सुना है कि तू मुझपर आक्रमण करने एवं दक्षिण प्रांत को विजय करने आया है। हिंदुओं के हृदय तथा आँखों के रक्त से तू संसार में यशस्वी हुआ चाहता है। पर तू यह नहीं जानता कि यह तेरे मुख पर कालिख लग रही है। क्योंकि इससे देश तथा धर्म आपत्ति में पड़ जाएंगे। यदि तू स्वयं दक्षिण विजय करने आता तो मेरे सिर और आँख तेरे रास्ते के बिछौने बन जाते। मैं तेरे हमरकाब बड़ी सेना लेकर चलता और एक सिरे से दूसरे सिरे तक भूमि तुझे विजय करा देता। पर तू तो औरंगजेब की ओर से आया है। अब मैं नहीं जानता कि तेरे साथ कोन-सा खेल खेलूँ। यदि मैं तुझसे मिल जाऊँ तो यह पुरुषत्व नहीं है। क्योंकि पुरुष लोग समय की सेवा नहीं करते, सिंह लोमड़ीपना नहीं करते और यदि मैं तलवार तथा कुठार से काम लेता हूँ तो दोनों ओर हिन्दुओं को ही हानि पहुँचती है। वह न्याय तथा धर्म से वंचित पापी जो कि मनुष्य के रूप में राक्षस है; जब अफ़ज़ल खाँ से कोई श्रेष्ठता न प्रकट हुई, न शाइस्ता खाँ की कोई योग्यता देखी तो तुझको हमारे युद्ध के निमित्त भेजा है। वह स्वयं तो हमारे आक्रमण को सहने की योग्यता रखता नहीं। वह चाहता है कि हिन्दुओं के दल में कोई बलशाली संसार में न रह जाय, सिंहगढ़ आपस में लड-भिडकर घायल तथा शांत हो जाय। यह गुप्तभेद तेरे सिर में क्यों नहीं बैठता।

तूने संसार में बहुत भला-बुरा देखा है। तुझे यह नहीं चाहिए कि हम लोगों से युद्ध करें और हिन्दुओं के सिरों को धूल में मिलावें। व्याघ्र मृग आदि पर व्याघ्रता करते हैं, सिंहों के साथ गृह-युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते। यदि तेरी कांटनेवाली तलवार में पानी है तो तुझको चाहिए कि धर्म के शत्रु पर आक्रमण कर। तूने जसवंत सिंह को धोखा दिया तथा हृदय में ऊँच-नीच नहीं सोचा। तू लोमड़ी का खेल खेलकर अभी अघाया नहीं है, सिंहों से युद्ध के निमित्त ढिठाई करने आया है। तुझको इस दौड़-धूप से क्या मिलता है ? तू उस नीच की कृपा का क्या अभिमान करता है ? तू जानता है कि कुमार छत्रसाल पर वह किस प्रकार से आपत्ति पहुँचाना चाहता था। तू जानता है कि दूसरे हिंदुओं पर भी उस दुष्ट के हाथ से क्या-क्या विपत्तियाँ नहीं आईं। मैंने माना कि तू ने उससे संबंध जोड़ा है, पर उस राक्षस के लिए यह बंधन इजारबंद से अधिक दृढ़ नहीं है। वह तो अपने इष्ट-साधन के लिए भाई के रक्त तथा बाप के प्राणों से भी नहीं डरता।

यदि तू पौरुष तथा बड़ाई मारता है तो तू अपनी जन्मभूमि के संताप से तलवार को तपा तथा अत्याचार से दुखियों के आँसू पर पानी दे। यह अवसर हमलोगों के आपस में लड़ने का नहीं है, क्योंकि हिंदुओं पर इस समय बड़ा कठिन कार्य पड़ा है। हमारे लड़के देश, धन, देव, देवालय तथा पवित्र देव-पूजक इन सब पर आपत्ति आ पड़ी है तथा उनका दुःख सीमा तक पहुँच गया है। यदि कुछ दिन उसका काम ऐसा ही चलता रहा तो हम लोगों का कोई चिह्न पृथ्वी पर न रह जायेगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि मुट्ठी भर मुसलमान हमारे इतने बड़े देश पर प्रभुता जमावें। यदि तुझको समझ है तो देख कि वह हमारे साथ कैसी धोखे की चालें चलता है तथा हमारे सिरों को हमारी ही तलवारों से काटता है।

हम लोगों को हिंदुस्तान तथा हिंदू-धर्म के निमित्त अत्यधिक प्रयत्न करना चाहिए। यदि तू जसवंतसिंह से मिल जाय और राणा से भी एकता का व्यवहार कर ले तो आशा है कि बड़ा काम निकल जाय। चारों तरफ से धावा करके तुम लोग युद्ध करो। उस साँप के सिर को पत्थर के नीचे दबा लो। मैं इस ओर भाला चलाने वाले वीरों के साथ इन दोनों बादशाहों का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भेजा निकाल डालूँ। मेघों की भाँति गरजनेवाली सेना से मुसलमानों पर तलवार का पानी बरसाऊँ। इसके पश्चात् कार्यदक्ष शूरों के साथ लहरें लेती हुई तथा कोलाहल मचाती हुई नदी की भाँति दक्षिण के पहाड़ों से निकल कर मैदान में आऊँ और अत्यंत शीघ्र तुम लोगों की सेवा में उपस्थित होऊँ। हमलोग अपनी सेनाओं की तरंगों को दिल्ली में उस जर्जरीभूत घर में पहुँचा दें। उसकी न अत्याचारी तलवार रह जाय और न कपट का जाल। यह काम बहुत कठिन नहीं है, केवल यथोचित हृदय, हाथ तथा आँख की आवश्यकता है। दो हृदय एक हो जायँ तो पहाड़ को तोड़ सकते हैं, समूह के समूह को तितर-बितर कर सकते हैं। जिसको पत्र में लिखना सम्मत नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हम लोग परस्पर बातचीत कर लें जिससे कि व्यर्थ में दुःख और श्रम न मिले। यदि तू चाहे तो मैं तुझसे साक्षात् बातचीत करने आऊँ और तेरी बातों को श्रवण करूँ।

तलवार की तथा धर्म की शपथ करता हूँ कि इससे तुझ पर कदापि आपत्ति नहीं आयेगी। अफ़जल खाँ के परिणाम से तू शंकित मत हो, क्योंकि उसमें सच्चाई नहीं थी। वह मेरे लिए घात लगाये हुए था। यदि मैं पहले ही उस पर हाथ न फेरता तो इस समय यह पत्र तुझको कौन लिखता ? यदि मैं तेरा उत्तर यथेष्ट पाऊँ तो तेरे समक्ष रात्रि को अकेले आऊँ। मैं तुझको वे गुप्त पत्र दिखाऊँ जो कि मैंने शाइस्ता खाँ की जेब से निकाल लिए थे। यदि यह पत्र तेरे मन के अनुकूल न पड़े तो फिर मैं हूँ और काटनेवाली तलवार तथा तेरी सेना। कल जिस समय सूर्य अपना मुँह संध्या में छिपा लेगा उस समय मेरा खंग म्यान को फेंक देगा।"—शिवाजी

शिवाजी का पत्र पढ़ने के बाद जयसिंह के मन में उनके प्रति आदर-भाव बढ़ गया। वह मन ही मन महसूस करने लगा कि वास्तव में ही वह अकेला वीर युवक मुग़लों की बड़ी हस्ती से हिंदू-धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहा है। परंतु जयसिंह में यह हिम्मत नहीं थी कि औरंगजेब से अलग हो जाय।

नयी संधि के अनुसार शिवाजी अपनी फौजों के साथ जयसिंह के साथ आ गये थे। परंतु उसका सहायक सेनापति दिलेर खाँ हमेशा उनकी चुगली खाया करता था, मन में बैर रखता था और मौका देखकर मार देना चाहता था।

एक दिन बादशाह का पत्र आया कि शिवाजी और उनके पुत्र को आगरा भेज दो, हम उनसे मिलना चाहते हैं। उनको इज्जत और मनसब भी देंगे।

जीजा माता आगरे भेजने के पक्ष में नहीं थी, परंतु महाराज ने कहा कि भवानी रक्षा करेगी, आप डरें नहीं। हमें उत्तर के हिन्दू सरदारों के मनोभाव जानने का भी मौका मिलेगा। राजा जयसिंह ने अपने इष्टदेव गोविंददेवजी की सौगंध खाकर उनकी रक्षा का वचन दिया। अपने पुत्र रामसिंह को सारी बातें लिखकर भेज दी। ५ मार्च, १६६६ को अपने ३५० साथियों के साथ महाराज और ९ वर्ष का बालक शम्भाजी राजगढ़ से आगरा के लिए रवाना हुए। ११ मई को वे सब आगरा पहुँच गये। दूसरे दिन बादशाह का ५० वें जन्मदिन का जलसा था। शिवाजी पुत्र के साथ दरबार-ए-आम में गए। शहर के रास्तों में लोग उनकी जय-जयकार कर रहे थे। साथ के मुसलमान सिपाहियों को यह बहुत बुरा लग रहा था।

दरबार में उन्हें तीन हजारी सरदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया। औरंगजेब ने आदाब का जवाब भी नहीं दिया। वे गुस्से से काँपने लगे। पास में खड़े रामसिंह को बुरा-भला कहा और जल्दी से बिना सलाम किए दरबार से बाहर निकल कर आ गए।

यह सरासर बादशाह की तौहीन थी। वे अपने डेरे पर आ गए। थोड़ी देर में ही चारों तरफ से मुग़ल सैनिकों ने उनके डेरे को घेर लिया। उन्हें जीजा माता की कही हुई चेतावनी याद आ गई, परंतु अब क्या हो सकता था ? अब तो वे पिंजरे में बंद थे।

यद्यपि औरंगजेब खुद झगड़ा नहीं बढ़ाना चाहता था, परंतु उसका वजीर जाफर खाँ, जोधपुर के राजा जसवंतसिंह और शाहजादी जहानआरा सब शिबाजी को खत्म कर देना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाहते थे। इसलिए उनकी सलाह मानकर उसने आगरे के कोतवाल अंदाज़खाँ के जिम्मे उनको सौंप दिया। पाँच हजार पठान सिपाही चारों तरफ रात-दिन पहरे पर रहने लगे।

रामसिंह को पता चल गया कि जल्दी ही शिवाजी और शम्भाजी की हत्या की जायगी। उसे अपने पिता के दिये हुए वचनों की याद आयी। उसने अपने कुछ विश्वस्त सैनिक शिवाजी के मकान पर रख दिये।

शायद अब तक वे मार दिये जाते, परंतु औरंगजेब राजा जयसिंह को नाराज़ नहीं करना चाहता था। आगरे में हिंदू फौज के सिपाही भी शिवाजी का आदर करते थे। इसलिए मौक़े की ताक़ में था।

रामसिंह शिवाजी से बराबर मिलता रहता। मन में बहुत दुःखी था, परंतु कुछ उपाय तो था नहीं।

एक महीना उन्हें कैद में हो गया। चारों तरफ कड़ा फौजी पहरा, कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। परंतु वे संकट में हिम्मत हारने वाले नहीं थे।

६ जून को उन्होंने अपने साथ के ३५० सैनिकों को दक्खिन भेजने की अनुमति माँगी। औरंगजेब तो यही चाहता था।

सारे मराठा सैनिक दक्खिन न जाकर योजनानुसार आगरे के पास छिपकर इधर-उधर फैल गये। इधर शिवाजी के हत्या की सारी व्यवस्था हो गयीं। उन्हें दफ़नाने का बंदोबस्त भी हो गया।

रामसिंह को गुप्तचरों द्वारा सारी बातों का पता चल गया। उसने पिता को बादशाह के विश्वासघात के बारे में ब्यौरेवार समाचार दे दिया। एक दिन शिवाजी ने उसको बुलाकर कहा कि "तुम मेरे छोटे भाई की तरह हो। मैं तुम्हें किसी प्रकार के मुगालते में नहीं रखना चाहता। बादशाह से तुम मेरी रक्षा की जिम्मेदारी से छुट्टी ले लो, फिर मैं जैसा ठीक समझूँगा, करूँगा।"

वर्षा ऋतु शुरू हो गयी, जेल में ढाई महीने बीत गये। शिवाजी जान-बूझकर अस्वस्थ रहने लगे; दिन-रात चद्दर ओढ़े सोये रहते। वैद्य-हकीम आने लगे। बादशाह और उमरा ख़ुश थे कि शायद थोड़े दिनों में अपने-आप ही शिवा मर जायगा, हत्या का बखेड़ा नहीं करना पडेगा।

भाद्र बदी ८, भगवान श्रीकृष्ण का जन्म-दिन महाराज के स्वास्थ्य-लाभ के लिए हिंदू-मुसलमान सबको प्रचुर अन्न-दान दिया जाने लगा।

शुरू में तो टोकरों को खोलकर प्रहरेदारों ने देखा, परंतु उनका तो जैसे अंत ही नहीं था, लगातार आते ही जा रहे थे। इसलिए वे थक कर बैठ गये।

इन्हीं पिटारों में से दो में शिवाजी और शम्भाजी बैठ गये और बात की बात में मुगलों के पहरे से बाहर निकल गये।

घनघोर वर्षा—अँधेरी रात। वे औरंगजेब रूपी कंस के जेलखाने से निकल कर अपने सैनिकों के पास सही सलामत पहुँच गये।

शिवाजी की जगह उन्हीं की शक्ल का हीरोजी फरजंदे चद्दर ओढ़ कर लेट गया।

बाहर आकर टहलुआ मदारी पहरेदारों से कहने लगा कि "भाई, महाराज तो शायद ही आज की रात काटें।"

मुसलमान सरदार और पहरेदार ख़ुश थे कि चलो रोज की बला मिटी।

दूसरे दिन सुबह सदा की तरह फौलादखाँ जब महाराज के कमरे में गया तो पलंग खाली था। नीचे ऊपर चारों-तरफ देखा परंतु शिवाजी या शम्भाजी दोनों ही नहीं मिले।

डरते हुए औरंगजेब के पास जाकर सूचना दी। बादशाह ने सिर पीटते हुए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा—"बेवकूफो, नगकहरामो, तुम लोगों ने यह क्या किया ? क्या वह कम्बख्त जमीन में धँस गया या आसमान में उड़ गया । जब तक उसको पकड़ कर नहीं लाते तब तक मुझे अपना काला मुँह मत दिखाना ।"

यद्यपि रामसिंह की मनसबदारी तो छिन गयी, परंतु वह मन ही मन खुश था कि पिता की बात रह गयी ।

चारों तरफ मुग़ल-सैनिक घोड़े लेकर शिवाजी को पकड़ने निकले ।

इधर शिवाजी ने दाढ़ी-मूँछें मुड़ाकर साधु का वेश बना लिया । शम्भाजी को एक विश्वस्त मराठा-परिवार में मथुरा में छोड़कर वे काशी की तरफ रवाना हो गए । रास्ते में बिना आराम किए लगातार चलकर २५ दिनों में राजगढ़ पहुँचे । माता जीजाबाई को सूचना भिजवाई कि काशी के कुछ साधु-महात्मा आए हैं जो माँजी साहिबा से मिलने की जिद्द किए हुए हैं ।

महल के भीतर आकर उनमें से एक साधु माँजी के पैरों में गिर पड़ा । एक बार तो वे बड़े धर्मसंकट में पड़ गईं, परंतु चाहे किसी भेष में हो पुत्र तो पहिचान में आता ही । दोनों तरफ से हर्षाश्रुओं के साथ हिचकियाँ बँध गईं । शम्भाजी को भी कुछ दिनों के बाद एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ राजगढ़ बुला लिया गया । औरंगजेब के मन में मरते समय तक इस बात का पछतावा रहा कि शेर पिंजड़े से भाग गया ।

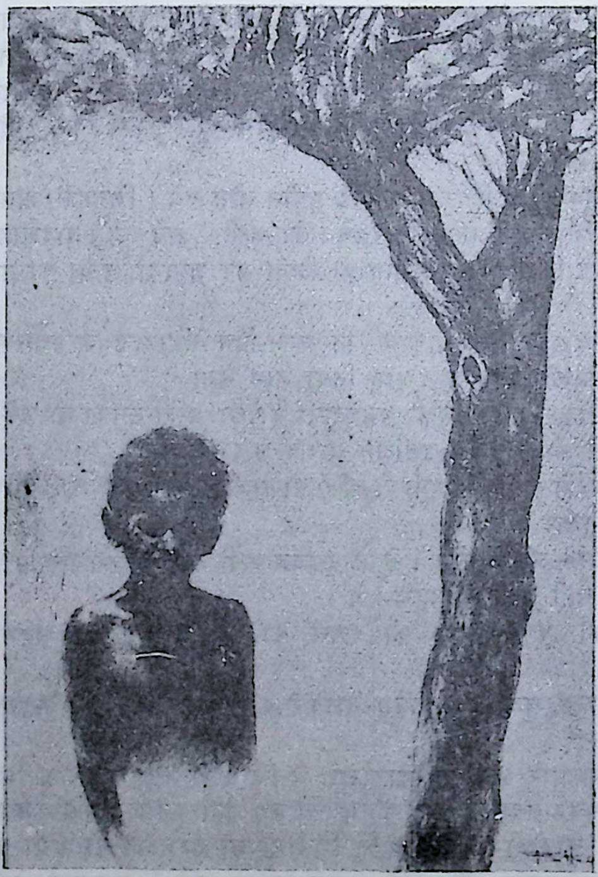

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्यार की कीमत

दिल्ली के लाल किले में शाहजादी जैबुन्निसा का महल। जनवरी की हृत्कंप ठंढ और सनसनाती हुई सर्द हवाएँ। यद्यपि सूरज ऊपर चढ़ आया था, परंतु शहजादी अपने महबूब आकिल खाँ की बाँहों में अलसायी हुई लेटी थी।

अचानक बाँदी गुलरुख ने दौड़ते हुए आकर कहा—"शाहजादी साहिबा, गजब हो गया, बादशाह हुजूर इस तरफ आ रहे हैं!"

शाहजादी घबराई हुई चारों तरफ देखने लगी। सामने के ग़ुसलखाने में एक बड़ी देग पानी से भरी हुई रखी थी। जल्दी से आक़िल खाँ को उसमें छिपा दिया।

नंगी तलवारों से लैस ८-१० तातारी बांदियों और ख्वाजासरों के साथ औरंगजेब ने प्रवेश किया। हरम की बाँदियाँ सहमी-सी एक तरफ खड़ी हो गईं। शाहजादी ने झुककर कोर्निश करते हुए कहा—"अब्बा हुजूर ने इस बेवक्त कैसे तकलीफ की?"

बादशाह ने चारों तरफ नजर दौड़ाते हुए कुटिल मुस्कान में कहा, पहरेदारों ने खबर दी है कि सल्तनत का एक बागी इस तरफ आया है।"

सफेद मोतियों के से दाँतों में बरबस लाई हुई हँसी में शाहजादी ने जवाब दिया—"भला इस तरफ आने की जरूरत किस मूजी को हो सकती है?"

पास में शाहजादी की मुँहलगी बाँदी गुलरुख खड़ी थी। बादशाह ने डपटते हुए कहा—"तेरे बच्चे और खाविन्द को कोल्हू में पिरा दिया ज़ायगा और तेरी बोटी-बोटी जंगली कुत्ते से नुचवा दी जाएगी, नहीं तो बता कि वह बागी कहाँ छिपा हुआ है?" डर से काँपती हुई उसने देग की तरफ इशारा कर दिया।

सूरज इतना ऊपर चढ़ आया और अभी तक शाहजादी ने गुसल नहीं किया?"

अब्बा हुज़ूर, सर जरा भारी था, इसलिए उठने में देर हो गई। गुसल करके जल्दी ही आपके हुज़ूर में हाजिर होती हूँ।"

बादशाह ने भट्ठी की तरफ देखते हुए कहा—"अभी तक तो आग ही नहीं जलाई गयी है। फिर भला कब पानी गर्म होगा और कब शाहज़ादी ग़ुसल करेंगी।"

बाँदियों को हुक्म हुआ कि देग के नीचे की भट्ठी में बहुत-सी लकड़ियाँ जलाओ जिससे जल्द पानी गर्म हो जाय।

थोड़ी देर में ही आग की लपटें उठने लगीं। बादशाह पहरे पर तातारी बाँदियों को छोडकर अपने महल में चला गया।

गर्म भाप से देग का ढक्कन उठने-गिरने लगा शाहज़ादी ने देग के पास आकर धीरे से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा—"आकिल, मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। तिल-तिल करके जल जाना, मगर ऐसा न हो कि मुँह से आह निकल जाय।"

थोड़ी देर में ही शाहजादी जेबुन्निसा मूर्छित होकर एक तरफ गिर पड़ी। जब होश आया तो देखा कि किसी समय की दी हुई प्यार की निशानी उसका जड़ाऊ कंगन देग के बाहर पड़ा हुआ है।

पिछले बारह महीनों की बातें चित्रपट की तरह उसके मानस पर उभर आईं। अब्बा हुजूर की तबीयत नासाज थी। वे दिल्ली की खटपट से कहीं दूर जाकर आराम लेना चाहते थे। जेबुन्निसा उसकी सबसे प्यारी औलाद थी। निगहदारी और बंदोबस्त के लिए उसे साथ लिया और एक बड़े काफिले के साथ लाहौर आ गये।

हकीमों ने बादशाह को दरिया में घूमने की सलाह दी, इसलिए शाम होते ही एक बड़े बजरे में रावी में घूमने जाते। साथ में रहती उनकी बेगमें और शाहजादी जेबुन्निसा।

कभी-कदाच सल्तनत के कामों से उन्हें रुकना पड़ता तब शाहजादी अकेली ही चली जाती। उसे रावी की चंचल लहरों से प्यार-सा हो गया था।

उसने महसूस किया कि जिस दिन बादशाह नहीं आते, उसे किले की बुर्ज की तरफ से एक दर्द भरी गज़ल सुनने को मिलती है। गायक की लय और तान मँजी हुई थी, परंतु उसमें उदासी की तड़पन-सी रहती। गज़ल सुनकर उसके मन पर उदासी छा जाती। गज़ल के बोल कुछ इस प्रकार के होते—

"ऐ आकाश में उड़ने वाले पंछी! तू कितना सुन्दर है, मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ, परंतु तू ऊँचे आकाश में है, मेरी पहुँच से बहुत दूर। ऐसा लगता है जीवन में कभी तुझे नजदीक से नहीं देख पाऊँगा, न तेरे सुन्दर मुलायम पंखों पर हाथ फेर सकूँगा। इसी तरह घुटन से भरी मेरी जिंदगी जल्द ही खत्म हो जाएगी। मेरी आरज़ू है कि अगर कभी मौका मिले तो पास के बगीचे से अपनी चोंच में एक फूल लाकर मेरी कब्र पर चढ़ा देना। इससे मेरी तड़पती हुई रूह को राहत मिलेगी, यही सबसे बड़ा सकून होगा।"

कभी-कभी उसके भाव इस प्रकार के होते—"ऐ हवाओं, मेरा प्यारा नजदीक होते हुए भी बहुत दूर है, वह मेरी जुदाई के दर्द को पहचानता नहीं है। क्या तुम उसके दरबार में मेरी तड़पन और दर्द के बारे में बयान कर दोगी?"

शाहजादी ने गुलरुख को उस शख्स को ढूँढ़कर हाजिर करने के लिए कहा, परंतु उसका कुछ भी पता नहीं चला।

आखिर लाहौर के सूबेदार आकिल खाँ की तलबी हुई। वह कोर्निश करके दस्तबस्ता एक तरफ़ खड़ा हो गया। २५-२७ का सिन, गठीला बदन, सुन्दर घुँघराले बाल, गोरा रोबदार चेहरा, परंतु गमगीन सा दिखाई देता हुआ।

शाहजादी बजरे में थी और वह पास की नौका में। पर्दे में से गुस्सा भरी आवाज आयी, "कौन है वह शख्स जो अपनी दर्द भरी गज़लें गाकर हमारी तनहाई में दखल डालता है? हम यहाँ आराम करने आए हैं न कि मजनुओं का दुःख-दर्द सुनने? उसे कल तक हाजिर किया जाय, यह हमारा हुक्म है।"

"गुस्ताखी माफ हो, शाहजादी हुजूर, वह एक पागल आदमी है। उसे आज रात को ही पकड़ कर दूर भेज दिया जायगा।"

"हमें लगता है कि हमारे सूबेदार बात को टालने की कोशिश कर रहे हैं। हम उस अभागे से बात करके उसके रंजोग़म के बारे में सुनना चाहेंगे, अगर हो सका तो उसकी तकलीफ दूर करने की कोशिश की जायगी।"

आकिल खाँ ने देखा शाहजादी के हुक्म में एक प्रकार की आरज़ू है। मन को कड़ा करके

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहमते हुए कहने लगा, " शाहजादी हुजूर, यह खता इस गुलाम से हुई है, यह सर हाजिर है, भले ही कलम करा दिया जाय ।"

शाहजादी को भी कुछ अन्देशा तो था ही, उसका दिल भर आया । कुछ वर्षों पहले ही उसकी मँगनी उसके ताऊ दाराशिकोह के शाहजादे सिपरशिकोह के साथ हो गयी थी । अभी बचपन ही था, फिर भी दोनों प्यार में सराबोर थे । परंतु होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है ।

दादा बीमार हुए, उन्हें कैद में डालकर अब्बा ने बड़े भाई दारा का सर काट लिया और उसके मँगेतर शाहजादे को ग्वालियर के किले में पोस्त पी-पीकर मरने को कैद कर दिया । इस प्रकार पूरे खानदान को अब्बा ने दुश्मन बना लिया, परंतु जेब के लिए सिपर को दुश्मन मानना किसी हालत में मंजूर नहीं था । कभी-कभी चुपके से ग्वालियर जाकर मिलने का भी मन होता, परंतु पिता के डर से मन मसोस कर रह जाती । आज न जाने क्यों बहुत वर्षों से सोई हुई तमन्नाएँ जाग उठीं । सोचने लगी, मुगलिया खानदान के बादशाह और शाहजादे दसों बेगमें और सैकड़ों रखैल रख सकते हैं, जब कि शाहजादियों को उम्र भर कुँवारी रह कर जवानी की उमंगों को जबरन दफना देना पड़ता है । पचास वर्ष की बुआ जहान आरा अभी तक कुँवारी रह कर आगरे के किले में अपने पिता शाहजहाँ के साथ कैद में दिन गुजार रही हैं । इससे तो बेहतर है कि खुदा भले ही गरीब घर में पैदा कर दे, जिससे ताजिंदगी इस घुटन में तो न रहना पड़े ।

उसे लगा कि आकिल की जगह किशोर सिपर उसके सामने खड़ा है । कहने लगी—"सच्ची मुहब्बत बेवफा नहीं होती आकिल ! दिया जलता है तो पतिंगे भी जलते हैं । हमारी तरफ़ इस तरह न देखो । हमारा भी दिल दर्द से भरा हुआ है, उसको समझने की कोशिश करो ।"

आकिल को लगा कि उसके भटकते हुए सपने डूबने से बचकर लहरों पर थिरक रहे हैं । फिर तो दो दिलों का रुका हुआ बाँध टूट गया । रोजाना वे कहीं न कहीं मिलते रहे । प्यार में शाहजादी हुजूर का नाम रह गया केवल 'जेब' और लाहौर के युवक सूबेदार का 'आकिल'।

औरंगजेब के हजारों आँखें भी थीं । पहले दर्जे का शक्की तो था ही वह, उसे शाहजादी के अचानक बदलाव से वहम हो गया । संजीदा आकिल भी चहकता-सा रहने लगा । आखिर उसने किसी प्रकार वाकया का पता लगा ही लिया ।

एक हफ्ते में ही लाहौर से कूच का हुक्म हुआ । पालकियों और रथों में बेगमें और शाहजादी जा रही थीं । हिफ़ाजत के लिए तातारी बाँदियों और खोजाओं का पहरा था । दूसरी शाम को शाहजादी ने देखा घोड़े पर चढ़ा हुआ रंज से ग़मगीन आकिल किसी तरह उसकी पालकी के पास पहुँच आया है । जल्दी से एक जड़ाऊ कंगन उसको देते हुए सिसकियों भरी आवाज में शाहजादी ने कहा कि "प्यारे, मेरी यह आखरी निशानी अपने पास ताजिंदगी रखना । हमारी यह आखिरी मुलाकात है । अब्बा को सब पता चल गया है । तुम्हें जल्द ही कत्ल कर दिया जाएगा, ऐसी पोशीदा खबर मिली है । अगर हो सके तो हिन्द से भागकर काबुल या अफगानिस्तान चले जाओ । खुदा ने चाहा तो कभी न कभी फिर मिलना हो जायगा, नहीं तो फिर उस दुनियां में तो मुलाकात होगी ही जहाँ न शाहंशाह का डर है, न उनकी फौजों का ।"

आकिल खाँ ने सर झुका कर कंगन को लेकर चूम लिया और केवल इतना ही कह पाया "बंदा मर मिटेगा, मगर आपकी इज्जत पर आँच नहीं आने देगा ।" उसका गला भर आया, आवाज़ काँपने लगी । वह आँखें पोंछता हुआ जल्दी से आगे बढ़ गया ।

दिल्ली आकर बादशाह ने अपनी प्यारी बेटी का गम दूर करने की बहुत कोशिश की ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कई मुल्कों के शाहजादों की तस्वीरें मँगायी गयीं। उनमें से किसी एक को शादी के लिए चुन लेने का सुझाव दिया।

परंतु शाहजादी का एक ही जवाब रहता—"मैं तो ताजिंदगी अब्बा हुजूर की खिदमत में रहूँगी। अभी तक तो मेरा कुरान-शरीफ का तर्जुमा भी पूरा नहीं हो पाया है। भला हमारी ऐसी क्या खता हो गयी कि अब्बा हमें आँखों से दूर करना चाहते हैं।"

हाँ, तखलिया में वह गुलरुख से कहती—"गुल, अब्बा रियासती मामलों को समझते हैं, मगर किसी के दर्द की तड़पन को नहीं। वे सारे हिंद के बादशाह जरूर हैं, पर उन्हें क्या हक है कि प्यार से लगाये हुए किसी मासूम पौधे को कुचल कर फेंक दें।"

इतना कहकर, औरंगजेब के बाद हिंदुस्तान की सबसे ताकतवर शख्सियत बिलख-बिलख कर रोती हुई बेहोश होकर गुलरुख की बाँहों में गिर जाती।

एक दिन यह भी सुना गया कि आकिल खाँ की दिल्ली दरबार में तलबी हुई है, परंतु वह भागकर कहीं चला गया है। उसे ढूँढने के लिए चारों तरफ फौजें भेजी गई हैं।

इसके एक महीने बाद जब शाहजादी सदा की तरह गमगीन बैठी थी तो गुलरुख दौड़ती हुई आयी और धीरे से कहने लगी—"शाहजादी हुजूर, खुशखबरी है।" कान में कही हुई बात सुनकर शाहजादी के बीमार और मुरझाए चेहरे पर चमक-सी आ गई। चहक कर कहने लगी—"कहाँ हैं ? तुझे कैसे पता चला ?"

—"कल रात में ही तो मेरे गरीबखाने पर आकर ठहरे हैं। बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले कपड़े किसी समय के सजीले जवान, दुःखों के मारे बीमार से दिखाई दे रहे हैं।"

उसी रात से एक लम्बी-तगड़ी बाँदी गुलरुख के साथ शाहजादी के हरम में आने लगी। पूछने पर उसने अपनी मामू की बेटी बतायी। औरतों के सामने भी वह परदा करती इसलिए कुछ कानाफूसी होने लगी—परंतु बेगमों और शाहजादियों के हरम में इस प्रकार की मामूजाद और फूफीजाद बाँदियाँ प्रायः ही आती-रहती थीं, इसलिए थोड़ी-सी चर्चा होकर बात दब जाती।

परंतु शाहजादी जेबुन्निसा के महल के लिए यह नई बात थी। वह कट्टर मजहबी थी, रोज तरन्नुम के साथ कुरानशरीफ का पाठ करती, हर जुम्मा को मस्जिद में जाती, दिन में पाँच बार नमाज पढ़ती। बादशाह हुजूर तक खबर पहुँची। उनको अंदेशा तो था ही कि बागी जरूर दिल्ली आएगा; क्योंकि इश्क में मौत का डर नहीं रहता। आखिर परिंदा जलने के लिए ही तो दीये के पास झूमता हुआ चला आता है।

इधर जब पंद्रह दिन हो गए तो एक रात में आकिल कहने लगा—"जेब, इस प्रकार कितने दिन चलेगा ? हमें यहाँ से कहीं दूर निकल जाना चाहिए। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे केवल मेरी जेब चाहिए न कि उसकी दौलत और रुतबा। कहीं भी दो पैसे मज़दूरी करके पेट भर लेंगे।

मुस्कराती हुई जेब ने कहा कि "आकिल कल जरूर फैसला कर लेंगे।" और दूसरे दिन अपने आप फैसला हो गया।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नंगा फ़कीर सरमद

सवा तीन सौ वर्ष पहले की बात है। बड़े भाई दारा को मारकर और पिता शाहजहाँ को कैद करके औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुका था। हिन्दुओं के धर्मस्थानों को तोड़ता जा रह था, जजिया कर भी लगा दिया था। बादशाह बनने के बाद उसे गाजी बनने की धुन सवार थी।

जामा मस्जिद के सामने हिंदू-मुसलमान और सिखों की भीड़ इकट्ठी थी। शहर में बहुचर्चित नंगा फ़कीर सरमद बीच में खड़ा हँस रहा था।

बादशाह जुम्मा की नमाज पढ़कर बाहर आया। लोग बा-अदब खड़े होकर कोर्निश करने लगे, परंतु सरमद उसी तरह खड़ा रहा।

बादशाह ने कहा—"सुना जाता है तुम मुसलमान फ़कीर होने के बावजूद कुफ्र बकते रहते हो ? पाक मस्जिद के सामने बेपर्द रहते हो ?"

फ़कीर के चेहरे पर पवित्र आभा फैल गयी। कहने लगा—"ऐ बादशाह, अल्लाह सब जगह मौजूद है—मस्जिद, गिरजे, मंदिर और गुरुद्वारों में। मेरी नजर में सभी धर्म स्थान पाक हैं। कुफ्र तुम्हारे मौलवी बकते हैं, जो खुदा को किसी एक किताब में या मस्जिद में बंद करके रखते हैं। तुम जो मुझे नंगा कहते हो, यह तुम्हारी बे-अक्ल की बात है। जब खुदा ने मुझे और तुम्हें इस जमीन पर भेजा था तब हम बिना लिबास के थे, फिर अब उसके दरबार में क्यों झूठी चिलमन डाली जाय।"

औरंगजेब ने देखा सरमद सीना तानकर बेझिझक उसके सामने खड़ा है, डर-भय का नाम भी नहीं। परंतु वह बहुत चालाक था, अवाम के जज्बातों को पहचानता था। इतने बड़े हुजूम में अपनी तौहीन को हँसकर गवारा कर लिया और यह कहा कि तुम्हारी निडरता और हाजिरजवाबी पर हम बहुत खुश हैं। कभी तुम्हें दरबार में बुलाकर बात करेंगे। हिंदू और सिख तो इस वाकये से बहुत खुश हुए, परंतु कट्टर मुसलमान काजी और मुल्ला बौखला उठे। लेकिन उस समय लोगों का रुख देखकर चुप रहे।

कुछ दिनों बाद वे बादशाह के पास गये। कहने लगे—"हुजूर, सरमद हमेशा कुफ्र बकता रहता है, पाक-कुरान को बेइज्जत करता है, वह दोजखी कीडा है, उसे जल्दी दुनिया से उठा दिया जाय, नहीं तो दीन-इस्लाम के बंदों में भी कुफ्र फैलने का डर है।"

औरंगजेब तो यही चाहता था कि लोगों में सरमद के लिए घृणा फैले, जिससे उसे सजाए मौत दी जा सके। उसे गिरफ्तार करने के लिए सिपाही भेज दिए गए, परंतु इस बीच में वह दिल्ली से बाहर चला गया था। जहाँ भी जाता, हज़ारों लोग इकट्ठे हो जाते। वह कहता—"खुदा एक है, दुनिया के सब बच्चे उसे एक-से प्यारे हैं—चाहे वे किसी भी मजहब के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हों। ये बँटवारे नकली हैं, खुदा के बंदों पर जजिया लगाना उसकी बेइज्जती है।"

ये बातें दिल्ली में बढ़-चढ़कर पहुँचीं। कहीं लोगों में बलवा न फैल जाय इसलिए एक फौजी टुकड़ी ने उस नंगे फकीर को पकड़कर रात में दिल्ली लाकर लाल किले में बंद कर दिया।

यद्यपि बात को पोशीदा रखा गया था, परंतु बेगमो और बादशाह की प्यारी बेटी जैबुन्निसा को फकीर की गिरफ्तारी का पता चल गया। वे उसके चमत्कारों के बारे में बहुत-कुछ सुन चुकी थीं। शाहजादी बादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अब्बा हजूर, लोग कहते हैं सरमद पहुँचा हुआ फकीर है, उसे कैद करके आपने अच्छा नहीं किया। हम लोगों की दरख्वास्त है कि उसे वापस उसके मुल्क ईरान भेज दिया जाय। अगर आपका हुक्म हो तो मैं एक बार उसे समझाना चाहती हूँ, इस पर भी वह न माने तो फिर जो आप तजबीज करें, वह सजा दें।"

औरंगजेब को यह बात जँच गयी। उसने सरमद का फैसला मुलतबी कर दिया, सोचा—कुछ दिनों में मुल्लाओं का जोश भी ठंढा हो जायगा।

शाहजादी किले के तहखाने में सरमद की कोठरी में गयी। कहने लगी—"बाबा, आप पाक-साफ औलिया मुसलमान हैं, लोग आपकी इज्जत करते हैं, आपकी बात मानते हैं। आपको पाक इस्लाम के प्रचार में लगना चाहिए, मैं आपकी हर तरह से मदद करूँगी। कट्टर मुल्लाओं से हिफाजत के लिए आपके पास हमेशा दस-बीस सिपाही और खिदमतगार रख दूँगी। अब तक आपके साथ जो सलूक हुआ उसके लिए हम शर्मिंदा हैं।"

सरमद हँसकर कहने लगा—"शाहजादी, जो सर्वशक्तिमान अल्लाह की हिफाजत में है, उसे भला तुम्हारी फौज और खिदमतगारों की क्या जरूरत है। मैं न मुसलमान हूँ न हिन्दू—बल्कि एक इंसान हूँ। शायद तुम्हें मेरी बद्दुआ का डर लगता है। परंतु यकीन रखो, सरमद के मन में किसी के लिए बदगुमान नहीं है, वह सबका भला चाहता है। तुम इस वक्त मुगलिया सल्तनत की ताकतवर हस्ती हो, बादशाह तुम्हारी बात मानता है। तुम्हारा फ़र्ज है कि बेकस इंसानों की तकलीफें दूर करो। अपने अब्बा से कहकर मंदिरों और गुरुद्वारों का तोड़ना रोको और जजिया कर तुरंत बंद करो। तुम लोगों ने खुदा को तकसीम करके छोटा बना दिया है। तुम्हारे अब्बा अगर अब भी नहीं सम्हलेंगे तो उनको जिंदगी में कभी अमन-चैन नहीं मिलेगा। इतनी बड़ी सल्तनत कुछ वर्षों में ही नेस्त-नाबूद हो जायगी।"

शाहजादी बाप से भी ज्यादा कट्टर मुसलमान थी। उसे फ़कीर की गुस्ताख़ी भरी बातों से गुस्सा आ गया। बादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अब्बा हुजूर, ऐसा लगता है कि यह फ़कीर पागल नहीं है बल्कि अव्वल दर्जे का गुस्ताख़ है और कुफ्र बकता है। मेरी आरज़ू है कि इसको जितनी जल्दी हो सके कत्ल करा दिया जाय।" दूसरे दिन बादशाह ने फ़कीर को दीवान-ए-आम में बुलाया। हुक्म दिया कि "ऐ फक़ीर! जरा कलमा पढ़कर तो सुनाओ।" सरमद ने कहा—"ला इल्लाह।" "यह तो अधूरा है, आगे के अल्फाज भी तो बोलों।" "औरंगजेब, सरमद जिस बात पर यकीन नहीं करता उसे कैसे कहेगा? मैं यह नहीं मानता कि मुहम्मद रसूल अल्लाह है (केवल मुहम्मद ही खुदा का पैगम्बर है) मेरी समझ में तो बुद्ध, ईसा और नानक भी मुहम्मद की तरह खुदा के पैगम्बर थे।" कुफ्र की हद हो गयी। सरे आम पैगम्बर का दूसरे काफिरों से बराबरी कर रहा है।

बादशाह गुस्से से काँपने लगा। हुक्म दिया कि इस काफिर का सर धड़ से जुदा कर दो, लाश कुत्तों के लिए दिल्ली की गलियों में फेंक दी जाय। सरे आम पैगम्बर दूसरे काफ़िरों से बराबरी कर रहा है।

सरमद को वध-स्थल पर ले जाया गया। दिल्ली के हजारों लोग रो रहे थे, छाती पीट रहे थे। सरमद ने मुस्कराते हुए कहा—"दोस्तो, मंसूर का किस्सा पुराना हो गया था। मैं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूली पर चढ़ कर उसे फिर ताजा कर दूँगा ।"

जब जल्लाद तलवार लेकर आया तो प्यार भरी नज़र उस पर डालकर कहने लगा—"मेरे प्यारे, तुम आ गये ? तुम किसी भी शक्ल में आओ, मैं तुम्हें पहचान लूँगा। क्योंकि मैं तेरे जर्रे-जर्रे से वाकिफ हूँ ।"

जल्लाद एक बार तो झिझका, परंतु फिर तलवार का वार हुआ । सरमद का सर धड़ से जुदा होकर एक तरफ लुढ़क गया ।

सवा तीन सौ वर्ष हो गये, इस बीच बहुत से राजा, बादशाह, अमीर, उमराह आए और चले गए । आज उनको कोई पहचानता भी नहीं, परंतु जामा मस्जिद के नीचे कोने में सरमद की साधारण-सी कब्र है, उस पर रोजाना सैकड़ों स्त्री-पुरुष प्यार और इज्जत से फूल-बताशे चढ़ाते हैं । झुक कर आदाब बजाते हैं, बच्चों के लिए दुआएँ माँगते हैं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माँ की ममता

सन् १७०७ में बाप की तरह भाइयों की हत्या करके औरंगजेब का बड़ा लड़का मुअज्जम ६६ वर्ष की उम्र में दिल्ली के तख्त पर बैठा।

५ वर्ष बाद उसके मरने पर उसी तरह दूसरे भाइयों को मारकर अथवा कैद करके मुईजुद्दीन जहाँदारशाह के नाम से बादशाह हुआ। वह अव्वल दर्जे का ऐय्याश और निकम्मा था। सारे दिन अफीम और शराब के नशे में रहता।

यद्यपि पिछले पाँच वर्षों में मुगलिया सल्तनत सिकुड़ती जा रही थी, सूबेदार मनमानी करने लगे थे, फिर भी दिल्ली के लाल किले में मयूर सिंहासन और अरबों रुपये की धन-संपत्ति तो थी ही।

सल्तनत की सारी हुकूमत मलका-ए-आजम लालपरी बेगम करती थी। किसी समय वह आगरा में साधारण नर्तकी थी। किशोरावस्था में ही एक बच्चे की माँ बन गयी। एक महीने के बच्चे को सीकरी की जामा मस्जिद के बड़े इमाम को सौंप कर खुद एक रिश्तेदार के यहाँ दिल्ली चली आई।

संयोग से वह बड़े शाहजादे की नजर पर चढ़ गई और जब वह जहाँदारशाह के नाम से तख्त पर बैठा तब उसे शादी करके हरम में रख लिया। समय पाकर अपनी खूबसूरती, होशियारी और दयानतदारी से बड़ी बेगम बन गई। मुगलिया सल्तनत उसके हाथों में आ गई, उसे दूसरी नूरजहाँ कहा जाने लगा।

उस सस्ती के जमाने में उसे दो करोड़ रुपये सालाना हाथखर्च के लिए मिलते थे, जिसमें से ज्यादातर वह जरूरतमंद और गरीबों में बाँट देती थी।

मलका के अलावा दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति था—हिजड़ा नासिर हुसेन। बिना उसकी मर्जी के बादशाह या मलका से किसी की मुलाकात होनी संभव नहीं थी। यद्यपि सल्तनत के दूसरे अमीर-उमरा उससे नाराज़ थे तथा उसके व्यवहार से दुःखी थे। परन्तु ऊपरी तौर पर उसकी खुशामद करते रहते थे।

हिजड़ा होने के कारण वह महलो मे बेरोक-टोक जाता रहता था। बेगमों और शाहजादी, शाहजादों के चारित्रिक दोषों की उसे पूरी जानकारी रहती, इसलिए सब उससे डरते रहते। केवल बड़ी बेगम ही ऐसी थी, जिसके दामन पर किसी प्रकार का दाग नहीं था।

एक शाम को आगरे से फतेहपुर सीकरी की बड़ी मस्जिद का इमाम एक १० वर्ष के बच्चे को लेकर लाल किले के फाटक पर आया। पहरेदार से ख्वाजासरा से मिलने का संदेश भिजवाया। वे नासिर के सामने हाजिर हुए। बुजुर्ग मौलवी का चेहरा दयानतदार और रोबीला था। साथ का बच्चा भी बहुत खूबसूरत था। थोड़ी देर तक नासिर उनको देखता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
रहा फिर रोब से कहने लगा—"आपको पहले मेरे मातहत लोगों से मिलना चाहिए था; फिर अगर वे जरूरी समझते तो मेरे पास ले आते।"

"जनाब, हमारा काम ही कुछ ऐसा था कि आपका कीमती वक़्त लेना पड़ा। हमें बड़ी मलका से मिलना है—आप इसका इन्तजाम कर दें।"

मौलवी की बिना खुशामद की बातें सुनकर खोजा नाराज़ हो गया और कहने लगा—"आपके काम की जानकारी होनें के बाद ही मैं तय करूँगा कि आपको मलका से मिलने दिया जाय या नहीं ?"

"माफ़ करिए, हमारा राज़ पोशीदा है; हम मलका के सिवाय किसीं को नहीं बतायेंगे।"

नासिर गुस्सा होकर कहने लगा—"आप बुजुर्ग हैं, बड़ी मस्जिद के इमाम हैं, नहीं तो ऐसी गुस्ताख़ी भरी बातों को सुनने का मैं आदी नहीं हूँ। खैर, ऐसां लगता है कि यह राज़ उम्र भर आपके पास ही रहेगा। आप दोनों लाल किले के तहखाने में कैद रहेंगे।"

थोड़ी देर तक मौलवी कुछ सोच-विचार करता रहा, फिर एक निश्चय पर पहुँचकर कहने लगा—"भाई, आप ख़ामख्वाह नाराज़ हो गये हैं। खैर, इस मासूम बच्चे के खातिर वह राज मैं आपको बता रहा हूँ। खुदा की कसम है, किसी दूसरे को इसका पता न चले।"

सारी बातें सुनकर खोजा के चेहरे पर एक दुष्टताभरी मुस्कान फैल गयी। बहुत कीमती राज़ उसे मिल गया था। उन्हें वहीं ठहरने को कहकर वह भीतर महल में चला आया। थोड़ी देर बाद वापस आया तो मलका उसके साथ में थीं। मौलवी ने १० वर्ष पहले उसे बुरी हालत में देखा था। आज तो वह हीरे-पन्ने से लदीं थी। चेहरे पर हुकूमत का रोब थां।

मौलवी को सलाम करके बच्चे की तरह टकटकी लगाकर देखने लगी। १० वर्ष पहले की सारी घटना याद आ गई। वह बच्चे को गोदी में बैठाकर सुबक-सुबक कर रोने लगी। आज वह मुगलिया सुल्तनत की मलक-एं- आज़म नहीं थी, बल्कि केवल एक ममताभरी माँ थी। पिछले आठ वर्षों से वह शाही हरम में थी, परंतु उसके कोई बच्चा नहीं हुआ था।

"बाबा, आप लोग बगल के कमरे में आराम करें, मैं आपको थोड़ी देर में बुला लूँगी।"

खोजा से सलाह-मश्विरा होने लगा कि किस प्रकार बादशाह सलामत के हुज़ूर में बच्चे को पेश किया जाय।

"मलका-ए-आजम वैसे मैं आपका गुलाम हूँ, आपका हुक्म बजाना मेरा फर्ज है। परन्तु जहाँ तक इस राज का सवाल है, मुझे सारी बातें माँ-बदौलत से ब्यौरेवार कहनी होंगी; नहीं तो पता लगने पर मेरी जान पर आफ़त आ सकती है। वैसे हर चीज की कीमत होती है, मैं पिछले दो वर्षों से सल्तनत की वज़ीरी के लिए आपकी इल्तजा कर रहा हूँ, पर आप न जाने क्यों मुझसे नाराज़ हैं।"

बेगम खोजे की मक्कारी की बातें समझ गई, परन्तु वह अपने निजी स्वार्थ के लिए सल्तनत को ऐसे आदमी के हाथ में सौंपने को तैयार नहीं थी।

"यह किसी हालत में मुझे मंजूर नहीं है। अगर जरूरत हुई तो मैं अपने बच्चे के साथ फतेहपुर सीकरी की मस्जिद में रहकर दिन काटने को तैयार हूँ। मुझे मलका-ए-आजम नहीं रहना है।"

"बेगम साहिबा, अभी तो केवल हम चार आदमी ही ज़ानते हैं, परंतु कल सुबह तक यह बात सारी दिल्ली में फैल जायगी। जो लोग आपको आज तक पाक-साफ़ समझते आ रहे हैं, वे थू-थू करेंगे। शायद बादशाह आपको और बच्चे को जिंदा नहीं रहने देंगे। जिस फ़कीर बाबा ने बच्चे की हिफ़ाज़त की है, वह भी तहखाने में सड़ेगा।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
हिंदुस्तान की मलका रोती जा रही थी। किसी प्रकार भी उसे आगे का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था।

नासिर कहने लगा—"मलका-ए-आजम यह समय जजबातों का नहीं है, आप सारी बातें मुझ पर छोड़ दीजिए। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि मौलवी और बच्चे का क्या हुआ ?"

बेग़म रोती हुई भीतर चली गई।

नासिर उस कमरे में आया जहाँ मौलवी और बच्चा आराम से बैठे हुए भविष्य का सुख-स्वप्न देख रहे थे।

मौलवी कह रहा था—"बेटा, अल्लाह ताला की रहम से तुम अब बहुत अमीर हो गए हो। आगे से तुम यहीं रहोगे। परंतु अपने बूढ़े बाबा को मत भूल जाना। कभी-कभी सीकरी आते रहना।"

नासिर आकर उन्हें अपने साथ लम्बे गलियों में होते हुए किले के सुरंग में ले गया। वहाँ एक अँधेरा तहखाना था जहाँ गूँगे-बहरे हब्शी पहरा दे रहे थे। ख्वाजासरा के इशारा करने पर चार हब्शियों ने उन्हें पकड़ लिया।

"मौलवी साहब, आखिरी वक्त में खुदा को याद कर लीजिए। मैंने मलका को बहुत समझाया, परन्तु उनकी मंशा है आप दोनों को ख़त्म कर दिया जाय।"

"भाई, मैं तो खैर ८० वर्ष का बूढ़ा हूँ। आज नहीं तो कल खुदा के घर जाना है, परन्तु इस मालूस बच्चे का क्या कसूर है ? एक बार हमें मलका से फिर मिला दें।"

खोजा ने गुलामों को इशारा किया। इस बीच तहखाने के कुएँ के पटरे खुल चुके थे, उन दोनों को घसीट कर उधर ले जाया जा रहा था। बच्चा जोर-जोर से रोने लगा।

अचानक तहखाने का दरवाज़ा खुला और दौड़ती हुई मलका बदहवाशी की हालत में भीतर आयी। हब्शियों को रुकने का इशारा किया।

"बेगम, आप अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रही हैं। यह समय निजी जजबातों का नहीं है। आज आप मुगलिया सल्तनत की आला हस्ती हैं। जैसे ही इस बात का पता बादशाह सलामत को चलेगा, आपकी इज्जत खाक़ में मिल जायेगी। आप एक धोखेबाज़ बाजारू औरत साबित होंगी।"

"मक्कार हिजड़े, तुम्हारी बहुत ज्यादती मैंने आज तक सही, इस दुःख के समय भी तुमने अपनी वज़ीरी की कीमत वसूल करनी चाही। फिर भी तुम्हारा क्या भरोसा कि कब इस बात को नहीं फैला दोगे ? मौलवी बाबा और बच्चे का मुझे यकीन है, परंतु तुम्हारा नहीं।"

बेगम ने हब्शियों को उन दोनों को छोड़ देने का और हिजड़े को कुएँ में ढकेलने का इशारा किया।

खोजा बहुत रोया-चिल्लाया, आरजू-मिन्नत करने लगा परन्तु उस जमींदोज तहखाने में कौन उसकी आवाज सुनता। हब्शियों ने उसे पकड़ कर कुएँ में ढकेल दिया। एक जोर की आवाज हुई और अपनी समय का बहुत ताकतवर किन्तु ब्रदनाम बदख्वार शख्स एक मिनट में जहन्नुम में चला गया।

"बाबा, आज तक आपने मेरी लाज रखी है, आगे भी मुझे आप दोनों पर भरोसा है। आप बच्चे को लेकर वापस सीकरी चले जायँ। यह ख्याल रहे कि जाहिरा तौर पर न मैं इसकी माँ हूँ और न यह मेरा बेटा। कभी-कभी बादशाह सलामत के साथ हमलोग जियारत के लिए वहाँ आते रहेंगे, उस समय मैं अपने इस लख्ते जिगर को चुपके से प्यार कर लूँगी। इसकी परवरिश और पढ़ाई के लिए हर महीने दस हजार रुपये आपके पास पहुँचते रहेंगे।"

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सती मस्तानी

बुंदेलखंड पर मुगलों की आँखें लगी थीं। कई बार चढ़ाई की, परंतु बहादुर बुंदेलों ने उन्हे पीछे ढकेल दिया। अंत में मुहम्मद खाँ बंगश के सेनापतित्व में फौजें भेजी गयीं। वह बड़ा दुर्धर्ष और कट्टर मुसलमान था। प्रत्येक बार जब महाराज छत्रसाल के राज्य पर चढ़ आता तो मंदिरों का तोड़कर मसजिद बनवाता और हिंदुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। महाराज उसके आक्रमण को विफल कर देते और फिर से मसजिदों को तुड़वा कर मंदिर बनवा देते। पराजय और अपमान की ज्वाला से वह जल-भुन उठा। बादशाह भी अधीर हो उठा।

जबर्दस्त हमले के लिए पूरी योजना बनी। सन् १७२६ में बहुत बड़ी फौज लेकर मुहम्मद खाँ छत्रसाल की राजधानी पन्ना तक बढ़ आया।

विशाल मुगल-साम्राज्य की बड़ी सेना के मुकाबले में शुरू से ही अस्त्र-शस्त्र और साधन बुंदेलों के पास कम थे। संख्या की दृष्टि से भी वे बहुत थोड़े थे। उनका संबल था शौर्य, साहस और देशप्रेम। बार-बार के आक्रमण ने छत्रसाल की सेना को जर्जरित कर दिया। महाराज की अवस्था ७० वर्ष की थी। पहले का सा बल भी शरीर में नहीं रहा। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि इस बार के आक्रमण में बहुत से हिन्दू राजाओं और जागीरदारों ने मुसलमानों का साथ दिया।

महाराज ने देखा कि अंतिम दिनों में शायद तुर्कों का दास होकर रहना पड़ेगा। बुंदेलखंड पर उनके ही जीवनकाल में गैरिक ध्वज के स्थान पर मुसलमानी हरा निशान फहराने की आशंका से वे बेचैन हो उठे। पूना के श्रीमन्त पेशवा बाजीराव की वीरता और साहस की गाथाएँ उन्होंने सुन रखी थीं। छत्रसाल ने उन्हें एक दोहा लिखकर भेजा—

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज॥

पत्र मिलते ही पेशवा ने निर्णय ले लिया। लम्बी यात्रा थीं, फिर भी दक्षिण से अपनी अजेय मराठी-सेना लेकर बीस दिन में ही पन्ना पहुँच गये। मराठे और बुंदेलों ने मिलकर घेरा डाले हुए मुगलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

उन्होंने शत्रुओं पर निर्णायक विजय पाई। अपार युद्ध-सामग्री छोड़ वे भाग खड़े हुए। मोहम्मद खाँ बंगश दूर के एक किले में जा छिपा और रात के अँधेरे में बुर्का ओढ़कर भाग निकला।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक रात बाजीराव को नींद नहीं आ रही थी। करवटें बदलते आधी रात हो गई। उनका ध्यान बरबस अपनी माता, पत्नी और पूना की ओर चला जाता। परेशान होकर छज्जे पर चले आये। ठंडी हवा में कुछ शांति मिली। सहसा एक मधुर रागिनी सुनाई पड़ी। स्वरों के उतार-चढ़ाव और तान ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। खिंचे हुए उसी ओर बिना अंगरक्षक के ही बढ़ते गए।

राजप्रासाद की निर्जन बीथियों को पार कर वे एक जगह पहुँचे। देखा, तन्मय होकर एक किशोरी संगीत-साधना कर रही थी। जितना सुरीला कंठ उतना ही सुन्दर रूप। गीत की समाप्ति पंर उसने वीणा एक ओर रख दी। एकाएक उसकी दृष्टि बाजीराव पर पड़ी। केवल इतना ही कह सकी—"श्रीमंत, आप!"

दोनों की आँखें एक दूसरे में खो गईं। बाजीराव शौर्य के साथ बुद्धि, सुन्दरता और गुणग्राहकता के लिए विख्यात थे। कुछ क्षणों के लिए दोनों ही निर्वाक् रह गये। उन्होंने धीरे से आगे बढ़कर अपना बहुमूल्य कठहार किशोरी के गले में डाल दिया। लाजभरी झुकी पलकों को लिए सपने की तरह वह ओझल हो गई।

महाराज छत्रसाल ने विजयोत्सव दरबार किया। श्रीमंत बाजीराव पेशवा को तृतीय युवराज के पद दिये जाने की घोषणा की एवं राज्य के तृतीयांश का अधिकारी बनाया। सोने के थालों में हीरे-मोती और जवाहरात की भेंट देते हुए उनका अभिषेक संपन्न हुआ। ज्येष्ठ युवराज से पाग, पेंच और तलवार बदली गई।

विदा के कुछ दिनों पहले अपने निजी कक्ष में पेशवा के साथ बैठे वार्त्तालाप करते हुए महाराज ने कहा—"तुमने समय पर पहुँच कर इस बुढ़ापे में मेरी हिंदू-धर्म की लाज रख ली। एक बात और रखनी होगी।"

इतना कहकर उन्होंने प्रहरी को संकेत किया। कुछ ही क्षणों में एक रूपवती किशोरी ने कक्ष में प्रवेश किया। पेशवा चकित रह गये। उसी रात सपने-सी ओझल हो जाने वाली वही रूपसी।

छत्रसाल ने भरी हुई आवाज में कहा—"मैने इसे पिता का सा प्यार दिया है। कहने को यह मुसलमान है, किन्तु आचार-विचार और संस्कार में किसी हिंदू से कम नहीं। तुम इसे पत्नी के रूप में अंगीकार करो।"

चित्तपावन ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने के कारण पेशवा आचारवान और धर्मनिष्ठ थे। माता राधाबाई भी कट्टर धार्मिक थीं। उलझन में पड़े थे कि उनकी दृष्टि किशोरी पर पड़ गयी। छलछलाती आँखें और काँपते ओठ न जाने क्या कह गए।

महाराज ने बाजीराव का हाथ पकड़ लिया, कहने लगे—"तुम-सा कोई पात्र इस रत्न के लिए मिलेगा नहीं। अब मैं अधिक दिनों तक नहीं बचूँगा, यदि इसे कोई कष्ट हुआ तो मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी।"

पशोपेश में पड़े पेशवा को छत्रसाल के अंतिम शब्दों ने मानो जगा दिया। उन्होंने स्वीकृति दे दी।

महाराज ने राजसी धूमधाम एवं हिंदू-रीति से मस्तानी का कन्यादान किया और उसे भारी दहेज के साथ विदा किया। मराठा फौज में बाजीराव पेशवा का बड़ा अनुशासन और आदर था। किंतु उन दिनों इस प्रकार के संबंध उच्च कुल के ब्राह्मणों के लिए वर्जित थे। मराठा सरदारों में कानाफूसी होने लगी। पेंशवा के पहुँचने के पहले पूना में बातें बढ़-चढ़कर फैलीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजधानी में प्रवेश के समय पेशवा के आगमन पर न तो तोरण सजे और न अगवानी के लिए कोई आया। महल में डोली के प्रवेश का आदेश भी नहीं मिला। श्रीमंत समझ गये कि माता अत्यंत रुष्ट हैं। भविष्य का आभास उन्हें हो गया। वे चरणस्पर्श के लिए गए परंतु माता ने अपने पैर एक ओर हटाते हुए तीखे स्वर में कहर—"मराठों का श्रीमत पेशवा हिंदूपद-पादशाही का जहाँ गौरव बढ़ाकर आया है, वहीं एक मुस्लिम नर्तकी को वधू बनाकर उसने कुल को कलंकित किया है। इससे तो अच्छा था बाजी, तू मेरी कोख में आता ही नहीं। मुझे यह पाप तो वहन नहीं करना पड़ता।"

बाजीराव चुपचाप भूमि पर मस्तक टेक वापस आ गए।

पत्नी काशीबाई पतिपरायणा थीं। उस समय तक एकाधिक पत्नी अथवा रक्षिता की प्रथा मराठों में चल पड़ी थी, किन्तु विधर्मी स्त्री से संबंध हेय माना जाता था। फिर भी उसने छोटी बहन की तरह मस्तानी को अपने महल में रखा।

इधर माता की प्रेरणा से पंडितों की सभा बैठी। उन्होंने निर्णय दिया कि तुर्कनी को पेशवा के महल में प्रवेश का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। विवश होकर बाजीराव ने शहर के बाहर शनिवार बाड़ा नाम का एक छोटा-सा महल बनवा दिया। मस्तानी वहाँ शुद्ध हिंदू आचार-विचार से रहने लगी। अध्ययन एवं भजन-पूजन में समय बिताती। बाजीराव के दुःखी होने पर केवल एक ही उत्तर देती—"प्रेम सुख का मुखापेक्षी नहीं, वह स्वंय में आनन्द की अनुभूति है। आप सुखी रहे, इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है।"

यद्यपि बाजीराव ने मराठों की शक्ति और कीर्ति बहुत बढ़ा दी, किंतु उनका व्यक्तिगत जीवन उदासी से भरा था। वे पारिवारिक और धार्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित नहीं हो पाते। यहाँ तक कि भाई-भतीजे के विवाह और उपनयन-संस्कार में भी उनका प्रवेश वर्जित था। राजकाज, युद्ध और सरदारों के पारस्परिक विग्रह से ऊबकर मस्तानी के पास जब कभी जाते तो उन्हें सांत्वना मिलती। बच्चों की तरह कहते "सभी चाहते हैं, मैं श्रीमंत पेशवा रहूँ, पर कोई कभी यह नहीं सोचता कि मुझे बाजीराव रहने का भी अधिकार है।"

हँसकर मस्तानी कहती—"क्यों, मै तो हूँ ?

कठिन से कठिन परिस्थितिमें मस्तानी उनके साथ रहती। कई युद्धस्थलों में वह पेशवा के साथ गई। बाजीराव को उसके स्नेहिल व्यवहार से बड़ी शांति मिलती। अगले दस वर्षों में उन्होंने बहुत से विजय-अभियान किये। नए-नए राज्यों पर मराठों के गैरिक ध्वज फहराने लगे। कभी-कभी परिहास में वे मस्तानी से कहते—"बाजीराव ने बड़ी-बड़ी बाजियाँ जीतीं, पर अपनी बाजी हार गया।"

वर्षों के कठिन परिश्रम और पारिवारिक क्लेश ने पेशवा के स्वास्थ्य पर असर दिखाना शुरू कर दिया। नर्मदा के तट पर दरवा नामक गाँव में भग्नहृदय बाजीराव बीमार थे। मराठा गौरव की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन होती जा रही थी। काशीबाई राजवैद्य, सामंत और सचिव पास बैठे थें। श्रीमंत कुछ कहना चाहते थे। अवरुद्ध कंठ से अस्फुट स्वर निकले—"मस्तानी ।"

मस्तानी को खबर मिल चुकी थी, किंतु प्रियतम के अंतिम दर्शन के लिए उसके अनुनय-विनय को ठुकरा दिया गया। वह पूना के पास के किसी किले में राधाबाई की कैद में थी। उसने सती होने की अनुमति माँगी, वह भी नहीं मिली। चालीस वर्ष की अल्पायु में पेशवा का देहांत हो गया। पुराने बैर-भाव भूलकर पूना की सारी जनता के साथ कुटुंबी, सरदार, सचिव और सामंत शवयात्रा में सम्मिलित हुए। सभी रो रहे थे। अनोखी सूझ-बूझ का योग्यतम नेता और योद्धा अब न रहा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुसज्जित चंदन की चिता पर शव लिटाया गया। मंत्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गयी। अपार जनसमूह देख रहा था कितनी निर्ममता से सुंदर देह को भस्म करने के लिए आग बढ़ती जा रही है।

उस भीड़ के बीच से मुख पर अवगुंठन डाले, शृंगार और आभूषणों से सजी एक युवती चिता की ओर सम्हलते कदम से बढ़ती गयी। स्वर्णथाल में कपूर, अबीर, कुंकुम और पुष्प थे। यह सोचकर कि शायद श्रीमंत को अंतिम श्रद्धांजलि देना चाहती है लोगों ने हटकर मार्ग दे दिया। पास पहुँचते ही वह चिता में कूद गई। ब्राह्मण, सरदार, सामन्त 'रोको'-'रोको' कहते ही रह गए। तेज हवा में आग की लपटों ने खुद ही घेरा डाल दिया।

लोगों ने देखा, मस्तानी के चेहरे पर एक अपूर्व तेज था और बाजीराव का सर उसकी गोद में था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सती माता

त्रेता युग की बात है—

सीताहरण हो चुका था। भगवान राम वन-वन में उन्हें ढूँढ़ते फिर रहे थे। वृक्षों से लताओं से और पक्षियों से सीताजी के बारें मे विह्वल होकर पूछ रहे थे। संयोग से शिवजी और सती उधर से जा रहे थे। सती ने कहा—"प्रभो, आप तो बताते थे कि राम ईश्वर के अवतार हैं, फिर भला ये पत्नी मे वियोग में इस तरह विकल क्यों हैं ?" शिवजी की मनाही के बावजूद श्रीराम की परीक्षा लेने के लिए सीता का रूप धर के सती एक वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। राम ने उन्हें देखा, पूछा—"सती माता, आप अकेली कैसे बैठी हैं ! भगवान शिव कहाँ हैं ?" सती तो सकते में आ गयी। शिवजी के पास जाकर उन्होंने सारी बातें बतायीं।

शिवजी ने कहा—"सती, तुमसे बड़ा अपराध हो गया है। सीता मेरी माता के समान हैं, तुमने उसका रूप धर लिया। अब मैं तुम्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकूँगा।"

बहुत पश्चात्ताप और विनय करने पर उन्होंने बताया कि "तुम्हें यह शरीर त्याग कर नया जन्म लेना पड़ेगा। उस समय तुम्हारा नाम पार्वती होगा। फिर से मैं तुम्हें पत्नी के रूप में ग्रहण करूँगा।"

वे कैलास पर रहने लगे थे। बहुत दिनों बाद एक दिन सूचना मिली कि सती का पिता दक्ष प्रजापति कनखल में बहुत बडा यज्ञ कर रहा है। सब देवताओं को निमंत्रण दिया गया, परंतु शिवजी और संती को नहीं। बहुत दिनों से सती पिता के घर नहीं गयी थीं। उसका मन माता-पिता से मिलने का हो रहा था। यज्ञ के अवसर पर स्वजन-मित्र तथा सगे-संबंधी भी आयेंगे। उसने पति से कनखल जाने की आज्ञा माँगी।

शिवजी ने कहा—"बिना बुलाए जाने में हमेशा अपमान सहना पड़ता है। संबंध बराबरी का निभता है, हम बल्कलधारी गृहस्थ हैं, जबकि वे राजा हैं।"

सती ने इस बार फिर जिद्द की और शिवजी को मंजूरी देनी पड़ी। उन्हें अशुभ का आभास तो था ही, साथ में अपने गणों को भेज दिया। जब सती पितृगृह में पहुँची तो दक्ष ने न तो कुंशल-क्षेम पूछा और न आवभगत ही की।

यज्ञ की तैयारी बड़े रूप में थीं, देश-देशांतर के लोग आये हुए थे। दूसरे सब देवताओं का यज्ञ-भाग निकाला गया, परंतु देवाधिदेव शिव का नाम बाद दे दिया गया।

जब यज्ञ के पुरोहित ने याद दिलायी तो दक्ष ने उनके लिए बहुत-सी अपमानजनक बातें कहीं। सती वहीं पर मौजूद थीं। पति के अपमान से क्षुब्ध होकर वे प्रज्ज्वलित अग्नि में कूद पडीं। शिवजी के गणों ने यज्ञ का विध्वंस करके दक्ष का वध कर दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कैलास से आकर शिवजी ने यज्ञ-कुण्ड से सती के आधे जले मृत देह को निकाला। विक्षिप्त अवस्था में कंधे पर लेकर देश-देशांतर घूमने लगे। सृष्टि के जन्म-मरण के नियमों में व्यवधान आ गया। विष्णु की माया से सती के देह के अंग विभिन्न स्थानों पर गिरते गए। अंत में शिवजी का मोह भग हुआ और वे फिर कैलास पर जाकर तपस्या करने लगे।

कलियुग में ऐतिहासिक तौर पर पहली सती राणक देवी ११वीं शताब्दी में जूनागढ़ में हुई थी।

उस समय गुर्जर-नरेश सिद्धराज जयसिंह का राज्य था। जूनागढ़ का राजा खेंगार उसके साम्राज्य में एक सामन्त था। वह अपने समय का अद्भुत वीर था। उसकी रानी थी राणक देवी, जो अपने सौंदर्य और शील के लिए देशभर में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने आते थे।

जयसिंह से यह सहन न हुआ। मंत्रियों, सभासदों और सेनाध्यक्षों के विरोध करने पर भी उन्होंने एक बड़ी सेना लेकर जूनागढ़ के किले को घेर लिया। बहुत दिनों तक घेरा डालने के बाद भी जब सफलता न मिली और उनके सैनिक थकने लगे तब वहाँ के दुर्गरक्षक को मिलाकर किले पर विजय प्राप्त कर ली। राजा खेंगार दूसरे साथियों के साथ वीरता से जूझता हुआ मारा गया। इधर जब जयसिंह राणक देवी से मिलने के लिए आतुर होकर किले में पहुँचे तो वहाँ महल के एक कोने में उन्हें सती के जले हुए शरीर की राख-मात्र ही मिली। पैरों में महावर लगा कर और सोलहों शृंगार करके सती अपने पति के सिर को गोद में लेकर भस्म हो गई थीं। आज तक हजारों-लाखों सधवाएँ और कुमारी कन्याएँ उसके पदचिह्न को पूजती हैं। मैंने जूनागढ़ में राणक देवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज भी गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान में उसके नाम के ही गीत गाये जाते हैं।

सती ने अंतिम समय में जयसिंह को शाप दिया था कि उसका वंश नहीं चलेगा, उसे कोई पानी देने वाला नहीं रहेगा। इतिहास साक्षी है कि परम प्रतापी जयसिंहदेव का न तो वंश चला, न साम्राज्य ही रहा। इसके बाद ७०० वर्षों तक बहुत-सी पवित्र गाथाएं सती माताओं की मिलती हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हृदय परिवर्तन

सन् १८५७ की बात है, जयरामबाटी के रामचन्द्र मुकर्जी की सुपुत्री शारदा का विवाह केवल ५ वर्ष की अवस्था में पास के गाँव कामारपुकुर के एक २३ वर्ष के युवक गदाधर के साथ हुआ। उन दिनों कुलीन ब्राह्मणों में इस प्रकार के बेमेल विवाह आम तौर पर होते थे।

संबंधी दोनों गरीब थे, इसलिए विवाह में खास धूम-धाम नहीं हुई, फिर भी गदाधर की माता चंद्रादेवी और बड़े भाई रामकुमार ने थोड़ा-बहुत कर्ज लेकर सारे गाँव के लोगों को बहूभात में निमंत्रित किया। बालिका बहू थोड़े दिन ससुराल रहकर वापस पीहर चली आयी।

उधर गदाधर कामारपुकुर से कलकत्ते चला आया। वहाँ रानी रासमणी के दक्षिणेश्वर के काली मंदिर का वह पुजारी हो गया।

१७ वर्ष का लंबा समय बीत गया। अब बालिका शारदा २२ वर्ष की पूर्ण यौवना सुन्दरी हो गयी थी। इस बीच में कई बार सास के पास कामारपुकुर रह आयी, दो बार थोड़े दिनों के लिए पति के पास दक्षिणेश्वर भी हो आयी थी, परंतु अधिकांशतः जयरामबाटी में ही रही। गदाधर अब रामकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

इधर कलकत्ते में रामकृष्ण को काली की पूजा करते समय समाधि आने लगी। कभी-कभी वे ज़ोर-ज़ोर से हँसने, रोने और नाचने लग जाते।

यह खबर बढ़-चढ़ कर जयरामबाटी पहुँची। गँवई-गाँव के लोगों को एक दूसरे की चर्चा करने में बड़ा रस मिलता है। गाँव की औरतें शारदा की माँ के पास आकर कहतीं—"शारदा बेटी को परमेश्वर ने इतना सारा रूप और गुण दिया, परन्तु दुर्भाग्य से पति पगला मिला। बहू, हमने तो विवाह के समय भी कुछ ऐसा ही सुना था, परन्तु तुम बुरा न मान जाओ इसलिए चुप रहीं।"

शारदा मन में जानती थी कि उसका पति पागल नहीं, बल्कि एक पहुँचा हुआ संत है, परन्तु बहस में न पड़कर मन में दुःखी होकर रह जाती। शोक और दुःख से वह बीमार रहने लगी।

एक दिन एक यात्री-दल गंगा-स्नान के लिए कलकत्ते जा रहा था। शारदा ने अपने माता-पिता से अनुनय-विनय करके उनके साथ दक्षिणेश्वर जाने की तैयारी कर ली।

६० मील के कीचड़ और काँटों से भरे रास्ते की पैदल कठिन यात्रा। गाँव से २० मील की दूरी पर तेलोभेलो नामक एक जंगल था, जहाँ एक सेर अन्न या एक कपड़े के लिए बाग्दी डाकू मनुष्य की जान ले लेते थे, परंतु इन सब बातों की उसने कुछ भी परवाह नहीं की।

शाम होने के पहले वे तारकेश्वर पहुँच जाना चाहते थे। रास्ते में ही वह जंगल था, इस-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिए जल्दी-जल्दी चल रहे थे। शारदा बीमारी से उठी थी, कमजोर थी, इसलिए उनका साथ नहीं दे पा रही थी। दुर्भाग्य से पैर में मोच भी आ गई।

रात होने में केवल दो घड़ी बाकी थी और अभी ८-१० मील का रास्ता तय करना था। शारदा ने कहा—"मेरे लिए आप सब अपनी जान जोखिम में न डालें। आप तारकेश्वर के मंदिर में जाकर ठहरें, मैं धीरे-धीरे पहुँच जाऊँगी।"

थोड़ी-सी ऊहापोह के बाद डाकुओं के डर के कारण वे उस घनघोर जंगल में उसे अकेली छोड़कर चले गये।

जब वह तेलोभेलो वन में पहूँची तो रात हो गयी थी। घनघोर वर्षा होने लगी। एक वृक्ष के नीचे बैठी वह दुःखी होकर सोचने लगी कि इस जीवन में अब शायद ही दक्षिणेश्वर पहुँचकर पति के दर्शन कर पाऊँगी।

इतने में तीन-चार डाकुओं ने आकर उसे घेर लिया। कड़कती आवाज में उन्होंने पूछा—"तुम्हारे साथ वाले कहाँ गये?"

उसने सारी बातें सच-सच बता दीं और अपने पास में जो थोड़ा-बहुत कपड़ा-पैसा था वह उनके सामने रख दिया।

इस बीच डाकुओं ने मशाल जला ली थी। देखा एक अत्यंत रूपसी युवती सर्दी अथवा भय से काँप रही है।

उनके सरदार ने पूछा—"तुम कौन हो, कहाँ से आयी हो और कहाँ जा रही हो?"

युवती इस बीच आश्वस्त हो गई और न जाने क्यों उसका डर भी कम हो गया। हँसती हुई बड़े मधुर स्वर में वह बोली—"पिताजी, क्या आपने मुझे पहचाना नहीं? मैं आपकी बेटी शारदा हूँ, जमाई दक्षिणेश्वर के काली-मंदिर में पुजारी हैं। उनके पास जा रही हूँ।

अचानक डाकू सरदार के चेहरे का भाव बदल गया, कहा—"बेटी, शायद तुम बीमार और थकी हुई हो। पहले मेरे साथ घर चलो, कपड़ा बदलकर थोड़ा आराम कर लो।"

घर आकर पत्नी से कहने लगा—"ईश्वर ने हमें आज तक संतान नहीं दी, पर आज अपने आप अन्नपूर्णा-सी सुन्दर बेटी भेज दी है। थकी-हारी है, जल्दी से इसे सूखे कपड़े पहिनाकर इसके भोजन की व्यवस्था करो। बाग्दी पत्नी कहने लगी—"बेटी, हम लोग नीच जाति के हैं, शायद तुम हमारे हाथ का बना खाना खाओगी नहीं। मैं पास के गाँव से ब्राह्मणी दादी को तुम्हारे भोजन बनाने के लिए बुला लाती हूँ।"

"माँ, तुम्हारे जमाई कैवर्त (एक शूद्र ज़ाति) रानी के मंदिर के पुजारी हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर के घर में सब बराबर हैं। फिर मैं तो तुम्हारी बेटी हूँ तब भला मुझे क्या परहेज हो सकता है?"

इस बीच में पास-पड़ोस के ५-६ स्त्री पुरुष आ गए थे। वैसे वे सब खूँखार डाकू थे, परंतु वे आज अपने सरदार की दत्तक पुत्री की सेवा में स्नेह और प्यार से लगे हुए थे।

खा-पीकर थोड़ा आराम करने के बाद शारदा ने कहा—"बाबा, अगर मैं यात्रीदल के साथ कलकत्ते नहीं पहुँचूँगी तो आपके जमाई को बहुत चिंता हो जायगी, इसलिए आप मुझे अभी तारकेश्वर पहुँचा दें। मैं आपको वचन देती हूँ कि आते समय आपके पास ठहरकर फिर गाँव जाऊँगी।"

चार मजबूत तेज चलने वाले कहारों की पालकी मँगाई गई। विदा के समय बेटी को उन गरीबों के पास उपहार देने को तो क्या था, फिर भी थोड़ी-सी हरी मटर, चिड़वा और बतासे सगुन के तौर पर साथ में दिये। रक्षा के लिए स्वयं सरदार एवं दो साथी पालकी के साथ चले।

मुँह अँधेरे वे तारकेश्वर के पास पहुँच गये। सरदार कहने लगा—"बेटी, अब तुम्हें मंदिर तक अकेली जाना पड़ेगा। मेरे जिंदा या मुर्दा पकडने पर सरकार ने पाँच सौ रुपये इनाम रख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छोड़ा है ।"

विदा के समय वह दुर्दांत बाग्दी डाकू बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोते हुए कहने लगा—"भगवान ने हमारे पापों को क्षमा करके ढलती उम्र में तुम सरीखी बेटी और पुण्यात्मा जमाई दे दिया है । अब हम चाहे भूखे मर जायँ पर न तो किसी को सतायेंगें, न डाका डालेंगे ।

शारदा जब तारकेश्वर के मंदिर में पहुँची तब साथ के लोग जाने की तैयारी कर रहे थे । उन्हें विश्वास ही नहीं था कि वह सकुशल वापस आ जायेगी । अतः उसे देखकर सब आश्चर्यचकित हो गए । वह यह नहीं समझ सके कि तेलोभेलो के दुर्दांत डाकुओं ने उसे गहने-कपड़े सहित राजी-खुशी कैसे छोड़ दिया ।

दक्षिणेश्वर आकर शारदा ने देखा कि उसके पति को इस बीच साधारण पुजारी की जगह परमहंस रामकृष्ण माना जाने लगा है । कलकत्ते के और बाहर से भी प्रति दिन हजारों व्यक्ति दर्शन और प्रवचन सुनने के लिए उन्हें घेरे रहते हैं । वह केवल २२ वर्ष की युवती थी, परंतु वह भी सबके निकट शारदा माँ हो गयी ।

जब दक्षिणश्वर से वापस वह जयरामबाटी के लिए रवाना हुई तब अपने वायदे के अनुसार वह तेलोभेलो में ठहरी । उसने देखा वहाँ का वातावरण बदल गया है, डाका डालना छोड़कर लोग थोड़ी-बहुत खेती-बारी करने लगे हैं या छोटा-मोटा धंधा कर रहे हैं । अपने साथ में वह परमहंस की एक तस्वीर ले आयी थी । दूसरे दिन बड़े धूम-धाम से उसे वहाँ काली-मंदिर में स्थापित किया गया ।

आज वहाँ जंगल साफ होकर खेती होने लगी है । बाग्दी डाकुओं का काली-मंदिर उस स्थान पर आज भी है और परमहंस श्री रामकृष्ण की वह तस्वीर वहाँ पर स्थापित है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चौधरीजी का मायरा

हिंदुओं में बहन के लड़के या लड़की के विवाह पर भाई भात (मायरा) लेकर बहन के यहाँ जाया जाता है। यह प्रथा हजारों वर्षों से चली आ रही है। अगर भाई नहीं होता तो पीहर के पड़ोसी गाँव के किसी व्यक्ति अथवा ब्राह्मण द्वारा चुनरी का नेग किया जाता है। भात के नेगचार बिना विवाह के आगे के कार्यक्रम रुके रहते हैं।

तेरहवीं शताब्दी की घटना है। जूनागढ़ के पास अंजार नाम का एक कस्बा है। यहाँ नरसी मेहता की पुत्री नान्हीबाई की ससुराल थी। नान्हीबाई की पुत्री का विवाह था। परंपरा के अनुसार जूनागढ़ से मेहताजी भात लेकर आने वाले थे। परंतु इसके लिए उनके पास साधन नहीं थे। भगवद्भक्त थे ही, जो कुछ था भी साधु-संतों की सेवा-आवभगत में खर्च कर दिया और उन्हीं की मंडली में रहकर हरिभजन में मग्न रहते। परिवार के लोगों तथा मित्रों को अंजार साथ चलने के लिए उन्होंने आमंत्रित किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता ? आखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी बैलगाड़ी पर अंजार की ओर चल पड़े। साथ में साधु-मंडली भी हरिकीर्तन करती जा रही थी।

उधर नान्हीबाई के ससुराल वाले मेहताजी के स्वभाव से परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। बाई को ताने पर ताने देते कि मेहताजी बहुत बड़ा भात लेकर आ रहे हैं। बाई के पास चुपचाप सहने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। वह उदास रहने लगी और पिता के आने की राह देखती रहती।

इसी बीच एक दिन लोगों ने जूनागढ़ की तरफ से गाजे-बाजे और रथों की घंटियों की आवाज आती सुनी। उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोड़ी देर में सचमुच ही बेशकीमती साजोसामान लिये मेहताजी के मुनीम आ पहुँचे। अपना परिचय साँवरजी के नाम से दिया और बताया कि मेहताजी की ओर से भात का सामान लेकर आये हैं। बाई के लिए हीरे-मोती जड़े गहने, चुनरी, सास-ननद के लिए कीमती वस्त्र; यहाँ तक कि नौकर-चाकर के लिए सोने की कंठी और कड़े।

ऐसे अवसरों पर ससुरालवाले तरह-तरह की फरमायश में पीछे नहीं रहते। अनेक प्रकार की कीमती चीजों की माँग पेश कर नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं। परंतु मुनीमजी तो मानो सारी परिस्थितियों के लिए पहले ही से तैयारी के साथ आए थे। सबकी फरमायशें पूरी कर दीं और वापस चले गए।

इसके बाद मेहताजी इकतारे पर राग केदारा में हरिभजन करते हुए बाई के ससुराल पहुँचे, साथ में साधुमंडली भी थी। समधियाने वालों ने ससम्मान उनका स्वागत किया। बताया कि मुनीमजी के हाथों आपने जो सामान भेजे थे, वे मिल गए। पर वे चले भी गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कह रहे थे, जरूरी काम से वापस जाना है।

दूसरी घटना है सोलहवीं शताब्दी की। नारनौल के एक सेठ की विधवा के पुत्र की सगाई लड़कीवाले बहाना बनाकर छोड़ना चाहते थे। सेठ अपने जमाने में काफी धनी और खुशहाल थे। मृत्यु के बाद उनका परिवार गरीब हो गया था। फिर भी संबंध और व्यवहार पहले जैसा अब भी था।

संयोग से सेठानी के मुँहबोले भाई आगरा से लाहौर जाते हुए उनके यहाँ ठहरे। वे बादशाह अकबर के मालमंत्री थे।

बहन ने भाई की आवभगत की। टोडरमल ने कन्यापक्षवालों की सगाई तोड़ने की बात सुनी तो कहा—"चिन्ता न करो बहन, सारी तैयारी रखना। विवाह के अवसर पर भात लेकर मैं आऊँगा।"

वे आये और ऐसा भात लाये कि ऐतिहासिक घटना हो गयी। आज भी वधू की अगवानी के समय 'जीत्योजी टोडरमल वीर' का गीत इस मांगलिक अवसर पर गया जाता है।

तीसरी घटना है, १६वीं शताब्दी के पाँचवें दशक की। दिल्ली के उत्तर में मेरठ, हापुड, मुक्तेशवर, सहारनपुर कस्बों में उन दिनों गुज्जर पठानों की जागीरदारियाँ थीं। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसूली का अधिकार अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी को हो गया था; फिर भी इन जागीरदारों में से बहुतों के संबंध रसूक, कमोवेश दिल्ली के बादशाह से कायम थे। सैकड़ों साल से चले आए आपसी ताल्लुकात बाइज़्ज़त बरक़रार थे।

अंग्रेज सिक्खों से युद्ध में उलझे थे। मुगल-शासन पहले से ही शिथिल था। हुकूमत चलती थी कम्पनी सरकार की, मगर युद्ध के कारण वे शासन को सुव्यवस्थित नहीं कर पा रहे थे। इस वजह से इन जिलों के ताल्लुक और जागीरों में चोरी, डकैती और राहजनी का जोर था। यहाँ तक कि कुछ बड़े जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से डकैतियाँ डलवाते या इन्हें संरक्षण देकर लूट के माल में हिस्सा लिया करते।

मुक्तेश्वर के जागीरदार थे गुज्जर चौधरी रूपरामजी। हालाँकि उनकी सालाना आमदनी डेढ़-दो लाख ही थी; परंतु सस्ती का जमाना था; रुपये का ढाई-तीन मन गल्ला मिलता था। दस सेर तेल और तीन सेर घी। अच्छी नस्ल के घोड़े की कीमत थी, बीस-पचीस रुपये। चौधरी का रोबदाब था, ठाठ-बाट से रहते थे। दरवाज़े पर दो हाथी झूमते, अस्तबल में २५ घोड़े, २० रथ और पछाहीं बैलों की कई जोडियाँ। सैकड़ों की तायदाद में निज़ी सिपाही भी थे।

उनकी जागीर की ख़िराज़ पिछले पचास वर्षों से शाही हुक्मनामे के मुताबिक आला शाहजादे के पान-खर्च के लिए लगी हुई थी। अब हालाँकि वे बूढ़े होकर बादशाह हो गए थे और कम्पनी के साथ हुई शर्तों के मुताबिक ख़िराज़ का हक़ उनका न रहा, वे महज पेंशन के हक़दार रहे; फिर भी चौधरी रूपाराम प्रतिवर्ष ख़िराज़ की रकम लेकर गाजे-बाजे के साथ मुक्तेश्वर से बादशाह सलामत की खिदमत में नज़र करने खुद अपने साथ ले जाते। साथ में हाथी, घोड़े, रथ, तम्बू-कनात और हथियारबंद सिपाही रहते। चालीस मील की सफ़र में तीन दिन लग जाते। धर्मशालाएँ और सरायें कम थीं। जहाँ भी ठहरते, तम्बू और छोलदारियाँ लग जातीं।

हर साल की तरह वे दिल्ली जा रहे थे। फसल अच्छी हुई थी। किसान और रिआया सुखी थी। चौधरी पूरे हुजूम के साथ दिल्ली के लिए रवाना हुए।

दूसरे दिन का मुकाम शाहदरा के लिए तय था। तीसरे दिन की सुबह तक दिल्ली पहुँचने की खबर भेज दी गयी थी।

संयोग की बात है। जिस दिन चौधरीजी का पड़ाव शाहदरा में था, उसी दिन वहाँ के छोटू मेहतर की पुत्री की शादी भी थी। हापुड़ के मतई आनेवाले थे। बिना भात के आगे के नेगचार रुके हुए थे। जनवासे में मारे बाराती बुलावे की बाट जोह रहे थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाम का झुटपुटा हो गया। मतई अब तक आये नहीं। छोटू और उसकी पत्नी की चिंता बढ़ती जा रही थी। अगर भात नहीं आया तो फिर क्या हाल होगा। इज्जत मिट्टी में मिल जायगी। क्या मुँह दिखायेंगे ? इसी उधेड़बुन में थे कि हापुड़ की ओर से बाजे की आवाज आती सी सुनाई पड़ी। छोटू की जान में जान आयी। जल्दी-जल्दी तैयारी कर वे सब अगवानी के लिए आगे बढ़े। उतावली में वे एक-दूसरे को पहिचान न सके। छोटू उन्हें सीधा अपने घर तक ले आया।

चौधरी साहब ने पूछा, "हमारे हरकारे और तम्बू किधर हैं ? तुम हमें कहाँ ले आये ?" अब तो छोटू को काटो तो खून नहीं। उसके होश गुम हो गये। डर के मारे काँपने लगा और ज़मीन पर लोटकर कहने लगा, "बापजी, गज़ब हो गया। मेरी लड़की की शादी है, बारात आ चुकी है; हापुड़ से मतई आनेवाले थे। मैंने समझा......... परेशानी से मेरा सिर फिरा था। ग़लती से आपको पहचान न सका। उन्हें समझकर आपको यहाँ ले आया। आपकी परजा हूँ, मालिक ! अनजान हो गया, माफ करें।" उसकी घिग्घी बँधी थी।

चौधरी को सफ़र की थकान थी। एक बार तो गुस्सा आया, त्यौरियाँ चढ आयीं। फिर भी चुप रहे, सोचने लगे—बेचारे का क्या कसूर। भात का समय बीत रहा था, बारात शायद नाराज होकर लौट जाती। ऐसे में हर बेटी का बाप होश खो देगा। उन्होंने यह कहते हुए अपनी खामोशी तोड़ी—"छोटू, हमने सुना कि रास्ते में कंज़रों ने हापुड़ से आये कुछ लोगों को लूटा है, हो सकता है, कहीं मतई और उनके आदमियों पर मुसीबत पड़ी हो। खैर तुम फ़िक्र मत करो। तुम्हारी बेटी, सो मेरी बेटी। सारे नेगचार की तैयारी करो। जनवासे में खबर भेज दो कि मतई भात ले आये, वे बारात लेकर आ जायें।"

बादशाह की नज़र के लिए लायी हुई सारी क़ीमती चीज़ें भात में दे दी गयीं। छोटू की पत्नी को जब चौधरीजी चुनरी ओढ़ाने लगे तो उस ग़रीब की आँखों से आँसू उमड़ पड़े।

छोटू की बेटी के हाथ में पचीस अशर्फ़ियाँ रखते हुए चौधरीजी ने सुखी-सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया। दूल्हे को सोने के कड़े, पाँचों कपड़े और एक सोरठी घोड़ी दी। वर के पिता को मिरजई और चार अशर्फ़ियाँ। प्रत्येक बाराती को चाँदी की एक-एक कटोरी। सारे कस्बे में चौधरी के भात की चर्चा बढ़-चढ़कर फैल गई। कोई निंदा करता तो कोई प्रशंसा।

दूसरे दिन चौधरी दिल्ली पहुँचे। बादशाह सलामत की तरफ़ से सारा इंतजाम था। अग़वानी के लिए शहर का नाज़िम खुद हाज़िर था।

दोपहर के वक्त जब दीवान-ए-खास में उनके नाम की तलबी हुई तो खिराज की रकम की बाबत चौधरीजी ने अर्ज किया कि "हज़ूर, हमेशा की तरह गाँव से पूरी रक़म लेंकर ही चला, मगर सफ़र में कुछ ऐसे हादसों का इत्तफ़ाक बना दिया कि पास में कुछ भी न बचा। खैर, हम कुछ दिन फिलहाल यहाँ रुकेंगे और इस दरम्यान अपने इलाके से रक़म मँगाकर आपकी खिदमत में पेश करने का फ़ख्र हासिल करेंगे।"

बादशाह ने मुस्कुरा कर कहा कि "इलाके के शातिर चोर-डाकू आपका रुतबा मानते हैं, लिहाज़ा ताज्जुब है डकैती का यह वाकया आपके साथ कैसे मुमकिन हुआ।"

चौधरीजी ने सारी घटना सच-सच बता दी। बादशाह खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अंतिम मुग़ल सम्राट बहादुरशाह केवल नाममात्र के बादशाह रह गये थे; किंतु वे अपने बाप-दादों से कहीं ज्यादा दरियादिल थे। स्वयं भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—"चौधरी रूपराम, आपने जो कुछ भी किया उससे मा-बदौलत बेहद खुश हैं। हम नाजिम को हुक्म फरमाते हैं कि खिराज की पूरी रकम वसूली के बतौर ख़जाने की बहियों में जमा लिख दी जाय। छोटू मेहतर की बेटी को दिया गया भात हमारी तरफ़ से समझा जाय और मतई—हम और तुम दोनों।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मकथा

घणी-घणी खम्मा, अन्नदाता !

गणतन्त्र-दिवस को होनेवाली परेड सचमुच अनोखी होती है। अपने देश की स्वतंत्रता और शक्ति के प्रति वह मन में गर्व और अभिमान भर देती है। हम संसद-सदस्य नई दिल्ली के राजपथ में सदस्यों के कक्ष में बैठे प्रदर्शन देख रहे थे। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और प्रधान मंत्री जवाहर लालजी के ओज और तेज के संयोग से समूचा वातावरण उल्लासमय हो रहा था।

मेरे पास बैठे थे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, कविवर 'दिनकर' और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्रीगंगाशरणसिंह। याद नहीं कि इनमें से किसने कहा, "हमारे लिए २६ जनवरी की बड़ी महिमा है।"

एकाएक मुझे ध्यान आ गया—आज मेरा जन्म-दिन है। मैं भी २६ जनवरी को पैदा हुआ था। जी में आया कि सबसे कहूँ, पर संकोच हुआ। इतने महान दिवस के साथ अपने को सम्बन्धित करूँ तो लोग क्या कहेंगें ? फिर भी मुझे अपना बचपन, अपने सामने दिखाई पड़ा...

घर वालों के लिए इस तारीख का बड़ा महत्व था। आज से ६० साल पहले २६ जनवरी, १६१० को हमारे घर में बड़ी चहल-पहल थी। श्री गिरधारीलाल के पुत्र श्री शिवनारायण की पत्नी सूवादेवी ने पुत्र को जन्म दिया था। मंगलगान के बीच संसार की चिंता और कष्ट की कल्पना करता हुआ, चीखता-चिल्लाता बच्चा, संसार में आया—मैंने आँखें खोलीं।

उस दिन कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि २६ जनवरी हमारे देश का सबसे बड़ा दिवस होगा—राष्ट्रीय-दिवस। सदियों से सोई हुई भारत की आत्मा ने १५ अगस्त को करवट ली थी। २६ जनवरी को वह जाग कर पूरी तरह चैतन्य हो गई। गणतन्त्र की यह अमर तिथि अमिट है, महान है।

हमारे देश का ही नहीं, यह दिन आस्ट्रेलिया का भी राष्ट्रीय पर्व है। इसी दिन ईसाई कैथोलिक संप्रदाय के बड़े पादरी साधु पोलिकार्प शहीद हुए थे।

मैं कैसे कहूँ कि मुझे ऐसे पवित्र दिन जन्म लेने का गौरव प्राप्त हुआ है। ६० साल पहले किसने इस महिमा की कल्पना की थी ? फिर भी संसार के सब महान कार्य किसी एक ही दिन तो होते नहीं; हर २४ घण्टे में कितने बड़े और अनगिनत छोटे काम होते हैं। प्रति पल इतनी घटनाएँ घट रही हैं कि हर दिन की मर्यादा बराबर है। हर एक मिनट में ६० प्राणी संसार से चल बसते हैं और ६० नये बच्चे पैदा हो जाते हैं। सुख-दुःख से लिपटा प्रत्येक क्षण भिन्न परिस्थिति में भिन्न महत्त्व रखता है। इसलिए २६ जनवरी की महान घटनाओं के बीच एक छोटी-सी घटना थी— मेरा जन्म।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को, अपने कार्य को, संसार में सबसे अधिक महत्त्व देता है। शायद मेरा मोह ही मुझे २६ जनवरी को अनूठापन देने के लिए आग्रह कर रहा है। संसार की वर्तमान साढ़े-तीन अरब की आबादी में मैं एक छोटा-सा व्यक्ति हूँ; मेरा एक छोटा-सा कस्बा है, पर मेरा अहंकार मुझे अपने गाँव के ही विषय में लिखने के लिए प्रेरित कर रहा है। शायद मैं अपने विषय में लिखकर अपने अहंभाव की पुष्टि करना चाहता हूँ लेकिन किसी भी व्यक्ति का जीवन निस्सार नहीं है। धूप-छाँव में जीवन की पहेलियाँ चलती रहती हैं। इनसे प्रेरणा न सही, सहानुभूति तो मिलेगी ही। मेरे साधारण-से जीवन के पिछले पृष्ठों में एक ऐसा इतिहास लिपटा पड़ा है, जो सुनने-समझनेवालों से कुछ कह सकेगा। इन उलझी हुई तस्वीरों में कहीं-कहीं प्रकाश भी है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं जानता हूँ कि मेरी कहानी लाखों व्यक्तियों के संघर्षमय जीवन की रागिनी में एक छोटी-सी तान बन कर लय में मिल जाएगी; फिर भी हो सकता है इन पंक्तियों में किसी को कहीं कोई उपयोगी बात मिल जाए। मैं एक बार अपने से मिलना चाहता हूँ, अपने बचपन के साथ खेलना चाहता हूँ, जवानी के साथ मचलना चाहता हूँ, बुढ़ापे को चेतावनी देना चाहता हूँ :

आँखें खोलीं बीकानेर-राज्य के एक कस्बे सरदार शहर में। पुराने राजपूताना के देशी राज्यों में क्षेत्रफल के हिसाब से बीकानेर का दूसरा स्थान था। रियासत की आबादी उस समय सात-आठ लाख के आस पास थी। अधिकांश भाग मरुभूमि था। राज्य की गद्दी पर एक प्रतिभाशाली नरेश बैठे थे—महाराज गंगासिंह। मेरे जन्म के समय उनकी जवानी अपने पहले चरण में थी, पर प्रतिभा की आभा छिटकने लगी थी। उन्होंने मेरे जन्म के इस बारह वर्ष बाद ही 'गंगा नहर' की रचना से उस मरुभूमि के उत्तरी हिस्से की काया पलट दी थी। लगभग पचास वर्ष तक राज्य को हर प्रकार से सम्पन्न करने का महाराज ने निरन्तर प्रयत्न किया और फरवरी १९४३ में प्रजा को शोकाकुल छोड़ कर वह ससार से चले गए।

वैसे राजपूताना की रियासतों में प्रजा की पीड़ा की दर्दनाक कहानियाँ हमने सुनी थीं। आसपास के राज्यों में आए दिन डाके पड़ते थे। लेकिन गंगासिंह का कुछ ऐसा आतंक था कि उनके राज्य की सीमा में शायद ही कभी लूटखसोट हुई हो। हालाँकि १९१९-२० में गांधीजी का स्वराज्य आन्दोलन शुरू हो गया था, फिर भी हममें से अधिकांश राजा के भक्त थे। बचपन से ही मैंने लोगों के कण्ठ से यह आवाज निकली सूनी है, 'घणी-घणी-खम्मा अन्नदाता !'

बीकानेर की रियासत को जन्म लिए सन् १९७० में पूरे ५०५ वर्ष हुए। सन् १४५६ में जोधपुर-नरेश राव जोधाजी के पुत्र राव बीकाजी ने इस राज्य की स्थापना की थी, पर वह 'राजा' नहीं थे, एक स्वतन्त्र सरदार थे। 'राजा' की उपाधि इस घराने के छोटे शासक रायसिंह जी को सम्राट अकबर से प्राप्त हुई थी। उन्होंने पंजाब के बागियों को अकबरी झंडे के नीचे सिर झुकाने को मजबूर किया था। राजा रायसिंह अकबर के यशस्वी सेना-पतियों में से थे।

अपने शासन-काल में रायसिंह ने बीकानेर नगर की उन्नति की। प्रसिद्ध पुराना किला उन्हीं का बनवाया हुआ है। यह सन् १५९३ में बन कर तैयार हुआ था।

इस कुल को 'महाराजा' की उपाधि सम्राट औरंगजेब ने सन् १६८७ में प्रदान की थी। राजा अनूपसिंह ने औरंगजेब के राज्य को सुदृढ़ बनाने में बड़ा पराक्रम दिखाया था। इसके अलावा बीकानेर के राजघराने की बहनें और बेटियाँ भी, उस समय तक मुगल-हरम की शोभा बढ़ाने लगी थीं।

इस प्रकार यह राज्य दिल्ली-दरबार में महत्ता प्राप्त करता गया। सन् १८५७ में भारतीय क्रान्ति को कुचलने में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सैनिक सहायता के एवज में पंजाब के ४१ गाँव इस राज्य को दे दिए गए।

प्रथम महायुद्ध में महाराजा गंगासिंह ऊँटों की अपनी पलटन लेकर खुद अरब तक गए। उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर ब्रिटिश-सरकार ने भारत की ओर से उन्हें पेरिस के सन्धि-सम्मेलन में निमन्त्रित किया। सन् १९१९ के वार्साई ऐतिहासिक सन्धि-पत्र पर गंगासिंह के भी हस्ताक्षर हैं। इस सम्मेलन में गंगासिंह जी के भाषण और उनकी प्रतिभा की सराहना सभी लोगों ने की थी। वार्साई-सन्धि की पक्षपातपूर्ण शर्तों ने द्वितीय महायुद्ध की भूमिका बना दी।

ब्रिटिश शासन-काल में भारत की बड़ी रियासतों में बीकानेर का छठा स्थान था। सन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१९४९ में इसकी आबादी १३ लाख से ऊपर थी। देशी राज्यों के विलयन के बाद राजपूताना 'राजस्थान' हो गया। राजस्थान में २६ जिले हैं। सबसे बड़ा जिला जैसलमेर का है क्षेत्रफल ३८,४४० किलोमीटर; दूसरा नम्बर बाड़मेर का है क्षेत्रफल २७,३७० किलोमीटर और तीसरा है बीकानेर–क्षेत्रफल २७,११८ किलोमीटर।

जिस प्रकार गत ६० वर्षों में भारत का इतिहास बदल गया, भूगोल बदल गया, मन और भावना बदल गई, उसी प्रकार हमारा राजपूताना भी बदल गया है। राजसत्ता के स्थान पर अब प्रजातन्त्र है। यह कहना भी कुछ कठिन है कि जनता, वर्तमान परिवर्तन से अधिक सुखी व सम्पन्न है या अधिक संतुष्ट है।

एक बात जरूर स्पष्ट है, चाहे राजाओं के शासन-काल में जनता अधिक दबी हुई, पीड़ित या सन्तप्त रही हो, पर भारतीय परम्परा की यह विचित्र मर्यादा है कि अपने अधिकांश नरेशों के प्रति उसके मन में अब भी आदर है, प्रेम है।

विभाजन के पहले अखण्ड भारत के १८,०८,६८० वर्ग मील में से ७,१२,५०८ वर्ग मील क्षेत्र में देशी रियासतें फैली हुई थीं। समूचे देश की आबादी सन् १९४१ में ३४,२८,३७,८०० थी, जिसमें से ८,१३,१०,८४५ आबादी देशी रियासतों में रहती थी। इनमें कई तो बहुत छोटी रियासतें थीं। राजपूताना में एक रियासत केवल १९ वर्गमील क्षेत्र में थी; २१ नरेश राजपूत थे, दो जाट थे भरतपुर और धौलपुर के नरेश; दो मुसलमान थे–पालनपुर और टोंक के शासक। इन रियासतों की तीन-चौथाई आबादी, केवल खेती पर ही आश्रित थी।

विलयन के समय बीकानेर राज्य का वास्तविक क्षेत्रफल २३,३१७ वर्ग मील और आबादी १२,९२,९३८ थी; बीकानेर शहर की आबादी १,२७,२२६ थी। राज्य में कोयले की एक छोटी-सी खान थी और कुछ खानें थीं नमक की। उद्योग-धन्धों में कम्बल व दरी बनाना, ऊन और चमड़े का माल तैयार करना आदि मुख्य काम थे। दस्तकारी में सोने-चाँदी के आभूषण तथा लकड़ी के काम प्रसिद्ध थे जो अब भी हैं। बीकानेर की मिश्री, भुजिया और पापड़ भी भारत में प्रसिद्ध हैं।

बीकानेर ही नहीं, बल्कि सारा राजस्थान वीरभूमि है। युगों से इसकी वीरांगनाएँ अपने नवजात शिशुओं को वीरोचित मृत्यु का उपदेश देती आई हैं, विलासितापूर्ण जीवन को मातृभूमि के लिए कलंक की संज्ञा देती आई हैं। हमारे राजस्थानी घरों में माताएँ बच्चों को झूला झुलाती हुई गाती थीं :

इला न देणी आपणी रण खेतां भिड़ जाय,
पूत सिखावै पालणैं, मरण बड़ाई माय।

अर्थात्–'हे पुत्र, मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमि को दूसरों के हाथ में न जाने देना।' पालने में माता अपने पुत्र को यह सीख देती है।

माता अपने बच्चों से कहती है कि विपत्ति के समय 'हाय री, माया!' कहना कलंक है। मरते समय कभी माँ को याद न करना, इससे कुल को कलंक लगता है। मरना है तो हँसते-हँसते मरो, मरते समय दुर्बलता मत दिखाओ :

माणेरा मत रोय, मत कर राती आँखियाँ;
कुल में लागै खोय, मरतां माँ नह समरजे।

बालक भी अपनी माता से कहता है

सिंघु सचाणो सापुरुष, ऐ ल्होड़ा न कहाय;
बड़ा जिनावर मार कै, छिण में लेय उठाय।

अर्थात्–सिंह, बाज और वीर पुरुष कभी छोटे नहीं होते। बड़े-से-बड़े जानवर को मार कर वे क्षण भर में उसे उठा लाने की सामर्थ्य रखते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजा कुशलसिंह बीकानेर से पूछते है :

कुशलौ पूछै कोट नै, बिलखो किम बीकाण,
म्हा ऊभां तो गाल दै, भलै न ऊगै भाण।

अर्थात्–हे बीकानेर के गढ़, तू क्यों बिलख रहा है ? मेरे रहते तुझे कोई नष्ट कर दे तो फिर सूर्य उदय नहीं हो सकता ।

ऐसी वीरता की छाया में उस समय के राजपूत पले थे । उनमें से कई नरेश बड़े बहादुर होते थे । इसलिए वे अनायास ही सबकी श्रद्धा के पात्र बन जाते थे । उनकी पुरानी गौरवगाथा के कारण ही आज तक उनके वंशजों के प्रति लोगों में सहानुभूति है ।

मैं राजा गंगासिंह के जमाने में पैदा हुआ । बचपन से ही हमें राजभक्ति का वातावरण मिला था । जब कभी वे हमारे कस्बे में आते, प्रजा में उत्साह की लहर दौड़ जाती । आजकल की तरह मिलों के मजदूरों को छुट्टी देकर या स्कूल के बच्चों को इकट्ठा करके स्वागत का स्वाँग नहीं रचना पड़ता था । लोग खुद अपना घर-द्वार सजाते, सड़कों पर पानी का छिड़काव होता, टूटी-फूटी सड़कों में भी जान आ जाती ।

२१ तोपों की सलामी दी जाती । लोग, ताल की कोठी के चारों ओर उमड़ पड़ते । साहूकार, व्यापारी, जमींदार सभी जाकर 'नजर' करते । जो महाजन, परदेश से अच्छा धन कमा कर लाते वे राजा को चाँदी की चौकी और सोने की गिन्नियाँ भेंट करते । चाँदी की चौकी रुपयों से बनती– चौकोर और चौड़ी, जो दस हजार से लेकर बीस हजार रुपयों तक में बन कर तैयार होती ।

इसी चौकी पर राजा को बिठा कर उनका तिलक किया जाता है और 'नजर' पेश होती । चौकी राजा की हो जाती । राजा भी धनी महाजनों का उनके धन और नजराने के अनुरूप सम्मान करते । आज तो किसी को भी 'सेठ' कह सकते हैं और कोई भी पैरों में सोने के गहने पहन सकता है, पर पचास-साठ साल पहले, बीकानेर में 'सेठ' वही कहलाता जिसे राजा से यह खिताब मिलता था । सेठों को राज्य की ओर से जकात माफ कर दी जाती । मुफ्त में या नाम-मात्र पर बहुत-सी जमीन मिल जाती । अन्य राजकीय सुविधाएँ भी प्राप्त होतीं । सेठ सम्पतराम जी को राज्य की तरफ से ये मुरतब (सम्मान) मिले हुए थे ।

हम राजभक्त थे–यह तो लिख चुका हूँ, पर इतना और लिख दूँ कि गंगासिंहजी के जमाने में प्रजातन्त्र की लहर राजपूताना में भी फैल रही थी । जयपुर और जोधपुर में प्रजा-मण्डल जोर पकड़ रहा था, पर बीकानेर में राजा की सतर्कता से विशेष कुछ नहीं हो पाया । उन दिनों गाँधी-टोपी, राजद्रोह की गन्ध देती थी । गांधी-टोपी वालों का राज्य में प्रवेश करना भी कठिन था । राजसत्ता इतनी सतर्क थी कि गाँधीजी का नाम हमारे गाँवों में सन् १६१८-१६ तक पहुँच पाया था । लेकिन जो भी हो, उस महापुरुष का नाम हमारे कानों तक पहुँचने से रोकने की शक्ति राजदरबार में नहीं थीं ।

इस नाम के साथ चमत्कार भी जुड़े हुए थे । हमारे शहर के श्री नेमीचन्द आंचलिया बम्बई में रहते थे । उन्होंने गांधीजी को देखा था और यह बड़े सम्मान की बात थी । लोग उनसे बड़े आदर से गाँधीजी के बारे में पूछते । वह बड़े आत्मविश्वास के साथ कहते कि गाँधीजी के चेहरे के चारों ओर प्रकाश का देवसुलभ चक्र रहता है, उनके हाथ का पानी पीने से अनेक बीमारियाँ मिट जाती हैं ।

ऐसी चमत्कार की बातें हम बच्चों के कानों तक भी पहुँची–गाँधीजी के जेल के भीतर होते ही जेल का फाटक अपने आप खुल जाना, अंगरेज-पहरेदारों का सो जाना, गांधीजी को जेल देने वाले हाकिम की पत्नी और बच्चों की एक ही सप्ताह में मृत्यु हो जाना आदि अनेक बातें । उस महापुरुष के दर्शन, लगभग अट्ठाइस वर्ष के बाद, कलकत्ते के निकट सोदपुर खादी-आश्रम में हुए ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस जमाने में हमारे कस्बे में एक करोड़पति और बीस-पच्चीस लखपति थे। वैसे तीस-चालीस हजार वालों का भी सम्मान था। वे भी रोबदारी से रहते थे। ऐसे लोगों के विषय में, गाँवों में आपस में बातें भी होतीं। कहा जाता था 'फलां बड़ा हजारीखंगारी है।' वैसे रोबदाब तो हम भोले बालकों और सीधे-सादे देहातियों पर उन नवयुवकों का भी जम जाता, जो कलकत्ता, बम्बई से पैसा कमा कर गाँव आते। उनके अच्छे विदेशी कपड़े, चमकती घड़ी, विदेशी टार्च आदि हमारे आदर-भरे आश्चर्य व कुतूहल के विषय बन जाते।

देशी राज्यों के जमाने में पहले जो होना था, वह आज नहीं होता–ऐसा मैं नहीं कह सकता। उस समय कस्बे में सबसे अधिक तहसीलदार व थानेदार का रोबदाब रहता। वे ही सर्वेसर्वा थे। उनका बहुत आतंक था, पर उनसे बढ़ कर छुटभैए जमीदारों, ठाकुरों और सामन्तों से भय बना रहता था। ग्रामीणों से लेकर छोटे व्यापारी तक इनके सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं करते थे। उनकी उचित-अनुचित आज्ञा को चुपचाप मानना पड़ता था। जरा-सी आनाकानी करने पर कड़ा दण्ड मिलता था। किसी जमींदार के मरने पर उस गाँव के बड़े बूढ़ों को भी दाढ़ी-मूँछ साफ करानी पड़ती थी। किसी शादी-विवाह वाले घर के लोग अगर आनाकानी करते तो उनका जबरन मुंडन कर दिया जाता था। जमींदारों के गाँव में से लोग घोड़े या ऊँट पर चढ़कर नहीं जा सकते थे।

किसी की खड़ी फसल कटवा ली जाती, किसी की गाय-भैंस मँगवा ली जाती। बहू-बेटी को भी जबरन बुलवा लेने में उन्हें संकोच न होता। मुझे याद है, एक ठाकुर ने गाँव में एक दरोगा (गोला जाति) की नव विवाहिता पत्नी को बुलवा भेजा। उसने अपनी बहू की दुर्गति कराना अस्वीकार कर दिया। क्रुद्ध होकर ठाकुर ने दरोगा की आँखें निकलवा लीं। वह ठाकुर राजा का मुँह लगा मुसाहब था। राजा के पास फरियाद पहुँची, पर ठाकुर साहब का कुछ न बिगड़ा। इस घटना से उसका आतंक और भी बढ़ गया।

लेकिन कभी-कभी इन सामन्तों को 'काकी का जाया' भी मिल जाता, जो इनको अपनी हिकमत से परास्त कर देता। एक बार एक नए आए हुए तहसीलदार ने एक नाई को बेगार में हजामत बनाने के लिए बुलाया। उस्तरे को हाथ में लेते हुए नाई ने कहा'–"हुजूर थोड़ी राख मँगवा लीजिए।"

तहसीलदार ने आश्चर्य से पूछा, "क्यों राख का क्या होगा ?"

सरकार मेरा हाथ काँपता है। जहाँ दाढ़ी छिल कर खून निकलेगा, राख लगाता रहूँगा।" नाई ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहा।

घबराकर तहसीलदार ने अर्दली से उस निकम्मे नाई को निकाल बाहर करने का हुक्म दिया। कई दिनों तक गाँव में इस बात की बड़ी चर्चा रही।

महाराज गंगासिंह जहाँ जाते, मौके पर ही दो-चार मुकद्दमे निपटा देते। यदि उन्हें किसी अधिकारी या सामन्त-मुसाहब को निकालना होता तो पहले से ही गाँव के लोगों को कहला देते थे कि जब मैं आऊँ तब उनकी शिकायत करना। लोग ऐसा ही करते। महाराज उसे बुलाकर सबके सामने डांटते और दण्ड देते। इस प्रकार तुरत न्याय का नाटक पूरा हो जाता, प्रजा पर प्रभाव भी अच्छा पड़ता और अफसरों व सामन्तों में आतंक बना रहता। इतना सब होते हुए कस्बे का जीवन शान्ति से बीतता था। ऊपर बताई हुई कटुताएँ उस समय की साधारण बातें समझी जाती थीं। लोगों के लिए अपने खेत, अपना कारबार और छोटे-मोटे मनोरंजन के साधन ही सब कुछ थे।

मेरी पितृभूमि बीकानेर राज्य का छोटा-सा कस्बा बीदासर है–सुजान-गढ़ के पास। इसे बीकानेर-राज्य के संस्थापक बीकाजी के भाई बीदाजी ने बसाया था। मेरे पिताजी का जन्म यहीं हुआ था। इस स्थान का उस समय ताँबे की छोटी-सी खान के कारण महत्त्व था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यापार के लिए पितामह, सरदार-शहर चले आए थे। महाराजा गंगासिंह महाराजा डूंगरसिंह के दत्तक पुत्र थे। डूंगरसिंह के पिता सरदारसिंह ने अपने पिता महाराजा सूरतसिंह के शासन-काल में जाटों के हाथ से छीन कर इस स्थान का नाम सरदार-शहर रखा था। बीकानेर राज्य का यह १३५ वर्ष पुराना कस्बा है।

मरुभूमि के बालू के बड़े-बड़े टीलों के बीच में 'थली' नामक अञ्चल है। उसी का केन्द्र है सरदार-शहर। किसी बड़े शहर या रेलवे-लाइन से यह इतना दूर था कि नई रोशनी के यहाँ तक पहुँचने में बहुत समय लग गया। बहुत वर्षों तक यह अपनी प्राचीनता से लिपटा रहा। जीवन स्नेहमय और मर्यादापूर्ण था। सादगी के साथ सरलता थी। रेलवे-लाइन ३० मील दूर रतनगढ़ तक ही आई थी। उस जमाने में, रेलवे-लाइन राजपूताना में थी भी बहुत कम।

आज के लोगों के लिए पुराने राजस्थान को समझना भी कठिन होगा। अब हर कोने में रेलवे-लाइन है। सन् १९६८ से राजस्थान में दस हजार चार सौ किलोमीटर में रेल दौड़ रही है। सरदार-शहर में सन् १९१६ में रेलवे स्टेशन बना। सन् १९४० में बिजली आई और सन् १९४२ से यहाँ बस-सेवा भी सुलभ हो गई।

लेकिन उस जमाने में यातायात के लिए ऊँट, साँड़नी (ऊँटनी) या घोड़ा होता। ऊँटगाड़ी या थोड़े से नागौरी बैलों की जोड़ी के रथ होते। एक और भी सवारी मुझे याद है—सेठ भैरोंदान भंसाली की दो सफेद बकरों की गाड़ी। दो सुन्दर बकरे थे और सुन्दर-सी छोटी फिटन गाड़ी थी। उसमें बैठकर जब उनके बच्चे बाजार में निकलते तो लोग उन्हें देखने अपनी दूकानों से नीचे उतर आते। घोड़े की सवारी सबके बस की बात नहीं थी। घोड़े पर बैठना बड़े आदमी का ही अधिकार था, उच्च पद या मर्यादा की निशानी थी। हमारे यहाँ घोड़ा नहीं था, पर मुझे घोड़े पर बैठने का शौक था। कुछ जान-पहचान के परिवारों से सवारी के लिए घोड़ा माँगा जा सकता था, पर पितामह मुझे चढ़ने न देते, चोट लगने के भय से, लेकिन मैं एक बार घोड़े की सवारी कर ही बैठा। घोड़ा नासमझ सवार को खूब पहचानता है। उसने मुझे पटक दिया और मुझे चोट आ गई।

पितामह ऊँट पर भी नहीं बैठने देते थे। जब हम दोनों भाई मेला-तमाशा ऊँट पर चढ़ कर देखना चाहते तब वह कहते कि हमारी बीस हजार की हवेली ऊँट से ज्यादा कीमती है, उसी पर क्यों न बैठा जाए। हम बच्चे उस समय उनके तर्क के आगे झुक कर हवेली के बरामदे में बैठे-बैठे गणगौर की सवारी देखते और मन में सन्तोष कर लेते।

साइकिल भी काफी देर से हमारे यहाँ पहुँची। उस पर चढ़ना भी आसान नहीं था। यह भी 'नए फैशन' और सम्पन्न लोगों की चीज समझी जाती थी। साइकिल चलाना हमें बड़ा अच्छा लगता था, पर बचपन में साइकिल पर बैठने का मैंने कभी साहस नहीं किया। दो-चार बार साइकिल के पीछे की सीट पर जब बैठा और साइकिल तेज गति से दौड़ने लगी तब एक सिहरन-सी हुई, कुछ डर भी लगा, लेकिन चालक की पीठ को पकड़ कर बैठा रहा।

हमारे शहर में पहली मोटरकार १९१८ में आई—हमारे शहर के सबसे धनी सेठ संपतराम जी के यहाँ। रेल से हम बच्चों का और बड़े-बूढ़ों का परिचय हो चुका था। सन् १९१६ में रतनगढ़ से सरदार शहर तक रेलवे-लाइन आ गई थी। हमारे कस्बे से दो-मील दूर सांजनसर का रेत का बड़ा टीला था, उसको काट कर लाइन बिछाई गई थी। गाँव में कई वर्षों तक इसकी चर्चा रही कि हमारे महाराजा गंगासिंह कितने प्रतापी हैं कि सांजनसर के दैत्य जैसे टीले को काट दिया। इस टीले को काटना उस समय हमारे लिए उतना ही आश्चर्यजनक था जितना कि कश्मीर में पूँछ की सुरंग का काटना रहा होगा।

हम बच्चे बड़े चाव से रेल की पटरी का बिछाना देखा करते। वैसे रतनगढ़ से सूजानगढ़

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

या चुरू जाते समय आगपानी के इस जादू से हम परिचित हो गए थे। जिस समय पहली बार रेलगाड़ी हमारे सरदार शहर के प्लेटफार्म पर आई, उस समय का दृश्य मुझे आज तक नहीं भूलता। आसपास के गाँवों के स्त्री-पुरुष उमड़ पड़े थे। कुछ लोग तो इंजन पर चढ़ाने के लिए चीनी के बताशे और रोलीमोली का चढ़ावा भी ले आए थे। कितने नर-नारियों ने धुआँ उगलते हुए देवता को सादर प्रणाम भी किया था।

आगपानी का मेल तो समझ में आ गया; इंजन का धुआँ भी दिखाई पड़ता था, पर मोटरकार में छिपी शक्ति बड़े कुतूहल की चीज़ थी। जब मैं आश्चर्यचकित, मुँह फैलाए संपतरामजी की मोटर देख रहा था, तब मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन मेरे पास भी बीसियों मोटरें होंगी। एक बार धारीवाल और लाल इमली का सबएजेंट हमारे कस्बे मे ऊन खरीदने आया। हम लोग उसके पीछे हजार-दो-हजार के सौदे के लिए घूम रहे थे, उसकी खुशामद में लगे हुए थे। तब मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन मैं इन दोनों मिलों का संचालन करूँगा। भाग्य एक पहेली है।

इन 'पहेली' जैसी चीजों ने हमारे शांत जीवन में हलचल पैदा कर दी थी। मैं नहीं कह सकता कि १६ अप्रैल १८५३ को, जब भारत में ३२ किलोमीटर में पहली ट्रेन दौड़ी थी, नागरिकों को कितना अचम्भा हुआ होगा! हमें तो अपने बचपन की याद है कि जब पहली ट्रेन धुआँ उगलती, सीटी बजाती आती हुई दिखाई पड़ी, तब सारा कस्बा उस महान आश्चर्य को देखने के लिए उमड़ पड़ा और जो लोग ३० मील दूर जाकर रेलवे-स्टेशन देख आए थे, उनके लिए यह वस्तु भय, आशंका व चमत्कार की कहानी थी।

रेल से भी अधिक आश्चर्य की वस्तु बिना आगपानी से चलने वाली वह फिटन-गाड़ीनुमा ऊँची मोटरकार थी, जिसे देखने हम बच्चे दौड़ पड़े थे। अनेक बड़े-बूढ़े उसे छूने से डरते थे।

मुझे याद है कि एक ने सहमते हुए अपने साथी से सवाल किया था, "अगर यह रुक गई तो क्या होगा?"

"अपना ऊँट तो है, खींच ले जाएगा," साथी ने जबाब दिया था।

जब मैं बड़ा हुआ तब लगभग २५ वर्ष पहले की कही हुई उसकी बातें मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ीं—सड़क पर बिगड़ गई मोटर को ऊँट खींच रहा था।

मुझ पर भी एक बार यही बीती थी। एक दिन सूरज डूबते हमारी मोटर खराब हो गई। शहर पहुँचना था। मेरे साथ एक बड़े प्रतिष्ठित सेठजी थे। हम पास के गाँव में गये कि किसान की ऊँट-गाड़ी बाँध कर ले चलें, पर किसान ने अस्वीकार कर दिया। उसने कहा, "दिन भर का थका मेरा ऊँट, अब आराम करेगा।"

सेठजी पास ही खड़े थे। मैंने उनका नाम लेकर कहा, "अरे, भाई सेठजी की मोटर बिगड़ गई है, बहुत इनाम मिलेगा।"

किसान ने अपने ऊँट को थपथपाया और सादगी से बोला—"मेरा 'सेठजी' तो यही है।"

उसने ऊँट पर प्रेम से हाथ फेरा और वह उसके दानेपानी में लग गया।

यों १६१६ तक सरदार-शहर, एक प्रकार से कूपमंडूक ही था, पर सरदार शहर के सभी लोग अपने दायरे में बन्द नहीं थे; सैकड़ों साहसी व्यक्ति सुदूर असम और कलकत्ता जाकर व्यापार करते थे। और जब वे लौट कर आते तो कस्बे-भर में हलचल हो जाती। ऐसा लगता जैसे हरेक के घर का बिछुड़ा हुआ साथी आ गया हो। गाँव के लोग उनके यहाँ जाकर परदेश में बसे अपने सगे-सम्बन्धियों के सुखदुःख की बातें पूछते। उनके साथ वहाँ रिश्तेदारों द्वारा भेजी हुई अनेक प्रकार की चीजें रहतीं। उस समय लोग डाक-पार्सल का खर्च नहीं करते थे। पहले से ही जानकारी रखते कि फलां व्यक्ति 'देश' जाने वाला है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बचपन में ही मैंने सेठ सपतराम के अभ्युदय की अद्भुत गाथा बड़े कुतूहल से सुनी थी। उनके पिता चैनरूपजी साधारण मजदूरी करके पेट पालते थे। एक दिन राजमिस्त्री ने उन्हें ढिलाई से काम करते देखकर अपनी 'हथेनी' से उन्हें मारा। चोट सिर पर तो लगी ही, मन पर भी लगी। बस बालक चैनरूप ने संकल्प किया कि बहाँ काम न करेंगे। वह कलकत्ता भाग आए और फिर तो अपने परिश्रम व ईमानदारी से करोड़पति ही हो गए। लोगों का कहना है कि मिस्त्री ने उन्हें मारा नहीं, उनके सोते हुए भाग्य को कुरेद कर जगा दिया। हमारे यहाँ इस समय तक भी लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि तुम कहाँ के 'चैनरूप संपराम' आ गए हो!

इस फर्म की एक विशेषता का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। यह सभी जानते हैं कि उन्होंने कभी चोरबाजारी नहीं की; यहाँ तक कि कठिन बीमारियों में भी अधिकृत मूल्य से ज्यादा में दवा नहीं खरीदी। मेहमानों को राशन की चीनी खिला कर खुद गुड़ खाते रहे। कूपन के अतिरिक्त पेट्रोल ऊँचे दामों में मिलता, इसलिए बहुत-सी मोटरों के रहते हुए भी इस फर्म के मालिकों को कभी-कभी पैदल आना-जाना पड़ता था। बहुत वर्षों के बाद सेठ संपतराम के पौत्र कन्हैयालालजी ने 'गाँधी-विद्या-मंदिर' नाम के एक वृहत् शिक्षा-संस्थान की स्थापना की। आज यह प्रतिष्ठान देश में अपने ढंग का अनोखा है। इसके अनेक कार्यों में गायों और साँड़ों की नस्ल सुधारने का काम भी है। यहाँ की कुछ गायों से प्रतिदिन २५ से २७ किलो तक दूध निकलता है। कई बार अखिल भारतीय प्रतियोगिता में इन्हें प्रथम या द्वितीय पुरस्कार मिल चुके हैं।

कुछ वर्षों से कन्हैयालालजी ने एक प्रकार से वानप्रस्थ ले लिया है।

मुझे वृक्षों से स्नेह है-चाहे वे फल वाले हों या साधारण। मैं उन्हें इतिहास का साक्षी मानता हूँ। उनकी छाँह में गरीब जनता फलती-फूलती रहती है। जमाना बदल गया, लोग बदल गए, मान्यताएँ बदल गईं; लेकिन वृक्ष निर्मोही साधु की तरह मौनव्रती रहे। इतिहास के पन्ने उलटते गए, लेकिन वृक्षों ने अपने पुराने पत्ते गिराकर फिर नई चादर ओढ़ ली, उनका क्रम नहीं बदला। इन्हीं में से कुछ वृक्षों ने मेरा बचपन देखा। कभी-कभी जब कलकत्ता से गाँव जाता तो ये पेड़ मेरे यौवन की झलक के गवाह भी बनते। अब प्रौढ़ावस्था को भी ये देख रहे हैं और जब मैं नहीं रहूँगा तब भी इनकी दृश्य स्मृति में अमर रहूँगा। किसी पुराने वृक्ष को काटे जाते देख कर मुझे पीड़ा होती है, जैसे किसी ने युगों के जीवन के एक अध्याय को ही काट डाला हो।

यदि पीपल, वट, नीम, खेजड़ा, गूँदी या जाल के वृक्ष नहीं होते, यदि बेर की झाड़ियाँ नहीं होतीं तो हमारे मारवाड़ या 'थली प्रदेश' का जीवन वास्तव में ही नीरस होता। कार्तिक में बेर पक जाते। बड़े बेर अपने लाल-पीले रंगों से सबका मन मोह लेते। महीनों तक इस रेगिस्तानी चेरी से गरीब-अमीर सभी को आनन्द मिलता। गाँव के नोहरों, बाड़ों और खेतों में बहार आ जाती। जिस तरह खेतों में जाकर मतीरा, ककड़ी और बाजरे का सिट्टा खाने की गोठ (पिकनिक) की कीमत किसान नहीं लेता था, उसी प्रकार साधारण तौर पर बेर खाने में कोई रोक-टोक नहीं थी। हम बच्चे पाठशाला के बहाने घर से निकलते किसी नोहरे या बाड़े में जाकर बेर की झाड़ियों पर हमला बोल देते। चोरी से फल खाने में बड़ा मज़ा आता। कभी कोई माली या रखवाला देख लेता तो झिड़कियाँ मिलतीं या थोड़ी मरम्मत हो जाती।

शाम को घर जाकर जब भूख न होने का बहाना बनाते तो दादीजी हाथ से पेट दबा कर पूछतीं—"आज कहाँ क्या खा कर आए हो?" ज्यादा जानकारी के लिए पड़ोस के बच्चों से पूछताछ की जाती। ऐसी मान्यता थी कि ज्यादा बेर खाने से पेट में वायु होकर पीड़ा होती है, लेकिन मेरे साथ कभी ऐसा नहीं हुआ। कहते हैं कि मार के आगे भूत भागता है. पर हम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुरुजी की पिटाई की परवाह न करके दूसरे दिन फिर किसी-न-किसी बहाने बेर खाने निकल पड़ते। मनोवैज्ञानिक ठीक कहते हैं कि शायद ही ऐसा कोई बालक पैदा हुआ हो, जिसने फलों के बाग में माली की आँख बचा कर फल न खाए हों।

बेरों के मौसम के बाद आती जलौटियों की वहार। विशाल 'जाल' वृक्ष, मोतीमणिक नगीनों की चांदर ओढ़े बड़े ही लुभावने लगते। ये मोतीमणिक और कुछ नहीं, इस जाल-वृक्ष की बहुत ही स्वादिष्ट और रसदार लाल और सफेद जलौटियाँ थीं, जिन्हें हम बालक बड़े चाव से खाते थे। इन वृक्षों पर हमारी टोली टूट पड़ती, चिड़ियाँ चीखचीख कर विरोध करतीं कि हमारा भोजन छीना जा रहा है, पर हम ऊँची टहनियों पर चढ़ जाते। कभी-कभी धड़ाम-से नीचे गिर जाते। थोड़ी-बहुत चोट लग जाती तो सहला लेते, कोयला या राख दबा लेते, लेकिन घर जाकर नहीं कहते।

हवा में थोड़ी-सी ठंडक आने पर ये जलौटियाँ खूब पक जातीं। मधुमक्खियाँ इनका रस इकट्ठा करने के लिए इन वृक्षों पर छत्ते लगा लेतीं। कभी-कभी हमसे नाराज होकर हमें काट भी लेतीं, पर हम अपनी धुन में मस्त रहते। बेचारे तोते और बुलबुल, जिन्हें यह फल बहुत प्यारा है, हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पाते; उलटे वे कभी-कभी हमारी पकड़ में आ जाते और उन्हें हम अपने घर पर ले जाकर पास-पड़ोसियों को बड़े गर्व से दिखाते; दूसरे दिन फूसाराम जी बढ़ई के घर जाकर एक अच्छा-सा पिंजड़ा बनवा कर उसमें 'श्रीगंगाराम' को बिठा देते। महीनों तक उसको 'सीताराम-राधेश्याम' का पाठ पढ़ाते। शायद दादीजी इन बातों को पसन्द नहीं भी करती थीं, पर इस बहाने हम बच्चों को 'राम' का नाम लेते देखकर वे विरोध भी नहीं करतीं।

होली के बाद गूँदी, लेसू और ढालू के फल भी बहुतायत से उपलब्ध होते। गूँदी बड़ा उपयोगी पेड़ होता है। उसकी जड़ से अनेक प्रकार की दवाएँ बनती हैं। छोटे पीले बेर-जैसा फल खाने में बड़ा मीठा लगता है। उसमें गोंद की तरह का चिपचिपा लसदार पदार्थ रहता है। कहा जाता है कि यह बहुत ही पौष्टिक होता है। गूँदी जाड़ो में फलती है, जब कि ढालू और लेसुवा बैंसाख-जेठ की गर्मी का फल है।

ढालू मीठा और पाचक होता है, पर लेसुवा कसैला और लसदार होता है। आज-कल यातायात की सुविधाओं के कारण दूसरे प्रान्तों से अनेक प्रकार के फल आने लग गए हैं, इसीलिए अब ये स्थानीय फल लुप्त होते जा रहे हैं। राजस्थान के इन विशेष फलों के वृक्ष कटते चले जा रहे हैं। अगर प्रदेश सरकार ध्यान नहीं देगी तो राजस्थान की यह उपलब्धि समाप्त हो जाएगी।

जंगल में रोहीड़े व खेजड़े को संस्कृत में शमी-वृक्ष कहते हैं। खेजड़ा या 'जाँटी' हमारी मरुभूमि का सदियों से उपयोगी वृक्ष रहा है। इसके पत्ते जिन्हें 'लूँग' कहते हैं, बकरियों, ऊँटों और गाय-बैलों का प्रिय खाद्य पदार्थ है। खेजड़े के लिए पानी की बहुत कम आवश्यकता होती है। वर्ष-भर की संचित तरी का उपयोग यह वृक्ष, चैत्र-वैशाख के सूखे महीनों में करता है।

प्रकृति की यह लीला है कि जब भारत के अन्य भागों में पतझड़ शुरू होता है, हमारे रेगिस्तानी प्रदेश में वसन्त की सुषमा दिखाई देती है। चारों तरफ हरे खेजड़े बालू-प्रदेश को हरे रंग में सराबोर कर देते हैं। खेजड़े के हरे फल को साँगर कहते हैं। इसका साग बहुत स्वादिष्ट होता है। कैर और साँगर को मिला कर भी साग बनाते हैं, जो न केवल स्वादिष्ट होता है, बल्कि पेट की वायु हरता है और कब्ज दूर करता है। ठंडी पूरी के साथ कैर साँगर का आचार एक अनोखा आनन्द देता है। दूर की यात्रा पर जाने वाला शायद ही कोई ऐसा राजस्थानी हो जो आचार को अपने साथ न ले जाता हो। खेजड़ा बहुत उपयोगी है, पर रोहीड़ा केवल देखने में ही सुन्दर होता है। इससे लाभ बहुत कम है; इसके फूल बिना सुगन्ध

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के होते हैं, इसलिए हमारे यहाँ मूर्ख के बारे में कहावत है कि फलाँ व्यक्ति रोहीड़े के फूल की तरह है ।

राजस्थान में इस प्रकार की कहावतों के माध्यम से बहुत-सी उपदेशात्मक सामग्री उपलब्ध हो सकती है ।

पके साँगर को 'खोखा' कहते हैं । छह सात इञ्च लम्बा 'खोखा' बहुत ही स्वादिष्ट होता है । हम बच्चे बड़े चाव से इन खोखों को खाते । अधिक खाने से अपच हो जाती । बड़े-बूढ़े हमें सावधान करते रहते कि अधिक मत खाओ ।

मुझे याद है, एक बार खोखा खाने की होड़ लगी । जिद्द में आकर कई बच्चे काफी मात्रा में खोखे खा गए । उनमें से कइयों को हरे पित्त की कै हुई, जिनमें एक मैं भी था । शायद पिताजी मेरी पिटाई भी करते, पर मेरी दादीजी ने कह-सुन कर बचा लिया ।

नीम का वृक्ष भी राजस्थान में बड़ा लोकप्रिय है । इसके फूल को मींझर और फल को निबौली कहते हैं । वैशाख के महीने में जब सफेद मींझर की महक लिए हवा चलती है, तो सबको मुग्ध कर देती है । इसकी छाँह में गर्मी के मारे लोग विश्राम करते हैं । लोगों के बैठने के लिए महाजन लोग पेड़ के तने के चारों ओर गोल पक्का चबूतरा बनवा देते हैं, जिसे गट्टा कहते हैं । नीम की पतली डालियों से दातौन बनाने, पत्तों और सूखी निबौली का विभिन्न ओषधियों में उपयोग करने के साथ-साथ लोग इसके हरे पत्तों को उबाल कर बोरिक एसिड की जगह इसके उबले पानी से घावों को धोते और सेक करते हैं, जो बहुत फायदेमन्द होता है ।

नीम की औषधि-शक्ति के बारे में हमारे यहाँ एक दिलचस्प कथा प्रचलित है । कहते हैं कि एक बार जयपुर के एक वैद्य ने एक व्यक्ति को बीकानेर के एक प्रसिद्ध वैद्य के पास पत्र लिख कर भेजा कि 'एक सज्जन को स्वस्थ रूप में आपके पास भेज रहा हूँ, कृपया इन्हें इसी प्रकार लौटा देना ।' उस व्यक्ति को वैद्यजी ने हिदायंत दे दी कि रास्ते में बबूल की छाया में ही सोना और बैठना, बबूल की लकड़ी से ही खाना पकाना । उसने ऐसा ही किया ।

जिस समय वह बीकानेर के वैद्य के पास पहुँचा उस समय तक उसके शरीर में अनेक फोड़े हो चुके थे । बीकानेरी वैद्य ने जयपुर वाले वैद्यजी के पत्र को पढ़ा, उस व्यक्ति को देखा और समझ गए । उन्होंने बदले में उस आगंतुक को वापस जयपुर भेज दिया और निर्देश दिया कि रास्ते में नीम की छाँव में ही सोना, बैठना और खाना भी नीम की ही लकड़ी से पकाना । साथ ही उन्होंने जयपुर के वैद्य को लिख दिया कि 'आपके भेजे हुए व्यक्ति को स्वस्थ हालत में लौटा रहा हूँ,' उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया और जयपुर पहुँचते-पहुँचते वह पहले की तरह स्वस्थ हो गया ।

कहने का तात्पर्य यह है कि इन किंवदन्तियों और कथाओं द्वारा राजस्थान के लोगों को विभिन्न वृक्षों के गुण-दोषों का ज्ञान करा दिया जाता था ।

उपयोगिता की दृष्टि से नीम और खेजड़ा हमारे प्रदेश के सबसे महत्त्वपूर्ण वृक्ष हैं । लेकिन जहाँ तक श्रद्धा-पूजा का सवाल है, पीपल और वट-पेड़ सबसे मुख्य हैं । हमारे यहाँ ये बहुतायत से पाए जाते हैं । यह भी मान्यता है कि रात में इन विशालकाय वृक्षों में भूत-प्रेत या जिन्न वास करते हैं । इस भय से लोग रात के समय उनके नीचे नहीं जाते और सहज ही इनसे निकलने वाली कार्बन डाई-आक्साइड जैसी हानिकारक गैस के कुप्रभाव से बच जाते हैं । एक वैज्ञानिक तथ्य को धार्मिक रूप देकर लोगों के गले उतारना शायद अधिक आसान था ।

इन वृक्षों के चारों ओर भी गट्टे बना दिए जाते थे । स्त्रियाँ वट और पीपल की पूजा अखण्ड सौभाग्य की कामना के लिए करतीं । सर्दी के मौसम में मेरी दादीजी और अन्य स्त्रियाँ बहुत तड़के इनकी परिक्रमा करने जातीं; १०८ फेरियाँ करनी पड़तीं । जिन वृद्धा स्त्रियों से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फेरियाँ नहीं की जातीं, वे अपने स्थान पर हम बच्चों से फेरियाँ लगवातीं। दादीजी मुझे बड़े तड़के जगा देतीं और साथ ले जातीं। मुझे उस सर्दी के मौसम में इतनी जल्दी उठना बुरा लगता था, पर जाना ही पड़ता था। एक लालच भी था कि वापस आने पर माखन-मिश्री का प्रसाद मिलेगा। परिक्रमा के समय अनेक स्त्रियाँ और बच्चे रहते और बड़े ही मनोहर भजन गाए जाते। इस परिक्रमा से भगवत्-भक्ति के साथ-साथ व्यायाम भी हो जाता, स्वास्थ्य भी ठीक रहता।

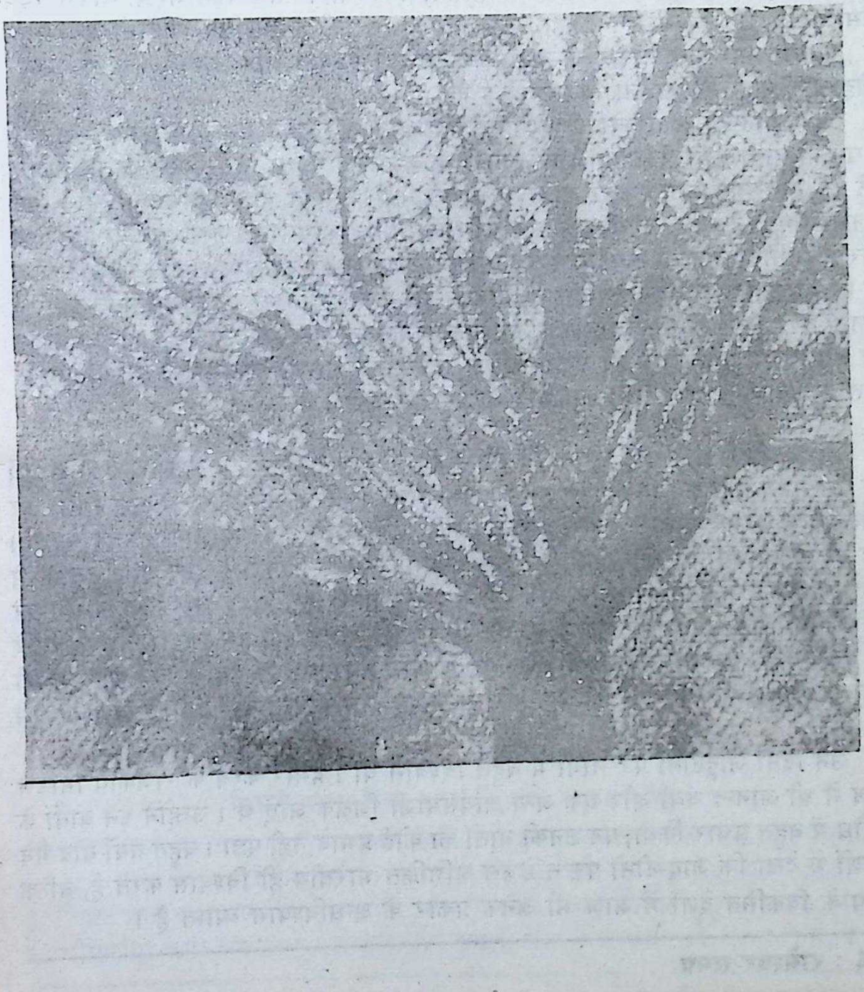

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बिना हुक्म भगवान के, पंछी बोले कूण

गाँव की तीन-चौथाई आबादी हिन्दू और एक चौथाई आबादी मुसलमान थी। आपसी भाईचारा जीवन का अंग था। एक दूसरे के मकान आपस में सटे हुए थे। प्राचीन परिपाटी के अनुसार लोग आपस में ताऊ, चाचा, मामा के नाम से पुकारते थे। इनमें हिन्दू-मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं था। सभी एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी थे।

छुआछूत उस समय भी थी, पर किसी को वह आज की तरह खलती नहीं थी। समाज के विधान और परम्परा से चलने वाले नियम सबको स्वीकार थे। हरिजन अपने को भगवान् की मरजी से अछूत मानते। आज औपचारिकता बढ़ गई है; आपसी छुआछूत भी कम हो गई है; हरिजनों के लड़के स्कूलों में अन्य सवर्ण-जातियों के बच्चों के साथ पढ़ते भी हैं, लेकिन पहले जैसा भाईचारा और प्यार नहीं रहा। उस समय हम घर की बूढ़ी भंगिन को रामी दादी कहते थे, पड़ोसी मुसलमान रँगरेज़ को मौलाबक्श चाचा। सभ्यता और विकास के साथ परस्पर स्नेह और प्यार की भावना विदा हो गई है।

मुसलमान का छुआ कोई पदार्थ हिन्दू नहीं खाते थे, लेकिन मुसलमानों को इससे कोई दुःख नहीं होता था। मैंने देखा है कि हमारी बैठक में जब नौकर पानी लेकर जाता तो वहाँ बैठे हुए मुसलमान स्वयं उठकर बाहर चले जाते। वैसे त्यौहार दोनों जातियों के लोग मिल जुलकर मनाते हैं। ईद, बकरीद और मोहर्रम में हम सब भाग लेते। गोटे लगे हुए नए कुरते और सलमेसितारों वाली टोपी पहन कर ताजिया देखने जाते। ताजियों के बारे में यह धारणा थी कि उनके नीचे से बीमार बच्चों को निकालने से उनकी बीमारी दूर हो जाती है, इसलिए माताएँ और बहनें अपने बच्चों को ले कर ताजिएं के दिन रास्तों पर खड़ी हो जातीं। यद्यपि इस अवसर पर मुसलमानों की संख्या अधिक रहती, पर वे सभी हिन्दुओं की बहू-बेटियों की बहुत इज्जत करते और कभी कोई बुरी घटना नहीं घटी।

हम हाथों में छोटे-छोटे रंगीन डंडे भी ले जाते। 'हाय! हुसेन हम नहीं थे......' का अर्थ तो उस समय नहीं समझते थे, पर हम भी मुसलमान बच्चों के साथ कण्ठ-से-कण्ठ मिला कर चिल्लाने में शरीक हो जाते। जोर-जोर से उनको छाती पीटते देखते तो हमें बड़ा डर लगता। ईद की सेवैंया तो हम नहीं खाते, पर गले मिलना और मुबारकबाद देना उसी उत्साह से होता, जिस उत्साह से मुसलमान लोग हमें दीवाली, होली को 'राम-राम' कहते थे। हमारे पड़ोस में ही एक मुसलमान रंगरेज का घर था। उसके लड़कों को हम चिढ़ाते थे कि 'हमारे तो इतने बड़े-बड़े देवता हैं—हाथी के-से मुँह के और लंगूर की सी पूँछ के; जब कि तुम्हारी मसजिद में कुछ भी नहीं है।' इसे सुन कर उनके घर वाले नाराज नहीं होते थे, वे केवल हँस देते थे।

उन दिनों जादूटोनों पर लोगों में बहुत विश्वास था। हमारे कस्बे के राजकीय मिडिल स्कूल में श्री आनन्द वर्मा और एक अन्य आर्यसमाजी शिक्षक आए थे। उन्होंने इन बातों के विरोध में बहुत प्रचार किया; पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत वर्षों बाद मैंने विदेशों में देखा कि जादू-टोनों पर न केवल अशिक्षित भारतीय ही विश्वास करते हैं, बल्कि यूरोप के विकसित देशों में आज भी अनेक प्रकार के अन्धविश्वास व्याप्त हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंगरेज व्यक्ति अपने माग में काली बिल्ली का मिलना बड़ा शुभ मानते हैं। अमरीकी यदि भूल से उलटी कमीज पहन ले तो उसका वह दिन बड़ा अच्छा माना जाता है। रूसी को यदि घोड़े की नाल पड़ी मिल जाए तो वह हर्ष से उछल पड़ेगा। सचमुच मनुष्य प्रकृति के थपेड़ों के आगे इतना विवश है कि तिनके का सहारा पकड़ कर इन देखे-अनदेखे टोटकों पर विश्वास कर लेता है।

मुझे इस संदर्भ में ग्रीस की राजधानी एथेन्स की अपनी यात्रा की बात याद आती है। उन देशों में ऐसी धारणा है कि प्रत्येक भारतीय को ज्योतिष की कुछ-न-कुछ जानकारी रहती है। वहाँ की हवाई-सर्विस के एक अधिकारी से मेरा परिचय हुआ। उसका एक मात्र तीन वर्षीय पुत्र छह महीने पहले मर गया था। शोकाकुल पत्नी को धैर्य दिलाने के लिए वह मुझे अपने घर ले गया। मैंने उस युवती का हाथ उलट-पलट कर देखा और एक कागज पर कुछ रेखा-सी बनाते हुए भविष्यवाणी की कि एक वर्ष के भीतर ही उसका पुत्र वापस उसकी कोख में जन्म लेगा। मैंने देखा कि महिला के चेहरे पर एक चमक-सी आ गई थी। संयोग देखिए कि एक वर्ष बाद उसके पति का पत्र मिला कि 'आपके आशीर्वाद से हमारे घर में पुत्र हुआ है, बड़ी कृपा होगी अगर आप एक बार हमारे यहाँ पधारें, मेरी पत्नी ने आपके ज्योतिष के चमत्कार के बारे में सारे मुहल्ले और परिचितों में चर्चा कर रखी है। वे आपके दर्शन के लिए उत्सुक हैं।'

सरदार-शहर भी इन मान्यताओं से अलग नहीं था। मैं नहीं जानता कि शुभ घड़ी या मुहूर्त की यात्रा सफल ही होती है, पर हमारे यहाँ से कलकत्ता, बम्बई जाने वालों के लिए अच्छा मुहूर्त बहुत ही आवश्यक माना जाता। इसके बारे में बहुत सी धारणाएँ प्रचलित थीं। सामने सिर घुटा हुआ साधु नजर आता. या विधवा स्त्री दिखाई पड़ जाती तो अशुभ माना जाता, जबकि सधवा स्त्री यदि पानी का घड़ा लिए मिलती या बाईं तरफ गधा रेंगता मिलता तो अच्छे सगुन माने जाते। सबसे शुभ सगुन रास्ते में फन फैलाए हुए बैठे सर्प का होता।

इस सन्दर्भ में एक घटना बहुचर्चित है। अठारहवीं शताब्दी के शुरू में नागोर का एक ओसवाल युवक एक जतीजी (यति) के पास विदाई का मुहूर्त निकलवाने गया। उन्होंने कहा कि वह उसी वक्त प्रस्थान करे। थोड़ी देर बाद उस युवक ने वापस आकर जती महराज से कहा, "मुझे रास्ते में एक काला नाग फन फैलाए हुए मिला, इसलिए मैं वापस आपके पास आया हूँ।"

महाराज हँसकर बोले, "तुम छत्रपति होते, पर अभी भी दौड़ जाओ, जगत्-सेठ तो हो ही जाओगे।"

कहा जाता है कि वही युवक आगे जाकर मुर्शिदाबाद का जगत-सेठ मेहताबचन्द हुआ. जिसकी फर्म का उस सस्ते जमाने में भी करोड़ों रुपयों का कारवार था।

इसके अलावा एक और घटना की चर्चा भी बड़े-बूढ़ों से सुनी थी। वह घटना इस प्रकार है—"एक बार महात्मा दादू और एक महाजन साथ-साथ यात्रा के लिए रवाना हुए। बड़ी दूर जाने पर उल्लू की आवाज आई। महाजन ने दादूजी से कहा, "महाराज, अपशकुन हो गया है, मैं तो वापस जा रहा हूँ।"

महात्माजी ने आगे जाकर एक दोहा कहा :—

दादू दुनिया बावली, फिर फिर माँगे सूण,
लिखने वाला लिख गया, फिर मेटण वाला कूण।

रात पड़ने पर साधु महाराज जंगल के किनारे एक तालाब की छतरी में ठहर गए। थोड़ी देर बाद तीन चार धाड़ेती (डकैत) आए और पूछने लगे कि 'ऐ मोडे, वह महाजन कहाँ है?' जब उन्हें पता चला कि वह वापस लौट गया तो वे बड़े क्रोधित हुए और साधु-महाराज को धौलधप्पा जमा कर उनके कमण्डल और कमली छीन कर चलते बने। दादूजी ने फिर एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोहा :कहा:–

दादू दुनिया साच है, सच कर माने सूण,
बिना हुक्म भगवान के, पंछी बोले कूण

तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ उस समय शकुनों पर बहुत विश्वास था। कुछ लोग तो इतने बहमी थे कि बाजार सौदा लेने जाते तो भी 'सगुन' देखते। रास्ते में गधा दाएँ खड़ा मिलता तो उसे बायें करने के लिए घुमाव देकर जाते। अगर बिल्ली रास्ता काट जाती या कोई छींक देता तो वापस घर आ जाते। हमारे मुहल्ले में इसी प्रकार के एक वृद्ध थे, जिनकी यह कमजोरी हम बच्चें जान गए थे। उन्हें छकाने में हमें बड़ा मजा आता। जब वह बाजार जाने लगते तो कोई बच्चा छींक देता या कुत्ते का कान मरोड़ कर उसे चीखने पर मजबूर कर दिया जाता। बाबाजी बड़बड़ाते और बिगड़ते हुए वापस घर चले जाते।

कोई कलकत्ता या बम्बई के लिए प्रस्थान करता तो घर का पण्डित मन्त्र पढ़ता, कुल-देवता की पूजा होती और बहन या माँ तिलक करती। यात्री घर से बाहर निकलने पर मुड़कर पीछे नहीं देखता था। उसे विदा करने के लिए परिवार के और मोहल्ले के लोग गाँव के बाहर तक पहुँचाने जाते। विदा के समय प्रत्येक व्यक्ति एक या दो रुपये विदाई के देता। इस प्रकार उसे रास्ते और परदेश के लिए सहारा मिल जाता। बड़ों के पैर छूकर और छोटों को आशीर्वाद देकर यात्री ऊँट पर बैठ जाता। रास्ते में लूट-पाट का डर रहता, इसलिए लोग साथ मिलकर यात्रा करते। अगर जनानी सवारियाँ होतीं तो एक दो ठाकुर (राजपूत) या कायमखानी बंदूक और तलवार लिए साथ-साथ रहते।

मुझे इसी प्रसंग में एक और मजेदार कहानी याद आ रही है, सरदार-शहर के पास ही फोगां नाम का एक गाँव है। वहाँ एक बुढ़िया अशुभ वाक्य बोलने के लिए प्रसिद्ध थी। एक बार गाँव वालों ने मिल कर एक खेतों की बुआई के लिए जाने से पूर्व उसके पास जाकर कहा, "दादीजी, हम आपका पूरा अनाज भेज देंगे, आज आप अपनी कोठरी में ही रहिएगा।"

बुढ़िया ने जवाब दिया, "बात कह कर मुकर मत जाना। तुम्हारे चाहे एक दाना भी न हो, मैं तो पूरा हिस्सा लूँगी।"

बुढ़िया के इस आशीर्वाद के कारण बेचारे गाँवों वालों को बोआई का मुहूर्त दूसरे दिन के लिए स्थगित करना पड़ा।

आज यातायात के प्रचुर साधनों के युग में ये बातें बचकानी-सी लगती हैं, पर इनका अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव था और है। अच्छे शकुन को लेकर आत्मविश्वास जाग उठता है, और आत्मविश्वास सफलता का जनक है।

आज से लगभग ५० वर्ष पहले, जब कुएं कम थे और जलकल का नाम भी नहीं था, लोग बटोही को पानी की जगह दूध पिलाना आसान समझते थे। घरों में गाय-भैंस बहुतायत से रहतीं, चराई का खर्चा नहीं के बराबर था, मनों-दूध प्रत्येक घर में होता था जब कि पानी लाने के लिए कुओं या तालाबों पर जाना पड़ता। काफी किल्लत के बाद एक-दो घड़ा पानी मिल पाता। धनवान लोगों के यहाँ तो माली या मालिन पानी भरते, पर आम लोग पानी के लिए बहुत सुबह उठकर पनघट या तालाब पर जाते थे। गरमी में जब तालाब, बेरी और जोड़ा (जोहड़) सूख जाते तब कुओं पर स्त्री-पुरुषों का बड़ा मेला-सा लग जाता।

हमारी मरुभूमि में पनिहारिनोंके बारे में बहुत ही भावपूर्ण और मधुर गीत लिखे गए हैं। वे खुद भी रास्ते की थकान मिटाने के लिए अपनी उमर के अनुरूप अलग-अलग टोलियों में जातीं और नाना प्रकार के गीत या भजन गाती रहतीं। पानी लाते समय वे घर के सबसे अच्छे कपड़े पहन कर जातीं। बचपन में हमने देखा था कि हजारों रुपये के चाँदी-सोने के गहने पहन कर महिलाएं कुओं पर जाती थीं। इस प्रकार घर के काम के साथ-साथ उनका

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मनोरंजन और व्यायाम भी हो जाता ।

उन दिनों समाचार-पत्र और रेड़ियो नहीं थे, पर ताजा स्थानीय खबरें कुओं या तालाबों पर सुनने को मिल जातीं । किसी के लड़का हुआ है, किसी की बहू गौने में क्या लाई है, श्यामा का पति परदेश से परसों आ रहा है—आदि तरह-तरह की बातें सुनने को मिल जातीं । सास-बहुओं के झगड़ों की बातें भी कुछ अतिरंजना लिए चर्चा का विषय रहतीं ।

सच पूछा जाए तो उस समय कुएं संस्था के प्रतीक थे । कुआँ बनवाना बहुत पुण्य का काम समझा जाता था । यहाँ तक देखा गया कि बहुत से लोगों ने तो अपनी उमर-भर की कमाई एक कुआँ या कुई बनवाने में लगा दी ।

हमारी तरफ कुएं की गहराई दो-ढ़ाई सौ फुट तक होती है । जब पानी पहली बार निकलता, तब आस-पास के मुहल्लों में उसके स्वाद की चर्चा होती और हनुमानजी का जागण (जागरण) होता । मुझे याद है, १६१४-१५ में हमारा कुआँ बन रहा था । उस समय हमारे दादाजी और पिताजी लगभग नित्य ही निर्माण-कार्य देखने जाते । हम भाई-बहन भी उनके साथ कभी-कभी चले जाते । कस्बा आज जितना बड़ा नहीं था, इसलिए कुएँ की दूरी उस समय हमें बहुत ज्यादा लगती थी; रास्ते में थक जाते तो साथ का कोई आदमी अपने कन्धे पर बैठा लेता । जब पहली बार पानी निकला तब पास-पड़ोस के और दूसरे मुहल्लों के लोग भी इकट्ठे हो गए थे । कई दिनों तक पानी के मीठेपन की चर्चा रही ।

बहुत से कुओं के चारों कोनों पर चार छतरियाँ रहतीं, जिनके बनवाने का उद्देश्य राह चलते पथिकों को विश्राम देना था । बैलों का श्रम हलका करने के लिए कुँओं की सारण ढ़ालू बनवाई जाती थी । प्रत्येक कुएँ के पास ही 'बाड़ी' में सब्जी की खेती होती जिससे मालियों को अतिरिक्त आमदनी हो जाती । वैसे प्रति घर पानी की लागत के हिसाब से उन्हें वार्षिक 'लाग' मिलती थी । इसके अलावा शादी-विवाह और जन्म-मृत्यु आदि अवसरों पर भी दूसरे 'कारुओं' को घर के कर्मचारियों की तरह पुरस्कार मिलता था । अछूतों को कुएँ की जगत पर चढ़ना मना था । उन्हें नीचे बनी खेलों (नाव, जहाँ पशु पानी पीते थे) या पास बनी गढ़ोइयों (चहबच्चों) से पीने-नहाने का पानी ले जाना पड़ता था । आजकल बड़े कस्बों में तो जलकल योजना से सवर्ण और अछूत—सभी एक साथ पानी लेते हैं और जिन गांवों में कल या नलकूप नहीं हैं, वहाँ भी कुओं पर हरिजनों के लिए पहले-जैसी रोक नहीं है ।

बचपन में मैंने कस्बे के पनघट देखे हैं । वैसे दृश्य दुर्लभ हो गए हैं । वास्तव में ये पनघट नहीं, महिलाओं के क्लब थे । यौवन और सौंदर्य बिखेरती हुई या जराजीर्ण काया सँभालती हुई दो-दो, चार-चार स्त्रियों की टोलियाँ बहुत तड़के ही अपने चिकने घड़े और चमकती हुई कलशियाँ लेकर पानी भरने आ जाती थीं । माली भी बड़े-बड़े बैलों की दो-जोड़ियाँ लेकर पानी खींचने लग जाते । कहा जाता है कि संगीत और श्रम का बड़ा मेल है । इससे थकान कम हो जाती है, मन हलका हो जाता है । मालियों के सुरीले भजनों और गीतों की तान सवेरे की शांति और रमणीयता में एक आह्लादमय मधुरिमा घोल देती है ।

कहते हैं कि महाकवि केशवदास एक दिन किसी ऐसे ही पनघट बैठे हुए थे कि पनिहारिनों ने उनकी वृद्धावस्था का आदर करते हुए उन्हें 'बाबा जी' कह दिया । यह सम्बोधन उन्हें खटक गया और उसी समय उन्होंने यह प्रसिद्ध दोहा कहा :—

केशव केसन अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
चन्द्रवदनि, मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाँहि !!

हमारे कुएँ से आधा मील दूर पर वंशीधरजी चौधरी की धर्मशाला, कुआँ और जोहड़ था । उस समय वहाँ तक जाना विदेश जाने के समान था । अच्छी वर्षा होकर जब जोहड़ भर जाता और चारों तरफ हरियाली छा जाती तब कभी-कभी पिकनिक के लिए लोग वहाँ जाते थे । अब तो कस्बा बहुत आगे तक फैल गया है और वहाँ पर 'गांधी-विद्या-मन्दिर' के अध्यापक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और विद्यार्थी रहते हैं।

सम्पन्न लोगों के घरों में बरसाती पानी जमा रखने के लिए पक्के और बंद कुंड होते थे, जिनमें बारहों महीने सुस्वादु पालर (बरसाती) पानी रहता। पास-पड़ोस के लोग त्यौहार आदि के अवसरों पर उन महाजनों के यहाँ से घड़ा-दो-घड़ा पालर पानी माँग कर ले जाते।

मुझे ५५ वर्ष बाद भी यह कल की-सी बात लगती है कि सावन-मास लगते ही हम बच्चे छोटी-छोटी झाडू लेकर छत को बुहारने जाते। तांबे के बड़े-बड़े कुण्डे साफ कर लिये जाते। वर्षा होने पर छत का पानी इन कुण्ड़ों के भर जाने पर दूसरे कुण्डे या बरतन रख देते। सुबह उठ कर हम ताल में यह देखने जाते कि वहाँ जोहड़ और मोलाणी में कितने चौपड़े (सीढ़ी) पानी आया ? वातावरण उल्लासमय हो जाता लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमक उठते। कुछ साहसी लोग गाँव से दो मील दूर के जोहड़ देखने जाते। आपस में वादविवाद छिड़ जाता कि कितने अंगुल पानी हुआ हैं ?पहली वर्षा होते ही किसान लोग अपने हल-बैल लेकर खेतों पर चले जाते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुरंगी रुत आई म्हारैं देस

अब न तो वे पनघट हैं और न पनघट की बहार। कुओं की सारनों और खेलों में मैला भरा रहता है, जिनमें साँप, बिच्छू और कनखजूरे वास करते हैं। साँप व बिच्छू आदि जहरीले जन्तुओं का उस समय भी बाहुल्य था। कई प्रकार के साँपों की चर्चा रहती थी। एक पीने वाले साँप का जिक्र भी रहता था, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह सोती हुई महिला के स्तनों से और गाय के थनों से दूंध पी लेता है। हमने कभी इस प्रकार के साँप तो नहीं देखे; हाँ, दूसरे कई प्रकार के छोटे बड़े साँप अवश्य देखने में आते थे।

साँपों के डर के कारण गोगापीर की पूजा लगभग सभी घरों में बड़ी धूमधाम से की जाती थी। इस बारे में हमारे यहाँ एक लोकोक्ति है; किसी ने पूछा, 'राम बड़ा, या गोगा ?' जबाब मिला-'बड़ा तो जो है वही है, पर साँपों से कौन बैर पाले! बालबच्चों का घर है, न जाने कब कोई पिरड़ा ठोंक जाए (साँप डस जाए)!' और भी बहुत सी दन्तःकथाएँ साँपों के बारे में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने साँप और साँपिनी को प्रेम-क्रीड़ा करते हुए देखा। उसने पत्थर मारे, साँप मर गया और साँपिनी उस समय बिल में चली गई। उसके बाद कई दिनों तक उस व्यक्ति को भयानक सपने आते रहे; वह एक प्रकार से विक्षिप्त-सा हो गया। अचानक एक दिन सोते में उसी साँपिनी ने आकर उसे डंस लिया और थोड़ी देर बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

वसंत-पंचमी के बाद कालबेलिए (सँपेरे) अपनी डोली और पूँगी लेकर हमारे गाँव में घूमने लगते। बड़े और बच्चे सभी इकट्ठे होकर नाना प्रकार के साँपों के खेल देखते। हम सभी का अच्छा खासा मनोरंजन हो जाता। कभी-कदाच यदि कालबेलिया किसी दर्शक के गले में साँप डाल देता तो उस व्यक्ति की डर के मारे घिग्घी बँध जाती। दूसरे सभी दर्शक हँसते रहते। हम बच्चे आतंक से भयभीत हो अपने-अपने घरों में भाग जाते थे।

कालबेलिए एक प्रकार की जड़ी बेचते, जिसके लिए उनका दावा था कि इसको सर्पदंश की जगह लगा देने से ज़हर उतर जाता है। हर गाँव और कस्बे में साँप या बिच्छू के काटने पर झाड़-फूँक करने वाले सयाने या ओझा भी रहते। पता नहीं, जहर की कमी से या झाड़-फूँक के विश्वास के कारण कुछ लोग साँप के काटने के बाद भी बच जाते थे, लेकिन अधिकांश व्यक्ति काल के गाल में चले ही जाते।

साँपों के खेल में नेवले और साँप की लड़ाई बहुत दिलचस्प होती थी, पर हम बच्चे भयभीत हो जाते। साँप का फन उठाकर फुंकार मारना और नेवले का झपट कर दाँतों से प्रहार करना बड़ा ही आतंककारी लगता। जब दोनों लहूलुहान हो जाते, तब मदारी खेल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समाप्त कर देता। किसी-किसी के पास बहुत बड़ा अजगर भी रहता, जिसका वजन सवा मन तक होता था।

साँपों के अलवा हमारे यहाँ पाटड़ा-गो, चंदन-गो, चितकबरा, गोहीड़ा आदि भयानक जहरीले जन्तु भी होते थे, जो जंगल, खेतों और गाँवों में रहने वाले को कभी-कभी काट लेते; इनका ज़हर तेज होने के कारण और उपयुक्त औषधि के अभाव में लोग बेमौत मर जाते लेकिन लोग इन जानवरों से बहुत सावधान रहते थे। यदाकदा इन जानवरों को मार डालने के समाचार रहते मिलते। मारने वाले 'हीरो' की चर्चा कई दिनों तक होती।

पीले, काले, छोटे, बड़े कई प्रकार के बिच्छू हमारे थली-क्षेत्र में बहुतायत से थे। इनका ज़हर २४ घंटों तक रहता। पहले तीन-चार घण्टे तो रोगी बहुत छटपटाता और रोता-चिल्लाता। इन सबके अलावा कनखजूरा, टाँटिया, मधुमक्खी आदि अन्य छोटे-मोटे ज़हरीले जन्तु भी थे।

हमारी जाति टाँटिया क्यों हुई, इसके बारे में वहाँ यह कथा प्रचलित है कि हमारे किसी पूर्वज की हवेली के बाहर टाँटियों का एक बड़ा छत्ता था, जिसके पास से गुजरने से लोग डरते थे। उस हवेली के नाम 'टाँटियों-वाली' हवेली पड़ गया और उसमें रहने वाले हमारे पूर्वज टाँटिया कहलाने लगे। अंग्रेजी में, चूँकि टाँटिया और ताँतिया और एक ही प्रकार से लिखा जाता है, इसलिए अब हमें बहुत से व्यक्ति इतिहास प्रसिद्ध ताँतिया टोपे के वंशज मान लेते हैं। एक दिन मेरे पास तन्तु महासभा का भी पत्र आया। उन्होंने मुझे बधाई देते हुए लिखा था कि 'बड़े गर्व की बात है कि हमारी जाति का एक व्यक्ति संसद का सदस्य और कांग्रेस संसदीय पार्टी का कोषाध्यक्ष चुना गया है।' उन्होंने मुझे अपने शहर में आमन्त्रित भी किया था। मैंने उन्हें जबाव दिया कि 'भाई, अफसोस है, मैं आपकी जातिबिरादरी का नहीं, बल्कि अग्रवाल वैश्य हूँ।'

अब न तो साँप-बिच्छू ही इतनी संख्या में दिखाई पड़ते हैं और न झाड़-फूँक करने वालों का उतना दबदबा ही है। पक्की सड़कें हो गई हैं। झोंपड़ियों की जगह पक्के मकान बनते जा रहे हैं और धीरे-धीरे जहरीले जंतुओं का ह्रास होता जा रहा है।

जैसा कि मैंने लिखा है, हमारा कस्बा बहुत बड़ा नहीं था। हाँ, हमारे यहाँ धनाढ्य वैश्यों का निवास अवश्य था। ये लोग दिसावरों से धन कमा कर लाते और बड़े-बड़े मकान, हवेलियाँ, मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवाते थे। उन हवेलियों में जो पत्थर लगता वह तो सीकर के पास रघुनाथगढ़ से आता या जोधपुर के खाटू-गाँव से। मकराने का पत्थर यानी संगमरमर बहुत ही कम हवेलियों में लगता; लेकिन मकराने से भी ज्यादा चमक आती सिमले की घुटाई से। सिंघराज-पत्थर के चूर्ण से यह सिमला तैयार होता था।

बहुत ही सुन्दर और कलात्मक ढंग की राजपूत शैली में लगभग सभी हवेलियों के बाहर और भीतर भित्तिचित्र बने होते थे। रंगों का सम्मिश्रण इतना उम्दा होता कि १०० वर्ष पहले के चित्र आज भी चमकदार और सुन्दर लगते हैं। इन भित्तिचित्रों में भगवद्भक्ति के अलावा ऐतिहासिक तथ्यों का भी पर्याप्त समावेश होता है।

मुझे बचपन की एक बात अच्छी तरह याद है। हमारे पड़ोस में एक हवेली बनी थी। उसकी बाहरी दीवार पर एक बड़ा चित्र था, जिसमें भीम को राजपूती वेश में अंकित किया गया था। एक बड़े वृक्ष को हिला कर वह उस पर चढ़े कौरवों को को गिरा रहा था। जब मैं भी उस चित्र को देखता, डर से आँखें मींच लेता। आज भी वह चित्र मेरी बाल्यकाल की स्मृति को अपने में समेटे हुए वहीं अंकित है। मैं अब भी जब गाँव जाता हूँ, उसे देखता हूँ भीम की राजपूती दाढ़ी, बड़ी पाग और लम्बा चौड़ा घेरदार बागा देखकर हँसी आ जाती है। उस जमाने में सबसे दर्शनीय मकान था सेठ संपतराम की चौपड़े की महफिल, जिसमें सोने का काम किया हुआ था। हमारे यहाँ बाहर से जो बरातें आतीं या अन्य जो भी यात्री आते, वे उस महफिल को अवश्य देखते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस सन्दर्भ में मुझे एक बात याद आती है। हमारी हवेली का ऊपरी हिस्सा बन रहा था; चूना तैयार करने के लिए रात में छाणों (सरकंडे) की आग में एक विशेष प्रकार के पत्थर रख दिए जाते। दूसरे दिन सुबह हम बच्चे उन सफेद फूले हुए पत्थरों को चिमटों से चुन लेते और पानी के मटकों में डालते; उस समय 'बुदबुद' की आवाज आती। हमें इस आवाज से खुशी होती, लेकिन इससे भी अधिक खुशी और सन्तोष होता यह महसूस करके कि हम बच्चे भी निर्माण के काम में यथासामर्थ्य सहयोग दे रहें हैं। मुझे ५५ वर्ष की वह बात अच्छी तरह याद है कि हमारे चेजारे (राजमिस्तरी) रमजान, कादर, अलाबख्श और रहीम—चारों भाई परिवार कि सदस्य की तरह थे। बालियो नाम के एक बहुत परिश्रमी मजदूर की भी याद है, जिसे हम चुपके से अपनी मिठाई का कुछ हिस्सा दे देते।

उस समय चूने की घुटाई इतनी महीन और चमकदार होती कि बहुत समय तक उसमें चेहरा देखा जा सकता था। घुटाई करने वाली महिलाएँ बहुत ही मधुर और भावपूर्ण गीत गाती रहती थीं। खेद है, मुझे वे लोकगीत इस समय याद नहीं है।

मकानों के वर्णन में एक बात मैं भूल गया। राजस्थान में मई और जून के महीने में इतनी भीषण गरमी पड़ती है कि तापमान ११७-११८ अंश तक पहुँच जाता है। इतनी दोपहर में साँय-साँय करके गरम हवा, लू और आँधी चलती रहती है। ऐसे तपन में कुछेक धनवान लोगों के कमरे में झालरदार पंखे लगे रहते, जिन्हें रस्सी में खींचा जाता। कुछ लोग खस और काँटो की टट्टियाँ खिड़कियों पर लगाकर उन पर पानी छिड़कते रहते। इसके अलावा कई मकानों के नीचे तहखाने बने रहते, जिनमें बालू और रेत बिछा कर पानी डाल दिया जाता और उस पर पलँग डालकर दिन में लोग आराम करते या ताश-चौपड़ खेलते। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उस कड़ी गरमी में भी वहाँ ठंडक का अनुभव होने लगता। आज एयर-कन्डीशनर और एयर-कूलर होने के कारण उन सबका महत्त्व समाप्त हो गया है, पर पानी से भीगी हुई उस बालू व रेत की मधुर सुगंध का तो अपना अलग ही महत्त्व था।

बार-त्यौहार प्रत्येक समाज की लोक-संस्कृति के सजीव प्रतीक हैं। इन्हीं अवसरों पर लोक-मानस स्वच्छन्द होकर झूम उठता है। आज तो अर्थाभाव और अन्य अनेक समस्याओं के कारण पर्व-त्यौहारों का न तो पहले-जैसा आनन्द ही रहा और न उत्साह। अपने बचपन में इन त्यौहारों का जो सुखद और आनन्ददायक रूप देखा, अनुभव किया, वह अब इतिहास ही रह गया है। तब बच्चे, बड़े-बूढ़े आदि सभी उन्मुक्त भाव से जात-पाँत का भेद भुलाकर इन पर्वों को मनाते तो एक स्वर्गिक आनन्द का अनुभव होता। एक बार फिर उन मधुर स्मृतियों को इन पृष्ठों पर उतार कर उस आनन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ।

राजस्थान में मुख्यतया हिन्दू, जैन और मुसलमान निवास करते हैं। पाकिस्तान बन जाने के बाद उत्तरी हिस्सों (जैसे गंगानगर आदि) में थोड़े से सिक्ख-परिवार भी आकर बस गए हैं। इन सब लोगों के अलग-अलग पर्व-त्यौहार होतें हैं। लेकिन उस समय सभी एक दूसरे के त्योहारों में बड़े प्रेम से शामिल होते व आमोद-प्रमोद मनाते। मुसलमानों में 'कायमखानी', मलकानी, मेव, मेणात, आदि ऐसी भी उपजातियाँ थीं, जिनमें हिन्दू-रीति-रिवाज प्रचलित हैं। विवाह के अवसर पर ये लोग निकाह पढ़ने के साथ फेरे (भाँवरें) भी लेते हैं।

इन तीनों धर्मावलम्बियों के साल-भर में इतने त्यौहार और पर्व मनाएं जाते हैं कि लगभग प्रत्येक महीने किसी-न-किसी प्रकार का उत्सव होता रहता है। उस समय तक न मुस्लिम-लीग थी, न शुद्धि-आन्दोलन। इसलिए मुसलमानों के पर्वों में हिन्दू और जैन शामिल होते थे और हिन्दुओं के त्यौहारों में मुसलमान; और यह सब बिना किसी औपचारिकता या संकोच के पारस्परिक प्रेमभाव से होता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस समय तक हमारे यहाँ आम जनता विक्रम संवत् और देशी महीने ही याद रखती थी। आज कल तो खुद मुझे याद नहीं रहता कि कौन-सा संवत् चल रहा है, कौन-सा महीना या पक्ष या तिथि है ?

वर्ष का सबसे पहला त्योहार गणगौर रहता। उस समय तक होली की हुल्लड़बाजी और सर्दी की ठिठुरन समाप्त हो जाती तथा वसंत अपने यौवन पर रहता। नीम की मींझर की सुगंध-भरी हवा के झोके मन को मुग्ध कर देते।

गणगौर या गौरी-पूजा मुख्य रूप से लड़कियों और महिलाओं का त्यौहार है। होलिका-दहन के दूसरे दिन यानी चैत्र बदी प्रतिपदा से गणगौर पर्व की शुरुआत हो जाती। होली की राख के छोटे-छोटे पिण्ड बना कर उन्हें गणगौर, ईसर, कानीराम और रोवाँ की प्रतिमाएँ मानकर कुमारियाँ और नवविवाहिताएँ नित्य बड़े सवेरे पूजतीं। पूजा के लिए दूध और फूल लाने छोटी-छोटी लड़कियाँ गीत गाती हुईं आनन्दमग्न होकर आस-पास की फुलवारियों में जातीं। हम बच्चे भी कभी-कभी इनके साथ चले जाते। फुलवारियों में पहुँच कर लड़कियाँ यह गीत गातीं—

म्हारै माली री ब्राड़ी फल रही, म्हारी मालण जायो छः पूत,
जुग जीओ ऐ बधावणा।

और घर आकर दूब और फलों से गौर पूजती हुई कुमारी कन्याएँ सुन्दर और वीर वर की कामना करतीं तथा विवाहित महिलाएँ अपने सुहाग का वर माँगतीं। सुखी परिवार की कामना का यह गीत कितना मधुर और भावपूर्ण है—

गोर ए गणगौर माता खोल किंवाड़ी,
बाहर ऊभी रोवाँ, पूजणवाली। पूजो ए पूजाओ सैंयो के फल माँगो,
माँगाँ ए म्हें अन, धन, लाछर, लिछमी। जलवल जामी, बाबुल माँगा;
राता देई-सी मायेड़। कानकँवर-सो बीरो माँगाँ,
राई-सी भोजाई। ऊँट चढ्यो बहनोई माँगाँ;
चुड़लै वाली बनहड़। आदि।

विवाहिता कन्या के लिए पहले साल अपने पीहर में गौर पूजना अनिवार्य माना जाता। इसलिए हर नववधू पहली साल अपने पीहर में ही गणगौर पूजती।

चैत बदी अष्टमी को कुम्हारिनों के घर जाकर मिट्टी की गौरी की प्रतिमाएँ लाई जातीं और फिर इन्हीं प्रतिमाओं का पूजन होता। रात को एक दीप थाली में रखा जाता और उस पर एक छलनी ढक दी जाती। लड़कियाँ इसे लेकर बड़े-बूढ़ों के पास गीत गाती हुई जातीं और पैसे माँगतीं। इस गीत को 'घुड़ले का गीत' कहते हैं। हम बच्चे, लड़कियों की टोली के साथ-साथ रहते। हमें यह एक मनोरंजक खेल लगता। गीत की पंक्तियाँ हैं—

घुड़लो, घूमैलो, जी घूमैलो, घुड़लै रै, बांध्यों सूत। घुड़लो......
सुहागण बाहर आव। घुड़लो...... प्रताप जी रै, जायो पूत। घुड़लो......

इस 'घुड़ले' से जो पैसा इकट्ठा होता, उसका मिष्ठान्न या मेवा मँगाया जाता। उन दिनों मिठाइयाँ और मेवे बहुत सस्ते थे। शुद्ध घी की मिठाई एक रुपये में ढाई-तीन सेर आ जाती और एक रुपए में बादाम व छुहारे भी बहुत-से आ जाते। यह मेवा-मिठाई आपस में बाँट ली जाती। हम भाइयों को भी, बहनें बड़े चाव से खिलातीं।

चैत सुदी तीज या चौथ को गवरजा का विसर्जन होता। इस दिन ईसर, गौरी और रोवाँ (रोहिणी) की बहुत सुन्दर और सजी हुई बडी मूर्तियाँ जुलूस के साथ गाँव के बाजारों और मुख्य मार्गों से निकाली जातीं। सच्चे हीरे-मोती के गहनों और गोटे-किनारी के कीमती वस्त्रों से इन मूर्तियों को सजाया जाता। हमारे यहाँ गुलाब चन्द जी छाजेड़ के यहाँ से गवरजा की सवारी निकलती। कहते हैं कि सरदार-शहर में साहूकारों का यह सबसे पुराना घराना था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गौर की सवारी में राज्य की तरफ से तहसीलदार, थानेदार और अन्य अहलकार शामिल होते। लोग उस समय इनका इतना मान-सम्मान करते, जितना शायद आज किसी गवर्नर या मंत्री का भी नहीं होता।

सैकड़ों स्त्री-पुरुष, बड़े-बूढे जुलूस के साथ चलते—हिन्दू, जैन, मुसलमान आदि सभी जाति के और धर्म के। गाँव के छत-छज्जों पर मेला-सा लग जाता। जुलूस के अन्त में सुहागिन स्त्रियाँ गोटे-किनारी की केसरिया, कसूमल ओढ़नियाँ ओढ़े, मोड़दार घूंघट काढ़े मधुर गीत गाती हुई चलतीं।

इसी शाम को विभिन्न मोहल्लों की लड़कियाँ अपनी-अपनी गौरों को लेकर पास के कुओं पर विदा के करुण गीत गाती हुई उनके विसर्जन के लिए जातीं। मुझे अच्छी तरह याद है, जब उन गौर-प्रतिमाओं को कुएँ में गिराया जाता, तब हम सब सुबक-सुबक कर रोने लगते, जैसे घर का प्रियजन बिछुड़ गया हो। हमारी बहनें रो-रोकर अपनी आँखे लाल कर लेतीं।

चैत्र सुदी अष्टमी को शीतला-माता का पूजन होता। हमारे यहाँ मान्यता थी कि शीतला देवी की पूजा से चेचक का प्रकोप नहीं होता। ताल के मैदान में शीतला का बड़ा मण्ड है। हम लोग वहाँ पहले दिन की बनाई हुई ठण्डी बासी रसोई लेकर जाते। मण्ड के चारों ओर कान लटकाए, नीचा मुँह किए बहुत से गर्दभराज खड़े रहते। महिलाएं इन्हें पूज कर बाजरे का चूरमा खिलातीं, क्योंकि गधा शीतला जी का वाहन है। इस सन्दर्भ में एक किंवदन्ती है कि किसी ने शीतला माता से घोड़ा माँगा। तभी दूसरे ने कहा 'बड़े मूर्ख हो, अगर इनके पास घोड़ा होता तो वह स्वय गधे पर क्यों चढ़ती ?' शीतला-पूजा या 'बासीड़े' के दिन बासी रसोई ही खाई जाती है। गरम खाने से देवी के रुष्ट होने का डर रहता। पहले दिन की बनाई हुई ठण्डी रसोई हमें अच्छी लगती। राबड़ी रोटी के साथ काँजी बड़ा औंर मीठी लपसी बड़े चाव से खाते। दूसरे दिन रामनवमी का पर्व होता। इसी दिन भगवान राम ने जन्म लिया था। हम बच्चों के लिए इस पर्व का कोई आकर्षण नहीं था। हाँ, बड़े-बूढ़े इस दिन अपने बही खाते बदलते।

बैसाखी सुदी तीज का त्योहार 'आखातीज' (अक्षय तृतीया) बच्चों के लिए विशेष आमोद-प्रमोद लिए आता। एक महीना पहले से ही वंशीधर जी पंसारी के यहाँ से डोरे के 'भूणिए' (रीलें) लाकर उन्हें सूतने का प्रबन्ध करने लगते। कई प्रकार की डोरें आतीं थीं। 'कृष्ण छाप', 'हाथी छाप', और 'भूत छाप'। सबसे मोटी 'कृष्ण छाप' और सबसे महीन होती 'भूत छाप'। उस समय एक भूणिए का मूल्य छह पैसे या दो आने था और इस पर ३०० सौ गज डोर रहती थी। डोरे को सरेस, मेथी औरं महीन काँच के साथ मैदे की लेई में मिला कर सूंता जाता था। आकर्षक बनाने के लिए थोड़ा-सा रंग भी मिला देते। हम बच्चों के लिए डोरे की सुताई बहुत आकर्षक आयोजन था। एक लड़का चरखी लिए खड़ा रहता और अन्य दो लड़के हाथों पर लेई लिए डोरे पर उसे फिराते हुए चलते रहते। गाँव में चर्चा रहती कि आज अमुक के यहाँ बहुत अच्छी डोर सूती गई है।

पतंगें कई प्रकार की आती थी। 'अधेलिया' से लेकर 'आनल' तक, यानी आधे पैसे से एक आने तक की। जो लड़के आनल उड़ाते उनकी बड़ी धाक रहती। जिन बच्चों के पास अपनी पतंग नही रहती, उनमें से कोई तो उड़ाने वाले की चरखी पकड़े रहता और बाकी चारों तरफ खड़े रहकर बढ़ावा देते रहते।

पतंगों के पेंच लड़ाना आपसी प्रतिद्वन्द्विता का एक आकर्षक खेल था। शाम के समय आसमान रंगबिरंगी पतंगों से भर जाता। 'वह काटा !' 'वह मारा !' की आवाजों से वायुमण्डल गूंजता रहता। कटी पतंग के पीछे बच्चों के झुण्ड-के-झुण्ड दौड़ते। बच्चे ही क्यों, बड़ों को भी इस तमाशे में शरीक होते देखा है। एक बार की बात है एक पतंग कट कर जा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रही थी कि एक सेठ जी उसे पकड़ने के लिए लपके। लेकिन इतने में ही बच्चों ने दीवार पर चढ़ कर पतंग को पकड़ लिया। बेचारे सेठ जी मुँह ताकते रह गए।

पतंग का छोटा सा-रूप था-थोड़ी सी डोर के सिरे पर पत्थर या लकड़ी का टुकड़ा बांध कर कीलिया (लंगड़) लड़ाना। गरीब और छोटे बच्चे इसी में पतंग का सारा आनन्द ले लेते। जो लड़का 'कीलिया' लड़ानें में तेज या उस्ताद होता, वह मुहल्ले भर में चुनौती देते हुए ऊँची आवाज में गाता फिरता 'कीलिया लड़ाने वाला कोई नहीं पाया, सारे गाँव में फिर-फिर आया।' और इस चुनौती का सामना करने वाले भी मिल जाते। कभी-कभी लड़न्त के समय हाथ से धागा तोड़ देते तो आपस में झगड़ा हो जाता। थोड़ा-सा थूक कर 'थू भायला'-दोस्ती तोड़ने की-धमकी कर लेते, पर थोड़ी देर बाद ही फिर दोस्त बन जाते।

.आखांतीज के दिन बाजरे के खीचड़े के साथ अमलवाणी (इमली का मीठा पानी) लिया जाता। शायद यह गरमी और लू से बचाने के लिए लिया जाता था। अगले साल के 'सुगन' या मुहूर्त में भी इसी दिन किए जाते। आखातीज का मुहूर्त अणबूझ मुहूर्त में माना जाता। कहावत थी कि 'अणबूझूया मोहरत भला, कै तेरस कै तीज।' बहुत से विवाह इसी दिन सम्पन्न होते।

विवाह करने वाले पण्डितों की इस दिन अच्छी माँग रहती। इसलिए बिना पढ़े-लिखे पंडितों को भी मौका मिल जाता। मेरी जान-पहचान का देबू महराज नाम का एक ब्राह्मण था। वह आखातीज के दिन गाड़िया लुहारों के यहाँ विवाह कराने गया। भूल से विवाह पद्धति की जगह गरूड़-पुराण ले गया। जब उसने गरूड़जी का नाम लिया तो लोगों ने पूछा, "महाराज, इस अवसर पर गरूड़जी कहाँ से आ गयं!" उसने झट जबाब दिया, "जहाँ विवाह में विष्णु और लक्ष्मी का आना जरूरी है, वहाँ उनके वाहन गरूड़ भी तो आएँगे ही।" इस बात की कई दिनों तक चर्चा रही।

सावन सुदी तीज का त्योहार मुख्य रूप से लड़कियो का त्योहार था। वर्षा हो जाती। ताल-तलैए भर जाते। खेतों में दूब और हरी घास की चादर बिछ जाती। लोग नई फसल की खुशी में प्रसन्न हो जाते। किसान और किसान की पत्नी अपने हल-बैल लेकर खेतों पर चले जाते। पीछे रह जातीं नववधुएँ और बालिकाएँ। ऊँचे वृक्षों पर बड़े-बड़े झूले डाल दिए जाते और उन पर झूलती रंगाबिरंगी ओढ़नियाँ पहने किशोरी बालिकाएँ उन्मुक्त हास्य और मधुर गीतों की मादक तान वायुमण्डल में बिखेरती।

भला ऐसी स्वच्छन्दता ससुराल में कहाँ! इसलिए इन दिनों लड़कियाँ अपने मायके आ जातीं और झूला झूलती हुई गातीं—

मोटी मोटी छींटा औसरी ए बादली, ओसरी ए बादली !
कोई जोड़ा (तालाब) ठेलमठेल, सुरंगी रूत आई म्हारे देश !
भले री रुत आई म्हारे देश ! ओ कुण बीजे बाजरी ए बादली !
ओ कुण बीजे मोठ, मेवा, मिसरी, सुरंगी रूत आई .... !

जिन लड़कियों को ससुराल में रहना पड़ता, वे पीहर की याद में इस प्रकार गीत गातीं-

आयी आयो, ए माँ, सावणिए रो ए मास,
मन्ने भेजी माँ सासरे जे।
और सहेल्याँ ए माँ खेलण मिलण ने ए जाए,
मन्ने दीन्यो माँ पीसणों जे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ससुराल के कष्टों का उल्लेख करती हुई, वे कहतीं—

औरां न तो माँ मिरियो, मिरियो ए घी,
मन्ने मिरियो माँ तेल को जे।
आयो-आयो, माँ पीवरिए रो ए काग; वो झमके लेग्यो माँ मांडियो जे।
भागी-दौड़ी मा कागलिए रे लार; कांटो लाग्यो माँ कैर रो जे
लेज्या-लेज्या म्हारे पीवरिए रा ए काग!
जांय दिखा जे म्हारी मांय ने जे।

(ससुराल में और सदस्यों को तो एक एक चम्मच घी का मिलता है, जब कि मुझे सिर्फ एक चम्मच तेल ही दिया जाता है। ऐसे समय पीहर का जो कौवा आया तो मेरे हाथ का माड़ (रोटी) ही ले उड़ा। लाचार मैं उस कौवे के पीछे दौड़ी कि उसके साथ मैं भी पीहर तक चली जाऊँ। ऐसे में दौड़ते वक्त पैरों में कैर का काँटा चुभ गया। इसलिए, ऐ पीहर के कौवे, पीहर में ले जाकर इस सूखी रोटी को मेरी माँ को दिखा।)

सावन की ऋतु आकाश में मेघों की उमड़-घमड़, अँधेरी रात में बिजली का बार-बार चमकना और भीषण आवाज के साथ कड़कना किसे विचलित नहीं कर देगा? ऐसे में गोरी की यह पुकार स्वाभाविक ही है—

सावण सुरंगों सायबाजी कोई; बरसण लाग्यो मेह, हाँ जी ढोला,
इब घर आज्या गोरी रा बालमा जी!
छप्पर पुराणा पड़ गया जी, कोई तिड़कण लाग्या बाँस,
इब घर आज्या ....
बादल में चिमके ढोला बीजली: जी,
कोई महलाँ में डरपे घर री नार, इब घर आज्या फूल गुलाब रा जी।
कुओ तो हो तो पिया डाक ल्यूं जी, समन्दर डाक्यो न जाय....
नेड़ीनेड़ी करो पिया चाकरी जी, सांझ पड़याँ घर आय।
इब घर आज्या बरसा रुत भली जी, थाने तो प्यारी लागै चाकरी जी!
म्हाने तो प्यारा लागो आप। असी ये टकाँ री चाकरी जी!
कोई लाख मोहर री नार, इब घर आवो मिरगानैणी रा
बालमा जी।

(हे प्रीतम, सावन का सुहावना महीना आगया है; वर्षा शुरू हो गई है, पानी इतना बरसा है कि छप्पर के पुराने बाँस टूट कर पानी भीतर टपकने लगा है। ऐसे में आकाश में बिजुली चमकनें से मुझ अकेली को भय लग रहा है, आप घर पधारें। कुआँ हो तो लांघ लूँ, मगर आप तो समुद्र-पार बैठे हैं, समुद्र को कैसे लांघूँ! इसलिए विनती है कि आप इतनी दूर नहीं, कहीं आसपास हीं नौकरी कर लें, ताकि दिन भर चाकरी कर के शाम को मेरे पास घर आ जाएँ। आपको तो ८० रुपए की यह नौकरी अच्छी लगती है, जब कि मुझे आपके सिवा कुछ नहीं सुझता। पता नहीं आप लाख मोहरों की नारी को छोड़ कर ८० रुपयों की नौकरी के मोह में क्यों पड़े हैं?)

इसी प्रकार लहरिए, पपइए और कुरजाँ के गीत भी विरहजनित वेदना के होते। कुरजाँ एक पक्षी है, जिसे संबोधित कर कहा जाता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तू छै कुरजाँ म्हारी भायली, तू छै धरम की ए भाण !
एक संदेशो, एं बाई, म्हारी ले उड़ो ए !
कु जाँ, ए म्हारा पीव मिला द्यो ए,
बी लसकरिए ने जाए कही जे-क्यूं परणी छी मोय !
परण पिराछत क्यूं लियो जी ?
रह्या क्यूं ना अखन कुंवार !
कुंवारी नै तो वर घणां छा जी !

(ऐ कुरजाँ, तू मेरी सहेली और धर्म बहन है; मेरा यह संदेश मेरे दूर बसे प्रियतम को दे आ। मेरे पीव को जाकर कह दे कि मुझसे विवाह ही क्यों किया ? क्यों परिणय करके दुःख देने के लिए मुझे यहाँ छोड़ गए ? ऐसा ही करना था तो उमर भर कुंआरे ही रहते, कुमारी कन्या को तो दूसरे वर बहुत मिल जाते।)

सावन की इस तीज के अवसर पर हमारे यहाँ बड़ा मेला लगता। ताल में डोलरहींडा, चरखचूड़ी लग जाती, हलवाइयों और बिसातियों की दूकानें सज जातीं। हम बच्चों को उस दिन दो पैसे से लेकर दो आने तक मिलते। उसमें से एक पैसे की मिठाई लेते, एक पैसे का डोलरहींडा हींडते, एक पैसे में चरखचूंडी में चक्कर लगाते और बाकी पैसे बचते तो कागज के फूल, गुब्बारे आदि ले आते। डोलरहींडे का पलड़ा जब जोर से ऊपर जाता तो एक सिहरन-सी होती। सन् १६५० में, जब मैं आल्प्स की १४,००० फीट ऊँची यंगफ्राउ चोटी पर चढ़ा तब भी उतना भय नहीं लगा था। जहाँ कुछ बच्चे एक बार डोलरहींडे पर चढ़ जाने पर उतरने का नाम नहीं लेते और उन्हें एक प्रकार से जबरदस्ती उतारा जाता, वहीं कुछ डरपोक बच्चे चढ़ने से ही घबड़ाते और चिल्लाने लग जाते। डोलरहींडे से भी ज्यादा आकर्षक थी चरखचूंडी। हाथी, घोड़े, ऊँट, और कुर्सी की शक्ल की सीटें बनी रहतीं। हम इन पर बैठ जाते। इन्हें गोल चक्कर में जोर से घुमाने पर चक्कर-सा आने लगता।

१२ दिन बाद रक्षाबंधन या राखी का त्योहार आता। जिनके जनेऊ होते, वे इस दिन तालाब, जोहड़ या कुओं पर स्नान करते। इसी दिन बहन अपने भाइयों के हाथों पर सुंदर और कलात्मक गोटे-किनारी की राखियाँ बाँधतीं और उनका मुँह मीठा करातीं। बदले में भाई उन्हें यथासंभव उपहार देते। वैसे तो राखी संपूर्ण भारतवर्ष का त्योहार है। पर राजस्थान में राखी का बहुत बड़ा महत्व है। इस पर्व के साथ इतिहास की बड़ी घटनाएँ सम्बन्धित हैं। अनजान महिला भी विपत्ति के समय अगर किसी को राखी भेज देतीं तो उस व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता हर कीमत पर अपनी इस धर्मबहन की रक्षा करना। इतिहास साक्षी है कि इन धर्मबहनों की रक्षा के लिए कितने ही राजस्थानी वीरों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी।

हमारे अंचल की जलवायु बहुत ही शुष्क है, इसलिए जिस साल अच्छी बरसात हो जाती, लोगों के आनंद का पार नहीं रहता। झुण्ड के झुण्ड किसी बड़े तालाब या जोहड़ के किनारे गोठघूघरी का आनंद लेते। मौसम सुहावना रहता। भंग और ठंडाई छनती। याद है, उन दिनों बादाम की गुली आती थी सवा रुपये की एक सेर। इसलिए लगभग हर गोठ में बादाम की ठंडाई और बादामबर्फी अवश्य होती। कुछ गोठों में दालबाटी और चूरमे की रसोई बनती। सावन मास में ताजा घी इतना केसरिया सोंधी गंध लिए रहता कि बाटी में घी खाने की होड़-सी लग जाती। कोई-कोई व्यक्ति तो आधा सेर घी इन बाटियों के साथ खा जाते।

भादवा सुदी चौथ को गणेश चतुर्थी पर्व मनाया जाता। हमारे यहाँ यह पर्व पाठशाला में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पढ़ने वाले बच्चों और उनके गुरुओं तक ही सीमित था। तीन-चार दिन पहले ही बच्चे नए-नए कपड़े और सिर पर मखमल की कामदार टोपी पहने और हाथों में कागज की ध्वजाएँ लिए निकल पड़ते। हम सब अपनी-अपनी पाठशालाओं में इकट्ठे होते। वहाँ जुलूस बना कर अनेक प्रकार के गीत गाते हुए गाँव के बाजार और मुख्य मार्गों पर घूमते। हर जुलूस के आगे-आगे राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमानजी चलते। राम, सीता, लक्ष्मण और भरत को मखमल के कोट पहनाकर और चाँदी के मुकुट लगाकर बहुत सुन्दर ढंग से सजाया जाता। चाँदी के इक्के में या रथ में बैठ कर धनुष बाण हाथ में लिए वे सचमुच बहुत भव्य लगते। रास्तों में जगह-जगह उनकी आरती उतारी जाती।

हनुमान वेशधारी का मुखौटा बहुत डरावना होता—लाल लँगोट, लाल कुर्त्ती, पीछे बड़ी-सी पूँछ, मुँह पर बड़ी-बड़ी आँखों वाला मुखौटा और हाथ में बड़ा-सा मोटा (गदा) देख कर बहुत ही डर लगता। यदि बच्चे हल्ला करते या जुलूस का अनुशासन बिगाड़ते तो हनुमानजी पूंछ फटकारते और गदा हिलाते हुए उन पर झपट पड़ते। मैं तो एक दिन डर के मारे जोर-जोर से रोने ही लगा था। इन जुलूसों को 'चौक चानणी' कहा जाता।

हम जो गीत इन जौकचानणियों में गाते, उनमें से एक है—

उठ, उठ, ए लाडू की माँ, तेरे बेटो पढ़बा जाय।
पढ़ की पढ़ाई देय, एक रुपयो रोक दे।
गुरुजी पाग बंधा, गुरुआणी ने चूनड़ा उढ़ा।

उस समय एक रुपये की माँग आज की एक गिन्नी के समान थी। दूसरा गीत था—

चौक चानड़ी भादूड़ो, देदे माई लाड ड़ो।
लाडूड़े में घी, रामू ऊपर जी घणो।

इन तीन-चार दिनों में पाठशाला में पढ़ाई नहीं होती। पाठशाला की सजावट और जुलूस की तैयारियों में हम लोग व्यस्त रहते। शाम को मिठाई भी मिलती। पाठशाला से जी चुराने वाले बच्चे भी इन दिनों खुशी-खुशी वहाँ जाते और शाला में ही क्यों, घर में भी हमारी खातिरदारी होती। हाथों में मेंहदी रचाई जाती, मिठाई खिलाई जाती और नए-नए कपड़े पहनाए जाते।

इस प्रकार वास्तव में गणेश चतुर्थी का पर्व हम बच्चों के लिए आह्लाद, आमोद-प्रमोद और अच्छे मनोरंजन का पर्व होता। उस समय सिनेमा, थियेटर आदि की पूर्ति इन्हीं पर्वों के माध्यम से होती थी।

भादवे का एक और त्योहार था—गोगानवमी। हमारे वहाँ साँपों का बाहुल्य होने के कारण गोगा पीर की पूजा का बड़ा महत्व था। गोगाजी साँपों के देवता थे।

भादो बदी अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता। इस दिन महिलाएँ और पुरुष व्रत रखते। रात को १२ बजे शंख-घंड़ियालों की ध्वनि के बीच श्रीकृष्ण का जन्म होता। नाना प्रकार के भजन गाए जाते। पंजीरी का प्रसाद और मिठाइयाँ खा कर व्रत तोड़ा जाता। हम बच्चे व्रत तो नहीं रखते। हाँ, मिठाइयाँ खाने और फलाहार में अवश्य शरीक होते। मन्दिरों में सुरम्य झाँकियाँ लगतीं, जिन्हें देखने लगभग सभी लोग जाते। मुसलमान लोग मन्दिरों में तो नहीं जाते, बाहर खड़े रह कर मन्दिर की सजावट अवश्य देखते रहते। इन्हें इसमें किसी प्रकार से बुरा नहीं लगता।

आश्विन मास के पहले पक्ष में श्राद्ध शुरू हो जाते। परिवार के बड़ों की मृत्यु की तिथि पर हवन के बाद कौओं, गायों और ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता। श्राद्ध में पंचधारी के लड्डूओं का बड़ा प्रचलन था। बादाम और इलायची मिले हुए लड्डू मुझे आज मी अच्छी तरह याद हैं। बहुत प्रकार की मिठाइयाँ खाता रहा हूँ, पर वह स्वाद तो अलग ही था। इन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
दिनों ब्राह्मणों में खाने की होड़ लग जाती। बड़े घरों में पेट भर भोजन के बाद लड्डू खाने वालों को प्रति लड्डू एक आने से आठ आने तक दिया जाता। भूरा महाराज नामक एक युवक था। तन्दुरुस्ती और खुराक अच्छी थी। श्राद्ध में वह बीसियों रुपये कमा लेता, जो आज के सैकड़ों के बराबर हैं। श्राद्ध में बह बीसियों रुपये कमा लेता, जो आज के सैकड़ों के बराबर हैं। श्राद्ध के १५ दिनों में ब्राह्मणों के शरीर पर चिकनाई आ जाती।

रामलीला आश्विन सुदी एक से शुरू होती है और आश्विन सुदी १५ को रावण का वध तथा कार्तिक बदी एक को राम के राज्यतिलक के साथ समाप्त हो जाती। हमारे यहाँ कृष्णलीला का प्रचलन कम था, पर रामलीला प्रायः हर कस्बे में होती। हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे इन लीलाओं को देखते। इसके लिए कोई टिकट या शुल्क नहीं था। भगवान की आरती की थाली फेरी जाती। इसमें लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार पैसा, दो पैसा या एक आना डाल देते। अन्तिम दिन रामलीला वालों को कस्बे के प्रत्येक हिन्दू घर से चार आने से लेकर एक रुपये तक का चढ़ावा मिलता। इसके अलावा जब तक वे लोग गाँव में रहते, बारी-बारी सेठ साहूकारों के यहाँ भोजन का निमन्त्रण रहता। राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान आदि अपने-अपने वेशों में सजकर रथों या ऊँट के इक्के में आते। उनकी विधिपूर्वक आरती उतारी जाती और फिर चरण धोकर भोजन कराया जाता। हम बच्चे राम और सीता को वास्तविक देवता ही मानते थे। एक दिन 'रामजी' मुझसे बोले भी थे। उस बात को मैंने कई दिनों तक बड़े गर्व से अपने साथियों को बताया था। मेरे लिए वह इतनी गौरव की बात थी थी कि जितनी आज प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति से बात करके भी शायद नहीं होती।

दशहरे के दिन रावण वध होता। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाथ भयंकर रूप धारण कर मञ्च पर आते। जब वे बन्दर बने हुए छोटे-छोटे बच्चों को उछालते और उन्हें चपत या मुक्के मारते तो हमें बड़ा डर लगता।

लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम विलाप करते तो पास बैठी सारी जनता सुबक-सुबक कर रोने लगती। जिस दिन रावण और कुम्भकर्ण का वध होता, हर्ष की लहर दौड़ जाती। लोग 'भगवान की जय', 'लक्ष्मण की जय' और "पवनसुत हनुमान की जय' के घोष से वायुमण्डल को गुंजा देते।

सच पूछा जाय तो आज के सिनेमा, थियेटर और सस्ते कला-प्रदर्शनों से वे कहीं ज्यादा मनोरजक थे, वे धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन, जिनमें हिन्दू, जैन, मुसलमान सभी उत्साह से शमिल होते।

कार्तिक लगते ही खेतों में बाजरे के सिट्टे, मतीरे और ककड़ी आदि चीजें पक जातीं। इन दिनों घरों में अक्सर शाम का खाना नहीं बनता, क्योंकि लोग दिन में मौसम का यह मेवा छक कर खा लेते। कुछ लोग आस-पास के गाँवों या खेतों में चले जाते। जाट लोग बड़े प्रेम से मोरण (बाजरे के भुने दाने), मतीरे और ककड़ी आदि खिलाते। कीमत का तो उन दिनों प्रश्न ही नहीं था, बल्कि घर लौटते तो बच्चों के लिए कुछ साथ में बाँध देते।

सरदार शहर के मतीरे न केवल हमारे थली प्रदेश में, बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान में सबसे अधिक मीठे होते थे और आज भी होते हैं। जमीन पर लम्बी पसरी हुई बेल पर जब मतीरा पकने आ जाता तो कुछ लोग बालू में गढा खोदकर मतीरे को गाड़ देते। पन्द्रह-बीस दिन बाद यही मतीरा न केवल आकार में बड़ा हो जाता, बल्कि उसकी मिठास में भी अधिकता आ जाती। ये मतीरे थली प्रदेश और उससे बाहर जयपुर, जोधपुर आदि रियासतों के बड़े-बड़े कस्बों में तो जाते ही, इसके अलावा लोग-बाग इन्हें अपने स्नेही जनों, व सम्बन्धियों के पास कलकत्ता, बम्बई, असम आदि दूर-दूर के मुकामों में भी भेजते।

राजस्थान का सबसे बड़ा पर्व दीवाली है। कार्तिक के कृष्ण पक्ष में दीवाली की तैयारियाँ शुरू हो जातीं। सभी अपने-अपने मकानों की सफाई में लग जाते, वर्ष का पुराना कूड़ा-करकट रद्दी फेंक कर नया रंग लगाया जाता और सजाया जाता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम बच्चे भी छोटे-छोटे झाडूओं से घर आँगन बुहारते और चीजों को करीने से लगाने में दादाजी व अम्माजी की मदद करते ।

कहते हैं कि इसी दिन श्रीराम लंका-विजय करके अयोध्या लौटे थे । उनके स्वागत में अयोध्यावासियों ने जो उत्सव मनाया था। उसी को पाँच हजार वर्षों से उत्तर भारत के हिन्दू मनाते आ रहे हैं । कालान्तर में इसे जैन सिख आदि सभी मनाने लगे । लक्ष्मी-पूजन इसी दिन होता है, इसलिए व्यापारी वर्ग का यह सबसे बड़ा पर्व है ।

इस दिन हम वर्षों के रखे हुए दीपक निकाल कर उन्हें भली प्रकार पोंछते, माँ और दादाजी नई बत्तियाँ बँटकर उनमें रखते जाते । घी और तेल डाल कर शाम होते ही इन्हें जला लिया जाता और हवेली के बाहर, पिछवाड़े, ऊपर छत पर, सभी तरफ सजा दिया जाता, गाँव में सब तरफ रोशनी ही रोशनी नजर आती ।

लक्ष्मी-पूजन के बाद हम लोग बड़ों को प्रणाम करते और दादाजी या पिताजी के साथ बाजार की रोशनी देखने चले जाते । सारा बाजार दीपको और गैस की लालटेनों की रोशनी से जगमगा उठता । बाजार की मुख्य सड़क पर बालू बिछाकर पानी का छिड़काव करा दिया जाता । दूकानदार अपनी-अपनी दूकानों के आगे तख्त या पलग बिछा कर आने-जाने वालों का पानसुपारी से समुचित सत्कार करते । कहीं-कहीं ग्रामोफोन पर मधुर गीत चलता तो उसे सुनने के लिए अनेक लोग खड़े रहते । स्त्रियाँ भी दीवाली की सजावट देखने के लिए बाजारों में आतीं ।

दीवाली के दूसरे दिन 'राम रमी' होती । सभी एक दूसरे से मिलते । छोटे बच्चे बड़ों के चरण छूते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते । बराबर की उमर वाले परस्पर अभिवादन करते । वातावरण आपसी मेलजोल और सौहार्द्र का हो जाता ।

तीसरे दिन भैयादूज का पर्व मनाते । इस अवसर पर विवाहित बहनें मिठाइयाँ लेकर आतीं और भाइयों को नाना प्रकार के व्यजंन अपने हाथ से खिलातीं । वैसे हमारे यहाँ बड़ा भाई बहन के यहाँ का नहीं खाता, पर उस दिन इस परम्परा को तोड़कर बड़ा भाई भी छोटी बहन की मिठाइयाँ खा लेते । बहनों को इस भावपूर्ण सत्कार के बदले में भाई उन्हें यथाशक्ति उपहार देते ।

दीवाली के आठ दिन बाद गोपाष्टमी आ जाती । इसका भी हमारे यहाँ बहुत महत्व था । गायों और साँड़ों की पूजा की जाती । उन्हें गुड़, दाल और मिठाई खिलाई जाती । गोशाला पर मेला लगता जहाँ गोपूजन के बाद लोग श्रद्धानुसार रुपये चढ़ाते । एक आदमी कहता, "एक लगाओ, लाख पाओ ।" हम बच्चे रोटी या मिठाई लेकर जाते । हमें छोटे-छोटे बछड़े बड़े प्यारे लगते । उन्हीं को बड़े चाव से खिलाते ।

इसके बाद पड़ती देवोत्थान एकादशी । राजस्थान में चौमासे के चार महीने कृषि आदि में व्यस्त जीवन के होते; इसलिए इन दिनों विवाह-शादी और यात्रा मना थी । इस एकादशी के बाद यह बन्धन दूर हो जाता । विवाह और यात्रा के मुहूर्त निकलते तथा आठ महीने तक अर्थात् आषाढ़ सुदी ११ तक ये कार्यक्रम चालू रहते । पौष-माघ में हमारे यहाँ विशेष पर्व नहीं होते । माघ शुक्ला पंचमी यानी बसन्तोत्सव के दिन पीले कपड़े पहन कर लोग सरस्वती की पूजा करते और होली के चंगों को तैयार कर लेते । फाल्गुन वदी तेरस को शिवरात्रि का व्रत रखा जाता था । शिव-पार्वती की पूजा होती । होली का धमाल और ढप्प बजने आरम्भ हो जाते ।

दीपावली के अलावा यहाँ होली का पर्व सबसे बड़ा होता । फसल घर में आ जाती और जिस वर्ष अच्छा अनाज हो जाता, किसान प्रसन्नता से नाच उठते । डफ लेकर बच्चे और जवान घरों से निकल पड़ते । लड़कियाँ और बहुएँ भी होली के गीत गाने लगतीं । सारा वातावरण उल्लासपूर्ण हो जाता । जहाँ अश्लील गीत होते, वहीं भाव-पूर्ण और अच्छे गीत भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
होते थे–स्त्रियों और पुरुषों के अलग-अलग मनोहर गीत हैं—

मने पीलोसो पोमचियो रंगा दे, मोरी माय लूबर रमबा मैं जास्यूं।
मनो रामूड़ा रो टेवटियो घड़ा दे, मोरी माय लूबर रमबा मैं जास्यूं।
मने राठोड़ांरी बोली प्यारी लागै, मोरी माय लूबर रमबा मैं जास्यूं।
मने राठोड़ां रे घर परणाज्ये, मोरी माय लूबर रमबा मैं जास्यूं।
मने खींच्यां के मत देओ, मोरी माय लूबर रमबा मैं जास्यूं।
खींची कुटावैं मोरी माय, लूबर रमबा मैं जास्यूं।

(लड़की अपनी माँ से कहती है–ए माँ, मुझे पीली ओढ़नी रँगा दे, मैं लूबर खेलने जाऊँगी। ए माँ मुझे रामजी के नाम का कण्ठहार गढ़वा दे, मुझे राठौड़ों की बोली प्यारी लगती है, उन्हीं के यहाँ मेरी शादी कर देना। खींची राजपूतों के घर मत देना, क्योंकि वह मुझसे खिचड़ी कुटवाएँगे)।

हमारे यहाँ होली 'होलीधोरों' पर जलाई जाती, जो कस्बे का सबसे ऊँचा स्थान होता। होली की जेर (गोबर के बड़कुलों की माला) लेकर घर के जो सदस्य होलीदहन के लिए जाते, हम बच्चे भी उनके साथ ही जाते। अक्सर सारे गाँव के लोग वहाँ इकट्ठे हो जाते। गोबर के कंडों और आग की लकड़ियों का बहुत बड़ा अंबार लग जाता।

होली ल्याई ए फूंला की झोली, झिरमिटियो ले।
ओ कुण खेले ए केसरिए बागां, झिरमिटियो ले।
कानीराम खेले ए केसरिए बागां, झिरमिटियो ले।

इन सब के अलावा स्वस्थ दिल्लगी भी चलती। लोग सारे वर्ष के परिश्रम और थकावट को भूल जाते। हम बच्चे भी इस परिहास में सबसे आगे रहने का प्रयत्न करते। हमारे यहाँ एक पुराना कैमरा था। हम सड़क के बीच में एक कुर्सी डाल कर खड़े हो जाते। उस कुर्सी पर किसी देहाती को बैठा देते। कैमरे के चारों तरफ काले कपड़े का परदा करके फोटो लेने का अभिनय करते। देहाती का पोज लेने के लिए एक बार खड़ा कर देते। इतने में पीछे से एक लड़का कुर्सी खींच लेता। जब देहाती महाशय बैठते तो धम्म से नीचे गिर जाते। हम सब तालियाँ पीट कर हंसते और वह बेचारा खिसिया कर भाग जाता।

दो-तीन लड़के छत पर डोरी लटकाए रहते। डोर से एक हुक बँधी रहती। जब कोई राहगीर उधर से निकलता तो पीछे एक लड़का आता और चुपके से उसकी पगड़ी या चादर में हुक लगाकर भाग जाता। ऊपर वाले बच्चे डोर खींच लेते। पगड़ी या चादर के साथ ऊपर चली जाती। बेचारा राहगीर ठगा-सा रह जाता। पास-पड़ोस के लोग बच्चों को दो-चार पैसे दिलाकर उसकी चीजें उसे वापस करा देते। वैसे सभी इस नाटक में परोक्ष रूप से शामिल रहते थे। इसी तरह मजाक भी होते। जैसे हम एक रुपये को फिटकरी पिघलाकर जमीन में चिपका देते। रास्ता चलने वाला रुपया देखकर झुकता और उठाने का विफल प्रयत्न करता, तो आस-पास से आवाजें आतीं, ''कमा के क्यों नहीं खाते ?'' बेचारा शर्मिन्दा होकर चुपचाप चला जाता।

इसी तरह की एक और बात मुझे याद है। टीन के एक पेंदे में छेद करके सुतली डाल लेते और भीगे हुए कपड़े को इस पर जोर से खींचते। कुत्ते की भोंकने जैसी आवाज होती। राहगीरों, विशेष कर गाँवों के भोले-भाले लोगों के पीछे इस टीन की आवाज की जाती तो वे अपने वस्त्र फेंक कर भाग खड़े होते। हम सभी ताली पीट-पीट कर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होली की अन्तिम चारों रात में विभिन्न मुहल्लों में गीदड़ (डांडिया) नृत्य होता। चौराहे के बीच में एक खंभा रोप कर उस पर गैस की लालटेन लटका दी जाती। नगाड़ा रख देते, जिसे एक आदमी बजाता। उसके चारों तरफ गोलाकार रूप में युवक और प्रौढ़ तरह-तरह के वेश धारण करके, जिनमें वर-वधू का जोड़ा, सन्यासी, सेठ, डाक्टर और मेम सभी की नकल रहती, डण्डे लेकर नगाड़े की ताल पर पीपली, लूर, आदि लोकगीत गाते हुए नाचते रहते। एक अनोखा समा बँध जाता। सैंकड़ों स्त्री-पुरुष चारों तरफ खड़े होकर, आस-पास के छत-छज्जों पर बैठकर इस लोक-नृत्य का आनन्द लेते।

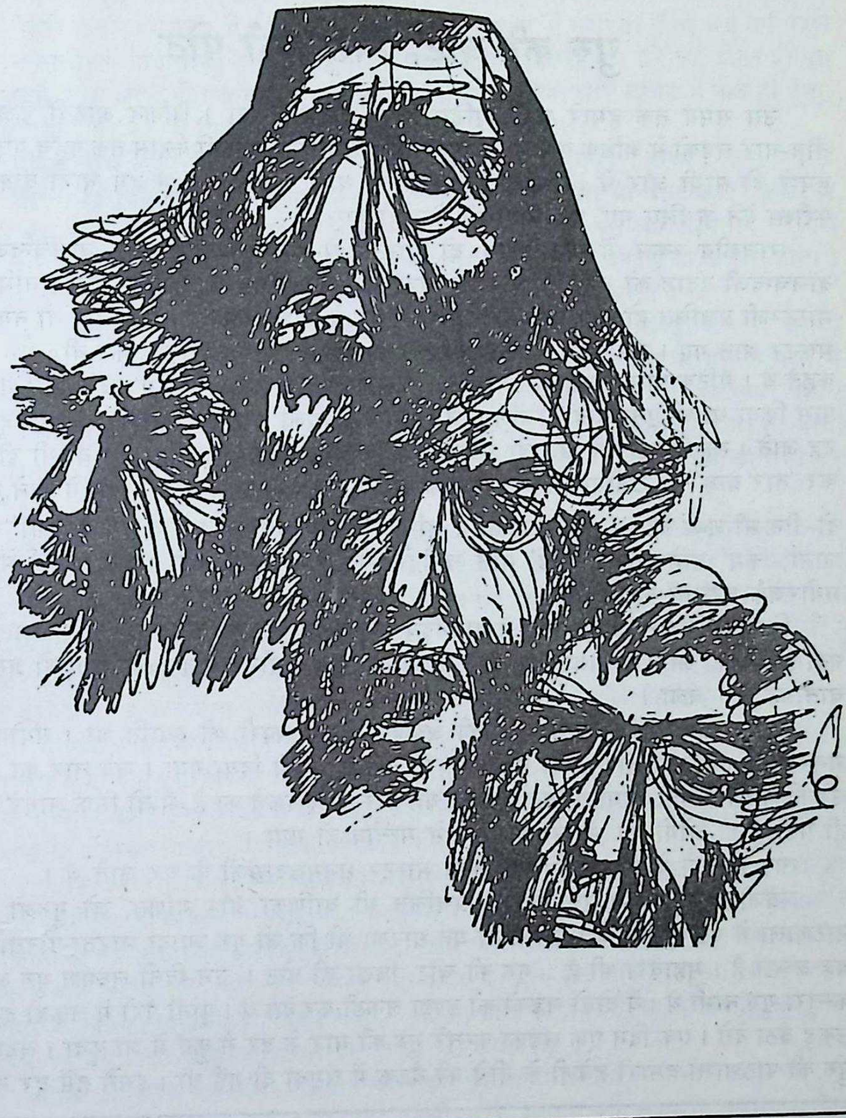

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुरु की चोट, विद्या की पोट

उस समय तक हमारे यहाँ मिडिल स्कूल खुल गया था। लेकिन आठवीं कक्षा के तीन-चार लड़कों से अधिक कभी नहीं पहुँचे। हम दोनों भाई आठवीं क्लास तक पहुँच गए थे। हमारे दो साथी और थे। परीक्षा केंद्र बीकानेर था। सन् १९२२ में हम चारों बीकानेर परीक्षा देने के लिए गए, पर चारों ही फेल हो गए।

राजकीय स्कूल में उस समय दो मास्टर थे–धनसुखदासजी और बालचन्दजी। बालचन्दजी ढूंढाड की तरफ के थे। वह 'यहाँ' को 'ऐंडे' कहते थे, इसलिए उनका नाम ऐंडे मास्टरजी प्रचलित हो गया था। एक वाणिका गुरु थे भीखारामजी। उसके बाद तो नये-नये मास्टर आते गए। उस समय के मास्टर अपने को आई० ए० पास न कह कर बी० ए० फेल कहते थे। मैट्रिक पास न कह कर आई०ए० फेल कहते थे। हमारे गाँव में सबसे पहले मैट्रिक पास किया था श्री पूनमचन्द आँचलिया ने। जब वह अंग्रेजी अखबार पढ़ते तब हम ताज्जुब में रह जाते। स्कूली पढ़ाई के अलावा अंग्रेजी की एक और शिक्षा-प्रणाली थी–ए बी सी डी पढ़ कर 'तार बाबू' या 'टेलीग्राफ टीचर' पुस्तक याद कर लेना। इसमें दैनिक काम में आने वाले दो-तीन सौ शब्द रहते। मुझे आज भी वे अधिकांश शब्द क्रमानुसार याद हैं। जैसे 'गो' माने जाना, 'कम' माने आना, 'बाई' माने खरीदो और 'सेल' माने बेचो। इस सन्दर्भ में दो मनोरंजक घटनाएँ बहुचर्चित हैं—

किसी व्यकित ने रोमन लिपि में तार दिया कि 'काका अजमेर गया।' उसके घर वालों ने पढ़ा कि 'काका आज मर गया।' वे लोग रो धो लिए। जब तीसरे दिन काका आए तो असली बात का पता चला।

एक लड़का ससुराल गया। उसकी अंग्रेजी की जानकारी की ख्याति थी। संयोग से ससुराल में एक तार तार आया हुआ था, जो उसे पढ़ने को दिया गया। जब तार का अर्थ उसकी समझ में नहीं आया तो वह बोला, "यह तार तो कलकत्ते का है, मैं तो सिर्फ आगरे तक ही पढ़ा हूँ।" लोगों को भी उसकी बात से सन्तोष हो गया।

तार पढ़वाने के लिए अधिकांश लोग मास्टर धनसुखदासजी के घर जाते थे।

अंग्रेजी पढ़ाई के अलावा ज्यादा प्रचलित थी वाणिका और गणित, जो गुरुओं की पाठशाला में पढ़ाए जाते थे। उस समय यह धारणा थी कि जो गुरु ज्यादा मारता-पीटता है, वह अच्छा है। मुहावरा भी है : 'गुरु की चोट, विद्या की पोट।' उन दिनों लक्ष्मण गुरु और कस्तूरा गुरु नामी थे। ये दोनों लड़कों को डण्डा लकड़ी कर देते थे। यानी पैरों में लकड़ी देकर उकडूं बैठा देते। एक दिन एक लड़का कस्तूरे गुरु की मार के डर से कुएँ में जा कूदा। लक्ष्मण गुरु की पाठशाला हमारी हवेली के नीचे की बैठक में लगवा दी गई थी। इससे हमें दूर नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाना पड़ता और हमारी पिटाई भी कम होती। शाम के समय पहाड़ों की 'म्हारणी' (राग लेकर पहाड़ा दुहराना) होती। एक लड़का बोलता, 'एक ऊँठा, ऊँठा' दूसरे लड़के बोलते 'दो ऊँठा सात।' लय और ताल के साथ बच्चों के स्वर उस समय बहुत ही अच्छे लगते थे।

उस समय मुड़िया (बिना मात्रा) हरफों का प्रचलन था। गोपीरामजी भरतिया के अक्षर बहुत सुन्दर माने जाते। हम बच्चों की भीड़ उनकी दूकान पर गत्ते लिखाने के लिए लगी रहती। इन गत्तों के ऊपर महीन कागज रख कर हम हरफ जमाते। आज भी मैं जब कभी मुड़िया हरफ लिखता हूँ, गोपीरामजी की याद आ जाती है।

मैं १६२४ में दिल्ली में मैट्रिक का इम्तहान देने गया। वहाँ एक महीने रहा। मेरे एक साथी स्वर्गीय सुमेरमल बोथरा थे। कुतुबमीनार के सामने एक मकान में आठ रुपये महीने पर एक कोठरी लेकर हम ठहरे थे। आज भी जब दिल्ली में उधर से गुजरता हूँ तो ४५ वर्ष पहले की उन बातों की याद ताजा हो जाती है। उस समय वहाँ (दिल्ली में) मेरे कई दोस्त हो गए थे, जिनमें दो से आज भी पत्र-व्यवहार चालू है। उस बार अंग्रेजी और गणित में फेल हो गया, इसलिए सन् १६२५ में फिर से परीक्षा देने हिसार जाना पड़ा।

मैट्रिक पास करने के बाद उसी वर्ष मैं पिताजी के साथ धुबड़ी (असम) चला गया।

उस समय विदेशी खेलों में हमारे यहाँ सिर्फ फुटबाल ही आया था बालीबाल, क्रिकेट व हाकी कुछ वर्षो के बाद आए। लोगों के पास पैसे का अभाव था, इसलिए आमतौर पर ऐसे खेल खेले जाते जिनमें मनोरंजन और व्यायाम तो होता, पर किसी प्रकार का खर्च न होता। ज्यादा लोकप्रिय थे—कबड्डी हरदडा, गुल्ली-डन्डा और सातताली आदि।

चाँदनी रात में बालू के टीलों में युवक और बुड्ढे टोलियाँ बनाकर कबड्डी खलते। हमारी उस रेत में ऐसा आकर्षण रहता कि पोपले मुहँ के बुड्ढे भी खम ठोंक कर सामने के पाले में 'कबड्डी-कबड्डी' बोलते हुए चले जाते और कभी-कभी तो पाँच-छह आदमियों को छूकर वापस आते। उस समय लोग उनका नाम ले लेकर उन्हें बढ़ावा देते रहते। जब अच्छी वर्षा हो जाती तो बालू के उन टीलों से एक ऐसी सोंधी महक निकलती, जो छोटे-बड़े सबके मन को मुग्ध कर देती।

बालू के ऊँचे-ऊँचे टीले मैंने अपने विश्वभ्रमण में और भी देखे हैं। बड़े-बड़े रेगिस्तान भी देखे हैं। आकाश को छूने वाली रेत की आँधी देखी है और देखी है बालू के बीच में बिखरी हुई बस्तियाँ। इजराइल, जोर्डन और सीरिया की सरहद पर 'अबूघोष' के इलाके के बालू के टीलों में बसे हुए लोगों की दर्दनाक कहानियाँ सुनी हैं। पर उनमें और हमारे 'थली' क्षेत्र के टीलों में अन्तर है। मध्य एशिया के मरुस्थल को निरपराध प्राणियों के रक्त ने सींचा है। सैकड़ों वर्षों तक वहाँ धर्मान्धता ने आग उगली है, राजनीतिक स्वार्थों ने हाहाकार किया है, पर हमारे इन टीलों में धरती माँ के किसान पूतों के श्रमबिन्दु हैं, उनके गाय-बैलों के चरण अंकित हैं। इसलिए ये टीले मनको अपनी ओर खीच लेते हैं। उषा की किरणों में और गोधूली की ललाई से ये मुस्कुरा ऊठते हैं। रात्रि में ये शांति की नींद सुलाते हैं, जबकि मध्य एशिया के वे टीले उदास हैं, रोते-से हैं और भयानक लगते हैं।

हमारे यहाँ पंजाब (जिसमें तब हरियाणा भी शामिल था) के पहलवान जब तब आते रहते, बाएँ पैर में सांकल लटकाए गाँव में घूमते। कोई सांकल रोकने वाला नहीं मिलता तो गाँव वालों को कुछ नकद रुपया और कपड़ा उन्हें भेंट देना पड़ता। एक बार एक पहलवान हमारे यहाँ आया और कई दिन घूमता रहा। जब कोई सांकल रोकने वाला नहीं मिला तो लोगों ने एक कयामखानी से जाकर कहा, "काका, गाँव की इज्जत का सवाल है, अगर आप अपने बेटे बन्नू को आज्ञा दे दें तो वह लड़ने को तैयार है।"

बन्नू की उमर उस समय लगभग बीस वर्ष थी, अभी उसकी मसें भीग रही थीं। रोज २५० दंड और ५०० बैठक के अलावा कुश्ती और मुगदर का अभ्यास करता। घर में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाय-भैंस थीं, इसलिए खाने-पीने की कमी थीं नहीं । दो दिन बाद दोनों की कुश्ती बदीं गई । आस-पास के गाँवों के लोग भी दंगल देखने आ गए। पहलवान का दैत्याकार शरीर देख कर लोग आतंकित थे । थोड़ी देर में ही पहलवान ने बन्नू को धरती पर औंधा गिरा दिया और गुद्दे जमाने लगा । हम लोगों ने सोचा कि बाजी हाथ से गई । बन्नू की मँगेतर भी दर्शकों में खड़ी यह सब देख रही थी । उसने चिल्ला कर कहा, "ए बन्नू, ऐसा न हो कि गाँव की हँसी हो जाए !" देखते क्या हैं कि बात की बात में बन्नू एक झपट्टा मार कर उठा और उसने पहलवान को सिर पर उठा लिया और चारों तरफ घुमाकर जोर से एक तरफ फेंक दिया । पहलवान को इतनी गंहरी चोट आई कि फिर से उठकर सामना करने का साहस नहीं कर रहा और मुँह वह छिपाकर एक ओर चलता बना ।

गाँव भर में इस दंगल की कई दिनों तक चर्चा रही ।

हमारे यहाँ सबसे पुरानी संस्था है 'पब्लिक लाइब्रेरी', जिसकी स्थापना १६०६ में हुई थी । यह संस्था इस समय तक सरदारशहर की सर्वांगीण शैक्षणिक उन्नति में प्रशंसनीय काम कर रही है । इस समय इसकी पुस्तक संख्या पच्चीस हजार के लगभग है । प्रति वर्ष डेढ़ लाख पाठक इससे लाभ उठाते हैं । मेरे विद्यार्थी जीवन के समय यह बहुत ही छोटे रूप में थी । थोड़े दिनों तक मैं इसका मन्त्री भी रहा । उस समय हमारे पास पैसों की कमी थी । इसलिए किताबों की जिल्द हाथ से बाँधते रहते । आज भी अपनी बाँधी हुई जिल्दें देखकर एक अनोखा आनन्द महसूस करता हूँ ।

दूसरी संस्था तेरापन्थी जैन श्वेतांबर सभा थी । इसमें बहुत सी हस्तलिखित प्राचीन जैन ग्रन्थ थे । आज भी यह संस्था अपने निजी भवन में मौजूद है ।

इनके अलावा 'मनोरंजन नाट्य परिषद' और 'सेवा समिति' नाम की दो संस्थाएँ थीं, जो सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती रहतीं । इन दोनों में नए-नए नाटक प्रस्तुत करने की होड़ लगी रहती थी । मुझे उस समय के देखे हुए कुछ नाटकों की याद है । जैसे 'श्रवणकुमार', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'भक्त मोरध्वज', 'गणेश जन्म', 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि । 'श्रवणकुमार' नाटक में राजा दशरथ के बाण से श्रवण की मृत्यु हो जाने पर जब उसकी माँ बिलख-बिलख कर रोई थी तब मुझे बहुत दिनों तक वह दृश्य याद आते ही रुलाई आ जाती । उस समय मैंने समझा था कि सचमुच ही श्रवण की मृत्यु हो गई है ।

एक दिन बड़ा मजा आया । पात्र की एक तरफ की मूँछ गिर गई । उसे पता नहीं चला । लोग बहुत जोर से हँसने लगे । इसी प्रकार एक बार हनुमान बने हुए पात्र ने जब एक राक्षस को पीट दिया (शायद पहले से कुछ झगड़ा था) तब दोनों में वास्तविक युद्ध छिड़ गया । राक्षस हनुमान से मजबूत था । उसने हनुमानजी को धर दबोचा और उसका मुखौटा और पूँछ उखाड़ कर फेंक दी, जब कि दृश्य था हनुमानजी द्वारा राक्षस पर विजय पाने का । शर्म के मारे इसके कई दिन बाद तक हनुमानजी घर के बाहर नहीं निकले ।

इनके अलावा झुझनूं शेखावटी की ओर से नौटंकी वाले आते रहते । उनका 'ख्याल' सारी रात चलता रहता । जगदेव कंकाली, अमरसिंह राठौर, सुल्ताना डाकू, रामू चनणा और डूंगजी झुहारजी आदि के ख्याल होते । ठंडी रात में नगाड़ों की आवाज पर नायक की लावणी की तान इतना जोर से गूँजती कि गाँव के दूसरे छोर तक सुनाई देती । उन दिनों माइक नहीं थे ।

किसी ढोलन (गाने वाली जाति की स्त्री) की आवाज भी बहुत ही सुरीली ओर दर्दभरी होती थी । एक बार महाराज गंगासिंह अपनी ताल की कोठी में ठहरे हुए थे । फाल्गुन का सर्द महीना था, रात के दस बज गए थे । ऐसे में मौलाबक्श मीरासी की स्त्री ने दर्द-भरी आवाज में एक गीत गाया । आधा मील पर ठहरे हुए राजा जी ने गीत को सुनकर अपने मुसाहिबों को स्त्री का पता लगाने भेजा । दूसरे दिन मिरासिन को बुलाकर बहुत सा इनाम दिया गया ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शार्दूल व्यायामशाला की स्थापना १९२२ के लगभग हुई । आरम्भ में तो यह संस्था बहुत अच्छी चली, पर आगे जाकर केवल स्नान करने वाले लोग ही वहाँ जाने लगे, क्योंकि वहाँ ट्यूबवेल का ठंडा पानी मिल जाता था ।

सनातन धर्म वालों की 'धर्म सभा' नाम की भी एक संस्था चलती थी । यह साधु-महात्माओं की सेवा और उनके प्रवचनों के आयोजन का काम करती थी ।

१९२१ के लगभग जयचन्दलालजी सेठिया ने 'नवयुवक मण्डल' की स्थापना की । इसके मुख्य कार्यक्षेत्र थे एक पुस्तकालय और एक औषधालय । पाँच-छह वर्ष बाद यह संस्था बन्द हो गई ।

इन संस्थाओं की देखा-देखी हम बच्चों ने भी 'सर्वहितकारिणी' नाम की एक संस्था चालू की । थोड़े दिनों बाद वह पब्लिक लाइब्रेरी में विलय हो गई ।

हमारे राजस्थान के कस्बों में गोशालाएँ सब जगह हैं । सरदारशहर में भी १९१८ में गौशाला की स्थापना हो गई थी । प्रति वर्ष कार्तिक सुदी आठे को गोपाष्टमी का मेला होता है । हम बच्चे घर से मिठाइयाँ ले जाते और यहाँ की गायों, साड़ों और बछड़ों को खिलाते । मैंने अपना पहला भाषण सन् १९२२ में इसी गौशाला में गोपाष्टमी के अवसर पर दिया था । शायद एक-दो मिनट बोला हूँगा । पैर लड़खड़ाने लगे थे और बदन पसीने से भीग भग गया था ।

गाँव में श्यामनारायण व डाक्टर डिगे—दो डाक्टर थे, जो पश्चिमी ढंग की चिकित्सा करते थे । उनकी फीस एक रुपया थी, पर इतनी बड़ी रकम देने की शक्ति धनी लोगों में ही थी । साधारण जनता वैद्यों से इलाज कराती । वे धनी लोगों से शुरू में एक रुपया लेते और रोग ठीक हो जाने पर लोग बाद में सामर्थ्य के अनुसार जो कुछ भी दे देते, वह सहर्ष स्वीकार कर लेते ।

वे काष्ठादिक दवाओं के अतिरिक्त कीमती औषधियाँ भी रखते । उनसे विश्वसनीय औषधियाँ प्राप्त हो सकती थीं साधारण लोगों से वे कोई फीस न लेते । केवल नारियल की भेंट से उनकी चिकित्सा शुरू हो जाती और उस समय नारियल का मूल्य था छह-सात पैसे ।

इनके अलावा में जैन यति भी चिकित्सा करते । वे नाड़ी के अच्छे पारखी होते थे उनकी चिकित्सा में मूल्यवान औषधियों का भी उपयोग होता था । पर वे औषधियाँ केवल अपने शिष्य को ही बतलाते थे । उनके कुछ चमत्कार भी सुनने को मिले हैं ।

आम तौर पर यह धारणा थी कि जैन यति अपने चिकित्सा-कौशल से, कीमती औषधियों के बल से या तपस्या के प्रभाव से रोगी को अच्छा कर देते हैं । इनमें से कौन सा कारण वास्तविक था, यह मैं नहीं कह सकता । आज के जमाने में ऐसे जैन यति चिकित्सक बिरले ही मिलते हैं । बहुत सी ऐसी बातें मशहूर थीं, जिन्हें आज कोरी बकवास ही कहा जाएगा ।

उन दिनों एक सिद्ध जैन यति की बड़ी चर्चा थी । कहते हैं कि एक गृहस्थ उनसे तिथि पूछने गया । उस दिन अमावस्या, पर यति के मुँह से निकल गया पूर्णमासी । वहीं पर बैठे हुए एक अन्य व्यक्ति ने उनकी भूल का खण्डन किया, पर यति ने मन में भूल स्वीकार करते हुए भी, ऊपर से फिर अपनी बात दुहराया, "नहीं, आज पूनम ।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बदनामी जल्दी फैलती है। गाँव भर में यतिकी इस नादानी की चर्चा फैल गई। पर रात को पूर्णमासी का पूरा चन्द्रमा आकाश में मुस्करा रहा था। सारा कस्बा आश्चर्य में डूब गया।

यह बात सच है या झूठ, मैं नहीं कह सकता। मैंने तो बड़े-बूढ़ों के मुँह से चर्चा सुनी थी, पर मेरा ख्याल है कि साधुओं के बात में बात का बतंगड़ इसी प्रकार से फैलता है। इनके चेला-चाँटी ऐसे मनगढ़न्त किस्सों को खूब फैलाते थे। हमारे कस्बे में साधुओं का बड़ा बोलबाला था।

वैद्यों और डाक्टरों के अलावा झाड़-फूँक वाले ओझे भी थे, जो मन्त्रों से रोग दूर करने का उपक्रम करते रहते। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक कारणों से इन्हें सफलता भी मिल जाती। रोगों के शमन के लिए देवी-देवताओं और पीर-पैगम्बर की मनौतियाँ भी मनाई जातीं। अनेक प्रकार के टोटके भी इस्तेमाल किये जाते। पर दवाओं के अन्वेषण की कमी और अन्धविश्वास का कुपरिणाम यह होता कि अनेक व्यक्ति, विशेष कर बच्चे, असमय में ही मर जाते।

मेरे पड़ोस में एक विधवा युवती थी, जिसे अक्सर हिस्टीरिया का दौरा आता था। दौरों के समय उसके घर वाले एक ओझा को बुलाते। वह लाल मिर्च और गन्धक का धुआँ उसके नाक और मुँह के पास देता और मन्त्र पढ़ता रहता। थोड़ी देर बाद जब उसकी चेतना लौटती तो वह बहुत ही व्याकुल होकर चिल्लाती, छटपटाती और जो कुछ ओझा कहलवाता उसी को दोहराती रहती। जैसे, 'मैं अमुक जगह की प्रेतनी हूँ, वहाँ से इसके साथ आ गई, एक बार मुझे छोड़ दीजिए, फिर कभी नहीं आऊँगी, आदि। हम बच्चों को यह सब देखकर बड़ा डर लगता था।

जादू-टोने करने के लिए कुछ महिलाएँ चौरस्ते पर सिंदूर, उड़द, गुड़ और कुछ पैसे आदि रख आतीं। उनकी धारणा थी कि यदि कोई व्यक्ति भूल से भी उन ठोकर मार देगा या उन्हें लाँघ जाएगा तो उनका रोग या पीड़ा उस व्यक्ति को लग जाएगी।

मैं एक ऐसे आदमी को जानता था जो पैसे और गुड़ वगैरा इन चौराहों से उठा लाता। न तो उसे कभी कोई बीमारी हुई और न किसी भूतप्रेत ने ही उसे सताया।

इन वैद्य-डाक्टरों के सिवाय राजस्थान के प्रत्येक कस्बे में एक दो नाड़ी ज्ञान वाले निःशुल्क वैद्य (सयाने) भी होते थे। हमारे यहाँ भी सूरजमल पंसारी और हरनारायण बजाज इसी श्रेणी के ऊँचे दर्जे के आयुर्वेद के ज्ञाता थे। कठिन से कठिन बीमारी में, जब कि दूसरे चिकित्सक निराश हो जाते, इनकी दवा कारगर सिद्ध हो जाती थी। किसी प्रकार की फीस और दवा के दामों का तो प्रश्न ही नहीं था। पता चलने पर धनी या गरीब सबके घर अपने आप पहुँच जाते। चाहे बैशाख-जेठ की दोपहरी की गरमी हो या पौष-माघ की ठिठुरती रात! उन्हें न कभी खून, कफ और मूत्र की परीक्षा की दरकार रहती और न स्टेथिसकोप और थरमामीटर से रोगी के दिल की धड़कन या बुखार देखने की जरूरत महसूस होती। भगवान का नाम लेकर वे नाड़ी पर हाथ रखते और दो मिनट बाद ही रोग का सही निदान बता देते।

एक बार मुझे भी कुकुरखाँसी हो गई थी। बहुत इलाज कराने के बाद भी लाभ नहीं हुआ। आखिर हरनारायणजी बजाज के काढ़ों से मैं ठीक हुआ। संयोगवश अगर दोनों एक साथ आ जाते तब तो फिर रोगी और घर वालों में इतना साहस हो जाता कि रोग तो इसी से मिट जाता। बहुत दिनों बाद मैंने श्री ताराशंकर बनर्जी का 'आरोग्य निकेतन' पढ़ा। उसके 'जीवन महाशय' का चरित्र पढ़कर मुझे अपने गाँव के इन दोनो महानुभावों की याद आ गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक बात अवश्य उल्लेखनीय है कि उस समय बच्चों की चिकित्सा के बारे में बहुत कम अन्वेषण हुए थे। पचास प्रतिशत बच्चे एक वर्ष के भीतर ही पीलिया, चेचक और पेट की बीमारी से मर जाते थे। अन्धविश्वास के कारण इनको वैद्य-डाक्टरों की दवा न दिला कर झाड़-फूँक और देवी-देवताओं की मनौती के भरोसे छोड़ दिया जाता।

उस समय लोग आमतौर पर पुराने धार्मिक विचारों के थे, इसलिए साधु-संतों पर उनकी बहुत आस्था थी। विभिन्न धर्मों के साधुओं के प्रवचन होते रहते थे। हरिद्वार, ऋषिकेश, वृन्दावन आदि से साधुओं की टोलियाँ अक्सर ही आती रहती थीं। खास कर चौमासे (वर्षा ऋतु) में तो बड़े-बड़े नोहरों और धर्मशालाओं में इनके डेरे लगे रहते। आस-पास के गाँवों से भी लोग इनके प्रवचन सुनने को आ जाते।

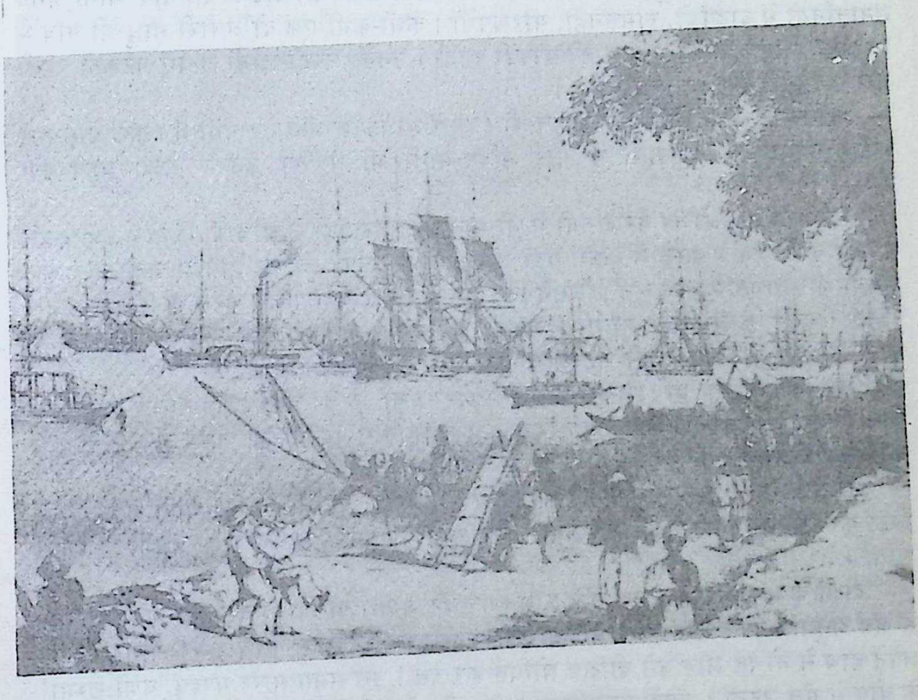

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टोडरमल जीत्याजी

कई प्रकार की साधु-संस्थाएँ थी, जैसे जैनियों में तेरापंथी, बाईसपंथी, मंदिरमार्गी आदि सनातनियों में दादूपंथी, रामसनेही, गोरखपंथी। कभी-कभी एक दो अघोरी साधु भी गाँव में आ जाते, जिनके हाथ में मनुष्य की खोपड़ी रहती। उनकी लम्बी-लम्बी जटाएँ लटकती रहतीं और बदन पर सिन्दूर पुता होता।

ओसवाल जैनियों की संख्या बहुत थी। इनमें अधिकांश जैनी तेरापंथी थे। कुछ ओसवाल बाईस संप्रदाय के अनुयायी थे और मंदिर-मार्गी भी थे, पर उनकी संख्या बहुत कम थी।

तेरापंथी साधुओं का गैरजैनियों में भी मान था। तेरापंथी के आचार्य, जिन्हें पूजजी कहते थे, जब कभी हमारे कस्बे में आते, बड़ी धूम-धाम से उनका स्वागत होता। जैनी और कुछ अजैनी भी स्वागत में भाग लेते। जितने दिन पूजजी हमारे यहाँ प्रवास करते, बड़ी चहल-पहल रहती। दूसरे कस्बों और गाँवों से सैकड़ों स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ आते। इनके ठहरने और खाने-पीने की व्यवस्था रहती सेठ श्रीचन्दजी गधय्या की तरफ से।

मैंने बचपन से ही इनका दीक्षा-संस्कार देखा है। छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ माता-पिता, घर-परिवार, धन आदि सब कुछ त्याग कर आचार्य की शरण में जाकर साधु बनने की दीक्षा लेते।

दीक्षा के पहले दिन विरागी की धूम-धाम से सवारी निकाली जाती। चाँदी के इक्के पर बिठा कर उसे नगर भर में घुमाया जाता। बड़े मान-सम्मान के साथ घरों पर निमंत्रित किया जाता।

दीक्षा के समय आचार्य एक ऊँचे आसन पर बैठ जाते। बालक या बालिका के मातापिता से जब अनुमति मिल जाती, तब वे जैन मंत्रो का सस्वर उच्चारण करते हुए विरागी के केश अपने हाथ से नोचते और उसे दीक्षित घोषित कर देते। उस समय सारा मण्डप 'घणी खम्मा' के घोष से गूँज उठता। उसके मातापिता, स्त्री, पति, बेटा-बेटी, नाती-पोते उसी समय अपना सब सम्बन्ध समेट कर, उस विरागी के सामने घुटने टेक कर वंदना करते।

दीक्षा-समारोह में लोगों द्वारा इतनी दिलचस्पी लिए जाने का कारण, कौतूहल के साथ-साथ शायद श्रद्धा की भावना भी थी। हम बालकों के मन में ऐसी कोई भावना नहीं थी। हमें तो ऐसी चहल-पहल, मेला और जमाव अच्छा लगता था। केश नुचवाते देखकर कभी-कभी हम औरों की आँखें छिपा कर अपने केशों को भी खींचकर उस पीड़ा का अनुभव करते। हममें से अनेक को यह दृश्य देखते हुए डर भी लगता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शायद स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक श्रद्धालु होती हैं। धर्म के प्रति अपनी विशेष आस्था अनुरक्ति एवं प्रवृत्ति के कारण अथवा समाज तथा परिवार में अपनी विशिष्ठ स्थिति के कारण स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक संख्या में साध्वी होती थीं और आज भी ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है। सबसे पहले मैंने सेठ भैरोंदान भंसाली के बाग में दीक्षा-समारोह देखा था। इस समारोह में छोटे-बड़े बहुत से लड़के-लड़कियों नें दीक्षा ली थी। बड़ा भारी मेला लगा था। उसमें हजारों नर-नारी उपस्थित थे। याद है कि केशों के नुचाते समय कई लोगों के नेत्रों में आँसू उमड़ आए थे।

कम उमर के जो लोग मुनि-धर्म की दीक्षा लेते थे, वे इतनी गहराई तक जैन धर्म को समझ लेते थे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। कभी-कभार कोई साधु फिर से गृहस्थ हो जाता था, पर उसे फिर अपने घर में स्थान नहीं मिलता था। समाज में उसे अच्छी दृष्टि से भी नहीं देखा जाता था।

तेरापंथी और बाईस सम्प्रदाय के गृहस्थ दिसावरों में पाट, कपडे की दलाली, आढ़त, जूट का व्यापार और सोना-चाँदी और सट्टे में लाखों रुपया कमा कर 'देश' में ले आते और बड़ी-बड़ी हवेलियाँ बनवाते और जैन साधुओं की सेवा करते। तेरापंथी सम्प्रदाय की उस समय तक यह मान्यता थी कि कुएँ, धर्मशाला या पाठशाला बनाना धर्म की बात नहीं हैं। इस बारे में यहाँ तक कहा जाता था कि कुएँ और तालाब के पानी में जीव जन्मते और मरते रहते हैं उसका पाप लगता है कुआँ बनवाने वालों को। आजकल धारणा बदल गई है और कई प्रकार की सार्वजनिक संस्थाएँ इनके द्वारा संचालित हैं।

अग्रवाल माहेश्वरी, ठाकुर और अन्य जातियों के लोग वैष्णव या शैव थे। इसलिए गाँव में हिन्दू साधु-सन्त भी अक्सर आते रहते थे। यह अवश्य है कि हिन्दू साधुओं के स्वागत-सत्कार में जैनी ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखाते थे। हिन्दू साधुओं के स्वागत में भाग लेने वाला वर्ग उतना धनी भी नहीं था।

हमारा परिवार रामसनेही था। बड़े-बड़े महात्मा इस पंथ में हुए हैं। उस समय उनकी पूरी वंशावली हमें याद थी। सरदारशहर में जब कभी बाहर से सन्त-महात्मा पधारते तो अपने दादाजी और पिताजी के साथ हम बच्चें भी प्रवचनों में जाते थे। हमारे दादाजी बहुत वृद्ध होने पर भी छह घण्टे प्रतिदिन 'राम नाम' का पाठ करते थे।

हमारी तरफ नाथ-सम्प्रदाय में कुछ सिद्ध साधु हुए हैं। हमारे बड़े-बूढ़े उनकी गाथाएँ सुनाया करते थे। कहते हैं कि एक बार कलकत्ता में एक बड़े महाजन को 'कीड़ी नगरा' की बीमारी हो गई। अंग्रेजी में इसे 'गैंगरीन' कहते हैं। शरीर के जिस भाग में इस रोग के कीटाणु लग जाते हैं, उसे गला डालते हैं। बाद में उस अंग को काटना पड़ जाता है। जब हर प्रकार के इलाज से कलकत्ता में लाभ नहीं हुआ तो सेठजी महात्मा अमृतनाथ की शरण में आए। नाथजी ने घाव देख कर कहा—"कीड़ियाँ तो पुराना खाती हैं, इसलिए इस पर पुराने बाजरे का दलिया बाँध कर देखो।"

जो रोग अनेक डाक्टर-वैद्य अच्छा न कर सके, वह तीन दिन में समाप्त हो गया। ऐसी ही अद्भुत कथा एक अन्य महात्मा के बारे में सुनी थी। कुछ लोग उनसे मिलने गये। देखा कि महात्मा जी आसन पर बैठे हैं। बगल में काला कम्बल काँप रहा है, हिल रहा है। लोगों ने साश्चर्य पूछा,— "यह क्या है, महाराज ?"

"शरीर का भोग है। दो-तीन दिन से भयानक ज्वर आ रहा है। आप लोग इतनी दूर से मिलने आये, सो इसलिए कुछ देर के लिए यह भोग मैंने अपनी कंबली को सहेज दिया है।"

ऐसी अनेक घटनाओं की चर्चा हम सुनते थे, देखी एक भी नहीं। और, आज तो सोचता हूँ कि ये सब मनगढ़न्त बातें लोगों को प्रभावित करने और फुसलाने के लिए प्रचारित की जाती थीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दादू पंथियो का हमारे कस्बे में स्थायी डेरा था और आज भी है। इस पन्थ के उस समय के संचालक स्वामी रामदयाल जी समाज और साहित्यसेवी थे। उन्हीं के प्रयत्न से वहाँ एक धर्मशाला, हनुमान मन्दिर, पानी का कुण्ड और मनोरंजन नाट्य परिषद का रंगमञ्च आदि बने। सरदार शहर का बड़ा ताल (मैदान) भी उन्हीं के प्रयत्नों से सुरक्षित रह सका।

शादी विवाह बचपन में ही हो जाते थे। सगाई तो चार-पाँच वर्ष की उमर में ही हो जाती। विवाह दस-बारह वर्ष की अवस्था में होते, पर वधू ससुराल जाती विवाह के तीन या पाँच वर्ष बाद जब गौना होता। राजस्थान के उस अंचल का जीवन कठिन और शुष्क होता था, इसलिए शादी-विवाह के अवसरों पर लोगों में उत्साह और आनन्द छा जाता था। गाँव छोटे थे, इसलिए लड़की को दूसरे गाँव में देते और अन्य गाँव की लड़की को अपने यहाँ बहू बनाकर लाते। उस समय तक बैठे विवाह (लड़की को लड़के वाले के यहाँ लेकर जाना) का रिवाज नहीं था। इसे लोग अपमानजनक मानते। लड़के वाले सैकड़ों आदमी की बारात लेकर जाते। जहाँ रेल नहीं होती, वहाँ ऊँटों और रथों की कतार बन जाती। किसी-किसी बड़े महाजन, सेठ या ठाकुर की बारात में हाथी भी रहता।

बरात के पहले वर पक्ष के लोग मित्रों या सम्बन्धियों से चौका कराते, यानी उन्हें बरात में जाने का आमन्त्रण देते। किसी-किसी बरात में तो चार-पाँच सौ तक बराती हो जाते। लोगों में बहुत दिन पहले से ही चर्चा होती कि फलाँ के लड़के की बरात अमुक गाँव जाएगी। वे आमन्त्रण यानी 'चौका' की राह देखते रहते।

इस सन्दर्भ में मुझे एक दिलचस्प बात याद आ जाती है, जिससे पता चलता है कि लोग बरात में जाने को कितने उत्सुक रहते। एक साधारण गृहस्थ की बरात जाने की थी। पड़ोस के एक व्यक्ति को आमन्त्रित नहीं किया गया, लेकिन वह बरात जाना चाहता था। अपने बेटे के साथ वह नये कपड़े पहन कर वर-पक्ष के घर के सामने खड़े हुए एक ऊँट पर सवार हो गया।

जब वर पक्ष के बरातियों के लिए सवारी नहीं मिली, तब वर पक्ष के पिता को पता चला और उसने कहा कि 'अच्छा हुआ आप आ गए। मैं तो काम के झंझटों में आपका का 'चौका' करना भूल गया था।' पड़ोसी ने बिना किसी झेप के उत्तर दिया कि 'चौका तो गाँव वालों के लिए होता है; हमारे तो घर के लड़के का विवाह है।' उसी समय एक और ऊँट दो बरातियों के लिए मँगाया गया।

इन बरातों का महत्व इसलिए भी अधिक था कि उन दिनों वायु-परिवर्तन के लिए या भ्रमण के लिए पहाड़ी स्थानों या दूसरे शहरों में जाना सम्भव नहीं था, क्योंकि लोग बहुत ही कम खर्च में जीवनयापन करते थे। मित्रों के साथ तीन-चार दिन तक दूसरे कस्बों में घूमने-फिरने और मौज-मस्ती करने का अवसर मिलता, हँसी और चुहल का उन्मुक्त वातावरण रहता। बरात में बुड्ढों का मन भी बच्चों और युवकों का सा हो जाता था। जनवासे के लोगो के साथ हँसी-दिल्लगी होती रहती। इस सन्दर्भ में मुझे कई प्रकार की घटनाएँ याद हैं।

एक बरात में एक दादा और पोता गए। दोनों की खुराक अच्छी थी। भोजन के बाद रात में दूध लेकर जनवासे में लोग आए। बराती थके हुए थे, इसलिए सो गए। उन्होंने दूध पीने से इनकार कर दिया। लड़की वालों ने व्यंग किया, 'घर में कभी दूध पिया हो तो पिएँगे।' दादा जग रहे थे। उन्होंने जवाब दिया, "पिया हुआ तो नहीं है, लेकिन आज पी लेंगे।" दस-बारह सेर दूध था। दादा ने जब आठ-नौ सेर दूध पी लिया, तो पोता बोल उठा, "कुछ मेरे लिए भी तो छोड़ो।" शेष बचा दूध पोते ने समाप्त कर दिया।

अब तो दूसरे बराती भी दूध की माँग कर बैठे। आधी रात को भला और दूध कहाँ से आता। शर्मिन्दा होकर बहू पक्ष के लोग वापस चले गए।

एक विवाह में बराती लोग जीमने बैठे। लड्डू कुछ कड़े थे। एक ने लड़की वालों को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बुलाया और ऊँची आवाज मे सबको सुना कर कहने लगा, "साह जी, कृपया ५० सिललोढ़े और ५० आदमी जल्दी मँगाइए।" कारण पूछने पर वह बोला, "सिल ठोढ़ी के नीचे रखेंगे, सिर पर लोढ़े की चोट लगेगी, कुछ मुँह का जोर लगाएँगे, तब आपके लड्डू फूट पाएँगे।"

सब लोग हँसने लगे लड़की वाले खिसियाकर रह गए।

इसी प्रकार एक विवाह में बादाम की बरफी बहुत पतली थी और कम परोसी जा रही थी। एक बराती ने पास बैठे एक बालक का चिकौटी काट दी। बच्चा चिल्लाया। लोगों ने रोने का कारण पूछा तो बराती महोदय बोले, "यह बादाम की बर्फ़ी के लिए रो रहा है। शैतान कहीं का, पूरी-साग नहीं खाता।" जब बादाम की बर्फी आई तब उस बाराती ने अपने लिए भी बहुत सी ले ली।

इन स्वस्थ हास-परिहासों के साथ-साथ कभी-कभी भोंड़े मजाक भी हो जाते थे। जनवासे वालों ने उनको सबक सिखाने का निश्चय किया। बरात के डेरे में से रात को किसी प्रकार उनके दो कुरते मँगा लिए गए। दूसरे दिन दो वेश्याएँ दोनों कुरते लेकर डेरे पहुँची और सब लोगों के सामने कहने लगीं कि 'आपके यहाँ से ये दो सेठ कल रात हमारे यहाँ गये थे; इनके पास पैसे कम थे। इसलिए उन्होंने ये कुरते गिरवी रख दिये थे। इनसे हमारे पैसे दिला दीजिए।'

दोनों बरातियों की शक्ल पहले ही वेश्याओं को चुपके से दिखा दी गई थी। बात इतनी प्रत्यक्ष थी कि शंका की कोई गुञ्जाइश नहीं रही। वे बेचारे बहुत ही शर्मिन्दा हो गए।

सिर पर लाल पाग और गुलाबी कमरबन्द सहित लाल बागा, मस्तक पर गोटे-किनारे का झूलता सेहरा, यह होती थी वर की पोशाक। मेंहदी लगे हाथ में रहती तलवार। वर घोड़ी पर चढ़ कर जुलूस के साथ लड़की वालों के यहाँ जाता और उनके दरवाजे पर लगे तोरण पर तलवार से या बेर की झाड़ी की हरी छड़ी मारता। इस जुलूस को 'ढुकाव' कहते। धनी महाजनों और जमींनदारों के ढुकाव सजे हुए हाथी पर निकलते। ढुकाव गाँव या कस्बा के मुख्य मार्गों, बाजारों से निकलता। जनवासे पहुँचते ही गुलाब-जल या केवड़ा-छिड़क कर और इत्र लगा कर बरातियों का स्वागत किया जाता।

भाँवरे या फेरे या आम तौर पर गोधूली या आधी रात की वेला में होते। लड़के-लड़कियों का विवाह छोटी अवस्था में ही कर दिया जाता इसलिए अक्सर देखा जाता कि वर और वधू फेरों में नींद्र ले रहे हैं।

बरातें प्रायः चार-पाँच दिन ठहरतीं। बराती लोग गाँव कस्बे के दर्शनीय स्थानों को देखते और ताश-चौपड़ आदि खेलों में मस्त रहते। रोज दोनों समय नए कपड़े पहन कर अपना शौक पूरा करते। घर में पानी के अभाव में जहाँ नहाने का नागा करना पड़ता, वहाँ बरात में तीन-तीन बार नहाते और वह भी एक बार में दस-बारह बाल्टी पानी से कम नहीं। राजस्थान में और हमारे इलाके में उन दिनों वैसे ही पानी की कमी थी, बरातें आ जातीं तो पानी की बड़ी समस्या हो जाती। लड़की वाले इस सवाल को लेकर बड़े चिन्तित रहते। लेकिन समाज और बिरादरी का मेलमिलाप इतना स्नेहपूर्ण था कि सब एक दूसरे की कठिनाई दूर करने को तत्पर रहते।

लड़की वाले की तरफ से प्रत्येक बराती को यथाशक्ति उपहार दिए जाते। विदा के समय लड़की को गहने और कपड़े दिए जाते। जंवाई और उसके घर वालों को भी पोशाकें और नकद धन दिया जाता। लेकिन आज कल की तरह ठहराव या सौदेबाजी नहीं थी। सस्ती का जमाना था मुझे याद है कि साधारण गृहस्थों के घरों में ५०० से लेकर दो तीन हजार रुपयों तक में विवाह हो जाते। गाँव में जान-पहचान के सभी घरों मे टीके या बान के रूप में नारियल और एक रुपया बेटी वाले को दिया जाता। यह बिरादराना स्नेह-सम्बन्ध का प्रतीक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था, जो आज भी सीमित रूप में चालू है। इससे जहाँ लड़की वाले का आर्थिक बोझ हल्का होता, वही सामाजिक स्नेह भी पलता-पनपता। सहकारिता का यह एक अनुपम उदाहरण था।

बरातें धर्मशालाओं में ठहरतीं। आज भी उनकी दीवारों पर स्याही या कोयले से लिखा हुआ मिल जाता है कि किस गाँव में किस संवत् में इतने आदमियों की बरात आई। अपने गाँव की तुलना में इस गाँव को हल्का बताने की भी चर्चा रहती। बरात की जीमनवार के समय वधू पक्ष की महिलाएँ बरातियों को सुन्दर भावपूर्ण सीठने (गालियाँ) देती रहती। यह प्रथा शायद रामायणकाल से ही चालू है। सीताजी के विवाह के समय भी राजा जनक के यहाँ की स्त्रियों ने अयोध्या के बरातियों को सीठने गाए थे।

बरात को औपचारिक विदा दी जाती, जिसे 'पहरावणी' कहते। बराती और जनवासे वाले सभी एक जगह बैठ जाते। दहेज का कागज पढ़ा जाता। सभी को तिलक किया जाता। औरतें गीत गातीं : 'पहरावणी सजन मिलावणी।'

और अंत में होती कन्या की विदाई। छोटी-सी बालिका को जब उनके घर वाले विदा करते, तब न केवल वह सुबक-सुबक कर रोने लगती बल्कि उसकी माँ, बहिनों, भाभियों, पिता, चाचा और भाई सभी की आँखें गीली हो जातीं। वे सब उसे गले से लगाकर आशीर्वाद के साथ-साथ कुछ नकद भेंट भी देते। उस समय जो हृदयस्पर्शी गीत गाया जाता, वह वास्तव में इतना करुणाजनक होता कि हर किसी को रुलाई आ जाती।

परिवार रूपी आम्रकुंज की कोयल अपने माता-पिता, चाचा-चाची और भाई-भावज की ममता और प्यार भरी दुनिया छोड़ कर किसी परदेशी सुग्गे के साथ अन्य प्रदेश को उड़ रही है। सभी उसमें करुणार्द्र स्वर में पूछ रहे हैं, 'ए कोयल, तू माँ-बाप आदि का इतना लाड़-प्यार छोड़ कर कहाँ चल दी ?' 'ओल्यू' अर्थात् यादगीत की ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं

आंबा पाक्या ने आंबली, ए आंबा पाक्या ने आंबली,
मऊड़ो लहरा खाय, कोयलडी सिध चाली।
इतरो माताजी रो लाड़ छोड़ने सिध चाली।
म्हे थाने पूछा म्हारी लाड़ली, म्हारी धीवड़ी ऐ।
इतरो बाबोसा री लाड़, इतरो काको सा रो लाड़ छोड़ने सिध चाली।
रमती बाबोसा री पोल, रमती काकोसा री पोल,
आयो परदेशी सूवटियो, आयो बांगा से सूवटियो।
लेग्यो टोली में स्यूँ टाल सूरजमल ले चाल्यो,
ऐ थाने गायड़मल ले चाल्यो।

कन्या के साथ एक नाइन और उसका छोटा भाई जाते, इसलिए कि नए घर में पहली बार जा रही है तो उसका मन लगा रहे। ससुराल में वर-वधू के प्रवेश पर आरती उतारी जाती। उस समय का उसके स्वागत का गीत भी बहुत भावपूर्ण है

ओ तो जीत्यां आपरे बाबजी रै पाण, केसरियो लाड़ो जीत्यौ जी।
ओ तो जीत्योड़ा रा ढोल गुराय, टोडरमल जीत्या जी।

(हमारा लाड़ला दूल्हा अपने दादाजी, पिताजी और बाबाजी आदि परिजनों के बल पर नगाड़ों की आवाज के साथ वधू को जीत कर ले आया है।)

यह सामंती प्रथा का प्रतीक था, क्योंकि मध्ययुग में कभी-कभी विवाहों के अवसर पर आपसी युद्ध हो जाते थे।

वधू को दो-तीन दिनों तक बहुत लाड़-प्यार से रखा जाता। उसे गहने और कपड़े पहना कर सारे गाँव की बड़ी-बूढ़ियों के पाँव छूने भेजा जाता। उसकी हम उमर लड़कियाँ उसका घूघँट हटा कर मुहँ दिखाती और बहू के रूप की घर-घर चर्चा होती। मुँह दिखाई या पग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धार-जं में नकदी या गहने दिए जाते । इस प्रकार उसके पास कुछ धन यानी दादी हो जाता ।

देवी-देवताओं के यहाँ वर-वधू गठजोड़े से जाकर प्रणाम करते कुछ चढ़ावा में महिलाएँ मंगल-गान करती रहतीं ।

रे यह सन् १६२० के मार्च महीने में होली के दूसरे दिन हुआ । मेरी उम्र थी १० ५ एक महीने पहले से ही गीत और उत्सव शुरू हो गए । मेरे लिए गोंद के लड्डू भा और बहन के घर से भी मिठाई आई । दोस्तों को देने के लिए मिश्री, बादाम तों ते । शादी से पाँच दिन पहले हल्दी हाथ हुआ । परिवार की सुहागिनों ने हाथों औ हलदी लगाई, उबटन किया और मामा ने चौकी पर से उतारा । और अब मैं र की दूल्हा) बन गया । हाथों में लोहे की पतली छड़ का गेड़िया (स्टिक) और तन ो चाबो रंग के कपड़े बराबर रहते । कानों में मोती की बालियाँ और चोपड़े कि में गोप (जड़ाऊ गलपट्टी) और हाथों में सोने के कड़े पहनाएँ गए । मुझे याद है भीं ये सब गहने नहीं थे, इसलिए हमारे पड़ोसी श्री भैरोदान आँचलिया के यहाँ से ती थे ।

सकी भी मुझसे प्यार और अदब से बात करते थे । मुझे लगता कि मैं बहुत बड़ा हो प्र प्रकार का गौरव-सा महसूस करता । शादी से पहले दिन 'निकासी' (घुड़चढ़ी) द घ लाल बागा पहनाया गया, जो वर की अनिवार्य पोशाक थी । गले से घुटनों तक ी बहिस चोगानुमे बागे पर ऊपर से नीचे तक जरी की सुनहली धारियाँ थी । मखमल लिए म्यान में छोटी-सी कटार मेरे कंधे में लटका दी गई । कमर पर गुलाबी कपड़े में त्काल नारियल बाँध दिया गया । माथे पर तारों का तिलक, सिर पर पाग और उस र और सेहरा । एक अजीब स्वांग-सा लगने लगा । रात में बहन मनोहरी देवी के तरह कमर में बँधे हुए नारियल से मुझे तकलीफ हो रही थी । मैंने बहन से कहा तो यल सहित कमरबंद खोल कर अलग रख दिया, जब कि ऐसा करना सगुन की नत अशुभ था ।

दिन सुबह बरात रतनगढ़ के लिए रवाना हुई । उन दिनों रेलो में सवारी डिब्बो तिल्लती, इसलिए बारातें माल के खुले डिब्बों में आती-जाती । एक सुविधा भी रहती । आनेकर आराम से बैठ जाते और ताश चौपड़ खेलते रहते । हमारी बरात में से भी कुछ रुपये माल के डिब्बों में जाना पडा ।

६ रतनगढ़ पहुँची, जो हमारे यहाँ से ३० मील दूर है । बरातियों की संख्या करीब च हमें दो-तीन स्थानों में ठहराया गया । मेरे ससुराल वाले कलकत्ता में रहते थे । तेक्षा वे सम्पन्न भी थे । इसलिए शादी में उन्होंने जी खोलकर खर्च किया । वहाँ बरात रही । खातिरदारी अच्छी हुई । सब बरातियों को भेंट दी गई । हमारे परिवार के मायों को शालदुशाले ओढ़ाए गए । आज भी कमवेशी रूप में ये रिवाज चालू हैं । न दिनों की एक प्रथा थी । किसी गाँव में जब किसी दूसरे गाँव से बरात आती तब वर र की ओर से अपने गाँव की सभी व्याहता बहन बेटियों को मिठाई भेजी जाती । साथ में से लेकर एक रुपया तक उपहार भी । आवागमन के साधन कम थे । इसलिए इनको ने का मौका कम मिलता, पर जब कभी उन्हें यह छोटा सा उपहार मिलता, उन्हें र की याद आ जाती और वे गद्गद् हो जातीं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज़लम जलम गुण गाऊं रे कागा

राजस्थान के हमारे इलाके में वर्षा पर खेती निर्भर रहती। वर्ष में केवल एक ... होती। जिस साल वर्षा समय पर नहीं होती, उस साल अनाज नहीं होता। किसान ब... की तरफ करुणा-भरी दृष्टि से देखते रहते। आषाढ़ सूखा चला जाता तो चिन्ता की रे... चेहरों पर उभर आतीं। इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए जगह-जगह यज्ञ किये जाते। पर अधिकांशत: लोगों की आशाएँ धूमिल हो जातीं और जब आश्विन निकल जाता, तब खेत में जो कुछ चारा-दाना या थोड़ा सा अनाज होता, उसे बटोर कर घर ले आते। गाँवों में मातम छा जाता। लोग आपस में बातें करते कि भगवान की यही मरजी थी।

अधिकांश खेत ठाकुरों के होते, इसलिए जोतदार किसानों को उन्हें थोड़ा-बहुत लगान भी देना भारी हो जाता। वैसे कुछ ठाकुर या जमींदार दयावान भी होते थे, पर कहीं-कहीं बहुत निर्दयता भी बरती जाती थी। यहाँ तक कि किसानों के ऊँट-वैल और गाय-भैंस आदि जब्त कर लिए जाते। घर में सियापा-सा पड़ जाता। जिस समय ठाकुर के आदमी इन पशुओं को हाँक कर ले जाते, घर वाले रोने-कलपने लगते, जैसे उनके अपने बच्चों को ही ले जाया जा रहा हो। ये ठाकुर राजा के छुट-भैया होते, इसलिए राज्य में गरीबों की कोई सुनवाई नहीं होती थी। कभी-कभी इन्हीं दु:खित और सताए हुए घरों के युवक बदला लेने की भावना से ठाकुरों के दल में मिल जाते।

मेरे जन्म के १० वर्ष पहले विक्रम सवत १९५६ में राजस्थान में बहुत भीषण अकाल पड़ा था। इसे 'छप्पनिया' अकाल कहते हैं। मैंने लोगों को गीत गाते हुए सुना था, 'छप्पनिया रे अकाल, फेरूँ मत आजे म्हारे देश।' (अरे छप्पन के अकाल, हमारे देश में फिर कभी मत आना।) रेल और ट्रकों का यातायात था नहीं, ऊँट और बैल मर गए थे, इसलिए दूसरे प्रान्तों से अनाज और चारा नहीं पहुँच सका। लोगों की कमर में रुपयों की 'नाली' बँधी रही और वे अनाज के अभाव में भूख से तड़प-तड़प कर मर गए।

मेरी दादी कहा करतीं कि गाँवों के रास्तों में गाय-भैंस, ऊँट-बैल और आदमियों के ककाल चारों तरफ बिखरे पड़े थे। भयानक दृश्य था। आज तो यदि देश के किसी हिस्से में भूख से लोगों के मरने की जरा भी रिपोर्ट मिले तो विधान सभा और संसद में सरकार को जबाब देना मुश्किल हो जाए, पर उस समय कानून-कायदे राजाओं के हाथ में थे, उनकी मौजशौक अबाध गति से चलती रहती थी।

संवत् १९५६ में जितना बड़ा अकाल पड़ा, १९५७ में उतना ही अच्छा जमाना (फसल) हुआ। लोगों के पशु मर गए थे, इसलिए स्त्री-पुरुषों ने अपने कंधों पर हल जुआ रखा और खेतों की बुआई की। मन मे डर भी था कि इस बार भी वर्षा न हुई तो क्या होगा?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सलाधार वर्षा हुई। भादों में भी पानी बरसा। जहाँ बुआई नहीं थी, वहाँ भी अनाज हो गया ा। दादीजी कहती थीं कि लोग भूखे थे, सब्र था नहीं; इसीलिए कच्चे अनाज को ही ोड़-तोड़कर खाने लगे। उस साल अनाज इतना सस्ता हो गया कि बनियों ने अपने कोठे भर लिए।

मेरे द्रादाजी ने अपने बचपन में संवत् १६०० और १६०१ के अकालों की कथा सुनी थी। वे ५६ के अकाल की तरह भयंकर तो नहीं थे, किन्तु दो साल लगातार सूखा पड़ने से उत्तर भारत में हांहाकार मच गया था। उस समय जनसंख्या वैसे ही थोड़ी थी और इन अकालों के कारण इनमें से अधिकांश लोग मर गए। लोगों ने इन दोनों अकालों का नाम 'सैया' और 'भैया' रख दिया। कहते हैं, ये अकाल इतने भयावह थे कि १६०१ में किसी घर में चक्की की आवाज आती तो १६०१ का दुर्भिक्ष 'भैया' १६०० के दुर्भिक्ष 'सैया' से कहता, 'चाकी चले रे सैया,' तो १६०० का दुर्भिक्ष आश्चर्य प्रकट करता, 'माणस बोले रे भैया!'

किसी-किसी कस्बे के सेठ-साहूकारों ने अकालों के समय राहत के काम शुरू किए और आज भी उस समय के बने हुए जोहड़, बावड़ी, तालाब, मंदिर और धर्मशालाएँ आदि देखी जा सकती हैं। इनके निर्माण की मजदूरी के बदले में आधा सेर अनाज प्रति व्यक्ति दिया जाता, जिसकी उस समय कीमत थी-दो पैसे।

प्रथम महायुद्ध के बाद कुछ समय तक तो वस्तुओं के भाव महँगे रहे; पर थोड़े ही दिनों बाद घटने शुरू हो गए और सन् १६३० तक सारे देश में मंदी का दौर छा गया। उस समय की बहियाँ हमारे यहाँ आज भी सुरक्षित हैं इनमें जो कीमतें लिखी हैं, वे आज़ की पीढ़ी के लिए आश्चर्य और कुतूहल की बातें लगती हैं। नीचे मैं दैनिक जरूरत की कुछ वस्तुओं के तत्कालीन भाव दे रहा हूँ। इनमें प्रति वर्ष थोड़ी सी घटा-बढ़ी होती रहती थी—

गेहूँ : ढाई से तीन रुपए मन; चना; मोठ और बाजरा : डेढ़ से दो रुपये मन; मूँग, अरहर और उरद की दालें : ढ़ाई से तीन रुपये मन।

चावल का खाद्य उस समय बहुत कीमती समझा जाता था, जो कभी बार-त्योहार पर हो बनता था। पंजाब के बासमती चावलों का भाव था आठ रुपये से १० रुपये मन तक।

घी : एक रुपया सेर; देशी चीनी : चार पाँच आने सेर; दूध : रुपये का १६ सेर; तिल्ली का तेल : रुपये का तीन साढ़े-तीन सेर; बादाम : सवा रुपये सेर; काजू : १०-१२ आने सेर, पिस्ता : दो रुपये सेर; दाख : आठ आने सेर; १० गज की धोती (जोड़ा) : सवा रुपये से डेढ़ रुपये तक; लट्ठा और मारकीन : दो आने से ढ़ाई आने गज तक; अच्छी मलमल ६ आने से आठ गज तक; जापान की रेशमी बोसकी (दो घोड़ा मार्का) १४ आने गज; अच्छी गाय के दाम : २५ रुपये से ४० रुपये तक : भैंस का मूल्य : ४० से ६० रुपये तक; बैल, घोड़े, ऊँट आदि उनकी नस्ल और चाल-ढाल पर निर्भर थी।

नागौर (जोधपुर) में प्रति वर्ष पशुओं का मेला लगता। वहाँ हमारे यहाँ से भी खरीदार जाते। एक बार ५०० रुपये में सौराष्ट्र की एक घोड़ी किसी महाजन के यहाँ आई, जिसे देखने के लिए आस-पास के गाँवों से कई दिनों तक लोग आते रहे। उस समय ५०० सौ रुपये की उस घोड़ी का महत्व रेस के अपने समय के सर्वोत्तम घोड़े 'औरेंज विलियम' से कम नहीं था।

हमें स्कूल जाते समय रोज एक पैसा मिलता था। उससे कभी तो दही में भीगी हुई दो कचौरियाँ ले लेते, कभी एक कचौरी और चार काँजी बड़े। जिस दिन दो पैसे मिलते, उस दिन मीठे और नमकीन दोनों का नाश्ता होता। पर इन सबसे ज्यादा हमारी पसंद की चीज थी हनुमाने स्यामी की बर्फ। जब वह अपनी सुरीली आवाज में 'आम की बर्फ मलाई की बर्फ' बोलता तब हम बच्चे चारों तरफ से उसे घेर लेते। एक छटाँक बर्फ के तीन पैसे होते, जो गले दिन हम चुकता कर देते। एक दिन वह हमें बर्फ बनाने की मशीन दिखाने अपने घर ले ोटी सी मशीन थी, जिससे दिन भर में चार पाँच सेर बर्फ जम जाती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाँव के मोची अच्छे देसी जूते बनाते, जिन पर सलमे-सितारों का काम और हाथ की सुन्दर कारीगरी रहती। बच्चों के जूते १२ आने से एक रुपया जोड़ा तक के होते और बड़ों के डेढ़ रुपये से दो रुपये तक मिल जाते। मेरे पैर बचपन से ही बड़े थे, इसलिए मोची मेरे जूतों के दाम कुछ ज्यादा ही लेता था। इसको लेकर एक बार कही-सुनी भी हो गई। जब उसे बच्चे के जूतों के दाम दिए जाने लगे तब उसने कह दिया- 'सेठ जी, पैर तो बड़ों से भी बड़े हैं, फिर दाम कम कैसे लूँगा !' इस पर उसे हमारे दादाजी धमकाने लगे कि बच्चे को नजर लगा रहा है। उस समय कारीगर महाजनों की बहुत इज्जत करते थे, इसलिए वह कमती दाम ही ले गया।

उस समय थोड़े से व्यक्ति तो दिसावर (बंगाल, असम और बम्बई) की तरफ से व्यापार-व्यवसाय के लिए चले जाते, पर अधिकांश वहीं रहकर खेती-बाड़ी और विभिन्न प्रकार के घरेलू धन्धों तथा लेन-देन के व्यापार में लगे रहते। गल्ले, किराने और दूसरे प्रकार की वस्तुओं की दुकानें थीं। आवागमन के साधनों की कमी के कारण आज जितनी बड़ी मंडी तो नहीं थी, फिर भी सरदारशहर आस-पास के गाँवों-कस्बों में अच्छा व्यवसायिक कस्बा माना जाता था। थोड़ी दूर पर जब गंगानगर इलाके में गंगानहर बन गई, तब गेहूँ, चना भी प्रचुर मात्रा में आने लगा; इससे कस्बे में व्यवसाय-वाणिज्य बढ़ गया।

उस समय पान की केवल दुकान थी-मनजी पनवाड़ी की। पैसे के चार पान साँची या दो पान मीठे मिलते थे। चाय की दूकान का प्रश्न ही नहीं था। कभी-कभार किसी को सर्दी-जकाम हो जाता तो बिरधीचन्द जी करवा के यहाँ से थोड़ी चाय की पत्तियाँ माँग कर ले आते। असम में उनका कारोबार था। आज सरदारशहर में चाय और पान की सैकड़ों दूकानें हैं।

हलवाइयों की तीन-चार दुकानें थीं। मिठाइयाँ शुद्ध घी में बनती और नमकीन तिल्ली के तेल में। वनस्पति घी का उस समय तक आविष्कार नहीं हुआ था। कन्हैयालाल जी कंदोई की मिठाई बहुत प्रामाणिक मानी जाती थी। एक रुपये में बूँदी के तीन सेर लड्डुओं व चार आने के सवा सेर भुजियों (सेव) में १०-१२ आदमियों का नाश्ता मजे में हो जाता।

पसारियों में द्वारिकादास जी पंसारी की याद आज भी ताजी है। वैसे उनके यहाँ चीजों के दाम दूसरों की अपेक्षा कम होने पर उनके हाथ में कुछ ऐसा हुनर था कि घर जाकर तोलने पर वस्तुएँ दूसरों के भाव ही ठहरतीं। एक बार रमजान चेजारा उनके यहाँ तमाखू लाने गया। सेठ जी ने एक सेर तमाखू तौल दी। चेजारे ने कहा- 'हम आपके घर के कारिंदे हैं, कुछ तो ज्यादा मिलनी चाहिए।' उन्होंने उदारतापूर्वक चार बार दोनों हाथ भर कर और देदी। खुशी-खुशी घर आकर जब उसने तमाखू तौली, तब वह पूरी एक सेर ही उतरी।

मुल्तान जी मंदोई अपनी मीठी दिल्लगी के लिए प्रसिद्ध था। जान-पहचान के एक आदमी ने उससे एक रुपये की मिठाई ली। उसने तीन सेर तौल दी। खरीदार ने बहुत आग्रह किया कि पीछे एक पाव का बटखरा तो और डालो। उसने हँसकर कहा, "आप कहें तो पीछे पंसेरी तक डाल दूँगा। पर बूँदी का एक दाना भी नहीं।" झल्ला कर ग्राहक ने कहा, "अच्छा काका, एक बड़ा कागज तो दो। मेरी चद्दर चिकनी हो जायेगी।" मुल्तानचन्द ने जबाब दिया, "मुल्ताने की मिठाई में चद्दर चिकनी होने का डर नहीं है, बेफिक्र रहिए।"

उस समय सब्जी बाजार आज जितना बड़ा नहीं था। गंगानगर और दिल्ली से आज की तरह विभिन्न सब्जियाँ या फल नहीं आते थे। हाँ, मौसम के फल और तरकारियाँ कुजड़िनें और मालिनें लाती थीं। उन्हीं को सुखा कर रख लेते और मौसम के बाद भी उनका इस्तेमाल किया जाता। वैसे आमतौर पर भोजन था--रोटी, दाल, मोठ, बाजरे की खिचड़ी, कढ़ी और मौसम की तरकारी। घरों में 'घीणा' नहीं होता, वे पास-पड़ोस से 'छाछ' माँग कर राबड़ी या कढ़ी कर लेते। छाछ माँगने में किसी प्रकार का संकोच नहीं था। हमारे यहाँ कहावत भी प्रचलित थी कि 'बेटी और छाछ माँगने में लाज क्या !'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस समय कर्मचारियों, मजदूरों या कारीगरों का वेतन बहुत कम था, पर चीजें सस्ती थीं और लोगों की आकांक्षाएँ सीमित थी, इसलिए वे उसी में सुखी थे। आज की तरह 'हाय-हाय' या अभाव की खटक नहीं थी। अच्छे राजमिस्त्री की तनख्वाह थी १० से १२ रुपये प्रति माह। इतना ही बढ़ई कारीगर को मिलता।

पुरुष मजदूरों को प्रतिदिन तीन-चार आने तथा स्त्रियों को आठ-दस पैसे मिलते। घर में काम करने वाले नौकरों का वेतन था रोटी, कपड़ा और दो रुपये महीना। कपड़ों को लोग बहुत सहेज कर रखते थे। इस सन्दर्भ में मुझे एक बात याद आती है। हमारे यहाँ बन्ने खाँ नाम क़ा कारिंदा था। उसके पास एक नया साफा था (पगड़ी) और एक पुराना साफा था। पुराना साफा ३५ वर्ष पहले का था, जबकि नया १५ साल पहले का। एक जोड़ा धोती और दो कुरतों को वह डेढ़ दो वर्ष तक चला लेता।

उस समय थानेदार की तनख्वाह थी ३२ रुपये माहवार। अर्जीनवीस का वेतन था १५ रुपये। तहसीलदार को गाँव और तहसील का सबसे बड़ा हाकिम माना जाता था। उसके यहाँ बड़े-बड़े सेठ-साहूकार भी हाजिरी देने जाया करते थे। वह माल और फौजदारी दोनों तरह के मामले निपटाता था। उसका वेतन रहता ५० रुपये महीना। इसके अलावा सरकारी दौरे पर जाते समय उसे घोड़े की सवारी भी उपलब्ध थी।

एक दो बार मैं भी पिताजी के साथ 'गढ़' यानी तहसील-कार्यालय में गया था। तहसीलदार ने हँस कर मेरा नाम पूछा। मैं उस समय शायद सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उमर थी १०-१२ वर्ष। मैंने अंग्रेजी में कहा—"माई नेम इज रामेश्वर।"

पिताजी कई दिनों तक यह बात लोगों से बाताते रहे कि किस प्रकार मैं हाकिम से अंग्रेजी में बोला। उसके बाद तो जब कभी बाहर के किसी अफसर या स्टेशनमास्टर से बात करनी होती, तब हमारे दादाजी और पिताजी हमें कहते कि अंग्रेजी में बोलो। उनकी धारणा थी कि अंग्रेजी में बोलने से उन सब पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

गाँव में सबसे ज्यादा तनख्वाह थी हेडमास्टर की—६७ रुपये महीना। लेकिन उनसे भी ज्यादा तनख्वाह पाने वाले एक व्यक्ति हमारे पड़ोस में थे। ये थे श्री राजरूप जी। वह कलकत्ते की एक फर्म 'थानसिंह करमचन्द' के बड़े मुनीम थे। उनका मासिक वेतन था २०० रुपये। बाहर के गाँवों के लोग उन्हें देखने आते थे। उस समय यह अचम्भे की बात समझी जाती थी। एक दिन राजरूपजी हमारे घर मिलने आए थे। हम बच्चे उसको बड़ा शुभ दिन माना और सोचने लगे कि क्या हम भी कभी इतने बड़े आदमी हो पाएँगे!

उस समय देशाटन या भ्रमण के लिए तो शायद ही कोई गाँव से बाहर जाने की सोचता था। साधन कम थे, लोग कमखर्ची से रहते थे, इसलिए इन सब कामों को फिजूलखर्ची में गिना जाता था। हाँ, व्यापार-व्यवसाय या नौकरी के सिलसिले में लोग न केवल असम, बंगाल, बल्कि बर्मा तक भी जाते थे। यह यात्रा एक से तीन वर्ष तक की होती। कुछ वर्षों पहले कई व्यक्तियों ने १०-१०, १२-१२ वर्ष की मुसाफिरी भी की थी। हमारे यहाँ के पांचीरामजी पींचा ने जोरहाट (असम) की दो मुसाफिरी ३० वर्षों में की थीं। विवाह करके वह गए और उसके १५ बर्ष बाद वापस आए। इससे मिलते-जुलते और भी कई उदाहरण मिल जाएँगे। लेकिन ये सब बातें १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक कीं हैं। उस समय असम की यात्रा में तीन-चार महीने लग जाते थे। ग्वालन्दो (बांगला देश) से असम नौकाओं से जाना पड़ता था। रास्ते में जलदस्युओं का डर रहता, इसलिए १०-२० व्यक्ति साथ मिलकर यात्रा करते।

सुदूर प्रदेशों में जाकर वाणिज्य-व्यवसाय को सँभालने और पनपने के लिए लम्बी अवधि की ये यात्राएँ नितांत आवश्यक थीं। पारिवारिक और आर्थिक परिस्थियाँ ऐसी थीं कि स्त्रियों को इतनी दूर ले जाना सम्भव नहीं था। पुरुष अकेले जाते। स्त्रियाँ देश में ही रहतीं। सर्दी,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बरसात और बसन्त की मादक ऋतुएँ आतीं और चली जातीं। दीवाली और होली के त्यौहार भी अपनी धूमधाम और रंगीनी दिखा कर चले जाते। किन्तु जिनके पति परदेश में बसे हुए थे उन विरहिणियों के लिए इन सब में कोई रस, कोई आकर्षण प्रतीत नहीं होता था। उनके दिन विधुर और रातें बेवा होती थीं। इन वियोग-पीड़ित युवतियों के अंतस की पीड़ा को राजस्थान के लोकगीतों में जिस करुणा के साथ प्रस्तुत किया गया है, उसके क्या कहने! इन मर्मान्तक गीतों को सुनकर सचमुच हृदय पसीज जाता है, आँखों से करुणा गंगाजल सा बहने लगता है। यहाँ मैं विरह-वेदना के तीन गीतों के कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ। इनमें व्यक्त भाव और अनुभूति मेघदूत की विरहिणी यक्षिणी की पीड़ा से कम नहीं है।

यह 'पीपली' लोकगीत है। इसमें विरहिणी अपने प्रेमोद्गार व्यक्त करती हुई पति को लिखती है कि यौवनरूपी पीपल का वृक्ष अपने पूर्ण विकास पर है; आओ और उसकी शीतल छाया में विश्राम करो!! आदि आदि।

बाय चढ़या जी भँवर जी, पीपल जी,
हांजी ढ़ोला, होगई घेरघुमेर। बेंठण को रुत चाल्या चाकरी जी,
ओजी म्हारी, सास सपूतो रा पूत।
मत न सिधारो पूरब री चाकरी जी।

(हे भँवर, आप का जो नन्हा पौधा लगा कर चढ़े (विदा हुए) थे, वह एक छायादार वृक्ष हो गया है। उसकी शीतल छाया में बैठने का जब समय आया, तब आप चाकरी करने चले गए। मेरी सपूती सास के पुत्र पूरब दिशा की चाकरी पर न जाइए!)

इसी बात को और भी स्पष्ट करती हुई वह कहती है:

परण चढ़या छा भँवर जी, गोरडीजी,
हाँ, जी, ढ़ोला होय गई जोध जुवान।
विलसण री रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद बाई रा बीर,
मत ना सिधारो............

(हे भँवर, आप मुझसे विवाह करते ही रवाना हो गए! मैं तब किशोरी बाला थी। अब मेरा यौवन पूरा निखार पर है। विलास और क्रीड़ा की यही तो बेला है और आप हैं कि पूरब की चाकरी में लगे हुए हैं। मेरी प्यारी ननद के भाई.........)

विवाह के तुरत बाद पति परदेश के लिए रवाना हो गये। शय्या-शयन का संयोग तक नहीं मिला। तब प्रिया अपने प्रियतम से उपालम्भ भरा निवेदन करती है:

कदें न ल्याया भँवर जी, सूतली जी,
हाँ, जी, ढ़ोला, कदें बी बुणी नहीं खाट।
कदें न सूत्या रलमिल सेज में जी,
थारी प्यारी उड़ीकै पिया महल में जी।

(प्रियतम, न तो आप कभी सुतली लाए, न कभी पलँग तैयार किया व न हम दोनों कभी सेज पर साथ-साथ सोए। आपकी प्रियतमा मैं, महलों में आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ, शीघ्र पधारिए!)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पति और उसके माता-पिता को धन का लोभ है; गोरी के मन की व्यथा को वे क्या जानें!

थारे बाबो सा ने चाए भँवर जी धन घणोजी,
हाँ, जी, ढोला, कपड़े री लोभण थारी मांय ।

सेजां, री, लोभण उड़ी के गोरड़ी जी,
थारी गोरी उड़ावे काग.........

और प्रियतम को अर्थ की चिन्ता से मुक्त करने के लिए वह खुद रोकरुपैया, सोने की मोहर, बनने को तैयार है; किसी प्रकार प्रियतम रुके तो :

रोकरुपैया, भँवर जी मैं बणुजी, हाँ, जी, ढोला, बण ज्याऊँ पीली
पीली म्होर ।
भीड़ पड़े जब भँवरजी, बरत ल्यों जी,
ओ, जी, म्हारी सेजारा सिणगार ।

कष्ट पड़ने पर मुझे वरत लेना, मैं नकद रुपया वन जाऊँगी–कितनी दर्द—भरी व्यंजना है।

वह घर में ही कपड़ा बुनने के उद्योग की योजना प्रस्तुत करती है, ताकि पति-विछोह का दुःख देखना न पड़े :

चरखो तो ले ल्यूँ भँवरजी, रांगलों जी
हाँ, जी, ढ़ोला, पीढ़ो लाल गुलाल, तकवो तो ले ल्यूँ भँवरजी,
बीजलसार को जी,
ओ, जी, म्हारी जोड़ी रा भरतार ।
पूणी मँगा ल्यूँ जी के बीकानेर की जी ।
म्होरम्होर की भँवरजी, कातूँ कूकड़ी जी ।
हाँ, जी, ढोला रोक रुपये रो तार,
मैं कातूँ थे बैठ्या विणन ल्यो जी...........

(मैं कातूँ और आप कपड़ा बुन लें। गृहउद्योग के माध्यम से अर्थ की चिन्ता दूर होगी, परदेश जाने की फिर ज़रूरत ही नहीं रहेगी।)

लेकिन स्त्री की कमाई पर रहना कोई मर्द बर्दास्त नहीं करता। साहूकार के बेटे को तो अपनी मेहनत और बुद्धि से कमाना है और इसके लिए परदेश जाना लाजिमी है। लेकिन प्रियतमा का तर्क है कि उजड़ी जमीन समय पाकर बस्ती बन सकती है; निर्धन लोग धनवान हो सकते हैं; किन्तु यौवन की यह उमर जो ढल जायेगी वह वापस नहीं आएगी; यौवन सदा थोड़े ही रहता है, आज है कल नहीं।

उजड़ खेड़ा भँवरजी फिर बसे जी,
हाँ, जी ढोला, निरधनियाँ धने होए
जोबन गयो, न पीछे बावड़े जी, ओजी थानैं लिखूँ मैं बारंबार ।
जोबन सदा न भँवरजी थिर रहे जी,
हाँ, जी, ढोला फिरती घिरती छाँय.........

पीपली का यह गीत लगभग सारे राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय है। ठंडी रातों में राजस्थानी युवतियाँ जब समवेत स्वरों में इस गीत को गाती हैं तो दर्द स्वयं साकार हो उठता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विरह-व्यथा के संदेश को काग, कुरजां, मोर, पपीहे आदि पक्षियों के मार्फत प्रियतम तक पहुँचाने के प्रयास को अनेक गीतों में अभिव्यक्त किया गया है। 'कागा' गीत में विरहिणी नायिका कौए को अनेक प्रकार के प्रलोभन देती हुई उसे उड़ कर प्रियतम के पास जाने का आग्रह करती है। उसका विश्वास है कि यदि 'कागा' वहाँ जाकर उसकी व्यथा का वर्णन करेगा तो उसका प्रियतम प्रवास से लौट आयेगा। गीत के बोल हैं :

उड़ उड़ रे म्हारा काला कागला, जे म्हारा पिवजी घर आवें।
खीर खांड़ को थाल परोसूँ, थारी सोने चोंच मढ़ाऊँ, रे कागा!
कद म्हारा मारूजी घर आवे, पगल्यां में बाँधू घूघरा थारै।
गले में हार पिन्हाऊँ कागा, जे तूँ उड़नै सूण बतावें,
थारो जलम जलम गुण गाऊँ, रे कागा!

इसी प्रकार के और भी भाव-भरे गीत हैं जिनके माध्यम से राजस्थान की युवतियां अपनी पीड़ा को हलका करती थीं। आज न तो उतनी लम्बी अवधि की यात्राएँ होती हैं और न अधिकांश स्त्रियाँ पतियों से दूर ही रहती हैं; फिर भी इन लोकगीतों में कुछ ऐसा रस है, जो कभी फ़ीका नहीं पड़ता।

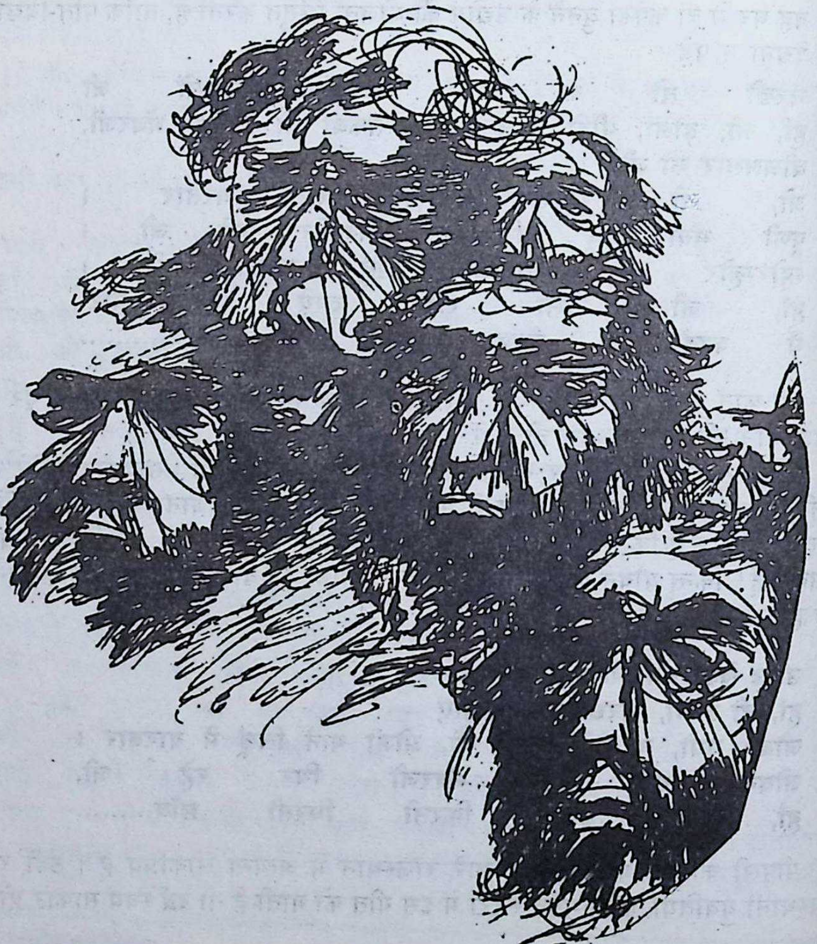

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इत्ती कहाणी, गोगा राणीं

व्यावसायिक यात्राओं के अलावा प्रौढ़ और वृद्ध स्त्री-पुरुषों में तीर्थ-यात्रा बहुप्रचलित थी। चारों धाम की यात्रा तो कोई बिरला ही कर पाता था। द्वारका, पुरी और रामेश्वर के तीन धामों तक रेलें चल गयी थीं, इसलिए इनकी यात्रा एक बार में ही हो जाती, किन्तु बदरीनाथ, केदारनाथ की यात्रा बंहुत ही दुर्गम थी। आने-जाने में तीन-चार महीने लग जाते। रास्ते बीहड़ थे। कहीं-कहीं पहाड़ भी धसक जाते। डांडी और टट्टुओं की सवारी के लिए पैसों का अभाव रहता, इसलिए लोग अपना सामान कन्धे पर लादे पैदल ही चलते। दस-बारह की टोलियों में जाते। सारे गाँव में पहले से ही चर्चा हो जाती कि अमुक टोली उत्तराखण्ड की यात्रा पर जा रही है। गाँव के लोग जाने वाले से गले मिलते कि शायद फिर मिलना न हो। यात्री अपने साथ लौंग, इलायची, कुछ मीठा-फीका पकवान, कुछ चूरन-चटनी और दो कम्बल ले लेते।

महीने या बीस दिन में कभी-कभी उनके घरवालों के पास एकाध पोस्टकार्ड आ जाता, जिसमें किसी न किसी बीमारी का समाचार रहता। यह भी लिखा रहता कि गरुड़जी की कृपा से यात्रा सफल हो जाएगी। उनकी मान्यता थी कि उत्तराखण्ड की कठिन यात्रा में गरुड़जी सहायता करेंगे। यह यात्रीदल हरिद्वार, ऋषीकेश, बदरीनाथ, केदारनाथ और मथुरा-वृन्दावन होकर वापस आता। गाँव वाले उनकी अगवानी में जाते। उनसे ऐसे मिलते जैसे कि बहुत वर्षों से बिछड़े साथी मिल रहे हों।

इन यात्रियों को बहुल पुण्यात्मा माना जाता, इसलिए बड़े-बूढ़े भी इनके पैर छूते। मैं अपने माता-पिता के साथ सन् १६४५ में बदरीनाथ, केदारनाथ गया था। उस समय तक गुप्तकाशी तक बसें चलने लगी थीं। हमारे साथ एक महिला-भूरी की नानी थी, जो सात बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी। यात्रा के समय उसकी बहुत कुछ पूछ रहती, क्योंकि उसे ठहरने के स्थानों, उतार-चढ़ाव आदि का पूरा ज्ञान था। खाने के अलावा वह कोई वेतन नहीं लेती। काम करती चार आदमियों के बराबर। बहुत पहले से लोग उससे वचन ले लेते।

मुसलमानों में एक दो व्यक्ति कभी-कदाच हज के लिए (मक्का मदीना) जाते थे। ऐसे व्यक्तियों को हाजीजी कहा जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में उनका बड़ा सम्मान रहता। हज से वापस आने पर कस्बे के छोटे बड़े सभी उनसे गले मिलते।

कुछ मुसलमान और हिन्दू अजमेर के ख्वाजा चिश्ती साहब की दरगाह की यात्रा भी करते।

धर्म के नाम पर मनुष्य राजी खुशी कष्ट सह लेता है। चारों धाम देश के चार कानों पर स्थित हैं। हालांकि उनकी परिक्रमा बहुत ही कष्टप्रद और व्ययसाध्य रहती, फिर भी लोग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसकी सम्पूर्णता में अपने जीवन का निस्तार समझते। ऐसा देखा गया है कि लोग जीवन की सारी कमाई इन तीर्थयात्राओं में खर्च कर देते थे। वैसे इससे कई लाभ थे। यात्रा के अनुभव प्राप्त करने, जलवायु परिवर्तन, नए लोगों से परिचय और ऐतिहासिक स्थानों के अवलोकन आदि के अलावा सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी सारे देशवासियों की भावनात्मक एकता।

इन दूरगामी तीर्थों के अलावा हमारे यहाँ स्थानीय छोटे बड़े कई तीर्थस्थान थे। असम, बंगाल और बर्मा तक के प्रवासी राजस्थानी अपने बच्चों के मुण्डन और अपनी मनौतियों की पूर्ति के लिए इनके दर्शनार्थ आते रहते थे। इनमें से विशेष प्रसिद्ध थे–सालासर और पूनरासर के हनुमानजी, बीजबायले की माताजी, देश-नोक की करणीजी, सीकर की जीणमाता, झुंझुनू की राणीसती और खाटू के श्यामजी। इनके अलावा कुछ और भी सिद्ध पुरुषों और वीर शहीदों के स्मारक जहाँ-तहाँ थे। इनमें रामदेवजी, पाबूजी, भैरवजी और गोगा आदि प्रमुख हैं। इनमें सबकी मान्यता किसी न किसी वीरोचित कार्य या जनहितार्थ बलिदान के कारण हुई थी।

गोगाजी एक ऐतिहासिक वीर हो गये हैं, जिनकी अद्भुत बलिदानगाथा चिरस्मणीय रहेगी। ११वीं शताब्दी की बात है। महमूद गजनवी अपनी सवा लाख फौज के साथ सोमनाथ मन्दिर तोड़ने जा रहा था। रास्ते में हिन्दू राजा और सामंत उसकी अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे। गोगाजी उस समय लगभग ८० वर्ष के वृद्ध थे। उनके बेटों-पोतों और सरदारों की संख्या कई सौ थी। वह बीकानेर के उत्तरी हिस्से में एक छोटी सी गढ़ी में रहते थे। आसपास के क्षेत्र में उनकी छोटी सी जमींदारी थी। जब ग़जनवी की फौजें उनके क्षेत्र के पास आने लगी, तब उन्होंने एक सभा बुलाई और कहा कि 'यह म्लेच्छ भगवान शंकर का अपमान करने जा रहा है, हमें इसे रोकना चाहिए।'

सामंतों ने अर्ज किया कि 'महाराज, कहाँ तो सवा लाख की सुसज्जित सेना और कहाँ हम ३०० सरदार।' गोगा बाबा ने क्रोधपूर्वक कहा, "यह सवाल सवा लाख और ३०० का नहीं है। अपने जिन्दा रहते किसी प्रकार भी हम उसे सोमनाथ पर नहीं जाने देगें।"

अन्त में एक योजना बनी। गोगा बाबा के ज्येष्ठ पुत्र ने वेश बदल कर गजनवी की फौज में जाकर उसे जैसलमेर के वीरान रेगिस्तान में भटका दिया, जिससे उसके हजारों सिपाही और घोड़े गरम लू और प्यास से मर गए। इधर बाबा अपने साथियों सहित केसरिया बाना पहन कर फौज पर पिले पड़े। जब तक एक भी सरदार बचा, शत्रुओं से लड़ता रहा। कहते हैं कि इन ३०० वीरों ने उस बड़ी फौज मे त्रहलका मचा दिया था। इधर महिलाएँ और बच्चे एक बड़ी होमाग्नि प्रज्वलित करके उसमें सर्मपित हो गये। इस प्रकार के स्वाभिमानी वीर विश्व में कभी कदाच ही होते हैं। इसकी पूरी गाथा मैंने बहुत बाद में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की पुस्तक 'जय सोमनाथ' में पढ़ी थी। बीकानेर के भादरा कस्बे के पास गोगामण्डी में आज वह प्राचीन गढ़ी तो नहीं है, हाँ गोगाजी का एक मण्डप जरूर है। वहाँ प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है।

रामदेवजी १६वीं शताब्दि में पोकरण-फलौदी (जोधपुर) में हुए थे। एक बार मुसलमान लोग गाँव की गायें हाँक कर ले जा रहे थें। उनके आतंक से किसी में उनका सामना करने की हिम्मत नहीं थी। लेकिन वीर रामदेवजी ने अकेले ही घोड़े पर चढ़ कर आततायियों का पीछा किया और गायों के छुड़ाने में अपने प्राण गवाँ दिया। उनके सहायकों में गाँव के अन्त्यज ढेढ़ और चमार ही प्रमुख थे। इसलिए आज भी इनके पुजारी इन्हीं जातियों के लोग होते हैं। हमारे यहाँ कहावत है कि 'रामदेवजी को मिले सो ढेढ़ ही ढ़ेढ।'

करणीजी १५वीं शताब्दी में एक चारण बाला हुई थी। इन्होंने बीकानेर के संस्थापक राव बीकाजी की सहायता की थी। हमारे समय के बीकानेर-नरेश गंगासिंह के बारे में कहा जाता था कि वह जब भी रियासत से बाहर जाते, बीकानेर से २० मील पर देशनोक नामक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाँव में स्थापित करणीजी के दर्शन अवश्य करते।

झुंझुनू की राणी सती भी इसी प्रकार की एक और वीर बाला मध्ययुग में हुई है। जब गौना होकर वह अपने पति के साथ ससुराल आ रही थीं, रास्ते में नबाब के आदमियों ने हमला कर दिया। पति और साथ के आदमी वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गये। सद्य:विधवा बालिका अपना दु:ख भूल कर अपने एक विश्वस्त अनुचर के साथ पति का सिर लेकर झुंझुनू तक पहुँच गई और वहाँ आततायियों के पहुँचने के पहले ही सती हो गई। इस समय झुंझनू में उसके स्मारक-स्वरूप बहुत विशाल मन्दिर, धर्मशाला, स्कूल और पुस्तकालय आदि बने हुए हैं। लाखों यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शनार्थ जाते हैं।

हमारे क्षेत्र में कहानियों और वार्ताओं के माध्यम से बहुत प्रकार के उपदेश दिए जाते थे। ये कहानियाँ उस समय लिखित पुस्तकों में नही थीं। बड़ों द्वारा छोटों को सुनाई जाती रही थीं। लोग गर्मियों में रात के समय बाहर सहन में ठंड़ा पानी छिड़क कर और सर्दी में सरकड़ों और लकड़ियों की आग जला कर बैठ जाते। बड़े लोग बारी-बारी से कहानी कहते और दूसरे 'हूँ' यानी हुँकारा देते जाते। कहानी शुरू करनें के लिए वे हमें इन शब्दों में सावधान कर देते, 'बात कहतां बार लागै, हुँकारे बात मीठी लागै। बात में हुँकारों, फौज में नागरो आधाक सोवे, आधाक जागै। सूतेड़ा की पगड़ी, जागतोड़ा ले भागै। जब बातों में रंग आवै।'

इस प्रकार लोगों को कहानी सुनने को तैयार करके फिर वे शुरू करते। 'बात का चालणा, संयोग का पवणा रामजी भला दिन दे। एक राजा के तीन राणियाँ थीं......' और फिर यह कहानी आधी रात तक चलती। कभी-कभी तो दूसरे दिन के लिए स्थगित रह जाती। हम बालकों को इन लम्बी कहानियों में रस नहीं आता, क्योंकि ये हमारी समझ के परे की थीं। हमें तो घरेलू बालकथाएँ, जो नानी, दादी या कस्तूरी दादी सुनातीं, अच्छी लगती थीं।

शाम होते ही हम दादी जी को घेर कर बैठ जाते और उनसे कहानी सुनने का आग्रह करते। अधिकांश कहानियाँ रांजारानी, चोर-साहूकार, रामायण-महाभारत या पौराणिक कथाओं पर आधारित होतीं। कभी-कभी वह हँसी की छोटी-छोटी कविताएँ भी सुनातीं। जैसे 'काणी कवै कागलो, हुँकारों देवे भैया, आँध लिए नै चोर लेग्यो, भाग रे पांगलिया।' कहानी समाप्त करते समय जब वह किसी बच्चे का नाम लेकर कहतीं, 'ओड़ कहाणी, मूँगा राणी। मूँग पुराणा, रामू के सासरे का नाई, बामण सैं काणा।' तब जिस बच्चे का नाम लिया जाता वह यह सुन कर रोने लगता, दूसरे सब हँस देते।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, कहानी ज्यादातर रात के समय घर का काम समाप्त हो जाने के बाद ही सुनी-सुनाई जाती। अगर कभी हम दिन में कहानी कहने का आग्रह करते, तो यह कह कर टाल दिया जाता कि दिन में कहानी कहने से मामा रास्ता भूल जाता है।

दादी और नानी के अलावा हमारे प्रिय कहानीकार थे लछमणा महाराज। वह हमारे यहाँ सुबह शाम पूजा-पाठ करते थे। सर्दी के मौसम में हम दोनों भाई उनके दोनों तरफ कबली में बैठ जाते और वे पूजा-पाठ बन्द करके हमें कहानी सुनाने लग जाते। हमारे दादाजी यह सब जानते थे, पर उन पर नाराज नहीं होते, क्योंकि हम बच्चे सर्दी में इधर-उधर न घूम कर एक जगह बैठे रहते।

लछमणा महाराज हमें भालू, बन्दर और बिल्लियों की कहानियाँ सुनाते, धार्मिक कहानियाँ सुनातीं दादी और नानी। हमें लछमणा महाराज की कहानियाँ ज्यादा पसन्द आती। हम उनसे भूतों और राक्षसों की कहानियाँ सुनाने का भी आग्रह करते, किन्तु वह यह कह कर टाल देते कि इनको सुनने से रात को बुरे सपने आएँगे। उनकी कहानी के साथ दो एक अन्य आकर्षण और भी जुड़े थे। एक तो वह हमें भोग के लिए लाए हुए मखाने (चीनी से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिपटे चने) और बताशे बीच-बीच में देते रहते और दूसरे हमारे सिरों को धीरे-धीरे सहला रहते । कुछ वर्षों बाद हमारी छोटी बहन महादेवी भी इसी आयोजन में शामिल होने का प्रयत्न करने लगी, लेकिन महाराज की कंबली में तीन बच्चों के लिए जगह नही थी । हम उसे डरा-धमका कर भगा देते । वह रोती हुई दादाजी के पास जाकर शिकायत करती कि महाराज पूजा करके कहानी सुना रहे हैं । दादाजी उसे साथ लिए हुए आते और महाराज पर झूठ-मूठ का गुस्सा करते । वह इतने में खुश हो कर चली जाती ।

इन कहानियों में से मुझे दो चार कहानियां आज भी याद हैं ।

सोनलबाई सात भाइयों के बीच सुनहरे बालों वाली बड़ी भाग्यशाली बहन थी । एक दिन मिट्टी लाने के लिए वह अपने भावजों के साथ जंगल में गई । जिस जगह वह खोदती थी, वहाँ सोना और मोती निकलते और और जहाँ उसकी भावजें खोदतीं, वहाँ मिट्टी निकलती थीं । वे सभी अपनी ननद से कहतीं कि बाईजी अपनी जगह हमें खोदने दो, लेकिन ज्योंही वे खोदने लगतीं, वहाँ भी मिट्टी ही निकलती । भावजों को सोनलबाई से डाह हो गया । जब खोदते-खोदते सोनल थक गई तो उसकी आँख लग गई । सातों भौजाइयाँ उसे वहीं छोड़ कर उसके द्वारा खोदे हुए सोने और हीरे-मोतियों को लेकर घर आ गईं । जब उसकी आँख खुली तो उसने फिर जमीन पर खोद कर सोना और मोती निकाले । लेकिन उस बोझ को वह अकेली सिर पर उठा नहीं सकी । थोड़ी देर में एक साधु उधर से गुजरा तो सोनलबाई ने विनती की, "बाबाजी, यह बरतन मेरे सिर पर रखवा दीजिए ।" साधु लोभी था । उसने सोनल को अपने झोले में डाल लिया और अपनी गढ़ी में ले गया । दूसरे दिन उसने सोनल को गाँव से भिक्षा लाने का आदेश दिया और जिधर उसका अपना घर था, उस तरफ न जाने के लिए भी कह दिया । तीन दिन वह अन्य दिशाओं में ले जाकर भिक्षा ले आई, लेकिन चौथे दिन अपनी छोटी भौजाई के घर पहुँची और बोली...........

सात भाया बिच एक सोनलबाई,
मोतीड़ा सा चुगती मनै जोगीड़ो उठाई ।
घालो, ए माई, भिक्षा, जोगी मारेलो ।

(सात भाइयों के बीच एक सोनलबाई थी, जिसे मोती चुगते समय एक जोगी उठा कर ले गया । हे माई, भिक्षा दे दे, नहीं तो जोगी मुझे मारेगा ।) इस प्रकार भिक्षा माँगते-माँगते वह अपनी सातों भावजों के घर घूम आई । भावजों ने उसे पहचान कर भी नहीं पहचाना । अन्त में वह अपनी माँ के घर गई और उसी प्रकार कहा । माँ ने देखा कि यह तो उसी की लाड़ली बेटी सोनल है । तब उसने उसे अन्दर बुलाया । उसकी झोली वगैरा फेंक दी और घर में छिपा लिया । थोड़ी देर बाद जोगी धम-धम करता हुआ गाँव में आया और घर-घर में पूछने लगा, "बाई म्हारी चेलकी भी देखी के ?"

जब जोगी पूछते-पूछते सोनल के घर आया, तब उसकी माँ ने कहा, "बाबाजी, सोनल बाहर गई है । आप बैठो, खाना खाओ, इतने में आ जाएगी ।"

जोगी जीमनें गला तो उसकी माँ ने दालान में एक गढ्ढा खोदा और उसे घास फूस से भर दिया । फिर उस गढ्ढे में पलँग डाल दिया और उस पर एक चादर बिछा दी । जोगी आकर पलंग पर बैठा तो सोनल की माँ ने चुपके से गढ्ढे में आग लगा दी । बाबाजी के नितंब जलने लगे और वह वहाँ से भाग निकले ।

कहानी में जब सोनलबाई को जोगी द्वारा उठा ले जाने का वर्णन आता, तब हमें रुलाई आ जाती । ऐसा लगता जैसे हमारी प्यारी बहन पर विपदा आई है । अन्त में जब वह अपनी माँ के पास पहुँच जाती तो हमें प्रसन्नता होती । जोगी को छकाने और जलाने के लिए हम सोनल की माँ का मन ही मन शाबाशी देते ।

इसी प्रकार की एक और कहानी थी, जो हमें लछमणा महाराज सुनाते थे ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रोई (जंगल) में एक कमेड़ी (पक्षी) रहती थी। अपने पति के मना करने पर भी वह जाट के खेत में ज्वार खाने के लिए हमेशा जाया करती। जाट ने उसे मना किया, पर वह न मानी। तब जाट ने एक दिन ज्वार के बूटों पर गुड़ चिपका दिया। ज्योंही कमेड़ी आकर उन पर बैठी, उसके पैर चिपक गये। तब जाट ने उसे एक जाँटी (वृक्ष) से लटका दिया। थोड़ी देर में उधर गायों का एक झुण्ड गुजरा। कमेड़ी ने गायों के झुंड के रखवाले से प्रार्थना की

गायां का गुवालिया रे बीर, टमरक टूँ,
बँधी कमेड़ी छुड़ाए म्हारा बीर, टमरक टूँ।
रोई में मेरा बचिया रै बीर टमरक टूँ;
आँधी आयाँ उड़ ज्यासी रै बीर, टमरक टूँ।
मेह आयां गल ज्यासी रै बीर, टमरक टूँ,
बँधी कमेड़ी छुड़ाय म्हारा बीर, टमरक टूँ।

[हे गायों के ग्वाले, मेरे भाई, इस बँधी कमेड़ी को छुड़ा। मेरे बच्चे जंगल में अकेले हैं, आँधी आएगी तो उड़ जाएँगे। मेह बरसेगा तो वे गल जाएँगे। मुझे बंधन से छुड़ाओ।]

कमेड़ी की बिनती सुन कर ग्वाले को दया आ गई उसने जाट से कहा कि 'हे भाई, इस कमेड़ी को छोड़ दे और इन गायों में एक गाय, जो तुम्हें अच्छी लगे, ले ले।'

लेकिन जाट ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। फिर भैंसों का झुंड आया, बकरियों-भेड़ों का रेवड़ आया और ऊँटों का टोला आया। उन सबसे भी कमेड़ी ने उसी दर्द भरी आवाज में वही प्राँर्थना दोहराई। इन सबके मालिकों ने भी कमेड़ी की प्रार्थना पर जाट से भैंस, बकरी और ऊँट के बदले में कमेड़ी को छोड़ देने को कहा, पर जाट टस से मस तक नहीं हुआ।

संयोग से जिस वृक्ष पर बँधी हुई थी, उसी के नीचे एक चूहे का बिल था। चूहा यह सब देख रहा था। उसने कमेड़ी से कहा, 'कमेड़ी बहन, मैं तुम्हें इस दुष्ट के पंजे से छुड़ाऊँगा, रो मत।" वह अपने बिल में गया और एक सोने की बहुत सुन्दर माला लाया। उसने जाट को माला दिखा कर कहा, "चौधरी, इस कमेड़ी को छोड़ दे तो मैं तुझे यह सोने की माला दे दूँगा।"

सोने की माला देख कर जाट का मन ललचा गया और उसने कमेड़ी को वन्धन-मुक्त कर दिया। जैसे ही कमेड़ी उड़ी, चूहा माला लेकर अपने बिल में घुस गया। तब जाट पछताने लगा कि इससे तो यही अच्छा था कि मैं एक गाय या भैंस या ऊँट ले लेता पर पछताने से क्या फायदा, जब चिड़िया चुग गई खेत।

इसी प्रकार एक और मजेदार कहानी थी बनिए और बन्दर की।

एक बनिया कमाने के लिए दिसावर जा रहा था। रास्ते में उसे एक वन्दर मिला। दोनों साथी बन गए। एक गाँव में किसी घर के आँगन में दही का मटका पड़ा था। वन्दर मटका उठा लाया। एक जगह कुछ चूहे उछल-कूद रहे थे। बन्दर ने उन्हें भी पकड़कर अपनी झोली में डाल लिया थोड़ी दूर जाने पर दोनों एक कुएँ पर पहुँचे। वहाँ 'लाव' यानी पानी निकालने की मोटी रस्सी पड़ी थी। वन्दर ने उसे भी उठा लिया। इन सबको ढोता था वेचारा वनिया। वन्दर महाशय तो उछलते-कूदते आगे-आगे चलते थे। संयोग से एक रात वे किसी जंगल में एक सूने घर में जा ठहरे। यह एक राक्षस का घर था। आधी रात को जब राक्षस लौटा तो कहने लगा, "फूँफा, मानषियों गंधावै है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बनिया तो मारे भय के काँपने लगा, लेकिन बन्दर ने चिल्लाकर पूछा, "कौन तुम ?"

राक्षस गरज कर बोला, "मैं राक्षस हूँ । तुम कौन हो ?"

बन्दर ने जोर से कहा, "मैं बड़ा राक्षस हूँ, तुम्हारा लकड़दादा ।"

राक्षस ने जब कुछ पहचान बताने को कहा तो बन्दर ने ऊपर से दही की हाड़ी उड़ेल और बोला, "यह मेरा थूक है ।" चूहे फेक कर बोला, "ये हैं मेरी जुएँ ।"

राक्षस ने इतना सारा थूक और इतनी बड़ी जुएँ देखी तो डर गया । अन्त में जब बन्दर 'लाव' यानी मोटी रस्सी फेक कर कहा कि "यह है मेरे सिर का बाल," तो राक्षस मारे भय वहाँ से भाग गया । अब तो बनिया बहुत प्रसन्न हुआ । उस में राक्षस की लाई हुई बहुत सा सम्पत्ति रखी थी । सब कुछ बटोर कर बनिया और बन्दर लौट पड़े । बन्दर तो जंगल में गया और बनिये ने घर आकर उस सम्पत्ति से कारोबार शुरू कर दिया ।

दादीजी द्वारा कही हुई एक कहानी बहुत ही रोचक थी ।

एक झींटिया था—बड़े केशों वाला बालक । एक दिन वह अपने ननिहाल के लिए रवाना हुआ । रास्ते में मिला एक गीदड़ । उसको देख कर झींटिया डर गया ।

गीदड़ ने झींटिये का रास्ता रोक लिया और बोला, "झींटिया, झींटिया, कै चाल्यो ?"

झींटिया बोला, "नानी कै घर ।"

"मैं तनै खास्यूं ! मैं तनै खास्यूं !" गीदड़ ने कहा ।

झींटिया ने झट कहा, "नानी के मनै जायण दे, दही रोटियाँ खायणदे, मोटो ताजो हे आण दे, पाछै मैने खा लेई ।"

[मुझे नानी के घर जा आने दे और वहाँ की दही रोटी खाकर मोटा ताजा हो आने दे तब खा लेना ।]

गीदड़ को बात जच गई और उसने झींटिया का रास्ता छोड़ दिया ।

झींटिया ननिहाल से लौटने लगा तो उसने नानी से एक ढामकी [ढोलकी] बनवा ली और उसके अन्दर बैठकर रवाना हुआ ।

रास्ते में फिर उसे वही गीदड़ मिला ।

ढामकी का लुढ़कते देखकर गीदड़ को आश्चर्य हुआ । उसने पूछा, "ढामकी तुमने झींटिये को देखा है ?"

झींटिया अन्दर से बोला, "किसका झींटिया किसका तुम ? चल मेरी ढामकी ढमाकढम ।"

और ढामकी चल पड़ी । गीदड़चन्द्रजी जीभ लपलपाते रह गए । होशियार झींटिया अपने घर सही सलामत पहुँच गया । इस कहानी की समाप्ति पर हम बड़े हर्ष से ऊपर की कविता दोहराते ।

राजारानी चिड़ीचिड़कलों, चोर-साहूकार और नाई-ब्राह्मण आदि की और भी अनेक कहानियाँ थी, जिन्हें हम बहुत चाव से सुनते । उनके पात्रों के दुःख के साथ दुखी होकर आँसू बहाते । सुख के साथ खुश हो होकर तालियाँ बजाते और इस प्रकार सुखद मनोरंजन करते रहते ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दादाजी कहानी समाप्त करती तो कहतीं—

इत्ती कहाणी, गोगा राणी ।
गोगो मन्ने घोड़ो दियो, घोड़ो ले मैं बाड़ कुदायो ।
बाड़ मन्ने काँटो दियो, काँटो ले मैं चूल्हे नै दियो ।
चूल्हा मन्ने राख देई, राख ले मैं कुम्हार ने दीन्हीं ।
कुम्हार मन्ने करवो [मिट्टी का गिलास] दियो ।
करवो ले मैं.........

इस सन्दर्भ में एक और भी बात याद है। अपनी छोटी बहन महादेवी को जब हम अपने साथ बैठ कर कहानी नहीं सुनने देते तो वह रूठ कर दादाजी के पास जा बैठती और वहीं से आवाज लगा कर कहती, "हम तो सोनलबाई की बहुत अच्छी कहानी सुन रहे हैं, तुम्हें यहाँ नहीं आने देंगे।"

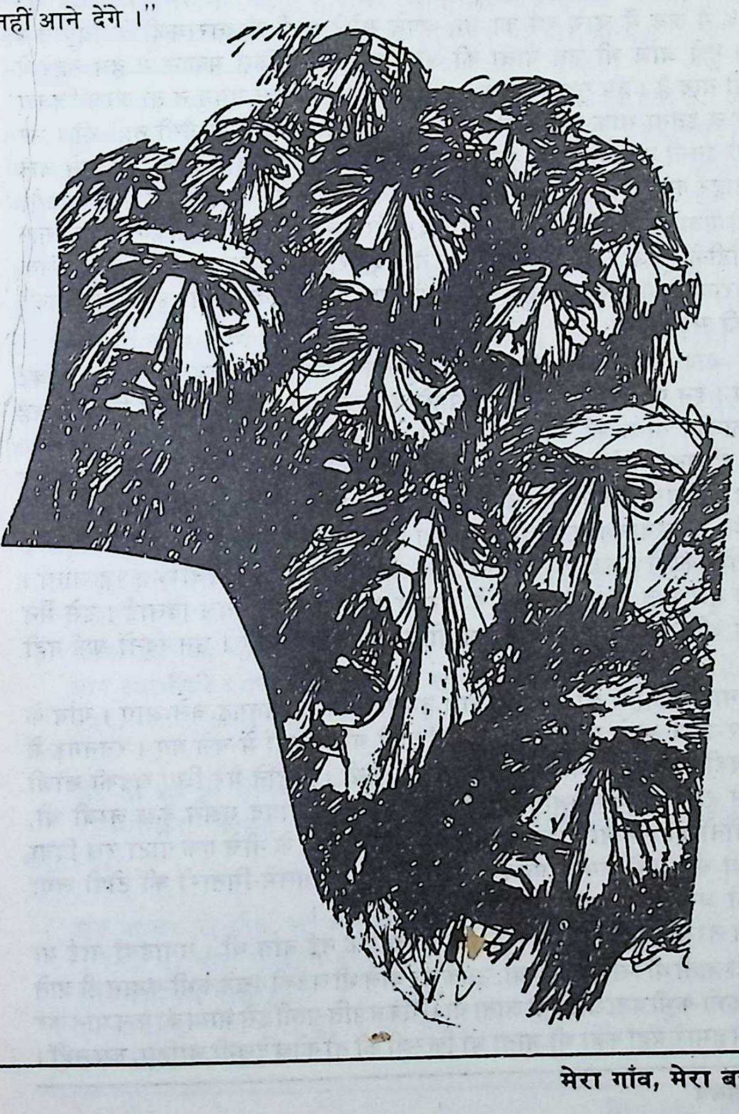

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोक जीवन

सन् १९१४ में जब मैं चार वर्ष का था, अपने ममेरे भाई दौलतरामजी के विवाह कलकत्ता गया। मुझे आज भी उस यात्रा की और कलकत्ते में जिस मकान में हम ठहरे उसकी धुँधली-सी याद है। हम तुल्लापट्टी में ठहरे थे। कलकत्ता उस समय न तो आज जितना बड़ा ही था और न इतना साफ-सुथरा ही। रहने की सुविधाएँ भी आज जैसी नहीं थी। उ मकान की टट्टियाँ इतनी बदबूदार और गन्दी थीं कि लोग मुँह में कपड़ा बाँधकर निबटने जा थे। पाखाने के बाहर क्यू लगी रहती थी। इसके अलावा इतना और याद है कि मेरी माँ औ नानी आदि पुरी की यात्रा पर जा रही थीं। उन दिनों परदे का रिवाज था। घर से रवाना हुए तो मैं भी सा था। जिस घोड़ागाड़ी में हम जा रहे थे, उसे चारों ओर से बन्द कर दिया गया था। मेरा दम घुटने लगा था। जी ऐसा घबराया कि मैं रोने लगा। मुझे रास्ते से ही वापस घर भेज दिया गया। उस समय कलकत्ते के बड़ाबाजार की सड़कों पर गन्दा पानी जगह-जगह भरा रहता था।

बहुत वर्षों बाद मैंने चार्ल्स डिकेंस की पुस्तक 'ऑलीवर ट्विस्ट' और 'डेविड कॉपरफील्ड' पढ़ी। इन पुस्तकों में दो सौ वर्ष पहले के लन्दन की गलियों का जो चित्र है, वह कलकत्ते की तत्कालीन यात्रा की स्मृति को ताजा कर देता है।

सन् १९१६ में जब हमारे यहाँ रेल आ गई तब मैं अपनी नानी जी के साथ ट्रेन से उनके पीहर चुरू गया। चुरू हमारे कस्बे से रेल-मार्ग द्वारा ६० मील दूर है। यह कस्बा उस समय जनसंख्या की दृष्टि से सरदारशहर से दो गुना बड़ा था। जब मैं अपने मामा के साथ चुरू के बाजार में जाता तो दूकानों में रखे हुए तरह-तरह के सामान को देखकर अचम्भित रह जाता। एक दिन मामा ने मुझे सात आने में गुलाब के शरबत की एक बड़ी बोतल दिलाई। इसे मैंने बड़े ज़तन से रखा और एक महीने तक ठंडे पानी के साथ पीता रहा। उन दिनों ब्रर्फ नहीं आती थी।

१९१८ में हमारे यहाँ हैजे का प्रकोप हुआ। हम सपरिवार रतनगढ़ चले आए। गाँव के और भी लोग इधर-उधर अपने सम्बन्धियों के यहाँ दूसरे गाँव कस्बों में चले गए। रतनगढ़ में मेरे दादा जी की बड़ी बहन राम प्यारी बाई की ससुराल थी। उन्होंने मेरे लिए लड़की खोजी और एक दिन उसे हमारे निवास-स्थान पर ले आई। लड़की शायद मुझसे कुछ लम्बी थी, इसलिए जब हम दोनों को एक साथ खड़ा किया गया तो मेरे पैरों के नीचे एक पाटा रख दिया गया। लड़की आयी थी धोती-कमीज पहन कर और सिर पर सलमे-सितारों की टोपी लगा कर। आठ वर्ष की अवस्था में वहीं मेरी सगाई कर दी गई।

उस समय इस तरह लड़की को लड़के के घर लाना एक नई बात थी। सगाइयाँ नाई या ब्राह्मण के मारफत हो जाती थीं। लड़का तो क्या, उसके घर वाले भी लड़की देखने कभी-कदास ही जाते थे। इस अवस्था में कभी-कभी बड़ा धोखा हो जाता था। लेकिन पति-पत्नी इसे भाग्य का फल मान कर संतोष कर लेते। वैसे हमारे यहाँ कहा भी जाता था कि स्त्री की तो कोख देखनी चाहिए, रूप नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन यात्राओं के अलावा मुझे एकाध बरात में भी जाने का मौका मिला। वैसे आम तौर पर बरातों में छोटे बच्चों को कम ले जाते थे। मुझे याद है कि जब कभी घर के बड़े, बरात में जाने की तैयारी करते तो हम बच्चे मचल जाते। हमें किसी न किसी बहाने टाल दिया जाता।

बस से ज्यादा मजेदार होती थी ऊँट के इक्के पर बैठ कर वंशीधरजी चौधरी के जोहड़ (तालाब) तक की यात्रा। यात्रा के अतिरिक्त वहाँ पर-दालबाटी के सुस्वादु भोजन की भी व्यवस्था रहती। हम लोग सरदारशहर से १२ मील दूर स्थित दूलरासर में गोरांजी साध्वी के यहाँ भी जाते थे। बचपन में ही गृहत्याग करके वह यहाँ रहने लगी थीं। हमार लिए उनके सुरीले भजनों में तो आकर्षण कम रहता, पर उनके आश्रम के नीमों की छाया, निंबोली, झाड़ी के मीठे बेर और गूँदी के गूँदिये हमें बहुत लुभाते। आज भी सरदारशहर से रतनगढ़ जाते समय रास्ते में दूलरासर पड़ता है। मेरी माता जी ने आठ-दस वर्ष पहले आश्रम के चारों तरफ दीवार बनवाई थी। उस संदर्भ में भी वहाँ एक दो बार जाना पड़ा, पर अब उस स्थान में पहले जैसा आकर्षण नहीं रहा।

गोरांजी ही नहीं, उनकी शिष्या भूरांजी का भी स्वर्गवास हो गया है। उस समय के जो तरुण वृक्ष थे, वे भी बूढ़े हो गए। नए पौधे किसी ने लगाए नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मेरा वह बचपन भी अब मेरे पास नहीं रहा, जो प्रकृति के साथ हँसता, खेलता और मचलता था।

कहावतें और मुहावरे लोकजीवन का दर्पण हैं। जाति के रीतिरिवाज, आचार-विचार, सुखदु:ख आदि का कहावतों और मुहावरों में मार्मिक चित्रण मिलता है। इनमें मनुष्य जाति का युगों-युगों का अनुभव तथा व्यावहारिक ज्ञान संचित रहता है। कहावतों का लोक-भाषा और लोक-साहित्य में वही स्थान है, जो खाने में नमक का। इनमें कहीं चुटीला व्यंग्य, कहीं मीठा हास्य और कहीं तीर जैसी चुभती हुई उक्ति थोड़े से शब्दों में इस प्रकार रहती है कि कहने और सुनने वाले दोनों ही इनका रस लेते हैं।

राजस्थान के लोकजीवन में कहावतों और मुहावरों का बहुत प्रचलन है। वैसे तो हजारों कहावतें और मुहावरे हमारे यहाँ प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु अपने बचपन के दिनों में जिन विशेष कहावतों और मुहावरों को हम सुनते समझते और कहते रहे, उनमें से ही कुछ का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ।

अकल बड़ी की भैंस ? (भैंस से बुद्धि बड़ी होती है।)
आप स्यामीजी बैंगण खावै, औरां ने परमोद सिखावै।
(पर उपदेश कुशल बहुतेरे।)

ऊँट तो कूदै ही कोनी, बोरा पेली ही कूदै।
(सम्बन्धित व्यक्ति की उपस्थिति में असम्बन्धित व्यक्तियों का पंचायत करना।)

एक काचर रो बीच, सौ मण दूध बिगाडे
(छोटी सी चीज से बहुत बड़ी हानि हो सकती है।)
एक नन्नो सौ दु:ख हरै।
(एक इनकार सौ दु:ख दूर करता है।)
एक पंथ दो काज।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
(सट्टा करो और नष्ट हो जाओ ।)
काणी रो काजल ही कोनी सुहावै ।
(साधारण व्यक्ति का मामूली सा बनाव-पहनाव भी नहीं सुहाता ।)
कात्या ज्यांरा सूत, जाया ज्यांरा पूत ।
(सूत उनका जिन्होंने काता, पुत्र उनका जिन्होंने जन्म दिया ।)
काम करैं ऊधो दास, जीम ज्याय माधोदास ।
(काम कोई करता है, लाभ कोई उठाता है ।)
कोई गावै होली रा, कोई गावै दीवाली रा ।
(अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग ।)
कोई पूछै न ताछै मै लाडै री भूवा ।
(कोई पूछे न ताछै और कहती है मैं दूल्हे की फूफी हूँ ।
खरची खूटी यारी टूटी ।
(सांई या संसार में मतलब को व्यवहार, जब लग पैसा गाँठ में तब तग ताके यार)
काख में छोरो गाँव में ढिंढोरो ।
(दिया तले अँधेरा ।)
गुरू कीजे जान, पाणी पीजै छाण ।
(गुरु समझबुझ कर करना चाहिए, और पानी छान कर पीना चाहिए ।)
गई बांता ने घोड़ा ही को नावडैनी ।
बीती बात लौटाई नहीं जा सकती ।)
गाय रै भैंस कांई लागैं ।
(जब परस्पर कोई रिश्ता न हो ।)
चालणों रस्ते सर हुवो भला ही फेर ही ।
(नीति की यह अनुपम कहावत है, कि चलो रास्ते से ही, चाहे दूर ही पड़े ।)
बैठणों छाया में हुओ भलां ही कैर हीं ।
(बैठो छाया में ही, चाहे वह कैर की ही हो ।)
रैवणों भायां में हुओ भलां बैर ही,
(रहो भाइयों के साथ ही, चाहे उनसे मेल न ही हो ।)
जीवणों माँ रैं हाथ रो हुओ भला ही जैर ही ।
(खाओ माँ के हाथ से, चाहे वह जहर ही दे ।)
डाकन ही, पर जरख चढ़ेगी ।
(करेला और नीम चढ़ा ।)
डाकन बेटो दे क ले ।
(डायन बेटा दे या ले, अर्थात् अत्याचारी से लाभ नहीं, हानि ही होती है ।)
तीन बुलाया तेरह आया, भई राम की वाणी ।
राधो चेतन यूं कहे ठेल दाल में पाणी ।
(तीनों को निमंत्रण दिया आ गये तेरह । नीति से काम लो, दाल में पानी ऊड़ेल कर बढ़ा लो)
थावर कीजै थरपना, बुद्ध कीजे व्यापार ।
(शनिवार को स्थापना और बुधवार को व्यापार करना चाहिए)
दोनूं हाथ रलायां धुपै ।
(दोनों हाथ मिलाने पर धुपते हैं या ताली बजती है । मिलकर काम करो ।)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खांसी काल री मासी ।
(खाँसी बिमारियों की जड़ है ।)
धन कनै धन आवै ।
(धन से धन बढ़ता है ।)

इस सम्बन्ध में एक मजेदार कहानी है । एक जाट से किसी ने कहा कि 'धन के पास धन आता है ।' उसने किसी से एक रुपया उधार लिया और एक सेठ की दूकान पर जाकर खड़ा हो गया । सेठ बहुत सारे रुपए गिन रहा था । जाट अपना रुपया दिखा कर कहने लगा, "धन के पास धन आवे ।" संयोग से उसका रुपया सेठ के बहुत से रुपयों में गिर गया । जाट ने बहुत ही दीनतापूर्वक सारी कहानी सेठजी को सुनाई । सेठ ने उसका रुपया लौटाते हुए कहा, "उक्ति तो ठीक ही थी, ज्यादा धन के पास धन आ गया ।"

धोती रै मांय सै नागा ।
(कौन बुरा नहीं ।)
नागी कांई धौवै, कांई निचौवे ।)
(जब पास में कुछ न हो तो कोई क्या कर सकता है ।)
नौकर मालक रा हां, बैगण रा कोनी ।

(हाँ में हाँ मिलाना ।) इस पर एक कहानी है ।" एक सेठ ने अपने नौकर से कहा, "बैंगन बहुत बुरा होता है । नौकर ने झट कहा, "जी हाँ इसमें क्या शक है । इसका नाम ही बे-गुन है ।" फिर सेठ जी बोले, " यह तो बहुत बढ़िया सब्जी है ।" नौकर तत्काल बोला, "आप बिल्कुल ठीक ही फरमाते हैं । तभी तो इसके सिर पर मुकुट है ।" सेठ जी ने हँसकर कहा, 'दोनों ही बात ठीक कैसे बता रहे हो ?" नौकर बोला, हुजूर, मैं आपका नौकर हूँ, बैंगन का नहीं ।"

बीन के मुडे लार पड़ै तो जनैती करै ।
(जब मुखिया में ही दम नहीं है, तो सहायक क्या कर सकते हैं !)
पेट में ऊँदरा कूदै ।
(भूख लगी है ।)
पूतरा पग पालणो में पिछाणी जै ।
(होनहार बिरवान के होत न चीकंने पात ।)
पेट में छूरी कतरनी है ।
(मन में कपट है ।)
बकरी दूध तो देवै पण मींगणी रला रै देवै ।
(दुष्ट आदमी काम तो कर देते हैं, किन्तु साथ में कुछ हानि भी कर देते हैं ।)
बाई कहता रांड आवै ।
(जिसे बोलने का शऊर न हो ।)
बांध्या बलद ही कौ रैवैनी ।
(बांध कर तो बैलों को भी नहीं रखा जा सकता ।)
बाबो आवै न ताली बाजै ।
(न ऐसा होगा, न यह काम होगा ।)
बैठतो बाणियो, उठती मालण ।
(दूकान खोलते ही बनिया और बाजार से उठते समय मालिन सस्ता सौदा बेचती है ।)
भण्या पण गण्या कोनी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(बिना गुण के पढ़ना व्यर्थ है ।)

पण्यो न गुण्यो, नांव विद्याधर ।

(पढ़े न गुने, नाम विद्याधर ।)

इस सम्बन्ध में एक मजेदार कवित्त सुना था, वह यों है

नाम तो लक्ष्मीबाई, छाणाबीणै बन मांही,
रूपीबाई नाम, रूप कागथी सवायो है ।
नाम तो जड़ावबाई, पास न तांबे रो तार,
स्याणीबाई नाम जन्म राड़ में गवांयो है ।
नाम तो दयाबाई, जुआंलीखां मारै नित,
राजीबाई नाम, राखै थोबड़ो चढ़ायो है ।

(नाम तो है लक्ष्मी और जंगलों में गोबर चुनती फिरती है । रूपीबाई का रूप कौन सवाया है । नाम है जड़ावबाई (आभूषण) और पास में तांबे का तार भी नहीं है । नाम सयानी और सारा जन्म बिता दिया लड़ाई में । दया नाम है और नित्य कीड़े-मकीड़े मारती है । इसी प्रकार राजी अर्थात् खुश मिजाज नाम है, लेकिन हमेशा मुँह फुलाए यानी क्रुद्ध रहती है । आदि आदि ।)

बींद मरो, बींदणीं मरो, बामणरो टको त्यार ।

[दूसरे के नुकसान की परवाह अक्सर कही जाती है ।]

सलाम सट्टे मिय्राँ ने बराजी क्यूं कुरणो ।

[केवल सलाम के लिए मियांजी को नाराज नहीं करना चाहिए]

सस्तो रोवै बारम्बार, मूँधो रोवै एक बार ।

[सस्ती वस्तु टिकाऊ और अच्छी नही होती ।

मँहगी वस्तु में एक बार तो अधिक दाम लगता है, पर वह अच्छी और टिकाऊ होती है ।

सांप के बचिए रो कांई छोटो ।

[दुश्मन को छोटा न समझिए]

जब सुखी रहने वाले परिवार या व्यक्ति पर दु:ख पड़ता है, तब यह उक्ति कही जाती है :

समै करै नर क्या करै, समै समै की बात
कैई समै रा दिन बड़ा, कैई समय री रात ।
समै बड़ो नर क्या बड़ो, समै बड़ो बलवान
का बां लूँटो गोपका वो अरजुण वै बाण ।

[समय बलवान है । समय खराब तो अर्जुन भी अपनी शक्ति खो बैठा और स्त्रियों की रक्षा तक न कर सका ।]

साख एक सुसिए की, अर्थात् गवाही चाहे खरगोश की ही हो । इस पर एक मजेदार कहानी है :

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साख एक सुसिए की, अर्थात् गवाही चाहे खरगोश की ही हो । इस पर एक मजेदार कहानी है :

एक बनिया धन कमाने परदेश चला । मार्ग में कई ठग मिले । उनको देख कर बनिया पहले तो घबराया, पर फिर अपनी दरी बिछा कर बैठ गया और रूपयों की थैली खोल ली । ठग भी उसके पास आकर बैठ गये और बोले, 'सेठ जी, हमें रुपयों की जरूरत है उधार दे दीजिए ।' बनिया बोला–'हमारा तो काम यही है । आप किसी गवाह को ले आइये , ताकि लिखा-पढ़ी की रस्म पूरी हो जाए ।' इतने में एक खरगोश वहाँ से निकला । ठगों ने कहा, 'सेठजी, इसी को साक्षी लिख लीजिए, अब जंगल में दूसरा गवाह कहाँ से लाएँ ! ' बनिए ने कहा 'ठीक है ।'

उसने रुपए ठगों को गिन दिए और बही में उनके नाम-धाम लिख कर नीचे लिख दिया– 'साख एक सुसिए री' फिर वह दुखी मन से घर लौट आया । इसके बाद वह बराबर उन ठगों का ध्यान रखने लगा । एक दिन वे गाँव में दिखाई दिए । बनिए ने झट पुलिस को सूचना दी और ठग पकड कर राजा के सामने पेश किए गए । मामला चला । ठगों ने कहा, हूजूर, बनिया झूठ बोलता है, यदि रुपये हमने लिए होंगे तो कोई साक्षी होगा; क्योंकि बिना साक्षी के ये उधार नहीं देते हैं ।

बनिए ने कहा, 'हाँ, अन्नदाता, साक्षी है । मेरी बही में लिखा है—साख एक लूँकड़ी [लोमड़ी] की ।'

यह सुनते ही उनमें से एक मूर्ख ठग बोला, 'क्यों झूठ बोलते हो, वह लोमडी कहाँ थी वह तो खरगोश था ।'

बनिया बोला, 'हाँ सरकार, बेशक बोलने में भूल हो गयी, यह ठग ठीक कहता है । मेरी वही में खरगोश ही लिखा है ।

राजा सब कुछ समझ गया । बनिए को उसका धन मिला और ठगों को जेल ।

वैसे राजस्थानी भाषा में कहावतों का भण्डार है, पर मैं एकाध मजेदार कहावत का उल्लेख कर इस चर्चा को समाप्त करता हूँ ।

जब किसी की इच्छा ससुराल में अधिक दिन रहने की होती तब उसके साथी कहते 'तीन दिना रा पावणा चौथे दिन अण खावणां ।'

अभिमानी व्यक्ति के लिए कहा जाता है,

हम बड़ा, गली साँकड़ी । होती थोड़ी हलेहल घणी ।

[थोड़ी बात पर बहुत हो हल्ला करना]

हाड़ रो कांई लाड़ ।

[हड्डी का क्या लड्डु]

इसकी भी एक मजेदार गल्प है । एक बूढ़े मियाँ शादी करके बीबी लाए । मियाँ के दाँत एक था । उन्होंने कहा, 'मर्द तो इक दत्ता ही भला ।' उस समय तक बीबी परदे में थी । अभी तक मियाँ ने देखी नहीं थी । वह बोली, 'हड्ड का क्या लड्ड' [मुख तो सफासफा ही भला।] मियाँ ने समझ लिया कि बीवी मुझसे ज्यादा बुड्ढी है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुरजन-परिजन

अपने परिवार के लोग किसे प्रिय नहीं लगते ! बच्चों का बुड्ढे लोगों से हेलमेल अधि होता है। मुझे अपनी दादीजी और दादाजी की याद आज भी है। दादीजी का देहान्त ७० वर्ष की उम्र में सन् १९३३ में हो गया।वह जीवन भर घर के काम में जुटी रहीं। सुबह से शाम तक पीसना, रसोई बनाना, गाय को चारापानी देना और भजन ध्यान करना, यही उनकी दिनचर्या थी। मध्यम वर्ग के परिवार की गृहस्थी थी। हम भाई-बहन छोटे थे। हमारी देखभाल करतीं माताजी। दादी जी के जिम्मे था घर का काम। बिना किसी शिक्वे-शिकायत के वे घर का काम करती थी। उनकी अपनी एक छोटी सी कोठरी थी। उसकी चाभी एक निश्चित जगह पर रखी रहती।

मैं अक्सर ही उनकी कोठरी से दो-चार पैसे चुरा लेता था। उस समय के हिसाब से यह मेरे लिए बड़ी निधि थी। दादीजी के पास कुल जमा पूँजी सौ दो सौ रुपए थी। कभी-कभी अधिक आवश्यकता पड़ने पर यह सारी पूँजी वह पिताजी के हाथ में रख देतीं। उनकी इच्छा थी कि दादाजी के रहते उनका देहान्त हो। ऐसा ही हुआ भी। उनकी मृत्यु के बाद दादाजी सरदारशहर छोड़कर काशीवास करने लगे।

दादा जी

पिता जी काम में व्यस्त रहते या कलकत्ता आते जाते रहते इसलिए हमारी देख-भाल दादाजी ने की। वह भजनीक और सात्विक पुरुष थे। सुबह छह बजे से नौ बजे तक और रात में सात से दस बजे तक राम नाम का जाप करते रहते। जाप के समय बोलते नहीं थे। कभी-कभी जरूरी काम हुआ तो जोर-जोर से राम नाम लेते। हम उनके पास जाते तो इशारों से बता देते। उनका विश्वास था कि वर्ष में एक करोड़ बार राम नाम लेनें से मोक्ष हो जाता है। जब तक रहे, उन्होंने इस विश्वास को पूरी तरह से निभाया। सन् १९३६ के लगभग वह काशी चले गये और वहीं रहने लगे। उनके साथ मेरे माता-पिता और सभी घर वाले आ गए।

हमारी स्थिति साधारण थी। जितना कमाते उसी से कलकत्ता और बनारस का खर्च किसी प्रकार चल पाता। एक दिन दादाजी अस्वस्थ हुए उन्होंने माताजी व पिताजी को पास में बैठाकर कहा, "सूरजमल नागरमल" की तरह अपनी ओर से भी बनारस में एक डिस्पेंसरी, सदाव्रत और विधवाओं के लिये मासिक सहायता की व्यवस्था होनी चाहिए। सरदारशहर में मंदिर, पाठशाला और कुएँ होने चाहिए और इसी प्रकार कलकत्ता मे भी पाठशाला धर्मशाला होनी चाहिए।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनकी बातें सुन कर पिताजी कुछ चिन्तित और कुछ आश्चर्यचकित होकर बोले, "काका जी वह तो बहुत बड़े आदमी हैं, अपने यह सब कैसे बना पाएँगे ?" उन्होंने उसी समय आर्शीवाद के रूप में कहा, "चिंता न करो ! योजना बनाओ, एक दिन तुम लोग भी वैसे ही हो जाओगे ।"

मेरे पिता जी का देहान्त सन् १९६५ में हुआ । वह बराबर दादा जी का यह शुभ आर्शीवाद दोहराते थे । वास्तव में हमारे दादा जी वचन सिद्ध महात्मा थे ।

दादी जी

उन दिनों औसत मध्यम श्रेणी के घरों में काम स्त्रियाँ ही करती थीं । बच्चों के लिए भी आज कल की तरह दाई या आया नहीं रखी जाती थी । हम-बहन भाई छोटे थे । इसलिए घर का सारा काम हमारी दादी जी के जिम्मे रहता । सर्दी हो या गरमी, वे सुबह चार बजे उठ जातीं और चार-पाँच सेर आनाज़ पीस लेतीं । उसके बाद बिलौना करतीं । हम बच्चे बिलौने की आवाज से इतने परिचित हो गए थे कि तुरन्त उठ कर बिलौने के चारों तरफ बैठ जाते । दादी जी दही बिलोती जाती और थोड़ा-थोड़ा चूँटियाँ (मक्खन) हम सबको देती जातीं । लीली गाय को भी वे ही दुहंतीं, क्योंकि यदि कोई दूसरा दुहता तो लीली दूध कम देती । जैसे उसे दादी जी के हाथ सुहाते हों । उनके मन में भी लीली के लिए ममता तो थी ही ।

रसोई वगैरा से निवृत होकर दादी जी चरखा कातने बैठ जातीं । उस समय खादी का प्रचलन नहीं था । परन्तु वे मितव्ययता के दृष्टिकोण से पुरानी रुई (लूगड़) को काततीं और उस सूत से बिछौने के मोटे कपड़े बन जाते । इसके अलावा वे ऊन भी काततीं । उनके काते हुए ऊन के कम्बल हमें बहुत अच्छे लगते, क्योंकि हम बच्चों का भी उसमें थोड़ा सहयोग रहता । हम उन्हें बताते रहते कि इस लच्छी में यह काँटा रह गया और बीच-बीच में काँटे निकालते भी रहते ।

अपना सारा जीवन उन्होंने घर के लोगों के लिए उत्सर्ग कर दिया । सीमित साधन थे, इसलिए अपने लिए उन्होंने कभी अच्छी चीजों की कामना नहीं की । वे अपना सारा स्नेह हम बच्चों पर उड़ेले रहतीं ।

ऊपर दही बिलौने का उल्लेख कर आया हूँ । बिलौना प्रायः रोज ही होता । बहुत सी छाछ (मट्ठा) हो जाती । सुबह आठ बजे से छाछ लेने वाली पड़ोस की महिलाएँ और बच्चे हमारे यहाँ आ जाते । ऐसी मान्यता थीं कि छाछ और बेटी माँगने में क्या संकोच ? उस समय मध्यम श्रेणी के घरों में प्रायः घीणा (गोपालन) रहता और जिनके घर बिलौना होता, उनसे पड़ोस के लोग चाहे वह अच्छे खाते पीते हों या गरीब, छाछ लेने निस्संकोच पहुँच जाते । छाछ देने वाला भी स्नेह से देता और अनुभव करता कि मैं पड़ोसियों के कुछ काम आ रहा हूँ ।

दादी जी ७० वर्ष की अवस्था में चल बसीं । उन्हे सन्तोष था कि उनके बेटे-पोते अच्छी तरह खाने कमाने लगे हैं । वे दादा जी के सामने ही जाना चाहती थीं । उनकी यह इच्छा भी पूरी हुई । रघुनाथ जी के एक मन्दिर के निमार्ण का सपना भी जीवित रहते हुए भी साकार हो गया था ।

पिता जी

हम बच्चे किसी से डरते थे तो पिता जी से । उनका अनुशासन काफी कड़ा था, किन्तु हमे यह याद नहीं कि उन्होने कभी हमे मारा हो । वह जरा जोर से बोलते तो हम डर जाते । दादा जी के देहान्त के बाद हमारा कारोबार तेजी से बढ़ने लग गया था; पिता जी ने कभी उसमें खास हस्तक्षेप नही किया । उनके पूजा-पाठ का समय बढ़ गया । दादा जी ने मृत्यु से पहले जो इच्छा जाहिर की थी, वह उसी को निभाने एंव धार्मिक-सामाजिक कार्यो में लगे रहे । पिता जी का देहान्त ८२ वर्ष की उम्र में सन् १९६५ में हुआ ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घर वाले सभी काशी में इकट्ठे हुए। मृत्यु के कुछ दिन पहले उन्होने मेरे और बृजलाल के पुत्रों को गोद में बैठाया और कहा–"बेटा, तुम तो आये हो और मैं तो जा रहा हूँ। उनकी खुशी थी कि उनके सामने हमारे स्कूल, कालिज, धर्मशालाएँ, मन्दिर और कुएँ बन चुके थे और भरा-पूरा सम्पन्न परिवार था। लेकिन वह मन में कभी दुःख भी करते, क्योंकि मेरे बड़े बहनोई और छोटी बहन का देहान्त उनके जीवित रहते हो गया था।

माता जी

वैसे तो अपने माता-पिता सभी को अच्छे लगते हैं, लेकिन मैं यह कहूँ तो अत्युक्ति न होगी कि मेरी माँ ही दयावान और धर्मनिष्ठ थीं। छूआछूत और खाने-पीने का बहुत परहेज रखतीं। उनका स्वास्थ्य अच्छा था, किन्तु पिता जी के देहान्त के बाद वह जीवन से उदास रहने लगी थीं। ६५ वर्ष का लम्बा वैवाहिक जीवन उन्होंने बिताया था। माता-पिता दीर्घकाल तक एक दूसरे के सुखदुःख के साथी रहे।

वह उदार थीं उनसे याचना करके शायद कोई निराश लौटा हो। कभी-कभी तो वह इतना दे देतीं कि हम लोग उनको समझाते कि आपको ठग लिया गया है। जो बेचारा ले गया, वह निश्चय ही गरीब होगा, नहीं तो ठगता क्यों! उनकी मृत्यु सन् १९६८ में ८१ वर्ष की उम्र में हुई। उनके पास जितने भी निजी नौकर-चाकर थे, उनके बच्चों की विवाह-शादी में तथा अन्य अवसरों पर वे जी खोल कर देती थीं। आज भी वे सब हमारे यहाँ है, एक प्रकार से पेंसनयाफ्ता। माता जी के अलावा, कुछ और व्यक्ति भी मुझे अब तक याद हैं।

साहजी सुखानन्द जी

मेरी बड़ी बहन के श्वसुर सुखानन्दजी सचमुच अजातशत्रु थे। जीवन में उन्होंने कभी न किसी का बुरा सोचा, न बुरा किया। उमर में बड़े थे, फिर भी हम बच्चों को अपने परिवार के बच्चों जैसा मानते थे। हम ही क्यों गाँव के सभी बच्चे उनसे हिलेमिले रहते थे। साधारण स्थिति होते हुए भी वह दूसरों के लिए जितना जो कुछ करते थे, उतना बिरले ही कर पाते हैं। जब मैं स्वर्गीय रफी अहमद किदबई के बारे में कुछ सुनता-पढ़ता हूँ तो मुझे सुखानन्द जी की याद आ जाती है।

भानी बाबा

मैं तीन वर्ष का था। धुँधली सी याद है–भानी बाबा की। वह हमारे यहाँ कारिंदगी और उगाही का काम करते थे। जैसा कि ऊपर लिख चुका हूँ, उस समय चीजों के भाव सस्ते थे। फिर भी लोग खाने-पीने में मितव्ययता से काम लेते। भानी बाबा को बाजरे की बहुत सी खिचड़ी और उसके बीच में थोड़ा सा घी दिया जाता था। वह खुद रूखी खिचड़ी खाते और हम दोनों भाइयों को घी खिला देते थे। तकादे के लिए देहात जाते, तो वहाँ से लौटते वक्त ऊँट पर ककड़िएँ-मतीरे लाद लाते। स्वयं पैदल आ जाते। उनका वेतन था दो रुपया महीना। हमें गोद में लिए या अँगुली पकड़े बाजार ले जाते। अपने पास से दो-चार पैसे खर्च करके चीजें दिला देते।

कस्तूरी दादी

इसी तरह की याद है कस्तूरी दादी कीं। वे हमारे यहाँ पीसने-पोने का काम करती थीं। पीसते-पीसते भजन गाती रहती। रात में हमें कहानियाँ सुनातीं। जब हम लछमणा महाराज के पास बैठने लगे थे, तब वह मर गई थीं।

वंशीधरजी पंसारी

एक और व्यक्तित्व की झलक आज भी आँखों के सामने है। राजा जनक के बारे में पढ़ा है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि वह राज्य करते हुए भी ऋषि-तुल्य जीवन जीते थे। इसीलिए उनका दूसरा नाम था विदेह। वंशीधर जी वास्तव में ऐसे ही पुरुष थे। पंसारी का काम करते थे। एक पैसे से लेकर रुपये तक का सौदा बेचते। मुँह में राम का नाम रहता और हाथों से काम करते रहते। बच्चों, बड़ों और बुड्ढों के साथ समान व्यवहार था। कभी डंडी मारने की बात उन्होंने सोची नहीं। साधु महात्मा उन्हें घेरे रहते। किसी को टोपी, किसी को कुरता और किसी को 'सीधा' देते रहते। पता नहीं कैसे उनके घर के खर्च और दानपुण्य दोनों की पूर्ति होती थी। उनकी छोटी बहन थी भूरी नानी, जिसके बारे में मैंने एक संस्मरण लिखा है। वह अपना तो देती थीं दूसरों के पास भी जो अनावश्यक चीजें होती, चुपके से उठा कर जरूरत मन्दों को दे डालती थीं। कोई झगड़ा करता तो कहतीं–'तुम्हारे पास तो फालतू थी; वे बेचारे क्या पहनते या ओढ़ते!' पता नहीं उन्होंने जैन-धर्म के अपरिग्रह का सिद्धान्त या एंजिल्स की थ्योरी कहाँ सीखी थी!

जैसा कि मैंने पढ़ाई-लिखाई प्रकरण में उल्लेख किया है, दादा जी ने हमारे घर में ही लछमणा गुरुजी की पाठशाला लगवा दी थी, हम उन्हीं के पास पढ़ते थे। आज भी लछमणा गुरु जीवित हैं। मैं जब जाता हूँ, उनसे मिलता हूँ। अब वह बड़े अदब से मिलते हैं। लेकिन जब मैं हँस कर कहता हूँ 'गुरुजी उस समय तो आप हमें बहुत मारते थे, तब वह गौरवान्वित से होकर कहते हैं–'हाँ, कभी-कभी तो आप पेशाब कर देते थे।'

लछमणा महाराज की बात ऊपर लिख आया हूँ। दोनों समय वह हमारे यहाँ पूजापाठ करते थे, तनख्वाह थी पाँच रुपया महीना। इसके अलावा वह लोगों के घरों में जाकर विष्णु-सहस्रनाम और हनुमान चालीसा का पाठ भी करते थे। एक रुपया हरेक घर से लेते। वह शाहपुरा (जयपुर) के थे। सरदारशहर उसके लिए दिसावर के समान था, १२ महीनों की मुसाफिरी करते और 'देश' चले जाते। बड़ा ही सात्विक व्यक्ति थे। हमें अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाते। इसलिए हम उनसे बहुत खुश रहते और कभी-कभी नानीजी या माँ से माँग कर धोती या कुरते का कपड़ा ले जाते। लेकिन बगैर घर वालों को पूछे, उन्होंने कभी इन चीजों को छुआ तक नहीं। १९६५ में उनकी मृत्यु हुई। इसके कुछ समय बाद मैं एक बार उसके गाँव भी गया था। दैन्यता का वातावरण था। टूटा मकान-खण्डहर सा। थोड़ी देर ठहरा। मेरे बचपन की यादों की परतें खुल गई पता नहीं मन में क्यों उदास हो गया।

इन व्यक्तियों के साथ-साथ दो एक और भी चरित्र उल्लेखनीय हैं, जो मेरे बचपन के अभिन्न साथी रह चुके है। चीलिया ऊँट की स्मृति आज भी ताजा है। चीलिया नाम इसलिए पड़ा कि वह चील की तरह तेज दौड़ता था। इस ऊँट पर बैठ कर सरदारशहर के आसपास के टीबों में और यहाँ की बालू में बहुत घूमा हूँ। कभी भानी बाबा के साथ तो कभी किसी अन्य के साथ। दुर्योग ऐसा हुआ कि चीलिया जल्दी ही मर गया।

प्रेम सुख दास करवा

सन् १९०९ में उस मरुस्थली अंचल में पब्लिक लायब्रेरी के संस्थापक श्री प्रेमसुखदास करवा थे। मेरी छोटी अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया था। किन्तु आज भी मुझे उनकी याद ताजा है। खानपान, कपड़े-लत्ते में वे जितने संयमी थे, उतने ही बोलने में मितभाषी थे। मेरा जो भी पढ़ना-लिखना हुआ, वह उन्हीं के द्वारा संस्थापित उक्त पुस्तकालय से। उनके केवल एक पुत्री महादेवी बाई थीं, जिनका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिड़ला से हुआ था। ऐसा कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि सरदारशहर में हिन्दी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रति रुचि पैदा करने वालों में श्री करवा अग्रणी थे। वैसे उनका कोई स्मारक नहीं है, किन्तु हमारे कस्बे की पब्लिक लाइब्रेरी (जो कि राजस्थान के अच्छे पुस्कालयों में है) ही उनका सबसे बड़ा स्मारक है, जिससे तीन लाख व्यक्ति प्रति वर्ष लाभ उठाते हैं।

मघराज जालान

८० वर्ष की अवस्था, परन्तु पूर्णरूप से स्वस्थ शरीर। हर समय येय मन्दिर या गोशाला के लिए धन संग्रह में लगे रहते। चाहे सुदूर बंगाल जाना हो या असम, जालानजी सबसे आगे। कलकत्ता के बड़ा बाजार अंचल की ऊँची-ऊँची कोठियों में न तब लिफ्ट थी, न अब। हम लोग सीढ़ियाँ चढ़ते हिचकते, किन्तु मघराजजी दनादन बच्चों की तरह सीढ़ियाँ चढ़ते। हम युवकों को भी उनके पीछे-पीछे ही जाना पड़ता। सार्वजनिक कामों के लिए धन-संग्रह की लगन ऐसी कि दूरी और ऊँचाई उनके सामने किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। कंजूस से कंजूस व्यक्तियों की भावनाओं को प्रेरित करके उनसे रुपया निकलवाने की कला उनमें थी। किसी से भगवान के भोग के नाम पर तो किसी से गाय की बच्छी के नाम पर रुपया माँग लेते। ८ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ। आज तक उनके स्थान की पूर्ति हमारे यहाँ नहीं हो पाई है। सचमुच ही वे अपने आपमें एक संस्था थे।

बाबू शोभाचन्द जम्मड़

जम्मड़जी शायद किसी समय गृहस्थी में रहे होंगे। पर पत्नी की अकाल मृत्यु से छोटी उम्र में ही गृहस्थी के जंजाल से मुक्त हो गए। कोई बालबच्चा भी न था। दादू पंथी रामरतनजी साधु के ताल के मन्दिर में रहते। संस्कृत के अद्भुत ज्ञाता थे। मनोरंजन नाट्य परिषद के माध्यम से इन्होंने हमारे कस्बे में बहुत से बच्चों और युवकों को अभियनकला की शिक्षा दी। इन नाटकों से जो आय होती, उसे विभिन्नसंस्थानोंको दे दी जाती। जम्मड़जी ने भजनों की और संगीत की बहुत अच्छी पुस्तकें भी लिखीं। इनका लिखा जितना प्रकाशित हुआ, उससे कहीं ज्यादा अभी तक मित्रों के पास अप्रकाशित पड़ा हुआ है।

ओसवाल जैन होने पर भी वह परम वैष्णव थे। इनकी स्मृति में शोभाचन्द हॉल नामक विशाल भवन कस्बे के ताल में बना हुआ है।

धनराज बियाणी

मेरे बचपन का मित्र। उस समय हम दोनों की हालत खस्ता थी। एक दिन आलू की चाट खाने का मन हुआ। एक पैसे के आलू लिए उबाले, छीले और ऊपर से डाली इमली की मीठी चटनी और दही। खाए तो इतना स्वादिष्ट था कि जबान पर उसका ज़ायका आज भी है। कई वर्ष हम दोनों ने एक साथ खेलकूद कर बिताए। धनराज के पिता मरते समय उसे एक पुरजा दे गए थे। इस पुरजे में थी कर्जदारों की नामावली और उनसे ली गई रकमों का ब्यौरा।

छोटी उमर में ही धनराज राजस्थान से कलकत्ते चला गया। वहाँ उसने बड़ी मेहनत की और कर्जदारों की रकमें ब्याज-सहित चुकाना शुरू किया। कुछ कर्जदार राजस्थान के गाँवों में थे, उन्हें ढूँढा। कोई तो मर गए थे; उनके बेटे-पोतों को कर्ज की रकमें चुका दीं। जब तक पूरी तरह कर्जमुक्त नही हो गया, अपने रहने की जगह नहीं बनवाई। मेरी एक कहानी है 'पिता का कर्ज', उसका चरित-नायक हैं मेरा मित्र धनराज बियाणी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लीली गाय

लीले रंग की यह गाय बहुत ही 'सूधी' थी। डील-डौल में बड़ी थी। हम बच्चे निःसंकोच उसके पास चले जाते। दोनों समय सात-आठ सेर दूध देती थी। शायद हमारी पुरानी गाय की ही बछिया थी। दादी जो उसका सारा काम सँभालती थी।

लेकिन कुछ दिनों बाद, जब दादी जी अस्वस्थ रहने लगीं, गाय के काम के लिए नौकर रखने की जरूरत हुई। इसलिए गाय को बेच देना तय हुआ। दाम तय हुए शायद ६० रुपए, जो उस समय के हिसाब से अच्छी राशि थी। गाय अच्छे सम्पन्न घर में जा रही थी।।

विदा का समय आया तो दादी जी और हम बच्चे बिसूर-बिसूर कर रोने लगे। मुझे आज भी याद है कि गाय के भी टपटप आँसू गिर रहे थे। ग्राहक को वापस भेज दिया गया। लीली के लिए एक 'हाली' नौकर रख लिया गया। लीली हमारे घर में ही बुड्ढ़ी होकर मरी। दाह-क्रिया विधि-पूर्वक की गई। दो-तीन दिन सूतक-सा भी मनाया गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोकाचार

जनसंख्या के सिद्धान्त से जमीन बहुत थी । इसलिए भरें-पूरे घरों को शुभ माना जाता था। लोग बड़े गर्व से कहते थे कि फलां व्यक्ति बहुत पुण्यवान है, उनके परिवार में ३०० सदस्य हैं।

जब कोई सुहागिनी महिला सास के या बड़ी स्त्रियों के पैर छूती तब आर्शीवाद मिलता 'सिली हो, सपूती हो, सात पूतों की माँ हो'। हमारे गाँव में एक महिला के आठ पुत्र थे। इसलिए वह जब भी किसी के पैर छूती, पहले से हीं कह देती कि 'माँजी मेरे आठ पुत्र हैं।' उसे डर था कि सात पुत्र का आर्शीवाद उसके लिए कहीं दुराशीष न बन जाए।

परिवार संयुक्त थे। अधिकांश लोग खेती करते थे, जिनमें सब मिलकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करते रहते या फिर दूकानदारी या घरेलू उद्योग । बनिए तो उनकी औकात भर लेनदेन करते या दुकानें चलाते और दूसरी जातियों के लोग अपने पेशे के अनुसार धंधा करते रहते। इन्हीं धंधों में परिवार के सभी सदस्यों का योग रहता। धंधे के प्रति घृणा नहीं थी। काम को हीन नहीं माना जाता था। मैंने देखा कि बड़े-बड़े सेठ, सुनारों के यहाँ बैठ कर गहना बनवाते या जड़वाते रहते। बड़े घर की महिलाएँ भी छीपों और मनिहारों के यहाँ कपड़ा रंगवाने या चूड़े बनवाने खुद जाती थीं। मुझे याद है कि हम अपने घर की भंगिन को भूरी काकी कहते थे और जब वह रोटी लेने आती तो हमारी दादी जी उसको खुद ही रोटी देने जातीं। कभी-कभी साथ में तरकारी भी देतीं। उसके बच्चों की राजी खुशी का हाल पूछतीं। मैंने इस संदर्भ में अपनी पुस्तक 'कुछ घटनाएँ, कुछ संस्मरण' में फतेहपुर (शेखावाटी) के एक सेठ की एक सच्ची घटना लिखी है।

हालाँकि उस समय चीजों के दाम अधेलों या पैसों में लिए जाने लगे थे, फिर भी कई बार वस्तुओं का विनिमय भी होता रहता था। बरतनों की खरीद पर पुराना गोटाकिनारी दिया जाता था। इसी प्रकार अनाज के बदले सब्जी और अन्य छोटी मोटी चीजें मिल जाती थीं। गरीब-अमीर उन दिनों भी थे, पर विवाह शादी और सामाजिक अवसरों पर सब एक दूसरे का आदर मान करते थे। गरीब भाई की लड़की के विवाह के अवसर पर गाँव का बड़े से बड़ा सेठ खुद हाथ में मिठाई का थाल लिये बारातियों को परोसगारी करता। अगर कोई ऐसे अवसर पर नहीं जाता, तो उसकी निंदा होती और लोग भी उसके यहाँ जाना-आना बन्द कर देते। इस संदर्भ में एक घटना की चर्चा करूँगा।

एक धनी युवक था। बिरादरी में किसीके यहाँ काम पड़ता और बुलावा आता तो कह देता कि चाय पीकर आ रहा हूँ और जाता नहीं। एक दिन उसका पिता मर गया। लोगों ने तो पहले से ही बात कर रखी थी कि उसके यहाँ नही जाना है। जब उसने बुलावा भेजा तब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सब जगह से एक ही उत्तर आया कि छाछ (मट्ठा) पीकर आते हैं। आखिर उसके मुनीम ने आकर लोगों से वस्तु-स्थिति जाननी चाही तो जवाब मिला कि वह अमीर आदमी है, इसलिए चाय पीते हैं, उनकी चाय कभी समाप्त हुई नहीं, इसी तरह हमारी छाछ भी सदा चलती रहेगी। आखिर उसने स्वयं आकर हाथ जोड़े, माफी माँगी, तब लोग मुरंदनी में गये।

इसी तरह विवाह-शादी में परिवार के गरीब व्यक्ति भी जब तक जीमने को नहीं आ जाते, तब तक मजन-गोठ चालू रहती। वैसे निमंत्रण देने नाई या ब्राह्मण जाते, लेकिन भाई-बिरादरी के घर, चाहे गरीब हो या धनवान, लोगों को खुद ही जाना पड़ता।

आजकल की तरह स्कूल, अस्पताल तो नहीं थे। पर कुआँ, कुण्ड, प्याऊ, धर्मशाला और मन्दिर बनवाने में लोग बहुत पुण्य मानते और जो कोई ऐसा सत्कार्य कर पाता, उसका जन्म सफल माना जाता; गाँव में वह बहुत पुण्यवान समझा जाता।

उस समय संतानोत्पत्ति देश की समृद्धि के लिए बहुत आवश्यक थी। इसलिए लड़कियों के विवाह कराने में लोग बहुत बड़ा पुण्य मानते थे। यदि किसी महिला के संतान न होती, तो उसका मुँह देखना या नाम लेना भी अपशकुन माना जाता। ऐसी महिलाएँ शुभ अवसरों पर स्वयं ही दूर हो जातीं। वे अपने अभिशापित समझती थीं।

गरीब घरों की लड़कियों की शादियाँ तो लोग गुप्त सहयोग से करवाते, पर ब्राह्मणों की लड़कियों का विवाह धनी वैश्य और राजपूत धूमधाम से कराते और खुद कन्यादान करते। उन लड़कियों को वह सदा के लिए अपनी पुत्री के समान ही समझते और उन्हें वार-त्योहारों पर घर बुलाते और रीतिरिवाज, नेगाचार आदि करते।

लड़कियों का विवाह उस समय भी व्यय-साध्य था। हमारे यहाँ कहावत थी कि 'लहणो भलो न बाप को, बेटी भली न एक; पैड़ों भलों न कोस को, साहब राखै टेक।' अर्थात कर्ज, कन्या और यात्रा भगवान के भरोसे ही पार होती है।

सवर्ण अर्थात बनियों, ब्राह्मणों और राजपूतों आदि की स्त्रियों में कड़ा परदा चलता था यहाँ तक कि बहू सास आदि बड़ी औरतों से घूँघट रखती थीं, पर दूसरी जातियों में परदा इतना कड़ा नहीं था, क्योंकि उनकी स्त्रियों को पुरुषों के साथ खेतखलिहान, बाड़ीकुआँ, आदि पर काम के लिए जाना पड़ता था।

घर में आधिपत्य सास का रहता। गहने सभी सास के पास रहते। जिस बहू को अपने पीहर या कहीं शादी आदि शुभ कार्यों में जाना होता, वह गहने सास से माँग कर ले जाती। ऐसी परम्परा थी कि बहुओं को सास के कठोर शासन में रहना पड़ता था, इसलिए जब वे स्वयं सास बनतीं तब उसी तरह अपने बहुओं पर शासन चलातीं। इसी भाँति ननद भी पीहर में भावजों पर रोबदाब रखती, क्योंकि उसे माँ की शह रहती।

जैसा कि लिख चुका हूँ—जादूटोने बड़ा प्रचार था। हमारे यहाँ एक महिला आती थी। जब उससे बच्चे के रोग के बारे में पूछा जाता तो कहती, "म्हारो ही है।" अर्थात वह अपने को देवी सिद्ध करती हुई कहती कि यह रोग मेरा ही दिया हुआ है। एक दिन एक नटखट बच्चे ने अपनी झोली में कुत्ते के तीन-चार पिल्ले रख दिए और बीमारी का बहाना करके सो गया। जब उस औरत को बुला कर पूछा गया, तब उसने वही बात दोहराई। इस पर बच्चे ने वे तीनों पिल्ले उसकी गोद में फेंक दिए और कहा कि 'थारा ही है तो ले ज्याओ।' उसके बाद कई दिनों तक उस बेचारी का झाड़फूँक बन्द रहा। सारे गाँव में खूब हँसी हुई।

नोटों का प्रचलन राजस्थान के उस हिस्से में उस समय तक नहीं हुआ था। सौ, दो सौ रुपये भी कहीं दूर गाँव से लाने होते कपड़े की एक लम्बी नौली (थैली) रखते। उसमें रुपये डाल कर कमर में बाँध लेते। बहुत जरूरत होने पर भी रुपये को नहीं भुनाते। ज्यादा प्रचलित सिक्का टका, पैसा, अधेला और पाई थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक कौड़ियों का भी प्रचलन था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रास्ते सुनसान थे। यातायात के साधन धीमे थे। ऊँट, ऊँट की गाड़ी या रथ चलते थे, इसलिए चोर-डाकूओं का भय बना रहता था। दूसरी रियासतों में आए दिन इस प्रकार की सुनते रहते थे, पर बीकानेर रियासत में महाराज गंगा सिंह का कड़ा शासन होने से ऐसी घटनाएँ नहीं सुनी गई।

इन धाड़ेतियों में बलजी-भूरजी की बड़ी चर्चा सुनते रहते। वह शेखावाटी अंचल में डाका डालते थे। उनके बारे में कई प्रकार की जनश्रुतियाँ प्रचलित थी, जो शायद उनके अपने आदमियों द्वारा ही फैलाई गई थी। पर इतना अवश्य था उन्होने कभी ब्राह्मण, अछूत और गाँव की बहन बेटियों को नही लूटा। आज कल के भिंड मुरैना के डाकुओं की तरह नर हत्या को वह प्रोत्साहन नही देते थे। उनके नाम के आतंक से ही लोग आत्मसमर्पण कर देते और जमा पूँजी सौंप देते।

उस समय सोने का भाव २० रुपये तोले के लगभग था और चाँदी का आठ आना तोला। अधिकांश महिलाये गले या कान में सोने का जेवर अवश्य पहनतीं। ऐसी मान्यता थी कि सोने से छूकर पानी पवित्र हो जाता है। इस संदर्भ में दो एक बातें आज भी याद हैं, जब कोई व्यक्ति मातम से लौटकर घर आता, घर की कौई महिला दरवाजे पर आकर अपने सोने के किसी आभूषश से पानी छुआ कर उसके शरीर पर पानी फेंकती और तब उसे स्नान के लिए लोटा-बाल्टी दिया जाता। इसी प्रकार कभी भूल से यदि कोई चमार या भंगी से छू जाता तो उस पर सोने से छूआ पानी डालकर कहा जाता, 'सोना वाली किलकिटिया।' और इस अभिमन्त्र के साथ ही वह शुद्ध मान लिया जाता। हम बच्चों को इसमें बड़ा मजा आता। कोई भंगी या भंगिन राह से गुजरती तो पास खड़े किसी साथी को धक्का देकर छूआ देते। फिर सभी बच्चे उसे भंगी कहकर चिढ़ाते और उससे दूर भागते। काफी तंग करके उसे सोना वाली 'किलकिटिया' मन्त्र से शुद्ध कर देते।

शायद सोने को महत्व देने के लिए ही यह मान्यताएँ थी। विधवा स्त्रिया भी गले में सोने की 'लड़, जिसमें हनुमानजी या पीतरजी की मूरत होती, रखती थीं। धनाढ्य घरों की स्त्रियों के तन पर सिर के बोर से लेकर तागड़ी (करधनी) तक सोने के दो-तीन सेर वजन के विविध प्रकार के गहने लदे रहते। हीरो का प्रचलन कम था; अधिकांश गहनों में मोती या पुखराज लगे रहते। अधिक धनवान घरों में हीरें और पन्ने के गहने भी पाये जाते थे। जिन महिलाओं के पास सोने की तागड़ी होती वे अपने को बड़ी भाग्यवान समझती थीं। किसी लड़की की सगाई में ससुराल से दूसरे गहनों के साथ सोने की तागड़ी आती, तो पास पड़ोस में चर्चा होती कि फलां बड़ी भाग्यवाली है, सगाई में सोने की तागड़ी आई है।

सोने से ज्यादा प्रचलन था चाँदी का। यह सोने से बहुत सस्ती थी, इसलिए मध्यवर्ग और साधारण लोगों के आभूषण इसी से बनते थे। महिलाएँ मोटे-मोटे गहने गले और हाथों में पहने रहती थीं। उस समय चाँदी के बरतन बहुत कम घरों में पाए जाते थे। हमारे यहाँ चाँदी की एक छन्नी (तश्तरी) थी। ऐसी छन्नियाँ सेठ संपतरामजी के पुत्र बुद्धूमल जी के विवाह में गाँव भर में बाँटी गई थीं। बाहर से कोई मेहमान आते तो हम इसी छन्नी में सौंप, सुपारी आदि रख कर उनका सम्मान करते।

हम ऐसा सुनते थे कि गाँव में दो-चार घरों में ठोस सोने की थाली; गिलास और कटोरियाँ भी थी, पर उस समय मुझे इन सब चीजों को देखने का मौका नही मिला।

स्त्रियों के शरीर पर तागड़ी और क़ण्ठी के अलावा दूसरे आभूषण भी रहते। सिर पर, बोर, चाँद सूरज, माथे पर सोने की या मोतियों की पट्टी, कानों में लौंग या सुरलिए (झुमके), गले में गलसरी या गलपटिया और नौसरहार; हाथों में कड़े, बंगड़ी, चुड़ियाँ, गट्टों की नौगरी, हथसांकले और पूँचा आदि; बाजुओं में बाजूबन्द चौथ आदि; उँगलियों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाना प्रकार की अँगूठियाँ। अपनी-अपनी आर्थिक अवस्था के अनुरूप गहने रहते। कुछ ऐसी बीमार, नाजुक स्त्रियाँ भी थीं, जो वजन तो एक सेर भी नहीं उठा पाती थीं, पर गले, हाथों और पैरों में सोने-चाँदी के दो तीन सेर वजन के गहने पहने रहती थीं। पता नहीं क्यों, सोने-चाँदी के प्रति युगों से एक मोह चला आया है। धर्मशास्त्रों में तो सोने में कलयुग का वास कहा है। लेकिन यह शायद पण्डित महोदय को उक्ति है, जिन्हें सोने मिल नहीं पाया और खीझ कर वह ऐसा लिख गए।

पैरों में सोने कड़ें या पाजेब दो-चार घरों में पहने जाते, जिन्हें इसकी इजाजत राज्य से मिली होती, अन्यथा विना राज्य की आज्ञा के पैरों में कोई भी सोना नहीं पहन सकता था। जिन्हें राजा द्वारा सोना बख्शा जाता, वे बड़े आदमी माने जाते। उन्हें अन्य सुविधाएँ मिलती, इसका जिक्र अन्यत्र हो चुका है। आम लोगों के घरों की स्त्रियाँ पैरों में चाँदी के कड़े या पायजेब्र पहनती थीं। इनका वजन दो-तीन सेर तक होता था और जिनसे कभी-कभी टखनों में घाव हो जाते थे।

मेरे ससुराल वाले कलकत्ता रहते थे। वहाँ कुछ नया फैशन आ गया था। मेरी पत्नी, जब सन् १९२३ में गौना लेकर आई, उसने पैरों में चाँदी के भारी कड़ों की जगह हलकी छड़ें पहने लीं। सारे मुहल्ले और बिरादरी में चर्चा हो गई। उसे फिर से वही भारी कपड़े पहनने पड़े।

सधवा युवती स्त्रियों की पोशाक थी–आँगी, ओढ़नी और घाघरा। आँगी पौराणिक काल की कंचुकी का ही रूप था बड़े परदे के उस युग में वक्ष से नाभि तक का हिस्सा खुला रहने पर भी बुरा नहीं माना जाता था। किशोरी और युवा स्त्रियाँ इस परिधान में अपूर्व सुन्दर और आकर्षक लगती थीं। कमर से पैर तक रहता घेरदार घाघरा, वक्ष पर आँगी और सिर पर ओढ़नी। इन सब कपड़ों पर गोटा-किनारी का काम रहता। विविध प्रकार के रंगीन चित्र (छापे) भी मोढ़ी द्वारा इन वस्त्रों पर बनाये हुए रहते थे।

प्रत्येक सुहागन स्त्री के हाथों में लाख की सात-सात या दस-दस चूड़ियाँ रहती थीं। इन पर सोने या चाँदी के पत्तर जड़े रहते थे। ये लोग चूड़े का नाप लेने घरों में भी आते रहते और स्त्रियाँ उनकी दूकानों पर भी नाप देने जाती थीं। पर कभी ऐसा नहीं सुना गया कि किसी के साथ कोई दुर्व्यवहार की घटना हुई हो। उस समय पेशे और गाँव की अक्षुण्ण पवित्रता का ध्यान रखने की यह एक बेजोड़ मिसाल थी।

अधिक उम्र वाली स्त्रियों की पोशाक थी सादी या लाल ओढ़नी, बदन पर लम्बी बाहों की सादी फतुई और कम घेर का घाघरा। विधवा स्त्रियों की भी यहीं पोशाक थीं। ओढ़नी काले या गहरे कत्थई रंग की होती थी।

बच्चों की पोशाक थी–सिर पर सलमेसितारों के काम की मखमल की गोल टोपी, वदन पर मखमल या रेशम की कमीज या कुरता और किनारीदार धोतियाँ। गोट लगे हुए कुरते-कोट भी पहने जाते थे। लड़की-लड़कों, दोनों की यही पोशाक थी। आज की तरह फ्राक या सलवार कुरती का प्रचलन नहीं था उस समय।

बच्चों को गहने पहनाने का बड़ा रिवाज था। कानों में मोती की बाली, मोती चोपड़े (कुण्डल), गले में गोप या कण्ठी, हाथों में कड़े और बाहों में चौथ। कमर में करधनी भी किसी-किसी लड़की को पहनाई जाती। ये गहने कमोवेश रूप में बड़े भी पहनते थे। ढलती उम्र में इनका शौक कम हो जाता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मारू म्हारा थे चाल्या परदेश

बचपन की हर घड़ी गाँव के साथ जुड़ी थी। कल्पना और वास्तव गाँव ही था, सुख-दुख का पैमाना भी। जीवन का अर्थ था, मेरा बचपन, मेरा गाँव।

बचपन मुझे छोड़ता जा रहा था, अनजाने में। मैं न तो इसे समझता था और न जानने की इच्छा थी। मगर महसूस करने लगा कि कभी-कभी मुझे अपने बड़ों की तरह गाँव छोड़ना पड़ेगा। घर की समस्याएँ; 'कर्ज का बोझ' परदेश गए बिना कमाई का रास्ता बनता नहीं, इस प्रकार की चर्चा होती रहती।

सन् १९२५ का जुलाई मास। घर में तय हुआ कि परदेश का सफर करना है। एक दिन पिताजी और बड़े भाई शिवप्रताप जी के साथ असम के घुवड़ी कस्बे के लिए रवाना हुआ। यात्रा के लिए पहले ही से मुहूर्त निकलवा लिया गया था। रात के तीन बजे पूजन करके हम घर से विदा हुए। 'सगुन' अच्छा बने इसलिए एक सधवा स्त्री को पानी से भरा घड़ा देकर निकासी के रास्ते पर खड़ा कर दिया गया।

राजस्थान से बाहर की यह मेरी पहली यात्रा थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था, साधारण शिक्षा और जीवन के उतार-चढ़ाव से अनभिज्ञता। बाहर की दुनिया क्या है और मुझे क्या करना है, इस पर गहराई से कभी सोचा न था।

बिना किसी संबल के हम सुदूर परदेश के लिए चल पड़े। दादाजी, दादीजी, माताजी और छोटे भाई-बहनों से भरा-पूरा परिवार था। विदा के समय हमारे और घर वालों के मन में एक अजीब-सी बेचैनी थी। लंबी राह, अनजान मंजिल, पूँजी और न कोई जमा-जमाया काम। मेरा किशोर मन नाना प्रकार के तर्क-वितर्क में उलझ रहा था। कभी परदेश की यात्रा का उत्साह भर आता तो दूसरे ही क्षण आत्मीय-स्वजनों के विछोह की कल्पना से मन भारी हो जाता। सोचता, गाँव ही में क्यों न कुछ कर लें, आखिर इतनी दूर क्यों ? न जाने कब वापिस आयेंगे ! पर चुप ही रहा, पूछने का साहस नहीं हुआ। अनुशासन में पला मन ओठों के बाहर न आ सका। इतना जरूर समझ पाया कि क़र्जदारों के रोज-रोज के तक़ाज़ों ने हमें घर से बाहर निकलने के लिए विवश कर दिया है।

पत्नी घर पर ही थी। हम दोनों की उम्र छोटी थी। प्रेम या सेक्स के गूढ़ अर्थ नहीं जानते थे। फिर भी एक ऐसी अनजानी डोर थी जिससे हमारे मन में परस्पर बँध गये थे। फ्रायड या युंग इसे भले ही अवचेतन मस्तिष्क की 'सैक्सीय' भूख परिभाषित करें, किंतु आज तक मैं केवल इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि संग-साथ से स्नेह उपजना स्वाभाविक है। इसी कारण, बच्चे या किशोर संपर्क में आए घनिष्ठ व्यक्ति के प्रति विशेष रुझान रखते हैं, चाहे वह किसी भी उम्र का हो, पुरुष या स्त्री।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज्यो-ज्यों विदा के दिनं नजदीक आते, हम दोनों का मन भारी होता । इस विषय पर उदासी भरे वातावरण में हमारी आपस में चर्चा होती परन्तु विरह-विछुड़न आदि की गंभीरता समझने लायक हमारी भावनाएँ परिपक्व नहीं थीं । हाँ, दोनों यदि वयस्क होते तो शायद राजस्थान के बहु प्रचलित लोकगीत में वह गुनगुनाती :—

मारू म्हारा थे चाल्या परदेश,
घर कद आओला म्हारा राज ।
सासरिये में जीमै देवर, जेठ, पियाजी चित आवे म्हारा राज ।
मारू म्हारा, तरसैली घर नार, पीहर उठ ज्यावाँलाजी राज ।
महलां में सूनी-सूनी सेज,
मारू जी चित्त आवे म्हारा राज ।
पिया म्हाने डस ज्योजी कालो नाग,
पिंड तो छूट ज्यावे म्हारा राज ।

—पिया परदेश जा रहे हैं, न जाने कब लौटेंगे । ससुराल में जब भी देवर-जेठ को भोजन करते देखूंगी, आपकी याद आएगी, मन तरसेगा । ऐसे में विरह-वेदना उठेगी, इसलिए मैं पीहर चली जाऊँगी, परन्तु वहाँ भी शयन-कक्ष में सूनी शैय्या पीर उभारेगी । इससे तो कहीं अच्छा कि मुझे काला नाग डस लेता । विरह-वेदना से सदैव के लिये मुक्ति तो मिलेगी ।

आज सोचता हूँ, अच्छा हुआ विरह का अहसास हम दोनों में से किसी को न हुआ, वरना संघर्षों में कैसे उतरता, जूझता और पार पाता ?

हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ इस ढंग की थी कि दंपति को परस्पर मिलने-बोलने का अवसर बहुत ही कम मिल पाता। भोर अँधेरे से घर की बड़ी-बूढ़ी के साथ रहना और घरेलू कामों मे हाथ बँटाना, यही परिपाटी थी बहुओं के लिए। इसी में उनकी सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक शिक्षा-दीक्षा चलती रहती। ऐसे वातावरण में पत्नी तो क्या माँ भी बड़े-बूढों के सामने नहीं आती थीं।

माता जी ने कब पिता जी से बातें की, हमें मालूम नहीं । फिर भी ऐसा लगता है कि उन्होंने हमारे लिए चुपके से कहा होगा "टाबर छोटा है, सम्हाल राखोगा । मन नहीं लागे तो फिरती भेज देयो ।"

दादा-दादी और माँ के चरण स्पर्श कर और छोटे बहन-भाइयों को प्यार कर जब हमने विदा ली, सबकी आँखे गीली थीं ।

मुहूर्त निकाला था, भोर के चार बजे का और ट्रेन का समय था सुबह नौ बजे । इसलिए घर से प्रस्थान कर हम पाँच घंटे के लिए पास के बाबा रामरतन जी के दादू द्वारे में ठहर गए। स्टेशन पर आत्मीय स्वजन पहुँचाने आए । अधिकांश ने एक-एक रुपया विदाई का दिया । पुराने समय से यही प्रथा थी । सभवत: पाथेय अथवा यात्रा के लिए संबल देने की भावना इसमें रही हो, या फिर उसमें अपने हदय का स्नेह ऊँडेला गया हो !

ट्रेन सुबह नौ बजे चली । केवल उनतीस मील की दूरी तय करने में तीन घंटे लगे । सरदारशहर और रतनगढ़ के इस छोटे से फासले में सात स्टेशन थे । दूलरासर में पानी की एक टंकी थी, ईंटों की मीनार पर । बीस फुट ऊँची यह टकी उन दिनों हमारे लिए एक अजूबा थी; शायद वैसी ही चमत्कारपूर्ण जैसी आज भिलाई या दुर्गापुर के इस्पात कारखानों की टंकी ।

रतनगढ़ से रात नौ बजे दूसरी ट्रेन पकड़नी थी जो हमें दिल्ली पहुँचाती । इसलिए सारे दिन स्टेशन के पास की धर्मशाला में ठहरे । अच्छे घी की पूरियाँ छह आने और बूँदियाँ आठ आने सेर मिलती थी। पूरियों के साथ लौंजी और सब्जी मुफ्त । तीन-चार आने में अच्छी तरह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
पूरी-मिठाई से पेट भर जाता । आज भी वह दुकान वहीं है और उसी तरह पूरी मिठाइयां भी बनती हैं, पर अब शुद्ध घी की जगह वनस्पति तेल और दाम हो गए हैं आठ रुपये किलो।

रतनगढ़ से दिल्ली आने के लिए उन दिनों सीधी ट्रेन नहीं थी । हिसार में गाड़ी बदलनी पड़ती । इस तरह दो दिन के सफर के बाद कहीं दिल्ली पहुँचते । हिसार में धर्मशाला स्टेशन के पास ही थी । हम वहीं रुके । निकट ही एक ढाबा था जहाँ हमने भोजन किया । प्रसंगवश एक रोचक घटना याद आती है । हमारे लछमणा महाराज अपने भतीजे और भाई के साथ यात्रा पर थे और इसी ढाबे में भोजन के लिए बैठे । ठाकुर ने प्रति-व्यक्ति चार आने पहले ही लिए । अभी आधा पेट ही खाया होगा कि उसने कहा, 'महाराज गाड़ी ने सीटी दे दी, टाइम हो गया' । विचारे फौरन खाना छोड़ ट्रेन की ओर दौड़े । ट्रेन में अभी डेढ़ घंटे की देर थी। किसी दूसरी गाड़ी की सीटी थी । पर अब क्या हो सकता था ? वे इसे भूले नहीं । दुबारा वापस लौटते समय वहीं भोजन के लिए आए । इस बार वे गाड़ी का समय पूछ कर आए थे। खाने के समय ठाकुर ने पहले की तरह फिर दाँव फेंका, "महाराज, गाड़ी की सीटी हो गयी" । लछमणा महाराज ने और भी जमकर बैठते हुए, कहा, "होने दो, पहले खा तो लें । न होगा, कल जायेंगे । परसों भी भूखे रह गये थे ।" तीनों आदमियों ने डटकर भोजन किया, बीस जनों की खुराक साफ़ कर गये । ठाकुर देखता ही रह गया ।

हिसार से गाड़ी बदलकर रेवाड़ी होते हुए दिल्ली पहुँचे । आगे के सफर के लिए रात की गाड़ी थी । सारे दिन दिल्ली में रुके रहे । उन दिनों आज की तरह न तो इतने होटल थे और न लोगों में खर्च करने की प्रवृत्ति । कुली के सिर पर सामान उठवा कर स्टेशन के पास की लक्ष्मीनारायण धर्मशाला में चले गए । पिछले वर्ष मैट्रिक परीक्षा देने के लिए मैं दिल्ली आ चुका थां । लाल किला, कुतुबमीनार और हुमायूं का मकबरा आदि दर्शनीय स्थल देख लिए थे । नयी दिल्ली उन दिनों राजधानी के लिए चुन ली गयी थी । गाँव खाली कराये जा रहे थे । दैत्याकार बड़ी-बड़ी मशीनों से पत्थर तोड़े जा रहे थे । रायसिना तो बिल्कुल उजाड़ जंगल सा था । घूमते हुए हम वहीं से गुज़रे । ऊबड़-खाबड़ पथरीली सी जगह, कभी सोचा भी नहीं जा सकता था कि पैंतीस-चालीस वर्ष बाद यह भारत का सबसे सुन्दर और विश्वविख्यात नगर हो जाएगा और छह आने प्रतिगज जमीन की कीमत बढ़कर हो जायेगी ढाई सौ रुपये।

शाम के समय चाँदनी चौक गए । अलिफ-लैला की किसी एक नगरी की तरह चमत्कारपूर्ण लगा । दूकानों में रंग-बिरंगे सामान सजे थे । लोगों की भीड़, खरीद-फरोख्त, बाहर पटरियों पर भी छोटी-छोटी दूकानें । हमारे यहाँ गाँव में तो भूधरजी पंसारी की दूकान में दवाई, स्टेशनरी से लेकर किराने, कपड़े तक सब समान एक ही जगह मिलते जबकि यहां हरएक वस्तु के लिए अलग-अलग दूकानें थी । मन में सोचता, परदेश से कमाकर लौटूँगा तो छोटे भाई बहनों के लिए तरह-तरह की पेंसिलें, कापियाँ और खिलौने जरूर लेता जाऊँगा।

तीसरे दर्जे में हम दिल्ली से धुवड़ी के लिए रवाना हुए । उन दिनों तीसरे दर्जे की यात्रा क्या थी और कैसे थी, इसके बारे में केवल इतना कहा जा सकता है कि जीवट एवं सहिष्णुता का काम था । भेड़-बकरियों की तरह लोग भरे रहते । ट्रेनें बहुत कम थीं । बैठने के लिए डिब्बों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक सँकरी बेंचों की तीन कतारें । बीच वाली कतार में एक दूसरे की तरफ पीठ करके लोग बैठते । ऊपर सामान रखने के लिए बर्थें भी सँकरी होती थीं। पंखों की व्यवस्था थी नहीं, यात्री पसीने से तर हो जाते । गर्द, गंदगी और दुर्गन्ध से भरा लंबा सफर, कंपार्टमेंट के दरवाजे सँकरे और बाहर खुलने वाले थे । डर बना रहता कि कहीं खुल न जाए और भीतर बैठा यात्री बाहर गिर पड़े । खिड़कियों पर सीखचे नहीं । मरम्मत पर ध्यान कम था । टूटी खिड़कियों की राह गर्मी में लू और बरसात में पानी की बौछारें भीतर आती। पाखाने में नल नहीं थे ।

रिजर्वेशन या आरक्षण की व्यवस्था भी नहीं थी । स्टेशन पर कुली चार आने लेता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुसाफिर को उकड़ूँ बैठाता और खिड़की की राह डिब्बे के अन्दर ढकेल देता। चाहे किसी को चोट लगे न लगे सब विधि के विधान पर निर्भर था। इसलिए इस मामले में जोरदार तकरार नहीं होती हल्की झड़प के बाद सब शांत। गाड़ी चली कि आपस में परिचय का सिलसिला चल पड़ता। अंदर के मुसाफिर डिब्बे का दरवाजा खोलते नहीं थे। बाहर आने-जाने के लिए खिड़की ही थी; खुदा की राह। इस मार्ग से भीतर पहुँच सके तो भाग्यशाली, वरना स्टेशन पर बैठे-बैठे बारह-चौबीस घंटे बाद फिर अगली गाड़ी के लिए किस्मत आजमायी जाय।

लम्बी यात्रा पर आने वाले रास्ते का खाना प्रायः घर से बाँध कर लाते। टीन के डिब्बे में पराठे, मोठ-बाजरे की रोटियाँ और केर-सांगर का अचार, नास्ते के लिए पेठे, लड्डू और मठड़ी या नमकीन, सुवाली (मठरी)। आज की तरह न 'रिफ्रेशमेंट कार' थी और न ही वरदीधारी बेयरे। चाय का प्रचलन नहीं था। कहीं-कहीं बिकती। पान-बीड़ी वाले जरूर हर स्टेशन पर होते।

बड़े-बड़े महाजन व्यापारी भी तीसरे दर्जे में सफर करते। सेकेंड या इंटर में अंग्रेजी पढ़े लिखे, जमींदार, कंपनियों के मुलाजिम और छोटे-बड़े सरकारी अफसर-वर्ग के यात्री रहा करते थे। फर्स्ट क्लास में बहुत ऊँचे तबके के जज, बैरिस्टर, सिविलसर्जन और मिलेटरी के कर्नल आदि आज भी साफ याद आता है, यूरोपियनों के लिए डिब्बे अलग रहते थे।

हमारे लिए थर्ड क्लास में बैठने का मौका पा लेना ही बड़ी नियामत थी। बहुत दूर तक बैठने की जगह नहीं मिली। खड़े-खड़े जाना पड़ा। हमारी तरह और भी बहुत से थे। गरमी का मौसम, पंखे थे नहीं। पानी के लिए स्टेशन पर जा नहीं सकते, कहीं कोई अन्य मुसाफिर जगह पर कब्जा न कर ले। शायद ऐसी ही पृष्ठभूमि पर राजस्थान में कहावत चली :—

लहणों भलों न बाप को, बेटी भली न एक।
पैंडो भलो न कोस को, साहब राखै टेक॥

कर्ज चाहे पिता का ही हो, बेटी चाहे एक ही हो, घर के बाहर की यात्रा चाहे कोस भर की ही हो, ये सब कष्टदायक हैं। इनसे भगवान् बचाये।

चार दिन की लंबी और कष्टप्रद यात्रा के बाद गोरखपुर, छपरा और कटिहार होते हुए हम धुबड़ी पहुँचे। रास्ते में कई जगह ट्रेन बदलनी पड़ी, खाने-पीने की असुविधाएँ तो थीं ही। कलकत्ता होकर जाते तो ये तकलीफें कम रहतीं, मगर उस हालत में प्रति-टिकट दो रुपये ज्यादा लगते। इसलिए छः रुपये बचाने के खयाल से हमने उपर्युक्त रास्ता चुना।

बंगाल की सीमा पर धुबड़ी उन दिनों एक साधारण कस्बा था। बाद में पाट और गल्ले के व्यापार का बड़ा केन्द्र बन गया। मैं पहली बार परदेश आया था। सब कुछ अजीब-सा लगा। टीन के छप्पर की दुकानें थीं, इन्हें गोला कहते। इनके पिछवाड़े उसी ढंग के आवास। कीचड़ और सीलन भरे आँगन। मुझे सब कुछ अटपटा और दुखदायी लगा। राजस्थान की सूखी हवा, खुला वातावरण, पक्के मकान और सुनहरी बालू को छोड़कर कहाँ आ गया! टीन के छाजन के गोलों और कच्चे मकानों को देखकर जो अजीब-सी सिरहन हुई उसे आज भी नहीं भूला हूँ।

धुबड़ी में हमारे चाचा और ताऊ का थोड़ा बहुत कारोबार था। इसलिए हमें ठहरने की असुविधा नहीं हुई। राजस्थानी व्यापारी आमतौर पर पाट, कपड़े और गल्ले का धंधा करते थे। आपसी सलाह-मशविरे के बाद हमने भी पाट और कपड़े के व्यापार को चुना। इसके लिए कम-से-कम पन्द्रह-बीस हजार की पूँजी चाहिए थी। हमारे पास तो कुछ भी न था।

वहाँ एक महाजन थे, नेतरामजी बजाज। बाहर से आए हुए व्यापारियों को रुपये उधार देते। इनकी दूकान के सामने से मैं कई बार गुजरा। हमेशा इन्हें अपने बही-खातों में व्यस्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाया । ऊँची धोती, मैली-सी गंजी पहने बहियों के पन्नों को उलटते-पुलटते । मैं सोचता इनका मन बैठे-बैठे ऊबता क्यों नहीं । शायद रुपयों का लोभ बहुत है । यह भी सुना कि उनके पास लाखों की सम्पत्ति है ।

मेरे जैसे अभाव में पले किशोर के लिए अचंभे की बात थी । सोचता वह कौन सी तरकीब है जिससे इन्होंनें इतना धन पैदा कर लिया, काश, मैं भी सीख पाता ।

कभी-कभी विश्लेषण करता कि अपने समस्त सुखों की उपेक्षा कर एक-एक पैसे की कंजूसी ने शायद इन्हें धनी बनाया है ।

एक दिन उन्होंने हनुमानजी का प्रसाद किया । बहुत से लोग आमंत्रित थे । इस प्रकार के आयोजन हमारे यहाँ की तरह उन सुदूर-प्रान्तों में भी हुआ करते थे । इससे व्यस्त जीवन में परस्पर मिलने-जुलने का अवसर मिल जाता था । हम भी नेतरामजी के यहाँ गए । मुझे उन्हें पास से देखने का अवसर मिला । बात-चीत में संयत और व्यवहार-कुशल लगे ।

पिताजी ने उनसे बात की । कारबार के लिए उनकी गद्दी से पच्चीस सौ रुपये उधार मिले । मगर हमें तो ज्यादा की आवश्यकता थी । अतएव, पिताजी और भाई जी की रकम का बन्दोबस्त करने यहाँ से चार सौ मील पूर्व जोरहाट गये । हमारे फूफाजी वहाँ रहते थे । चार-पाँच दिन बाद वे दोनों दस हजार रुपये लेकर लौटे । हमें जितनी पूँजी चाहिए थी, उसकी आधी ही जुटा पाये फिर भी हिम्मत नहीं हारी । एक पुरानी कहावत है, मारवाड़ी लोटा-डोर लेकर घर से निकलता है और शीघ्र ही लखपति हो जाता है । इसका कारण एक ओर जहाँ आत्मविश्वास, अपने अध्यवसाय में निष्ठा, सादा जीवन और कठोर परिश्रम है, वहीं दूसरी ओर राजस्थानियों का पारस्परिक सहयोग भी । राजस्थान से सहस्रों मील दूर विभिन्न उद्योगों और व्यवसायों में आज उन्नति के शिखर पर पहुँचे ये लोग घर से पूँजी लेकर नहीं चले थे ।

हमने पाँच सौ रुपये सालाना किराये पर एक गोदाम लिया और पाट के काम का श्रीगणेश किया । इसके अलावा कपड़े की एक छोटी-सी दूकान भी कर ली । रोज सौ सवा-सौ का कपड़ा बिक जाता । आठ-दस रुपयों की आमदनी हो जाती । पिताजी और भाईजी काम देखते । कभी तो मैं दुकान में बैठता कभी पाट के गोदाम में । ग्राहकों को कपड़े दिखाता, धीरे-धीरे दाम बताना भी सीख गया । पाट के गोदाम में कितना माल है, किस मुकाम का है, क्या क्वालिटी है, देखता और समझने की कोशिश करता । फिर भी, अकेलेपन में किशोर मन बार-बार गाँव की ओर दौड़ जाता । वे टीले, हमारी हवेली, लीली गाय, लछमणा महाराज, दादीजी की मनुहार, दोस्तों की चुहलें आदि याद आने लगतीं । कभी-कभी तो आँखें गीली हो जाती । विषाद और कल्पना की ऊँचाइयों और गहराइयों में खो जाता । अपने आप में ये भाव अटपटे शब्दों में फूट पड़ते ।

जन्म भूमि की माटी में, मैं खेलूँ गाऊँ,
जीवन की प्रत्येक घड़ी को सुखी बनाऊँ ।

मैं खुश हो उठता कि कवि बन गया'। परंतु दूसरे ही क्षण जब यह सोचता कि मुझे तो किसी तरह धन कमाना है, इसीलिए तो अपने यहाँ की सर्वहितकारिणी सभा, पब्लिक लाइब्रेरी और पढ़ाई छोड़ कर इतनी दूर आया हूँ ।

पाट से लदी नौकाएँ विभिन्न गाँवों से आकर नदी के घाट पर लग जाती । व्यापारियों के गोदामों में माल चला जाता । मुझे यह जगह बहुत सुहावनी लगती । बरसात का मौसम था, नदी का पाट, कई मील तक चौड़ा फैल जाता; जिधर देखो लहराता जल । उस पार तुरा की पहाड़ियाँ । सुबह जब सूर्य की पहली किरण पड़ती तो लगता मानों ऊषा कुंकुम बिखेर रही हो । अथाह जल राशि में उठती लहरें अरुणाभ हो जाती । (वर्षो बाद स्कॉटलैंड और स्विट्जरलैंड की झीलों और पहाड़ों पर सूर्योदय की सिंदूरी आभा देखने का सुयोग मिला.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
किन्तु ब्रह्मपुत्र की यह दिव्य नैसर्गिक छवि आज भी अतुलनीय लगती है ।)

नेतरामजी की तरह और भी कई महाजन थे । जो असम-बंगाल के प्रायः हर छोटे-बड़े गाँव में कारोबार में लगे थे । व्यापार की इच्छा से आए हुए नए लोगों को आर्थिक सहायता देते । यही नहीं, उन्हें सलाह भी देते कि कौन सा काम अधिक सुविधाजनक या लाभप्रद रहेगा । इनमें प्रमुख थे, बंगाल के मुर्शिदाबाद से आए हुए ओसवाल महाजन । इन्ही में से एक प्रसिद्ध फर्म थी, महासिंह मेघराज । इनकी कोठियाँ पूर्वी असम के प्रायः हर शहर और कस्बे में थीं । कोई भी नवागंतुक जब तक अपनी व्यवस्था जमा नहीं लेता, इन्ही के यहाँ ठहरता और इन्हीं के ढाबे में खाना खाता । यह एक आम बात थी । इसमें कोई संकोच नही माना जाता । इनकी कोठियाँ या गोले 'बड़ा गोला' कहलाते ।

कुछ वर्षों पहले इस फर्म के भागीदार श्री खड़गसिंह कोठरी से मेरी बात हुई । उनका कहना था कि सैकड़ों नए आए हुए भाइयों को फर्म से व्यापार के लिए रुपये उधार दिए गए परंतु कभी ऐसा मौका नहीं आया कि रकम डूबी हो । मालिक ज्यादातर मुर्शिदाबाद में रहते और दिसावरों का सब कारोबार मुनीम लोग सभाँलते हैं । मैंने एक बार उनके तेजपुर के गोले में पुरानी बहियाँ देखीं । शायद सन् १८३३-३५ की थीं । हेड मैनेजर यानी बड़े मुनीम का वेतन दस रुपया महीना । चावलों का भाव था, एक रुपये का सवा मन, दाल पैंतालीस सेर और सरसों का तेल था एक रुपये का आठ सेर । ये बहियाँ इनके यहाँ आज भी सुरक्षित हैं । मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि उन दिनों न तो आज की तरह उन्नत कृषि थी और न परिवहन के उत्तम साधन, सदियों तक देश में मुस्लिम प्रशासन की अव्यवस्था और बाद में अंग्रेजों द्वारा शोषण की सुदीर्घ अवधि । फिर भी गल्लों या जिंसों की कीमत इतनी कम कैसे थी ? जनसंख्या की वृद्धि कुछ अंशों में कारण बन सकती है, पर आज के भाव इसके अनुपात में बहुत ऊँचे हैं । निःसंदेह उन दिनों चीजों का मूल्य सर्वसाधारण की क्रयशक्ति के अंतगत था ।

श्री कोठरी ने मुझे बताया कि उनके परदादा मुर्शिदाबाद से एक बड़ी नौका में ग्वालंदो (बांगला देश) होते हुएं तीन महीनें में यहाँ पहुँचते थे । रास्ते में जल दस्युओं का भय रहता, इसलिए साथ में दस-बारह शस्त्रधारी सिपाही और चार-पाँच मुनीम-गुमास्ते रहते । राजस्थान के और भी व्यक्ति अच्छे साथ के कारण यात्रीदल में शामिल हो जाते ।

धुबड़ी में रहते समय मुझे सबसे ज्यादा ऊबा देने वाली बात थी-स्थानीय बाजारों की गंदगी । यूँ मैं बिना कहे या पूछे कहीं बाहर नहीं निकलता । उम्र में छोटा था, हमेशा पिताजी या भाईजी किसी को साथ कर देते । एक दिन हमारा कयाल (तुलनदार) कासिम अली मुझे स्थानीय मछली बाजार में ले गया । चारों ओर घोंघें और मछलियाँ, छोटी-बड़ी टोकरियों में भरी थीं । कुछेक बिना पानी के पूँछ पटक-पटक दम तोड़ रहीं थीं । नज़र घुमाई तो मांस की दुकानें । चमड़ी उतारे हुए पूरे के पूरे बकरे-भेड़ औंधे लटकाए हुए । कटी गर्दनें फर्श पर रखी थीं, खून से लथपथ । मैं काँप गया , सड़ांध और बदबू से परेशान हो उठा । पैर लड़खड़ाने लगे । जीवन में पहली बार ऐसा वीभत्स दृश्य देखा था । हमारे गाँव में कसाई बकरे काटते थे , परन्तु एकांत स्थान पर । हिंदू मुहल्लों में मांस खुले तौर पर नहीं आता । पड़ोस में रंगरेजों के घर थे । अपने पर्व त्योहार पर वे मांस पकाते, मगर हमसे छुपाकर । इसलिए आँखों के सामने अँतड़ियों के ढेर, कटे सिर और मांस के लोथड़ों का दिखाई पड़ना मेरे संस्कारों ने अंगीकार नहीं किया । पाँच-सात रात मुझे नींद में कटे भेड़-बकरे दिखाई देते रहे । पिताजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने कासिम को बहुत डाँटा कि ऐसी जगह वह क्यों ले गया ।

लगभग दो महीने धुबड़ी में रहा, पर मेरा मन नहीं लगा । कभी-कभी अकेले में रोने लग जाता । गाँव के लोग, भाई-बहन, मित्र, पत्नी सभी की याद ताजा हो जाती । सावन का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महीना था, देश में बहनें वृक्षों की डालों में झूले डालकर हींड (झूल) रहीं होंगी। मि बरसात के पानी में नहा रहे होंगे। टीलों पर खेल-कूद रहे होंगे। मन होता उड़कर व पहुंचूँ। गुल्ली-डन्डा लिये हरदड़ा और कबड्डी के लिए वे मेरी राह देखते होंगे।

बरसात तो धुबड़ी में भी थी। राजस्थान में वर्षा कम होती है, इसलिए सुहावनी लग है, जबकि यहाँ अत्यधिक होने के कारण डरावनी। यहाँ तो पानी बरसता है, पीट-पीट क थमता ही नहीं। चारों तरफ कीचड़ और पानी-ही-पानी। इस कस्बे में तो इतना चढ़ जा कि लोग बाजार-हाट भी नावों पर ही करते। जब पानी उतरता तो सब तरफ दल-द मच्छरों और साँपों की भरमार। ऐसे में भला बरसात का आनंद क्या लेता

रात को हम सोते तो गद्दे पर एक बड़ी मसहरी तान दी जाती। पूरी कनात-सी लगती इसके भीतर पाँच-छह जने सो जाते। बाहर मच्छर शोर मचाते, भीतर लोगों की ना बजती। कभी हँसी आती तो कभी गुस्सा। मसहरी के चारों तरफ जुगनुओं की टो देखते-देखते नींद को बुलाने की कोशिश करता।

मेरे मन का भारीपन व्यक्त न हो, इसकी पूरी सावधानी रखता। सोचता कि बड़ा है रहा हूँ, मेरी भी कुछ जिम्मेदारी है। मुझे काम-काज में हाथ बँटाना चाहिए, इसीलिए तो पिताजी और भाईजी साथ लाए हैं।

पिताजी की अनुभवी आँखों से मेरा अंतर्द्वद्व छिपा न रहा। एक दिन पूछा, "कैसी ल रही है यह जगह?"......"जी, ठीक है"........मेरा संक्षिप्त-सा उत्तर था। विषय बदल हुए उन्होंने कहा......"काम तो कुछ-कुछ सीख रहे हो, यह अच्छी बात है।"

वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे, उनकी आँखों में प्यार भरा था। मेरा मन भर आया। पुचकारते हुए वे कहने लगे, "देस जाओगे, जाना चाहते हो?" मैं आँखें नीचे किए था। रुलाई आ गई, अपनी दुर्बलता पर ग्लानि-सी हुई। पिताजी ने पास खींच कर सिर पर हाथ फेरा।

पाँच-सात दिन बाद देश जाने वाले किसी परिचित के साथ उन्होंने मुझे सरदारशहर भेज दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मत ना सिधारो पूरब री चाकरी जी

परदेस से लौटने वाला पत्नी और भाई बहिनों के लिए कुछ सौगात लाता है। घर वाले भी इसकी आशा लगाए रहते हैं। परन्तु जब दो-तीन महीने बाद सरदारशहर पहुँचा तो साथ में टीन की एक छोटी-सी सन्दूक और दरी के बिस्तर के सिवाय कुछ भी नहीं था। पत्नी अभी बालिका ही थी, परंतु हमारी आर्थिक स्थिति को समझती थी। उसने कोई शिकवा-शिकायत नहीं की। दादीजी और माताजी ने यह महसूस किया कि मैं कुछ उदास और दुबला हो गया हूँ।

उस समय असम मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगा। बाद में सैकड़ों कार्यों से वहाँ गया– अपने चाय बगीचों और कोयले की खानों की सँभाल के लिए या सार्वजनिक उत्सवों-सम्मेलनों के काम से। भारतीय संसद् के प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य के रूप में सुदूर अरुणाचल (नेफा) के बोमडीला तक की यात्रा कर चुका हूँ। काज़ीरंगा के प्रसिद्ध राष्ट्रीय वन में भी दो-तीन बार हो आया। वहाँ जंगली हाथियों, खूंखार शेरों और गैंडों को स्वच्छंद विचरते देखा। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता कि असम मुझे बुला रहा है। ऋषि बंकिम की 'शस्यश्यामलां मातरम्' यही तो है।

असम सचमुच असम है। प्राकृतिक छटा यहाँ के समान अन्यत्र मिलती नहीं। वन-प्रांतर सम्पदाओं से भरे पड़े हैं। धरती अपनी गोद से धन बिखेरती है। गारो खसिया और जयन्तिया की पहाड़ियाँ बंगाल की खाड़ी से आने वाली नम हवाओं को रोककर मानों कहती हैं–'ये बादल लेकर दूर पार मत जाओ, तुम यहीं बरस इस धरती को सरसाओ' और बादल सचमुच रुककर असम की धरती को सरसा देते हैं। तभी यहाँ के अनन्नास, संतरे और मधु में अनुपम माधुर्य है। अपनी मातृभूमि को असमिया 'अहम' कहते हैं। चाहे किसी भी ऐतिहासिक अर्थ के साथ यह शब्द संबंधित हो, पर यह मानना पड़ेगा कि इस धरती की कामिनियों की शालीनता और सौंदर्य के सन्दर्भ में 'अहम' का भाव सार्थक ही कहा जायगा।

शायद इसीलिए असम को कामरूप भी कहा जाता है। धनुर्धर अर्जुन का गांडीव धरा रह गया यहीं चित्रांगदा के प्रेम में। यहीं तो रूपसी उर्वशी हुई थी। कामरूप की रानी मृणावती ने गोरखनाथ के गुरु परम योगी मछिन्दर नाथ को अपने रूप जाल में ऐसा लपेटा कि उसके बाहू पाश में गुरुवर ज्ञान-ध्यान, जप-तप सभी कुछ भूल बैठे। कई बार 'जाग मछिन्दर गोरख आया' कहकर बड़ी मुश्कल से शिष्य ने गुरु को प्रेम पाश से मुक्त किया। कोई आश्चर्य नहीं कि राजस्थान के अभाव-अकालों से त्रस्त युवक इस प्रदेश में आकर यहाँ की उर्वरा धरती और चपल कामिनियों के आर्कषण में अपने परिवार और पत्नी तक को भूल बैठते। प्रसिद्ध था कि कामरूप की स्त्रियाँ 'कामण' जानतीं हैं, वे पुरुष को दिन में भेंड़ और रात में आदमी बना कर रखतीं हैं। उन दिनों मेरा अविकसित मस्तिष्क इसके गूढ़ अर्थ नहीं समझ पाया। बाद में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राज खुला कि मर्द दिन भर भेंड़ की तरह स्त्री के इशारे पर चुपचाप बैठा रहता और रात में मर्द बन जाता ।

आज यह भी सोचता हूँ कि उस समय इस सुदूर पूर्वांचल में आत्मीय स्वजनों को छोड़कर लोग अनेक कष्टों के बावजूद क्यों आते थे ? क्यों यहाँ के दलदल, मच्छर, साँपों और वन्य पशुओं से त्रस्त रहते हुए भी दस-दस, बारह-बारह वर्ष तक जम कर रहते । कस्बे और गाँव भी आज की तरह विकसित नहीं थे । मलेरिया, कालाज्वर और पेचिश का प्रकोप आए दिन की बात थी । शायद महत्वाकांक्षा और आवश्कता उन्हें इतनी लम्बी अवधि की मुसाफिरी के लिए बाध्य करती, दस-पन्द्रह वर्ष के बाद चार-छह माह के लिये अपने गाँव में लौट आते और फिर इस बीहड़ यात्रा पर चल देते । साथ में रहता लोटा, बिस्तर और हाथ में लाठी।

अपने उन पूर्वजों की कष्टभरी यात्रा और संघर्षों के बारे में सोचता हूँ तो श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते थे, क्योंकि वे ही वर्तमान समृद्ध और उन्नत समाज की नींव के पत्थर थे।

राजस्थान वापस आकर अपने घर की स्थिति देखता तो मन में एक कसक-सी उठती। उम्र कम होने पर भी मुझे यह तो मालूम था कि निर्वाह के लिए व्यवस्था जरूरी है । आय का साधन नगण्य था । अतएव कर्ज और खर्च के दोनों पाटों के बीच परिवार पड़ गया था । यह महसूस करता कि मुझे भी घर का बोझा हल्का करने में हाथ बटाना चाहिए ।

हमारे पड़ोस में ओसवाल महाजनों के दो-तीन परिवार थे । उनसे हमारा अच्छा मेल था । असम और कलकत्ता में उनका व्यापार था । वे राजस्थान लौटते तो महिलाओं और बच्चों के लिए कई बेहतरीन कपड़े, गहनें और सुगन्धित द्रव्य लाते, घर वाले इन चीजों की बड़ाई करते रहते । मैं मन-ही-मन दुखी हो जाता । सोचता, परदेश तो मैं भी गया परंतु छोटे बहन-भाइयों के लिए सौगात लाने की प्रबल इच्छा पूरी न कर सका । शायद माताजी, नानीजी और दादीजी भी सोचती होंगी कि उनके लिए भी कुछ लाऊँगा । कुछ भी न हो पाया । उलटे, सौ-पचास रूपये जाने-आने में खर्च हो गए ।

उन्हीं दिनों एक बार दादाजी बीकानेर जाते हुए रास्ते के एक कस्बे में ठहरे । एक निकट संबंधी बीमार थे, उनसे मिलने गए उन्होंने कहा —आपको इस समय हम तो कर्ज नहीं दे सकेंगे, वैसे भी बिना आपस में सलाह किए हम संबंधियों को उधार नहीं देते । दादाजी बहुत ही मितभाषी, स्वाभिमानी और धर्मपरायण थे । यह बात सुनकर वे बहुत दुखी हुए । उन्होंने कहा कि "साहजी, मै तो आपकी तबीयत का हाल पूछने आये था । कर्ज लेने का तो मेरे मन में कोई विचार ही नहीं था ।" लौटकर दादीजी और पिताजी को उन्होंने जब यह बतायी तो उन सबकी आँखें गीली हो गई । वहाँ जाने का पश्चाताप उन्हें बहुत दिनों तक रहा ।

इसी बीच मैने कलकत्ते के कई फर्मों में नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भेजे, परंतु किसी का भी संतोषजनक उत्तर नहीं आया । पंद्रह-सोलह वर्ष के मैट्रिक पास लड़के को काम देने की गरज किसे पड़ी थी ?

मेरे श्वसु हरचंदराय जी सराफ का कलकत्ते में अच्छा कारोबार था । मेरी पत्नी उनकी इकलौती पुत्री थी । हमारे घर कीस्थिति का उन्हें पता था । वे हम लोगों के लिए कुछ करना चाहते थे, परंतु उनका सम्मिलित परिवार था, इसलिए संयोग नही बैठ रहा था । एक दिन उनका पत्र आया कि कलकत्ते चले आओ । पत्र पाकर मै उलझन में पड़ गया । दादीजी और माताजी पहली यात्रा की मेरी उदासी और निराशा से परिचित थी, मुझे अनमना भी देखतीं । इसलिए इतनी जल्दी परदेश भेजना नहीं चाहती थी । पत्नी की सलाह का तो सवाल ही उस समय नहीं था । अपनी पहली यात्रा की असफलता से हताश-सा था । किन्तु मन को कड़ा कर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया ।

ग्यारह वर्ष पहले चार साल की उम्र में एक बार कलकत्ता आ चुका था । उस वक्त की धुँधली-सी याद थी । समझ आने पर यहाँ आने का पहला मौका था । हबड़ा स्टेशन पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उतरा । बड़े-बड़े प्लेटफार्म और भीड़ देखकर भौंचक रह गया। हमारे गाँव में तो बड़े-से-बड़े मेले में भी इतनी बड़ी भीड़ नही होती । लाल कमीजें पहने कुलियों की जमात और नाना प्रकार की वेषभूषा वाले मुसाफिरों का शोर । स्टेशन पर मुझे लेने के लिए ममेरे भाई दौलतराम जी आये । हम दोनों एक रिक्शे पर सवार हुए। रिक्शा चला तो मुझे डर लगा कि कहीं उलट न जाये। पहली बार देखा कि घोड़े या ऊँट की तरह इंसान बहुत से समान के साथ दो आदमियों को लाद खुद गाड़ी में जुता है । मन में ग्लानि का भाव आया । रिक्शा पुल की ओर बढ़ा । सामने गंगा बह रही थीं ।

पुल भी अपने ही ढंग का था, लोहे की नावों पर बना हुआ । बड़े-बड़े जहाज जब आ जाते तो बीच से नावें हटा ली जातीं ताकि वे दूसरी ओर निकल जायें । पुल पर से हरीसन रोड़ होते हुए हम मालपाड़ा आये । रास्ते में जिधर नजर जाती लोगों का हुजूम उमड़ता दिखता । ऊँचे मकान, दूकान, दौड़ती मोटरें, बग्घियाँ-सब कुछ देखकर लगा कि किसी जादुई नगरी में आ पहुँचा हूँ ।

बहुत दिनों बाद मैंने फ्राँसीसी उपन्यासकार अलेक्जन्डर ड्यूमा की 'थ्री मस्केटियर्स' पढ़ी । उसमें आर्तेजन के प्रथम बार अपने गाँव छोड़ते समय की बात पढ़कर मुझे भी कलकत्ते की अपनी इस यात्रा की याद आ आयी । आर्तेजन के पिता ने अपने बेटे को बिदा करते हुए कहा था— 'बेटा, मेरे पास तुम्हें देने के लिए सिवाय इस पुश्तैनी तलवार और मेरे मित्र ट्रेभले के नाम लिखे गए परिचय पत्र के और कुछ नहीं है । मगर मुझे भरोसा है कि पेरिस जाकर तुम अपने खानदान का नाम रोशन करोगे', कुछ ऐसे ही भावपूर्ण वाक्य दादाजी ने गाँव से विदा होते समय मुझसे कहे थे । उनका आशीर्वाद लेकर मैं पूरे विश्वास के साथ उस छोटी अवस्था में, जो आमतौर से खेलने, कूदने और पढ़ने की मानी जाती है, कलकत्ता जैसे महानगरी में रोजगार के लिए आया ।

कुछ ही पहले पिताजी और भाईजी भी असम से यहाँ आ गए थे, क्योंकि वहाँ हमारा काम जम नहीं पाया । उन्होंने आरमेनियन स्ट्रीट में एक जगह किराए पर ले ली । एक कमरे के आधे हिस्से का किराया था पच्चीस रुपया महीना । छोटे रूप में आढ़तदारी का काम शुरू कर दिया । मैं भी वहीं रहने लगा । कुछ दिनों बाद दादाजी की अस्वस्थता का समाचार पाकर, पिताजी को गाँव वापस जाना पड़ा । हम दोनों भाई वहीं रह गए । पूँजी के अभाव में व्यापार बहुत कम कर पाते, अतएव आय भी कम थी ।

उन दिनों बंगाल-असम में व्यवसाय, व्यापार अथवा नौकरी पेशे में लगे अधिकांश मध्यम श्रेणी के राजस्थानियों के स्त्री-बच्चे साथ नहीं, बल्कि अपने-अपने गाँवों में रहते थे । मुनीम-गुमाश्ते जहाँ काम करते, उन्हीं गद्दियों में रहते या कई जने मिलकर कोठरियाँ किराए पर लेकर गुजारा करते । ढाबे में भोजन करते और रात को निश्चित स्थान पर सो जाते । आज की अपेक्षा जीवन कष्टमय जरूर था । पर अन्य कोई सुविधाजनक विकल्प नहीं था । हम भी रात में अपनी गद्दी में सोते । बहुत तड़के उठकर स्नान कर लेते । वहीं ऊपर ढाबे में भोजन करते । खर्च था, दस रुपया मासिक । आज की सी मँहगाई थीं नहीं । इसलिए इतने खर्च में शुद्ध घी से बना भोजन दोनों समय पेट भर मिल जाता था । महीने में दो बार खीर-पूरी या हलुवा भी बनता जो उन्हीं दस रुपयों में शामिल था । ढाबा के नौकर गद्दी की झाड़ू -बुहारी तथा पानी पिलाने का काम कर देते । जाड़ों में गरम पानी की व्यवस्था भी वहीं हो जाती ।

कलकत्ते का बड़ा-बाजार अंचल सदा जनसंकुल रहा है । ऊँची-ऊँची विशाल अट्टालिकाएँ बनती जा रही हैं, आज भी यही क्रम है । एक-एक मकान क्या हैं गाँव के गाँव समा जायें । उस समय की तुलना में आज के मकान कुछ सुविधापूर्ण अवश्य बने हुए हैं । उनकी व्यवस्था भी पुराने ढर्रे की है । बड़े बाजार में न तब आदमी इंसान की तरह जिंदगी बसर करता और न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आज ही करता है। अधिकांशत: एक छोटी सी कोठरी में पूरा परिवार गुजर करता उसी में रहना, रसोई पकाना और रात को एक दूसरे पर गिर-पड़ कर सो जाना। अगर पुत्र का विवाह हो जाता तो कमरे में पर्दा डालकर एक तरफ माँ-बाप बच्चों को लेकर सोते, दूसरी तरफ पुत्र और उसकी पत्नी। इसी तरह गद्दियों में जहाँ केवल चार-पाँच व्यक्तियों के लिए जगह होती, वहाँ रहते आठ-दस। कभी-कभी आए-गए इससे भी ज्यादा हो जाते। भीड़ का यह सिलसिला बराबर चलता रहता। इस वजह से सुबह शौच के लिए पाखानों के सामने लंबी कतारें लगतीं। खड़े-खड़े गंदगी और बदबू से सिर भन्ना उठता। एक ओर संडास की दुर्गन्ध ऊपर से बीड़ी पीनेवालों का धुआँ उगलते रहना, खाँसी और खँखार का ताँता। जी घबरा उठता, मगर दूसरा उपाय भी न था। मैं सोचता, यह कैसी जिंदगी है! हमारे गाँव में गरीबी तो है, मगर जीते हैं इंसान की तरह। ये सब भी तो वहीं से आए हैं फिर शुचिता के इनके संस्कार कहाँ चले गए।

सन् १९९९ में मढ़ौरा (बिहार) मे अपनी चीनी मिल देखने गया। पहले यह अंग्रेजों की थी। वहाँ उस ज़माने के बने आफिसरों के बँगले देखे। प्रत्येक शयन कक्ष के साथ दो-दो बाथरूम। पूछने पर पता चला, पति पत्नी की सुविधा के लिए इन्हें अलग-अलग बनवाया गया था। याद आ गई, सन् १९२७-२८ में बड़ा बाजार में बिताए गए अपने जीवन की बातें। बाथ-रूम की तो बात ही क्या, क्यू लगा कर निबटना और छोटी-सी बाल्टी लेकर अपने ऊपर उड़ेल लेना पर्याप्त था।

उन दिनों हलवाइयों के यहाँ गरम दूध तीन-चार आने सेर मिलता था। हम दोनों भाई एक-एक पाव दूध लेते। सुबह दस बजे भोजन कर लेते। दिन में सामने की दुकान से दो आने का जलपान मँगा लेते। फल और सूखे मेवे आज के अनुपात में बहुत सस्ते थे, परंतु हमने शायद ही इनका उपयोग किया हो। आमतौर पर फल रईस और सम्पन्न व्यक्ति ही खाया करते, जनसाधारण के लिए तो ये दुर्लभ थे।

शुरुआत के दिन तो यों ही गुजरते गए। किसी तरह खींचतान कर गुज़ारा करते, मगर दो-तीन महीने में हमने यह महसूस किया कि आय बढ़ाए बिना काम नहीं चलेगा। समस्या थी कि इतनी इतनी थोड़ी सी आंय से कलकत्ते का और गांव का खर्च किस तरह चलाएं और कर्ज कैसे उतारें। व्यापार में तत्काल आमदनी बढ़ाने का साधन पूँजी होती है। हमारे पास इनका अभाव था। इसलिए तय हुआ कि भाईजी गद्दी का काम सम्हालें और मैं कहीं नौकरी में लग जाऊँ।

उन दिनों नौकरी कठिनाई से मिलती थीं, आज भी। योग्यता, प्रतिभा और अनुभव के आधार पर प्रार्थी की उपयोगिता का मूल्यांकन नहीं होता है। इसके लिए आवश्यकता है परिचय या सिफारिश की। गाँव में रहते मैंने काफी आवेदन-पत्र भेजे, किंतु कोई फल नहीं निकला, अतएव निराश होकर कभी-कभी सोचता कि मुझे जैसे अल्प-शिक्षित, अनुभव-हीन और अपरचित को कौन नौकरी देगा? किंतु दूसरे ही क्षण अंदर से मानों कोई कहता, 'हिम्मत मत हारो, परमात्मा मदद करेगा'।

मैं कोशिश में लगा रहा। मेरा मित्र दीपचंद चाण्डक कलकत्ते में था। हम दोनों साथ पढ़े साथ खेले थे। स्वभाव और रुचि में भी साम्य था। वह अपने किसी संबंधी की सिफ़ारिश से बिड़लाजी की केशोराम काटन मिल में पचहत्तर रुपये मासिक पर काम कर रहा था। एक दिन मुझे देवीप्रसादजी खेतान के पास ले गया। वे बिड़ला बंधुओं की उक्त मिल का संचालन कर रहे थे। खेतान जी का परिवार मारवाड़ी-समाज़ में सुसंस्कृत और शिक्षित माना जाता था। उनका प्रभाव और सम्मान भी बहुत था। उन्हें उस सस्ती के जमाने में पाँच हजार रुपये मासिक वेतन मिलता था जो आज के करीब पचास हजार के बराबर है। इतनी ऊँची तनख्वाह लाट साहब के अलावा और किसी को नहीं मिलती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं कुछ सहमा-सा श्री खेतान के चेंबर में गया । उनका व्यक्तित्व और वातावरण मुझ जैसों को अभिभूत करने के लिए काफी था । 'तुम क्या करना चाहोगे ?' उनकी आवाज में सरलता थी । मुझमें हिम्मत बँधी, मैंने कहा, "जिस प्रकार का काम देंगे सीखने की कोशिश करूंगा आपको मेरे परिश्रम से संतोष होगा ।" मैंने उन्हें यह बता दिया कि राजस्थान से पहले-पहल आया हूँ और कभी किसी जगह पर काम नहीं किया है ।

ऐसा लगा कि मेरी स्पष्टवादिता उन्हें अच्छी लगी । उन्होंने प्रारम्भ में पचास रुपये मासिक वेतन देने को कहा ।

गद्दी वापस आकर भाई जी से बात की, पर उन्होंने अन्तिम निर्णय मेरे ऊपर छोड़ दिया । सोचने लगा, नौकरी तो मिल रही है. बड़ी कम्पनी है. बड़े लोग है, सब कुछ ठीक है, मगर इन पचास रुपयों में कितना तो स्वयं खर्च कर पाऊँगा और क्या घर वालों को भेज सकूँगा । सोचा, कोई स्वतन्त्र धन्धा क्यों न करूँ । पूंजी न होने पर दलाली करके भी लोग यहाँ आमदनी कर लेते हैं, नौकरी अच्छी मिली तो कर लूँगा ।

हमारे गाँव के श्री मोतीलाल नाहटा एक ग्रीक फर्म में दलाल थे । उनकी आय थी, हजार-बारह सौ रुपये मासिक । इसी से अनुप्रेरित होकर बिना वेतन के मैं उनके साथ पाट की दलाली का काम सीखने लगा । उन दिनों यूरोपियन फ़र्मों में काम करना या उससे संबंधित रहना एक इज्जत की बात समझी जाती थी । दो महीने बाद जब नाहटा जी से वेतन के लिए कहा तो मुझे कार्यमुक्त कर दिया गया ।

असमंजस में पड़ गया । अब तक जो भी कदम उठाये, सब असफल रहे । मन को धीरज देता, 'असफलता ही सफलता की कुंजी है ।' सोलह वर्ष की अवस्था, पढ़ाई साधारण सी और न सिफ़ारिश का जोर । इधर अभाव और आवश्यकताएँ । हाथ धरे बैठना सुहाता न था । दो महीने तक फिनिक्स नाम की एक ब्रिटिश इंश्योरेंस कंपनी के कागजात के लिए बड़ा बाजार के आफिसों और गद्दियों के चक्कर लगाता रहा । मगर नए आदमी से बीमा कराता कौन ? इस अर्से में कमीशन के बने सत्तर रुपये । कुछ उदार सज्जनों ने दूसरे एजेंटों से थोड़ा-सा कमीशन दिलाना चाहा, किंतु बिना कमायी का रुपया लेना मुझे स्वीकार नहीं था । हार कर यह काम भी छोड़ देना पड़ा ।

मैं सुबह-शाम इडन-गार्डन घूमने जाया करता । अपनी उम्र के स्वस्थ किशोरों को फुटबाल, बालीबाल खेलते, उछलते-कूदते देखकर सोचता, कितने सुखी हैं ये, कितने भाग्यशाली ? मैं क्यों नहीं हो पाता ? दादाजी की बातें याद कर मन को समझाता कि भगवान् परीक्षा लेता है । जिसे पहले दुख देता है, बाद में सुख भी देता है । कभी-कभी नजर गड़ाए यह देखता चलता कि कहीं कोई कीमती हीरा मिल जाये तो उसे बेचकर देस के खर्च और कर्ज की समस्या से मुक्त हुआ जाय ।

आज कल के किशोरों को देखता हूँ तो लगता है, उनकी मौज-शौक का अंत नहीं । न तो संयम और न तो परिवार के लिए कर्तव्य-बोध । ऊल-जलूल खर्च, लिखाई-पढ़ाई के प्रति उदासीनता, सिनेमा, क्लब या कैबरों के प्रति जबरदस्त रुझान—आज की पीढ़ी इसी को सर्वस्व समझे बैठी हैं । पहले न तो पढ़ने-पढ़ाने के इतने साधन थे और न खेल-कूद के । परिवार के कठोर अनुशासन में दायित्व का बोध स्वत: होता । किसी-न-किसी प्रकार आय का साधन जुटाया जाय, चाहे पढ़-लिख कर या नौकरी-व्यापार करके । बाद में मैंने चार्ल्स डिकेंस की जीवनी पढ़ी । ऐसा लगा कि अपनी ही जीवनी पढ़ रहा हूँ । एक बालक पर गरीबी और संघर्ष जनित प्रतिक्रियाओं का इतना स्वाभाविक वर्णन डिकेंस की कलम से ही संभव हो सका । संयोग से जिस प्रकार उसे अपनी बूढ़ी दादी का सहारा मिला मुझे भी जे० टामस के श्री मानव मित्र का ।

बीमा का काम छोड़ने के बाद फिर से पाट की दलाली में घूमने लगा । मन में विश्वास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था और हिम्मत भी। उन दिनों अंग्रेजों से आमतौर पर हिन्दुस्तानी मिलने में झिझकते। मैं बड़ी-बड़ी फर्मों के साहबों के पास चला जाता। उनमें से किसी-किसी ने दिलचस्पी ली और कुछ सौदा भी दिया। किन्तु भला बेचवाल किसी नये आदमी पर भरोसा क्यों करते? दूसरे-तीसरे दिन जब पता चला कि मेरा बताया हुआ काम अन्य दलालों की मार्फत हो गया, तो मन में आक्रोश होता और निराशा भी। चार महीनों में मेरी कुल दलाली हुई करीब ३० रुपये।

इस अवधि की स्थिति बहुत ही अखरी। बारंबार प्रयास करता, मगर सफलता तो जरा भी आगे बढ़ नहीं पा रहा था। हिम्मत थी और चेष्टा भी, पर लगता जैसे ऊँची-ऊँची लहरें बलात् वापस किनारे ला पटकती हैं। मैं उदास-सा रहने लगा। गाँव से पिताजी के पत्र आते। घर की कठिनाइयों का जिक्र रहता। यहाँ आढ़तदारी का काम भी इतना भर था कि हम किसी प्रकार गुजारा करते।

एक दिन मेरे श्वशुरजी मुझे सूरजमल फर्म के वरिष्ठ भागीदार सेठ वंशीधर जालान के पास ले गये। उनसे किसी जूट के फर्म में दलाली का काम दिलाने की सिफारिश की। उन्होंने मुझसे पाट के भाव और कहाँ काम किया है, इसके बारे में संक्षेप में कुछ बातें कीं। जब फिर मिलने को कहा तब मेरे मन में आशा बँधी। कलकत्ते के चोटी के व्यापारी और उद्योगपतियों में उनकी गिनती थी। बचपन में मेरी ही तरह बहुत ही साधारण और कष्टपूर्ण स्थिति में थे, शायद इसीलिए उन्होंने दिलचस्पी ली। दो-तीन बार उनसे मिला। प्रणाम कर गद्दी में एक ओर बैठ जाता। वे एक बार मेरी ओर देखते फिर आने वाले व्यापारियों से बातें करने लगते। चुपचाप सुनता रहता। घण्टे-आधे घण्टे मुझसे कह देते फिर आना, काम बतायेंगे। मैं ऊबा नहीं, उनके पास जाता रहा। कभी-कभी बीच-बीच में पाट के भावों की जानकारी मुझसे लेते। मैं आश्चर्य करता कि दलालों और व्यापारियों को स्वयं भाव बताने वाले, इतने बड़े व्यापारी मुझसे पूछते हैं। मन को समझाता, शायद वे जानना चाहते हैं कि काम में रुचि रखता हूँ या नहीं और मुझे कितनी जानकारी है।

एक दिन उन्होंने मुझसे पाट की किस्मों के बारे में पूछा। ग्रीक फर्म में की गयी मेरी मेहनत काम आयी। ऐसा लगा, मेरे उत्तर से उन्हें सन्तोष हुआ, क्योंकि मेरे श्वशुरजी से उन्होंने कहा कि लड़का होनहार मालूम देता है, तरक्की कर जायेगा। जूट की एक बहुत बड़ी कम्पनी जे० टामस से उनका संबंध था। उन्होंने मुझे फर्म के बेनियन श्री मानव मित्र के पास दो-सौ रुपये मासिक वेतन पर रखवा दिया।

आज न मेरे श्वशुरजी हैं, न सेठ वंशीधर जालान और न मानव मित्र महोदय। परंतु इनके किए गए उपकार ने निःसंदेह मेरे जीवन को एक नयी दिशा दी। उसे कैसे भुला सकता हूँ? उपकारी चला जाता है पर उपकार रह जाता है। आज की पीढ़ी में ऐसे हमदर्द कहाँ मिलेंगे? इन्हीं की याद-मुझे सदैव प्रेरित करती है कि किसी काम की खोज में आये नवयुवक की कुछ सहायता कर सकूँ। मुझे अपनी वर्षों पहले की सूरत उस युवक में नजर आती है और तब मानों अंतर में कोई अदृश्य संकेत कह उठता है कि इसे काम दो। बहुतों को काम दिलाया। इनमें से कुछ तो अच्छे ओहदों पर पहुँच गये हैं।

उन दिनों एक मामूली पढ़े-लिखे सोलह सत्रह वर्ष के किशोर के लिए दो-सौ की नौकरी बहुत बड़ी बात थी। जब यह खबर हमारे गाँव पहुँची तो घर वालों को बड़ी खुशी हुई। हनुमानजी का प्रसाद बाँटा गया। दादीजी ने कहा, "भगवान ने संकट के दिन काट दिए, अब आराम से रहेंगे।"

थोड़े दिनों बाद पत्नी देस से अपने पीहर (कलकत्ता) आ गयी। भाई दौलतरामजी सूतापट्टी में रहने लगे थे। हमारी गद्दी के पास ही यह जगह थी। उनके यहाँ एक कोठरी खाली थी। उन्होंने यह हमें दे दी। हम वहीं आकर रहने लगे। चार-छः महीने तक उनके साथ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही भोजन किया। उनकी कपड़े की एक साधारण-सी दूकान थी। पर उनका मन बहुत उदार था। सूता पट्टी के जिस मकान में हम रहते थे, उसके मालिक विलासरायजी चौधरी हमारे दूर के रिश्तेदार थे। उन्होंने पुरानी फिटननुमा मोटर खरीदी। एक दिन मुझे भी उसमें बैठकर कालीघाट जाने का मौका मिला। अब तक इस सवारी की कल्पना ही करता था। इतने दिनों तक जिस चीज को अँगुलियों से छू पाया, उसमें बैठ कर जब चला तो गुदगुदी-सी मालूम हुई।

जे० टामस के काम में लग गया था। अंग्रेजी फर्म में काम करना इज्जत की बात थी। उनका जमाना था, पूरा रोबदाबभरी। राजनीति से सरोकार नहीं था और न उस ओर मेरी रुचि पनप पायी थी। केवल इतना जानता था कार्यकुशल और ईमानदार व्यक्तियों की साहब लोग बहुत कद्र करते हैं और उन्हें स्नेहपूर्वक: आगे बढ़ने का मौका देते हैं।

कलकत्ते में आने के बाद इस समय तक मैं कमाई ही नहीं कर पाया, किन्तु बाजार के भाव-माल की आमद-खपत, व्यापारियों की सांख, उनके तौर-तरीके, इनका सूक्ष्म अध्ययन करने में प्रयत्नशील रहा। इससे भविष्य में लाभ पहुँचा। श्री मित्र के निर्देशानुसार दत्तचित्त होकर कार्य करता था। परिश्रम और समय को आड़े नहीं आने देता। सामने एक ही लक्ष्य था, काम करना है, जैसे भी हो। हमेशा इस बात का ख्याल रहता कि मानव बाबू का दिया काम अधूरा न रहे। अगर उन्हें कुछ कहने का मौका मिला तो यह मेरे लिए अत्यन्त ग्लानि की बात होगी। वे बहुत ही उदार और भले थे। लगन से मुझे काम सिखाते। कभी-कदाच गलती भी हो जाती तो नाराज नहीं होते बल्कि धीरे से समझा देते। इस स्नेह पूर्ण व्यवहार से मेरा उत्साह और कर्त्तव्य बोध बढ़ जाता। उमंग में अपनी पिछली असफलताओं को भूलता नहीं, बल्कि उनके कारण अधिक सजग और सचेत रहता कि कहीं चूक न जाऊँ, जीवन में अवसर बार-बार नहीं आते। सवेरे से शाम हो जाती, रात दस बज जाते फिर भी सौदा पक्का करने के लिए दौड़ता रहता। उन दिनों न तो टेलीफोन की इतनी सुविधा थी और न मेरे पास कोई सवारी। चितपुर-काशीपुर की पाट की गोदामों से डलहौजी तक के कई चक्कर ट्राम-बस से रोज लगा लेता। थकान नहीं महसूस होती। मेरी भाग-दौड़ पर लोग मजाक करते, फबतियाँ कसते, मगर इन सब का मुझ पर कोई असर नहीं होता।

बहते मनुष्य को प्रवाह दिखता नहीं, उसे केवल वेग का अनुभव होता है। किन्तु जब किसी जगह पैर टिकते हैं तो, रुक कर साँस लेता है, देखता है, कहाँ खड़ा है, प्रवाह कैसा है और किनारा किधर है। ठीक यही दशा मेरी थी। काम का सिलसिला ज्यों-ज्यों जमता गया अपने परिवेश को देखने समझने लगा। फुरसत के समय जूट एक्सचेंज में बैठ कर समाचार-पत्र पढ़ता रहता, बाजार की घट-बढ़ या व्यापार की स्थिति पर देश-विदेश की घटनाओं का प्रभाव तेजी से पड़ता है। अतएव अखबारों से बेखबर रहना व्यापारी के लिए घातक सिद्ध होता है। इसे मैं व्यापार का गुर समझता हूँ।

उन दिनों कलकत्ते में हिन्दी के दैनिक निकलते थे—'भारतमित्र', 'विश्वमित्र', एवं 'लोकमान्य'। 'भारतमित्र' सबसे पुराना था। अब तो इसका और 'लोकमान्य' का प्रकाशन बन्द हो गया है। 'विश्वमित्र' में बाजार के भाव और थोड़ी बहुत व्यापारिक समीक्षाएँ कभी-कभी रहती थीं। इन्हें गौर से पढ़ता और इसका ख्याल रखता कि समीक्षक का अनुमान सही उतरता है या मेरा निजी। अंग्रेजी पत्रों में 'स्टेट्समैन', 'इंग्लिसमैन' और 'अमृत बाजार पत्रिका' प्रमुख थे। अंग्रेजी का अभ्यास तब तक काम चलाऊ नहीं हो पाया था, फिर भी 'स्टेट्समैन' अवश्य पढ़ता। इसमें विदेशी खबरें और व्यापारिक सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक रहती। चूँकि पाट व्यवसाय से मेरा सम्बन्ध था और इसकी खपत विदेशों में विशेषत: ब्रिटेन व अमेरिका में होती, अतएव इस अखबार का महत्व मेरे लिए अधिक रहता। धीरे-धीरे अंग्रेजी का अभ्यास बढता गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति उदासीनता या उपेक्षा अधिक काल के लिए सम्भव नही। संवेदनशील मानस का घटनाओं के घात-प्रतिघात से प्रभावित होना स्वभाविक है। बड़ाबाजार में रहता था। फाटका के अधिकांश दलाल और व्यापारी राजस्थानी थे। वहीं रहते थे। आपस में सामाजिक और कभी-कभी राजनीतिक गतिविधियों की चर्चाएँ होतीं। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, पर्दा-प्रथा, अस्पृश्यता और गान्धीजी के आन्दोलनों पर पक्ष-विपक्ष में टीका-टिप्पणियाँ चलती। इन्ही लोगों के बीच रोज का उठना-बैठना, कभी-कभी तो मुझसे भी पूछ बैठते। मैं मुस्कुरा कर चुप रह जाता। फिर भी, अकेले में इस पर विचार करता, स्वयं में तर्क-वितर्क भी, मन को समझाता कि ये बातें बड़े और समर्थ लोगों की हैं, मुझे तो काम करना है। पहले घर की समस्या का समाधान कर लूँ, फिर समाज और तब देश की।

हाँ, इतना जरूर था कि राजस्थानी समाज में प्रचलित रूढ़िवाद और आधुनिक शिक्षा का अभाव अखरता। कभी-कदाच भाईजी से प्रसंगवश चर्चा करता, किन्तु उनमें भी इनके प्रति दिलचस्पी नहीं पाता। शायद इसीलिए इस दिशा में बढ़ने का साहस नहीं हुआ और मेरा संघर्ष अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने तक सीमित रहा।

जे० टामस में काम करते हुए एक वर्ष हो गया। एक दिन मानव बाबू ने मुझसे कहा, "तुम चाहो तो कुछ दिनों के लिए छुट्टी ले सकते हो।" काम से फुरसत! इसकी कल्पना भी मैने नहीं की थी और न मुझे इसकी आवश्यकता महसूस हुई। श्री मित्र ने समझाया कि रोजमर्रा के काम से कुछ समय के लिए अवकाश लेना तन और मन के लिए स्वास्थ्यकर है। उन्होंने मुझे पन्द्रह दिनों की छुट्टी दिला दी। शुरू में तो तय ही नहीं कर पाया कि क्या करूँगा, कैसे बिताऊँगा पूरा एक पखवारा। देस आने-जाने और रहने के लिए इतना अल्प समय यथेष्ट नहीं था। अतएव मैं भाई दौलतराम जी के साथ जसीडीह चला गया। कलकत्ते से दो सौ मील दूर बिहार के सन्थाल परगना में स्वास्थ्य लाभ के लिए यह अच्छी जगह है। उन दिनों मारवाड़ी आरोग्य भवन बन चुका था, किंतु वह आज की तरह विस्तृत और सुसज्जित नहीं था। स्वास्थ्य लाभ के लिए यहां काफी लोग आया करते। खाद्य-पदार्थ इतने शुद्ध और सस्ते थे कि आने वालों को अतिरिक्त खर्च नहीं करना पड़ता। भवन के फाटक पर ही एक रुपये का सोलह सेर दूध और एक आना सेर ताजी सब्जी मिल जाती थी। चार मील पर ही प्रसिद्ध तीर्थ बैजनाथ धाम होने के कारण स्वास्थ्य लाभ के साथ पुण्य लाभ भी एक आकर्षण था। प्राकृतिक शोभा यहाँ मनोरम है। छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, कन्दराएँ प्राचीन मन्दिर और सीधा-सादा जीवन। शान्त परिवेश में आकर बड़ी राहत मिलती।

कुछ महीने पहले कलकत्ते में साम्प्रदायिक दंगा हो चुका था। हरीसन रोड में दीना मियाँ की मस्जिद के सामने बाजे के प्रश्न को लेकर राजराजेश्वरी के जलूस पर पथराव किया गया, कुछ हिन्दू घायल हुए। दो-तीन दिन बाद जकरिया स्ट्रीट के शिव मंदिर को अपवित्र किए जाने पर धैर्य्य का बाँध टूट गया। हिन्दू-मुस्लिम विवाद का भीषण रूप उठ खड़ा हुआ। सूतापट्टी के जिस मकान में हम रहते थे, वह हिन्दू मुहल्ले में होने के कारण सुरक्षित तो था, किन्तु इससे थोड़ी दूर आरमेनियन स्ट्रीट और लोवर चितपुर के चौराहे के आस-पास मुसलमानों की बहुतायत थी। छूरेबाजी, आगजनी लूट की वारदातें खुलकर होतीं। मैंने इस ढंग की घटनाएँ न कभी सुनी और न कभी देखीं थीं। राजस्थान में हमारे गाँव में हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ रहते पर्व-त्योहार मनाते, आपस में मर्यादा रखते हुए भाई-चारे का सम्बन्ध बनाये रखते थे। वहाँ ऐसी स्थिति के बारे में सोचा नहीं जा सकता था। यहाँ पास-पड़ोस में आग की लपटें दिखतीं, धुएं के अम्बार के साथ चीख-पुकार। मुस्लिम मुहल्लों में रहने वाले हिन्दुओं के प्राण संकट में पड़ गए। ऐसे कठिन समय में घनश्यामदास जी बिड़ला दंगा पीडतों के लिए आगे बढे। जान की जोखिम उठाकर अपने कुछ कर्मठ साथियों के साथ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दगा क्षेत्रों में जाते और दंगाइयों से घिरे परिवारों को निकालते। दंगे के बाद कलकत्ते में जितने दिन रहा, ये बीभत्स दृश्य याद आते रहे। जसीडीह के बदले हुए वातावरण ने इन सब पर विस्मृति का एक आवरण-सा डाल दिया। जब वहां से लौटा तो निश्चित रूप से ताजगी और प्रसन्नता थी, तन और मन में।

आढ़तदारी के व्यवसाय में लगन, मेहनत और पूँजी के समन्वय की आवश्यकता रहती है। हमारी आढ़त का काम चलता था पर आगे नहीं बढ़ पाता। मन में बात उठती, हमारी तरह और भी बहुत से लोग राजस्थान से आये, आढ़तदारी का काम किया। वे तरक्की कर गये, हम क्यों नहीं ? अनुशीलन और विश्लेशण का क्रम लगा रहता। रात को अक्सर भाई जी के साथ बातें होतीं। हम तरकीबें सोचते, कम पूँजी में रुपयों की लौट-फेरी किस तरह ज्यादा से ज्यादा की जाय। कोई सूरत नजर नहीं आती। हम नए थे और अनुभव भी कम। साख भी इतनी न जमी थी कि व्यापारी हम पर ज्यादा माल छोड़ दें। फलतः पूँजी का अभाव खटकता। लगी हुई पूँजी का एक अंश जहाँ कहीं रुकावट पाता, पहिए को जाम कर देता। सन् १९२८ तक आढ़त का हमारा कारोबार एक प्रकार से बन्द हो गया। जो थोड़ी पूँजी लगी थी, देसावरों के आढ़तियों (व्यापारियों) में बाकी रह गई।

घूम फिर कर फिर हमारे सामने परिस्थिति लगभग उसी विकट रूप में आ गई जिसके कारण हम कलकत्ते आए थे। परिवार का खर्च और कर्ज तो मुँह बाए ही थे। अन्तर केवल इतना ही था कि मैं नौकरी में लग गया। हमने परेशानी महसूस की पर हिम्मत नहीं हारी। व्यापार न सही, हम दोनों नौकरी कर लेंगे। लिहाजा, भाई जी बिड़ला ब्रदर्स (जूट गनी ब्रोकर्स) में ढाई सौ रुपये मासिक पर नौकरी करने लगे।

आय का सिलसिला जमा। रोज-रोज की दिक्कत और परेशानियों से बचकर हम कुछ साँस ले सके। पाट की दलाली के काम में हम दोनों भाई लगे थे प्रायः रोज अपने-अपने अनुभव बताते और विवेचना करते। इससे परोक्ष लाभ यह हुआ कि हमारा दृष्टिकोण व्यापारिक बना रहा, नौकरी तक सीमित नहीं।

थोड़े दिनों बाद, सरदारशहर से माता जी, पिता जी और छोटे भाई-बहन सभी कलकत्ता आ गये। उन दिनों कलकत्ते में आवास की आज जैसी दिक्कत नहीं थी। कमरे या फ्लैट आसानी से मिल जाते। हमने साठ रुपये मासिक किराये पर तीन कमरों का एक फ्लैट मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट में ले लिया और वहीं रहने लगे।

माताजी-को कलकत्ते का वातावरण अनुकूल नहीं लगा। सरदारशहर में अपने मकान में खुली जगह थी। सुबह-शाम रघुनाथ जी के मन्दिर आते-जाते हुए नानीजी के यहाँ भी हो आतीं। यहाँ वह सब कहाँ ? पर्दे की प्रथा कड़े रूप में थी। प्रत्येक परिवार की चेष्टा रहती कि परम्पराओं का पालन हो। कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा का यह भी एक माप-दंड था। हम लोग तो दिन भर घर के बाहर रहते, अतएव फ्लैट में बँधे जीवन की घुटन का अनुभव नहीं होता था। परन्तु स्त्रियों के लिए स्थिति सर्वथा विपरीत थी बाहर जाएँ तो कहाँ ? जान-पहचान और न आस-पास में मन्दिर देवालय या बाग-बागीचे। गाँव में वक्त जरूरत बाहर निकलना होता रहता था, इसलिए तबियत बहल जाती। वैसे तो मारवाड़ियों की एक बड़ी संख्या कलकत्ते में थी और हमारे गाँव के लोग भी थे। किंतु वे दूर और अलग मुहल्लों में रहते। अपने पास यान-वाहन का साधन भी नहीं था, इसलिए आपस में मिलते जुलते रहना आसान नहीं था।

इन सबके अलावा एक बड़ी कठिनाई यह भी थी कि माता जी को शुचिता का बड़ा ध्यान था। युगों से प्रचलित छुआछूत की मान्यताओं को वे निष्ठा से मानतीं। कई बार जब हम बाहर से आते और एक दूसरे की प्रायः झूठी शिकायत करते कि यह भंगी या थोरी से छू गया तो बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी हमें बख्शा नहीं जाता और कड़ी सरदी में नहाना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पड़ता । यहाँ तो छोटा सा फ्लैट था, उसी में शौच और स्नान की व्यवस्था, मेहतर सामने गुजरता, माता जी उसके जाने के बाद कई बाल्टी पानी से बारामदा धोती । प्रवास में रहते हुए छुआछूत तथा ऐसी अन्य रूढ़ियों के प्रति हम पुरुषों की मान्यताएँ शिथिल हो गयीं, किन्तु माता जी के संस्कारों की जड़ बहुत मजबूत थी । वे अपने को बदल न सकीं । हम उन्हें इसके लिए बाध्य भी नहीं कर सकते थे । कभी-कभी तो वे कह देतीं कि यह भी कोई जगह है जहाँ मिट्टी के दाम लगते हैं । मेहतर कमरों के सामने से जाता रहता है ! हम निरुत्तर रहते ।

छोटे भाई-बहनों को भी बहुत प्रकार की असुविधाएँ थीं । उन्हें भी फ्लैट में ही सीमित रहना पड़ता । गाँव में वे मुहल्ले के बच्चों के साथ खेलते-कूदते रहते, कभी-कभी अपने गुड्डे-गड्डियों का व्याह रचाते और कई दिनों तक जलसा मनाते । पर यहाँ बाहर निकलना सम्भव नहीं, मोटरों और घोड़ा-गाड़ियों का खतरा था, पड़ोसियों की सुविधा के ख्याल से घर में ज्यादा उछल-कूद सम्भव नहीं । पढ़ाई भी मँहगी । स्कूल जो भी थे हमारे मोहल्ले से दूर, उन दिनों बच्चों को लाने ले जाने वाली बसों की व्यवस्था हिन्दी स्कूलों में नहीं थी । चार महीने ऐसी हालत में गुजरे । आख़िर माताजी और बच्चों को सरदारशहर वापस भेज दिया गया ।

अब हमें चोर बगान (मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट) के फ्लैट की जरूरत न रही । साठ रुपये महीने, केवल हम दोनों भाइयों के लिए देते रहना, फिजूल खर्ची थी । हम सुविधाजनक नया आवास ढूँढ़ने लगे । थोड़े दिनों बाद २६, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट में दो कमरे तीस रुपये मासिक किराए पर ले लिए । मकान था—श्री वासुदेव धेलिया का । चाँदी के वायदे बाजार के अच्छे व्यवसायी थे । स्वभाव और व्यवहार मधुर । इस मकान में आने पर धेलिया परिवार तथा आस-पड़ोस से सम्पर्क बढ़ा । आज भी वह स्नेह उसी प्रकार अक्षुण्ण है ।

हमारी आय इस समय तक पहले से बढ़ गई थी । जे० टामस एण्ड कम्पनी से मुझे चार सौ रुपये मासिक मिलने लगे । भाईजी भी बिड़ला ब्रदर्स में काम कर रहे थे । परन्तु मुझे मन के अन्दर से कोई बराबर कहता कि सफलता को बड़ा मान बैठना उतना ही खतरनाक है जितना कि असफलता को । लिहाजा, किसी भी सौदे में कामयाब न रहूँ, इसका पूरा ध्यान रखता । इस प्रकार मेरी कोशिशें बेकार नहीं जातीं । पिछले दो वर्षों की मेहनत से मानव बाबू काफी सन्तुष्ट थे । सारे दिन भाग-दौड़ करता रहता । अंग्रेजी समझने लग गया था, पर सफाई से बोल नहीं पाता । आफिस के साहब मेरी हड़बड़ी, भाग-दौड़ और अटपटी अंग्रेजी के कारण हँस दिया करते थे । वे मुझे चार्ली कहते । एक प्रकार से यह मेरा उपनाम बन गया था । यह नाम उन्होंने क्यों मेरे लिए चुना इसे पहले नहीं समझ पाया । बाद में पता चला कि उन दिनों अंग्रेजी फिल्मों में चार्ली चैपलिन अपनी हरकतों की हड़बड़ी, परेशानी और अटपटी भाषा से दर्शकों को खूब हँसाता था । मेरा मजाक कुछ दूसरे लोग भी बनाया करते । पाट की किस्मों से अनभिज्ञ था, लोग मुझे सोल ब्रोकर (थोक दलाल) कहते । कुछ झेंप सी जरूर महसूस करता मगर बाद में हँस देता । इस प्रकार के मजाक, ताने अथवा हँसी से मैं विचलित नहीं होता ।

जे० टामस जैसी बड़ी कम्पनी से सम्बन्धित होने के कारण एक-दो वर्षों में पाट बाजार के बहुत से प्रतिष्ठित व्यापारियों से जान-पहचान हो गयी । व्यक्तिगत स्नेह-सौहार्द्र भी पाने लगा । हम दोनों भाई फुरसत के समय प्रायः अपनी वर्तमान स्थिति पर विचार करते । यद्यपि आय बढ़ गयी थी, फिर भी परिवार पर कर्ज का भार तो था ही । भाई-बहन बड़े हो रहे थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा, विवाहादि की चिन्ता भी थी, इसका निदान निकालना आवश्यक था । आपसी विचार के दौरान यह तय पाया कि कुछ निजी काम भी शुरू कर देना चाहिए । अतः हम लोगों ने ईस्ट इण्डिया जूट एसोशिएसन (पाट का वायदा बाजार) में शिवप्रताप

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टाँटिया के नाम से अपनी एक फर्म चालू की । नौकरी के साथ पाट के वायदे के सौदे की दलाली करने लगे । हमारा यह नया काम धीरे-धीरे जमने लगा ।

उस समय हरिसन रोड (अब महात्मा गांधी रोड) और चितपुर रोड (रवीन्द्र सरणी) के चौराहे पर बाँगड़ बिल्डिंग नाम की बहुत बड़ी इमारत बन चुकी थी । बड़ाबाजार के मकानों में यह बेजोड़ थी । दक्षिण खुला, चौराहे की महत्वपूर्ण स्थिति, नीचे ही ट्राम, बस, बाजार– सभी करीब सफाई का पूरा इन्तजाम था । शौचालय साफ सुथरे, पानी की व्यवस्था रात-दिन की । हमारे लिए यह और भी सुविधाजनक इसलिए थी कि ताराचन्द दत्त स्ट्रीट का निवास-स्थान इसके नजदीक था । हमने तीस रुपये महीने में एक कमरा किराए पर ले लिया और आरमेनियन स्ट्रीट की अपनी गद्दी यहाँ ले आए । सन् १९२९ में हमारी आय लगभग हजार बारह सौ रुपये मासिक हो गई । दोनों भाइयों के वेतन और वायदे के फर्म की दलाली का यह सम्मिलित फल था । आमदनी बढ़ी जरूर पर हमने मितव्ययिता बनाए रखी । बड़ी सावधानी रखते, कहीं फिजूलखर्च न हो जाय । एक दिन मानव बाबू ने कहा कि पाट के बेचवालों के आफिसों में पैदल या ट्राम बस में जाने में समय अधिक लग जाता है । अतएव दो घंटे के लिए इस काम के निमित्त तुम्हें गाड़ी मिलेगी । बहुत दिनों से मेरे मन में मोटरकार की साध थी । उसकी आंशिक पूर्ति हुई । शाम को ६.३० बजे से ८.३० बजे तक के लिए बेबी आस्टिन गाड़ी मिली । कभी ऐसे मौका आता कि आफिस का काम जल्द पूरा हो जाता और गाड़ी रखने का समय हाथ में रह जाता बहुधा गाड़ी वापस भेज देता । किन्तु कभी-कभी उसमें पत्नी के साथ बैठकर विक्टोरिया मेमोरियल, कालीघाट या किले के मैदान में घूमने जाता तो मन प्रफुल्लित हो उठता । कोई जान-पहचान का व्यक्ति दिखाई देता तो यह प्रयत्न रहता कि वह मुझे गाड़ी में बैठा देख ले । उन दिनों कलकत्ते में मोटरों की आज जैसी भरमार नहीं थी, केवल थोड़े से सम्पन्न लोग ही रखते थे । बहादुर नाम का एक नेपाली युवक ड्राइवर था, उससे मैंने मोटर चलाना सीख लिया । पत्नी के साथ खुली सड़क पर गाड़ी में हवा खाते समय कभी-कभी मेरे मन में हल्का सा गौरव बोध होता । परन्तु पत्नी मुझे सदैव कर्तव्य-बोध कराती रहती । परिवार के प्रति दायित्व का उसे बहुत ख्याल रहता । मैं सोचता कि इतनी गम्भीर और गूढ़ बातों का ज्ञान इसे कैसे हुआ । स्कूल-कालेज में कभी गई नहीं, ऐसा लगता था कि कर्तव्य-बोध और दायित्व-ज्ञान, माता-पिता के आचार-विचार से आता है । इसलिए हमारी संस्कृति में इसके अनुकूल परिवेश बनाने पर अधिक ध्यान दिया गया है । दादाजी का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था, हमें देस से आए कई वर्ष हो गए । वे मुझे देखना चाहती थीं इसलिए देस जाने का निश्चय कर लिया ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मरुथर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागे जी

सन् १६२५ में सरदारशहर छोड़ां और अब अक्टूबर १६२६ में छुट्टी पर अपने गाँव जा रहा था। इन चार वर्षों की अवधि कैसे बीती, क्या-क्या तकलीफें आईं, यह सब लिखने की बातें नहीं, अनुभव की हैं। देस जाने की खुशी में वह सब मैं भूल गया था। असम से जैसे खाली हाथ हारा-माँदा लौटा था, वैसा इस बार नहीं। छोटे भाई-बहनों के लिए थोड़ी चीजें साथ में थीं। अपनी पहली कमाई से खरीदे उन साधारण से उपहारों से जो हर्ष हुआ, वह आज बड़ी-से बड़ी भेंट देकर भी नहीं होता। पत्नी उन दिनों देस में थी। उसके लिए एक इत्रदान ले गया। बहुत वर्षों बाद सन् १६७० में संयोग से एक बार अपने कमरे की आलमारी में उसे वैसा ही रखा पाया। इत्र था नहीं। खोलकर शीशियाँ सूँघी। इत्र की सुगन्ध तो एक प्रकार से मिट चुकी थी, परन्तु इसके पीछे मधुर स्मृति का जो सौरभ था, वह मन में व्याप्त हो गया।

सोलह वर्ष की अवस्था में गाँव से विदा हुआ, बीस वर्ष का होकर लौट रहा था। ट्रेन जब सरदारशहर के पास पहुँची, अपनी जंन्म-भूमि की हवा का स्पर्श कर एक प्रकार का नैसर्गिक आनन्द अनुभव हुआ। कवि के स्वर में गुनगुना उठा—

मरुथर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागेजी

वालू के सुहावने टीले और बाजरे के लहलहाते खेतों के बीच से ट्रेन गुजर रही थी धरती का सौन्दर्य, कवि के शव्दों में सजीव और मुखरित हो उठा—

धोला-धोला टीवड़ाजी, उजली निरमल रेत,
चमचम, चमके चाँदनी में, ज्यूँ चाँदी रा खेत,
म्हाने प्यारो लागे जी......
काचर बोर मतीरा मीठा फोफलियाँ फलियाँ
घणे चाव सूँ रल मिल खांवा मिसरी री डलियाँ
म्हाने प्यारा लागे जी......

स्टेशन पर मुझे लेने के लिए कुछ पुराने मित्र और परिवार वाले आए थे। दोस्तों ने गले लगाया, बुजुर्गों ने प्यार मे पीठ पर थपकियाँ दी, आशीर्वाद दिया। घर आकर देखा कि दादाजी, माताजी, बहन-भाई सभी खुश थे। एक क्षण के लिए वह दृश्य भी याद आया, जब मैं धुबड़ी से खाली हाथ लौटा था, कितनी उदासी और मायूसी थी घर में, घरवालों में। आज कितना परिवर्तन हो गया है। बच्चों के चेहरे और कपड़ों से पता चला कि पहले जैसा अभाव नहीं रहा। चीजें सस्ती थीं—आठ-दस लोगों का परिवार, डेढ़ सौ रुपये मासिक में आसानी से घर का खर्च चल रहा था। ऐसा लगा, हम भाइयों की मेहनत सार्थक हुई।

पास-पड़ोस में मिलने गया। यही परिपाटी थी। ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र का भेद-भाव शहरों में भले ही हो, गाँवों में नहीं था। मुझे देखकर सभी प्रसन्न थे—मैं अंग्रेजी कम्पनी में काम करता हूँ। ......मोटर की सवारी मिली है। ये बातें पहले ही गाँवों में पहुँच गई थीं। पड़ोस की एक वृद्धा ने बड़ी गम्भीरता से पूछा कि कलकत्ते में रहकर मैंने लाट साहब की बोली-सीखी या नहीं। मुझे हँसी आ गयी; पर मैंने बड़े शाइस्ता ढंग से बताया 'थोड़ी बहुत'। उसने मुझे सलाह दी "जल्दी-जल्दी सीख ले, तेरे बड़े काम आयगी।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कभी-कभी सोचता हूँ, राजस्थान के उस उपेक्षित अंचल की अपढ़ बुढ़िया की बात राजभाषा में, राष्ट्रभाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के पचड़ों के दाँव-पेंच में जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, कैसे कह गयी यह पते की बात । सचमुच आगे जाकर अंग्रेजी की जानकारी मेरे बहुत काम आयी–व्यवसाय के क्षेत्र के अलावा, अध्ययन में मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली ।

लंबी छुट्टी लेकर आया था । दो महीने आश्विन और कार्तिक राजस्थान में रहा । यहाँ इसे ही सर्वोत्तम मौसम मानते हैं । न गरमी सताती है, न जाड़ा । फसल तैयार रहती है । खेतों और गाँवों में ककड़ी और मतीरे ढेरों में दिखाई देते हैं । बाजरे के सिट्टे सर उठाए रहते हैं किसान अपनी मेहनत फली देखकर फूला नहीं समाता । लोग टोलियाँ बाँध कर खेतों या आस-पास के जोहड़ों--तालाबों में 'गोठ' (पिकनिक) मनाने जाते हैं । मैंने देखा, कुछ भी तो नहीं बदला इन चार वर्षों में । हम जहाँ भी गए, किसानों ने हमारी आव-भगत की । अपने खेत से अच्छे-से-अच्छे मतीरे और सिंट्टों (भुट्टा) के ढेर लाकर रख दिए । उन दिनों खेत पर आए लोगों से किसान कुछ भी नहीं थे । कोई उनके यहाँ आया है, यही क्या कम गौरव की बात थी ? लोग छककर खाते और शाम को घर लौटते । मगर किसान भला कैसे खाली हाथ वापस जाने दे ? साथ में बहुत से सिट्टे और मतीरे ककड़ियाँ आदि घर वालों के लिए बाँधकर दे देता । घरों में भी इन दिनों बड़े-बूढ़े और इन्हीं का नाश्ता करतीं । यह क्रम कार्तिक से पौष तक चलता रहता । इसे हमारे यहाँ 'कातीसरा' कहते हैं । बहुत दिनों बाद गाँव वापस आ गया था । उपज अच्छी हुई थी । बड़-बूढ़े किसान प्यार से मुझसे कहते–"देख कितना अच्छा जमाना (फसल) तू लेकर आया । हर साल आया कर" कभी कोई कलकत्ते के बारे में पूछता–"कैसा शहर है ? कोई बंगाल के जादू के बारे में जानकारी चाहता तो पूछता गंगासागर कितनी दूर है, वहाँ से जब अपने परिचितों के बारे में लोग पूछते तो बड़ी मुसीबत होती । कठिनाई से समझा पाता कि बहुत बड़ा शहर है, बहुत ही व्यस्त जीवन । मिलना-जुलना आसान नहीं, फुरसत ही नहीं मिलती । इस प्रकार के उत्तर से उनके भोले-भाले चेहरों पर आश्चर्य की लकीरें उभर कर आतीं ।

उन्हीं दिनों की एक घटना है । हमारे गाँव के एक बड़े सेठ बीमार पड़े । झाड़-फूँक, दवा-दारू काफी कराई, स्वस्थ नहीं हो पा रहे थे, सम्पन्न थे ही, कलकत्ते से एक डॉक्टर को बुलाया गया । डॉक्टर साहब भारी भरकम बंगाली थे । हिन्दी साफ़ नहीं बोल पाते थे । राजस्थानी का सवाल ही क्या ? हम अक्सर घूमने-फिरने दूर खेतों की तरफ ऊँटों पर निकल जाया करते । मैं बंगला बोल लेता था, इसलिए मुझसे उनकी आत्मीयता बढ़ गई । एक दिन उन्होंनें कहा कि वे भी हमारे साथ ऊँट पर सवार होकर खेतों की तरफ जाएंगे । मैंने समझाया कि ऊँट की सवारी बड़ी कष्टदायक होती है, इसके लिए अभ्यास चाहिए । वे माने नहीं । कहने लगे, "बांगलाय थेकेओ तुमी बांगाली के चिनले ना जे कोतो कष्ट-सहिष्णु ।" अब मैं क्या कहता ?

खैर, हम चल पड़े । ऊँट वाले को मैंने समझा दिया कि सम्हाल रक्खे । डॉक्टर को सावधानी से बैठाया गया । ऊँट के हर हचकोले के साथ डॉक्टर की शक्ल बदलती । मगर हमसे आँख मिलते ही ऐसे बन जाते कि मानों कोई असुविधा या कष्ट नहीं । खेत पर पहुँचे ऊँट अगली टाँगों पर बैठने के बाद जब पिछली टाँगों पर बैठा तो डॉक्टर साहब गठरी की तरह लुढ़क पड़े । गनीमत यही थी कि जमीन पर बालू-रेत थी, इसीलिए साधारण सी चोट लगी । धूल भरी शक्ल लिए देखकर कहने लगे–"ओरे बाबा, आमि कि जानि एटा जे दूबार बोसे ?" (अरे बापरे ! मैं क्या जानता था कि यह दो बार बैठता है ।) । गाँव में इसकी चर्चा बहुत दिनों तक रही । खूब हँसी-कहकहे के साथ डॉक्टर के वाक्यों को दुहराया जाता ।

इन्हीं दिनों दालबाटी की गोठें भी होतीं । यद्यपि दालबाटी आज देश के अन्य भागों में भी लोकप्रिय हो गई है, पर मूलतः यह राजस्थान का अपना विशेष व्यंजन है । वहाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भिन्न-भिन्न प्रकार की बाटियाँ आज भी बनती हैं, जैसे मिस्सी (गेहूँ-चना मिलाकर) बा (भाप से बनी) और मसाले की। आटे में शहद-घी का मोयण डालकर पेपरवेट की शक बाटियाँ कंडों के भोभर (गरम राख) में सेंकी जाती हैं। सिक जाने पर घी से भरे बरत इन्हें तब तक डुबोये रखते हैं जब तक कि वह पूरा घी नहीं पी लें।

बाटी के साथ खाने को जो दाल बनती उसे 'पंचमेल' दाल कहते। यानी इसमें कई प्र की दालें मिला दी जातीं। विभिन्न प्रकार के छौंक दिये जाते, जिनकी सुगन्ध बहुत लुभावनी होती।

दरअसल, दालबाटी का आरम्भ बहुत पहले तब हुआ था, जब अधिकतर यात्राएँ पै ही होती थीं। यात्री किसी जोहड़ या तालाब में स्नान करके कपड़े सूखने को डाल देते। छ के नीचे चबूतरे पर बैठ कर यात्रा की थकान मिटाते। बरतनों के अभाव में किसी कपड़े धुले पत्थर पर आटा गूँथ लिया जाता। पास के गाँव से एक हाँड़ी और कुछ सामान ला वहीं गोबर के कंडों को जलाकर दालबाटी बना ली जाती।

राजस्थान के प्रिय भोजनों में हैं-खीर, जलेबी और दालबाटी। बाटी में घी खाने की लग जाती। भूरा महाराज नाम का एक ब्राह्मण युवक था। वह एक बार में आधासेर घी जाता। ये गोठें शाम को होतीं। खाने से पहले दूधिया छनती। युवक सिल-लोढ़ा लेकर पीसते रहते और मस्ती में गाते :–

"जय शंकर, काँटा न लगे कंकर,
जो पीवे उसका हो भला, जो न पीवे उसका कटे गला।
जिसने नहीं ली भंग की डली, उस लड़के से लड़की भली।"

दूध-बादाम की ठंढाई पीसी जाती। प्रायः लोग भंग मिली हुई ठंढाई पीते। नशेबा कोरी भंग की गोलियाँ 'डाम' जाते।

चार वर्ष पहले जिस पब्लिक लाइब्रेरी को बुरी स्थिति में छोड़ गया था। वह अब उन्न कर रही थी। मैंने इसके लिए कलकत्ते से कुछ रुपये इकट्ठे करके भिजवाये थे। मेरा अधिक समय यहीं बीतता। कलकत्ते के प्रवास में मुझे हिंदी, बंगला और अंग्रेजी पढ़ने का अभ्यास गया था, यहाँ आकर भी यह क्रम चालू रहा। मैंने उस समय इस लाइब्रेरी के माध्यम हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, प्रेमचंद और भगवती चरण वर्मा आदि की अने रचनाएँ पढ़ीं। शेक्सपियर के नाटकों के अलावा बंकिम, रवीन्द्र और शरत् बाबू के उपन्या के हिन्दी अनुवाद पढ़े। हिन्दी की अपेक्षा विषय-वस्तु और दृष्टिकोण की नवीनता इन मिली। मैंने बंगला और अंग्रेजी में अधिक रुचि ली। परिणामस्वरूप पिछले चालीस वर्षों बंगला के पुराने और नए लेखकों की अनेक कृतियाँ पढ़ चुका हूँ। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखकों मुझे चार्लस् डिकेंस, अलेक्जेंडर ड्यूमा, अप्टन सिकलेयर, स्टीफन ज्विग, बर्नाड शॉ और प बक की रचनाएँ बहुत ही उत्तम लगीं। आन्द्रे जीद और सार्त्र विश्व-प्रसिद्ध होने पर भी अपी नहीं कर पाए। नाटककारों में इब्सन के कुछ नाटक पढ़े। उसका 'एनिमी आफ दी पीपु मेरी दृष्टि में विश्व-साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों में एक है। कुछ साहित्यिक मित्रों की यही राय है।

अंग्रेजी के बड़े कवियों की रचनाएँ मेरे लिए दुर्बोध थी, इसलिए मैं उनकी गहराई में नहं जा सका।

घूमना, खाना और पढ़ना बस यही कार्यक्रम था, सरदारशहर में। कभी-कभी पड़ोस बालकों को बुला लेता। उन्हें 'गुलीवर ट्रेवेल्स' या 'राबिन्सन क्रूसो' की कहानियाँ सुना करता। वे सब बड़े खुश रहते क्योंकि रामायण, महाभारत एवं विभिन्न पौराणिक कहानि से इनमें नवीनता मिलती। मुझे इस प्रकार की बैठकों से लाभ ही हुआ। मेरा समय बेका नहीं बीतता और अनजाने में ही अभिव्यंजना की शैली मँजती जाती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो महीने कितनी जल्दी बीत गए पता ही नहीं चला । एक दिन अचानक भाई जी का तार मुझे बुलाने के लिए आया । पड़ोसी मित्र श्री राधाकृष्ण मुरारका के साथ रवाना हो गया । साथ में छोटे भाई सत्यनाराण को ले लिया । उस समय वह आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था, उम्र थी तेरह साल । तय हुआ कलकत्ते में पढ़ाई की व्यवस्था कर दी जाय ताकि अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास और कालेज की पढ़ाई हो सके ।

रास्ते में हम दो दिन बनारस रुके । यहाँ मैं प्रथम बार आया था । गाँव-घर के बड़े-बूढ़ों से काशी के महात्म्य की बातें बचपन से सुनता आ रहा था । एक उत्सुकता थी इसे देखने की । हम दशाश्वमेध घार्ट की एक धर्मशाला में ठहरे । अस्सी से वरुणा तक नाव में घूमें । गंगा के घाट और किनारे पर बने मकान व मंदिर बड़े आकर्षक लगे । मंदिरों के कलशों पर पड़ती सूर्य की किरणों की छटा बहुत ही निराली थी । घाटों पर स्त्री, पुरुष, बच्चें, साधु-संन्यासी स्नान-ध्यान, पूजन कर रहे थे । घण्टों की ध्वनि बीच-बीच में सुनाई पड़ जाती थी । गंगा मद्धिम गति से बह रही थीं । हजारों वर्षों से हिमालय की यह अलबेली बेटी भारत की संस्कृति का स्रोत रही है । इसके निर्मल और पवित्र जल की महिमा को संतों और कवियो ने मुग्ध होकर गाया है । हमने श्रद्धा से गंगाज़ल का आचमन कियां । मुझे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध कविता 'गंगावर्णन' की ये पंक्तियाँ याद हो आई–

"नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति ।।

* * * *

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ।।

* * * *

मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ।
बेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ।।
दीठि जहाँ जँह जात रहत तितही ठहराई ।
गंगा छबि 'हरिश्चंद' कछू बरनी नहि जाई ।।"

अस्सीघाट पर वह पावन स्थली देखी जहाँ तुलसीदासजी प्रतिदिन मानस का पाठ करते थे । उनकी पादुकाएँ रखी थीं । जिस नाव में वे गंगा पार प्रतिदिन जाया करते थे, उसका एक अंश देखा । इन्हें देखते समय मैं मानों खो-सा गया । कितने महान विचारक थे तुलसी ! मानस की रचना कर उन्होंने एक ऐसा नायक जनता के सामने रखा जिसने अपने समय की सबसे बड़ी शक्ति से टक्कर ली । क्या था राम के पास ? अस्त्र-शस्त्र, सुसज्जित सेना, रथादि कुछ भी तो नहीं । उनकी सेना वानरों भालुओं की सी थी, जो उस समय के नर की कोटि से शिक्षित में थे या नहीं, यह भी संदिग्ध था । उनके आचरण, तौर-तरीके देखकर लोग उन्हें 'वानर' भल्लुक आदि कहते । ऐसे असंस्कृत और अशिक्षित साथी थे, फिर भी राम विजयी हुए संगठन, स्नेह, विश्वास, मैत्री और साहस का सुन्दर समन्वय था इस जननायक में । निःसन्देह तुलसी ने रावण के शासन जैसे अत्याचारपूर्ण मुगल शासन से पीड़ित निराश जनता में राम के चरित्र द्वारा आशा, उत्साह और साहस का मन्त्र फूँककर जनजीवन में क्रांति का संचार किया था । भारतीय जनता में आत्मविश्वास जगाया था ।

इसके बाद कुछ समय तक हरिश्चन्द्र घाट पर हम खड़े रहे । राजा हरिश्चन्द्र को खरीदनेवाले डोम के वंशधरों का मकान अब भी इस घाट पर है । हजारों वर्षों से आस-पास और दूर-दूर के शव दाह-संस्कार के लिए यहाँ लाये जाते हैं । काशी में शरीर का गति पा लेना मोक्ष-प्राप्ति माना जाता है । उसी डोम के वंशज आज भी शुल्क के अधिकारी हैं । हमारे देश

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में सत्य और कर्तव्य पालन के लिए कितना कठोर त्याग राजा से रंक तक सभी करते थे। घाट है, जहाँ सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल के दास के रूप में रानी तारामती से लाड़ले पुत्र रोहिताश्व की दाह-क्रिया के लिए शुल्क माँगा। महारानी के पास कानी-कौड़ी न थी। उसे अपने साड़ी का आधा हिस्सा फाड़ कर शुल्क रूप में देना पड़ा। बचपन में पढ़कर नाटकों में देखकर कितनी बार रोया था, आज भी आँखे भर आईं।

मणिकार्णिका घाट पर हमने स्नान किया। पण्डों ने वहाँ खड़ी एक गाय की पूँछ पकड़ा दी और गोदान के लिए कहने लगे। इनके बारे में काफी सुन रखा था, इसलिए उसके चक्कर में नहीं आये। वहाँ से विश्वनाथजी दर्शन के लिए चल पड़े।

बहुत ही सीलभरी और संकरी गलियों से गुजर कर मंदिर जाना पड़ता है। चारों ओर बदबू और कीचड़। बीच-बीच में कहीं साँड़ बैठे मिल जाते हैं तो कहीं गाएं सींग हिलाती नजर आ जाती है। भिखमंगों की कतार दोनों ओर बैठी रहती हैं। पण्डों से पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता है। किसी तरह हम पहुँचे मन्दिर में। इसका गर्भगृह बहुत ही छोटा है। शिवलिंग पर दूध, विल्वपत्र और फूलों का ढेर लगा हुआ था। इधर-उधर फर्श पर कीचड़ और फूल-पत्ते जो यात्री पण्डों को साथ ले जाते, वे किसी प्रकार ठेलम-ठेल करके भीतर घुस जाते। मुझे डर लगता था कि कहीं फिसल न जाऊँ, कहीं छोटा भाई छूट न जाये बचपन में विश्वनाथ जी की महिमा सुनी थी। यहाँ आकर ऐसे लगा कि या तो वे सब बातें गलत थीं या हम किसी दूसरी जगह पर आ गये है। फिर भी संस्कारवश मैंने माथा टेक दिया। मन्दिर के पास एक कुँआँ है नाम ज्ञानवापी, ज्ञान का कुआँ।

इसी से सटे दूसरे आँगन में एक बहुत बड़ी मसजिद देखी। नीचे के हिस्से की बनावट सर्वथा भारतीय स्थापत्य शैली की है। पहले यही मूलतः विश्वनाथ का मन्दिर था। औरंगजेब ने तुड़वाकर मसजिद बनवा दी। आज भी इसकी दीवालों पर हिन्दू कलाकृतियाँ हैं। मुझे यह बताया गया कि औरंगजेब ने जब मन्दिर को तुड़वाना शुरु किया तो ज्ञानवापी में समा गये ताकि उन्हें म्लेच्छ अपवित्र न कर सकें। बात कुछ भी हो, पंडों ने जरूर शिवलिंग को ज्ञानवापी में डूबा दिया होगा। सोचने लगा कि मन्दिर को गिराने में मुसलमान थे, पर मसजिद खड़ा करने में तो हिंदू कारीगर-मजदूर जरूर लगे होंगे। काशी हिन्दुओं की संस्कृति और सभ्यता का केन्द्र चिरकाल से रही है। कहाँ गए सैकड़ों-हजारों पंडे, राजे-रजवाड़े, राजपूतवीर, त्यागी ब्राह्मण और धनी वैश्य? सबके सब इस परम पवित्र मंदिर को नहीं बचा सके? योरोप में ईसाइयों ने कई सदियों तक धर्मयुद्ध (क्रुसेड) कर हजारों मील की दूरी पर स्थित यरूशलम के अपने महातीर्थ को दुर्धर्ष मुसलमानों से मुक्त करा लिया था। इसके लिए उन्हें तीन सौ वर्षों के लम्बे अर्से तक लाखों व्यक्तियों का बलिदान करना पड़ा। हम हिंदू अपने ही देश में खड़े-खड़े सर्वनाश का तमाशा देखते रहे। मुहम्मद गजनवी ने सन् १०२४ में सोमनाथ को लूटा। वाद के सात सौ वर्षों की लम्बी अवधि तक हिंदू जाति न चेत पायी और न संगठित हो सकी। कितने साधु, सन्त और महात्मा हो गए। भजन-पूजन का पाठ पढ़ाया, पर संगठन और धर्म की रक्षा के उपाय नही बताया। हमें यही सिखाया गया कि कुँए में कूदकर धर्म की प्राप्ति होती है। बड़ी ग्लानि हुई। आजतक उसे भूल नहीं पाया।

दूसरी रात हम कलकत्ते के लिए रवाना हो गए। बनारस कैंट से गाड़ी जब काशी स्टेशन पर पहुँची तो देखा, छोटा भाई सत्यनारायण साथ में नहीं है। हम दोनों को काटो तो खून नहीं। रोने लगे, घरवालों को क्या जवाब देंगे? बनारस जैसी जगह, ठगों और उच्चकों से भरी, हमारे लिए बिल्कुल नयी। पास में पैसे भी कम। कहाँ जाएँ, कहाँ ढूढें? व्याकुल होकर दादाजी के वताए मुताविक 'राम' का नाम जोर-जोर से लेने लगे। वे वरावर कहते थे कि संकट के समय सच्चे मन मे भगवान् का स्मरण किया जाय तो कष्ट निवारण अवश्य होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुझे अच्छी तरह याद है, सब कुछ भूल गया था। आँखों से आँसू बह रहे थे, और मैं 'राम राम' कह रहा था। इसके बाद कभी मैंने उतने भक्तिभाव से 'राम' कहा है कि नहीं, मुझे याद नहीं। घबराए हुए वापस बनारस कैंट स्टेशन पर आए। देखा, सत्यनारायण एक बेंच पर गहरी नींद सोया है। हम टिकट लेने की जल्दीबाजी में थे, उसे नीद आ गई थी। गाड़ी आई और हम बैठ गए। हमने समझा कि वह भी बैठ गया है। उसे उठाकर छाती से लगाया, अगली ट्रेन से रवाना हो गए।

कलकत्ता पहुँच कर सत्यनारायण को सारस्वत क्षत्रिय विद्यालय में दाखिल करा दिया। मैं अपने काम में लग गया।

देश में राजनीतिक परिस्थितियों का नया दौर था। उन दिनों आम तौर पर राजस्थानी राजनीति से अपने को विरत रखते। सम्भवतः कारण यह रहा होगा कि राजस्थान के अधिकांश क्षेत्र में देशी रियासतें थीं। इनके शासक ब्रिटिश राज के प्रति भक्त थे और उनके विरूद्ध आचरण को राजद्रोह मानते। प्रवासी राजस्थानियों में अधिकतर व्यापारी वर्ग के थे जो अपने घर और व्यापार की दृष्टि से खुले तौर पर राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने में हिचकते। फिर भी सहानुभूति थी और मौके पर वे आर्थिक सहायता दिया करते। हमारे देश में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ गांधीजी ने सामाजिक क्रान्ति का अभूतपूर्व तरीका अपनाया। इससे पहले भारतीय चिन्तकों ने विशेषतया धर्मपक्ष में क्रांति प्रस्तुत की। स्वामी विवेकानंद एवं दयानंद ऐसे विचारक हुए जिन्होंने भारतीय जन-मानस में धार्मिक क्रांति के साथ राष्ट्रीयता की भी भावना जगायी। गांधीजी के समर्थ नेतृत्व ने इसे आगे बढ़ाया। उन्होंने छूआ-छूत, पर्दा, अशिक्षा और जाति-पाँति के भेद-भाव के विरूद्ध जनसाधारण को जगाकर राजनीतिक स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया।

मैं भी सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों पर सोचता। अन्तर्मन बारम्बार कहता समाज और देश के प्रति मेरा भी कोई कर्तव्य है। सारे देश में लोग खुशी-खुशी जेलों में जा रहें थे, महिलाएँ और बच्चे तक जहाँ-तहाँ कानून की अवज्ञा कर नमक बनाने जाते। स्कूल कालेज के युवकों में काफी जोश था। न जाने कब और कैसे नमक बनाने वालों के साथ मेरा सम्पर्क हुआ। कौतूहलवश मैने भी नमक बनाया। लगा, जैसे बहुत बड़ी सफलता मिली। मैं बिना किसी से कुछ कहे प्रायः निकल पड़ता।

हमारा केन्द्र था, कलकत्ते से पाँच-छः मील दूर महेशवाथान के निर्जन स्थान में। आजकल यहाँ दमदम हवाई अड्डे की व्ही० आई० पी० रोड है। बड़े चाव से नमक बनाते, पर रंग मैला रहता। इसे पुड़िया में बाँध कर ले आते और मित्रों को दिखाते। आपस में कहते, हम अपना नमक खाते हैं, अंग्रेजों का नहीं।

बातें छिपती नहीं, सरदारशहर हमारे घर खबर पहुँची कि सत्यनारायण छात्रों के नमक बनाने वाले दल में शामिल हो गया है। राजनीतिक जागृति से अछूते लोगों में भय अथवा आतंक के लिए इतनी सूचना ही यथेष्ट थी। बीकानेर रियासत में तो राजनीतिक नेताओं और उनकी कार्यवाहियों का दमन बड़ी क्रूरता से हुआ करता। चूरू के स्वामी गोपाल और भादरा के श्री खूबचन्द सराफ ने बीकानेर के तत्कालीन राजा गंगासिंह के गोलमेज कान्फ्रेन्स में शामिल होने के समय उनकी शासन नीति के खिलाफ लन्दन में पर्चे बँटवाए थे। राजा ने इंग्लैण्ड से वापस आकर इन दोनों कार्यकर्ताओं और उनके साथियों को जो दारुण दण्ड दिए, उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते। कलकत्ते का समाचार पाकर दादा जी बहुत चिन्तित हुए। पिछले पच्चीस वर्षों से कारोबार से मुक्त होकर भजन-ध्यान में समय बिताते थे। बच्चों के प्रति मोह उभड़ना स्वाभाविक था, वे कलकत्ते चले आए। याद है, जब हम चरण छूने लगे, उनकी आँखे गीली हो आईं। कहने या समझने की जरूरत रही नहीं। मन ही मन सब बातें हो गईं। वे सत्यनारायण को अपने साथ देस ले गये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नमक बनाया जरूर, मगर अपने व्यापार व्यवसाय में मैने ढिलाई नहीं की। उस
मुस्तैद ही रहा। एक अन्तर जरूर आ गया कि मेरे मन में अनायास समाज सुधारकों और
के प्रति श्रद्धा की भावना विकसित होने लगी।

असहयोग आन्दोलन के बाद ही कलकत्ते के राजस्थानी युवकों ने समाज-सुधार के
प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। पहले जहाँ मारवाड़ी समाज में केवल धार्मिक चर्चा होती,
अब बौद्धिक और शारीरिक-चर्चा पर भी लोगों का ध्यान गया। इनके द्वारा संगठित कई
छोटी-बड़ी संस्थाएँ सामाजिक सेवा कार्य कर रहीं थीं। बड़ा बाज़ार युवक-सभा
संचालित अखाड़े की स्थापना हो चुकी थी। मारवाड़ी युवक भी यहाँ व्यायाम करते, कु
लड़ते और लाठी चलाने का अभ्यास करते।

उन दिनों मारवाड़ियों में ही नहीं, बल्कि समस्त सवर्ण हिन्दुओं में विधवा-विवाह
सामाजिक अपराध अथवा पाप समझा जाता था। छोटी उम्र में विवाह हो जाते। कभी-क
तो बारह-चौदह वर्ष की बालिका विधवा हो जाती। यहाँ तक देखा गया कि इन्हीं विधवा
के पिता व श्वसुर ४०-४५ वर्ष की अवस्था में विधुर होते तो अपना पुनर्विवाह कर लेते। मे
जान-पहचान के एक सज्जन का बाईस वर्ष का विवाहित पुत्र चल बसा। उनके यहाँ मिल
गया। देखा, धाड़ मार-मार कर रो रहे थे। तीन-चार महीने बाद उनकी पत्नी का देहावस
हुआ। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने अपना विवाह कर लिया जब कि जवान विधवा पुत्र-वधू
में बैठी थी।

कभी-कभी किसी युवा विधवा के अपने ही किसी सम्बन्धी से गर्भ रह जाता। परिवार
लोग उस व्यक्ति को तो कुछ नहीं कहते। बेचारी विधवा की जान साँसत में पड़ती। चा
ओर से लांछन और तानों की बौछार। लोक-लज्जा और कुल कलंक के भय से तीर्थयात्रा
बहाने हरिद्वार अथवा किसी दूसरे शहर में गर्भ-पात कराया जाता। बहुधा अभागि
आत्मदाह कर लेतीं, या घर से निकल जातीं, धर्म परिवर्तन अथवा घृणित जीवन के लि
बाध्य होतीं।

सन् १९२९ में गाँधीजी ने हरिसन रोड में 'शुद्ध खादी भंडार' का उद्घाटन किया। बड़
बाजार अंचल का भार श्री सीताराम सेक्सरिया एवं श्री महावीर प्रसाद पोद्दार को सौं
गया। ये दोनों बड़ा बाजार के युवकों के नेता थे। उनकी संगठन शक्ति, कर्मठता और सादगी
बेजोड़ रही है। इन्हीं दिनों इन दोनों से मेरा परिचय हुआ जो उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

खादी भंडार हमारे घर के पास ही था। काम-काज से फुरसत पाकर शाम को वहाँ चल
जाता। ग्राहकों को स्वेच्छा से कपड़े दिखाता। बीच-बीच में पोद्दार जी से सामाजिक और
राज़नीतिक चर्चाएं भी होतीं। सीताराम जी ने उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन और खादी पर
छोटी-छोटी बीसियों पुस्तकाएँ प्रकाशित कीं।

नमक-सत्याग्रह सब जगह होना सम्भव नहीं था। बरसात शुरू हो गई थी। इसलिए दे
के बड़े-बड़े शहरों में मद्य-निषेध और विदेशी वस्त्र बहिष्कार के कार्यक्रम बने। सूतापट्टी में
सत्याग्रह करते हुए श्री पुरुषोत्तम राय, सीताराम सेक्सरिया और बसंतलाल मुरारका पकड़े
गए और इन्हें कारावास मिला। मारवाड़ी महिलाओं ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया।
इसके थोड़े समय बाद ही लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेंस हुई और गांधी-इरविन समझौता होते
ही कुछ समय के लिए आन्दोलन शिथिल पड़ गया।

राजनीति के साथ-साथ राजस्थानी-समाज सामाजिक-प्रगति भी करता जा रहा था।
मारवाड़ी-सम्मेलन, मारवाड़ी-अग्रवाल-महासभा और अग्रवाल पंचायत नाम की संस्थाएँ
काम कर रहीं थीं। माहेश्वरियों में भी दो विभिन्न विचारों की प्रतिस्पर्धी संस्थाएँ थीं।
माहेश्वरी महासभा और माहेश्वरी पंचायत। इधर ओसवालों में श्री संघ और विलायती का
झगड़ा और भी जोरों से हो रहा था। यहाँ तक कि बहन-बेटियों को ससुराल से पीहर नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भेजा जाता। मुर्शिदाबाद के एक समृद्ध परिवार के दो ओसवाल युवक विलायत में रहने लगे थे। वे एक बार कलकत्ता आए। उन्होंने जाति में शामिल होने के लिए बहुत आरजू मिन्नत की। यहाँ तक कि जनसमुदाय के सामने पंचों के जूते तक अपने सिर पर उठा लिए मगर हठधर्मी पंचों ने उन्हें जाति में शामिल नहीं किया। फिर भी उनके कुछ निकट संबंधियों और सुधारक प्रवृत्ति के लोगों ने इस परिवार से अपना संबंध कायम रखा। इन लोगों के दल का नाम पड़ा 'विलायती' जब कि रूढ़िवादियों का दल कहलाया श्रीं संघ।

यद्यपि मैं राजनीति में तो भाग नहीं लेता था, परन्तु सामाजिक कामों में थोड़ा-बहुत हिस्सा लेने लगा। उन दिनों मारवाड़ी समाज में मृतक-विरादरी भोज हुआ करते। नई पीढ़ी ने इसे अनावश्यक और अपव्यय माना। मारवाड़ी सम्मेलन ने निश्चय किया कि अगर समझाने पर भी कोई नहीं माने तो वहाँ पिकेटिंग की जाय। इन स्वयं-सेवकों में मैंने भी अपना नाम लिखा दिया। जब मेरे दादा श्वसुर के देहान्त पर मृत्यु-भोज का आयोजन हुआ तो उसके विरुद्ध हुई पिकेटिंग में मैं भी गया।

सही बात यह है कि हम लोग लोग आर्थिक संघर्ष में इतना जूझ रहे थे कि मैं इस प्रकार के आयोजनों में अधिक भाग नहीं ले पाता था।

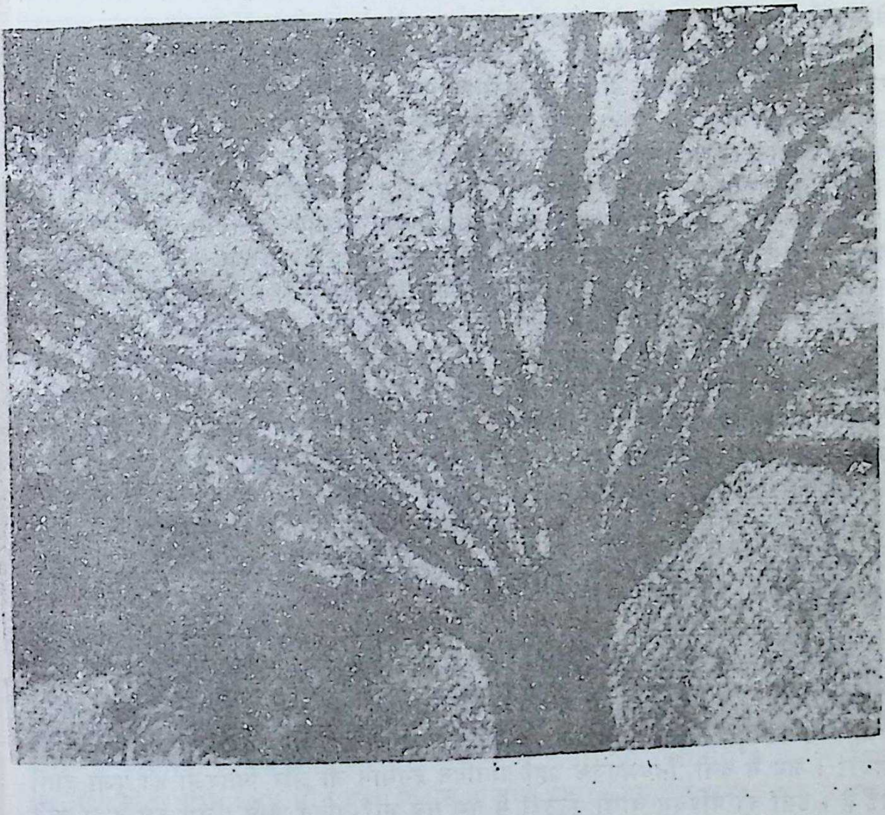

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करा जिसने फाटका, घर का रहा न घाट का

सन् १६३१ में देश में मंदी का दौर आया। सभी चीजों के भाव अनाप-शनाप गिरने लगे। पाट के वायदे व्यापारियों में हमारी फर्म के पन्द्रह-बीस हजार रुपये डूब गए। कुछ घाटा मुझे अपने निजी सौदे में भी हुआ। हमारे लिए यह एक बहुत बड़ा आघात था। पछतावा होता कि मैं क्यों फाटकामें पड़ा। लोभ का संवरण बहुत थोड़े लोग ही कर पाते हैं। मैं देखता कि बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति फाटका करते हैं और उससे धन कमाते हैं। इसकी जोखिम आँखों के सामने तब आती है जब सौदा उल्टा पड़ने लगता है और भारी घाटा सामने आकर भुगतान के लिए मुँह खोल देता है। इतना सब जानते-समझते अब भी फाटका कर बैठता हूँ। लाखों रुपये मैंने इसमें खोये। मन में चिन्ता बनी रहती है सो अलग। सही बात तो यह कि मुझे फाटका करना आता ही नहीं। धैर्य खो बैठता हूँ, संतुलन बिगड़ जाता है। घाटे में बैठा रहता हूँ जबकि थोड़ा नफा होने पर सौदा बराबर कर देता हूँ। सुविख्यात अमरीकी लेखक एवं धनिक डेल कार्नेगी की इस विषय पर मैंने पुस्तक पढ़ी। उसमें बताए सिद्धान्त से मेरी प्रणाली सर्वथा विपरीत है। मनुष्य की स्वयं की दुर्बलता उसकी पराजय का सबसे बड़ा कारण होती है। उन दिनों श्री जुगलकिशोर बिड़ला और श्री गंगावख्श कानोड़िया का नाम फाटका के सफल सौदागरों में था। उन्होंने शायद ही कभी घाटा दिया हो। हानि होते ही वे सौदा बराबर कर देते।

बाजार में रुपए डूबने और फाटके में घाटा होने की वजह से हम फिर एक बार संकट के गम्भीर आवर्त में पड़ गए। हमें लगा, चुकता भुगतान नहीं कर पाएंगे। आज भी याद है हम दोनों भाई दो-तीन रात नींद नहीं ले सके। कोई सहारा नजर आया। कई रिश्तेदारों के यहाँ गए। सब जगह ज्ञान और उपदेश मिले, रुपयों की जगह मिला नकारात्मक उत्तर।

जण-जण रो जाये, अपणों दुख कहणों नहीं
काढ़ न देवे कोय, रीरायाँ स्यूँ राजिया।

ठीक बात है, जने-जने का मुख जोहते हुए अपना दुख कहने मे कोई गाँठ से काढ़ के देता नहीं, भले कितना ही गिड़गिड़ा लो।

पाँचों उगलियाँ एक सी होती। 'श्री केदारनाथ रामनाथ बाजोरिया' से हमें पाँच हजार रुपए मिले यद्यपि इनसे हमारी साधारण-सी जान पहचान थी। बचे हुए दस हजार के लिए ऐसा सोचा गया कि देस की अपनी हवेली बेच दें। जब दादीजी को इस बात का पता चला तो वे बहुत उदास हुईं। कहने लगीं कि तुम्हारे दादाजी ने बड़े मन और साध से यह हवेली बनवाई। जब से बनी, नियमपूर्वक यहाँ प्रतिदिन हनुमान जी और पितरजी की पूजा होती आई है। इसी की पश्चिम वाली कोठरी में तुम सब भाई-बहिन जन्मे। सुख-दुख के न जाने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कितने क्षण इसमें बिताए। और सौ उपाय करो, मगर रहने के घर को न बेचो। इसकी ईंट-ईंट से आत्मीयता हो गई है। चालीस वर्ष पहले बहू बन इस हवेली में आई थी, मेरी आन्तरिक इच्छा है कि तुम लोगों के हाथों में अन्त समय यहीं से निकलूँ। उनकी बातों का उत्तर हम क्या देते ? हमारी आँखे भर आई। एक सप्ताह के अंदर ही रुपयों की व्यवस्था तो करनी ही थी। तीन सौ तोला सोना घर से निकाल कर बेचना पड़ा। उन दिनों भाव था। चालीस रुपए तोला। दादीजी और माताजी ने अपने पास का सब कुछ दे दिया। जब बहुओं को पता चला वे सबसे आगे आईं। स्त्रियों को आभूषण का अत्यन्त मोह होता है, परन्तु परिवार के संकट के समय अपना सब कुछ उत्सर्ग कर देती हैं। मैंने देखा पत्नी और भाभी के चेहरे पर जरा भी उदासी नहीं थी।

बाजार के लिए भुगतान की व्यवस्था हो गई और हम अपनी प्रतिष्ठा बचा पाए। मुसीबत अकेली नहीं आती। इन घटनाओं का असर मेरे मन पर पड़ा। कभी विधि के विधान पर क्षोभ आता और कभी अपनी दुर्बलताओं पर खीझ उठता। यह भी सोचता, न कोई शौक की, न फिजूलखर्ची। किसी का पैसा दबाया नहीं, न किसी को कोई कष्ट दिया, फिर यह कैसा दण्ड ?

मुझे हल्का सा ज्वर रहने लगा, खाँसी के साथ कभी-कभी कफ से खून भी आ जाता। परिवार में चिन्ता होनी स्वाभाविक थी। कई डाक्टरों को दिखाया। तरह-तरह की राय देते। उन दिनों डा० बिधानचन्द्र राय कलकत्ते के माने-जाने चिकित्सक थे। बाद में वे बड़े नेता और पश्चिम बंगाल के मुख्य मन्त्री बने। उन्हें घर पर बुलाकर सलाह ली गई। क्षय की प्रारम्भिक अवस्था थी। डाक्टरों की राय थी कि मुझे तुरन्त कसौली या भवाली के सेनेटोरियम में भरती करा दिया जाय। उस समय क्षय को दुस्साध्य माना जाता था। अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण इसे राजरोग कहते। प्रारम्भिक स्थिति में अच्छी चिकित्सा और पौष्टिक खुराक से यह काबू में आ जाता था। कई चिकित्सालयों से तखमीना मँगाया गया। मासिक खर्च पड़ता लगभग तीन सौ रुपए जो हमारी सामर्थ्य के बाहर था। तय हुआ राजस्थान की सूखी हवा में जाकर आयुर्वेदिक चिकित्सा करायी जाय।

सुप्रसिद्ध वैद्य स्वामी लच्छीरामजी की राय लेने कलकत्ता से सीधा जयपुर गया। साथ में परिचारक का प्रश्न ही नहीं था। बीमारी की उस दशा में यात्रा भी तीसरे दर्जे में हुई। संयोग से हमारे एक बहुत निकट के सम्बन्धी सपरिवार कलकत्ता से स्वामीजी के पास चिकित्सा के लिए गए हुए थे। मैं उन्हीं के पास जाकर ठहरा। उन्हें शायद मेरी बीमारी की भनक पहले ही पड़ गई थी। उनके व्यवहार से मुझे आभास हुआ कि मेरा अप्रत्याशित रूप से और इस बीमारी को लेकर पहुँच जाना उन्हें अच्छा नहीं लगा। धीरे-धीरे कानाफूसी होने लगी। हाँलाकि केवल बाईस साल का था परन्तु दुनिया के उतार-चढ़ाव बहुत-कुछ देख चुका था इसलिए उनके कुछ कहने के पहले ही मैंने स्पष्ट कर दिया था कि भाईजी शाम की गाड़ी से आ रहे हैं। उनके साथ घर जाने को आया हूँ। उसी दिन शाम को भाईजी आ गए और हम लोग सरदारशहर चले गए।

यहाँ कई अच्छे वैद्य थे। उनका निदान यह रहा कि मुझे रक्त-पित्त हो गया है। यदि क्षय है भी तो प्रारम्भिक अवस्था में। गरमी का मौसम था। सूखी हवा चलती। हमारे पड़ोसी रांसी नीलगर के यहाँ से एक बकरी मँगवाकर नीचे सफे (तलघर) में बाँध ली और वहीं बालू-रेत पर पानी का छिड़काव कर मेरा पलँग डाल दिया गया। औषधि के रूप में मृगांक रस और मोती भस्म शहद और अडूसे के रस के साथ दोनों समय लेने लगा, ऊपर से बकरी का दूध पीता। आयुर्वेद की मान्यता है कि बकरी की गन्ध और दूध के साथ उपरोक्त औषधियों के नियमित सेवन से क्षय दूर हो जाता है। मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया, चमत्कारिक लाभ हुआ। दो महीने में ही ज्वर और खून बन्द हो गया। वजन भी चार-पाँच सेर बढा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शरीर में स्फूर्ति मालूम देने लगी ।

आयुर्वेदिक उपचार के प्रति उस समय मेरे मन में जो विश्वास जमा, वह आजतक है। वस्तुतः चरक और सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित आयुर्वेद की पद्धति को हम पाश्चात्य की चकाचौंध के कारण वह महत्व नहीं दे पाए, जो हमें देना चाहिए । एलोपैथी हम पर हावी बन बैठी है। जलवायु,साधन और औषधियों की प्रतिक्रिया पर गम्भीर अनुशीलन नितांत आवश्यक है। आयुर्वेद के सस्ते उपचार की उपेक्षा कर हम एलोपैथी के पीछे भाग रहे हैं । स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय सरकार ने आयुर्वेद को प्रोत्साहन तो दिया है, किन्तु जनता इसे छोड़ती जा रही है। आज वैद्यों को डाक्टरों से कम महत्व दिया जाता है, इसलिए वे भी अपने उत्तराधिकारियों को आयुर्वेद की शिक्षा न दिलाकर 'एलोपैथी' ही पढ़ाते हैं ।

बकरी की सार-सँभाल और चारा-पानी घासी की स्त्री और बच्चे करते । जब हम ने दूध के दाम देने लगे तो बहुत नम्रतापूर्वक उसने नाहीं कर दी, बल्कि यह कहा कि हम तो आपके पुण्य-प्रताप से कमाते खाते हैं । मैं अपने इस पड़ोसी गरीब मुसलमान की उस सम्पन्न सम्बन्धी से तुलना कर रहा था । मित्र कौन है ? सम्बन्धी किसे कहते हैं ? समभावना, सद्भावना सहानुभूति के बन्धन को जो न समझे, न माने, उसके साथ सम्बन्ध का तात्पर्य क्या हो सकता है ? हितैषी की परख तो समय पर होती है ।

"कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहुरीत ।
विपति कसौटी जे कसे, वही सांचे मीत ।।"

कई बार अपने उन सम्बन्धी से कलकत्ते में मिलने का संयोग हुआ । वे कुछ झेंपते भी। यह बहुत बाद की बात है जब हम आर्थिक दृष्टि से उनसे आगे बढ़ गए थे ।

कलकत्ते वापस लौटा नया जीवन लेकर । मन में निश्चय था कि कठोर परिश्रम कर पिछले घाटे की पूर्ति करूँगा । काम में उत्साह के साथ जुट पड़ा । कुछ ही दिन बीते होंगे कि एक दिन आफिस के बड़े साहब ने मुझे बुलाया । मैंने सोचा था कि मेरे काम से शायद प्रभावित हुए हैं । मुझे तरक्की मिलेगी । उनके चेम्बर में गया । मुझे देख कर कुछ गम्भीरतापूर्वक उन्होंने कहा कि अगले महीने से कोई दूसरा काम ढूँढ़ लो । मैं अवाक् रह गया । न कुछ पूछ सका और न कह पाया । इस अप्रत्याशित आदेश से मेरी आँखों के सामने अँधेरा सा छा गया । चुपचाप बाहर आया ।

पिछले छ-सात वर्षों से इस फर्म में जी-जान लगाकर मैं परिश्रम कर रहा था । सब लोग मेरे काम और व्यवहार से सन्तुष्ट और प्रसन्न थे । ऐसा क्या कारण बना ? चिन्ता अलग मता रही थी । कर्ज अभी तक सर पर लदा है । काम छूट जाने पर समस्याएँ बढ़ेंगी । कम्पनी ने अलग कर दिया, इससे बाजार में बदनामी होगी । बड़े साहब से तो बातें करने की हिम्मत नहीं हुई किन्तु छोटे साहब और मानवबाबू के पास गया । उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा कि तुम्हारी कोई गलती नहीं, कम्पनी के बड़े बेनियन श्री सिपानी तुम्हें नहीं चाहते । साहब लोगों से हिलमिल जाने और बाजार में व्यापारियों से भी अच्छे सम्बन्ध हो जाने के कारण उसे अन्देशा हो गया कि आगे चलकर इस फर्म की बेनियनशिप उनके परिवारवालों को न मिलकर कहीं तुम्हें न मिल जाय । उस समय श्री सिपानी का इतना रोब था कि किसी को भी इस अनुचित आदेश को बदलवाने का साहस नहीं हुआ ।

खिन्न मन से घर आ गया । परिवार में उदासी छा गयी । विपत्ति की कल्पना ही शायद सबसे बड़ी विपत्ति है । जब तक सोचता रहा, परेशानी रही । हम दोनों भाइयों ने अपनी स्थिति का अनुशीलन किया । पूँजी थी नहीं, नौकरी भी गयी । अपनी फर्म को बहुत बड़ा घाटा अभी हाल ही में लगा था । पाट के सिवा और किसी व्यापार का व्यवहारिक अनुभव था नहीं । पिछले कर्ज भी उतारने थे, परिवार का व्यय तो रोजमर्रे की बात थी । इतने वर्षों के हमारे संघर्ष में अनुकूल स्थिति के सिर्फ यही बनी कि भाईजी नौकरी पर थे. घर का खर्च हम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तत्कालिक रूप में किसी प्रकार चला लेते ।

हम दोनों ने तय किया कि निराश न होकर पिछले सात वर्षों में पाट के व्यवसाय में जो अनुभव प्राप्त किया है और बाजार में साख है ही, इस आधार पर कोई स्वतन्त्र उद्योग करना चाहिए । चेष्टा शुरू कर दी । दो-तीन दिन बाद ही हमारे परिचित पाट के एक व्यापारी 'डेडराजजी भरतिया' ने हमें बुलाया और कहा कि तुम दोनों भाई हमारे यहाँ आ जाओ और पाट की बेलिंग (गाठ बाँधने) व दलाली का काम शुरू कर दो । चार आना हिस्सा तुम लोगों का रहेगा, तुम पर हमारा पूरा विश्वास है ।

शुभ मुहूर्त देखकर हमने 'डेडराज भरतिया' के नाम से काम शुरू कर दिया और वायदे की दलाली का अपना काम पूर्ववत् चालू रखा । उसमें भी कुछ अनभव हो गया था । अतएव अब हम अच्छे व्यापारियों को ही सौदा कराते । इससे हमें अतिरिक्त आय हो जाती ।

आँकड़ों के अध्ययन की रुचि मुझे शुरू से ही रही है । जे० टामस बहुत बड़ी कम्पनी थी । उसमें रहने के कारण पाट के आंकड़ों का अनुभव और भी वढ़ा पाया । हमने वायदा बाजार के अपने फर्म से पाट की मासिक रिपोर्ट प्रकाशित करनी शुरू कर दी । इसे मिलों, शिपरों (पाट के निर्यातकों) व व्यापारियों को निःशुल्क भेजते । 'विश्वमित्र'-संचालक स्वर्गीय बाबू मूलचन्द अग्रवाल का ध्यान इस ओर गया । उन्होंने मुझे अपने रविवारीय अंक के लिए जूट बाजार की रिपोर्ट नियमितरूप से लिखने की प्रेरणा दी ।

यह मेरे लेखन का प्रारम्भ था । इस सूत्र से समाचार-पत्रों के साथ मेंरा जो सम्बन्ध जुड़ा, आज तक चला आ रहा है । प्रारम्भ तो किया था व्यावसायिक रिपोर्ट से , उसके बाद सम्पादकों ने जो अपनत्व दिया और पाठकों से जो स्नेह मिला, उससे मेरा उत्साह बढ़ता गया और इन लोगों ने मुझे भी एक साधारण लेखक बना दिया ।

हमारी मासिक रिपोर्ट की ऐसी साख जमी कि उससे बाजार की तेजीमन्दी पर असर पड़ने लगा । आँकड़ों के आधार पर बाजार का हमारा विवेचन सही उतरता । हम पाट बाजार के विशिष्ट व्यक्तियों में गिने जाने लगे । उन्हीं दिनों मुझे कलकत्ता बेल्ड जूट असोशिएशन का सदस्य चुना गया । यह पाट बाजार की बड़ी और प्रभावी संस्था थी । संयोग से जे० टामस कम्पनी का बड़ा साहब भी दलालों की ओर से उसी संस्था का सदस्य था । अपनी कम्पनी की सेवा से पृथक किए गए एक सहायक (अन्डर ब्रोकर) को अपने साथ बरांबरी के दर्जे में बैठते देख उसे झेंप सी होती ।

पहले दो वर्षों में भरतियाजी की साझेदारी में हमें बारह-पन्द्रह हजार रुपयों का सालाना लाभ मिला । संयोग से तीसरे वर्ष डेढ़ लाख का मुनाफा हुआ, हमारा हिस्सा था चालीस हजार । उनके बड़े भाई 'श्री चिमन लाल भरतिया' ने हमें बुलाया और कहा "भाई तुम लोग कोई दूसरा काम देख लो ।" हमें लगा कि हमारे चालीस हजार इन्हें अखरे हैं, "पाँच-छः सौ रुपये कमाने वाले को चालीस हजार कैसे दिये जाये ।" यह बात भी उन्होंने कही । हमें बड़ी ग्लानि हुई । ईमानदारी और मेहनत का यह नतीजा ! उन दिनों पूर्वजों की चलायी व्यावसायिक परम्परा और मान्यताएँ अब जैसी शिथिल नहीं थी कि आज साझेदारी की और कल तोड़ दी—इसे बुरा और अपमानजनक मानते । साझा तभी टूटता जब कोई बेईमानी करके व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करता । हमने ऐसा कुछ किया न था । हमारा नैतिक पद मजबूत था । समाज में आलोचनाएँ उठतीं, शायद पंच भी बैठते, मगर यह सब कुछ हुआ नहीं । हमारे एक मित्र के कहने पर यह रकम तो हमें सौंप दी गई, किन्तु साझेदारी से हम अलग कर दिए गए । इन तीन वर्षों की हमारी कुल आमदनी से हमने देस का और कलकत्ते का खर्च बाद देकर ब्याज और असल के साथ कर्ज का बोझ कुछ हल्का कर दिया ।

१९२९ और १९३४ में हमारे लिए अन्तर आ गया था । अब जगह-जगह से काम के लिए आफर मिलने लगे । सत्यनारायण भी कालेज में पढ़ते हुए काम सीखने लग गया । भाई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जी के साथ उसने 'नन्दलाल पंसारी' की एक फर्म में भागीदार बनकर काम शुरू कर दि कहा जाता है साझा और सम्बन्ध बराबर का ही निभता है। फ़र्म का काम भाई जी सम्हालते, घाटे के लिए हमारी ओर से रुपये भी जमा थे। चूँकि रुपयों के मामले में हम कमजोर थे इसलिए चेक वगैरह पर सही करने का अधिकार पंसारी जी ने अपने ही रखा। लेवा-बेची के मामलों में बिना मतलब दखलन्दाजी से काम में असुविधा होती। जी को स्थिति अखरती, पर उपाय भी क्या ? वे चुप रह जाते।

मैं स्वतन्त्र रूप से पाट की दलाली करने लगा। साथ-साथ जूट-प्रेसों की दलाली का भी करता। आमतौर पर लोगों की धारणा है कि दलाली में दलाल का बनता-बिगड़ता ? दो मेढ़े लड़ा दिये और अपना काम बनाया या इसका माल उसे दिला अगला चाहे डूबे या तैरे, पर बात ऐसी है नहीं। दलाल की सबसे बड़ी पूँजी है ईमानदारी और बाजार के रुख को पहचानने की सूझ-बूझ। इसके अलावा अच्छे व्यापारियों से परिचय उसकी विश्वास-पात्रता। धोखाधड़ी करने वाला दलाल कभी पनप नहीं सकता। अच्छी साख दलाल की एकाध बार की गलती क्षम्य मानी जाती है। अपने इस व्यवसाय के समय मुझे प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए।

श्री जानकीदास शिवनारायण काजड़िया की किराने की बहुत बड़ी फर्म थी। उन्होंने हमारी सलाह से दो लाख रुपयों का पाट लिया। बीस प्रतिशत हमारा हिस्सा रखा। कुछ दिनों बाद इस सौदे में अस्सी हजार का लाभ हुआ। बाजार के रुख की हमारी पहिचान सही उतरी। हमारे हिस्से में सोलह हजार रुपये आये। इस एक मुश्त आय से हमें जितनी खुशी हुई, आज शायद सोलह लाख मिलने पर भी न होगी। सबसे पहले हमने अपने कर्जदारों को निबटाया। श्री केदारनाथ रामनाथ बाजोरिया ने हमें गाढ़े वक्त में उधार दिये थे। जब उनके पाँच हजार की रकम वापस करने लगे तो उन्होंने लिये नहीं, बल्कि धीरे-धीरे प्रेस की हमारी दलाली में पटा दिये।

इसी प्रकार श्री मुसद्दीलाल डालमिया ने भी हमें हर प्रकार की सहायता दी। ऐसे ईमानदार और उदार व्यक्ति कम ही मिलते हैं। किसी समय वे लखपति थे। धार्मिक आयोजनों में वे काफी सहयोग देते थे। हैसियन बोरों का अच्छा काम था। एक बार व्यापार में उन्हें बड़ा नुकसान लगा। जितना बन पड़ा भुगतान किया। फिर भी देनदारी रह गयी। जिसके लिए पावनेदारों को रुक्के लिख दिए। रुपयों का घाटा जरूर हुआ, पर सूझ-बूझ का नहीं। दरभंगाराज का एक जूट-प्रेस उन दिनों बिकाऊ था। दाम लगे थे पाँच लाख रुपये। पाँच हजार रुपये बयाने के देकर मुसद्दीलाल जी ने प्रेस ले लिया। पचास हजार की रकम अगली किस्त में तीन महीने बाद देनी थी। पास में कुछ था नहीं। मुझे बुलाया और कहा कि प्रेस को किराये पर देना चाहते हैं, व्यापारी की व्यवस्था करो। डालमियाजी के प्रति मेरे मन में विशेष श्रद्धा थी, उनके व्यवसाय कौशल पर मुझे भरोसा भी था। मैंने एक अच्छे व्यापारी को प्रेस दिला दिया, और किराये के अग्रिम पचास हजार दिला दिये। उन्होंने पहली किस्त निर्धारित समय से पूर्व ही चुका दी। पाँच वर्षों में वह प्रेस उनका अपना हो गया। मौके पर मुझसे कुछ सेवा बन पड़ी इसका भी अच्छा परिणाम रहा। उनका स्नेह मिला और बाजार का विश्वास।

व्यवसाय में ईमानदारी हमेशा व्यक्ति के पनपने में सहायक होती हैं, भले ही तात्कालिक लाभ न मिले। हम लोगों ने इसका विशेष ध्यान रखा। लोगों का भरोसा बढ़ने लगा। कर्ज अदा करते जाने के कारण विश्वास भी जमा और हम दूने उत्साह से काम में लग गए। भावों के उतार-चढ़ाव और उसकी संभावनाओं पर हमारे अनुशीलन व विवेचन औरों की अपेक्षा अधिक सही आते, इस कारण हमारी सलाह का महत्व भी बढ़ता गया।

१९३३ में हमने बहुत से व्यापारियों को अच्छी तादाद में तैयारी पाट खरीदवा दिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation Chennai

और बदले में वायदा लिखवा दिया । एक निश्चित ब्याज की रकम उन्हें मिल जाय, इसकी जिम्मेदारी हमने ले रखी थी । दुर्भाग्य से पाट की गाँठों में आग लग गयी । खबर सुनकर हम तीनों भांई घटनास्थल पर पहुँचे । देखा, लपटें निकल रहीं हैं । धुआँ गोल चक्कर लगाता हुआ आसमान में उठ रहा है । ऐसा लगा, मानों हजारों लपलपाती जीभों से आग हमारी तकदीर चाट रही है । लपटों.की लाल पीली रोशनी से रात के अँधेरे में भी उजाला हो रहा था, किन्तु हमारी आँखों के आगे अँधेरा छाया हुआ था, उम्मीदें धुएँ की तरह विलीन होती-सी लगीं । आग बुझाने की कोशिश चल रही थी । दमकलों के आने के पहले ही काफी माल जल चुका था । हम सोच रहे थे कि कितना नुकसान हुआ होगा, कैसे पूर्ति करेंगे ? लिखा-पढ़ी में नुक्स निकालकर शायद जिम्मेदारी से बच भले ही जावें किन्तु बाद में हमारे प्रति लोगों का विश्वास उठ जायगा । आज हमें ईमानदार और भरोसे का मानते हैं, तव कहेंगे वेईमान है, धोखेबाज़ है, आदि । अपनी औकात से ज्यादा जिम्मेदारी क्योंली?काम कौन देगा ?

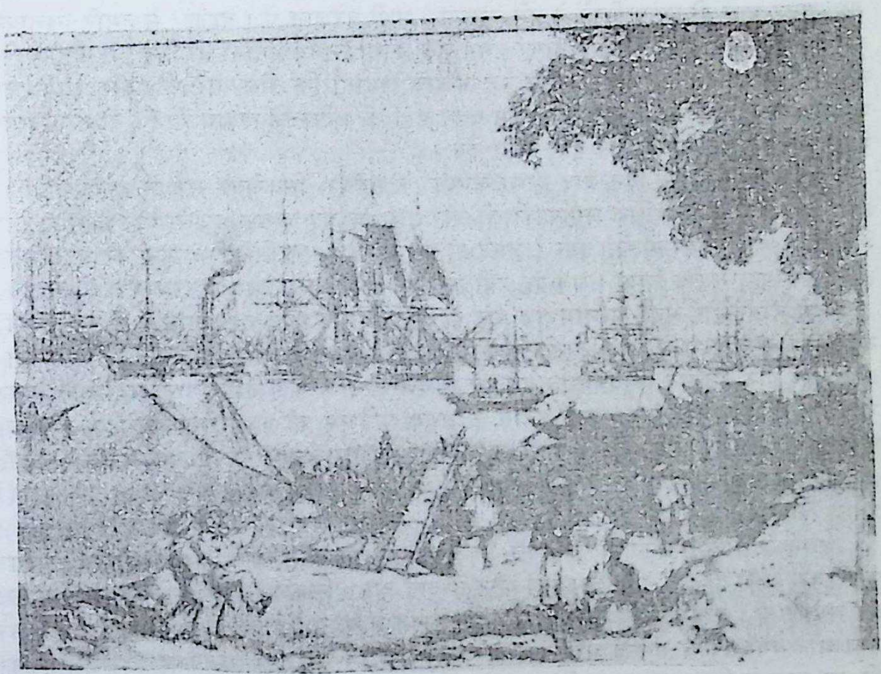

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिन्धु सयानो सापुरुष, ए लोरा न कहाय

हमारे लिए यह अग्नि-परीक्षा का समय था। पाट का बीमा किया हुआ था। हिसाब लगाकर देखा, बीमें की रकम मिलने पर भी व्यापारियों के रुपयों का भुगतान पटेगा नहीं। अतएव हमने तय किया कि जितना अभी अपने पास से दे सकेंगे, दे देंगे और शेष के लिए रुक्का लिख देंगे।

खबर पाते ही व्यापारियों ने हमें बुलाया। सभी परेशान थे। बाजार में हमारे खिलाफ कुछ अनर्गल बातें भी उड़ाई गईं, मगर हमने जब अपना निर्णय सुनाया तो उन्हें ढाढ़स ही नहीं बँधा, बल्कि वे बड़े खुश हुए। हमने यह अन्दाज लगाया कि तीस-चालीस हजार रुपये टूट जाएँगे। उन दिनों हमारे लिए यह रकम बहुत बड़ी थी। किन्तु विश्वास था कि दो-तीन वर्षों में मेहनत मजदूरी करके इसे पूरा चुका देंगे।

संयोग से दो-तीन दिन बाद बीमा कम्पनी के सर्वेयर 'सिंकलेयर मरे' ने हमें बुलाया। आग के बारे में कुछ मौखिक जानकारी ली और पूछा कि यह जला-अधजला पाट किस हालत में है उसी रूप में हम उसे लेंगे क्या ? हमने हाँ कर दी और एक निर्धारित मूल्य पर यह भीगा और जला पाट खरीद लिया। शर्त यह रही कि जैसे-जैसे बिकता जायगा दाम चुकाते जाएँगे।

हम तीनों भाई सुबह से शाम तक पाट के गोदामों में खड़े रहते। जले और गीले पाट की बदबू भरे वातावरण में, खुद अपनी निगरानी और निर्देशन में, पाट सुखवाते, बछाई कराते और फ़िर गाँठ बँधवाते। सुबह सात बजे घर से चले जाते, साथ में लाया खाना वहीं खाते और रात को देर से घर लौटते। एक महीने के अथक परिश्रम का यह फल निकला कि सर्वेयर कम्पनी को जले पाट का दाम चुकाने के बाद भी हमें पचास हजार रुपये का लाभ हुआ। कहाँ हम यह सोच बैठे थे कि घर से हमें तीस-चालीस हजार की रकम भरनी पड़ेगी और यहाँ इतना लाभ।

हमने निर्धारित समय से पहले ही अपने व्यापारियों को वादे के अनुसार व्याज सहित पूरी रकम चुका दी। वे लोग आश्वस्त और सन्तुष्ट हुए। 'सिंकलेयर मरे' उस समय बीमा के बड़े सर्वेयर थे। वे हमारे व्यवहार और काम के ढंग से बहुत प्रभावित हुए। उनका विश्वास जगा और वर्षों तक वे जले व भीगे पाट-हैसियन को बेचने में हमें प्राथमिकता देते रहे। हमने भी इस काम के लिए एक अलग विभाग खोल दिया जिससे लाखों की आमदनी हुई। इस ढंग के कामों में आम-तौर पर धाँधली हुआ करती है। हम जानते और देखते थे कि कभी-कभी बड़ी रकम बना लेना आसान रहता है। मगर इससे लोगों का भरोसा उठ जाता है और दुबारा काम नहीं मिलता। हमने इस बात का बराबर ध्यान रखा कि यदि किसी सौदे में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घाटा भी हो तो उसे सह लिया जाय। इसलिए सर्वेयर हमारे काम से सन्तुष्ट रहते और दूसरे सौदे में हमारी हानि की पूर्ति कर देते।

काम के बढ़ जाने से इधर-उधर जाने-जाने में काफी समय लग जाता। अतएव हमने २३५ रुपये में एक बहुत पुरानी विलीज कार खरीदी। यह गाड़ी तरह-तरह की आवाजें करती और कभी रास्ते में रुक जाती। मित्रों ने इसे 'उड़नखटोला' नाम दिया। एक दिन कुछ मित्रों के साथ इसमें बैठकर एक शादी में गए। हरीसन रोड–चितपुर के जनसंकुल चौराहे पर गाड़ी अड़कर खड़ी हो गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी इंजिन चालू नहीं हुआ। पीछे से आती ट्राम, बस और मोटरों ने आवाजें देनी शुरू की। बहुत मुश्किल के बाद ठेलकर एक तरफ हटाने में सफल हुए। हमारे मित्र डेडराज जी मरदा आज तक इस बात को नहीं भूले। इस गाड़ी की मरम्मत का खर्चा इतना अधिक होता कि थोड़े दिनों बाद ही इसे बेच देना पड़ा। काम जम रहा था। हमारा आत्मविश्वास बढ़ रहा था। अब सामाजिक सेवा-कार्यो में भी रुचि बढ़ने लगी और मैं थोड़ा बहुत समय इस तरफ देने लगा। इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई कि मुझे सक्रिय रूप में सेवा-कार्य में उतरना पड़ा।

१५ जनवरी १९३४ का दिन था। दोपहर के लगभग २ बजे होंगे, अपनी गद्दी में खड़ा कागजों को देख रहा था। मुझें लगा कि चक्कर आ रहा है। पैर लड़खड़ाने लगे। ठीक समझ नहीं पाया कि माजरा क्या है। इधर-उधर नजर गयी तो देखा कमरा हिल रहा है। सभी कुछ जैसे झकझोर रहा हो। लोग जोर-जोर से 'राम, राम, राम' हरि, हरि जप रहें हैं, भाग-दौड़ मच गई। 'भूकम्प' 'भूडोल' 'बचो' का शोर मचा। शंख की आवाजें भी सामने के बंगाली घरों से आने लगीं। अब समझा कि यह तो भूकम्प है। भूकम्प का नाम सुन रखा था पर असल में क्या है, कैसा होता है, इसका अनुभव इससे पहले कभी हुआ नहीं था। पहला झटका बहुत ही मामूली था मगर दूसरा उससे कहीं ज्यादा।

मेरा ख्याल था कि इस प्रकार के झटके सें बड़े-बड़े मकान या तो गिरे होंगे या काफी नुकसान पहुँचा होगा। मगंर ऐसा हुआ नहीं, कुछ एक मकानों की दीवारों में दरारें जरूर पड़ गई थी। तीसरे दिन से तरह-तरह की खबरें आनें लगीं। बिहार में भूकम्प का प्रकोप भीषण था। मोतीहारी, मुँगेर, मुज्जफरपुर में बड़ी विनाश लीला हुई। हज़ारों मकान ध्वस्त हुए, जमीन फट गई, क़हीं पानी फूट निकला तो कहीं धरती धँस गयी। नदियों ने मार्ग बदल दिए, जिससे गाँव के गाँव उजड़ गए। अनेक लोग मारे गए, घायल हुए, पशुधन का भी बड़े पैमाने पर नाश हुआ, खेतीबारी की बरबादी से भविष्य अन्धकारमय हो गया।

राजेन्द्र बाबू ने भूकम्प पीड़ितों के सहायतार्थ सारे देश से अपील की। कलकत्ते में कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने सेवा-कार्य को सुसंगठित करने के लिए विचार-विमर्श किया और तत्काल सहायता पहुँचाने की तैयारी की जाने लगी। सेवा-संस्थाएँ युवक कार्यकर्त्ताओं को और स्वयंसेवको को भूकम्प पीड़ितों की मदद के लिए बिहार भेजने लगी। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ने इसके लिए पहुत बड़ा काम किया। जनसंग्रह, धनसंग्रह और वस्तुसंग्रहका काम बड़ी तत्परता से सोसाइटी के द्वारा किया गया। जो जिसके उपयुक्त था, उसे वैसा ही कार्य अथवा दायित्व दिया गया। मेरा परिचय व्यापारी-व्यवसायी समाज से था, इसलिए मुझे बिहार न भेजकर धन एवं वस्तुसंग्रह के लिए कलकत्ते में लग जाना पड़ा। ट्रकों में घूम-घूम कर घर-घर से बर्तन कपड़े, दवा, रुपये पैसे जो भी मिले, इकट्ठा करते रहे। उसी समय से इस सेवा-संस्था से मेरा सम्बन्ध जुड़ा।

काम-काज की व्यस्त दिनचर्या में से कुछ समय स्वाध्याय और मनोरंजन के लिए भी निकाल लेता। यद्यपि स्कूली पढ़ाई तो विशेष नहीं हो पाई तथापि सरदारशहर की पब्लिक लाइब्रेरी से सम्बन्ध रहने के कारण हिन्दी पुस्तकों की काफी जानकारी हो गई। पढ़ने की रुचि बढती गई। मैंने महीने में कम-से-कम पाँच पुस्तकें पढ़ने का नियम बना रखा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बड़ाबाजार लाइब्रेरी और मारवाड़ी पुस्तकालय में बराबर जाता। वहाँ दैनिक, सामयिक पत्रपत्रिकाएँ पढ़ता और अपने पसन्द की पुस्तकें घर ले आता। हिन्दी के तीन बड़े पुस्तकालय उन दिनों बड़ाबाजार में थे। दो उपरोक्त और तीसरा था कुमारसभा पुस्तकालय। उस समय तक इम्पीरियल लाइब्रेरी (नेशनल लाइब्रेरी) से लाभ नहीं उठा पाया।

बड़ाबाजार युवक-सभा में कसरत के लिए जाता। कुछ वर्षों पहले ही बीमारी से उठा था, इसलिए अधिक व्यायाम नहीं कर पाता, फिर भी मुझे निश्चित रूप से लाभ पहुँचा। शरीर और मन स्वस्थ बना। आगे जाकर तो मेरे बल और पौरुष की चर्चा स्थानीय राजस्थानी समाज में होनी लगी। गरमी के मौसम में नियमित रूप से कालेज स्क्वायर तालाब जाता। तैरने का अच्छा अभ्यास हो गया। जब ऊपर से कूदने लगा तो मेरी पत्नी बहुत डर गयी। किसी प्रकार वह अपनी चीख को रोक सकी। घर पहुँचने पर उसने बहुत समझाया। मैं हँसता रहा। आखिरकार पत्नी ने सौगन्ध दिलायी कि ऊपर से भविष्य में नहीं कूदूँगा।

उन दिनों खेलकूद में टेनिस और क्रिकेट आज की तरह जनप्रिय नहीं थे। सबसे अधिक लोकप्रिय खेल था फुटबाल, इसके बाद नम्बर आता था हॉकी का। फुटबाल के खेल के लिए तो जनता उमड़ पड़ती। जब कभी फाइनल का चेरिटी शो होता तो पहली रात से ही फुटबाल ग्राउन्ड में आकर सो जाते या क्यू लगा देते। हम लोग प्रायः शनिवार-रविवार को फुटबाल का खेल देखने जाया करते। भारतीय टीमों में मोहन-बगान और ईस्ट बंगाल अग्रणी मानी जातीं थी। इनसे भी ज्यादा नाम था डलहौजी, कलकत्ता, कस्टम और डी० सी० एल० आई० टीमों का। इन टीमों के खिलाड़ी अधिकांश अंग्रेज होते। कुछेक ऐंग्लोइंडियन भी रहते थे। चौड़े और तगड़े। इनके सामने हमारे भारतीय खिलाड़ी कद में छोटे और पतले थे। अंग्रेजी खिलाड़ी काँटे दार बूटों से खेलते मगर हमारे खिलाड़ी नंगे पैरों। फिर भी उनमें कुछ ऐसी फुर्ती और दौड़ने की क्षमता थी कि गेंद को प्रतिद्वन्दियों के बीच से निकाल कर गोल कर देते। तालियों की गड़गड़ाहट और नाना प्रकार की हर्षध्वनि से मैदान गूँज उठता। उस समय के खिलाड़ी आज के खिलाड़ियों की तरह फाउल नहीं खेलते थे और न जनता ही बात-की-बात में मारपीट या दंगा-फ़साद पर आमदा होतीं थीं। फिर भी कहीं-कहीं अपवाद हो जाता था। मोहन बगान की टीम एक बार दरभंगा गई। उनको वहाँ दरभंगा महाराज के टीम से खेलना था। उस टीम में राजा के नामी-गरामी पहलवान थे इधर दुबले-पतले मगर फुर्तीले खिलाड़ी। खेल शुरू हुआ। हाफ टाइम तक मोहन बगान चार गोल कर चुका था जबकि दरभंगा राज की टीम के खिलाड़ी पस्त होकर हाँफ रहे थे। महाराज ने अपनी टीम के खिलाड़ियों को बुलाया और धमकाते हुए कहा कि तुम लोगों के खाने-पीने पर पाँच-पाँच रुपये रोज खर्च किए जाते हैं। देखने में मोटे तगड़े लगते हो, मगर हार गये इन दुबले-पतले छोकरों से। पहलवान खिलाड़ियों ने झेंपते हुए कहा, "सरकार, रेफ्री मोहन बगान का पक्ष लेता है, वह हमें 'फाउल' में फँसा देता है।" महाराज ने रेफ्री को बुलाकर डाँटा, 'खबरदार जो फाउल लगाया।' रेफ्री सकपका गया। खेल आरम्भ हुआ। राजा के पहलवानों ने लँगड़ी मारना शुरू कर दिया और लगे कलकतिया खिलाड़ियों को उठा कर जमीन पर पटकने। वे बिचारे अपनी चोट को सहलानें लग गए। इधर दरभंगा टीम ने पाँच सात गोल कर दिए और बाजी मार ली।

खिलाड़ी और दर्शक खेल को खेल मानकर चलते थे। अच्छे खिलाड़ियों की बड़ी इज्जत थी। जब वे मैदान में उतरते तो दर्शक हर्ष से तालियाँ पीटते, मोहन बगान के बैक के खिलाड़ी गोष्टोपाल की इज्जत उस समय आज के किसी बड़े नेता से कम नहीं थी।

समाज-सेवा खेलकूद और व्यायाम के अलावा कभी-कभी थियेटर और सिनेमा भी देख लेता। सवाक् चित्र केवल अंग्रेजी में आया करते थे। ये हँसी-मखौल, मार-धाड़ और जासूसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ढंग के होते । हिन्दी में केवल मूक चित्र ही बनते । दर्शकों को समझाने के लिए फ़िल्मों के बीच-बीच में संवाद लिखे रहते । पौराणिक कथाएँ,हातिमताई आदि अरेबियन नाइट्स के किस्सों पर फिल्में बनतीं थीं । सन् १९३० में 'आलम-आरा' सबसे पहली बोलती फ़िल्म आई । मैंने जब इसे देखा तो बड़ी खुशी हुई । सन् १९३४ तक हिन्दी के अधिकांश चित्र मूक फ़िल्मों की तरह पुराने ढंग के कथानकों पर बनते रहे । कुछेक जासूसी ढंग के भी बने जिनमें मार-धाड़, तलवारबाज़ी होती थी । सन् १९३४ में हिमांशु राय का अछूत कन्या प्रदर्शित हुआ । निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तकनीक, कथानक और अभिनय की दृष्टि से हिन्दी फ़िल्म में इसने एक नया मोड़ ला दिया । मुझे बहुत अच्छा लगा । मैंने अनुभव किया कि यदि स्वस्थ विचार की फ़िल्में बनाई जाएँ तो समाज में सुधार की भावना को बड़ी सरलता से जगाया जा सकता है । उक्त फ़िल्म में अशोक कुमार और देविका रानी नायक और नायिका का पार्ट कर रहे थे । इन दोनों का अभिनय इतना स्वाभाविक बन पड़ा था कि आज भी लोग याद करते हैं । राह चलते लोग इस फ़िल्म के गाने गुनगुनाया करते थे ।

मैं बन की चिड़िया बन के बन-बन बोलूँ रे,
मैं बन का पंछी बन के सँग-सँग डोलूँ रे,
तुम डाल-डाल मैं पात-पात बिन पकड़े कभी न छोड़ूँ,
संग-संग डोलूँ रे ....।

बोलती फ़िल्मों के आने से पहले पारसी थियेटर अधिक आकर्षक थे । कथानक अधिकतर धार्मिक या इश्किया होते जिनकी भाषा रहती उर्दू । इसमें संवाद बड़े जोरदार होते । आठ आने से पाँच रुपये तक की टिकटें रहती । नाटक रात के नौ बजे से आरम्भ होकर दो बजे तक चलते रहते । वे भारतीय, ईरानी और अरब की पुरानी कथाओं पर आधारित होते । बीच-बीच में कौमिक जरूर रहता, भले ही उसका सम्बन्ध मूल कहानी से हो या नहीं । हर संवाद के बाद हिन्दी या उर्दू की शायरी रहती । प्रेम या युद्ध, माँ-बेटे की बातचीत या आशिक-माशूक का प्रेमालाप, सबमें तावदार शेर जोर-जोर से कहे जाते । जनता झूम उठती । आज भले ही इन्हें पसन्द न किया जाय, मगर वह जमाना था, इन्हीं का । मुझे याद है, कई खेलों में मास्टर मोहन और मिस कज्जन को बार-बार तालियाँ पीटकर स्टेज पर बुलाया जाता, वे स्वयं भी इसके लिए तैयार रहते, क्योंकि संवाद को पूरा किए बिना ही पर्दे के पीछे चले जाते थे । जो नाटक मैंने देखे, उनमें से कुछ की याद है जैसे 'असीरे हिर्स', 'खूने नाहक', 'सत्य हरिश्चन्द्र', और 'वीर अभिमन्यु' ।

घूमने वाले रंगमंच बने नहीं थे । आज की तरह स्टेज का सलाप जनता तक पहुंचाने के लिए माइक की व्यवस्था भी न थी और न साज-सज्जा का शिल्प ही इतना विकसित था । सीन-सीनरी और चटकीले पर्दों की पृष्ठभूमि पर सारा नाटक अभिनीत होता । बड़ी मशक्कत का काम था, क्योंकि एक तो जोर-जोर से सलाप बोलना और दूसरे नायक-नायिका को स्वयं गाना पड़ता था । सन् १९३५ के बाद नाटकों में एक नया मोड़ आया । नारायण प्रसाद बेताब, हरिकृष्ण आदि दर्शकों के प्रिय नाटककार थे । रंगमच के लोकप्रिय नाटक थे 'गणेश-जन्म', 'कृष्ण-सुदामा', और 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि । सन् १९३५ मे मैंने कृष्ण-सुदामा नाटक देखा । सुदामा की स्त्री का अभिनय कर रहे मास्टर निसार । उन्होंने अपनी फटी चुनरी दिखाते हुए एक गाना गाया —

नहीं यह चुनरी मेरी, मेरे दिल का नमूना है,
फरक इतना ही है कि इस चाक से वह चाक दूना है ।

इस गीत को सुन कर वहां जितने स्त्री-पुरुष थे, उनकी आँखें गीली हो गई थीं । आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक के नाटकों में पुराने पन के साथ नए पन का सुन्दर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समन्वय था। 'सीता' नाम के बंगला नाटक की उन दिनों धूम थी। नटसूर्य शिशिर भा राम का अभिनय करते थे और सीता का सरयूबाला। परित्यक्ता सीता के विलाप को सु दर्शकों की आँखे भर आतीं और कुछ कमज़ोर दिल महिलाएँ मूर्छित हो जातीं। लोग बी और पूर्वी बंगाल से भी इस नाटक को देखने आते थे।

इन्हीं दिनों सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा भी नाटकों का प्रदर्शन प्रारम्भ हो गया था। इ भाग लेने वाले पेशेवर अभिनेता न होकर संस्था के सदस्य हुआ करते। फूल कटरे की हि नाट्य परिषद और सदासुख कटरे की बजरंग परिषद् इस ढंग की संस्थाओं में अग्रणी थे मेरे कई मित्र सदस्य थे। मैं भी कभी-कभी रिहर्सलों में जाया करता। मेरे पुष्ट शरीर बनावट के कारण मुझे मंच पर उतरने के लिए कहा जाता, किन्तु ऐसी प्रेरणा मेरे मन में क हुई नहीं।

ऐसे मनोरंजन उन भाग्यशाली लोगों के लिए है जिनके पास पैसा और समय है। फि भी हम महीने-दो महीने में एकाधबार आठ आने या एक रुपए के टिकट में धरमतल्ला कोरियन्थन थियेटर या हरीसन रोड के आलफ्रेड थियेटर चले जाते। अब तो ये दोनों थिये वातानुकूलित सिनेमा हाल हो गए हैं। वैसे हमारा असली मनोरंजन तो अपने पाट वायदे फर्म में ज्यादा से ज्यादा दलाली माड़ने में था।

पाट का यानी वायदे का सौदा अपने आप में एक तरह का व्यापार है। बहुत से लोगों यही धन्धा है। चीजों का लेन-देन न होकर इसमें केवल ज़ुबानी वादा हुआ करता है। शे पाट-बोरे, चाँदी-सोने आदि जिन्सों का सट्टा तो होता ही था, साथ ही एक विचित्र प्रकार सौदा चलता, बरसात के पानी का। इसके जानकारों को 'रंगबाज' कहते। तपती दुपहरी में ऊँची छतों पर चढ़ जाते और आसमान की ओर ताकते रहते। इनमें से कुछ तो इतने माहि थे कि बता देते कि अमुक बादल कब, कहाँ और कितना बरसेगा। इनका अनुमान बहुधा स उतरता।

पानी का सट्टा प्रायः दो तरह का हुआ करता, नाली का और खाल का। छत की नाल अगर चल जाती तो घोषणा हो जाती, 'नाली चल गयी' और इससे अधिक पानी बरसता उसे 'खाल चलना' कहते। उँगलियों के संकेत के भाव चलते। बारिश होने के पक्ष में रह वालों को 'लगायीवाल' और विपक्षी को 'खायीवाल' कहते। लाखों की हार-जीत होती। लो भुगतान करते, भले ही गहने गिरवी रखने पड़ते। लिखा-पढ़ी का कोई नाम नहीं। भुगतान लोग भागते नहीं, क्योंकि एक तो उनकी इज्जत जाने का और दूसरे फिर से सट्टाबाजी सौदा न कर पाने का डर रहता। फिर भी धोखाधड़ी और चालाकियों के कुछ अपवाद होते एक बार हल्की सी बारिश हुई। नाली चलने ही वाली थी। इससे दो 'खायीवालों' का हजार का नुकसान हो जाता। दोनों को एक तरकीब सूझी। वे आपस में लड़ते-झगड़ते नाली के पा गये। एक ने दूसरे की पगड़ी गिरा दी। पगड़ी ने पानी सोख लिया, नाली चली नहीं लगायीवाल चालाकी समझ गए। थोड़ी झंझट के बाद सौदा बराबर में सलट गया।

एक और घटना याद आती है ठीक इसके विपरीत। बरसात हुई, पर बहुत कम धीरे-धीरे नाली चलती देख खायीवालों को सन्देह हुआ। दौड़कर ऊपर गए तो देखा, कि ए लगाईवाल पेशाब कर रहा था!

जिन्सों और शेयरों के सट्टों में खरीददार को पोते वाला और बेचने वाले को मत्येवाल कहते। इनके तैयारी और वायदे (फ्यूचर) दोनों प्रकार के सट्टे चलते। यूँ तो अलसी, सरसो गुवार आदि के भी सट्टे होते किन्तु विशेष रूप से पाट-बोरा, चाँदी सोना और रूई के सौ होते रहते। इनमें बड़े-बड़े धनी और उद्योगपति सक्रिय भाग लेते। वायदे के सौदों में को लिखा-पढ़ी नहीं होती। फिर भी पूरी ईमानदारी बरती जाती। लाखों का भुगतान समय प कर दिया जाता। परन्तु एकाध चालाकी या धोखे-धड़ी की घटनाएँ यहाँ भी हो जातीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक बार एक बड़े व्यापारी ने पाट का खेल किया कुछ व्यापारियों को मिलाकर उसने तेजड़ियों का 'सिण्डीकेट' बना लिया। उसका अनुमान था कि 'ड्यू डेट' (निश्चित तारीख) पर माल कम मात्रा में डिलेवरी होने से भाव तेज रहेंगे। हम लोगों ने भी मत्थेवालों का सिण्डीकेट बनाया और माल डिलेवरी की तैयारी जोरों से करने लगे। सैकड़ों बोटों (लोहे की नावों) में पाट की गाठें भरकर खरीददारों के साथ हुए कान्ट्रेक्ट के अनुसार चालान कर दिया। ड्यू डेट आई। हम लोग जहाज पर गए तो देखा हमारे बहुत से बोट नहीं थे। पिछली शाम को हमारे कर्मचारी उन्हें वहाँ छोड़ गए थे और हम निश्चिन्त थे कि समय के भीतर माल जहाज की किताबों में दर्ज हो जाएगा।

बाजार भाव ड्यू डेट बीतने पर कट गया और माल हमारे गले रह गया। बाद में पता चला कि खरीददारों ने हमारे माझियों को रुपए देकर बोंटों को रातोंरात जहाजों से दूर हटवा दिया था।

इसी तरह बम्बई के एक नामी सटोरिये का चाँदी की तेजी का बड़ा सौदा था। जब उसे पता चला कि कलकत्ते से रेल द्वारा उसके अनुमान से कहीं अधिक चाँदी की सिल्लयाँ बम्बई से जा रही हैं तो उसने अपने विश्वस्त व्यक्ति को मुगलसराय भेजा और वहीं स्टेशन वालों से मिलकर वैगन को रुकवा दिया। समय पर चाँदी बम्बई पहुँच नहीं पायी और वह घाटे से बच गया।

होशियार सटोरिये को 'रुखवाज' कहते। ये लोग कभी-कभी धुन में या तैश में बड़ा सट्टा कर बैठते, अथवा सिण्डीकेट बनाकर मार्केट की कार्नरिंग कर लेते। मगर पासा पलटता देखते तो तरह-तरह के हथकण्डों से अपने को बचाने की चेष्टा करते। इस सन्दर्भ में मुझे एक और घटना का स्मरण है। कलकत्ता में पाट के एक बड़े मिल-मालिक के हैसियन बोरों का पोते (खरीद) का सौदा था। किन्तु मिलों में माल जोरो से तैयार हो रहा था। भाव गिरने लगे। मिल-मालिक ने एक बड़े लेबर लीडर को बुलाया और मिलों में हड़ताल करा दी। बाजार की मन्दी रुक गई और उसे घाटे के बजाय मुनाफा हुआ।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि भाग्य ने साथ दे दिया। एक बार एक प्रमुख सटोरिये ने चीन में चाँदी की लेवाली भेजी। भूल से एक सौ की जगह एक हजार सिल्ली का तार उतर गया। बाजार में अच्छी तेजी आयी, उसे लाखों का मुनाफा हुआ। उस रूपये से उसने उद्योग स्थापित किये और कुछ वर्ष में ही बड़ा उद्योगपति बन गया।

एक्सचेन्ज को (जहाँ सट्टा होता) बोलचाल की भाषा में 'बाड़ा' कहते। जैसे पाटका बाड़ा, चाँदी-बाड़ा, तीसी-बाड़ा आदि। इन बाड़ों के केन्द्र (गोल) में इकट्ठे होकर दलाल लोग ऊँची आवाजों या हाथों के संकेतों से सट्टा करते। समस्त लेन-देन का सौदा इन्हीं दलालों की मार्फत होता, जिन्हें फाटके की भाषा में 'मोदी' कहा जाता। प्रायः धनी-मानी सटोरिये अपने निजी आदमियों को दलाल या मोदी का फार्म खुलवा देते और उन्हीं की मार्फत सौदा करते। कभी-कभी ऐसे भी होता कि वे झगड़ा झंझट पैदा करके बाड़ा बन्द करवा देते या अपने मोदियों को फेल करवा देते। इस प्रकार की हरकतों को अच्छा नहीं समझा जाता। वैसे ऐसा होता बहुत कम था।

एक्सचेन्ज कें मोदियों को वोट देने, कमेटी के सदस्य बनने और डाइरेक्टर चुनने का अधिकार होता।

बम्बई के एक बहुत बड़े सटोरिये ने घाटे से बचने के लिए एक अंजीब टेकनीक अपना रखी थीं। जब भी उन्हें बडा घाटा लगता, अपने मोदियों को बुलाकर कहते, 'देश से आए तुम लोगों को बहुत दिन हो गए, जाओ घूम आओ' प्रत्येक को दस पन्द्रह हजार रूपये दे देते। वे चुपचाप देश के लिए रवाना हो जाते। इधर बाड़े में भुगतान कौन करे ? भागे हुए मोदी 'फेल घोषित कर दिए जाते और सेठ जी घाटे से बच जाते। कुछ महीने बाद पुनः उन्हीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मोदियों को नए नामो से, फर्म खुलवा दिए जाते और फटका पहले की तरह चालू जाता।

जिक्र कर चुका हूँ कि हमारे पाट के आँकड़े प्राय: सही निकला करते थे। किन्तु मैं हमेशा पाट के सौदे में खोता रहा। कारण था कि मैं इसका गुर नहीं जानता था। एक बार सट्टे सफल व्यापारी श्री राधाकृष्ण मोहता ने मुझे उदास देखा। अलग ले जाकर पूछा, "क्या बात है ? उदास क्यों हो ? बड़ा घाटा तो नही है ?" उनका अनुमान ठीक था। मैं घाटे में डूबा) हुआ बैठा था। वे कहने लगे, आश्चर्य है, आँकड़ों की इतनी जानकारी रखते हुए तुम हमेशा सट्टे में खोते रहते हो "।

बात-चीत के सिलसिले में उन्होनें मुझे सट्टे के छहगुर बताये :

१. घाटे में बाजार बन्द होने के समय सौदा बराबर कर घर जाओ। रात बासी घाटा कभी मत रखो।
२. घाटे में भाव की एक सीमा निर्धारित करो और दलाल से कह रखो कि अमुक भाव आने पर सौदा बराबर कर दिया जाय।
३. अपनी सामर्थ्य से कम सौदा करो
४. अपने सौदे की तादाद कभी किसी से मत कहो।
५. मुनाफे में धीरे-धीरे सौदा बढाते रहो।
६. अगर बड़ा सौदा हो और सल्टाना हो तो अपने दलालों की मार्फत न सल्टा कर दूसरे नये दलालों से सल्टाना चाहिए। इससे लोग जल्दी से नही भाप पायेगें कि सौदा किसका है।

मैनें कारनेगी की किताब में भी ऐसी बात पढ़ी थी किन्तु उन्हें अमल में नही ला सका।

साधारण व्यक्ति फाटका को जुआ समझते हैं, किन्तु सही मानी में ऐसी बात है नही। यह एक ऐसा व्यापार है, जिसमें जिन्सों पर किसी का भी एकाधिकार होना सहज सम्भव नही। एक ही निश्चित स्थान एक्सचेन्ज हाल में सौदा होने के कारण इच्छुक व्यक्ति वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं और अपनी-अपनी धारणा के अनुसार लेवा-बेची करते हैं।

सट्टा या फाटका एक प्रकार से व्यापार है, मगर इसकी लत बहुत बुरी है। बिना परिश्रम के घंटे भर में हजारों आ जाते हैं। इससे प्रमाद और लोभ बढ़ता है। स्पष्ट है, बिना मेहनत की कमाई से तरह-तरह के व्यसन भी आते हैं। आज के कई उद्योगपति चाँदी, रूई और अफीम के सट्टों से सम्पन्न हुए हैं। किन्तु मैंने यह लक्ष्य किया है कि सब कुछ जानते हुए भी अधिकांश लोग मेरी तरह इस बाजार में रुपये खो देते हैं और लाखों घर उजड़ जाते हैं। तभी तो कहा जाता है कि 'जिसने किया फाटका, घर का रहा न घाट का'।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेनियनशिप

१६३६ के मार्च में मेरे छोटे भाई बृजलाल का विवाह सरदारशहर में था। हम सभी वहाँ गए थे। शादी के दिन ही कलकत्ते से जे० टॉमस कम्पनी का तार मुझे मिला—"सीपानी का देहांत हो गया, जल्द आओ"। पहरावणी (विदा समारोह) को बीच में ही छोड़ कर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया और वहाँ जाते ही उक्त फर्म के बड़े साहब से मिला। शुरू से जो साहब मुझ पर कृपालु थे, वे ही अब छोटे से बड़े हो गये थे। भाग्य ने फिर करवट ली। उन्होंने मुझे फर्म की बेनियनशिप दे दी। थोड़ा सा हिस्सा सीपानी के लड़के के लिए रखा। याद आ गया, इसी कम्पनी में १० वर्ष पहले मैं दो सौ रुपये मासिक की साधारण नौकरी पर था, बिना कसूर मुझे पृथक् कर दिया गया। आज मानो मैं मजदूर बन गया हूँ!

'बेनियन' शब्द की उत्पत्ति बनियाँ से हुई है। उस समय जितनी भी अंग्रेजी फर्में थीं, सबमें बेनियन रहते। इनकी जिम्मेदारी थीं स्थानीय व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करना, सौदा करवा देना और डूबते की गारन्टी लेना। बेनियन के अतिरिक्त अंग्रेजी आफिसों में जिम्मेदारी के विभिन्न पदों पर भारतीय थे और इसीलिए यहाँ की भाषा और व्यवहार न जानते हुए भी अठारहवीं शताब्दी में वे विदेशी इतने दूर देश में आकर जमते गए। खेद है कि भारतीय उद्योगपति इन बीच के आदमियों को न रखकर सब लाभ स्वयं लेना चाहते हैं।

सारे पाट बाजार में चर्चा फैल गई। देश में भी समाचार पहुँचा। बिना किसी जमानत या डिपाज़िट के इतनी बड़ी फर्म की बेनियनशिप मिल जाना एक नई बात थी। बहुत से लोग जे० टॉमस में गए। साहब को हमारी माली हालत के बारे में बताया। कई बड़े-बड़े व्यापारियों से दबाव भी डलवाया गया। परन्तु बड़े साहब का एक ही उत्तर था—"मैंने जो कुछ किया है, समझ-बूझकर किया है। उसमें अब कोई रद्दोबदल नहीं हो सकता।" यही नहीं, बल्कि साहब दूसरे ही दिन जो-जो व्यक्ति मेरी शिकायत करते, उनके बारे में बता भी देता। पक्का एग्रीमेंट बन जाने के बाद वे ही लोग मेरे शुभचिंतक बनने का प्रदर्शन करने लगे, क्योंकि अब मैं इस स्थिति में था कि उनके कुछ काम आ सकूँ।

इसके बाद तो मैंने इस फर्म में बीस वर्ष तक लगातार काम किया और यह कहूँ तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि पाट बाजार में हमारे नाम की धाक सी हो गई। सन् १६५७ की फरवरी में जब मैं संसद-सदस्य चुना गया तब इस काम से मुक्त हुआ। यद्यपि इससे भी पहले कई बार इस बेनियनशिप को छोड़ने की इच्छा जाहिर कर चुका था, क्योंकि विभिन्न सामाजिक कार्यों और निज़ी व्यापार, उद्योग में व्यस्त रहने के कारण जे० टॉमस को बहुत थोड़ा समय दे पाता। कार्य का भार था मेरे सहयोगियों पर। किन्तु साहब लोग हमेशा ही हँसकर इस बात को टाल देते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन बीस वर्षों में कई बड़े साहब रिटायर हो गए और छोटे साहब बड़े बन गए। प जो जाता, वह मेरे बारे में दूसरे को बता जाता। अंग्रेजों में यह खूबी थी कि वे पद से चि नहीं रहते। इसलिए दूसरों को भी मौका मिलता रहता है। मैं निश्चयपूर्वक कह स हूँ कि अंग्रेजों का व्यावसायिक चरित्र बहुत ऊँचा था। उनके प्रतिष्ठानों में जो दलाल बेनियन लग गए, वे दो-दो, तीन-तीन पीढ़ियों तक रहे। उन्होंने अच्छी शर्तें मिलने पर भी काम दूसरों को देने की नहीं सोची। इस संदर्भ से रैली ब्रदर्स के बेनियन **सर हरिराम गोय** और ग्राहम के 'सूरजमल शिवप्रसाद' का उदाहरण दिया जा सकता है, जिनको कलकत्ते मारवाड़ी-समाज में चाँद-सूरज की उपमा दी जाती थी।

सन् १६२६ से १६३६ तक मैं बड़ाबाजार के जिन विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क में आ था, जिनके बारे में चर्चा सुनी और जो आज नहीं रहे, उनमें से कुछ का उल्लेख कर चाहूँगा।

सर हरिराम गोयनका के विषय में ऊपर लिख चुका हूँ। वे रैली ब्रदर्स के बेनियन थे मारवाड़ी-समाज में आपका घराना चोटी का है। बेनियनशिप के कमीशन के सिवाय कपड़े होने वाला मुनाफा वे स्वयम् ले सकते थे, मगर उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया। कमीशन अलावा जो भी मुनाफा होता—सारा व्यापारियों को मिलता, इसलिए सैकड़ों प्रतिष्ठि व्यापारी इनकी इज्जत करते थे। इसी प्रकार ग्राहम के बेनियन **शिवप्रसादजी पोद्दार** का ना भी बहुत प्रसिद्ध था। इनके द्वारा निर्मित धर्मशालाएँ और अन्न क्षेत्र देश के अनेक स्थानों हैं। लक्ष्मण-झूला का प्रसिद्ध पुल भी इन्हीं के द्वारा बनवाया गया था। बदरीनाथ जाने वा यात्री बदरी-केदारनाथ की जय के साथ एक जय 'सूरजमल शिवप्रसाद' की भी बोल थे।

विभिन्न संस्थाओं की सहायता के निमित्त मेरा **जुगलकिशोर जी बिड़ला** से मिलने का काम पड़ता रहता। आपने सदा ही अनुमान से ज्यादा दिया। केवल एक बार ऐसा अवस आया कि कराची के रामकृष्ण मिशन के स्वामीजी को लेकर इनके पास गया। वे वहाँ आश्रम के अस्पताल के लिए कुछ सहायता चाहते थे। पूछने पर स्वामीजी ने बताया कि हम तो मनुष्य मात्र की सेवा करते हैं, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान। बिड़लाजी ने उस समय न क दिया, मगर जैसे ही हम नीचे उतरे, उनका सचिव दौड़ा हुआ आया और पाँच हजार रुपये गया। कितना रुपया इस उदार और महान् व्यक्ति ने अपने जीवन में दिया, इसका अन्दा नहीं लगाया जा सकता क्योंकि उनका दान अधिकतर गुप्त ही रहता था।

सेठ दुलीचन्द नामी रईस थे। जैसे मोतीलालजी नेहरू की रईसी की कहानियाँ प्रचलि हैं, वैसे ही मारवाड़ियों में सेठ दुलीचन्द की रईसाना तबीयत का बड़ी शान से जिक्र होता है कहा जाता कि वे एक बार का पहना हुआ कपड़ा धोबी को धुलने के लिए दे देते। मारवाड़ि में मोटर कारों के वे प्रथम खरीददारों में थे। इनके पास गौहरजान नाम की प्रसिद्ध गायिक थी। उसके रहने के लिए इन्होंने दमदम में जो बगीचा बनवाया, वह बहुत वर्षों तक कलक का एक दर्शनीय स्थल रहा। किसी को बहुत बढ़िया और धुले वस्त्र पहने देखकर लोग ता कसते 'सेठ दुलीचन्द' आ रहा है।

जैसा कि ऊपर लिख आया हूँ, मुझे आज की स्थिति में लाने का श्रेय **वंशीधर जी जाल** को है। ये और इनके बडे भाई सूरजमल जी दोनों ही आरम्भ में दलाली या नौकरी करते थे अपने जीवन काल में ही बढ़कर बड़े ही नाना प्रकार के उद्योग स्थापित किए और बहुत प्रका की सार्वजनिक व धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की। एक बार मैं असम के काजीरंगा जंगल पास स्थित बोकाखाट गाँव में ठहरा। वहाँ के एक मारवाड़ी बन्धु ने टीन की एक छोटी दूकान दिखाई, जो कभी सूरजमल जी के पिता **हरदेवदास जी** की थी। कहाँ वह टीन छोटी सी दूकान और कहाँ आज के उनके बड़े-बड़े आद्योगिक प्रतिष्ठान! भाग्य साथ दे मनुष्य उद्यम और लगन द्वारा कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्वमित्र के संस्थापक **मूलचन्दजी अग्रवाल** से मुझे लिखने की प्रेरणा मिली। वे एक साधारण अध्यापक सें विख्यात पत्रकार बने। समाज-सुधार के प्रत्येक आन्दोलन में निर्भयतापूर्वक अग्रणी रहे। विश्वमित्र के कलम इन सब समाचारों से भरे रहते। असहयोग आन्दोलन में जेल भी गए। 'दैनिक विश्वमित्र' को अपने खून-पसीने से सींचा। परिणामस्वरूप आज यह न केवल पूर्व भारत के हिन्दी भाषा-भाषियों का सर्वाधिक पठित दैनिक पत्र है, बल्कि इसकी गणना देश के प्रमुख हिन्दी दैनिकों में की जाती है। सबसे बड़ा काम जो उन्होंने किया, वह था युवकों को प्रेरणा देकर आगे बढ़ाने का।

उस समय **श्री पुरुषोत्तम राय** का नाम बड़ा बाजार कांग्रेस का प्रतीक था। घुंघराले लम्बे केश, सफेद खादी के कपड़े, हाथ में डण्डा और टैक्सी की सवारी। उत्तर कलकत्ता में जहाँ भी कांग्रेस की सभा होती या कोई आन्दोलन होता, श्री राय सबसे आगे रहते। कई बार जेल जा चुके थे। कार्यकर्त्ताओं के मन में उनमें प्रति श्रद्धा थी क्योंकि वे सबसे स्नेह-सम्पर्क रखते। जब कभी नाम लेकर पुकारते—मैं गौरव अनुभव करता है कि इतना बड़ा आदमी मुझे जानता है।

हिन्दी में बाल साहित्य के सर्वप्रथम लेखक **श्री बैजनाथ केडिया** से मेरा परिचय कब हुआ—याद नहीं। 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' के माध्यम से आपने उस समय राष्ट्रभाषा का प्रचार किया जब कि वह अपनी शैशवावस्था में थी और थी शासन द्वारा उपेक्षित। जिस प्रकार रामानन्द बाबू 'मार्डन रिव्यू' के माध्यम से रवि बाबू को जनता के समक्ष लाए, उसी प्रकार प्रेमचन्द्रजी को उर्दू से हिन्दी में लाने का श्रेय **श्री महावीरप्रसाद पोद्दार** और केडिया जी को है। प्रेमचन्द्रजी की प्रसिद्ध कृतियाँ—प्रेमाश्रम, सेवासदन और सप्तसरोज को हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने ही प्रकाशित किया था। हिन्दी प्रचार के साथ-साथ केडियाजी समाज-सुधार और स्वतंत्रता-संग्राम में भी सक्रिय थे।

एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्तिपूजा करके बाणविद्या में अद्भुत लक्ष्य-भेदी बन गया, उसी प्रकार शरत बाबू (शरतचन्द्र चटर्जी) के उपन्यासों को पढ़कर, मुझे लिखने की प्रेरणा मिली। उनके 'देवदास', 'चरित्रहीन', विप्रदास', 'श्रीकान्त,' 'शेष प्रश्न' आदि को पढ़कर न जाने कितना रोया, हँसा। इन पुस्तकों के अधिकांश पात्रों के नाम मुझे जुबानी याद हैं। मित्रों की लड़कियों की शादी में और चीजों के साथ में शरत बाबू की ग्रंथावली अवश्य भेंट के लिए ले जाता हूँ। यह कहूँ तो शायद अत्युक्ति नहीं होगी कि शरत बाबू के ग्रंथों के खरीददारों की सूची बनयी जाय तो मेरा नम्बर शायद पहला रहेगा।

श्री बसन्तलाल मुरारका अपने ढंग के अनोखे कार्यकर्त्ता थे। कांग्रेस आन्दोलन के लिए जेल जाना हो, समाज सुधार के लिए गालियाँ खाना हो तो वह सबसे आगे रहते। कभी कदाच मित्र उन नाराज हो जाते या उन्हें डाटते, परन्तु वे हँसते ही रहते। मारवाड़ी-समाज में उनकी पत्नी रमादेवी ने उनसे प्रेरणा पाकर आज से ५० वर्ष पूर्व घूँघट का त्याग किया था। बसन्तलालजी विद्वान नहीं थे, परन्तु धारा-प्रवाह व्यांख्यान प्रायः हर विषय पर देते।

मैं आज जो कुछ भी हूँ, इस स्थिति में लाने का अधिकांश श्रेय मेरे श्वशुर **हरचन्द राय जी सराफ** को है। उन्होंने ही मुझे वंशीधर जी जालान के मार्फत जे० टॉमस में काम दिलवाया। जब तक हम पति-पत्नी वयस्क नहीं हुए, प्रतिदिन सुबह-शाम हमारी सम्हाल कर जाते। कुछ-न-कुछ चीज लाने का सिलसिला तो उनका अन्त तक रहा। मेरे अपने बच्चे ही नहीं, बल्कि मकान के दूसरे बच्चे भी उन्हें देखते ही उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जाते। वे अपनी चद्दर से निकालकर सबको कुछ-न-कछ देते। चाहे फल हो या मिठाई।

जे० टॉमस कम्पनी के जूट डिपार्टमेंट के बड़े साहब मि० बैंक के साथ मैं १६ से २२ वर्ष तक की आयु तक रहा। साढ़े छः फुट लम्बे, अद्भुत शक्तिशाली परन्तु बच्चों का सा सरल स्वाभाव; मैं अनुभवहीन और नया-नया था। गलतियाँ होनी स्वाभाविक थीं। परन्तु न जाने क्यों मेरे प्रति उनका विशेष स्नेह था। गलती हो जाने पर धीरे से समझा देते और भविष्य में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सावधानी के लिए कहते । देश, जाति और गोत्र आदि किसी प्रकार का भी तो सम्बन्ध था, फिर भी न जाने मुझमें क्यों इतनी दिलचस्पी थी । शायद पूर्व जंन्म के संस्कार होंगे। १९५० में जब स्कॉटलैण्ड में उनके गाँव डंडी गया, उस समय वे बहुत वृद्ध हो गए थे, दृष्टि कमजोर हो गई थी, परन्तु आवाज़ से मुझे पहचान गए और परिचारिका से कह कर निरामिष जलपान कराए बगैर वापस नहीं आने दिया ।

श्री धनराज बियानी और **दीपचन्द चाण्डक** मेरे अनन्य मित्रों में थे। हम तीनों गरीबी से जूझते लगभग एक ही समय कलकत्ते आए । अलग-अलग फर्मों में नौकरी और दलाली की ।

धनराज का घराना किसी समय प्रतिष्ठित था । साधारण व्यापार था । दैवयोग से घाटा लगा और देनदारी हो गई । कारोबार फिर से न जमने के कारण कर्ज चुकाने में गहने, जायदाद बिक गई–फिर भी काफी देनदारी रह गयी । उससे पिता को बहुत सदमा पहुँचा । अपने अन्तिम समय में उन्होंने धनराज को एक पुरजा दिया जिसमें कर्जदारों के नाम-पते लिखे थे । कहा था कि मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिलेगी । जब ब्याज सहित यह कर्ज चुका दोगे ।

दो वर्ष बाद उसके विवाह पर बहू की अगवानी के समय बिरादरी के किसी ने ताना दिया कि बाप का कर्ज तो सलटाया नहीं और ब्याह पर मिठाई बनी है । धनराज को यह बात चुभ गई और नवविवाहिता को काकी के पास छोड़कर धन कमाने के लिए परदेस चला गया।

बड़ी मेहनत और ईमानदारी से दस वर्षों में उसने काफी धन पैदा किया । बहुत सादगी और मितव्ययिता से रहता । बीच-बीच में देस जाता । काकी कहती रह गयी कि बैठने की जगह बनवा लो पर उसने नहीं माना । एक-एक कर कर्जदारों के कर्ज ब्याज सहित चुकाये। पुर्जे में लिखे नाम के कई एक जो मर चुके थे, उनके पुत्र-पौत्रों के पास जाकर कर्ज चुकाया।

पिता की आत्मा की शान्ति के लिए यह थी उनकी एकान्त साधना । मित्रों में भी उसने इसका कभी जिक्र नहीं किया । लोग यही समझते कि वह कंजूसी कर रुपये जोड़ता है।

सारा कर्ज चुकाने के बाद ही उसने हवेली बनवायी तभी लोगों को पता चला । आज भी जब उनकी याद आती है तो मेरा मन श्रद्धा से अभिभूत हो उठता है ।

दीपचन्द चाण्डक मेरे मुहल्ले का था । साथ खेले, पढ़े और बड़े हुए । हम दोनों लगभग एक हीं समय कमाई के लिए घर से निकले । खुश मिजाज, व्यवहार और बोलचाल में सलीकेदार था । शुरू से हीं हम दोनों में बहुत पटती । पहनावा भी एक सा ही रहता । बहुत लोग हमें भाई-भाई समझते ।

वह प्रतिभावन था, बुद्धि भी प्रखर थी परन्तु उसका सही उपयोग नहीं कर सका । शायद भाग्य अथवा संस्कार ने उसका साथ नहीं दिया । नौकरी की, व्यापार किया, कारखाने बैठाए पर सफलता कहीं भी नहीं मिली । प्रयोगों में हीं उसकी सारी शक्ति और बुद्धि लगती रही। सार्वजनिक कामों की धुन थी । माहेश्वरी समाज में व्याप्त रूढ़िवाद दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किए । खादी आन्दोलन में भी उत्साहपूर्वक भाग लेता रहा । इन सब कारणों से वह परिवार और उसके प्रति आवश्यक जिम्मेदारियों पर ध्यान नहीं दे पाता था । मेरा दृष्टिकोण भिन्न था, घर की जिम्मेदारियों को मैं बड़ा मानता, इसके बाद अन्य कामों के लिए सोचता। उसे समझाया भी करता परन्तु वह हँस कर टाल देता । जीवन के अन्तिम समय तक संघर्षों से हँसता हुआ जूझा । मेरा यह साथी छूट गया, परन्तु उसकी आत्मीयता स्नेह की स्मृति आज भी ताजी है ।

सामाजिक और राजनैतिक घटनाओं के साथ-साथ जीवन में खेल-कूद भी आवश्यक है। दूसरी झंझटों में व्यस्त रहते हुए भी हम लोग कुछ समय इसके लिए निकाल लेते।

खिदिरपुर स्थित रेसकोर्स में बड़ी चहलपहल रहती । बड़े दिनों में वायसराय एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बार सपत्नीक अपनी चार घोड़ों की फ़िटन में रेस देखने जाते। लालदिघी (डलहौजी स्क्वायर) से रेस कोर्स तक उन्हें देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाती। बग्घी के आगे-पीछे दो-दो घुड़सवार हाथ में बल्लम लिये रहते। बहुत से व्यक्ति तो केवल उन्हें निकट से देखने के लिए ही रेस कोर्स की बीस रुपये वाली सबसे ऊँची टिकट लेते।

एक दिन मैं भी रेस देखने गया। आठ आने में टिप की किताब खरीदी। पाँच रुपये किसी एक घोड़े पर लगा दिए। संयोग से वह घोड़ा जीत गया और मुझे २५ रुपये का लाभ हुआ। मैं अपने को रेस का विशेषज्ञ मान बैठा और कई घोड़ों पर दाँव लगाए। बाहर निकला तो ६० रुपये खो चुका था। मेरी तरह और भी अधिकांश व्यक्ति मुँह लटकाए खड़े थे। उस दिन के बाद मैं फिर कभी रेस देखने नहीं गया।

रेस में मारवाड़ी रईसों के भी कई घोड़े दौड़ते थे। इसे वे अपनी शान समझते थे और अंग्रेज साहबों से जान-पहचान का माध्यम।

हम लोगों के लिए सबसे सुलभ और निर्दोष मनोरंजन था—बड़े दिनों पर खेला जाने वाला पोलो का खेल। बीकानेर, जोधपुर और जयपुर के नरेशों की टीमें मैदान में उतरतीं। साथ में रहते सैकड़ों घोड़े और बड़ा-सा काफिला। इनमें से अधिकांश खिलाड़ियों को हम नाम से जानते थे। अंग्रेजों के मुकाबले इन देसी नरेशों के प्रति अपनत्व का भाव भी था। जब इनको जितते देखते तो मन में गुदगुदी सी होती। ये लोग अंग्रेज खिलाड़ियों से प्रायः तेज रहते और जीत भी अधिकतर इन्हीं की होती, इसलिए हम सभी को बहुत हर्ष होता। एक दिन एक अंग्रेज खिलाड़ी जोधपुर टीम के कप्तान रावराजा हणवंत सिंह का पीछा करते हुए घोड़े पर से गिर गया। चार-पाँच भारतियों नें जोर-जोर ताली बजाई। पास में खड़े हुए गोरे सार्जेन्ट ने हम लोगों को घुड़क दिया। हम डर गए। उस समय गोरे सार्जेन्ट का बड़ा आतंक था।

कलकत्ते से ३२ मील दूर डायमण्ड हार्बर की यात्रा सुखद और रोमांचकारी थी। एक दिन कुछ मित्रों के साथ कार से वहाँ गया। दूर-दूर तक अनन्त जल-राशि और किनारे तक लहराती तरंगों का दृश्य पहली बार देखा तो आश्चर्यजनक उल्लास हुआ। पहले कभी समुद्र देखा नहीं था—हमने इसी को समुद्र की संज्ञा दी और एक बड़ी नौका लेकर उस (समुद्र ?) में जल-विहार को चल पड़े।

लहरों के उतार-चढ़ाव के कारण नौका जोर-जोर से डोल रही थी। हम भय और आनन्द से सिहर उठे। वैसे कॉलेज स्क्वायर के तालाब में तैरना सीख चुके थे, किन्तु उस बँधे जल और इस अथाह जलराशि में बड़ा अन्तर था। जब वापस लौटे तो भाटा आ गया। नौका और किनारे के बीच दलदल हो गया था। मल्लाहों ने हमें अपने पीछे-पीछे एक निश्चित रास्ते से चलने को कहा। पैर कीचड़ में घुटनों तक धँसते जा रहे थे। मैं गलती से थोड़ा हट कर चलने लगा। देखा कि कमर तक धँस गया हूँ। निकलने के लिए जितना ही जोर लगाया उतना ही धँसता गया। मन भयातुर हो उठा और लगा कि कीचड़-समाधि होने में अब देर नहीं। आसन्न मृत्यु को सम्मुख देखकर मनुष्य के सोचने की शक्ति लोप हो जाती है। इस सन्दर्भ में कई शिकारियों के वर्णन पढ़ चुका था, आज प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। किनारे पर के एक मल्लाह ने बाँस फेंका और उसी के सहारे मुझे ऊपर खींच लिया। तब जान में जान आई।

बहुत समय पहले, जब खिदिरपुर डक नहीं बना था, डायमण्ड हार्बर विदेशी जहाजों के आवागमन का केन्द्र हुगली (गंगा) यहाँ काफ़ी चौड़ी हैं। यद्यपि यह स्थान कलकत्ता से सिर्फ ३२ मील दूर है, पर यहाँ का वातावरण भिन्न है। तेज और नम हवा, नारियल और ताड़ के लम्बे वृक्ष और सीधे-साधे लोग।

राजस्थानी कहावत है कि मनुष्य की छाया घिरत-फिरत की है। बुरे दिन के बाद अच्छे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिन भी आते हैं। १९३६ तक हमने व्याज सहित अपना सारा कर्ज चुका दिया। धुबड़ी (असम) में जहाँ हम प्रथम बार १९२५ में गए थे, वहाँ अब तेल और आटे की एक छोटी मिल बैठा ली। उसका काम छोटा भाई बृजलाल संभालने लगा। जे० टामस कम्पनी के साहब मुझसे खुश थे। उनमें से एक मि० रार्बटसन की ई० डी० सासुन के बड़े साहब से दोस्ती थी। उसने हमें इस फर्म के पाट की खरीद का काम दिला दिया। ई० डी० सासुन भारत के विदेशी फर्मों में बहुत बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान गिना जाता था। उनके बेलिंग विभाग के लिए जितने पाट की दरकार होती, सब हम लोग खरीद करते। काफी जिम्मेदारी और इज्जत का काम था। भाईजी बिड़ला ब्रदर्स की जूट गनी का काम छोड़ कर यह काम देखने लगे। इसमें अच्छा कमीशन मिलने लगा।

देश में मन्दी का दौर एक प्रकार से समाप्त हो गया था। जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी होने लगी। इसलिए भारत से अनेक प्रकार के कच्चे सामान खरीद हो रहे थे।

१९३७ में हमने अपना जूट बेलिंग का फर्म 'टांटिया ब्रदर्स लिमिटेड' के नाम से स्थापित किया। बहुत वर्षों से मन में जो साध थी, वह पूरी हुई। सलकिया (हावड़ा) में एक जूट प्रेस किराए पर ली और भाईजी तथा सत्यनारायण दोनों यह काम देखने लगे। इसके अलावा बंगाल के कई हिस्सों (गाँवों) में पाट की खरीदारी शुरू कर दी। भाग्य से रोजगार अच्छा होने लगा। हम चारों भाइयों की शादी हो गई थी।

मेरे दो बच्चे थे। परिवार बढ़ रहा था। आवागमन की सुविधा के लिए एक पुरानी कार दो हजार रुपयों में खरीद ली। याद है, जब हम पहली बार अपनी उस बड़ी डॉज गाड़ी में बैठकर जूट एक्सचेंज गये तो मन में बहुत हर्ष हुआ।

मैं जे० टॉमस का काम देखता और भाईजी तथा सत्यनारायण प्राय: ही अपनी पाट की मंडियों में जाते व बेलिंग का काम देखते। सुबह से रात दस बजे तक उनका काम चालू रहता। उस समय मुनीम गुमास्ते भी घड़ी देख कर काम नहीं करते थे। सुबह प्रेस जाते, दिन में काशीपुर या हटखोला, रात में बिलों का भुगतान करते, प्राय: ग्यारह-बारह बज जाते थे। इसी बीच, हमने विदेशों में पाट के निर्यात का काम भी चालू कर दिया।

प्रथम कलकत्ता-यात्रा के प्रसंग में अपने ममेरे भाई दौलतरामजी का जिक्र कर आया हूँ। उस समय उन्होंने हमें हर प्रकार की मदद दी थी। लेकिन उनका अब अपना कारोबार बन्द हो गया था, इसलिए हम उन्हें अपना हेड मैनेजर बना कर लें आए। उनका मान आदर पहले की तरह ही था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पैरों का चक्कर

मित्र कहते हैं कि मेरे पैर में चक्कर है। शायद यह सही भी है, क्योंकि मुझे नए-नए गाँव और स्थान देखने में सदा ही आनन्द आता है। एक जिज्ञासा लेकर नई जगह जाता हूँ और वहाँ पहुँचकर ताजगी महसूस करता हूँ। हर गाँव और स्थान की अपनी एक अलग दुनियां होती है, एक अलग तहजीब।

कुछ गाँव अतीत की रोमांचकारी दास्तान कहते हैं—वे नवांगतुक को आदिकाल अथवा मध्ययुग में ले जाते हैं तो कुछ आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के परिचायक हैं।

इन्हीं गाँवों के प्राचीन महलों में प्रतापी राजाओं की गौरव गाथा पढ़ी और यहीं के टूटे-फूटे खण्डहरों में सुनी है—गुलामों, अवलाओं के उत्पीड़न की करुण कहानी। यहीं के प्राचीन मंदिरों और आश्रमों में आर्य सभ्यता और संस्कृति को गौरव प्रदान करने वाले ऋषियों और मनीषियों के दर्शन कर कृतार्थ हुआ और इन्हीं गाँव में मुझे मिले हैं, महाभारत, रामायण और सूरसागर के कथावाचक और गायक, जो अपनी सरस और सुबोध शैली से जन-मानस को भारतीय दर्शन व संस्कृति के प्रति अनुप्रेरित करते रहे हैं।

हाँ, तो नए-नए गाँवों या स्थानों की यात्रा करना, यहाँ से वहाँ घूमते रहना सदा से ही मेरा शौक रहा है। सन् १९३७ की बात है। एक बार रेल विभाग ने तीसरे दर्जे की टिकट जारी की। महीने भर बंगाल में जहाँ चाहो, घूमों। इस टिकट के दामं थे तीस रुपये। मैंने इसका जितना उपयोग किया, उतना कम व्यक्तियों ने किया होगा। पूर्व बंगाल के मैमनसिंह, ढाका, नारायणगंज, सिलहट, खुलना, चटगाँव आदि शहरों के अलावा पश्चिमी और उत्तरी बंगाल की पूरी परिक्रमा कर आया। टिकट भाड़ा लेकर कुल खर्च हुआ एक सौ रुपये के लगभग।

दादीजी का उन्हीं दिनों सरदारशहर में स्वर्गवास हो गया। दादाजी के हाथों जाने की उनकी साध भगवान् ने पूरी की। वे पढ़ी-लिखी नहीं थी, परन्तु उनमें व्यवहारिक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में था। मध्यम श्रेणी के अभाव ग्रस्त परिवार की जिम्मेदारी को उन्होंने मान और इज्जत के साथ निभाया। बाहर से आने वाले संबंधियों या अतिथियों को कभी यह आभास नहीं होने दियाँ कि घर में किस प्रकार का अभाव है। यद्यपि हम उस समय तक कर्ज से मुक्त हो ही पाए थे फिर भी किसी प्रकार तीन हजार रुपये की बचत करके रघुनाथ जी के एक छोटे से मंदिर का निर्माण करा पाये। दादीजी घर के कामों में लगीं रहीं, कभी उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं चाहा, वे केवल इतना ही चाहतीं थीं कि मरने से पहले वे अपने पुत्र-पौत्रों द्वारा प्रतिस्थापित मंदिर में भगवान की पूजा कर सकें। हमें खुशी हुई कि हम उनकी यह आकांक्षा पूरी कर पाए। अब तो यह बहुत सुन्दर और दर्शनीय मंदिर हो गया है। इसके बाद हमारा सारा परिवार सरदारशहर से बनारस आ गया क्योंकि दादाजी की इच्छा अन्त समय में काशी वास करने की थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम सब भाई बारी-बारी से वहाँ रहने लगे। वैसे माताजी, पिताजी और छोटे भाई-ब तो वहाँ थे ही। उस समय से जसीडीह और बनारस ये दो स्थान हमें इतने अच्छे लगे कि प्रतिवर्ष वायुपरिवर्तन के लिए जाने लगे। मैं दादाजी के आने के बाद जब पहली बार बना गया तो वे मीरघाट पर किराये के एक छोटे से मकान में थे। कलकत्ते में अन्य कामों में फं रहने के कारण घरेलू चीजों की खरीदारी नहीं कर पाता, किन्तु यहाँ फुरसत रहती, इसलि पास की सट्टी में चला जाता। चार आने में दोनों समय के लिए पर्याप्त सब्जी। जाती।

कलकत्ते की अपेक्षा काशी का रहन-सहन सादा और सस्ता था। वहाँ पन्द्रह दिन रहा पत्नी और बच्चों को भी साथ ले गया था। शाम को नौका लेकर घण्टे-डेढ़ घण्टे गंगा-विह कर आते। बहुत वर्षों बाद एक निश्चिन्तता का अवसर मिला। मन में हर्ष, उल्लास और भावी उन्नति का विश्वास था। बनारस की जलवायु मुझे कुछ ऐसी अनुकूल पड़ी कि बहुत भूख लग लगी। एक रुपये में एक सेर मलाई आती और बारह सेर दूध। मैं जितने दिन वहाँ रह आधा सेर मलाई ले आता और हम भाई-बहन मिलकर खाते।

उसी समय से मेरी शारीरिक शक्ति बढ़ती गई। जब मैं खाने बैठता तो माताजी स्व परोसतीं और रसोइये को बाहर भेज देंती। उनको डर था कि कहीं मुझे नजर न लग जाय।

बनारस में ही मुझे कसरत का शौक लगा, जो आज तक थोड़े बहुत रूप में चालू है। जब तक काशी में रहा, रोज गंगाजी में तैरता। एक दिन बिना सुस्ताए मैंने दो फेरे किए। सुरक्षा के लिए एक नाव साथ ले ली। उन दिनों जो मुझे देखता वह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि सात वर्ष पहले मैं कृशकाय, रक्त-पित्त या क्षय का रोगी था। कलकत्ते में कई बार रसगुल्ले खाने की होड़ लगती। बहुत बार मैं साठ-साठ एक बार में खा जाता। एक सेर की मलाई की बर्फी भी एक ही बार में खा जाने में मुझे कोई दिक्कत नहीं होती। पाट की पक्की गाँठ पांच मन की होती थी; इसे मैं जमीन से उठा लेता। हरे नारियल (डाब) को हाथ में रखकर मुक्के से तोड देना मेरे लिए आसान था। इन सब बातों की चर्चा बढ़-चढ़कर फैलती रहती और लोग विशेष अवसरों पर मुझे आग्रह करते कि मैं पौरुष का परिचय दूँ। किसी शादी गोष्ठी में खाने बैठता तो कई व्यक्ति घेर लेते और बहुत देर तक खिलाते रहते। वे गिनते रहते कि मैंने कितने रसगुल्ले या बादाम की बर्फी खायी है। आज सोचता हूँ कि उस समय अपने शरीर के साथ अत्याचार किया, अब उसका फल भुगत रहा हूँ।

बनारस के लंगड़े आम भारत में प्रसिद्ध हैं। उस समय एक रुपए में अच्छे बत्तीस आम आते थे और चार सेर चीनी। छह सेर दूध के साथ इनका रस और चीनी मिलाकर कभी-कभी 'अमरस' की गोठ करते। खाने की होड़ लग जाती। आज तो केवल उन दिनों की स्मृतिमात्र रह गई है। न वह खुराक है, न वैसा स्वास्थ्य और न वे साथी ही।

फुरसत का समय था अतः कुछ देर दादाजी के पास बैठता, बाकी समय नागरी-प्रचारणी-सभा में जाकर किताबें और अखबार पढ़ता रहता। किसी समय देश में हिन्दी-पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रहालय था।

महामना मालवीयजी का हिन्दू विश्वविद्यालय एक बेजोड़ संस्था बन गई थी। यहाँ देश के विभिन्न भागों के विद्यार्थी रहते थे। मालवीयजी अनेक कामों में व्यस्त रहते हुए भी इस संस्था का संचालन स्वयं करते और चोटी के विद्वानों को वहाँ प्राध्यापक रखते। मैं जब कभी विश्वविद्यालय के प्रांगण में जाता, गौरव की अनुभूति होती। इतिहास में पढ़े प्राचीन गुरुकुलों की याद हो आती। क्या ही अच्छा होता, मैं भी इस पुनीत ज्ञानतीर्थ में विद्यार्जन कर पाता।

वैसे सारा बनारस शहर दर्शनीय है, क्योंकि यह भारतीय संस्कृति का पोषण स्थल रहा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। यहीं भगवान तथागत ने ज्ञान-प्राप्ति के बाद अपने शिष्यों को प्रथम उपदेश दिया था। यहाँ से सात मील दूर स्थित सारनाथ ने ऐसा आकर्षित किया कि बहुत बार शाम को वहाँ किसी टीले पर बैठ जाता और २४०० वर्ष के अतीत में पहुँच जाता। जापान और लंका के बौद्धों ने यहाँ बहुत सुन्दर बिहार बनवाए हैं। जुगल किशोर जी बिड़ला ने अतिथियों के ठहरने के लिए एक अच्छी धर्मशाला बनवाई है। यहीं पर भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने प्राचीन वस्तुओं का एक संग्रहालय भी स्थापित किया है, जो इतिहास के विद्यार्थियों के लिए तो लाभदायक है ही—सर्वसाधारण के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है।

इसके बनारस कई बार गया। कभी अकेला, कभी परिवार के साथ, क्योंकि दादीजी का सन् १९४० में देहान्त होने के बाद माताजी, पिताजी बहुत वर्षों तक वहीं रहे और हमने अपनी निजी कोठी दशाश्वमेध घाट के पास बना ली थी।

एक बार मैं जसीडीह गया हुआ था। हम लोग वहाँ से पाँच मील दूर डगरिया पहाड़ पर गये। दस-बारह मित्र थे। साथ में एक-दो बच्चे भी। चढ़ाई कठिन थी। एक बच्चा रास्ते में ही थककर बैठ गया और रोने लगा। मैंने उसे अपने कंधे पर बैठा लिया और चढ़ाई उतराई दोनों ही उसे लिए पूरी की। इस बात की चर्चा जसीडीह में कई दिनों तक रही।

सन् १९३७ में देश में प्रथम बार लोकप्रिय मंत्रिमंडल बने। लोगों में उत्साह फैला कि पूर्ण स्वराज्य न सही, प्रान्तीय स्वराज्य तो मिला। मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्ना को महात्मा गांधी और पण्डित नेहरू की लोकप्रियता अच्छी नहीं लगी। उनकी शिकायत थी कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने में असफल रही है और इसके द्वारा मुस्लिम संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है।

इन खबरों को समाचार पत्रों में पढ़ता तो मुझे बड़ा क्षोभ होता। एक दिन अपने कांग्रेसी मित्रों में जब मैंने यह कहा कि मि० जिन्ना पाकिस्तान के अपने ख्वाब को सफल बनाने की ओर बढ़ रहे हैं तो उन लोगों ने हँसकर टाल दिया। उनका तर्क था कि देश में अधिकांश समझदार मुसलमान जिन्ना का समर्थन नहीं करेंगे। चूंकि राजनीति मेरा क्षेत्र नहीं था, इसलिये मैं चुप रह गया किन्तु समय ने बता दिया कि मि० जिन्ना द्वारा मजहबी नारों के योजनाबद्ध प्रचार से पाकिस्तान की नींव पड़ी और सभी तबके के अधिकांश मुसलमान लीग के झंडे के नीचे आते गए। इस प्रकार अंग्रेजों की देश विभाजन की चाल सफल हुई।

अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर तेजी से परिवर्तन हो रहे थे। जर्मनी की शक्ति बढ़ती जा रही थी। ब्रिटेन, फ्रांस और रूस—यूरोप की ये तीन बड़ी ताकतें युद्ध से बचना चाहती थीं। हिटलर ने इसका फायदा उठाया और पड़ोसी राष्ट्रों को दबाता चला गया। अपने विरोधियों और खासकर यहूदियों पर उसके अमानुषिक अत्याचारों की बातें अखबारों में पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते। बड़े-बड़े यहूदी दार्शनिक, वैज्ञानिक और शिक्षाविद् उसके उत्पीड़न से तग आ गये और दूसरे देशों में चले गए।

जो भी हो, दुनिया की उथल-पुथल को मैं अपने व्यापारिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न करता। हमलोगों का अनुमान था कि बड़े पैमाने पर युद्ध अब बहुत दूर नहीं। हम दूनी मेहनत और उत्साह से काम में लग गए। सन् १९३८ से हमारा पाट का कारबार बढ़ता ही गया। आगे चलकर तो हम पाट-व्यवसायियों की प्रथम श्रेणी में गिने जाने लगे।

अथक परिश्रम ने मेरे स्वस्थ शरीर पर अपना असर दिखाना शुरू किया। एक दिन भाईजी ने बुलाकर वायु परिर्तन के लिए किसी पहाड़ी स्थान पर जाने की सलाह दी। मेरी भी बहुत दिनों से इच्छा हो रही थी, परंतु काम की अधिकता के कारण संकोच कर रहा था। अगस्त सन् १९३९ में सपत्नीक दोनों बच्चों को लेकर दार्जिलिंग गया। विवाह के उन्नीस वर्षों बाद मौज-शौक की मेरी यह पहली यात्रा थी। इससे पहले कभी पहाड़ी स्थान पर नहीं गया था। सिलीगुड़ी से पचास मील दूर समुद्र की सतह से सात हजार फीट ऊँचाई पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दार्जिलिंग है। भारत के दर्शनीय मनोरम स्थानों में इसकी प्राकृतिक छटा की चर्चा बहुत अपने मित्रों से सुन चुका था। यहाँ पहुँचने के लिए बस और रेल की सवारी करनी पड़ती हमने रेल को चुना, क्योंकि यह अपने आप में हमारे लिए एक नया आकर्षण था। तीन-डिब्बों की खिलौनानुमा ट्रेन पहाड़ों की सँकरी पगडंडी जैसे घुमावदार रास्तों से जब गुज तो रोंगटे खड़े हो जाते। भय और आनंद का मिश्रित अनुभव हमारे लिए अपूर्व था। ज्यों-ऊँचाई पर पहुँचने लगे, ठंड लगने लगी। खिड़कियों से दूर-दूर के दृश्य दिखाई देते। लहरों तरह पर्वत मानों एक दूसरे के पीछे से झाँक रहे हों। चारों ओर हरियाली, छोटे-छोटे पहाड़ों पर से बहते झरने। रुई के फाहे जैसे बादलों के टुकड़े उनसे खेल रहे थे। हमने ट्रेन खिड़की से नीचे झाँक कर देखा कि बादल कहीं नीचे मँडरा रहे हैं तो कहीं किसी पहाड़ी चोटी पर। एक और ऊँचे पहाड़ रास्ता रोके खड़े हैं तो दूसरी ओर गहरी खाई। हजारों नीचे तिस्ता को मैदानी भाग में देखा था कितनी चौड़ी, कितनी तेज धारा थी इसकी। य देखा, ऊँचाई से पहाड़ों की घाटी के बीच रुपहली नागिन सी बल खाती वह रही है। प्रसन्न हो उठा। कितना सुन्दर है, हमारा देश !'

दार्जिलिंग से कचंनजंघा की चोटी खुले मौसम में साफ दिखाई पड़ी। हिमाच्छादि शिखर सूर्य की किरणों से चमक रहे थे। सचमुच ही यह कंचनश्रृंग है।

टाइगर हिल से सूर्योदय देखा। यह भी सौभाग्य की बात थी, क्योंकि अक्सर बादल जाते हैं या मौसम साफ ने रहने के कारण वहाँ जाना व्यर्थ हो जाता है। वह दृश्य अनुपम था। अभी अंधेरा ही था। धीरे-धीरे पहाड़ी के पीछे से ऊषा की अरुण आभा झाँकने लगी और गहरी होती गयी। रंगों का अपूर्व खेल था। सारा वातावरण मानों इस अरुणाई में रँग गया। किरणों से खेलते-खेलते भगवान अंशुमाली कब ऊपर आ गए। इसका पता नहीं चला। मुझे प्रसादजी की पंक्तियाँ याद आ गईं :

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,
ऊषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार...............

दार्जिलिंग वास्तव में प्राची का स्वर्ग है। हम यहाँ की ऊँची-नीची सड़कों पर घूमते या घुड़सवारी का आनन्द लेते। साथ में पुलकित नाम का परिचारक था, जो खाना भी बना लेता, बच्चों को भी खिलाता रहता। तीस वर्ष की लम्बी नौकरी के बाद अब हमने उसे पेंशन दे दी है, किन्तु विवाह-शादी के अवसरों पर कभी-कभी बुला लेते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बीन के मुंडे लार पडै तो जनैती के करै

पहली सितम्बर की शाम को वहीं रेडियो पर सुना कि हिटलर ने सारी सन्धियों को तोड़कर युद्ध की घोषणा कर दी। निरीह पोलैंड पर जर्मनी नाजी सेना ने हमला बोल दिया। मुझे लगा कि स्थिति गंभीर हो सकती है। बाजार में घट-बढ़ कब, किस रूप में आ जाय, इसका ठीक नहीं। कम्पनी की जिम्मेदारी मेरे ऊपर थी। दूसरे ही दिन हमलोग कलकत्ते के लिए रवाना हो गए।

अगले दिन ब्रिटेन और फ्रांस को भी युद्ध में कूदना पड़ा। लड़ाई के नए-नए समाचार आने लगे। उस समय जर्मनी कीं शक्ति अजेय मानी जाती थी। थोड़े ही दिनों में उसने डेनमार्क और नार्वे को जीत लिया।

अंग्रेज सरकार ने शत्रुपक्ष की खबरें सुनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया, फिर भी हम कई दोस्त इकट्ठे हो जाते। दरवाजे बंदकर, बर्लिन रेडियो से प्रसारित समाचार सुनते। अंग्रेजों के प्रति हमारे मन में रोष था, इसलिए जर्मनी की जीत से हमें खुशी होती। सुबह मैदान में और दिन में बाजारों में इन खबरों की चर्चा रहती। हाँ, एक बात जरूर थी कि हमारी पिछली पीढ़ी के कुछ लोग बहुत विश्वास के साथ कहते, 'देख लेना अन्त में ब्रिटेन जरूर जीतेगा, भले ही जर्मन अभी उछल-कूद ले।' हम हँस दिया करते।

चूँकि मित्र शक्ति (ब्रिटेन और फ्रांस आदि) का विश्वास प्रजातंत्र में था, इसलिए गांधीजी इनका समर्थन कर रहे थे। फिर भी प्रथम महायुद्ध की तरह इस बार उन्होंने ब्रिटेन को सक्रिय सहयोग नहीं दिया। उदासीनता का विशेष कारण था कि सरकार ने न तो युद्ध के उद्देश्य को भारत के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट किया और न हमारी आजादी के बारे में कोई योजना या कार्यक्रम ही रखा।

अपने बसेरे से प्राणिमात्र को मोह हो जाता है। २६ नं० ताराचन्द दत्त स्ट्रीट वाले मकान से हमें कुछ ऐसा ही लगाव हो गया था। मगर परिस्थितियाँ मजबूर करतीं कि हम दूसरे मकान में जायँ। कारबार जम गया था। परिवार बढ़ रहा था। इसी मकान में मेरी कन्या रत्नी और ज्येष्ठ पुत्र नन्दू का जन्म हुआ। हमारे छोटे भाई सत्यनारायण और बृजलाल के विवाह हो चुके थे। शुरू-शुरू में दो कमरे थे, अब छह फिर भी जगह की कमी महसूस होने लगी। नाते-रिश्तेदार आते रहते, व्यापार के सिलसिले में भी लोगों का आना-जाना बढ़ने लगा। मकान की सफाई और वहाँ के रहने के स्तर से हमें कुछ झेंप सी लगती।

कई बार इरादा किया कि मकान बदल लें। मगर मकान-मालिक और पास-पड़ोस से लेकर नीचे पानवाले तक से इतना अपनापन हो गया था कि विचार स्थगित करना पड़ा। धेलियाजी के घर अगर थोड़ी भी मिठाई बनती तो उनकी माताजी स्वयं हमारे लिए नीचे ले आतीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छोटी बहन परमेश्वरी का विवाह इसी भवन में १९३९ में हुआ। इस समय हमारे की घड़ियाँ बीत गयी थीं और हम सँभल गये थे। फिर भी कर्ज पटाने में बिके हुए गहने फिर से बनवा नहीं पाये थे। विवाह का मौका आ गया। स्त्रियों को गहनों के बिना परे सी हो रही थी। पड़ोस में बुधमलजी भूतोड़िया की पत्नी ने हमारी कठिनाइयों को लिया। इस अवसर पर पहनने के लिए अपने दो-तीन सेट गहने दे गई।

एक बार ऐसा हुआ कि हमने नया मकान खोज लिया और तय कर लिया कि जगह देनी है। मकान-मालिक वासुदेवजी धेलिया को पता चला। उन्होंने कहा, "ईश्वर की कृ आप सम्पन्न हो गए हैं। मैं जानता हूँ, आपका परिवार बढ़ गया है और जगह की दि होती है।" फिर मुंस्कुराते हुए बाले-"हमारे मकान से जो भी किरायेदार जाते हैं, वे निज के मकान में जाते हैं। फिर क्यों न आप थोड़े दिन और ठहर जाएं और मकान बनवा जाएं।"

हमलोग जानते थे कि जितना किराया हम दे रहे हैं, कमरे छोड़ने पर उन्हें किरायेदारों से उससे दूनी रकम मिल सकती है। फिर भी अपना आपसी स्नेह और सौ कुछ इतना गहरा था कि रुपयों को उन्होंनें बड़ा नहीं समझा। परन्तु जाना तो था ही, इसी शुभ मुहूर्त देखकर नए मकान में जाने की तैयारी कर ली।

सामान ट्रक में लादा जा रहा था। हमारा दिल भर आया। दस वर्ष पहले कष्ट स्थिति में आए थे। हम सबने बचत का ख्याल कर अपने हाथों से सब काम किए। मकान सभी लोग आपस में घुल-मिलकर एक परिवार से बन गए। न जाने ऐसी आत्मीयता मिलेगी या नहीं। विदा के समय हमारे हाथ जुड़े रह गए, कुछ कह न सका। आँखें नम आईं, बच्चे तो रोने लगे थे।

नया मकान 'राम भवन' विवेकानन्द रोड पर था। पूरी दूसरी मंजिल हमने ली। बड़े-बड़े साफ-सुथरे हवादार कमरे थे। रोशनी, पानी की सुविधा थी। पड़ोसी भी अच्छे मि गए। जहाज का पंछी उड़-उड़कर फिर उसी पर आता है। अपने पुराने मकान से मुझे ढंग का लगाव था। मेरे पैर अनजाने में मुझे वहीं ले जाते। रात की बैठक पहले की त जमती। घंटे-डेढ़ घंटे धेलिया जी की नीचे वाली गद्दी में बैठते, ताश खेलते या गप करते।

हमारे दोस्तों के बीच यह मकान काफी मशहूर हो गया था। यहाँ ताश-शतरंज अलावा आपस की हँसी-दिल्लगी, खाने-पीने का मौज-शौक चलता। उस मकान का हम पड़ोसी आशाराम बियानी मेरी ही तरह भोजन-पटु था। इसे हम मकान वाले ही जान बाहरवालों से कहते नहीं। हमारी बैठक में कभी कोई तबीयतदार नए व्यक्ति आ जाते हमारे गोल के एक बन्धु खाने, खिलाने और खाने वाले की चर्चा छेड़ देते। बातचीत सिलसिले में नए सज्जन जब कहते कि, "नहीं-नहीं, तीन सेर दूध एक बार में पी ज असम्भव है।" आशाराम तुरन्त कहता, "ऐसी क्या बात है, कोई पिलाए तो मैं दो सेर लूँगा। हाँ, इससे ज्यादा नहीं।" हम में से कुछ मना करते तो कुछ बढ़ावा देते। आखिर देर बाद तीन सेर पर दस-दस रुपयों की शर्त हो जाती। फौरन पास की दूकान से दूध मँगा जाता और आशाराम अगस्त मुनि की तरह सामने का छोटा सा क्षीरसागर गले के नी उतार लेता। ऊपर से कुछ नमकीन भी। आगन्तुक बेचारा देखता रह जाता, चुपचाप रुपये निकाल देता। जीते हुए रुपयों से हमलोग पान-पत्ते और मिठाइयों का प्रबन्ध करते इसी प्रकार, कभी साठ-साठ रसगुल्ले, कभी बरफी तो कभी सेरों रबड़ी या मलाई खाने शर्तें मैंने और आशाराम ने जीतीं।

आशाराम के भाई भैरोदानजी और रंगलालजी थे। इन लोगों ने भी उसी मकान तरक्की की। अब वे अपने मकानों में चले गए। वे अपनी एक मजेदार घटना सुनाते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहले आशाराम अपने भाई रंगलालजी के साथ आरमेनियन स्ट्रीट के एक बासे (ढाबे) में भोजन करता था। ढाबा साझे का था, जितने सदस्य होते, सबों पर कुल मासिक खर्च बँट जाता। हमारे बियानी बन्धु भोजन वीर थे ही। दोनों भाई डटकर खाते। लोगों ने हिसाब लगाकर देखा कि खुराक के औसत खर्च के अनुपात से प्रत्येक सदस्य को तीन-चार रुपये प्रति माह अधिक लगे हैं। आशाराम और रंगलालजी की जो उन्होंने खुराक देखी तो सबने हाथ जोड़ लिए और अपने बासे की सदस्यता से दोनों को पृथक् कर दिया।

बाद में बहुत वर्षों तक शनिवार, रविवार या कभी रात्रि में अपने पुराने बसेरे में मन बहलाने जाता। पिछली बातें याद हो जातीं। हम कितना ऊधम मचाते थे। घेलिया जी की गद्दी में कुश्तियाँ हो जाती, वाह-वाह का शोर मचता। कितने बेफिक्र थे उस समय।

इस मकान के बाहर छोटू पानवाला था। हम उसे बहुत परेशान करते। यह कहकर उलझ जाते कि पान एक पैसे में सिर्फ दो ही देता है, पर मसाला पूरा नहीं देता। छोटू भी कम नहीं था, हाथ-पर जोड़कर पैसे वसूल ही लेता था।

अब भी कभी-कभी चला जाता हूँ। छोटू के बेटे-पोते बैठते हैं। पान लेता हूँ और कुछ क्षणों के लिए ही सही, अपनी पुरानी दुनियाँ में खो जाता हूँ।

संयोग से एक दिन वहाँ छोटू को देखा। पिचके गाल, सफेद बाल और टूटे दाँत। ऐसा लगा यह छोटू नहीं, उसकी छाया है। किन्तु सहसा ख्याल आया, मैं तो पैंतीस बर्षों में इसी तरह बदल गया हूँ। काल किसी को नहीं छोड़ता, राजा हो रंक।

तीन वर्ष काशीवास करने के बाद १९४० में मेरे दादाजी का स्वर्गवास हो गया। परिवार के लोग जहाँ भी थे, समाचार पाकर दूसरे ही दिन काशी पहुँच गए। उनसे अन्तिम समय मिल न सका, इसका दुःख रह गया। माताजी ने बताया कि जीवन की अन्तिम साँस तक वे 'राम-राम' जपते रहे।

दादाजी का भी जीवन संघर्षपूर्ण रहा। बहुत ही छोटी उम्र में जीविका के लिए अपने गाँव बिदासर को छोड़कर सरदारशहर चले आये थे। उन दिनों न आवागमन की इतनी सुविधा थी, न व्यापार-व्यवसाय के साधन सहज उपलब्ध थे। कठोर परिश्रम कर उन्होंने व्यापार किया और अपने पैरों पर खड़े हुए। हमारी हवेली उन्होंने ही बनवाई। दादीजी हमेशा कहतीं, "बेटा इसके हरेक भाटे में तुम्हारे दादाजी का पसीना है। बड़ी साध से हमलोगों ने इसे बनवाया है। २० वर्षों के लम्बे अर्से तक रामजी से प्रार्थना की थी कि हमारे अपने बैठने के ठाँव हो जायँ।"

दादाजी जब तक जीवित रहे, उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति का मुझे भी इतना बोध नहीं हुआ। अभाव सदैव अखरता है। आज मेरे जीवन के संध्याकाल में जब नाती-पोते दुलार के लिए मेरी गोद में लोट-पोट मचाते हैं तब मैं भी अपने दादाजी की प्यार-भरी थपकियाँ खोजने लगता हूँ।

बचपन में पन्द्रह वर्ष तक उनके पास रहा। समझ आने के बाद फिर कभी अधिक रहने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि कमाई के लिए कलकत्ता आना पड़ा। मगर जो कुछ भी उनसे जाने-अनजाने में सीखा, वह केवल उनके आचरण और व्यवहार से। वे बहुत ही संयमी और परिश्रमी थे। 'राम' के बड़े भक्त थे। सादगी तो मानों उनके स्वभाव का अंग ही बन चुकी थी। उन्हें सदैव एक ही ढंग के पहरावे में देखा-पगड़ी, अंगरखा, चद्दर और धोती, पैरों में देसी जूते सर्दियों में ऊपर से कम्बल डाल लेते। शायद इसलिए मुझे कुर्ता और धोती पहनने की आदत है। पगड़ी का तो रिवाज ही उठ गया। उनकी सादगी और मेहनत मुझे कैसे प्रभावित कर गई—यह नहीं जानता दादाजी से सुना करता था, अपने प्रारम्भ के दिनों में कितनी जी तोड़ मेहनत उन्हें करनी पड़ी थी। राजस्थान के मरुअंचल में तीस-तीस कोस ऊँट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की सवारी कोई साधारण बात नहीं । मगर दादाजी माल लाते और तिज़ा करते ।

उनकी अपनी सन्तान नहीं थी । पिताजी उनके दत्तक पुत्र थे । वे दादीजी के बड़े भाई लड़के थे । जो भी हो, पिता-पुत्र के बीच स्नेह, आदर और अनुशासन की मर्यादा जैसी हमने देखी, वैसी शायद ही कहीं देखने को मिले ।

वे रामसनेही सम्प्रदाय के थे । जीवन में उन्होंने कई करोड़ 'राम' नाम जपे थे । काम करते जाते, मगर जप नहीं छूटता । शादी-व्याह, पर्व-त्यौहार हो या व्यापार, जीवन बयासी वर्षों के साथ 'राम' चलता ही रहा । प्रत्येक चौमासे में बाहर के साधु-महात्मा रामद्वारें में आकर ठहरते । दादाजी नित्यप्रति वहाँ जाते और साधुओं को भक्तिपूर्वक भण्डारा कराते । हम बच्चों को भी साथ ले लेते । हमारे लिए तो सबसे बड़ा आकर्षण था प्रसाद, बताशे और मीठे चने ।

मैं दादाजी की सी राम-भक्ति अपना नहीं सका । फिर भी उनके राम नाम के 'चमत्कार' के दो-एक दृष्टान्तों पर मन में आज भी कभी-कभी जिज्ञासा जग उठती है । मेरी छोटी बहन महादेवी का सन् १६२३ में विवाह था । हमारी आर्थिक अवस्था जटिल थी । 'तियल' के लिए दो सौ अस्सी रुपयों की व्यवस्था नहीं हो पा रही थी । दादीजी के पास जो कुछ था सब दे चुकी थीं । कहीं से कुछ भी आशा नहीं थी । पिताजी बड़े पशोपेश में थे । मगर दादाजी का 'राम' पर विश्वास था । उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा । थोड़ी देर में हमारे एक दूर के संबंधी आए और स्वयं ही पाँच सौ रुपये उधार दे गए ।

दूसरी घटना मेरे साथ काशी में हुई थी । जब छोटा भाई सत्यनारायण यात्रा में बिछुड़ गया था । तब दादाजी के कहे अनुसार मैंने बड़ी भक्ति से 'राम' नाम लेना शुरू किया । वह मिल गया । इसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ ।

दादाजी को दीर्घायु मिली । अपने जीवन के अन्तिम समय में उन्होंने हमें फलते फूलते देखा । मगर अपना आचार और विचार उन्होंने एक-सा ही रखा । मृत्यु के पूर्व उन्होंने जि सार्वजनिक कामों के लिए माताजी और पिताजी को कहा, उन्हें आगे चलकर हम पूरा कर सके, इसका संतोष माताजी और पिताजी को रहा । यह दादाजी का ही आशीर्वाद था ।

सन् १६४० के जून में फ्रांस की राजधानी पेरिस को जर्मन सेनाओं ने दखल कर लिया । हम समझते थे कि फ्रांस विश्व में बेजोड़ अपने इस शहर के लिए अवश्य लड़ेगा । मगर आश्चर्य हुआ, जब बिना प्रतिरोध के जर्मन बड़ी शान से पेरिस में घुस पड़े । संभव है, फ्रांस की विलासिता और नैतिक पतन इसका कारण रहा हो ।

ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत कम ही होते हैं । अवध का पतन भी १६ वीं शताब्दी के मध्य में कुछ इसी प्रकार से हुआ था । अंग्रेज सैनिकों की छोटी सी टुकड़ी ने नवाब वाजिदअली शाह को गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया । उनकी फौजें और लखनऊ के वाशिन्दें ऐयाशी मौज-शौक व अफीम सेवन में डूबे हुए थे । न एक कतरा खून गिरा और न कोई घायल हुआ-अवध पराधीन हो गया ।

रूस ने देखा कि जर्मनी एक के बाद दूसरे देश जीतता हुआ, फ्रांस को पराभूत कर बैठा तो उसने हिटलर से संधि कर ली । इसके बाद पोलैण्ड और फिनलैण्ड पर रूसी सेना ने जो अत्याचार किये, उन्हें पढ़कर मेरे मन में राहुलजी की पुस्तकों के अध्ययन से जो धारणाएँ रूसी साम्यवाद के प्रति बनी थीं, उनमें अन्तर आ गया ।

डेनमार्क में ब्रिटिश सेना को जर्मनी ने करारी हार दी । काफी नुकसान उठा कर बचे-खुचे सैनिक ब्रिटेन पहुँच पाये । अब ब्रिटेन के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था, क्योंकि युद्ध उनके दरवाजे तक चला आया । मुझे अच्छी तरह याद है, हमारे आफिस के अंग्रेज साहबों का चेहरा इन समाचारों से काफी गंभीर हो गया था । यह पहला मौका था, जब कि मैंने सचमुच कुछ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चिन्तित पाया।

ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल में परिवर्त्तन किया गया। चैम्बरलेन की जगह बिन्स्टन चर्चिल प्रधान मंत्री बने। उस समय इस विश्वविश्रुत कूटनीतिज्ञ ने अपने देशवासियों को जो संदेश दिया, वह इतिहास में बेजोड़ कहा जा सकता है। उसने कहा था, "मेरे पास आपको देने के लिए न आशा है, न भरोसा, केवल आँसू है। परंतु मैं यह कह सकता हूँ कि अंतिम विजय हमारी होगी।" इन शब्दों ने किंकर्तव्यविमूढ़ ब्रिटेन की जनता पर जादू का सा असर किया। उनमें आत्म-विश्वास जगा और वे दृढ़तापूर्वक युद्ध के लिए डट गए।

ब्रिटेन पर संकट था, किन्तु भारत पर इसका कोई खास असर नहीं दिखाई पड़ा। कलकत्ते का वातावरण साधारण रूप से यथावत् रहा। हाँ, पिछले महायुद्ध के अनुभवी व्यापारी अटकले लगा रहे थे कि लड़ाई लम्बी चली तो निश्चित रूप से बाजार अच्छे रहेंगे।

इसी बीच, सन् १९४१ में कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ कलकत्ते में हुई। कुछ दिनों की बीमारी के बाद कवि गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर का देहान्त हो गया। उनकी बहुत सी रचनाएँ पढ़ चुका था। प्रतिभा का कायल था। गीताञ्जलि का हिन्दी अनुवाद पढ़ने पर मुझे इतना अच्छा लगा कि मूल बंगला में पढ़ने की प्रेरणा हुई।

भारत का यह सौभाग्य था कि एक ही शताब्दी में दो युग पुरुषों ने यहाँ जन्म लिया, महात्मा गाँधी और कवि गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर। बापू ने राष्ट्र के क्रिया-पक्ष में तो गुरुदेव ने भाव-पक्ष, बुद्धि-पक्ष में नवीन प्राणों का संचार किया। नाना प्रकार की झंझटों के कारण चाहते हुए भी मैं उस समय तक शान्ति निकेतन नहीं जा पाया था। मगर मन में सन्तोष था कि रवि बाबू को उनके स्वरचित नाटक 'चण्डालिका' और 'चिरकुमार सभा' में अभिनय करते देखा। 'चण्डालिका' में उनका मेघ गम्भीर स्वर सुना था, जबकि 'चिरकुमार सभा' में नायक के रूप में उन्होंने हमें बहुत हँसाया।

रवीन्द्रनाथ के जीवन-बोध की पृष्ठ-भूमि में भारतीय चिन्तन और उपनिषदों की भाव धारा स्पष्ट है। कविता, नाटक, निबन्ध, उपन्यास, संस्मरण सभी रचनाओं में उन्होंने अपने अन्तःकरण की उपलब्धियों को अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि जनमानस को वें इस युग में, तुलसी की तरह आलोड़ित कर सके।

गुरुदेव की मृत्यु के समाचार से मुझे बहुत सदमा पहुँचा। लगा कि देश ने कोई बहुत बड़ी निधि खो दी। बार-बार यही दुःख होता कि अपने समय के ऋषितुल्य एक महान व्यक्तित्व के सान्निध्य-लाभ से वंचित रह गया। उस दिन कुछ भी नहीं कर सका। सीधे, उनके निवास-स्थान जोड़ासाँकू राजभवन में गया। सफेद फूलों से ढका उनका पार्थिव शरीर रखा था। देखा, चिर निद्रा में सो रहे हैं, किन्तु मुखमंडल पर वही सौन्दर्य, आभा और आकर्षण।

अंतिम दर्शन के लिए भीड़ बढ़ती जा रही थी। कहते हैं, पहले कभी, इतनी बड़ी संख्या में लोग किसी शव-यात्रा में शामिल नहीं हुए। जिधर दृष्टि जाती, अपार जन-समूह। कौन हिन्दू, कौन मुसलमान या क्रिस्तान, अमीर-गरीब किसी भेदाभेद का पता नहीं। लगता था, मानव-सागर के बीच एक श्वेत कमल बहता जा रहा है। मेरी आँखों से न जाने कब आँसू बहने लगे।

दूसरी घटना थी, श्री सुभाषचन्द्र बोस का अचानक गायब हो जाना। वे कुछ दिनों से बीमार थे, जेल से छोड़ दिए गए थे। अपने एल्गिन रोड वाले मकान में नजरबंद थे। आने-जाने, मिलने-जुलने वालों पर पुलिस कड़ी नजर रखती। वे बाहर निकल नहीं सकते थे।

वे खास-तौर से बँगले के युवकों के हृदय-सम्राट् थे। उनकी स्पष्ट-वादिता और ओजस्वी भाषण से हमें जोश आता। त्रिपुरी अधिवेशन के बाद से कांग्रेस में उनके साथ न्यायोचित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यवहार नहीं हुआ। महात्मा गाँधी का रुख भी हमें पक्षपात पूर्ण लगा, इसलिए हम और सुभाष बाबू के प्रति हमारी गहरी सुहानुभूति थी।

उनके एकाएक अदृष्य हो जाने के समाचार से सारे देश में सनसनी फैल गई। लोग तरह के शक करते कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मारने के ख्याल से गायब कर दिया है, कुछ लोग कहते कि रूस या जर्मनी चले गये, इत्यादि।

सरकार ने सारे देश में जासूसों का जाल बिछा दिया, पर वे पकड़ में नहीं आए और उनका पता ही चला। बहुत दिनों बाद खबर लगी कि काबुल होते हुए सुभाष बाबू जर्मनी पहुँच गए। इस समाचार से हम बहुत आश्वस्त हुए। सोचते थे कि अवसर पाकर बहुत बड़ी सेना के सहारे देश को स्वाधीन करेंगे।

ऐसा हुआ भी। उन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन किया और आजादी की घोषणा की। यह इतिहास की सुप्रसिद्ध घटना है। सुभाष बाबू में विचित्र आर्कषण था। जब भी मिलता, उनके भाषणों को जरूर सुनता। सारे काम एक तरफ रह जाते। उनके मुखमण्डल और ओज भरी वाणी की ओर खिंच सा जाता।

मैं प्रयत्नशील रहा हूँ कि बड़े लोगों के सान्निध्य का सौभाग्य मिले, चाहे वे किसी क्षेत्र के हों। पर मुझे नेता जी से भेंट का अवसर नहीं मिला। उस समय तक राजनीति क्षेत्र नहीं था, इसलिए आज भी मन मसोस के रह जाता हूँ।

सन् १९४१ का वर्ष अंग्रेजों की हार का था। लन्दन पर लगातार बमबारी होती सामुद्रिक युद्ध में भी बहुत से वाणिज्य पोत और युद्ध पोत डूब गए। हम आपसी बात-चीत कहा करते कि ब्रिटेन किसी भी समय घुटने टेक देगा। कोई किसी शर्त में हारता तो जाता, चर्चिल हार गया, हिटलर जीत गया। आपस में कभी-कदाच हार-जीत होती तो हारने वाले को हम लोग कहते चर्चिल और जीतने वाले को हिटलर।

एक दिन शाम को बड़ा बाजार से होता हुआ घर लौट रहा था। एक जगह देखा, भीड़ लगी हुई है। दो साँड़ लड़ रहे थे। काले साँढ़ को हिटलर और सफेद को चर्चिल नाम दिया गया था। काला कुछ छोटा मगर जवान था और सफेद बड़ा था, उम्र भी ज्यादा थी। जमकर दोनों आपस में गुथे हुए थे। कभी सफेद पीछे हटता तो कभी काला। दर्शक ललकारते और ताव दिला रहे थे। एकाएक काले साँढ़ ने अपने सींगों से सफेद पर ऐसा दाँव लगाया कि उसके पैर उखड़ गए। काला उसे रगड़ता हुआ पीछे दौड़ा। बच्चे से बूढ़े तक शोर मचाने लगे 'चर्चिल हारा, भाग खड़ा हुआ।'

अंग्रेजों की जो भी हालत अपने देश में हो रही हो, यहाँ उनकी सरकार पूर्ववत् चल रही थी। बल्कि उन्होंने शासन यंत्र को अधिक सुसंगठित कर लिया और सख्ती बरती। उनका मनोबल ऊँचा था। बाजार में उठती अफवाहें और पराजय की व्यंग उक्तियों से विचलित नहीं होते। उनमें से अधिकांश करोबार छोड़कर युद्ध में सक्रिय रूप से सहयोग के लिए अपने देश चले गए। हमारे आफिस में जो बड़ी उम्र के साहब थे, वे भी वहाँ चलाने या इसी ढंग के काम के लिए भरती हो गए थे। मेरी जान-पहचान का एक साहब था। जब वह लड़ाई में जाने को तैयार हुआ तो मैंने पूछा—'आप वहाँ जाकर क्या करेंगे ?' उसका जबाव था, 'घायलों की मरहम पट्टी'।

जो अंग्रेज महिलाएँ यहाँ रह गयीं, तरह-तरह से युद्ध में सहयोग-सहायता पहुँचाने के काम में लगीं। बड़े-बड़े व्यापारी और अफसरों की पत्नियाँ तक स्वेटर, मोजे, मफलर बुनतीं, कपड़े सिलाई करतीं, रुपये-पैसे, तोहफे इत्यादि इकट्ठा करतीं और सैनिकों के लिए भेज देतीं।

देश में रंगरूटों की भरती जोर से चल रही थी। चारों तरफ गाँवों में घूम-घूम कर सरकारी एजेन्ट काम कर रहे थे। राजस्थान, पंजाब, गढ़वाल और कुमायूँ उनके मुख्य क्षेत्र

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्षेत्र थे। उनका एक गाना था :—

'भरती हो प्यारे रंगरूट, भरती हो प्यारे।
अठै मिले तनै फाट्या लीतरा, बठै मिलै फुल बूट,
अठै मिले तनै मेला कपड़ा बठै मिलेगी सूट,
अठै मिले तने रूखी रोटी, बठै मिलेगा फ्रूट।
भरती हो प्यारे .....'

—रे रंगरूट, फौज में भरती हो जा। यहाँ तो तुझे फटे जूते, मैले कपड़े और रूखी रोटी मिलती है और सेना में जायगा तो फुल बूट, सूट और फल मिलेंगे। इत्यादि

इधर बेरोजगारी थी, उधर तरह-तरह की सुख-सुविधाएँ, इसलिए लोग बड़ी संख्या में फौज में भरती हुए। रजवाड़ों से भी धन और सैनिक काफी मिले, क्योंकि राजे-महाराजे अंग्रेजों को खुश रखना चाहते थे। हमारे बीकानेर के राजा शार्दूल सिंह अपनी फौज लेकर स्वयं मध्यपूर्व की लड़ाई में गए।

जहाँ तक व्यापार का सम्बन्ध था, सन १९४०-४१, दोनों वर्ष भारत के लिए आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभप्रद रहे। उद्योग-धन्धों की बढ़ोतरी हुई और ब्रिटेन का हमारे देश पर से कर्ज पट रहा था। युद्ध के लिए वह कच्चे माल और तैयार समान यहाँ से ज्यादा-से-ज्यादा खरीदता था। इस वजह से धनी लोगों को अपनी पूंजी उद्योग-धन्धों में लगाने की प्रेरणा मिली। विभिन्न प्रकार के नए-नए कारखाने स्थापित हुए। भारत के उद्योग व्यापार में अच्छी प्रगति होने लगी।

जापान भी लड़ाई की पूरी तैयारी कर चुका था। ७ दिसम्बर, १९४१ के दिन अचानक उसने अमरीका के बन्दरगाह पर्लहार्बर पर हवाई हमला किया और उसकी नौसेना को भारी क्षति पहुँचाई। फुर्तीले और बहादुर हवाबाजों ने प्रशान्त महासागर स्थित अमरीकी जहाजी बेड़े को कागजी नावों की तरह नष्ट कर दिया। जापानी सेना आँधी की तरह शत्रु सेना को खदेड़ती हुई बर्मा में घुस आई। अंग्रेज घबराए और उन्होंने वहाँ से आवश्यक वस्तुएँ हटाना या नष्ट करना शुरू कर दिया ताकि शत्रु के हाथ न लगें।

पर्ल हार्बर के पतन के बाद जापानी फौजें दुगने उत्साह और आत्म विश्वास के साथ सिंगापुर के तरफ बढ़ीं। ब्रिटेन का पूरब में यह अभेद्य दुर्ग था। यहाँ प्रिन्स आफ वेल्स और रिपल्स जैसे अजेय युद्ध पोत थे। एक दिन समाचार मिला कि जापानी छतरी सैनिक इन जहाजों के मस्तूलों में बम बांध कर कूद पड़े। परिणाम स्वरूप वे तो शहीद हो गए परन्तु उन्होंने शत्रु के दोनों जहाजों को हजारों सैनिकों और विपुल युद्ध-सामग्री समेत समुद्र में डुबा दिया। जापानी सैनिकों के इस आत्म बलिदान से खुशी हुई। चौबीस वर्ष बाद १९६५ के भारत-पाक युद्ध में हमारे जवान भी सीने पर बम बाँध कर पाकिस्तानी टैंकों के नीचे लेट गए और अपनी बलिदान से उन्हें विध्वस कर दिया।

तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी। १० मार्च १९४२ को जब रंगून का पतन हुआ तो वहाँ से लाखों भारतीय पहाड़ी और भयानक जंगलों के रास्तों से भाग कर भारत में चले आए। इनमें सभी वर्ग के लोग थे। पीढ़ियों से वर्मा में रहते-आए थे, वहीं पैसे कमाए और सम्पत्ति बनाई। अंग्रेजों के भागने के कारण नाना प्रकार की अफवाहों से वे घबरा गए।

कलकत्ते की कई सार्वजनिक सस्थाओं ने इनकी सहायता की, बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी ली। इनमें 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' का नाम उल्लेखनीय है। सोसाइटी की ओर से मुझे भी सियालदह स्टेशन के कैम्प में सेवा-कार्य के लिए स्वयं सेवक के रूप में भेजा गया।

इनकी बड़ी दयनीय दशा थी, न पास में पैसे थे और न भविष्य का पता। जल-मार्ग बन्द हो चुका था, इसलिए स्थल-मार्ग से आना पड़ा। घने जंगल, ऊँचे-नीचे पहाड़ी रास्ते। धूप

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और वर्षा—साथ में जो कुछ लेकर चले थे तो आराकानी मुसलमानों ने लूटा या करेन डा ने। खाने पहनने की चीजें भी नहीं छोड़ीं।

लोग थक कर गिर पड़ते या बीमार हो कर चल नहीं सकते तो उन्हें वहीं छोड़ जाता। डाकूओं से बचते तो साँप-बिच्छुओं का डर। रात में जहरीले मच्छरों का प्र बहुत से तो थकान और बीमारी से मर गए।

इन घटनाओं के साथ देश की राजनीति में भी तेजी से परिवर्तन हो रहे थे। अ १९४२ में गांधीजी ने 'करो या मरो' का आह्वान किया। ब्रिटिश सरकार स्थिति के तैयार थी। दमनचक्र चला। भारतीय आई० सी० एस० और आई० पी० एस० अफसरों अपने ही देश वासियों के प्रति जो लज्जाजनक व्यवहार किए, उसे गुलामी का अभिशाप कहा जाएगा।

कलकत्ते में कुछ घटनाएँ तोड़-फोड़ की हुईं, पर दबा दी गईं। आन्दोलन का सबसे रूप बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में रहा।

एक बार मैं दुमका से जसीडीह जा रहा था। रास्ते में देखा, स्वयं सेवकों को पुलिस सिपाही मारते-पीटते ले जा रहे हैं। पूछने पर पता चला कि अकारण ही जवान लोगों पकड़ ले जाते हैं। इनके माँ-बाप से अफसर लोग इसी बहाने रुपए ऐंठते हैं। माँ-बहनों को मौके-बेमौके नहीं छोड़ते। बड़े अफसरों की जो बातें सुनने में आतीं तो यही लगता घूसखो अनाचार और अत्याचार कहीं हमारे जन-जीवन में घुन की तरह न लग जाए।

भारत में अन्न-वस्त्र और उपयोगी वस्तुओं के भाव बढ़ने लगे। बाजार से ये चीजें गाय होने लगीं।

हमलोगों ने अपने स्त्री बच्चों को बनारस भेज दिया था। व्यापार में इतना लाभ हु कि उनके बहुत कहने-सुनने पर भी मैं और भाईजी कलकत्ते ही रहे। उस समय यहाँ मकानों की ऐसी हालत हो गयी थी कि किराया तो दूर की बात, मकान मालिक अपने पास कुछ देकर लोगों को बसाना चाहते थे जिससे कि देखभाल होती रहे।

शाम होते ही सड़कें सूनी हो जातीं। रात में ब्लैक-आउट के कारण घुप्प-अंधेरा रहता बहुत से रास्तों और मकानों में बमबारी से रक्षा के लिए मकानों में तलघर बना लिए गये थे जैसे ही सायरन (खतरे की घंटी) बजती, हम उनमें चले जाते। एक दिन हिम्मत कर के मैं बरामदे से बम गिरते देखे। आकाश से सर्र करती हुई लाल लपटें नीचे की तरफ आ रही थी काफी जोर से धमाके सुनाई देते। दूसरे दिन जहाँ जानकारी होती, वह जगह देखने जाते। टू हुए मकान, मलवे और जली हुई वस्तुएँ दिखाई देती। मन में कँपकँपी सी होती। चारों तर बमों के टूटे हुए टुकड़े बिखरे रहते। कुछ हम अपने साथ दूसरों को दिखाने ले जाते। उस सम रसोइए और नौकर भाग गए थे, इस लिए लोग मिलजुल कर खाना बना लेते। बांग बिल्डिंग की हमारी गद्दी में बीसियों मित्र-परिचित सुबह-शाम भोजन के लिए आते। रात भी मेला सा लगा रहता।

सरकारी मकानों को काले रंग से पोत दिया गया था। विक्टोरिया मेमोरियल और ब पोस्टआफिस की भव्य इमारतें इस रंग में बहुत ही भोड़ी दिखतीं। ट्रामों और बसों सवारियों की धक्का-मुक्की की जगह अब बेचें खाली रहतीं। जहाँ खाद्य पदार्थों व अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं के भाव तेज थे, वहीं जमीन, मकान और फरनीचर सस्ते हो गए। लोगों ने यह समझ लिया कि अब तो यहाँ जापान का राज्य निश्चित है।

ब्रिटिश और भारतीय फौजें तो कलकत्ते और आसपास के अंचलों में पहले से ही थीं। जापानी आक्रमण के साथ-साथ बहुत बड़ी संख्या में अमेरिकन फौजें भी कलकत्ते में आयीं। पार्क स्ट्रीट, चौरंगी और फ्री स्कूल स्ट्रीट आदि मुहल्ले में शाम के बाद ये चक्कर लगाते और रूपया पानी की तरह बहाते। इनमें काले, गोरे दोनों तरह के सैनिक थे। मारपीट, शराब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पीना और खुले आम एंग्लो इण्डियन या ईसाई लड़कियों को बगल में दबाये सड़कों पर चलना मामूली बात थी। चौरंगी के सामने वाले किले के मैदान में बमबारी से बचने के लिए खाइयाँ थीं। शराब में धुत ये सैनिक लड़कियों को लेकर रात भर वहाँ पड़े रहते। अभाव और वासना की प्यास का योग-सूत्र जब पैसा बन जाता है तो सीमा का अतिक्रमण होना कोई आश्चर्य नहीं।

इन विदेशी सैनिकों के पैसे मौज-शौक में खत्म हो जाते तब ये रेस्तराँ, होटल या रेस कोर्स में अपने कैमरे, घड़ियाँ या अन्य सामानों को सस्ते में बेच देते। अधिकतर चीनी या मुसलमान इस ताक में इनके इर्दगिर्द घूमते रहते और ये वस्तुएँ खरीदकर बाजार में ऊँचे दामों पर बेचते। काला बाजार का सूत्रपात तभी से हुआ।

एक रात नौ बजे बहुत जोर से बमबारी हुई। उस दिन जो लोग हावड़ा से रवाना होकर बनारस पहुँचे, उन्हों ने यह अफवाह फैला दी कि हम लोग तो किसी तरह बच कर चले आए पर पीछे से हावड़ा ब्रिज और सारा कलकत्ता जल रहा था। हमारे परिवार में भी चिन्ता व्याप्त हो गई। दो-तीन दिन बाद ही माताजी का बनारस से फोन आया कि अगर तुम दोनों नहीं आते हो तो तुम्हारे पिताजी और मैं कलकत्ते आ रही हूँ। कारोबार इतना फैला हुआ था कि भाईजी तो नहीं जा सके, किन्तु मुझे उन्होंने बनारस भेज दिया। वहाँ पहुंचा तो लगा कि सारा कलकत्ता उठ कर आ गया है। सब तरफ जाने पहचाने परिचित चेहरे दिखाई देते।

थोडे दिन बाद ही मैं पत्नी और बच्चों को लेकर राजस्थान चला गया। यहाँ भी आसाम, बंगाल और बर्मा से आए हुए लोगों का जमघट था। ऐसा देखा गया कि पचासों वर्षो से जो व्यक्ति कभी देश नहीं आए, वे भी बाल-बच्चों सहित वहाँ पहुँच गए। इस प्रकार के लोग जब वहाँ पहुचे तो दूसरे लोगों से पूछते कि हमारा घर कौन सा है ? युद्ध के पूर्व जहाँ अधिकांश हवेलियाँ खाली पड़ी रहती, वहाँ अब लोग ठसाठस भरे थे और किराया भी अनाप-शनाप बढ़ गया था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यात्रा के पथ पर

जब लोगों ने अखबारों में पढ़ा कि कलकत्ता और हावड़ा ब्रिज तो उसी प्रकार सुरक्षि और कारोबार में भी मुनाफा बहुत अधिक हो रहा है तो वे पछताते और कुछ दिन ठहर पुनः आसाम, बंगाल के लिए रवाना हो जाते।

मैं वहाँ थोड़े दिन रहा। मई का महीना था। बच्चे गरमी के आदी नहीं थे उ फोड़े-फुन्सी निकल आईं। हम लोग हरिद्वार और मसूरी के लिए रवाना हो गए। यहाँ पह बार आया था। उस समय तक जितने भी शहर देख चुका था, उनमें मुझे हरिद्वार सब रमणीक लगा। गंगा का पानी बरफ की तरह ठंडा और स्फटिक की भाँति स्वच्छ था। बार उतर जाने के बाद बाहर निकलने का मन नहीं करता। हर की पैड़ी पर हजा स्त्री-पुरुष और बच्चे स्नान करते या भजन कीर्तन सुनते रहते। चारों तरफ मिठाई, खो और फल वाले बैठे रहते। खरबूजे और आम इतने सस्ते थे कि अधिकांश व्यक्ति शाम भोजन न करके बड़े-बड़े तौलियों में इन फलों को गंगाजी में डुबा रखते थोड़ी देर बाद ये हो जाते और इनमें अद्भुत स्वाद आ जाता। तीन-चार दिन हरिद्वार रहे। इतने आम चूस कि पत्नी को बार-बार मुझे टोकना पड़ता।

यहाँ से हम लोग लक्ष्मण झूला होते हुए ऋषिकेश गए। लोहे के रस्से पर लटकते उस पु को पार करना एक रोमांचकारी अनुभव था। बहुत नीचे अत्यन्त वेग और तीव्रता से बह हुई गंगा का कलरव और चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़। जब पुल जोर-जोर से हिलता यात्री भगवान राम और गरुड़जी की याद करते या भजन गाते।

ऋषिकेश में काली कमलीवाले की धर्मशाला में ठहरे। एक महात्मा ने बहुत पह उत्तराखण्ड में यह संस्था स्थापित की थी। इस समय यह बहुत बड़ी हो गई है। अनेक स्था पर इसके क्षेत्र और धर्मशालाएँ हैं।

ऋषिकेश से हम देहरादून पहुँचे। यह पहाड़ की तराई में है, इसलिए गर्मी के मौसम यहाँ तापमान विशेष ऊँचा नहीं रहता। चार मील दूर पर सहस्त्र धारा नाम का एक झर है। इसका जल बनौषधियुक्त होने के कारण चर्म रोगियों के लिए लाभकारी है। पहाड़ सैकड़ों धाराएँ बेग से निकलती हैं। उनके नीचे बैठकर लोग स्नान करते हैं। मई, जून महीनों में भी थोड़ी ही देर में ठण्ड लगने लगती है। बहुत वर्षों बाद जब बिदेश गया तो दे देखा कि इस प्रकार के सौन्दर्यस्थल वहाँ भी हैं। लेकिन वहाँ के लोगों ने हमारी तरह उन उपेक्षित नहीं रखा। अनेक प्रकार से आकर्षक बनाया है। इनके आस-पास यात्रियों के ठहर के लिए आलीशान होटल बनाए हैं। आमोद-प्रमोद के लिए छोटी-छोटी फुलवारियाँ और अच्छे रेस्तराँ हैं। बच्चों के खेलकूद के झूले आदि लगे हैं। छोटी-छोटी कृत्रिम झीलें भी जिनमें रबड़ की नौकाओं में यात्रीगण जल-विहार का आनन्द लेते हैं। वे लोग यात्रियों को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आकर्षित करने के लिए ऐसे स्थानों के बड़े-बड़े विज्ञापन देते रहते हैं। खेद है कि हमारा पर्यटन-विभाग इस ओर आवश्यकता से कम सक्रिय है।

सहस्त्रधारा से वापस आए, तब बहुत जोर से भूख लग गई थी। जिस जैन धर्मशाला में ठहरे, उसके बाहर एक ब्राह्मण का ढाबा था। मैंने पहले ही उसे कह दिया था कि हमलोग खाना रुचि से खायेंगे, तुम घबराना मत, तुम्हें संतुष्ट कर देंगे। अमरस तो हमने अपना बना लिया था, बाकी चीजें ढाबे से लीं। मुझे याद है कि उस दिन पत्नी और बच्चों ने भी डटकर भोजन किया।

दूसरे दिन, हम वहाँ से मसूरी के लिए रवाना हुए। देहरादून से १६ मील दूर, छः हजार फीट की ऊँचाई पर यह सुरम्य हिल स्टेशन है जिसे 'पहाड़ों की रानी' कहा जाता है। कुछ लोग तो इसे भारत के पहाड़ी स्थानों में सबसे सुन्दर मानते हैं परन्तु मेरी राय में दार्जिलिंग का स्थान सर्वोच्च है।

मसूरी की रात बहुत लुभावनी और सुहावनी होती है। नीचे-ऊपर चारों तरफ रोशनी जगमगाती रहती है। राजपुर और देहरादून की बत्तियाँ यहाँ से दिखाई देती हैं। यहाँ आम तौर पर लोग शाम का खाना नहीं बनाते। बच्चों के साथ माल रोड पर निकल जाते हैं और वहाँ के किसी रेस्तरां में छोले, भटूरे या चाट खा लेते हैं। दूकानें बहुत प्रकार के सामानों से सजी हुई थीं। सुन्दर वस्त्रों में सजे-धजे स्त्री-पुरुष और बच्चे सड़कों पर घूम रहे थे। लगा, जैसे इन्द्रपुरी पहुँच गए।

उस समय तक मसूरी राजा-महाराजाओं का क्रीड़ा-स्थल था। वे लोग गर्मियों में यहाँ अपने दलबल सहित आकर जो ऐयाशी और मौज उड़ाते, उसकी बढ़ी-चढ़ी चर्चा बाजारों, क्लबों और होटलों में होती रहती। उनके मनोरंजन के लिए पंजाब, दिल्ली और देश के अन्य भागों से प्रसिद्ध गणिकाएँ और गायिकाएँ भी आ जाती थीं। एक ओर जहाँ इतनी ऐयाशी थी, वहीं दूसरी तरफ दुबले-पतले अधनंगे कुली ऊँची चढ़ाई पर मोटे स्त्री-पुरुषों को रिक्शों पर खींचते रहते।

हमलोग राजस्थान की झुलसती गरमी से निकल कर आए थे। सोचा नहीं था कि यहाँ इतनी सर्दी होगी। गरम कपड़े नहीं लाए थे, अतएव दो दिन रहकर ही वापस बनारस आ गए। यहाँ दशाश्वमेध घाट पर अपना मकान बनवा लिया था।

आज, जब अपनी १९४२ की डायरी से यह संस्मरण लिख रहा हूँ तो देखता हूँ कि उस समय हमारी इस सारी यात्रा पर खर्च हुए थे सिर्फ दो सौ रुपये।

दो माह बाद वापस कलकत्ता पहुँचा। लोगों में घबराहट तो थी, परन्तु व्यापार अच्छा चल रहा था। इस समय हम लोगों ने बहुत अच्छा रोजगार किया। साधारण स्थिति से अब हम सम्पन्नता प्राप्त कर चुके थे।

फरवरी सन् १९४३ में माताजी को प्राकृतिक चिकित्सा के लिए इलाहाबाद ले गया। पत्नी भी साथ थीं। माँ को इस चिकित्सा से काफ़ी लाभ हुआ और इसके बाद वे एक प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सक बन गई। कभी बच्चों का पेट दुखता या कहीं फोड़ा हो जाता तो भीगी पट्टी या गीली मिट्टी का उपचार करतीं।

इलाहाबाद से हम लोग चित्रकूट गए। कहते हैं, भगवान ने अपने वनवास के बारह वर्ष यहीं बिताये। संत तुलसीदास को उनके दर्शन भी यहीं एक घाट पर हुए थे। इस सन्दर्भ में एक दोहा बहुप्रचलित है —

चित्रकूट के घाट पर भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें तिलक देत रघुबीर ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमने कामदगिरि की परिक्रमा की । इसी पर राम, सीता और लक्ष्मण विराजे थे लिए यात्री इस पर्वत पर नहीं चढ़ते । यहाँ एक शिला भी देखी जिस पर राम, लक्ष्मण सीता के चरण चिन्ह थे । परिक्रमा के बाद हनुमानधारा में स्नान किया । वास्तव में चि तीर्थ के साथ-साथ सुन्दर और सुरम्य भी हैं ।

हम लोग यहाँ से जसीडीह गए, जहाँ हमारे गृह-प्रवेश का उत्सव था । कुछ दिन ठहर पुनः कलकत्ता आ गए ।

उस वर्ष की सबसे दर्दनाक घटना थी 'बंगाल का अकाल' ऐसा भीषण अकाल पहले नहीं पड़ा था । दूर्भाग्य तो यह था कि फसल अच्छी होते हुए भी लाखों लोग भूखों मर बंगाल में उस समय मुस्लिम लीग का शासन था । रसद मन्त्री था सुहरावर्दी । सरका फौजियों के लिए चावल की जबरस्त खरीद की । उसने अपने मर्जीदांओं के मार्फत किसानें जबरन आधे दामों में अनाज ले लिया । बाजार से चावल गायब हो गया । लोग अन अभाव में मरने लगे । सरकारी आँकड़ा तो आठ दस लाख की मौत का था किन्तु वास्तव तीस-पैंतिस लाख से कम आदमी नहीं मरे होगें । द्वितीय महायुद्ध में दुनियां के सब देशों मिलाकर इतने लोग न मरे होगें ।

कलकत्ते के फुटपाथों व रास्तों में जो कारुणिक दृश्य देखे, आज तक भूल न सका । ब स्तंन से चिपका है, माँ मर चुकी है । माँ-बाप ने बेटी-बेटों को बेच दिया । शून्य की ताकती लाशें । कोई पूछने वाला नहीं, किसकी है कौन है ? सड़ांध से बीमारियाँ फै लगीं ।

एक अजीब बांत यह थी कि मिठाईयों की दुकानें सजी रहतीं और सामने ही लोग भूख दम तोड़ देते । नारी जाति के शील के साथ मनमाना खेल होता, कहीं कोई बलवा, लूट या विद्रोह सुनने में नहीं आया । वर्षो की गुलामी से मनुष्य कितना क्लीव हो जाता है, बंग का अकाल इसका ज्वलन्त उदाहरण है । अकालं पीड़ितों की राहत के लिए बंगाल रिलि सोसाइटी बनी, जिसके मन्त्री हुए श्री भागीरथ कानोड़िया । बहुत बड़ा काम इस संस्था द्वा उस समय हुआ । 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' ने भी पूरा सहयोग दिया ।

मैं जब कलकत्ते रहता तो जे० टॉमस कंपनी के काम से पाट के व्यापारियों की मंडियों चला जाता । कभी-कभी हमारे साथ में हमारे व्यापारी और साहब रहते । हम लोग इ क्लास में जाते, किन्तु साहब फर्स्ट क्लास में । यद्यपि ये अंग्रेज या एंग्लोइंडियन हम व्यापारियों के वेतनभोगी कर्मचारी होते फिर भी हम इन्हें 'सर' कहते । बहुत बाद में, विलायत गया । वहाँ अंग्रेज बेयरों और दुकानदारों ने मुझे 'सर' कहा, कुछ गुदगुदी हुई ।

पाट-निरीक्षण के काम से बंगाल के सूदूर अंचलों, ढाका, मैमनसिंह, नारायणगं अखोरा, खुलना और ग्वालन्दो आदि मंडियों में जाना पड़ता था । ढाका के केले और इतने स्वादिष्ट थे कि आज तक उनकी यादें भूल नहीं सका । इन मण्डियों में राजस्थानी अलावा बंगाली मुसलमान व्यापारी भी थे । उस समय पाकिस्तान बना नहीं था । वे हमा बहुत खातिरदारी करते । छुआ-छूत आज की तरह मिटी नहीं थी, इसलिए ब्राह्मणों बुलाकर हमारे लिए रसोई बनवाते ।

आज जब वहाँ के निवासियों पर पाकिस्तानी फौज द्वारा ब्रर्बरतापूर्ण अत्याचार समाचार पढ़ता हूँ तो मुझे वे भले और निरीह लोग याद आ जाते हैं । मुसलमान होते हुए धर्मान्ध नहीं थे । खेतीबारी करते अथवा जमींदारों और राजस्थानी व्यापारियों के यह मुंशीगीरी कर जीवन निर्वाह करते । सन् १६५४ में पूर्वी पाकिस्तान की अपनी जूट प्रेस छोड़कर भारत आना पड़ा । याद आता है, मेरे यहाँ के मुस्लिम फूट-फूट कर रोने लगे आदमी सब कुछ खो सकता है विस्मृति के गर्भ में, मगर स्नेह आँखों के सामने तैरता ही रहता है, हमेशा ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन् १९४४ के मार्च में मेरी बड़ी पुत्री रत्नी की शादी हुई। मई में मथुरा और ग्वालियर घूमने चला गया। वैसे मथुरा तो एक बार पहले भी जा चुका था, परन्तु तब ध्यान से नहीं देख सका। वाराणसी उज्जयिनी और पाटलिपुत्र की तरह मथुरा भी देश का प्राचीनतम नगर है। यहाँ भी काशी की तरह औरंगजेब ने द्वारिकाधीश के बड़े मन्दिर को तोड़कर मसजिद बनवा दी। कृष्ण-जन्म-भूमि के टीले पर भी प्राचीन धर्म स्थान को तुड़वाकर मसजिद का निर्माण करा दिया। ये दोनों मसजिदें आज भी मुसलमानों के अत्याचार और हिन्दुओं में व्याप्त अकर्मण्यता की याद दिला रही हैं। यमुना की सुन्दरता का वर्णन श्रीमद्भागवत और प्रेमसागर में पढ़ चुका था। हो सकता है, यमुना बहुत पहले सुन्दर रही हो। इस समय तो यहाँ कीचड़, गन्दगी और कछुओं की भरमार थी।

मथुरा से एक ताँगे में बैठकर वृन्दावन गया। रमणरेती में मेरे एक परिचित वानप्रस्थी मित्र थे, उनसे मिला। अतिथिशाला में एक कमरा लेकर रहते थे। शाम को उनके साथ रंगजी का मन्दिर देखने गया। कहते हैं, आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले इसे एक जैन महाजन ने बनवाया था। इसका विशाल प्रांगण और परकोटा देखकर आश्चर्य होता है। उस समय तक मैंने मदुराई और रामेश्वर नहीं देखा था। वृन्दावन की कुंजगलियों के बारे में बचपन से ही पढ़ता आ रहा था। संस्कृत और हिन्दी का वैष्णव काव्य तो इसके वर्णन से भरा पड़ा है। बिहारी के दोहे में वर्णित—

सघन कुंज छाया सुखद, शीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौ वहै, वा जमुना के तीर॥

उन्हीं सघन कुंजों और यमुना पुलिन की छवि निरखने की प्यास बहुत दिनों से संजोये था आज न वे गलियाँ ही हैं और न कुंजवन। पुलिन पर सघन वृक्ष तो क्या झाड़ियाँ तक नहीं, बन उपवन का प्रश्न ही क्या? सोचता हूँ, समय के दौरान इमारतों या गलियों का रूपान्तर होना स्वभाविक है, उसी प्राचीन रूप में पाया जाना संभव नहीं। किन्तु यमुना तट का सौष्ठव और सौन्दर्य तो सँवार कर रखा जा सकता है। इस ओर हमारी उपेक्षा और उदासीनता का क्या अर्थ हो सकता है?

दूसरे दिन गोकुल गए। कहा जाता है, राजा नन्द की दस लाख हृष्ट-पुष्ट गाएं थी। संख्या अतिरंजित हो सकती है, परन्तु इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि गोवंश पर यहाँ विशेष ध्यान दिया जाता होगा। गोकुल, गोपाल, गोवर्धन और गोस्वामी, गोप-गोपी आदि संज्ञाएँ इसकी पुष्टि करती है। रसखान ने कहा है—"मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं नित गोकुल गाँव के ग्वारन"। यही नहीं, उसने तो यहाँ कि नैसर्गिक समृद्धि को इतना बड़ा माना कि, कोटिन कलधौत के धाम को, इस पर निछावर करने के लिए प्रस्तुत है। स्पष्ट है कि एक समय यह नैसर्गिक और भौतिक समृद्धि की शीर्षस्थली रही होगी। हमें वहाँ तो गलियों में दो-चार मरियल सी गाएं और बछड़ियाँ दिखाई पड़ीं। पंडों ने माता यशोदा की रसोई दिखाई, उसमें जो चूल्हा बना था, उस पर मुश्किल से सेर-दो सेर दूध गरम हो सकता था। समझ में नहीं आया कि पंडे किस भावना से इसे यात्रियों और पर्यटकों को दिखाते हैं। हो सकता है कि युगावतार कृष्ण के प्रति धार्मिक विश्वास, स्नेह और श्रद्धा को उभार कर उन्हें कुछ पैसे मिलते हों, किन्तु मुझे यह एक अनुचित उपहास सा जान पड़ा। ऐसा ही अयोध्या में भी देखा।

ब्रजभाषा में अपूर्व लालित्य है। मगर पंडों के मुँह से सुनकर लगता है जैसे वे लड़ने आ रहे हों। मुझे अच्छा नहीं लगा। पता नहीं, क्यों आज का ब्रजमण्डल आर्कीषत नहीं कर सका। उस समय जल्दी में था, कुछ विशेष स्थानों को नहीं देख पाया। बाद के वर्षों में देखा। अब भी जाया करता हूँ, खोजता हूँ अपने मानस में बसे ब्रज को, पर वह मिलता नहीं।

दूसरे दिन सिंधिया की राजधानी ग्वालियर गया। यह एक विकासमान औद्योगिक नगर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। पहाड़ पर बहुत बड़ा किला है। महाराज मानसिंह द्वारा बनवाए हुए इसके गूजरी महल और यहाँ के उन कैदखानों के बारे में बहुत कुछ सुना था। जिनमें मुगल शाहजादों को रखा गया था, परन्तु यहाँ की असह्य गरमी से बैचैन हो उठा। अतः यह सब नहीं देख पाया।

सन् १९४४ के सितम्बर में पाट की मंडियों (बंगाल) से होता हुआ गोहाटी (असम) गया। वहाँ से मुझे मोटर या बस द्वारा शिलांग जाना था। जहाँ मेरे कुछ मित्र पहले से ही थे। मेरे पास टीन के एक छोटा सन्दूक और आगरे की दरी का साधारण बिस्तर था। गौहाटी में मेरे एक परिचित मित्र श्री गनपतराय धानुका की तेल की मिल थी। उनके यहाँ रात को पहुँचा। वे शहर के बाहर गए हुए थे। वहाँ उनके भागीदार काबराजी थे। उनका व्यवहार अजीब सा रहा। उन्होंनें बाहर बरामदें में पड़ी काठ की चौकी बता दी। मैंनें वहीं अपना बिस्तर लगाया और लेट गया।

गौहाटी बहुत ही गन्दा शहर है। सीलन, बदबू और बड़े-बड़े मच्छरों की भरमार है। पास मसहरी नहीं थी। इसलिए रात में मच्छरों ने काटकर सारे शरीर में जलन पैदा कर दी। नींद का तो प्रश्न नहीं था। दूसरे दिन जब शिलांग जाने के लिए टैक्सी या बस के लिए पूछा तब उन्होंने मेरा परिचय जानना चाहा। मैंने अपना नाम बताया परन्तु लगा, जैसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। कहा, आप उनके यहाँ नौकरी करते हैं क्या ? जब फिर से अपना नाम दोहराया तो देखा वह बहुत सकपका गए थे। माफी मागनें लगे। अपनी कार मँगाकर मेरे साथ हो लिए। रास्ते में कहने लगे कि मुझे आपका टीन का सन्दूक, यह बिस्तरा और भेष-भूषा देखकर भ्रम हो गया था। समझा कि कोई खली खरीदने वाला व्यापारी है। हमारे यहाँ बोगडा और मैमन सिह से प्रायः ही ऐसे लोग आते रहते है। खेद है, आप को बहुत असुविधा हुई आदि।

इसके तीन दिन बाद धानुकाजी और काबराजी गौहाटी से शिलांग आए, साथ में काफी फल और मिठाईयाँ थीं। बहुत ही झेपें से थे। मैंनें उन्हें आश्वस्त किया कि मुझे कोई असुविधा नहीं हुई। गलती मेरी भी थी। मुझे अपने पहुँचने कि सूचना पहले ही दे देनी चाहिए थी।

शिलांग में हम लोग दस दिन रहे। वहाँ 'पीक शिलांग' एक चोटी है। काफी कड़ी चढ़ाई है। एक मित्र के साथ उस पर गया। मित्र बीच-बीच में थक कर सुस्ताते थे। मैं हिम्मत बांधता हुआ उन्हें ऊपर तक ले गया। जब वापस आए तो उनको बुखार चढ गया था।

शिलांग से १८ मील दूर चेरापूंजी पहाड़ी स्थान है जहाँ विश्व में सर्वाधिक वर्षा होती है। यूँ तो वर्षा हर समय यहाँ होती रहती है, पर जब जोरों से पानी बरसता है तो लगता कि पत्थर बरस रहे हैं। रास्ता इतना भयानक और डरावना है कि मोटर से नीचे देखते ही कँपकँपी छूट जाती है। किन्तु ड्राइवर अभ्यस्त हैं, बहुत कम दुर्घटनाएँ सुनने में आईं। चेरापूंजी से हम बहुत सा शहद, सन्तरे, केले और अनन्नास आदि ले आए। वहाँ इन चीजों की बहुतायत है। इनमें अनूठा स्वाद होता है। देखा कि पहाडों में कोयले की खुदाई हो रही है। बिजली से सचालित रज्जु-मार्ग द्वारा कोयला ऊपर से नीचे सात मील दूर सिलहट जा रहा था। अनोखा दृश्य लगा। आगे जाकर तो यह रज्जु मार्ग और कोयले की खानें तो हमनें खरीद लीं। इसलिए बहुत बार चेरापूँजी जाने का मौका मिला।

सन् १९४५ में मित्र राष्ट्रों के विजय के साथ महायुद्ध की इतिश्री हुई। इटली, जर्मनी और जापान तीनो आत्म समर्पण कर चुके थे। कुछ लोगों ने मुसोलिनी को मारकर उसकी लाश बाजार में टाँग दी। हिटलर ने आत्महत्या कर ली थी। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के इन दोनो तानाशाहो का अन्त हुआ। इस युद्ध के अन्तिम दौर में सबसे भयावह घटना थी अमेरिका द्वारा अगस्त १९४५ में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरो पर अणुबम का गिराया जाना। दोनों शहरों की एक तिहाई आबादी समाप्त हो गई। समूचा विश्व महानाश के इस अस्त्र से आतंकित हो उठा। यही से आणविक अस्त्रों की शुरुआत हुई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महायुद्ध, अकाल और अभाव के दुष्परिणाम स्वरूप कलकत्ते में गल्ले और कपड़े की चोर-बाजारी शुरू हो गई। लोग दूसरे प्रान्तों से छिपा-छिपा कर कपड़े लाते और बेचते। जो लोग कुछ दिन पहले शहर छोड़कर चले गए थे, अब वापस आने लगे। उजड़ा हुआ कलकत्ता फिर से आबाद हो गया।

सन् १९४५ में हमारे हितैषी डेडराजजी भरतिया का काशी में देहान्त हो गया। उन्होंने हमें संकट काल में सहायता दी थी। यद्यपि साझा तो दो-तीन वर्ष ही रहा, परन्तु हम भाइयों पर उनका अगाध विश्वास और स्नेह था। अन्तिम समय में वे मुझे अपने साथ कलकत्ते से बनारस ले गए थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आजादी और उसके बाद

देश की राजनीति में महायुद्ध की समाप्ति के बाद बड़ी तेजी से परिवर्तन के लक्ष दिखाई पड़ने लगे। अंग्रेज विश्वयुद्ध में विजयी भले हुए, किन्तु उनकी आर्थिक अवस्था औ व्यवस्था लड़खड़ा गई। भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई उन्हें भारी पड़ने लगी। आजाद हिं फौज और भारतीय नौसेना का विद्रोह उनके लिए बहुत बड़े सर दर्द और त्रास का कार बना। उनकी समझ में यह बात आ गई कि भारत उन्हें छोड़ना होगा ही। अंग्रेजों में विशेष रही है कि वे अपने आचार-व्यवहार में सदा सौष्ठव और सौजन्यता बरतने में प्रयत्नशी रहे। विपरीत या प्रतिकूल स्थिति अथवा अवस्थाओं में छिछोरापन नहीं रखा और सर ऊं रखा। अपने अंग्रेज मित्रों से या अफसरों से जब भी बात चलाता तो वे चुप रह जाते। फिर भ हिकमत लगाने में चूकते नहीं। भारत में भी इन्होंने यही नीति रखी। मुसलमानों क प्रोत्साहन देते हुए आखिर उनमें अलगाव की भावना इतनी भर दी कि वे अपने को भारती मानने को तैयार नही हुए। पाकिस्तान के रूप में पृथक राष्ट्र की माँग ने वाइसराय वैवल समय में ही जड़ मजबूत जमा ली।

ऊपर से भले ही कांग्रेसी इस मुद्दे को नजर अन्दाज करते रहे, किन्तु सत्य यही है कि सभी को लगने लगा कि हिन्दुओं के साथ मुसलमान रहना नहीं चाहते, रह नहीं सकते, रहें नहीं। संविधान में अडंगा लगाना, दंगे फिसाद करना-कराना—आए दिन ऐसी घटनाएँ हो लगीं कि कांग्रेसी नेता भी इस समस्या से पिंड छुड़ाने को आकुल हो गए।

अंग्रेज आर्थिक दबाव से पीड़ित थे। इधर मुसलमानों के दंगे-फिसाद, लूट-मार हत्या और पृथक इस्लामी राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा तेजी से बढ़ रही थी। कांग्रेसी नेताओं के साम भारत के विभाजन के अलावा तात्कालिक समाधान और कोई समझ में नहीं आ रहा था

अंग्रेजों ने नब्ज को ठीक परखा था। फरवरी १९४७ में घोषणा की कि चाहे हिन मुसलमानों में समझौता हो या नहीं जून १९४८ तक वे भारत से चले जायेंगे। वायसराय ला वैवेल को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया और लार्ड लुई माउन्टबैटन नए वायसराय नियु हो कर भारत आए। मार्च २४ को उन्होंने पद भार सम्हाला।

१६ अगस्त १९४६ ई० में मुसलमानों की दवाब नीति उनके डायरेक्ट एक्शन से सफ रही। मुझे ऐसा लगता है जिन्ना को अंगरेजों ने भी अपना इरादा चुपके से बता दिया था इसलिए फिर दंगे शुरू हो गए। लार्ड माउन्टबैटन ने पाकिस्तान बनाए जाने की माँग स्वीका कर ली। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक जुलाई १९४७ को भारतीय स्वाधीनता एक्ट पास किया और सत्ता हस्तान्तरण के लिए १५ अगस्त, १९४७ का दिन स्थिर हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुझे अंगरेजों के साथ काफी समय तक काम करने का सुयोग मिला है। उनमें समस्या के हर पहलुओं पर वारीकी से सोचने की विशेषता रही है। मुस्लिम भारत (पाकिस्तान) स्वाधीन भारत से सदैव लड़ता रहेगा। इसका लाभ अंगरेजों को लम्बे अर्से तक मिलेगा। तव तक वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकेंगे। मुसलमानों ने दंगे-फसाद शुरू कर पंजाब, सिन्ध और सीमांत हिन्दुओं पर जो उत्पीड़न और अत्याचार मचाया, उससे हिंदू भाग-भाग कर राजपूताना, पूर्वी पंजाव, उत्तर प्रदेश आदि हिन्दू-बहुल प्रान्तों में आने लगे। हिन्दुओं का दृष्टिकोण उदार रहा। मुसलमान खदेड़े नहीं गए। बल्कि वे धीरे-धीरे स्वतः पंजाब सिन्ध की ओर जाने लगे। यह वात कम ही लोग उन दिनों समझ पाए थे।

मैंने एक बात का लक्ष्य किया था कि मुसलमान हिन्दुओं से वहीं उलझते रहे जहाँ वे संख्या में अधिक नहीं तो काफी रहे। सन् १६२६ से जो दंगे-फसाद होते रहे, वे बड़े शहरों में होते। १६४६ में जो दंगे हुए वे पश्चिमी पंजाब और बंगाल में उभरे। पाकिस्तान की आवाज को सबसे अधिक बुलन्द करनेवालों में उत्तर प्रदेश, बिहार के मुसलमान थे, किन्तु इन्होंने उत्तर प्रदेश और बिहार में छेड़-छाड़ नहीं की। इन बातों की चर्चा मैं कभी-कदाच आपस की बैठक में करता, किन्तु मित्र हँस कर बात टाल जाते। कभी-कभी मुझे उलहना मिलता कि मेरा दृष्टिकोण साम्प्रदायिक है। मैं चुप रह जाता था। राजनीति में उनदिनों मेरी रूचि अधिक नहीं थी। समाजवादी दृष्टिकोण था, इसलिए समाजवादी नेताओं के सम्पर्क में रहा।

अगस्त सन् १६४७ में भारत को आजादी देने के समय अंगरेजों ने जो सावधानी बरती, वह उनकी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देता है। १४-१५ अगस्त की मध्य रात्रि को १२ बजे दिन के वाद भारत को स्वाधीनता मिली, किन्तु इससे कुछ देर पहले अर्थात १२ बजे से पहले पाकिस्तान को राष्ट्र घोषित कर आजादी दी गई। अंगरेजों को सम्भवतः यह अन्देशा था कि भारत को द्विखंडित करने से पहले पाकिस्तान को स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर काम पंक्का कर लिया जाय ताकि भारत को सत्ता देने के बाद कोई बाधा न आ जाय।

जो भी हो, भारत स्वाधीन हुआ–खण्डित। द्विखण्डित नहीं, त्रिखण्डित पश्चिम में बलुचिस्तान, सिंध सीमान्त प्रदेश और पश्चिमी पंजाव पाकिस्तान के पश्चिमी प्रदेश बने और पूर्व मे पूर्वी बंगाल।

१४-१५ अगस्त की रात में जगा रहा। रेडियो पर नेताओं के भाषण सुने। पंडित नेहरू का भाषण भावनापूर्ण था, सरदार पटेल का तथ्यपूर्ण। राजेन्द्रबाबू ने महात्मा गांधी की प्रशंसा की और आश्वासन दिया कि स्वतंत्र भारत में गरीबी, भुखमरी, शोषण और ऊँच-नीच के भेद-भाव मिटाने के लिए हमलोग कोशिश करेंगे। मगर उन्होंने हिन्दुस्तान के टुकड़े होने पर खेद भी प्रकट किया।

मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने भाषण के अन्त में अंग्रेजी लहजे में कहा–"पैकिस्तान जिन्दैबाद"। ऐसा लगा, वे कह रहें हैं, 'द कैट इज आउट ऑफ बैग'। बाद में अखबारों में भी इसका जिक्र आया। सच पूछा जाय तो विभाजन की बिलैया आखिर थैले के बाहर आ ही गई।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री बने पण्डित जवाहरलाल नेहरू और गृहमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल।

१६ अगस्त के दिन कलकत्ता में जो सजावट हुई, वैसी कभी नहीं देखी। खुशी सब जगह; सब के ओठों पर। तिरंगे झंडे की बहार थी। खादी की टोपी सबके सिर पर। शाम से रोशनी की सजावट में कलकत्ता रंगीला हो उठा। लोग सोये नहीं, घूमते रहे। गुलाब ज़ल की फुहारें मुसलमानी मुहल्लों में हिन्दुओं पर छिड़की गयीं। आश्चर्य होता था कि इतनी सद्भावना और होते हुए भी पाकिस्तान कैसे बन गया !

इसके बाद, १६४८ तक पाकिस्तान में जो वारदात हुई वे बड़ी शर्मनाक और अमानवीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

थीं। सिंध, सीमा प्रान्त, बलुचिस्तान से भाग कर आते हुए हिन्दुओं का मानों ताँता ही खत्म होता दिखता था। पश्चिमी पंजाब में जो खूनखराबी हुई उसे कलम उतार नहीं सक हिन्दू-सिखों के खून से मूसलमानों ने वजू की रस्म अदा कर मानो अहले-इस्लाम की गुजारी की। इस्लाम (शान्ति) का चेहरा सुर्ख हो उठा। पूर्वी बंगाल जो पूर्वी पाकिस्तान वहाँ बड़ी बेरहमी से हिन्दुओं पर घोर अत्याचार शुरू कर दिया गया।

नोआखाली में तो चंगेजी-नादिरी कत्लेआम भी पिछड़ गया। हिन्दू भाग-भाग कर आने लगे, सर्वहारा-सर्वस्व स्वाहा। अचानक आई इस समस्या का समाधान आसान नहीं लाखों की तादाद में लोग आते रहे। आपस में बिछुड़े उजड़े। तन पर कपड़ा नहीं, खाने अन्न नहीं, रहने का स्थान नहीं। हमलोग राहत के काम में जुट पड़े।

प्रभुदयाल जी हिम्मतसिंहका, रामकुमारजी भुचालका, भागीरथजी कानोड़िया ने तत्परता से जन-धन और साधन को संगठित कर सहायता का काम बड़े पैमाने पर चलाया डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के उद्योग से सहायता समिति ने महत्वपूर्ण काम किया।

भारत सरकार ने सिन्ध, पंजाब और बंगाल के लहर से उमड़ते विस्थापितों को कम काम गम्भीरता सें लिया। अच्छा होता कि विभाजन से पूर्व जनसंख्या की अदला-बद कर ली जाती। इससे धन और जन की हानि नहीं होती।

भारत-पाकिस्तान में सेना सम्पत्ति आदि का बँटवारा तय हो चुका था। हिन्दुस्तान अपना वादा पूरा किया, किन्तु पाकिस्तान ने दबा लिया। भारत ने पहल की, पर वे नहीं। इस पर भारत सरकार ने कहा कि यदि पाकिस्तान का यही रवैया रहा तो भारत राशि के पचास करोड़ नहीं देगा। इस पर पाकिस्तान और भारत के मुसलमानों ने शोर-शराबा किया और बात गांधी जी तक पहुँची। गांधी जी को स्थिति साफ-साफ बता गई किन्तु वे मानने को तैयार नहीं हुए। ६ जनवरी, १९४८ को उन्होंने पाकिस्तान को करोड़ देने के लिए आमरण अनशन कर दिया। सरकार ने समझाया कि हमारी सम्पत्ति रुपये पाकिस्तान ने दबा रखे हैं इसका हिसाब-किताब हो जाना चाहिए किन्तु गांधी जी रहे। भारत सरकार रुपये देने को विवश हो गई। उन दिनों गांधी जी कहा करते थे भगवान् मुझे अब उठा ले तो अच्छा है, क्योंकि जवाहर और पटेल मेरी बात मानते नहीं और सचमुच बीस दिन बात भगवान् ने उन्हें उठा लिया। ३० जनवरी की शाम को दिल्ली बिड़ला भवन के मैदान में प्रार्थना सभा में एक नवयुवक नाथूराम गोडसे ने उनके चरण करते हुए सीने पर गोलिया दाग दी! मरते समय उनके मुख से 'हे राम' के निकले।

भारत की स्वाधीनता के प्रेरक महापुरुष का कैसा अन्त! सौ वर्ष पूर्व अमेरिका में दा को मुक्ति दिलाने वाले अब्राहम लिंकन का भी अन्त बहुत कुछ इस प्रकार का हुआ। विधि कैसी विडम्बना! सारे देश में शोक छा गया। लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उनका रहनु चला गया।

पाकिस्तान गैर-मुसलमानों से लगभग खाली हो गया। बचे वही जो जबरन मुसलमा बना लिए गए। औरतें बीबियाँ बना ली गईं। इन घटनाओं का प्रभाव भारत पर किन्तु दू ही ढंग का पड़ा। मुसलमानों की योजना पक्की थी। पूर्वी पंजाब में लूट मार की प्रतिक्रि यहाँ कम हुई, स्वेच्छा से मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे, उन्हें जाने दिया गया। गृहत्या हिन्दुओं की सम्पत्ति उन्हें पाकिस्तान में दे दी गयी। भारत धर्म-निरपेक्ष बना रहा औ पाकिस्तान पूरी तौर पर इस्लामी राष्ट्र।

१९४८ में मेरा परिचय श्री जयप्रकाशनारायण एवं डॉ० राममनोहर लोहिया से हो गया था। मेरे मित्र श्री बद्रीप्रसाद बांयावाला और हम एक ही मकान 'रामभवन' में रहते थे। परिचय उन्हीं की मार्फत हुआ। विशाल भारत के सम्पादक श्री मोहन सिंह मेंगर बद्रीबाबू

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साथ रहते थे। सुबह के नाश्ते और रात के भोजन के बाद उनसे साहित्य चर्चा होती रहती। वहीं से पठन-पाठन में मेरी रुचि विशेष रूप से बढ़ती गयी और यह क्रम आज भी है।

डॉ० लोहिया बद्रीबाबू के यहाँ ठहरते किन्तु जयप्रकाश बाबू जब भी कलकत्ते आते, मेरे पास ठहरते। यह सिलसिला १६५६ तक चालू रहा। इसके बाद एक प्रकार से मेरा कलकत्ता रहना छूट गया, दिल्ली रहने लगा था। आज भी मेरे प्रति उनका स्नेह पूर्ववत् बना हुआ है। उन्हें बहुत नजदीक से देखने का मुझे अवसर मिला। घण्टों बातें की, विचारों में दृढ़ता है, सुलझे हुए स्पष्ट हैं। राजनिति के हल्के दाव-पेंच नहीं रखते, यही कारण है कि अन्य लोगों की भाँति राजनीति में उन्होंने किसी पद को स्वीकार नहीं किया। इसके प्रति उनमें रुचि भी नहीं, यह कहना अधिक ठीक होगा। उनमें विचारशील कर्मयोगी है। यह अत्युक्ति न होगी कि गांधी जी के बाद राजनीतिक नेताओं में उनके जैसा ईमानदार, स्नेहिल और दूरदर्शी शायद ही कोई मिले।

जयप्रकाश बाबू के कारण मेरा परिचय अन्य समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव, बाबू गंगाशरण सिंह, श्री अशोक मेहता आदि से भी हो गया। वास्तव में अनजाने में १६४६ में मैं राजनीति की ओर बढ़ने लगा। अब तक केवल देश की समस्याओं पर सोचता था, समाज और शिक्षा में सुधार के प्रति अधिक रुचि लेता था। संगत का असर होता है। मुझ पर भी हुआ। विद्वान् मनस्वी और कर्मठ देशभक्तों के सम्पर्क ने अनायास मेरे विचारों की दिशा में एक मोड़ दे दिया। इन्हीं दिनों कलकत्ता के श्रमिक नेता श्री शिवनाथ बनर्जी तथा मार्डन रिव्यू के सम्पादक श्री केदारनाथ चटर्जी से भी परिचय जयप्रकाश बाबू के सान्निध्य में हुआ।

एक दिन अचानक बद्री बाबू, सेंगजी और मैं देवानन्दपुर के लिए रवाना हो गये। छुट्टी का दिन था। देवानन्दपुर में शरत् बाबू का छोटा सा मकान आज भी वहाँ है। उसमें दूसरे लोग रह रहे थे। शरत् साहित्य के स्नेहियों से वे परेशान से थे, क्योंकि प्रायः बहुत से लोग उस पुण्यतीर्थ को देखने के लिए श्रद्धा की भावना से आए दिन आया करते। तरह-तरह के प्रश्न पूछते ताकि उनकी जिज्ञासाओं का निवारण हो। हम भी वहाँ पहुँचे। पर हमें मकान के अन्दर जाने नही दिया।

संयोग से वृद्ध सज्जन मिल गये। उन्होंने हमें शरत् बाबू के मकान का वह बरामदा दिखाया, जहाँ वे बीमार पड़े रहते थे। पटना से राजलक्ष्मी उनकी सुश्रुषा के लिए आयी थीं। वृद्ध सज्जन के साथ हमने वह पुरानी पाठशाला देखी जहाँ शरत् बाबू और काशीनाथ पढ़ा करते। सरस्वती नदी भी देखी, छोटी सी, वह की तरह झुरमुटों के बीच मानों सबकी ओट बचाकर चली जा रही हो। जमींदारों का बगीचा देखा। यहाँ प्रेत-पिशाचों का बसना माना जाता था। शरत् बाबू घर वालों के डर से यहीं आ छिपते।

रघुनाथ गोसांई और वैष्णवों का अखाड़ा कृष्णपुर में, यहाँ से करीब डेढ़-दो मील पर है। शाम हो रही थी। अतएव इन्हें फिर कभी आकर देखने का कहकर उनसे विदा ली। यह स्थान कलकत्ते से करीब चौंतीस मील पर है। थोड़े से मकान हैं। शान्त वातावरण, शहर की हवा गहराई से घुस नहीं पायी है। शरत् बाबू और बंगला के सुविख्यात कवि भारतचन्द्र के कारण इसका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

कुछ दिनों बाद फिर मित्रों के आग्रह पर देवानन्दपुर जाने का प्रोग्राम बना। इस बार साथ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल भी थे। किराये की बस ले ली—साथ में पिकनिक के सारे सामान। सुबह ही चल पड़े। वहां पहुँचकर वृक्षों की छाया में नाश्ता-जलपान किया। मित्रों के साथ गौहर-गोसाई का घर और वैष्णवों का अखाड़ा, सरस्वती नदी आदि को देखने के लिए पैदल ही चल पड़े। घनी झाड़ियाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, रास्ते के नाम पर अस्पष्ट पगदंडी। लगभग एक मील चलने पर गौहर-गोसाई का टूटा-फूटा मकान दिखा। वहाँ जो व्यक्ति था, उसमें दर्शकों के प्रति सहयोग की भावना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

थी । उसकी सहायता से गौहर के बैठकखाने को देखा । कुछ पुरानी कापियाँ किताबें एक छोटी सी आलमारी में रखी थी । बंगला की कृतिवास रामायण की प्रति रखी देखकर मन में विचार आने लगे, सम्पन्न परिवार के इस लड़के को वैष्णवों में क्या मिला । वह तो मुसलमान था सब कुछ छोड़छाड़कर वैष्णवों के अखाड़े में पड़ा रहता । छुआछूत का जमाना था, इसलिए घर आकर भोजन करता । अपनी बनायी वैष्णव पदावली और रामायण के अंश उन्हें सुनाया करता ।

पदावली के कुछ अश मैंने सुने । रसखान की याद आ गई । वे भी पठान थे, मुसलमान रसका उद्रेक हृदय के अन्तस्तल में होता है, वह तो अनुभूति की अभिव्यक्ति है । जाति, धर्म वर्ण का मोह उसके लिए कहाँ ? माध्यम चाहिए, वह चाहे श्रीकृष्ण या उनकी गोपिकाओं में मिले या साकी और शराब में । सूफी सन्तों ने निराकार ब्रह्म को साकी माना, देह को जाम और छककर पीते रहे ।

सरस्वती नदी के किनारे वैष्णवों के अखाड़े की दशा जीर्णशीर्ण हो रही थी । एक कमरे में भगवान की मूर्ति तो रखी थी, किन्तु पुजारी या सेवक नहीं दीखे । पास ही सरस्वती में आचमन किया । मन में विचार उठा, 'गंगेच्च यमुनेश्चैव गोदावरी सरस्वती, नर्मदे सिन्धु कावेरी जलम्मिन सन्निधि कुरु' । गंगा यमुना सारी पवित्र नदियाँ प्रत्यक्ष हैं । इतना जरूर है कि माँ शारदा के वरद पुत्र शरतचन्द्र को इस नदी ने जरूर अनुप्रेरित किया होगा । शायद मैं ही इसकी कृपा से कालिदास की तरह भाग्यवान हो जाऊँ ।

वैष्णवी कमल लता का उल्लेख वैष्णवों के अखाड़े के प्रसंग में कई बार आता है । स्नेहिल और मरम स्वभाव था । कैसी रही होगी, पता नहीं । उसका कमरा कौन सा था, किससे पूछना ? वहाँ तो कोई भी न था । वहीं पास एक चबूतरे पर बैठ गया । मन में विचार उठ रहे थे, पर शान्ति अनुभव कर रहा था । जन कोलाहल और तनावपूर्ण वातावरण से कुछ देर हटने पर मनुष्य स्वयं को पा जाता है, यह स्वाभाविक है । एक मित्र ने कंधे पर हाथ रखकर कहा चलना चाहिए देर हो रही है । हम वापस देवानन्दपुर आ गये । दाल-बाटी रसोई तैयार थी । थके हुए थे ही, सबों ने वहीं वृक्षों के तले बैठकर भोजन किया । चलते-चलते वह जगह भी देख ली, जहाँ शरत् शतरंज खेला करते थे ।

देवानन्दपुर ग्राम से करीब तीन बजें हम चल पड़े । यहाँ से थोड़ी दूर पर बंडेल का पुराना गिरजा है;सभी मित्र इसे देखने गये । सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में अकबर के समय पुर्तगालियों ने इसे गंगातट पर हुगली की अपनी वस्ती में बनाया । तब कलकत्ता बसा नहीं था । आदि सप्तग्राम, हुगली, श्रीरामपुर, मुर्शिदाबाद वगैरह बंगाल के व्यापार केन्द्र थे । पुर्तगालियों का यह गिरजा आज भी अच्छी दशा में है । सदियों पहले की मूर्तियाँ अच्छी हालत में हैं । गंगा का तट यहाँ बड़ा रमणीय है ।

बंडेल से वापसी के रास्ते हम हुगली का इमामबाड़ा देखने गये । हाजी मुहम्मद मोहसिन ने इसे बनवाया । ज्यादा पुराना नहीं है, पिछली शताब्दी में बना । मोहसिन अरबी, फारसी के अच्छे ज्ञाता थे, विद्याव्यसनी और उदार । उन्होंने इस्लामी धर्म और संस्कृति के अध्ययन केन्द्र के बतौर इसे बनवाया । पुस्तकों का अपना सारा संग्रह और जायदाद-दौलत भी इमामबाड़े को भेंट कर दी । बनावट में यह लखनऊ के बड़े इमामबाड़े सा लगा किन्तु उतना बड़ा और शानदार नहीं । फिर भी बंगाल में इसके जोड़ का दूसरा इमामबाड़ा नहीं देखा ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कलकत्ते के लिये हम चल पड़े। दिन ढल चुका था। सड़क पर आते ही चटकलों (जूट मिलों) का सिलसिला शुरू हो गया। रास्ते के दोनों किनारे दुकानों में और बिसातियों से सामान खरीदते मजदूर दिखाई पड़े। सड़कों पर मैले जीर्ण कपड़ों में स्त्रियाँ बच्चों को गोद में लिए कहीं पानी ले जा रही थी तो जलावन की लकड़ी या सामान सर पर लादे चली जारही थी। बरबस ख्याल हो आता कि दुर्भाग्य इनका है, या समाज का, देश का। आन्ध्र, उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश के काफी लोग पाटशिल्प में यहाँ लगे हैं। परिवार सहित रहते हैं। सबका जीवन एक सा, समस्याएं एक सी। रोजी-रोटी सबको घर से दूर खींच कहाँ से कहाँ ले जाती है। मैं भी तो ऐसी परिस्थिति में असम में भटका, सुदूर राजस्थान से कलकत्ता आया। यहाँ भाग्य ने मेरा साथ दिया।

इसके काफी अरसे बाद तीसरी बार देवानन्दपुर १९७४ में गया। साथ में थे, काशी के श्री विश्वनाथ मुखर्जी। वे शरत् बाबू पर एक बड़ी खोजपूर्ण पुस्तक लिख रहे हैं। बहुत बड़ा परिवर्तन इन सत्ताइस वर्षों में यहाँ हो गया था। शरत् बाबू की स्मृति में पुस्तकालय, वाचनालय और सभा कक्ष बन चुके थे। बाबा रघुनाथ गोसाई का वैष्णव अखाड़ा भी स्वर्गीय युगलकिशोरजी बिरला की सहायता से बहुत कुछ सुधर चुका था।

शरत बाबू की खूबी थी कि उन्होंने अपने उपन्यासों में परिवेश और वातावरण का बहुत ही स्वभाविक वर्णन किया है। पात्र या चरित्र के साथ पाठक एकात्म हो जाता है। देवदास, विराजबहू, रामेरसुमति, परिणीता, विजया, पथेरदावी आदि में शहर और ग्राम के जीवन का जैसा वर्णन है, वह ठीक वैसा उस जमाने में था। लेखक की यह तकनीक ही उसे सफल बनाती है। प्रेमचन्द, चार्ल्स डिकेन्स, गोर्की, फणीश्वरनाथ 'रेणु' इस लिए लोकप्रिय हो सके।

सरस्वती नदी के उस पार जाकर दिघड़ा का वह मकान नहीं देख सका जिसे 'दत्ता' के रासबिहारी बाबू ने ब्राह्म समाज का मन्दिर बना दिया था। विश्वनाथ जी शरत बाबू से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित एवं सम्पर्कित स्थलों को देखना चाहते थे। उनके साथ घूम-घूमकर इन्हें देखा। मेरी धारणा है साहित्यकार की साधना-स्थली किसी तीर्थ से कम नहीं, वह भी सिद्ध पीठ है। इससे एक प्रेरणा मिलती है, उसकी कृतियों के रसास्वादन में सरलता रहती है।

शरत बाबू केवल बंगला अथवा बंगला के नहीं बल्कि भारत के अन्यतम श्रेष्ठ विचारक थे। उनकी रचनाओं का अनुवाद भारत की सभी भाषाओं में हुआ है। अनेक लेखकों को अनुप्रेरित किया। रूढ़ियों और जड़संस्कारों में दबी और दबायी भारतीय नारी के हृदय में बहती करुणा और वात्सल्य की गंगा और आँखों में तैरते आँसुओं का मर्म उन्होंने जिस ढंग से अभिव्यक्त किया है, शायद ही अन्य किसी से संभव हुआ हो। यही कारण था कि तत्कालीन बंगाल में शरत की भाषा शैली, यहाँ तक कि संवाद साधारणजनों की बोल-चाल की भाषा में उद्धृत होते रहे, आज भी हैं।

विदेशों में साहित्यकारों को समादृत किया जाता है। पूँजीवादी देशों की बात ही क्या, कम्युनिस्ट देश रूस में मैंने देखा कि लेखकों, विद्वानों, कलाकारों और वैज्ञानिकों को सबसे अधिक तनख्वाह और सुविधाएं मिलती हैं। गोर्की के नाम पर तो शहर ही है। इंगलैण्ड में चार्ल्स डिकेन्स और स्कॉट के स्मारक बन चुके हैं, इनके संग्रहालय हैं। एवन नदी पर शेक्सपीयर का स्मारक देखने लोग विश्व के कोने-कोने से आया करते हैं। इनकी तुलना में हमारे देश के साहित्यकारों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट नहीं कर पाये। सड़कों या बागों का नाम जरूर रख दिए। इन्हें सजा सँवरा रखते तो भी गनीमत थी। प्रेमचन्द के लमही गाँव गया था। बनारस के पास ही है। जिन्होंने इसे देखा वे ही जानते हैं कि हिन्दी पर गर्व कर ऊँची आवाज उठाने वालों ने इस पवित्र तीर्थ के लिए क्या और कितना किया। हम अपने साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ लेते हैं, पी.एच.डी. और डी.लिट डिग्री पा जाते हैं। उनकी पुस्तकों पर आधारित फिल्में देख लेते हैं, क्या यही यथेष्ट है ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छोटा भाई बृजलाल कसौली में आरोग्य लाभ कर रहा था। मई १६४७ में उससे मिलने कसौली गया। सोचा गरमी से राहत मिलेगी और कुछ दिनों तक पहाड़ों की सैर भी कर लूंगा। कसौली पहुँच कर भाई को देखा, बहुत प्रसन्नता हुई। वजन बढ़ गया था, चेहरे पर रौनक आ गई थी। उन दिनों क्षय रोग असाध्य तो नहीं पर दुस्साध्य माना जाता था, बहुत व्ययसाध्य भी। मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद देता की मेरे भाई को वे स्वस्थ कर रहे हैं। अब वह प्रतिदिन दो-तीन मील टहल लेता था। परिवार के दूसरे लोग वहां गए हुए थे। अतएव सेवा-सुश्रुवा का आभाव नहीं था। पन्द्रह दिन का अवकाश लेकर हिमालय भ्रमण के लिए रवाना हो गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सार्वजनिक जीवन और कलकत्ते का मारवाड़ी समाज

अपने काममाज और व्यवसाय में रहते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति रुचि रखता था। उन दिनों गांधी जी का प्रभाव बढ़ रहा था। महात्माजी ने सामाजिक सुधार को राजनीतिक आन्दोलन का एक अंग बना दिया था। इस प्रकार रूढ़िवादी प्रथाएँ, अशिक्षा, छुआ-छूत, पर्दा आदि का बहिष्कार 'स्वदेशी' के आन्दोलन के साथ चल रहा था। हम कभी-कभी इनकी मीटिंगों में चले जाते और चन्दा वगैरह भी दिया करते। एकाध बार नमक भी बनाया। परन्तु यह सब घर वालों से छिप कर करते। भाईजी और पिताजी का बहुत डर लगता।

उन दिनों हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आज से सर्वथा भिन्न होते थे। इनका सम्बन्ध अधिकतर जातीय कार्यक्रमों से रहता। मारवाड़ी ज्यादातर बड़ाबाजार में रहते थे। अतएव यह अंचल कलकत्ते में एक पृथक द्वीप की तरह लगता। मेरा सम्पर्क अंग्रेजों से था, ऑफिस में मानव बाबू एवं अन्य बंगाली किरानी वगैरह से भी मिलता और पाट के काम के सिलसिले में बंगाल के कस्बे एवं गाँव में भी जाया करता। मुझे इनके उत्सव, पर्व, सामाजिक सांस्कृतिक आयोजनों को नजदीक से देखने-समझने का मौका मिलता था। मैं शामिल भी होता। बंगाल में बंगला साहित्य के प्रति रुचि बढ़ने लगी। बंगला साहित्य पढ़ने की प्रेरणा हुई। 'भारतमित्र', 'मतवाला' में अनुवाद निकलते, मैं पढ़ता। धीरे-धीरे मैं मूल बंगला पुस्तकें भी पढ़ने लगा। बंकिम बाबू की बहुत-सी रचनाएँ मैंने पढ़ डाली। ब्राह्म समाज का साहित्य भी पढ़ा। राजा राममोहन राय एवं केशवचन्द्र सेन के विचारों का प्रभाव मुझ पर पड़ा। रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह ने मन में जड़ जमा लिया, परन्तु इतना साहस नहीं था कि उसे व्यक्त की सकूँ।

सन् १९४७-४८ के बाद धीरे-धीरे सार्वजनिक कार्यों में रुचि बढ़ी। मैं सक्रिय हो उठा, परन्तु राजनीतिक गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकता था। सामाजिक कार्यक्रम एवं सार्वजनिक सेवाओं में आगे बढ़ता रहा। देश के विभाजन पर शरणार्थियों-वास्तुहाराओं का आगमन, दंगा पीड़ितों, बाढ़ पीड़ितों की सहायता आदि में उत्साह पूर्वक सहयोग देने लगा। घटनाक्रम से अपने कर्मक्षेत्र कलकत्ते का हो चुका था।

मारवाड़ी-समाज रूढ़िवादी एवं परम्परावादी था। शिक्षा का भी अभाव था। अतएव अक्सर मीठे-तीखे आक्षेप सुनने को मिलते। बुरा लगता था। जहाँ न पहुँचे गाड़ी वहाँ पहुँचे मारवाड़ी! लोटा, कम्बल डोरी लेकर चलने वाली बंगाल में बसी इस कष्ट-सहिष्णु जाति के इतिहास एवं इसके अवदान के विश्लेषण पर चला जाता। उन दिनों स्थानीय बंगला अंग्रेजी अखबारों में मारवाड़ियों पर टीका टिप्पणियाँ भी निकलतीं। स्वाभाविक था, क्योंकि स्थानीय बंगालियों की तुलना में मारवाड़ी आर्थिक क्षेत्र में तेजी से सम्पन्न हो रहे थे। मैं नेशनल लाइब्रेरी में जाकर कलकत्ता और बंगाल के इतिहास को पढ़ा करता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अन्य तीर्थ यात्रियों की तरह बंगाल में मारवाड़ी बहुत प्राचीन काल से आते रहे हैं। उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों की तरह यहाँ बहुत से बड़े तीर्थ नहीं रहे, किन्तु गंगासागर का महत्व अतीत काल से रहा है। काली घाट का महत्व संभवतः सत्रहवीं शताब्दी के बाद बढ़ा, किन्तु मारवाड़ियों में इसके प्रति विशेष आर्कषण नहीं था। फिर भी अन्य प्रान्तों से आए तीर्थयात्री गंगासागर तीर्थ के साथ कालीघाट, तारकेश्वर महादेव, त्रिवेणी संगम, नवद्वीप धाम भी कर लेते। वापसी में बिहार के राजगिरि, नालन्दा पावापुरी, पारसनाथ, गया करते हुए काशी पहुँचते।

यह बात सही है कि जहाँ गाड़ी नहीं पहुँच सकती, वहाँ मारवाड़ी पहुँच जाते हैं और व्यापार-व्यवसाय कर जम जाते हैं। हमारे समय तक यह बात रही है, आगे की पीढ़ी में यह गुण रहेगा कि नही पता नहीं। आज भी मारवाड़ियों के प्रति लोग कहते हैं 'लोटा कम्बल डोरी लेकर आए और करोड़पति बन बैठे'। बात तथ्य पूर्ण है। राजस्थान की वीरान मरुभूमि में उपजता ही क्या ? सदियों तक होते रहे युद्ध, विग्रह, लूट-मार, सामन्तशाही के उत्पीड़न ने कृषि, व्यापार-वाणिज्य को जमने ही नहीं दिया। कष्टसहिष्णु मारवाड़ी घरबार छोड़कर देसावर निकल पड़ता; कमाई के लिए, दूसरा उपाय भी क्या था ? सैनिक वृत्ति और वणिक वृत्ति अवलम्ब थे।

अकबर के समय से बंगाल में मारवाड़ियों का सिलसिलेवार आगमन एवं वास प्रारम्भ हुआ इसमें सन्देह नहीं। सन् १५६४ में गौड़ के सुलतान सुलेमान किरानी ने अकबर की अधीनता इस शर्त पर स्वीकार की थी कि उसकी सहायता के लिए शाही फौज बंगाल में रहेगी। जो शाही फौज आगरे से आई थी, उसमें राजपूत सैनिक थे। रसद और युद्ध सामग्री की आपूर्ति लिए मारवाड़ के कुछ वैश्य भी थे।

इसके बाद १६०५ ई० में आमेर नरेश राजा मानसिंह बंगाल में बीस हजार शाही फौज के साथ आए। राजनीतिक और अराजकता एवं विद्रोह का दमन करने के बाद यहाँ शासन को भी व्यवस्थित किया। इससे पूर्व १५८० ई० में टोडरमल ने यहाँ आकर शासन व्यवस्था सुधारी थी और उन्होंने कतिपय मारवाड़ियों को राजकार्य में स्थान दिया। इस प्रकार राजनीति और व्यापार दोनों में मारवाड़ी धीरे-धीरे जमने लगे। मारवाड़ियों में यह विशेषता रही कि वे अपने काम से मतलब रखते थे। ईमानदारी, मितव्ययिता, अध्यवसाय के कारण उनकी साख थी और उन्होंने कभी इसका दुरुपयोग नहीं किया। इसी कारण वे राजा और प्रजा दोनों के विश्वासपात्र बने रहे। बंगाल में व्यापार जमने के कारण वे अपने सगे-सम्बन्धियों को भी व्यापार और व्यवसाय के लिए बुला लिया करते। आवागमन की असुविधा एवं कट्टर धर्मिक बन्धनों के कारण वापस देश जाना उनके लिए सम्भव नहीं होता। वे यहीं बस जाते और यहीं के हो जाते। उत्तर भारत में अंग्रेजों के प्रभाव विस्तार से पहले तक राजपूताना मे देशावरों की सफर खास तौर से बंगाल में आना आसान नहीं था। रास्ते में ठग, चोर, डाकू, बीहड़ जंगल, नदी-नाले, जंगली जानवर—सभी तरह की कठिनाइयाँ थी सफर में महीनों लग जाते थे। यात्राएँ पैदल होती या बैलगाड़ियों में। अधिकांश व्यक्तियों का आवागमन दिल्ली-आगरा से आने वाली सेनाओं के साथ होता। बंगाल, बिहार में अंग्रेजों के पैर जमने पर यात्री या व्यापारी राजपूताना से मिर्जापुर तक पैदल आते थे अथवा ऊँटों या बैलगाडियों पर। मिर्जापुर से कलकत्ते तक की यात्रा के लिए वे 'चढ़नदारी अर्थात नाव में महाजन के माल की रखवाली का काम करते। इसके लिए उन्हें भोजन और पारिश्रमिक भी मिल जाता। वहाँ से नाव में हुगली और सूतालूंटी (कलकत्ता) आते। यहाँ भी आवास की बड़ी कठिनाइयाँ थी। किराये की कच्ची झोपड़ियों में दो-चार आदमी साथ मिलकर रहते। खुद की रसोई बनाते। यदि कोई सम्बन्धी ने थोड़ी पूँजी दे दी तो नौकरी न कर छोटी मोटी दुकान कर लेते या महाजनी का कारबार कर लेते। सौ-पचास रुपयों को इतनी सावधानी से फेरते कि रकम बढ़ती जाती थी। जिनके पास पूँजी नहीं होती। वे दलाली या फेरी में लग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाते । माँग कर पेट चलाने को वे किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करते । उन दिनों मारवाड़ियों में यह धारणा थी कि नौकरी से लक्ष्मी प्रसन्न नहीं होती । हारी-लाचारी में वे नौकरी करते और थोड़ी पूंजी होते हुए स्वतन्त्र व्यवसाय में लग जाते ।

कलकत्ता के बसने से पहले अधिकांश 'मारवाड़ी' पटना, मुंगेर और मुर्शिदाबाद में आते । कुछ थोड़े से चटगाँव में भी व्यापार करते थे । प्लासी के युद्ध के बाद कलकत्ते का विकास तेजी से हुआ । अंग्रेजी राज की राजधानी बनाए जाने पर तभी से राजनीतिक महत्व के साथ व्यापार, वाणिज्य और उद्योग भी कलकत्ते में दिन दूना बढ़ने लगा ।

नबावी शासन में जगतसेठों की हत्या के बाद से राजनीति के प्रति मारवाड़ी उदासीन होते गए । इन्हीं दिनों बीकानेर और शेखावाटी के अंचलों से काफी संख्या में वैश्य आते रहे । इन लोगों ने अपना व्यापार जल्द ही बढ़ा लिया । इसी समय कलकत्ते में मारवाड़ियों के लिए 'काइयाँ' और 'चुरूवाला' शब्द व्यवहार में आए । 'काइयाँ' का अर्थ होता है, चतुर चालाक । पीढ़ी दर पीढ़ी बसने वाले और राज-काज में भाग लेने वाले मारवाड़ियों को स्थानीय बंगाली 'काइयाँ' कहते थे, बाद में आकर बसने वाले अधिकांश शेखावाटी (चूरू) के रहते इसलिए इन्हें चुरूवाला कहा जाता । चूरूवालों का सामाजिक संगठन अच्छा था । इनकी पंचायत थी और आपसी मामलों पर विचार भी ये अपनी गद्दियों पर ही करते । इनकी पंचायत आगे चलकर बड़ी पंचायत कहलायी । इनमें आपसी विवाद, सामाजिक रस्म-रिवाज आदि पर आवश्यक निर्णय लिया जाता था । अब तो यह परम्परा रह नहीं गई । किन्तु हमारे समय में काफी प्रभावी ढंग से इसका काम होता था ।

शुरू के दिनों में जब मैं कलकत्ता आया, मैंने राजस्थानी भाइयों को कठिन एवं संघर्षपूर्ण जीवन बिताते देखा है । यह बात जरूर है कि पहले की तरह वे खोलाबाड़ियों (कच्चे मकानों) में नहीं रहते थे । बड़े बाजार की गद्दियों में रहते, मिल जुलकर रसोई बनाते । इनका चौका 'बासा' कहलाता । बाद में राजस्थान से आए ब्राह्मणों ने स्वतन्त्र रूप से बासा चलाना शुरू किया जो अब तक चालू है । उन दिनों मारवाड़ी नियमित रूप से बड़े सबेरे गंगा स्नान करते फिर मन्दिरों में जाते । भोजन कर वे ठीक ९ बजे तक अपने काम पर बैठ जाते, आजकल की तरह वे बी०कॉम, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट नहीं होते और न अंग्रेजी की उनकी अच्छी जानकारी थी, परन्तु मुड़िया महाजनी में पक्के थे । हिसाब-किताब और बही खाता रखने के साथ आम तौर पर सबको इस बात की जानकारी रहती थी कि कौन सा माल कहाँ मिलेगा, पड़ता कैसा पड़ेगा । हमदर्दी उनमें कूट-कूट कर भरी थी । देश से कोई भी भाई आ जाता तो कोशिश करके कहीं न कहीं काम पर लगा देते । मितव्ययी बहुत होते थे । सफर तीन या पांच वर्ष का ही करते । इस बीच पाई-पाई जोड़ कर संचय करते । आजकल की तरह 'एन्टरटेनमेन्ट' के प्रति झुकाव नहीं था । रामलीला, रास या कभी-कभी नौटंकी पार्टी आ जाती तो चले जाते । इन सबों के लिए खर्च नहीं करना पड़ता था, मन्दिरों या सम्पन्न व्यापारियों द्वारा आयोजन होते रहते । शाम को काम-काज से फुरसत पा कर इनमें मैं भी जाया करता । समाज के अच्छे प्रतिष्ठित व्यवसायी भी इनमें शामिल होते थे । बड़े-छोटे का भेद-भाव नहीं रखा जाता । पारस्परिक परिचय बढ़ाने का अवसर मिलता था, स्नेह का सहयोग का भी ।

थियेटर का प्रवेश कलकत्ते में हो चुका था । ज्यादातर कथानक में इश्क-प्यार रहता, गजल-शेर से भरे संवाद । बाद में रामायण, महाभारत पर आधारित कथानक आए । स्वदेशी युग था, समाज सुधार की भावना जोर पकड़ रही थी । अतएव राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं पर भी नाटक आने लगे । सुलझे विचार के युवक और साहित्यकारों का इसे सहयोग प्राप्त था । मैं कभी-कभी नाट्य-समितियों में जाया करता था । मुझे कई बार नाटकों में अभिनय के लिए आमंत्रित किया गया । कुछ तो संकोचवश एवं भाईजी, बाबूजी के डर से केवल सहयोगी एवं दर्शक बना रहा, स्टेज पर नहीं उतरा ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मनुष्य समस्याओं से घिरा कठिनाईयों से जूझता है, उसे राग-रंग फीका लगता है। मेरी भी यही दशा थी। किन्तु ज्यों-ज्यों कठिनाईयों से उबरने लगा, अपने अन्दर उत्साह एवं स्फूर्ति का अनुभव करता। आसपास के वातावरण समाज के गतिविधियों में रुचि बढ़ने लगी। मुझे कलकत्ते का इतिहास, विशेषतः मारवाड़ी समाज के विकास का क्रम आकर्षक लगा।

मेरे कलकत्ता आने के पूर्व दिल्ली भारत की राजधानी बन चुकी थी। किन्तु कलकत्ते का महत्व कम नहीं हुआ। व्यापार व्यवसाय का केन्द्र बना रहा। उद्योग-धन्धे यहाँ बढ़ते ही गए। नाना प्रकार के राजनीतिक उलट फेर होने के बावजूद आज भी यही अवस्था है। बंगाल और कलकत्ते का आज जो गौरव है, उसमें राजस्थानियों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अवदान रहा है। पलासी के युद्ध के बाद यदि मारवाड़ी राजनीति से हटकर वाणिज्य-व्यापार के क्षेत्र में नहीं उतरते तो उनके स्वयं का अस्तित्व संदिग्ध हो जाता। कलकत्ता या बंगाल आज जैसा उन्नत शायद ही हो पाता।

मैंने प्रारम्भ से ही लक्ष्य किया कि मारवाड़ियों की व्यापारिक उन्नति का आधार उनकी परम्परागत सराफी पद्धति रही है। बहुतों की मान्यता है कि बैंकिंग सिस्टम पश्चिम की देन है। यह सही नहीं है। सराफी या बैंकिंग व्यवसाय हमारे देश के लिए नई नहीं है। विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास को पढ़ने पर पता चलता है कि अन्य देशों में जब कोई भी सराफी पद्धति की कल्पना नहीं कर सकता था, भारत में यह चरम विकास कर चुका था। गुप्तकाल से अब तक सराफी की पद्धति लगभग एक सी ही चली आ रही है, भले ही समयानुसार उसमें कुछ परिवर्तन हुए हों। राजस्थानी तो इस व्यवसाय में काफी अगुवा रहे हैं।

हमारी समाज-व्यवस्था, प्राचीन काल से कुछ इस ढंग की रही है कि समाज में आर्थिक भेदभाव और शोषण को दूर करने का प्रयास रहा है। सराफी व्यवसाय इसी लक्ष्य से विकसित किया गया। यह मानी हुई बात है कि समाज में सबों को उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिए, किन्तु यह भी वास्तविकता है कि व्यक्ति के गुण पर यह सम्भव है। पौधों को काट-छाँट कर समान करने पर भी कुछ वृंत तेजी से बढ़ते हैं, कुछ ठूंठ रह जाते हैं। इसी प्रकार सभी व्यक्ति समान रूप से सम्पन्न नहीं होते। साधन और धन कमोवेश व्यक्तियों के पास होते रहते हैं। धन बहुत बड़ा साधन हुआ करता है, होता आया है, चिरकाल से। अतएव हमारे मनीषियों ने यह निष्कर्ष निकाला था कि समाज के कुछ ही व्यक्ति यदि धन-सम्पन्न और धनी बने रहे तो शोषण की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से उनमें बढ़ सकती है। यदि उनके धन का उपयोग जनसाधारण के लिए न हो सका तो साधनहीन और साधनसम्पन्न में सद्भावना का लोप होना अवश्यम्भावी है। नतीजा यह होगा कि द्वेष और ईर्ष्या वर्ग-संघर्ष के रूप में फूट निकलेगी। मनुस्मृति अथवा अर्थशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में धन को समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति माना गया है। इसी आधार पर महात्मा गाँधी ने भी धनिकों को समाज के धन का ट्रस्टी कहा है।

हमारी यह मान्यता रही है कि धन का विनिमय अधिकाधिक होते रहना ही समाज को स्वस्थ रखने का सहज उपाय है। उसके लिए बड़ी दूरदर्शिता से उन्होंने व्यवस्था चलाई। यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति को कार्य के लिए स्वार्थ सर्वाधिक अनुप्रेरित करता है। धनिक व्यक्तियों को अपने धन का विनिमय करने में यदि स्वार्थसिद्धि का अवसर न दिखाई पड़े तो उनमें रुचि पैदा नहीं होती। इस दृष्टिकोण से कमीशन के बतौर ब्याज की परम्परा चलाई गई। इस प्रकार धन को निश्चल नहीं रहना पड़ा, विनिमय से उसमें गति आ गई। जनसाधारण को इस प्रकार अपने काम चलाने के लिए ब्याज पर धन मिलने की सुविधा हो गई। सुदीर्घ मुसलमानी शासन के प्रभाव से हमारी संस्कृति को काफी धक्का पहुँचा, हमारी मान्यताएँ शिथिल होती गई, नैतिकता का भी महत्व कम हुआ इस कारण शोषण की प्रवृत्ति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बढ़ी। फिर भी, वह वर्तमान अवस्था जैसी विश्रृङ्खल नहीं थी। मेरे कलकत्ते आने के शुरूआत के समय तक ब्याज का दर पौने आठ आना (४७) पैसे सैकड़ा थी। यही दर सारे उत्तर भारत में लागू थी। बंगाल में नौ आना (५६ पैसे) की दर का प्रचलन हुआ, यह आज भी पुरानी बहियों में देखा जा सकता है।

सर्राफा के व्यवसाय में हुण्डी-पुर्जे भी चलते थे। व्यापारिक क्षेत्र में पूँजी नियोजन में रुचि लेने वाले जहाँ अधिक होते वहाँ प्रतिस्पर्धा में ब्याज की दर कम हो जाती थी। इसी प्रकार पूँजी की माँग अधिक होने पर दर बढ़ भी जाती। किन्तु खाते के रुपयों का जो लेन-देन हुआ करता उसमें निर्धारित ब्याज ही लगता। इसके अलावा डिस्काउन्ट की भी प्रथा थी। रुपए लगाकर मुद्दती हुण्डी खरीदने वाले सर्राफ मुद्दत से पहले रुपयों की जरूरत पड़ने पर बाजार भाव में हुण्डी बेचकर रुपए पा सकते थे। इस प्रकार पूँजी के लिए कठिनाई नहीं होती। राजस्थान से आए हुए भाईयों को काम करने के लिए कलकत्ते में रुपए आसानी से मिल जाते थे। ईमानदारी और मेहनत उनमें थी, पूँजी के सहयोग से सम्पन्न होने में उनको अधिक समय नहीं लगता। कलकत्ते में उन दिनों इतने बैंक नहीं थे, सर्राफों के फर्म ही वैंकिंग का काम करते थे। इनमें ताराचन्द घनश्यामदास, कल्लूबाबू लालचन्द, हरसामल रामचन्द्र, शीतलाप्रसाद खड़गप्रसाद, वंशीलाल, अवीरचन्द्र, चैनरूप सम्पतराम, आदि थे। इनके अलावा और भी कई फर्म थे।

अब तो यह अतीत की बात हो गई। राजनीतिक पेचबंदी, कानूनी पेशबन्दी आदि ने सर्राफा की स्वस्थ परम्परा को उखाड़ फेंका है। परिणाम यह हुआ कि धनी और अधिक धनी और निर्धन और भी अधिक असहाय होतेजा रहे हैं। परिणाम भी सामने उभरता आ रहा है। सराफे की तुलना वर्तमान वैंकिंग व्यवस्था से नहीं हो सकती। वैंकिंग में मानवता, उदारता और ईमानदारी को परखने-समझने की क्षमता नहीं है जबकि सराफे की व्यवस्था में व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि था। वैंक उसी व्यक्ति या व्यापारी को पूँजी देती है जिनके पास स्थावर सम्पत्ति होती है और बतौर जमानत उसे वैंक के हवाले वह कर देता हैं। जिसके पास चल-अचल सम्पत्ति नहीं है उसे वैंकों से पूँजी आसानी से नहीं मिल सकती। ईमानदारी, व्यक्तिगत साख आदि कोई मूल्य बैंक नहीं आँकती।

अब तो सरकार ने सराफी के व्यवसाय को अपना लिया है। छोटे कस्बे और शहरों में बैंक खुल रहे हैं। अफसर रुपए का लेन-देन करते हैं कागजी कार्यवाई पूरी हो जाती है। रकम डूबे या बचे इससे उन्हें क्या? सराफ सरकार घाटे की पूर्ति ब्याज दर टैक्स बढ़ा कर लेती है। अब तो सरकारी सिक्युरिटी, शेयर्स में पूँजी लगा कर धनी सम्पन्न व्यक्ति विनिमय कर लेते हैं। इससे जन साधारण तक पूँजी पहुँचने का अवसर नहीं मिलता समाज को कोई लाभ भी नहीं पहुँचता है। व्यक्ति, देश और समाज के लिए यह व्यवसाय कहाँ तक उपयोगी है यह विचारणीय है।

आज परमात्मा की कृपा हम पर है। परन्तु मैं अपने बीते दिन भूला नहीं हूँ और यह भी चाहता हूँ कि हमारी वतर्मान पीढ़ी अपने स्थायित्व के लिए केवल आज को न देखे, बीते कल और आने वाले कल पर भी नजर रखे। हमारी पिछली पीढ़ियों में यह वहुत बड़ा गुण था। वास्तव में सन् १९१४-१८ के महायुद्ध तक के तेजी से बदलते समय में मारवाड़ी समाज के व्यक्तियों ने विषम परिस्थितियों में संघर्ष कर कलकत्ते के व्यापारिक क्षेत्र में अपने को प्रतिष्ठित किया उनका दृष्टान्त अत्यन्त प्रेरणादायक है। उनमें से कुछेक का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि इनसे मुझे प्रेरणा मिली और इनका प्रसंग शायद आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरक हो।

कलकत्ते में मारवाड़ी समाज में मुझे नाथूराम जी सराफ का स्थान बहुत ऊँचा लगा। इन पर आधारित कहानियाँ भी मैंने लिखी हैं। जिन दिनों अंग्रेजी फर्मो में खत्रियों का रोबदाब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था, नाथूरामजी ने उस गढ़ में प्रवेश किया। नाथूरामजी मँडावा के थे। स्वस्थ शरीर प्रभावशाली व्यक्तित्व, खेती करते थे, गुजारे लायक अन्न पैदा कर लेते। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में माता-पिता की छाया उठ गई। भाभी की देख-रेख थी। एक दिन भाभी ने इनकी छोटी बहन को किसी भूल के कारण पीट दिया। नाथूरामजी ने कारण पूछा तो वे इन पर भी दौड़ी। वे माता के समान उनका इज्जत करते थे, कुछ बोले नहीं। घर छोड़ कर निकल पड़े। उस समय उनकी उम्र बीस वर्ष की थी। पैदल ही मिर्जापुर तक आये। सीधे वे सेवाराम रामरिखदास जी की गद्दी में पहुँचे। कलकत्ते में इस फर्म का अच्छा काम था। रेल थी नहीं। नावों में माल लाद कर भेजा जाता। नाथूराम जी चढ़नदारी यानी नौकाओं पर माल की चौकसी रखने वाले का काम लेकर कलकत्ता रवाना हो गए। इस काम के लिए उन्हें पाँच रुपए पारिश्रमिक और भोजन गद्दी की तरफ से मिलता। यह सन् १८३७ की बात है। कलकत्ते में उन दिनों सेवाराम रामरिखदास की गद्दी के मुनीम रामदत्त जी गोयनका थे। नोकाओं के प्रबंध और नाथूराम जी की मेहनत से खुश होकर उन्होंने रोटी-कपड़ा और दो रुपए महीने पर उन्हें नौकरी पर बहाल कर लिया। काम था रामदत्त जी के लिए रसोई बनाना। शरीर से तगड़े नाथूराम जी को यह काम जँच गया। महीने के दो रुपए की मटर लेकर वे कबूतरों को चुगा दिया करते।

रामदत्त जी को कबूतरों वाली बात का पता चलने पर उन्होंने दाना चुगाने के लिए हर महीने दो रुपए नाथूराम जी को दिलाने की व्यंवस्था कर दी। परन्तु अब नाथूराम जी चार रुपए की मटर चुगाने लगे। यह सिलसिला जारी रहा। रसोई बनाने के बाद काफी समय बचा रहता। नाथूराम जी सूता पट्टी चले जाते और दो एक गाँठ की दलाली कभी-कभी कर लेते। इससे उन्हें बीस-तीस रुपए की आमदनी हो जाती।

उन दिनों अंग्रेजी ऑफिसों में खत्रियों का बोलबाला था, परन्तु आरामतलब होने के कारण वे अंग्रेजों की निगाह से गिरने लगे थे। एक दिन रामदत्त जी ने नाथूराम जी को किंसल घोष कम्पनी में माल की डेलिवरी लिखाने के लिए भेजा। उन्होंने लिख दिया। गर्मी का मौसम था, वहीं गोदाम में जाकर ठंढे में बैठ गए। नींद आ गई। थोड़ी देर बाद किंसल साहब आये, अपरिचित लम्बे चोड़े आदमी को गोदाम में सोता देखकर जगाया। परिचय पूछने पर नाथूराम जी ने नाम बताते हुए अपने को कपड़े का दलाल बताया। संयोग की बात है कि साहब उन्हें अपने कमरे में ले आया। माल के कुछ नमूने दिखाकर पूछा कि किस भाव में वे इन्हें बाजार में निकाल सकते हैं। नाथूराम जी ने माल के ऐसे भाव बताए कि साहब प्रभावित हो गया। उसने पूछा कितना माल बेच सकोगे ? नाथूराम जी ने सहज भाव में कहा जितना देंगे, सब निकाल दूंगा। साहब ने शर्त रखी तीन दिन में सारा स्टाक बेच देना होगा। नाथूराम जी नें मंजूरी दे दी।

नमूने लेकर नाथूराम जी बाजार आए। सबसे पहले उन्होंने रामदत्त जी को नमूने दिखाये। सेवाराम रामरिख की फर्म पहले किंसल घोष का माल बेचती थी परन्तु निक्कामल जी से मतभेद होने के कारण किंसल घोष का माल मिलना बंद हो गया था। रामदत्त जी ने सुयोग अच्छा देखा और बाजार भाव से कुछ ऊँचा ऑफर दिया। नाथूराम जी और दूसरों का भी भाव लेकर साहब के पास गए। नाथूराम जी के दिए गए भाव से वह खुश हुआ, परन्तु विश्वांस नहीं हुआ कि अनजान नया दलाल निक्कामल जी से इतनी ऊँची दर कैसे दे रहा है। लिहाजा, उसने अपने ऑफिस के एक कर्मचारी को बाजार में ऑफर की जँचाई के लिए भेजा। उसने रिपोर्ट दी की ऑफर सही दिए गए हैं। साहब्र बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने उसी दिन पाँच हजार पेचक बेचने के लिए कह दिया। इस घटना के बाद निक्कामल जब ऑफिस आए तो साहब ने उन्हें कहा कि तुम्हें इनदिनों और कामों में फुर्सत कम रहती है इसलिए तुमको एक असिस्टेन्ट देना तय पाया है। निक्कामल जी को रईसी का नाव आ गया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और उन्होंने उखड़े शब्दों में नामंजूर कर दिया । साहब ने पलट कर कहा कि तुम्हारी नामंजूरी की हालत में आज से हम नाथूराम जी को कम्पनी का दलाल-बेनियन मुकर्रर करते हैं । इस घटना के आधार पर मैंने मजदूर से मालिक नामक एक कहानी लिखी है ।

इधर नाथूराम जी ने सूता पट्टी में आकर बाजार में खबर कर दी कि किंसल घोष का माल कोई भी मारवाड़ी बेच सकता है, उसे अपनी आधी दलाली दे दूँगा । इससे जाति भाईयों को बहुत सहारा मिला, धड़ल्ले से माल बिकने लगा । नाथूराम जी पर भाग्यलक्ष्मी मुस्कुरा उठी । वे धीरे-धीरे अपने गांव से अपने कुटुम्बी और रिश्तेदारों को बुलाकर सूतापट्टी में दूकान खुलवाने लगे । इस प्रकार उनके सहारे कलकत्ते में कपड़े के व्यापार में मारवाड़ी भाई काफी जम गए । लगभग तीस वर्ष तक नाथूराम जी ने किसंल घोष कम्पनी का काम किया । बाद में अपने मुनीम गणेशदास जी मुसद्दी को काम सम्हला कर मँडावे वापस चले गए । वे पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु विद्या-प्रेमी थे । अपने गांव में उन्होंने संस्कृत पाठशाला बनवाई जिसमें एक सौ विद्यार्थी पढ़ते थे और उनके भोजन की व्यवस्था थी । नाथूराम जी में धन का अभिमान कभी नहीं हुआ । परिचय पूछने पर वे हमेशा नाथिया कहते ।

आज अपने समाज में करोड़पतियों की कमी नहीं, परन्तु नाथूराम जी जैसे जाति हितैषी कम ही मिलेगें । वे खुद बढ़े,औरों को भी बढ़ाया । कहा जाता है कि मृत्यु के पूर्व उनसे लड़कों ने पूछा कि शरीर छूटने पर दान-धर्म उनके नाम पर किस ढंग का किया जाए । उनका उत्तर था कि दान-धर्म किसी के नाम पर उसकी जीवित अवस्था में ही करना सार्थक होता है, देह छोड़ने पर उसके लिए कुछ करने के पीछे दिखावा और ढोंग को सिर उठाने का मौका मिलता है ।

हमारे अपने ही गाँव सरदारशहर के चैनरूप जी दूगड़ के जीवन की घटनाएँ बड़ी प्रेरणादायक है । सूतापट्टी में इन्होंने चैनरूप सम्पतराम के नाम से फर्म खोली । सबसे पहले करोड़पतियों में गिने जाने लगे । कहा जाता है कि चैनरूप जी गाँव में चेजे पर मजदूरी कर गुजारा करते थे । एक दिन काम पर पहुँचने में देर हो गयी, जब वे अपनी टोकरी उठाकर काम करने को बढ़े कि चेजारे ने देर की वजह से फटकारते हुए निकल जाने को कहा । संजोग की बात है कि उसके हाथ से करनी छटक कर चैनरूप जी के माथे पर पर जा लगी और चोट गहरी बैठी । खून फूट निकला । खबर सुनते ही मालिक दौड़ा आया । दस-पाँच रुपए देकर चैनरूप जी को उनके घर पहुँचा कर मामला रफा-दफा कर दिया । घर पर माता ने मरहम पट्टी कर दी । हफ्ते भर में घाव भरने लगा मगर चैनरूप जी के मन में चेजारे की मजदूरी जँची नहीं । उन्होंने सोचा कि दस-पाँच रुपए की पूँजी हो गई, देसावर की सफर कर कमाई करना ठीक रहेगा । माता की स्वीकृति ले ली और पैदल ही कलकत्ते आए । यहाँ एक ओसवाल फर्म में खाना-कपड़े के साथ दो रुपए महीनें की नौकरी कर ली । काम यही था कि मालिक के लड़कों को स्कूल ले जाना और फिर वापस घर ले आना । यह काम करते हुए स्कूल में उन्होंने सामान्य लिखना-पढ़ना सीख लिया । तब मालिकों ने दूकान पर माल दिखाने का काम दिया । बड़ी लगन और मेहनत से काम करते रहे । धीरे-धीरे चार पाँच सौ की पूँजी भी खड़ी कर ली । बनिये के लड़के थे, व्यापार के लिए मन में आकांक्षा दबी थी, अब उभरने लगी । सूतापट्टी में एक चबूतरे पर छोटी सी जगह भाड़े पर ले ली । दूकानदारों से धोती जोड़े लाकर बेचने लगे । मीठी बोली, सच्चा व्यवहार, कम मुनाफा इन गुणों के कारण दूकानदारी चल निकली । कुछ ही वर्षों के बढ़ते-बढ़ते बड़े व्यापारी बन गये । चैनरूप जी ही शायद कलकत्ते के पहले व्यापारी थे, जिन्होंने मैनचेस्टर से सीधे अपनी फर्म में माल मँगाना शुरू कर किया । उन दिनों अंग्रेजी फर्मों के सिवाय विलायत से किसी भी हिन्दुस्तानी को सीधे माल नहीं भेजा जाता था । परन्तु चैनरूप जी ने इस गढ़ को तोड़कर भारतीय व्यापारियों की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मर्यादा बढ़ाई ।

कलकत्ते के मारवाड़ी समाज के इतिहास में सूरजमलजी का स्थान अद्वितीय है। इनकी प्रेरणा और सहयोग ने राजस्थानी भाइयों को कलकत्ते में कारोबार जमाने और सामाजिक कार्यों में रुचि लेने में बहुत प्रेरणा दी । इनका स्वयं का जीवन भी अनुकरणीय दृष्टान्त उपस्थित करता है ।

सूरजमल जी झुनझुनलाला के घर की आर्थिक दशा बहुत साधारण थी, वे अपने गाँव चिड़ावा से बारह-तेरह वर्ष की कच्ची उम्र में कमाई करने घर से निकले। सन् १८६० ई० के आस-पास राजस्थान से कलकत्ते की पैदल यात्रा एक किशोर ने तभी की होगी जब उसके पास अदम्य साहस, आत्मविश्वास की पूँजी रही होगी । कलकत्ते में देश से नए आए हुए राजस्थानियों को आवास का कष्ट पहले नहीं होता था, हमारे समय तक यही अवस्था थी। गद्दियों में रहने को जगह मिल जाती थी । सूरजमल यहाँ आकर लालचन्द बलदेवदास की गद्दी में रहे । उन्हीं के यहाँ काम भी करने लगे । बाद में प्राणकृष्ण लाहा की आफिस में पुर्जा चुकाने का काम पकड़ लिया । व्यापारियों से इस मार्फत जान-पहचान बढ़ने लगी । उन्होंने थोड़ा बहुत निजी काम भी इसी बीच शुरू कर दिया । संयोग की बात है कि उन्हें निजी कारबार में नुकसान लग गया । अपनी इज्जत बचाने के लिए पुर्जों के भुगतान की रकम से उन्होंने अपने घाटे की रकम चुका दी । यह बात बाबू दुर्गाचरण लाहा तक पहुँची । उनसे पुर्जों का हिसाब माँगा गया ।सूरजमलजी बहुत संकट में पडे । कहाँ से रुपये लाएं ? देने तो होंगे ही । उधेड़बुन में बासे में पड़े थे कि इनका एक मित्र आया, इनके उतरे हुए चेहरे को देखकर उसने कारण पूछा और यह जानकर उसके भी होश उड़ गए कि सूरजमलजी ने आत्महत्या करने का निर्णय ले लिया है ।

मित्र के पास पन्द्रह-बीस हजार थे । उसने आड़े वक्त पर सारे रुपये सूर्यमल जी को दे दिए । अगले दिन उन्होंने पुर्जों का हिसाब चुका दिया । लाहा बाबू की धारणा बदल गई, सूर्यमल जी के प्रति विशवास दृढ़ हुआ । वे मन ही मन दुखी हुए कि नाहक एक ईमानदार व्यक्ति के नाम पर उन तक झूठी शिकायत पहुँचाई गई । उन्होंनें सूरजमलजी को अपनी कम्पनी का दलाल बना दिया ।सूरजमलजी के दिन फिरे । ग्राहम कम्पनी का काम भी कुछ दिनों में उनके हाथ आ गया ।

अच्छे दिन आने पर भी वे अपने मित्र के उपकार को जीवन भर भूले नहीं । जिस व्यक्ति ने उनके नाम रूपये गबन करने की शिकायत की थी, उसके लिए सौ रुपये मासिक की वृत्ति निधारित कर दी । उन दिनों सौ रुपयो की रकम बहुत बड़ी मानी जाती थी । उनकी धारणा थी कि शिकायत सही थी और इसे कहना कोई अपराध नहीं था । और यह भी कि इसी ठोकर ने उनके सोए भाग्य को जगाया ।

सूरजमलजी प्रारम्भ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे । परोपकार एवं सेवा को वे सबसे बड़ा धर्म मानते थे । अपनी आय का निश्चित अंश उन्होनें जन सेवा और धार्मिक कार्यों के लिए प्रारम्भ से ही अलग कर दिया था और मृत्यु के समय ग्राहम कम्पनी की अपनी दलाली की सारी आमदनी धर्मादे कर गए । जाति हित के कार्य में वे हमेशा आगे बढ़े रहते । इसकी अपेक्षा नहीं करते कि कौन साथ देता है या नहीं । आफिस के माल के चालू नम्बरों को वे बंधे हुए व्यापारियों को हमेशा देते रहे । कभी कोई व्यापारी नुकसान में पड़ जाता तो उसे सम्हाल लेते ।

उनके समय में कलकत्ते में घृत-आन्दोलन चला था । घी में चर्बी मिलाकर बेचा जाता था । बड़े ही साहस के साथ इसके विरुद्ध आवाज उठाई । उनदिनों समाज में रूढ़िवादिता बहुत ज्यादा थी । ब्राह्मण-भोजन के समय बहुत से भ्रष्ट ब्राह्मण-ब्राह्मणियों को भी दक्षिणा देने की प्रथा थी ।सूरजमलजी ने इसे धर्म एवं समाज के विरुद्ध घोषित करते हुए प्रतिवाद किया और इसका बहिष्कार कराया । कलकत्ते में मल्लिक स्ट्रीट में उन्होंने ही सबसे पहले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धर्मशाला बनवायी और उसी में चिकित्सालय खोला। श्राद्ध-कार्य की सुविधा के लिए उन्होंने पक्का घाट बनवा दिया। उत्तराखण्ड की यात्रा पर जाते हुए ऋषिकेश में गंगा को पार करने के लिए रस्सियों के कच्चे पुल से गुजरना होता था। सूरजमलजी ने तार के मोटे मजबूत रस्सों का पुल बनवा दिया। आज भी प्रतिवर्ष लाखों तीर्थ यात्री इसी लक्ष्मण-झूला से बदरी, केदार, गंगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा करते हैं। ऋषिकेश में भी इन्होंने ही पंचायती धर्मशाला एवं सदाव्रत की स्थापना की। इस प्रकार धन का उपयोग एवं उपभोग ऐसे ढंग से किया कि उनका नाम सदा अमर रहेगा।

कलकत्ते का राजस्थानी समाज मेरे देखते-देखते ही पिछले पचास वर्षों में सम्पन्न-समृद्ध ही नहीं, बल्कि शिक्षा एवं जीवन के विविध क्षेत्रों में काफी आगे बढ़ गया है। उद्योग-व्यापार की तरह चिकित्सा-विज्ञान, शरीर-चर्चा, संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, राजनीति आदि में इनका अच्छा नाम है। आज 'मारवाड़ी' शब्द का तात्पर्य उस रूढ़िग्रस्त समाज से नहीं, जिसका एक मात्र लक्ष्य अर्थोपार्जन ही रहा है। समय एवं युग की आवश्यकता के अनुरूप राजस्थानी समाज ने परिवर्तन अपनाया है।

इस प्रगति के पीछे पिछली पीढ़ियों के श्रम, संयम और दृढ़ निश्चय के कृतित्व रहे हैं। बहुत संघर्ष करना पड़ा। उस पीढ़ी के बहुत ही थोड़े लोग रह गए हैं। आज भी आदरणीय घनश्यामदासजी बिरला, सीतारामजी सेक्सरिया, भागीरथजी कानोड़िया, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह का, ईश्वरदासजी जालान जैसे मनीषी प्रेरणा के स्रोत हैं। मुझ जैसे कितनों को इन्ही लोगों ने अनुप्रेरित किया और मार्ग-दर्शन कराते रहे। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि इनमें से प्रत्येक में आज भी अदम्य उत्साह, क्षमता और आत्मविश्वास है।

कलकत्ता आने का मेरा उद्देश्य था अर्थोपार्जन। इसी की सिद्धि में तन मन से लगा रहता था। किन्तु मनुष्य अपने आसपास के परिवेश एवं वातावरण से अछूता नहीं रह सकता। अनजाने में मेरे ऊपर समाज की घटनाओं और उथल-पुथल का असर होता रहा। कलकत्ते के विकास, विशेषतः राजस्थानियों की पिछली पीढ़ी के लोगों के संघर्षपूर्ण इतिहास जानने के प्रति उत्सुकता मेरे मन में बढ़ती रही। जब भी अवसर मिलता पुराने लोगों के बीच बैठता, उनकी बातें सुनता। बहुत सी बातें तो याद रही नहीं, अच्छा होता, यदि उन्हें नोट करता; परन्तु वैसी कोई आवश्यकता उन दिनों महसूस नहीं की।

अपने कामकाज के सिलसिले में विभिन्न व्यवसाय और वर्ग के लोगों से मिलने के मौके मिलते थे। इनमें नयी रोशनी के लोग भी थे उत्साही, सुधारवादी, संघर्षशील। उन दिनों राजस्थानी समाज में सुधार की बात करना एक प्रकार से खतरा मोल लेना था। समाज से बहिष्कृत होने का दण्ड तो मिलता ही, व्यापार-व्यवसाय में भी असहयोग उपस्थित होने की सम्भावना थी, अतएव सुधारक बनना दुस्साहस था। फिर भी युवक आगे बढ़ते थे। इनके पीछे कुछ बुजुर्गों का सक्रिय सहयोग भी रहता था। पंचायत का जोर था, पर धीरे-धीरे उसकी अवमानना होने लगी।

कलकत्ते में राजस्थानियों की पंचायत का संगठन कब हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। बंगाल में नवाबी शासन के बाद अंग्रेजों ने कलकत्ते को जब राजधानी बनायी तो व्यापार-व्यवसाय का यह केन्द्र बन गया। यहाँ बसे मारवाड़ियों की जब उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी और उनकी संख्या भी बढ़ने लगी तब सम्भवतः अनुभव होने लगा कि व्यापारिक एवं सामाजिक समस्याओं और आपसी मतभेदों पर विचार-विमर्श एवं निर्णय के लिए एक संगठन आवश्यक है। इसी आधार पर जातीय पंचायत बनायी गयी थी। सन् १८२८ के लगभग कलकत्ते में पंचायत अस्तित्व में आ चुकी थी। उन दिनों मोजीराम हरदयालजी की गद्दी में पंचायत बैठती थी। राजस्थानी पंचायत प्रथा के अनुसार पाँच पंच पाँच वर्षों के लिए चुने जाते थे। इनका चुनाव बहुत सोच समझकर किया जाता था। धन अथवा अन्य प्रकार के प्रभुत्व का महत्व नहीं था, बल्कि निष्पक्ष, निष्ठावान, एवं सच्चरित्र व्यक्ति पंच बनाए जाते, भले ही वे धनी हों या उनका रोबदाब सरकारी अथवा राजनीतिक क्षेत्र में न हो।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पंचायत जातीय सभा या संस्था अवश्य थी, किन्तु इसका संगठन आजकल की सभा-सोसाइटी की तरह नियमों में जकड़ा नहीं था। नैतिकता, व्यावहारिकता एवं जातीय भावनाओं को अधिक मान्यता दी जाती थी। पंच सबों की बात सुनते थे। लोगों से सलाह भी लेते थे। गुटबन्दी या उलझी समस्याओं की तह में स्वयं जाते, जाँच करते और तब पाँचों पंच फैसला दिया करते। दोषी को दण्ड देने से पूर्व उसे अवसर भी दिया जाता कि अपनी भूल को समझे और भविष्य में वैसी गल्ती न करने का वादा कर पंचायत को विश्वास दिलाए। यदि जिद्द पर अड़ा रहता तो दण्ड का निर्णय सुना दिया जाता था। आमतौर पर लोग पंचायत की बात मान लेते थे। न मानने वालों का समाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था।

सन् १९४७ से १९५७ के बीच मेरे सार्वजनिक जीवन में परिवर्तन आते गये। रूढ़िवादिता, छुआछूत, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह आदि की समस्याएँ पहले जैसी जटिल नहीं रहीं। स्वाधीनता के बाद जन-समाज स्वयं इतना जाग्रत हो उठा कि स्वतः उसने सुधार के मार्ग पर नए जमाने की करवट के अनुसार कदम बढ़ाना शुरू कर दिया। ऐसी अवस्था में समाज-सुधार का कार्य मेरे लिए स्वतः कम होता गया। मैं शिक्षा के क्षेत्र में अधिक रुचि लेने लगा। साथ ही अध्ययन विशेषतः हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी साहित्य में विशेष रुचि जगी। इसी बीच लिखने का अभ्यास बढ़ता गया। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लेख भेजने लगा। इन लेखों के विषय सामाजिक और आर्थिक होते थे। पाठक-वर्ग से प्रोत्साहन मिलता, लेखों पर उनके मतामत आते , उनकी माँग बनी रहती, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती। सच पूछा जाय तो लिखकर मेरे मन में एक आशंका सी बनी रहती कि मैं अपने विचार स्पष्ट कर पाया कि नहीं। मित्रों और पाठक वर्ग की सराहना से मैं मन ही मन उल्लसित हो उठता था, ठीक उसी तरह, जिस तरह परीक्षार्थी अच्छे नम्बर पाकर खुश होता है।

बचपन से ही अभाव और कष्ट का मैंने वातावरण देखा। देशी रियासत का कड़ा शासन, जागीरदारों के मौज-शौक, मौन रहकर प्रजा का सब कुछ सहते रहना—इन सबों की प्रतिक्रिया मेरे बालक और किशोर मन पर होती रही। एक घटना की याद आती है। हमारे गाँव में महाराजा साहब पधारे। दरबार लगा। सभी गण्यमान्य उपस्थित हुए। कोई सर उठाकर तन कर खड़ा नहीं हो सकता था। मेरा मित्र दीपचन्द चाण्डक भी था-खादी कुर्ता-धोती में। प्रथा थी दरबार(महाराजा)को झुककर जुहार (सलाम) करने की। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। दरबार साहब ने सिर्फ इतना ही पूछा—यह कौन है ? काफी तेज लगता है, क्या करता है, कहाँ रहता है ? गाँव के माने-जाने लोगों ने बड़ी विनम्रता से कहा—"इसी गाँव का है, पर परदेश में रहता है—हजूर, इसकी बेअदबी माफ करें , यहाँ का अदब-कायदा जानता नहीं।" महाराज ने एक नजर दीपचन्द पर डाली और चुप रह गए। मगर गाँव के लोग समझ गए कि क्या हो सकता है। उन्होंने उसी समय चुपके से दीपचन्द को बाहर बुलवा लिया। शाम हो रही थी। एक तेज ऊँटनी पर उसी समय सवार कर रातों रात बीकानेर रियासत से बाहर भिजवा दिया। राजस्थान की अधिकांश रियासतों में ब्रिटिश विरोधी गतिविधि का बड़ी सख्ती से दमन किया जाता था। गांधी जी का समर्थन भयंकर अपराध माना जाता था। बहुत ही कड़ी सजा दी जाती थी। फिर भी रियासतों में प्रजा-परिषद् सक्रिय रही और सामन्त वाद के विरोध में आन्दोलन करती रही। इसके लिए अनेक आहूतियां चढ़ीं, लोग बलिदान हो गये। आज शायद ही कोई विश्वास करेगा कि रियासती शासन की अपेक्षा ब्रिटिश शासन कम कड़ा था। यहाँ नियम-कानून को बरकरार तो रखा जाता था।

कलकत्ता के अपने जीवन में रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करते हुए मैं अपने गाँव के अनुभव भूला नहीं था। यहाँ संयोग से काम-काज के सिलसिले में मेरा सम्पर्क अंग्रेजों से रहा। व्यवसायी-व्यापारी और प्रशासक अंग्रेजों में बड़ा अन्तर था। व्यापारी अंग्रेज हँसमुख और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिलनसार था—अपवादों की बात और है। प्रशासक अंग्रेज गंभीर और सख्त थे, ड्यूटी के पक्के। कभी-कभी मैं विषमता को देखकर हैरान रह जाता था। इतना अवश्य था कि दोनों में अपने देश और राष्ट्र के प्रति गहरी निष्ठा थी। वे अनुशासन प्रिय थे। इसका मुझ पर असर पड़ा।

व्यवसाय-व्यापार जम जाने पर और देनदारी से मुक्त होने पर मेरी सुप्त भावनाएँ मुझे उसकाने लगीं। भाईजी-पिताजी राजनीति से विरत रहने पर हमेशा जोर देते। उन दिनों की राजनीति त्याग, तपस्या और निष्ठापूर्ण थी। देश बड़ा था, दल नहीं। 'सीस उतारे भूँई धरे तब पैठे घर माँहि'—मैं अपने में यह कभी महसूस करता था। मन में देश के लिए कुछ कर गुजरने का उत्साह और परिस्थितियों का अवरोध मेरे मन में अन्तर्द्वन्द्व संघर्ष-सा मचाए रखता था। निदान स्वत: निकला—मैंने निष्कर्ष निकाला, व्यक्ति के विकास से समाज बनता है और समाज से राष्ट्र। मैं सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगा, सक्रिय होता गया। मुझे सुख और सन्तोष मिलता रहा। कम विरोधों का सामना नहीं करना पड़ा। कीचड़ और गालियाँ तो मामूली बात थी, लांछनाएँ भी लगाई गईं। विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के लिए हमें और हमारे साथियों के प्रयासों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता। अनावश्यक रूढ़ियों के विरोध में तो बहुत ही पेचीदी परिस्थिति बन जाती थी—खास तौर पर जब अपने ही रिश्तेदारों के विरोध में उतरना पड़ता था। एक बार मेरे श्वशुरजी के पिताजी के देहावसान पर उनके यहाँ मृतक-भोज का आयोजन हुआ। हम सुधारवादी ऐसे आयोजनों के विरोध में थे। साथियों से सलाह की कि इसका विरोध नए ढंग से किया जाय। नजदीकी रिश्तेदारी का मामला था, मैं संशय मैं पड़ गया। मगर राजी होना पड़ा। हम सभी मृतक-भोज में शामिल होने गए। पंगत बैठी, परसन के ठीक पहले ही हम सदल-बल एक साथ थालियों के सामने से उठकर विरोध में अलग खड़े हो गए। मेरे श्वशुरजी को मुझसे ऐसी आशा नहीं थी। मेरा इस प्रकार का विरोध बिरादरी के सामने लिए जाने पर उन्हें बहुत दु:ख हुआ। बात घर तक पहुँची। पिताजी और भाईजी को बुरी लगनी थी। उन्होंने कहा, विरोध था तो जाते नहीं। थाली पर से सदल-बल उठना अशिष्ट और अनुचित व्यवहार है। यह बात भूला नहीं। अपमान करना विरोध नहीं होता। इसी तरह के विरोध विवाह-शादियों में भी हम करते थे। सड़क पर गाने की प्रथा, पर्दा आदि तो बड़ी तेजी से कम होते गए, किन्तु दहेज के मामले में हम अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त कर सके। फिर भी लेन-देन के मामले में गहरा दबाव देना कम जरूर कर सके। स्वाधीनता के बाद देश की औद्योगिक उन्नति ज्यों-ज्यों होती गई, दहेज का अभिशाप भी बढ़ता जा रहा है। न जाने इस अभिशाप की ज्वाला में कितनी बरबादियाँ होंगी।

सामाजिक कार्यों में रुचि लेते हुए मेरा सम्पर्क मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी से बढ़ता गया। इस संस्था का कार्य बहुत व्यापक रहा है और आज भी है। सन् १९३४ की जनवरी में जब बिहार में विनाशकारी भूकम्प आया था, उस समय से ही सोसायटी के प्रति मेरा अनुराग बढ़ता गया। सन् १९४७ में भारत-विभाजन के कारण पूर्वी बंगाल से भारी संख्या में शरणार्थी आए। इनको राहत पहुँचाने में आदरणीय भागीरथजी कानोड़िया ने बहुत ही बड़ा काम किया।

सन् १९५१ के नवम्बर में राजस्थान में पड़े सूखे और अकाल पर, सेवा-कार्य के लिए राजस्थान गया। राजस्थान में जन्मा जरूर, किन्तु इससे पूर्व अपनी माटी को सही ढंग से देखने-समझने का मौका नहीं मिला था। इस यात्रा में बहुत कुछ सीख पाया। सदियों से युद्ध और मुगल-आक्रमणों के कारण राजस्थान की धरती का उजाड़ हो जाना कोई ताज्जुब की बात नहीं। खेती-बागवानी उपेक्षित रहे। रजवाड़ों ने भी ध्यान नहीं दिया। छिटपुट कोशिशें होती रहीं, कुछ नरेशों ने की, किन्तु इससे क्या होता? लोग परदेश में जाकर बसते। अपना गांव, अपना देश सूखा-भूखा-प्यासा ही रहा। पहले इतना तो होता था कि लोग बावड़ी-कुएँ खुदवाते, बगीचा लगवाते थे, पर धीरे-धीरे यह भी कम होता गया। स्वाधीनता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के बाद मे तो पानी की व्यवस्था की जिम्मेदारी सरकार की समझी जाने लगी। एक बात जरूर समझ में आई कि कुएँ-जोहड़-बावड़ियों मे स्थानीय तत्कालीन राहत भले ही मिल जाय, किन्तु समस्या का निदान संभव न होगा। इसके लिए बड़े पैमाने पर इजरायल के ढंग की योजना बनानी होगी। गंगा-नहर की तरह और भी योजनाएँ बनानी होंगी। चम्बल बहुत सहायता कर सकती है। बरसात के जल-संग्रह के लिए बड़ी-बड़ी झीलें भी बहुत मदद कर सकती हैं।

राजस्थान के प्रवास में बहुत सारे सामाजिक और राजनीतिक नेताओं के सम्पर्क में आया। सार्वजनिक सेवा-कार्य में रहने के कारण वे मेरे नाम से परिचित थे। राधाकृष्णजी बजाज, ब्रह्मदत्तजी और श्री बद्रीनारायणजी सोढाली के व्यक्तिगत सम्पर्क में आया। जल की व्यवस्था के बारे में विचार-विमर्श हुए। मैंने अपने विचार रखे कि तात्कालिक और स्थायी दोनों प्रकार की योजना बनानी ठीक होगी। जब इजरायल रेगिस्तान में हरियाली ला सकता है तो राजस्थान भी हरा-भरा बनाया जा सकता है। इसके लिए प्रकृति भी काफी अंशों में हमारे अनुकूल है और उद्योग करने पर हमें सहायता सहयोग दे सकती है। निष्क्रिय बैठने से मुझे अशान्ति और कुंठा का बोध होता है। पढ़ने-लिखने के अलावा कुछ न कुछ करते रहने से मुझे बड़ी शान्ति मिलती रही है। व्यापार-व्यवसाय अलग बात है। मुझे लगता था कि सोसाइटी जन-सेवा का श्रेष्ठ माध्यम है। मारवाड़ी सम्मेलन, रूढ़िवादी राजस्थानी समाज में ज़ागृति और चेतना के लिए अच्छा काम कर सकता है। मैं दोनों को तौलता। सोचता, कौनसा मेरा पथ है। मुझे लगता कि सम्मेलन के कार्य के लिए कार्यकत्ताओं की कमी नहीं, धन की कमी नहीं, किन्तु सोसाइटी का कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है, व्यय सापेक्ष है। अतः इस संस्था में हाथ बँटाना मेरे लिए अधिक उचित नहीं होगा।

इसी कारण छोटी-बड़ी अन्यान्य सामाजिक संस्थाओं से जुड़े रहते हुए भी मैं ज्यादा समय रिलीफ सोसाइटी के लिए देने लगा। राहत के काम में विशेष दिलचस्पी मुझे रहती। इसके लिए धन-संग्रह आवश्यक था। अच्छे काम का रूप प्रत्यक्ष होने पर सहानुभूति और सहयोग की कमी नहीं रहती। मुझे धन-संग्रह में सफलता मिली। स्नेह भी भरपूर मिला।

राजस्थान में राहत का काम करते समय अच्छे नेताओं से मेरा परिचय हो गया था। वहाँ भुखमरी और गरीबी का जो रूप देखा उससे बडी ग्लानि होती थी। इसी माटी की हजारों सन्तान देसावरों में वैभव का सुख भोग रही है। इनकी सूनी हवेलियाँ आँखें फाड़े इन्तजार करती हैं कि कब मालिक की निगाह पड़े। इनके भाईवन्द पडोसी जीने के सहारे के लिए संघर्ष करते देखे। परम्परा और प्रथा के अनुसार जडुला उतरवाने (बच्चों का मुंडन कराने) कभी-कदाच देसावरों से आते। ब्राह्मण-भोजन, कीर्तन, रतजगा कराना, गाँव में भोज करा देना—नाम और यादगारी के लिए काफी समझा जाता रहा। कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने कुएँ-मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराए, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल खुलवाए। किन्तु ऐसे लोग उँगलियों पर गिनती के थे।

राजस्थान में गरीबी गुजारी, कलकत्ता ने दिया संघर्ष और वैभव। किन्तु शांति और संतोष नही दे पाया। राजस्थान में चाँदनी रात में चमकती रेत पर लेटकर दूसरी दुनिया में पहुँच जाता। मुझे लगता, धरती कहती है—मैं पराई हो गई, मेरे लिए तेरा कोई घर नहीं। मैं उलझ जाता—क्या करूँ, कैसे करूँ ? कितना कर सकूँगा ? बचपन में दादी से सुनी कहानी याद आती। रामचन्द्रजी पुल बनवा रहे थे, गिलहरी पूँछ भिगोकर रेत में लोटती और पुल पर झाड़कर फिर पूँछ भिगोती। मेरे मन में भावना उठती कि कुछ न कुछ किया जा सकता है। सरकारी सहयोग भी मिल सकता है, कार्यकर्ता मिल जाएंगे, कमी रहेगी नहीं। ऐसी चर्चाएँ अक्सर राजस्थान के दौरे पर होतीं। चुनाव में खड़े होने के लिए मुझसे कहा भी जाता। मैं टालता रहा। मेरे लिए समस्या थी। राजस्थान एक सिरे पर, कलकत्ता दूसरे सिरे पर। एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जन्मभूमि, दूसरी कर्मभूमि । सेवा, सार्वजनिक सेवा के लिए दोनों ही उपयुक्त । किन्तु राजस्थान को अपनाने का अर्थ था, व्यवसाय-व्यापार का त्याग । भगवान् ने कृपा कर दी थी। जितना था, उतना काफी था । भाई योग्य थे, काम देखते थे । फिर भी धनोपार्जन का आकर्षण छोड़ना सहज सम्भव नहीं था । पिताजी और भाईजी की सहमति और अनुमति का भी प्रश्न था । उनकी अवज्ञा करने का मुझमें साहस नहीं था । मन उलझन में परेशान होता रहा ।

मैंने अपना पूरा ध्यान व्यापार-व्यवसाय और लिखने-पढ़ने में लगा दिया । लेख काफी लिखे, अखबारों में छपते रहे । राजनीति से सम्पर्कित मेरे मित्र मुझे कहते कि राजस्थानी नेताओं पर मेरा प्रभाव अच्छा पड़ा है । आगामी चुनाव में मुझे टिकट देने की चर्चा बढ़ रही है । इन बातों का प्रभाव मन पर पड़े बिना रहता नहीं । एक कुलबुली-सी महसूस करता । फिर भी मैंने दिलचस्पी नहीं दिखाई । राजस्थान से मिनिस्टर और बड़े नेता कलकत्ता आते । मुझे उपस्थित होना पड़ता था—उनके प्रोग्राम में । फिर भी मन को बाँधे रखता ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजनीति में प्रवेश

जनवरी १६६५ में जयप्रकाश बाबू का प्रत्र मिला। उनके साथ राजस्थान के दौरे पर जाना हैं। मैंने स्वीकृति दे दी। जे० पी० का झुकाव राजनीति के प्रति कम होता जा रहा था। वे आचार्य विनोवा के विचारों से अधिक प्रभावित हो चुके थे। मेरा दृष्टिंकोण पूर्ववत् समाजवादी ही था। उनके साथ राजस्थान के दौरे में मुझे ऐसा लगा कि देश की समस्या का निदान किसी 'वाद' विशेष के वश की बात नहीं। जन-साधारण का हित-साधन ही लक्ष्य रहना चहिए।

जयप्रकाश बाबू कि मीटिंगें विभिन्न गाँवों, कस्बों और शहरों में होती रही। जाने-माने लोग और नेता आया करते। जे० पी० प्रायः प्रत्येक मीटिंग में कर्मठता, निष्ठा और दान शीलता के सन्दर्भ में मेरा उल्लेख करते। मैं ठगा-सा रहता। मेरी समझ में नहीं आता कि इनका प्रयोजन क्या था।

भाग्य की गति प्रबल होती है। वह बानक बनाती है। उद्यम साथ देता है। इसे अपने जीवन में देखा। अवसर से चूकना नहीं चाहिए। मेरे मित्रों से मुझे खबर मिलती, संसदीय चुनाव राजस्थान में मेरा नाम लिया जा रहा है। कभी जोधपुर, पाली, सीकर, उदयपुर का नाम लिया जाता। मैं मन से तटस्थ था। किन्तु कब तक रह पाता। सुखाड़ियाजी और घनश्यामदास जी बिरला मेरे लिए रूचि लेने लगे। अन्ततोगत्वा मुझे सीकर की संसदीय सीट से मुझे कांग्रेस के लिए टिकट दी गई।

चुनाव में उतरा। अनजान शक्ति ने मुझे उतारा। उसी ने मुझे जितांया भी। सीकर क्षेत्र के लिए मैंने वैसा कुछ नहीं किया था। जल-बोर्ड के माध्यम से जन-कल्याण के कुछ काम के सिवा कोई बड़ी पूजी मेरे हाथ तो रही नहीं। हाँ, मित्रों का स्नेह था। चुनाव के दौरान भागीरथजी, घनश्यामदासजी, सुखाड़ियाजी, पुरूषोत्तमजी, केजड़ीवाल, मातादीन जी खेतान आदि की शुभकामनाएँ और सहयोग बहुत बड़ा सम्बल रहा। घरवाले तो साथ थे ही।

जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। राजनीति से अनभिज्ञ, इसके प्रति रूचि भी नहीं रही। घुटन महसूस करता, पर उपाय क्या? सोचता, सीकर क्षेत्र के लिए, कैसे क्या किया जाए। फिर से सम्पूर्ण क्षेत्र का दौरा कर डाला। समस्याओं को नोट कर लिया। पार्लियामेन्ट में अतुल्य घोष, सत्यनारायण सिन्हा, ए० के० सेन, महाराजा बीकानेर, एल० एम० वर्मा जैसे अनुभवी और अपने हितैषी मित्रों से सलाह लेता। मुझे लगा कि यहाँ करने के लिए बहुत काम हैं, ढंग से किया जाए तो बहुत कुछ हो सकता हैं। किन्तु साथ ही यह जान पड़ा कि गुटबाजी भी है।

१३ मई को राष्ट्रपति का भाषण हुआ। अच्छा था। भाषण-समाप्ति के बाद महाराजा बीकानेर ने मुझसे कहा कि भाषण पर आप भी कुछ अवश्य कहें। मैं आज भी उनके इस स्नेह पूर्ण परामर्श को भूला नहीं हूँ। मुझमें झिझक थी, किन्तु मैनें निश्चय किया कि प्रश्न करूँगा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ बोलूँगा अवश्य। अपने विचार रखने में सार्थकता है आगे से इस पर ध्यान रखा, प्रश्नोत्तर में भाग लेता। इससे लाभ हुआ। मैं बैक बेंचर नहीं माना जाता। मेरा इम्पॉर्टन्स बढ़ा, मेरा नाम भी लिया जाने लगा। कई कमेटियों और डेलीगेशनों में मुझे शामिल किया गया। इस माध्यम से कुछ काम भी कर सका। किन्तु मुझे इतने से संतोष नहीं रहा। राजनीति को मैं राष्ट्रनीति के एक सशक्त साधन या माध्यम के रूप में देखना चाहता था। वह हो नहीं पा रहा था। इतना जरूर हुआ कि मेरे क्षेत्र की छोटी-बड़ी योजनाओं के लिए राज्य की मिनिस्ट्री और उसके लिए केन्द्र से अर्थ की स्वीकृति कराने में सफलता मिल जाती थी। किन्तु यही तो सब कुछ नहीं !

सीकर-क्षेत्र में मेरी लोकप्रियता सन्तोषजनक रही। स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, लाइब्रेरियों के लिए जितना बन पड़ता, करता रहा। इसमें बहुत रूपये खर्च होते रहे। न करता तो भी चलता, किन्तु मैं शिक्षा को राष्ट्र की उन्नति का सबसे उपयुक्त साधन मानता रहा हूँ। मैंने हाथ खींचा नहीं, मेहनत से मुँह मोड़ा नहीं। सड़कों की सुधार, जल-व्यवस्था पर भी पूर्ववत जुटा रहता था।

सन् १९६१ की शुरूआत के महीनों में संसदीय चुनाव की चर्चा आने लगी मुझमें इसके प्रति विशेष आग्रह नहीं था। मैंने जो सोचा था, कर नहीं पाया। जिसकी कल्पना थी, उसे छू तक नहीं पाया। व्यापार-व्यवसाय से अलग-थलग रहना पड़ा। यह भी काँटे सा विधता था। कलकत्ता छूट नहीं पाया। यहाँ आने पर जितना भी समय मिलता, पूरे उत्साह से पूर्ववत् बन्धुओं से मिलता, सार्वजनिक कामों में सहयोग देता। फिर भी लगता, कलकत्ता मुझसे कहता है मुझे भूल गए, कहाँ जा फँसे ? मैंने एक प्रकार से मानस बना लिया कि अब राजनीति से पृथक हो जाऊँगा। जयप्रकाश बाबू की तरह लोक-कल्याण के कार्य में स्वयं को नियोजित रखूँगा।

किन्तु मन की बात मन ही तक रही। 'मेरे मन कुछ और है, कर्ता के कुछ और'—सन् ६१ की मई में रूस यात्रा पर घनश्यामदासजी बिरला के साथ एक प्रतिनिधि-मण्डल में गया। २० जून को वापस आ गया। इस बीच अगले चुनाव ने जोर पकड़ लिया था। स्वतन्त्र पार्टी प्रभावी थी और जनसंघ की शक्ति बढ़ रही थी। मैंने प्रत्याशी बनने के लिए रूचि दिखाई नहीं। पार्लियामेन्ट और अपने क्षेत्र में अधिक रूचि लेने लगा। अडंगे आते थे—सरकारी व्यवस्था की वजह से। फाइलें धीरे सरकतीं, खानापूरी, लालफीताशाही और कर्मचारियों की दीर्घसूत्रता के कारण। फिर भी मोटे तौर पर लोग खुश थे। मेरे प्रयास की प्रशंसा करते, स्नेह रखते थे। फिर भी कुछ लोग बुराई करते, जो व्यक्तिगत आर्थिक सहायता की आशा से आते थे। यह मेरे लिए संभव न था, कितनों को कितनी बार कितना देता ? राजनीतिक प्रतिद्वन्दी भी अप्रचार से बाज न रहे। किन्तु सुनते-सुनते आदत सी बन गई है, मुझ पर असर न होता।

ज्यों-ज्यों चुनाव नजदीक आता गया, मित्रों का दबाव मुझपर बढ़ने लगा—भागीरथजी, सुखाड़ियाजी, कुंभारामजी माथुर आदि श्रद्धेय जनों का भी। माता और पत्नी पक्ष में नहीं थी। उन्होंने मेरे स्वास्थ्य और अनियमितता की चिन्ता थी। सभी भाई अन्ततः विरोधी नहीं थे। पिताजी व भाईजी का भी विरोधी रूख नहीं था।

बार-बार एक बात कही जाए तो उसका असर होना स्वभाविक है। मेरा मन संन्यासी का नहीं था। नेतृवर्ग से, साहित्यकारों से सम्पर्क और आत्मीयता के प्रभाव से दुर्बल मन झुकने लगा। सबसे पहले मुझे लगा कि मेरे क्षेत्र में कुछ काम अधूरे रह गए, उन्हें पूरा करना जरूरी है। मेरी इच्छा थी कि सीकर-अंचल में कोई नहर बना दी जाय। इसी प्रकार सरदारशहर को सीधे रेल-मार्ग से जुड़वा दिया जाय तो बड़ी सेवा होगी। मेरे प्रस्ताव को अनौपचारिक रूप से सुखड़ियाजी का समर्थन मिला था। इससे मुझमें आशा थी और उत्साह भी।

आखिर मन के आगे झुक गया और संसदीय चुनाव में प्रत्याशी बनने पर नए दृष्टिकोण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से विचार करने लगा। पूज्य घनश्यामदासजी प्रसन्न हुए और सुखाड़ियाजी भी। उन्होंने न केवल शुभकामनाएँ दीं, ब्लकि पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। सबसे अधिक प्रसन्न थे दद्दा–श्री मैथिलीशरणजी, दिनकरजी और बाबू गंगाशरण सिंह। जयप्रकाशजी ने भी प्रोत्साहित किया। उनकी धारणा थी कि मैंने अपने क्षेत्र के लिए जितना किया, उतना अन्य लोग साधारणतः नही कर पाते। उन्होंने मुझसे कहा कि चाहे किसी भी दल में रहूँ, कैसी भी परिस्थिति आ जाय, यह न भूलूँ कि दल नहीं, देश बड़ा है। सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में प्रवेश करना काजल की कोठरी में जाना है। कालिख लगेगी, किन्तु उसे रगडते नहीं रहा चाहिए। एक बात के लिए उन्होंने मुझे सावधान किया कि कन्ट्रोवर्सी में न पड़ूँ।

बहरहाल, टिकट मिल गया। सीकर संसदीय क्षेत्र से दुबारा प्रत्याशी बना। पिछली बार का अनुभव था। इस बार चुनाव की रणनीति बनाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। सहयोगियों में उत्साह था और विरोधियों में ज्यादा सरगर्मी थी। पार्टी के कुछ लोग मेरे प्रति असन्तुष्ट थे, क्योंकि उनके मनोनीत लोगों को टिकट नहीं दी गयी थी।

दौरे पर मैं बराबर जाता ही था। चुनाव नजदीक आने पर कुछ ज्यादा ही दौरे करने लगा। जनसंघ और स्वतन्त्र पार्टी में समझौता नहीं हो पाया। यह मेरे लिए सुविधाजनक रहा। फिर भी संघर्ष तगड़ा था। समझौता होने पर मुसलमानों के वोट कुछ बँटते पर अब ये ज्यादा-से-ज्यादा कांग्रेस को मिल सकेगें।

चुनाव की मिटिंगों मे जाता। कहीं स्वागत होता तो कहीं तीखी बातें सुनने को मिलतीं। सीकर में एक बार लोगों ने शिकायत की कि जितनी आशा थी, मैंने नहीं की। मैंने बताया कि केवल शहर का नहीं पूरे क्षेत्र का सवाल है। सबके लिए प्रयास करना है। प्रान्त और केन्द्र के मंत्रालयों से और सरकारी अफसरों से जूझना पड़ता है। इन सबों में टाइम लगता है। ज्यादा लोग तो मेरी बात मान जाते, किन्तु विरोधी इन बातों को तूल देकर सीधे-सादे लोगों को भड़काते। जिनकी रुपयो की माँग पूरी नहीं करता, वे बेतुकी बातों पर उतारू हो जाते।

एक बार रामगढ़ गया। लोगों ने काले झंडे दिखाए। गोलमाल होने की खबर मुझे मिल चुकी थी। धमकी देकर मुझसे रुपए ऐंठना चाहते थे। स्थानीय स्कूल को लेकर भ्रम फैलाया गया। किन्तु मैने शान्त भाव से स्थिति स्पष्ट की। लोगों को बात जँच गई। अपने प्रति उनकी गलत धारणा बहुत कुछ दूर कर सका। व्यक्तिगत आक्षेपों से मन उत्तेजित हो जाता है, पर शान्त रहकर सब कुछ सुनना और सहना पड़ता है। सार्वजनिक कार्य चाहे सामाजिक हो अथवा राजनैतिक—व्यक्ति की आलोचना–आक्षेप पर मानसिक संतुलन नहीं खोना चाहिए। किन्तु कभी-कभी ऐसे मौके आ ही जाते थे, जब हमारे कार्यकर्त्ताओं को परेशान किया जाता, हाथापाई कर बैठते।

दूसरी बार के चुनाव में खर्च अधिक लगते रहे। जातिवाद का अडंगा भी बढ़ा हुआ था। कुछ तो यों ही पैसे बनाने के ख्याल से नामांकन पत्र दाखिल कर देते हैं। चुनाव में वोट काट ले जाते हैं। इन्हें बैठाने के लिए भी जोड़-तोड़ लगानी पड़ती है। मेरे मित्रों को ऐसी स्थिति का भी सामना करना पड़ा। २८ फरवरी को माधोपुर की गिनती हुई। इस क्षेत्र से मैं आशंकित था, किन्तु यहाँ काफी अच्छी जीत रही। मन प्रसन्न हो गया। सीकर के लिए काम करने का मौका फिर मिला। कुल ३७ हजार मतों से जीता। शब्दों में अपनी भावना कह नहीं सकता, भावविभोर हो उठा। मित्रों और भाइयों का सहयोग, बड़े-बड़े नेताओं का सहयोग, पिताजी का आशीर्वाद, नन्दू की भाग दौड़, सभी का चमत्कार था। सफलता इन्हीं की थी।

चुनाव में कई आश्वासन दे चुका था। इन्हें कैसे पूरा करूँ, इसकी चिन्ता लग गई। स्कूलों-कॉलेजों, अस्पतालों की आर्थिक सहायता, नए स्कूल, सड़कें बनवाना, जल की व्यवस्था और तरह-तरह के कमिटमेन्ट्स्। बड़ी लम्बी फेहरिस्त हो गई। अपने क्षेत्र के दौरे पर निकलते ही लोगों ने स्मरण दिलाना शुरू कर दिया। महीने भर भी साँस नहीं ले पाया कि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दौड़-भाग शुरू हो गई । पार्लियामेन्ट में काम बढ़ गया था । अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे, राष्ट्रीय पेचीदगियाँ । राजस्थान के लिए मैं विशेष रूप से कृषि और उद्योग के विकास के लिए प्रयत्न करना चाहता था । मेरी धारणा थी और आज भी है कि केवल सरकार पर निर्भर करने से लक्ष्य की सिद्धि सम्भव नहीं । मोटे तौर पर सरकार जल, बिजली, आवागमन, परिवहन, ऋण आदि की व्यवस्था कर सकती है, किन्तु उत्साह-उद्यम और श्रम तो जनता का ही दायित्व है । बड़ी योजनाओं के सहारे-भरोसे बैठे रहने पर अनिश्चित काल के लिए बातें टलतीं जाती हैं ।कलकत्ता जब भी आता मैं अपने साधन-सम्पन्न मित्रों से चर्चा करता और उन्हें अनुप्रेरित भी करता कि अपने-अपने गाँवों के लिए कुछ न कुछ करते रहें । मुझे सन्तोष है कि मेरी बातों पर उन्होंने ध्यान दिया और काम भी काफी हुआ ।

उन दिनों राजस्थान के मुख्यमंत्री थे, श्री मोहन लाल सुखाड़िया । राजस्थान का सौभाग्य था कि ऐसा उत्साही और कर्मठ कार्यकर्त्ता मिला । राजस्थान जैसे उपेक्षित, अनुर्वर, उद्योग-धन्धे में पिछड़े विशाल प्रदेश को विकासोन्मुखी बनाने में उनका अवदान चिरस्मणीय रहेगा । डॉ० विधानचन्द्र राय, प्रतापसिंह कैरों को कृषि में उन्नत पंजाब और उद्योग में उन्नत पश्चिम बंगाल मिला था । अतएव उनके समक्ष उतनी जटिलताएं न थी, जितनी सुखाड़ियाजी को सम्भलिनी पड़ी । राजनीतिक दलबन्दी की पेचीदगियों ने उन्हें बहुत धक्का पहुंचाया । वे निष्ठावान और कर्मठ थे । उनकी कल्पनाएं यदि पूरी हो जाती , तो सम्भवतः हरियाणा से राजस्थान आगे निकल जाता । मैं जब भी उनसे मिलता वे जोर देते कि योजना का प्रारूप लेकर मिलूं और इससे होने वालें लाभ के विस्तृत विवरण और आँकड़े भी । मैंने इसका ध्यान रखा । मुझे उनका स्नेह, सहयोग मिलता रहा । सीकर और राजस्थान में मेरी सफलता के लिए जहाँ मैं अपने मित्रों के सुझाव के लिए आभारी हूं, वहीं सुखाड़ियाजी के सहयोग के लिए भी ।

कांग्रेस पार्लियामेन्टरी पार्टी में ट्रेजरर होने के नाते भी काफी काम करना पड़ता था । संसद का काम तो था ही । यह काफी तनाव-पूर्ण लगता कई ऐसे मसले रहते, जिनके प्रति पार्टी के निर्णय से मैं सहमत न रहता किन्तु विवश था । मुझे सहमति देनी पड़ती । सबसे दिक्कत यह थी कि कैबिनेट मिनिस्टर तक मसले को कैबिनेट तक ले जाने में हिचकते, उन्हें नेहरू जी से भय लगता । पाकिस्तान से सटी राजस्थान की सीमाओं पर बसे मुसलमानों की बड़ी संख्या खतरे की बात थी । धीरे-धीरे जैसलमेर में पाकिस्तानी मुसलमान घुसपैठिये बस रहे थे । इसी प्रकार असम के भी कांग्रेसी कार्यकर्त्ता पूर्व पाकिस्तान के घुसपैठियों से आशंकित थे । किन्तु समस्याओं का जिक्र उठाना संभव नहीं रहा । शुरुआत करते ही सम्प्रदायवादी मनोवृति का आरोप सहना पड़ता था । बांगडुंग-कॉनफ्रेन्स और पंचशील घोषणा के बाद चीन के रुख की जो खबरें आतीं वे सम्भावित आशंकाओं की और स्पष्ट संकेत थी । किन्तु हम सिर्फ लाबियों में चर्चा कर रह जाते । कभी-कदाच पार्टी की मीटिंगों में चर्चा होती, किन्तु हमारी बातें या तो हम ठीक से रख नहीं पाते, बड़ों के व्यक्तित्व के आगे हम झुक जाते । कुल मिलाकर निस्संकोच यह स्वीकार करूँगा कि मुझमें भी यही दोष था । राजनीतिक दलीय पोषण-तोषण का हम पर प्रभाव ज्यादा था । राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र-हित के लिए अड़ जाने का साहस कम । इससे धीरे-धीरे कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं का नैतिक चरित्र कुंठित होता गया ।

सरकारी प्रशासक अवसरवादी और सुविधावादी होते जा रहे थे । इसका कारण था कि आँकड़े और सूचनाएँ वे जैसी तैयार कर देते वही आधार मंत्रियों का रहता । एक बार मैंने बड़े परिश्रम से लाइफ इन्श्योरेन्स कॉरपोरेशन पर संसद में कहा । अच्छा बोल सका, सदस्यों ने सराहना की, अखबारों ने भी । मैंने स्पष्ट किया कि एल० आई० सी० के फन्ड का नियोजन सही तरीके से नहीं हो रहा है । ऋण देने के बाद उसका उपयोग और उसकी वसूली पर ध्यान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देना चाहिए। ऐसा होता नहीं। सरकारी मशीनरी की शिथिलता की मैंने आलोचना की। विभागीय प्रशासक मुझसे असन्तुष्ट हो गये।

चीन की गतिविधि देश के लिए खतरनाक हो चुकी थी। हम सभी जानते थे। अखबारों में भी चर्चा थी। पार्लियामेंट में लद्दाख पर डिबेट था। एंथोनी बहुत अच्छा बोले। लॉबी में चर्चा रही। नेहरू जी के सामने कोई बोले, न बोले, लॉबी में भड़ास निकालते ही थे। चाहे राज्य सभा के सदस्य हों अथवा लोक सभा के। लालबहादुर शास्त्री, फिरोज गांधी, मनुभाई, मुरारजी भाई, महाबीर त्यागी आदि मुझसे स्नेह रखते थे। किन्तु लॉबी की 'मिनी पार्लियामेन्ट' में हम भले ही बातें कर लें, संसद में पंडित जी के सामने सरगर्मी ठंडी हो जाती।

एक बार मैंने बात उठाई, चीन बड़ी लड़ाई की तैयारी में था। हिमालय की बर्फानी ऊँची चोटियों के लिए अधिक साधन की व्यवस्था जरूरी थी। मुरारजी ने मिलिट्रीवालों के लिए अतिरिक्त भत्ते की मंजूरी दे दी थी, परन्तु आर्मी ने आधुनिक शस्त्रास्त्रों के लिए पांच-छः अरब रुपयों की जरूरत बताई। उन्होंने कहा इस विषय को रक्षामंत्री कैबिनेट में रखें। बात पंडित जी तक पहुंची। उन्होंने कहा, इसकी जरूरत नहीं, चीन हमला करेगा नहीं।

वास्तविकता यह थी कि पंडित जी सरल और उदार थे। वे दिल से विश्वास करते थे। उनका मन साफ था। किन्तु राजनीति बड़ी मायाविनी होती है। इसमें तो विष्णु या कृष्ण का सा खिलाड़ी सफल होता है। नेहरू जी को उन्हीं लोगों ने बरगलाया और भ्रम में रखा, जिन पर उन्हें पूरा भरोसा था। हम पण्डित जी के व्यक्तित्व, उनके प्रति स्नेह और श्रद्धा से इतने प्रभावित थे कि हमने भी दबाव देने में संकोच किया। भूल हमारी भी कम नहीं।

उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में भी काफी गहमा-गहमी थी। चीन की तरफ से गहरी आशंका थी ही। सितम्बर '६२ में सेना ने सातवीं बार रक्षा-मंत्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे में चेतावनी दी थी। हम लोगों ने रक्षामंत्री कृष्ण मेनन से भी कई बार कहा। किन्तु उन्होंने बड़ी बेरुखी दिखाई। पंडितजी को भ्रम में पूरी तरह डाल रखा। आखिर २० अक्टूबर को खबर आ गयी कि चीन ने नेफा (अरुणाचल) पर जोर से हमला कर दिया है। पंडितजी ने गलती महसूस की, उनका भाषण बहुत ही निराशाजनक था। बाजार में शेयरों के भाव तेजी से गिरे। तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगीं। विश्व में एक तरफ अमेरिका और रूस क्यूबा को बलि का बकरा बनाकर जोर अजमाइश कर रहे थे, इधर चीन ने भारत पर प्रहार कर दिया। खास बात यह थी कि रूस और अमेरिका आपस में नहीं लड़ रहे थे। दुनिया में कमजोर रहना भीषण अपराध है। भारत की सिधाई और कमजोरी का चीन ने नाजायज फायदा उठाया। चीन से लड़ने को थां ही क्या हमारे पास? हमारे जवान डटे रहे, पर कटते रहे। हमें शर्म आती थी, हम संसद्-सदस्य थे राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि। देश की समृद्धि और सुरक्षा की जो जिम्मेदारी हमें सौंपी गई उसका अंजाम हमने कैसा दिया? कायरता, चाटुकारिता और भावना ने हमारी जबान पर ताला लगा दिया। आनेवाली पीढ़ी हमारे नाम पर हँसेगी।

हमने वार फंड के लिए धन-संग्रह का फैसला किया। रुपए इकट्ठा करने में कठिनाई नहीं हुई। मेनन की बड़ी बदनामी हुई। इस स्थिति में नेहरूजी भी उन्हें बचा न सके। मैंने इन्हीं दिनों कई लेख अखबारों में लिखे और मित्रों से सहयोग-सहायता के लिये पत्र लिखे। मैंने तय कर लिया था कि नेहरूजी या पार्टी को बुरा भले ही लगे, मैं आलोचना और स्पष्टवादिता से हटूंगा नहीं। आखिर संसद्-सदस्यों और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के दबाव के आगे नेहरूजी को झुकना पड़ा। ७ नवम्बर को पार्टी मीटिंग में रक्षामंत्री श्री कृष्ण मेनन को हटा दिया गया।

चीन नेफा में तेजी से आगे बढ़ आया था। भगदड़ मची थी। मैंने निर्णय लिया कि नेफा जाकर जायजा लूं और जो बन पड़े करूं। मुझे असम के मित्रों के सहयोग का भरोसा था। २१ नवम्बर को अखबारों में आया कि चीन ने 'सीज फायर' कर दिया। मुझे [illegible] कि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भगवान् की कृपा हुई। मैं प्रधानमंत्री से मिला उनसे काफी बातें हुई। उन्होंने ध्यान से सुना। मैंने स्पष्ट कह दिया कि चीन जितनी जमीन हथिया चुका है, उससे हटेगा नहीं। नेफा से फिलहाल भले ही अपनी सेनाएँ हटा ले, किन्तु क्लेम करेगा, सीमा-विवाद को जिलाये रखेगा। सिक्किम और भूटान को भी हमें चीनी नजर से मुक्त नहीं समझना लाहिए। नेहरूजी के चेहरे पर चिन्ता की उभरी रेखाओं से मुझे बड़ी करुणा आयी। मेनन ने मंथरा बनकर इतिहास के पन्ने पर नेहरूजी की छवि को मलिन कर दिया। क्या मिला, उसे अपने दंभ का ?

असम के नौगाँव पहुँचा। चीन की सेनाएँ हट रही थीं, किन्तु लोगों में आशंका बनी हुई थी। फिर भी कामकाज ठीक चल रहा था। जोरहाट होते हुए डिब्रूगढ़ पहुँचा। लोगों में साहस था। घायल सैनिकों की सेवा तन-मन से करने में लगे थे। सैनिकों की एक ही शिकायत रही। हथियार बिना आधुनिक युद्ध कैसे हो ? अस्त्र-शस्त्र होते तो हमें नीचा न देखना पड़ता। देश की जनता उन्हें क्या समझती होगी। मैं सान्त्वना देता। बहुतों की उँगलियाँ ठंड से गल गयी थीं। नाखून उतर गये थे। मगर चेहरे पर ओज था कि उन्होंने कर्तव्य-पालन में ढिलाई नहीं की। मैंने भी महसूस किया कि अनुभवहीन कमजोर कमांडर और साधनहीन सैनिक ही हमारी दुर्दशा का प्रमुख कारण बने।

वापसी में गौहाटी रुका था। कारोबार ठीक चल रहा था। लोगों में राष्ट्रीय भावना जोरों पर थी। किन्तु सभी ने डिफेन्स को मजबूत बनाने के लिए जोर दिया। पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) से असम में आने वालों के बारे में सरकारी उदासीनता की शिकायत की। इसी प्रकार वहाँ से हिन्दू शरणार्थियों की आनेवाली बाढ़ पर चर्चा की। उनका कहना ठीक था कि मुसलमान घुसपैठिये आगे चलकर राष्ट्रीय जटिलताएँ खड़ी करेंगे। शरणार्थियों की वजह से आर्थिक समस्याएँ बढ़ेंगी, अतएव इनका निदान केन्द्रीय सरकार को जल्द-से-जल्द निकालना चाहिए। मुझे दोनों ही बातें जँचीं। मैंने मुख्यमंत्री श्री चालिहा से अनुरोध किया कि चीन के हमले के परिप्रेक्ष्य में असम राज्य में सड़कों और रेल-पथ बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। मैंने यह भी कहा कि शरणार्थियों और घुसपैठियों की समस्या गंभीर होती जा रही है। वे गृह-मंत्रालय का ध्यान आकर्षित करें। हम संसद्-सदस्य भी रिपोर्ट पेश करेंगे। इस दिशा में असम राज्य को जैसी पहल और पैरवी करनी थी, वैसी हो नहीं पाई। आज भी समस्या वैसी ही है, बल्कि अब तो राज्य को जैसी पहल और पैरवी करनी थी, वैसी हो नहीं पाई। आज भी समस्या वैसी ही है, बल्कि अब तो मुस्लिम घुसपैठिये स्थानीय राजनीति को प्रभावित कर अड़चनें लगाने लगे हैं।

२७ मई सन् १९६४ को पंडितजी का देहान्त हो गया। देश को बहुत सदमा पहुँचा। मुझे ऐसा लगा कि अब देश का क्या होगा। विश्व की राजनीति का इतना प्रभावी व्यक्ति, देश के जन-जन का प्यारा, ऐसे व्यक्ति के चले जाने पर क्या होगा ? कौन सँभालेगा, कौन कर्णधार बनेगा, प्रश्नचिह्न बना। पंडितजी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा था कि उसके आगे सभी फीके थे। इससे पूर्व नेहरूजी के अस्वस्थ हो जाने पर कई बार अखबारों में चर्चा आती रही थी। संसद्-सदस्य और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में भी बातें होतीं कि अगला प्रधानमंत्री कौन होगा। नेहरूजी के बाद मुरारजी भाई जरूर थे, योग्यतम थे, किन्तु अपनी मान्यता के समक्ष वे समझौता नहीं करना चाहते थे। हम सभी हतप्रभ-से रह गए। अस्थायी तौर पर श्री गुलजारीलाल नन्दा का नाम सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री-पद के लिए लिया जाने लगा। इसी बीच स्थायी प्रधानमंत्री के चुनाव के लिए कोशिशें होने लगीं। अन्त में लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बनाए गए। वे ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका विरोध किसी से न था।

अपने जन्म से पाकिस्तान सदा विवाद करता रहा। आगे भी करेगा किसी न किसी बहाने। कश्मीर में उलझा, हमने हराया। मैदान में जीत को कागज पर हार में उतार दिया। पाकिस्तान फायदे में रहा। कश्मीर का काँटा सदा गड़ता रहेगा। मेरी धारणा है कि यह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विवाद चीन, अमेरिका और ब्रिटेन शायद ही सुलझने दें। हमारी नरम नीति भी कम जिम्मेदार नहीं। कच्छ के मामले को लेकर विवाद खड़ा हुआ। साफ बहाना था। मगर पाकिस्तान को तो अपनी माख बनानी थी ? भारत पर हमला बोल दिया। माख तो क्या बननी थी ? इतना जरूर हुआ कि प्रेसीडेन्ट अय्यूब खाँ को पाकिस्तान की गिरती अर्थ-व्यवस्था और पूर्वी पाकिस्तान में बढ़ते असन्तोष पर से ध्यान बँटाने का अवसर कुछ समय के लिए मिला। हमारे प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने दृढ़ता का परिचय दिया। जनता का मनोबल बहुत ही ऊँचा था। हमारे सैनिकों ने रण-कौशल भी अच्छा दिखाया। सिन्ध में काफी दूर तक घुस गए। कश्मीर के मोर्चे पर बड़ा घमासान मुकाबला होता रहा। पाकिस्तान का जोर कम पड़ता जा रहा था। रूस ने बीच-बचाव करा दिया। बाद में ताशकन्द में समझौता हो गया। इस बार भी मैदान की हमारी जीत और सफलताएँ समझौते के कागज पर हम हार गए। इसमें सन्देह नहीं कि इससे सेना का उत्साह गिरता है। जनता में भी खेद का वातावरण बन जाता है। मैंने पाकिस्तान से हर्जाने की वसूली पर पार्टी के सहयोगियों से चर्चा की और जीते हुए कुछ स्ट्रेटेजिक इलाकों को न छोड़ने की भी बात उठाई, किन्तु वह आई-गई हो गयी। शास्त्रीजी को भारतीय जनता ने पूरा समर्थन और सहयोग दिया था। उनका नारा 'जय जवान-जय किसान' बहुत ही सफल और प्रभावी रहा। 'गोल्ड बॉन्ड' को भी जनसाधारण ने सहर्ष अपना लिया—यह एक चमत्कार है। आगे चलकर ये बॉन्ड व्यापारिक रूप में सम्पन्न व्यक्तियों के लिए ज्यादा फायदेमन्द होंगे। साधारण जन के हाथ से सोना निकल जायगा। कोई आश्चर्य नहीं कि सोने-चाँदी का भाव आसमान छूने लगे। किन्तु व्यय के लिए धनराशि चाहिए और 'गोल्ड बॉन्ड' तात्कालिक उपाय के लिए समर्थ रहा। एक बात ध्यान देने की है कि पाकिस्तान से झड़पें और लड़ाइयाँ भविष्य में होंगी, वह बाज नहीं आएगा। चीन भी समस्या है। ऐसी स्थिति में अब आगे जनता क्या दे पाएगी ? केवल रक्तदान से अर्थाभाव की पूर्ति कहाँ तक होगी ?

कांग्रेस में अन्दरूनी दलबन्दी शुरू से ही रही है। नेहरूजी और सरदार पटेल के समर्थकों के पृथक-पृथक् दल रहे हैं। किन्तु राष्ट्रीय मुद्दों पर सभी एक रहे। पटेलजी की मृत्यु के बाद मुरारजी भाई को पार्टी के सदस्यों का एक भाग समर्थन देने लगा। नेहरू-समर्थक इन्दिराजी को प्रधानमंत्री बनाने के पक्ष में थे। जो भी हो, वरिष्ठ नेताओं के प्रभाव से शास्त्रीजी प्रधानमंत्री बनाए गए। किन्तु आपसी मतभेद सामने आ गया। इस खींचातानी की स्थिति ने देश को काफी नुकसान पहुँचाया है। मुझे बड़ी असुविधा रही। मेरे क्षेत्र की बहुत-सी योजनाएँ मैं पूरी नहीं करा पाया। सीकर जाने में मुझे संकोच होता। एक प्रकार का भय-सा भी रहता कि लोग समझेंगे कि कुर्सी पाकर नाम-यश कमाने में लगा हूँ, अपने क्षेत्र की जनता से किए गए वादे की उपेक्षा कर रहा हूँ।

समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद ही ताशकन्द में शास्त्रीजी का देहान्त हो गया था। गुलजारीलालजी नन्दा अन्तरिम प्रधानमंत्री बने। शुरू हो गया पार्टी में प्रधानमंत्री-पद का विवाद। इन्दिराजी और मुरारजी भाई दो ध्रुव थे। कामराजजी के प्रभाव और प्रयास से इन्दिराजी को प्रधानमंत्री बनाया गया, कांग्रेस की नींव में दरार और भी चौड़ी हो गई।

ग्लानि और मानसिक तनाव से मैं परेशान था। सन् १९६७ के संसदीय चुनाव में खड़े न होने का निश्चय मन में जोर करने लगा। मैं अपने मन की बात मित्रों से कहता था, किन्तु वे हँसकर टाल देते। वे तर्क देते कि मैं बाधाओं से घबराता हूँ, हिम्मत हारता हूँ। वे मेरे काम और उसके तरीके से सन्तुष्ट थे। मेरे क्षेत्र के लोगों में भी मेरे प्रति स्नेह था, विरोध नहीं। जब भी जाता उनसे मिलता, स्पष्ट बातें होतीं। उन्हें मुझ पर विश्वास था। फिर भी मैंने तय-सा कर रखा था कि चुनाव में खड़ा नहीं होना है। मैंने अनुभव किया कि भागदौड़ और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानसिक तनाव से मेरा स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा है।

कुछ संयोग ऐसा बना कि उन दिनों पार्लियामेंट में मेरे प्रश्नों की सराहना की गयी। अखबारों में 'गोल्ड बॉन्ड', अवमूल्यन, बजट, विदेश-यात्रा के मेरे संस्मरण और अन्यान्य लेख भी लोक प्रिय रहे। मित्र प्रशंसा करते, पाठकों के पत्र आते। मेरा उत्साह बढ़ता। मैं सारी परेशानियाँ भूल जाता। अवसाद मिट जाता चुनाव में खड़ा न होने का मेरा निश्चय डोल उठता। ज्यों-ज्यों संसदीय टिकटों का समय नजदीक आता गया, वरिष्ठ नेता और मित्र चुनाव में खड़े होने के लिए दबाव देने लगे। मैं जानता था कि इस बार जनता की भावना बदल चुकी है। कांग्रेस की आपसी फूट से पार्टी भीतर से टूट गई है। चुनाव पर इसका बुरा असर पड़ सकता है। किन्तु न जाने किस अनजान शक्ति ने स्वीकार करने के लिए मुझे प्रेरणा दी। सीकर से तीसरी बार लोकसभा के सदस्य के लिए कांग्रेस का मनोनीत प्रार्थी बना। सुखाड़ियाजी का विश्वास और स्नेह बहुत बड़ा कारण था। मैं विवश था।

पिछले दो चुनावों का अनुभव था। किन्तु इस बार परिस्थिति बदली सी थी। विरोधी पार्टियों ने सरकार की कमजोर नीतियों और असफलताओं को बड़ा बनाकर बहुत पहले से ही प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। जनसंघ जोर पकड़ चुका था। कांग्रेस की अन्दरूनी फूट, मुस्लिम-तोषण की अनुरक्ति, कश्मीर, नेफा और असम राज्यों में कांग्रेस-दल और सरकार की ढुलमुल नीति पर जनसंघ ने जनता का ध्यान विशेष रूप से अखिल भारतीय स्तर पर आकर्षित किया। राजस्थान के लिए कोई उनका कोई तगड़ा तर्क नहीं था, फिर भी सीमा पर बसे और बसाए मुस्लिम आबादी का प्रश्न उठाया गया। राजस्थान में आर्थिक और औद्योगिक विकास की उपेक्षा की गई है, यह भी उन लोगों ने मुद्दा बनाया। मेरे लिए एक ही बात पर जोर दिया कि मैं पैसेवाला हूँ, पैसेवालों का हूँ।

चुनावों में तरह-तरह की आँधियाँ उठती हैं। मुझे अनुभव था। मैंने मित्रों के साथ बैठ कर योजना बना ली थी। कार्यकर्ता जुट पड़े। हम सभी दौरे पर निकल पड़े। मैंने अपने पूरे क्षेत्र का दौरा एक बार पूरा कर लिया। अजातशत्रु तो मैं था नहीं, फिर भी मेरे प्रति उग्र विरोध मुझे नहीं मिला। किन्तु विरोधियों के प्रचार की रुख जोर पकड़ रहा था। काँग्रेसी कार्यकर्ताओं में कुछ लोग ऊपर से तो ठीक थे, किन्तु वास्तव में निष्क्रिय। यही नहीं, विरोध में प्रचार भी कर रहे थे। मुस्लिमों का वोट महत्व रखता था। विरोध में यद्यपि जनसंघ के रहने के कारण हमें मुस्लिम वोटों की आशा थी, फिर भी निर्दलीय प्रत्याशियों के कारण इनके वोट हिन्दू वोटों की तरह बँट सकने की सम्भावना थी। जो भी हो मैं दौरे करता रहा, स्थिति की जानकारी और जायजा लेकर काम करने के ढंग की तालमेल मित्रों की सलाह से बैठाता। लोसल, दांता, सीकर, लक्ष्मणगढ़ खण्डों में हमें अपनी स्थिति आशंकाजनक महसूस हुई। लोसल में बदमाशी की गई। मुझ पर धूल फेंकी गई। मन में दुख हुआ। यहाँ फूल फेंके गए थे, गजरे पहनाए गए, अब धूल! मैंने इनका कुछ बिगाड़ा नहीं, जितना बन पड़ा किया। आज इनकी आँखे बदल गई! फिर भी विश्वास के साथ जुटा रहा। गिनती के पहले तक स्थिति ऐसी थी कि हार की सम्भावना नहीं थी। भले ही अधिक वोटों से न जीत पाऊँ।

गिनती शुरू हुई। सीकर के मुसलमानों के अच्छे वोट मिले। मुझे ऐसी आशा नहीं थी। सुजानगढ़ से मुझे बड़ी उम्मीद थी कि अच्छे वोटो से जीतूँगा, वहीं मैं ९००० वोटों से हारा। इसी तरह भरोसे की जगहों पर मेरे अनुमान गलत साबित हुए। कुल मिलाकर १५००० मतों से पराजित हो गया। हार का दुःख होना स्वाभाविक होता है, मुझे भी हुआ। किन्तु एक पछतावा था कि चुनाव में खड़ा न होने का निर्णय करने के बावजूद क्यों खड़ा हुआ? मित्रों को, स्वजनों को सबको परेशान होना पड़ा, कष्ट हुआ—मेरे कारण। जीवन में किशोरावस्था से संघर्ष करता हुआ भगवान की कृपा से सम्पन्न बना। सामाजिक सेवा ने नाम-यश दिया। संघर्षों से मुक्त हो सकता था। क्या जरूरत थी मुझे राजनीति में पड़ने की? न चैन, न आराम।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चुनाव ने यह साबित कर दिया कि कांग्रेस की छवि बिगड़ चुकी है। कामराज, अतुल्यघोष,पाटिल, त्यागीजी, मनुभाई आदि बड़े-बड़े दिग्गज हार गए। सीकर में करने के लिए अब क्या रहा ? वहाँ का काम सलटाकर दिल्ली आ गया, ताकि बदले वातावरण में मन कुछ हलका हो जाए।

राजस्थान से दिल्ली आ गया। कोई विशेष उद्देश्य था नहीं। मन हल्का करना था, मित्रों, हितैषियों से मिलना था।सोचा, कलकत्ता वापस चला जाऊँगा।

दिल्ली आ गया। मन में अवसाद, तन में थकान। कहीं जाने की इच्छा नहीं हुई, किसी से मिलने का मन नहीं हुआ। बिस्तर पर पड़ा रहा। सोचता रहा कि अब अपने को किससे जुड़ा समझूँ ? कटी पतंग रहा, साथ लगी लम्बी डोर किस काम की ? कलकत्ता से अलग रहा, कामकाज से सम्पर्क छूटा, राजनीति से सम्बन्ध टूटा। इष्ट मित्रों से, अपनों से दूर हो गया। वर्षों पहले ऐसी परिस्थिति बनी थी। असम से निराश होकर गाँव वापस आया था, आगे क्या करूँ यह तय नहीं कर पा रहा था। आज इतने वर्षों बाद वैसा ही प्रश्न-चिन्ह सामने खड़ा है। पत्नी साहस दिलाती हैं, किन्तु झेंप मिटती नहीं, कुण्ठा हटती नहीं थी। जैसे तैसे उठ कर मित्रों से मिलने निकला। दिशाहीन, उदास, किंकर्तव्यविमूढ़ थे। एक ही बात कहते—आपसीफूट ने ही कांग्रेस को डुबाया। भविष्य अन्धकारमय है, पार्टी का। मुझे लगा, यहाँ का निराशाजनक वातावरण मुझ पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। कलकत्ता चला आया।

कलकत्ता में मन कुछ बदला और हल्का-सा लगा। कसक कुछ कम हुई। मित्रों से चुनाव के बारे में बात होती तो मैं कतरा जाता या टाल देता। राजनीति का जो रूप दिल्ली में पिछले वर्षों में देखा उससे ऐसा लगा कि हममें राष्ट्रीय भावना नहीं रह गई है। जो कुछ है वह व्यक्तिगत एवं दलगत गुटबन्दी।।गांधीजीके समय राजनीति में देश-हित की भावना थी। दलगत मतैक्य न होने पर भी व्यक्तिगत विचार पर विवाद नहीं होता था। किन्तु इन वर्षों में हालत काफी बदल गई।

मुझे ऐसा लगता है कि इसका कारण यह रहा है कि गांधी जी का व्यक्तित्व उनके निर्मल चरित्र के कारण देश पर लम्बे अरसे तक छाया रहा, इसके बाद नेहरू जी प्रभावी रहे। हमारी संस्कृति में बड़ों के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा, भक्ति की भावना चिरकाल से रही है। इसी ने विकृत रूप में राजनीति के क्षेत्र में व्यक्ति-पूजा को महत्व दिया। इसी की आड़ में स्वार्थसिद्धि को पनपने का मौका मिला। व्यक्ति को लाभ मिला, समष्टि, समाज, देश अथवा राष्ट्र-हित की बातें दबती चली गयीं। आम जनता पर गांधी-नेहरू का इतना प्रभाव था कि किसी ने आवाज तक न उठाई।

आज मैं इसे अनुभव करता हूँ कि इस अवस्थां में देश को लाने में हम सभी जिम्मेदार हैं। हमने राष्ट्र का अहित देखते हुए भी नहीं देखा। यह एक प्रकार से राष्ट्र-द्रोह कहा जाएगा। आने वाली पीढ़ियाँ हमें माफ नहीं करेंगी।

काम-काज की हालत देखी। दुख हुआ। दोष मेरा था। मैंने बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया था। इतना तो कर ही सकता था कि बीच-बीच में खबर लेता, अपनी राय देता। मगर राजनीति के नशा—भँवरजाल ने वह मौका दिया नहीं। शान्त चित्त से बैठकर जब समाज की अवस्था का विश्लेषण करता तो मन में क्लेश होता। भौतिक उन्नति भले ही हुई, किन्तु नैतिक पतन ही हुआ। जब भी बीच-बीच में कलकत्ता आता रहा, सार्वजनिक संस्थाओं में यथासाध्य सहयोग पूर्वत् ही करता, किन्तु बदलते संस्कार, गिरते आचरण की हालत देखकर भी कुछ करता नहीं। यही सोचता कि स्वाधीनता के बाद का परिवर्तन-काल है, स्वतः ही आँधी बैठ जायेगी। मगर वह तो बवंडर होती गयी और अब तो उसने छायादार वृक्ष, वन-उपवन उखाड़ दिए। स्वस्थ मान्यताएँ सूखी झाड़ियों-सी खड़ी हमें देखकर कहती हैं, "क्या इसलिए दिल्ली गए, क्या राष्ट्र की सेवा, समाजवाद का यही तात्पर्य है ?"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन स्थिर नहीं था, कभी रहा भी नहीं। बहुत बार अपनी इस कमी को दूर करने की चेष्टा की। ध्यान, आसन, प्राणायाम किए, पर असफल ही रहा। शायद पूर्वजन्म के संस्कार हैं। कलकत्ता में रहते हुए ज्ञान-भारती के स्कूलों के लिए सुयोग्य अध्यापकों की नियुक्त की चेष्टाएँ काफी अंशों में हो सकीं। सार्वजनिक संस्थाओं में जाता रहा। मित्रों से मिलता रहा। मारवाड़ी सम्मेलन और रिलीफ सोसाइटी में जाता रहा। किन्तु किसी खास काम में अपने को जोड़ न सका। व्यापार-व्यवसाय में भी मन को लगा न सका।

शायद जग जाता, किन्तु दिल्ली, राजस्थान से मित्रों के पत्र आते रहते थे। राजनीति की तरह-तरह की बातें देश की विभिन्न समस्याओं की चर्चा—इन सबों से ध्यान बँट जाना स्वाभाविक था। कांग्रेस पार्टी आपसी खींचातानी में कमजोर होती जा रही थी। दूसरी कोई पार्टी इस हालत में थी नहीं कि देश की बागडोर सँभाल सके। तपस्वी और निस्वार्थ सेवा भावियों ने राजनीति से संन्यास लेकर लोक-कल्याण आदि सामाजिक कार्यों में स्वयं को लगा रखा था। जयप्रकाश बाबू विनोबा की ओर झुके थे। लोहिया जी शासक और शासन की आलोचना में लगे थे। उनके तर्कों में दम था, किन्तु उनकी पार्टी और संगठन बेदम।

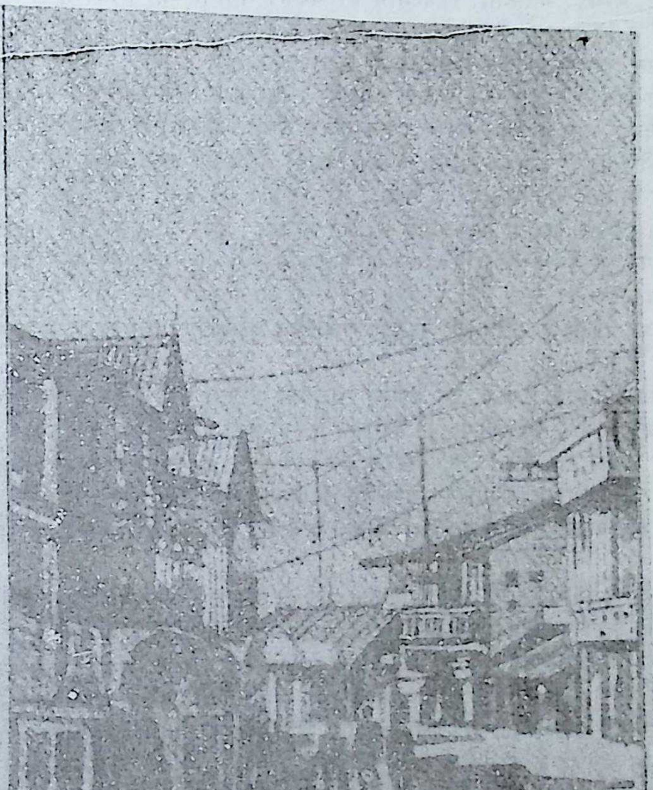

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बी. आई. सी. और कानपुर की मेयरशिप

जन्म का साथी रहा है पैरों का चक्कर, एक जगह बैठने देता नहीं। सार्वजनिक कार्यों से दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, राजस्थान का चक्कर लगाता रहा। दिल्ली में मुझे पार्टी के लोग किसी न किसी सूत्र में बाँधे रखना चाहते थे। मेरे लिए ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन की मैनेजिंग डायरेक्टरशिप सँभालने के लिए कहा गया। उत्तर भारत का यह बहुत बड़ा उद्योग-प्रतिष्ठान है। घाटे में चल रहा था। समस्याएँ जटिल थीं। मैंने टाल दिया। दुबारा जब दिल्ली गया तो फिर मेरे सामने प्रपोजल आया। मैंने सोचा कि स्वीकार कर लिया जाय। देश की सेवा ही होगी। चीनी, कपड़ा, चमड़ा आदि की बहुत सारी मिलें और फैक्टरियों में सुधार लाकर यदि मुनाफा दे सकता तो सरकार की बहुत बड़ी रकम व्यर्थ जाने से रोक सकूँगा। इसके अलावा मेरा समय भी कट जायगा। इधर-उधर भटकने से छुटकारा मिलेगा। इतने पर भी मैंने दायित्व संभालने की स्वीकृति नहीं दी। मेरा मन बार-बार यही कहता था कि फाइनांस का बहुत बड़ा प्राब्लेम है। सरकारी अफसर-तन्त्र और राजनीतिक खींचातानी आड़े आ सकती है, जैसा कि सरकार-संचालित अधिकांश प्रतिष्ठानों, निगमों आदि में हुआ करता है।

साधु कम्बल फेंक दें, पर कम्बल साधु को छोड़ता नहीं। दबाव के कारण आखिर मुझे बी० आई० सी० की जिम्मेदारी स्वीकार करनी पड़ी। उन दिनों बम्बई की हमारी मिल की हालत अच्छी नहीं थी। उसे सुधारने की ओर ध्यान दे रहा था, किन्तु बीच में ही छोड़कर कानपुर आ गया। भाइयों को मेरा यह कार्य-व्यवहार जँचा नहीं। मैं नहीं जानता कौन सी शक्ति मुझे कानपुर खींच लायी। जीवन में प्रायः ऐसा ही हुआ—अच्छाई और बुराई दोनों में।

जीवन के लिए नया अध्याय बना। कुछ ही दिन हुए कि जनवरी-फरवरी में अन्दाज होने लगा कि बहुत पेचीदा मामला है। बी० आई० सी० का अधिग्रहण पूरी तौर पर सरकारी न होने के कारण निर्णय-निश्चय में बाधाएँ आती हैं। इसका भाग्य ही खराब है। फिर भी हिम्मत बाँधे रहा। चम्पारण, मरहौरा और बिहार में स्थित बी० आई० सी० की अन्य चीनी मिलों का दौरा कर अवस्था और व्यवस्था की जानकारी ली। बी० आई० सी० प्रतिष्ठान अंग्रेजों के जमाने में बहुत ही लाभोत्पादक था। भारतीय नियंत्रण में आने के बाद इसे दूहा ही गया। नयी मशीनें, नये तरीके समय की माँग के अनुसार नहीं लगाए गए। पचासों वर्ष पुरानी मशीनों से उत्पादन की आशा करनी ज्यादती थी। मैंने निर्णय लिए, इन्हें बदलवाना होगा। अंग्रेजों ने अपनी सुख-सुविधा के लिए बड़ी रईसाना व्यवस्था बना रखी थी। खर्च भी अंग्रेज अफसरों और बड़े अफसरों पर ज्यादा लगता था। फिर भी उनके जमाने में घाटा नहीं रहता था, क्योंकि व्यवस्था में अनुशासन था, मशीनरी की देख-भाल थी। उनके जाने के बाद बीस वर्षों में मूक-मशीनें कराहकर तकलीफें बताती रहीं, पर किसी का ध्यान गया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं। लाखों रुपयों का घाटा लगता जा रहा था। सबसे पहले मैंने इसके चमड़े के कारखाने को सलटाया। इसके लिए पूँजी थी नहीं, नई मशीनों के विना उत्पादन-क्षमता बढ़ाई जा नहीं सकती थी। येन-केन प्रकारेण सरकार के जिम्मे इसे लगा दिया। होम करतें हाथ जला। तरह-तरह के दोषारोपण मुझ पर आए। मुझे सन्तोष था कि बी० आई० सी० का एक खर्चीला, व्यर्थ का बोझ उतार सका। आज भी यह बोझ,हर साल सरकार भारी रकम खर्च कर ढोती जा रही है। अफसर और अफसरी की खूबी है कि कोई सुधार या निदान नहीं निकाल पाए। किसे फिक्र है ? सरकारी कम्पनियों के घाटे की रकम जनता से टैक्स के रूप में वसूली जाती है। कम्पनी चलनी चाहिए। एलगिन,कानपुर टेक्सटाइल्स में मैंने कुछ सख्ती बरती। अनिमितताओं की रोकथाम की,कुछ बड़े अफसरों को हटाना पड़ा, अदला-बदली करनी पड़ी। खर्चे में कमी लाने के कोशिश की। एक ओर जहाँ मिलों के स्वार्थी अफसर और उन्हें छत्रछाया देने वाले राजनीतिक नेता और भाई-भतीजावादी सरकारी अधिकारी मुझसे भीतर ही भीतर अप्रसन्न हुए, दूसरी ओर स्थानीय लोगों में और मजदूरों में मेरी लोकप्रियता बढ़ी।

साहित्यकार और साहित्य के प्रति रुचि के कारण नगर के बुद्धिजीवी वर्ग और पत्रकारों का स्नेह स्वतः मुझे मिला। शाम का समय अच्छा बीत जाता था। कुछ राहत महसूस करता था। मगर सर्वथा चिन्ता-मुक्त न हो सका।

मैंने प्रारम्भ से ही महसूस किया कि पुरानी मशीनें हटाये विना उत्पादन बढ़ने का नहीं। हमें सूती कपड़े के उत्पादन के साथ-साथ कृत्रिम फाइवर में भी जाना पड़ेगा। कोशिशें कीं, कुछ मशीनें नये ढंग की ला सका। मगर यह ऊँट के मुँह में जीरा था। एक ओर फाईबर का इम्पोर्ट लाइसेन्स बन्द हो गया तो दूसरी ओर बाजार में सूती कपड़े की माँग घटती जा रही थी। मुझे दिल्ली-कानपुर के बीच सरकार से पूँजी लगवाने के लिए लगातार भाग-दौड़ करनी पड़ती थी। निजी मिल होती तो यह दिक्कत न रहती। संचालन मुझे करना था, जब कि साधन, धन और निर्णय औरों के हाथ—यह सबसे बड़ी विडम्बना थी।

एक शाम मित्रों ने कानपुर नगरपालिका की मेयरशिप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। मैंने हँसकर टाल दिया। मैं दूध का जला था, छाछ तक पीने से डर लगता था। बात आई-गई हो गयी। इस बीच कई बार दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के चक्कर बी० आई० सी० के काम से लगते रहे। एक दिन शाम की गपशप में मेरे एक मित्र ने कहा कि आपको मेयरशिप के लिए खड़ा नहीं होना चाहिए। मैं सकते में आ गया। मैंने उन्हें बताया कि मैंने अपनी स्वीकृति नहीं दी और न मेरी इच्छा है इसके लिए। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मेरे कुछ मित्रों ने मेरे लिए कोशिश कर बात को काफी आगे बड़ा दिया है और उन्हें अच्छे समर्थक भी मिल रहे हैं।

भाग्य मेरे साथ मजाक कर रहा था। एलगिन, कानपुर टेक्सटाइल्स्, लाल इमली, धारीवाल और ब्रश वेयर की परेशानियों से जूझ रहा था कि लखनऊ से श्रद्धेय चन्द्रभानुजी गुप्त का बुलावा आया। इससे पूर्व वे कानपुर की विक्टोरिया मिल को सँभालने का प्रस्ताव कई बार रख चुके थे। मैंने ना तो नहीं किया, किन्तु टालता रहा। इस बार मैंने उन्हें स्पष्टतः अपनी अस्वीकृति बता दी। मैंने यह भी कह दिया कि उसकी हालत बहुत ही गई-गुजरी है। टेक्सटाइल मिलों में ऑटोमेशन लाये विना मुनाफा नहीं हो सकता। एक ओर अफसरतंत्र, यूनियनतंत्र बाधक है तो दूसरी ओर यूनियनों का आतंक भी। सरकार जब तक इनका निदान नहीं करती है, तब तक कुछ हासिल होने का नहीं, सिवा बदनामी के। वे चुप रहे, किन्तु उन्होंने कानपुर की मेयरशिप स्वीकार करने के लिए मुझे संकेत दिया।

मैं पशोपेश में पड़ा, कानपुर लौट आया। मिलों का काम देखता रहा। मन में बार-बार गुप्तजी की मेयरशिपवाली बात उठ रही थी। घर आने पर देखा, जटाधर जी बाजपेयी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेयरशिप की चर्चा छेड़ दी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरे चारों ओर का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घेरा सिमटता आ रहा है। कानपुर में रहना है तो यह भी सहना है। फिर भी मैंने सोचने के लिए समय माँग लिया।

दूसरे दिन बहुत सबेरे वाजपेयी, अग्निहोत्रीजी, कई पत्रकार, साहित्यकार, प्रोफेसर आ गये। मुझे लगा, फन्दा कस रहा है, विधना खेल रही है, हाँ कहकर छुटकारा पा जाऊँगा। इसके लिए दौड़धूप खुद करूँगा नहीं। हार जाऊँगा। मुस्कराकर स्वीकृति दे दी। शान्ति मिली।

दो-चार दिनों बाद मिलने-जुलने का दौरा फिर शुरू हो गया। मिलनेवालों की संख्या बढ़ने लगी। धीरे-धीरे गोष्ठियों से बुलावे आने लगे। स्पष्ट था, इसी सूत्र से अधिक-से अधिक लोगों से सम्पर्क करना या कराना। मेरे संकोची स्वभाव के कारण मेयरशिप की दौड़ में साथियों और मित्रों ने मुझे खड़ा कर ही दिया। मैं सफल हुआ।

काम बढ़ गया। सुबह चार बजे से रात ग्यारह बजने मामूली बात हो गयी। बी० आई० सी०, कानपुर नगर-निगम, साहित्यिक-सामाजिक कार्यक्रम, दिल्ली-कलकत्ता-बम्बई के दौरे—सभी के चक्रव्यूह में पड़ गया। पार्लियामेन्ट में दलबन्दी राजनीति थी, यहाँ मेयरशिप में भी। वहाँ दायरा बड़ा था, यहाँ का छोटा, मगर रवैया और तरीका एक-सा। काम कम, बहस ज्यादा। नगर-निगम के दफ्तरों की हालत तो बहुत ही शोचनीय थी। शासन, अनुशासन, प्रबन्ध आदि निर्बन्ध। सारे काम-काज कागजों पर। अपना दायित्व-निर्वाह करने की चिन्ता से प्रायः सभी मुक्त। सबके अपने-अपने प्रभावी सदस्य थे—मन्त्री से सन्तरी तक। मैंने तय किया कि कहने-सुनने से लाभ नहीं। खुद ही करने में जुट गया। सुबह उठता, बस्तियों-झोपड़-पट्टियों में जाता, पानी, सफाई, चिकित्सा आदि की व्यवस्था का निरीक्षण करता। किसी को ऐसी उम्मीद नहीं थी। मैं अकेला ही निकलता। लोगों से मिलता, उनकी असुविधाओं का कारण जानने की कोशिश करता। झुग्गी-झोपड़ियाँ सभी बड़े शहरों में हैं। विदेशों में भी देखा, हांगकांग, रंगून की हालत हमारे यहाँ की तरह है। गरीबी, कुसंस्कार, पिछड़ापन, बुरी आदतें और बेकारी—सभी अपना-अपना पार्ट अदा करती हैं। तरह-तरह के अपराध यहाँ पनपते हैं, वृत्ति और प्रवृत्ति बिगड़ती है। कानपुर में तो ऐसी गन्दगी की हालत इन झुग्गियों की है कि यहाँ टी० बी० तपेदिक की बीमारी शायद भारत में सबसे ज्यादा है। मुझे ऐसा लगा कि कानपुर नगर भारत के अन्य नगरों की तरह बिना योजना के फैलता गया। शहर के कारखानों की वजह से धुएँ और गन्दगी से रोगों की बढ़ोत्तरी होती गई। शहर के बीच में इसी तरह बिजलीघर से निरन्तर निकलती कोयले की धुल और धूल एक बड़ा कारण बना है। वायु और जल दोनों का प्रदूषण वर्षों से होना आ रहा है। मैंने लिखा-पढ़ी अधिकारियों से की, पर कोई असर पड़ा नहीं। अतएव मैंने तत्कालिक राहत के लिए चिकित्सा-केन्द्र को अधिक उपयोगी बनाने पर ध्यान दिया और लोगों को स्वास्थ्य-रक्षा के प्रति अधिक सचेतन होने के लिए अनुप्रेरित करते रहने का प्रयास किया। कुछ कर सका, किन्तु वह कितना स्थायी हो पाया, यह कह नहीं सकता।

परेशानियों से नींद में बाधा पड़नी शुरू हो गई। गरीबी, गन्दगी, उपेक्षा, लांछन, काम करने में अकारण अवरोध—एक अजीब-सी उलझन दिमाग को घेरे रहती। सोचता, जब जीता तो बधाइयों और तार-चिट्ठियों का ताँता लगा, लोगों की भीड़ उमड़ आई। आज ताँता है समस्याओं का। चेहरे की मुस्कान माथे की लकीरें बन रही हैं। फिर भी सोचता यही था कि यदि नगर-निगम के माध्यम से कोई भी सेवा जन-समाज की कर पाया तो समय और श्रम का सार्थक उपयोग होगा। यह आशा थी अथवा दुराशा, उस समय नहीं समझा।

स्नेही मित्रों का सहयोग मुझे मिलता था। पता चला, नगर-निगम की बहुत-सी जमीनें जबरदखल में हैं। एन्क्रोचमेंन्ट की बीमारी हर बड़े शहरों में है। हालत स्वयं देखने के लिए एक दिन तड़के ही रावतपुर की ओर निकल गया। इतनी ज्यादा जमीन लोगों ने गैरकानूनी ढंग से दबा रख ली थी कि मन में बहुत क्षोभ हुआ। यही हालत लाल बंगला, नहरिया में भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाई। वर्षों से यह सब होता आ रहा था, इसे सुधारना आसान बात नहीं। मुकदमें, झगड़े, खर्च सभी लगेंगे। कितना समय लग सकता है। मेयर का कार्यकाल निर्धारित होता है। इसमें सुधार का मौका सीमित होता है। बड़ा क्लेश हुआ। पुलिस, लोकल सेल्फ विभाग, महापालिका के अफसर अपनी जिम्मेदारी सचाई से निभाते नहीं। इसलिए हालत बिगड़ती है। प्रशासन की ओर से भी दोषी अफसरों और कर्मचारियों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं की जाती–नहीं की जा सकती। राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक और यूनियन की समस्याएँ आड़े आ जाती हैं।

एक नियम-सा बना लिया कि समय मिलते ही विभिन्न मुहल्लों जाया करता। इससे लाभ भी हुआ। लोगों की दिक्कतें देखता-समझता। उन्हें उपाय बताता, समझाता। नगरपालिका में सम्बन्धित अधिकारियों को हिदायतें देता। कुछ काम होने लगा। लोगों ने यह महसूस किया कि मैं टलने-टालनेवालों में हूँ नहीं। मुझसे अक्सर मेरे सर्वेक्षण या निरीक्षण का प्रोग्राम पूछते। मैं क्या बताता? मुझे खुद ही मालूम नहीं। जब भी मौका लगता, सवेरे, दोपहर, शाम, यहाँ तक कि रात को निकल जाता। सब कोई सावधान रहने लगे।

एक दिन सुबह साढ़े आठ बजे हरबंस मुहल्ले की भंगियों की बस्ती में गया। जीवन की जो तस्वीर यहाँ देखी, ग्लानि से जी भर आया। एक ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ, एयरकंडिशन्ड कक्ष, बाग-बगीचों के मकान। और यहाँ? गन्दगी, धूल, दुःख और संकट! कैसे समस्या सुधरे? वर्षों-वर्षों से चली आ रही समस्या। शिक्षा, संस्कार, दरिद्रता, अधिक सन्तान, सबकी जटिलताएँ। इस हालत में रहने के अभ्यस्त हो गए हैं। याद आयी कवि-सम्राट् रवीन्द्र की पंक्तियाँ कि दुःख में ही जिनका जीवन है, उन्हें दुःख का अहसास नहीं होता। लोगों से बात की। लगा, ये भी पैसे को सबसे बड़ा मानते हैं, और कुछ चाहते नहीं। धन बड़ा साधन है, सब कुछ खरीद सकता है। जो कुछ कमाते हैं नशाखोरी में उड़ा देते हैं–जुआ और बदनाम अड्डों पर जाना भी मामूली बात है। इन जगहों पर सामाजिक कार्यकर्ताओं की बड़ी जरूरत है। मगर सामने आये कौन? स्वाधीनता के बाद से कौन्सिलर एम० एल० ए०, एम० पी० की दौड़ में शामिल हो गए। गांधीजी का जमाना चला गया।

गोष्ठी, सम्मेलन और तरह-तरह की बैठकों में प्रायः जाना पड़ता था। यहाँ तक तो ठीक था। किन्तु धीरे-धीरे मित्रों के आग्रह उद्घाटन के लिए भी होने लगे। एक बार पी० पी० एन० मार्केट की एक दूकान के उद्घाटन के लिए गया। कार्यक्रमों में जाने में मन में ग्लानि होती थी। मैं यह महसूस करता कि शुभारंभ का कार्यक्रम तो भारतीय परम्परा के अनुसार आचार्य या पुरोहितों का है। अब पश्चिम की नकल में यह शुभकार्य बड़े-छोटे नेताओं से कराया जाने लगा है। नेता खुश, दूकान की पब्लिसिटी हो जाती है। उद्घाटन के दिन कम मुनाफे पर काफी माल बिक जाता है। ग्राहक भी खुश।

मुझे सबसे ज्यादा संतोष होता था झुग्गी-झोंपड़ी और बस्तियों के लिये राहत-व्यवस्था करने पर, जितना कुछ कर पाया था, लोगों में कम नहीं। कितना कर पाऊँगा, क्या कर पाऊँगा? समय कहाँ, साधन कितना? सुविधा कितनी? फिर भी स्नेह और विश्वास का जैसा निश्छल रूप यहाँ मिलता, वह बार-बार मुझे यहाँ खींच लाता।

मेयरशिप की जिम्मेदारी सन् १९६९ में सँभाली थी। इसके लिए जो भाग-दौड़, काम का बोझ, चिन्ता-परेशानियाँ रही उसने असर छः महीनों में ही दिखाना शुरू कर दिया। मैंने उपेक्षा की–करता रहा। अनियमितताओं ने शरीर को तोड़ना शुरू कर दिया। डॉक्टर सावधान करते रहे, मैं सुनकर भी अनसुनी करता रहा।

नवम्बर में मेरे मित्र डॉ० शशिभाल ने सावधान किया कि यदि इस तरह भाग-दौड़ करूँगा तो बिस्तर पकड़नी पड़ेगी। ब्लड-प्रेशर अनियंत्रित होता जा रहा है। उस दिन हृदय के बायें भाग में दर्द महसूस हुआ था। डॉ० अग्निहोत्री ने बताया कि खून का दौरा ठीक से न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होने कारण यह है, विश्राम की जरूरत है । मैं चुप रह गया ।

बात ठीक थी । व्यक्तिगत कामकाज की अवस्था भी मेरी उपेक्षा के कारण सन्तोषजनक नहीं थी । बी० आई० सी० की मिलों और कारखानों की चिन्ता, इधर दिल्ली की राजनीति की खींच, कलकत्ते की सार्वजनिक संस्थाओं के लिए भी भाग-दौड़ और मेयरशिप का बोझ—शायद बूते के बाहर था । सब सम्भव है, यदि साथ में काम बाँटनेवाले और हाथ बँटानेवाले भी मिलें । मगर क्यों कोई आए ? क्या मिलेगा सार्वजनिक काम में ? कलकत्ते में फिर भी मित्र मिल जाते हैं । उस ढंग के यहाँ कम ही मिलें ।

मेरे स्वास्थ्य की चिन्ताजनक अवस्था देखकर मुझे मैकराबेट अस्पताल में भर्ती करा दिया गया । बड़ी सख्ती बरती गई । मिलने-जुलने वालों का प्रवेश बन्द । डॉक्टर-नर्सों का पहरा लगा दिया गया । दो-एक दिन में ऐसा लगा कि मुझे जबर्दस्त कैद हो गई । बड़ी छटपटी रही। जीवन में कभी ऐसी सज़ा भुगती नहीं । मुझे लगा कि यहाँ कुछ दिन रहना पड़ा तो फिर किसी काम का नहीं रह पाऊँगा । लिखने-पढ़ने तक पर पाबन्दी ! सेवा-देखभाल की कमी नहीं थी। यही मेरे लिए सबसे बड़ी मुसीबत लगी । मैं अस्पताल से चुपके से निकल आया । घर आकर बड़ी शान्ति मिली । ऐसा लगा, सारी बीमारी दूर हो गई ।

अस्पताल में खलबली मची । मिल में भी । सभी चकित, परेशान । मैं मिला घर पर चुपचाप लेटा हुआ । कौन मुझसे कुछ कहता ? दो-एक मित्रों ने दबी जुबान कुछ कहा । मैंने स्पष्ट कह दिया कि अस्पताल में रहना मेरे रास नहीं आता । मैंने वादा किया कि भाग-दौड़ कम कर दूँगा ।

कुछ दिनों तक इस पर अमल किया । शहर में व्यवस्था फिर शिथिल होने लगी । शुरू में तो अफसर और कर्मचारी मेरे भय से ठीक काम करते रहे, पर वे जानते थे कि मेयर की आयु कितनी होती है । और जब बीमारी की बात सुनी तो बेफिक्र होना स्वाभाविक था। कारपोरेशन के सभासद नगर की सेवा कम, किन्तु अपनी अधिक करते हैं । अधिकांश शहरों में यही रवैया है, कानपुर कोई अपवाद नहीं ।

जिन्दगी ही भागदौड़ से शुरू की । वह कब छूटती ? आदत बन गई थी । फिर शुरू हो गया वैसा ही सिलसिला । फर्क यह आया कि चक्कर आने पर बुखार या सर भारी होने पर बरबस विश्राम करना पड़ता था । कभी-कभी यह भी सोचता, व्यर्थ इन झंझटों को बटोर लिया । केवल लिखूँ-पढ़ूँ तो वह स्थायी सेवा होगी । इसी जोश में लिखता भी था और अखबारों को लेख भेजता । 'विश्व-यात्रा के संस्मरण' इसी तरह लिखे गये । बहुत-सी कहानियाँ, लेख भी मैंने लिखे । पाठकों के पत्र से उत्साह बढ़ा । साहित्यिक मित्रों की सराहना से गदगद हो उठता, प्रेरणा मिलती । साहित्यिक मित्रों और साहित्य-गोष्ठियों में बिताया समय जीवन की बड़ी ही मधुर स्मृतियाँ हैं ।

कानपुर में कितना कर पाया कह नहीं सकता । जो किया उससे सन्तोष नहीं , किन्तु तसल्ली इतनी है कि हिम्मत नहीं हारी, शरीर भले ही टूटा । सबसे बड़ा सन्तोष इस बात का है कि नगरपालिका की ओर से मैंने राजनीतिक नेताओं के स्थान पर विद्वानों और साहित्यकारों का अभिनन्दन किया । राष्ट्रपति वेंकट वाराह गिरि और खान अब्दुल गफ्फार खान के अभिनन्दन के पीछे भावना थी, राष्ट्र के और राष्ट्रीय संग्राम के शीर्षस्थ व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और सम्मान । महादेवी वर्मा, दिनकर और पन्त का अवदान भारतीय वाङ्मय में चिर महत्वपूर्ण है, इसलिए इनका भी सम्मान कर मुझे कृतार्थ होने का सुयोग मिला।

सन् १९७२ से ही मुझे लगा कि शरीर साथ देना नहीं चाहता । इधर बी० आई० सी० के लिए जो करना चाहता था वह कर नहीं पा रहा था । मानसिक द्वन्द्व की यातना भोगनी पड़ती थी । मैंने सरकारी अधिकारियों से कहा कि बी० आई० सी० के उद्धार के लिए बड़ी पूँजी चाहिए । नवीनीकरण आवश्यक है । पुराने ढाँचे को बदलना होगा । प्रबन्ध-व्यवस्था में भी परिवर्तन जरूरी है । अंग्रेजों के जमाने की व्यवस्था की अब कोई जरूरत नहीं । अफसरों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिए बड़े-बड़े बँगले, नौकर-चाकरों की फौज हटानी होगी । बी० आई० सी०, एलगिन कानपुर टेक्सटाइल्स् और शुगर मिलों में इनके पीछे लगी जमीनों का उपयोग आर्थिक लाभ की दृष्टि से होना चाहिए । अफसरों के लिए फ्लैट बन जांय–कर्मचारियों के लिए भी । इस प्रकार शहर की बहुत बड़ी जमीनें खाली हो जायँगी । इन्हें बेचकर या इन पर आवासीय फ्लैट बनाकर आर्थिक अवस्था को सहारा लगाया जा सकता है । मैं यह भी चाहता था कि व्यवस्था का सर पैरों से ज्यादा भारी न रखा जाय । ऊँचे अफसरों की ऊँची तनख्वाह और सुख-सुविधा आवश्यकता से अधिक थी । इसमें कटौती करना जरूरी था, पर इस सुझाव पर भी ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी गयी । शायद कमजोरी मेरी थी । मैं ठीक से बात नहीं समझा सका । मेयरशिप का अनुभव एक उपलब्धि मानता हूँ । मेरी कार्य-अवधि थोड़ी थी समस्या बड़ी, व्यवस्था और नियमादि के परिवर्तन के बिना कानपुर तो क्या, किसी शहर की समस्या का सुधार, सहज सम्भव नहीं ।

आज मैं मुक्त हूँ । मुझे ऐसा लग रहा है कि सामने शान्ति के पारावार की ओर बढ़ रहा हूँ । घर-बाहर के झंझट तो रहते हैं, रहेंगे । काम करने का मन है, जितना होता है करता हूँ । मन में साधता हूँ कि परेशानियाँ दिमाग को मथें नहीं । किन्तु लगता है कि वे हँसकर चुनौती देती हैं–तन में ताकत हो तो आओ, आगे बढ़ो ।

कलकत्ता मेरा कर्मस्थल रहा है, यहीं बड़ा हुआ, पनपा । दिल्ली के बाहुपाश से छुटकारा मिल सका, सौभाग्य मानता हूँ । कानपुर से चलते समय मित्रों से भगवतीचरण वर्मा की पंक्ति कही थी–

"अब अपना और पराया क्या
आबाद रहें रुकनेवाले
हम स्वयं बँधे थे
और स्वयं ही अपने बन्धन तोड चले" ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट

और वे चले गये

—बालकृष्ण गर्ग

रामेश्वरजी में उत्साह और साहस की कमी नहीं थी। लगन भी जबर्दस्त थी। संघर्षों मे जूझने में उन्हें अनिर्वचनीय आनन्द आता था। हार उन्हें स्वीकार न थी।

सन् १९६७ में, संसद् के निर्वाचन में सफल न होने के कारण उनके मन में एक चोट जरूर पहुँची थी। हारने की नहीं थीं, बल्कि दुःख इस बात का था कि राजनीति शुचिता से दूर चली गई थी। पारस्परिक फूट, अवसरवाद और अफसरवाद ने वांछित कार्य करने में सदा बांधा उपस्थित की। पीड़ा इस बात की थी कि जिस राजस्थान को उन्होंने प्यार किया, जिसके लिए अटूट परिश्रम किया, उसकी सेवा का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया। वे पैसेवाले समझे जाते रहे। हर जगह पैसे की माँग पहले। प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा उनके क्षेत्र के लोग भ्रमित किए जाते रहे। रामेश्वरजी ने अपनी डायरी (क्या खोया, क्या पाया) में अन्तर्व्यथा लिखी है–"मेरी हार के पीछे दलबन्दी और कमजोरी है, मैं महसूस कर रहा हूँ।"........."इतना दुःख शायद जीवन में एक बार हुआ ३० वर्ष पहले जब फाटका में रुपया खो दिया था।" "फाटकाऔर राजनीति दोनों ही मेरे माफिक नहीं है।"

इस हार ने उन्हें संसद्-भवन से पृथक् भले ही किया किन्तु उनकी सेवा-भावना दबी नहीं। वे पुनः सार्वजनिक सेवा में पूर्ववत् जुट पड़े।

सीकर उनका संसदीय क्षेत्र था। अतएव श्रीकल्याण-आरोग्य सदन, पिपुल्स वेलफेयर सोसाइटी, सरदारशहर की संस्थाएँ—सार्वजनिक पुस्तकालय, गांधी विद्या मन्दिर, गोशाला आदि अनेक संस्थाओं की व्यवस्था एवं आर्थिक सहायता के लिए समय देने लगे। कलकत्ता आकर भी इसी प्रकार वे शैक्षणिक और सामाजिक सेवा से पहले की तरह जुट पड़े। व्यापार-व्यवसाय में बहुत कम समय देते। इसे वे अच्छी तरह जमा चुके थे। सँम्हालने वाले योग्य व्यक्ति थे।

राजनीति के प्रति उनमें आन्तरिक रुचि नहीं थी। साहित्यिक एवं समाज-सेवा की प्रवृत्ति थी। यों, शुरू से ही जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, मातृकाप्रसाद कोयराला, केदारनाथ चट्टोपाध्याय (मार्डन रिव्यू), मोहनसिंह सेंगर (विशाल भारत) के निकट सम्पर्क में रहे। मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी की ओर से अकाल और अनावृष्टि में राहत पहुँचाने के लिए राजस्थान गये। काफी काम किया। इसी सिलसिले में राजस्थान के राजनीतिक नेता और प्रमुख समाज-सेवियों के सम्पर्क में आये।

एक नये क्षेत्र की भूमिका उनके लिए अनायास अनजाने में बनती गयी। राजनीति में आ गए। सीकर के क्षेत्र से निर्वाचित होकर संसद में पहुँच गए। प्रारम्भ में उन्हें लगा कि देश का काम पार्लियामेन्ट के माध्यम से अच्छा हो सकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किन्तु ऐसा हो नहीं सका। दस वर्षों (१९५७-६७) तक संसद्-सदस्य रहे। तीन बार कांग्रेस संसदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष। कांग्रेस में सेवाभावी धीरे-धीरे कम होते गए। पद, मान, प्रतिष्ठा के पीछे नेतृत्व दौड़ने लगा। देश दल के पीछे हुआ, फिर सबसे आगे व्यक्ति। कांग्रेस बँटी, टूटी, व्यक्ति के नेतृत्व में कई दल बने। राजनीति एक दल-दल बन गई।

१९६७ के चुनाव में असफल होने पर रामेश्वरजी ने अपनी डायरी में अपने मानस की प्रतिक्रिया लिखी है—"मन करता है किसी जगह चला जाऊँ। कितना प्यार किया राजस्थान को, कोशिशें कीं अपने क्षेत्र के लिए। लोगों ने गलत समझा। शायद धन मेरी हार का बहुत बड़ा कारण हो। सभी जगह रुपयों की माँग, क्योंकि मैं पैसेवाला समझा जाता रहा। गलती मेरी थी, मैं देता रहा। धन की भूख बढ़ती है, मिटती नहीं, नहीं मिलने पर क्षोभ होता है। परन्तु मुझे सन्तोष है, यहाँ कुँए, तालाब, सड़कें, स्कूल, अस्पताल रहेंगे। मैं न भी रहूँ तो क्या ?......मन्दिर गया। मन के लिए ताकत की प्रार्थना की।" यह रही उनकी राजनीतिक उपलब्धि।

कानपुर से रामेश्वरजी का लगाव बना रहा। मेयरशिप पहले ही छोड़ चुके थे, बाद में बी० आई० सी०। दोनों दायित्वों से मुक्त होने पर भी स्नेह के सूत्र ने उन्हें कानपुर से जोड़ रखा था। साहित्यकार, समाजसेवी और राजनीतिक बन्धुओं की, उनकी गोष्ठी में मिलने-जुलने वे जाया करते। इसी प्रकार काशी, लखनऊ, दिल्ली, बम्बई भी। राजस्थान से लम्बे समय तक सक्रिय रूप से जुड़े रहने के कारण वहाँ भी उनका जाना-आना लगा ही रहता था। सभी जगह समान रूप से स्नेहभरी मुस्कान बिखरते रहते, सहयोग और सेवा का हाथ बढ़ाये रखते थे। ऐसा लगता था कि कानपुर के दायित्व का बोझ उतरने पर उन्हें कुछ राहत-सी मिली।

स्वास्थ्य साथ नहीं दे रहा था। हार मानने को वे तैयार नहीं। जीवन में कभी अवरोध स्वीकार नहीं किया। मन और देह में संघर्ष चल रहा था, वे समझ रहे थे किन्तु 'चलते रहो' को वे मानों सर्वोपरि मानते रहे। रामेश्वरजी की एक खास खूबी थी, उन्हें पूर्वाभास होता था और वह सही उतरता था। इसे मैंने कई अवसर पर देखा। किन्तु विस्मय इस बात का होता है कि इसके बावजूद वे अक्सर प्रतिकूल दिशा में बढ़ते। इसका मनोवैज्ञानिक कारण क्या हो सकता है, इसे नहीं जानता। संभवतः मित्रों, बन्धुओं और उपस्थित परिस्थिति के आग्रह के कारण वे निर्णय बदलते रहे हों।

मन के सरल थे। बड़ी आसानी से लोग इसका फायदा उठाते। कई ऐसे मौके आये जब मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया किन्तु वे हँस के कह देते 'रांग (wrong) हो गया'।

कानपुर से चलते समय उन्होंने कहा था, "काम-काज की फिक्र नहीं, भगवान् ने सब कुछ दे दिया है। अब मुझे शान्ति के लिए सन्यास लेना चाहिए।" मैंने उन्हें इस बात को कई बार दुहराते सुना था। मैं चुप रहता। वे स्वयं कहते, "मगर यह शायद ही मेरे लिए संभव हो।"

कलकत्ता से उन्होंने मुझे लिखा कि मैं एक बार मिल लूँ। मिलने पर उन्होंने अपनी बात बताई कि वे १९७४ के मई-जून में विदेश-यात्रा पर जाएंगे और इस बार दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में भ्रमण करेंगे। मुझे भी साथ ले जाएंगे।

विधि का विधान। बम्बई में सन् १९७३ के २९ दिसम्बर के दिन शाम को साढ़े-पाँच बजे कुर्सी पर चढ़कर आलमारी से किताबें निकाल रहे थे कि गिर पड़े, कूल्हे की हड्डी टूट गयी। २९ दिसम्बर को उन्हें पता चला कि उनके दामाद पुष्पकुमारजी बागला बीमार हैं। ३ जनवरी, १९७४ को उन्हें खबर मिली कि पुष्पजी का शरीर शान्त हो गया।

मेरे पास कानपुर में बम्बई अस्पताल से जो पत्र उन्होंने लिखा, अत्यन्त मार्मिक था। ऐसा लगता था कि उन्हें संसार से, जीवन से विरक्ति सी हो गई। यूँ तो सन् १९७० में अपने अग्रज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री शिवप्रतापजी की मृत्यु का आघात उनके मन पर था ही, इस घटना से वे विकल हो उठे थे।

ऐसा लगता है कि कोई अनजानी शक्ति उन्हें दूसरी ओर खींचती जा रही थी। उन्होंने मुझे लिखा कि अब तो विदेश-भ्रमण तो अब शायद ही हो पाए, मैं तो भँवर में पड़ता जा रहा हूँ।

बात सही थी। बम्बई स्थित उनकी सीताराम मिल की समस्याएँ काफी उलझीं थीं। बाजार साथ नहीं दे रहा था। उनकी हर तरह की कोशिशों के बावजूद अवस्था में सुधार नहीं हो रहा था। जिस व्यक्ति के अदम्य साहस, सूझबूझ और परिश्रम से कामयाबी मिलती रही, उसके लिए ऐसी परिस्थितियाँ मानसिक आघात पहुँचाने के लिए यथेष्ट है। आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति में भी वे सार्वजनिक कार्यों में उत्साहपूर्वक सक्रिय रहे। कैसे वे कहानियाँ, गंभीर लेख लिखते रहे, यह भी ताज्जुब की बात है।

मई के महीने में उनके पत्र से जान पाया कि बैसाखी के सहारे की जरूरत नहीं रही, वे छड़ी के बल पर चलने लगे हैं। मुझे राजेन्द्रबाबू की 'आत्मकथा' पढ़ने के लिए कहा। ३० मई को सूचना मिली कि वे कानपुर आए हैं, मुझे याद किया है। मैं मिला, तेल मालिश करा रहे थे। विनोद मोदी, सम्पत दूगड़ आदि मित्र भी थे। उन्होंने बताया कि पूना, महाबलेश्वर, प्रतापगढ़, नासिक, व्रजेश्वरी आदि का पर्यटन कर बम्बई होते हुए आए हैं। मैं चुपचाप सोचने लगा कि लाठी के सहारे इतना सब कैसे पार पड़ा। मुझे कहने लगे, "प्रतापगढ़ तक तो इस बार चढ़ नहीं पाया, पहले देख चुका हूँ। तुम जरूर देखना, हो आना।" सम्पतजी ने कहा, "आप को अभी इस अवस्था में अधिक विश्राम की जरूरत है।" उत्तर मिला, "अब यह जीवन का साथी हो गया। हाँ, चाहता हूँ कि लाठी-छड़ी का साथ छूट जाय।"

सन् १९७४ में उनका कहानियों का संग्रह 'जाने-अनजाने' का प्रकाशन हुआ। बहुत खुश थे। उन्होंने मुझे लिखा कि इन दिनों कई कहानियाँ लिखी हैं, इतिहास पर आधारित हैं। वे ऐसी कहानियों का संकलन एक पृथक् संकलन के रूप में प्रस्तुत करना चाहते है। मैं इस काम में लग गया। बाद में प्रकाशनार्थ काशी के विश्वविद्यालय प्रकाशन के श्री पुरुषोत्तमदासजी मोदी के पास भेजवा दिया।

सन् १९७६ की ५ जनवरी को ऋषिकेश से उनका पत्र आया कि वे घनश्यामदास बिड़ला के साथ हैं मन लग गया है। ब्लड-प्रेशर ऊँचा है। एक दिन कफ में ललाई भी दिखाई पड़ी। यहाँ से बम्बई भी जाएंगे, फिर कलकत्ता। सम्भव हो तो वहाँ मिलने के लिए कहा।

होली के अवसर पर मैं क़लकत्ता गया। उनसे मिला। देखा कि पैरों में सूजन है। वे समझ गए। कहने लगे, "डॉक्टर बताते हैं खून की कमी, कोई खास बात नहीं। हाँ, अब तुम कानपुर छोड़ो और मेरे पास आ जाओ। जल्द निर्णय ले लो।" बातचीत के सिलसिले में उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की कि एक प्रकाशन संस्था बनाने चाहते हैं। ट्रस्ट कर देगें। अच्छे प्रकाशन कम मूल्य पर उपलब्ध करायेंगे। उन्होंने इसके बारे में सम्पत जी को लिखा है।

मुझे उनके स्वास्थ्य की गिरती अवस्था देखकर दुःख हुआ। चेहरे पर पीलापन, झुर्रियाँ हाथों पर भी। कुछ कहता तो हँस देते। कहते "जो बिना बुलाए आए वह बचपन देखा जो आकर चली जाए वह जवानी देखी और जो आकर न जाए, वह बुढ़ापा है। इसका साथ कैसे छूटे?" वही मुस्कान ताजगी के साथ।

इतने पर भी उनके पैर चलते रहे। कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, सीकर, सरदारशहर, कहां कब चले जाते निश्चय नहीं। कैसे करते, हैरत की बात थी। कहीं बस से, कभी प्लेन से, कभी रेल से। खबर मिलती इन्दौर, माण्डू, धार, ओंकारेश्वर, पंचमढ़ी, जसीडीह और न जाने कहाँ-कहाँ बंजारों की तरह जाते। न जाने कौन उन्हें बुलाता, वे किस खोज में रहते। अचानक ही निकल पड़ते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मई, १९७६ में उनका पत्र जसीडीह से आया, "कानपुर छोड़ दो, कलकत्ता चले आओ, तुम्हारे लिए व्यवस्था कर दी है।" मैंने एल्गिन का काम छोड़ दिया। कलकत्ता आ गया। मिला, रामेश्वरजी ने कुछ कहने से पहले ही शुरू कर दिया अपनी यात्रा संस्मरण सुनाना। कहा इस बार हम-तुम साथ चलेगें। आबू देखते रह जाओगे"......इत्यादि। मैंने उनसे बताया कि एल्गिन छोड़ दी। वे खुश हुए। उन्होंने बताया कि वे अब अपने साथ मुझे रखेंगे।

मैं प्रतिदिन उनके पास जाया करता। उन्होंनें अपनी अधूरी आत्मकथा को पूरी करने की कोशिश की थी, किन्तु हो नहीं पा रही थी। मैंने देखा आँखों पर जोर पड़ता था। डायरियाँ अक्सर हाथ से गिर जाती, वे आँखे बन्द करके लेटे रहते। बस, कुछ ही लिखा पाते। वे आत्मकथा लिखाते हुए कभी-कभी खो से जाया करते थे। सिलसिला टूट जाता। सामयिक चर्चा, एमरजेन्सीं जयप्रकाश बाबू के प्रयास, कांग्रेसी नेताओं की खींचातानी, विरोधियों की हिचकिचाहट की चर्चा करते। उन्हें अखरता सबसे ज्यादा था—देश के नेतृत्व में बौद्धिक तत्त्वों का अभाव, चारित्रिक और नैतिक पतन।

मैं सारे दिन उनके पास रहता। उन्होंने कभी अपनी बीमारी की हालत नहीं बतायी। मुझे मालूम था कि उनके दोनों गुर्दे बेकार हो चुके थे। बम्बई अस्पताल में उनका इलाज कराया गया। जसलोक में किडनी के लिए उनका ऑपरेशन भी हुआ। हाथ की धमनियों में रक्त-प्रवाह के लिए ऑपरेशन भी किया गया।

एक दिन मुझसे रहा न गया। मैंने उन्हें कहा कि आपको इतनी दौड़-भाग अब नहीं करनी चाहिए थी। कहने लगे 'अब ठीक हो जाऊँगा, डॉक्टरों ने कहा है कि इलाज हो गया। उन्होंने ही मुझे यहाँ आने की छुट्टी दे दी।'

रामेश्वरजी को स्पष्ट आभास सम्भवतः हो चुका था कि उनकी क्षीण होती हुई क्षमता का परिणाम क्या हो सकता है। इसके लिए वे प्रस्तुत थे। फिर भी संघर्षशील रहे। संस्थाओं के लिए सक्रियता में कमी नहीं आयी। यथासाध्य पढ़ते, लिखते-लिखाते रहे। बस एक बात मुझे अखरती कि मित्रों के आग्रह पर वे हर तरह की चिकित्सा करवा लेते। फायदा तो क्या, नुकसान ही होता। जबर्दस्ती बन्द करवा दिया जाता। वे चुप रह जाते।

दिसम्बर में उनका स्वास्थ गिरने लगा। अचानक बम्बई जाने का प्रोग्राम रामेश्वरजी ने बना लिया। मुझे कई किताबे दे गए कि पढ़ डालूँ। सारी डायरियाँ पढ़ने के लिए दीं। जनवरी में बम्बई पहुँचने के लिए उन्होंने मुझे लिखा। मैं शेंष सप्ताह में पहुँच गया। काफी दुर्बल से लगे। हाथ में सूजन, पैरों में भी। गैल (बेहोशी-सी) आ जाती थी।

उनकी इच्छा थी कि दिल्ली में संसदीय जीवन और राजनीति पर वें लिखें। मुझे साथ लेकर वे किताब ले आए। डायरियों से नोट बनने शुरू हुए। रूपरेखा बनी। आत्मकथा भी चलती रही। स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। इलाज चल रहा था, लाभ कुछ भी नहीं। भोजन नियन्त्रित, पानी बहुत कम— नाप-तौलकर। तय हुआ, जसलोक में जाँच करायी जाए। डाक्टरों ने सलाह दी, डायलेसिस करानी होगी। मुझे कैसा लगा। रामेश्वरजी प्रसन्न थे। मुझसे कहा—"चलो अच्छा हुआ जितने दिन बचूँगा कष्ट कम ही भोगना होगा।"

११ फरवरी, १९७७ को डायलेसिस कक्ष में सुबह १० बजे ले जाए गए। यन्त्रों को देख कर मुझे लगा काफी जटिल प्रक्रिया है। सारे शरीर का रक्त गुर्दे की जगह यान्त्रिक गुर्दों से प्रवाहित होकर शुद्ध किया जाता है। और मरीज भी थे, उन पर डायलेसिस चल रहा था। मैंने देखा, वे शान्त भाव से लेटे थे। डॉक्टरों ने कहा, पहला अवसर है इसलिए कक्ष मे घरवाले बाहर जायँ। राजूबाबू (रामेश्वरजी के छोटे पुत्र) और मैं रह गया। डायलेसिस शुरू हुआ, रक्त का प्रवाह पारदर्शी प्लास्टिक की नलिकाओं से होना शुरू हुआ। रामेश्वरजी शान्त भाव से लेटे रहे। राजूबाबू को इस प्रक्रिया से विचलित-सा देख डॉक्टरों ने उन्हें बाहर जाने का संकेत किया। मैं रह गया। साथ में माताजी (रामेश्वरजी की पत्नी) भी। डायलेसिस करीब छः घंटे चला। शाम के पाँच बजे अपने कक्ष वापस भेज दिए गए। आते ही कहा, "बहुत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आराम मिला, शरीर की जलन मिट-सी गयी।'' एक दिन के अन्तर से डायलेसिस दिया जाना तय हुआ। दूसरा कोई होता तो घबराता, परन्तु रामेश्वरजी प्रसन्न थे। घर आने के बाद उन्होंने कई पत्र लिखवाए किताबें पढ़ीं मानों कुछ हुआ ही नहीं।

डॉक्टरों ने अवस्था में सुधार देखते हुए कहा कि १८ को घर जाने के लिए छोड़ देंगे। अस्पताल आकर डायलेसिस लेते रहें। रामेश्वरजी बहुत प्रसन्न हुए। धीरे से मुझसे कहा, ''चलो कैद से छूटे।'' घर आकर उनमें कुछ स्फूर्ति सी दिखाई पड़ी। उन्होनें दूसरे ही दिन सुबह मुझसे कहा, ''याद है ? कानपुर में मैंने तुमसे कहा था, महाबलेश्वर-प्रतापगढ़ देखना। आज ही निकल पड़ो। नासिक-पूना भी देख लेना।'' मैने असहमति व्यक्त की, डाँट पड़ी। कहने लगे, ''यह तो रोज की बात है। आदत बन गयी, कम्प्लिकेशन है नहीं,जाओ तीन-चार दिन में वापस आ जाना।'' हिदायतें दी, यात्रा की व्यवस्था कर दी। यूँ तो वे मेरे प्रति बचपन से स्नेह रखते थे। शायद पूर्व जन्म के संस्कार हों। मेरी असावधानियों के लिए डाँटते भी थे और साथ-साथ अच्छी-सी किताब देकर कहते, ''पढ़ लेना आपस में चर्चा करेंगे।'' उस दिन पास बुलाया, सर पर हाथ फेरा, कहा---''जाओ जीम लो और निकल पड़ो। गोदावरी में स्नान करना और त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन।''

चार-पाँच दिनों में लौट आया। देखा, विश्राम की उपेक्षा चल रही है। घर पर मीटिंगें होती हैं। ताश की बैठकें भी। मैंने संकेत किया कि ऐसी उपेक्षा और असावधानी नहीं होनी चाहिए। विश्राम लेना चाहिए। कहने लगे, ''श्रम हो तब तो विश्राम। यहाँ श्रम करता कहाँ हूँ ?'' बात घुमाने के लिए कहने लगे, अस्पताल में ''जयप्रकाशजी से मिला। उनमें आत्मविश्वास है, साहस है, बीमारी उन्हें परास्त नहीं कर सकती। हाँ स्मरण-शक्ति में लगता है, कुछ फर्क है।''

जनता पार्टी बन चुकी थी। चुनाव की तैयारियाँ चल रहीं थीं। रामेश्वरजी ने काफी मदद पहुँचाई। मना करते रहने पर भी मिलने जाते। एक दिन कहा, ''डायलेसिस बड़ा खर्चीला है। मुझे तो भगवान् ने दिया है। नन्दू (नन्दलालजी टाटिया) पानी की तरह रुपये मेरे पीछे खर्च कर रहा है। मैं सोचता हूँ किडनी की बीमारी गरीब को हो होती होगी तो एँड़ियाँ रगड़कर मरने के अलावा दूसरा उपाये नहीं। एक मशीन की नन्दू से बात की है, वह जसलोक में दान कर देगा। इस तरह और सम्पन्न लोगों से कहूँगा। आज जी० डी० बाबू (घनश्यामदासजी) से मिलूँगा। वे जरूर कुछ व्यवस्था कर देंगे।'' और, उसी दिन शाम को मुझे तो कुछ देर घूमने के लिए बाहर भेज दिया और स्वयं चले गये, जी० डी० बाबू से मिलने। वापस आकर कहने लगे, ''मैंने कहा था न जी० डी० बाबू से तीन डायलेसिस मशीनों की बात हुई।''

मार्च में एक दिन उन्होंने कहा, ''कलकत्ता जाने का मन हो रहा है। वहाँ संघर्ष के दिन मैंने बिताये, सफल रहा। लगता है, मुझे मेरा कलकत्ता बुला रहा है। मैं जाऊँगा। तुम ट्रेन से कलकत्ता जाओ, मैं प्लेन से पहुँच रहा हूँ। रास्ते में वर्धा और नागपुर देख लेना।

१३ मार्च को कलकत्ता पहुँचे। बहुत प्रसन्न लगे। दूसरे दिन सुबह विक्टोरिया में अपनी मित्र-मण्डली से मिले। उस दिन पत्र लिखाये, लेख वगैरह का भी काम हुआ। डायलेसिस की व्यवस्था कलकत्ता अस्पताल में तय कर ली गई। किन्तु यहाँ उनके अनुकूल नहीं रही। बेचैनी होती थी। फिर भी पूर्ववत् व्यस्त--मीटिंग, ताश और घूमना।

चुनाव की गिनतियाँ हो रही थीं। रात-रात भर बैठकर चुनाव परिणाम सुना करते। हम सभी मना करते पर वे सुनी-अनसुनी करते और कहते। ''ऐसे झटके जरूरी हैं, इससे गणतन्त्र का स्वास्थ्य बनता है, एक दल हावी नहीं बन पाता।''

मार्च, १९७७ का तीसरा सप्ताह था। कलकत्ता अस्पताल में डायलेसिस पर थे। मैं पास बैठा था। एकाएक उनके पेट में दर्द महसूस हुआ। उल्टियां हुईं। चेहरे पर कष्ट उभर आया बोले कुछ भी नहीं। लेटे-लेटे उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कहा, ''वादा करो मेरा साथ छोड़ोगे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं।" मैंने अपने को बहुत सँभालने की कोशिश की, उनका हाथ जोर से पकड़ लिया। मेरी आँखे भर आईं, उनकी पलकें भी। थोड़ी देर बाद कहा, "अब मुझमें शक्ति रही नहीं। 'आत्मकथा' में मेरे बचपन से लेकर संघर्ष और कानपुर तक की बात लिखा पाया हूँ। शेषांश जैसा चाहता था, बना नहीं पाया। अब और शायद ही लिख पाऊँ, कोशिश करूँगा। तुम एडिट कर देना।......" मैंने वादा किया, लगा उन्हें सन्तोष हुआ, शान्ति मिली।

एक दिन डायलेसिस के समय उन्होंने नन्दू बाबू से कहा कि पता चला है कि एक व्यक्ति की पत्नी की किडनी बदलना जरूरी है, उसे कोई अपनी एक किडनी बेचने को तैयार है पर रुपयों के अभाव में संभव नहीं हो रहा है। नन्दू बाबू ने उन्हें आश्वस्त किया और किडनी खरीदवा दी।

कलकत्ता उनके अनुकूल नही रहा। स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। डायलेसिस में तकलीफ पाते थे। तय हुआ उन्हें बम्बई ले जाया जाय। बम्बई आने पर उन्हें जसलोक में भरती किया गया। यहाँ उन पर काफी नियंत्रण की सुविधा रही। तकलीफ तो कम हुई पर दुर्बलता धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थीं। खून चढ़ाने की नौबत आ गयी। कभी-कभी ऑक्सिजन भी दिया जाता। सूई तो प्रत्येक दिन। खाने-खिलाने का शौक रामेश्वरजी को था। सब कुछ बन्द। मिलनेवाले आते रहते। बातचीत करने में कष्ट होने लगा। जी० डी० बाबू, अश्विनी बाबू (अश्विनीकुमारजी कानोड़िया), बाबू गंगाशरणजी आदि आते। वे बहुत ही कम बात करते। एक दिन जी० डी० बाबू आये, रामेश्वरजी से हाल पूछा, "कैसी तबीयत है?" रामेश्वरजी ने इतना ही कहा, "अब तो थकान लगती है।" जी० डी० बाबू ने समझाया "मन को थकने न दें, परमात्मा का स्मरण रखें।" रामेश्वरजी के चेहरे पर शान्ति के भाव उभर आये।

धीरे-धीरे ऐसा लगा कि उन्हें विरक्ति सी हो रही है। कलकत्ता में ज्ञान-भारती में उनका अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन पत्र उन्हें देने के लिए बम्बई में उनके मित्र आये। रामेश्वरजी मुस्कराये, सिर्फ इतना कहा, "इस लायक मैं हूँ नहीं।"

रामेश्वरजी दिन में तो बेहोशी-की हालत में रहने लगे थे किन्तु रात ८ बजे के बाद न जाने उनकी नींद कहाँ चली जाती। भोजन के प्रति उनकी रुचि नहीं थी। मैं रात में भी उनके पास रहता। पारी-पारी से माताजी और मैं। रात की नर्स भी थी। उन्हें सन्तोष था कि बेला बाई (नन्दू बाबू की पुत्री) का विवाह अच्छे परिवार में हो गया। जीवन के शेष भाग में एक के बाद एक उन पर दैवी चोटें पड़ीं। वे सबसे अधिक विचलित थे अपने बड़े भाई शिवप्रतापजी के जाने पर। उनका अभाव अखरता रहा। इसी प्रकार बम्बई में उनकी सीताराम मिल की चिन्ता ने भी उन्हें घेर रखा था।

संसार से विरक्ति-सी हो गई थी। वे जाना चाहते थे। मोहपाश से मुक्त होने का प्रयास कर रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने आने-जानेवालों से बात करना बन्द कर दिया। केवल देखते-मुस्कराते और मुँह फेर लेते। शरीर में कष्ट होता किन्तु किसीसे न कहते कि हाथ-पैर सीधे कर दो, तकिया का सहारा लगा दो या करवट बदल दो। रात दस बजे के बाद न जाने कैसे उनमें चेतना आती। तकिये को गर्दन के नीचे लगवाकर ऊँचा कर देने के लिये कहते। रामचरितमानस सुनाता रहता, कभी गीता।

एक दिन सुन्दर कांड में हनुमान-संवाद का प्रसंग था। दोहे में था—"प्राण जाँहि केहि बाट।" रामेश्वरजी मुस्कराए कहने लगे, "यही मेरी हालत है। मेरे चाहने पर क्या होगा? प्राण निकले कैसे, किस राह? नाक में नली, आँखों दवा की बूँदें, नसों में नालियाँ...... सब द्वार बन्द, पहरे लगे हैं। ......प्राण छटपटाता है। कैसा खेल बना है! जिस रुपये के पीछे भागता रहा, जीवन खपा दिया पा भी लिया। आज पास होने पर वे बदला ले रहे हैं। उन्हीं के बल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर डॉक्टरों की फ़ौज, नाना तरह के हथियार के जुगाड़ बैठे हैं, प्राण निकलने देते नहीं।"

अन्तिम दिनों की बात है। डायलेसिस पर थे। एक महिला बाहर खड़ी थी। डॉक्टर से मिलना था। बार-बार आँसू पोछ रही थी। रामेश्वरजी ने देखा। मुझसे कहा, "बाई से पूछो, क्या तकलीफ है।" मैंने पता किया। बताया कि उसके पति को देवर किडनी देने के लिए तैयार हो गया है। पैसे नहीं हैं ऑपरेशन और दवाइयों के लिए। बेड के लिए भी बकाया पड़ गया है। आज या अगले दिन अस्पताल छोड़ना पड़ेगा। रामेश्वरजी ने डॉक्टर को बुलवाया और हिदायत दी कि मरीज के खर्च की चिन्ता न की जाय। रुपयों की व्यवस्था हो जायगी। नन्दूबाबू के आने पर उन्हें निर्देश दिया। उसी दिन शाम तक व्यवस्था हो गई।

मंगलवार की शाम थी। अगले दिन उन्हें डायलेसिस पर जाना था। रात का भोजन आया। कहने लगे, "आज भूख जगी है। तकिये के सहारे बैठा दो। ऐसा लगता है कि इलाज से काफी फायदा है। अब जल्द ही रोग के बोझ से मुक्त हो जाऊँगा।" और, सचमुच उन्होंने भोजन अच्छी तरह किया। माताजी, नर्स और मैं, विस्मित! भोजन के बाद उन्होंने मुझसे कहा, "मेरे पास आकर बैठ जाओ, अभी नींद नहीं आ रही है।" धीरे-धीरे उन्होंने कहा, "मैं भूल गया था, तुम्हें कहना। जाना सबको है, मुझे भी। मेरे जाने के बाद मेरी आँखे दान करवा देना। मैंने नन्दू से कह रखा है। शायद भावुकता में भूल जाए। याद रखना, भूलना नहीं।"

अगले दिन प्रसन्न थे। सुबह ६ बजे कहने लगे, "अब चलने का समय हो गया। डायलेसिस है।" कक्ष में ले जाए गए। डायलेसिस पूरी हो नहीं पाई कि तबीयत खराब हो गई। रक्तचाप गिर गया, संज्ञाहीन हो गए। डॉक्टर उन्हें एमरजेन्सी में ले आए। उपचार हुआ, होश पूरी तरह था कि नहीं, कह नहीं सकता। आवाज देने पर आँखें अधखुली करते, बस। डॉक्टरों ने कहा, लन्दन से दवा मँगानी पड़ेगी, तुरन्त। लन्दन से दवा दूसरे दिन ही सुबह आ गई। हममें से किसी-को मिलने की इजाजत नहीं थी। केवल बाहर से शीशे के कक्ष में देख सकते थे। सुधार की उम्मीद में पूरा दिन निकल गया। डॉक्टरों ने कोई कसर रखी नहीं।

दूसरे दिन सुबह डॉक्टर से पूछने पर उसने बताया। कोशिशें बेकाम रहीं। हम स्तब्ध रह गए। अन्य कक्ष में लाए गए। डॉक्टरों ने उनके पास जाने की छूट दे दी। रामेश्वरजी की संज्ञा तेजी से क्षीण हो रही थी। मैंने गीता सुनानी शुरू की। ग्यारहवाँ अध्याय सुना रहा था- तस्मात् प्रणम्य प्राणिधाय...... तत्क्षामये त्वामहप्रमेयम्...... । देखा, शान्त भाव, सर बाईं तरफ़ झुकने लगा। मदनलालजी (रामेश्वरजी की छोटे भाई) की सुपुत्री ने तुलसी, गंगा-जल मुख में दिया।

रामेश्वरजी की बात सही निकली—"अब चलने का समय हो गया।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्वयात्रा के संस्मरण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भूमिका

मित्रवर श्री रामेश्वर टांटिया द्वारा प्रस्तुत 'विश्वयात्रा के संस्मरण' के अंश कुछ तो मैंने सरिता में प्रकाशित लेखमाला में पढ़ लिए थे, बाकी कलकत्ता प्रवास के समय पढने को मिले।

यात्रा मनुष्य का सहज गुण है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। मानव सृष्टि के बाद अनेक जातियां एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर आती जाती रही हैं। नृतत्वशास्त्रियों द्वारा रक्त सम्मिश्रण, एक महाद्वीप के वासियों से दूसरे महाद्वीप के वासियों के साथ होना, सिद्ध हो चुका है; और इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

इस अंतरिक्ष यात्रा के युग की ही बात नहीं, मनुष्य के आदि युग में भी जब यातायात के साधन नहीं के बराबर थें, आदमी पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक अपनी इसी प्रवृति से प्रेरित होकर पहुंच जाता था। स्थल मार्ग यानी पैदल रास्ते ही नहीं, अपितु समुद्र की उत्ताल तरंगों से जूझते हुए भी मनुष्य की घुमक्कड़ी प्रवृति ने ही बृहत भूखंडो से सुदूर द्वीपों तक मानव आवास बनाया। इस कृति में प्रशांत महासागर स्थित हवाई द्वीप समूह, ईष्टर द्वीप, भारतीय महासागर स्थित मालाग्यासी (म्याडागास्कर) आकर्षक उदाहरण हैं। हवाई द्वीपसमूह से निकटतम आबादी दो हजार मील से भी अधिक है। इसी प्रकार मालाग्यासी द्वीप, अफ्रीका महाद्वीप के निकट होने के वावजूद उसके आदिवासियों का रक्त एशियाई ही नहीं भारतीय आर्यों का है। साथ ही सभ्यता भी मिलती जुलती है, यहां तक कि नाम भी। संयुक्त राष्ट्रसंघ में मालाग्यासी के जो स्थायी प्रतिनिधि हैं, उनका पारिवारिक नाम रक्तमाला (रोकोतोमाला) है। गोधन ही उनकी समृधि का चिन्ह है, जैसा किसी युग में आर्यवर्त में प्रचलन था। ईष्टर द्वीप में प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक की लिपि को आज तक पढ़ा नहीं जा सका है, और उस द्वीप में वृहत पाषाण मूर्तियों की सृष्टि और खड़ा किया जाना, अभी कुछ दिन पहले तक आज के वैज्ञानिक युग में भी आश्चर्य का विषय रहा है। मेरी अपनी राय में मध्य तथा दक्षिण अमेरिका की प्रसिद्ध सभ्यताएं मय, इंका तथा आज तक के रहस्य की कुंजी यही ईष्टर द्वीप है, जिसके मूल निवासी अपने आप को पश्चिम यानी एशिया की ओर से आया हुआ बताते हैं।

उत्तरी अमेरिका के आदिवासी अमरीकी भारतीय भी (जिन्हें पहले रेड इंडियन्स कहा जाता था) मूलतः मंगोल हैं, और मंगोलों का स्थान एशिया ही है। नेपाल में वृहत हिमालय श्रेणी के उस पार एक प्रदेश है मुश्तांग, जहां नेपाल के एक करद उपराजा हुआ करते थे। वह जब काठमांडू आए थे तो एक अमरीकी नागरिक भी काठमांडू में था दोनों की मुलाकात हो गई। अमरीकी नागरिक ने उक्त राजा से कहा कि उसके अपने देश अमरीका में एक प्राचीन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घोड़े की नस्ल है जिसे मस्तांग (Mustang) कहा जाता है, तो इस पर राजा ने बिना किसी आश्चर्य के उन्हें बताया कि उनके अपने प्रदेश के घोड़े भी मशहूर हैं और उनकी अपनी लोकश्रुति परंपरा में यह उपाख्यान है कि उनके पूर्वजों के कुछ भाईबंद समाज से बहिष्कृत होने पर अपने कुछ घोड़ों सहित उत्तरपूर्व की ओर महाचीन से भी आगे निकल गए थे। उत्तरी अमेरिका के भारतीयों की उत्पत्ति के संबंध में प्रबल धारणा है कि वे बेरिंग के रास्ते एशिया से अमरीका में उस समय प्रविष्ट हुए जब यह जलडमरूमध्य कठिन हिम आवरण से जमा हुआ था।

इसी प्रकार यूरोपीय जातियां भी पूरब की ओर आईं। पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान पुर्तगाली, डच, फ्रेंच तथा आंग्ल जातियों का एशिया और अफ्रीका में, उपर्युक्त देश सहित स्पेन वासियों द्वारा मध्य तथा दक्षिण अमेरिका तथा उत्तरी अमेरिका के प्रदेशों में साम्राज्य और उपनिवेश की स्थापना की बातें तो मानव इतिहास में कल की सी बात है। लेकिन प्राग ऐतिहासिक काल में भी ग्रीक, रोमन, पार्थियन तथा अन्य जातियां पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ी थीं, और हूण, भयांडाल बर्बर, मूर वगैरह पूरब से पश्चिम की ओर गये थे। आज भी संसार में बहुत सी भ्रमणशील जातियां हैं, जो एक स्थान पर टिकी नहीं रहतीं। यूरोप के जिप्सी, भारतीय उपमहादेश के बनजारे, नट्ट, क्रोड़, गूजर वगैरह इसी के उदाहरण हैं।

घुमक्कड़ी प्रवृत्ति मनुष्य की आदि प्रवृत्ति है। जिज्ञासा ही मानवीय सभ्यता की प्रेरक शक्ति है। और,देशांतर ज्ञान की खोज में सामूहिक रूप से जातियों और कबीलों का एक देश से दूसरे देशों में आवागमन तो होता ही था, इस के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी मनुष्य भ्रमण और यात्रा की ओर प्रारंभ से ही प्रवृत होता रहा है। एशिया में हमारे भ्रमणशील आर्य ऋषि, बौद्धभिक्षु, चीन के ह्वेनसांग, फाह्यान, जापान के कावागुची, यूरोप के मार्कोपोलो, कोलंबस, कुक वगैरह भी इसी प्रवृत्ति की कड़ी है।

हमारी आर्य या हिंदू परंपरा में तीर्थाटन का, जो यात्रा का ही दूसरा प्रर्याय है, प्रबल धार्मिक महत्व है। हमारे तीर्थ भी आर्यावर्त के चारों खूंट बिखरे हैं। प्रसिद्ध चार धामों को ही लें, तो वे हिंदुत्व की चार सीमा रेखाओं को निर्दिष्ट करते हैं। हिमाच्छादित उत्तरी छोर पर बदरीनाथ, कन्याकुमारी अंतरीप का पास दक्षिणी सागर तट पर रामेश्वरम, पूर्वीय समुद्र तट पर जगन्नाथपुरी तथा पश्चिमी सागर तट पर द्वारिकाधाम। इसी प्रकार द्वादश ज्योतिर्लिगों का भी वितरण है। शक्तिपीठों के स्थान भी इसी तरह वितरित हैं। इन स्थानों के भ्रमण और दर्शन कर के प्रत्येक हिंदू अपने आप को धन्य समझता है।

आज मनुष्य में जो वाह्य विषमता है उस के मूल में आर्थिक कारण तो हैं ही, पर साथ ही आपसी आवागमन का अभाव और एक दूसरी जाति के सामाजिक और व्यावहारिक रीतिरिवाजों का अज्ञान भी है। मैंने थोड़ा बहुत जो संसार के विभिन्न देशों का भ्रमण किया है, उससे मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सारे संसार की आधारभूत परंपराएं एक हैं। सही है. जलवायु जनित वेशभूषा और आहारबिहार, राजनीति तथा स्वार्थरूपी क्षार ने मानव आत्मा की अग्नि को ढक रखा है। यदि उस राख को फूँक कर उड़ा दिया जाए तो आत्मा की वह आग सभी जगह समान रूप से जलती मिलेगी, और आत्मा का यह स्पर्श पारस्परिक मेलजोल और एकदूसरे की भावनाओं को समझने के प्रयास से ही स्पंदित हो सकता है।

अब रही सभ्यता की बात, कौन सी विद्यमान सभ्यता ऊंची और विकसित रही है? इतिहास बताता है कि इसके चक्र में सभ्यताएं बनती और मिटती रही हैं। मिस्र के काहिरा स्थित संग्रहालय को देखने के बाद पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिकतम आभूषण, अलंकारों तथा परिवेश में कोई नवीनता नहीं लगती। अभी-अभी कुछ ही दिन पूर्व एक पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक ने शुक्र ग्रह में मानव आवास होने की धारणा व्यक्त की है उसको सिंधु सभ्यता (मोहनजोदरो) के मानव का उपनिवेश होना बताया है। मैं किसी पूर्वाग्रह के कारण नहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपितु सहज ज्ञान के आधार पर यह कहना चाहूँगा कि हमारी अपनी संस्कृति के पुरातन वाङ्मय का वैज्ञानिक विवेचन के साथ अध्ययन और अनुसंधान होना आवश्यक है। अभी तक इस काम को पाश्चात्य जगत के विद्वान ही करते आए थे, जो हमारी मान्यताओं और मूल्यमान से अपरिचित थे। इतना ही नहीं, वे हमारे नाम और शब्दों का सही उच्चारण या हिज्जे भी नहीं कर सकते थे। अतः हमारी अपनी ही संस्कृति का ज्ञान पाश्चात्य जगत की खोज में बासी हो चुका है और उस पर भी उधार लिया हुआ है। आज इसी लिए और आवश्यक है कि हम अपने ही पूर्वजों के ज्ञान का नए संदर्भ और नए प्रकरणों में अध्ययन और अनुसंधान करें।

संसार आज सिमटता जा रहा है। यात्रा के नए साधनों और उपकरणों द्वारा जो यात्रा कल असंभव तथा असाध्य सी लगती थी, आज साध्य हो गई है। स्थल मार्ग द्वारा ही आज बस और मोटरें एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप पहुंचती हैं। जेट वायुयानों की तो बात ही क्या! मेरे अपने घर विराटनगर से धनकुटा पहुँचने के लिए पैदल तीन दिन लग जाते हैं, जब कि फासला लगभग ५४ मील का ही है, लेकिन विराटनगर से न्यूयार्क दूसरे दिन चार बजे अपराह्न में ही पहुंच गया। दिशा, दिन की रोशनी और जेट यान ने मिलकर यह संभव किया।

अब तो कुछ ही दिनों में ध्वनि की गति से तीव्रतर यान साधारण सवारी का रूप लेंगे, फिर तो समय का अंतर और भी कम होता चला जाएगा। कालांतर में जितने बजे चलेंगे उतने ही बजे दूसरी जगह पहुंच सकेंगे। अलबत्ता खर्चे तो ज्यादा लगेंगे ही, पर विशेष यानों का, जो तीन चार सौ यात्रियों तक वहन कर सकेंगे, अभी परीक्षण काल चल रहा है, जो कुछ ही दिनों में तिजारती रूप ले लेगा, तो खर्चे भी अपेक्षाकृत कम पड़ने लगेंगे। पर साहसी घुमक्कड़ पदयात्रा, साइकिल अथवा 'रुको और चलो' (हिच हाइक) पद्धति से काम चला लेते हैं। आज भारत और नेपाल में जो हिप्पियों तथा बीटनिकों की बाढ़ सी आ चली है वे ज्यादातर अंतिम पद्धति ही व्यवहार में लाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की शैली मनोरंजक हैं तथा भाषा परिमार्जित। मेरी मित्रता श्री रामेश्वर टांटिया से बहुत पुरानी है, जब न मुझे ही लोग जानते थे और न श्री टांटिया ही प्रसिद्ध थे। किंतु इतने दिनों के संबंध के बावजूद मैं कभी यह भांप नहीं पाया था कि व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने वाले मेरे मित्र के अन्दर एक अच्छा साहित्य सृजक भी विराजता है। मेरे अज्ञान का निरावरण तो संकलित लेखमाला ने कर दिया है। जो लोग देशविदेश घूम नहीं पाए, वे घर बैठे ही पर्यटन का आनंद उठा पाएंगे, यही इस पुस्तक की देन है, और यह देन कम महत्व की नहीं। हिंदी साहित्य में पर्यटन संबंधी कम ही ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और उनमें यह अर्वाचीनतम ही नहीं प्रत्युत साहित्यिक रूप से भी उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मातृकाप्रसाद कोइराला

'मानीड़'
विराटनगर, मोरंग (नेपाल)
विजयादशमी, सं. २०२४ वि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपनी ओर से

बचपन में जब मैं हाई स्कूल में था, पाठ्य पुस्तकों में देशविदेश संबंधी वर्णन पढ़ने को मिला। विदेशों में लोगो की भाषा, रीतिनीति, रहनसहन आदि के बारे में जानने की रुचि होती थी। चाव बढ़ता गया और मैं यात्रा संबंधी जो भी पुस्तकें मिलीं, पढ़ने लगा। ह्वेनसांग और इब्नबतूता की यात्राएं मुझे बहुत अच्छी लगीं। ऐसा लगता, मैं भी उन के साथसाथ ही भ्रमण कर रहा हूँ। इस के बाद स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक और राहुलजी की यात्रा पुस्तकें पढ़ने को मिलीं, दुनिया को समझने-परखने का एक नया दृष्टिकोण आया। स्वदेश तथा विदेश के तुलनात्मक विवेचन की प्रेरणा भी मिलीं। साथ ही स्वदेश के अलावा दूसरे देशों की यात्रा की प्रबल इच्छा होने लगी।

जिज्ञासा मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। जानने की प्यास बुझती नहीं। जब बुझ जाती है तो मनुष्य जड़वत् हो जाता है। उस की चेष्टाएं और प्रवृत्तियां कूपमंडूकी हो जाती है। भारतीय संस्कृति में इसी कारण जिज्ञासा और जिज्ञासु दोनों को महत्व दिया गया है। ज्ञान की प्राप्ति के लिए यात्रा पर अपेक्षित बल भी दिया गया है।

भारतीय जीवन की पूर्णता वानप्रस्थ और संन्यास से मानी जाती थी। इन्हीं दोनों आश्रमों में तीर्थाटन द्वारा सत्य को खोजने और पहचानने का निर्देश था। इसीलिए हमारे मुख्य तीर्थ—बदरीनाथ, रामेश्वरम, द्वारिका और जगन्नाथपुरी—देश के चार कोनों पर थे इन तीर्थों में जाना हमारे सामाजिक एवं राष्ट्रीय धर्म का एक अंग माना गया है, यहां तक मान्यता रही है कि बिना चारों धामों की यात्रा के मनुष्य को मोक्ष नहीं मिलता।

भ्रमण और देशाटन के प्रति प्रेम, प्रेरणा और रुचि के फलस्वरूप संसार की भिन्नभिन्न संस्कृति और सभ्यता की विभिन्न सामग्री को मथ कर सांस्कृतिक नवनीत बनाने का जितना व्यापक प्रयोग हमारे इतिहास में मिलता है उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं।

आज से ढाई हजार वर्ष पहले जब न तो यातायात के सुगम साधन ही थे और न सुरक्षा की उचित व्यवस्था ही थी, उस समय भी सम्राट अशोक की पुत्री सुदूर देशों तक में गई। आज भी वही परंपरा है, भले ही क्षीण और अन्य रूप में हो।

हजारों वर्ष की दासता के फलस्वरूप भारत को इस समय किसी बात की आवश्यकता है तो वह यह है कि स्वयं को जीवित रखने के लिए इस पृथ्वी पर अपने आपको प्रतिष्ठित करना है। यह तभी संभव है जब अन्य राष्ट्रों का उत्कर्ष, उस के कारण और गतिविधियों को समझे और इसे कसौटी मान कर अपने कदम आगे बढ़ाए ताकि हमारी भूमि और हमारी संस्कृति परिमार्जित हो और उस में नया निखार आए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहली बार सन् १९५० में पश्चिमी देशों में जाने का अवसर मिला । इस यात्रा का उद्देश्य था केवल पर्यटन । अतएव जिन देशों में गया उन के दर्शनीय स्थानों को ही विशेष रूप से देखा । प्रस्तुत पुस्तक में पहले १३ लेख उसी समय के हैं । अपनी यात्रा में मैंने जो कुछ देखा और समझा उन की टिप्पणियां लिखता रहा हूं । बाद में लेख के रूप में इन का प्रकाशन सरिता में हुआ । पुस्तक के लिए इन्हें नए सिरे से नहीं लिखा गया । हां, यत्किंचित अपेक्षित परिवर्तन अवश्य करना पड़ा है ।

सन् १९६१ में मेरी दूसरी यात्रा रूस की थी । श्री घनश्यामदास बिड़ला को सोवियत सरकार द्वारा निमंत्रण मिला । अन्य कतिपय मित्रों के अतिरिक्त श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका भी इस यात्रा में हमारे साथ थे । देखनेघूमने की तथा अन्य सुविधाएं थी अवश्य, किंतु साम्यवादी देशों की प्रणाली के अनुसार हमारी गतिविधि पर कुछ नियंत्रण सा था । पर्यटन अथवा यात्रा में ऐसी व्यवस्था से उत्साह का कुंठित हो जाना स्वाभाविक हैं, क्योंकि जनजीवन से सीधा और मुक्त संपर्क नहीं हो पाता, इसलिए आनंद की उपलब्धि पूरे तौर पर नहीं होती । चित्रशाला में सजाए गए प्राकृतिक दृश्यों के सुंदरतम चित्रों को देख कर उस नैसर्गिक आनंद की अनुभूति नहीं होती जो उन्मुक्त गगन के नीचे झरने के किनारे उस की हलकी फुहारों और मिट्टी की सोंधी महक से मिलती है ।

सन् १९६४ में श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और श्री रामकुमार भुवालका के साथ तीसरी यात्रा का मौका मिला । इस बार हम नई दुनिया देखने निकले । भारत सरकार ने उस वर्ष एक योजना बनाई थी कि संसद सदस्य साठ दिनों तक किसी विशेष विषय के अध्ययन के लिए विदेश भ्रमण कर सकते हैं । खर्च निजी रहेगा, विदेशी मुद्रा की स्वीकृति सरकार देगी । हम ने यात्रा के पूर्व अपना कार्य-क्रम बना लिया और अपने विदेश मंत्रालय को निर्दिष्ट स्थानों के साथ प्रोग्राम भी दे दिया । तदनुसार मंत्रालय ने विदेशों में अपने दूतावासों को हमारी उचित सहायता और व्यवस्था के लिए पूर्व निर्देश भेज दिया । इससे बड़ी सुविधा रही । हम जहां भी गए हमें मार्गदर्शन मिला, अन्यथा इतनी अल्प अवधि में हम जिन देशों में गए उनकी आर्थिक व्यवस्था और औद्योगिक विकास की जानकरी प्राप्त करना संभव न था ।

इस तीसरी यात्रा में हमें कुल ५२ दिन लगे । हम ने परिक्रमा प्रारंभ की पूर्व से यानी बरमा, सिंगापुर, हांगकांग होते हुए जापान पहुंचे और वहां से होनोलूलू होते हुए अमरीका । स्वदेश लौटने के लिए अमरीका से हम पूर्व की ओर उड़े और यूरोप होते हुए लेबनान गए । यहां से मैं पाकिस्तान चला गया और मेरे दोनों साथी सीधे भारत आए । अमरीका में हम ने देखा, उस का इतिहास अभी बन रहा है, एक नई संस्कृति पनप रही है जो पुरानी दुनिया एशिया और यूरोप से बहुत अंशों में भिन्न है । यूरोप में इस बार देखा, युद्धजर्जरित राष्ट्र अवसाद और अनिश्चय के अंधकार से उठ खड़े हुए हैं । यह भी देखा कि उन की संस्कृति ने जहां नई दुनिया को कभी प्रभावित किया था, आज उन पर उलटा अमरीका का प्रभाव पड़ रहा है । इन यात्रा लेखों में संस्कृति और इतिहास के साथ-साथ आर्थिक विषयों की भी चर्चा है ।

पर्यटन अथवा देशाटन समय सापेक्ष है । विश्व के बड़े-बड़े शहरों को अच्छी तरह देख पाना और वहां के जनजीवन की गतिविधियों से पूर्ण परिचित होना, थोड़े से समय में संभव नहीं । ऐसी स्थिति में यात्रा से पहले, लक्ष्य, उद्देश्य और स्थान निश्चित कर लेने से समय और पैसे—दोनों की बचत होती है ।

देशाटन में रुचि रखने वाले मेरे मित्र अकसर विदेशों के यात्रा संबंधी संभावित खर्च के बारे में मुझसे पूछते हैं । मेरा अनुभव है, व्यय की न तो निर्धारित सीमा है और न कोई मापदंड । यह तो संपूर्ण रूप से अपने मन और साधन पर निर्भर करता है । अतएव मेरी राय में मध्यम वर्ग मार्ग ही सबसे अच्छा है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विदेशों में होटलों के चार्जों में बहुत अन्तर है। डीलक्स होटलों में दैनिक १०० से ४०० रुपए तक तो केवल रहने का ही चार्ज है, भोजन और नाश्ते के खर्च अलग। हमारे देश की तरह वहाँ धर्मशालाएं नहीं हैं इसलिए आवास की व्यवस्था नितांत आवश्यक है। विदेशों में यदि मध्यम श्रेणी के होटलों में ठहरा जाय और बिना खास जरूरत के टैक्सी की सवारी न की जाय तो कुल मिलाकर औसतन ६० रुपए प्रतिदिन में आसानी से काम चल सकता है। इकानामिक होटल अथवा यूथ होस्टलों में आवास लेने पर दैनिक खर्च में २० रुपये की बचत हो सकती है। वैसे अलग-अलग शहरों में थोड़ा बहुत अन्तर रहता ही है।

यह कोई जरूरी नहीं कि विदेशों में शराब पीनी ही पड़ेगी या आमिष भोजन के वगैरह चल नहीं सकता। निरामिष भोजन प्रायः हर जगह मिलते हैं। थोड़ी सी सावधानी बरतने की जरूरत है, क्योंकि वहां अंडे या चरबी को निरामिष भोजन में ही शामिल कर लेते हैं, वल्कि कहीं-कहीं दूध को सामिष आहार मानते हैं। जो भी हो, बड़े-बड़े शहरों में ऐसे बहुत से रेस्तोरां हैं, जहां केवल निरामिष भोजन मिलता है।

वर्णभेद का जिक्र भी कई मित्रों ने किया है। मेरा ख्याल है कि यह एक स्थानीय समस्या है जो कम होती जा रही है। मैंने भी सुना था कि अमरीका में यह काफी जटिल समस्या है, पर मैं वहां पश्चिम से पूर्व तक जहां कहीं भी गया, रंगभेद के कारण कोई कठिनाई मेरे सामने नहीं आई। हां मैंने यह अवश्य देखा कि नीग्रो और श्वेत अमरीकियों के बीच रंगभेद को लेकर कुछ तनाव सा रहता है, जिसके आर्थिक के सिवा दूसरे अन्य कारण भी हैं जिनका वर्णन मेरे कई लेखों में मिलेगा। पर विदेशी पर्यटकों को इससे कोई असुविधा नहीं होती।

विदेशों की यात्रा पर जाने वाले पर्यटकों का ध्यान एक विशेष बात पर आर्कषित करना चाहूंगा। प्रत्येक भारतीय को ख्याल रहे कि वह विदेशों में अपने देश का सांस्कृतिक दूत अथवा प्रतिनिधि है, एक पर्यटक मात्र नहीं। हमारे देश के प्रति विदेशों में, खास तौर पर अमरीका और यूरोप में, विशेष जिज्ञासा रहती है। इसका कारण यह है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रति इन महादेशों में आकर्षण है। वहां पादरियों द्वारा फैलाए हुए अनेक प्रकार की भ्रांतियां हैं। अतएव, हमें संभावित प्रश्नों के सही उत्तर के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

इसलिए मेरा अनुरोध है कि यात्रा से पूर्व हमें भारतीय धर्म, समाज, राजनीति व अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन कर लेना चाहिए ताकि प्रश्न के उत्तर ऐसे हों जिससे विदेशों में हम अपने देश का सही रूप प्रस्तुत कर सकें। बहुधा बड़प्पन और आधुनिकता के प्रति रुचि और प्रदर्शन के कारण भारतीय यात्री स्वदेश की महिमा और गरिमा को छोटा कर देते हैं। इसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होती।

व्यक्तिगत आचारविचार और व्यवहार का संयत और मधुर रखना नितांत आवश्यक है। पश्चिमी समाज की व्यवस्था हमारे यहां से भिन्न है जरूर, पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम उच्छृंखल हो जाएं अथवा अपनी मर्यादाएं छोड़ बैठें। कई जगह हमें यह सुनकर बड़ी ग्लानि हुई कि भारतीयों ने साधारण शिष्टाचार और मर्यादा की न केवल उपेक्षा की बल्कि अपने आचरण से हमारे देश के स्वरूप को विदेशों में पंकिल कर दिया।

अंगरेजी की साधारण जानकारी से सब जगह काम चल जाता है क्योंकि एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। इस का एक कारण यह है कि, अमरीकी सबसे अधिक घुमक्कड़ हैं और इनकी भाषा अंगरेजी है। लिहाजा, पर्यटन व्यवसाय के प्रसार से अंगरेजी की जानकारी सभी देशों में थोड़ी बहुत जरूरी हो गई है। फिर भी जिस किसी देश में जाएं वहां की शब्दावली की एक छोटी सी पुस्तिका साथ रखने से सुविधा हो जाती है। इसके लिए छोटी-छोटी गाइड बुक्स बड़ी सहायक होती हैं, क्योंकि उनमें उस देश की आवश्यक नियमावली, वहां के दर्शनीय स्थान, होटल, यातायात, भोजन आदि की व्यय संबंधी सूचनाएं तथा साथ ही स्थानीय शब्द एवं प्रयोजनीय वाक्य भी रहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सामान सिर्फ जरूरत का रखें। सफर में जितनी चीजे कम होंगी उतनी ही सुविधा रहेगी। विदेशों में,खासतौर पर अमरीका और यूरोप में पोर्टर (भारवाही) सब जगह नहीं मिलते, यदि मिलें भी तो उनकी मजदूरी बहुत ज्यादा है। हमने देखा कि वृद्धाएं तक अपना सामान स्वयं ले जाती हैं।

पासपोर्ट और वीसा पर्यटक को बहुत सावधानी से रखना चाहिए, इसके बिना बहुत बड़ी दिक्कत आ जाती है। टामस कुक, 'अमेरिकन एक्सप्रेस' और भारतीय बैंकों के ट्रेवलर्स चैक नगदी रकम के एवज में साथ रखने चाहिए। ऐसे चेकों के चोरी जाने का भय नहीं रहता। हर शहर में ये भुनाए जा सकते हैं इसलिए स्थानीय मुद्रा आसानी से मिल जाती है।

ठग और चोर उचक्के यूरोप को छोड़ कर सभी देशों में हैं। इनसे सावधान रहने की अत्यंत आवश्यकता है। हलके दर्जे के नाइट क्लब, रेस्तोरां और बार में स्त्रियों के रोमांस की ओट में ये शिकार खेलते हैं। तरह-तरह के जुए और शराब की उत्तेजना में मानसिक संतुलन बिगाड़ कर जाल में फंसा लेना इनके लिए साधारण बात है।

इन लेखों के प्रकाशन के साथ समय-समय पर मुझे पाठकों के पत्र मिलते रहें हैं। इन में आलोचनाएं रहीं हैं और सुझाव भी। अधिकांश पाठकों ने प्रसंशा के पत्र लिखे हैं, किन्तु इन्हीं में कइयों ने उलाहना भी दिया है कि साम्यवाद के प्रति मैंने अनुदार दृष्टिकोण रखा है। वस्तुतः बात ऐसी है नहीं।

साम्यवाद का संबंध मानव समाज की विकसित सभ्यता और संस्कृति से रहा है, युगों से। समय-समय पर संसार की महान विभूतियों ने इस भावना का प्रचार किया है। इस की उपलब्धि के लिए जनसमाज को अनुप्राणित किया है। वेद और उपनिषदों का उल्लेख इस संबंध में हो सकता है अतिरंजित माना जाए। फिर भी, यह तो सभी स्वीकार करेंगें कि बुद्ध, मूसा, ईसा, मुहम्मद, नानक, विवेकानन्द और विनोबा ने अपरिग्रह और समता का ही प्रतिपादन किया है। पिछली शताब्दी के अंतिम चरण में, यूरोप में औद्योगीकरण की कल्पनातीत प्रगति के साथ मानव समाज का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो उठा। पार्थिव सुख और साधन की उपलब्धि को जीवन का लक्ष्य माना जाने लगा। फलतः भोग प्रधान संस्कृति त्याग की भावना पर छा गई। स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ी और शोषण एक साधन बन गया। संघर्ष होना स्वाभाविक था। इसी परिपेक्ष्यमें साम्यवाद का प्रतिपादन कार्ल-मार्क्स ने जिस रूप में किया है, वह सर्वथा नवीन ही कहा जाएगा।

मार्क्स ने साम्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए जिस सामाजिक व्यवस्था को निदान माना है, उस में सहिष्णुता के स्थान पर बल प्रयोग और संघर्ष को प्रधानता दी गई है। प्राचीन मान्यता रही है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का शोधन करे और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के तत्व को समझे, जब कि मार्क्स के नए विधान के अनुसार साम्यवाद की सिद्धि के लिए व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं। यह नई विचारधारा, साम्यवाद को बलात् समाज और देश पर लादना आवश्यक मानती है। इसी को मार्क्सवादी 'क्रांति' की संज्ञा देते हैं। इतिहास बताएगा, कौन सा मार्ग सही है साम्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए—नया अथवा पुराना।

अमरिका और रूस—दोनों ही देशों में जाने का सुयोग मुझे मिला। भारतीय दूतावासों के सहयोग से, वहां के विशेष अर्थशास्त्रियों से भी विचारविमर्श का अवसर मिला। इन दोनों देशों में व्यक्ति और समाज का जैसा रूप मेरे सामने आया, उसे मैंने अविकल प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। हो सकता है, मेरे मानस की प्रतिक्रिया पाठकों को प्रत्यक्ष या परोक्ष आलोचना सी लगे, इसे मैं अस्वीकार नहीं करता।

मैं साहित्यिक नहीं हूं, हां साहित्यानुरागी अवश्य हूं। इस युग के शीर्ष साहित्यकारों के निकट रहने का सौभाग्य रहा है, इसी कारण, अपने विचारों को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा मिली है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मेरा यह प्रयास कैसा बन पाया है, यह पाठकवर्ग की सम्मति पर निर्भर करता है। इतना भर कहना चाहूंगा कि इन लेखों के लिखने में काफी परिश्रम करना पड़ा है। टिप्पणियों को तरतीब से जोड़ कर लेख तैयार करने में कभी-कभी तो पांच-सात दिन तक लगे। फिर, इन्हें हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार एवं विद्वान श्री मैथिलीशरण गुप्त, डाक्टर नगेंद्र, श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि को दिखाता रहा और उनसे परामर्श भी लेता रहा। देश के विशिष्ट नेता, संसद सदस्य श्री गंगाशरण, सरिता के संपादक श्री विश्वनाथ और श्री बालकृष्ण गर्ग के प्रति यदि आभार प्रकट करता हूं तो यह एक औपचारिकता का निर्वाह मात्र होगा, क्योंकि ये मेरे अनन्य मित्रों में हैं। मगर यह भी सही है कि इन के प्रोत्साहन के बिना इतने लेख शायद ही लिख पाता। अन्य कार्यों में व्यस्त रहने पर भी मुझे इनके तकाजे के सामने झुकना ही पड़ता था।

देश में सरिता का एक बड़ा पाठक वर्ग है, विशेषतः शिक्षित महिलाओं में। इन्होंने भी मेरा उत्साह बढ़ाया है।

जहां तक बन पाया है, विवरण और आंकड़े सही रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा रही है, फिर भी संभव है कि गलतियां रह गई हों। इसके लिए आपके सुझावों का उपयोग अगले संस्करण में करूंगा।

जनभारती के अक्षय और विशाल कोष में पर्यटन साहित्य का यह अर्घ्य यदि स्थान पा सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

रामेश्वर टांटिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चीनी कम्युनिज्म के चक्रव्यूह में
बर्मा

बात कुछ अजीब सी है, पर है सच। जो जहाँ रहता है, वहाँ की या पासपड़ोस की चीजों के लिए उसमें आकर्षण कम रहता है। मुझे दिल्ली में रहते दस वर्ष हो गए। मेरे यहाँ मेहमान आते हैं, कुतुबमीनार, लालकिला, बुद्ध मंदिर, हुमायूं का मकबरा, संसदभवन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थलों को दोतीन दिनों में देख लेते हैं, मुझ से इनके बारे में बातचीत करते हैं। सब तरह के साधन मेरे पास हैं, पर मैं अभी तक दिल्ली की ऐतिहासिक इमारतों को नहीं देख पाया हूं। मेरे मित्र और मेहमानों को सहसा विश्वास नहीं होता, मगर बात सच है। इस की वजह है, मैं हमेशा सोचता रहा कि यहीं तो हूं, कभी देख लूंगा। दो बार विदेशों का चक्कर लगा चुका हूं। सुदूर उत्तरी ध्रुवांचल में मध्यरात्रि का सूर्य देखने नारविक चला गया, स्विट्जरलैण्ड में आल्प्स की हिमानी शैल मालाओं पर चढ़ आया, पर बर्मा अभी तक छूटा हुआ था।

मगर इसका यह अर्थ नहीं कि बर्मा देखने की इच्छा नहीं थी। बचपन में इसके बारे में बहुत कुछ सुना करता था। रंगूनी हीरे, बर्मी सोना, बर्मी टीक (सागवान) की बड़ी तारीफ और क़द्र थी। सन १९३७ तक तो वह भारत का ही अंग था। भारतीयों का अबाध आवागमन और व्यापार यहाँ था। हमारे कई सगेसंबंधी यहां स्थायी रूप से रहते थे। स्कूलों में भारत का नक्शा बनाने पर बर्मा भी उसमें रहता था। बचपन में जिस विचार अथवा बात का रेखांकन मानस में हो जाता है, वह सहज में मिटती नहीं। यही वजह है कि आज भी पाकिस्तान, श्रीलंका और बर्मा हमारे लिए राजनीतिक कारणों से विदेश भले ही हो गए हों, पर मन तो अब भी इन्हें स्वदेश का ही अभिन्न अंग समझता है। खैर, वह वक्त भी आया जब सन १९६४ की जुलाई में हमारी विश्व यात्रा का प्रथम चरण बर्मा था।

कलकत्ते से रंगून केवल डेढ़ घंटे की उड़ान है। मानसूनी मौसम के कारण दमदम अड्डे पर हवाई जहाज को रुक जाना पड़ा। मैं एयरपोर्ट में बैठाबैठा ऊब रहा था, सोच रहा था कि विज्ञान का दावा है प्रकृति पर विजय पाने का, लेकिन जरा बादल घिर आए, जोरों की वर्षा हुई, और वायुयान की उड़ान बंद! विज्ञान असहाय! खुद ही अपने उतावलेपन पर हंसी आ गई। एक वह भी समय था जब कलकत्ते और मद्रास से रंगून के लिए जहाजों में बैठकर आठदस दिनों का समुद्रीसफर करते हुए लोग नहीं थकते थे। राजस्थान से हमारे ही पूर्वज रंगून जाया करते थे जिन्हें कुल मिला कर तीन्चार महीने लग जाते थे। ज्यादा नहीं, सिर्फ सौ वर्ष पहले की ही तो बात है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन बहलाने की कोशिश करने लगा। भारत और बर्मा के पारस्परिक संबंध की मधुर स्मृतियों के पन्ने आंखों के सामने से गुजरने लगे। कैसी विडंबना है! मनुष्य राजनीति को जन्म देता है, फिर उसी की पैनी धार में अपनी गरदन नपवा लेता है। ३० वर्षों में इसी राजनीति के कुटिल हास्य ने भारत को खंडित करके बर्मा, पाकिस्तान और श्रीलंका बना दिया। कल तक ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो भारतीय कदम मिला कर संघर्ष करते थे आज वे बर्मी, पाकिस्तानी और सिंहली कहलाते हैं। भारत से उनका असहयोग है और भारतीयों से मनमुटाव!

बैठे-बैठे मन बोझिल हो रहा था। बर्मावासी बहुत से भारतीयों की चिट्ठियां हमें मिली थीं। वे संकट में थे। वर्मा सरकार उनके प्रति उचित न्याय नहीं कर रही थी, यह उनकी शिकायत थी। इसीलिए हमने अपनी यात्रा की पहली मंजिल के रूप में रंगून को चुना था। सूचना मिली, वायुयान छूटने वाला है। मन का भार कम हुआ। तेजी से कदम बढ़ाता हुआ अपनी सीट पर बैठ गया। चंद मिनटों में ही दमदम हवाई अड्डा पीछे छूट गया था। रंगून पहुंच कर देखा, हवाई अड्डे पर बड़ी संख्या में भारतीय हमारे लिए प्रतीक्षा में खड़े हैं। इनमें राजस्थानी स्त्री-पुरुष अधिक थे। रामकुमारजी ने धीरे से कहा, ये लोग कितनी आशा और भरोसा लिए आए हैं। हम यदि इनके लिए कुछ भी कर पाए तो बहुत बड़ी सेवा होगी। मैंने कहा, नई दिल्ली में इन के लिए हमने जो थोड़ा सा प्रयत्न किया उस के लिए इतना स्नेह और विश्वास इन का हम पाएंगे, इसकी आशा मुझे नहीं थी। कुछ दिनों पहले हम ने बर्मा के प्रवासियों के प्रतिनिधियों की स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री शास्त्री और विदेश मंत्री से मुलाकात करा दी थी। इन की कठिनाइयों का समाधान कुछ अंशों तक हो सका था।

रंगून एयर पोर्ट काफी अच्छा और बड़ा है पर दमदम जैसा नहीं, उतना व्यस्त भी नहीं। यहां हम ने लक्ष्य किया कि लोग प्रेम से जरूर मिले लेकिन सब के चेहरे पर भय और उदासी की छाया थी। वे बात करते भी डरते थे, इधरउधर देख लेते थे कि कहीं कोई गुप्तचर तो नहीं है। बर्मा में पिछले दो वर्षों से जनरल नेविन का शासन है, जो कम्युनिज्म के बहुत ही निकट है। बैंक और बीमा व्यवसाय के साथसाथ उद्योगधंधे और दुकानें भी सरकार ने ले ली हैं। बर्मा में सदैव से विदेशी श्रम और पूंजी, उद्योग-धंधे और शिल्प में लगाई जाती रही है। आधुनिक बर्मा को तो भारतीय श्रम और पूंजी का ही अवदान कहना चाहिए।

आम तौर पर बर्मी मस्तमौजी जीव हैं। जिंदगी के उतारचढ़ाव को वहां की औरतें संभालती हैं, मर्द तो मुंह में चुरुट दबाए दीवारों के सहारे ऊंघते हैं। प्रकृति ने देश का शृंगार कर दिया है। धरती अन्नपूर्णा और रत्नगर्भा है। विश्व के चावल निर्यात करने वाले देशों में बर्मा प्रमुख है। यहां के लाल, नीलम, पन्ने और जेड संसार में बेजोड़ हैं। रबर और सागवान के जंगल धन बरसाते हैं। यहां की खानों में पेट्रोल, टीन और चांदी प्रचुर मात्रा में हैं। आबादी करीब दो करोड़ है और क्षेत्रफल २,६१,८०० वर्ग मील।

इतने नैसर्गिक साधन होते हुए भी बर्मा विश्व के इतिहास में कभी स्थान नहीं बना पाया। चिरकाल से ही विदेशियों ने इसे लूटा और शोषित किया। कुछ वहां बस भी गए। बर्मा के रक्त में मंगोलीय धारा प्रमुख है। इन के यहाँ का इतिहास बताता है कि हजारों वर्ष पूर्व तिब्बती, अरुणाचल (नेफा) के मार्ग से यहां के उत्तरी भाग में आ बसे थे। इस के बाद उत्तरी सीमा से चीनी बराबर घुसपैठ करते रहे, आज भी उन का यह क्रम जारी है। इन्हीं कारणों से उत्तरी बर्मा में करेन, काचिन, काया आदि अनेक उपजातियां हैं। भाषा और संस्कार की दृष्टि से इन में भेद हैं। इन में पारस्परिक समन्वय की स्वस्थ प्रक्रिया धीरें-धीरे हो रही थी, पर अब शायद यह सिलसिला कम्युनिस्ट विचारधारा के कारण शिथिल हो जाएगा।

जो भी हो, भारतीयों के पूर्व यहां बसने वाली जातियों ने बर्मा के राष्ट्रीय और आर्थिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विकास के प्रति रुचि नहीं रखी। परन्तु भारतीयों ने ऐसा नहीं किया। वे यहां यह समझ कर नहीं बसे कि वे विदेश में हैं अथवा प्रवासी हैं। इसीलिए भारतीय श्रम और धन की तेज धारा से बर्मा में वैभव का स्रोत फूट पड़ा था। पर, आज वहां पर जो भारतीय हैं, बर्मी उन्हें संदेह की नजर से देखते हैं और उन्हें बर्मा से हटा देना चाहते हैं। अब स्थिति यह है कि बहुत से भारतीय बर्मा से चले गये हैं। कुछ अब भी रह गए हैं, मगर विशेष कारणों से किसी के संबंधी जेलों में हैं, किसी को क्लियरेंस लाइसेंस नहीं दिया जा रहा है। कामधंधा है नहीं। जो कुछ पुराना बचा है, उसे बेच कर खर्च चला रहे हैं। आर्थिक दशा यह है कि बर्मा के रुपए का मूल्य भारतीय अनुपात से तिहाई रह गया है। चीजों के बेचने वाले तो बहुत से हैं पर खरीदने वाले नहीं मिलते।

मैंने अपने एक मित्र को एक रॉलेक्स घड़ी और फ्रांस में बनी गुलाब की रूह खरीदने को कहा। विश्व में सर्वोत्तम आटोमेटिक क्रोनोमीटर रालेक्स घड़ी, जो बहुत ही कम बरती गई थी, मुझे डेढ़ हजार बर्मी रुपयों में यानी भारतीय मुद्रा के चार सौ पचास रुपए में मिली। भारत में इस का मूल्य है बारह सौ से चौदह सौ तक। जिस सज्जन की घड़ी थी वह कभी लाखों की संपत्ति के मालिक थे। मिल, कारखाने, जमीन, मकान सब कुछ था उन का। कम्युनिस्ट शासन की दृष्टि पड़ी और बिना मुआवजे के सब कुछ सरकारी हो गया। अब तो उन के रोजमर्रा के खर्च के लाले पड़े हैं। मैं ने उन से पूछा, "कम्युनिष्ट सरकार ने सभी विदेशियों में समता रखी होगी।" धीरे से उन्होंने कहा, "नहीं, चीनी अधिक भाग्यवान है, अंगरेज व अमरीकी अपनी-अपनी सरकार की मजबूती के कारण निरापद हैं क्योंकि उनके प्रति बर्मी सरकार का जोर जुल्म नहीं चला, लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारा तो खूंटा ही कमजोर निकला।"

चलते वक्त उन्होंने गुलाब की एक औंस रूह मेरे हाथों में दी। मैं इनकार करने लगा तो उन्होंने कहा, "अब हम किस बूते और किन कपड़ों पर इतना कीमती इत्र लगाएंगे। फिर यह भी तो है कि कहीं इस की सुगंध किसी गुप्तचर को लगी तो हमें जेल में ही बंद कर दे।" भारतीय यात्री को बर्मा में ठहरने के लिए सिर्फ २४ घंटे का समय मिलता है। इसलिए इच्छा रहते हुए भी मौलमीन, मांडले, पेगू आदि स्थानों पर हम नहीं जा सके और सरसरी तौर पर केवल रंगून ही देख पाए। रंगून बर्मा की राजधानी है इसलिए सरकारी दफ्तर और विदेशी दूतावास यहीं हैं। बंदरगाह होने के नाते यह आयातनिर्यात और उद्योगव्यापार का केंद्र है। आबादी है इस की लगभग ८,००,०००। मकान और सड़कें व मार्ग बहुत कुछ हमारे मद्रास शहर से मिलते-जुलते हैं।

जुलाई का महीना था, गरमी कलकत्ते जैसी ही लग रही थी। दर्शनीय स्थान बहुत से थे पर समय की कमी के कारण सब देखना संभव न था। इस के अलावा यहां एक दिन ठहरने का हमारा उद्देश्य भारतीयों की समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन और उन्हें सांत्वना देना था। शहर घूमने के कार्यक्रम में सब से पहले हम श्वेडागन पगोडा (सुवर्ण मंदिर) देखने गए। एक पहाड़ी पर यह बुद्ध मंदिर लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बनाया गया था। समय-समय पर इस में परिवर्तन होते रहे हैं। कई राजाओं ने इस के विभिन्न अंशों को बनवाया है। मंदिर में भगवान बुद्ध के कुछ अवशेष सुरक्षित हैं। इसलिए विश्व के कोने-कोने से बौद्ध इन के दर्शन के लिए आते हैं। मंदिर के बाहर सैकड़ों बर्मी लड़कियां नाना प्रकार के फूल और पुष्प मालाएं पूजन के लिए बेच रही थीं। हम ने भी तथागत के पूजन के लिए फूल खरीदे।

मंदिर का प्रांगण विस्तृत और विशाल है जिस में हजारों व्यक्ति एक साथ बैठ कर पूजन कर सकते हैं। शिखर ३२५ फुट ऊंचा है, जो काफी दूर से दिखाई देने लगता है। खिलती हुई धूप में मंदिर के शिखर का सोना चमक रहा था। हमारे यहां अमृतसर के स्वर्ण मंदिर और काशी के विश्वनाथ मंदिर में भी सोने के कलश और शिखर हैं, लेकिन श्वेडागन के बुद्ध मंदिर से उन का कोई मुकाबला नहीं है। यहां के सोने की कीमत करोड़ों रुपयों की है। यह भी सुनने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में आया कि सैकड़ों टन चांदी इस के स्तंभों के नीचे है। मंदिर की कारीगरी देखता जा रहा था। मेरे एक राजस्थानी मित्र बताते जा रहे थे कि मंदिर के प्रति लोगों में इतनी श्रद्धा है कि यहां कभी चोरी या डकैती नहीं होती करेनी लूटेरों ने इसे कभी नहीं लूटा और न जापानी सैनिकों ने अपने तीन वर्ष के शासन में कभी इस के सोने-चांदी या रत्नराशि पर नजर डाली, बल्कि वे यहां आकर श्रद्धानत होकर पूजन किया करते थे।

मैं ने कहा, "अब तो कम्युनिस्ट सरकार है। चीन ने गिरजों, मसजिदों और मंदिरों को नहीं छोड़ा। कहीं पार्टी के दफ्तर बने तो कहीं होटल। श्वेडागन के इस वैभव का आकर्षण वे कब तक रोक सकेंगे ?" धीरे से उन्होंने मेरी कलाई पर हाथ रख कर चुप रहने का संकेत किया। हम से थोड़ी ही दूर पर एक बर्मी खंभों की नक्काशी देख रहा था या हमारी बातें सुन रहा था, समझ नहीं सका। हमने मंदिर के कक्ष में प्रवेश करते समय देखा कि वह धीरे-धीरे दूसरी ओर चला जा रहा है।

हम तथागत की मूर्ति के सामने थे। विशाल मूर्ति, भव्य आकृति और उस पर छाया सौम्य भाव एक शांत वातावरण की सृष्टि कर रहा था, जिस के परिवेश में मन खो गया। बर्मा आने पर जो कुछ भी देखा और समझा इस से मन बड़ा खिन्न था। पर इस मूर्ति के सामने आते ही चित्त हलका हो गया, अवसाद दूर हो गया। संभवतः हिंदू होने के नाते मेरे संस्कारों के कारण हो लेकिन प्रसिद्ध लेखक नार्मन लेविस ने भी अपनी पुस्तक 'स्वर्ण देश' में स्वीकार किया है कि यहां बुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख जाने पर वह भावविभोर हो गए और आधे घंटे आत्मविस्मृत से रहे; आंखों से आंसुओं की धार बह निकली।

मंदिर में बौद्ध, श्रमण, संन्यासी और भिक्षु काफी संख्या में रहते हैं। अध्ययन और चिंतन ही इन का प्रमुख कार्य है। बर्मा में ईसाई और इसलाम धर्म का भी प्रचारप्रसार है, फिर भी यहां बौद्ध धर्म प्रमुख है। बर्मा का वर्तमान कम्युनिस्ट शासन धर्म और दान के आधार पर जीवन बिताने वालों को भविष्य में कितना प्रश्रय देगा, यह तो समय बताएगा।

पगोडा देखने के बाद हम रामकृष्ण हाल में गए। यहां का पुस्तकालय प्रसिद्ध है। अध्यात्म, दर्शन एवं भारत के संबंध में यहां का संग्रह काफी अच्छा है। एक प्रकार से यह पुस्तकालय प्रवासियों के मिलने का स्थान है। रामकृष्ण मिशन की ओर से बर्मा में बड़ा ठोस काम हुआ है। अब भी जो कुछ हो रहा है, प्रशंसनीय है। लाइब्रेरी देखने के बाद मिशन के स्वामीजी के साथ रामकृष्ण अस्पताल भी देखा। अच्छा बड़ा भवन है, अस्पताल में १२२ शैयाएं हैं। बिना भेदभाव के चिकित्सा व शुश्रूषा की व्यवस्था है। देखा, रोगी प्राय: बर्मी थे।

स्वामीजी ने अपनी कठिनाइयां बताईं कि पहले तो भारत से काफी सहायता आती थी, स्थानीय व्यवसायी और सरकार भी खर्च में मदद पहुंचाती थी, पर अब वे सुविधाएं नहीं रही हैं। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी को बर्मा छोड़ने के लिए कहा जा रहा है। मैं सोचने लगा, सुदूर बंग भूमि में अपनी मांबहन और स्वजनों को छोड़ कर त्यागी और व्रती साधुसंन्यासियों पर भी संदेह रखना क्या कम्युनिस्ट प्रथा है ? समता और बंधुत्व का बुलंद नारा लगाने वाला कम्यूनिज्म, क्या इसी प्रकार मानवता की सेवा करेगा ? अस्पताल देख कर हम भारतीय दूतावास पहुंचे। साथ साथ बर्मी सरकार के अफ़सर भी लगे रहे। हम चाहते हुए भी आवश्यक जानकारी नहीं पा सके।

दोपहर के भोजन का कार्यक्रम कलकत्ते के हमारे मित्र बाबूलाल मुरारका के यहां था। कुछ वर्षों पहले बड़े उत्साह से इन्होंने यहां नाइलोन की एक बड़ी फैक्टरी लगाई थी। अब उसे सरकार ने ले लिया है। मुरारकाजी मैनेजर की हैसियत से सरकारी निर्देशानुसार काम देखते हैं। मुझे जानकारी मिली कि फैक्टरी की उत्पादन क्षमता घट गई है और मुनाफा भी कम हो गया है। भोजन पर रंगून के प्रमुख व्यवसायी भी आमंत्रित थे। भारत की तरह यहाँ भी उद्योगव्यवसाय में राजस्थानी ही आगे बढ़े हुए थे। यहां खास बात देखने में आई कि कृषि को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी उद्योग के रूप में भारतीयों ने संगठित किया है यहां विशेष रूप से राजस्थानियों के हाथ में लकड़ी और चावल की बड़ीबड़ी मिलें थी, कपड़े और गल्ले का व्यवसाय था। पिछले वर्षों में आयातनिर्यात के क्षेत्र में भी इनका अच्छा दखल हो गया था। आज हालत यह है कि सब कुछ बर्मी सरकार ने ले लिया हैं। इन में से कुछ तो जेलों में है और जो बाहर हैं वे आतंकित हैं। मुझे बताया गया कि इनके सामने सब से बड़ी समस्या है, कि ये अगर स्वदेश लौटे भी तो वहाँ करेंगे क्या ? इनकी हजारों की इमारतें हैं, जिन में से बहुत सी सरकार ने ले ली हैं। जो बची है उन पर सरकार का नियंत्रण है, मुआवजा मिलने का तो सवाल ही नहीं उठता। सरकारी कानून है कि संपति बेच नहीं सकते। न जाते बनता है और न छोडते।

मैं ने लक्ष्य किया कि यहां के बहुत से भारतीय इतनी दयनीय अवस्था में होने पर भी बर्मा छोड़ना नहीं चाहते है। बर्मा उन की मातृभूमि बन गई है। भारत उन्होंने कभी देखा तक नहीं। वैधानिक रूप से वहाँ के नागरिक बन भी चुके है। साधारणतः राजस्थानी अपनी संस्कृति और परंपरा नहीं छोड़ते, क्योंकि इस के प्रति इन्हें बड़ा मोह होता हैं। लेकिन यहां देखा कि अन्य भारतीयों की तरह इन में से कइयों ने बर्मी तौरतरीके अपना लिए हैं, भाषा और वेशभूषा भी इनकी यहीं की है, दोचार ने बर्मी औरतों से विवाह कर लिए हैं।

इतने पर भी सरकार का विश्वास इन पर नहीं है। मैं हैरान था कि आखिर बात क्या है ? खासकर भारतीयों से इस विद्वेष का मूल कारण क्या है ? यह निश्चित था कि बर्मा के वाणिज्यउद्योग में भारतीयों का प्रभाव और प्रभुत्व था। सन १९५१ की जनगणना के अनुसार बर्मा की २,००,००,००० की आबादी में लगभग १०,००,००० भारतीय थे, जो इस समय केवल ३,००,००० रह गये हैं जिन में अधिकतर मजदूर हैं। दूसरी तरफ चीनियों की संख्या इन वर्षों में दुगनी-तिगुनी हो गई है। आंध्र, उत्तर प्रदेश और बिहार से मोटी मजदूरी करने के लिए लोग यहां आए। पंजाब के लोग सुदक्ष कारीगर थे और ठेकेदारी करते थे। कुछ व्यापार भी करते थे। राजस्थानी यहां प्रमुख रूप से उद्योगव्यापार के क्षेत्र में थे। बंगाली अधिकतर सरकारी नौकरियों में और वकीलडाक्टर थे। मद्रास के चेट्टियरों की बड़ी संख्या यहां थी, जिन का लेनदेन का कारोबार था।

बर्मी भारतीयों की इज्जत करते थे। बर्मी औरतें तो विशेष रूप से सचेष्ट रहती थीं कि भारतीय उन्हें रख लें या विवाह कर लें, और ऐसा हुआ भी खूब खूल कर। मैंने सड़कों पर घूमते हुए चटगांव के मुसलमानों के साथ सुकुमार बर्मी स्त्रियों को देखा। बर्मा के अराकान प्रदेश में यह चटगांवी मुसलमान भारी संख्या में बस गए और इन से उत्पन्न संतानों की तादाद भी तेजी से बढ़ी। कुछ वर्ष पूर्व इन मुसलमानों ने अराकान को पाकिस्तान में मिला देने की मांग भी उठाई थी। तब बर्मी सरकार की नींद टूटी और तभी से रोकथाम और चौकसी की जाने लगी है।

बर्मी औरतें अपने मर्द का बड़ा खयाल रखती हैं। मर्द कमाता है या नहीं इसकी उन्हें चिंता नहीं, उस का स्वास्थ्य ठीक रहे, यह ज्यादा जरूरी है। खुद बड़ी मेहनत और बच्चों का लालनपालन करते हुए उसे यह शिकायत नहीं होती कि उस की कमाई पर मर्द घर बैठा अफीम, चंडू के नशे में है या गप्पबाजीमें मस्त है। बर्मी रीतिरिवाज में औरतों को तलाक देने की पूरी छूट है। फिर भी बच्चे हो जाने पर वे मातृत्व के कारण जल्दी तलाक नहीं देतीं। ऐसी स्थिति में बर्मी आलसी और निकम्मे हो गए। नशा करना और समय गुजारने के लिए जुआ खेलना उनका धंधा बन गया। इन का फायदा मद्रास के चेट्टियरों ने उठाया। ऊँचे सूद की दर पर उन को रूपया देना, फिर उनकी जमीन और संपत्ति बिकवा देना या हड़प लेना इनके लिए साधारण सी बात थी। बंगाल के लोगों ने भी उन के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। शरत बाबू के उपन्यासों में इस का उल्लेख है। ये बर्मी औरतों से विवाहकर के मौज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उड़ाते थे । बच्चे बढ़ने लगते तो छोड़छाड़ कर चल देते । भारतीयों के ऐसे आचरण की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी, बर्मी लोगों के हृदय में विद्वेष का जग उठना । सन १९३७ में भारत से बर्मा के पृथक होने से पहले इस संबंध में कोई भी आवाज नहीं उठती थी । लेकिन बाद में यह एक जातीय प्रश्न बन गया है और भारतीयों के विरूद्ध भावनामूलक आंदोलन बढ़ता गया । पिछले महायुद्ध के बाद बर्मा के स्वतंत्र होने पर आंदोलन को ज्यादा बल मिला । इसमें विदेशियों का हाथ था, विशेषत: इन वर्षों में चीनियों का ।

चीन में साम्यवादी व्यवस्था कायम होने पर वहां की सरकार नें बर्मा की स्थिति का अच्छा अध्ययन किया जब कि हमारी सरकार ने उदासीनता का रुख अपनाया । चीनियों ने यहां अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए भारतीयों के विरूद्ध आग भड़काई । भारत पंचशील के गीत ही अलापता रहा । भारत को जो काम करना चाहिए था चीन ने किया । उस की स्थिति मजबूत बनी । उन के तैयार माल के लिए बाजार मिला और वहां के निवासियों को रोजगार ।

आज दस लाख चीनी बर्मा में हैं । भारत की तरह पाकिस्तान को भी परेशानी होनी चाहिए थी, पर पाकिस्तान की सरकार सजग रही और उसने चीनियों की नीति का अनुकरण किया । आज उनके प्रति वहां विद्वेष नहीं है, बल्कि उत्तरी बर्मा में वे बड़ी संख्या में बस गये हैं । यह संख्या इतनी तेजी से बढ़ने लगी कि बर्मा सरकार को प्रतिवन्ध लगाना पड़ा । मगर बर्मा का संबंध पाकिस्तान से अच्छा ही रहा, जब कि हमारे साथ उतना अच्छा नहीं कहा जा सकता । इतना सब कुछ होने पर भी भारत सरकार ने सन् १९५९ में बर्मा को तीस करोड़ रुपए का ऋण दिया, यू० एन० ओ० में भी उनके साथ बराबर सुहानुभूति रखी । फिर भी वर्मा सरकार भारतीयों के प्रति अनुचित व्यवहार करने के लिए तैयार है ।

भोजन के उपरांत श्री गोयनका के साथ हम रंगून के अमरीकी अस्पताल को देखने गए । करोड़ों की लागत से इसे बनाया गया है । मैं देख रहा था और सोच रहा था कि यदि वर्तमान कम्युनिष्ट शासन का कुछ आभास भी अमरीका को हो जाता तो शायद वहां की सरकार इसमें इतना धन न लगाती । श्री गोयनका ने बर्मी महिला से शादी की और वेशभूषा भी वह वर्मी ही रखते हैं । मैंने उनसे पूछा, "आप बर्मी हो गए, पर यह तो बताइए कि बर्मी भोजन अपना पाए या नहीं ?" उन्होंने हंसकर कहा, "भोजन के मामले में मैं अब भी भारतीय हूं क्योंकि बर्मी ज्यादातर मांसाहारी होते हैं और चीनियों की तरह मेंढक, सांप और कीड़े भी इनके सुस्वादु व्यंजन हैं ।" श्री गोयनका से मैंने जानना चाहा कि क्या सभी बर्मी भारतीयों से असंतुष्ट हैं या कम्युनिष्ट विचार धारा के ही ? उन्होंने बताया कि भारतीयों के प्रति दुर्भावना का इतना अधिक प्रचार यहां किया गया है कि वह व्यापक हो उठा है, परंतु उनकी धारणा है कि यदि भारतीय सरकार प्रयत्नशील हो तो काफी अंशों में स्थिति सुधर सकती है ।

ऐसी बात नहीं कि सारे के सारे वर्मी भारतीयो से घृणा करते हैं और कम्युनिष्ट शासन और सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं । शासन यद्यपि वामपंथियों का है फिर भी बहुत से विचारशील व्यक्ति वर्मियों में से ऐसे हैं जो अपने देश की वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हैं । लेकिन न तो वह किसी मंच से बोल सकते हैं और न वहां जनता की भावना को व्यक्त करने के लिए प्रेस को ही स्वतंत्रता है । प्राय: सभी कम्युनिष्ट देशों का यही तरीका है । बातचीत में काफी समय लग गया । मगर हमें यथेष्ट निष्पक्ष जानकारी मिली । शाम को चार बजे हमारे जलपान का आयोजन शहर के माड़वाड़ी स्कूल में था । सब प्रकार की राजस्थानी मिठाइयां थी और सैकड़ों राजस्थानी स्त्री-पुरुष एकत्र थे । रामकुमार जी ने मुझसे कहा कि इन्हें हमसे बहुत बड़ी आशा है । पता नहीं हम कहां तक अपनी सरकार के जरिए इनके लिए कुछ कर सकेंगे !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूबी जनरल इंश्योरेंस के श्री भट्टर ने हमारे होटल में ही रात्रि का भोजन आयोजित किया था। दरअसल रंगून में यही सर्वश्रेष्ठ होटल है। पहले तो यहां कई अच्छेअच्छे होटल थे पर अब दो एक ही बचे हैं, क्योंकि इस समय चीनियों के सिवा अन्य विदेशी यहां बहुत कम ही आते हैं। भोजन में विभिन्न क्षेत्र के सौ सवा सौ भारतीय आए थे, कुछ बर्मी भी थे। चहलपहल अच्छी थी, मगर उन्मुक्त वातावरण नहीं था। सिवा कुशल समाचार और अन्य औपचारिक बातों के दूसरी कोई चर्चा करने का साहस किसी ने नहीं किया, क्योंकि कुछ जासूस होटल के वेयरों के रूप में ही आसपास टहल रहे थे। वे अंग्रेजी के अलावा हिंदी भी समझते थे।

दूसरे दिन एक बजे दोपहर को सिंगापुर जाना निश्चित था। सुबह नाश्ते पर हम श्री सूंग के घर गए। वहां आठदस विशिष्ट भारतीय भी निमंत्रित थे इनमें से कइयों की जानकारी बर्मी राजनीति के बारे में अच्छी थी। श्री सूंग की किसी समय वकालत की अच्छी प्रैक्टिस थी। सैकड़ों भारतीय इनके मुवक्किल थे। भारत और बर्मा के पारस्परिक संबंध और चीन की गतिविधि पर बातें हुईं। मुझे तो ऐसा लगा कि संभवतः भारत की उदार अथवा दुर्बल विदेश नीति के कारण बर्मा पर चीन का प्रभाव अधिक पड़ा। जापानियों के बर्मा से जाने के बाद ऊ आंगसान के नेतृत्व में वहां नई सरकार की स्थापना हुई थी। लेकिन इनके मंत्रिमंडल के सात सदस्यों की राजनीतिक आततायियों ने एक साथ गोली मारकर हत्या कर दी। सन् १९४८ की ४ जनवरी को बर्मा अंग्रेजों द्वारा स्वतंत्र घोषित हुआ। प्रथम प्रधान मंत्री बने ऊ नू। स्वाधीन बर्मा को जितनी कठिनाइयां उठानीं पड़ी शायद ही अन्य किसी राष्ट्र के सामने इतनी समस्याएं रही हों। ऊ नू की कार्यकुशलता, निष्ठा और सूझबूझ के कारण धीरे-धीरे समस्याएं सुलझ रहीं थीं। वह स्वयं समाजवादी विचारधारा के थे, पर उनका विरोध न तो निजी क्षेत्र के व्यापार उद्योग से था और न वह कम्युनिज्म के अंध भक्त थे। भारत के पंचशील सिद्धांत में उनका अटूट विश्वास था और वह हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू के अच्छे मित्रों में थे।

चीन की राष्ट्रीय सरकार की पराजय के बाद वहां कम्युनिस्ट सरकार का गठन हुआ तो विश्व की राजनीति में एक नया दौर शुरू हुआ। दक्षिणपूर्व एशिया के सभी राष्ट्रों पर इस का सीधा प्रभाव पड़ा। चीन के पंजे बढ़ने लगे। कम्युनिस्ट चीन ने बर्मा की राजनीति में अपने चिरपरिचित तरीके को अपनाया। च्यांग की हारी हुई सेना के भेस में पंचमांगियों की घुसपैठ हुई। केरेन लुटेरों को उकसाया गया, सरकारी खजानों की लूट, रेल, तार व टेलीफोन को अव्यवस्थित करना और हड़तालें कराना नित्य का क्रम हो गया। भारतीयों के प्रति विद्वेष की आग भड़काई गई। इस तरह शांत वातावरण भंग हो गया। उद्योगव्यापार ठप्प होने लगे।

इन सब कठिनाइयों के अलावा सन १९५३ में चावल के भावों में बहुत बड़ी मंदी आ गई। चावल बर्मा के लिए सोना है। बहुत परिमाण में इस के निर्यात से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है मंदी के कारण बर्मा की आर्थिक स्थित डांवाडोल हो गई। बर्मी रुपये की साख बाजार में घट गई। लाल चीन ऐसे ही मौके की ताक में था। उस ने दबाव डालना शुरू किया। फलतः परेशानी की हालत में अन्य उपाय न देखकर दिसंबर १९५६ में चीन के साथ बर्मा का समझौता हुआ। चीन की कम्युनिस्ट कूटनीति की यह महत्वपूर्ण विजय थी। चीन को बर्मा में प्रत्यक्ष रूप से इंडोनेशिया की तरह हाथपैर फैलाने का अवसर मिल गया स्थिति धीरेधीरे ऊ नू के नियंत्रण से बाहर होती जा रही थी। ऊ नू ऊब गए थे। सन १९५८ में उन्हे जनरल ने विन के पक्ष में त्यागपत्र देना पड़ा। फिर भी वह इतने लोकप्रिय थे कि फरवरी १९६० के आम चुनावों में उन के दल की भारी बहुमत से जीत हुई।

कम्युनिज्म का चुनाव में विश्वास कभी नहीं रहा। लाल चीन प्रबल होता जा रहा था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बर्मा में उस के एजेंट क्रियाशील थे। २ मार्च, १९६२ को जनरल ने विन ने फौजी ताकत से बर्मी विधान सभा पर कब्जा कर लिया। इस तरह वामपंथी फौजी शासन कायम हो गया। पहले तो जनता शासन के दोषों के विरूद्ध आवाज उठा सकती थी। अब वह भी बंद हो गया। मौन हो कर जुल्म और अनाचार को सहते रहने के सिवा उनके सामने दूसरा रास्ता नहीं है। श्री सूंग ने बताया कि राष्ट्रपिता ऊ नू को जेल में डाल दिया गया, और आज तक वह वहीं हैं।

उन्होंने बताया कि भारत की तरह बर्मा भी त्योहारों का देश है। खूब शौक से यहां के स्त्रीपुरुष उत्सव मनाते हैं–विशेषत: होली का त्योहार (टेबुला) कई दिनों की तैयारी से मनाया जाता है। स्त्रियों और पुरुषों की टोलियां मोटर, व ट्रक पर या पैदल सुगंधित जल के छोटेबड़े बरतन ले कर निकलती हैं। मित्रों के घर पहुंच कर एकदूसरे को सराबोर कर देते हैं। दूसरे दिन नाचगाने और जलूसों का आयोजन कर के एकदूसरे से मिलते है। दस दज रहे थे। हमें बाजार से कुछ सामान भी खरीदना था। श्री सूंग से विदा मांगी। उन्होंने अनुरोध किया कि बर्मा में इन बातों की चर्चा कहीं भी न करें। श्री भट्टर हमारे साथ थे। उन्होंने हमें हाथी दांत और आबनूस की लकड़ी पर नक्काशी की हुई चीजें दिलाईं। हमें जापान और अमरीका के अपने मित्रों को उपहार देना था। करीब १२ बजे हम एयर पोर्ट पहुंचे। मै सोच रहा था कि बर्मा सरकार के दिए हुए एक दिन में भले ही बर्मा घूम न पाया, लेकिन जितना देखा और जाना उतने से कम्युनिस्ट देश और सरकार का यथेष्ट परिचय मिल गया। एयर पोर्ट पर हमारे स्वागत के लिए जितने लोग आए थे उस से भी अधिक संख्या विदा करने वालों की थी। सब की आँखो में निराशा थी, सब की आंखे नम थी। इन में से कइयों से तो महज एक दिन की पहचान हो पाई थी। दुःख में घनिष्ठता बढ़ जाती हैं, सुख में औपचारिकता रहती है। मेरी भी आंखों में न जाने क्यों और कैसे दो बूंदें आ गईं।

विदा होने से पूर्व ही हमने अपने पुनर्वास मंत्री (श्री महावार त्यागी) को वहां के भारतीयों के कष्टों के बारे में लिख दिया था। उनका उत्तर भी हमें बाद में जापान में मिला कि उन्होंने प्रधान मंत्री (श्री शास्त्री) से इस पर बात की है और जल्दी ही किसी मंत्री को बर्मा भेजा जाएगा तथा बर्मा के प्रधान मंत्री श्री नेविन की भारत यात्रा के अवसर पर प्रवासी भारतीयों के बारे में चर्चा कर उनकी समस्याओं का समाधान किया जाएगा। हम ने यह समाचार बर्मा के भारतीय मित्रों को भेज दिया। एक बजे हमारा विमान सिंगापुर के लिए उड़ा। मन भारी हो गया। ऐसा लग रहा था जैसे बर्मा की यह प्रथम और अंतिम यात्रा है। खिड़की से नीचे देखा कि नारियल और ताड़ की झुरमुट से बर्मा की धरती झांक रही है। धीरे-धीरे वह भी आंखों से ओझल हो गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो एशिया में ही नहीं, विश्व में नया प्रयोग कर रहा है...

मलयेशिया

रंगून से चलने के बाद घंटा भर में सिंगापुर आ गया। उत्सुकतावश यान की खिड़की से नीचे देखा। सागर तट सोने की पट्टी की तरह लग रहा था। किनारे से सटेसटे पेड़ हमारे यहां के केरल या कोचीन का सा दृश्य उपस्थित कर रहे थे। मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर सिंगापुर का द्वीप है। ऊपर से देखने पर ही अंदाजा होता है कि घनी बस्ती है और बड़ा बंदरगाह है।

एयरपोर्ट बड़ा अच्छा है। होना स्वाभाविक भी है क्योंकि सिंगापुर दक्षिण-पूर्व एशिया का संगम स्थल है।वायुयान से उतरते हुए हम नेदेखा हमारे मित्र श्री सराफ और श्री माहेश्वरी मुसकराते हुए हमारी ओर आ रहे हैं। कलकत्ता में चौरंगी पर 'सराफ़स कारपेटस्' इन का प्रतिष्ठान है। यहां भी गलीचों का कारोबार काफी बड़ा है।आयातनिर्यात के अच्छे व्यापारी होने के कारण व्यवसाय के क्षेत्र में इन की ऊंची साख है।

ट्रैवल एजेंट ने पहले ही से हमारे आवास की व्यवस्था होटल में कर रखी थी। परंतु सराफजी के आग्रह को हम टाल न सके, उन्ही के मेहमान बने। हमने उन्हें बताया कि यद्यपि हमारी यात्रा का उद्देश्य विदेशों की आर्थिक व्यवस्था और स्थिति का अध्ययन करना है, किंतु व्यक्तिगत रूप से यहां के जनजीवन को जानसमझने के प्रति भी हमारी रुचि है। मैं जानता था कि जितना समय हमारे पास है, उस में मलाया के जनजीवन की पूरी जानकारी पाना संभव नहीं। सिंगापुर तो मलयेशिया संघ का एक राज्य मात्र है। अतएव इस संघ के अन्य राज्यों को देखने के लिए पर्याप्त समय चाहिए। श्री माहेश्वरी ने हमें बताया कि सिंगापुर में यहां मलयेशिया के बारे में जाना जा सकता है क्योंकि कलकत्ता की तरह सिंगापुर एक ऐसा नगर है जहां मलयेशिया के सभी राज्यों के निवासी हैं।

हवाई अड्डे से जाते हुए शहर देखता जा रहा था। जुलाई का महीना था। तीसरे पहर की धूप में जैसी परेशानी कलकत्ता में रहती है, वैसी यहां नहीं थी। शायद द्वीप होने के कारण हवा नम थी। शहर अच्छा लगा, रंगून से कहीं अच्छा। सड़कों पर कहींकहीं लंबेचौड़े सिख पुलिस की वरदी में बड़े आकर्षक लगे। गुरखे सिपाही और भारतीय तो इतने दिखाई पड़े कि कभीकभी तो यह नहीं लगता था कि हम मलयेशिया के किसी शहर में गुजर रहे हैं।

सिंगापुर का क्षेत्रफल सिर्फ २६२ वर्ग मील है। इसे एक अंगरेज, सर रैफेल्स ने १८१६ ई० में बसाया था। इस के पहले यह छोटा सा द्वीप, दलदल और जंगलों से भरा था। समुद्री डाकुओं का अड्डा था जो मलक्का से गुजरते हुए जहाजों पर छापा मारते थे। इन में चीनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डाकुओं के गिरोह तो बडे ही खतरनाक माने जाते थे। मेरा ख्याल है, सिंगापुर का इतिहास निश्चय ही इस से पुराना रहा होगा, क्योंकि दक्षिण में जावा, सुमात्रा बाली आदि द्वीप और उत्तर में जोहोर, पेनांग आदि के सिवा स्याम, कंबोडिया—इन सबों में भारतीय संस्कृति और संस्कार थे—अब भी हैं। स्वयं सिंगापुर का नाम भी बताता है कि यह सिंहपुर रहा होगा।

शहर घना बसा है। प्रायः सभी पूर्वी देशों में इसी ढंग की घनी आबादी होती है, अपने देश में भी ऐसा ही है। फिर भी सिंगापुर को देखने पर यह लगता है कि शहर योजनाबद्ध रूप से बसाया गया है। सड़कें साफसुथरी और चौड़ी, दोनों किनारों पर छायादार वृक्षों की कतारें और उन के पीछे मकान। यूं तू आधुनिक सभी बड़े, शहर एक से लगते हैं। ट्राम बस, ट्रेन, म्युजियम, सिनमा, थियेटर, होटल,रेस्तरां, बाजार या ताप नियंत्रित ऊंचे बड़े मकान, यूरोप, एशिया या अमरीका के सभी शहरों में प्रायः एक से ही हैं। अतएव, शहर का आकर्षण हमारे लिए कोई खास नहीं था।

मैं कुछ और ही जानना चाहता था। मलयेशिया एशिया में ही नहीं, बल्कि विश्व में एक अभिनव प्रयोग कर रहा है.चीनी, मलायी और भारतीय—इन तीन विभिन्न राष्ट्रों या जातियों का समन्वय। स्विट्जरलैंड में जरमन, फ्रैंच और इतालियनों का सफल समन्वय हुआ है। वह सहज था, क्योंकि तीनों ही पड़ोसी राष्ट्र रहे हैं, ईसाई हैं और इन में सदियों से पारस्परिक रक्त सम्मिश्रण भी होता रहा है। मलयेशिया की प्रयोगशाला में ठीक इस के विपरीत तत्त्व है क्योंकि भाषा, संस्कृति, इतिहास, धर्म और रक्त एकदूसरे से पृथक हैं। देखना यही था कि अनेक को एक बनाने में इन्हें कहां तक सफलता मिली है।

अपने मेजमानों के घर पहुंचा। हाथमुंह धो कर ताजा हो लिया। चाय-नाश्ता करते हुए मैं ने शहर के दर्शनीथ स्थानों के बारे में पूछा। अन्य लोग भी हमारे आने का समाचार पा कर आ गए थे। टाइगरबाम गार्डन, रैफेल्स प्लेस, चेंगी समुद्रतट, म्युजियम, जामा मसजिद, बंदरगाह, फोर्ट कैनिंग हिल आदि नाम आए। सलाह यह भी दी गई कि मलाया के अन्य राज्य, विशेष रूप से पेनांग, केडा और जोहोर देख लिए जाएं, और कहीं नहीं तो मलयेशिया की राजधानी क्वालालंपुर तो जरूर। एक मित्र ने कहा कि जब आप मलयेशिया आए हैं तो यहां के घने दलदली जंगल अवश्य देख कर जाइए, आप को अनेक तरह के सांप और बड़ेबड़े अज़गर देखने को मिलेंगे। उड़ने वाले सांप भी शायद देख पाएं।

स्नेहपूर्ण वातावरण था। हम समझ नहीं पा रहे थे कि क्या देखें और क्या नहीं। समय सीमित था। इसके अलावा आर्थिक परिस्थिति के अध्ययन के लिए भी लोगों से मिलनाजुलना जरूरी था। श्रीमती सराफ ने कार्यक्रम बनाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए कहा, "पुरुषों को अपने कामकाज से फ़ुरसत कम रहती है, अतएव इन सब बातों में इन का निर्णय सही नहीं रहता। इन्हें क्या पता कि जितना समय है, उस में किन स्थानों को प्राथमिकता देनी चाहिए या सिंगापुर में किन चीजों की खरीददारी हो। यह सब काम तो हम महिलाओं का है।" उन्होंने हमारे लिए कार्यक्रम बना दिया। दूसरे दिन सुबह से निकलना तय हुआ। अब दूसरे साथी विश्राम चाहते थे, पर मेरे लिए विदेश में आकर घर में बैठे रहना कैद था। शाम हो रही थी। रात्रि के भोजन के पूर्व वापस आना था। चारपांच घंटे का समय मिल गया। निकल पड़ा खुद ही शहर घूमने। आवागमन के लिए नएपुराने सभी तरह के साधन सिंगापुर में हैं। यूरोप के बड़े शहरों की तरह ये महंगे नहीं हैं, बल्कि कलकत्ता की तरह यहां भी सवारियां सस्ती हैं। साइकिलरिक्शा और टैक्सी भी बहुत हैं यात्री चाहें तो अपनी गाड़ी खुद ला सकते हैं, किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं हैं। वैसे तीस पैंतीस रुपये प्रति दिन में गाड़ियां किराए पर मिल जाती हैं।

पैदल ही घूमता हुआ एक चौराहे पर आ गया। भाषा के कारण यहां कठिनाई नहीं होती। कुलीमजदूर तक चाहे भारतीय, मलायी या चीनी हों, अंग्रेजी समझ और बोल लेते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं। चौराहे पर एक टैक्सी में जा बैठा। "दी माह ना ? (कहां)" मलायी भाषा में टैक्सी ड्राइवर ने कहा। मैं ने उसे अंग्रेजी में बताया कि भारतीय हूं। डिनर टाइम के पहले सिंगापुर का जो हिस्सा चाहो दिखा दो। बेचारा कुछ चकित सा हो गया। अपनी घड़ी देखते हुए उस ने कहा, "रैफेल म्युजियम साढ़े पांच बजे बंद हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दर्शनीय स्थान भी। हमारा बंदरगाह बहुत बड़ा है और अच्छा भी, चलेंगे ?" मेरी रुचि उस ओर न समझ कर उस ने कहा, "चलिए आप को चेंगी का समुद्रतट दिखा लाऊं। कुछ दूर तो जरूर है करीब चालीसपैंतालिस मिनट लगते हैं जाने में।" मैं ने स्वीकृति दे दी। टैक्सी नार्थ ब्रिज रोड से पूर्व की ओर बढ़ने लगी। ड्राइवर तमीजदार था। बातचीत से पता चला कि पढ़ालिखा है और आगे पढ़ने की भी इच्छा है। बूढ़ा बीमार बाप है, घर के खर्च का बोझ है, इसी लिए टैक्सी चला रहा है। रास्ते में एक देहात सा दिखाई पड़ा। यहां का रहनसहन देखना चाहता था। टैकसी रुकवा दी। बस्ती सड़क से सटी हुई थी, भारतीय गांव जैसी। मगर सफाई ज्यादा लगी। बांस की चौड़ी पट्टियों की दीवारों पर फूस के छाजन। मलाया में मकान जमीन की सतह से कुछ ऊंचे बनाए जाते हैं। प्रायः सभी घरों के पास फूल पौधे लगे थे। नारियल के पेड़ तो बहुत थे। मैं ने एक हरा नारियल लाने के लिए अहमद (ड्राइवर) से कहा। इस बीच, गांव के लड़केलड़कियों ने मेरे इर्दगिर्द घेरा डाल दिया। गांव वालों में कुछ दक्षिण भारत के भी थे, दोएक चीनी परिवार भी। मुखिया भी आ गया। अच्छी आवभगत की। अंगरेजी थोड़ी बहुत समझ लेता था। फिर भी अहमद ने दुभाषिए का काम किया।

उन की आपसी बातचीत में भाषा और शब्दों पर मैं गौर कर रहा था। युग, अनेक राजा, रस, पुस्तक आदि अनेक शब्द बता रहे थे कि पिछले ५०० वर्षों के इसलामी प्रभाव में भी मलाया की धरती से भारतीय संस्कृति मिटी नहीं। यदि हमारी ओर से, विशेषतः हमारे धार्मिक नेतृवर्ग की ओर से जरा भी चेष्टा रहती तो दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों से न केवल हमारा अविच्छिन्न संपर्क रहता, बल्कि इन्हें हम अपने अभिन्न बंधु के रूप में पाते। दुर्भाग्य यह रहा है कि हमारे जिन पुराणकार या शास्त्रकारों ने पुराण और शास्त्रों में यह बताया कि भारतीय जलयान द्वीपद्वीपांतरों में व्यपार के लिए जाते थे, चक्रवर्ती सम्राट और व्यापारियों का शंखनाद वहां गूंजा करता था उन्हीं पुराणकारों के उत्तराधिकारी पंडितों और पुरोहितों ने विदेश यात्रा और समुद्र यात्रा को निषिद्ध करार दिया और वह भी इस हद तक कि जातिच्युत करने का विधान कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हमारी प्रेरणा कुंठित हो गई और उत्साह ठंडा पड़ गया। इन देशों से हमारा व्यापारिक संपर्क टूटा, रक्त संबंध क्षीण हुआ और वहां हमारी संस्कृति की छाया तक धूमिल होती गई। मुखिया से बातें करने पर पता चला कि मलयेशिया के मलायियों का धर्म इस्लाम है, चीनी बौद्ध हैं और भारतीय हिंदू। धर्म को ले कर इन में आपस में कभी झगड़ा नहीं होता। उस ने यह भी बताया कि उन के यहां रामायण और महाभारत के नृत्य रूपक भी लोकरंजन के लिए होते रहते हैं।

मैं हैरान था। हिंदुस्तान के मुसलमान तो रामायणमहाभारत का नाम तक नहीं लेते। वे अपने को खास अरब, तुर्क, ईरान और मुगलों की औलाद समझते हैं और सुदूरपूर्व के इस मुसलमानी कौम और देश में रामलीला, कर्ण, भीष्म, युधिष्ठिर के चरित्र ! इन के नाम भी परमेश्वरी, देवी, कर्ण, सुमित्र आदि !! नारियल के दाम चुकाने के लिए पैसे निकाले, लेकिन गांव वालों ने लिए नहीं। समुद्रतट देखने नहीं गया, क्योंकि वहां मेरे लिए कोई नवीनता नहीं थी फिर रात भी हो रही थी। अतएव शहर के विभिन्न अंचलों का चक्कर लगाता हुआ घर वापस आ गया।

रात्रि के भोजन पर वहां के कई विशिष्ट भारतीय नागरिक आए। उन से पता चला कि मलयेशिया संघ में व्यपार की सुविधा समान रूप से सभी को है। सिंगापुर में तो बहुत ही अधिक सुविधा उपलब्ध है, क्योंकि हांगकांग और जिब्राल्टर की तरह यह भी एक मुक्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बंदरगाह (फ्री पोर्ट) है । आयातनिर्यात पर यहां टैक्स नहीं और न विक्रय पर ही कर है। आयकर बहुत ही कम है। सब से बड़ी बात तो यह कि सरकार सब प्रकार से सहयोग देने को तत्पर रहती है । लेकिन उन लोगों को लग रहा था कि चीनियों के बहुसंख्यक होने के कारण सिंगापुर अदूर भविष्य में मलाया संघ से संभवत: पृथक हो जाएगा । बाद में हुआ भी यही।

दूसरे दिन सुबह साढ़े नौ बजे संसद भवन देखने जाना था । मैं खूब सवेरे उठा । अकेला ही घूमता हुआ टाइगर बाम गार्डन जा पहुंचा । टाइगर बाम सिरदर्द की मशहूर दवा है। उसी के नाम पर मालिकों ने यह सुरम्य और विशाल उद्यान बनाया है । बाग में प्लास्टर की बनी सुंदर झांकियां हैं । गुफाएं और फूलों के कुंजों से सजावट निखर आई है । टाइगर बाम का एक बगीचा हांगकांग में भी हम ने बाद में देखा । शहर में एक रमणीय स्थान बन जाने के साथसाथ उनकी दवा का बड़े रूप में विज्ञापन भी हो जाता है ।

साढ़े नौ बजे हम संसद भवन पहुंच गए । उन दिनों सत्र चालू नहीं था लेकिन स्पीकर ने दोचार सदस्यों को हमसे मिलाने के लिए बुलवा लिया था । इन का व्यवहार बहुत सौजन्यपूर्ण था । मैं लक्ष्य कर रहा था कि बर्मा और मलयेशिया में कितना अंतर है । यहां के प्रधान मंत्री तुंकु अब्दुल रहमान का स्नेह हमारे देश के प्रति प्रारंभ से ही रहा है । उन के साथियों और देशवासियों को भी हम ने इसी भावना से ओतप्रोत पाया । औपचारिक परिचय और चायपान के उपरान्त माननीय स्पीकर महोदय से मलयेशिया की राजनीति, अर्थनीति एवं इतिहास इत्यादि पर चर्चा हुई । स्नेहपूर्ण नि:संकोच वातावरण कुछ ऐसे ढंग का था कि यह नहीं मालूम हुआ कि हम विदेश में बैठे हैं और विदेशियों से बातें कर रहे हैं ।

मलयेशिया अथवा मलाया संघ का इतिहास हमारे यहां से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। भारत की तरह यहां भी राजाओं और सुलतानों का शासन रहा है और पृथकपृथक राज्य रहे हैं । इन में आपस में बराबर झगड़े तथा युद्ध होते रहे हैं । अपने प्रभुत्व के लिए राष्ट्रीयता की उपेक्षा कर विदेशियों का सहारा लेने की प्रवृति यहां के सुलतानों में भी थी । फलत: विदेशियों का प्रभाव यहां बढ़ता गया । पहले पुर्तगाली आए, बाद में डच और सब के अंत में अंग्रेज। अंग्रेजों की कुशल कूटनीति के सामने पुर्तगाली और डच टिक नहीं पाए । संपूर्ण मलाया में एक सार्वभौम शासन न रहने के कारण अंग्रेजों को अपने पैर जमाने में सुविधा हुई । व्यापारी अंग्रेज शासक बने और जैसे कि गुलाम राष्ट्रों के प्रति होता है, वही हुआ । ब्रिटेन ने शोषण किया । टिन, रबर, नारियल और मसाले के व्यापार से ब्रिटेन को अपरिमित लाभ हुआ ।

एशिया की राजनीति के मंच पर जापान प्रथम महायुद्ध के बाद आया । अपने बढ़ते हुए उद्योगों के लिए उसे कच्चे माल की जरूरत पड़ने लगी और माल बेचने के लिए बाजार चाहिए था । जापान की दृष्टि दक्षिणी एशिया के देशों पर पड़ी । परंतु यहां ब्रिटिश माल के आयात के लिए दूसरे देशों से आयात कर कम था और दूसरी अनेक प्रकार की सुविधाएं भी थीं, इसलिए जापान के पैर पूरी तौर से नहीं जम सके । द्वितीय महायुद्ध छिड़ने पर सन १९४२ में जापान ने मलाया पर भी हमला किया । जिस मलाया से अरबों का लाभ उठाया, देश को लूटा और चूसा उसे ब्रिटेन ने बिलकुल असहाय छोड़ दिया । जापानियों का अधिकार यहां तीन, साढ़े तीन वर्षों तक ही रहा । किंतु इतने ही दिनों में उन्होंने जो कुछ किया वह वर्णनातीत है । अपने कारखानों के लिए टिन, रबर और कच्चे माल ले जाते रहे । उस के सैनिक अपने तनमन की पाशविक भूख मलाया में मिटाते रहे । साम्राज्यवादी सभी एक से हैं चाहे यूरोप के हों या एशिया के ।

जापानियों की हार के बाद अंग्रेज फिर आ गए । मगर जीत के बाद भी अब विश्व में इन की साख घट चुकी थी । इन की गिनती द्वितीय श्रेणी की शक्तियों में हो गई थी । स्वयं अंग्रेज भी अपने जर्जर देश की समस्याओं में उलझे थे । चीन में च्यांग काई शेक की सरकार को हटा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर कम्युनिस्टों ने उसे लाल बना लिया था। प्रथम महायुद्ध के बाद एशिया के देशों का नेता बना था जापान। द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अमरीका के देशों का नेता बनना चाहता था लाल चीन।

लाल चीन के पंचगामी सर्वत्र क्रियाशील थे। उत्तरी वियतनाम, बर्मा, मलाया और इंदोनेशिया में विशेष रूप से। युद्ध जर्जरित ब्रिटेन के लिए साम्राज्य को कायम रखना बोझिल हो रहा था। भारत, बर्मा और लंका को स्वतंत्रता मिल चुकी थी। परंतु अभी भी मलाया इन के अधीन ही था। मलाया में कम्युनिस्टों ने गुरिल्ला तरीका अपनाया। तोड़फोड़, हत्या, डकैती करने वालों ने अपने को मुक्ति सेना बतलाया। इसी दौरान में अक्तूबर १९५१ के दिन ब्रिटिश हाई कमिश्नर सर हेनरी की हत्या कर दी गई। अंग्रेजों की आंखें खुलीं, उन्होंने सुरक्षा के साधन मजबूत किए। मलाया को स्वाधीनता देने का वादा किया। सन १९५५ में आम चुनाव हुआ। तुंकु अब्दुल रहमान प्रधान मंत्री बने। विभिन्न राज्यों पर फिर भी ब्रिटेन का फौजी शासन रहा। पर साम्यवादी चीन को चैन कहां ? मलाया में चीनी काफी संख्या में हैं। किसी न किसी बहाने वे यहां बसने के लिए बड़ी संख्या में प्रति वर्ष आते ही रहते हैं। इसलिए यहां की राजनीति और उद्योगव्यापार पर उन का बहुत प्रभाव है। हालत यहां तक है कि मलायी अपने ही देश में विदेशियों की तरह बनते रहे हैं। सिंगापुर में तो यह स्थिति विशेष रूप से देखने में आई। हमारे देश में कश्मीर में छद्मवेशी पाकिस्तानियों के कारण हमें भी बहुत कुछ ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। लाल चीन के षड्यंत्रों से लोग तंग आ गए थे और उन के आए दिन के कुकृत्यों से मलाया निवासियों के मन में उन के प्रति घृणा हो गई थी।

सन १९५६ में साम्यवादी दल के मुख्य सचिव की हत्या यहां के किसी नागरिक ने कर दी। यहां के चीनियों ने बड़ा शोरशराबा मचाया। अंगरेज चीन के साथ विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे। हांगकांग उन के हाथ से निकल जाने का भय था। इसलिए सन १९५७ में मलाया को पूर्ण स्वाधीन घोषित कर इन्होंने अपना पिंड छुड़ा लिया। त्रेंगानु, कलांतन, पेनांग, सेलोगोर, जोहोर और सिंगापुर आदि बारह राज्यों को मिलाकर मलयेशिया बना। स्वाधीनता के साथसाथ अंगरेजों से विरासत में मिली अशांति और अव्यवस्था। देश की आर्थिक व्यवस्था जीर्ण और जर्जर थी। सौभाग्य की बात थी कि इस नए राष्ट्र को तुंकु अब्दुल रहमान जैसा व्यवहार-कुशल, राजनीतिज्ञ और निपुण शासक मिला।

स्वाधीनता के बाद तुंकु ने विश्व के राष्ट्रों से मैत्री और सद्भावना की नीति अपनाई। देश में फैली अराजकता का दमन किया एवं मलाया में राष्ट्रीय भावना की चेतना जाग्रत की। लाल चीन समझ गया, उस की दाल मलेशिया में नहीं गलेगी। मलयेशिया में उस की मुक्ति सेना का नकाब उतर चुका था। पड़ोस के इंदोनेशिया की राजनीति में अपना प्रभाव बढ़ा कर वह उसी के ज़रिए धमकियां देने लगा। उत्पात भी शुरू हुए। ठीक पाकिस्तानियों की तरह इंदोनेशिया कहीं घुसपैठिए भेजता तो कहीं सेना उतार देता। कभी चीनियों को भड़काता तो कभी मलायियों को। इन सबके बावजूद तुंकु अब्दुल रहमान ने चीनियों के साथ अपने देश में भेदभाव नही रखा। उन्हें समान राष्ट्रीय अधिकार दिए। इस मुलाकात के बाद हमें हांगकांग बैंक के मैनेजर से मिलना था। श्री सराफ के साथ हम उन के यहां गए। अपने कार्यालय में वे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन से हमें मलयेशिया की आर्थिक स्थित और उसके क्रमिक विकास पर चर्चा करनी थी।सन १९५७ में मलाया स्वाधीन हुआ एवं १९६३ में मलयेशिया संघ बना। इस छोटी सी अवधि में मलयेशिया ने तुंकु के नेतृत्व में जितनी प्रगति की है वह प्रशंसनीय है। टिन, रबर, नारियल, चावल, चांय और मसाले उस की संपदा हैं। इसी कारण मलयेशिया की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ बन सकी है, अन्यथा एक करोड़ की आबादी का यह छोटा सा देश इंदोनेशिया के सामने कैसे टिकता ? इंदोनेशिया इस से दस गुना बड़ा है और उसके पीछे शक्ति रही है दुर्धर्ष लाल चीन की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मलयेशिया १,७०० करोड़ रुपयों का निर्यात करता है और १,९२० करोड़ रुपयों का आयात। इस प्रकार उसे प्रति वर्ष २२० करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा अधिक खर्च करनी पड़ती है। फिर भी जिस तेजी से वहां औद्योगिकरण हो रहा है, आशा है शीघ्र आत्मनिर्भर हो जाएगा। कृषि और खनिज उद्योगों में इस की प्रगति उत्साहवर्धक रही है।

आयात-निर्यात और विक्रय पर मलयेशिया में टैक्स नहीं है। आयात कम है, इसलिए विदेशों के व्यवसायी और उद्योगपति यहां पूंजी लगाने के लिए आकर्षित होते हैं। नए उद्योगों के लिए सरकारी आयोगों और बैंकों से तरहतरह की सुविधा दी जाती है, उचित ब्याज पर ऋण भी सरलता से मिल जाते हैं। इस प्रकार विदेशी मुद्रा का स्रोत धीरेधीरे बढ़ रहा है और इस के साथसाथ देश में उद्योग भी बढ़ते जा रहे हैं। सन् १९६३ में अकेले सिंगापुर के बंदरगाह में ८३० लाख टन का आवागमन हुआ और यहां ३८ हजार सातसौ जहाज आए। इनकी तुलना में हमारे देश के प्रमुख बंदरगाह कलकत्ता और बंबई के आंकड़े विचारणीय हैं। हमारे इन दोनों बंदरगाहों की क्षमता काफी अधिक है और ये बड़े भी बहुत है फिर भी पिछले वर्ष में इन दोनों में केवल चार हजार जहाज ही खाली हुए हैं।

हमारे यहां आएदिन हड़ताल और 'काम कम करो' की नीति से अंतर्राष्ट्रीय जहाजरानी में हमारी प्रतिष्ठा को काफी नीचा देखना पड़ा है। विदेशी कंपनियां अपने जहाज भेजने में हिचकती हैं। हमें हर साल करोड़ों रुपए डेमरेज के भरने पड़ते हैं और किराया ज्यादा लगता है, वह अलग। मलयेशिया हम से ४५ गुना छोटा देश है लेकिन इस का निर्यात हम से कहीं ज्यादा है। अब तक जितने देश देख आया, उन में पाकिस्तान को छोड़कर अन्य सब की स्थिति हम से कहीं अच्छी है।

दोपहर का एक बज रहा था। हम घर वापस आए, भोजन के उपरांत तीन बजे तक विश्राम कर शहर घूमने निकले। रेफेल्स प्लेस वहां का कनाट प्लेस या चौरंगी है। दुनिया के हर कोने की चीजें यहां के स्टोर्स में भरी पड़ी थीं। कीमती जवाहरात, उम्दा कपड़े, टाइपराइटर, कैमरे और घड़ियां। हमारे देश की तुलना में काफी सस्ती और अच्छी थीं। यहां के बाजार में अधिकतर दुकानदार चीनी और मुसलमान हैं। हम ने यहां की बड़ी मसजिद देखी। यह दिल्ली की जामा मसजिद की तरह भव्य नहीं हैं। चीनी मंदिरों में बुद्ध की बड़ी सुंदर प्रतिमाएं हैं। शिव और हनुमान के मंदिर भी देखे। सुनने में आया कि इसी प्रकार छोटेछोटे और भी कई मन्दिर हैं। लेकिन ऐसा लगा कि हिंदू विदेशों में अपने संस्कार और संस्कृति के प्रति उदासीन से रहते हैं। वैसे आज भी विश्व में भारतीय अथवा हिंदू दर्शन और विचारधारा के प्रति श्रद्धा है। यहां काफी संख्या में भारतीय स्थायी रूप से हैं, संपन्न हैं और प्रतिष्ठित भी। सामूहिक प्रयास से भव्य गिरजे और मसजिदें यदि बन सके तो क्या मलाया के भारतीयों की श्रद्धा और चेष्टा से विशाल मंदिर नहीं बन सकता था!

रात्रि के भोजन पर सिंगापुर के पुलिस कमिश्नर श्री सरदारसिंह, नगर निगम के मेयर तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से भेंट हुई। सरदारसिंह खुशमिजाज लगे। वह भारतीय सिख पर अब यहां के नागरिक हो गए हैं। यह जानकर ताज्जुब हुआ कि मलयेशिया की सेना में भारत के गुरखें, नेपाली और सिख भी हैं। इससे पता चलता है कि भारतीयों के प्रति यहां कितना विश्वास है।

सिंगापुर की शाम के बारे में चर्चा चली। पुलिस की निगरानी कड़ी है, फिर भी हर बड़े शहर और बंदरगाहों की वारदातें यहां भी होती रहती हैं। चीन से काफी संख्या में कम उम्र की लड़कियां आ कर बिकती हैं। इस के अधिकांश व्यापारी भी चीनी हैं। ये लड़कियां चकलों या वेश्यालयों में घृणित जीवन बिताती हैं। मुसलमानी आदत और रिवाज के कारण इन में से कुछ हरमों में दाखिल हो जाती हैं। सुनेने में आया कि इंडोनेशिया के बाली द्वीप से भी लड़कियां यहाँ भगा कर लाई जाती हैं। इन लड़कियों से नाचगाने का काम लिया जाता है। होटलों में विदेशियों के तथा विशेष रूप से नाविकों के पास लड़कियां पहुंचाई जाती हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कलकत्ता की तरह अवैध व्यापार में यहां भी चीनी और पाकिस्तानी तत्त्व अधिक क्रियाशील हैं।

हमें अगले दिन दो बजे हांगकांग के लिए रवाना होना था। मेहमानों के साथ अन्य आमंत्रित लोगों ने भी आग्रह किया कि मलाया के रबर की बागवानी और जंगलों की सैर के लिए रुक जाएं। हम रबर की बागवानी मद्रास में देख चुके थे, अतएव विशेष रुचि इस ओर नहीं थी। प्रभुदयालजी ने कहा कि हमारे असम के काजीरंगा के जंगल को देखने के बाद यहां के जंगलों की विशेषता रह नहीं जाती। हमें आर्थिक अवस्था और उद्योग विकास की जानकारी लेनी थी, वह मिल गई। ऊपर से मिला यहां के लोगो का स्नेह। अब जंगलों में और दलदलों में भटकने की इच्छा नहीं है।

श्री महेश्वरी क्वालालंपुर जा रहे थे। उन्होंने आग्रह करते हुए कहा, "सिंगापुर तो कलकत्ता, बंबई की तरह है, लेकिन जब तक वाराणसी या दिल्ली न देख लें तब तक भारत देखना नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यहां के क्वालालंपुर और मलक्का को न देखने पर मलयेशिया का भ्रमण अधूरा माना जाएगा।" हम ने उन्हें चार्ट दिखा जिस में अगली यात्रा की सीट तिथिवार सुरक्षित थी। फिर भी वादा करना पड़ा कि अगली यात्रा में मलाया भ्रमण का कार्यक्रम अधिक दिनों का अवश्य रखेंगे।

दो बजे दिन को एयरपोर्ट पहुंचे। विदा करने के लिए कुछ लोग आए। उल्लास पूर्ण वातावरण में विदा लेने में जिस आनंद का अनुभव हुआ, वह रंगून से सर्वथा भिन्न था। स्वस्थ एवं प्रसन्न मुद्रा में लोग हाथ हिला कर विदाई दे रहे थे और हम धीरेधीरे वायुयान की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे।

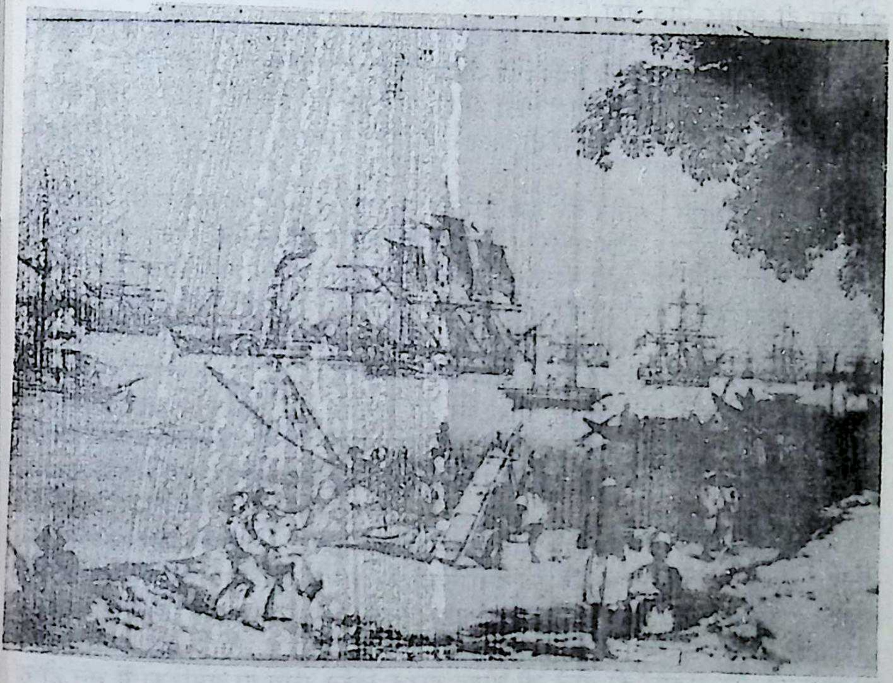

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आबादी में कलकत्ता से आधा, पर व्यापार में ?

हांगकांग

बहुत दिनों पहले फोर्ड मोटर का एक विज्ञापन देखा था, 'जब तक फोर्ड न देख लो, अपने पैसे जेब में रखो, हो सकता है उस विज्ञापन में अत्युक्ति हो। पर एक बात मैं निश्चयपूर्वक कहूंगा कि यदि आप की यात्रा में हांगकांग शामिल हो तो आप अन्य कहीं भी किसी भी प्रकार की वस्तु न खरीदें, जब तक हांगकांग ने पहुच जाएं। हमारा विश्व भ्रमण पूर्व से हुआ था, इसलिए सिंगापुर के बाद सीधे हांगकांग गए। रंगून और मलाया में, संयोग से हमें कुछ खर्च नहीं करना पड़ा क्योंकि इनं स्थानों पर हम अपने भारतीय मित्रों के अतिथि थे। हांगकांग में भी ऐसा ही अवसर मिल गया।

हम तीनों के पास १३ हजार रुपये के चेक थे और आंखों के सामने हांगकांग और कौलून की बड़ीबड़ी दुकानें थीं, जिन में सभी देशों की सब तरह की छोटीबड़ी चीजें भरी पड़ी थीं। सस्ती और अच्छी इतनी कि मन यही होता था कि सारे पैसे यहीं खर्च कर दें और सभी चीजों को बटोर कर देश ले चले, पर अभी तो बहुत से देशों की यात्रा बाकी थी और चालीस दिन बिताने थे।

मन को समझाया। संतोष कर कुछ फाउंटेन पेन, एक दूरबीन, अलार्म वाली एक हाथ घड़ी और दोचार फुटकर चीजें खरीदीं। तेरहचौदह रूपए में माउंटब्लेक, पार्कर और शेफर के पेन मिले जो अपने देश में तो साठसत्तर से किसी भी हालत में कम नहीं मिलते हैं। विश्व प्रसिद्ध निर्माता जेराड पेरागुआ की अलार्म हाथ घड़ी की कीमत लगी १६० रुपए, बाद में स्विट्जरलैंड में, जहां यह बनती है वहां कंपनी की अपनी दुकान में इस की कीमत बताई गई २३० रूपए। हम ने हांगकांग में इस के मूल्य का उल्लेख किया तो उन्होंनें बताया विदेशों में हम निर्यात कम दाम पर करते हैं ताकि देश को विदेशी मुद्रा अधिक से अधिक मिले। हांगकांग की तो बात ही और है। वहां न तो आयातनिर्यात पर कर है और न अन्य किसी प्रकार का प्रतिबंध। आयकार भी बहुत कम है, इसलिए अन्य कोई भी देश इस से कम दाम में माल नहीं बेच सकता।

यहां कर्मचारियों के लिए काम का समय निर्धारित नहीं है। दुकानें सुबह नौ बजे खुल जाती हैं और रात में बारहएक बजे तक खुली रहती हैं। बाजार घूमते हुए हम ने देखा कि एक मोहल्ले में लगभग सौ दुकानें तो केवल जवाहरात की हैं जिन में खूबसूरत और कीमती भांतिभांति के जड़ाऊ जेवर सजे हैं। इसी प्रकार कपड़े, बिजली के समान और नाना प्रकार की शौक की और रोजमर्रे की चीजें, जो शायद भारत, ब्रिटेन, फ्रांस या अमेरिका में भले ही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिलें, हांगकांग में जरूर और आसानी से मिलेंगी। बेईमानी और ठगी यहां भी है। जापान के सिवा प्राय: सभी पूर्वीय देशों में यह रोग व्याप्त है। हमें बताया गया कि यहां के बहुत से चीनी दुकानदार प्रसिद्ध वस्तुओं के नाम और डिजाइन की नकल कर उन्हें बेचा करते हैं। हांगकांग में हमारे आवास की व्यवस्था थी इंपीरियल होटल में। इस के मालिक भारतीय करोड़पति श्री हीरालाल सिंधी हैं जो यहां बस गए हैं। उन के यहां कई बड़ेबड़े स्टोर्स हैं। इन्हीं में हम तीनों ने अपने सूट सिलाए। पूरा सूट ६ घंटों में तैयार टेरेलीन का कपड़ा और सिलाई, कुल मिला कर केवल १८० प्रति सूट।

ग्राहक और दुकानदार में मोलभाव इटली से ही शुरू हो जाते हैं। ज्योंज्यों हम पूरब की ओर बढ़ते हैं, मोलभाव भी बढ़ता जाता है। अपने देश में भी हमें इस का अनुभव है। चीनी दुकानदारों से भी कलकत्ता में चीजें खरीदने का अवसर बहुतों को मिला होगा। ये इस कला में बहुत प्रवीण होते हैं। हांगकांग में अधिकांश दुकानदार चीनी हैं। इन से मोलभाव करने में बड़ा मजा आता है। १०० रूपए की चीज का दाम आप ४० रूपए से शुरू कर सकते हैं। कई बार वह कान पर हथेलियों को रख कर सिर हिलाएगा, सामान अंदर रख देगा। आप भी कई बार दुकान की सीढ़ियों से उतरेंगे। अंत में वह महज इसलिए आप के हाथ समान बेच देगा कि आप को चीज की पहचान है, आप विदेशी हैं, कहीं आप को दूसरा विक्रेता कोई खराब चीज न बेच दे।

हांगकांग का क्षेत्रफल है करीब ३६१ वर्ग मील। यानी हावड़ा से डायमंड हार्बर और सियालदह से श्रीरामपुर तक का विस्तार। आबादी है ३३ लाख, कलकत्ता से लगभग आधी जिन में ३२,५०,००० चीनी हैं और शेष ५०,००० दूसरे देशों के हैं। भारतीय कम संख्या में जरूर हैं, पर व्यापार और अन्यान्य क्षेत्रों में इन का अच्छा प्रभाव है। सड़कों पर सिख और गुरखा पुलिस भी दिख जाती है। व्यवसाय के क्षेत्र में सिंधी अधिक हैं। उस के बाद क्रमश: पंजाबी, गुजराती और राजस्थानी। बंदरगाह और व्यवसायी नगर होने के कारण यहां का जीवन बहुत व्यस्त रहता है।

आज के युग की विचित्र नगरी है हांगकांग। चीन में है पर चीन की नहीं। आबादी चीनियों की है पर शासन चीनी नहीं, ब्रिटेन का है। इस का एक भाग कौलून चीनी महादेश से सटा हुआ है और दूसरा अंश विक्टोरिया सागर के बीच है। चीन का प्रसिद्ध बंदरगाह कैंटन यहां से ६० मील है और चीन की सीमा केवल ३० मील। आज चीन बाहर वालों के लिए लौह दीवार है फिर भी हांगकांग वह खिड़की है जिस से चीन की झांकी मिल जाती है। पेकिंग की तरह हांगकांग ऐतिहासिक नगरी कभी नहीं रही। इस के बारे में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि समुद्री डाकुओं का यह अड्डा था और वे इस की पहाड़ियों में बेखटके बसेरा बनाए रखते थे। सन १८४१ के अफीम युद्ध के बाद इस उजाड़ पहाड़ी क्षेत्र को ब्रिटेन ने सन १९९९ तक के लिए पट्टे पर चीन से लिया। चीनियों ने समझा चलो, विदेशियों का पैर अपने यहां से उखाड़ दिया। पर वास्तविकता यह रही कि घर की ड्यौढ़ी पर ब्रिटेन का अधिकार जम गया। ब्रिटेन को प्राकृतिक बंदरगाह मिला और सामरिक महत्वपूर्ण स्थान। यही कारण था कि जब तक ब्रिटेन की प्रथम या द्वितीय शक्ति रही, उसने चीन सागर और इस के संपूर्ण क्षेत्र पर अपना नियंत्रण रखा। यहां शुरू से ही एक ब्रिटिश गर्वनर के द्वारा शासन संचालित होता रहा है।

जो भी हो, आज ब्रिटेन के पंजे ढीले हैं। प्रशांत और भारत महासागर के उस के उपनिवेश स्वाधीन हो चुके हैं। लाल चीन रक्त चक्षुओं से चारों ओर देख रहा है और अपने नखों को बढ़ा रहा है। उस की शक्ति का परिचय भी तिब्बत, कोरिया और वियतनाम में मिल चुका है, पर हांगकांग आज भी अछूता है। आश्चर्य तो जरूर होता है कि मगरमच्छ की दाढ़ों में आखिर छोटी चिरैया कैसे बैठी है! स्वार्थ दोनों का है। मगरमच्छ दांत साफ कराता है। चिड़िया के लिए सुरक्षित स्थान है। चीन को इस पर कब्जा करने में शायद दो घंटे ही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लगें। पर उन्हें भी अपने इतने विशाल देश के आयातनिर्यात का एक सधा हुआ माध्यम चाहिए। आज विश्व में प्रभाव है रूस और अमेरिका का। चीन साम्यवादी है पर रूसी गुट में नहीं है। विश्व के व्यापार पर प्रभाव है अमेरिका का, जो चीनी साम्यवाद का जानी दुश्मन है। संयुक्तराज्य परिषद भी फारमोसा के चीन को मान्यता देता है, लाल चीन को नहीं। इसलिए अमेरिका का इसके साथ व्यापार करने का तो कोई सवाल ही नहीं रहता।

दूसरी तरफ ब्रिटेन सदियों से ही व्यापारी पहले रहा है—दूसरा कुछ पीछे। उस का व्यापार बढ़ता है तो सब सिद्धांतों को ताक पर रख देता है। हांगकांग का यह ब्रिटिश उपनिवेश चीन के लिए सारे प्रतिबंधों का बंधन खोल देता है। हांगकांग की आढ़त दोनों के स्वार्थ की पूर्ति करती है। चीन में विदेशियों के प्रवेश पर बड़ी बंदिशें हैं। वहां जाना नामुमकिन है पर हांगकांग के चीनी इच्छानुसार जब चाहें वहां आतेजाते रहते हैं।

हांगकांग ऐतिहासिक नगरी तो नहीं है, पर इसके विकास की पृष्ठभूमि में अपनी एक कहानी है जो आज नहीं तो कल के इतिहास में जरूर शामिल की जाएगी। प्रारंभ में यह चीन को अफीम भेजने का एक अड्डा था। डाकू, चोरउचक्कों का बसेरा भी था। आस्ट्रेलिया और कैलिफोर्निया में सोने का पता लगते ही वहां की खानों के लिए चीनी कुलियों के निर्यात का कारोबार यहाँ खुल गया। भारत से भी तो उस समय अंगरेजों ने और फ्रांसीसियों ने फीजी, मारिशश,गायनाऔर पूर्वी अफ्रीका में परमिट पर लाखों भारतीयों को भेजा था। सन १९४१ में जापान ने जब इस पर अधिकार जमाया उस समय तक विश्व के बड़े बंदरगाह और व्यापार के केन्द्र के रूप में यह प्रतिष्ठित हो चुका था। उन दिनों यहां प्रति वर्ष चार करोड़ टन माल केवल समुद्री मार्ग से आता था। हालैंड और बंबई की तरह यहां भी समुद्र से जमीन ली गई है। हमारा विमान जिस केटेक हवाई अड्डे पर उतरा, वह समुद्र से ली गई एक संकरी पट्टी पर बना था।

हम ने बर्मा और मलाया में सुना था कि पिछले महायुद्ध में जापानी जहां भी गए, खूब लूट मचाई और जब हारने लगे तो बरबादी की। यही कारण था कि इन देशों की जनता ने भी बाद में जापानियों का विरोध कर उन्हें खूब परेशान किया। लेकिन हांगकांग इसका अपवाद है। जापानियों के अधिकार में यह करीब पौने चार वर्ष तक रहा है। वे चाहते तो हांगकांग को भी अन्य स्थानों की तरह तहसनहस कर सकते थे, पर वहां की मौज, मस्ती और ऐयाशी ने इसको बचा लिया। जापानी सैनिकों और अफसरों को यहां सुंदरियों की बाहें और शराब से छलकते प्याले मिले। अपने को वे इन्हीं में डुबो बैठे और हांगकांग नष्ट होने से बच गया।

चीन में जब साम्यवादी शासन हुआ तो वहां से दस लाख से भी अधिक नागरिक शरणार्थी के रूप में हांगकांग आ गए। जहां भी जगह मिली बस गए। आज हालत यह है कि इस का विकास योजनाबद्ध न हो पाया। एक ओर विक्टोरियन शैली की इमारतें हैं तो दूसरी ओर पहाड़ की ढाल पर झोंपड़ी और झुग्गियां हैं। इन में कहीं गत्तों की छत है तो कहीं जंग लगे टूटे कनस्तरों की दीवाल और छाजन हैं। चींटियों की तरह भरे हैं चीनी इन में। गरीबी, तंगी और बीमारी इन के जीवन के साथ हैं, जैसे सब कुछ इन्हें बरदास्त हो गया हो। न पानी की व्यवस्था है, न सफाई की। झोंपड़ियाँ ऐसी आड़ी ढलान पर हैं कि दंग रह जाना पड़ता है। जरा सा पैर फिसले तो जान पर आफत। हांगकांग तुफान के क्षेत्र में है, जब बड़ा तुफान आता है तब इन में रहने वालों की जान की शामत आ जाती है। इस की झांकी 'दी वर्ल्ड ऑफ सूइजविंग' नाम की फिल्म में देखने को मिली थी। हम अपने देश की आर्थिक विषमता अत्यधिक समझते थे, पर यहां जो रूप देखा उस से यही कहूंगा कि विश्व में शायद ही कि

चीन को मान्यता देने के पहले इस विवरण को लिखा गया था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक स्थान पर अमीरी और गरीबी का ऐसा रूप और अंतर एक साथ दिखाई पड़े।

हालीवुड स्ट्रीट यहां कि प्रसिद्ध सड़क है। इस मोहल्ले में जमीन का मूल्य है पचीस हजार रुपए प्रति गज तक यानी एक सौ पचहत्तर रुपए प्रति इंच और मासिक किराया है पचीस रुपए प्रति फुट। न्यूयार्क और शिकागो में भी जगह इतनी महंगी नहीं। किराया नियंत्रण कानून यहां नहीं है। इसलिए जब मन चाहा, किराया बढ़ा लिया जाता है। हमें यहां के यू० को० बैंक के मैनेजर ने बताया कि उनके आफिस का मासिक किराया आठ हजार रुपए हैं, पर अब मकान मालिक चालीस हजार रुपए मांगता है।

छोटे से व्यापारिक बंदरगाह का बजट देख कर आश्चर्य होता है। सन १९६०-६१ में यहां के खर्च का बजट करीब साढ़े सोलह करोड़ अमरीकन डालर (सवा सौ करोड़ रुपए) का था। यानी हमारे बजट का ५ प्रति शत, जब कि आबादी केवल दो तिहाई प्रति शत ही है। यहां के आयातनिर्यात के आंकड़े देख कर भी चकित रह जाना स्वाभाविक है। इस छोटी सी जगह का सन १९६० में आयातनिर्यात था—एक हजार दो सौ पचास करोड़ अर्थात हमारे यहां से करीब आधा। इसी से यहां की समृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

हांगकांग की ओर भी उन्नति संभव थी, यदि यहां स्थानाभाव न होता। उद्योगधंधे बढ़ सकते थे। इसके अलावा जब जोरों का तुफान आ जाता है तो इस से बहुत बड़ी हानी पहुंचती है। १९०६ के तुफान में बंदरगाह में खड़े ६० बड़ेबड़े जहाज और लगभग २४०० छोटेछोटे बोट डूबे या ध्वस्त हो गए। इस तुफान में १० हजार आदमियों की जानें गईं। फिर सन १९२३ में १.३० मील की गति का एक तुफान आया। चूंकि, इस बार लोग पहले से सचेत थे, इसलिए जनहानि तो नहीं हुई, पर माली नुकसान काफी पहुंचा। अब तो विज्ञान के साधनों के कारण सूचना समय पर मिल जाती है और यथासाध्य पहले ही से सावधानी बरती जाती है।

यहां चीनियों की अपने ढंग की छोटीछोटी दुकानें, बड़ेबड़े स्टोर्स से भिन्न हैं। इनके मोहल्ले भी एक तरह से अलग हैं। इन में गया और जो कुछ नजारा देखा, चक्कर आ गया। रास्ते में दुकानें लगी है। ऊपर से नीचे कपड़े के साइनबोर्ड टंगे हैं जिन में चीनी अक्षरों में जाने क्याक्या लिखा है। बच्चे सड़कों पर दौड़ रहे हैं। लोग जोरजोर से बोल रहे हैं। औरतें काला कुरता और घुटने से कुछ नीचा पाजामा पहने, काठ की चप्पलें लगाए चल रही हैं। फुटपाथ कहीं है, कहीं नहीं। दुकानें सड़कों के बीच तक फैली हैं। भीड़ के बीच से कहीं साइकिलें निकल रही हैं तो कहीं रिक्शे। मोटर आ गई तो दुकानें सिमटायी जाने लगीं। खानेपीने के खोंमचे लगें हैं और कहीं कढ़ाइयों में घोंघें, मेंढक और कहीं तिलचट्टे से लेकर सांप तक तले जा रहे थे। सड़कें क्या थीं मानो भानमती का पिटारा हों। बच्चेबूढ़े, औरतमर्द सभी सड़कों पर बैठे बातचीत में मशगूल। दुकानदारों और दरदस्तूरों का शोर। इन सब ने एक अजीबोगरीब हालत बना रखी थी। मैं ने मन ही मन सोचा इस से तो कलकत्ता की चीनी बस्ती कहीं साफ और दुरुस्त है। बचपन में हमने रोजर्स के विलायती चाकू देखे थे। बहुत ही तेज बेहतरीन। मगर यहां मैं ने जो चाकू चौदह आने में खरीदा, वैसा अब तक कहीं नहीं देखने में आया। जिलेट की ब्लेड की तरह तेज और चमक इतनी कि शक्ल साफ दिखाई पड़े। यहां की यह सौगात शायद अब तक प्रभुदयालजी के पास है।

हमारे एक मित्र श्री सुंदर झुनझुनवाला ने रात के भोज का आयोजन हिल्टन होटल में किया। आयोजन में स्थानीय प्रमुख भारतीय व्यापारियों के अलावा अन्य व्यवसायी और बैंकर भी सम्मिलित हुए। भारतीय राजदूत श्री सिंह भी आए थे। काठियावाड़ के किसी छोटी रियासत के राजा थे। अच्छे मिलनसार और हंसमुख लगे। भोज के तीन घंटे के आयोजन में यहां की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चर्चा चलती रही।

मैं ने यह अनुभव किया कि स्थानीय चीनी न तो ब्रिटिश शासन पसंद करते हैं और न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

च्यांगकाई शेक की सरकार पर ही उन्हें विश्वास था। चीन से भाग कर वे आए, फिर भी प्रायः आतेजाते हैं, क्योंकि उनके सगेसंबंधी अभी भी वहां हैं और उनके व्यापारिक संबंध भी बड़ी तादाद में हैं। वैसे चीन की लाल सरकार पर भी उनका भरोसा नहीं है, इसलिए संपत्ति सब यहीं जमा रखते हैं। ब्रिटिश सरकार अच्छी तरह जानती है कि लाल आंखें देखने पर उन्हें अपनी चादर समेटने में देर नहीं लगेगी। यह भी सही है कि उन की प्रतिक्रिया से शायद विश्वयुद्ध की चिनगारी धधक उठे, पर ब्रिटेन यह मौका आने नहीं देना चाहता, क्योंकि तब उसे यहां के बहुत बड़े व्यापार से हाथ धोना पड़ेगा। लाल चीन नाराज न हो जाये, इसलिए यहां की अंगरेज सरकार च्यांग के झंडे, जासूस और प्रचार को प्रोत्साहन नहीं देती।

च्यांगकाई शेक के कमजोर शासन ने लोगों को इतना परेशान कर दिया था कि उस पर से चीनियों का विश्वास उठ गया था। पर साम्यवादी शासन के बाद संपन्न जमींदार और व्यापारी कम्युनिस्टों की लूटखसोट से खत्म हो गए और साधारण जनता भी इसलिए परेशान है कि वहां जबरदस्ती काम लिया जाता है। पार्टी के अधिकारियों को तो खाना मिल जाता है पर दूसरे लोगों को नानाप्रकार का बहाने बता कर या कम काम करने की सजा के बतौर खाना कम दिया जाता है। 'व्यक्ति' स्वाधीनता है नहीं, इसलिए अपनी इच्छानुसार जीवन बिताना संभव नहीं, उन्नति और विकास की बात तो दूर रही, जन्म, जीवन और मृत्यु तक पर सरकार का नियंत्रण है। चीन में संपन्न से दरिद्र तो बनाया जाता है, पर दरिद्र से संपन्न नहीं सुखी भी नहीं। उस की छूट हांगकांग में है। इसलिए बहुत बड़ी संख्या में लोग यहां आ कर बस गए। सब तरह की सुविधाओं के बावजूद वहां के संभ्रांत चीनी ब्रिटिश शासन से प्रसन्न नहीं दिखाई दिए।

मैं ने वहां उपस्थित एक चीनी व्यवसायी से इस के बारे में पूछा तो उस का उत्तर था कि च्यांगकाई शेक के शासन में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार फैल गया था। जनता अभाव से कराह रही थी, जब कि शासक वर्ग और उसके संबंधी अनापशनाप खर्च करने के बावजूद विदेशों में करोड़ों रुपए जमा करा रहे थे। उस के बाद आया माऊत्से तुंग का साम्यवादी शासन। शुरूशुरू में तो लोगों ने इस रद्दोबदल का स्वागत किया। पर जब वैयक्तिक स्वतंत्रता नाम मात्र की भी नहीं रही और सदियों से चली आती संस्कृति को संपूर्ण रूप से नष्ट किया जाने लगा तो जनता ने विरोध करना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि लाखों व्यक्ति गोली से उड़ा दिए गए, क्योंकि उन सब को जेलों में रखकर खाना कपड़ा देना संभव नहीं था। लाखों परिवार सब कुछ वहीं छोड़ कर हांगकांग भाग आए। जिन के पास संपत्ति थी, उन्होंने यहां आ कर कारबार शुरू कर दिया और बाकी पहाड़ों की ढलान की गंदी बस्तियों में रह कर मजदूरी करने लगे। फिर भी यहां के चीनी समझते हैं कि वे पराधीन तो हैं ही। अपनी भूमि पर विदेशी अधिकार से आत्मसम्मान को धक्का पहुँचता है। मैं ने पूछा, "क्या चांग के कुओमिंगतांग का शासन चीन भूखंड पर पुनः स्थापित होने की आशा है?" उत्तर मिला, "कहा नहीं जा सकता पर इतना जरूर है कि च्यांग स्वयं तो वहां शायद ही कभी जा पाएगा।" उस की बातों से प्रवासी चीनियों के मन की कुछ झांकी मिली।

हांगकांग में एक बात हमें अखरी कि यहां पाकिस्तानी नागरिक जितने संगठित हैं, उतने भारतीय नहीं। भाषा और प्रादेशिकता का असर जिस रूप में वहां अपने लोगों में है, वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। विदेशों में चीनी इतने अधिक संगठित रहते हैं कि वहां उनका प्रभाव रहता है। सिंगापुर इसका स्पष्ट प्रमाण है। मलाया में रहते हुए उन्होंने अपनी सरकार बना ली और अब वह एक पृथक राज्य है। हम हैं कि मारिशश, फिजी, त्रिनिदाद और गायना में अधिक होते हुए भी उपेक्षित हैं।

सुना था कि कैंटन का आधा शहर पानी पर है। कैंटन जाना संभव नहीं था। चीन के प्रतिबंध की ऊंची दीवार थी, पर इस की झांकी हांगकांग में मिल गई। यहां के राजस्थान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बंधुओं ने हमें एक स्टीमर पार्टी में रात के समय आमंत्रित किया था। पार्टी अच्छी रही, काफी स्त्रीपुरुष आए थे। भारतीय राजदूत भी शामिल हुए थे। कार्यक्रम एक बजे रात को समाप्त हुआ। स्टीमर से ही हम यहां की नौका नगरी गए। मैं निकल पड़ा इसे देखने। छोटेबड़े बोट और सैमपान बंदरगाह के किनारे समुद्र पर काफी दूर तक थे।

लगभग दो लाख की आबादी इन्हीं नौकाओं और बोटों में रहती है। मकान, दुकान, स्कूल, अस्पताल, रेस्तरां सब कुछ यहां हैं। वीनिस और श्रीनगर में भी लोग नावों पर रहते हैं, पर वहां उन का उद्देश्य स्थायी आवास नहीं. केवल विहार मात्र है। यहां तो शहर ही लहरों पर नाच रहा है। पहुंचते ही शोर मचा। चीनी, अंगरेजी, "कम हियर, बैस्ट ड्रिंक, फाइन गर्ल, यंग गर्ल।" अंदाज हो गया कि नावों पर फ्रेंच रिवेरा और बंदरगाहों के बदनाम मोहल्ले भी हैं। धीरेधीरे थिरकती नावों पर एकदूसरी को पार करता हुआ अपने चीनी साथी ली के साथ नौका नगरी का चक्कर लगा आया। टिमटिमाती रोशनी में गरीबी की लहरों से जूझते हुए चीनियों के पीले चेहरे पर स्पष्ट अवसाद की छाया दिख रही थी। एक छोटा सा चीनी बालक बड़े गौर से बत्ती के चारों ओर चक्कर लगाते पतंगे को देख रहा था। बादामी आंखों की काली पुतलियां हलकी रोशनी में चमक रही थीं। उस की आंखों में जिज्ञासा थी मेरे मन में बारबार एक ही प्रश्न था, नया चीन कैसा बनेगा ?

ली ने कहा, "क्यों, बच्चा बहुत अच्छा लगा ? ले जाइए, यहां तो बिकते भी हैं, पर चोरीचुपके। कम उमर की लड़कियों का तो यहां से अब भी चालान होता है, मलाया और इदोनेशिया में।" श्री ली नौका स्कूल के अध्यापक थे। अपनी नौका के घर ले जाते हुए उन्होंने कहा, "गरीबी और जरूरत इनसानियत के तकाजे को नहीं मानती।" उन की आवाज में करुणा थी।

हम सब जिस समय कौलून के मुख्य घाट पर पहुंचे, रात के दो बज रहे थे। होटल पहुंच कर बिस्तर पर लेट गया। शरीर और मन, दोनों थके से थे। बार-बार नौका नगरी के मुख्य दृश्य याद आते थे। सोचने लगा कि कुछ वर्षों पूर्व ये भी तो चीन महादेश के नागरिक थे, साम्यवाद के थपेड़ों से घबरा कर उन्होंने स्वयं ही देश निकाला स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन सुबह नौ बजे टेलीफोन की घंटी ने जगाया। हमारे मेजबान रिशेप्शन रूम में प्रतीक्षा कर रहे थे। जल्दी ही तैयार हो कर उनके साथ कार से ओसाका जाने के लिए एयर पोर्ट के लिए रवाना हुए।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एशिया का सब से उन्नंत देश

जापान—१

बचपन में सुनते थे, 'छोटे' से देश जापान ने अपने से सौ गुने बड़े रूस को पछाड़ दिया जापान एशियाई राष्ट्र था । इसलिए यह सुन कर हमारे मन में एक प्रकार का हर्ष और ग होता था । बाजारों में या बड़ेबूढ़ों से जापान की चर्चा हम बड़े चाव से सुना करते थे । यह दे लगभग १६०० वर्ष तक दुनिया से अलग ही रहा । १६वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह दूसरे दे के संपर्क में आया । इस की कुशाग्र बुद्धि ने उन देशों के कौशल को पहचाना, परखा औ अपनाया । वीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में रूस की पराजय को देख कर दुनिया को प चला कि जापान कितना सबल और प्रबल है । संसार के राष्ट्रों की प्रथम पंक्ति में जापान क जगह मिली । प्रथम महायुद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों के गुट में शामिल हुआ और बंटवारे उमे भी हिस्सा मिला । यहीं से जापान के साम्राज्य का विस्तार हुआ और प्रभाव क्षेत्र भी ब गया ।

इस के बाद जापान अपनी औद्योगिक उन्नति में लग गया । औद्योगिक विकास इतिहास में उस की सफलता अद्वितीय और अनुकरणीय है । सन १६३०-३२ में सारा सं मंदी की चपेट में तबाह हो रहा था । ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका उत्पादन घटाने के लि बाध्य हो रहे थे । उन के कलकारखानों के बंद होने तक की नौबत आ गई थी, उस समय जापानी माल विश्व के कोने-कोने में बिक रहा था । उस की डबल घोड़े छाप की बो (सिल्क का कपड़ा) नौ आने गज में भारत के बाजारों मे बिक रही थी । आज भी उ टिकाऊपन और मुलायमी की प्रशंसा करते हुए लोग याद करते हैं । आश्चर्य की बात य कि इन दामों में जहाज भाड़ा, आयात शुल्क, आढ़तदारी आदि सभी खर्च शामिल थे । ब को याद होगा कि ऐसी पेंसिलें जापान से आती थीं जिन में लकड़ी नहीं होती थी । कागज पतली पट्टियों की परते होती थीं । न चाकू से छीलने की जरूरत न सांचे से बनाने की । परतें उतारीं, पेंसिल तैयार । गाढ़े काले रंग की लेड, खूब लिखते बनता था । दाम सिर्फ पैसे ।

जापान की औद्योगिक सफलता ने पश्चिमी राष्ट्रों को चौकन्ना कर दिया । उन की चेष्टा रहने लगी कि उन के देश और साम्राज्य के बाजारों में जापानी माल के प्रवेश यथासाध्य बाधा पहुंचाई जाए । प्रतियोगिता में जापान टिक न पाए इसलिए नाना प्रका बंधन, जापानी माल पर लगाए गए। भारत में मैनचेस्टर के कपड़ों के पर दस प्रतिशत आ कर था, जापानी कपड़ों पर २० से २५ प्रतिशत । फिर भी जापान के मुकाबले में इन्हें खानी पड़ी ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

औद्योगिक विजय और वैभव ने संभवतः जापान की लालसा बढ़ा दी । जापान का उत्पादन बढ़ रहा था, उन्हें माल खपाने के लिए नई मंडियों को खोज थी । पास ही विशाल चीन था, जो आलस, प्रमाद और आपसी लड़ाई के कारण असंगठित और पिछड़ा हुआ था । जापान उस पर झपट पड़ा । युद्ध लंबा चला।जीत जापान के लिए महंगी पड़ी, वह खुद भी जर्जर हो गया । अपनी साम्राज्य-वादी हरकतों के कारण उस ने पश्चिमी देशों के सिवाय एशिया की सहानुभूति भी खो दी ।

सन १६४१ में जापान जरमनी और इटली के धुरी राष्ट्र गुट में जा मिला और अमरीका तथा मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध में उतर पड़ा । अमरीका के बहुत बड़े और सुसज्जित पर्ल हार्वर में जंगी जहाजों के बेड़े पर अचानक हमला कर जापानी हवाबाजों ने जिस साहस और कौशल का परिचय दिया वह अपूर्व रहा है । गोलाबारूद लिए हुए जापानी छतरीवाज जहाजों के मस्तूलों में कूद पड़े । स्वयं वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन प्रशांत महासागर की महान अमरीकी सामरिक नौ शक्ति को उन्होंने पंगु कर दिया । इस तरह की देशभक्ति और वीरता हाल के भारतपाक संघर्ष में हमारे जवान ही प्रस्तुत कर सके हैं । सीने पर बम बांध कर शत्रु के दैत्याकार पैटन टैंकों के नीचे लेट जाना, छोटेछोटे नेट प्लेनों सहित विश्व में बेजोड़ गिने जाने वाले सेवर जेट विमानों से टकरा जाना, बलिदान, साहस और शौर्य की पराकाष्ठा है ।

पर्ल हार्वर में जापान की सफलता ने मित्र राष्ट्रों में आतंक पैदा कर दिया । एशिया में उन के साम्राज्यों के बहुत से देशों में जापान के प्रति आदर का भाव जग उठा । जापान ने अवसर का पूरा लाभ उठाया । उमड़ते बादल की तरह उसके सैनिक हिंद चीन, स्याम, हिंदेशिया, सिंगापुर, मलाया और बर्मा में छा गए । सिंगापुर में जापानी हवाबाजों ने इंगलैंड के 'प्रिंस आफ वेल्स' और रिपल्स जैसे प्रसिद्ध जंगी जहाजों के मस्तूलों में बम सहित घुस कर उन्हें उड़ा दिया । कलकत्ते पर आये दिन उन के हवाई जहाज मंडराने लगे । जापान अकेला ही पूर्व में मित्र शक्ति से मुकाबला कर रहा था ।

सन १६४३ में जरमनी और इटली लंबे युद्ध के कारण थकने लगे । उन का बल शेष हो गया और उन्होंने सन् १६४५ में घुटने टेक दिए । अब मित्र राष्ट्रों ने पश्चिम से निश्चित हो कर जापान के विरूद्ध पूरी शक्ति लगा दी । इस समय तक अमरीका अणुबम तैयार कर चुका था । ६ अगस्त, १६४५ को उस ने हिरोशिमा में अणुबम गिराया । तीन दिन बाद, ६ अगस्त को नागासाकी पर दूसरा अणुबम गिराया गया । असंख्य धनजन की हानि हुई । जापान के विचारकों और सम्राट ने राष्ट्र को विनाश से बचाने के लिए संधि का प्रस्ताव रखा ।

इस के बाद सात वर्षों तक जापान पर अमरीका का नियंत्रण रहा । जापान सम्राट कायम रहे लेकिन शासन अमरीका का रहा । जनरल मैकआर्थर बने सर्वोच्च अधिकारी एवं शासक । जापान की मूल भूमि को छोड़ कर उस के साम्राज्य के सारे देश छीन लिए गए । इन सात वर्षों में अमरीकी सैनिकों ने जापान में जो व्यवहार और आचरण किया वह किसी भी सभ्य देश के लिए लज्जा और ग्लानि की बात है । जापानियों ने सब कुछ धैर्य और अनुशासन के साथ सहा । उत्तेजित हो कर कभी भी ऐसा मौका नहीं दिया कि शासक को अत्याचार का बहाना मिल जाए । परिणाम यह हुआ कि अमरीका का जनमत स्वतः प्रभावित हुआ । जापान के प्रति मैत्री और उदारता का दबाव बढ़ने लगा । १६५१ में सेनफ्रांसिस्कों में जापान और अमरीका के बीच शांति संधि हुई । वह फिर से पूर्णतः स्वतंत्र हुआ । जापान के राष्ट्र प्रेम, निष्ठा और अनुशासन की ऐसी सफलता विश्व में बेजोड़ कहीं जा सकती है ।

बमबाजी से उस के शहर ध्वस्त हो चुके थे । व्यापारवाणिज्य और उद्योग नष्ट हो चुके थे । युद्ध के बाबत ५५ अरब रुपयों का उसे हरजाना देना पड़ा । साम्राज्य छीना जा चुका था । दूरदूर से भाग कर जापानी अपनी मूल भूमि में लाखों की संख्या में आ रहे थे ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अमरीकी सैनिक शासन ने नाना प्रकार की सामाजिक बुराइयां पैदा कर दी थीं । बेका
समस्या सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ी थी । हिरोशिमा और नागासाकी के अणु पीड़ि
विकलांग नागरिक और उनकी भावी संतति की भयावह समस्या थी ही । विश्व में उस की
प्रतिष्ठा नाम मात्र को रह गई थी । राजनीति के नाम पर दलबंदी का घुन घर कर चुका था
पड़ोस में चीन साम्यवादी बन कर पुराना बदला लेने की ताक लगाए था । यह हालत थी
आज से १४ वर्ष पूर्व जापान की, जब वह स्वतंत्र हुआ ।

और आज ? आज वह विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में से एक है । उद्योगव्यापार में पहले से
कहीं अधिक संपन्न और समृद्ध । विश्व के पिछड़े राष्ट्रों को आर्थिक सहायता दे रहा है
अमरीका और इगलैंड में उस के माल निर्यात हो रहे हैं । विदेशों में उसकी मदद से उद्यो
स्थापित किए जा रहे हैं । जापान मुस्करा रहा है ।

हम हैरत में हैं । १८ वर्ष हो गए, हमें स्वतंत्र हुए । हमारे पास खनिज पदार्थ और कच्चे
माल की कमी नहीं । जगह की कमी नहीं । फिर भी हम क्यों नहीं आगे बढ़ पा रहे हैं ? इन
सब बातों को समझने के लिऐ मेरे मन में जापान को देखने की प्रबल इच्छा थी ।

कार्यक्रम के अनुसार पूर्वी देशों में बर्मा, मलाया, सिंगापूर, हांगकांग और जापान की
यात्रा और तब अमरीका होते हुए यूरोप के रास्ते वापसी । मेरे मित्र श्री रामकुमा
भुवालका घुमक्कड़ वृत्ति के हैं । वह कई बार यूरोप और अमरीका हो आये थे । इस बा
उन्होंने विश्व भ्रमण का कार्यक्रम श्री हिम्मतसिंहका और मेरे साथ बनाया ।

हम ने बर्मा, मलाया, सिंगापुर और हांगकांग की यात्रा पूरी कर ली । हमारे पास टूरिस्
क्लास का टिकट था । जापान एयरलाइंस के अधिकारियों को कहीं से पता चला कि हम
भारतीय संसद के सदस्य हैं और उनके देश में वाणिज्य और उद्योग के विकास की जानकारी
के लिए जा रहे हैं, वे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने बिना किसी अतिरिक्त व्यय के 'डीलक्स' क्लास
में हमें जगह दी । हम मना करते रहे लेकिन उन का एक ही अनुरोध था, 'हमारा इतना म
आतिथ्य स्वीकार कर हमें अनुग्रहित करें ।' स्नेह और शालीनता के सामने हम विवश हो
गए ।

डीलक्स क्लास की सीटें बहुत आरामदेह होती हैं । चौड़ी होने कारण यात्रियों को कार्
सुविधा रहती है । इस क्लास की एक और विशेषता है कि शराब पीने की मनचाही छूट रहती
है । हम तीनों दूधलस्सी पीने वाले विशुद्ध निरामिष यात्री, इस का फायदा न उठा सके । ए
एयर होस्टेस के व्यवहार में जापानी नारी की सुन्दरता और सौजन्य की झांकी हमें जाप
पहुंचनें के पूर्व ही मिल गई । जेट हांगकांग एयर पोर्ट से उठा । मैं बेहद खुश था । वर्षों से प
हुई अभिलाषा पूरी होगी । 'सूर्योदय का देश निपोन' देख सकूंगा । सोचने लगा, 'चीनी औ
जापानी एक ही शक्लसूरत के हैं । संस्कृति में भी साम्य है । दोनों का लक्ष्य है, राष्ट्र की उन्न
और समृद्धि । गत महायुद्ध के बाद दोनों के जीवन में नवीन अध्याय शुरू हुआ । दोनों जर्जर
थे, बल्कि जापान पर तो अमरीकी शासन रहा है । फिर भी छोटा सा जापान विश्व
व्यापार, उद्योग और राजनीति में चीन से अधिक सफल और प्रतिष्ठासंपन्न है । लेकिन ग
की, राष्ट्र के नागरिकों की समृद्धि और सुख के लिए सर्वाधिक हितों का दम भरने वा
साम्यवादी सिद्धांतों वाला विशाल चीन सुखी और स्वावलंबी नहीं बन पाया । क्या राष्ट्र
उन्नति के लिए व्यक्ति और व्यक्तित्व का उन्मुक्त विकास ही अधिक महत्वपूर्ण है

हमें सूचना मिली कि हम जापान पहुंच रहे हैं । मेरी उत्सुकता बढ़ी । मैं ने नीचे की ओ
खिड़की से झांक कर देखा । जापान के द्वीपपुंज एशिया महाद्वीप के पूर्व में अर्धवृत भाग
धुंधले दिखाई पड़े । एयर होस्टेस ने मुस्करा कर अपनी दूरबीन मुझे दे दी । मैंने देखा फूलों
सजी, धानी रंग की चुनरी ओढ़े जापान की धरती के चरण सागर छू रहा है ।

ओसाका के एयर पोर्ट पर भारतीय दूतावास के सचिव हमें लेने आए । उनके म

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मलाया और हांगकांग के हमारे मेजमानों के मैनेजर श्री खेमका और श्री सोढानी भी थे। एयर पोर्ट पश्चिमी देशों की तरह व्यस्त और साफसुथरा देखा। विदेशियों को, विशेषत: यात्रियों को, किसी भी देश के निवासियों के आचार या व्यवहार का परिचय कस्टम से गुजरने पर सहज ही में मिल जाता है। ओसाका एयर पोर्ट में कस्टम के अधिकारियों, की तत्परता और भद्रता ने हमें बहुत ही प्रभावित किया। हमारे ठहरने की व्यवस्था होटल ओसाका में थी। रास्ते में हम ने जापानियों की स्वच्छता और परिमार्जित रुचि को लक्ष्य किया। सड़कें साफ, सड़कों पर चलने वाले स्वच्छ। सब कुछ जैसे स्वभाविक अनुशासन में हों।

हम होटल पहुंचे। हलका नाश्ता करते हुए आपस में ओसाका के कार्यक्रम पर विचार करने लगे। होटल पश्चिमी ढंग का था। श्री खेमका ने हमें बताया कि इस ढंग के होटल जापानी ढंग के होटलों से महंगे जरूर पड़ते हैं लेकिन हम लोगों के लिए अधिक आरामदायक हैं। आमतौर से पश्चिमी ढंग के होटलों में दो आदमियों के आवास के कमरे पचासपचपन रुपए प्रति दिन पर मिल जाते हैं। लंच पर लगभग आठ और भोजन पर दस रुपए प्रति व्यक्ति लग जाता है। जापानी ढंग के होटल जिन्हें 'इंस' (सराय) कहते हैं काफी सस्ते होते हैं। आवास और भोजन पर प्रति व्यक्ति अधिक से अधिक बारह पंदरह रुपए का खर्च आता है। लेकिन शाकाहारियों के लिए निरामिष भोजन वहां ठीक से नहीं मिलता। एक कठिनाई भाषा की भी है। इन के कर्मचारियों का अंगरेजी न जानना हमारे लिए तो बड़ी समस्या है। पश्चिमी होटलों में अंगरेजी के माध्यम से हम काम चला सकते हैं। एक और भी विचित्र बात इसके बारे में हमारे जानने में आई। जापानी तरीके के अनुसार इसमें स्नान गृह अलग-अलग नहीं हैं। स्त्रीपुरूष सभी एक साथ एक ही गुसलखाने में नहाते हैं। हम ऐसी रीति के अभ्यस्त नहीं, हमारे यहां तो नदियों में भी स्त्री और पुरूष के घाट अलग-अलग हैं।

टोकियो के बाद जापान का दूसरा बड़ा नगर ओसाका है। इसे नगर नहीं महानगर कहना अधिक उचित होगा। यह शहर योदो नदी के मुहाने पर बसा हुआ है और टोकियो से लगभग तीन सौ पचीस मील की दूरी पर है। आबादी बहुत ही घनी है, करीब तीस लाख। फिर भी न तो गंदगी है और न जगह की तंगी दिखाई देती है। ओसाका जापान का वेनिस सा लगा। शहर नदी के दोंनों किनारों पर है और नदी के बीच टापू पर भी। वेन्निस की तरह यहां भी शहर के बीच नहरों का जाल सा बिछा है। लगभग एक हजार पूलों से इस के विभिन्न भाग एकदूसरे से संबद्ध हैं। ओसाका जापान के व्यापार, वाणिज्य और उद्योग का सबसे बड़ा केंद्र है। यहां विभिन्न प्रकार के धातुओं एवं रासायनिक पदार्थों के कारखाने तथा रेशम, कपड़े और चीनी इत्यादि की बड़ीबड़ी मीलें हैं। संपूर्ण जापान के कुल २१०० अरब येन के निर्यात का आधे से अधिक का श्रेय ओसाका को है। यहां समुद्री जहाज बनाने के कारखाने हैं। पहले ओसाका का बंदरगाह बहुत उन्नत नहीं था युद्ध के बाद जापान ने जब नए सिरे से अपने उद्योग एवं वाणिज्य का पुनर्गठन किया तब इसके बंदरगाह का नवनिर्माण शुरू हुआ। समुद्र से लगभग बारह सौ एकड़ जमीन निकाली गई। बड़ेबड़े जहाजों की मरम्मत एवं ठहरने के लिए आंधुनिक साधनों से संपन्न डैक बनाए गए।

जापानी उद्योग क्षेत्र में एक विशेष बात देखने को आई कि यहां भी हमारे देश की तरह बड़ेबड़े उद्योग कुछ परिवारों के नियंत्रण में हैं। जिस तरह हमारे यहां टाटा, बिरला, मफतलाल, बाजोरिया आदि के प्रतिष्ठान हैं, उसी प्रकार उद्योग वाणिज्य में वहां भी मित्सुबिशी, मित्सुई, नीशी, मात्सु आदि के समृद्ध और संगठित प्रतिष्ठान हैं। हम जहाज बनाने का एक बड़ा कारखाना देखने गए। हम ने देखा कि दो विशाल समुद्री जहाज निर्मित हो रहे हैं। कारखाने के मैनेजर ने हमें बड़ी चाव से सारी बातें समझाई। बड़ा आश्चर्य हुआ हमें, जब यह पता चला कि इंगलैंड की किसी एक कंपनी के लिए भी जहाज बन रहा है। कभी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इंगलैंड विश्व में सबसे बड़ा जहाज निर्माता माना जाता था। उसी इंगलैंड के लिए जापान जहाज बना रहा है। आज विश्व में जहाज निर्माण में जापान सबसे आगे है। उसका व्यापारिक वेड़ा अमेरिका, ब्रिटेन दोनों से टक्कर ले रहा है। हमारे लिए यह भी ध्यान देने की बात थी कि ओसाका का केवल एक जहाज निर्माता प्रतिष्ठान जितना काम करता है उसका आधा भी हम आज तक अपने विशाखापत्तनम में नहीं कर पाए। सूती कपड़े की मील भी हमने देखी। करघों पर औरतें ही थीं। हमारे यहां भी पाट, सूती या रेशम के करघों पर औरतें मीलों में काम करती हैं। लेकिन दोनों के काम में कितना अंतर है। २५ करघों पर एक औरत को तेजी से काम करते देख चकित हो जाना पड़ा।

ओसाका के बारे में कहा जाता है कि जापान के शहरों में पर्यटकों के लिए आकर्षण की वस्तुएं यहां सब से कम हैं। संभवतः यह बात अमरीकन पर्यटकों के लिए सही हो लेकिन हमारे जैसों के लिए तो यहां दर्शनीय स्थलों की कमी नहीं है। दोपहर का खाना खाने के बाद हम शहर में घूमने निकले। जुलाई का महीना था लेकिन समुद्र के किनारे होने के कारण गरमी बहुत नहीं थी। जापान का मौसम समशीतोष्ण है। ओसाका में बहुत ऊँचे और बड़ेबड़े मकान अधिक नहीं हैं। भूकंप के प्रकोपों के कारण लकड़ियों के मकान बनाने की परम्परा रही है। अब आधुनिक ढंग के भी तेजी से बन रहे हैं।

शहर में कमर्शियल म्यूजियम, कला और विज्ञान के संग्रहालय, चिड़ियाखाना और बौटेनिकल गार्डेन भी हैं। लेकिन पेरिस के लूव्रे और लंदन के म्यूजियम देखने के वाद इन को देखने के लिए हमारे मन में कोई उत्साह नहीं था। यों तो यहां के सभी पार्क अच्छे हैं क्योंकि जापानी प्रकृति के पुजारी और फूलों के शौकीन होते हैं, फिर भी तेन्नोजी पार्क सबसे अधिक सुंदर लगा।

शहर की एक नहर से गुजरते हुए हम वहां के बुद्ध मंदिर में गए। बुद्ध की प्रतिमा के सामने धूपबत्तियां जल रही थीं। तथागत के सौम्य, शांत, तेजोमय मुखमंडल को देख चित्त प्रसन्न हो गया। मंदिर छठवीं शताब्दी का है। जापानी वास्तुकला का शुद्ध निखार इस में मिला। शांत वातावरण और स्वच्छता देखकर एक बार मन में प्रश्न उठा, हमारा देश भी तो मंदिरों का देश है लेकिन कितना अंतर है दोनों में ? भिखारियों और पुजारियों का शोरगुल, साथ ही मितली लाने वाली गंदगी ! एक भाग में हम ने हिदोयोशी का दुर्ग देखा। खंडहर सा हो रहा है। फिर भी है रोबदार। जापान की १६वीं शताब्दी की सामंतशाही की यादगार है। गाइड ने हमें बताया कि किस प्रकार अपनी देशभक्ति और वीरता के कारण हिदोयोशी ने जापान के अधिकांश भाग को जीत कर एक सूत्र में बांधा। उस समय जापान में भी विदेशी पादरी लोगों को क्रिस्तान बना रहे थे उस ने जैसुइट पादरियों को अपने जीवन काल में किसी भी तरह जमने नहीं दिया। उस का विश्वास था कि विदेशी धर्म के साथसाथ विदेशी संस्कृति कुसंस्कार के रूप में घर कर लेती है। हिदोयोशी के कारण ही औसाका का महत्व बढ़ा। पहले तो यह एक गाँव सा था और इसका नाम था नानीवारा (लहरों के प्रेयसी)।

दूसरे दिन शाम को हम ओसाका के बंदरगाह पर घूमने गए। संसार के विभिन्न भागों के जहाज माल लादने उतारने में लगे थे। भारत का भी एक जहाज देखा। रद्दी लोहा (स्क्रेप आयरन) उतारा जा रहा था। जिसे हम रद्दी के भाव बेचते हैं, जापान उसे काम में ले कर और उसकी स्टेनलेस स्टील की चद्दरें बना कर संसार के बाजारों से धन बटोरता है।

लौटते समय हम ने रात का खाना ओसाका के एक गुजराती रेस्तरां में खाया। एक गुजराती दंपत्ति इस होटल को खुद चलाते हैं। पत्नी रसोई बना देती हैं और पति खाना परोसते हैं तथा अन्य कामकाज संभालते हैं। ओसाका में कुछ भारतीय स्थायी तौर पर रहते हैं। व्यापार का केंद्र होने के कारण आतेजाते भी हैं। इस से इनकी अच्छी आय है। हमें भोजन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खूब रुचा। आत्मीयता के वातावरण से थकान मिट गई और मन तृप्त हो गया।

ओसाका में सिनेमा, थियेटर और नाइट क्लब काफी संख्या में हैं। लेकिन ओसाका का 'बुनराकू' कठपुतली का नाटक सबसे अधिक विख्यात है। यों तो सारे जापान में बुनराकू के कई रंगमंच हैं फिर भी यहां की बुनराकू नाट्यशाला प्रतिष्ठित मानी जाती है। हमारे मेजबान हमें यहां ले आए। मेरी धारणा थी कि संभवतः हमारे राजस्थान के कठपुतली के नाच की तरह कुछ होगा। लेकिन हमने इसे भिन्न पाया। कठपुतलियां बड़े आकार की थीं, अत्यंत कलापूर्ण। इन का आकार औसत मानव शरीर से आधा था। और इनका संचालन तीन कठपुतली बालक कर रहे थे। पार्श्व संगीत के साथसाथ घटनाओं का उतारचढाव काफी प्रभावशाली लगा। भाषा न समझने के कारण पूरा आनंद तो न ले सका पर इतना समझ पाया कि मध्ययुगीन किसी घटना पर कथावस्तु है। यहां देखा कि दर्शक आनंद विभोर होकर न तो शोर मचाते हैं और न अनुशासन भंग करते हैं।

ओसाका से हम कोबे गए। यह एक प्रकार से ओसाका का पूरक अंग कहा जा सकता है। यह करीब बीस मील दूर है और समुद्र के किनारे है। जलवायु ओसाका से अच्छी है इसलिए साधनसंपन्न लोग यहीं रहते हैं और कारबार या दफ्तर के लिए ओसाका जाते हैं।

यहां करीब तीन साढ़ेतीन सौ घर भारतीयों के हैं।जापान में सब से अधिक वे यहीं हैं, जिन में गुजरातियों की संख्या अधिक है। ये मोतियों का तथा अन्य जापानी वस्तुओं के निर्यात का काम करते हैं। हमारे साथी श्री दुर्गाप्रसाद के बहनोई और बहन यहां रहते हैं। इस से हमारी यात्रा और भी सुविधाजनक हो गई। हमें उनके यहां भारतीय भोजन तो दोतीन बार मिला ही, साथ ही ताश भी खेला। उन के साथ हम 'फेनिकूलर' के पास की एक पहाड़ी पर गए। मोटे रस्से के सहारे लटकते हुए बक्सनुमा पिंजरे मे बैठ कर यात्री आयाजाया करते हैं। यहां से कोबे का दृश्य बड़ा सुन्दर लगा। ओसाका की अपेक्षा कलकारखाने कम होने के कारण यहां की प्राकृतिक शोभा अधिक आकर्षक लगी।

ओसाका में जहां व्यस्त जीवन का वातावरण है वहीं कोबे में कुछ रईसी और मौजमस्ती देखने में आई। हम ने यहां ठेठ जापानी ढंग के मकान देखे। जापान में भूकंप प्रायः आया करते हैं। इसलिए यहां अन्य देशों की भांति विशाल मकान या भवन बनाने की परिपाटी नहीं रही है। जापानी मकानों की अपनी मौलिक विशेषता है कि ये हल्के होते हैं और कम से कम स्थान पर लकड़ियों के बनते हैं। प्रत्येक मकान में एक छोटा सा बाग होता हैं। काफी सुन्दर और सुरुचिपूर्ण। कमरों में.दिवारें चिकों की या बांस की पतली खपचियों पर कागज लगा कर बनती है, जो आवश्यकतानुसार हटाई जा सकती हैं। फर्नीचर अथवा सामान वे सिर्फ जरूरत भर के लिए रखते हैं और वह भी हल्के और छोटे। मैं एक जापानी घर में गया। अपने यहां हम जिस तरह घर के अन्दर जूते नहीं ले जाते उसी तरह जापानी घरों में जूते बाहर ही खोलने पड़ते हैं। जूते उतार कर केनवास की चप्पलें पहन हम अन्दर गए। साफ फर्श, दीवारों पर चित्रकारी, खिड़कियों पर परदे और गुलदस्ते। सजावट में भड़कीलापन नहीं बल्कि सादगी और सुरुचि देखी। गृहपत्नी और उनके बच्चों ने जापानी तरीके से प्रणाम किया। अभिवादन का उन का तरीका बहुत कुछ भारतीयों जैसा है पर वे हाथ जोड़ कर झुके हुए पीछे हटते हैं।

जापानी कमरे के बीच एक नीची सी टेबल रहती है। इसी के चारों ओर बैठ कर लोग भोजन करते हैं। हमारे घरों की तरह जापान में भी पारिवारिक जीवन में बड़ेछोटों के बीच मानमर्यादा का बहुत ध्यान रखा जाता है। लौटते समय हम फलों के बाजार से गुजरे। अच्छे से अच्छे फल हम ने देखे। दाम हमारे यहां से कम। खरबूजे भी देखने में आए। हम ने खरीदा। बहुत ही स्वादिष्ट था। हमें पता चला कि सिवाए आम के प्रायः सभी फल जापान में होते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जापानी अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग रहते हैं और विदेशों से ऐसे फल या खाद्य सामग्री नहीं आने देते जिससे उनके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़े। आम इस वर्ग में कैसे आया इसका आश्चर्य है। शाम को शहर घुमने निकले। होटल, रेस्तराँ, नाइट क्लब, थियेटर और सिनेमा बहुत से हैं।

कोबे बिजली के प्रकाश में मानों सारी रात झूमतानाचता है। एक मोहल्ले से हम गुजर रहे थे, देखा कि लंदन के सोहों और पेरिस के मोमार्त की तरह यहां भी लड़कियां मेकअप किये गलियों में चक्कर लगा रही है। राह चलते को अर्थ भरी नजरों से देख रही है। समझने में देर न लगी कि कोबे भी आखिर बंदरगाह है। महीनों समुद्र गुजार देने का साधन हर बंदरगाह पर होता है। चाहे वह पश्चिम का हामवुर्ग और मार्सलीज हो या पूर्व क़ा सिंगापुर और हांगकांग।

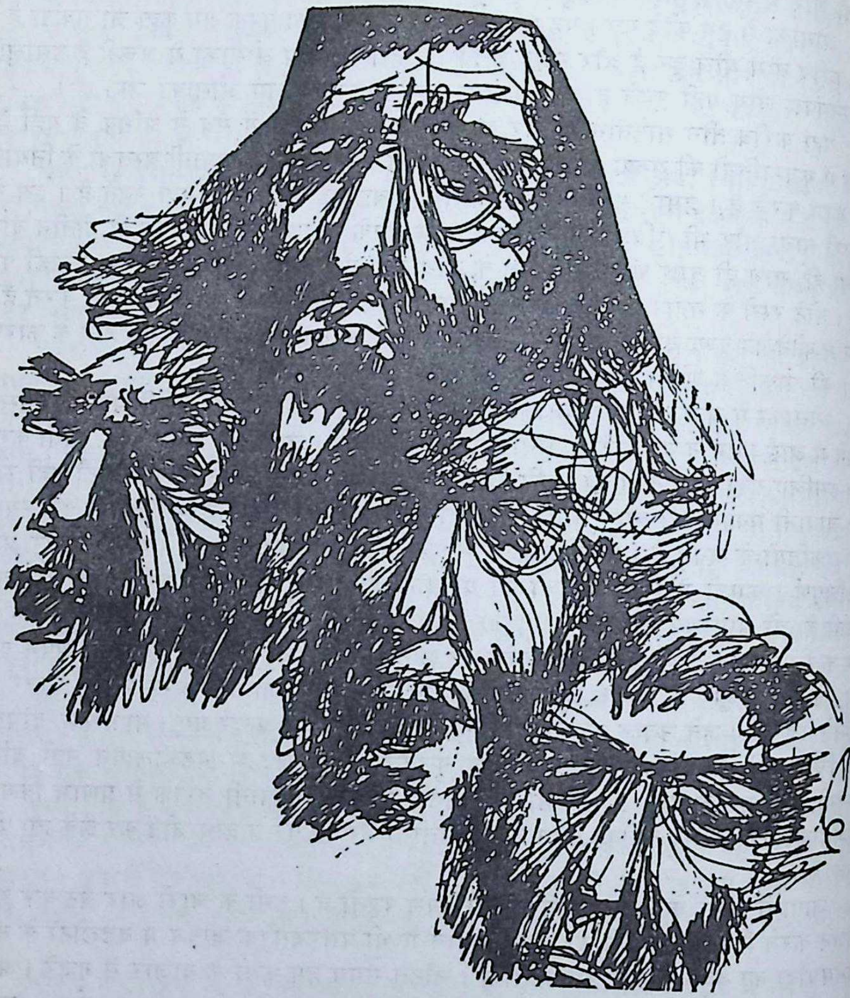

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संसार का बेजोड़ शहर
टोकियो

ओसाका से टोकियो जा रहा था। ट्रेन का सफर था पर अनुभव नया हो रहा था। ट्रेन की रफ्तार १०० मील प्रति घंटे की थी। जापान की ट्रेनों के अनुसार यह बहुत तेज नहीं थी, क्योंकि वहां तो अब १३० मील की गति से चलने वाली ट्रेनें भी है। ट्रेन में कांच के बने कक्ष थे और यात्रियों के बैठने के लिए आरामदेह सोफे लगे हुए थे। चारों ओर के दृश्य इसमें बैठकर आसानी से देखे जा सकते हैं। स्वीडन, स्विट्जरलैंड और ब्रिटेन की ट्रेनों की तरह जापान में भी यात्रियों के आराम का बहुत ख्याल रखा जाता है। खानेपीने के साधन, दवा चिकित्सा की व्यवस्था आदि रहती है। हम जिस कक्ष में यात्रा कर रहे थे उसे 'आबजरवेटरी कार' कहा जाता है। इस के साथ एक और डब्बा रहता है जो चारों ओर से खुला रहता है, केवल ऊपर छत रहती है। एक बरामदा भी इस में रहता है। मैं बरामदे में जा कर खड़ा हो गया। नदी नाले, पहाड़, गांव सभी मानों क्षण मात्र के लिए सामने आते और मुस्करा कर ओझल हो जाते थे। देख रहा था चप्पा-चप्पा जमींन काम में लाई गई है। धान की सुनहरी बालियां जापानी जीवन में सोना बिखेरने के लिऐ झूम रही है। जापान छोटा सा देश है, इस का तीन चौथाई भाग पहाड़ी है। जगह कम है और आबादी घनी। फिर भी खाद्यान्न में जापानी स्वावलंबी हैं। आएदिन जलूस निकाल कर शासन कीं व्यवस्था को विगाड़ते नहीं।

यह बात नंहीं कि जापान में दलबंदी नहीं है। है, और खूब जोरों, पर उन में वह उत्तेजना नहीं है जो हमारे यहां है। दक्षिण पंथी और वाम पंथी हमारे देश की तरह वहां भी हैं। कम्युनिस्टों ने बड़े जोड़तोड़ लगाए, तोड़फोड़ की कोशिशें की, पर जनता ने जब उन्हें पहचाना तो वे कहीं के न रहे। जापानी संसद में उनका प्रतिनिधित्व करने वाला अब केवल एक व्यक्ति रह गया है। दक्षिण पंथी परंपरावादी हैं, ब्रिटेन की कंजर्वेटिव पार्टी की तरह। वाम पंथी में समाजवादी हैं। इन के अलावा एक दल जनतंत्री समाजवादी विचारों का है जिन्हें मध्यममार्गी कह सकते हैं वे अतिवादी विचारों के विरूद्ध है चाहे वह दक्षिण पथी हों या वाम पंथी। सरकार की नीति को अपनी तरफ मोड़ देने लिए हरेक का दवाव रहता है। लेकिन सभी शांतिपूर्ण तौरतरीके में विश्वास करते हैं। सभी की मान्यता है कि शिल्पोद्योग की उन्नति हों, निर्यात बढ़े, विदेशों से अच्छे संबंध रहे, राष्ट्र की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़े तो अन्न और आबादी की समस्या अपनेआप हल हो जाएगी।

दूर से फूजी यामा दिखाई पड़ा। बर्फ की चादर ओढ़े मानो कोई व्यक्ति मौन तपस्या में लीन है। यह जापान का सुप्त ज्वालामुखी है, करीब २५० वर्षो से शांत है। इस की उंचाई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करीब १२,२५० फुट है। जापान में इतनी ऊंची चोटी और किसी पर्वत की नहीं है। हमारे यहां के पर्वतों की तुलना में जापान के पहाड़ बहुत छोटे हैं फिर भी फूजी जापान का नगराज है और उस का प्रतीक भी। इसे देखने के लिए दूरदूर से लोग आया करते हैं।

टोकियो पास आता जा रहा था। ट्रेन राजमार्गों को आड़ेतिरछे पार करती जा रही थी। पक्के, ऊंचे मकान और कारखाने मिलने लगे। ट्रेन शहर के बीच से गुजरती हुई सेंट्रल स्टेशन जा पहुंचीं। किसी भी पाश्चात्य रेलवे स्टेशन की तुलना में यह कम नही लगा। यह जापान का सब से बड़ा और अत्यंत व्यस्त रेलवे स्टेशन है। यहां से भी प्रति दिन जापान के विभिन्न भागों के लिए दूर सफर की लगभग १५० ट्रेनें छूटती है। स्टेशन देख कर मैं बड़ा प्रभावित हुआ। पूछने पर पता चला कि १३० मील प्रति घंटे की गति वाली १८ ट्रेनें ओसाका और टोकियो के बीच शीघ्र ही चलेंगी।

हमें लेने के लिए स्टेशन पर दूतावास के प्रतिनिधि आए थे। आम तौर से जापानी मझोले कद के होते हैं, भारतीयों से छोटे और हलके। इसलिए स्टेशन पर काफी भीड़ रहते हुए भी हम ने उन्हें देख लिया। उनकी लम्बाई काफी अच्छी थी। सिर पर साफा और बड़ीबड़ी डाढ़ीमूछों वाली शानदार शक्ल को पहचानने में दिक्कत नहीं हुई।

दूतावास ने हमारे लिए गिजा होटल की व्यवस्था कर दी थी। कार्यक्रम भी उन्हीं के सलाहसे तय था यहां भी कलकारखाने देखने थे पर उतने अधिक नहीं जितने ओसाका में। उद्योगव्यापार के सचिवालय और विभिन्न संस्थानों से मिल कर आवश्यक जानकारी भी लेनी थी।

मेरा खयाल है कि टोकियो अपनेआप में संसार का बेजोड़ शहर है। हो सकता है न्यूयार्क और लंदन विस्तार में टोकियो से बड़े हों, लेकिन जनसंख्या और जीवन की मुसकान जो टोकियो में है, वह दूसरी जगह नहीं। लंदन में रास्ते चलने वालों या ट्रेन, बस में बैठे लोगों के संजीदे चेहरों को देख कर ऐसा लगता है कि या तो गूंगे हैं या किसी से लड़ कर आए हैं।

टोकियो बहुत ही व्यस्त नगर है। राजधानी भी है व्यापारउद्योग का प्रमुख केन्द्र भी एक करोड़ से अधिक अबादी वाले इस शहर की सफाई और सुव्यवस्था देख कर हम चकित रह गये। न्यूयार्क, मास्को और लंदन की बात होती तो हमें आश्चर्य नहीं होता। कारण, कि वे पाश्चात्य शहर हैं। पर टोकियो? यह तो एशियाई है, हमारा पड़ोसी है। कलकत्ता, दिल्ली और बम्बई में इस से आधी आबादी ही है यहां हमारी व्यवस्था अनियंत्रित हो जाती है। कहीं पानी है तो बिजली नहीं, बिजली आई तो गैस गायब। सड़कों पर कूडे के ढेर। रात में पटरियों पर सोते हुए लोगों की कतारें। टोकियो में यह नहीं दिखता। हमारे यहां के नगरनिगम के सदस्य और कर्मचारी आपस में आएदिन के झगड़ों को छोड़ कर नगर की सुगम व्यवस्था की जानकारी के लिए यदि टोकियो, ओसाका और सेनफ्रांसिस्को जा कर देखें तो अधिक लाभ होगा।

शहर घूमने के लिए टोकियो में हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने हमारी सब प्रकार की व्यवस्था कर दी, इसी लिए हम थोड़े समय में बहुत कुछ देख सके। भारतीय पर्यटकों को चाहिए कि जहां कहीं भी जाएं, अपने देश के दूतावास में जा कर उन की सलाह ले लें इस प्रकार वे अनावश्यक धन और समय के खर्च से बच सकते हैं।

दूसरे बड़े शहरों की तरह टोकियो घूमने के लिए यात्री सब से उत्तम साधन है। यह आरामदेह है और खर्च भी कम पड़ता है। गाइड से सब जगहों का और जापानी जीवन का परिचय भी मिलता रहता है। अब तो अपने यहां भी बड़ेबड़े शहरों में इस प्रकार की व्यवस्था पर्यटक विभाग की ओर से की गई है। शहर के विभिन्न स्थानों से हमारी बस गुजर रही थी। हम पांच साथी थे। प्रभुदयालजी और रामकुमारजी तो साथ ही दिल्ली से चले थे और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुर्गाप्रसादजी व प्यारेलालजी हांगकांग से साथ हुए। ओसाका में ये हमारे मेजबान थे। बाहर जुलाई की गरमी थी पर बस ताप नियंत्रित थी, इसलिए परेशानी नहीं रही।

गाइड एक महिला थी। बड़ी विनम्र और मृदुभाषी। अंगरेजी में समझाती जा रही थी। मैं ने देखा कि उस का यह प्रयास था कि जापान के बारे में विदेशी अच्छी जानकारी पा सकें। इसलिए जापानी समाज, राजनीति, इतिहास, संस्कृति और उद्योगधंधों के बारे में बताती जा रही थी। इस प्रसंग में मैं यह बताना चाहूंगा कि हमारे देश के गाइडों को अभी बहुत कुछ सीखना है। मै ने स्वयं इस बात को कलकत्ता और बनारस में देखा है कि हमारे गाइड विदेशियों को कुछ ऐसे स्थानों पर भी ले जाते हैं जो हमारी सरकार, समाज और देश के लिए शोभनीय नहीं हैं। दशाश्वमेध घाट पर मैं ने विदेशियों को वहां के भूखेनंगों का फोटो लेते देखा है। वे अपने देश में इन का प्रचार करते हैं। हमारी सरकार को इस दिशा में विशेष ध्यान रखना चाहिए।

टोकियो २३ भागों में विभक्त है। शहर के बीच से शुनिदा गावा नदी बहती है और कई नहरें हैं जिन पर खूबसूरत पूल बने हुए हैं। शहर का क्षेत्रफल लगभग ८०० वर्ग मील है। दक्षिण की ओर खाड़ी में सात छोटेछोटे द्वीप भी हैं।

जापान में प्रति वर्ष लगभग ५० बार भूकम्प के धक्कें आता है, लेकिन यहाँ का आधुनिक और शानदार इमारतों को देख कर इसका आंभास नहीं होता। गत महायुद्ध में बमबारी और अग्निकांड से शहर के करीब ८ लाख घर जले या नष्ट हुए। आज उसका चिन्ह तक नहीं मिलता। जो नए घर बने हैं वे पहले से मजबूत और सुन्दर हैं। गाइड बता रही थी कि यद्यपि हम परिवार नियोजन पर पूरा ध्यान रखते हैं फिर भी हर चौथे मिनट में एक बच्चा पैदा होता है और बारहवें मिनट पर एक व्यक्ति मरता है, वर्ष में तीन साढ़ेतीन लाख की आबादी बढ़ती जाती है।

टोकियो दिल्ली, रोम और लंदन की तरह प्राचीन नही है फिर भी जापान के गौरवमय इतिहास से संबंधित है। प्राचीन काल में इसका नाम ईदो था। तोकुगावा शोगुनो (राज्यपाल) ने इसे १६०३ ई० में अपनी राजधानी बनाया। तभी से ईदो का महत्व बढ़ा और एक नई संस्कृति का विकास हुआ जो पुरानी राजधानी क्योतो से भिन्न थी। मेइजी शासनकाल में १८६४ में ईदों में स्थायी रूप से जापान की राजधानी प्रतिष्ठित हुई।

शहर के बीच में राजप्रासाद है। नहरों से घिरे करीब २५० एकड़ के क्षेत्रफल पर नाना प्रकार के सुन्दर बाग बगीचों के बीच कई महल और भवन हैं। इतने व्यस्त व्यावसायिक और औद्योगिक केन्द्र के बीच होते हुए भी यहाँ का वातावरण अत्यन्त शांत और सौम्य है। घनी आबादी और जगह की कमी के बावजूद शहर के बीच इतने बड़े क्षेत्र को महज एक परिवार के लिए छोड़ रखना सिद्ध करता है कि जापानी अपने सम्राट को व्यक्ति नहीं देवता मानते हैं और उसके प्रति आंतरिक स्नेह और श्रद्धा रखते हैं। परंपरा के अनुसार वे अपने सम्राट को मिकाडो कहते हैं और उसे सूर्य का पुत्र समझते हैं। विश्व में शायद ही कोई सम्राट आज के युग में अपनी प्रजा द्वारा इतना समादृत है।

जापानी तौरतरीकों से हमें प्रत्यक्ष परिचित कराने कि उद्देश्य से हमारी गाइड ने एक जापानी परिवार में हमारा भोजन का कार्यक्रम बनाया। हम सभी यात्री वहाँ गए। जापानी तरीके से भोजन बनते और परोसते देखा। शिष्टाचार में भारतीय संस्कृति की छाप निश्चित रूप से लगी है। पता नहीं तेल था कि चर्बी जिस में मछली तली जा रही थी। उसकी गंध से हम पांचों शाकाहारी बंधु घबरा गए। हमारे अलावा दूसरे अमरीकन और यूरोपियन बड़े गौर से पाक कला की बारीकियों को समझने लगे। चावल के साथ कुछ घोंघे की तरकारी और छोटी कच्ची मछलियों का समन्वय हमारी रुचि के अनुकूल नहीं था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम ने कोकाडेन का ज्यूडो हाल देखा । ऊंचा और बड़ा सा कमरा था साजसामान कुछ भी नहीं । देखा, जमीन पर तातामी (चटाइयां) बिछी हुई हैं । जूदो के छात्र एकदूसरे से गुथे हुए हैं, जैसे अखाड़े में पहलवान भिड़ते हैं । जूदो को ज्युज्युत्सु भी कहते हैं । यह जापान की अपनी विद्या है । अब तो विश्व के विभिन्न देशों में इसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है क्योंकि बिना हथियार के केवल दांव के इशारे से अपने से कहीं बलवान प्रतिपक्षी पर काबू पा लेना बहुत बड़ी बात है । इस में शारीरिक बल का महत्त्व नहीं, बल्कि दांवपेच, स्फूर्ति और बुद्धिमानी की जरूरत पड़ती है ।

हम यहाँ का विश्वविद्यालय भी देखने गए । सौ एकड़ जमीन पर स्थित है । अनुशासन, शिष्टता और शिक्षा जापान की राष्ट्रीय विशेषता रही है । किसी समय हमारे यहां भी ये बातें थीं, इसी लिए जीवन संयम और परिश्रम के कारण आनंदमय था । आज हमारी शिक्षा पद्धति लड़खड़ा रही है और हमारे छात्रों में नैतिकता और अनुशासन का अभाव हो गया है। जापान ने अपनी शिक्षा पद्धति में पाश्चात्य तरीकों को इस ढंग से अपनाया है कि राष्ट्र की मौलिकता जरा भी प्रभावित नहीं हुई है । विश्व में जापान सर्वाधिक शिक्षित देश है । साक्षर नहीं, बल्कि ९८ प्रति शत शिक्षित वहां मिलेंगे । जापानी शिक्षा की आधारभूत विधि में लिखा है: "हम व्यक्ति की गरिमा का आदर करेंगे । सत्य और शांति से प्रेम रखने वाले नागरिक तैयार करेंगे । जापान में स्त्रीपुरुष सब को सामान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है ।"

टोकियो के विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग, कानून, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, कृषि, डाक्टरी एवं विज्ञान की ऊंची से ऊंची पढ़ाई होती है । विश्वविद्यालय का फाटक लकड़ी का बना है । पुराना तो जरूर है, पर लगता है सुन्दर । अहाते में खेलने का मैदान, जिम्नाशियम, तैरने का तालाब और क्लब भी हैं । टोकियो में विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। सरकारी विश्वविद्यालय के अलावा सरकारी और अर्ध सरकारी शिक्षा के अन्य केंद्र भी हैं ।

कलकत्ता के बड़ाबाजार अंचल की तरह यहां का व्यावसायिक और अन्य व्यापारिक केंद्र मारूनोची है । टोकियो का मुख्य रेलवे स्टेशन, बैंक, इंश्योरेंस एवं व्यावसायिक संस्थाओं के बड़ेबड़े भवन इसी अंचल में हैं । शहर घूमते हुए हम ने देखा कि लंदन की तरह यहां भी भूगर्भ ट्रेनें हैं जो शहर के विभिन्न भागों को एकदूसरे से मिलाती हैं । टैक्सियों की कतार तो सड़कों पर चलती ही रहती हैं । हम ने तीन तरह की टैक्सियां यहां देखीं—बड़ी, मझोली और छोटी। इनके किराए की दर भी अलगअलग हैं।पता चला कि इन टैक्सी चालकों का व्यवहार बहुत ही शिष्ट होता है । मिस्र, रोम या भारत के टैक्सी वालों से बिल्कुल अलग ।

यात्रीबस टोकियो के युइनो पार्क में रुकी । यों तो टोकियो में बहुत से पार्क हैं। अधिकांश स्मारक और मंदिरों के साथ छोटेछोटे उद्यान हैं । लेकिन युइनो पार्क इन सबसे भिन्न है । यह बाग करीब २०० एकड़ जमीन पर बनाया गया है । इस में संग्रहालय, पुस्तकालय, साइंस, म्यूजियम और चित्रशाला है । टोकियो का प्रसिद्ध चिड़ियाघर भी यहीं है । इन के अलावा तोशुगू का सुन्दर पैगोडा भी यहीं है ।

शाम हो चुकी थी । हमारी बस हमें गिंजा ले आई । पेरिस का सांएलेजां, लंदन की पिकाडिली और न्यूयार्क के फिफ्थ एवेन्यू की तरह टोकियो के गिंजा की शाम और शान मशहूर है । आधुनिक शैली की ऊंचीऊंची इमारतों को देख कर सहसा भ्रम हो जाता है कि अमेरिका के किसी शहर में आ गए हों । प्रकाश में नहाती हुई सजी दुकानें और सड़कें, मुसकराते नागरिक, मकानों पर बिजली के तरहतरह के निओन साइन के बड़ेबड़े विज्ञापन, सभी एक समां बांध देते हैं । तरहतरह की रोशनियों से लगता है कि कोई जादूगर छिप कर इंद्रधनुष के खेल दिखा रहा है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जापानियों ने यात्रियों के आकर्षण के लिए पेरिस और हवाई द्वीप की तरह गिंजा को सजाया है। विदेशियों के लिए जापान की गीशा विशेष सम्मोहन रखती है लेकिन केवल इन पर भरोसा न कर यात्रियों के लिए नाइटक्लब और कैवरे आदि भी बड़ेबड़े शहरों में खोल दिए गए हैं। हम यात्रीवस के गाइड के साथ थे, इसलिए यह पता नहीं चल पाया कि यहां भी पेरिस और रोम की तरह ठगे जाने का डर है या नहीं।

दूसरी शाम को हमने यात्रीवस से ही टोकियो की रात्रि का कार्यक्रम निश्चित किया। एक साथ बीसपचीस प्रर्यटक, यात्रीवस से सैर कर सकते हैं। प्रति व्यक्ति ५० रुपए लगे, जिस में रात्रि का भोजन भी शामिल था। बस हमें सर्वप्रथम एक जापानी परिवार में ले गई जहां विशुद्ध जापानी तरीके से चाय बना कर दी गई। जापान में अदबकायदे से चाय बनाकर पिलाना बड़ा महत्व रखता है। इससे परिवार की कुलीनता की परख होती है। चाय की रस्म को चानोयू कहते हैं। इस रस्म और कला की शिक्षा के लिए कई शिक्षण केंद्र सारे जापान में हैं। चाहे घर हो या बाग, शांत वातावरण हो, चाव से चाय बनाई जाए, पी जाए और पिलाई जाए, फिर आनंद क्यों न आए, यही इस रस्म की मूल भावना है। फिर हम एक कमरे में गए। आधुनिक ढंग का वातावरण था। पाश्चात्य ढंग का नृत्य चल रहा था। हम पांच भारतीय साथियों को छोड़ बाकी सभी विदेशी साथी अपनेअपने लिए जोड़ी चुन कर नाच में शामिल हो गए। हम करते भी क्या ? नाचना तो हमें आता नहीं था।

हमारे गाइड ने बताया, "निपोन (जापान) सूर्य का देश है, यहां रात होती ही नहीं। रात उनके लिए है जो सोना चाहते हैं।" हंस कर उसने कहा, "और जो सोता है वो खोता है। दो हजार से भी अधिक नाइटक्लबों में एक लाख से ऊपर सुंदरियों के मजमें में आप स्वर्ग को पा सकते हैं।" प्रभुदयालजी ने हंस कर गाइड से कहा, "हां भाई, मेरा ख्याल है बहुत जल्द ही।" हम पांचों हंस पड़े पर दूसरे यात्री इसे शायद समझ ही न पाए।

तीसरा कार्यक्रम था नाइटक्लब का। यहां प्रत्येक के लिए एक सुन्दरी पास आकर बैठ गई। उमड़ता यौवन, आंखों में मादकता और प्याले में छलकती मदिरा ! सुगंध से पूर्ण वातावरण ! हम लोगों के लिए पेचीदा मामला था। सुन रखा था कि गीशाएं सभ्य और शालीन मनोरंजन परंपरा में पटु होती हैं। पर यहां तो कुछ और ही दिखाई पड़ा। कुछ देर तो हम मौन रहे। लड़कियां थोड़ीबहुत अंग्रेजी जानती थी। फिर प्रभुदयाल ने इधरउधर की चर्चा छेड़ दी। बेचारी लड़कियां हैरान थीं। उन से पिता का सा व्यवहार पा कर लड़कियां झेंप सी गईं, क्योंकि वे तो अतिथियों को किसी दूसरे ही तरीके से खुश करने की अभ्यस्त थीं और इसी के लिए उन की नौकरी थी। हम ने यह विशेष रूप से पाया कि सभी देशों में नाइटक्लबों में रोशनी बहुत धीमी रहतीं है ताकि थोड़ी दूर पर बैठे हुए लोग एकदूसरे को पूरी तरह न देख सकें और पहचान भी न पाएं कि वे कौन हैं। गाइड ने हमें बताया कि पिछले महायुद्ध के बाद अमरीकनों के प्रभाव से यहां नाइटक्लबों की बाढ़ सी आ गई। कभीकदास एकदो अशोभनीय घटनाएं भी होती रहती हैं, हालांकि सरकार की ओर से काफी नियंत्रण रखा जाता है।

नाइटक्लब की लड़कियों को देख कर हमारे मन में गीशाओं के प्रति जो भावना थी उस में कुछ शंका सी होने लगी। हम ने गाइड से अपनी बात कही। पता चला कि ये लड़कियां गीशाओं की मूल परंपरा में नहीं आती हैं। अंतर क्या है ? गीशा गृह में जाने पर स्वयं अनुभव हो जाएगा।

गीशाओं के बारे में हमने बहुत कुछ सुना और पढ़ा भी था। जापानी सामाजिक जीवन में प्राचीन काल से इन का महत्व पूरी तरह रहा है। कला, संस्कृति और सभ्यता के विकास में ये सदैव प्रेरक शक्ति रही हैं। हमारे इतिहास में गुप्तकालीन नगरवधू की तरह उन्हें राज्य और जनता दोनों के द्वारा सम्मान मिलता रहा है। संपन्न और कुलीन परिवारों की कन्याएं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी संगीत एवं कला सीखने के लिए इन्हीं के पास भेजी जाती थीं। शिष्टाचार और बातचीत के तौरतरीके की बारीकियां गीशाएं सिखाती थीं।

आज भी यह परंपरा जारी है। सामुराई (सामंत) युग गीशाओं के प्रभाव और समृद्धि का समय था। आधुनिक काल में भी जापान के धनिक व्यापारी, व्यवसायी एवं उद्योगपति गीशाओं से संबंध रखते हैं। सामाज में इसे बुरा नहीं माना जाता और न उन की पत्नियों को ही इस में आपत्ति रहती है। वास्तविकता यह है कि गीशा को स्वस्थ मनोरंजन का सजीव साधन माना जाता है। हम गीशा गृह पहुंचे। किमोनो में सजी गीशाएं गुड़ियों जैसी लग रही थीं। हम बीसपचीस यात्री थे और वे थीं सातआठ। सभी किशोरावस्था की युवतियां थीं। केवल एक प्रौढ़ा थी जो गृह संचालिका थी। रात के बारह बज रहे थे। हवा में ठंडक थी। नाइटक्लब के वातावरण से जो घुटन महसूस हुई थी यहां आ कर दूर हो गई थी। मखमल की सी मुलायम चटाइयों पर तीनचार की टोली में बैठ गए। गीशाएं हमारे पास बैठीं। हम ने देखा गृह संचालिका का अनुशासन बहुत ही सधा हुआ था। लड़कियां बड़े उत्साह और प्रसन्नता के साथ हमारी खातिरदारी करने में लगी हुई थीं। चाय नाश्ता के साथ तरह-तरह की चर्चा हुई। माध्यम टूटी फूटी अंग्रेजी ही थी। प्रत्येक गीशा जापानी के अलावा एक दो विदेशी भाषा जानती है। हमने जानबूझ कर सवाल किया, "हिंदी नहीं बोल पातीं ?" बड़ी ही नम्रता से उत्तर मिला, "नमस्ते-जयहिंद।" शायद उनकी हिंदी की जानकारी इन्हीं दो शब्दों की थी।

गीशा गृह मे ही मुझे पता चला कि जापान में कई लिपियाँ हैं जिनमें हीराकानी और काटाकानी अधिक प्रचलित हैं। फिर भी भाषा की अभिव्यंजना के लिए जापानी लिपियाँ यथेष्ट नहीं हैं। मैं सोचने लगा कि हिंदी की देवनागरी लिपि में भी कई प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है। जितनी सामग्री अंगरेजी लिपि में टाइप की जाती है उतनी अगर हिंदी में की जाए तो ज्यादा देर लगती है। यदि इसके लिए हिंदी प्रेमी कुछ सुधार कर सकें तो एक महत्वपूर्ण सेवा होगी।

नाश्ते के बाद आधा घंटा जापानी और अंगरेजी गाने हुए। शिष्टता के नाते हम सिर हिला-हिलाकर दाद तो दे रहे थें, पर समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। भारतीय गायन की तुलना में ये मुझे हल्के ही लगे। गायन के बाद नृत्य शुरू हुआ। गीशाएं हाथ में पंख लेकर दाएं बाएं थोड़ा झुकतीं थीं और ताल के साथसाथ मुड़ जाती थीं। इसके बाद एक और नाच हुआ जो हमारे यहाँ के घूमर से बहुत कुछ मिलता जुलता लगा। रात के दो बजे यात्रीबस से हम अपने होटल गिंजा लौटे।

कमरे में आकर हाथमुंह धोए। पांच घंटे के सफर से थकावट होनी स्वाभाविक थी। टोकियो की खाड़ी से आती हुई हवा ताजगी दे रही थी। खिड़की से बाहर गिंजा उस समय भी नियोन साइन की अनेक रंगों की रोशंनी में जगमगा रहा था।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्या कोई एशियाई देश जापान को पछाड़ सकता है ?

जापान—२

एक बार लंदन में मेरे एक मित्र ने पाश्चात्य पार्थिव सफलता की चर्चा करते हुए कहा था, 'पूर्व और पश्चिम, दोनों का संगम कभी नहीं हो सकता ।' बात जंची नहीं थी किंतु मेरे पास उस समय ठोस उत्तर नहीं था । जापान के पर्यटन ने मेरी इस समस्या का समाधान कर दिया । जापानी जन-जीवन का गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य भौतिकवाद और प्राच्य के आध्यात्मवाद का संतुलन-समन्वय यहां है ।

अब तक ओसाका, कोबे और टोकियो देख पाया था । टोकियो का हमारा निश्चित कार्यक्रम तो अब तक पूरा भी नहीं हो पाया था । ज्यों-ज्यों जापानी जीवन के विभिन्न पक्षों को समझ रहा था । त्यों-त्यों इच्छा होती थी कि और अधिक जानकारी प्राप्त करूं ताकि स्वदेश जाकर इस संबंध में अपने विचार रख सकूं । हमारे भारतीय दूतावास ने इस दृष्टि से जो कार्यक्रम हमारे पर्यटन के लिए बनाया उससे काफ़ी सुविधा रही ।

टोकियो में हम ओसाका से अधिक व्यस्त रहे । जापानी समय के बड़े पाबंद होते हैं । न खुद का समय नष्ट करते हैं और न औरों का, इसलिए हमारा समय कहीं भी व्यर्थ नहीं गया । हमारे दूतावास ने संसद देखने का कार्यक्रम बना दिया था । सुबह ही हम प्रथम सचिव के साथ भवन देखने गए । हालांकि उन दिनों जापान की संसद की बैठकें नहीं हो रहीं थीं फिर भी, वहां के स्पीकर और कई सदस्य जो हमारे लिए पहले ही से भवन में उपस्थिति थे, बड़े स्नेह पूर्वक मिले ।

संसद को जापान में 'डायेट' कहते हैं । संसद भवन अच्छा था, पर हमारे संसद की तरह विशाल और भव्य नहीं । वाशिंगटन में अमरीकी संसद को छोड़कर विश्व का कोई भी संसद भवन हमारे टक्कर का नहीं देखने में आया । स्पीकर ने हमारा सत्कार किया और चायजलपान पर बैठे हमने परस्पर संविधान संबंधी जानकारी प्राप्त की ।

जापानी संविधान का इतिहास हमारे देश की तरह प्राचीन नहीं है । हमारे यहां वैदिक काल से राज्य शासन और नागरिक के अधिकार और आचार के नियम मिलते हैं । मनु और कौटिल्य तो इस संबंध में बहुत ही ठोस और स्पष्ट हैं । हमारे देश में धीरे-धीरे इसे धार्मिक जामा पहना दिया गया, इसलिए नागरिक जीवन में यह न तो स्पष्ट हो पाया और न लोगों की रुचि ही इसके प्रति हुई । देश के स्वाधीन होने के बावजूद आज औसत भारतीय स्वदेश के संविधान के प्रति पूर्ववत उदासीन मिलते हैं, परंतु जापान में ऐसी बात नहीं है । जापानी संविधान के मनु हैं—सम्राट मेइजी । सन् १८६८ में उन्होंने जापान के संविधान को संपादित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कराया और उसे मौलिक रूप दिया। गत् महायुद्ध (१९३९-४५) के बाद सम्राट हिरोहितो की प्रेरणा से इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इस प्रकार सामन्तशाही से इसका रूप जनतांत्रिक हो गया।

संविधान के आमुख में लिखा है कि "हम जापानी, चिरस्थायी शांति की कामना करते हैं। स्थितिशील शांति की प्रतिष्ठा के हेतु एवं अत्याचार, दासता, दमन तथा असहिष्णुता को विश्व से सदैव के लिए उन्मूलित करने के निमित्त हम अंतरराष्ट्रीय समाज में प्रतिष्ठित स्थान चाहते हैं।" नए संविधान के अनुसार सम्राट को राष्ट्र और जनता का प्रतीक माना गया है। भारतीय मान्यता की तरह उसमें भी हमने देखा कि 'मौलिक मानव अधिकार सार्वकालिक और अपरिहार्य है।'

जापानी संसद में प्रतिनिधि सदन और सलाहकार परिषद हमारी लोक सभा एवं राज्य सभा की तरह है। शासनाधिकार मंत्रिमंडल के हाथों में है और इसके लिए वह संपूर्ण रूप से 'डायेट' के प्रति उत्तरदायी है। जापान में सम्राट की इज्जत तो बहुत है, पर शासन संबंधी अधिकार उसे हमारे राष्ट्रपति से कम हैं। प्रधान मंत्री डायेट के द्वारा और सर्वोच्च न्यायाधीश मंत्रिमंडल द्वारा मनोनीत किया जाता है। सम्राट केवल नियम और संधियों पर अपनी स्वीकृति देता है, संसद को आवाहन करने तथा मंत्रियों की नियुक्ति की औपचारिकता का निर्वाह करता है।

स्पीकर तथा सदस्यों से बातें कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे देश के प्रतिनिधि थे, इसलिए उनसे बातें करने पर जनसाधारण की प्रकृति एवं रुचि का भी आभास हमें मिल सका। मैंने यह लक्ष्य किया कि जापानी भले ही पाश्चात्य पोशाक अथवा परिवेश में हों, अपनी मौलिकता, संस्कृति और भाषा को वे भूलते नहीं और न छोड़ते हैं। हमारे यहां ऐसा है कि पाश्चात्य पोशाक और परिवेश में आते ही औसत व्यक्ति तो क्या अच्छे शिक्षित राजनीतिक व्यक्ति भी भारतीय संस्कार और अपनी भाषा के प्रति उदासीन रहते हैं।

संसद देखकर हम अपने होटल नहीं आए समय कम था अतएव बाहर ही कहीं भोजन कर लेना तय पाया। यूरोप के अन्यान्य देशों की तरह यहां शाकाहारी रेस्तरां सरलता से नहीं मिलते। हमने सुना था कि टोकियो में एक भारतीय रेस्तरां है। हम वहीं गए। रेस्तरा साधारण और साफ था। वातावरण में भारतीयता थी भारतीयों के सिवाय कुछ विदेशी भी चाव से इडली, दोसे और साँभर का स्वाद ले रहे थे। रेस्तरां के मालिक श्री नायर वयोवृद्ध हैं और अच्छे व्योहार कुशल भी। उन्होंने बताया कि भारतीय मेनू को अपने रेस्तरा में इसलिए रखा है कि टोकियो में रहने वाले भारतीय व्यवसायियों और पर्यटकों को सुविधा रहे। वैसे, विदेशी भी अच्छी संख्या में उनके यहां आते रहते हैं। रेस्तरां में हिंदी फिल्मी रेकार्ड बज रहा था। अपने देश की धुन सुनकर और अपनी रुचि का भोजन पाकर तबीयत में ताजगी आ गई। विदेशों में स्वदेश ज्यादा प्यारा लगता है।

भारत की तरह जापान में भी कुछ बड़े-बड़े परिवारों के नियंत्रण में उद्योग व्यवसाय हैं। अंतर यह है कि ये परिवार सामंतशाही व्यवस्था के कारण पहले ही से प्रभावशाली रहें हैं और उस व्यवस्था के अवसान के बाद उन्होंने व्यवसाय और उद्योग क्षेत्र को अपना लिया था। हमारे यहां मुख्यतः व्यवसायी परिवार ही उद्योग व्यपार का संचालन करते हैं। सामंतशाही परिवार के लोग रजवाड़ों के अन्त के बाद अब भले ही व्यापार व्यवसाय में दो एक आये हों।

टोकियो में हम सुप्रसिद्ध मित्सु परिवार द्वारा संचालित रेडियो का कारखाना देखने गए। यहीं विश्वविख्यात नेशनल रेडियो और ट्रांजिस्टर बनते हैं। कारखाना अत्यत ही व्यवस्थित था। काम स्फूर्ति से हो रहा था और शोरगुल बिलकुल ही नहीं। चेहरे पर ताजगी और मुस्कुराहट लिए आठ हजार लड़कियों को हमने दत्तचित्त काम करते देखा। एक बहुत बड़े हाल में टेबिल की ऊँचाई पर सरकती पटरियों (कनवेयर बेल्ट) पर ट्रांजिस्टर एक सिरे से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे सिरे तक बढ़ते जा रहे थे। पहले सिरे पर सिर्फ ट्रांजिस्टर के ढाचे रखे जा रहे थे। लड़कियां कतारों में बैंठी थी। उनके सामने ट्रांजिस्टर ज्यों ही आता वे पुरजे बैठा देतीं थी। इस प्रकार एक के बाद दूसरे पुर्जे और सूक्ष्म यंत्र बैठाये जाते थे। दूसरे सिरे पर ट्रांजिस्टर जब पहुंचता था तब पूरा तैयार हों जाता था। श्रम और समय का मितव्ययिता के साथ उपयोग और उनकी कार्य दक्षता हमारे लिए निःसन्देह अनुकरणीय है। हमारे दूतावास के साथी ने बताया कि जापान में मजदूरी सस्ती है और कारीगरों की कार्यक्षमता अनुपाततः बहुत ही अधिक है। इसलिये अन्य देशों की अपेक्षा जापान में काफी कम लागत में चीजें तैयार होतीं हैं। रेडियो की तरह दूरबीन, माइक्रोस्कोप और कैमरे जैसे आवश्यक सूक्ष्म यंत्रादि भी अन्य देशों की अपेक्षा जापान में काफी सस्ते बनते हैं। जरमनी प्रसिद्ध 'लाइका' कैमरे को जापानी 'केनोन' की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। केनोन गुण में लाइका से कम नहीं है और दाम उसके आधे से भी कम। हाथ घड़ियां भी जापान ने बड़े पैमाने पर बनानी शुरू की हैं, पर इस क्षेत्र में स्विस का मुकाबला अब तक कोई भी देश नहीं कर पाया है।

हमने प्रश्न किया, "क्या अब भी जापानी माल दूसरे देशों की अपेक्षा हलका बनता है?" उत्तर मिला, "युद्ध के पहिले हमारी नीति दूसरी ही थी पर अब हमें अपनी साख की फिकर है। यही कारण है कि अमरीका जैसे देशों में जहां केवल सस्तेपन का महत्व नहीं के बराबर है, जापानी माल की खपत बढ़ती जा रही है।

टोकियो के उत्तर में करीब ९० मील की दूरी पर निक्को और चूजनजी झील जापान का विशेष आर्कषण है। जापान में यह बहुत ही रम्य स्थल माने जाते हैं। अपने यहां एक कहावत है, 'गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया।' कुछ इसी प्रकार जापानी कहावत है, 'केक्को (सुंदर) मत कहो जब तक नेक्को न देखो।' मतलब यह कि सुंदर क्या है इसका पता तो नेक्को देखने पर ही हो सकता है। पर स्विट्जरलैंड की लेक जिनेवा या काश्मीर की डल झील से नेक्को का मुकाबला नहीं है।

जापान में आवागमन के अच्छे से अच्छे साधन हैं। अतः ९० मील की दूरी हमें अखरी नहीं। ६० मील की रफ्तार से ट्रेन हमें ग्राम्यांचल के बीच से लिए जा रही थी। ओसाका से टोकियो तक के सफर में देखा कि खेती पर जापानी विशेष ध्यान देते हैं। और अपनी जमीन को जरा भी परती नहीं छोड़ते। इस यात्रा में देखा कि खेती के साथ सब्जी और फलों की बागवानी को भी जापानी किसानों ने उद्योग के रूप में अपना लिया है। हमारा देश कृषि प्रधान रहा है किन्तु खेती को उद्योग के रूप में आज भी हमारे यहां गंभीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया है। इसलिए हमें विदेशों के अनाज और खाद पर निर्भर रहना पड़ता है।

नेक्कों का मंदिर दो सौ एकड़ के एक सुरम्य उद्यान के बीच है। जापान में हम ने कई मंदिर देखे पर अपने यहां के मंदिरों की तरह प्रभावपूर्ण नहीं लगे। किंतु नेक्कों का मंदिर वहां के मंदिरों में सचमुच सुंदर लगा। यह लगभग ५०० वर्ष पुराना है। पता चला कि इयोयासु की स्मृति में उन के पुत्र ने यह बुद्ध मंदिर बनवाया था। इयोयासु का नाम जापान में बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। नेक्को की मंदिर की ऊंचाई ज्यादा नहीं है। किंतु कलापूर्ण कारीगरी और दीवारों के आकर्षक रंगों की चित्रकारी दर्शनीय है। परंतु रोम के सेंटपीटर और वेटिकेन के सिस्टन चेपल आदि देख लेने के बाद इसमें दर्शकको खास आकर्षण नहीं रहता। हां, चेरी के फूलों से झूके वृक्षों को हरियाली के बीच झूमते देख हृदय नैसर्गिक सौंदर्य से विभोर हो जाता है।

यहां से बहुत पास ही चूजन की बड़ी झील है। टोकियो से लोग यहां छुट्टियां मनाने आया करते हैं। मोटर बोट, नाव और डोंगियों की दौड़े भी यहां खूब होती है। हम भी एक मोटर बोट में बैठे। झील के पानी को चीरती हुई हमारी बोट लहरों पर उछलती हुई इतनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तेजी से आगे बढ़ने लगी कि मुझे ऐसा लगा कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए। किंतु यहां के बोट चालक इतने प्रवीण होते हैं कि शायद ही इस प्रकार के मौके आते हों।

झील के पास ही हम मे वेगन का जल प्रपात देखा। इसे नीचे से देखने के लिए पहाड़ में करीब चार सौ फीट की सुरंग काट कर रास्ता बनाया गया है। लिफ्ट से उतरना पड़ता है। एक वड़ा चबूतरा बना हैं, जहां से ऊंचाई से गिरते हुए जल प्रपात को बखूबी देखा जा सकता है। यहीं से पास ही एक पहाड़ी की चोटी तक रोपवे लगाया गया है। लोग इसी रोपवे से चोटी पर जाकर दूर से प्रपात के सुन्दर दृश्य को देखते हैं। हम भी वहां गएं। संध्या का समय था। ढलते सूर्य के प्रकाश में लग रहा था प्रकृति केसरिया रंग प्रपात में घोल कर सूर्य को विदाई की अंजलि दे रही है।

हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने दूतावास भवन में रात्रिभोज का आयोजन किया था। दूताबास में आवास के पीछे की ओर एक सुंदर बाग भी है। आमंत्रित लोगों में स्थानीय कई एक प्रमुख व्यक्ति थे। भारतीय वातावरण में अपनी रूचि के भोजन को पाकर भूख खुली। लालजी से बातचीत में आनंद आया। उन्हें जापान के व्यापारी पक्ष का वहुत अच्छा अनुभव है। राजदूत नियुक्त किए जाने के पूर्व वे भारतीय वाणिज्य परिषद के अध्यक्ष भी रह चुके थे। उन के सहयोग से भारतीयों को व्यापार में वहां काफी सहूलियतें मिलती रही हैं।

भोजन के दौरान में जापान के शिल्पोद्योग के विस्तार की चर्चा के प्रसंग में श्री मेहरोत्रा ने बताया कि बड़ेबड़े उद्योगों के साथसाथ कुटीर शिल्प एवं दस्तकारी को भी जापान में प्रोत्साहन दिया जाता है। इसी कारण यहां बेकारी की समस्या नहीं है। ग्राम्यांचलों में भी कुटीर शिल्प और उद्योगों के कारण कृषक परिवारों को खाली नहीं बैठना पड़ता है। जीवन का स्तर हमारे यहां से काफी उन्नत है और अपराध भीं कम होते हैं। देहातों में भी मकानों में टेलीविजन सेट हैं। किसानों के घर के अहाते में मोटरसाइकिल और कपड़े धोने की मशीनें भी हैं।

जापान और भारत दोनों की तुलना करते हुए मैं यह सोच रहा था कि हम कहते तो हैं, 'सही विश्वास, ज्ञान और चरित्र मोक्ष मार्ग है' पर इस के अनुसार आचरण नहीं करते। आज के युग के साथ सही दिशा में यदि हम बढ़ें तो प्रकृति ने जितना हमें दिया है, उस का उपयोग कर हम भी विश्व में जापान की भांति प्रतिष्ठत हो सकते हैं। भोजन के उपरांत हम होटल लौटे-रात हो चुकी थी। गिंजा रंगबिरंगी बत्तियों के प्रकाश में अभी अपनी शाम की शुरूआत की तैयारी कर रहा था। सड़कों पर झूमते हुए लोग हंसतेमुसकराते चले जा रहे थे। लगता था सभी पर एक ही रंग है 'आसू आरि तोइयु नाकारे'-कल की वात मत करो।

दूसरे दिन हवाई द्वीप के लिए रवाना हो गए। बहुत इच्छा होने पर भी नेताजी सुभाष बोस की समाधि और नगराज फ्यूजियामा को नहीं देख सके। फिर भी ७ दिनों की दौड़धूप में जापान को जितना देख और समझ सके, उस से स्वदेश के लिए हमें एक अनमोल संदेश मिला कि 'श्रम ही जीवन है और आलस्य मृत्यु।'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुनिया की बहुर्चचित अमेरिकन स्टेट

हवाई

हमें जापान की राजधानी टोकियो से अमरीका के प्रसिद्ध प्रांत कैलिफोर्निया जाना था। रास्ते में प्रशांत महासागर के बीच बहुर्चचित हवाई द्वीप समूह पड़ते थे। इस द्वीप समूह के बारे में बहुत दिनों से बहुत कुछ सुन रखा था। जापान के टूरिस्ट आफिसों में इस के आकर्षण विज्ञापन भी देखने में आए। कौतूहल था ही, एक जिज्ञासा भी उठी कि शील और संकोच की मर्यादा को चुनौती देने वाले प्रचार और इन विज्ञापनों का आधार क्या वास्तविक है ? तय हुआ कि होनोलूलू होते हुए कैलिफोर्निया पहुंचा जाए। इस प्रकार हमें अतिरिक्त व्यय भी नहीं करना होगा और हम इस विचित्र स्थान को भी देख लेंगे।

हवाई द्वीप समूह विश्व के सबसे बड़े महासागर प्रशांत के वीच टोकियो से लगभग तीन हजार मील और लौस एंजिल्स से तेईस सौ मील की दूरी पर स्थित है। नई दिल्ली से पश्चिम की ओर चौदह हजार किलोमीटर और पूर्वी रास्ते से जापान हो कर लगभग आठ हजार मील पड़ता है। महाभारत के युग में यक्ष, गंधर्व और किन्नरों की चर्चा आती है। सौंदर्य, धन, वैभव और विलास मानों इन्ही के हिस्से में पड़ा था। पिछले वर्षो में इसी प्रकार की चर्चाएं हवाई द्वीप के बारे में भी प्रचलित रही हैं।

टोकियो से विमान हमें प्रशांत महासागर के ऊपर से ले जा रहा था। नीचे अपार नील जलराशि, सामने अनंत नीलाभ। कभीकभी सफेद वादल के एकदो हलके टुकड़े महासागर पर तैरते दिखाई पड़ जाते थे। विमान हवाई द्वीप के करीब पहुंच रहा था। प्रशांत की अशांत लहरों के बीच इन टापुओं को आज से डेढ सौ वर्ष पहले शायद ही कोई जानता हो। यहां के आग उलगते ज्वालामुखियों के दहकते लावे और ऊबड़खाबड़ जमीन के प्रति आकर्षण के बजाय आतंक होना स्वाभाविक ही था। जब ज्वालामुखी शांत हो चुके तब भी घने जंगल थे। मूल निवासी आदिम अवस्था में ही रह रहे थे। जंगली फल, मछलियां और पशुओं का मांस खांना, पेड़ों के खोखले तनों से वनी छोटीछोटी डोंगियों को सागर की लहरों पर नचाते हुए मछलियां पकड़ना और घर लौट कर तारों की मुसकराती टोलियों की छाया में ताल पर थिरकथिरक कर नाचना और गाना ही उन का जीवन था।

उन की दुनिया अपनी ही थी। न वे संसार को जानते थे और न संसार उन्हें ही। हो सकता है, कभीकभार कोई जहाज उधर से गुजर जाता हो पर घने जंगल और सूखे पहाड़ों के प्रति आकर्षण ही क्या होता कि जहाज चालक लंगर डालते। यदि कभी कोई उन तक पहुंच भी गया तो फिर वह उन्ही का हो गया, लौट कर स्वेदेश नहीं पहुंचा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो भी हो, कैप्टेन कुक की परिक्रमा के पूर्व तक आधुनिक संसार हवाई द्वीप से परिचित नहीं था। इन की लोक कथाओं में इन की उत्पत्ति का इतिहास हमारे यहां के बनवासियों —संथाल, भील और मुंडा—से साम्य रखता है। इनकी संस्कृति और सभ्यता भी बहुत कुछ मिलतीजुलती है। हां, रूपरंग और शारीरिक गठन में अंतर अवश्य है। रहनसहन और जीवनस्तर में तो कोई समता ही नहीं है। यह जान कर तो आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है कि ६,४०० वर्ग मील के क्षेत्रफल का यह छोटा सा द्वीपसमूह, जो हमारे यहां के मणिपुर प्रदेश का केवल दो तिहाई ही होगा, आज विश्व के सब से समृद्ध और संपन्न अंचलों में से एक है। दुनिया से दूर गहरे प्रशांत की ऊंची लहरों के बीच बसे इन टापुओं में प्रति व्यक्ति की औसत आय संसार में सर्वाधिक है—कैलिफोर्निया से भी अधिक।

विमान की खिड़की से झांक कर नीचे देखा—बादलों की एक बड़ी चादर के ऊपर से वह उड़ रहा था। हम हवाई द्वीप के करीब पहुंच रहे थे। दूर पर नीले सागर की गोद में भूरीभूरी धुंधली सी छाया स्पष्ट होती जा रही थी। यही हवाई द्वीप समूह का एकमात्र शहर—होनोलूलू। नीले सागर की गोद में हरी सी चादर ओढ़े वह मुस्करा रहा था।

टोकियो से होनेलूलू की तीन हजार मील की यात्रा में जेट से पांच घंटे लगते हैं। लेकिन हम जिस दिन चले थे, उस के एक दिन पहले ही पहुंच गए, यानी '३० जुलाई को चले और पहुंचे २९ जुलाई को। बात अटपटी सी जरूर लगती होगी, पर है सही। शायद विद्यार्थी जीवन में आप ने भी पढ़ा होगा कि पश्चिम से पूर्व की ओर मध्यांतर रेखा पार करने पर २४ घंटे का बचाव हो जाता है। मन ही मन सोचने लगा कि काल के चक्र से अपनी आयु में एक दिन बढ़वा लिया। स्वयं अपनी ही कल्पना पर मुस्करा उठा। इसी बीच विमान जमीन छू चुका था।

वायुयान की सीढ़ियों से उतरते हुए देखा सामने सुंदरियों की टोलियां स्वागत के लिए खड़ी हैं। गले में ताजे, लाललाल फूलों की माला और होंठों की लाली मानों आपस में ही होड़ कर रही हों। हाथ के गिलासों में छलकता अनन्नास का रस, आंखों में तैरती मादकता और स्नेह भरा अभिवादन लगा कि प्रशांत की लहरों पर से नाचती हुई हवा की एक लहर कानों में कह गई, 'हवाई है, हवा नहीं लग जाए, ध्यान रखना!'

नाना रूपरंगों की युवतियां थीं—गौर वर्णा, ताम्र वर्णा और कृष्ण वर्णा। मंगोली आंखें हैं तो आर्य नाक और रंग तांबे का है। बड़ीबडी आंखे हैं, गौर वर्ण है तो होंठ उभरे हुए और मोटे हैं। मतलब यह कि सांचे में ढले अंग हैं—स्वस्थ, सुंदर और सुडौल, आधे दिखाई देते उभरे उरोज और पुष्ट शरीर। हो भी क्यों न! कहा जाता है कि यहां ३६ जातियों की मिश्रित संतानें हैं दारासिंह से लगते पुरुषों की भी यहां कमी नहीं। इन का चौड़ा सीना और हवाई कमीजों से कसरती बांहो की झांकती मछलियां बरबस इन की ओर ध्यान खींच लेती थीं लेकिन महिला यात्रियों को घेरे हुए थे युवक और महिला यात्रियों की संख्या पुरुषों से कम नहीं थी।

सुन रखा था कि हवाई द्वीप में एयरपोर्ट से ही लोग साथी चुन लेते हैं। वहीं के 'हर्ट्ज़ मोटर्स' के गरेज से, जिस की शाखाएं सारे अमरीका और यूरोप में हैं, एक कार लेकर पूर्व निश्चित होटल या मोटल में पहुँच जाते हैं। लेकिन हम तीनों साथी इठलाती, मौन निमंत्रण देती हुई लड़कियों के बीच से शिष्टाचार के नाते मुंसकराते हुए बाहर निकल गए। टैक्सी ले कर बी.ओ.ए.सी. द्वारा पूर्व आरक्षित होटल 'टोपीकाना' में चले गए।

यद्यपि यहां बड़ी संख्या में एक से एक अच्छे होटल हैं, फिर भी जगह मिलनी मुश्किल रहती है। हफ्तों नहीं, महीनों पहले से संसार के विभिन्न देशों के यात्री बुकिंग करा लेते हैं। शायद चार्ज भी दूसरे देशों से अधिक है क्योंकि हमारे बजट के अनुसार जिस होटल की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यवस्था की गई थी, वह हमें अब तक के होटलों की तुलना में हलका लगा। हमने कुछ विश्राम किया। खिड़की से ताजी हवा आ रही थी। बड़ा अच्छा लगा। यहां का मौसम सदाबहार है। चारों ओर विस्तृत समुद्र होने के कारण न तो यहां कभी ज्यादा गरमी पड़ती है और न सर्दी। ऋतुराज का साम्राज्य वर्ष भर अखंड रहता है, इसी लिए ताप नियंत्रण की आवश्यकता रहती ही नहीं।

सुबह का नाश्ता कर हम अपने अगले कार्यक्रम पर विचार कर रहे थे। भारतीय विदेश मंत्रालय ने हमारी प्रस्तावित यात्रा की सूचना पहले से ही दे रखी थी। इसी बीच वहां की भारतीय अवैतनिक काउंसिलर श्रीमती वाटूमल का फोन आया कि वह आ रहीं हैं। थोड़ी देर में वह पहुंच गईं। श्रीमती वाटूमल अमरीकन हैं। उन्होंने प्रसिद्ध धनकुबेर श्री वाटूमल के छोटे भाई, जिनका देहान्त हो चुका है, से विवाह किया था। अपनी शानदार बड़ी शेव कार को स्वयं ड्राइव कर रहीं थीं और होनोलूलू के बारे में बताती भी जा रही थीं। हमें वहां के सबसे बड़े बैंक के अर्थशास्त्री श्री जानसन से मिलना था।

उन से बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि हवाई द्वीप की आमदनी का सब से बड़ा जरिया गन्ने की खेती है। इस के बाद क्रम है यात्री व्यवसाय और विदेशी प्रतिष्ठानों के विज्ञापनों का और तब अनन्नास की खेती का। अमेरिका के जल और स्थल सेना के प्रशिक्षण केन्द्र भी यहां हैं और ये भी इनके आय के अच्छे स्रोत हैं। इस प्रकार आठ लाख की आबादी के इस द्वीप समूह की प्रति व्यक्ति औसत आय विश्व में सर्वाधिक है।

श्री जानसन से बात करने के बाद हम होनोलूलू के 'डौल' कारखाने में गए। अनन्नास का यह विश्व में सबसे बड़ा कारखाना है। इस में करीब आठ हजार लड़कियां काम करती हैं। अनन्नास के इस के अपने खेत हैं। यहां वैज्ञानिक तरीके से फसल होती है। प्रवेश शुल्क बहुत साधारण लगा। हमने कारखाने के विभागों को गाइड के साथ देखा। जहां कहीं भी जाते, अनन्नास का रस गिलासों में भर कर दिया जाता था। हम ने जितना शुल्क दिया था उस से कहीं अधिक का तो रस हीं पी गए। कारखाने की व्यवस्था का संचालन भी एक महिला करती हैं। उन से उत्पादन और संगठन संबंधी जानकारी प्राप्त की। बातचीत के दौरान उन्हें जब पता चला कि हम अपने देश के संसद सदस्य हैं तो उन्होंने बहुत मना करने के बावजूद प्रवेश शुल्क वापस लौटा दिया।

यहां के कारखाने की व्यवस्था और संगठन ने हमें बहुत ही प्रभावित किया। बाहर आकर हमने एक मजे की बात देखी कि कारखाने के ऊपर अनन्नास का एक बहुत बड़ा मॉडल है जिसकी ऊंचाई ५० फीट और घेरा भी प्रायः उतना ही है। दिन भर घूमने के बाद शाम को हम अपने होटल पहुंचे। आपस में विचार-विनिमय करने लगे कि आठ लाख की आबादी वाले इस देश में केवल विदेशी यात्रियों से उन्हें सौ करोड़ रुपए प्राप्त होते हैं। मोटे तौर पर प्रति व्यक्ति की औसत आय यात्री व्यवसाय से ही तेरह सौ रुपए वार्षिक है, जबकि हमारे देश में, जहां ऐतिहासिक वैभवों से पूर्ण आकर्षण के स्थल हैं, इस व्यवसाय से प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय केवल आठ आने ही हैं। कारण स्पष्ट है कि यात्रियों के लिए जो सुख और साधन यहां उपलब्ध हैं, वे हमारे देश में कल्पनातीत हैं। हमारी सभ्यता, संस्कृति और आचारविचार की कसौटी पर इन की चर्चा तक करना संभव नहीं है। जो भी हो, विदेशों से, खास कर जापान, अमेरिका और यूरोप से यात्रियों का तांता यहां वर्ष भर बंधा रहता है।

अरब के धनकुबेर शेख भी होनोलूलू की शोखियों पर करोड़ों रुपए न्योछावर करते रहते हैं। अमरीकनों की संख्या सब से अधिक है। कारण भी है इसके पीछे। आज अमरिका का जीवन इतना अधिक यांत्रिक हो गया है कि अमरीकनों को न तो अपने देश में अवसर है, न अवकाश। प्रकृति से दूर, अस्वाभाविक जीवन, व्यस्त भागदौड़, इसकी प्रतिक्रिया का प्रभाव शरीर और मन पर पड़ना स्वाभाविक है। उन में से अधिकांश के पास साधन हैं, इसलिए वे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ समय के लिए भाग निकलते हैं और हवाई के मौज तथा बेफिक्री के वातावरण में आ कर कुछ दिनों में ही देह और मन को पा जाते हैं। यहां पर हर कौम को हर काम की छूट है। लोग अपने पद, मानसम्मान, मर्यादा, सभी का बंधन तोड़ कर बिल्कुल बंजारा जीवन बिताने लगते हैं। हम ने देखा कि समुद्रतट के अलावा बाजार और दुकानों तक में अमरीकन तरुणियां बिकनी (केवल छोटा सा कटिवस्त्र और चोली) पहने निस्संकोच घूम रही हैं।

होनोलूलू में प्रकृति का आकर्षण है तो देह का उस से भी ज्यादा। पेरिस और वेनिस दोनों यहां मिलते हैं। धनी पुरुष आते हैं, नारी के सुडौल शरीर और रूप पर मोहित हो कर और संसार के धनकुबेरों की पत्नियां, तरुणियां और प्रौढ़ा विधवाएं आती हैं, पुरुष के सुगठित, मांसल, बलिष्ठ और भीमकाय देह के आकर्षण पर। यही कारण है कि यहां ज्ञातियों का अपूर्व मिश्रण हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि इस के बावजूद हवाई की परिवार व्यवस्था, जीवन प्रवाह और वहां के लोगों की शारीरिक क्षमता में विशेष अंतर नहीं आया है।

इस का कारण यह लगता है कि सेक्स को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मान कर वहां के स्त्रीपुरुष दोनों ने ही उसे सहज भाव से ग्रहण कर लिया है। दूसरा कारण शायद यह भी है कि आज के कृत्रिम जीवन से ऊबे हुए लोगों की थकी देह और मुरझाए मन को यहां वाले केवल अतिरिक्त आय के साधन और थोड़े समय के मनोरंजन के रूप में लेते हैं। सैलानियों के साथ उनका कोई भावात्मक या स्थाई संबंध नहीं बन पाता। अरबों और हबशियों के अलावा दूसरे औसत व्यक्ति इनके पौरुष और बल के मुकाबले में बहुत ही हल्के ठहरते हैं। शाम को विश्व प्रसिद्ध वाइकिकी समुद्रतट पर टहलने गए। वहां हजारों जोड़े विविध प्रकार के आमोदप्रमोद में संलग्न थे। इन में से अधिकांश तो हमारी सभ्यता की लक्ष्मण रेखा से बहुत दूर निकल गए थे। अगर आपको संकोच हो तो आप वहां से भले ही हट जाएं, उन को तो आप की उपस्थिति का ध्यान शायद ही हो पाता हो।

होनोलूलू की बड़ी आमदनी यात्रिक व्यवसाय से है, इसलिए इस के अनुरूप ही इसको सजाया गया है। एक जगह सात तल्ला जलपानगृह देखा जिस के ऊपर का तल्ला घूम रहा था। आप एक जगह बैठ कर नाश्ता करते हुए चारों तरफ का दृश्य देख सकते हैं। साफसुथरी चौड़ी सड़कें, करीने से लगाए हुए बाग, बड़ेबड़े स्टोर्स, होटल, मोटरबोट, नाइट क्लब आदि यही तो होनोलूलू है। अमरिका और यूरोप के बड़े से बड़े उद्योगपतियों को यहां मशालों की मंद रोशनी में होलू नाच करते देखा जा सकता है।

दूसरे दिन हम श्री वाटूमल से मिलने गए। सतहत्तर वर्ष की उमर में भी उन में युवकों का सा उत्साह है और अपने २६ स्टोरों की वह स्वयं देखभाल करते हैं। पंद्रह वर्ष की अल्पावस्था में वह भारत से साधारण नौकरी पर फिलीपाइन आए थे। कुछ वर्षों बाद यहां आ कर उन्होंने अपना छोटा सा स्टोर कर लिया। आज विश्व के प्रमुख धनियों में उनकी गणना है। उन की व्यापारिक शाखाएं दूसरे अनेक देशों में हैं और भारत के सैकड़ों युवक उनके स्टोरों और शाखाओं में काम करते हैं। विश्व प्रसिद्ध 'वाटूमल ट्रस्ट' के वह संस्थापक हैं। इस ट्रस्ट के द्वारा अनेक विद्यार्थियों को विभिन्न देशों में उच्च शिक्षा मिलती है। उन्होंने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया और भारत की विभिन्न समस्याओं के बारे में चर्चा करते रहे। वह अपने घर भोजन का लिए आग्रह करते रहे पर हमारे पास समय का आभाव था इसलिए नहीं जा सके।

बड़ेबड़े होटलों, क्लबों और विद्युत प्रकाश के रहते हुए भी कृत्रिम स्वभाविकता की तलाश में यहां लकडी और पत्तों के झोपड़े बना कर उन में तेल की मशालों की धीमी रोशनी में लोग खाते और नाचते रहते हैं। एक जगह देखा कि लोग समूचे सूअर को लंबी लोहे की सींक में पिरो कर भून रहे थे। हमें तो यह दृश्य बहुत ही बीभत्स लगा पर दूसरे यात्री चाव के साथ उसके चारों तरफ खड़े थे। इन सब बातों को देख कर ऐसा लगा कि सभ्यता की चोटी पर पहुंच कर भी मनुष्य अपने आदिम स्वभाव को नहीं भूल पाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तीसरे दिन हमें वहां से कैलफोर्निया के प्रसिद्ध शहर लौस ऐंजेल्स जाना था। हवाई अड्डे पर आते हुए पर्ल हारबर को भी देखने गए। जापान, चीन और पूर्व एशिया पर नियंत्रण रखने के लिए अमरीका ने इसे बहुत से बड़ेबड़े युद्धपोतों से सुसज्जित किया था और विश्व में यह अजेय माना जाता था, पर १९४१ में एक दिन अचानक ही जापानी हवाई जहाजों ने इस पर हमला कर के बहुत से जहाजों को डुबो दिया। बची हुई कुछ सामग्री आज भी वहां के म्यूजियम में रखी हुई हैं। इस समय फिर से अमरीका ने यहां बड़ा नौशिक्षण केंद्र स्थापित किया है जहां हजारों नाविक शिक्षा पा रहे हैं।

तीन दिन में होनोलूलू में जो कुछ देखासुना, उस की मन पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं होनी स्वाभाविक ही थी। ऐसा लगा कि हमारे देश की ब्रह्मचर्य, संयम, त्याग और तपस्या की मान्यताओं को ये लोग अनियंत्रण, भोग और विलास में लीन रह कर एक प्रकार से चुनौती सी दे रहे हैं।

इनके व्यकितगत सामाजिक जीवन को निकट से देखने और समझने की बड़ी इच्छा थी पर उस के लिए हमारे पास साधन और सुविधा का अभाव था। हवाई जहाज में बैठा हुआ सोचने लगा कि क्या वास्तव में ये सुखी हैं ? सब प्रकार से साधन संपन्न होने के बावजूद न तो ये कोई विवेकानंद या रवींद्र ही दे पाए हैं, न आइंस्टाइन या रसल ही।

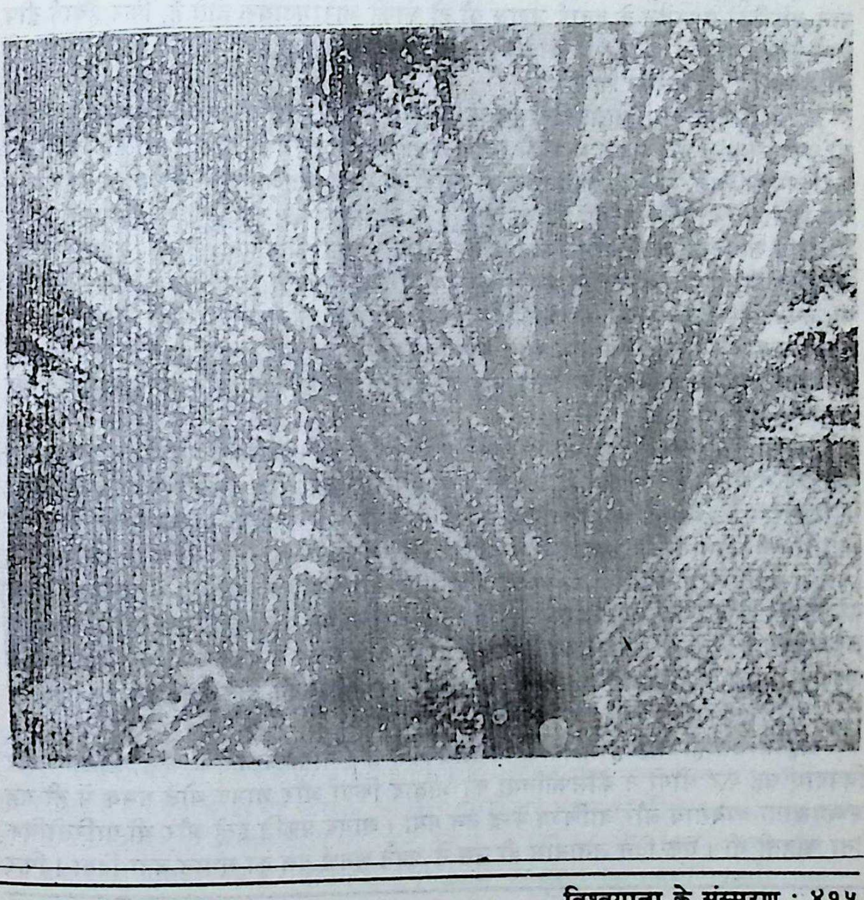

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हालीवुड की चमचमाहट : डिजनीलैंड का बचपन

कैलिफोर्निया

होनोलूलू से जेट विमान हमें लौस एंजेल्स लिए जा रहा था। २३०० मील की यात्रा थी। पान अमरीकी एयरवेज के हवाई जहाज यों ही काफी आरामदायक होते हैं, फिर हवाई द्वीप आने-जाने वाले तो और भी आकर्षण लगते हैं क्योंकि छुट्टियां मनाने वाले यात्री ही अधिकांशतः इन में सफर करते हैं।

साथ के प्रायः सभी यात्री होनोलूलू में छुट्टियां बिताकर तरोताजा और प्रसन्न थे। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता थी कि इस बार की विश्व यात्रा में अभिनव देशों और संस्कृतियों को देखने का सुअवसर मिल पाया। नीचे प्रशांत की लहरों की तरह मन आनंद में हिलोरे ले रहा था। जेट विमान हमें कैलिफोर्निया लें जा रहा है। यह विश्व के समृद्धतम देश संयुक्त राज्य अमरीका का सर्वाधिक विकसित और उन्नत अंचल है। सुना और पढ़ा भी था कि इस वीरान मरुस्थल और पहाड़ी अंचल को श्रम से संवार कर नंदन वन बना दिया गया है। मैं सोच रहा था, क्या हमारा राजस्थान भी श्रम और लगन से दूसरा कैलिफोर्निया नहीं बन पाएगा? इसका प्रचलित व लोकप्रिय नाम स्वर्ण प्रदेश (गोल्डन स्टेट) है। आज से करीब १५० वर्ष पूर्व रेगिस्तान, पत्थर, कांटों के जंगल और दलदल की इस भूमि को कौन जानता था कि यह हिरण्यगर्भा है!

कहते हैं जब भगवान देता है तो दोनों हाथों से देता है। कैलिफोर्निया के लिए यह बात सही रूप से लागू हुई। भटकते हुए राहगीरों को एक दिन यहां पीले चमकते पत्थर बड़ी संख्या में दिखाई पड़े। कनक को पहचानने में देर न लगी और इस की खनक प्रशांत से सुदूर अटलांटिक महासागर के किनारों तक पहुंची। फिर तो अमरीका और यूरोप के कोनेकोने से स्वर्ण संचय के लोभ में कैलिफोर्निया की वीरान कांटेदार मरूभूमि में लोगों के आने का तांता बंध गया। जिधर देखो, लोग ज़मीन खरीद रहे हैं और फावड़े व कुदाड़ी चला रहे हैं। कुछ ही समय के अंदर वहां की जमीन का मूल्य दस डालर प्रति एकड़ से बढ़कर १००० डालर प्रति एकड़ हो गया। इतिहास में यह घटना गोल्ड रश 'सोने की दौड़' के नाम से विख्यात है।

प्रकृति उसे ही देती है जो पाने का अधिकारी है। नाना प्रकार के कष्ट, बाधाएं और विपदाएं सह कर लोगों ने कैलिफोर्निया को आबाद किया और शायद थोड़े समय में ही यह अच्छाखासा व्यवसाय और वाणिज्य केन्द्र बन गया। शायद प्रकृति इन्हें और भी पारितोषिक देना चाहती थी। एक दिन अनायास ही उस ने अपने भूगर्भ तेल का संधान बता दिया। फिर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो तेजी से बड़ेबड़े उद्योगपति और व्यवसायी देशविदेश से कैलिफोर्निया में आ जुटे। दिन दूने और रात चौगुने तेल के कुएं खोदे जाने लगे। प्रचुर मात्रा में अशेष तैलस्रोत मिले। फिर एक बार जमीन खरीदने की होड़ लग गई और दाम फिर १०० गुने बढ़ गए। सुदूर प्रांतों से लोग अपना घरद्वार, मकानव्यवसाय, सब बेचखोचकर पूंजी के लिए कैलिफोर्निया में जमीन और तेल के कुएं खरीदने दौड पड़े।

अमरीकी इतिहास और साहित्य में इस घटना के मनोरंजक वर्णन भरे पड़े है। उस समय कैलिफोर्निया के प्रति लोगों के झुकाव का सहज अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कुछ समय में ही १०० रूपये की जमीन १० लाख में बिकने लगी। प्रसिद्ध अमरींकी उपन्यासकार अप्टन सिकलेयर ने अपनी 'तेल' रचना में इसका बड़ा ही रोचक वर्णन किया है।

मेरे बगल में एक भारीभरकमअमरीकी बैठे थे। होनोलूलू का खुमार अब भी उन पर था। हवाई पोशाक पहने हवाई सुंदरियों के चित्रों से मन बहला रहे थे। एकाएक उन्होंने झाक कर खिड़की के बाहर देखा और मुस्करा कर कहने लगे, "स्वप्न लोक गया, अब तो अपना देश ......" कहते हुए एक हवाई लड़की के चित्र को बड़ी हिफाजत से एक किताब के जैकेट में रखा और उसी किताब से अपनी बीवी की तसवीर निकाल कर वालेट में लगा ली।

मैं मुस्करा उठा, कहने लगा, "भाई स्वप्नलोक की बाते वही रहने दें क्योंकि अगर हमारी और आप की बीवियां उन्हें जान पाएं तो नींद हराम कर देंगीं।" हम दोनो हंस पड़े।

उतरने के पहले हम दोनों ने एकदूसरे को अपनेअपने घर आने का निमंत्रण दिया। मिस्टर वीवर ने कहा, "आप का न्योता स्वीकार है मगर समय का वादा नहीं कर सकता, लेकिन आप से वादा ले सकता हूँ क्योंकि आप तो हमारे शहर ही जा रहे हैं।" मैंने वचन दिया और वायुयान के दरवाजे से बाहर निकले।

मैं संसार के कई आधुनिक देशों में जा चुका था यूरोप और जापान के विभिन्न शहरों में स्वचालित सीढ़ियों पर तो कई बार चढनेउतरने का मौका लगा था पर लौस ऐंजेल्स में तो हवाई जहाज से बाहर पैर रखा तो देखा कि यहां सीढ़ी नहीं, रास्ता ही चल रहा है, मैं खुद क्या चलूं ? यही व्यवस्था अमरीका के बड़ेबड़े हवाईअड्डों पर मिली। यहां हवाई जहाज एयर टर्मिनल के बराबर लग जाते हैं और यात्री स्वचालित रास्ते द्वारा कार तक अनायास ही पहुच जाते हैं।

लौस ऐंजेल्स कैलिफोर्नियो के पश्चिमी छोर पर बसा हुआ यहां का सब से बड़ा शहर है। इस के एक ओर प्रशांत महासागर की लहरें टकराती है और दूसरी ओर राकी पर्वतमाला की शृंखला है शुरू में यह शहर लौस ऐंजेल्स नदी के किनारे प्यूबलो नाम के चौक के आसपास बसा। धीरेधीरे इस का विकास चौतरफा होता गया और इस प्रकार कई उपनगर बसते गए जिन में पासातेना सब से बड़ा है अब तो कलकत्ते की तरह यह कई नगरों का समूह है फर्क यह है कि कलकत्ता के सूतानटी, गोविंदपुर, चितपुर और चिगरीहट्टा इत्यादि एक होकर इस तरह घुलमिल गए हैं कि इन का नाम मुहल्लों के बतौर रह गया है जब कि लौस ऐंजेल्स के हालीवुड, वेलिंगटन, लांगबीच, सेंट मोनिका और बेबरली आदि एक होने पर भी अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। इस प्रकार यहां के नगरनिगम की कुल जनसख्या लगभग ३० लाख है।

होनोलूलू से ही लौस ऐंजेल्स में अपने आवास के लिए हम ने व्यवस्था कर ली थी। अतएव एयरपोर्ट से उतरते ही सीधे पूर्वनिश्चित होटल के लिए रवाना हुए। होटल लगभग १३ मील की दूरी पर था। एक खास बात यह देखने में आई कि यहां आवागमन के लिए दो प्रकार की सड़कें हैं। एक थोड़ी दूर के सफर की और दूसरी लंबे सफर की, जिस पर साठसत्तर मील प्रति घंटे की सफ्तार से कम गाड़ी नही चला सकते। सड़कों पर मोटरों का जमघट और विभिन्न प्रकार की बनावटें देख कर चकित और मोहित सा हो जाना पड़ा। हमारे देश में आम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तौर पर तीनचार तरह की ही कारें हैं लेकिन यहां तो सैकड़ों तरह की छोटीबड़ी विभिन्न आकारप्रकार की मोटरें बहुत बड़ी संख्या में देखने में आई। साधारणतया अमरीका में सभी चीजें अन्य देशों की तुलना में महंगी है लेकिन जहां तक मोटरों और पेट्रोल का सवाल है, ये चीजें और देशों से सस्ती, भारत की अपेक्षा तो कहीं अधिक सस्ती हैं। हमारे देश में नई इंपाला कार १० लाख रूपये में मुश्किल से ही मिलेगी जब कि अमरीका में इस मजबूत तेज और आकर्षक गाड़ी का मूल्य केवल १३००० के करीब है। दो वर्ष की चली हुई गाड़ी तो बड़ी आसानी से ढाईतीन हजार तक अच्छी हालत में मिल जाती है। यही कारण है कि औसतन यहां प्रति २.५ व्यक्ति पर एक कार है, जब कि हमारे देश में प्रति ३५०० व्यक्ति पर। एक बात और ध्यान देने की है कि अमरीका में धनी व्यक्ति ड्राइवर नहीं रखते क्योंकि ड्राइवरों के काम के घंटे निर्धारित होते हैं और वेतन है कम से कम २००० रुपये प्रति मास।

इस बार अब तक यात्रा में विदेशी मुद्रा की कमी के कारण हम द्वितीय श्रेणी के होटलों में ठहरते आए। लेकिन अमरीका में निजी संपर्क के कारण हम ने प्रथम श्रेणी के होटलों में ही अपने आवास सुरक्षित कराए। लौस ऐंजेल्स में हम सुविख्यात शेरेटन होटल में ठहरे। होटल क्या था, सुख और आराम का प्रतीक। दरवाजे के अंदर पैर रखते ही मुलायम गलीचे का फर्श, हर कदम पर जैसे धंसे जाते हों। संपूर्ण होटल में इसी प्रकार मुलायम रोएंदार गलीचे का फर्श बिछा था। कमरे में उत्तम कोटि के फर्नीचर, टेलीफोन के अलावा टेलीविजन सेट भी थे। कर्मचारियों की शालीनता, विनयशीलता और तत्परता के कारण यात्रियों को इस बात का अनुभव ही नहीं हो पाता कि वे विदेश में हैं। सुख-सुविधा और साधनों की प्रचुरता के कारण ऊंचा खर्च अखरता भी नहीं। हम ने यहां यह भी देखा कि दो होटलों किंग हिल्टन और शेरेटन में इस बात की होड़ रहती है कि यात्रियों को अधिक से अधिक सुविधा कौन दे सकता है।

स्नान के लिए गुसलखाने में गया। आदमक़द शीशा, मोटे रोएंदार बड़ेबड़े तोलिए दूध से सफेद। साथ ही देखा, वजन का एक छोटा सा यंत्र भी रखा था। मैं मुस्करा उठा, भला इस इंद्रपुरी में वजन किसका घटेगा ? शायद अमरीकी अपने स्वास्थ्य के प्रति इतने चौकस होते हैं कि शरीर के घटते या बढ़ते वजन पर नियंत्रण रखना आवश्यक समझते हैं। नहा कर मन प्रफुल्लित हो गया। खिड़की के पास खड़ा हो कर धीरेधीरे काफी पी रहा था कि टेबल पर रखी होटल के संस्थापक मिस्टर शेरेटन की जीवनी पर नजर पड़ी। उस से पता चला कि अत्यंत साधारण से व्यक्ति शेरेटन ने किस प्रकार ४० करोड़ रूपये कमाये, इतने विशाल होटल के मालिक बने और नाना प्रकार के सामाजिक कार्यों में सहायता दी।

इस प्रकार के उदाहरण यहां एक नहीं अनेक मिलते हैं। मैं मन में सोचने लगा कि साम्यवादी देशों में वहां के विधान के अनुसार इन्सान चाहे कितना ही योग्य और परिश्रमी हो, धनवान और संपन्न तो नहीं बन पाता। लेकिन जब कि वहां की सरकार स्वयं प्रत्येक व्यक्ति की सुखसमृद्धि की जिम्मेदारी लेती है तब भी उनका जीवन स्तर यहां के औसत से इतना नीचा क्यों हैं ? क्या वास्तव में व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व उस के विचारों और सर्वांगीण उन्नति के लिए अधिक प्रेरक है ?दूसरे दिन शहर घूमने का कार्यक्रम था। खूब तड़के उठा। जुलाई का महीना था। वहां जैसा मौसम इन दिनों हुआ करता है, उस की अपेक्षा अधिक गरमी महसूस हुई। जल्द तैयार होकर मैं ने सुबह का नाश्ता किया और यात्री बस में जा बैठा।

अमरीका नया देश है इसीलिए संसार के अन्य देशों की तरह प्राचीन ऐतिहासिक वस्तु और वास्तुकला की विविधता यहा नहीं के बराबर है, फिर भी पर्यटकों के लिए यहां के रहनसहन और शिल्पोद्योग के स्थल बहुत आकर्षक हैं। लौस ऐंजेल्स के म्यूजियमों का वर्णन विशुद्ध रूप से देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि पेरिस के लुव्रे, लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
लेनिनग्राद के म्यूजियम जैसे ये नहीं हैं। रेस्तरां, दुकानें और क्लब दूसरे अन्य देशों की तरह ही सजेसजाए। इन्हें देख कर यह धारणा सहज ही में बन जाती है कि अमरीका और अमरीकन आम तौर से चरम भोगवादी हैं।

शहर में एक खास बाजार देखा। इसे 'किसानों का बाजार' कहते हैं। वहां दैनिक आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु एक हीं जगह मिल जाती हैं। कैलिफोर्निया प्रदेश में अच्छे किस्म के फल बहुतायत से पैदा होते हैं। कुछ तो जलवायु अनुकूल है और कुछ बड़े पैमाने पर नाना प्रकार के प्रयोग कर के फलों की उपज और किस्म बढ़ा ली जाती है। लौस ऐंजेल्स तो फलों के व्यवसाय का केन्द्र ही है। अखरोट, अंगूर, बादाम, खुबानी, संतरे, अंजीर इत्यादि नाना प्रकार के फल यहां से बाहर भेजे जाते हैं। फलों के बागवानों ने यहां एक सहकारी समिति गठित कर रखी है जिस के कारण बाजार का संतुलन बना रहता है। यहां हमारे साथी श्री भुवालकाजी ने एक खजूर का डब्बा खरीदा जिस में तीन इंच लंबे खजूर थे। उन के स्वाद का तो कहना ही क्या ?

लौस ऐंजेल्स में घूमते समय कलकत्ता और लंदन की झांकी मिल जाती है। यहां भी एशियाई एवं अफ्रीकी प्रवासी हैं। आम तौर पर इनके मुहल्ले भी अलगअलग हैं। अपने होटल और रेस्तरां हैं। घर पर रहनसहन का ढंग इन्होंने अपना मौलिक ही रखा है। प्रवासियों में सबसे ज्यादा संख्या चीनियों की है जो पीढ़ियों से यहां रहते आ रहे हैं। अपने घर पर अपनी निजी भाषा, संस्कृति और आचारविचार रखते हैं लेकिन बाहर वालों से अंगरेजी भाषा और तौरतरीके से मिलते हैं। जापानी इनसे कुछ भिन्न हैं। इन्होंने अपने को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप बना लिया है इसलिए ये अमरीकी समाज में अपेक्षाकृत अधिक घुलेमिले पाए जाते हैं।

अमरीका में मेरा प्रथम चरण लौस ऐंजेल्स था। मैं ने यहां प्रत्यक्ष रूप से नीग्रो समस्या का अनुभव किया। इससे पहले पक्षविपक्ष में काफी पढ़ने और सुनने को मिल चुका था फिर भी यहां तथा अमरीका के अन्य शहरों में जो भी रूप इस समस्या का देखने में आया, उसे मैं जटिल ही कहूंगा।

यद्यपि राज्य और सरकार की ओर से उन्हें समान अधिकार दिए गए हैं लेकिन स्पष्टतः व्यवहार में ऐसा नहीं होता। गोरे और काले का वर्ण भेद आज भी है। हमारे देश की वर्ण व्यवस्था से इसकी तुलना नहीं हो सकेगी क्योंकि भारत में शरीर के रंग को ले कर छुआछूत की भावना नहीं रही बल्कि समाज के वर्ग और कर्म का आधार ही बाधक रहा है। इसलिए, रूढ़िवाद को उखाड़ कर फेंकने के साथ ही हमारे यहां से हमारे यहां का छुआछूत का भेद स्वतः हटता जा रहा है। आश्चर्य है कि आधुनिक सभ्यता, समता और भ्रातृत्व का आवाहन करने वाले अमरीका में वर्णभेद आज भी पारस्परिक द्वेषाग्नि को धधकाता जा रहा है और इसी कारण मानवप्रेमी राष्ट्रपति केनेडी की निर्मम हत्या भी हुई।

'निगर,' 'नीग्रो' शब्द वहां एक प्रकार से अपमानजनक समझा जाता है। इस में संदेह नहीं कि नीग्रो शिक्षा और आचारविचार में पिछड़े हैं और इसके प्रति कुछ अंशों में इन में रुचि का भी अभाव है। साधारणतया ये मोटी मजदूरी का ही काम करते हैं। शरीर से तगड़े होने के कारण इस ढंग के काम के लिए हिचकते नहीं। नई चेतना की लहर ने उन्हें जगाया है और अब इन में भी शिक्षा का प्रसार हो रहा है। नीग्रो समाज ने अच्छे चिन्तक और कलाकार दिए हैं। पाल राबसन के संगीत ने पश्चिम को जहां मोह लिया है वहीं मार्टिन लूथर किंग श्रेष्ठ विचारकों में गिने जाते हैं। प्रसिद्ध मुक्केबाज लुई और केसियस तो विश्व में बेजोड़ माने जाते हैं।

हालीवुड लौस ऐंजेल्स का ही उपनगर है। सरसरी तौर पर वह भी देखा। सिनेमा देखने में जितना आकर्षक लगता है उतना स्टूडियो नहीं। वैसे कलकत्ता और बंबई में स्टूडियो देखे थे। यहां स्टूडियो देखने के लिए पहले से मंजूरी लेनी पड़ती है लेकिन इस तरफ हम तीनों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साथियों की खास रुचि नहीं थी इसलिए हम यहां किसी स्टूडियो को नहीं देख पाए। हमें बताया गया कि अमरीकी कलाकार और टेकनीशियन हमारे यहां से अधिक परिश्रमी और अनुशासन मानने वाले हैं। कहा जाता है कि चोटी के अभिनेता ग्रेगरी पैक, अभिनेत्री आवा गार्डनर या एलिजाबेथ टेलर की वार्षिक आय दोतीन करोड़ तक है। वैसे हमारे यहां भी राजकपूर, दिलीपकुमार और बैजयंतीमाला की वार्षिक आय पंदरहबीस लाख की बताई जाती है।

हालीवुड के बाद डिजनीलैंड देखा। एक नई दुनियां में ही पहुंच गया था मैं। वाल्टर डिजनी की कल्पना और सर्जनाशक्ति अद्भुत थी। मिकी माउस की कल्पना के साथ एक अभिनवनगरी को बना देना साधारण सी बात नहीं। हजारों की संख्या में बच्चे, बूढ़े और जवान सभी डिजनीलैंड जाते हैं। इस स्थान से बच्चों को विशेष लगाव है।

डिजनीलैंड पहुंच कर कहीं आप १०० वर्ष पुराने महल्ले में घूमते नजर आएंगे तो कहीं ऐसी जगह पहुंचेंगे जहां भविष्य की दुनियां बनेगी। यहीं पर आल्प्स की बर्फानी चोटी का आनंद लीजिए तो समुद्र के गर्भ में पहुंच कर वहां के दानवी जीवों को देख लीजिए। यहां छुट्टियों में बड़ी भीड़ रहती है। हम भी डिजनीलैंड में जा कर अपने को बिल्कुल भूल गए। बच्चों के कहकहों के बीच एक बार तो मेरा बचपन मुझे मिल गया. यह क्या कम सौभाग्य रहा !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अमरीका का पश्चिमी स्वर्ण द्वार
सानफ्रांसिस्को

तीन दिन लौस ऐंजेल्स में रह कर हम चौथे दिन हवाई जहाज से सानफ्रांसिस्को पहुंचे। अमरीका में ट्रेन और बसों की यात्रा बड़ी सुखद रहती है। हम लोगों की इच्छा भी हो रही थी कि भूमि का मार्ग ही अपनाया जाए ताकि ग्राम्य अंचल की झांकी देखने को मिले। मगर यह संभव न था क्योंकि हम ने समय और खर्च की बचत के लिए हवाई जहाज की टिकट पहले ही से बुक करा ली थी।

सानफ्रांसिस्को अमरीका के स्वर्ण प्रदेश का 'स्वर्णद्वार' के नाम से विख्यात है। वास्तव में है भीं। अमरीका विश्व का सर्वाधिक धनी, समृद्ध और उन्नतिशील राष्ट्र है, जिस में कैलिफोर्निया का अंचल सर्वोपरि है। इस महानगर की महत्ता का एक और भी कारण है। विश्व का सर्वोत्तम बंदरगाह होने के कारण अमरीका के पश्चिमी तट पर यह आयात और निर्यात का बहुत बड़ा केन्द्र है। समुद्रगामी सैकड़ों जहाज यहां एक कतार में आसानी से महीनों तक रुक सकते हैं। इसलिए जहाज निर्माण का उद्योग भी यहां काफी उन्नत और विकसित है।

लौस ऐंजेल्स की तरह यह जगह भी पहले वीरान थी। आदिवासियों की बस्तियां कहींकहीं थीं। प्रसिद्ध भूपर्यटक सर फ्रांसिस ड्रेक्र १५७९ ई० में यहां आए थे। उन के जहाज ने यहां से जरा और उत्तर की ओर लंगर डाला था। आज भी वह स्थान ड्रेक की खाड़ी कहलाती है। उन के नाविकों ने जिस स्थान पर नए देश की खोज में खुशी मनाई थी और प्रकृति का आभार माना था, वह शहर की एक पहाड़ी पर है और बड़ा ही रमणीय स्थल है। यहां पर ४० फीट का एक क्रास उस घटना की यादगार में बनाया गया है। इसी क्रास के नीचे से दोनों तरफ बहते झरने बहुत मनोरम लगते हैं।

पाश्चात्य देशों में यात्रियों की सुविधा और आराम का हर प्रकार ध्यान रखा जाता है। औसत अमरीकी की यह इच्छा रहती है कि उस के देश को विदेशी यात्री जानने और समझने की कोशीश करें। इसलिए जब भी जरूरत पड़ती है वह आगे बढ़ कर सहयोग देने को प्रस्तुत रहता है। अमरीका जाने के पूर्व हमारे लिए बिरला प्रतिष्ठान ने आकलैंड के विश्व प्रसिद्ध कैजर फर्म को सूचना भेज दी थी। कैजर विश्व में अल्युमिनियम किंग माने जाते हैं। भारत में बिरला प्रतिष्ठान के साझे में इन्होंने रेणुकूट में अल्युमिनियम का एक बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया है।

लौस ऐंजेल्स की तरह सानफ्रांसिस्को भी कई द्वीप और पहाड़ियों का नगर है। शहर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रमुख रूप से आकलैंड और सेनफ्रांसिस्को की बस्ती में अर्धचंद्राकार रूप में बसा है। इस महानगर का क्षेत्रफल लगभग ४६ वर्ग मील है। पहाड़ियां, खाड़ी, झील, झरने, कुंज और बागबगीचे की प्राकृतिक शोभा ने इसे संसार के बड़ेबड़े शहरों से निराला बना दिया है।

मुसीबतों से मजबूती मिलती है और जिंदगी में ताजगी रहती है। सानफ्रांसिस्को में कई बार अग्निकांड, भूकंप, लूटमार और आक्रमण हुए। एक के बाद एक आपदा आती ही रही, जिन्हें इस नगर ने झेला, मगर विचलित न हुआ। आज इसके चौड़े राजमार्गों पर गगनस्पर्शी प्रासाद इस की दृढ़ता, वैभव और शान का परिचय दे रहे हैं। नागरिकों पर भी इन घटनाओं का प्रभाव रहा है। इसलिए वे भी साहसी, उद्यमी और प्रसन्न हैं। यहां का वातावरण लंदन, लिवरपूल, हेग, हामबुर्ग और पेरिस से अधिक आकर्षक और सर्वथा भिन्न लगता है।

हमारा सबसे पहला कार्यक्रम कैजर प्रतिष्ठान देखने का था। हिम्मतसिंहका, भुवालका और मैं—तीनों वहां गए। कार्यालय आकलैंड में ३२ मंजिल के विशाल भवन में है। लेकिन वहां हमें बहुत ही थोड़े कर्मचारी काम करते दिखाई पड़े। मिस्टर कैजर उस दिन कहीं बाहर गए थे इसलिए हम उनके सीनियर वाइस प्रेसिडेंट से मिले। उन्होंने हमारा सहर्ष स्वागत किया और जलपान कराया। हमारे देश के बारे में पूछते रहे। वे दो बार भारत आ चुके थे। रेणुकूट में कारखाने की स्थापना के अवसर पर उन्हें यहां के ग्राम्य अंचलों को देखने का भी मौका मिला था।

दूसरे दिन निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कैजर प्रतिष्ठान के मिस्टर विलियम की कार से हम घूमने निकले। उन्होंने हमें आकलैंड, सानफ्रांसिस्को का उद्योग-क्षेत्र बड़ी अच्छी तरह समझाते हुए दिखाया। यों तो यहां प्रायः सभी प्रकार के उद्योग हैं, कलकारखाने भी बहुत हैं। कलकत्ते, बंबई, कानपुर या हमारे देश के अन्य बड़े शहरों की तरह कारखाने आवासक्षेत्र में नहीं बल्कि शहर से हट कर है। यहां के प्रमुख उद्योगों में पेट्रोल रिफाइनिंग, सूखे फल, डब्बे बंद सब्जियां, फल और मांस, रोटीबिस्कुट, टिन और उस के डब्बे, लोहेइस्पात, रंगरोगन, प्रेस और प्रेस मशीन, शराब तथा जहाज निर्माण उल्लेखनीय हैं।

इस के बाद हमने प्रमुख शिक्षण केंद्रों को देखा। शिल्पोद्योग का केंद्र और प्रचुर साधन उपलब्ध होने के कारण यहां नाना प्रकार की शिक्षण संस्थाएं हैं। आधुनिक ज्ञानविज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता, बंबई, बनारस और दिल्ली की तरह यह महानगर अमरीका में प्रसिद्ध है। यहां के कालिज, सेनफ्रांसिस्को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है, जिन में कई मेडिकल कालिज, लॉ कालिज और अध्यापकों के कालिज हैं। शहर के शोरगुल और भीड़ से दूर सागर तट पर बर्कले हिल्स की गोद में सानफ्रांसिस्को का विश्वविद्यालय अत्यंत मनोहर परिवेश में है। महामना मालवीयजी के काशी हिंदु विश्वविद्यालय में गोधूलि के बाद जैसा शांत और सौम्य वातावरण यहां मिला। माइनिंग के शिक्षण और अपने पुस्तकालय के ग्रंथ संग्रह के लिए यह विश्वविद्यालय बेजोड़ समझा जाता है। यहां का स्टेडियम भी कम आकर्षण नहीं रखता। प्राचीन रोमन परंपरा का आधुनिकीकरण इस की वास्तुकला में बड़ी सफलता से किया गया है। स्टेडियम में लगभग ७२,००० लोग आसानी से बैठ सकते हैं। कार्यक्रम खत्म होने पर दसबारह मिनट में ही स्टेडियम खाली हो सकता है। अंतरराष्ट्रीय महानगर होने के कारण विश्वविद्यालय में विदेशों के छात्र भी अच्छी संख्या में हैं।

इस प्रकार आकलैण्ड की पहाड़ी पर मिल्स कालिज है, यहाँ केवल महिलाएँ विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करती हैं, पावोआल्टो में स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय तथा आकलैंड के पास सेंट मेरी विश्वविद्यालय है, सानफ्रांसिस्को का गोल्डन गेट ब्रिज विश्वविख्यात है, आकलैंड से सानफ्रांसिस्को को यह पुल जोड़ता है। लगभग ४,२०० फुट लंबा है। इसी के नीचे से बड़े-बड़े जहाज गुजरते हैं। पुल के ऊपर से शहर बड़ा सुन्दर और सजीला लगता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शहर में आवागमन के अच्छे साधन हैं फिर भी पुराने ढंग की ट्रामों को चलती देख हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, हमारे यहाँ इन्हें दिल्ली और बम्बई में हटा दिया गया लेकिन यहाँ के नागरिक अपने पुराने ट्रामों में बडे शौक से सवारी करते हैं। पर्यटक तो इन में बैठकर शहर घूमना अधिक पसंन्द करते हैं क्योंकि इस प्रकार वे नगर का काफी हिस्सा कम खर्च में आसानी से देख पाते हैं। हमें बताया गया कि संसार में सबसे पहले ट्राम यहीं चली थी। अतएव पुरानी होने पर भी इन्हें वे 'सुवेनियर' के बतौर कायम रखना चाहते हैं।

हम घूमते हुए कैथे महल्ले में पहुँचे यह यहाँ का चाइना टाउन है। कलकत्ते के चाइना टाउन से कहीं अधिक वसा हुआ और साफ है। इन के अपने स्कूल, चर्च, दुकानें, रेस्तरां और होटल हैं। चीनी ढंग के भोजन और मनोरंजन में रुचि रखने वाले लोग यहाँ आते हैं। यह पूछने पर पता चला कि पीढ़ी दर पीढ़ी ये यहाँ बस गये हैं। अब चीन से इनका कोई संबंध नहीं। यह भी पता चला कि मादाम सूंग जो तायवान के मार्शल च्यांग काइ शेक की पत्नी हैं, यहीं की हैं। लगभग १५० वर्ष पहले जब सेनफ्रांसिस्को में यूरोपियन बसना प्रारम्भ कर रहे थे, इन चीनियों के पूर्वज खेतीमजदूरी के लिए ठेके पर लाए गए थे। शुरू के दिनों में इनकी पुरानी आदत और संस्कार के अनुसार जुए, अफीम तस्कर-व्यापार, मारपीट की वारदातें इन महल्लों में होती रहती थीं। अब तो यह घटनाएँ नहीं के बराबर है। अच्छे डाक्टर होटलों के मालिक, व्यापारी और शिक्षक इन में से हैं। कलकत्ता और यहाँ के चीनियों में अंतर लगा। यहाँ के चीनी अमरीकी राष्ट्र और समाज के अंग जिस रूप में बन गए हैं, हमारे यहाँ के उतने नहीं बन पाए हैं। कलकत्ता के चीनी न हिंदी अच्छी तरह बोल पाते हैं और न बगला ही। वे स्थानीय जीवन और समाज से अलग से रहते हैं।

अमरीकी जनसंख्या में नीग्रो लोगों का अनुपात अच्छाखासा है। इन का महल्ला अलग होता है। पूर्वी लंदन के स्लम्स सा अथवा बहुत कुछ कलकते के वेलेजली अंचल मे इनके महल्ले लगे। इन के जीवन स्तर और सामाजिक दशा के अपेक्षाकृत अंतर के संबंध में हम ने अपने मित्र मिस्टर विलियम से प्रश्न किया। उन्होंने बताया कि ये भी हमारी ही तरह अमरीकी हैं। गुलामी प्रथा के अनुसार तीनचार सदी तक अमरीका के विभिन्न प्रदेशों से नीग्रो आते रहे। उन्हीं की ये संतान हैं। गुलामी प्रथा का दमन और अंत हमारे यहां इस शताब्दी के आरम्भ तक कर दिया गया था। हम चाहते हैं कि ये हमारी ही तरह उन्नत हों। फिर भी ऐसा हो नही पा रहा है। संस्कारगत इन की प्रवृत्तियां कुछ विचित्र और रूखी हैं। आपस में लड़नाझगड़ना तो मामूली बात है। बलात्कार की इन की प्रवृत्ति ही इन्हें हमारे समाज से दूर रखती है। किसी भी गोरी महिला को हम अकेले इन के साथ निरापद नहीं समझते।

लौस ऐंजेल्स में हमने सुना था कि कुछ चोटी की अमरीकी अभिनेत्रियां अपने साथी के रूप में बलिष्ठ नीग्रो रखती हैं। शराब के नशे में वे कभी-कभी इन्हें पीटते भी हैं। फिर भी इनका साथ नहीं छोड़तीं। लाखों रूपये इन की सुखसुविधा के लिए खर्च करती हैं। अमरीकी नीग्रो में कई जातियां हैं। विशालकाय, बलिष्ठ और मोटे-मोटे होंठों के नीग्रो को देखने पर एक प्रकार का आतंक सा अनुभव हो उठता है। आम तौर से नीग्रो का रंग अफ्रीका के नीग्रो से काफी हलका होता है। इन में कई तो ऐसे भी होते है कि लगता है कि भारत के हैं।

तीसरे दिन सानफ्रांसिस्को के इंडियन ट्रेड कौंसिल में हम गए। बहुत दिनो बाद हमारे देश के विभिन्न समाचारपत्र यहां देखने को मिले। ट्रेड कौंसिल हमारे देश के वाणिज्यव्यापार के हित एवं संवर्धन के निमित्त विदेशों के बड़ेबड़े व्यापार केन्द्रों में स्थापित किए गए हैं। यहां के कौंसिल ने हमें समुद्रतट के एक प्रसिद्ध रेस्तरां में लंच दिया। रेस्तरां एक बड़े बोट पर था। बातचीत के सिलसिले में भारतीय निर्यात की अमरीका में स्थिति और भारत के प्रति अमरीका सरकार के रूख इत्यादि की चर्चा हुई। इस में कोई संदेह नहीं कि हम शिल्पोद्योग में अभी अमरीका से वर्षों पीछे हैं, फिर भी यहां के बाजारों में हमारी दस्तकारी की काफी इज्जत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और मांग है। इसलिए हमारी चीजों के लिए अच्छा बाजार है लेकिन जो शिकायत हम ने अन्य स्थानों में सुनी वही यहां भी कि हम स्तर ठीक नहीं रखते, पैकिंग भी हमारा दोषपूर्ण होता है जिस से माल खराब हो जाते हैं या टूट जाते हैं।

लंच में हमारे सामने जब कतरे फलों के साथ उबले अंडे को दो फांकों पर सजाकर पेश किये गये तो भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजीने अर्थभरी दृष्टि से देखा। मैं स्वयं इसी संकट में था कि कैसे बताऊं कि अंडे के स्पर्श से ही ये सुस्वादु सब्जी अब हमारे लिए ग्रहणीय नहीं रही। ऐसी ही घटना पेरिस में हुई थी। उसकी याद आ गई। मैं ने हंसते हुए कहा कि अब हमारे जयपुर के सरकारी दूध वितरण केंन्द्रों में भी निरामिष अंडे मिल रहे हैं लेकिन हम तीनों अभी तक उस स्तर के निरामिष भोजी नहीं हो पाए हैं। पश्चिम में अंडे को दूध के स्तर का निरामिष समझते हैं। सही है, लेकिन अभी तक हम इस बात को नही अपना सके हैं। मेरी अटपटी सी बात पर सब हंस पड़े और हमारे लिए दूसरी सब्जियां फौरन मंगाई गई।

भारतीय व्यापार सचिव से हम ने स्थानीय भारतीय प्रवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस शताब्दी के शुरू में पंजाब से कुछ सिख पश्चिमी अमरीका में कनाडा तथा कैलिफोर्निया के अंचल में आकर बस गए थे। बढ़ईगीरी और खेती के मजदूरी के काम ये करते रहे और अपने मितव्ययी स्वभाव और मेहनत के कारण इन के पास कुछ पूंजी भी जमा हो गई। अब तो इन में से कई संपन्न और धनाढ्य हैं। कितने के पास तो सैकड़ों एकड़ जमीन है, जहां यांत्रिक खेती होती है। बच्चे और इन की संतान अब अमरीकी नागरिक हैं। इन्हीं प्रवासियों में एक तो अमरीकी सीनेट में भी है। लेकिन अब भारतीयों के आगमन पर पहले जैसी छूट नहीं है। उनके लिए एक कोटे के अनुसार नए आने वालों की संख्या निश्चित कर दी गई है। आम तौर से वैवाहिक संबंध इन में आपस में ही होते हैं लेकिन कभीकभी अमरीकियों से भी हो जाते हैं हमारी इच्छा थी कि हम इन के बीच जा कर नजदीक से इन से परिचित हों लेकिन शहर के बाहर देहातों मे जाना पड़ता और कार्यक्रम के अनुसार इस के लिए समय नहीं था।

भारत से प्रति वर्ष काफी संख्या में विद्यार्थी संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न शहरों में अध्ययन के लिए जाया करते हैं। सानफ्रांसिस्को में हम ने ऐसे विद्यार्थियों को देखा। इन में लड़कियां भी हैं। हमें यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि ये पढ़ते हैं और फुरसत के समय काम भी करते हैं। शहर के ताज आफ इंडिया में भारतीय ढंग के भोजन के लिए गए थे। यहां एक भारतीय महिला को काम करते देखा। साड़ी पहने हुए थी। मैं ने पूछा कि आप किस प्रान्त से आई हैं ? अपनी भाषा सुनकर लगा कि वह प्रसन्न हुई। अधिकारी से चंद मिनटों की छुट्टी ले कर पास आ गई। उसने बताया कि उत्तर प्रदेश की है और अपने पति के साथ यहां आई है पति माईनिंग पढ़ रहे हैं और वह स्नातकोत्तर समाज विज्ञान। पति पत्नी दोनों काम भी करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक को प्रति दिन ६० रुपए की आमदनी हो जाती है। कई भारतीय छात्रछात्राएं इस तरह पढ़ती और काम करती हैं। आश्चर्य हुआ कि अपने देश के ही हैं ये। फिर कलकत्ता, बंबई, दिल्ली और मद्रास में ऐसा नहीं दिखाई देता, क्यों ? शायद हमारे यहां का वातावरण अभी श्रम की मर्यादा के अनुकूल बन नहीं पाया है।

सेनफ्रांसिस्को का विकास योजना के अनुसार हुआ है इसलिएं सड़कें और मकान करीने से बने हैं। पेरिस की तरह यहां भी चौड़ी सड़कें हैं। दोनों ओर की चौड़ी पट्टियों पर लगे ऊंचेऊंचे पेड़, अपने पीछे आकाश को छूते हुए भवन को देख कर, पत्तियां हिला कर पूछते से लगते हैं कि हमें प्रकृति ने इतना ऊंचा बनाया पर तुम्हें किस ने ? सड़क के बीचोंबीच चौड़ी सीधी पट्टी एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है। इनमें हरी दूब के गलीचे पर रंगबिरंगे मौसमी फूलों के पौधे तो मानो सौंदर्य की छटा बिखेरते हैं।

यह शहर मुझे लौस ऐंजेल्स से ज्यादा शानदार लगा। यहां प्रकृति हंसती है, लोग हंसते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं। यों तो यहां के सिविक सेंटर में वहुत से दर्शनीय स्थल हैं। इन में सिटी हाल, पब्लिक लाइब्रेरी, स्टेट बिल्डिंग और ओपेरा प्रसिद्ध हैं। म्यूजियम आफ एंथ्रोपोलोजी और स्टीनहार्ट एक्वेरियम मुझे अच्छे लगे। इस ढंग के म्यूजियम हमारे देश में भी बनें तो बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे। म्यूजियम आफ एंथ्रोपोलोजी प्राक् ऐतिहासिक युग से आज तक के सभी जीव विज्ञान से संबंधित हैं। जीवों के माडल उन के स्वाभाविक और प्राकृतिक परिवेश के बीच रखे गए है। इन के संबंध में आवश्यक जानकारी और साहित्य भी उपलब्ध हैं। एक्वेरियम में बंबई के तारापोरेवाला के संग्रह से कहीं अधिक सामुद्रिक जीवजंतु देखने में आए।

सानफ्रांसिस्को अपने बागवगीचों के लिए अमरीका में प्रसिद्ध है। शहर में ५४ बागवगीचे हैं जिन का कुल क्षेत्रफल ४,६३५ एकड़ है। इन में सवसे प्रसिद्ध गोल्डन गेट पार्क है। तीन मील लंबे और ड़ेढ मील चौड़े इस पार्क का क्षेत्रफल १,०१८ एकड़ है। पार्क में कई संग्रहालय, स्मारक, पक्षीगृह, मत्स्यशाला, संगीत गृह और शिशु उद्यान हैं। इसके अलावा स्टेडियम, टेनिसकोर्ट, फुटबाल और क्रिकेट ग्राउंड तो हैं ही ! पार्क के स्टेडियम में एक साथ एक लाख दर्शक बैठ सकते हैं। यह स्टेडियम सभी अंतर्राष्ट्रीय खेलों के लिए है जिस में मोटर दौड़ भी हुआ करती है। सागर तट के इस पार्क की हरियाली और विस्तार दुनिया में बेजोड़ है।

किसी ऊंचे मकान की छत से सानफ्रांसिस्को को देखना चाहता था। स्टेट बिल्डिग के सब से ऊपर की मंजिल से सानफ्रांसिस्को देखने का सौभाग्य हुआ। शाम हो चुकी थी। बत्तियां जगमगा रही थीं। नियोन साइन के तरहतरह के विज्ञापन रंग बिखेर रहे थे। नीचे देखा, गाड़ियां खिलौने से छोटी। आदमी की तो बात ही क्या ? अमरीकी नीग्रो, रेड इंडियन, चीनी किसी की भी पहचान नहीं। दूर पर देखा, स्वर्णद्वार का सेतु दीपों की माला पहने दूर उस पार क्षितिज में अदृश्य हो रहा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मोटर की तरह दौड़ता मोटर सिटी
शिकागो

लौस ऐंजेल्स और सानफ्रांसिस्को के अनुभव ने स्पष्ट कर दिया था कि अमरीका वास्तव में नई दुनिया है। प्राच्य, मध्यपूर्व अथवा पाश्चात्य देशों की तरह अमरीका में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि और गहराई नहीं के बराबर है। इतिहास यहां बन रहा है, संस्कृति पनप रही है, साहित्य मंज रहा है। अमरीका इन तीनों की एक विशाल प्रयोगशाला है। आने वाला समय इस के बारे में बता सकेगा। अभी कुछ कहना या निर्णय पर पहुंचना कठिन है।

इसी भावना से मैंने अमरीका को देखा। वैसे हमारी इस यात्रा का उद्देश्य था, वहां के औद्योगिक विकास का अध्ययन। हमारा वायुयान तेजी से पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ रहा था। प्लेन में बैठा मैं अमरीका का साहित्य पढ़ रहा था। तेल, अल्युमीनियम और सिने उद्योग में अग्रणी कैलिफोर्निया की यांत्रिक व्यवस्था के सिवा केमिकल उद्योग में बढ़ाचढ़ा नियाग्रा, डेट्रियोट मोटर निर्माण में माहिर, वाशिंगटन विश्व की राजनीति का संचालक, न्यूयार्क विश्व की शांति और सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में राष्ट्रों की सम्मिलित चेष्टा का केंद्र और शिकागो ? शिकागो सभी प्रकार के उद्योगव्यापार के लिए प्रसिद्ध है। वैसे अंडे, मांस, गल्ले और पशुओं की तो विश्व में सबसे बड़ी मंडी है।

हम यहां के ओडहियर हवाई अड्डे पर उतरे। हमारे लिए तो लौस ऐंजेल्स और सानफ्रांसिस्को के मकान ही काफी ऊंचे थे। यहां तो कुछ और ही नजारा नजर आया। ऐसा लगा कि मानो ऊंचाई की होड़ लगा कर मकान बनाए गए हैं। सड़कों पर गाड़ियां इतनी बेशुमार हैं कि समय बचाने के लिए लोग आम तौर पर हेलिकाप्टर से एयर पोर्ट पर आतेजाते हैं।

शिकागो में हमारे व्यावसायिक संबंध थे। इसलिए ठहरने की और घूमने की अच्छी व्यवस्था हो गई। हम तीनों साथी कोनार्ड हिल्टन होटल में ठहरे। यह विश्व का सबसे बड़ा होटल है। होटल क्या है, एक अच्छाखासा शहर कहिए। हमारे यहां के अशोक, ग्रांड, ग्रेट ईस्टर्न की इससे तुलना ही नहीं की जा सकती। १७ मंजिलों का विशाल और प्रशस्त प्रासाद, प्रत्येक मंजिल पर दो सौ कक्ष। कुल मिला कर तीन हजार कमरे और कक्ष हैं जिन में सुखसुविधा के सभी साधन सहज उपलब्ध थे। कहीं दावतें हो रही हैं, तो कहीं देशविदेशों की एक नहीं अनेक कान्फ्रेंसे चल रहीं हैं। फिर भी व्यवस्था और प्रबंध में कहीं भी शिथिलता नहीं। हम ने देखा कि अस्थि विशेषज्ञों की एक कांफ्रेंस चल रही है। विभिन्न देशों के चिकित्सक आमंत्रित थे। उन का विषय हमारी समझ के बाहर था लेकिन उनकी लगाई गई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रदर्शनी ने हमें अवश्य आकृष्ट किया। कृत्रिम हाथपैर और अंगुलियां लगा कर विकलांग मनुष्य को काफी हद तक सुविधा हो जाती है। 'पंगु गिरि लंघे' आश्चर्य की बात नहीं लगती।

साधारण व्यक्ति के लिए हमारा होटल एक प्रकार से आधुनिक भूलभुलैया ही था। अलगअलग हिस्सों के लिए अलगअलग लिफ्टें थीं। मैं एक बार यों ही कौतूहलवश एक लिफ्ट पर चढ़ गया। पड़ गया चक्कर में। कहीं दूसरी ओर ही जा पहुंचा। वहां से काफी देर बाद अपने कमरे में आ सका। परेशानी की हालत में चंद्रकांता उपन्यास के अय्यारी महलों की याद आ गई।

यों तो पश्चिम में होटल व्यवसाय काफी उन्नत है लेकिन अमरीका में इसे चरमोन्नत कहना अत्युक्ति नहीं होगा। यहां होटलों में विभिन्न प्रकार की दुकानें हैं। हजामत बना लीजिए, हमाम में गुसल कर लीजिए, चाहें तो बैले, सिनेमा देख लीजिए, नाचने की इच्छा हो तो नाच लीजिए। नभ, जल, थल किसी भी यात्रा के लिए टिकटें मिल जाएंगी। विश्व के किसी भी कोने से टेलिफोन से बात कर लीजिए। सारी सुविधाएं हैं। रेडियो तो पुरानी बात है, टेलीविजन हर कमरे में उपलब्ध है। अगर कुछ चाहिए तो अंगुली से बटन छू दीजिए, पल भर में आप की ख्वाहिश पूरी।

शहर घूमने निकला। मकानों की ऊंचाई इतनी है कि देखने से गरदन दुखने लगेगी। बीसपचीस मंजिलों की मकान तो यहां आम तौर पर हैं ही। पचाससाठ मंजिल के भी कुछ हैं। हम ने पूछा कि आखिर यह ऊंचाई की होड़ क्यों? उत्तर मिला कि शहर में विस्तार की गुंजाइश कम है। जमीन की कीमत बहुत है। आबादी तेजी से बढ़ रही है। उस अनुपात में आवास की आवश्यकता है। इसी लिए आसमान की ओर बढ़ने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। मैं ने मन ही मन सोचा कि यही रोग तो हमारे कलकत्ते को लगा है और शौकिया छूत दिल्ली को भी।

हमने मिशिगन एवेन्यू पर पायोनियर भवन को बनते देखा। १७ करोड़ रुपए की लागत से बन रहा था। काम इतनी तेजी से चल रहा था कि देख कर दंग रह जाना पड़ा। सोचने लगा कि अमरीकन जीवन में गति का महत्त्व बहुत है। यूनाइटेड अमरीका और प्रुडेंशियल बिल्डिंग को देखने के बाद हम मेरीना सिटी नाम के दो भवनों को देखने गए। ६५ मंजिलों के इन वृत्ताकार भवनों में प्रत्येक मंजिल पर मोटरों के लिए गैरेजें भी बनी हैं। आप ने ६५वीं मंजिल पर अपने कमरे से घंटी बजाई, गाडी आप के कक्ष के सामने हाजिर। आप बैठ जाइए, गाड़ी लिफ्ट से सड़क पर आ जाएगी और इसी प्रकार ऊपर भी चली जाएगी। सच मानिए अमरीका तंत्र मंत्र का नहीं, यंत्र का बड़ा भक्त है।

राह चलते हुए मैंने देखा कि कहींकहीं किसी भवन में गाड़ियों का आवागमन बहुत अधिक हो रहा है। कारण पूछने पर पता चला कि शहर में पंदरहबीस मंजिलों के गैरेज न हों तो सड़कों पर गाड़ियों के पार्किंग के लिए जगह कहां मिलेगी? कलकत्ते में भी मुझे एक भरी दोपहर में क्लाईवस्ट्रीट में पार्किंग के लिए कई फेरे लगाने पड़े थे। फिर यह तो अमरीका का प्रसिद्ध शहर शिकागो है!

शहर में कोई खास पुरानी चीज नहीं देखेंगे। एक पानी की टंकी जरूर देखी जो ९० वर्ष पहले पूरे शहर को पानी देने के लिए बनाई गई थी। उस समय से शिकागो की आबादी कितनी तेजी से बढ़ी है, इस का अनुमान इस टंकी के आकार को देखने से लग जाता है।

शिकागो, मिशिगन झील की देन है, क्योंकि इसी के कारण यहां कृषि का अच्छा विकास हुआ। फलस्वरूप पशुपालन का व्यवसाय बढ़ चला। आज तो शिकागो गल्ले, मांस, मुर्गी और अंडों के व्यवसाय का विश्व में सबसे बड़ा केंद्र है। अमरीका में सबसे बड़े और सबसे आगे बढ़ने की होड़ है। यहां के हाईकोर्ट ने एक मुकदमे में एक कंपनी पर १४ करोड रुपया जुर्माना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया था। जो अब तक की जुर्माने की राशि में मव मे अधिक मानी जाती है। सारी रकम की अदायगी समय पर कर दी गई ! इस बात का भी शिकागो वाले बड़प्पन के साथ उल्लेख करते हैं।

होनोलूलू की तरह यहां भी विभिन्न जातियों का अपूर्व मिश्रण हुआ है। स्पेन, पुर्तगाल, इंगलैंड, इटली, जरमनी, यहां तक कि रूस से भी लोग व्यवसाय के लिए शिकागो में आकर बस गए। आज यहां का नागरिक अपने में यूरोप की किस जाति का रक्त कितने अंश में है, यह शायद ही बता पाएगा।

एक ऐसा भी जमाना शिकागो का था जब कि उस की शोहरत अपराध के केंद्र के रूप में थी। दिनदहाड़े राहजनी, खूनखराबी, जुए और नशाखोरी के डर मे शिकागो के बहुत से महल्लो में भला आदमी जाने का साहस नहीं करता था। लेकिन वह मव अतीत की बातें हैं। आज वे दृश्य केवल सिनेमा में देखने में आते हैं या किताबों में।

नीग्रोबस्ती यहां भी है। शायद समस्या भी उतनी ही जटिल है जितनी की कैलिफोर्निया में। बल्कि इस अंचल के नीग्रो जहां अधिक जाग्रत लगे, वहां उग्र भी। इन के अलग महल्ले हैं और रात्रि में आमतौर पर गोरे लोग खासतौर से औरतें, वहां नहीं जातीं।

कच्चे माल की सहज उपलब्धि शिकागो के औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि रही है। सस्ती मजदूरी पर नीग्रो श्रम भी प्रचुर मात्रा में यहां मिलता रहा है। इस के अलावा मिशिगन झील के कारण देशविदेश के विभिन्न अंचलों मे माल के आवागमन में सुविधा रही है। आज यहां प्रायः सभी प्रकार के कलकारखाने हैं। इन में मे कई का उत्पादन तो हमारे देश के संपूर्ण उत्पादन से कहीं अधिक है। यहां की एमस्टडन नाम की फर्म का अकेले का जितना उत्पादन इस्पात ढलाई में है, उस का आधा भी सारे भारत वर्ष में नहीं होता। इस ढंग के विभिन्न वस्तुओं के कारखाने यहां एक नहीं अनेक हैं।

अब तक हमने भारत में, पश्चिमी देशों में, जापान में जो म्यूजियम देखे थे उन से यहां के भिन्न लगे। नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम और इंडस्ट्री एंड साइंस म्यूजियम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम जीव के विकासक्रम पर है। आदि काल से अब तक विभिन्न प्रकार के जीव अपनेअपने समय के वातावरण में कैसे रहते थे, वे किस प्रकार के थे इन सबों के माडल बड़े ही स्वाभाविक ढंग से बना कर दिखाए गए हैं। प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय, दैत्याकार, दिनोंसरों की प्राप्त अस्थियों पर मूल आकारप्रकार में उन के माडल जहां आकर्षक और भयानक हैं वहां ज्ञानवर्धन के लिए अत्यन्त सहायक भी।

उद्योग विज्ञान संग्रहालय भी अन्य देशों से भिन्न देखा। कोयले की खान कैसे होती है, उस से कोयला कैसे निकलता है, जानने के लिए दर्शक को बनाई गई खान में उतार कर भूगर्भ में ले जाते हैं। आल्प्स की चोटियों के वायुमंडल का दबाव और वहां के शीत का अनुभव कागजों और माडलों से नहीं, स्वयं कर लीजिए। मोटर, रेल और हवाई जहाज कैसे चलाए जाते हैं यह आपको उन में बैठा कर समझाया जाता है। इसी प्रकार सागर के गर्भ में रहने वाले यूबोट के कलपुरजों का परिचय प्राप्त कीजिए और राकेट के सिद्धांत का भी। अमरीका में गाइड बहुत महंगे हैं, यहां के गाइड मशीन होते हैं। आपको जो बातें जाननी हों, उन के लिए निर्देशक बटन दबा दीजिए। मशीन सारी बातें समझा देगी।

टोकियो में हमने डिपार्टमेंटल स्टोर देखा था। मेरा अनुमान था कि यहां भी बहुत कुछ उसी ढंग के होंगे या उससे कुछ बड़े। लेकिन यहां तो सब कुछ कल्पनातीत है। हम 'मार्शल फील्ड' स्टोर देखने गए। तीन सड़कों तक इसका विस्तार है। इन का दावा है कि सुई से ले कर हाथी तक इन के यहां मिल सकता है। अनगिनत प्रकार की वस्तुएं विभागश: काउंटरों पर सजी हैं। सचमुच, पशुपक्षी भी हैं। मुझे यहां हाथी नहीं दिखा उस समय तो मैं पूछना भूल गया मगर मेरा विश्वास है कि दुकान पर भले ही हाथी न हो पर इस की उपलब्धि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की व्यवस्था जरूर होगी । केवल पशुपक्षी विभाग में बेचने वाले थे, शेष अन्य विभागों में शायद ही कोई हो । कई मंजिलों का स्टोर, करोड़ों का माल, जो जी में आए उठाते चलो और झोले में डालते चलो । दाम सब का लिखा है । दरवाजे पर आ कर झोला रख दीजिए । दाम देख कर मशीन पर अपनेआप जोड़ लग कर बिल बन जाएंगे ।

इस का मतलब यह नहीं कि अमरीका में चोरी या अपराध नहीं हैं । चोरियां होती हैं । छोटी नहीं, बहुत बड़ी । जेब नहीं कटती, बैंकों पर डाके पड़ते हैं, थप्पड़ मार कर घड़ी या गले की सिकड़ी नहीं छीनते बल्कि किसी करोड़पति के लड़के को छिपा कर मांबाप से बड़ी रकम ऐंठते हैं । स्टोर देख कर निकलते समय मुझे अपने यहां के एक मित्र की याद आ गई जिन्होंने कलकत्ते में इसी ढंग का एक स्टोर खोला था । कुछ ही दिनों बाद बड़ा नुकसान उठा कर उसे बंद कर देना पड़ा । क्योंकि ज्यादातर माल बिना दाम दिए ही लोग ले गए ।

मैं सोचने लगा कि हमारी संस्कृति प्राचीन है और त्यागप्रधान भी । अमरीकी संस्कृति आधुनिक और भोगप्रधान है । फिर क्या कारण है कि हमारा नैतिक स्तर उन के मुकाबले में काफी नीचा है । मुझे लगा कि इस की जड़ में अभाव, गरीबी और अशिक्षा प्रधान रूप से है । आज राष्ट्र को एक बार फिर से आर्थिक दशा और शिक्षा पर सोचने की जरूरत है ।

शिकागो विश्व में मांस का सबसे बड़ा बाजार है । यहां का कसाईखाना बेजोड़ है । कतार की कतार में खड़े किए हजारों पशुओं के सिर बटन दबाते ही अलग हो जाते हैं । यह दैनिक क्रम कम से कम पिछले ५०-६० वर्षों से चला आ रहा है । फिर भी पशु वहां घटते नहीं, बढ़ते ही जा रहे हैं । वहां पुष्ट, स्वस्थ और मांसल गाएं मनों दूध देती हैं । और हमारे यहां मातृवत पूज्या गायों की दशा कैसी दशा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है ।

मैं वहां अपने व्यापारिक संबंध के फर्म के बड़े साहब से मिलने गया । बड़े प्रेमपूर्वक मिले । शहर से २५ मील दूर रहते थे इसलिए उन के भोजन का निमंत्रण स्वीकार न कर सका लेकिन कारखाना देखना मंजूर कर लिया । अगले दिन दो बजे उनके आफिस में मिला, वह प्रतिक्षा कर रहे थे । सचिव को बुला कर उन्होंने आवश्यक निर्देश दिए और कहा कि वे दिन भर के लिए बाहर जा रहे हैं, दूसरे दिन आएंगे । अमरीकन बड़े बेतकल्लुफ होते हैं इसलिए उन से मिलने पर संकोच या झिझक नहीं रहती । हम दोनों आधे मील चल कर हर्टज गैरेज में गए और एक बड़ी कार ली । बातचीत में मुझे यह जान कर बड़ा ताज्जुब हुआ कि इतनी बड़ी फर्म के मालिक प्रतिदिन घर से २५ मील शिकागो का सफर रेल से करते हैं । मिस्टर लेगी ने बताया कि सड़कों पर गाड़ियों की भीड़ के कारण देर बहुत लगती है, दूसरे, शहर में पार्किंग की जगह नहीं मिलती । विश्व के संपन्न उद्योगपति साधारण क्लर्कों के साथ ट्रेन में रोज मुसाफिरी करने में संकोच नहीं करते । हमारे यहां के उद्योगपतियों के लिए यहां एक अच्छा दृष्टांत है ।

जब हम कारखाने पहुंचे तो उस समय चार बज चुके थे । पहली पाली के मजदूर जा रहे थे । मैं ने लक्ष्य किया कि साफ सुथरे इस्तरी किए हुए कपड़े, तरोताजा शकलें, स्वास्थ्य और मौज का वातावरण । मजदूर अपनीअपनी कारों में बैठे हुए 'हलो, लेगी,' 'ओ, हाउ,' इत्यादि अभिनंदन करते हुए बेफिक्री से जा रहे थे । पहले तो गाड़ियों की कतार देख कर मैंने सोचा था कि कोई कांफ्रेंस समाप्त हुई है और प्रतिनिधि अपनीअपनी कारों में वापस जा रहे हैं । मुझे आश्चर्य हुआ कि मिस्टर लेगी के इतने दोस्त उन के आते ही केवल 'हैलो लेगी' कह कर चले गए । मैं ने उनसे कहा, "आप बड़े खुश किस्मत हैं, आप के इतने सारे दोस्त हैं । वे शायद जल्दी में हैं ।" उन्होंने उत्तर दिया, "हां, भाई, बात यह है कि दिन भर कारखाने में काम करने के बाद दोस्तों को घर की दोस्ती भी तो निभानी पड़ती है ।"

बात समझ में आ गई । कारखाने के अंदर गया । अभी भी कुछ मजदूर फव्वारों के नीचे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महा रहे थे। कुछ नहाधो कर काफी पी रहे थे। यहां भी 'हैलो लेगी' का जोर। मिस्टर लेगी भी कभी किसी से हैलो कह देते या मुस्करा कर आगे बढ़ जाते।

मैं यह सारे नजारे देख कर हैरत में था कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' का मंत्रोच्चार करने वाले हमारे देश के उद्योगपति और सरकारी अफसर अपने कारखानों के मजदूरों को तथा आफिसों के क्लर्कों को कुटुंबी का पद देना तो दूर रहा, उनके साथ थोड़ी सी सहानुभूति का भी बरताव करने लगें तो बड़ी बात होगी। आए दिन की हड़तालें और तोड़फोड़ कम हो कर देश में उत्पादन की वृद्धि हो जाए।

कारखाने के मैनेजर ने मजदूरों के विषय में जानकारी दी कि वे प्रति द्रिन आठ घंटे और सप्ताह में पांच दिन काम करते हैं। प्रति घंटे की मजदूरी कम से कम दस रुपए और दक्षता के अनुसार २२ रुपए तक है। यानी कम से कम २००० से लेकर ४००० रुपए तक प्रति मजदूर की प्रति मास की आय है। प्राय: सब के पास अपना मकान, कार और टेलीविजन है। पतिपत्नी दोनों काम करते हैं। पति कारखाने का मजदूर है तो पत्नी आफिस क्लर्क, टाइपिस्ट या स्कूल में अध्यापिका है। परिवार नियोजन के महत्व को ये समझते हैं इसलिए बच्चे कम हैं। यही कारण है कि स्वास्थ्य उनका अच्छा है।

सब कुछ देख रहा था और सुन रहा था। मेरा मन बारबार अपने देश के कारखानों और कोयले की खानों में काम करने वाले पीले चेहरों को देख रहा था। मैले चिथड़ों में लिपटे बीमार बच्चों को छाती से चिपटाए हुए, टूटे छप्पर के नीचे बैठी हुई शकलें भी सामने आ जाती थीं।

उसी शाम को मिस्टर लेगी ने हमें शिकागो के प्रसिद्ध पामर्स हाउस रेस्तरां में डिनर का निमंत्रण दे रखा था। पामर्स हाउस शिकागो का सब से महगा रेस्तरां है। एक बार के भोजन में कम से कम तीनचार घंटे लग जाते हैं और चार्ज भी सत्तरअस्सी रुपए प्रति व्यक्ति, क्योंकि भोजन के साथ चोटी के कलाकारों के नृत्य, संगीत, वाद्य आदि के कार्यक्रम चलते रहते हैं। मुझे उन के गाने बजाने में कोई विशेष आनंद नहीं आया पर बैले की भावमुद्राएं अच्छी तरह समझ सका—पश्चिम के अन्य देशों की तरह वही निराश प्रेमियों का नृत्य या फिर मिलन नृत्य।

इन देशों में बड़ीबडी राजनीतिक या व्यापारिक उलझी समस्याएं भोजन के टेबलों पर खातेपीते सुलझा ली जाती हैं। शायद हमारे लिए पहले से ही निरामिष भोजन की तैयारी के लिए सूचित कर दिया गया था। इसलिए, हमारे सामने भांतिभांति की मिठाइयां, फल और आइसक्रीम की तश्तरियां रखी जाने लगीं। खाने का ढेर सा सामान जब आने लगा तो श्री हिम्मतसिंहका ने धीरे से मिस्टर लेगी से कहा, "इन्हें बहुत कम करा दीजिए।" उन्होंने मुस्करा कर कहा, "जितना चाहें, खा लें बाकी को नष्ट कर दिया जाएगा। आधिक्य हमारी समस्या है।" मैं ने कहा, "एक ओर तो आप करोड़ों मन गल्ला और रूई जला देते हैं दूसरी ओर इन के बिना बहुत से लोग भूखे और नंगे हैं। फिर क्यों नहीं आप यह बचा हुआ सामान उन देशों को दे देते हैं?"

मिस्टर लेगी कुछ संजीदगी से कहने लगे, "वैसे तो अमरीका प्राय: सभी अभावग्रस्त देशों को किसी न किसी रूप में सहायता या उधार देता रहता है पर इन के साथ ही हमारा एक कटु अनुभव भी हमें कुछ सोचने के लिए बाध्य कर देता है। जब भी हम ने किसी देश को बहुत ज्यादा दिया कि वह हमारे विरोधी विचार वालों के हाथ में चला गया। जैसे चीन, इडोनेशिया और बर्मा आदि। हमारे देश में इस की प्रतिक्रिया हुई। इसलिए हमारी सरकार को जनता तथा समाचार पत्रों की राय को मान कर ही चलना पड़ता है। विश्व के बाजार का सतुलन रखने के लिए चीजों को कभीकभी नष्ट कर देना पड़ता है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजनीति या अर्थशास्त्र के आज के सिद्धांतों के आधार पर संभव है उन की बातें सही हों, पर मुझे जंची नहीं। क्योंकि चिरकाल से अपने धर्मग्रंथों और संतों की वाणी में पढ़ता आ रहा हूँ कि मानवता की सेवा ही सब से बड़ा धर्म है। 'सर्वेन सुखिनः संतु, सर्वे संतु निरामया' आदि। रात्रि के १२ बज चुके थे, नींद आ रही थीं। इसलिए ज्यादा बहस में न पड़ कर होटल को रवाना हुए।

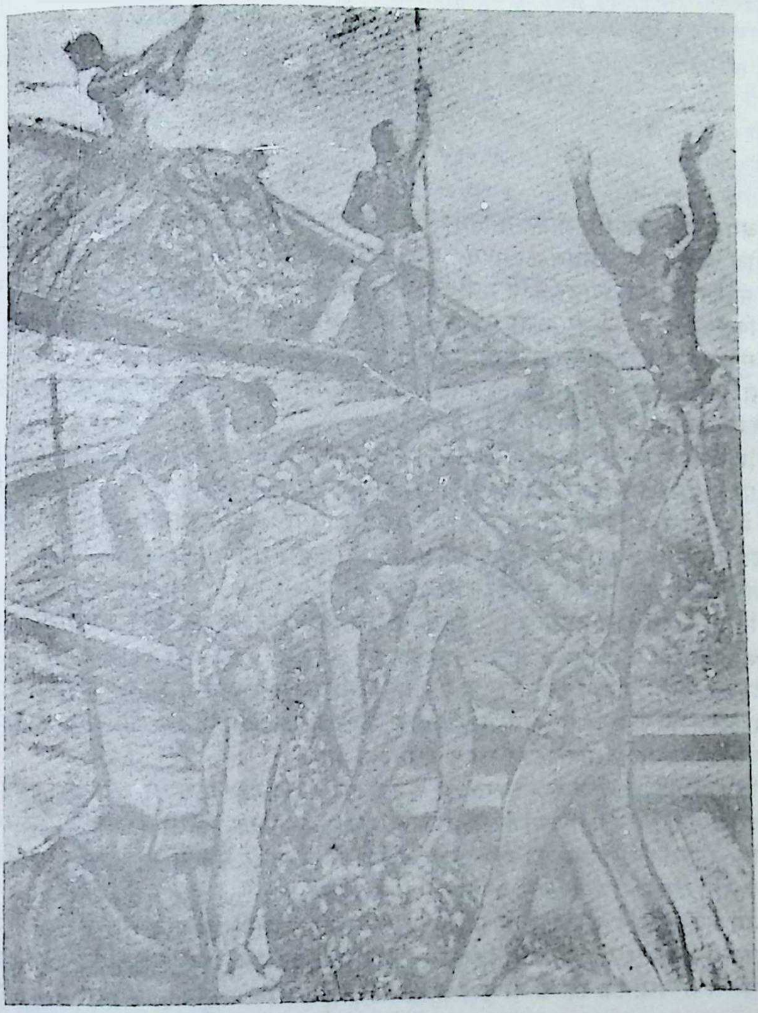

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानव के पौरुष को चुनौती ?

नियाग्रा

अमरीका क्षेत्रफल में भारत से तिगुना बड़ा है, जब कि जनसंख्या में ४० प्रतिशत। इसके विपरीत वहां का औद्योगिक उत्पादन हमारे यहां से बहुत ज्यादा है, इसलिए वहां मजदूर बहुत महंगे हैं और ज्यादातर काम मशीनों द्वारा होता है। शिकागो के एक कारखाने में हमने देखा कि एक बड़ेबड़े हाथों वाली मशीन छोटीबड़ी चीजों को चुन कर अलगअलग रख रही थी। सुदक्ष कारीगरों से गलती होनी संभव है, पर इन मशीनों से नहीं। रेलवे, थियेटर और सिनेमा के टिकट बेचना, अगर आप के पास खुले पैसे नहीं हैं तो बाकी चेंज वापस देना आदि सब काम मशीनों के ही जिम्मे हैं।

शिकागो विश्व का प्रसिद्ध औद्योगिक शहर है और इसे देखने को बहुत समय चाहिए था। परंतु ५० दिनों में पृथ्वी प्रदिक्षण करने के संकल्प से हम रवाना हुए थे। इसलिए तीन दिनों में जो कुछ भी संभव था, सरसरी तौर पर देख लिया। वहां के गगनचुंबी भवन, हजारों कारखानों की हुंकार और जनजीवन की व्यस्तता से हम प्रभावित तो बहुत हुए लेकिन मन अब और कहीं चलने को मचल रहा था।

नियाग्रा प्रपात का नाम बहुत दिनों से सुन रखा था। कई बार रांची के गौतमधारा और शिलांग के एलीफेंटा झरनों के नीचे स्नान भी कर चुका था। सुना था कि नियाग्रा इन सब से बड़ा है, इसलिए मन में उत्सुकता थी कि उस के नीचे स्नान करने में शायद और भी ज्यादा आनंद आता होगा। वहां जाने का प्रोग्राम पहले से बना हुआ था ही और बफैलो में रासायनिक कारखाने और स्टील प्लांट देखने का भी।

शिकागो से हवाई जहाज द्वारा हम बफैलो पहुंचे। वहां कारखानों को देखा, उन की उत्पादन क्षमता और कार्यप्रणाली के बारे में आवश्यक जानकारी ली। वहां के अधिकांश कारखाने नियाग्रा से प्राप्त की गई सस्ती विजली से चलते हैं उन में से कई कारखानों का उत्पादन तो हमारे देश के कुल उत्पादन से भी ज्यादा है।

हम एक खाद के कारखाने में गए। वहां महाकाय मशीनें तो बहुत सी थीं, पर मजदूर बहुत कम दिखाई दिए। हमें लगा कि शायद कारखाना बंद है और सफाई आदि हो रही है। पूछने पर पता चला कि कारखाना पूरी क्षमता से चालू है और आधुनिकतम यंत्रों से सुसज्जित है। वहां २,००,००,००,००० रुपए का वार्षिक उत्पादन होने पर भी मजदूर सिर्फ २,२०० ही हैं। हमारे यहां इतने बड़े कारखाने में बीसपचीस हजार से कम मजदूर नहीं होते, इसीलिए वहां मजदूरों को ज्यादा मजदूरी दी जाती है वैसे वहां भी मजदूरी भिन्नभिन्न उद्योगों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कमज्यादा है, रासायनिक और लोहे के कारखाने में दूसरों की अपेक्षा अधिक है । जिम कारखाने में हम गए थे वहां न्यूनतम ३००० रुपए और अधिकतम ४,५०० रुपए वेतन २० दिनों के काम पर था । आठ घंटे प्रति दिन से ज्यादा या शनिवार के काम पर वहां मजदूरों को दोगुनी मजदूरी देनी पड़ती है । हाल में दो वर्षों में मजदूरी की दरों में दस से १५ प्रतिशत वृद्धि और हो गई है ।

वफैलो वैसे एक आधुनिक शहर है लेकिन घूमने की हम लोगों की कोई इच्छा नहीं थी । दरअसल वफैलो का खास महत्व बहुत अंशों में नियाग्रा के कारण ही है । प्रपात यहां से केवल ११ मील की दूरी पर है । साधारणतः व्यस्त पर्यटक वफैलो में ही ठहरते हैं । हवाई जहाज से आए, कार से नियाग्रा पहुंचे शाम तक प्रपात देखा, रात को लौटे और हवाई जहाज से दूसरे दिन वापस । हम नियाग्रा को इस तूफानी तरीके से नहीं देखना चाहते थे । हमें पता चला कि नियाग्रा में रहने के लिए अच्छे होटल हैं । यात्रियों के लिए उन में सुखसुविधा की व्यवस्था भी है । अतः हम तीनों साथियों ने वहीं ठहरने का निश्चय किया ।

कार द्वारा नियाग्रा के लिए रवाना हो गए । पास पहुंचने पर प्रपात का गर्जन स्पष्ट होता जा रहा था । सागर और प्रपात की आवाज में अंतर होता है । सागर के घोष में एक प्रकार का ताल और स्वर सा रहता है, जिस में उतार और चढ़ाव होता है, लेकिन प्रपात मानों अनवरत हर......हर......हर......के रव से वंदना करता हुआ सा लगता है ।

प्रपात के पास ही हम लोग एक होटल में ठहर गए । हम ने सामान रखा और हलकी काफी पी । शाम हो चुकी थी । दिन भर की थकान के बाद हम विश्राम भी चाहते थे । पर शिकारी और पर्यटक दोनों का नशा अजीब होता है । उन्हें चैन और आराम कहां ? थोड़ी देर बाद ही हम होटल से बाहर निकल पड़े । बाहर की ताजी हवा ने हमारी थकान मिटा दी । हम टहलते हुए पुल पर पहुंचे । प्रपात यहां से करीब दोतीन फर्लांग की दूरी पर है । प्रथम दर्शन ने ही हमें वहां विमुग्ध और आत्मविभोर कर दिया । एक समतल छोटे गहरे गर्त में पठार से अपार जलराशि नीचे गिर रही थी । जल के अगणित सूक्ष्म कण हवा में उड़ कर कुहासे की सृष्टि कर रहे थे । रात के अंधकार में बिजली का प्रकाश सतरंगी इंद्रधनुष बना रहा था ।

देशविदेश घूमता रहा हूं । धरती की मुस्कान प्रकृति का विविध शृंगार भारत, यूरोप और अफ्रीका में देखने का संयोग मुझे कई बार मिला । विभिन्न देशों के भ्रमण में मै ने यह भी लक्ष्य किया कि मनुष्य की चेष्टा चिरकाल से नैसर्गिक वैभव से होड़लेने की रही हैभारत का ताज, मिस्र के पिरामिड, पेरिस का लुव्रे, वरसाई और लेनिनग्राद के राजप्रासाद, वेटिकन में पोप की राजधानी, न्यूयार्क में मनहटन के गगनचुंबी भवन—ये सभी मनुष्य के ज्ञानविज्ञान के विकास के पुष्ट प्रमाण हैं । फिर भी ये वैभव नैसर्गिक सौंदर्य की तुलना में अत्यंत नगण्य हैं ।

ध्रुवांचल में मध्य रात्रि का सूर्य और अमरनाथ के पथ पर शेषनाग के ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक हिमालय के हिमशिखरों की तरह नियाग्रा को देख कर मनुष्य प्रकृति की शोभा और शक्ति का साक्षात परिचय पाता है । मुझे याद आती है एक घटना.

अमरनाथ के रास्ते में शेषनाग में ११,००० फुट की ऊंचाई पर कड़ाके की सर्दी भूल कर हिमशिखरों को मंत्रमुग्ध की तरह बहुत रात हो जाने पर भी मैं देखता ही रह गया था । ऐसा लगता था कि हिमालय के वे धवल पुत्र मुझे जादू से सम्मोहित कर के अपने पास बुला रहे हैं । इसी प्रकार नार्वे में मध्य रात्रि के सूर्य को देख कर चकित सा रह गया था कि परम रहस्यमय प्रकृति की कैसी माया है कि प्रचंड मार्तंड प्रखर किरणें न विखेर कर पूनम का चाद बन कर मुसकरा रहा है । मैं सोचने लगा था कि उसे दिवाकर कहूं निशाकर कहूं या प्रभाकर ।

नियाग्रा प्रपात का अपना बेजोड़ आकर्षण है । सैलानी और पर्यटक वर्ष भर यहां आते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
रहते हैं। इसी कारण नियाग्रा में काफी भीड़ रहती है। ऊंचाई से गिरती हुई अजस्र जलधारा मानव के समर्थ पौरुष को चुनौती देती जान पड़ती है। सैकड़ों व्यक्तियों ने मौत की परवा न कर के प्रपात की जलधारा के साथ ऊंचाई से कूदने का दुस्साहस किया है।

यह कहना गलत होगा कि ऐसे प्रयासों के पीछे शत प्रति शत नाम कमाने की भावना ही रही होगी। पाश्चात्य लोगों में इस प्रकार की धुन के अगणित उदाहरण देखने में आते हैं। हिमालय के दुर्गम शिखरों पर चढ़ना, आल्प्स् की बर्फानी चोटियों को लांघ जाना और सहारा की आग उगलती मरुभूमि को पैदल ही पार करने के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं। हमारे यहां पांडवों के महाप्रस्थान और अशोक की पुत्री संघमित्रा की धर्मयात्रा मनुष्य की आंतरिक सात्विक प्रवृत्ति और साहस के उदाहरण हैं।

नियाग्रा प्रपात अपने ही नाम की नदी से बना है। यह नदी कुछ ही दूरी पर ३२५ फुट नीचे आ जाती है। इसलिए जहां झरना है वहां अत्यंत वेग से नीचे गिरती है। नियाग्रा की विशेषता उस की ऊंचाई नहीं है, क्योंकि इस से भी अधिक ऊंचाई से गिरने वाले प्रपातों की संख्या विश्व में बहुत है। इसकी विशेषता तो इस के विस्तार, दीर्घता और जल के घनत्व में है। अनुमान है कि अमरीका की ओर ६०,००,००० गैलन प्रति मिनट और कनाडा की ओर ११,५०,००,००० गैलन प्रति मिनट पानी गिरता है—यानी एक घंटे में ८०,००,००,००० मन पानी !

नियाग्रा के इस प्रपात की शक्ति को व्यर्थ नहीं जाने दिया गया है। इस से बिजली पैदा करके आसपास के अंचल के नाना प्रकार के उद्योगधंधों को चलाया जाता है। इस प्रकार रासायनिक, इस्पात, अल्युमिनियम, कपड़े, मशीनरी आदि के करीब १,४०० कलकारखाने इस प्रपात की शक्ति से चलते हैं। इन कारखानों में २,५०,००० से अधिक व्यक्ति काम करते हैं।

अमरीका ही नहीं, सभी पाश्चात्य देशों का एक ही लक्ष्य है कि उन की सुरम्यस्थली या महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिक से अधिक सैलानी और पर्यटक भ्रमण के लिए आएं। इसलिए वहां यात्रियों की सुखसुविधा और स्थान को ज्यादा से ज्यादा आकर्षक बनाने का ध्यान रखा जाता है। नियाग्रा को भी यात्रियों के लिए पूरे तौर पर सजाया गया है। रात में विभिन्न रंगों के प्रकाश से झरने की सुंदरता में चार चांद लग जाते हैं। बिजली के २४ विशाल प्लांट इस के लिए रोशनी फेंकते हैं, जिन में १,३२,००,००,००० दीपालोक (कैंडल पावर) की क्षमता है। आप स्वयं अनुमान करें, २०० दीपालोक के एक बल्ब से साधारणतया हमारी आंखों में चकाचौंध पैदा हो जाती है। फिर यहां तो रंगबिरंगे १,३२,००,००,००० दीपालोक झरने की दुग्ध जैसी धवल जलधार पर नाचते हुए कितना सुन्दर दृश्य उपस्थित करते होंगे।

नियाग्रा का प्रपात संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा को विभाजित करता है। कनाडा की ओर इस की शक्ल बहुत कुछ घोड़े की नाल की तरह है। यहां इस की लंबाई २,५०० फुट है। नियाग्रा से लगातार गिरने वाली पानी की तेज धार के कारण नीचे की कठोर चट्टान ३० फुट घिस गई है। प्रपात के दोनों ओर अत्यंत मनोरम उद्यान है। सैलानियों की भीड़ लगी ही रहती है। अमरीका मोटरों का देश है। इसलिए यहां एक साथ २०,००० कारों की पार्किंग की व्यवस्था रखी गई है। सैकड़ों प्रकार की कारों के अलावा यहां सजी हुई फिटन गाड़ियां भी काफी देखने में आई। इन का किराया मोटरों से चौगुना है, क्योंकि हमेशा मोटरों में चढ़ने वालों को इस सवारी में एक नए मजे का अनुभव होता है। हमें पता चला, नियाग्रा के प्रपात के देखने के लिए प्रति वर्ष लगभग २०,००,००० यात्री आते हैं। यदि प्रति व्यक्ति का औसत खर्च ३०० रुपए भी आंका जाए तो अकेले निगाग्रा की वार्षिक आय यात्रियों से ६०,००,००,००० से कम न होगी, जो संपूर्ण भारत के यात्रिक व्यवसाय से दोगुनि है।

यहां प्राय: सभी प्रकार के और रुचि के यात्री अमरीका तथा विश्व के विभिन्न भागों से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आते रहते हैं, लेकिन नवविवाहितों के लिए तो यह मानो तीर्थस्थली है। मधुमय दांपत्य जीवन की कामना से मधुयामिनी (हनीमून) बिताने के लिए सैकड़ों युगल प्रेमालाप करते यहां नजर आते हैं। उन की उद्दाम लालसायुक्त गरम निश्वासों को नियाग्रा अपने प्रपात के जलकण बिखेर कर रंगीन शीतलता देता रहता है।

नियाग्रा नदी की धार झरने के नीचे बड़ी तेज है और वहां खतरा भी जबर्दस्त है, फिर भी लोग उस के पास जाते हैं। उन की साहसिक अभिलाषा की पूर्ति के लिए यहां दो शक्तिशाली मोटरबोट है जिन का नाम 'कुहासे की किन्नरी' है। ये किन्नरियां यात्रियों को बड़ी सफाई से झरने के पास तक ले जाती है। ऊंचाई से करोड़ों मन पानी मोटी धारों में गिरता है और असंख्य जलकण हवा में कुहासे की तरह बिखर जाते हैं।

यात्रियों के लिए यहां एक और भी आकर्षण है : दो बड़ीबड़ी लिफ्टें उन्हें झरने के नीचे के उस भाग में ले जाती हैं जहां से वे अपने ही ऊपर से झरने की अपार जलराशि को गिरता हुआ देखते हैं। हम भी पांच रुपए प्रति व्यक्ति का शुल्क दे कर, मोटे रबर के वस्त्र पहन कर लिफ्ट से नीचे गए।

यह देख कर ताज्जुब होता है कि कितनी जोखिम ले कर उस स्थान को बनाया गया है। ऊपर और अगलबगल पानी की तेज अनवरत धाराएं मोटे शीशे की दिवार पर पड़ती रहती है। यात्री उसी के बीच से मायामयी प्रकृति के इंद्रजाल से अभिभूत हो उठते हैं।

हमें बताया गया कि पिछले १२० वर्षों में कई प्रकार की साजसज्जा से लैस हो कर अनेक व्यक्तियों ने झरनें की ऊंचाई से कूदने का दुस्साहस किया है। कोई लोहे के ड्रम में बैठ कर कूदा तो कोई मोटे रबर के थैले में या कार्क की बनी पेटी में। इन में बहुतों की जानें गई, हाथपैर टूटने की बात तो साधारण सी है। नियाग्रा के म्यूजियम में इन के चित्र और सामान को देख कर विचार उठा कि जानबूझ कर मौत से खेलना एक सनक है या दुस्साहस !

एक घटना हम ने यहां भी सुनी कि एक सात वर्ष का लड़का नियाग्रा नदी में पांचछः मील ऊपर एक छोटी सी नाव में जा रहा था। अचानक तेज धार की चपेट में आ गया। उस ने लाख हाथपैर पटके मगर धार से नाव निकल न पाई। नियाग्रा के दोनों किनारों पर खड़े हजारों लोगों की आंखों के सामने तीर की तरह सनसनाती हुई उस की नाव प्रपात के किनारे की ओर बढ़ी। अगले ही क्षण में लोगों ने देखा कि किश्ती पानी की धार के साथ नीचे गिरी। बचाने का उपाय भी क्या था ? लेकिन लोगों ने देखा कि लड़का सहीसलामत झरने के दायरे से बाहर नदी की धार में अपनी नाव पर बैठा है। कोई युक्तिसंगत तर्क इस रहस्य को आज तक सुलझा नहीं पाया है।

एक फ्रांसीसी मोशिए फ्लांडिन के बारे में सुना कि उन्होंने सन १८६० में नियाग्रा के दोनों किनारों पर मोटे तार का रस्सा बांध कर हाथ में एक लंबी लग्गी लिए उस तार पर चल कर प्रपात को पार किया। पहली सफलता से उत्साहित हो कर दूसरी बार वह फिर कंधे पर अपने मैनेजर को बैठा कर नियाग्रा पार हुए।

गाइड से इन घटनाओं को सुन कर मैं ने प्रश्न किया, "इस प्रकार के दुस्साहसिक कृत्यों में मृत्यु निश्चित जान कर भी जान पर खेल जाना क्या अर्थ रखता है ?" गाइड बोला, "जनाब, मृत्यु ध्रुव है और सत्य है, फिर क्यों न यश पा कर ही दुनियां से विदा हों।"

मुझे चित्तौड़ के गोरा और बादल की याद आ गई। वे भी तो केसरिया बाना पहन कर शत्रुओं की तूफानी लहरों में मौत के साथ खेलने ही गए थे। हाड़ी रानी की भी मुझे याद आ गई, जिस ने विवाह के दिन ही अपने पति चूड़ावत सरदार को शीश की भेंट दे कर रणक्षेत्र में मृत्यु वरण के लिए भेज दिया था।

हम दिन भर खूब घूमे, शाम को काफी थक चुके थे इसलिए सीधे होटल लौटे। मैं भोजन के बाद विश्राम करना चाहता था। बिस्तर पर जाने की तैयारी ही थी कि प्रभदयालजी ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा, "चलिए, कुहासे की किन्नरियां हमें बुला रही हैं......कल तो जाना ही है इसलिए आज जी भर इन का सान्निध्य प्राप्त कर लें।" हम होटल से निकले और प्रपात के पास एक बाग में जा बैठे। सतरंगी रोशनी पानी से खेलती हुई इंद्रधनुष सजा रही थी, ऊपर आकाश में तारे मुस्करा रहे थे।

एकाएक मै ने नजर घुमाई तो जरा झेंप सा गया। लंदन के हाइड पार्क, होनोलूलू के समुद्री किनारे या वेनिस के गोंदोला का नजारा बाग में जगहजगह पर था। प्रथम पहर बीतने पर होटल लौटते समय ऐसा लगा जैसे सचमुच नियाग्रा मुझे 'हर...हर...हर' कह कर फिर से बुला रहा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र

वाशिंगटन

अंगरेजी में एक कहावत है कि 'सभी सड़कें रोम को जाती हैं'। रोमन साम्राज्य की प्रसिद्धि से सभी परिचित हैं। यूरोप, अफ्रीका और अरब पर उनका शासन सदियों तक रहा। साहित्य, कला, राजनीति और यहां तक कि इन देशों की संस्कृति पर भी रोमन प्रभाव पड़ा है। साम्राज्य का केंद्र था रोम। यहां सभी को आना ही पड़ता था। इसी संदर्भ में उक्त कहावत चल पड़ी।

जमाना करवटें बदलता है। रोम से पहले बेबीलोन, मिस्र और भारतीय साम्राज्य और सभ्यता के उत्कर्ष इतिहास के पृष्ठों में पढ़ने में आते हैं और देखने में आते हैं खंडहरों में। अभी पिछले महायुद्ध तक विश्व की राजनीति का संचालन ब्रिटेन से होता था। अब वह स्थान अमरीका का है।

आज विश्व राजनीति के सूत्र लंदन, पेरिस या बर्लिन के हाथों में नहीं, मास्को और वाशिंगटन के हाथों में है। वास्तव में अब संसार की राजनीति के ये दो सूत्रधार हैं।

सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में मेरी रुचि होने के कारण अमरीका के अभ्युदय को समझने की बहुत इच्छा थी। लास एंजेल्स और शिकागो में अमरीका के वैभव, उस के उन्नत शिल्पोद्योग और व्यापारिक संगठनों का अंदाज मिला। वहां के जनजीवन की विविध धाराओं का भी परिचय मिला। परंतु दिल्ली और कलकत्ता देखे बिना जैसे भारत की जानकारी अधूरी रह जाती है उसी तरह वाशिंगटन और न्यूयार्क के बिना अमरीका को जानना संभव नहीं।

नियाग्रा में हमें सूचना मिली कि हमारे राजदूत बी० के० नेहरू आवश्यक कार्य से दौरे पर जाने वाले हैं इसलिए उन्होंने पहले हमें वाशिंगटन बुलाया है। अतएव न्यूयार्क के लिए रिजर्वेशन रद्द करा कर हम सीधे वाशिंगटन पहुंचे। दूतावास ने हमारे लिए होटल मेफ्लावर में आवास की व्यवस्था कर दी थी।

भारत यदि मंदिरों का देश और इटली व बेलजियम गिरजों का देश कहा जाता है तो अमरीका को होटलों का देश कहना चाहिए। वहां एक से एक बढ़ कर होटल और मोटल है और अब तो टोटल भी हैं। भारत में होटल तो हैं पर मोटल और टोटल शायद ही हो। मोटल में यात्रियों के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था के अलावा मोटर रखने एवं उसकी आवश्यक मरम्मत की भी सुविधा रहती है। आजकल मोटरों में पर्यटन करने वाले मोटलों में ही ठहरते हैं। टोटल एक नई व्यवस्था है। इन्हें चलताफिरता होटल कहना चाहिए। बड़े बड़े

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ट्रेलर शक्तिशाली मोटरों से जुड़े रहते हैं । इनमें खाने, पीने, सोने की व्यवस्थां रहती है। अच्छे सुसज्जित बाथरूम भी इनमें होते है : सफर का सफर, रहने का रहना, साथ ही समय और खर्च में बचत । लोगों ने इसे खूब पसंद किया है ।

अमरीकी होटलों और रेस्तरांओं में विदेशियों को भाषा के कारण कठिनाई नहीं होती अधिकांश कर्मचारी द्विभाषी होते हैं । मैनेजर और क्लर्क वगैरह तो चार या पांच भाषाएं आसानी से बोल लेते हैं । फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, जरमन, रूसी इत्यादि किसी भी यूरोपीय भाषाभाषी को वहां दिक्कत नहीं होती । एशियाई भाषाओं में अरबी, तुर्की और जापानी भाषाओं को जानने वाले भी मिल जाते हैं । हिंदी या अन्य भारतीय भाषा की जानकारी शायद ही किसी को हो । यह उन की उपेक्षा नहीं बल्कि हमारी कमजोरी है, क्योंकि विदेशों में हम आपस में भी अंगरेजी बोलते हैं । यही नहीं, स्वदेश में भी हिंदी जानने वाले आपसी व्यवहार में, सफर में या संसद में अंगरेजी में ही बोलना पसंद करते हैं । नतीजा यह होता है कि विश्व की एक बड़ी और इतने बड़े देश की राजभाषा होते हुए भी हिंदी का महत्व बाहर वाले नही समझते और इसी लिए मानते नहीं ।

होटलों के संचालकों में आपस में होड़ सी रहती रहै कि कौन कितनी सुविधा यात्रियों को देता है । जहां किसी होटल या मोटल की लोकप्रियता बढ़ी कि फौरन पता कराते हैं कि इस के पीछे कारण क्या है । इस के बाद वे भी अपने प्रतिष्ठानों को उन से भी अधिक सुविधाजनक और सुसज्जित करने में प्रयत्नशील हो जाते हैं । वहां खर्च की किसी को तो परवाह ही नहीं है ।

जिस समय हम होटल में पहुंचे, रात के दस बज चुके थे । सामान रख कर खिड़की के पास खड़े होकर देखा, दूर दिखाई दे रहे गुंबदों पर चांदनी फिसल रही है । वाशिंगटन की सड़कें बिजली की रंगबिरंगी रोशनी में नहा रही है । कुबेरों का देश है अमरीका । यहां की हर रात दिवाली है ।

वाशिंगटन के प्रति तरह-तरह की कल्पनाएं और भावनाएं मेरे घुम्मकड़ मन में थीं। सोचा, 'इस समय के लिए निश्चित कार्यक्रम न भी हो, बारहएक बजे तक शहर घूम कर तो आ ही सकता हूं ।' जल्दीजल्दी हाथमुंह धो कर हल्की चाय ली । प्रभुदयाल जी कहते ही रह गए कि थकान बढ़ेगी, आराम करना चाहिए । मैं कोट ले कर कमरे के बाहर निकल पड़ा ।

कमरे से निकल कर सब से पहले मैं ने अपने होटल का मुआयना किया । लास ऐंजेल्स से नियाग्रा तक हम जिन होटलों में ठहरे थे, उन से यह भिन्न था । इस की कलात्मक सजावट बेजोड़ मानी जाती है । अमरीका के कई राष्ट्रपति और राजनीतिज्ञ इस में ठहरते रहे हैं। विदेशों से आए कई सम्मानीय एवं उच्च पदस्थ राजन्य और राजनीतिज्ञों को अपने यहां ठहराने का गौरव मेफ्लावर को अनेक बार मिला है ।

वाशिंगटन विस्तृत है और योजनानुसार बना है । फिर भी अमरीका के अन्य शहरों से भिन्न लगा । कई मंजिलों के ऊंचे मकान यहां हैं पर सॉनफ्रांसिस्को और शिकागो की तरह आसमान को छूने की होड़ करने वाले नहीं । मौजमस्ती और तड़कभड़क भी उतनी नहीं दिखाई पड़ी । राजधानी होने के कारण यहां का मुख्य उद्योग है सरकार और प्रशासन। फैक्टरी, मिल या व्यापार से वाशिंगटन का इतना ही सरोकार है कि उन के मालक या प्रतिनिधि यहां अपनेअपने काम से आते हैं ! २०,००,००० की आबादी की इस महानगरी में ७,००,००० व्यक्ति ऐसे हैं जो स्थानीय सरकारी दफ्तरों में काम करते हैं । संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों के दूतावास यहां हैं । प्रत्येक के अपनेअपने स्टाफ हैं । इस प्रकार विदेशियों की भी संख्या यहां कम नहीं हैं । इस के अलावा अमरीका के ५० प्रदेशों से निर्वाचित एवं मनोनीत संसद सदस्य तथा उन के सहकारी भी यहां रहते हैं । तात्पर्य यह है कि उद्योगव्यापार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैसा व्यस्त और भागदौड़ का वातावरण बन जाता है, वाशिंगटन में ऐसा देखने में नहीं आया।

भूख लगी थी। एक रेस्त्रां में गया, दूधरोटी ली। इतालियन रेस्त्रां था। दो लड़कियां चुटकी बजाबजा कर गा रही थीं और झुक कर पास बैठे लोगों के कानों तक स्वर खींच कर हट जाती थीं। कभीकभी थोड़ी देर के लिए दर्शकों की गोद में बैठ जाती थीं। सैक्सोफोन जोरजोर से बज रहा था। वहां अमरीकी अधिक थे, कुछ नीग्रो थे, इन के अलावा अन्य देशों के लोग भी। साज और आवाज का मजा लेते हुए लोग सिर हिला रहे थे। लेकिन गानाबजाना मेरी समझ में आ नहीं रहा था। बीचबीच में सामने बैठे अरब के एक शेख साहब को देख कर आनंद ले रहा था। लड़की कमर लचकाती हुई जिधरजिधर जाती थी, शेख साहब की दाढ़ी की नोक चुंबक की सूई की तरह उधर ही घूम जाती थी। उन्हें देख कर मुझे जोश मलीहाबादी की एक कविता की पंक्तियां 'हिलने लगीं शयूख के सीने पै दाढ़ियां, नजरें नमाजियों की उसी ओर फिर गईं' याद आईं। लड़की लाल रंग का रूमाल हिलाती हुई शेख साहब के पास आई और दाढ़ी को दाएंबाएं हिला कर चूमने लगी। उन का शराब का गिलास उठा कर उस में से एक सिप ले कर शेख के मुंह से लगा दिया। जूठी शराब वह विभोर हो कर पीने लगे, जैसे बच्चा बोतल से दूध पीने लगता है। दूसरे लोगों के साथसाथ मुझे भी हंसी आ गई। पल भर में लड़की मेरे सामने हाजिर और गातेगाते सिसकारी भरते मेरे दूध के गिलास को उठा कर ऐसा कुछ कह गई कि सभी हंसने लगे।

बाहर निकला और बस पकड़ी। मेरा खयाल था कि यूरोप तथा अमरीका के अन्य शहरों की तरह यहां भी नाइट क्लब होंगे। पर वाशिंगटन में न नाइटक्लब हैं और न जुए के साथ कैबरे ही। एक खास बात यह भी देखने में आई कि अन्य आधुनिक शहरों की तरह लड़कियां या महिलाएं यहां रात में अकेली घूमतीं नही मिलीं। कारण बाद में मालूम हुआ कि आम तौर से रात को दस बजे तक लड़कियां अपने घरों में वापस आ जाती हैं। मन बहलाने के लिए टेलीविजन और पुस्तकें हैं। यहां का जीवन अमरीका के अन्य शहरों की अपेक्षा शिष्ट और संयत है।

बस से घूम कर शहर का जितना भी हिस्सा देखा, अच्छा लगा। फ्रांस के वरसाई की तरह यहां चौड़ी और सीधी सड़कें हैं, जो एक वृत्त के पास आ कर मिलती हैं और फिर वृत्त के चारों ओर सड़कें निकलती जाती हैं। नई दिल्ली का भी नक्शा कुछ इसी प्रकार है। यहां की सड़कों के बीच हरियाली की पट्टी है, जिन में फूलों की क्यारियां हैं। सड़कों के दोनों किनारों पर ऊंचे वृक्षों की कतारें हैं।

बस में बगल में एक नीग्रो बैठा था। मेरी आंखे खिड़की के बाहर भागते दृश्यों को पकड़ रही थी। वह शायद समझ गया कि शहर घूमने निकला हूँ। संजीदगी से उस ने पूछा, "कैसा लग रहा है ?" मैं ने उत्तर दिया, "अभी तो शुरू ही किया है ," ढलती उमर के उस नीग्रो ने बताया कि अभी तो वाशिंगटन बन कर तैयार ही नहीं हो पाया है। नित्य नए मकान बन रहे हैं, पुराने गिराए जा रहे हैं। फिर उस ने पूछा, "आप भारत के हैं, या मिस्र के ?

मैं ने उत्तर दिया, "भारत का हूँ।" अपने प्रधानमंत्री के स्वास्थ्य के बारे में उस के प्रश्न से मुझे प्रतीत हुआ कि अमेरिकन नीग्रो भी गांधीजी और नेहरूजी से स्नेह रखते हैं।

हमारे होटल के करीब बस आ गई थी। घड़ी देखी, सवा १२ बज रहे थे। जल्दीजल्दी बस से उतर कर मैं कमरे में पहुंचा। देखा, प्रभुदयालजी जाग रहे थे। नई जगह और आधी रात हो गई थी, इसलिए उन को चिंता होनी स्वाभाविक ही थी। "परेशानी तो नही रही ?" उन के स्नेह भरे शब्दों से मैं झेंप गया। इस के बाद बिस्तर पर लेटते ही सो गया।

दूसरे दिन सुबह श्री बी० के० नेहरू ने हमें चायनाश्ते पर आमंत्रित किया था। श्री नेहरू

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का निवास बहुत ही करीने से सजा हुआ था। उन के बगीचे को देख कर सुरुचि का परिचय मिलता है। नई दिल्ली की तरह अमरीका में भी दूतावासों को सुविधापूर्ण शर्तों पर कार्य जमीनें वहां की सरकार द्वारा दी जाती हैं।

श्री नेहरू बड़ी ही आत्मीयता से मिले। भारत और अमरीका के उद्योगव्यापार और राजनीति के पहलुओं पर बातचीत हुई। वह अमरीका के अच्छे मित्रों में माने जाते हैं और उन की जानकारी भी काफी है। उन के व्यक्तिगत विचार थे कि हमारे यहां कुछ नेता और अखबारों को जिम्मेदारी की गहराई में जाना चाहिए और सोचसमझ कर अमरीका की आलोचना करनी चाहिए। खेद है कि ऐसा नहीं हो पा रहा है अन्यथा अन्य देशों की अपेक्षा हमें कहीं अधिक मदद अमरीका से मिल सकती है। अमरीकी सरकार और जनता दोनों भारत के प्रति स्नेह रखती हैं, पर हमारी अप्रासंगिक आलोचना से भ्रम फैलता है और उन की भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

अमरीका में ड्राइवर, नौकर या रसोइया रखना बहुत ही मंहगा पड़ता है। यही नहीं हमारे यहां की तरह ३० दिन और १५ घंटे की ड्यूटी बजाने की तो वहां कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। साधारण लोगों की बात ही क्या, अच्छे संपन्न व्यक्ति भी नौकर नहीं रखते फिर भी दूतावासों को उन्हें रखना ही पड़ता है क्योंकि उन के यहां आये दिन मेहमान आते रहते हैं, जिन की आवभगत करनी पड़ती है। हमारे दूतावास में भी अमरीकन खानसामा और ड्राइवर थे लेकिन श्रीमती नेहरू ने स्नेहपूर्वक हमें स्वयं ही भारतीय नाश्ता कराया। हलवे के साथ मटर की कचौड़ियां बड़ी ही स्वादिष्ट बनी थी। बहुत दिनों बाद इस ढंग की चीजें सामने आईं। मैं ने तो निस्संकोच तीसरी बार मांग कर खाया। मेरा विश्वास है कि खाने के मामले में तकल्लुफ बरत कर भूखा रहना किसी प्रकार से भी उचित नहीं है।

श्री नेहरू को अगले दिन वाशिंगटन से बाहर जाना था। अतएव हमारे लिए उन्होंने प्रयोजनीय व्यवस्था का निर्देश अपने सचिव को दे दिया। कम समय में शहर को अच्छे ढंग से देखने के लिए अपने सुझाव भी उन्होंने हमें बताए।

शहर देखने के लिए टूरिस्ट बसें हैं। इन के साथ अनुभवी गाइड रहते हैं। चीजों को समझने में आसानी रहती है और समय की बचत भी होती है।

वैसे टैक्सियां काफी हैं, पर उन का किराया बहत अधिक है और ऊपर से उन पर टिप कितना लगेगा! यह एक और समस्या है! टिप का अखंड एकाधिपत्य आप को यूरोप और अमरीका में मिलेगा। रेस्त्रां, होटल, टैक्सी जहां कहीं भी बिल चुकाया कि टिप साथ लगी रहती है। दस प्रति शत से २५ प्रति शत तक टिप लग् जाता है। बिलों में टिप जोड़ दिया जाता है, फिर भी कुछ न कुछ अलग से देना पड़ता है। हमारे देश में चूंकि टिप (बखशीश) देना जरूरी नहीं है, इसलिए हमें अजीब सा लगता।

हम ने टूरिस्ट बस का टिकट खरीद लिया। गाइड को अपने विषय की अच्छी जानकारी थी और वह खुशमिजाज भी था। शहर के बारे में वह जानकारी देता जा रहा था। वाशिंगटन का निर्माण योजनानुसार हुआ है। उत्तरपश्चिम, दक्षिणपश्चिम, उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्व—ये चार अंचल हैं। सभी में सीधी चौड़ी सड़कें हैं। दिल्ली, रोम, एथेंस की तरह यहां प्राचीन खंडहर नहीं मिलेंगे। लदन, पेरिस और वेनिस की तरह मध्ययुगीन अवशेष भी आप यहां नहीं पाएंगे। हंस कर उस नें कहा, "हम अतीत के वैभव और गौरव का दावा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारा इतिहास ही लेदे कर कुल ३०० वर्ष का है। फिर भी हमारी कहानी आप लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस में पढ़ सकते हैं या शहर की अगणित आर्ट गैलरियो और म्यूजियमों में देख सकते हैं।"

हम जानते थे कि गाइड अपना पांडित्य प्रदर्शन करने में चूकते नहीं। सभी देशों में ऐसा होता है। ऐसा न हो तो पर्यटक ऊब जाएं और थकान भी महसूस करने लगें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसंग बदलने के खयाल से मैं ने पूछा, "वाशिंगटन को ही क्यों राजधानी के लिए चुना, जब कि बोस्टन, फिलाडेल्फिया, न्यूयार्क आदि शहर इस से पहले ही बस गए थे। इन में से किसी को भी राजधानी बनाया जा सकता था ?"

गाइड ने मुस्कराते हुए कहा, "आप जानते हैं, पुरानी दुनिया को छोड़ कर हमारे पूर्वज नई दुनिया में नई जिंदगी की खोज में आये थे। इसलिए नयापन के प्रति हमारे स्वभाव में रुचि है। मगर इतिहास बताता है कि जब अमरीकन गणराज्य संगठित हो गया तो सभी शहर राजधानी के लिए अपनाअपना दावा पेश करने लगे। आपसी मतभेद न बढ़े, इस खयाल से प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने सुझाव दिया कि राजधानी नई जगह बने। सब ने इसे मंजूर किया।

गाइड ने बताया कि आज से लगभग २०० वर्ष पहले यहां दलदल थी। जंगली घास की झाड़ियों और ऊबड़खाबड़ जमीन को देखकर कौन कल्पना कर सकता था कि विश्व की सबसे बड़ी राजधानी इसी दलदली जमीन पर बनेगी।

मार्च १७९१ में प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने इस जगह शहर बसाने का काम प्रसिद्ध फ्रेंच वास्तुशिल्पी पीयरे को सौंपा। उस की देखरेख में शहर का एक हिस्सा बन गया। कुछ राजनीतिक कारणों से लोग उस से नाराज हो गए और बाकी काम पूरा करने का भार अमरीकन इंजीनियर एलकोट को दे दिया।

आज वाशिंगटन की बनावट दो प्रकार की देखने को मिलती है। मेजर पियरे का हिस्सा वरसाई की तरह है, जिस में बागबगीचे, चौड़ी सड़कें और मध्ययुगीन यूरोपीय भवन हैं जब कि एलकोट के वाशिंगटन में संसद भवन, कांग्रेस पुस्तकालय, उच्चन्यायलय और पैंटागन जैसी विशालकाय इमारतें हैं।

हम संसद भवन देखने गए। संसद सदस्य होने के कारण अमेरिकी संसद के प्रति हमारी विशेष रुचि थी। वास्तुशिल्प, सौंदर्य और सौष्ठव की दृष्टि से हमारे संसद भवन का अपना विशिष्ट स्थान है। लेकिन जहां तक विशालता का सवाल है, अमरीकी संसद विश्व में अद्वितीय है। ६० एकड़ के क्षेत्रफल में सुसज्जित उद्यान और कुंजों के बीच संसद भवन बड़ा ही शानदार लगता है। इस के विशाल गुंबद के ऊपर स्वतंत्रता की मूर्ति खड़ी है। गुंबद का वृत्त १३५ फुट और ऊंचाई २८५ फुट है।

अमरीकियों की भाषा अंगरेजी है। पर वे शब्दों में खींचखींच कर अनुनासिक स्वर लगा देते हैं और जल्दीजल्दी बोलते हैं, इसलिए दिक्कत हो जाती है। हमारे गाइड ने हमेशा इस बात का खयाल रखा कि वह अमरीकी अंगरेजी नहीं, सही अंगरेजी बोले।

उस ने संसद भवन के इतिहास की चर्चा करते हुए बताया कि यह स्थान एक पहाड़ी पर है और पास की पोटेमिक नदी से यहां की ऊंचाई लगभग १०० फुट है। मेरी ओर देखते हुए उस ने कहा, "सज्जनो, विश्व में ताजमहल बेजोड़ और लाजवाब है तो हमारा यह कैपिटोल भी आज के युग में अद्वितीय है। उसे बनाया मुगल सम्राट शाहजहां ने अपनी प्रेयसी की स्मृति में तो इसे बनाया अमरीकी जनता ने स्वाधीनता और जनतंत्र की मर्यादा के लिए।"

सभी यात्री मेरी ओर देखने लगे कि भारत का नाम आया है, शायद मैं कुछ बोलूं, पर मैं गाइड का मीठा व्यंग्य समझ गया। मैं ने कहा, "ताजमहल और कैपिटोल दोनों ही अपनीअपनी जगह महान हैं। वह है प्रेयसी के प्रति प्रेम का प्रतीक और यह है जनमानस की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति। भावना दोनों में है, दोनों ही अपनीअपनी दृष्टि से पवित्र है।"

संसद भवन अमरीकी विधानमंडल का केन्द्र है। राष्ट्र के विधान और कानून यहीं बनते हैं। सन १८०० में संसद में ३२ सिनेटर एवं १०५ प्रतिनिधि थे, जब कि आज १०० सिनेटर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और ४३५ प्रतिनिधि अमरीका के ५० प्रदेशों और १९,००,००,००० की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अमरीका विभिन्न प्रदेशों का संयुक्त संघ राज्य है। शासन की क्षमता प्रेसीडेंट, कांग्रेस के दोनों सदनों और सुप्रीम कोर्ट में इस ढंग से विभाजित है कि संतुलन न बिगड़े. फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अमरीका के राष्ट्रपति को शासन संबंधी जितने अधिकार दिए गए हैं. विश्व में शायद ही किसी जनतांत्रिक राष्ट्रपति के हाथ में इतने अधिकार हों। अमरीका के प्रत्येक स्थानीय मामलों में स्वतंत्र व्यवस्था रखते हैं किन्तु वाशिंगटन के इस गुंबद के नीचे जो भी नीति निर्धारित होती है उसी को सार्वदेशिक रूप में मानना पड़ता है। सेना एवं परराष्ट्र नीति पर केंद्र का नियंत्रण है, पर हमारे देश की तरह वहां भी पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि प्रादेशिक शासन के नियंत्रण में हैं। हमारी दिल्ली की तरह वाशिंगटन भी किसी प्रदेश के अन्तर्गत नहीं हैं। इस के शासन संचालन का अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में है। प्रत्येक चौथे वर्ष जनता द्वारा उस का निर्वाचन होता है। इस प्रकार अमरीका का सर्वोच्च शासक जनता के प्रत्यक्ष समर्थन से शासन करता है। अमरीकी जनता अपने प्रेसीडेंट के प्रति जो आदरभाव रखती है, वह हमारे लिए तो निस्संदेह अनुकरणीय है। विदेशों में मैंने देखा कि स्थानीय नागरिक विदेशियों से बातचीत में बहुत ही सावधान रहते हैं। शासन और शासक की आलोचना को सफाई से टाल देते हैं।

संसद के गुंबद की भीतरी दीवारों पर विश्व के शीर्ष कलाकरों ने जो चित्र बनाए हैं, वे देखते बनते हैं। अमरीकी इतिहास से संबंधित ये चित्र इतने सजीव हैं कि देखने वाले सैकड़ों वर्ष पीछे चले जाते हैं। अधिकांश चित्र इतावली कलाकार कोंस्तांतिनो के बनाए हुए हैं। ७० वर्ष की उम्र में ३०० फुट की वृताकार नौ फुट ऊंची दीवार पर अंकित ये चित्र उस की प्रतिभा एवं दक्षता का परिचय देते हैं।

कोलंबस द्वारा अमरीका की खोज से ले कर स्वतंत्रता के युद्ध तक के सारे दृश्य देखते समय अमरीका का इतिहास चलचित्र की तरह आंखों के सामने आ जाता है। यहीं अमरीका के राष्ट्रपतियों की प्रस्तर मूर्तियां भी हमने देखीं। वाशिंगटन. लिंकन. विल्सन. रूजवेल्ट जेफर्सन आदि की मूर्तिया़ं बड़ी स्वाभाविक मुद्रा में हैं।

हम ने सिनेट और प्रतिनिधि कक्ष (हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्ज) देखा। हमारे संसद की राज्य सभा और लोक सभा के कक्ष की तरह इन में अर्धवृत्ताकार रूप में सदस्यों के बैठने के लिए व्यवस्था की गई है। अमरीकी संसद सदस्यों को. चाहे वे सरकारी दल के हों या विरोधी दल, सरकार की ओर से बड़ी सुविधाएं दी जाती हैं।

प्रत्येक सदस्य को करीब २,३२,५०० रुपए सलाना भत्ते के मिलते हैं। अन्य आवश्यक खर्चों के लिए पृथक रूप से सभी प्रकार की व्यवस्था है। हमारे यहां संसद सदस्यों को मिलते हैं सिर्फ १०,००० रुपए। वहां के प्रत्येक संसद सदस्य के पास निजी सचिव. स्टेनो और सहकारी होते हैं। अपने निर्वाचन क्षेत्र के दौरे के लिए किसीकिसी के पास तो हैलिकोप्टर भी रहते हैं।

संसद भवन के पास ही हमने प्रसिद्ध कांग्रेस पुस्तकालय देखा। यह विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। यहां ४,२५,००,००० से भी अधिक पुस्तकें हैं। दुर्लभ ग्रंथ और हस्तलिखित पुस्तकों का विभाग अलग है। अमरीका के ऐतिहासिक दस्तावेजों को बहुत ही संभाल कर रखा गया है। यों तो इस पुस्तकालय से छात्र. संसद सदस्य, अध्यापक, वैज्ञानिक सभी लाभ उठाते हैं लेकिन यह जान कर आश्चर्य हुआ कि अंधे भी यहां पुस्तकें पढ़ते हैं। उन के लिए उभरे अक्षरों की पुस्तकें यहां उपलब्ध हैं। यही नहीं. विभिन्न विषयों पर भी लिखी अच्छी से अच्छी पुस्तकों की टेप रिकार्डिंग करा ली गई है। कहते हैं कि इस पुस्तकालय की अलमारियों को एक लाइन में खड़ा किया जाए तो ४०० मील लम्बी कतार हो जाएगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घूमतेघूमते हम थक गए। आराम करने की जरूरत थी। भूख भी लग रही थी। हमें रेस्त्रां खोजने में कठिनाई नहीं हुई। संसद में सभी कुछ है। हमने रेस्त्रां में जा कर पहले पेट की मांग पूर्ति करने की व्यवस्था की और तब आगे का कार्यक्रम निश्चित करने लगे। निश्चित यह किया गया कि वाशिंगटन में हमारा अगला कदम व्हाइट हाउस (राष्ट्रपति भवन) और पैंटागन (सुरक्षा भवन) का होगा।

लाइब्रेरी में शीर्ष कलाकारों की संगीत की रिकार्डिंग कर उन्हें भी संग्रहीत किया गया है। महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के फोटो भी संग्रहीत हैं।

लाइब्रेरी के कूलिज आडिटोरियम में ५२५ सीटें हैं। अतः देशविदेशों के चोटी के साहित्यकारों एवं वैज्ञानिकों के कार्यक्रम यहां समयसमय पर होते रहते हैं।

आप अपने मनचाहे कलाकार का संगीत सुनना चाहते हैं? अपने प्रिय कवि की कविता उस से ही सुनना पसंद करेंगे? अपने श्रद्धेय वैज्ञानिक की गवेषणा उन्हीं की जबानी सुनेंगे? एक पत्र डाल दीजिए, उत्तर मिल जाएगा कि प्रोग्राम कब है। सीट रिजर्व करा लीजिए, केवल २५ सेंट का खर्च। अमीरों के मुल्क में किफायत में इतनी सुविधा मेरी कल्पना के बाहर की बात थी। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी इस प्रकार की सुविधा कर दे तो शिक्षा में पिछड़े और गरीब देश के जन साधारण का बड़ा उपकार हो सकता है।

अन्य कई विदेशी पर्यटक भी वहां थे। एक भारतीय दंपति को भी रेस्त्रां में देखा। वे दोनों भी हमारी तरफ देख रहे थे। हमने परस्पर का परिचय प्राप्त किया। युवक दिल्ली का था। हमारे विदेश मंत्रालय की ओर से फॉरेन सर्विस की शिक्षा पाने के लिए यहां आया था। साथ में पत्नी को भी ले आया था। एक बात ध्यान देने की है कि अपने देश में हम उत्तर, दक्षिण, महाराष्ट्र, बंगाल और पंजाब की भले ही सोचते हों, पर विदेशों में स्वतः ही हमारी ये भावनाएं मिट जाती है। पतिपत्नी दोनों हम से मिल कर बहुत खुश हुए। देश के बारे में जानकारी दी। हमें अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया। कमातेखाते सुखी भारतीय दंपति को देख कर बड़ा संतोष हुआ।

वाशिंगटन की जिंदगी में गंभीरता की छाप है। संसार के सबसे अधिक संपन्न और शक्तिशाली राष्ट्र की राजधानी होने के कारण सड़कों, होटलों और सरकारी दफ्तरों में विदेशियों को अपनी राष्ट्रीय पोशाक में देख पाना साधारण सी बात लगती है। यों तो दिल्ली की चाणक्यपुरी में भी विदेशियों को देखा जा सकता है, पर उतने नहीं जितने कि यहां।

अमरीकी सैलानी तबीयत के होते हैं। मौजबहार और जिंदादिलो उन की विशेषता है। होनोलूलू, नियाग्रा, मियामी और फ्लोरिडा में जो उन्हें मिल सकता है वह वाशिंगटन में नहीं, फिर भी अपनी राजधानी के प्रति उन्हें एक प्रकार का मोह है। वे अपने पर्यटन के प्रोग्राम में वाशिंगटन घूमना जरूर शामिल कर लेते हैं। हमने अमरीकी संसद भवन देखते हुए इसे लक्ष्य किया कि देश के विभिन्न भागों से आए हुए अमरीकी नागरिक भी चाव से घूम रहे थे।

नवीन राष्ट्र होने के बावजूद जीवन की गहराइयों के प्रति आम तौर से अमरीकी भी हमारी तरह सोचते हैं, पर बातचीत में वे गंभीर कम दिखते हैं। यह उनकी विशेषता है।

दूसरे दिन हम पैंटागन देखने गए। यह अमरीकी सुरक्षा का केंद्रीय दफ्तर है। इस की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्व के सबसे बड़े अमरीकी संसद भवन जैसे पांचछः तो इसमें आसानी से समा जाएंगे; तब भी जगह बचेगी। न्यूयार्क की एंपायर स्टेट बिल्डिंग विश्व की सबसे बड़ी इमारत है। उस में जितने कमरे हैं उस के तिगुने पैंटागन में हैं। लगभग तीस हजार सैनिक और नागरिक कर्मचारी प्रति दिन यहां काम करने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आते हैं। ६०० कर्मचारी तो केवल इसकी सफाई के लिए नियुक्त हैं।

शहर के अन्दर पैंटागन की अलग ही दुनिया है। यहां हेलीकाप्टर के उतरने का ग्राउन्ड है और रेलवे स्टेशन भी है। बसें लगभग ६०० बार आवागमन करती हैं। पार्किंग की जगह इतनी काफी है जिस में यहां के कर्मचारियों की ८३०० मोटरें एक साथ ठहर सकती हैं। पर्यटकों की गाड़ियों के लिए स्थान अलग है।

हम यहां के सूचना विभाग में गए, वहां हमें पैंटागन का नक्शा मिला और गाइड भी। यदि ये नहीं मिलें तो यहां के गोरख धंधे में फंस जाना मामूली सी बात है। इस के बारे में बड़े मजेदार किस्से प्रचलित हैं। किसी सर्कस से एक शेर भाग निकला। रात के अंधेरे में उस ने यहां पनाह ली। बड़ी खोज हुई उस की, पर वह मिला ही नहीं। कई महीने बाद कहीं से भागा हुआ एक दूसरा शेर भी पैंटागन के दफ्तरों में पहुंचा। पुराने शेर ने उस का स्वागत किया। नए शेर ने पूछा, "कहो भाई, भोजनपानी का यहां कैसा इंतजाम है, कहीं भूखे दिन न गुजारने पड़ते हों?" पुराने शेर ने कहा, "अरे, नहीं रे दोस्त, मुझे देखो न, कैसा मोटाताजा हूं। बड़ा आराम है, जब भी भूख लगी किसी कर्नल या जनरल को दबोच लिया। इतने हैं यहां कि कोई इन की गिनती ही नहीं करता।"

इसी तरह एक दूसरा किस्सा भी है। एक पत्नी अपने पतिदेव को ढूंढने यहां आई। उसे यहीं बच्चा हो गया। लोगों ने कहा, "आप ऐसी दशा में यहां क्यों आईं?" युवती ने बताया कि मैं इस हालत में नहीं थी। तीन महीनों से ढूंढ रही हूं लेकिन मेरे पति नहीं मिले, तब तक प्रसव का समय पूरा हो गया। मेरी लाचारी थी।

सत्य है, अजीब भूलभुलैया है पैंटागन। भीतर ही भीतर मीलों का चक्कर दफ्तरों का है। लिफ्ट, सीढ़ियां, एस्केलेटर, दालान, कमरे, दरवाजे सभी मायापुरी से हैं। इन्हें पार करते हुए हम तीसरी मंजिल पर रक्षा सचिव के दफ्तर के सामने से गुजरे। बड़ा ही शानदार लगा। इस के पास ही एस्केलेटर से हम चौथी मंजिल पर पहुंचे। वहां स्थल सेना के अंचल में विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र, टैंक इत्यादि के माडल देखे। युद्ध संबंधी विविध चित्र भी थे। इसी प्रकार नौसेना और वायु सेना के अंचलों में हमने विभिन्न प्रकार के जहाजों और वायुयानों के माडल देखे जो प्राचीनकाल से अब तक युद्धों में काम आते रहे हैं। पैंटागन से ही अमरीकी सुरक्षा विभाग का संचालन होता है जिसका वार्षिक बजट ३४००० करोड़ रुपए है अर्थात प्रति व्यक्ति औसत १८०० रुपए, जबकि हमारे भारत का वार्षिक सुरक्षा बजट ८५० करोड़ है जो करीब १८ रुपए प्रति व्यक्ति होता है।

युद्ध हमारी रुचि का विषय नहीं है। इसलिए इस की बारीकियां समझ में नहीं आईं। मगर इतना जरूर लगा कि इस विषय के विद्यार्थियों के लिए यह स्थान ज्ञानपीठ है।

पैंटागन का सैनिक दफ्तर देखने से हो सकता है कि हमारे जैसों का जी उचटने लगे। अमरीकी सैनिक विभाग शायद अपनी इस कमी को समझता है। यहां छः काफेटेरिया हैं, जिन में प्रति दिन ३०,००० लोग भोजन करते हैं। दो बड़े रेस्तरां हैं और नौ बार हैं, जहां थके दिमाग और सूखते कंठ को तर करने की सुविधा है। इस के अलावा, हजामत बनवाने और कपड़े धुलवाने से ले कर आप की साज सज्जा के लिए जवाहरात की दुकानें भी हैं। पुस्तकें, फूल तथा अन्य हर प्रकार की, अपनी पसंद की दुकानें यहां मिल जाएंगी। यही नहीं, रेलवे और हवाई जहाज की बुकिंग भी यहां करा सकते हैं। पोस्ट आफिस, बैंक, बीमा कंपनियों के दफ्तर आदि तो मामूली बात है।

चौथाई पैंटागन देखने में ही हमें बहुत समय लग गया। थक भी गए, पर साथियों की राय थी कि धनकुबेरों के देश की टकसाल को तो देख ही लिया जाए। एक बज चुका था, दो बजे तक खुली रहती है। अतएव ब्यूरो आफ एंग्रेविंग एंड प्रिंटेज जा पहुंचे। अमरीका बृहद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देश है। सब कुछ यहां वृहद पैमाने पर होता है। दुकान, मकान, दान, मान, शान सभी वृहद ! ब्यूरो में हम ने अमरीकी नोटों के छपने का जो सिलसिला देखा तो चकित रह गए। हफ्ते में पांच दिन काम होता है। रोजाना तीन करोड़ डालर (चौदह करोड़ रुपए) के नोट तैयार होकर निकलते हैं। इन में दो तिहाई तो एक डालर वाले नोट होते हैं। शेष अन्य जिन में १०,००० डालर वाले नोट भी हैं। दक्षता इतनी है कि छपे हुए नोटों में मुश्किल से एक प्रति शत रद्द किए जाते हैं। इस में एक म्युजियम भी है जहां हम ने १८६१ से अब तक के सरकारी बांड और स्टैंप देखे। सन १८३५ का छपा एक लाख डालर का एक नोट भी देखा।

नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। इसे नेशनल म्युजियम भी कहते हैं। कला और उद्योग संबंधी नाना प्रकार की चीजें यहां रखी हुई हैं। शिकागो में हम इस प्रकार का म्युजियम देख चुके थे, लेकिन वाशिंगटन का म्युजियम उस से बहुत बड़ा है।

इस संग्रहालय में लगभग दो करोड़ नमूने हैं। नाना प्रकार के पशुओं, पक्षियों और जलचरों की खालों में भूसे भर कर स्वाभाविक वातावरण में रखा गया है। प्रागैतिहासिक युग के जीव भी स्वाभाविक आकार में रखे हुए हैं। दैत्याकार दिनासूर के माडलों को देख कर भय और कपकपी सी आ जाती है। बहुत दिनों पहले राहुलजी की पुस्तक 'विस्मृति के गर्भ में' इन के बारे में पढ़ा था—उस समय ऐसा लगा था कि यह केवल किंवदंती है। लेकिन आज बहुत वर्षों बाद इन का संभावित आकार और रूप प्रत्यक्ष देखने का मौका मिला। हमारे यहां के हाथी और ऊंट तो इन के सामने बहुत छोटे हैं। जीव या प्राणी का विकास विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार होता है, उस के क्रम का बड़ा अच्छा दिग्दर्शन यहां होता है।

खनिज और जवाहरातों का कक्ष भी हमने देखा। फ्रांसीसी राजघराने की शान विश्व प्रसिद्ध हीरा 'ब्लूहोप' रखा हुआ है। नाना प्रकार के नीलम, पन्ने, पुखराज और हीरे छोटेबड़े सभी आकारप्रकार के रखे थे। ये कहां से मिले, कैसे मिले, क्या वजन है, कितनी कीमत लगी और क्या इतिहास है, सभी विवरण लिखे हुए हैं।

अमरीकी आदिवासियों के कक्ष में हम ने अमरीका के इतिहास की लगभग १०,००० वर्ष पुरानी झांकी देखी। अमरीका के इन आदिवासियों को आज भी कोलंबस के भ्रम के कारण भारतीय कहा जाता है। जो भी हो इन के जीवन के तौरतरीकों में भारतीय छाया मुझे लगी। यह एक गवेषणा का विषय है। कोलंबस ने अमरीका की धरती पर पैर रखा और लाल भारतीय' जब उस से मिलने आए उस समय का दृश्य माडल के रूप में यहां रखा है। इसी प्रकार उस समय ये कैसे रहते थे, उन की सामाजिक व्यवस्था और रीतियां कैसी थीं, इस के भी माडल वहां हैं।

इन्हें देख कर यह लगता है कि यूरोप के विभिन्न देशों से शांति के दूत महात्मा ईसा का पवित्र संदेश पहुंचाने के नाम पर धर्म प्रचारकों ने पिछली तीन शताब्दियों में जो कुछ भी यहां किया वह बहुत ही जघन्य और घृणित था। इस सिलसिले में मुझे अपने देश का प्राचीन इतिहास याद आया। हमारे यहां भी भील और किरात रहे हैं। अगस्त्य और राम ने सभ्यता और संस्कृति के नाम पर उन्हें लूटा नहीं था, उन्हें उखाड़ नहीं फेंका था। वानर, भालू, जटायु आदि वनवासी जातियों का सहयोग उन्हें तलवार की नोक से नहीं, हृदय की विशालता और उदारता से ही मिला था। आज भी हमारे देश में नागा, मिजो और संथालों में जिस रूप से मिशनरियों द्वारा धर्मप्रचार हो रहा है उसे केवल परोपकार की भावना नहीं कहा जा सकता।

लंदन, पेरिस और वाशिंगटन में इतने बड़ेबड़े म्यूजियम और आर्ट गैलेरीज हैं कि अगर उन को ध्यान से देखा जाए तो महीनों लग जाएंगे। हम ने वहां यह भी देखा कि किसीकिसी तसवीर या मूर्ति को तन्मय हो कर लोग घंटो देखते रहते हैं। लेकिन, ये कला पारखियो की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बातें हैं। हमारे जैसे पर्यटक तो एक साधारण सा चक्कर सब कमरों का लगा लेते हैं। यहां तक कि विश्व प्रसिद्ध कृति 'मोनालीसा' या 'अंतिम भोज' को भी कुछ समय तक इसलिए देखते रहे कि उन का मूल्य एकडेढ़ करोड़ सुन रखा था। वाशिंगटन की नेशनल आर्ट गैलेरी भी विश्व के गिनेचुने संग्रहालयों में है। आप इस की विशालता का अनुमान इस से ही लगा सकते हैं कि यह डेढ़ लाख फुट के क्षेत्रफल में है और इस में २७,००० तसवीरें या मूर्तियां हैं, जिन में से कुछ तो दुष्प्राप्य और इतनी कीमती है कि सिवा राज्य सरकारों के सर्वसाधारण उन को खरीदने की सोच भी नहीं सकते। हम ने वहां नाना प्रकार के पत्थर और ब्रोंज की पुरानी भारतीय मूर्तियों के अलावा १७वीं और १८वीं शताब्दी के मुगल और राजपूत कला के चित्र भी काफी तादाद में देखे।

यों तो वाशिंगटन में बहुत से स्मारक हैं, लेकिन जार्ज वाशिंगटन एवं अब्राहम लिंकन के स्मारक सबसे अधिक जनप्रिय एवं प्रसिद्ध हैं। वाशिंगटन स्मारक सुबह नौ बजे से शाम को पांच बजे तक और लिंकन स्मारक रात को नौ बजे तक खुला रहता है। हम लिंकन का स्मारक देखने गए।

शहर के दक्षिण में बहती हुई पोटीमेक नदी के किनारे लिंकन का स्मारक बहुत ही सौम्य है। यहां की अन्य इमारतों की तरह यह बहुत बड़ा नहीं है। ३६ खंभों पर इस की छत है। स्मारक के चारों ओर सुंदर उद्यान है। मुख्य कक्ष में पहुंचने के लिए ५६ सीढ़ियां हैं। लिंकन के समय में संयुक्त राज्य अमेरिका में ३६ राज्य थे, इसलिए इस के ३६ खंभे हैं। इसी प्रकार लिंकन की ५६ वर्ष की आयु के प्रत्येक वर्ष के लिए सीढ़ी का एकएक कदम है।

हम सीढ़ियों पर से स्मारक के अन्दर कक्ष में गए। लिंकन की तसवीरें पहले भी देखी थी। लेकिन उन की मूर्ति इतनी सजीव होगी इस की आशा न थी। मानवता के कलंक दास प्रथा को अमरीका से मिटा देने का प्रयास ही उन का काल बन गया। गोली मार कर उन की हत्या कर दी गई। हमारे यहां गांधी जी हत्या भी तो ऐसे ही एक कारण से हुई थी।अमरीकन नीग्रो को समान अधिकार दिलाने के प्रयास में अभी हाल ही में राष्ट्रपति कैनेडी को भी अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। मैं सीढ़ियों से उतरता हुआ सोच रहा था, 'मानवता को सही मार्ग दिखाने के लिए अभी और कितने लिंकन, गांधी और कैनेडी की आहुतियां देनी होंगी।'

वाशिंगटन के अखबारों में संसद की जितनी, जैसी चर्चा होती है उसे देख कर लगता है कि यहां की आम जनता का आकर्षण राजनीति के प्रति अधिक नहीं है।

दैनिक समाचार पत्र बड़े साइज के १६ से १०० पेज के होते हैं, जिन में तीन चौथाई में तो विज्ञापन और सिनेमाथिएटर आदि के प्रोग्राम रहते हैं—बाकी चौथाई में स्थानीय समाचार तथा अन्य आवश्यक बातें। भारत के बारे में चर्चा तो बहुत ही कम देखने को मिलती है।

यहां के गिरजों में जैसी भीड़ हुआ करती है, उसे देख कर ताज्जुब होता है कि मौजबहारों में विश्वास करने वाले अमरीकन धर्मप्राण भी होते हैं। राजधानी में ५०० से भी अधिक गिरजे हैं; जिन में ६० विभिन्न पंथों के ईसाई नियमित रूप से आते रहते हैं। इन के अलावा यहूदियों के उपासना गृह भी कई हैं। इन गिरजों में से कई के पास बहुत बड़ी संपत्ति है, जिस में से अरबों रुपए सालाना विश्व के विभिन्न भागों में ईसाई धर्म के प्रचारप्रसार के लिए खर्च होते हैं।

यहां एक मसजिद भी है। इस की तारीफ हम ने सुन रखी थी। अतएव, देखने गए। हमारे यहां की मसजिदों से यह बिलकुल ही दूसरे ढंग की है। न मेहराबदार बुलंद दरवाजे हैं और न गुंबद। हां, एक मीनार जरूर है। राजधानी की यह मसजिद तमाम अमरीकन मुस्लिमों का उपासना गृह है। मुसलमानी धर्म और संस्कृति का अध्ययन केंद्र भी।

विदेशों के बारे में भ्रांत धारणाएं तभी टूटती हैं जब वहां जा कर वस्तुस्थिति से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साक्षात्कार हो । विदेशी, सिवा अंगरेजों के, हमारे देश के बारे में यह धारणा किए बैठे हैं कि भारत में केवल हिंदू ही हैं, मुसलमान स्वयं चले गए और जो थे, उन्हें हटा दिया गया है । ठीक इसी तरह हम भी साधारणतः यह समझते हैं कि यूरोप और अमरीका में केवल ईसाई हैं, अन्य मतावलंबी शायद ही हों । मगर बात ऐसी नहीं है । यूरोप में खास तौर से बलगारिया, अलबानिया, यूनान, यूगोस्लाविया आदि बलकान राज्यों में तुर्की और दक्षिणी रूस में मुस्लिम काफी-संख्या में हैं । अमरीका में भी इस्लाम का प्रसार बढ़ रहा है । काले अमरीकन विशेष रूप से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे हैं ।

एक नीग्रो अमरीकन ने मुझे शायद मिस्र का समझ लिया । बड़े शाइस्ता ढंग से अभिवादन किया, 'अस्लाम अलैकुम' । बड़ी साफ जुबान और आवाज थी ।

'वालैकुम अस्लाम,' कह कर मैं मुसकाराया । उस ने मुझे मिस्र का समझा था, पर मैं ने बता दिया कि भारत से आया हूं । आगे न उस ने पूछा और न मुझे बताने का मौका ही मिला कि मैं किस धर्म को मानता हूं । युवक ने बड़े स्नेह और जिज्ञासा से भारतीय मुस्लिमों के प्रति सहानुभूति प्रकट की । उस की बातचीत से पता चला कि या तो पाकिस्तानी प्रचार के कारण या हमारी सरकार के प्रचार विभाग की शिथिलता के कारण हमारे देश की धर्मनिरपेक्ष नीति और मुसलमानों की सही स्थिति का परिचय साधारण अमरीकी जनता तक नहीं पहुंच पाया है ।

लास ऐंजेल्स और शिकागो में मैं ने ब्लैक मुस्लिम आंदोलन के बारे में सुना था । यहां मेरा कौतूहल जाग उठा । मैं ने पूछा "यहां आप लोगों की कितनी संख्या होगी ?" उस ने बड़े गौर से मुझे देखते हुए कहा, "ठीक नहीं बता सकता, पर यह जानता हूं कि हमारी जमायत बढ़ रही है और अब रंगीन (नीग्रो) अमरीकन यह महसूस कर रहे हैं कि पाक रसूल के दामन के सहारे ही हम अमरीका में हक और इज्जत पा सकते हैं । अगर इसराइल और पाकिस्तान बन सकते हैं तो क्या करोड़ों की तादाद में यहां बसने वाली हमारी कौम अपने लिए अलग एक मुल्क नहीं कायम कर सकेगी ?"

उस की आंखें चमक उठीं । मैं स्तब्ध था । हिंदुस्तान को भी इसी मनोवृत्ति ने गहरी चोट पहुंचाई है । सोचने लगा, एक जमाना था, जब नीग्रो को गोरे जरा सी गलती पर जीतेजी जला देते थे, सूली पर चढ़ा देते थे, नाना प्रकार की यातनाएं देते थे । कहीं उसी कु क्लस्स क्लान आंदोलन की प्रतिक्रिया 'ब्लैक मुस्लिम' संप्रदाय तो नहीं है ।

उस ने मुझे मसजिद का भीतरी हिस्सा बड़े चाव से दिखाया । भारतीय मसजिदों में जो बारीक कारीगरी है, वह यहां नहीं है, मगर तुर्की, ईरानी शैली काफी सफाई से उभरी नजर आती है । संसार के विभिन्न मुस्लिम देशों से भेजी गई खूबसूरत, नायाब चीजें बड़े करीने से रखी हुई थीं । छतों से लटकते ईरानी झाड़फानूस, मिस्र से भेजे गए गलीचे और ईरानी कालीन, दीवालों पर बैठाए गए तुर्की टाइल बड़े आकर्षक लग रहे थे ।

नमाज का वक्त था । अजान सुनाई पड़ी, पर मुअज्जिन नजर नहीं आया । टेप रिकार्ड से यह काम चला लिया जाता है । कुछ ताज्जुब सा हुआ कि खुदा की राह पर चलने के लिए इनसान नहीं, मशीन आवाज लगाती है ।

सुना था कि यहां एक बौद्ध विहार भी है । पता नहीं चला, गाइड बुक में या नक्शे में इस का कोई उल्लेख नहीं मिला । एक बात पर विचार गया कि बातबात में धर्म की चर्चा करने वाले हिंदुओं का एक छोटा सा मंदिर तक यहां नहीं है । लंदन में बिड़ला परिवार के प्रयास से यह कमी दूर हो गई है । आज वहां शांति और स्वच्छन्दता से हिंदू अपने ढंग से उपासना कर सकते हैं । ताज्जुब इस बात का है कि हमारे देश में टीकाचंदन या रेशमी गेरूवाधारी बड़ेबड़े मठाधीश-महंत यह नहीं सोचते कि उन्हें उत्तराधिकार में अतुल धनारशि इसलिए नहीं मिली है कि वे केवल अपनी मौजशौक में ही उसे खर्च करें, बल्कि उनका तो वास्तविक दायित्व है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस शिक्षा और संस्कृति के प्रचारप्रसार का जिसे भारत के ऋषि-मुनि, या मनीषियों और आचार्यों ने मानव कल्याण के लिए रूपायित किया था । हम स्वामी विवेकानंद का सिर्फ हवाला देते हैं, खुद उस मार्ग पर चलते तो शायद विश्व के कोनेकोने में भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में अनेकों मंदिर बन जाते और ये हमारे सांस्कृतिक केन्द्र होते ।

हमारी यह कमी वाशिंगटन में बहुत खटकी । मुझे बड़ी ग्लानि हुई कि म्लेच्छ समझे जाने वाले अमरीकनों के धन से बेलूर में रामकृष्ण का मंदिर बना । भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रखने वाले जापानियों ने काशी में बौद्ध विहार और मंदिर बनवा दिए, पर धर्म के नाम पर ध्वजा उठाने वालों का एक भी मंदिर न टोकियो में मिला न वाशिंगटन में । सैकड़ों की संख्या में भारतीय इन जगहों पर जाते हैं, व्यापार-व्यवसाय बढ़ाते हैं, पर किसी ने यह नहीं सोचा कि उपासना का एक स्थान तो बनें यहां ।

संगमरमर के बने तीन स्मारकों के लिए वाशिंगटन विख्यात है । तीनों ही अमरीका के तीन महान राष्ट्रपतियों वाशिंगटन लिंकन और जैफर्सन की स्मृति में बनाए गए हैं । लिंकन स्मारक के पूर्व की ओर वाशिंगटन मोनूमेंट है । दिल्ली के लिए लाल किला, जामा मस्जिद, कुतुब मीनार और बनारस के लिए घाट प्रतीक हैं उसी प्रकार यह स्मारक राजधानी का प्रतीक है ।

वाशिंगटन मोनूमेंट मीनार जैसा है, पर इस में कुतुब की तरह मंजिलों के बरामदे बाहर निकले नहीं हैं । सिरे पर यह तिकोना नुकीला सा है । दूर से बहुत कुछ चौकोर चिकनी पेंसिल जैसी शक्ल का लगता है । हरियाली के बीच संगमरमर का बना यह मीनार बहुत सुंदर लगता है । इस की ऊंचाई ५५५ फीट है । सिरे पर खिड़कियां हैं । ऊपर चढ़ने के लिए ६०० सीढ़ियां हैं और एलीवेटर भी है । नीचे दीवार १५ फुट मोटी है और ज्योंज्यों ऊपर उठती है, पतली होती जाती है । बिलकुल ऊपर तो केवल १५ इंच ही की रह जाती है । मीनार के ऊपर खिड़कियों से राजधानी का दृश्य बड़ा मनोरम लगता है ।

सुबह का समय था । वाशिंगटन पर धूप खेल रही थी । शहर को देखता हुआ मैं बारबार यही सोचता था कि यदि वाशिंगटन न होता तो आज का अमरीका कहां होता । स्वयं ही उत्तर मिला कि वाशिंगटन केवल व्यक्ति विशेष नहीं था, बल्कि वीरता, कर्मठता और धैर्य का प्रतीक था ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अरब खरब की नगरी

न्यूयार्क

वाशिंगटन अमरीका की नई दिल्ली है तो न्यूयार्क को कलकत्ता या बंबई कहा जा सकता है। जनसंख्या की दृष्टि से आज से कुछ ही वर्ष पहले तक यह विश्व का सब से बड़ा नगर कहलाता था, पर अब टोकियो को यह गौरव प्राप्त है। फिर भी वैभवविलास और व्यापारव्यवसाय में यह बेजोड़ है। हमारे यहां लंदन को विश्व व्यापार की एक बड़ी मंडी मानते हैं लेकिन न्यूयार्क के व्यापारिक महत्त्व का अंदाज इसी से लग जाता है कि जहां केवल वाल स्ट्रीट में लेनदेन का जितना सौदा होता है उतना सारे विश्व के बाजारों में जोड़ कर भी नहीं हो पाता। सौ दोसौ करोड़ के सौदे तो यहां कई बार हो जाया करते हैं।

न्यूयार्क का इतिहास केवल ३०० वर्ष का ही है। १७वीं शताब्दी में जब लंदन, पेरिस, वियना, पेट्रोग्राड विश्व की राजनीति के सूत्रधार थे उस समय न्यूयार्क, नई दुनिया में छोटेछोटे टापुओं पर बसी हुई बस्तियों का, हडसन नदी के मुहाने पर एक छोटा सा बंदरगाह था। यूरोप से तैयार माल आता था और यहां से कच्चा माल जाता था। माल के साथ रोजी की खोज में यूरोप में विभिन्न देशों के लोग भी यहीं उतरते थे। इन में बहुत से ऐसे भी थे जो किसी न किसी कारण से स्वदेश छोड़ यहां भाग आए थे। सन १७५० में इस की आबादी १०,००० थी, जो सन १८७० में बढ़ कर १५ लाख हो गई और आज तो इस की जनसंख्या ८० लाख है। इस में ११ लाख नीग्रो हैं और साढ़े छः लाख दक्षिणी अमरीका के लोग हैं। विभिन्न देशों से यहा बसे हुए लोगों की संख्या भी काफी है। एशियाई लोगों में कुछ चीनी तो जरूर दिखाई पड़े जो स्थाई रूप से यहां बस गए हैं, पर अन्य जातियां देखने में कम आई।

आम तौर से अमरीका भ्रमण करने के लिए यात्री यूरोप से न्यूयार्क जाते हैं, वहां से न्यूयार्क, शिकागो देखते हुए सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए कैलिफोर्निया। हम ने ठीक इस के विपरीत ढंग से यात्रा की थी। हम भारत से पूर्व की ओर बढ़े। हांगकांग, जापान, हवाई द्वीपपुंज होते हुए अमरीका के पश्चिमी प्रदेश कैलिफोर्निया पहुंचे और वहां से नियाग्रा, शिकागो और न्यूयार्क देखते हुए अंत में न्यूयार्क। इस से एक लाभ तो यह हुआ कि न्यूयार्क के वैभव और वातावरण ने हमें अभिभूत नहीं किया, क्योंकि अब तक यात्रा में हम अमरीकन जीवन के कई पहलुओं से बहुत कुछ परिचित हो चुके थे। फिर भी यह मानना पड़ता है कि न्यूयार्क अपने में बेजोड़ है, हर माने में, हर बात में, चाहे वह अच्छी हो या बुरी।

जिन दिनों हम न्यूयार्क पहुंचे, वहां विश्व मेला लगा हुआ था। दुनिया के हर कोने से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखने के लिए लोग आ रहे थे। बहुत बड़ी संख्या में बड़ेबड़े होटल मोटल होते हुए भी स्थान मिलने में दिक्कत हो रही थी। वाशिंगटन में हमें इस की पूर्व सूचना मिल चुकी थी।

अमरीका में अब तक हमारी यात्रा हवाई जहाज से ही हुई थी। किन्तु इस से हमें संतोष नहीं था। अमरीकन शहरों के बाहर देहात कैसे लगते है ? वहां का जनजीवन कैसा है ? जमीन परती है या आबाद ? ये सब देखने की बड़ी इच्छा थी। इसी लिए हम ने वाशिंगटन से न्यूयार्क की यात्रा 'ग्रेहांउड बस' से की।

ग्रेहांउड विश्व की सब से बड़ी संगठित ट्रांसपोर्ट कंपनी है। हमें बताया गया कि इस कंपनी के पास २५० करोड़ रुपये की तो केवल बसें ही हैं। वार्षिक आय ३० करोड़ रुपये है। समय की पाबंदी ऐसी है कि इन की पहुंच या रवानगी को देख कर लोग अपनी घड़ी मिला लेते हैं। निश्चित समय पर स्टापेजों पर पहुंचना और छूटना यंत्रवत चलता है। अमरीका में हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, ट्रेनें और निजी मोटरें अनगिनत हैं, फिर भी लंबे सफर के लिए प्रति १५ मिनट पर 'ग्रेहांउह' की सर्विस है। इस से पता चलता है कि ग्रेहांउड कितनी लोकप्रिय है।

हमारे देश के अधिकांश राज्यों में बस सेवा स्थानीय सरकारों के हाथ में है, जिन में बड़ीबड़ी पूंजी लगी हुई है। विदेशों के लोग जब इन में बैठ कर सफर करते होंगे तो हमारे प्रति और हमारी सरकार के प्रति कैसी धारणा ले कर अपने देश लौटते होंगे ! मुझे एक घटना याद आती है। सन १९६२ की बात है। मैं दिल्ली से बस द्वारा हिसार जा रहा था। निश्चित संख्या से भी अधिक यात्री बस में थे। छत पर भी सवारियों को बैठाया गया था। सीटों के नीचे मालअसबाब, बोरेथैले। अजीब घुटन महसूस हो रही थी। ड्राइवर और कंडक्टर समय का ध्यान न रख और सवारी लादने के फेर में बीड़ी फूंक रहे थे। शोरशराबा मचा, गाड़ी खुली। रोहतक में एक सवारी के साथ तीन बकरियां भी चढ़ीं। रास्ते भर वे बस को गंदा करती रहीं और मेंमें की रट लगाती रहीं। न कहीं चैकर का पता, न इंसपेक्टर का। पुलिस वाले आम तौर पर इन सब से मिले हुए होते हैं।

वाशिंगटन से कोई दस बारह मील पहुंचे होंगे कि हम ने एक जगह हजारों पुरानी मोटरकारों को एकदूसरें के ऊपर रखी हुई देखा। मोटरें टूटीफूटी होतीं तो समझ जाता कि कबाड़खाना है, पर देखने में यह आया कि गाड़ियां साधारणतया अच्छी थीं। कुछ तो केवल तीनचार वर्ष पुरानी। पूछने पर पता चला कि यह मोटरों का कब्रिस्तान है। आज तक तो हम यही जानते थे कि मुर्दों का कब्रिस्तान हुआ करता है। कौतूहल बढ़ा। मैं ने पूछा तो पता चला कि मामूली खराबी की वजह से या माडल पुराना होने पर यहां ला कर लोग अपनी गाड़ियों को छोड़ देते हैं। मजदूरी इतनी ज्यादा लगती है कि तीनचार वर्ष पुरानी मोटर को मरम्मत करने के बजाए नई खरीद लेते हैं। मोटरनिर्माता या लोहे के कारखाने वाले बड़ेबड़े ट्रकों या ट्रेलरों में उन्हें एकदूसरे पर लाद अपने कारखानों में ले जा कर गला देते हैं। मैंने प्रभुदयालजी से कहा कि यदि हमें यहां से एकएक मोटर भारत ले जाने की इजाजत अपनी सरकार से मिल जाती है तो सारे विश्वभ्रमण का खर्च आसानी से निकल जाता। वाशिंगटन से जिस बस में हम रवाना हुए उस में रामकुमारजी को जगह नहीं मिल पाई थी। इसलिए न्यूयार्क के बस पड़ाव पर हम उन की प्रतीक्षा में रुके रहे। ठीक १५ मिनट बाद वे दूसरी बस से उतरे। इन १५ मिनटों में हम ने जो हुजूम वहां देखा, वह हमारे लिए एक नया अनुभव था।

इसके पहले विश्व के प्रायः सभी देशों की यात्रा कर चुका था। लंदन, पेरिस, वियना, स्टॉकहोम, बर्लिन, रोम, मास्को, टोकियो आदि देख चुका था। अमरीका के बड़े शहरों में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लॉस एंजिल्स, सानफ्रांसिस्को और शिकागो भी इस यात्रा में मैं ने देख लिया था। लेकिन यहां आ कर ऐसा लगा कि जनसमुद्र में मानों हम खो गए हों। अमरीका के हर हिस्से से बसे आ रहीं थीं और जा रहीं थी। इन के ठहरने के लिए तीन मंजिलों का एक विशाल स्टेशन था। हम ने अपना कुछ सामान तो स्वयं ही उठा लिया और कुछ एक गोरे मजदूर को दे दिया। सामान टैक्सी में रखे जाने के बाद उसे जब एक डालर (साढे सात रुपये) दिया तो वह बड़बड़ाने लगा। आधा डालर और दे कर हम ने अपना पिंड छुड़ाया। हमारे यहां तो इतने सामान के बारह आने देने पर मजदूर खुश हो जाते हैं। हमें पता चला कि यहां स्टेशनों के मजदूर जिन्हें अपने यहां कुली कहते हैं, प्रति दिन लगभग सौ सवासौ की आमदनी कर लेते हैं। मजदूरी इतनी ज्यादा है कि लोग सफर में सामान कम रखते हैं।

वाशिंगटन से ही हमारे लिए न्यूयार्क के हिल्टन होटल में आवास की व्यवस्था करा दी गई थी। हिल्टन को विश्व का होटल किंग कहते हैं। उचित खर्च में इन होटलों में सब तरह की सुविधाएं मिल जाती हैं। भारत सरकार भी इन के साझे में कलकत्ता, बंबई और दिल्ली में होटल खोलने की बात कर रही है।

न्यूयार्क में हमारा कार्यक्रम छः दिन तक ठहरने का था। इसी बीच वहां विश्व मेला भी देख लेना था। गाइड बुक देखने पर ऐसा लगा कि यदि हम रात-दिन मोटर में घूमते रहें तो भी इस महानगर को पूरी तरह से इन छः दिनों में नहीं देख सकेंगे। मुझे उन अमरीकन यात्रियों की याद आ गई जो हवाई जहाज से बंबई उतरते हैं, रात में ताज होटल में खाना खाते हैं, दूसरे दिन सुबह हवाई जहाज से दिल्ली पहुंचते हैं। कुतुबमीनार, हुमायूं का मकबरा, राजघाट और चांदनी चौक घूम कर उसी दिन शाम को आगरा जा कर ताजमहल को चांदनी रात में देखते हैं और सुबह हवाई जहाज से ही वाराणसी के घाट देख कर उसी दिन दूसरे जहाज से कलकत्ता पहुंच जाते हैं। कलकत्ता में कालीघाट और नीमतल्ला के स्मशान के फोटो ले कर सारे भारत की यात्रा पूरी कर लेते हैं। अमरीका की हमारी यात्रा अब तक बहुत कुछ इसी तरीके की रही। भारत सरकार ने जितनी विदेशी मुद्रा हमें दी थी उस से अधिक पाना संभव भी न था। फिर भी हम जहां कहीं भी गए, हमें अपने व्यापारिक संबंधों के कारण उन के देश से परिचित होने में काफी मदद मिली। भारतीय दूतावास का भी सहयोग हमें हर प्रकार से मिला जिस से हम अमरीका में उद्योगधंधों के विकास के अलावा वहां के जनजीवन की जानकारी प्राप्त कर सकें।

न्यूयार्क में भारतीय टी बोर्ड की एक शाखा है। हमारे दूतावास के अंतर्गत वाणिज्यव्यापार विभाग के सचिव भी यहां रहते हैं। शहर देखने और उद्योगव्यापार संबंधी विविध बातों को जानने की हर तरह की सुविधा इन से हमें मिली। इस के अलावा कलकत्ता के हमारे मित्र बी० पी० खेतान से भी यहां भेंट हो गई। उन के सुपुत्र भी उन दिनों किसी स्थानीय व्यापारी फर्म में काम कर रहे थे एवं सपत्नीक रहते थे। उन की पत्नी मेरे मित्र की पुत्री है। उन्होंने हमें कई प्रकार की भारतीय मिठाइयां और अचारमुरब्बे भेजे। सुदूर विदेश में स्नेह और श्रद्धा भरा 'ताऊजी' शब्द सुनने में अच्छा लगा।

न्यूयार्क के भारतीय वाणिज्य कौंसिल के सचिव ने बैंक आफ अमरीका के लिए कार्यक्रम निश्चित कर रखा था। यह विश्व का सबसे बड़ा बैंक है। इस की कुल कार्यवाहक पूंजी ११,००० करोड़ है जो हमारे स्टेट बैंक तथा सारे निजी बैंकों की कुल पूंजी से चौगुनी है। बयालीस मंजिल के निजी शानदार भवन में बैंक का प्रधान कार्यालय है। जिस फुरती के साथ काम हो रहा था उसे देख कर आश्चर्य हुआ। अपने देश के बड़े से बड़े बैंकों में भुगतान के लिए रुकना पड़ता है। लोग बेंचों पर सोते रहते हैं या हथेली पर अंगूठे से खैनी को मसलमसल कर समय बिताने की चेष्टा करते हैं। इस बैंक के विभिन्न भागों को देखा, सभी जगह शांति, स्वच्छता और यंत्रवत कार्य।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमें अमरीका की अर्थव्यवस्था के बारे में समझना था। बैंक के प्रेसिडेंट ने अपने यहां के ऊंचे अफसरों के साथ हमें कॉफी पिलाई और इस विषय पर चर्चा होती रही। इस के बाद वे हमें बैंक के एक पृथक कक्ष में ले गए। यह उनका रिसर्च चैम्बर था। यहां न केवल अमरीका, बल्कि विश्व के सब छोटेबड़े देशों की वित्तीय संस्थाओं, वाणिज्यव्यापार आदि के संबंध में सारे आंकड़े उपलब्ध थे। उनके अलगअलग सारांश पट थे, जो पृष्ठों की तरह खम्भे पर लगे थे। जिस तरह हम पुस्तक के पृष्ठों को उलटते हैं, ठीक उसी तरह आवश्यकतानुसार इन्हें उलट कर अपने विषय को ढूंढ़ निकालने में कठिनाई नहीं होती। बैंकों ने इसी विभाग के लिए कई विशेषज्ञ रखे हैं जो वित्तीय गवेषणा में लगे रहते हैं और इस विभाग के जरिए आधुनिकतम जानकारी देते रहते हैं। रिसर्च कक्ष में हमें करीब डेढ़ घंटा लगा। अनेक प्रश्न किए जिनके उत्तर हमें विभाग से संतोषजनक मिले।

उनके रिकार्ड विभाग से हमें जो सूचनाएं मिलीं वे जनसाधारण को तो यूटोपिया के बजट अथवा अलीबाबा का 'खुलजासमसम' लगेगा, पर वास्तविकता यह है कि ये प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण हैं। यहां के दो जीवन बीमा निगम मेट्रोपोलिटन और प्रूडेंशियल की कार्यवाहक पूंजी क्रमशः १६,००० और १५,५०० करोड़ रुपयों की है जब कि हमारे देश की सारे बीमा कंपनियों को मिला कर राष्ट्रीयकरण करने पर जो जीवन बीमा निगम बना है उस की केवल ६५० करोड़ की है।

हमारे देश की तरह अमरीका में टेलीफोन और रेलें सरकारी क्षेत्र की नहीं, बल्कि निजी क्षेत्र में है। इन में आपस में होड़ रहती है कि कौन कितनी अधिक सुविधा अपने ग्राहकों को देती है। इन कंपनियों की आर्थिक दशा के बारे में जानकरचकित हो जाना पड़ता है। अकेली अमरीकन टेलीफोन कंपनी की पूंजी लभमग ८,००० करोड़ रुपए की है। उन के वार्षिक बिल दो खरब ३० अरब रुपए (२३,००० करोड़ रुपए) के बनते हैं। इन का शुद्ध लाभ १,२०० करोड़ रुपए है। केवल न्यूयार्क शहर की जो पैसिफिक गैस कंपनी है, उसे गैस के बिलों से २,५०० करोड़ रुपए वार्षिक मिलते हैं और ७५ करोड़ का वार्षिक लाभ होता है। इस से अंदाज लगाया जा सकता हैं कि वहां औसतन प्रति व्यक्ति २५० रुपए मासिक तो केवल गैस पर खर्च करता है।

जनरल मोटर्स कारपोरेशन जिन की शेवरलेट गाड़ियां भारत में पहले आयात होती रही हैं, इस की सालाना बिक्री १२७ अरब ५० करोड़ की और मुनाफा १,३०० करोड़ का है। इन के बाद का स्थान है—स्टैंडर्ड आयल (राकफेलर प्रतिष्ठानों) की चार शाखाओं का, जिन की बिक्री ११६ अरब और मुनाफा १२ अरब का है। इन में से प्रत्येक की बिक्री हमारे देश की सरकारी और निजी सारे उद्योगों की चौगुनी से भी अधिक हैं।

इन आंकड़ों को देख कर मैं दंग था। अपने देश के बारे में सोचता भी जा रहा था। हमारे यहां यदि किसी प्रतिष्ठान का कुल उत्पादन बीसपचीस करोड़ का भी हो जाता है तो फौरन वामपंथियों के नारे उसे मुनाफाखोरी और एकाधिकारी करार दे देते हैं। राष्ट्रीयकरण करने के लिए दवाब डाले जाते हैं। सरकार भी एकाधिकरण की रोकथाम के लिए जांच समिति बैठा देती है। फलाफल कुछ भी हो, पर इतना जरूर है कि उद्योगपति या व्यापारी का हौसला बैठ जाता है। और, उन में से अधिकांश को नए कारखाने लगा कर उत्पादन बढ़ाने में उत्साह नहीं रह जाता। राष्ट्र के विकास में ऐसी मनोवृत्ति कितनी घातक हो सकती है इसे बताने की आवश्यकता नहीं।

हमने न्यूयार्क शहर की वार्षिक आय के बारे में पूछा तो रिसर्च चैम्बर के एक अधिकारी ने वृत्ताकर लगे बोर्डों में से एक बोर्ड के पास ले जा कर उस की आंकड़े दिखाए। हम ने देखा कि शहर के वार्षिक खर्च का बजट ३,००० करोड़ रुपए का है हम इस की तुलना कलकत्ता में करने लगे जो न्यूयार्क का लगभग तीन चौथाई है और बजट केवल दसग्यारह करोड़ रुपए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का। न्यूयार्क के मेयर और चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर का मासिक भत्ता २५,००० रुपए और कौंसिलरों का ६,००० रुपए हैं। नगर निगम शिक्षा पर ६०० करोड़ एवं स्वास्थ्य औ सफाई पर ३०० करोड़ रुपए व्यय करता है। शहर के मकानों से निगम को ८०० करोड़ टैक्स के रूप में मिल जाते हैं। सन १९६२ में यहां के मकानों की कीमत २०,००० करोड़ कूती गई थी। मकानों के टैक्स के अलावा अन्य करों से निगम को लगभग २,२०० करोड़ की वार्षिक आय हो जाती है। हमारे संपूर्ण देश की बजट से अकेले न्यूयार्क शहर का बजट कहीं ज्यादा है। वास्तव में ही अरबखरब की नगरी है न्यूयार्क।

आर्थिक या वित्तीय जानकारी के अलावा अमरीका की कृषि संबंधी आवश्यक बातों की जानकारी हमें लेनी थी। एक दूसरी ओर सजे बोर्डों के पास हमें ले जाया गया। वहां हमें सारे आंकड़े मिलते गए।

कृषि में भी अमरीका विश्व में सब से आगे है। यहां के क़िसान संपन्न और सुखी हैं। इन की कृषि संपत्ति करीब १५ खरब रुपयों की है। अमरीकन उद्योगपतियों की तरह वहां के कृषक भी धनीमानी हैं। विश्व के सब से बड़े धनी राकफेलर के एक पुत्र केवल कृषि कार्य करते हैं।

अमरीका की एक विशेषता रही है कि औद्योगिकीकरण की होड़ में वहां के लोगों ने और शासन ने कृषि की उपेक्षा नहीं की है। यही कारण है कि अमरीका आज विश्व का अन्न भंडार है। अन्य देश कृषि के महत्व को बाद में समझ पाए और हम तो बहुत ही देर से। ४० वर्ष पूर्व अमरीकन किसान जितना उपजाता था उस से आज पांच गुना अधिक अनाज पैदा करता है और प्रति एकड़ कृषि उत्पादन ६० से ७० प्रति शत बढ़ गया है। आंकड़ों को देख कर आश्चर्य हुआ कि यहां कृषक प्रति वर्ष २,३५० करोड़ रुपए खेती के लिए ट्रैक्टर और अन्यान्य औजारों के खरीदने में लगाते हैं, १,१०० करोड़ रुपए की डीजल और ८०० करोड़ रुपए की खाद खरीदते हैं। पिछले वर्ष वहां गेहूं, मकई तथा अन्य अनाजों की उपज बीस करोड़ टन के लगभग थी, जो अमरीका की जनसंख्या की छः वर्षों की आवश्यकता के लिए पर्याप्त थी। पशुओं के लिए सूखा घास भी १२ करोड़ टन पैदा हुआ। यहां घास की खेती भी अनाजों की तरह यत्नपूर्वक की जाती है, जिस के लिए अलग ही जमीन रखते हैं और अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा इस की पैदावार और किस्म को उन्नत करते हैं। अमरीका घूमते समय हम ने यह लक्ष्य किया था कि उत्पादन, और अधिक उत्पादन अमरीकी उद्योगों का उद्देश्य रहता है। अमरीकी सरकार इसे कृषि के क्षेत्र में प्रोत्साहन नहीं देती, क्योंकि इस से कृषि उत्पादन इतना अधिक हो जाता है कि कीमतों को कायम रखने के लिए अतिरिक्त उत्पादन सरकार को खरीदना पड़ता है और कभीकभी तो इसे खरीद कर नष्ट कर देना पड़ता है।

इन आंकड़ों को देखसुन रहा था और मेरी आंखों के सामने से उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के किसानों के भूख से पीड़ित बच्चे, बूढ़े तथा स्त्रियों की शक्लें गुजरती जा रही थीं।

लंच का समय हो गया था। हम ने बैंक के प्रेसिडेंट एवं अन्य कार्यकर्ताओं का अभिवादन कर उन से विदा ली। भुवालकाजी की सलाह के अनुसार हम एक सेल्फ सर्विस रेस्तरां में भोजन के लिए गए। ऐसे रेस्तरां में खानसामे या बेयरे नहीं रहते। स्वयं अपनी पसन्द के अनुसार रकाबियों में चीजें ले ली जाती हैं और काउंटर पर बैठी लड़कियों को दाम चुका कर वहीं सजी मेजों पर बैठ कर भोजन करते हैं। हम ने देखा, हमारी तरह ही सैकड़ों अमरीकन भी वहां लंच ले रहे थे। अमरीका में मजदूरी बहुत है, इसलिए ऐसे रेस्तरां में दूसरे बड़े भोजनालयों की अपेक्षा चार्ज बहुत कम लगता है। जहां तक मुझे याद है, हम तीनों का बिल केवल तीस रुपए के लगभग हुआ था।

लंच के बाद हम विश्व के सब से बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर 'मैकी' में गए। यो तो टोकियो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और शिकागो में हम नें बड़ेबड़े स्टोर्स देखे थे, लेकिन वे इस के मुकाबले में खिलौने से थे। हम ने यहां चीजें तो केवल डेढ़दो सौ रुपए की खरीदीं, लेकिन स्टोर्स की सभी मंजिलों पर स्वचल सीढ़ियों में जा कर विभिन्न कक्षों को देखा। कहीं फलों का बाजार लगा था तो किसी और चिड़ियां और छोटे पालतू जानवर थे। एक कक्ष में नाना प्रकार की रंगबिरंगी मछलियां आकर्षक शीशे के हौजों में खेल रहीं थी। दूसरी मंजिल पर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की पोशाकें सजी हुई थीं। हमें आश्चर्य हुआ कि यहां बनारसी कलाबत्तू की साड़ियां भी थीं। सुनने में आया कि आधुनिक अमरीकन महिलाएं इन के गाउन पहनती हैं और फैंसी ड्रेस के प्रोग्रामों में तो भारतीय पोशाकें भी पहनी जाती हैं।

शाम के छः बज गए, पर मैकी का स्टोर्स आधा भी नहीं देख पाए। यहा के विभिन्न विभागों और वस्तुओं के वर्णन में समय नहीं लेना चाहता, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस की दैनिक बिक्री डेढ़ करोड़ रुपए की है। सेल्स गर्ल्स बहुत कम हैं। प्रत्येक वस्तु का मूल्य लिखा रहता है, चीजें लेते जाइए, काउंटर पर एक साथ दाम जोड़ लिया जाता है।

न्यूयार्क अमरीका का ऐसा शहर है जहां कि विभिन्न प्रकार की जनसंख्या संयुक्त राष्ट्र के पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है। इस बात में यह कलकत्ते से बहुत कुछ मिलताजुलता है। न्यूयार्क का वैभव, व्यस्त जीवन, और अमीरीगरीबी देख कर हैरत होती है।

हम तय नहीं कर पा रहे थे कि न्यूयार्क में क्या देखें और क्या छोड़ें। टी बोर्ड के श्री अहमद ने प्रोग्राम बना दिया। समय की बचत के साथसाथ समस्या का हल निकल आया। हम घूमने निकल पड़े। सर्वप्रथम स्वाधीनता की प्रतिमा देखने गए।

बंदरगाह के प्रवेश पथ पर एक छोटा सा द्वीप है। उसी पर स्वाधीनता की मूर्ति प्रतिष्ठित है। संयुक्त राज्य का जन्म ही साम्राज्यवाद के विरोध में हुआ था। यही कारण है कि साधारण अमरीकी भले ही देशविदेश की राजधानियों में कम रुचि रखें लेकिन दूसरे देशों की स्वाधीनता की रक्षा करना और कम्युनिज्म के प्रसार की रोकथाम में मदद देना वे अपना कर्तव्य समझते हैं—चाहे वह पड़ोसी क्यूबा हो या सुदूर पूर्व का वियतनाम या कोरिया। स्वाधीनता की यह प्रतिमा उन की आंतरिक भावना को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है।

अब तक इतनी बड़ी मूर्ति मैं ने कहीं नहीं देखी। मिस्र के स्फिक्स देखने पर अनुमान था कि शायद इस से बड़ी मूर्ति अन्यत्र न होगी। लेकिन इस के मुकाबले में तो वह आधी ही है। इस प्रतिमा को देख कर मेरी धारणा कुछ ऐसी बनी कि भविष्य में शायद ही इस ढंग की मूर्ति बनाई जा सके, क्योंकि आज के संसार में व्यक्ति का महत्व भावना से अधिक बढ़ रहा है। अतएव, नेताओं की बड़ी बड़ी मूर्तियां भले ही बन जाए लेकिन स्वाधीनता, मुक्ति, शांति, शक्ति आदि के प्रतीक बनाने के प्रति इस भौतिकवादी युग में प्रेरणा मुश्किल से ही मिलेगी।

वैसे दूर से भी यह मूर्ति बहुत ही आकर्षक लग रही थी, पर ज्योंज्यों हम इस के पास आ रहे थे त्योंत्यों इसकी विशेषताएं स्पष्ट होती गईं। १५१ फीट ऊंची स्वतंत्रता की देवी गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर हाथ में जलती मशाल ले कर स्वाधीनता का संदेश दे रही हैं। १४२ फीट ऊंचे मंच पर इस को रखा गया है। दाहिने हाथ में जलती मशाल ऊंची किए है। और बांए हाथ में स्वाधीनता का घोषणापत्र है। उस पर खुदा है : '४ जुलाई, १७७६'।

प्रतिमा तांबे के चादरों से बनी है, जिन्हें लोहे के ढांचे पर मढ़ा गया है। इस का कुल वजन ५,५०० मन है। दाहिना हाथ, जिस में वह मशाल लिए हुए है, समुद्र की सतह से करीब ३०० फीट की ऊंचाई पर है। हाथ की लंबाई ४२ फीट और घेरा १२ फीट है। सिर दस फीट चौड़ा है, जिस पर कांटे का ताज है। ताज इतना बड़ा है कि ४० आदमी आसानी से उस पर खड़े हो सकते हैं। दोनों आंखों के बीच का फासला है ढाई फीट और नाक साढ़े चार फीट लंबी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं,ओठ कुछ खुले से हैं, मानो कुछ कह रहे हों। ओठों की आपसी दूरी तीन फीट है। मशाल में १२ आदमी खड़े हो सकते हैं। इस विशालकाय मूर्ति के अन्दर घुमावदार १६८ सीढ़ियां हैं। दर्शक इन पर से सिर तक चढ़ते हैं।

यह मूर्ति फ्रांस की जनता द्वारा भेंट में दी गई थी। इस के लिए १८७६ में दस लाख फ्रैंक का चंदा फ्रांसीसी जनता ने इकट्ठा किया था। ४ जुलाई, १८८४ को उन्हीं के द्वारा पेरिस में इसे अमरीकी जनता को भेंट किया गया।

फ्रांस भ्रमण के समय मैं ने यह लक्ष्य किया कि विलासिता और मौजमस्ती में यद्यपि फ्रेंच सदियों से डूबे रहे लेकिन स्वतंत्रता के प्रति उन के हृदय में सदैव श्रद्धा रही है। विदेशों में जहां कहीं संकट काल में उन की सहायता मांगी गई, फ्रांसीसी जनता ने स्वेच्छापूर्वक अपनी सेवाएं अर्पित की हैं। इस मूर्ति की स्थापना में करीब एक वर्ष का समय लगा, क्योंकि अमरीका के पास उन दिनों इतना भी धन नहीं था कि इस के लिए मंच बना सकता। अतएव, जब तक धन एकत्र नहीं किया जा सका, यह पेरिस में ही पड़ी रही। आज यह जान कर कुछ आश्चर्य तो जरूर होता होगा कि कुबेरों की नगरी न्यूयार्क के नागरिक आज से अस्सीबयासी वर्ष पहले इतने निर्धन थे कि उन दिनों न्यूयार्क के समाचारपत्रों में धनसंग्रह के लिए अपीलें निकला करती थीं। अंत में १८८५ को यह मूर्ति २१४ पेटियों में बंद कर अमरीका भेजी गई और २ अक्टूबर, १८८६ में अमरीकी राष्ट्रपति क्लीवलैंड ने इस स्मारक की प्रतिष्ठा की।

हम मूर्ति के ऊपर नहीं गए, क्योंकि हमें राष्ट्र संघ जाना था।

रोम में वैटिकन नगर का जो स्थान है उसी तरह संयुक्त राष्ट्र संघ का न्यूयार्क में है। शहर के पास बहती हुई ईस्ट नदी के किनारे इसका भवन है। ३६ मंजिलों का यह भवन न्यूयार्क की अन्य इमारतों से वास्तुशिल्प के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। विभिन्न राष्ट्रों ने जिस लगन और उत्साह से इस भवन के निर्माण में सहयोग दिया, काश, वही भावना विश्व की शांति, स्वाधीनता और सुरक्षा के लिए बनी रहती तो संसार को स्वर्ग बनाया जा सकता था।

राष्ट्र संघ का यह भवन ५४४ फीट ऊंचा, २८७ फीट चौड़ा है। १८ एकड़ की हरियाली के बीच आसमान को छूती हुई इस इमारत को देख कर मन में तरह-तरह की भावनाएं उठने लगती हैं। भवन के ऊपर राष्ट्र संघ का नीले रंग का झंडा फहरा रहा था और उस पर अंकित भूमंडल मानो नाच रहा था। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "देखिए, नीले आसमान के बीच सफेद भूमंडल कितना सुहावना लग रहा है!"

हम भवन के अंदर दाखिल हुए। भीतर की साजसज्जा में सौष्ठव था। यह भी देखने में आया कि यहां पांच राजभाषाओं को मान्यता दी गई है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पेनी, चीनी और रूसी। आश्चर्य तो नहीं पर खेद अवश्य हुआ कि यहां स्पेन जैसे साधारण राष्ट्र की भाषा को तो मान्यता दी गई है लेकिन ५० करोड़ के देश की भाषा हिंदी का कोई स्थान नहीं है। मेरी धारणा है कि हमारी सरकार की ओर से समुचित प्रयास किया जाए तो संसार की इतनी बड़ी आबादी की राजभाषा को राष्ट्र संघ में स्थान अवश्य मिल सकता है।

इस भवन में सम्मेलन सदन, बृहद परिषद, सचिवालय, पुस्तकालय आदि सभी दर्शनीय हैं। राष्ट्र संघ की बैठकें तो विश्व में कहीं भी हो सकती हैं, लेकिन कौंसिल (सुरक्षा परिषद), जनरल असेंबली (बृहद परिषद), कमेटियों और आयोगों की बैठकें यहीं होती हैं। राष्ट्र संघ का अंतरराष्ट्रीय न्यायालय हालैंड के हेग नगर में है। स्विट्जरलैंड में इस का एक कार्यालय है, जहां पहले लीग आफ नेशन्स था।

राष्ट्र संघ के सचिवालय में महामंत्री के कार्यालय के अतिरिक्त सात अन्य विभाग हैं। बृहद परिषद को छोड़कर राष्ट्र संघ के अंतर्गत पांच और संस्थान हैं। राष्ट्र संघ के चार उद्देश्य हैं: अंतरराष्ट्रीय शांतिऔर सुरक्षा को बनाए रखना, राष्ट्रों में पारस्परिक सम्मान, स्वाधीनता की भावना और मैत्री को प्रोत्साहन देना, विभिन्न समस्याओं को पारस्परिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहयोग से हल करना और मानव अधिकार व स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील होना। समान लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्रतिष्ठा और संघठन।

राष्ट्र संघ की स्थापना २४ अक्टूबर, १९४५ को हुई और तभी से यह दिन संसार के सभी राष्ट्रों द्वारा संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

राष्ट्र संघ को आज भले ही उतनी सफलता नहीं मिल पाई जितनी कि आशा की जाती थी, फिर भी यह तथ्य है कि इस के प्रयास ने भीषण रक्तपात और विनाश से विश्व को कई बार संभाला है। अरब, इसराइल, उत्तरदक्षिण कोरिया, कांगो आदि की उलझनों को बढ़ने न देने के कारण राष्ट्र संघ युद्ध जर्जरित विश्व में बधाई का पात्र है।

उन दिनों अधिवेशन नहीं था, इसलिए हम किसी बैठक की काररवाई नहीं देख पाए। गाइड ने हमें बताया कि वक्ता चाहे किसी भाषा में बोलते हों, श्रोता उन के भाषण को अपनी ही भाषा में सुन लेते हैं, क्योंकि भाषण का अनुवाद साथ-साथ होता रहता है। जिस भाषा में अनुवाद सुनना हो, उस का बटन दबा दिया जाता है, कान में रिसीवर से वही भाषा सुनी जा सकती है। हमारे यहां नई दिल्ली के विज्ञान भवन और संसद के दोनों सदनों में भी इस प्रकार की व्यवस्था है।

राष्ट्र संघ का भवन १८ एकड़ के क्षेत्रफल में है। वह जमीन हांगकांग की हालीवुड स्ट्रीट को छोड़ कर संसार में सब से कीमती है। इसे अमरीका के प्रसिद्ध धनकुबेर राकफेलर (जूनियर) ने ६५ करोड़ रूपये में खरीद कर भेंट में दी थी। न्यूयार्क में रहते हुए भी यह क्षेत्र अमरीकी कानून और नियमों में नहीं है। वेटिकन की तरह यहां भी अपने कानूनकायदे हैं। यहां पैर रखते ही व्यक्ति अंतरराष्ट्रीय धरती पर आ जाता है। यहां के डाक घर में राष्ट्र संघ की टिकट लगा कर आप विश्व में कहीं भी पत्र भेज सकते हैं।

लंच का समय हो रहा था। खेतानजी के अमरीकन व्यापारी मित्र केरलैंडर ने हमें टाइम एण्ड लाइफ भवन के बहुत महंगे रेस्तरां में भोजन का निमंत्रण दिया था। हम ने सुना था कि यह रेस्तरां महंगा तो जरूर है पर है नायाब।

जैसे ही रेस्तरां के दरवाजे पर पहुंचे, अपनेआप खुल गया। फिर भीतर जाते ही स्वयं बंद हो गया। ४२ तल्ले के विशाल भवन की सब से ऊंची मंजिल पर रेस्तरां है। भोजन करने में कम से कम डेढ़दो घंटे लग जाना मामूली बात है। ऊंचे दरजे के नृत्य और संगीत का क्रम चलता रहता है। अमरीकी सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में रेस्तरांओं का बहुत महत्त्व है। मैत्री, व्यापार, राजनीति, गीत, संगीत और भोजन साथसाथ चलते रहते हैं। लास एंजिल्स, सानफ्रांसिस्को वाशिंगटन, शिकागो सभी जगह ऐसी प्रथा देखने में आई। ऐसे रेस्तरांओं में आम तोर पर नकद भुगतान नहीं किए जाते क्योंकि खाने वाले डाइनर्स क्लब या अमरीकन एक्सप्रेस के सदस्य होते हैं। वे सिर्फ बिल पर अपने सदस्यता कार्ड का नंबर लिख कर हस्ताक्षर कर देते हैं।

भोजन के समय केरलैंडर ने हमारा बहुत ही ध्यान रखा। उन्हें हमारे शाकाहारी होने की जानकारी थी। बातचीत के दौरान अमरीकी उद्योगों के बारे में कुछ ऐसी बातें जानने में आईं, जिन की चर्चा अब तक हम ने नहीं सुनी थी। संयुक्त राज्य में लगभग ९०,००,००० शेयरहोल्डरों में से आधी से अधिक संख्या महिलाओं की है। हमारी यह धारणा थी कि अमरीकन कंपनियों के शेयरहोल्डर धनाढ्य ही होते होंगे, पर यहां सुना कि अमरीका में १० लाख ऐसे शेयरहोल्डर हैं, जिन की औसत वार्षिक आय ४०,००० रूपये से भी कम है। इस के अलावा १२ करोड़ व्यक्ति जीवन बीमा, यूनिट ट्रस्टों या पेंशन निधि के जरिए अप्रत्यक्ष रूप से कंपनियों के शेयरहोल्डर हैं। स्थानस्थान पर पूंजीनिवेशक क्लब हैं। इन के जरिए छोटे खरीददार उन में पैसे जमा कर नियमित रूप से शेयर खरीदते हैं। इस तरह की अनेक योजनाएं चल रही हैं। कर्मचारी शेयर खरीद योजनाओं के अंतर्गत कर्मचारियों को भी अपनी कंपनियों के शेयर खरीदने की सुविधा है। अमरीकन टेलीफोन एंड टेलीग्राफ कंपनी के करीब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ढाई लाख कर्मचारियों के पास और सोकोनी मोबिल कंपनी के ६० प्रति शत कर्मचारियों के पास अपनीअपनी कंपनियों के शेयर हैं। हम लोगों ने भी अपने देश में १९६४ से यूनिट ट्रस्ट की स्थापना की है। इस का संचालन सरकार द्वारा होता है और उद्देश्य है जनसाधारण बचत कर इस के हिस्सों में रुपए लगाए।

चर्चा के बीच में मैं ने प्रश्न किया कि यदि कर्मचारी ही कंपनी के मालिक बन गए तो क्या होगा? सहज उत्तर मिला, "तब तो सारा झगड़ा ही खत्म हो जायेगा। हड़तालों का डर नहीं रहेगा, क्योंकि कंपनी के मालिक हड़ताल करेंगे कैसे?"

शिकागो और न्यूयार्क मे मैं ने यह लक्ष्य किया कि अमरीकन प्रणाली में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण द्वारा राजनीति और अर्थनीति को मिलाने की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह प्रयत्न रहता है कि उन का स्वामित्व अधिक से अधिक व्यक्तियों के हाथ में बांट दिया जाए ताकि राष्ट्रीयकरण के बजाय उन का लोकतंत्रीकरण हो जाए। हम जब जुलाई १९६४ में वहां थे तब सुना था कि जनरल मोटर्स के एक बड़े हिस्सेदार डू पौंट के शेयर सरकारी आदेश से बिकवा दिए गए थे। अमरीकन शेयर बाजारों की स्थिरता और दृढता से छोटी पूंजी लगाने वाले को बहुत प्रोत्साहन मिला है। उन्हें नियमित रूप से लाभांश मिलते रहे हैं और उन्होंने यह अनुभव किया कि गत ३० वर्षों में जहां पैसे की क्रय शक्ति घट कर करीब आधी हो गई, शेयरों की कीमत दोगुनी तिगुनी हो गई है। मैं सोचने लगा कि हमारे यहां रुपए की क्रय शक्ति इन ३८ वर्षो में दशमांश ही रह गई, पर अधिकतर शेयरों के दाम उसी अनुपात में बढ़ने की बजाय आधे रह गए हैं। हमारे देश के अर्थशास्त्रियों के लिए यह गंभीर अनुशीलन का विषय है, क्योंकि इस से शेयरों में पूंजी का नियोजन होना वंद हो गया और देश की मुद्रा स्फीति बढ़ गई। वहां इन छोटेछोटे निवेशकों की बूंदबंद कर लगाई पूंजी ने बड़ेबड़े उद्योगपतियों के प्रभाव को कम कर दियां है। यह भी पता चला कि आज यहां के बड़ेबड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान वाल स्ट्रीट के पूंजीपतियों के पास बिना गए स्वयं ही आवश्यक पूंजी का प्रवन्ध कर लेते हैं।

इस डेढ़ घंटे के दौरान अमरीका की वर्तमान आर्थिक अवस्था और व्यवस्था के बारे में बहुत सी तथ्यपूर्ण बातों की जानकारी हुई।

हाथ धोने के बाद वेसिन से स्वतः निकलती सुगंधित गरम हवा ने गीलापन मिटा दिया, तौलिए की जरूरत न रही। वेटर जब बिल ले कर हमारे मेजवान की सही लेने आया तो मैं ने झांक कर देखा कि हम छः व्यक्तियों का खाने का चार्ज सात सौ था। दो दिन पहले हम ने सेल्फ सर्विस रेस्तरां में लंच लिया था, वहां लगा था दस रुपए प्रति व्यक्ति। मेनु और साजसज्जा में अन्तर अवश्य था, पर चार्ज के अनुपात में नहीं।

भोजन के बाद चार बजे मुझे टी बोर्ड के आफिस में जाना था। हम सभी विश्राम के लिए होटल वापस आ गए। शहर में आवागमन के नाना प्रकार के साधन हैं, वसें, टैक्सी और भूगर्भ ट्रेनें। केवल इतना ही नही आधुनिकतम हेलिकाप्टर सर्विस है तो स्टीमबोट भी। ये सारे इतने ज्यादा और सुविधाजनक है कि समय की बचत हो जाती है। कलकत्ता, बंबई और दिल्ली की तरह कतार लगा कर घंटों खड़े रहने का दृश्य कहीं भी नहीं दिखाई पड़ा। अरबपति मालिक और उसके कारखाने के मजदूर को एक ही बस या ट्रेन में अगलबगल बैठे देखना यहां साधारण सी बात है।

यहां की बड़ीछोटी सड़के नामों की जगह नंबरों से हैं। जैसे, ५वीं एवेन्यू की ४५वीं सड़क का १३४ वां मकान। लंबी और चौड़ी सड़कें एवेन्यू कहलाती हैं, इन्हें काटती हुई जो सड़के है उनकी संख्या करीब सौ सवा सौ है। इसलिए शहर में से नए व्यक्ति के भी खो जाने का डर नहीं रहता और बारबार पुलिस वालों से पूछने की जरूरत भी नहीं रहती है। टी बोर्ड का आफिस छठवी एवेन्यू की ५२ वीं सड़क के १०६ नंबर के मकान में था। मैं ने होटल से निकल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर सोचा कि पैदल ही चलूं। शहर को भी अच्छी तरह देख लूंगा और विभिन्न प्रकार के लोगों को भी देखनेसुनने का मौका मिल जाएगा।

छठवीं एवेन्यू की नौवीं सड़क के ५२वीं सड़क पहुंचा, वहां मकानों के नंबर देखता हुआ टी बोर्ड के दफ्तर में जब मैं ने टी बोर्ड के श्री अहमद को अपनी इस शहरी पद यात्रा का हाल बताया तो बहुत हंसे, क्योंकि होटल से वहां तक पैदल जाने में डेढ़दो घंटे का समय लग जाना स्वाभाविक था। धनकुबेरों की नगरी में इतना फालतू समय किस के पास रहता है?

श्री अहमद जलपाईगुड़ी के नवाब के पुत्र हैं। बहुत ही मिलनसार और मेहनती। अपनी फ्रेंच पत्नी के साथ करीब तीन साल से यहां हैं। उन के घर भोजन का निमंत्रण समयाभाव के कारण स्वीकार न कर सका, पर उन के सौजन्य की याद आज भी ताजी है। न्यूयार्क के हमारे छोटे से प्रवास काल में उन्होंने गाइड के रूप में हमारी बड़ी मदद की। उन्होंने मुझे उपहार में चाय के डिब्बे दिये, जो मैं ने अमरीका के विशिष्ट व्यक्तियों को भेंट कर दिए। मैं ने भी उन को देश से लाए हुए अचार और चिउड़े दिए, जिस के स्वाद की चर्चा वे मिलने पर जरूर कर देते थे, मानों मैं ने उन्हें कोई अमूल्य वस्तु भेंट कर दी थी।

टी बोर्ड का काम निपटा कर बस से होटल वापस आ गया। शाम हो रही थी। हम राकफेलर सेंटर दखने गए। कहते हैं, एंपायर स्टेट बिल्डिंग न्यूयार्क का प्रथम आकर्षक है तो राकफेलर दूसरा। उसे रेडियो सिटी भी कहते हैं या शहर में शहर कहा जा सकता है। इस केंद्र के अंतर्गत इतनी इमारतें हैं कि यहां पहुंच कर दर्शक खो जाता है। इंद्रधनुष कक्ष में बैठे भोजन-पान करते हुए मैनहट्टन के दमकते आलोक को अपने चारों ओर देख कर एक विचित्र आनंद का अनुभव होता है।

हम रेडियो सिटी के संगीत भवन में गए। यह संसार का सब से बड़ा कला केंद्र है। यहां ६,५०० सीटें हैं। शो चलते ही रहते हैं। सिनेमा, संगीत, नृत्य, नाटक आदि कार्यक्रम एक ही मंच पर होते हैं। एक के बाद दूसरे मंच इस प्रकार उठते आते हैं मानो ज़मीन के अंदर से कलाकार ऊपर धरती पर आ रहे हों। दर्शक किसी भी कार्यक्रम में जा कर बैठ सकते हैं।

रेडियो सिटी की गगनचुंबी अट्टालिकाओं की नगरी कहना अत्युक्ति नहीं होगा। न्यूयार्क की जमीन बहुत महंगी है। व्यापार और उद्योग का केंद्र है, इसलिए दफ्तर और आबादी बहुत ज्यादा है। यही कारण है कि यहां ऊंचेऊंचे मकान बना कर जमीन की या स्थान की समस्या का समाधान किया गया है।

यहीं टेलीविजन और रेडियो विभाग है। रेडियो की तरह टेलीविजन के स्टूडियो और मंच हैं। इन पर अलगअलग कार्यक्रम होते रहते हैं और अमरीका के विभिन्न भागों में प्रसारित किए जाते हैं। रेडियो सिटी भवन के नीचे इतनी दुकानें हैं कि रेस्तरां और दुकानों की निराली नगरी कहा जा सकता है। यहां भूगर्भ रेल का स्टेशन भी है। जहां से न्यूयार्क के विभिन्न भागों में राकफेलर प्लाजा देखने के बाद जाया जा सकता है।

इस की शोहरत हम ने पेरिस और रोम में सुनी थीं। सचमुच लंबीचौड़ी सड़क के दोनों ओर के ऊंचे मकानों ने इसे विश्व में बेजोड़ और शानदार महल्ला बना दिया है। यहां विश्व की मशहूर दुकानें हैं पर जो शानशौकत और मौजमस्ती पेरिस की साए लेंजा में हम ने देखी वैसी कही भी दिखाई नहीं दी। कहा जाता है, फैशन पैदा होता है फिफ्थ एवेन्यू में, पनपता है न्यूयार्क में और इठलाता है पेरिस में। यहीं प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता स्क्राइबनर में गया। अंगरेजी, फ्रेंच, जरमन, स्पेनिश आदि यूरोपीय भाषाओं की पुस्तकें देखने में आईं। जापानी और कुछ चीनी पुस्तकें भी देखीं। मैं ने सहज भाव से पूछा, "भारतीय भाषा की कोई पुस्तक मिलगी?" उस ने रवीन्द्र पर अंगरेजी की पांचसात क़िताबें दिखाई। मैं ने बताया कि यह तो अंगरेजी है, मैं तो भारतीय भाषा की चाहता हूं। बेचारी लड़की हैरान थी। बड़ी नम्रता और कौतूहल से उस ने कहा, "क्या अंगरेजी भारत की भाषा नहीं है? भारतीय तो हमेशा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
अंगरेजी ही बोलते देखे गए, अंगरेजी किताबें ही खरीदते हैं।" मैं ने कहा, "अंगरेजी भारतीय भाषा नहीं हैं, हमारी राजभाषा हिंदी है।" धन्यवाद कह कर मैं दुकान के बाहर आ गया। पास ही से, दो जापानी गुजरे, आपस में अपनी भाषा में बोलते जा रहे थे।

न्यूयार्क के आसमान पर रात की अंधेरी चादर थी, पर धरती पर रंगबिरंगी चांदनी। निओन और मर्करी के प्रकाश में सड़कें नहा रही थी, पर राहगीर की चाल में पेरिस और होनोलूलू की मस्ती नजर नहीं आई। सुना भी था कि यहां ऐश्वर्य है, पर शायद सुख नहीं।

प्रोग्राम था हारलेम देखने का। न्यूयार्क का यह एक प्रसिद्ध बदनाम महल्ला है। इस के भी तीन भाग हैं, नीग्रो, स्पेनिश और इटालियन। नीग्रो भाग सब से बड़ा है और बहुचर्चित भी। इस महल्ले में जहां करूणा उमड़ती है वही वासना की गंदी नालियों की सड़ांध से घृणा फूट निकलती है।

हमें बताया गया था कि रात में हारमेल की नीग्रो बस्ती में जाना निरापाद नहीं। लुच्चेउचक्के, खूनखराबी का भय रहता ही है, शरीफ आदमी का इस बस्ती में आनाजाना चर्चा का विषय बन जाता है। लास एंजल्स और शिकागो में मै ने नीग्रो लोगों के बारे में सुना था और देखा था उस ने मेरे कौतूहल को और भी बढ़ा दिया। मैं चाहता था कि संयुक्त राज्य के नीग्रो लोगों की सब से बड़ी जमात की इस बस्ती में जाऊं ताकि उन के जीवन को देखनेसमझने का मौका मिले। मित्रों की मनाही के बावजूत थोड़ी जोखिम उठा कर हारलेम चला ही गया।

सड़कों पर चहलपहल थी। न्यूयार्क की अन्य सड़कों से भिन्नता यही लगी कि यहां के मकान इतने ऊंचे नहीं जितने कि मैंनहट्टन, फिफ्थ एवेन्यू आदि के। यहां का वातावरण बहुत कुछ कलकत्ते की फ्री स्ट्रीट, वेलेजली और रिपन स्ट्रीट का सा लगा।

हम १५५वीं सड़क से जा रहे थे। दोनों तरफ बड़ेबड़े मैंशनों को देख कर मैं यहीं सोच रहा था कि क्या ये बस्ती के मकान हैं? कलकत्ते. बम्बई और दिल्ली क़ी बस्तियों के मकान इन के मुकाबले शायद झोपड़ियां भी कहलाने लायक नहीं हैं। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि न्यूयार्क के अन्य महल्लों से यहां किराया खास कम नहीं है। न्यूयार्क में और जगह नीग्रो लोगों के रहने पर कहीं भी प्रतिबंध नही, फिर भी वे यहीं रहना पसंद करते हैं।

इस रुचि के पीछे यह तर्क जंचा कि कलकत्ते में जैसे मद्रासी, गुजराती और अन्य गैर बंगाली अपनेअपने ही टोले में रहना पसंद करते हैं, शायद वही भावना इन में भी हो।

सड़क पर हम ने देखा रंगीन (नीग्रो) ज्यादा थे, गोरे कम। इस का यह अर्थ नहीं कि हारलेम में श्वेत (गोरे) नहीं रहते। वे रहते हैं और इन में कभीकभार अंतरवर्णीय विवाह भी हुआ करते हैं।

हारलेम एक दूसरी दुनिया ही है। न्यूयार्क की इस बस्ती में रात की मस्ती में मन और तन का स्वाद बदलने के लिए न्यूयार्क तो क्या दूरदूर के श्वेत स्त्रीपुरूष आया करते हैं। शराब, जुआ, नाचघर, कॉफी हाउस और रेस्तरां सभी में अपनी एक नियमित जिंदगी है। फिफ्थ एवेन्यू की आडंबरपूर्ण तड़कभडक यहां नहीं है। मगर जो है वह वास्तव है कृत्रिम नहीं। हम ने देखा दो श्वेतांग युवतियां एक बलिष्ठ नीग्रो से चिपटी सड़क पर बेखबर चली जा रही है। ताज्जुब हुआ, हम ने अपने अमरीकन साथी से पूछा तो पता चला कि मस्त नीग्रो का बल शारीरिक पिपासा को शांत करने में जितना सक्षम होता है उतना किसी भी श्वेत का नही। नीग्रो संपन्न भले ही न हों लेकिन गोरों की तरह उन के जीवन में चिंता, विषाद और भागदौड़ नहीं है। उन्हें निद्रा के लिए नित्य प्रति गोलियां भी नहीं खानी पड़ती हैं। इसी कारण स्नायविक शक्ति उन में कहीं अधिक है। विश्व प्रसिद्ध कलाकार और सिने तारिकाओं को इन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दैत्याकार नीग्रो के साथ खुलेआम रेस्तरां और शराब घरो में देखा जा सकता है। मुझे वेनिस, मियामी और होनोलूलू की याद आ गई, वहां भी यहीं बात देखी थी।

हमारे अमरीकन मित्र हमें हारलेम के प्रसिद्ध नाचघर सेवाय में ले गए। यह बहुत ही जनप्रिय है। कहा जाता है कि यहीं से 'ट्विस्ट' विश्व के हर कोने में फैल गया। नाचगाना मुझे आता नहीं और न उस की बारीकिया हीं समझता हूं, मगर जाज की स्वर लहरी जो यहां सुनने में आई वैसी कहीं भी मैं ने नहीं सुनी थी। जाज का जन्म और विकास अमरीका में हुआ। मूलतः यह लोक संगीत है जिस में अफ्रीकी और यूरोपीय संगीत परंपरा का मिश्रण है। इन दोनों से मिल कर जाज एक अभिनव वातावरण की सृष्टि करता है। अपने मूल रूप में यह नीग्रो संगीत है। अमरीका में लाए गए अफ्रीकी गुलाम खेतों में कड़ी मेहनत करते हुए या प्रार्थना करते हुए जो स्वर लहरी अपने अंतःकरण से निकालते थे उस का परिमार्जित रूप है आज का जाज।

हारलेम स्वयं में एक आकर्षण है। क्योंकि यहां के जीवन में वह भागदौड़ नहीं है जो ऊंचे लोगों में है। औसत नीग्रो का पारिवारिक जीवन श्वेतों से अधिक सुखी और सफल होता है।

आज अमरीका की सरकार और नेता वर्ग इस बात का अनुभव कर रहें हैं कि समता, भ्रातृत्व और मुक्ति में विश्वास करने वाले अमरीका के लिए उनके अपने रंगीन नागरिकों की दशा एक कलंक है। वे यह अनुभव करते हैं कि लिंकन और कनेडी जैसे महान व्यक्तियों के बलिदान के बावजूद अमरीकन समाज में नीग्रो लोगों को समान अवसर नहीं मिल पाया है।

मैं एक नीग्रो परिवार में गया। यह कार्यक्रम पहले से ही तय था। गृहस्वामी मिस्टर बेकर एक डाक्टर हैं। हमारे लिए वह प्रतिक्षा में थे। जाते ही बड़े स्नेह से उन्होंने बैठाया। अपनी पत्नी से परिचय कराया। श्रीमती बेकर औसत श्वेतांग स्त्रियों से कहीं ज्यादा सुन्दर और आकर्षक थीं। उन के गेहुंए रंग में वह रूखापन नहीं था जो आम तौर से उत्तरी यूरोपीय या अमरीकन स्त्रियों में होता है।

मुझे उन्होंनें बताया कि भारतीय दर्शन में उन की विशेष रुचि है, विशेष रूप से वे विवेकानंद का साहित्य पढ़ते हैं। उस में उन्हें ज्ञान और कर्ममय जीवन के प्रति प्रेरणा मिलती है।

मैं ने उससे पूछा कि गांधीजी के अहिंसात्मक सिद्धांत के आधार पर मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में रंगीन अमरीकन जब अपने अधिकार प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं तो फिर क्या कारण है कि मालकम एक्स के नेतृत्व में वहां के नीग्रो, मुसलमान बन कर हिंसात्मक आंदोलन करते जा रहे हैं।

मिस बेकर ने बताया कि मुस्लिम संप्रदाय के पीछे द्वेष और विद्रोह की भावना है। सदियों से नीग्रो रौंदे गए, गुलाम के रूप में उन से पशुवंत आचरण किया गया। सभ्य कहलाने वाले श्वेतांगों ने असभ्य अफ्रीकी गुलामों के प्रति जिस बर्बरता का परिचय दिया वह कल्पनातीत है। लिंकन के मुक्ति संदेश का आदर नहीं किया गया, बल्कि कूक्लूक्सक्लान जैसे दल कायम कर अमानुषिक उत्पीड़न और अत्याचार प्रारंभ किये गये। प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। द्वेष बढ़ता है, वही हुआ।

हमारे देश में भी सवर्णो के अत्याचार से लाखों अछूत मुसलमान और ईसाई हो गए थे।

मुझे यह सुन कर ताज्जुब हुआ कि कम्युनिस्ट और कुछ मुसलमान राष्ट्रों की रुचि 'ब्लैक मुस्लिम' आंदोलन में है और वे उसके प्रचारप्रसार में परोक्ष सहायता पहुंचाते हैं। देखना है अमरीकी जनता और सरकार इस चुनौती का क्या हल निकालती है।

आर्थिक स्थिति अमेरिकन नीग्रो की सुधरी है। पहले वे केवल मजदूर थे। अब उन में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुदक्ष कारीगरों की संख्या बढ़ रही है। न्यूनतम मजदूरी अमरीका में निर्धारित है, इस कारण से उन की आर्थिक स्थिति दृढ़तर होती जा रही है। सारे सोवियत रूस में जीतनी मोटरें हैं उस से कहीं अधिक केवल अमरीकन नीग्रों के पास हैं। सेना में भी अब नीग्रो और श्वेतों में कोई भेदभाव नहीं है। रात्रि के ११ बजे हम मिस्टर बेकर के यहां से होटल के लिए रवाना हुए हमारे मना करने पर भी वह हमें हारलेम के अंचल से बाहर तक पहुंचाने आए।

दूसरे दिन सुबह हमारे मित्र सुरेश देसाई मिलने आए। वे सपत्नीक अपने किसी मित्र के खाली फ्लैट में ठहरे हुए थे। न्यूयार्क की मंहगाई की बात चली तो यह जान करे बड़ा ताज्जुब हुआ कि उन का भोजन पर खर्च न्यूयार्क में भी उतना ही आता है जितना बंबई या दिल्ली में। उन्होंने बताया कि चावल, चीनी, आटा और दूध भारत के ही दामों में यहां मिल जाता है, फल और सब्जी तो और भी सस्ते हैं इसलिए यदि स्वयं खाना बना लिया जाय तो तीन साढ़ेतीन रुपए में तृप्ति के साथ भोजन हो जाता है। हम ने भी दूसरे दिन इस का प्रयोग कर के देखा। भारत से लाए हुए चिउड़े गरम दूध में भिगो कर स्वादिष्टखीर बनाई और उसे पावरोटी, आचार, मुरब्बे के साथ खाया।

रात्रि के खाने पर दूतावास के ट्रेड कौंसिल ने अपने घर पर हमें आमंत्रित किया। कुछ अमरीकन तथा भारतीय और हम तीनों मित्रों को मिला कर आठदस व्यक्ति थे। वहां हमने एक अधेड़ नीग्रो महिला को काम करते देखा।

मुझे मालूम था कि नौकर या दाई रखने का रिवाज वहां साधारणतया नहीं है, क्योंकि यह बहुत महंगा पड़ता है। उस के बारे में पूछने पर पता चला कि पांच घंटे के लिए दस डालर यानी ७५ रुपए लेगी। अपनी कार में आई है।

बातचीत में मजे की बात यह सुनने में आई कि कारखानों में कम से कम १२५ रुपए से १५० रुपए तक की प्रति दिन की मजदूरी है, इसलिए घरेलू नौकर मुश्किल से मिलते हैं। अगर कोई नौकर काम छोड़ कर चला जाता है तो मालिक उस से सर्टिफिकेट लेते हैं कि उस से बड़ा अच्छा व्यवहार किया गया, उसे किसी प्रकार से तकलीफ नहीं दी और काम भी इन के यहां ज्यादा नहीं है। यदि सर्टिफिकेट न रहे तो दूसरे नौकर मिलने में कठिनाई होती है। मैं अपने देश की बात सोचने लगा, जहां आज भी हट्टेकट्टे जवान, दरबान के काम के लिए सत्तरअस्सी रुपए मासिक पर मिल जाते हैं।

मेहमानों में एक अमरीकी पत्रकार भी थे। उन से यहां के समाचारपत्रों के बारे में यथेष्ट जानकारी मिली। उन्होंने बताया कि यहां समाचारपत्रों की सरकार और जनता दोनों पर ही बड़ी धाक है। एक तरह से देश की नीति निर्धारित करने में उन का प्रमुख हाथ रहता है।

उन में से कई पत्रों के पांचछः संस्करण प्रतिदिन निकलते हैं। पृष्ठ संख्या होती है ३२ से १०० तक। और, रविवार के दिन तो यह ४०० तक पहुंच जाती है। आधे से ज्यादा तो विज्ञापन ही रहते हैं और यही इन की आमदनी का खास जरिया है।

बड़े पत्रों के तीसपैंतीस विभागीय संपादक होते हैं। संवाददाताओं की संख्या तो सैकड़ों तक पहुंच जाती है, जो विश्व के हर कोने में फैले हुए रहते हैं। इन में से किसीकिसी के पास हवाईजहाज और हेलीकाप्टर भी होते हैं, जिस से मौके पर जा कर खबरें जल्दी भेजने में सुविधा हो।

विश्व प्रसिद्ध टाइम एंड लाइफ की तो अपनी कागज की मिलें हैं, जिन के बने हुए विशेष कागजों पर ये पत्र छपते हैं।

ज्यादातर पत्र सनसनीखेज समाचारों से भरे रहते हैं। मैं ने यहां के समाचारपत्रों के भारत के प्रति सहानुभूतिहीन रवैये का उल्लेख किया तो उन का उत्तर था कि इस के लिए आप की सरकार की जिम्मेदारी भी कम नहीं है। क्योंकि पिछले वर्षों तक प्रति वर्ष यू० एन० ओ० की बैठकों में जिस व्यक्ति (कृष्ण मेनन) को नेता बना कर भेजा जाता रहा, वह यहां

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
आ कर अमरीकी सरकार की बुराई और साम्यवादी देशों का समर्थन करता रहा। यही नहीं, एक बार तो उस ने पत्र संवाददाताओं का किसी भोज में अपमान भी कर दिया। वियतनाम और क्यूबा के बारे में तो आप ने निंदा प्रस्ताव किए, पर हंगरी में जिस प्रकार की नृशंसता की गई उसके लिए एक शब्द भी नहीं कहा।

बातचीत और भोजन में रात्रि के ११ बज गए थे। इसलिए हम पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार विश्व की सर्वोच्च इमारत एंपायर स्टेट बिल्डिग देखने गए।

एक युग था जब २३४ फुट ऊंची हमारी कुतुबमीनार दुनियां में सर्वोच्च मानी जाती थी। उस के बाद विगत महायुद्ध तक पेरिस का एफिल टावर इस कीर्ति का अधिकारी बना। एफिल की ऊंचाई १०४३ फुट थी। भला जापान पीछे क्यों रहता ? उस ने टोकियो में १०८२ फुट ऊंची टेलीविजन टावर बनाया। अमरीका नई दुनिया है, यहां नया इतिहास बन रहा है, नई संस्कृति पनप रही है। यह केवल विश्व का सब से धनी देश ही नहीं, बल्कि यहां हर क्षेत्र में एक सर्वोच्चता प्राप्त करने कि प्रतिस्पर्धा भी रहती है। इसी के परिणामस्वरूप न्यूयार्क की एंपायर स्टेट बिल्डिग बनी। १०२ मंजिला और १,२५० फुट ऊंचा भवन। इस के टेलीविजन टावर को भी शामिल कर दें तो कुल ऊंचाई १,४५० फुट हो जाएगी।

दर्शकों के लिए यह सुबह दस बजे से रात्रि के एक बजे तक खुला रहता है। प्रवेश शुल्क आठ रुपए हैं। इसे भवन कहा जाए या अच्छाखासा कसबा ? यहां बड़ेबड़े दफ्तरों के अलावा होटल, रेस्तरां, बीमा कंपनी, बैंक, दुकानें, स्टोर्स आदि सब कुछ एक जगह पर हैं, जहां प्रति दिन २५,००० व्यक्ति काम करने आते हैं। इस के विभिन्न भागों तथा मंजिलों तक पहुंचने के लिए ६७ लिफ्टें हैं, जिन में से कुछ की गति प्रति मिनट १,२०० फुट है।

मैं सोच रहा था कि मैनहट्टन वही तो है, जिसे आदिवासियों से सन १६२६ में केवल २४ डालर के कांच की मणियां, टीन के डब्बे और कुछ कपड़े दे कर डचों ने खरीदा था। आज इस द्वीप में एक इंच जमीन मिलनी कठिन है। मुझे मेरे एक मित्र की याद आ गई। जिन्होंने नई दिल्ली की पृथ्वीराज रोड की १२,००० वर्ग गज जमीन ४,५०० रुपए में ली थी, जिस की कीमत आज करीब २४ लाख है।

अपने ही विचारों पर मन ही मन मुस्करा उठा। संसार के सब से धनी देश की सब से ऊंची इमारत की सब से ऊंची मंजिल पर इन्हीं सब बातों को सोच रहा था।

"जी, एक बज रहा है," गाइड ने धीरे से कहा। वह मुस्करा रह था। एलिवेटर ने हमें कब नीचे उतार दिया, इस का अंदाजा भी नहीं लगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चकाचौंध कर देने वाली वैज्ञानिक प्रगति

न्यूयार्क विश्वमेला

जिन दिनों हम न्यूयार्क में थे, वहां मेला चल रहा था। हम ने केवल मेला देखने के लिए दो दिन का समय रखा। वैसे तो इसे पूरी तौर से देखने के लिए एक महीने का समय भी कम था। हम ने मेले के बारे में जानकारी ली और तय किया कि केवल खासखास कक्ष देख लिए जाएं। हमारे दूतावास के सचिव हमारे साथ थे, इसलिए चीजों के देखनेसमझने में सुविधा रही और समय कम लगा। बड़े एवं मशहूर स्टालों को देखने के लिए लंबी कतारें थीं, मगर हमें हर जगह प्राथमिकता मिलती रही।

यों तो मेले दुनिया में और जगहों पर भी होते रहते हैं, जिन में जरमनी और मिलान के मेले प्रसिद्ध हैं। अपने देश में १९४८ में कलकत्ते की और १९६१ की दिल्ली प्रदर्शनी को भी काफी शोहरत मिली थी।

संयुक्त राज्य अमरीका में विश्व मेला सर्वप्रथम न्यूयार्क में १९३९ में आयोजित किया गया था। यह इतना लोकप्रिय रहा कि इस में लगभग साढ़े चार करोड़ दर्शक आए। इस प्रकार की प्रदर्शनियों का आयोजन उन्नत राष्ट्रों के लिए आवश्यक है, क्योंकि इन से देश के औद्योगिक विकास तथा ज्ञानविज्ञान की प्रगति का परिचय मिल जाता है। १९३९ की मेले का और इस का तुलनात्मक विवरण दिया गया था, जिस से पता चलता था कि इन २५ वर्षों में अमरीका ने हर दिशा में कितनी उन्नति की है।

वह डकोटा का युग था, जब कि आज हम सुपर सोनिक जेट के युग से गुजर रहे हैं। उन दिनों, हालांकि रेडियो बन चुके थे, लेकिन लोग टेलीविजन का अंदाज भी नहीं कर पाए थे और चंद्रमा की यात्रा तो स्वप्नलोक की बात थी।

न्यूयार्क के विश्व मेले की तैयारी में ढ़ाई वर्ष लगे। अमरीका के पसिद्ध वास्तुकार राबर्ट मोजेज को इस के निमार्ण और सजावट का भार दिया गया। विश्व मेले का आयोजन था, देशविदेश से दुनिया के हर कोने से व्यापारी, उद्योगपति एवं पर्यटकों का आलम उमड़ेगा. अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता एवं वैज्ञानिक भी प्रदर्शनी में आएंगे। स्वाभाविक बात थी न्यूयार्क नहीं, बल्कि अमरीका की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। श्री मोजेज ने ६५,००० रुपए मासिक वेतन पर काम करना स्वीकार कर लिया।

वास्तव में विश्व के सभी राष्ट्रों ने बड़े उत्साह से न्यूयार्क के इस वृहद आयोजन में भाग लिया ओर अपनेअपने कक्ष बनवाए। केवल कुछ वैधानिक कारणों से रूस, ब्रिटेन और कम्युनिस्ट देशों ने इस का बायकाट किया। दुनिया के प्रायः सभी राष्ट्रों के उद्योग एवं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यापारी प्रतिष्ठानों ने इतने बड़े पैमाने पर स्थान सुरक्षित कराया कि आयोजकों को दिल खोल कर खर्च करने की सुविधा हो गई। विश्व मेला कमेटी ने केवल ७५० करोड़ रुपए का बजट खर्च के लिए बनाया था, पर अन्यान्य देशों और प्रतिष्ठानों ने जो खर्च किया उस का अनुमान इसी से लग सकता है कि अमरीका के जनरल मोटर्स, फोर्ड, ड्यूपोंट और जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी के केवल चार कक्षों में ३७० करोड़ रुपए लगे। भारतीय कक्ष में तीन करोड़ और पाकिस्तानी कक्ष में ८० लाख रुपए।

विश्व मेले का बहुत बड़ा विस्तार था। पैदल घूमना संभव न था। मगर इच्छा थी कि कम से कम एक चक्कर लगा कर के संतोष कर लिया जाए। हम ने मेले की ट्रेन में बैठ कर सारे मेले का एक चक्कर लगा लिया। इस के बाद फोर्ड मोटर कंपनी के पेवीलियन में गए। विद्युत चालित पटरियों पर पचासों बड़ीबड़ी नई मोटरें धीमी चाल से चल रही थीं। एक गाड़ी में हम लोग भी बैठ गए। मोटर हमें एक अंधेरी गुफा में ले गई।

यहां प्रागैतिहासिक युग के महाकाय दिनासुर और ब्रांटासुर जानवर अपने सहज भाव से विचर रहे थे, जिन की लंबाई सत्तरअस्सी फुट की थी हमारे यहां के हाथी और गैंडों को तो इन के मुकाबले में बच्चों के खिलौने कहा जा सकता हैं। २०वीं शताब्दी के जानवरों से सर्वथा भिन्न इन दैत्याकार जीवों की लपलपाती जीभ, लाल अंगारे जैसी आंखें और बड़ेबड़े चमकते दांतों को देख कर रोमांचित हो जाना स्वाभाविक था। अगर यह पता न रहे कि ये जंतु वाल्ट डिजनी द्वारा बनाऐ गए प्लास्टिककेहैं तो कमजोर दिल वालों की तो शामत ही समझिए।

लाखों वर्ष पूर्व के आदि मानव को देखा। गिरि कंदराओं में रहने वाला, सुपुष्ट लंबी भुजाएं, कंधों के नीचे तक झूलती केश राशि चौड़े सीने पर खेल रही थी। किसी प्रकार के परिधान का तो उस समय तक आविष्कार ही नहीं हुआ था। मैं आश्चर्य से देखने लगा। मुझे उस की आंखों में ऐसा लगा कि मानो मुझ से पूछ रहा है कि मुझे पहचानते नहीं ? मैं तुम्हारा पूर्वज हूं। तुम जेट युग में भले ही हो,पर दुख है कि तुम खुद बहुत कमजोर हो। तुम्हारा मन और साहस तुम से भी कमजोर है। इतने में ही मोटर सरकती हुई आगे बढ़ गई। दूसरे कक्षों में दिखाया गया था कि सभ्यता का विकास गुफाओं से एंपायर स्टेट बिल्डिग के ताप नियंत्रित कक्षों तक किस प्रकार क्रमानुसार हुआ है। इतने सजीव माडल बने थे कि स्वाभाविकता में संदेह की गुंजाइश नहीं थी। पत्थर के चक्कों की गाड़ियों से ले कर हवा से होड़ लेने वाली आज की मोटरों के निर्माण का क्रम बड़ी कुशलता से दिखाया गया था।

फोर्ड ने पुरानी बातें दिखाई और हमें युगों पहले ले गया तो जनरल मोटर्स कारपोरेशन ने आज से ४० या ५० वर्ष की झांकी दिखाई।

यहां हम विशेष प्रकार के यान मे बैठे और हजारों फुट नीचे समुद्रतल में पहुंचे। हम ने देखा, वहां एक खूबसूरत रेस्तरां है। लोग खापी रहे हैं, गप्पें लड़ा रहे हैं। कभीकभी खिड़कियों से शार्क या ह्वेल झांक कर चली जा रही हैं। झुंड की झुंड मछलियां, रंगबिरंगी किरणें बिखेरती चली जा रही हैं। बड़ा सुहावना लगा। इतने में देखा एक ह्वेल मुंह खोले खड़ी है। लगा, टेबलकुरसियों समेत हमें निगल जाएगी। गनीमत थी कि खिड़कियों पर मोटे शीशे थे।

समुद्रतल से बाहर आकर हम एक जगह और ले जाए गए। हरियाली की लहरें खेतों में दौड़ रही थीं। चारों तरफ फलों और फूलों के बगीचे थे। मैं ने पूछा, "यह कौन सी जगह है ?" उत्तर मिला, "पचास वर्ष पहले आप जिसे सहारा का रेगिस्तान कहते थे।"

यहां यह लिख देना जरूरी है कि हम न जिन चीजों को देखा, वे असली नहीं थीं। आने वाले ५० वर्षों में विज्ञान के बल पर मनुष्य कितना साधन संपन्न हो जाएगा इस की कल्पना मात्र थी। पर इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी, जैसे कि वास्तव में ही हम समुद्र की गहराई में उतर रहे हैं। आज एक देश से दूसरे देश में जिस आसानी से हम जातेआते हैं उसी प्रकार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रहउपग्रहों की यात्रा संभव हो जाएगी। आज की तरह हमें सड़कों पर ट्रेफिक की दिक्कत न होगी। मोटरें मकान की छतों पर से ही उड़ेंगी।

ये सारी बातें कल्पना भले ही हों, पर इतना स्वाभाविक वातावरण बना दिया गया था और इस ढंग से प्रस्तुत किया गया था कि वास्तविकता का बोध होता था मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "काश, हम चालीसपचास वर्ष बाद जन्म लेते और इन सुविधाओं का उपभोग कर पाते!"

"ऐसी भी क्या बात है," उन्होंने हंस कर कहा। "विज्ञान जिस गति से बढ़ रहा है, पद्रहबीस वर्षों में भी ये बातें संभव हो सकती हैं और तब हम भी चंद्रमा की सैर कर लेंगे।"

इन दोनों कक्षों को देखने के बाद हम तीसरे में गए। यह ड्यूपोंट कारपोरेशन का था। ड्यूपोंट विश्व के प्रथम १५ प्रतिष्ठानों में है, जिन का वार्षिक उत्पादन ५,००० करोड़ का है—अर्थात सारे भारत के कारखानों से ज्यादा। नाइलन आदि रासायनिक रेशों के आविष्कारक होने का उन्हें गौरव प्राप्त है। इन के पेवीलियन में हम ने विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओं की निर्माण विधि और क्रियाएं देखीं। इस के अलावा एक कौमिक ड्रामा भी देखा। अभिनेताओं या अभिनेत्रियों में कौन वास्तविक है और कौन प्लास्टिक का माडल है, पहचानना मुश्किल था। इस ढंग से हावभाव का प्रदर्शन और बातें करते थे कि जब तक यह बताया न गया कि अमुक पात्र प्लास्टिक का बना है, हम उसे असली ही समझ बैठे थे। पिछले दोनों कक्षों के अद्भुत और भयावह दृश्यों के कारण ड्यूपोंट के इस चमत्कारिक कलात्मक प्रदर्शन ने मन को मोह लिया। वास्तव में उन का उद्देश्य भी यही था कि दर्शकों के मन से बहुत दिनों तक उन का नाम न हटे। विज्ञापन और प्रचार की यही सफलता है।

जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी के पेवीलियन में बिजली के आविष्कार से शुरू कर आज तक इस के कितने विभिन्न ढंग के उपयोग होते रहे हैं, इस का प्रदर्शन बड़े आकर्षक तरीके से किया गया था। बिजली क्या है, उस की शक्ति कितनी है——यह सब बहुत ही सुंदर तरीके से दिखाया गया था। एक अंधेरा कमरा था, वहां जाने पर ऐसा लगता था कि सारा कक्ष जोरों से हिल रहा हो, आसमान में बिजली की चमक और कड़क—साथ ही जोरों की वर्षा। एक दूसरे कक्ष में दिखाया गया था, जब बिजली न थी, मनुष्य भोजन कैसे बनाता था। बेचारी गृहिणी की आंखें चूल्हा फूंकतेफूंकते लाल हो गई थीं।शायद लकड़ियां गीली थीं और आग नहीं जल रही थी, उधर पति को शिकार में जाने की जल्दी थी। उस का शिकारी कुत्ता पास में खड़ा पूंछ हिला रहा था। प्लास्टिक के सारे माडल आदमकद थे और बड़े ही स्वाभाविक बनाए गए थे।

इन चारों कक्षों को देखने में दोढाई घंटे लग गए। और अभी भी सैकड़ों बाकी थे। इसलिए कुछ और देख लेना तय किया। जनरल सिगरेट कारपोरेशन के कक्ष में गए। इन के प्रचार का तरीका भी कम मजेदार नहीं था। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरत, मर्द सभी आनंद ले रहे थे। एक प्रकार का मैजिक शो था—भारतीय रस्सी की जादुई करामात पर एक महिला खड़ी रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ती जाती है और वहां गायब हो जाती है। वह तो फिर दिखाई नहीं देती, मगर अंधेरे में कुछ पक्षी सिगरेट पीते दिखाई देते हैं। इस दृश्य को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया था कि सभी हंस रहे थे। बच्चे तो बेहद खुश, हटने का नाम नहीं लेते थे।

डेढ़ बज चुके थे। भूख जोर से लग रही थी। शहर जा कर मेले वापस आने के बजाए यहीं भारतीय गेलार्ड रेस्तरां में खाने का निश्चय हुआ। विभिन्न देशों के रेस्तरां अपनेअपने राष्ट्रीय व्यंजनों की विशेषताओं के साथ मेले में खोले गये थे। भारतीय रेस्तरां काफी जनप्रिय साबित हुआ। शमी कबाब, मुर्ग मुसल्लम, मुर्ग तंदूरी, आदि नाना प्रकार के भारतीय व्यंजन मांसाहारियों के लिए थे। हम तीनों साथी शाकाहारी थे। जलेबियां और खीर बनी थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारे लिए यह भारतीय मीनू बहुत अच्छा रहा, स्वादिष्ट था, डट कर खाया। बिल आया तो कुछ अखरा जरूर। चार व्यक्तियों के लिए करीब १८० रुपए लगे; २० रुपए बक्शीश के अलग। केशरिया खीर और जलेबी बहुत महंगी पड़ी।

खुले लान में कुछ आराम करने के बाद तीन बजे से हम ने घूमना शुरू किया। भारतीय पेवीलियन में आए। अपने देश की बनी चीजें बड़े आकर्षक ढंग से सजी देख चित्त प्रसन्न हो उठा। भारतीय वेशभूषा में दसबारह युवतियां दर्शकों को हर चीज की जानकारी दे रही थीं। इन में से एक तो आसाम के संसद सदस्य हमारे मित्र पी० सी० बरुआ की पुत्रवधू थीं। हम अपने देश की महिलाओं के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। बातचीत और हावभाव में भारतीय शालीनता और विनय पाश्चात्य के आडंबरपूर्ण वातावरण में बड़ा मधुर लगा। उन सब से बात कर प्रसन्नता हुई। उन्होंने बताया कि वे सब २५ हैं और किराए के एक फ्लैट में दूतावास की देखरेख में हैं। वे बहुत खुश थीं और मन लगा कर खूब मेहनत करती थीं।

भारत के बारे में बहुत से चित्र हमारे कक्ष में थे। विभिन्न प्रदेशों की दस्तकारी के सामान सजे थे, जिस में राजस्थान और मैसूर के हाथीदांत के खिलौने, बनारसी जरी के काम की साड़ियां और पल्ले, कांगड़ा, पहाड़ी, मुगल और राजपूत शैली के चित्र थे।

भारतीय कक्ष का उदघाटन श्रीमती इंदिरा गांधी कर गई थीं। प्रचार के दृष्टिकोण से इस का भी महत्व था क्योंकि उन्हें देखने के लिए भारतीय पेवीलियन में काफी लोग आए थे।

आगरे के एक मशहूर जौहरी ने एक गलीचा भेजा था। जवाहिरात से जड़े १८ फुट के इस गलीचे की कीमत शायद साढ़े चार लाख रूपए। हमें पता नहीं, प्रदर्शनी की समाप्ति पर वह बिक गया था या वापस आया।

इस के बाद हम अपने पड़ोसी पाकिस्तान के कक्ष में गए। भारतीय कक्ष से यह काफी छोटा था। पाट के बने बोरे और चटों के अलावा पाकिस्तान के नए बनते हुए उद्योगधंधों की झांकी थी। जैसा कि उन का कायदा है भारत के विरूद्ध अनर्गल प्रचार भी था। हम ने दूसरे जितने देशों के कक्ष देखे, उन सब में हमें यह घटिया और उबा देने वाला लगा। दूसरे लोग भी इस में से बहुत जल्दी बाहर आ जाते थे। यहां हम ने मोहनजोदड़ो तक्षशिला के माडल रखे देखे। पाकिस्तान का प्रचार है कि वह विश्व की इस प्राचीनतम संस्कृति का अधिकारी है। अरब के संस्कार और संस्कृति को जिन्होंने अपनाया और अपनी संस्कृति को ठुकराया, तोड़ा और नष्ट किया आज वह मौलिक भारतीय संस्कृति को अपना कहने का दावा करते हैं, यह स्वयं में एक बहुत बड़ा व्यंग्य है। पर यात्री व्यवसाय को बढ़ाने के लिए इन विश्व प्रसिद्ध पुरातन आर्य अवशेषों के सिवा उन के पास और है ही क्या?

इस के बाद बारीबारी से हम ने न्यूयार्क, अलास्का, बैंकाक, जापान, मलेशिया, तैवान, हवाई, जोरडन और मैक्सिको के कक्षों को सरसरी तौर पर देखा।

न्यूयार्क के कक्ष में शहर का एक माडल देखा, जिस में उस की सारी सड़कें और ८८,००० मकान थे। केवल इस माडल के बनाने का खर्च लगा था ६० लाख रुपया। तैवान (राष्ट्रवादी चीन) के कक्ष में चीनी सभ्यता, वास्तु शिल्प और इतिहास की झांकी थी और था इन १४ वर्षों का उन का इतिहास। किस प्रकार से मातृभूमि से भाग कर आए हुए कुछ लाख व्यक्तियों ने अपने कठिन परिश्रम और सूझबूझ से फारमोसा को हराभरा और उपजाऊ बना कर न केवल आत्मनिर्भर, बल्कि निर्यात करने वाला देश बना लिया है, आंकड़ों और चित्रों द्वारा यह सब यहां दिखाया गया था।

इन कक्षों में घूमतेघूमते पैर जवाब देने लगे। रात भी हो आई थी। विश्राम आवश्यक हो गया। अतएव, लिफ्ट से आबजरवेशन टावर पर चढ़ कर मेले का एक विहंगम दृश्य देखना अंतिम कार्यक्रम बना।

इस मीनार की ऊंजाई, लगभग २२६ फीट थी, (हमारे कुतुब के समान) ऊपर एक बड़ा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
मंच बनाया गया था, जिस पर से मेले का पूरा दृश्य दिखता था।

हम ने ऊपर से देखा, रंगबिरंगे आलोक में २०वीं सदी दीवाली मना रही है। न्यूयार्क के थाल में वैभव और समृद्धि सजा कर विश्व मुसकरा रहा है। रात के दस बजे होटल लौटे और खापी कर सो गए। विचित्र प्रकार के स्वप्न आते रहे, दिन में कुछ इस प्रकार की भयावह चीजों को देखा था जिन की छाप मस्तिष्क पर अंकित होनी स्वाभाविक थी।

दूसरे दिन, आठ बजे नाश्ता कर हम मेले के लिए फिर निकल पड़े। पहले दिन वहां से कुछ परिपत्र ले आए थे, उन्हें पढ़ने पर पता चला कि ६,००० कारीगरों ने दो वर्ष के परिश्रम से मेले को तैयार किया। इस के अतिरिक्त ३०,००० मजदूर और कारीगर विभिन्न कक्षों के बनाने में लगे। जिस देश में कारीगरों की दैनिक मजदूरी १२५ से १५० रुपए है, वहां इस पर कितना खर्च लगा होगा! ढाई लाख टन लोहा तो केवल ढांचे की तैयारी में ही लगा। पीने के पानी के लिए ८० लाख गैलन की टंकी बनी। ३०० औद्योगिक प्रतिष्ठान और ६६ राष्ट्रों के अलावा ईसाई धर्म के विभिन्न संप्रदाओं की ओर से भी प्रचार के लिए मेले में कक्ष लिए गए थे। प्रति दिन लाख दर्शक मेले में आते थे। सुदूर विदेशों से भी इसे देखने के लिए लोगों के आने का तांता बंधा हुआ था।

समय अब एक दिन का था। इसलिए मेले में जाने के पूर्व ही हम ने तय कर लिया कि हमें आज क्याक्या देखना है।

सब से पहले हम पेप्सीकोला के कक्ष में गए। इस का पेय मशहूर है। इन की वार्षिक ब्रिकी २०० करोड़ रुपए की है। इन के कक्ष में भी डिजनी द्वारा बनाई गई ३५ बड़ीबड़ी गुड़ियों को देखा, पानी में नाव चला रही हैं, गाना गा रही हैं, ईरान की कालीन पर बैठे आसमान की सैर कर रही हैं। बच्चों की भीड़ जमी थी। कौतूहल भरी सरल आंखें हंसते चेहरों में हम भी अपना बुढ़ापा भूल गए।

बेलजियम के कक्ष में हम ने देखा, आज से २०० वर्ष-पूर्व का एक गाव मकान, दुकान, रहनसहन, पहनावा सभी उस जमाने का। वातावरण बिलकुल ऐसा लगा कि मानों कहीं हम १८वीं सदी में हों। दुकानदार, खरीदार और वस्तुएं सभी उस जमाने की। सड़कों पर चूल्हे रख कर तेल में पकौड़िएं तली जा रही थी तो कहीं सड़क के किनारे ही बैठ कर लोग ताश और शतरंज खेल रहे थे।

विश्व विख्यात क्राइसलर मोटर के कक्ष में दस मंजिला एक राकेट दिखाया गया था और हरेक मंजिल पर मशीनों से बना आदमी। इस के अलावा एक क्राइसलर कार भी थी, जो दुनिया की सब से बड़ी मोटर बताई गई थी।

स्पेन और वेटिकन (पोप) के कक्ष में वे अमूल्य चित्र देखने में आए, जिन्हें कभी भी अपने स्थान से अलग नहीं हटाया गया था। माइकल एंजेलों, गोया, पिकासो, एलग्रेबो आदि की सर्वोत्तम कृतियां एक ही स्थान पर देखने को मिली। 'अंतिम भोज,' 'माता और शिशु' तथा 'ईशु और संत पीटर' के अनेक चित्र यहां सजे थे, जिन में कइयों की कीमत ५० लाख से दो करोड़ तक की थी।

विश्व विख्यात पेय कोकाकोला का पेवीलियन भी हम ने देखा। पेप्सीकोला की वार्षिक बिक्री २०० करोड़ की है तो इन की ६६० करोड़ रुपए अर्थात हमारे यहां के टाटा और बिड़ला दोनों के सारे कारखानों से भी अधिक। इन के स्टाल में हम ने एक प्रकार का रेडियों देखा। इसे ट्रांसफार्मर और रिसीवर का सम्मिलित रूप कहा जा सकता है। इस के द्वारा दुनिया के किसी भी कोने से आपस में बात की जा सकती है, बशर्ते कि दोनों के पास इसी प्रकार के सेट हों। यह यंत्र जनसाधारण के व्यवहार के लिए नहीं है। केवल सरकारी तौर पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस का उपयोग सीमित रखा गया है और अभी प्रारंभिक अवस्था में है ।

कोडक ने अपने कक्ष में एक रंगीन तसवीर दिखाई थी । आकार था, ३६ × ३० फुट । उन का दावा था कि इस आकार का फोटोग्राफ अब तक बन नहीं पाया है । इन के कक्ष में संसार के सर्वोत्तम फोटोग्राफ देखने को मिले ।

सभी देशों ने अपनेअपने राष्ट्रीय जीवन और उद्योगधंधों का प्रदर्शन किया था । अफ्रीका के देशों के कक्षों में उन की संस्कृति, कला, प्राकृतिक दृश्य और वन्य पशु कम आकर्षक नहीं लगे । उन्हें अच्छी तरह देखने से एक प्रकार से विश्व भ्रमण हो जाता है ।

अफ्रीकी देशों में हमें संयुक्त अरब राज्य (मिस्र) का कक्ष अधिक आकर्षक लगा । हमारी तरह इन की भी संस्कृति प्राचीन है । पाश्चात्य के विद्वानों की तो मान्यता रही है कि मानव सभ्यता का विकास नील घाटी से प्रारंभ हुआ, पर हमारे मनीषी लोकमान्य तिलक ने अपनी 'वैदिक सभ्यता' में ऐसी धारणाओं को भ्रमपूर्ण सिद्ध करते हुए बताया है कि वैदिक सभ्यता ही प्राचीनतम है ।

ईसा पूर्व ५००० वर्ष से ईसा पूर्व, २००० वर्षों तक विभिन्न काल में प्रयोग में आने वाले लोहे, सोने और चांदी के गहने, पोशाकें, बरतन आदि इस कक्ष में देखने में आए । सम्राट तूतनखामेन का सुवर्ण मंडित शव भी वहां देखा । मिस्र की अपनी पिछली यात्रा में इन वस्तुओं को काहिरा के म्यूजियम में देखने का अवसर मिला था ।

इस के बाद हम ने इसराइल का कक्ष देखा । इस ने हमें बहुत प्रभावित किया । यहां १६ वर्ष के इसराइल के निर्माण का इतिहास चित्रों के माध्यम से दिखाया गया था । यह यहूदियों का एक मात्र नया राज्य है । हिटलर ने यहूदियों पर अमानुषिक अत्याचार किए जिस से विश्व की सहानुभूति उन के प्रति हो गई ।

द्वितीय महायुद्ध में यहूदियों ने मित्र राज्यों को तनमनधन से सहायता भी पहुंचाई । इसी कारण ब्रिटेन को बाध्य हो कर फिलस्तीन में यहूदियों के राज्य की मांग स्वीकार करनी पड़ी । राज्य बना, पर मिली बंजर भूमि और साथसाथ पड़ोसी अरब राज्यों से भी युद्ध छिड़ा । बीचबचाव के कारण संधि हो गई, पर मनमुटाव और तनाव अब भी है । सीमांत पर मिस्र, सीरिया, ईराक और जोरडन के अरब राज्य पैंतरे कसे हुए हैं । इसराइली किसान कंधे पर बंदूक लादे खेती और बागवानी करते जा रहे हैं । इन पंदरहसोलह वर्षों में इसराइल ने हर क्षेत्र में विकास और उन्नति की है । जिन वीरान जगहों में धरती फटी थी और रेत की आंधियां चलती थी, आज वहां नाशपाती, अंगूर और माल्टा के बागबगीचे हैं । संसार के सभी देशों में इसराइल अपने माल्टा और अंगूर का निर्यात कर विदेशी धन कमा रहा है । इसराइल की इन्हीं झांकियों को देख कर हमें अपने देश के राजस्थान का खयाल हो आया । हम भी तो राजस्थान की मरूभूमि को उपजाऊ बना सकते हैं । यदि हमारी सरकार इसराइल में अपने विशेषज्ञ भेज कर आवश्यक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करे तो निश्चय ही हमें भी सफलता मिलेगी ।

इसराइल का कक्ष बहुत बड़ा तो नहीं था, फिर भी था करीने से लगाया हुआ । फिलस्तीन में ईसामसीह का आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जन्म हुआ था । उस समय की सड़कें, गांव, रहनसहन के तौरतरीके इतने स्वाभाविक ढंग से प्रदर्शित थे कि हम उसी युग में पहुंच गए ।

स्विट्जरलैंड के कक्ष में देखा आल्पस पहाड़ की गोद में बसा हुआ एक छोटा सा सुंदर गांव । यहां घड़ियों के पुर्जे बन रहे थे ।स्विट्जरलैंड घड़ियों का देश है और दुनिया में इस के लिए उस की साख बेजोड़ है । अमरीका और रूस भले ही अंतरीक्ष यान को बनाने में सफल हुए हों पर जहां घड़ियों का सवाल है, स्विस स्तर के बारीक पुर्जे वे अब तक नहीं बना पाए । स्विट्जरलैंड में यह उद्योग इतना अधिक उन्नत है कि विश्व प्रसिद्ध ओमेगा और रोलेक्स के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलगअलग पुर्जे गृहउद्योग के रूप में घरों में बनते हैं। कारीगर निर्भर योग्य है और मेहनती भी। खुशहाल स्विस गांवों को देख कर मन में यह स्वाभाविक जिज्ञासा उठती है कि हम कब ऐसे सुखी हो पाएंगे।

यू० एस० रबर कंपनी ने ८० फुट के घेरे का एक विशाल टायर बनाया था, इस में कुरसियों पर बैठा कर लोगों को चक्कर लगाते देखा। एक तो नौ रुपए शुल्क था, दूसरे चक्कर आने का भय। हम ने तो दूसरों को घूमते हुए देख कर ही संतोष कर लिया।

अंत में लिंकन कक्ष को देख कर हम ने मेले का कार्यक्रम समाप्त किया। हमारे देश में महात्मा गांधी का जो स्थान है, वह अमरीका में जार्ज वाशिंगटन का है और अब्राहम लिंकन के प्रति वहां की जनता में हमारे स्वर्गीय नेहरूजी की तरह श्रद्धा है।

लिंकन वकालत करते हुए राजनीति में आए और अमरीका के प्रेसिडेंट निर्वाचित हुए। अमरीकन नीग्रो के हित एवं अधिकार के समर्थन के कारण एक गोरे आततायी ने उन्हें गोली मार दी थी।

लिंकन कक्ष में उस समय की साजसज्जा के साथ ह्वाइट् हाउस का लिंकन का कमरा दिखाया गया था। हम ने देखा, लिंकन अपने दैनिक काम में व्यस्त हैं, विदेशों के प्रतिनिधि इकट्ठे हैं और उन के बीच लिंकन वह घोषणापत्र पढ़ कर सुना रहे हैं, जिस में नीग्रो नागरिकों को दासत्व से मुक्ति दे कर स्वाधीनता का अधिकार दिया था। वाल्टर डिजनी द्वारा प्लास्टर या मोम की बनी लिंकन की प्रतिमा देख कर कृत्रिम होने का आभास तक न होता था। बिलकुल स्वाभाविक रूप से लिंकन का अंग संचालन एवं होंठों का हिलना कम आश्चर्य जनक नहीं था। सब से बड़ी बात तो यह थी कि यह प्रतिमा लिखती थी और बोलती भी थी।

कौतूहल हम दबा न सके और हम ने कक्ष के प्रबंधक से इस के बारे में पूछा। पता चला कि इस बात की गहरी गवेषणा की गई कि इस आकृति के मानव की आवाज कैसी होगी, जिस प्रदेश के और जिस समय के लिंकन थे उस स्थान और समय की भाषा कैसी थी? इसी प्रकार वैज्ञानिक आधारों पर टेप रेकार्डिंग कर यंत्र को प्रतिमा के अंदर बैठा दिया गया है। अंग संचालन का नियंत्रण अलग से किया जा रहा है। विज्ञान जो न करे!

विश्व मेले देख कर हम लौट रहे थे। मैं यही सोच रहा था कि आज के युग में उद्योग व्यापार और राष्ट्र की गतिविधि के लिए प्रचार कितना अनिवार्य हो उठा है। इसी प्रकार के मेलों से विश्व के विभिन्न देशों के नागरिक जीवन, शिल्पउद्योग की स्थिति और प्रगति के बारे में अच्छी तरह से जानकारी हो जाती है। भारत आ कर अपने मित्रों एवं परिवार वालों को मैं ने केवल न्यूयार्क के विश्व मेले को देखने के लिए ही अमरीका जाने की सलाह दी। मेला इतना लोकप्रिय एवं सफल रहा कि इसे सन १९६५ में भी चालू रखा गया।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुनिया की समस्या सुलझाने वाला, खुद उलझा हुआ ग्रेट ब्रिटेन

अंगरेज अपने छोटे से देश को सिर्फ ब्रिटेन ही नहीं कहते बल्कि ग्रेट ब्रिटेन भी कहते हैं।

ब्रिटेन अब भले ही ग्रेट न रह गया हो पर था एक जमाना इस का भी। संपूर्ण पृथ्वी पर जगहजगह फैले हुए इस के विस्तृत साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। इस की सेना पृथ्वी के पांचों महाद्वीपों में सीना फुलाए, संगीनें ताने खड़ी रहती थी। इस के जंगी जहाजों के बेड़े सागर की लहरों पर शान से बेरोक-टोक घूमते थे। इस के व्यापारी जहाज देशविदेशों से सोनाचांदी, जवाहरात, धातु और कच्चा माल ला कर ब्रिटेन को दौलतमंद बनाते थे। वास्तव में ब्रिटेन महान था, ग्रेट था। उस का लोहा सभी मानते थे।

सन १९३० तक औसत भारतीय अंगरेज को देख कर भयभीत सा हो जाता था। यही कारण था कि तैंतीस करोड़ भारतीयों पर अंगरेजों ने अपनी एक लाख ब्रिटिश फौजों से लंबे समय तक शासन किया।

मैकाले के समय से ही शिक्षा के पाठ्यक्रमों में अंगरेजी की बड़ाई, उन के धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता आदि का इस ढंग से समावेश किया गया कि भारतीय विद्यार्थी अंगरेज, अंगरेजी और अंगरेजियत के अंधभक्त बनते गए। लोगों में यह धारणा बन गई कि रेल, डाकतार, पक्की सड़कें, नहरें, बिजली आदि अपने देश में अंगरेजों के बदौलत ही हम देख पाए। स्मिथ और मार्सडन का इतिहास पढ कर हम टीपू सुलतान, सिराजुद्दौला, चेतसिंह, महराज नंदकुमार आदि सब को कुचक्री, विलासी और डरपोक मानने लगे जब कि क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी का असली रूप हमारे सामने कभी भी नहीं आ पाया।

जो भी हो, सन १९२० से १९४७ तक गांधीजी के नेतृत्व में जो स्वंराज्य आंदोलन चला, उस से देश में राजनीतिक चेतना जाग उठी। जनसाधारण यह समझने लगा कि अंगरेजों की मंशा भारत की सेवा करना नहीं बल्कि शासन और शोषण करने की है।

दो महायुद्धों के कारण ब्रिटेन कमजोर हो गया और उस का खोखलापन सामने आ गया। इसी कारण अपनी रक्षा के लिए अंगरेजों को सिमटने के लिए बाध्य होना पड़ा। एकएक कर के भारत, लंका, बर्मा मलाया आदि सब अधीन देशों को उसे स्वतंत्रता देनी पड़ी। ग्रेट ब्रिटेन नाममात्र को ग्रेट रह गया।

बचपन से ही जिज्ञासा थी कि अंगरेज इतने बढ़े कैसे ? महाभारत की कथाओं में हम ने पढ़ा था कि भारत भी कभी संसार में श्रेष्ठ माना जाता था। अश्वमेध यज्ञ में हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ में विश्व के कोनेकोने से प्रतिनिधि आए थे, साथ में भेंट उपहार भी लाए थे। उस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समय के बाद हमारा पतन हमारी आपसी लड़ाई के कारण हुआ । उस के बहुत बाद भी छोटीछोटी बातों को ले कर कभी राठौर और बुंदेलों में, तो कभी सिसोदियों और तंवरों में, लड़ाइयां होती रहतीं । इतना ही नहीं बल्कि वे एकदूसरे को नीचा दिखाने के लिए मुगलों और पठानों से भी मिल जाते । लेकिन ठीक इस के विपरीत अंगरेज अपने देश में स्काट, नार्मन, ड़ेन, रोमन आदि को मिलाते गए और वे सब ब्रिटिश बन गए जब कि हम एक रक्त तो क्या, एक स्वर भी नहीं हो सके । इसी के चलते ब्रिटेन की सर्वांगीण उन्नति और हमारी गुलामी का इतिहास बना ।

ब्रिटेन के भूगोल को पढ़ने से बता चलता है कि इस की धरती की कोख में खनिज पदार्थों का प्राचुर्य तो है—पर अन्न कम है । खाद्यानों के लिए इसे सदैव विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है । छोटा सा द्वीपपुंज है, चारों ओर सागर की जलराशि से घिरा हुआ है । खाद्यान्न लाने के लिए जहाजों की जरूरत इसे हमेशा से रही है । स्वरक्षा और सुरक्षा के लिए भी जहाजी बेड़े को तैयार रखना पड़ता है । इन्हीं कारणों से, यह अपनी नौसेना को हर तरह से साधन-संपन्न और सुसज्जित रखता आया है ।

ब्रिटेन द्वारा साम्राज्य का विस्तार भी उस की एक आवश्यकता की प्रतिक्रिया थी । अपनी दलदली जमीन, बढ़ती हुई आबादी और खाद्यान्नों की कमी के कारण इस का विदेशों में फैलना स्वाभाविक था । यूरोप में यह सहज और संभव नहीं था क्योंकि वहां पहले से ही फ्रांस, आस्ट्रिया, जरमनी, स्पेन आदि पासपड़ोस में थे जिन की ताकत इस से कम नहीं थी । इसलिए अंगरेजों ने दूर के देशों में पैर फैलाने शुरू किए । यों तो फ्रांस, हालैंड, स्पेन और पुर्तगाल भी इस के प्रतिद्वंद्वी हो कर पहले से ही वहां जमे हुए थे मगर अंगरेजों की कूटनीति और धूर्तता के कारण वे पिछड़ गए । अंगरेजों का शासन यथार्थ रूप से सागर की लहरों पर हो गया । अंगरेज बड़े गर्व से लिखते और कहते कि बरतानिया लहरों पर राज्य करता है ।

भारत में आए थे व्यापारी बन कर । जहांगीर के दरबार में सर टामस रो ने घुटने टेक कर, दस्तबस्ता हो कर व्यापार के लिए कुछ सुविधाओं के लिए अर्जी मंजूर करवाई थी, पर थोड़े समय बाद ही जब पैर जमने लगे तो भारतीयों को आपस में एकदूसरे से भिड़ा कर हेस्टिंग्स की रवानगी तक देश के बहुत से हिस्सों पर इन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया ।

१७८२ में इन्हें अमरीका में जार्ज वाशिंगटन से करारी हार खानी पड़ी । तब से इन का सारा ध्यान भारत की ओर हो गया, क्योंकि कच्चा माल यहां से यथेष्ट मिल सकता था । यहां का धनवैभव आंखों में चमक पैदा कर रहा था । अमरीका में योजना विफल हो गई थी । कनाडा और अफरीका के देश उस समय तक अविकसित थे । भारत पारस्परिक फूट में बिखर रहा था इसलिए भारत ने ब्रिटेन को सर्वाधिक आकर्षित किया ।

मुगल साम्राज्य लड़खड़ा रहा था । उस के प्रांतीय गवर्नर या सूबेदार अथवा निजाम स्वतंत्र थे, जो आपस में लड़तेभिड़ते और संधि करते थे । राजस्व मिल नहीं रहा था । केंद्रीय शासन चलता कैसे ? शहंशाहे हिंदुस्तान शाहआलम का शासन लालकिले से पालम तक रह गया था । अंगरेज मौकेबेमौके किसी न किसी बहाने, कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष ले कर राजेनवाबों को आपस में लड़ाते रहते थे । इस प्रकार भारतीय राजनीति में इन का प्रवेश हो गया । पलासी के युद्ध में इसी तरह की कूटनीति से इन को आशातीत सफलता मिली । मराठों के साथ भी इन्होंने यही नीति अपनाई । परिणामस्वरूप इन्हें अपार धनराशि हाथ लगने लगी । अंगरेजी जहाज सोनाचांदी और जवाहरात के संदूकों को लादलाद कर लंदन पहुंचाने लगे ।

राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने तो भारत में ऐसे अत्याचार किए और लूट मचाई कि शरीफ अंगरेज आज भी इन का नाम सुन कर शर्मिन्दा हो जाता है । इसी प्रकार अंगरेजों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने एशिया और अफ्रीका के पिछड़े देशों चीन, स्याम, मलाया, ईरान, ईराक व मिस्र को भी न छोड़ा, यहां तक कि चीन को जबरन अफीम खिलाने के लिए युद्ध छेड़ दिया । इस तरह फटेहाल ब्रिटेन खुशहाल बन गया ।

सन १९१४ के प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटेन का दबदबा विश्व के सभी देश मानते थे । आज जिस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में डालर को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है और लेनदेन भी ज्यादातर इसी के माध्यम से होता है, उसी प्रकार प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटिश पाउंड को विश्व के बाजारों में मान्यता मिली हुई थी । उन दिनों अमरीका को अपने खनिज पदार्थों के अपार वैभव का पता तो चल गया था पर सैनिक शक्ति में वह ब्रिटेन, जरमनी और फ्रांस से पिछड़ा हुआ था इसलिए विश्व के रंगमंच पर प्रथम श्रेणी में नहीं था ।

युद्ध साढ़े चार साल तक चला । ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति और ब्रिटिश जनता के त्याग, बलिदान, साहस और देशप्रेम ने जरमनों की बड़ी शकित को धैर्यपूर्वक रोका । बहुत बड़ी संख्या में भारत के बहादुर जवान युद्ध में शहीद हुए । युद्धऋण और सहायता के नाम पर खरबों रुपए का सामान और सोना भारत से जबरन ब्रिटेन ले जाया गया । अजेय जरमनों को केवल भारतीय सेना और अमरीकी साधन ही रोक सके थे, वरना यूरोपीय फौजें तो घुटने टेक चुकी थीं । ब्रिटेन ने वादा किया कि युद्ध समाप्त होने पर वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देगा ।

युद्ध समाप्त हुआ । भारत को पुरस्कार मिला—जलियांवाला बाग का हत्याकांड और रौलट ऐक्ट । शोषण और दमन की चक्की जोरों से चल पड़ी ।

भारतीय जनता अपमान, दुख और क्षोभ से विकल हो उठी । दरअसल, यहीं से अंगरेजों की राजनीति और कूटनीति के कारण उन के प्रति भारतीयों के मन में संदेह बढ़ता गया और पारस्परिक संबंध बिगड़ते गए ।

जो भी हो, अंगरेजों में एक सब से बड़ा गुण रहा है, उन का स्वदेश प्रेम । दूसरे देशों के प्रति जहां अवसरवादिता और वादाखिलाफी की नीति उन्होंने बरती, वहीं अपने देश के प्रति ऊंची वफादारी और त्याग की भावना उन में सदैव रही है । ब्रिटिश, चाहे स्काट हों या इंगलिश, रोमन कैथोलिक हों या प्रोटेस्टेंट, हमारी तरह भाषा, प्रदेश या धर्म के कारण कभी भी बिखरे नहीं । यही वजह है कि विश्व में प्रजातंत्र की व्यवस्था यहां सर्वाधिक सफल रही है । ब्रिटिश संसद के प्रति इन की श्रद्धा और अनुशासन को दूसरे देशों में उदाहरणस्वरूप माना जाता है ।

अंगरेजों से मेरा १९२५ से ही घनिष्ठ संबंध रहा है । मैं ने यह महसूस किया कि राजनीतिक दांवपेच में वे भले ही दूसरे देशों के प्रति कुटिल हों, पर व्यापारिक व्यवहार में वे अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक निर्भर योग्य हैं । घटिया माल दे कर ग्राहक को धोखा देने की बात शायद ही कोई ब्रिटिश फर्म सोचेगी । इस ढंग के व्यवहार से राष्ट्र की प्रतिष्ठा में बट्टा लगता है, इस का उन्हें बड़ा ध्यान रहता है ।

सन् १९३५ तक हमारे यहां महीन कपड़े ज्यादातर ब्रिटेन के मेनचेस्टर से या लंकाशायर से आते थे । इनके अर्ज, माप और किस्म में किसी प्रकार की शिकायत का मौका नहीं आया । भारत में जो अंग्रेजी फर्में आयात का व्यापार करती थीं, वे अपने लाभ में से बैनियन, दलाल, मुकादम और दुकानदार को भी हिस्सा देतीं थीं इसलिए इनके प्रतिष्ठानों के प्रति सैकड़ों व्यक्तियों की शुभकामनाएं रहतीं थीं और उनको हर प्रकार का सहयोग उनसे मिलता था । जब से भारतीयों के हाथ में कारोबार आया, उन्होंने सबको हटाकर सब काम स्वयं करना शुरूकर दिया ।

मैं ऐसे कई अंग्रेजों को नजदीक से जानता हूं जिन्होंने अवकाश ग्रहण कर भारत से स्वदेश जाते समय कारोबार का अपना हिस्सा अपने भारतीय सहयोगियों को अत्यंत उदार शर्तों पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेच दिया। एक लंबी अवधि तक ब्रिटिश फर्म में काम करने के कारण बहुत से अंग्रेज मेरे मित्र हो गए थे। वे बराबर लंदन आने के लिए मुझे निमंत्रण देते। अपने देश का वर्णन करते समय उनके चेहरे पर एक प्रकार की चमक आ जाती थी। उनके स्वर में गर्व की मधुर गूंज भी रहती थी।

मेरी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति शुरू से ही रही है, इसलिए इच्छा होती थी कि यूरोप देख लूं पर सन् १६३८ तक यह संभव न हो सका। इसके बाद द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और सारी संभावनाएं समाप्त हो गईं।

इस समय तक ब्रिटेन और हमारे पारस्परिक संबंध न केवल बिगड़ते ही गए बल्कि उनमें कटुता भी बढ़ती गई। अपनी इच्छा के खिलाफ हमें ब्रिटेन के पक्ष में द्वितीय महायुद्ध के दौरान अपनी फौज और प्रचुर युद्ध सामग्री भेजनी पड़ी। दिल से हम ब्रिटेन की हार की मनौतियां मानते थे। प्रत्येक रात्रि हम लोग बर्लिन रेडियो पर ब्रिटेन की हार और जर्मनों की जीत की खबरें सुनते और अपने मित्रों और परिवार में उसकी चर्चा बड़े उत्साह से करते थे। देश के अधिकांश लोग हिटलर को भारत का हितैषी, चरित्रवान और बहादुर समझते थे। शत्रु का शत्रु सदैव मित्र हो जाता है।

अंग्रेजों की कूटनीति और हिटलर के दंभ के कारण इस बार भी अमरीका व रूस ब्रिटेन के पक्ष में युद्ध में उतर पड़े। अमरीका के पास अटूट साधन और सामान था, उसकी फौजें भी ताजादम थीं। उधर जरमनी थक गया था। इसलिए लम्बे समय तक जरमन टिक न पाए। सन् १६४५ में उनकी फौजों ने हथियार डाल दिए। मित्रशक्तियों की जीत हुई, ब्रिटेन विजयी हुआ। पर जीत उसे मंहगी पड़ी। वह जर्जर हो गया। जीत कर भी हार गया। विश्व राजनीति में प्रथम शक्ति का पद अब मिला अमरीका व रूस को। महाजन ब्रिटेन, अमरीका और भारत का कर्जदार बन गया। सन् १६४७ में उस पर हमारा चौदह अरब रुपयों का कर्ज था।

सन् १६४६ से १६५० तक संकट और आभाव में रहकर ब्रिटेन ने जिस प्रकार अपना पुनर्गठन किया, वह सभी देशों के लिए और खासतौर से हमारे लिए अनुकरणीय है। स्वय अपने को अभाव में रखकर विदेशों में माल निर्यात कर उन्होंने न केवल कर्ज चुकाया बल्कि आज बहुत से देश उनके कर्जदार हैं। अपने अधीन भारत से उन्होंने कर्ज लिया, स्वाधीन भारत का कर्ज चुकाया और उसे फिर कर्ज दिया।

उन्होंने महीने में चार औंस मक्खन, छः औंस चीनी, १५ अंडे और अपेक्षित खुराक से कम चावल और आटे के राशन पर शांति और धैर्य्य से वर्षों गुजार दिए। किसी ने सरकार से न शिकवाशिकायत की और न इस कठोर व्यवस्था की आलोचना ही। अनुशासन और समता की भावना का इसी से अन्दाजा लग जाता है कि किसी धनी व्यक्ति ने अधिक मूल्य देकर दूसरे के हिस्से को हथियाने की कोशिश नहीं की। यही वजह है कि यूरोप के सभी देशों में जब काले बाजार की कालिमा छाई हुई थी, ब्रिटेन में उसका नामोनिशान तक न था।

मुझे सन् १६५० में पहली बार लंदन जाने का मौका मिला। उस समय मैंने देखा कि लंदन के अधिकांश हिस्से खंडहर हो रहे थे। जरमनों की बमबारी से मकान, अस्पताल, गिर्जे सभी ध्वस्त हो गये थे। अंगरेज गंभीर था पर उसके चेहरे पर उदासी के साथ दृढ़ता भी थी। उन दिनों वहां विदेशियों को तो पूरी खुराक मिलती थी पर अंगरेज नागरिक आंशिक खुराक पर ही संतुष्ट थे। मकान, गिरजे और दुकानें अभी भी टूटी फूटी थीं। पांच वर्षों के लंबे समय में भी इनकी मरम्मत नहीं हो सकी, यह मेरे लिए आश्चर्य का विषय था। पूछने पर उत्तर मिला : "इन पर बाद में ध्यान दिया जाएगा। सबसे पहले निर्यात को हम संगठित करना चाहते हैं इसलिए कारखानों और जहाजों पर ध्यान दिया जा रहा है।"

उन दिनों लंदन की सड़कों पर स्वस्थ और जवान अंगरेज बहुत ही कम दिखाई पड़ते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज्यादातर युद्ध में काम आ चुके थे या घायल होकर बेकाम हो गए थे। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या काफी अधिक थी।

पेट और शरीर की भूख मिटाने के लिए माताएं अपनी जवान बेटियों के लिए साथियों की तलाश में रहतीं थी। कभी-कभी तो समाचार पत्रों में इस ढंग के विज्ञापन भी पढ़ने को मिलते थे कि सुंदरी युवती को धनी विदेशी यात्रियों की सेवा के लिए गाइड अथवा निजी सचिव के रूप में काम चाहिए, जो उनके साथ विदेशों की यात्रा के लिए भी राजी हैं। पर यह सब कुछ था व्यक्तिगत सीमा तक। राष्ट्रीय मर्यादा और संघर्ष में सब एक से थे। कहीं भी चूके नहीं थे।

विदेश यात्रा का पहला मौका था। स्विट्जरलैंड से सीधे लंदन गया। स्विट्जरलैंड का जीवन व्यवस्थित और शांत देखा। युद्ध से वह बिगड़ा नहीं था, बल्कि दूसरे देशों को ऊँचे दामों में वस्तुएं बेच कर समृद्ध हुआ था। जब लंदन पहुंचा तो वहां का वातावरण ही बदला हुआ नजर आया। लगा, लोग चलते नहीं बल्कि दौड़ते थे। किसी को बात करने या सुनने का समय नहीं। सबसे ज्यादा मुझे वहां की यातायात और परिवहन की व्यवस्था ने प्रभावित किया। हजारों दो तल्ले की बसों के अतिरिक्त शहर में भूगर्भ ट्रेनों का जाल सा बिछा है। कार्यकाल के समय प्रतिमिनट ट्रेनों का आवागमन, सवारियों का अनुशासन और समय की पाबन्दी ने मुझे विस्मय में डाल दिया। अस्सी लाख की आबादी के घने बसे शहर में लोगों को अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए कहीं भी अनुशासन भंग करते नहीं देखा। सभी कुछ मानों यंत्रवत चल रहा हो।

अभाव से स्वभाव विगड़ता है, सभी देशों और व्यक्तियों पर यह बात लागू होती है, मात्रा में कमी वेसी का अंतर भले ही हो। रूस में पिछले पचास वर्षों से साम्यवादी व्यवस्था होने के वावजूद अभी तक काला बाजार है। इसी तरह किसी देश में वेश्यावृत्ति, कहीं पाकटमारी और गुंडागर्दी है तो कहीं ठगी। यूरोप में स्कैंडिनेविया के देशों—डेनमार्ग, फिनलैंड, स्वीडन, नार्वे और स्विट्जरलैंड को छोड़कर बाकी सभी देशों में समाजविरोधी तत्व न्यूनाधिक मात्रा में हैं। ब्रिटेन भी इससे मुक्त नहीं। गुंडागर्दी और पाकेटमारी यहां है पर और देशों से कम। दक्षिणी यूरोप में, जहां विदेशियों को वेहिसाब ठगा जाता है, वहां ब्रिटेन में अंगरेज विदेशियों के प्रति सदैव सतर्क रहते हैं ताकि उनके राष्ट्र का चित्र दागी न हो जाए।

लंदन के पुलिस वालों को देखकर पता चलता है कि इनके पुलिस वाले दंडधारी यमदूत नहीं बल्कि नागरिकों के सच्चे साथी हैं। हमारे यहां के पुलिस वालों में और उनमें जमीनआसमान का अंतर है। अपने यहां के कानून के रक्षक किस ढंग से और किस हद तक गैरकानूनी कार्यवाही करते हैं, इसका परिचय हमें प्रेमचंद से लेकर अब तक के साहित्य में मिलता है।

लंदन में कांस्टेबिल दिखाई पड़े। सबल और स्वस्थ छः फुटे जवान, जो बड़े ही विनम्र, प्रशिक्षित और कर्तव्यनिष्ठ लगे। विदेशियों को हर तरह की सहायता देने को वे हमेशा तत्पर रहते हैं। बच्चों के तो वे खास दोस्त कहे जा सकते हैं। सड़क, मुहल्ले, प्रसिद्ध मकान और व्यक्तियों की जानकारी के लिए वे चलती फिरती डायरेक्टरी हैं।

मैं किसी सड़क को खोजता इधरउधर जा रहा था। पास आकर भद्रतापूर्वक एक कांस्टेबिल ने अभिवादन किया और कहा, "क्या मैं आपकी कुछ सहायता करूं ?"

मैंने सड़क का नाम और मकान का नम्बर बताया। उसने बड़े शाइस्ता ढंग से मुझे सही और आसान रास्ता बता दिया।

चूंकि यह मेरी पहली विदेशयात्रा थी, अतः व्यक्तिगत अनुभव तो कुछ था नहीं। देश से चलते समय मित्रों ने सलाह दी थी कि कम कपड़े साथ रखे जाएं ताकि सफर हल्का रहे। सलाह ठीक थी पर व्यावहारिक नहीं हो सकी, क्योंकि लंदन का मौसम दिन में कई बार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बदलता है और हल्की बूंदाबांदी होती ही रहती है।

कुछ कमीजें और हैट खरीदने के लिए मैं सेल्फिज के प्रसिद्ध स्टोर में गया। यह आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर स्थित है। सुई से ले कर हाथी तक बेचनेवाली दुकानों में इस की गिनती है। खानेपीने, विश्राम, किताब, पढ़ने, रेडियो और टेलीविजनसुननेदेखने की सारी सुविधाएं यहां सहज उपलब्ध हैं। हजारों आदमी इस स्टोर के विभिन्न भागों में घूमते रहते हैं। स्टोर कई मंजिलों का है। मैं ने सभी मंजिलों में घूम कर पूरी दुकान का चक्कर लगा दिया। रेडिमेड कपड़ों के दाम हमारे यहां से अधिक नहीं थे। ब्रिटेन में चीजों पर सेलटैक्स अवश्य बहुत ज्यादा है पर पासपोर्ट दिखाने पर विदेशियों को इस की छूट हैं।

भूख लग आई थी इसलिए वहीं रेस्तरां में नाश्ता कर लिया। ऐसे डिपार्टमेंटल स्टोरों में रेस्तरां के चार्ज अपेक्षाकृत कम रहते हैं इसलिए बहुत से लोग केवल जलपान करने के लिए यहां आ जाते हैं। यहां पहली बार स्वचालित सीढ़ियों पर चढ़ने का मुझे मौका मिला। मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। अब तो हमारे देश में भी दिल्ली के रेलवे स्टेशन और कलकत्ता के रिर्जव बैंक के भवन में ऐसी व्यवस्था हो गई है।

मुझे एक अंगरेज मित्र से मिलना था, कलकत्ता से ही उन से पुराना परिचय था। वह रिटायर होकर कई वर्षों से लंदन में काम कर रहे थे। वह बड़े प्रेम से मिले। भारत में जो अभिमान की झलक उन में पायी थी, उसका यहां सर्वथा अभाव था। भारत के पुराने मित्रों के बारे में वह विस्तारपूर्वक पूछने लगे। मनुष्य को अतीत की स्मृतियों की परते खोलने में बड़ा ही रस आता है दूसरे दिन उन्होंने नाश्ते पर मुझे अपने घर आमंत्रित किया।

शहर से लगभग आठ मील दूर उन का छोटा सा फ्लैट था। उन के पास न कोई नौकर था, न आया। सब काम पतिपत्नी स्वयं अपने हाथों कर रहे थे। कलकत्ता में कई बार उन के यहां जाने का मौका मिला था। वहां उन के पास पांचछः नौकर थे। यहां घरेलू काम सब हाथ से करने पड़ते हैं। दूसरे कई परिचित अंगरेजों के बारे में पूछने पर पता चला कि कोई सूअरों व अडो का काम कर रहे हैं तो कोई ट्रक चला रहा है।

पता ले कर दूसरे दिन सुबह ट्रेन से मिस्टर जॉन के गांव पहुचा। पतिपत्नी दोनों मजदूरों से मैले कपड़े पहने मुर्गियों के बाड़े को साफ कर रहे थे, अंडे सहेज कर बिक्री के लिए टोकरों में रख रहे थे। मुझे अप्रत्याशित रूप में देख कर बड़े ही प्रसन्न हुए। पास में ही छोटा सा साफसुथरा घर था। वे मुझे वहां ले गए और बहुत अच्छा खाना खिलाया। शाम को उन्होंने अपनी मोटर से स्टेशन पहुंचा कर मुझे छोड़ा। मैं जॉन के साथ बहुत दिनों तक कलकत्ता में काम कर चुका था पर इस समय वह जॉन नहीं था जो गुस्सा होने पर मुझे धमका देता था।

शिष्टता के नाते यहां बड़ेबड़े दुकानदार, होटल वाले या पुलिस वाले विदेशियों को 'सर' कह कर संबोधित करते हैं। जब अंगरेजों के द्वारा मुझे 'सर' कह कर संबोधित किया गया तो मेरे अंदर गुदगुदी सी होने लगी। पराधीन भारत में हम अंगरेजों को बातबात में 'सर' कहने के आदी हो गये थे। हालत यहां तक थी कि मेरे कई भारतीय मित्र अपने जूट के काम की देखभाल के लिए नियुक्त अंगरेज कर्मचारियों को भी स्वाभाववश 'सर' कह कर संबोधित करते थे।

दूसरे दिन सुबह नाश्ते के बाद शहर का नक्शा और गाइडबुक जेब में रख घूमने निकल पड़ा।

लंदन का सेंट पाल कैथेड्रल विश्वप्रसिद्ध है। यों तो इसे लगभग सन ६०० में बनाया गया था पर कई बार आग लग जाने के कारण इस का पुनर्निर्माण होता रहा है। प्रोटेस्टेंट ईसाइयों का यह सब से बड़ा केंद्र माना जाता है। ईसाइयों के इस संप्रदाय की स्थापना प्रसिद्ध जरमन चिंतक मार्टिन लूथर ने की। प्राचीन-पंथी कैथोलिकों के गुरुडम और आडंबर के विरोध में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस ने नवीन विचारों और संस्कारों को प्रस्तुत किया था।जरमनों के लिए यह नाज की बात है। मगर युद्ध की ज्वाला में धार्मिक या ऐतिहासिक मान्यताओं की गुंजाइश कहां ! प्रोटेस्टेंट जरमनों की बमबारी से सन १९४१ में इस विशाल गिरजे का बहुत सा भाग ध्वस्त हो गया था।

ब्रिटेन में राष्ट्रीय मान के लोगों को यहां समाधिस्थ कर गौरव प्रदान किया जाता है। यहां कई सम्राट, मनीषी, साहित्यकार और राजनीतिज्ञों की समाधियां हैं। ऊपर के गुंबद से लंदन का बहुत बड़ा भाग साफ दिखाई देता है। इस की ऊंचाई ३२५ फुट है, अर्थात कुतुबमीनार से १०० फुट अधिक।

रविवार के कारण हजारों स्त्रीपुरुष प्रार्थना के लिए आ रहे थे।मुझे ऐसा लगा कि हमारे यहां भी महज दिखावे के लिए व्यक्तिगत मेलमिलाप के लिए जिस प्रकार आज कल लोग मंदिरों में जाते हैं, वैसा ही कुछ ढंग यहां का भी है। महिलाओं के साथ उन की जवान बेटियां भी थीं, जिन्हें शायद इसलिए सजाकर साथ लाया गया था कि ईसा मसीह की दया से किसी युवक की निगाह पड़ जाए तो कन्याभार से मुक्ति हो। मेरी भी इच्छा हुई कि मैं भी चर्च की प्रार्थना में शामिल हो जाऊं। उपासना के सभी स्थान तो एक से ही हैं। पर पता नहीं क्यों झेंप सा गया। शायद लंदन में नयानया आया था इसलिए या फिर मेरे भारतीय संस्कारों ने मुझे रोक दिया। धीरेधीरे उस मेले से मैं हट गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्वाधिक सम्मान केवल सम्राटों को ?

लंदन—१

संसार के सभी बड़े शहरों की अपनीअपनी विशेषता होती है। कोई ऐतिहासिक है तो कोइ आधुनिक। किसी का धार्मिक महत्व है तो कहीं चहल-पहल और चुहल है। लंदन में इन सभी बातों का समावेश है। मुझे ऐसा लगा, मानों इस का अपना एक निजी सौष्ठव है जो न मास्को में देखने में आया न पेरिस में। सेंट पाल्स केथेड्रल कल देख चुका था। आज ब्रिटेन का दूसरा बड़ा गिरजा और मठ वेस्टमिंस्टर एबे देखने गया। हजारों वर्ष पहले मठ या विहार के रूप में यह बना था। बाद में इस में परिवर्तन होते गए। फिर भी लंदन की सब से पुरानी इमारतों में यह है।

ईसाइयों में अपने एबे के प्रति बड़ी श्रद्धा रहती है। दरअसल, हमारे यहां के मठ या बौद्ध विहारों की ही तरह यह भी साधुओं का आवास है। अंतर केवल इतना है कि हमारे मठ या विहार ईसाइयों के एबे की तरह भव्य नहीं होते। एबे के बड़ेबड़े ऊंचे कक्ष और यहां के ईसाई संन्यासियों या साधुओं के पहनावे और चाल में हमें सहज और सरल भाव नहीं लगा जिस का होना वैरागियों या त्यागियों के लिए अपेक्षित है। फिर भी लगन, निष्ठा और कठोर अनुशासनप्रियता के कारण इन की मान्यता इस वैज्ञानिक युग के जनसमाज में भी है।

वेस्टमिनिस्टर एबे का प्रभुत्व इंगलैंड के इतिहास और उस की राजनीति पर मध्य युग तक रहा है। शासको को सदैव यहां के प्रधान धर्मयाजक की स्वीकृति ले कर शासन अथवा संविधान में परिवर्तन करना पड़ता था। उन के व्यक्तिगत जीवन और वैवाहिक संबंधों पर भी यदि एबे के कार्डिनल की सहमति नहीं मिलती थी तो स्थिति बड़ी समस्यापूर्ण हो जाती थी। जनता की दृष्टि में कार्डिनल देश के सर्वोच्च धर्माधिकारी थे। उधर सम्राट देश के शासक थे। सत्ता के लिए आपस में इन के संघर्ष होते रहते थे। हेनरी अष्टम के राज्यकाल में दोनों के आपसी संबंध बहुत कटु हो गए थे पर उस ने तलवार के सहारे समस्या सुलझा ली। कार्डिनल बैकेट की गर्दन उतरवा दी गई थी।

यूरोप में गाइड बहुत महंगे पड़ते हैं इसलिए टोलियों में यात्री दर्शनीय स्थानों को देखने जाते हैं। मैं अकेला था इसलिए गाइड साथ नहीं लिया। फिर भी मुझे असुविधा नहीं हुई क्योंकि वहां के सहायक पादरी सब प्रकार की जानकारी दे रहे थे। प्राचीन गोथिक शैली पर बना हुआ यह भवन बहुत ही भव्य है। इस के प्रति ब्रिटेन के लोगों में इतनी श्रद्धा है कि सेंट पाल गिरजे की तरह यहां भी राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों को समाधि दे कर उन की स्मृति को गौरवान्वित किया जाता है। पिछले ६०० वर्षों में सैकडों की संख्या में ब्रिटेन के सम्राट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेनापति, वैज्ञानिक यहां दफनाए गए हैं । यहीं मैं ने हार्डी, लिटन, थेकरे, विलियम स्काट आदि प्रसिद्ध लेखकों की कब्रें देखीं । कवियों में किपलिंग, ब्राउनिंग, टेनिसन भी चिरनिद्रा में यहां सोए हुए हैं । मुझे पढ़ने का शौक वर्षों से रहा है । जिन प्रिय लेखकों को इतने समय से पढ़तासुनता आ रहा था, उन सबों की समाधि एक ही स्थान पर देख कर मन नाना प्रकार की भावनाओं से भर गया । श्रद्धानत हो कर उन की समाधियों पर अपने साथ लाए फूल चढ़ाए ।

मेरा खयाल था कि ब्रिटेन में सर्वाधिक मान सम्राटों के बाद राजनीतिज्ञों को मिलता रहा है । वेस्टमिंस्टर एबे देखने पर इस भ्रम का निवारण हुआ । राजनीतिज्ञ नेताओं से भी कहीं अधिक प्यार और इज्जत ब्रिटेन में लेखकों, कवियों और सैनिकों को दी जाती रही है । यही कारण है कि वहां की धरती ने जहां शेक्सपीयर, बर्नार्ड शा जैसे साहित्यक पैदा किए वहीं वेलिंग्टन और नेलसन जैसे रणबांकुरे भी ।

पार्लियामेंट हाउस वेस्टमिंस्टर के पास ही है । उन दिनों सत्र चल नहीं रहा था इसलिए यहां बैठक देखने की इच्छा दबी रह गई । बहरहाल, इस पर लगी विश्वविख्यात विशाल घड़ी 'बिगबेन' को देख कर ही संतोष कर लेना पड़ा । पार्लियामेंट भवन भी गोथिक वास्तु शैली पर बना है । आकर्षक और प्रभावपूर्ण लगता है पर हमारे भारतीय संसद भवन की तरह बड़ा और शानदार नहीं ।

दोपहर हो आई थी । लंच के लिए इंडिया हाउस चला गया । यों तो लंदन में भारतीय ढंग का निरामिष भोजन कई जगह मिल जाता है, पर सस्ते और बढ़ियां भोजन की व्यवस्था इंडिया हाऊस (भारतीय दूतावास) में ही है । लंच के समय भारतीय यहां काफी संख्या मे मिल जाते हैं । इन की संख्या इतनी अधिक है कि मिलने पर एकदूसरे के प्रति उतने आकृष्ट नहीं होते जितने कि विदेशों में दूसरी जगह ।

इन दिनों उत्तर भारत में जिस तरह इडली, डोसे के प्रति लोगों की रुचि बढ़ती जा रही है उसी तरह यहां भी दक्षिण भारतीय इडली, डोसे को मैं ने प्रचलित पाया । भारतीयों के अलावा यूरोपीय भी स्वाद बदलने के लिए यहां आते हैं । मिरचों के झाल से उन का 'शीशी' करना देखते ही बनता है । सांभर और रसम के साथ मैं ने कई दिनों बाद पेट भर खाया । बिल बना लगभग दस रुपए का । स्वदेश के हिसाब से यह ऊंचा जरूर था मगर यहां के कोहेनूर, ताज आदि रेस्टोरेंटों के मुकाबले बहुत कम था ।

लंदन में तीन दिन रहने का प्रोग्राम था । अतएव इस छोटी सी अवधि में इस महानगरी के दर्शनीय स्थान देखना चाहता था । खाना खा कर टेम्स के किनारे ७०० वर्ष पहले बने हुए टावर आफ लंदन को देखने गया । टेम्स का नाम स्कूली जीवन से ही सुनता आ रहा था । अंगरेज मित्रों से भी इस की चर्चा सुनी थी । गंगा, गोदावरी या यमुना के प्रति हमारी जो भक्ति भांवना है, भले ही उस प्रकार की भक्ति टेम्स के प्रति अंगरेजों में न हो फिर भी उन में पंजाबियों के दिल जैसा वही प्यार है जो झेलम के जल में मुसकराता है । यूं, औसत भारतीय इसे देख कर जरूर कह देगा, 'नाम बड़े दर्शन छोटे !' हमारी गंगा से इस की लंबाई तो बहुत कम है ही, चौड़ाई भी चौथाई से अधिक न होगी । शायद गहराई ज्यादा है क्योंकि सैकड़ों छोटेबड़े जहाज इस में चल रहे थे ।

टावर आफ लंदन के बारे में ब्रिटिश इतिहास तथा उपन्यासों में इतनी बार जिक्र आ चुका था कि देखने पर कुछ नयापन नहीं लगा । फिर भी टेढ़े-मेढ़े पत्थरों की बनी मोटी दीवारें, जंग खाए लोहे से जड़े लकड़ी के बड़ेबड़े फाटकों से अंदर गुजरते समय ऐसा लगता है कि बीते इतिहास की कहानी कहने के लिए ये दोनों ओर खड़े हैं । अंदर के सीलनभरे कमरों से आती हुई हवा कानों में न जाने कितनी आह, चीखपुकार भरने लग जाती है । इसी एक स्थान पर ब्रिटेन के सैकडों बड़ेबडे सामंतों के सिर काटे गए । सर टामस मूर, सम्राट अष्टम हेनरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की दो रानियां, महारानी एलिजाबेथ के प्रेमी एसेक्स के अर्ल, न जाने और भी कितने ही। राजद्रोह और देशद्रोह के अपराधी दंडित हों तो कारण समझ में आ सकता है पर आज जो राजारानी का कृपाभाजन है वही कल कोपभाजन बन कर सूली पर चढ़ा दिया जाए तो उन की कृपा से दूर रहने में ही कल्याण है। शाही मुहब्बत की कीमत बहुत ही महंगी पड़ी है, हर देश और हर समय में। जनता की निंदा की बिना परवा किए जिस सिर को गोद में रख कर न जाने कितनी रातें महारानी एलिजावेथ ने गुजारी थीं, उसी लार्ड एसेक्स के सिर को प्रेयसी रानी ने कुल्हाड़ी से कटवा दिया। वही कुल्हाड़ी और सिर रखने की अर्ध चंद्राकार लकड़ी की वेदी कितनी जानें ले कर भी वहां निर्जीव पड़ी है। न जाने क्यों मुझे भय और कंपकंपी सी हो आई। मैं उस स्थान से हट आया।

यहां दूसरे बहुत सारे तरहतरह के औजार भी देखे जिन से अपराधियों को दंड दिया जाता था। बहुत सी कालकोठरियां भी देखीं, जिन में कैदी न तो बैठ सकता है और न लेट ही सकता है। यहां तक कि सीधे खड़ा होना भी संभव नहीं। इन्हें देख कर रोमांच हो आता है। मैं यही सोचने लगा कि संसार के सामने आखिर किस बूते पर अंगरेज अपने को सभ्य कहते रहे हैं। बड़ा ताज्जुब इस बात पर होता है कि अपने आराध्य ईसा मसीह को वे सूली पर बिंधा हुआ पूजते रहे हैं। शारीरिक यातना देना बहुत बड़ा पाप है, इस का बड़ीबडी तसवीरों, साहित्य और रंगमंच द्वारा हजारों वर्षों से ये प्रचार करते आ रहे हैं। फिर क्रास से भी कहीं अधिक यंत्रणादायक इन अस्त्रों का वे भला किस प्रकार प्रयोग करते होंगे!

उन अंधेरी, सड़ी कोठरियों से बाहर आया। पास ही एक स्टाल पर जल्दी से जा कर एक लमनेड लिया। यहीं के एक बुर्जनुमा कक्ष में ब्रिटेन के सम्राटों के राजमुकुट, आभूषण और जवाहरात संग्रहीत हैं। इन्हें देख कर अंदाजा लगाया जा सकता है कि सदियों तक ब्रिटेन किस तरह भारत, एशिया और अफ्रीका से वेशुमार धनदौलत लूटता रहा है। जिस ग्रेट ब्रिटेन की जमीन अपने बेटों के मुंह में भरपेट दाना तक देने में असमर्थ है, वहां यह बेशुमार दौलत कैसे आई होगी? इस का अंदाज तो भारत, बर्मा और अफ्रीका के देशों की कराहतीं जर्जर काया से ही लग सकता है।

ब्रिटिश ताज में लगाया गया विश्व का सब से बड़ा और वजनी हीरा 'स्टार आफ अफ्रीका' देखा। इस का वजन ५१६ कैरेट है। इस के पास ही हमारा चिरपरिचित कोहनूर भी दमक रहा था जिस की चमक के सामने दूसरे हीरों की आबरू फीकी पड़ रह थी। वहां तरहतरह के छोटेबड़े मुकुट रखे थे जिन में नाना प्रकार के अनमोल रत्न लगे थे। मगर कोहेनूर देखते ही मेरा मन अपने देश की १५० वर्ष पहले की बातों पर चला गया।

पंजाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह की सद्यःविधवा रानी झिंदा और उस के मासूम बच्चे दिलीपसिंह की तसवीर आंखों के सामने आ गई। बेबसी की हालत में इन से जबरन कोहनूर छीना गया था। महाराजा रणजीतसिंह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को उसके बुरे दिनों में सहायता की थी। इस उपकार का उत्तर दिया गया उन का राज्य हड़प कर, कोहेनूर लूट कर और उन के अबोध बच्चे को लंदन ले जाकर शिक्षित करने के बहाने ईसाई बना कर।

बाहर निकल आया और टावर ब्रिज पर खड़ा हो कर टेम्स का दृश्य देखने लगा। पुल के नीचे मालवाही छोटेछोटे बोट खड़े थे। इन में मैले कपड़े पहने हुए मल्लाह शोरबे, मछलियां और मांस के बड़ेबड़े टुकड़ों के साथ मोटीमोटी रोटियां खा रहे थे। मैं मन ही मन इस विडंबना पर मुसकरा उठा कि पास ही टावर आफ लंदन में बेशुमार दौलत को कैद कर अंगरेज अपने गौरव को बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं जबकि करीब में उन्हीं के देशवासी इस अभावपूर्ण जिंदगी के लिए मजबूर हैं। विषमता सारे संसार में है, भ्रातृत्व और समता का दम तो जमाने के फैशन के मुताबिक भरा जाता है। इस के झूठे प्रचार की होड़ में जो जीतता है वही सबसे अधिक सभ्य, उदार या समाजवादी समझा जाता है।

दिन भर पैदल घूमता रहा। पैर दुखने लगे। टावर देखने पर मन कुछ खिन्न हो गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सोचा, 'भारत में अंगरेजी फिल्में तो आती रहती हैं, क्यों न यहां का रंगमंच देख लिया जाए'। गाइड बुक में देख कर एक थियेटर के साढ़े छः बजे वाले शो में जा बैठा।

कामिक ड्रामा था। काफी चुहलबाजी थी, जिसे हमारी भारतीय दृष्टि से अश्लील कहा जाएगा। दर्शक मजा ले रहे थे, तालियां बज रहीं थी, पहले अंक का दृश्य सामने आया। पत्नी के प्रेमी को पति ने संदूक में छिपा पकड़ा है और उसे पीट रहा है। पत्नी पास में सहमी सी खड़ी है। अधिकांश दर्शक महिलाएं उस प्रेमी के पक्ष में आहें भरने लगीं। उनमें से कुछ के पति उनके पास ही बैठे चुपचाप देख रहे थे। मैं लक्ष्य कर रहा था कि आज के यूरोपीय समाज में स्वच्छंदता किस हद तक जा पहुंची है। अभिनय रंगमंच की सज्जा और आरकेस्ट्रा का स्तर अच्छा था, इसमें संदेह नहीं।

दूसरा दिन लंदन के म्यूजियम देखने के लिए सुरक्षित रखा। यहां बहुत से संग्रहालय हैं। इसलिए सुबह जल्दी ही नाश्ता कर सबसे पहिले ब्रिटिश म्यूजियम गया। यह विश्व के चार बड़े संग्रहालयों में माना जाता है। प्राचीन काल से अब तक के इतिहास के नाना प्रकार के साक्षी यहां बहुत हीं करीने से रखे गए हैं। सर हैंस सैलोने नाम के एक करोड़पति डाक्टर का सन् १७५३ में देहान्त हुआ। मृत्यु से पूर्व उसने अपनी सारी चल अचल संपत्ति, ऐतिहासिक संग्रह और पचास हजार पुस्तकों को, देश को इस शर्त पर दे दिया कि एक बड़ा म्यूजियम स्थापित किया जाए।

अपनी संतान के भरण पोषण के लिए उसने केवल दो लाख रुपए सरकार से लिए। यहीं से ब्रिटिश म्यूजियम की नींव पड़ी है। आगे चल कर यह विश्व का सर्व मान्य संग्रहालय बन गया। यहां हजारों व्यक्ति प्रतिदिन शिक्षा और ज्ञानवर्धन के लिए आते रहते हैं। पृथ्वी के प्रागैतिहासिक युग से आज तक मानव ने किस प्रकार अपना विकास किया है, इसका सिलसिलेवार दिग्दर्शन मूर्तियों और यंत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

जिज्ञासुओं व अन्वेषकों की तो यह एक प्रकार से तीर्थ स्थली है। दिन के साढ़े ग्यारह बजे से तीन बजे तक विद्वान प्रोफेसरों द्वारा विभिन्न विषयों पर प्रतिदिन व्याख्यान होते हैं। इसे अच्छी तरह देखने के लिए महीनों का समय चाहिए। मेरे पास कम समय था, फिर भी दो एक घंटे में जो कुछ देख पाया उससे मुझे कुछ जानकारी मिली।

प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय (नेचुरल हिस्ट्री म्यूज्यिम) में कीटपतंग, पशुपक्षी आदि को उनके आकार का बनाकर स्वभाविक परिवेश में रखा गया है। प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय डिनोसोरस, ब्रांटोसोरस नाना प्रकार के प्राणी यहां देखने में आए। उसी काल के वृक्ष और पौधे भी देखे। कितना परिश्रम और धैर्य इनके अन्वेषण में लगा होगा! इसमें संदेह नहीं कि परिश्रम अंग्रेजों का जातीय गुण है। आज अमरीका या रूस अथवा विश्व के अन्य देश भले ही ब्रिटेन से शक्ति और क्षमता में आगे बढ़ जाएं, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि ज्ञानवर्धन की प्रेरणा उन्हें बहुत अंशों में अंगरेजों से ही मिली है। पृथ्वी के प्रागैतिहासिक युग का, गिरिकंदराओं का आदिमानव किस प्रकार आत्मरक्षा और संघर्ष करता हुआ आज टेलीविजन सैट के सामने बैठ सका है, इस का सिलसिलेवार दिग्दर्शन यंत्रों और मूर्तियों के माध्यम से कराया गया है। राहुलजी की 'विस्मृति के गर्भ में' पुस्तक में दैत्याकार डिनोसोरसों के बारे में पढ़ा था, आज उन के कंकालों को यहां प्रत्यक्ष देखा।

विक्टोरिया अलबर्ट म्यूजियम में विश्व के सारे देशों की तरहतरह की पोशाकें, बरतन, गहने आदि रखे हैं। यहां मैं ने भारतीय मुगल बादशाहों, नवाबों और बेगमों की शाही पोशाकें व आभूषण देखे। औरंगजेब के हाथों से स्वर्णाक्षरों में लिखी कुरान देखी। कहना न होगा ये सब यहां कैसे पहुंचे होंगे, कीमत तो इंगलैंड ने शायद ही अदा की होगी। वारेन हेस्टिंग्स और क्लाइव की लूट ऐतिहासिक प्रमाण हैं। रहीसही कसर लार्ड कर्जन ने पूरी कर दी।

भूगर्भ ट्रेन से डाटी स्ट्रीट पर आया। मुझे प्रसिद्ध उपान्यासकार चार्ल्स डिकेंस का मकान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखना था । इसे उसकी स्मृति में संग्रहालय बना दिया गया है । अब तक जिन बड़ेबड़े म्यूजियमों को देख कर आ रहा था, उन की तुलना में यह बहुत ही छोटा है । फिर भी इस का अपना आकर्षण और महत्व है । इस महान लेखक ने अपनी कलम से लोगों के दिल को छुआ था । उस के पाठकों में अंगरेज ही नहीं बल्कि विभिन्न देशों के लोग हैं । आज भी शरत और प्रेमचंद की तरह चार्ल्स डिकेंस यूरोपीय जनसमाज की श्रद्धा और स्नेह का पात्र हैं । इसी लिए यह छोटा सा भवन साहित्यकों का तीर्थ बन गया है । शेक्सपीयर के स्टाफर्ड एवेन के स्मारक के बाद विदेशी पर्यटक और साहित्यिक इसे निश्चित रूप से देखते हैं । यहां डिकेंस कुछ काल तक रहा था । उस के उपन्यासों की पांडुलिपियां भी यहां रखी हैं ।

मुझे ख्याल आ गया 'डेविड कापरफील्ड' पढ़ते समय मेरी आंखें भीग गई थीं । किसी मित्र ने कहा कि ऐसी किताबें क्यों पढ़ी जाएं जिन से मन में दुख हो । पर आज भी जब दूसरे कामों में मन नहीं लगता तो शरत की 'शेष प्रश्न' अथवा डिकेंस की 'डेविड कापरफील्ड' पढ़ने लग जाता हूं । वे मुझे हमेशा नई लगती हैं । दिल की गहराई को वे छू लेती हैं । गजब का जादू है डिकेंस की कलम में । खड़ा हुआ उस की पांडुलिपि देख रहा था, एकएक कर के डेविड, मर्डस्टोन, एमिली, मिकावर आदि चरित्र जैसे सामने आ कर मेरे परिचित वाक्य बोलते से लगे ।

सोचने लगा, हमारे यहां भी तो वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, भूषण आदि महान कवि हो गए हैं । हम ने उन के स्मारक क्यों नहीं बनाए ? शायद पठनपाठन से ही उन की स्मृति बनाए रखने की परंपरा हमारे यहां रही हो या नश्वरता के प्रति हम सदैव उदासीन रहे हैं । इसी कारण से ब्रिटिश काल के पूर्व तक के व्यक्तियों के स्मारक नहीं बनाए गए । मुगल बादशाहों या नवाबों और फकीरपीरों की कब्रों या किलों के रूप में जरूर कुछ स्मारक मिल जाते हैं । जो भी हो, स्मारकों का भी अपना महत्व कम नहीं है ।

दोपहर का भोजन किया भारतीय विद्यार्थी क्लब में । ब्रिटेन में हजारों की संख्या में भारतीय विद्यार्थी पढ़ रहे हैं । अपनी सुविधा के लिए इन्होंने लंदन में कोआपरेटिव के तौर पर यह कैंटीन चला रखी है । चीजें अच्छी मिलती हैं और दाम बहुत ही कम । भीड़ इतनी रहती है कि बैठने की जगह आसानी से नहीं मिलती ।

भोजन के बाद ट्राफल्गार स्क्वायर की नेशनल आर्ट गैलरी देखने गया । बहुत विशाल भवन है । इस में पिछले ५०० वर्षों के बड़ेछोटे चित्रों का सुंदर संग्रह है । ये चित्र विश्व के प्रसिद्ध चित्रकारों के बनाए हुए हैं । चित्रों के संकलन का शौक सभी देशों को है । इस के लिए बड़ीबड़ी धनराशियां खर्च की जाती हैं । रोम के वेटिकन और फ्रांस के लुव्रे के संग्रह के बाद बाकी बचे हुए नामी चित्रों के लिए विश्व के देशों में होड़ सी लगी रहती है । इस दिशा में अमरीका से टक्कर लेना कठिन है ।

फिर भी, ब्रिटेन के धनी और संपन्न व्यक्ति उदारतापूर्वक अलभ्य चित्रों को खरीदते रहते हैं ।और अपने अमूल्य संग्रह इस गैलरी को भेंट कर देते हैं । यही कारण है कि यह विश्व की चुनी हुई आर्ट गैलरियों में मानी जाती है ।

ब्रिटेन में मृत्यु कर की दर बहुत अधिक है, पर कला की वस्तुओं पर छूट है । इसलिए यहां के धनी मरने से पहले अपनी संपत्ति से दुर्लभ चित्रों को खरीद लेते हैं । समय पाकर उन के उत्तराधिकारियों द्वारा वे चित्र इस गैलरी को भेंट कर दिए जाते हैं । इस से उन की स्मृति बनी रहती है और राष्ट्र का गौरव भी बढ़ता है ।

इस गैलरी के एक कक्ष में भारत के कांगड़ा, किशनगढ़, राजपूत, मुगल और पटना शैली के अलभ्य चित्र देखे । मैं चित्रकला का पारखी तो नहीं हूं, पर देखने में ये मुझे बहुत ही बेहतरीन लगे । अन्य देशों से इन में बारीकी और रंगों के सन्तुलन का सम्मिश्रण अधिक स्पष्ट लगा । अधिकांश चित्र कृष्ण और राधा की पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं । ऋतु और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागमालाओं के चित्रों का भी अच्छा संग्रह है। क्यूरेटर से बातें करने पर पता चला कि भारतीय तूलिका के संबंध में उनको यथेष्ट ज्ञान है। उनसे यह भी पता चला कि बहुत से चित्र भारत से खरीद कर मंगाए गए हैं कुछ भेट स्वरूप भी आए हैं।

मैं ने सुना था कि बहुत से चित्र तो हमारे राजेमहाराजों ने बहुत सस्ते दामों पर बेच दिए थे या फिर अंगरेजों को खुश करने के लिए भेंट में दिए थे। अपने देश के गौरव की वृद्धि के प्रति हमारे यहां की उदासीन मनोवृति का परिचय पा कर ग्लानि सी हुई। आज भी बहुत से चित्र मंदिरों में पड़े है या रईसों, राजेरजवाड़ों के पास बेकार पड़े हैं। उन्हें यदि काशी विश्वविद्यालय के भारत कला भवन या दिल्ली की नेशनल गैलरी को दे दिया जाएं तो भारतीय चित्रकला के प्रति बहुत बड़ा उपकार हो सकता है।

गैलरी देख कर फाटक के बाहर आया। सामने ही एडमिरल लार्ड नेलसन की बहुत ही बड़ी मूर्ति ऊंचे चबूतरे पर खड़ी है। सन १७६२ से १८०५ ईसवी तक सारा यूरोप नेपोलियन के युद्धों से आतंकित हो उठा था। उस की सेनाएं यूरोप के प्रायः सभी देशों को रौंद चुकी थीं। केवल ब्रिटेन अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बचा हुआ था। नेपोलियन ने बड़ी जबरदस्त तैयारी से ब्रिटेन की चौतरफ़ा नाकेबंदी की। सन १८०५ में एक बहुत बड़े जहाजी बेड़े को ले कर उस ने ट्राफल्गर की खाड़ी में ब्रिटेन की नौशक्ति को खत्म करने के लिए हमला कर दिया। ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा छोटा था, पर नेलसन की निपुण रणचातुरी के कारण फ्रांस कीं अजेय सेना को हार खानी पड़ी। उस की हिम्मत पूरी तौर से पस्त हो गई।

इतिहासकारों का कहना है कि इतनी बड़ी समुद्री लड़ाई पहले कभी नहीं हुई थी। इस युद्ध में ब्रिटेन जीता जरूर मगर उसे नेलसन को खोना पड़ा। नेलसन के मुंह से मृत्यु के समय निकले ये शब्द अमर हो गए, 'हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से अपने कर्तव्य का पालन पूरी तौर पर कर सका।' इसी युद्ध का परिणाम था कि पिछले महायुद्ध तक ब्रिटेन की नौशक्ति का लोहा दुनिया में सभी मानते थे।

कलकत्ता की तरह लंदन में टैक्सियों की कमी नहीं है। फिर भी यहां आम तौर पर लोग बसों या भूगर्भ ट्रेनों से यात्रा करते हैं। यहां के टैक्सी ड्राइवर मुझे रूखे से लगे। किराए के अलावा टिप देने की परिपाटी यहां है। इस वजह से विदेशियों को बड़ी परेशानी होती है क्योंकि उन्हें मालूम नहीं रहता कि किस हिसाब से देना चाहिए। अधिकांश टैक्सी वाले ऐसी स्थिति में रूखा सा व्यवहार करते हैं, खास तौर से उनके साथ जो गोरे रंग के नहीं होते। मुझे एक बार इस प्रकार का व्यक्तिगत अनुभव हो चुका था। इसलिए मैं ने लंदन में दोबारा टैक्सी नहीं की।

शाम हो रही थी। मैं लंदन का प्रसिद्ध बाग हाइड पार्क देखने निकल गया। बीच में सरपेंटाइन झील है। पृथ्वी के दूसरे किसी भी शहर में इतना बड़ा मैदान शहर के बीच में नही होगा। कलकते के किले का मैदान काफी विस्तृत माना जाता है पर वह भी इस के मुकाबले में छोटा है। वैसे तो लंदन में रीजेंट, सेंट जेम्स, केंसिंगटन आदि अन्यान्य पार्क भी हैं, पर हाइड पार्क की तो बात ही न्यारी है। शाम के समय बीसियों सिरफिरे स्टूल पर खड़े हो कर व्याख्यान देते यहां मिल जाएंगे। श्रोता भी जुट जाते हैं। मनोरंजन के सिवा कुछ ध्यान दे कर सुनने वाले भी रहते हैं। बीचबीच में हंसीमजाक कर लेते हैं। वक्ता जिस विषय पर चाहे बोल सकता है, कोई रोकटोक या कानूनी पाबंदी नहीं है। एक जगह मैं भी खड़ा हो कर सुनने लगा। श्रोताओं की संख्या लगभग साठसत्तर रही होगी। वक्ता कह रहा था, "स्त्रियां बदतमीज होती जा रही हैं। इन को यदि समय रहते नहीं संभाला गया तो ब्रिटिश जाति का पतन हो जाएगा। आप मुझे जैसा फटेहाल देख रहे हैं, उस का कारण है स्त्रियों की स्वच्छंदता। मेरी एक प्रेयसी है, खूबसूरत है, लाजवाब है।"

"मुसीबत आ पड़ी है कि उस की बुढ़िया चाची मेरे ऊपर डोरे डाल रही है। बुढ़िया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दौलतमंद है। नाना प्रकार के उपहार रोज मेरे पास भेज देती है। नतीजा क्या हो सकता है, इसे आप खुद समझ सकते हैं। यानी मैं बदनसीबी का मारा उस खूसट बुढ़िया के चंगुल में फंस गया हूं। इधर मेरी प्रेयसी मुझ से रूठ गई है। अब आप ही बताएं मैं क्या करूं!"

मैं ने देखा वहां खड़ी औरतें उस की बातों में हंसहंस कर रस ले रही थीं। दोएक ने उस से कहा, "महाशय, आप उन दोनों का पता बताएं। हम बुढ़िया को समझा कर आप की प्रेमिका को मना लेंगी।"

कुछ दूर आगे बढ़ कर देखा, एक व्यक्ति भारत के विरोध में अनर्गल प्रचार कर रहें हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ औरं खेद भी। बाद में पता चला कि पाकिस्तान ने अपने कई विद्यार्थियों तथा अन्य व्यक्तियों को नियमित रूप से इस ढंग के प्रचार के लिए लगा रखा है।

कहीं एक कोने में अणुबम विरोधी भाषण सुनने में आया तो कहीं इंगलैंड की विदेश नीति की कटु आलोचना। भाषण सुनतेसुनते लगभग आठ बज गए। लौटने लगा तो देखा पिंप (औरतों के दलाल) चक्कर लगा रहे हैं। इन की चाल और हावभाव से पता चल जाता है कि वे दलाल हैं। इन के इर्दगिर्द दोएक लड़कियां घूमतीफिरती या बैठी रहती हैं। यों तो लंदन में कानूनन वेश्यावृत्ति बंद है पर ग्राहक को अपने साथ घर ले जाने की छूट है।

पार्क में एक जगह बैंच पर जा कर बैठ गया। आसपास की बैंचों पर पुरुषों और लड़कियों की उपस्थिति का अर्थ स्पष्ट हो गया। सोचने लगा, हमारे यहां अत्यधिक गरीबी से अधिकतर स्त्रियां मजबूर हो कर अपने तन का सौदा करती हैं, मगर इस प्रकार सार्वजनिक पार्कों में ऐसी हरकतें नहीं होतीं। ब्रिटेन के लोग अपनी सभ्यता और शालीनता की डींग एशियाई मुल्कों में हांकते रहते हैं पर उनकी असलियत की कलई तो हाइड पार्क में ही खुलती है। चुंबन और आलिंगन से आगे के दृश्य भी यहां देखने में आए। रूस को छोड़ कर यूरोप के प्रायः सभी देशों में यह है।

थोड़ी देर वहां विश्राम कर अपने होटल वापस आया। दिन भर की थकान का बोझ था। नींद नहीं आ रही थी। तरहतरह के विचार मन में आते गए। हमारे देश में विदेशी यात्री कम क्यों आते हैं? इस का एक बड़ा कारण शायद यह भी हो सकता है कि विदेशियों को मौजबहार की वह छूट हमारे यहां नहीं मिलती जो अन्यान्य देशों में है। पर हम खुश हैं कि पेरिस, वेनिस और लंदन की तरहतरह अनैतिक और कामोत्तेजक मनोरंजनों द्वारा पैसे बटोरना हम ने या हमारी सरकार ने अच्छा नहीं माना है।

मैं जिस होटल में ठहरा था वह साधारण ढंग का था। यहां नाश्ते के लिए क्यू में खड़ा होना पड़ता है। वैसे तो लंदन में रेस्तरां बहुत है। पर होटल के किराए में नाश्ता भी शामिल था इसलिए पेट भर नाश्ता कर सारे दिन के लिए छुट्टी पा जाता था। विदेशों में पैसों की बचत का यदि विशेष ध्यान रखा जाए तो बहुत कम खर्च में काम चल सकता है।

नाश्ते के बाद सब से पहले बकिंघम महल देखने गया। महल के प्रति मेरा कोई विशेष आकर्षण नहीं था पर यहां प्रहरियों के पाली बदली का दृश्य बड़ा शानदार रहता है, उसे देखना था। मेरी तरह वहां बहुत से लोग उस विशेष समय की प्रतिक्षा में खड़े थे।

ब्रिटेन की विशेषता यह रही है कि वहां अपनी परंपरा के प्रति श्रद्धा है। अंगरेजों ने समाज के ढांचे को बहुत कुछ बदल दिया है पर ऐतिहासिक परंपरा को आज भी सावधानी से संजोए हुए हैं। सैकड़ों वर्ष पहले जिस ढंग की पोशाक में राजा के महलों में प्रहरी तैनात रहते थे, आज भी उसी प्रकार तैनात रहते हैं। रात के पहरेदार सुबह जब बदलते हैं तो एक खास कवायद के साथ। बड़ा प्रभावपूर्ण दृश्य लगता है। सब की पोशाक एक सी, एक से अस्त्रशस्त्र में लैस, एक से घोड़े, एक सी चाल, चेहरे पर गंभीर निर्विकार भाव। बच्चों को देखा, बड़ी उत्सुकता से मगर आंखों में कुछ डर लिए, पहरेदारों की बदली देख रहे थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहां से थोड़ी दूरी पर इंगलैंड के प्रधान मंत्री का १०, डाउनिंग स्ट्रीट नाम का सरकारी निवास है। तीन मंजिलों का छोटा सा पुराने ढंग का मकान है। इस में न बाग है, न लान है। वर्षों से यहां इंगलैंड के प्रधान मंत्री रहते आए हैं। देख कर आश्चर्य होता है कि इतने संपन्न और विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मंत्री का घर भी यही और दफ्तर भी। और हमारे यहां ? हम गरीब हैं, दुनिया के सामने हाथ भी पसारते हैं। मगर हमारे मंत्रियों के सरकारी निवास ! वे तो कहीं शानदार और सजीले हैं। वैसे, हम गांधीजी के आदर्शों की दुहाई देते रहते हैं !

मैडम तुसान के संग्रहों का उल्लेख स्वर्गीय राहुलजी ने एक बार मुझ से किया था। लंदन पर लिखी गई अन्य पुस्तकों में भी इस का जिक्र पढ़ा था। वास्तव में अपने ढंग का यह एक नायाब संग्रह है। मोम की बनी ३०० आदमकद प्रतिमाएं यहां हैं। इतनी स्वाभाविक हैं कि मानो जीवित व्यक्ति के सामने हम खड़े हैं और ऐसा लगता है कि अब वे कुछ बोलेंगे। विश्व के प्राय: सभी देशों के शीर्ष लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, राजारानी और राजनीतिक नेताओं की मूर्तियां यहां देखीं।

महात्मा गांधी और नेहरूजी की मूर्तियों को देख कर लगा कि चलो, अंगरेजों ने इसे माना तो सही कि विश्व को दिशादान देने में भारत का भी योग रहा है।

टावर आफ लंदन में जिन दंडशालाओं और दंड देने के औजारों का जिक्र आया है, उन की झांकी यहां देखने में आई। कहीं जीवित व्यक्तियों को जलाया जा रहा है तो कहीं लाल तपी सलाखों से उन की आंखें फोड़ी जा रही हैं। कहीं सिर तोड़ा जा रहा है तो कहीं कांटे गड़ाए जा रहे हैं। बड़े भयंकर और बीभत्स दृश्य देखने में आए।

मध्यकालीन यूरोप के इतिहास में पढ़ने में आता है कि उन दिनों बड़े अमानुषिक तरीकों से वध किया जाता था और लोग इसे देखने के लिए इकट्ठे होते थे। पेरिस और रोम में तो वध के स्थान पर हजारों की भीड़ लग जाती थी। स्त्रीपुरुष सजधज कर देखने आते थे। बैठने के स्थानों के आरक्षण का चार्ज रहता था। ड्यूमा के 'काउंट आफ मांटेक्रिस्टो' में इस का अच्छा वर्णन है। भारत में मुगलकाल में क्रूरता के साथ वध करने के दृष्टांत हैं, पर जनता की रुचि मनोरंजन के लिए ऐसे नजारे देखने की रही है, यह कहीं भी नहीं मिलता, पता नहीं सभ्य यूरोप और हमारे यहां यह अंतर कैसे रह गया ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मादक संगीत, धुनें, नाचती नंगी लड़कियां......

लंदन—२

सन १९६४ में मुझे तीसरी बार लंदन जाने का मौका मिला। भारतीय दूतावास के सहयोग के कारण पहले की यात्राओं की अपेक्षा इस बार देखनेसुनने की ज्यादा सुविधाएं मिलीं। लोगों के रहनसहन और दुकानों की सजावट देख कर अंदाज होता था कि पिछले पंदरह वर्षों में ब्रिटेन ने महायुद्ध के भीषण धक्के से अपने को कितना अधिक संभाल लिया है। यहां के होटलों की हफ्तों की नहीं; महीनों की अग्रिम बुकिंग बताती थी कि पिछले वर्षों में युद्ध जर्जरित ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति कितंनी अधिक मजबूत हो उठी है।

सब से पहलें मैं भारतीय राजदूत श्री जीवराज मेहता से मिलने गया। उन का निवासस्थान वहुत ही सुंदर उद्यान के बीच है। भारत और ब्रिटेन के लंबे अर्से तक पारस्परिक संबंध रहे हैं। उन के अनुरूप ही हमारे दूतावास का भवन है।

जीवराज भाई और श्रीमती हंसा मेहता से मेरा पूर्व परिचय था। ८० वर्ष की आयु में भी वह स्वस्थ और फुरतीले हैं। इस कारण उन के व्यक्तित्व में सहज आकर्षण है। वह बड़ी आत्मीयता से मिले। गुजराती ढंग के कलाकंद, ढोसा और चिवड़े का सुस्वादु जलपान कराया। भारत की राजनीतिक गतिविधियों के विषय में भी उन्होंने चर्चा की।

उसी दिन १२ बजे दोपहर को उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेंस बुलाई थी। ब्रिटेन की प्रेस चर्चा के सिलसिले में उन्होंने मुझे सावधान कर दिया कि यहां के पत्रकार बड़े चतुर होते हैं, शब्द और वाक्यों पर मनचाहे रंग की कलई चढ़ाने में पटु होते हैं, इसलिए इन के प्रश्नों का उत्तर बहुत सावधानी से देना चाहिए।

निर्धारित समय पर प्रेस कान्फ्रेंस हुई। दसबारह पत्रकार थे। सभी वहां के प्रमुख समाचारपत्रों या न्यूज एजेंसियों से संबंधित थे। मेहता जी की सलाह सचमुच अच्छी रही। मैं ने लक्ष्य किया कि अंगरेजों की वाक्चातुरी भी एक कला है। इस के लिए अनुभव और अभ्यास दोनों आवश्यक है। हम ने अपनी ओर प्रभुदयालजी को प्रधान बना लिया था। सभी प्रश्नों का उत्तर वे बहुत ही संक्षेप में किंतु स्पष्ट दे रहे थे।

हम ने महसूस किया कि कश्मीर के मामले में अंगरेजों के दिमाग में एक विशेष दृष्टिकोण बैठा गया है। अन्य बातों में तो उन्हें हम संतोष दिलाने में सफल हुए, किंतु जहां तक कश्मीर का सवाल था, वे हमारी युक्ति और तर्क को स्वीकार करने को ही तैयार नहीं थे। उन की सहानुभूति पाकिस्तान के साथ थी। उन का यह तर्क था कि जब श्री नेहरू ने कश्मीर में जनमत संग्रह स्वीकार किया और उसे प्रा आश्वासन दिया था तो इसे भारत क्यों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं मानता ? दोनों देशों के बीच आपसी समझौते और अमन कायम रखने के लिए यह निहायत जरूरी है ।

प्रभुदयालजी उन्हें बराबर समझा रहे थे कि इन वर्षों में पाकिस्तान और भारत के आपसी संबंधों में काफी कटुता आ गई है । कश्मीर और भारत युगों से एकदूसरे से भाषा, संस्कृति और भौगोलिक दृष्टि से बंधे रहे हैं, अतः अब जनमत का प्रश्न ही नहीं रह जाता । पाकिस्तान कुछ धर्मान्धों को उभार कर वहां अशांति पैदा करता रहता है । भारतीय व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक कश्मीरी सुखी है, उस की आर्थिक दशा भी सुधरी है । दूसरी ओर पाकिस्तानी व्यवस्था के नीचे, कशमीरी जनता पीड़ित है, उस का दमन भी किया जाता है ।

इस के अलावा जब तक पाकिस्तान कश्मीर के उस अंचल से हट नहीं जाता जिस पर उस ने जबरदस्ती कब्जा जमा रखा है, तब तक वहां जनमत संग्रह का कोई-अर्थ नहीं ।

पता नहीं क्यों ब्रिटिश पत्रकार इसे मानने से इनकार करते रहे । भारत के विकास और आर्थिक उन्नति के संबंध में उनलोगों की धारणा थी कि इन वर्षों में हमारे देश ने प्रगति की है अवश्य, फिर भी यदि हम अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ोतरी को नहीं रोक पाएंगे तो हमारी योजनाएं निष्फल सिद्ध होंगी । उन का ख्याल था कि इस दिशा में भारत का प्रयास शिथिल रहा है ।

दोपहर के बाद जूट एक्सचेंज देखने गया । मैं लंबे समय तक पटसन का व्यवसायी रहा हूं—आकर्षण स्वाभाविक था । जूट के क्रयविक्रय के लिए यह एक्चेंज विश्व में सबसे बड़ा केंद्र माना जाता है । प्रायः सभी देशों को अपना कच्चा पाट यहां के नियमों से खरीदना पड़ता है । यहां मेरे मित्र बाबूलाल सेठिया मिल गए । १९३५ में साधारण स्थिति में लंदन आए थे और यहीं बस गए । अब तो करोड़ों रुपए कमा लिए हैं और यहां के बड़े व्यापारियों में गिनती है । विदेशों में पुराने साथियों के मिलने पर बड़ी खुशी होती है । अगले दिन उन के घर भोजन का निमंत्रण मिला । बेसन की रोटी और काचरी के साग में पकवानों से कहीं अधिक स्वाद मिला ।

शाम के बाद पिकाडिली सर्कस पहुंचा, यह फैशन, रोशनी और रईसी की जगह है । लंदन सज उठता है । रंगबिरंगे नियोन के प्रकाश इंद्रधनुष से खेलते रहते हैं । कलकत्ता का पार्क स्ट्रीट और दिल्ली का कनाट प्लेस इस की थोड़ी सी झांकी पेश करते हैं । यहां नियोन के तरहतरह के विज्ञापनों के बीच ओवलटीन और बोवरील की विशेषताएं देखीं । ओवलटीन में अंडे और बोवरील में गोमांस का रस रहता है । हमारे यहां सनातनी घरों में भी इन दोनों का प्रयोग होता है ।

सोहो का महल्ला पिकाडिली के पास ही है । बदनाम जगह है । दुनिया के हर शहर में इस प्रकार के स्थान होते हैं, लंदन कोई अपवाद नहीं । इनसान में कमजोरियां होती हैं । गम को खुद बुलाता है और इसे गलत करने के लिए गलतियां करता जाता है । हमारे यहां समाज के भय से लोग लुकछिप कर करतें हैं, जबकि यूरोप में इसे जीवन की आवश्यकता मान कर बिना झिझक के । लंबेचौड़े पुलिसमैनों को चक्कर लगाते देखा । निर्विकार से घूम रहे थे । शायद उन्हें हिदायत थी कि आनेजाने में दखल न दें । बस इतना ध्यान रखें कि दंगाफसाद, राहजनी और गुंडागर्दी न हो । खास तौर से किसी विदेशी को ऐसी परेशानी में न पड़ना पड़े । सोहो में सब कुछ चलता है । वैधअवैध सभी तरह की नशीली चीजों के अड्डे हैं, जिन के संचालक ज्यादातर चीनी हैं । चकलों की भी क़मी नहीं । क़ानून से बचने के लिए इन्हें क्लबों के नाम पर चलाया जाता है । ग्राहक के पहुंचते ही उसे सदस्य बना लेते हैं और कार्ड दे दिया जाता है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी ढंग के एक क्लब में जा पहुंचा, दस रुपए दे कर सदस्य बना। शराब और जुए का दौर चल रहा था। काउंटर पर एक मोटी सी औरत बैठी थी। ग्राहकों में अधिकांश पिए हुए थे। एक वृत के चारों ओर टेबलें लगी थीं और उन के इर्दगिर्द कुरसियां। युवतियां शराब ला कर ग्राहकों को दे रही थीं। कारबार बिलकुल रोकड़ी था, यानी नगद। जो लड़की जितना पिलाती थी, कमीशन भी उसी मुताबिक बनता था। रोशनी धीमी थी। कौन आया और कौन गया, आसानी से जाना नहीं जा सकता था। इस पर सिगरेट के धुंए का कुहरा।

बाजे की धुन पर एक नंगी लड़की नाच रही थी। अंगरेजों के अलावा अन्य देशों के लोग भी थे, कुछेक भारतीय भी। दोतीन टेबल हट कर दो सिख युवक पी कर धुत हो चुके थे। दोनों के सामने लड़कियां प्यालियां भर कर लातीं, वे उन की कमर में हाथ डाल कर पास खींचते और गोद में बैठा लेते थे। लड़कियां प्यालियां होठों से लगा देती थीं और बढ़ावा देती जा रही थीं।

मैं हैरत से यह सब देख रहा था, न जाने कब एक लड़की मेरे बगल में आई, मुझे पता भी न चला।

"क्या पसंद करेंगे, हल्की या कड़ी," बड़ी मधुरता से उस ने पूछा। मैं ने देखा उन्नीसबीस साल की युवती है, छरहरा बदन, खूबसूरत नाकनक्शा।

"पीना नहीं, देखना है ......" मेरे मुंह से निकल गया। फिर जगह का ख्याल हो आया, मैं ने कहा मुझे सिर्फ कोल्ड ड्रिंक में दिलचस्पी है।

उस ने बड़ी मायूसी से मेरी ओर देखा और दूसरे ग्राहक के पास चली गई। मैंने देखा—काउंटर पर बैठी मोटी मालकिन गोलगोल आंखों के नीचे होंठ बिचकाए मुझे देख रही है। थोड़ी देर बाद लड़की ने लैमनेड ला कर मेरे सामने रख दिया। और कहने लगी, "शायद आप गलत जगह आ गए हैं।"

लैमनेड खतम कर मैं उठा। देखा दोनों सिख चित्त हो चुके हैं। लड़खड़ाते हुए वे लड़कियों को ले कर पास के कमरों में जा रहे थे।

क्लब से बाहर फाटक पर आ गया। देखा, लड़की भी पीछेपीछे आ रही है। मैं ने उस से कहा, "तुम्हारा समय नष्ट होगा कोई फायदा नहीं।"

बड़े दर्द से उस ने कहा, "आप मुझे जैसा सोचते हैं मैं वैसी नहीं हूं। आखिर छात्रा हूं। उस ने बताया कि सोहो में थोड़ी सी देर के लिए आने से उस की अच्छी आमदनी हो जाती है। इस से उस का और उस की मां का रहनेखाने का खर्च चल जाता है और कुछ पैसे बचा भी लेती हैं। आगे चल कर वह सम्मानपूर्वक अच्छी जिंदगी बिताएगी, पढ़ाई पूरी कर आस्ट्रेलिया जा कर जीवन का नया अध्याय शुरू करेगी।

एक से एक नीचे स्तर का मनोरंजन सोहो के क्लबों में है। सोचने लगा, 'पता नहीं अंगरेज किस आधार पर भारतीयों को असभ्य कहते थे।'

सोहो का एक दूसरा रूप भी है। यहां के सस्ते रेस्तरांओं में बैठ कर लेखक और विचारकों ने नई विश्व प्रसिद्ध कृतियों का सृजन किया है। इस युग का विख्यात चिंतक और क्रांतिकारी कार्ल मार्क्स यहीं के एक गंदे मकान में रहता था। यहीं उस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दास कैपिटल' लिखी थी, जिस ने विश्व की आधुनिक अर्थनीति और राजनीति की धारा में एक ऐसी उथलपुथल की सृष्टि की है, जिस का परिणाम अंततोगत्वा क्या होगा, यह कहना कठिन है। जिस अंधेरी कोठरी में वह रहता था और जिस रेस्तरां में चाय पिया करता था, उसे मैं ने देखा। आज तो यह स्थान संसार के कम्युनिस्टों के लिए मक्कामदीना है।

सोहो की चहलपहल रात के दस बजे से तीन बजे तक रहती है। ब्रुशेल्ज और पेरिस में भी रात्रि क्लब और इस ढंग के महल्ले हैं, पर यहां के नजारे उन से कहीं भद्दे और वीभत्स हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बारह बज रहे थे, होटल के लिए लौट पड़ा। तीन दिन बाद हमें स्विट्जरलैंड जाना था। समय कम था। अतएव, घूमने का प्रोग्राम भी सीमित रखा। दूसरे दिन पेटिकोट स्ट्रीट, फ्लीट स्ट्रीट और फॉयल्ज की दुकान देखने का निश्चय किया।

पेटिकोट स्ट्रीट कलकत्ता के चोरबाजार की तरह है। वैसे न तो चोरबाजार में ही चोरी की चीजें बिकती हैं न यहां। फिर भी यहां अजीबोगरीब पुरानी चीजें बेशुमार इकट्ठी हैं। कभीकभी तो बड़ी अमूल्य और दुर्लभ वस्तुएं बहुत सस्ते दामों में हाथ लग जाती हैं।

हर रविवार की सुबह यह बाजार खुलता है। पुराने कपड़े, छाते; जूते, फर्नीचर, हथियार, तसवीरें; छड़ियां, घरेलू सामान यहां के फुटपाथों की दुकानों में मिलेंगे।

कुछ लोगों को शौक रहता है इन दुकानों के चक्कर लगाने का, क्योंकि मौकेबेमौके उन के पसंद की नायाब चीजें सस्ते दामों में मिल जाती हैं।

यहां के दुकानदार बड़े बातूनी और चतुर हैं। कहते हैं कि एक बार विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार ब्रर्नाड शा ने पुरानी पुस्तकों की एक दुकान में रखी अपने ही एक नाटक की प्रति का दाम पूछा। दुकानदार ने कहा, "यूं तो यह पुस्तक एक बहुत बड़े आदमी की कृति है लेकिन किसी बेवकूफ ने इस के पृष्ठों पर टिप्पणियां कई जगह लिख दी हैं, इसलिए महज चार शिलिंग में आपको दे दूंगा।" शा ने किताब खोल कर देखी तो अचंभे में रह गए। किताब की यह प्रति उन्होंने अपने हस्ताक्षर कर के एक मित्र को भेंट की थी। विशेष रूप से अध्ययन के लिए पृष्ठों के हाशिए पर खुद टिप्पणियां लिखी थीं। शा ने चार शिलिंग दे कर वह किताब खरीद ली। आज वह शायद पचास हजार तक में बिक जाए तो कोई ताज्जुब नहीं।

चेयरिंग क्रास की नुक्कड़ पर फॉयल्ज की बहुत बड़ी दुकान है। पुस्तकों की ऐसी दुकान शायद ही विश्व में कहीं हो। इस की विशेषता यह है कि कोई जरूरी नहीं कि आप किताब खरीदें। कुरसियां लगी हैं, सुबह से शाम तक यहां बैठ कर मनचाही पुस्तक बिना शुल्क दिए पढ़ सकते हैं। इस के लिए हर तरह की सुविधा है। सैकड़ों वर्षों से यह दुकान यहां है। ब्रिटेन के बड़ेबड़े कवि और लेखकों ने यहां बैठ कर अपनी पुस्तकें लिखी हैं। किताबों का शौक मुझे भी है। बड़ेबड़े शहरों में बहुत सी दुकानें भी देखी हैं। मगर, ऐसी दुकान और विभिन्न विषयों पर इतनी तरह की पुस्तकें मैं ने एक ही जगह उपलब्ध कहीं नहीं देखी थीं। इसलिए किताबों के देखने में काफी समय लग गया। यहां से प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पुस्तकें जसीडीह के अपने मित्र महावीरप्रसाद पोद्दार के लिए खरीदीं।

दोपहर का भोजन लायज कारनर में किया। लायंज की सैकड़ों रेस्तरां लंदन में हैं। इन में आमिष और निरामिष दोनों प्रकार के भोजन बहुत कम खर्च में मिल जाते हैं। इस के अलावा, केक, पेस्ट्री, चाकलेट आदि की भी बहुत बड़ी बिक्री है। इन जलपानगृहों के मुनाफे के कारण लायंज के मालिक की गिनती ब्रिटेन के प्रमुख धनिकों में है।

भोजन कर के फ्लीट स्ट्रीट गया। अखबारों का महल्ला है, पत्रकारों की दुनिया है। ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति संसार के अन्य देशों से औसतन ज्यादा अखबार पढ़े जाते हैं यहां भी अधिकांश समाचारपत्रों पर हमारे देश की तरह, कुछ धनी व्यक्तियों का अधिकार है। सैकड़ों अखबार तो केवल लंदन से ही प्रकाशित होते हैं। इन में से किसीकिसी की चालीसपचास लाख प्रतियां छपती हैं। रविवार अथवा छुट्टी के दिनों में दैनिक पत्रों की पृष्ठ संख्या पचाससाठ तक पहुंच जाती हैं। यदि रद्दी के भाव भी इन अखबारों को बेचा जाए तो इन के दाम वसूल हो जाते हैं।

दैनिकों के अलावा, अलगअलग विषयों पर साप्ताहिक; पाक्षिक और मासिक पत्र भी बहुत बड़ी संख्या में निकलते हैं। बालक, किशोर, युवक, वृद्ध और इसी तरह भिन्नभिन्न आयु की महिलाओं के लिए अलगअलग पत्र प्रकाशित होते हैं। टाइम्स, गार्जियन और न्यू

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्टेट्समैन जैसे गंभीर पत्र तो दसबीस ही होंगे । अधिकांश पत्र बड़ेबड़े हैडिंग दे कर सनसनीखेज समाचार देते हैं । जैसे मिस कीलर के मुकद्दमें का प्रमुख गवाह आज दोपहर में हालबोर्न की बस से ईस्ट चीप की तरफ जा रहा था, बकरी के बच्चे ने कुत्ते की पिल्ले का कान चबा लिया, आदि ।

इन हैडलाइनों को मोटेमोटे अक्षरों में कार्ड बोर्डों पर छपवा कर अखबार के एजेंटों को अपनीअपनी दुकानों या स्टालों पर टांगने के लिए देते हैं । लोगों की निगाह पड़ी कि दौड़े खबर पढ़ने । मेरी समझ में नहीं आ रहा कि कीलर का गवाह किस बस से कहां गया और कुत्ते के पिल्ले का कान बकरी के बच्चे ने काट लिया तो इस में पाठकों के काम की कौन सी बात है । मगर यहां ऐसे ही पत्र ज्यादा बिकते हैं । नंगी तसवीरों के तथा कामोद्दीपक विषयों के मासिक या साप्ताहिक पत्रों के ग्राहक बहुत बड़ी संख्या में हैं ।

प्रमुख पत्रों के संवाददाताओं की बड़ी इज्जत है और वे मेहनत भी खूब करते हैं । समाचारपत्र अपने संवाददाताओं को खतरे की जगहों पर भी भेजते हैं, ताकि आंखों देखा सच्चा हाल पाठकों तक पहुंचाया जा सके । पत्रकार भी बड़े साहसिक होते हैं । युद्ध के मोर्चों पर जा कर वहां की गतिविधि का विवरण भेजना कम खतरे का काम नहीं । कभीकभी कइयों को जान से हाथ धोने पड़े हैं । विशिष्ट संवाददाताओं के पास तो अपने निजी हेलिकोप्टर या छोटे हवाई जहाज रहते हैं, जिस से घटनास्थल पर शीघ्र ही पहुंचने में सुविधा रहे ।

यहां परिवार के सदस्य अपनीअपनी रुचि के अनुसार अखबार खरीदते हैं । यदि घर में छः व्यक्ति हैं तो छः पत्र रोजाना आएंगे ही, कई अखबारों के तो दिन में छःसात संस्करण तक निकलते हैं । इन में से किसीकिसी की करोड़ों रूपए की वार्षिक आय केवल विज्ञापनों से होती है ।

आज हालांकि ब्रिटेन दुनिया में पहली श्रेणी का राष्ट्र नहीं रहा, फिर भी अखबारी दुनिया में फ्लीट स्ट्रीट और उसके संवाददाता प्रथम श्रेणी में आते हैं । भाषा की चटक, कार्टून और पत्रकारिता में अब भी ब्रिटेन से फ्रांस, अमेरिका और मास्को को बहुत कुछ सीखना है और हमें भी ।

फ्लीट स्ट्रीट से हम ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद भवन) देखने गए । हम अपने देश के संसद सदस्य थे, इसलिए वहां के अधिकारियों ने हमारी अच्छी खातिर की, बैठने के लिए विशेष स्थान दिया । पार्लियामेंट आज जिस जगह पर है, वहां पहले वेस्टमिंस्टर पैलेस नामक प्रासाद था । वर्तमान संसद भवन १५वीं शताब्दी के अंत में बना था । बीचबीच में कई बार इस में आग लगी । फलतः कुछ न कुछ रद्दोबदल होते रहे । अंगरेज जमाने के साथ बदलते जरूर हैं, मगर अपनी संस्कृति के कट्टर प्रेमी होते हैं । अपने संसद भवन की मरम्मत और सुधार में उन्होंने इस बात का खयाल रखा कि उस की मौलिकता नष्ट न हो । इसलिए आज भी संसद भवन पहले के रंगढंग में है ।

यों तो हम ने पुस्तकों में ब्रिटिश पार्लियामेंट भवन के चित्र पहले ही देखे थे, किंतु यहां इसे प्रत्यक्ष देख कर बीते हुए जमाने की बातें एक बार दिमाग में घूम गई । इन्हीं में से किसी एक कुरसी पर राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने बैठकर भारत में अपने किए गए कुकृत्यों पर बहस सुनी होगी । सन १८५८ में इसी भवन में कानून बना कर भारत को ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया की पूर्ण अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया था । भारत के शिल्पोद्योग को कुंठित करने के लिए नाना प्रकार के कानूनकायदे इसी संसद ने बनाए और अंगरेजी व्यापार को भारत में अनेक तरह से संरक्षण मिले ।

जो भी हो, ब्रिटिश पार्लियामेंट का इतिहास अपने में अनोखा है । फ्रांस में इस से भी पहले संसद की स्थापना हो चुकी थी, किंतु वहां के राजाओं ने उस की सत्ता को सर्वोच्च नहीं माना । ब्रिटेन में राजाओं ने समयसमय पर संसद के अधिकारों का अतिक्रमण करने के प्रयत्न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किए थे, लेकिन जनमत के सामने उन्हें भी सिर झुकाना पड़ा ।

१६४६ में अपने सम्राट चार्ल्स प्रथम के शिरच्छेद का आदेश संसद ने दिया । सन १६३६ में एक वर्ष के अंदर ही सम्राट अष्टम एडवर्ड को राजमुकुट त्यागने के लिए बाध्य किया गया। एडवर्ड साधारण घराने की तलाकशुदा महिला से विवाह करना चाहते थे । ब्रिटिश पार्लियामेंट ने स्वीकृति नहीं दी । एडवर्ड के सामने सिंपसन या सिंहासन दोनों में से एक चुनना था ।

यद्यपि विधानतः ब्रिटिश सम्राट ही सार्वभौम सत्ता का अधिकारी है, फिर भी परंपरा का पालन ब्रिटेन के शासक करते आए हैं । संसद के बनाए कानूनकायदे और उस के निर्णय को वे सदैव मानते आए हैं ।

हम जिन दिनों वहां थे, उन दिनों अनुदार दल की सरकार थी । प्रधान मंत्री थे लार्ड मैकमिलन । ब्रिटेन में हमारे यहां की तरह अनेक राजनीतिक दल नहीं हैं । अनुदार दल और श्रमिक दल ये दो ही मुख्य हैं । श्रमिक दल हैं जरूर, पर यह साम्यवादी या मार्क्सवादी नहीं है । विदेशों से निर्देश और प्रेरणा प्राप्त करने वाले व्यक्ति या दल को यहां जनता प्रश्रय नहीं देती, भले ही वह क्यों न भूलोक में स्वर्ग उतार लाने का पट्टा लिख दे ।

विरोधी दल को भी शासक दल और जनता, दोनों के द्वारा मान्यता और प्रतिष्ठा मिलती है, क्योंकि उन के द्वारा स्वस्थ विरोध एवं आलोचना होती है ।

हम जिस दिन संसद गए, वहां प्रोफ्यूमो कांड पर बहस हो रही थी । स्तर काफी ऊंचा था । ऐसा लगता था कि प्रत्येक सदस्य पूरी जानकारी कर के आता है । विरोधी सदस्य इस कांड की सारी जिम्मेदारी पूरे मंत्रीमंडल पर थोपना चाहते थे, जब कि सरकारी दल के नेता मंत्रीमंडल को इस से मुक्त रखना चाहते थे । उन का कहना था कि एक व्यक्ति की कमजोरी के लिए सारे के सारे दोषी क्यों ठहराए जाएं ?

संसद भवन देख कर हम लोग बस से लंदन के उस अंचल को देखने गए, जो 'ईस्ट एंड' के नाम से मशहूर है । यह गरीबों की बस्ती है । इस के बारे में पहले भी सुन चुका था, किंतु प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा वह उस से कहीं ज्यादा था और विचारोत्तेजक भी । यहां से करीब पौन मील की दूरी पर ही डोर चेस्टर और पार्कलेन जैसे महंगे होटल, बकिंघम पैलेस, रिजेंट स्ट्रीट व बोंड स्ट्रीट की महंगी दुकाने हैं । लगता है जैसे ईस्ट एंड कोई अभिशप्त स्थान है । लंदन बदला पर यह नहीं बदल सका ।

यहां हैं कीचड़ और गंदगी भरे रास्ते, मैलेफटे वस्त्र पहने मुरझाए पीले चेहरे और जिंदगी के बोझ ढोते हुए स्त्रीपुरूष, बच्चे, पुरानी सस्ती चीजों की दुकानें, तन का सौदा करती चलतीफिरती स्त्रियां । खूबसूरत मासूम बच्चे और किशोर अपनी मांबहनों के लिए ग्राहक ढूंढ़ने को तैयार, गाजा, अफीम, चंडू, चरस आदि अवैध नशों की पुड़िया पहुंचाने को तत्पर । महज इसलिए कि पैसे मिलेंगे । पैसे चाहिए जीने के लिए ।

अजीब सी घुटन थी विचित्र दृश्य था । इस से तो सोहो कहीं बेहतर था । यहां की एक दुकान में देखा, कुछ लोग अपने सामान बंधक रख कर रुपए ले रहे थे । सामान में पुराने कोट, पतलून और कमीजें तक थीं ।

ईस्ट एंड बंदरगाह के नजदीक है । यही इस का सब से बड़ा अभिशाप है । सभी बंदरगाहों के आसपास ऐसी बस्तियां होती हैं । महीनों घर से दूर समुद्र में बिताने के बाद मल्लाह और नाविक हर जगह जुटते हैं । हमारे देश कलकत्ता में भी खिदिरपुर इसी प्रकार का मुहल्ला है, किंतु वहां ऐसी छूट और सुविधा नहीं है । यहां देखा विदेशी मल्लाह और नाविक भांतिभांति की पोशाकों में चक्कर लगा रहे हैं । शराब की दुकानों में लड़कियों को लिए बैठे हैं और चिल्ला रहे हैं । नशे में यहां झगड़े और मारपीट होते रहना मामूली बात है, दैनिक वारदातें हैं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऐसी जगह पर चीनियों की बन आती है। कलकत्ता के चीनी महल्ले के बारे में हम ने सुना था यहां भी देखा। चीनी चोरी के कारबार में दक्ष होते हैं। चंडू और चरस के अड्डे यहां भी उन्हीं के चलते हैं। सैकड़ों वर्षों से हर देश में उन का यहीं धंधा रहा है। हमें पहले ही से सावधान कर दिया गया था, इसलिए इन अड्डों पर मैं नहीं गया। इच्छा तो बहुत थी कि खुद जा कर नजारा देखूं, मगर सूत्र न था और अकेले जाने में खतरा, इसलिए मन की मन में रह गई।

रात दस बजे हम होटल वापस लौटे। अंतिम दोतीन घंटों में जो कुछ देखा, उस से बहुत आश्चर्य नहीं हुआ। ब्रिटेन से कहीं ज्यादा संपन्न देश है अमरीका। वहां न्यूयार्क के हारलेम महल्ले का भी नजारा ईस्ट एंड जैसा था। फर्क केवल यही था कि इतनी गरीबी और गंदगी वहां नहीं थी।

हमें सूचना मिली कि श्री घनश्याम दास बिड़ला अमरीका से लौट आए हैं। दूसरे दिन सुबह ग्रोसवेनर होटल में उन से मिलने गए। लंदन के सब से महंगे होटलों में यह माना जाता है। उन के साथ बोंड स्ट्रीट की चमड़े के सामान की एक दुकान में गया। कई तरह के बक्स, हैंड बैग और पोर्टफोलियो देखे। कीमत डेढ़ से तीन हजार तक। अधिक कीमत का कारण पूछा तो सेल्समैन ने शाइस्ता ढंग से मुसकरा कर बताया, "हमारी यह दुकान लगभग २५० वर्षों से आप लोगों की खिदमत करती आ रही है। डिजरैली, ग्लैडस्टोन, जर्मन सम्राट कैसर विलियम, जार्ज बर्नार्ड शा तथा विंस्टन चर्चिल जैसे मूर्धन्य महानुभावों की सेवा कर उनकी प्रशंसाएं अर्जित करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हमारे यहां बने माल में शिकायत का मौका शायद ही मिले। हम बेहतरीन चीजें खरीदते हैं और सुदक्ष कारीगरों को अच्छी मजदूरी दे कर तैयार कराते हैं। इसलिए हमें आप को संतोष देने का पूरा विश्वास है।"

बिड़लाजी ने करीब दो हजार रुपए में एक पोर्टफोलियो बैग खरीदा। मुझे लगा कि मोलभाव करने से शायद कीमत कुछ कम हो सकती थी, पर खरीददार भी बड़ा और दुकान भी ऊंची, दोनों ही इसे अच्छा नहीं समझते होंगे।

दूसरे दिन अकेला ही वूल्र्थवर्थ के चेन स्टोर्स में गया, यहां उसी तरह की पोर्टफोलियो के दाम १०० व १२५ रुपए थे। शायद क्वालिटी में कुछ फरक था जरूर, पर कीमत के अनुपात से नहीं के बराबर। यहां कीमत हैं दुकान की साख पर। बड़ीबड़ी दुकानों में जो फल तीन या चार रुपए पौंड में मिलते हैं बाहर सड़कों पर ठेले वालों से रुपए सवा रुपये में मिल जाएंगे। हम ने देखा वर्षा और ठंड की परवा किए बिना वे रात के दसग्यारह बजे तक ठेलों में फल, सूखे मेवे इत्यादि बेचते रहते हैं।

आज प्रभुदयालजी साथ नहीं थे, इसलिए घूमनेफिरने में स्वतंत्रता थी। चेयरिंग क्रास में बेरी ब्रदर्स की दुकान पर क्यू सी लगी देखी, मैं भी खड़ा हो गया। यह शराब की प्रसिद्ध दुकान है, जो पिछले ३६५ वर्षों से लंदन में इसी जगह पर है। इस के ग्राहकों में अनेक देशों के राजे, महाराजे, शेख, सुलतान, मिनिस्टर, राजनीतिज्ञ और सेनाधिकारी रहे हैं। इन लोगों के निजी हस्ताक्षर से युक्त तसवीरें दुकान के मालिक ने सजा रखी हैं। इन का दावा है कि महारानी विक्टोरिया के परदादा के समय की शराब इन के यहां मिल जाएगी।

लगभग उसी जमाने का एक बेडौल सा तराजू भी वहां देखा। इस पर किसी समय अंगूर जौ और गुड़ तौले जाते थे, आजकल ग्राहकों को इस पर निःशुल्क अपना वजन लेने की छूट है। इस कांटे के बारे में बताया गया कि ३५० वर्षों के इस पुराने कांटे का वजन तोले तक सही उतरता है। एक ओर पुराने जमाने के बटखरे रखे थे और दूसरी ओर लोहे की सांकलों में झूलते हुए पलड़े पर स्त्रीपुरुष बारीबारी से बैठ कर अपना वजन कर रहे थे। हंसी और चुहल का वातावरण था। मैं भी क्यू में अपनी बारी आने पर पलड़े पर बैठ गया। नीचे उतरते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही वहां की सेल्स गर्ल ने मुस्करा कर वजन का सुंदर कार्ड दिया और बेहतरीन किस्म की शराब का एक पेग भी। शराब से हमें हमेशा परहेज रहा है, पर वहां 'ना' नहीं कर सका। बहरहाल, पीने के बाद उर्दू का एक शेर जरूर याद आया।

"जाहिद शराब पीने से काफिर बना मैं क्यों,
क्या एक चुल्लू पानी में ईमान बह गया ?"

हालांकि इस व्यवस्था से प्रति दिन इन का बहुत खर्च होता होगा लेकिन मेरा ख्याल है, प्रचार की दृष्टि से यह निस्संदेह लाभदायक है। पश्चिमी देशों में विज्ञापन का बड़ा महत्त्व है। आदम के जमाने के कांटे पर निःशुल्क वजन करने के बाद इस 'एक पेग' के मुफ्त बांटने पर उन की बिक्री बहुत बढ़ जाती है। हमारे यहां चाय का प्रचार भी इसी तरह से हुआ था। मैं ने देखा, वहां जाने वाले सभी कुछ न कुछ खरीद करते ही हैं। मेरी तरह खाली हाथ तो एकआध ही आता होगा।

अगले दिन भी ब्रजमोहन बिड़ला से मिलने डारचेस्टर होटल गए। बड़ी चहलपहल थी। लंबे चोगे पहने अरब काफी संख्या में इधरउधर आजा रहे थे। पता चला, कुवैत के कोई शेख वहां ठहरे हैं। उन्होंने इस मंहगे होटल का एक पूरा तल्ला ले रखा है, क्योंकि इन के मुसाहिबों और बेगमों की एक पूरी टोली इन के साथ आई है। मुझे पचीस वर्ष पहले के भारतीय राजाओं की याद आ गई। वे भी तो यहां आ कर इस तरह बेशुमार दौलत लुटाते थे। ऐश और मौज में गरीब भारत के करोड़ों रुपए खर्च कर डालते थे। कभीकभी तो लाखों रुपए के कुत्ते ही खरीद लेते थे और इन की संभाल के नाम पर सुंदर लड़कियां भी ले जाते थे। सोचने लगा, 'बिना मेहनत की कमाई पर मोह कैसा ? चाहे वह गरीब प्रजा से ली गई हो या तेल की रायल्टी से मिली हो।

रविवार का दिन था। श्री ब्रजमोहन बिड़ला ने समुद्र तट के सुंदर शहर ब्राइटन में पिकनिक का आयोजन कर रखा था। हम आठदस व्यक्ति रहे होंगे। तीन बड़ी हंवर सिडली मोटरें थीं। उन में से दो की ड्राइवर स्वस्थ और सुंदर युवतियां थीं। लंदन से बाहर आते ही सड़क के दोनों बाजुओं पर करीने से बने सैकड़ों एक सरीखे मकान दिखाई पड़े। बीचबीच में हरियाली। लंदन की घुटन में मानो राहत मिली।

बिड़लाजी के लंदन आफिस के मैनेजर श्री गम्बे ने बताया कि ये सारे मकान पिछले पंदरह वर्षों में बने हैं जिन में अधिकांश मध्यम वर्ग के लोगों के हैं। आवास की समस्या को हल करने के लिए सरकार अत्यंत उदार शर्तों पर ऋण देती है।

आबादी धीरेधीरे पीछे छूटती गई और हम खुली जगह पर आ गए। हमारी कारों में तेज रफ्तार की होड़ लग गई। लड़कियां भला क्यों हार मानतीं। सुई ८० मील पर जा पहुंची। प्रभुदयालजी ने बहुतेरा समझाने का प्रयत्न किया पर हमारी ड्राइवर केवल मुसकराती रही और गाड़ी की चाल तेज करती गई। आखिर, हम लोगों ने आंखें बंद कर ली। किसी तरह ब्राइटन पहुंचे। यहां के एक प्रसिद्ध होटल में लंच लिया। निरामिष भोजन के लिए उन्हें लंदन से पूर्व सूचना दी जा चुकी थी। शायद बिड़लाजी की टिप के बारे में होटल के कर्मचारियों को पहले से पता था, इसी लिए खातिरदारी भी उसी तरह जम कर हुई।

लंच ले कर जब हम समुद्र के किनारे आए तो ऐसा लगा कि लंदन उठ कर यहां आ गया हो। किनारे पर तीनचार लंबे डेक बने हुए थे जिन पर दुकानों के सिवा कार्निवल सा लगा था। तरहतरह के खेल और जुए चल रहे थे। हम लोगों ने भी किस्मत की आजमाईश करनी चाही। मैं ने दस रुपए की गेंदें खरीदीं। इन्हें सामने खड़े राक्षस के मुंह में डालना था। मुंह काफी खुला था, होंठों का फासला भी बहुत था, पर एक भी गेंद भीतर न जा सकी। शायद बनावट की खूबी हो, वैसे निशाने अच्छे साधे थे। प्रभुदयालजी तथा अन्य साथियों ने भी कुछ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
न कुछ अलगअलग खेलों पर खर्च किया। लगभग एक सौ रुपए खर्च करके इनाम में मिली दो कागज की टोपियां और अन्य दोतीन मामूली चीजें। स्टालों में बहुत सी कीमती चीजें सजा कर रखी गई थी, लेकिन वे सब दिखावे के लिए ही थीं, क्योंकि दूसरे लोग भी हमारी तरह अपने इनाम देखदेख कर हंस रहे थे। एक वृद्धा तो बुरी तरह चिढ़ गई। वह दुकानदारों को ठग बता कर बुराभला कह रही थी।

शाम हो रही थी। हम समुद्र के किनारे-घूमने निकले। कई मील लंबा समुद्र तट है। जूहू, गोपालपुर या पुरी से कहीं अधिक विस्तार है। सैलानी शनिवार को ही मनपसंद जगह रोक लेते हैं। खानेपीने का सामान साथ ले आते हैं। यहां आ कर अपनी व्यावसायिक अथवा नौकरी की सारी परेशानियां और दिक्कतें भूल जाते हैं। किसी के साथ उस की स्त्री और बच्चे हैं, तो कोई प्रेयसी के साथ है। सभी जोड़े में मिलेंगे।

यूरोप में स्त्रियों के समक्ष पुरुषों को पूरे कपड़ों में रहना ही शिष्टता है। पर इन स्थानों पर इस की छूट है। इसलिए पुरुष केवल जांघिया पहने मिलेंगे और बिकनी पहने स्त्रियां। सभी बालू पर धूप सेंक कर बदन को सांवला बनाने की कोशिश करते रहते हैं। होनोलूलू की तरह तो यहां नजारे नहीं दिखाई दिए, पर जितना भी देखा वह भारतीय मर्यादा की लक्ष्मण रेखा से कहीं बाहर था।

एक जगह बहुत शोर शराबा हो रहा था। काफी भीड़ लगी थी और पुलिस वाले भी इकट्ठे हो गए थे। पूछने पर पता चला कि छात्रों के दो दलों में मारपीट हो गई। अनेक के सिर फटे हैं, किसी की कलाई टूटी है तो किसी की टांग। आश्चर्य की बात यह थी कि लड़ने वालों में लड़कियां भी थीं। खूब जम कर हाकीस्टिक चला रही थीं। हमें बताया गया कि यहां 'राकेट' और 'माड' नाम के दो दल विद्यार्थियों के हैं, जो एकदूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में रहते हैं। इसलिए यहां कहीं ये इकट्ठे हुए कि झगड़ा और मारपीट हो जाती है।

मैं तो समझता था कि हमारे देश में ही उच्छृंखलता का रोग छात्र समाज में है, पर यहां आ कर देखा कि इस की हवा यहां कहीं अधिक है।

वापस जब लंदन आए, रात हो चुकी थी। दिन में इतनी ज्यादा आइस्क्रीम खा चुका था कि डिनर लेने की तबीयत नहीं थी। इस के अलावा, ऐसे मौकों पर प्रभुदयालजी याद दिला देते थे कि 'खाए कि न खाए तो न खाए भला,' अर्थात कम भूखा रहने पर नहीं खाना ही अच्छा रहता है, इस से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

लंदन में हमारे इतने परिचित मित्र थे कि होटल या रेस्तरां में खाने का कम ही मौका लगा। दूसरे दिन दोपहर में श्री जी० डी० बिन्नानी के लंदन कार्यालय के व्यवस्थापक श्री बागड़ी के यहां गए। वे यहां एक फ्लैट ले कर सपत्नी रहते हैं। बहुत ही सुस्वादु भारतीय भोजन मिला। हलुवे के साथ बीकानेरी भुजिए भी थे। बहुत दिनों बाद लता मंगेशकर और मुकेश की सुरीली आवाज में रिकार्डों पर हिंदी गाने भी सुनने को मिले।

रात के भोजन का निमंत्रण था—रामकुमारजी के मित्र श्री हून के यहां। बहुत ही संभ्रांत महल्ले में श्री हून का अपना मकान है। १५ वर्ष पहले साधारण स्थिति में यहां आए थे। अब तो यहां के विशिष्ट व्यापारियों में इन की गणना है। टर्नर मोरिसन नामक प्रसिद्ध फर्म के अध्यक्ष हैं। उन्होंने हमारे सिवा और भी दसपंदरह मित्रों को बुलाया था। भोजन के साथसाथ विविध चर्चाएं—विशेषतः भारतीय अर्थनीति और राजनीति पर चलती रहीं। पता ही नहीं चला कि रात के बारह बज गए हैं। बहुत मना करने पर भी श्रीमती हून हमें अपनी कार से होटल तक पहुंचा ही गईं।

दो दिन बाद हमें लंदन से विएना जाना था। नाश्ता कर सुबह की चेयरिंग क्रास से ट्रेन में बैठ कर लंदन से लगभग तीन मील दूर अपने एक पुराने मित्र से मिलने चला गया। १५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वर्षों के लंबे अर्से के बाद हमारी मुलाकात हुई। मैं ने महसूस किया कि मुझे देख कर वह कुछ झेंप सा रहा था । मैं कारण ठीक समझ नहीं पाया । प्राविजन स्टोर्स की अपनी छोटी सी दुकान पर बैठा था । कुशलमंगल पूछने के बाद भीतर से आती हुई एक प्रौढ़ा से परिचय कराया—वह इस की पत्नी थी । भारत से आने के बाद मित्र ने इस से विवाह कर लिया था । पति की मृत्यु के बाद महिला को दुकान और खेती संभालने के लिए एक साथी की जरूरत थी । मेरे मित्र को लंदन के व्यस्त जीवन और नौकरी की झंझटों से कहीं अच्छा यह काम और स्थान जंच गया । एक परिचित के माध्यम से परस्पर ज़ानपहचान हो गई और दोनों विवाह सूत्र में बंध गए । अब मुझे उस की झेंप का कारण समझ में आ गया ।

पत्नी उमर में मेरे मित्र से करीब दसबारह साल बड़ी थी । फिर भी मैं ने उसे हर काम को तत्परता और उत्साह से करते हुए पाया । उस दिन की दोपहर का भोजन मुझे आज तक याद है । थोड़ी ही देर में खीर, रोटी, फलों के मुरब्बे और न जाने कितने तरह के सुस्वादु व्यंजन बने थे । मैं ने यह भी लक्ष्य किया कि इतनी खातिरखिदमत और मेहनत करने पर भी वह अपने पति का काफी अदब करती थी, शायद डरती भी थी । आम तौर पर पश्चिमी देशों की पत्नियों में ऐसा कम ही होता है । मुझे अपने यहां के वृद्ध पतियों की याद आई जो जवान बीवियों से झिड़कियां खा कर भी दांत निपोरते रहते हैं । शायद आयु के अधिक अंतर से मन में हीनता की भावना का संचार होना स्वाभाविक है ।

पूरे दिन उन्होंने मुझे अपने यहां रोके रखा । मुझे भी यहां बड़ी शांति मिली । लंदन की भीड़ और व्यस्त जीवन ने दिमाग को बोझिल बना दिया था । पुराने दिनों की याद कर हम दोनों कभी खूब हंसते तो कभी उन्हीं में डूब जाते थे । हम दोनों ने ढाका, नारायणगंज और खुलना आदि पटसन के केंद्रों की बहुत बार एक साथ यात्रा की थी । बड़ी आरजू के बाद पतिपत्नी दोनों ने छः बजे शाम को नाश्ता कराने के बाद लंदन वापस आने दिया । स्टेशन तक अपनी कार से पहुचाने आए ।

लंदन पहुंचा, उस समय आठ बज चुके थे जोरों की बारिश हो रही थी । अपने एक भारतीय मित्र के पुत्र के विशेष आग्रह पर आठ बजे उसके घर पर भोजन करना स्वीकार कर लिया था । वह यहां पढ़ने के लिए भारत से आया था किंतु एक स्पेनिश विधवा से विवाह कर यहीं बस गया था । उस का घर स्टेशन से करीब बारहचौदह मील पर था । जोरों की वर्षा, और मेरे पास छाता नहीं । दूसरे ही दिन मुझे लंदन छोड़ देना था । अतएव, एक दुकान से बरसाती और बच्चों के लिए कुछ उपहार खरीद कर जब उस के घर पहुंचा तो रात के नौ बज चुके थे । मैं ने देखा पतिपत्नी दोनों उस वर्षा और ठंड में मेरी प्रतिक्षा में सड़क पर खड़े थे । उन्हें भय था कि मुझे शायद उन का फ्लेट खोजने में दिक्कत हो । देर के कारण अपने ऊपर झल्लाहट सी हो रही थी, उन्हें इस हालत में देख कर झेंप सा गया । यदि न आता तो न जाने कितनी देर तक भीगते रहते ।

दोनों बड़े खुश हुए । छोटा सा, दो कमरों का फ्लेट था । पत्नी की मां और पहले पति द्वारा एक बच्ची भी साथ रहती थी । पतिपत्नी दोनों काम कर जीवन निर्वाह कर रहे थे । रहनसहन का स्तर बुरा नहीं था । लड़के की इच्छा देश जा कर पिता से मिलने की थी पर सुयोग नहीं बन पा रहा था ।

लड़के ने बताया कि इस महल्ले में और भी सैकड़ों भारतीय परिवार हैं, जिन में पंजाबी अधिक हैं । सिक्खों की संख्या भी काफी हैं । ये नौकरी, दुकानदारी और मजदूरी करते हैं । इन में से बहुतों ने तो भारत से अपने स्त्रीबच्चों को भी यहां बुला लिया है और स्थायी रूप से बसते जा रहे हैं । इन में शादी विवाह, रीतिरस्म अभी तक भारतीय हैं । कभीकभी तो इन अवसरों पर ढोलक पर गीत वगैरह भी होते रहते हैं ।

मौसम बहुत खराब था और रात भी ज्यादा हो गई थी । इच्छा होते हुए भी यहां के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीयों से मिल नहीं सका। उन्हें मेरे आने की सूचना पहले ही दे दी थी. उन में से कुछ मिलना चाहते थे। भांगरा नृत्य और गीत का प्रोग्राम भी रखना चाहते थे. पर पहले से प्रोग्राम तय नहीं हो सका था।

रात बारह बजे होटल पहुंचा। दबे पांव कमरे में घुस रहा था. देखा कि प्रभुदयालजी जाग रहे हैं। सनसनाती ठंडी हवा और जोरों की वर्षा में मुझे बाहर से लौटा न देख कर परेशान हो रहे थे और मेरी राह देख रहे थे। सुबह आठ बजे ही उन के पास से चला गया था।

बिस्तर पर पड़ते ही नींद आ गई।

दूसरे दिन सुबह हमें विएना के लिए रवाना होना था। जल्दी ही उठ कर नाश्ता इत्यादि कर तैयार हो गए। नौ बजे कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। देखा. श्री हून ने अपने पुत्र को एयरपोर्ट तक पहुंचाने के लिए भेजा था। हमारे मना करने पर भी स्वयं ड्राइव कर हमें अपनी गाड़ी से उस ने एयरपोर्ट पर पहुंचा दिया। एक डब्बा हाथ में देते हुए उस ने कहा. "आप लोगों के लिए माताजी ने मिठाइयां भेजी हैं।"

बहुत वर्षों से श्रीमतीहून भारत नहीं जा सकी थीं। शायद. इसी लिए अपने देश के लोगों के प्रति स्नेह और ममता उड़ेल कर उस की पूर्ति कर रही थीं। वैसे इतने व्यस्त नगर में इतनी फुरसत कहां और किसे है? जब कि साधारण सी औपचारिकता निबाहनी मुश्किल हो उठती है।

मुझे लगा श्रीमती हून की मिठाइयों ने भारतीय तरीके से विदाई को मधुर बना दिया।

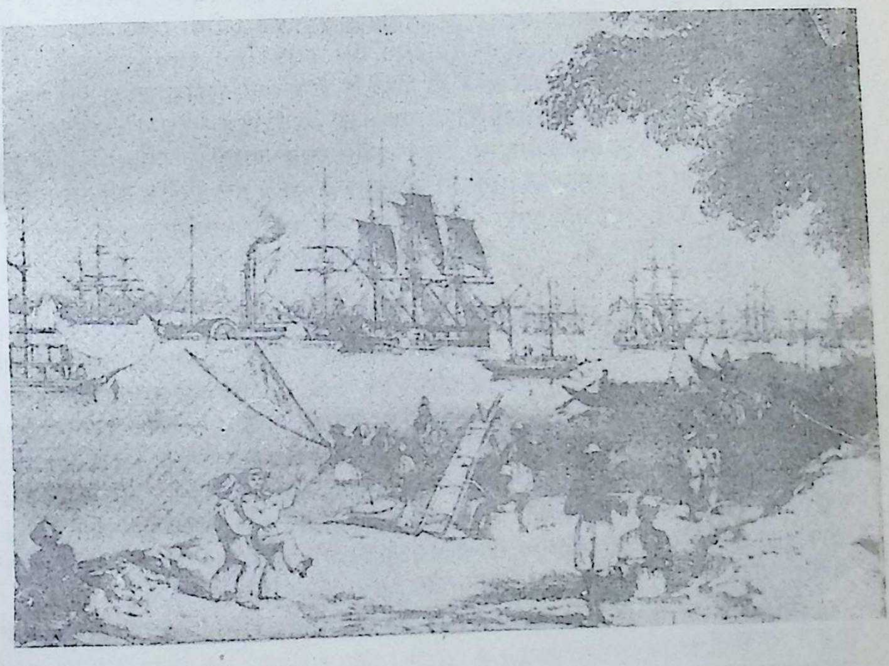

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इंगलैंड से कितना अलग ?

स्काटलैंड

स्काटलैंड, ब्रिटेन का उत्तरी भाग है । सरसरी तौर पर वेल्स, आयरलैंड, इंगलैंड और स्काटलैंड में विशेष अंतर नहीं दिखाई देता । फिर भी, गौर से देखा जाए तो इन राज्यों की संस्कृति और यहां के निवासियों के रहनसहन, चालढाल, पहनावे, यहां तक कि बोली में भी स्पष्ट अंतर दिखेगा । इंगलैंड और स्काटलैंड के प्राकृतिक दृश्यों और भौगोलिक बनावट में भी काफी अंतर है । स्काट और अंगरेजों के शारीरिक गठन में भी भिन्नता है । स्काट लंबे कद और चौड़ी हड्डी वाले तथा अपेक्षाकृत कष्टसहिष्णु होते हैं ।

ब्रिटेन का इतिहास बताता है कि इंगलैंड़ और स्काटलैंड में एक अरसे तक लड़ाइयां होती रही हैं । दोनों पृथकपृथक राज्यों के रूप में थे । कभी इंगलैंड का अधिकार स्काटलैंड पर हो जाता था तो कभी स्काट शासक इंगलैंड पर आधिपत्य जमा लेते । दोनों राज्यों की जनता में आपस में विवाह होते थे पर ये बहुप्रचलित नहीं थे । आखिर सन १७०७ में दोनों राज्य एक होकर ग्रेट ब्रिटेन बने । लेकिन आज भी दोनों के बीच भावानात्मक एकता पूर्ण रूप से पैदा नहीं हो पाई है । स्काट लोगों की शिकायत है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट में उन का प्रतिनिधित्व कम है और अंगरेज उन पर प्रभुत्व जमाए रखना चाहते हैं । जो भी हो, यह उन का पारस्परिक या घरेलू विवाद है । विदेशों में जहां कहीं भी वे गए, ब्रिटिश बने रहे । दोनों के दृष्टिकोण में कोई अंतर नहीं आया । निस्संदेह यह एक स्वस्थ राष्ट्रीय गुण है । भारत में हम इन्हें अंगरेज नाम से ही जानते थे और इसी नाम से इनका उल्लेख सब जगह होता था ।

कलकत्ता में जूट की जिस व्यापारी फर्म में मैं लंबे अरसे तक काम करता रहा वहां स्काटिश लोगों की ही प्रधानता थी । उन दिनो वे पटसन के काम में विश्व में सब से अधिक जानकार माने जाते थे । यहां काम करने वाले अंगरेजों को हर तीन वर्ष बाद एक साथ छः महीने की छुट्टी अपने देश जाने के लिए दी जाती । छुट्टी की अवधि ज्योंज्यों नजदीक आती, वे 'होम......स्वीट होम' (घर प्यारा घर) अलापने लगते । अपने देश के पर्वतों, नदियों, खेतों, चरागाहों की तारीफ करते समय उन के चेहरों पर एक उल्लासपूर्ण आभा सी दिखाई देती थी । अपने काम के दौरान मेरी उन से घनिष्टता हो गई थी । मैं उन से पूछता, "आप स्वीट होम' कहते हैं, उसी तरह हमें भी अपना घर प्यारा लगता है । फिर क्यों 'वंदेमातरम्' या 'भारत प्यारा देश हमारा' कहने पर आप लोग इसे गुनाह मानते हैं ?"

उत्तर में वे या तो चुप रहते या कह देते कि यह राजनीतिक विवाद का प्रश्न है, हमें इस में नहीं पड़ना है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो भी हो, अंगरेजों से और खास तौर से स्काट लोगों से, उन के देश का जो वर्णन सुनने को मिला, उस से उसे जानने की और देखने की इच्छा पैदा हो गई। अंगरेजी साहित्य में भी हमारे यहां की तरह वीर गाथाएं ज्यादातर स्काटलैंड के वीरों पर ही लिखी गई हैं। बचपन में राबर्ट ब्रूस की कहानी पढ़ी थी। उस के बाद स्काट की रचनाएं पढ़ कर इच्छा होती थी कि देखूं हमारे राजस्थान से स्काटलैंड की क्या समता है, इंगलैंड पहुंचने पर अपनी उस इच्छा की पूर्ति का अवसर मिला।

एक दिन अचानक ही लंदन से ट्रेन में बैठ कर स्काटलैंड के औद्योगिक नगर डंडी जा पहुंचा। रात थी इसलिए सफर में रास्ते के दृश्य देख नहीं पाया। सवेरे जब नींद खुली, खिड़की से देखने में आया कि बरफ की चादर से ऊंचीनीची जमीन ढकी हुई है। वृक्ष और मकानों की छतें भी बरफ से ढकी पड़ी थीं।

ट्रेन के डब्बे से बाहर निकलते ही बरफानी तूफान और बौछारों ने कंपकपी पैदा कर दी। कड़ाके की सर्दी थी। उस समय तक मैं उत्तरी ध्रुवांचलीय देशों की यात्रा नहीं कर पाया था इसलिए यहां की सर्दी असह्य मालूम पड़ी। अपनी आदत के कारण किसी को पूर्व सूचना नहीं दी थी। कड़ाके की सर्दी, और एकदम नई जगह। अनजान अपरिचित मैं अपने इस स्वभाव पर खुद ही पछता उठा। बेहरहाल, एक टैक्सी वाले से किसी होटल में ले चलने को कहा।

उन दिनों वहां बरफ के खेलों के कई एक टूर्नामेंट चल रहे थे, ठहरने के लिए स्थान का अभाव था खैर, तीनचार होटलों के चक्कर लगाने के बाद एक में जगह मिल ही गई। नाश्ता करने के बाद टेलीफोन डायरेक्टरी उठा कर अपने मित्र मिस्टर बैंक का पता ढूंढ निकाला और उन्हें फोन किया। वह अपनी खेती देखने गए थे। एक दूसरे मित्र जोन स्मिथ का नाम ढूंढने लगा तो आश्चर्य में पड़ गया। हमारे यहां के राम, श्याम और गोपाल की तरह वहां स्मिथ बहुप्रचलित नाम है। एक बार तो सोचा कि जितने जोन स्मिथ हैं, सब को फोन करूं पर अपने इस खयाल पर खुद हंसी आ गई। सोचा कि रविवार का दिन है लोगों को अकारण ही परेशान करने से क्या लाभ ?

आखिर तीनचार गरम कपड़े पहन, छाता ले, होटल से बाहर निकला और ड्यूटी पर खड़े पुलिस सार्जेंट की सहायता ली। वह बड़ी तत्परता से पास की एक पुलिस चौकी पर मुझे ले गया। अपनी जगह उस ने एक अन्य सार्जेंट को ड्यूटी पर भेज दिया। वहां से उस ने दोतीन जॉन 'स्मिथों' को फोन भी किए पर काम बना नहीं। मेरे पास अपने मित्र स्मिथ का पता था लेकिन यह तो रविवार का दिन था। सारे दफ्तर बंद थे। सार्जेंट ने अनुमान लगाया कि केयरटेकर आफिस के ऊपर की मंजिल में रहता होगा।

उस ने विचार प्रकट किया कि आफिस चल कर केयरटेकर से मिला जाए और मिस्टर स्मिथ के घर का पता मालूम किया जाए। मैं हिचकिचा रहा था कि इसे नाहक परेशानी होगी पर सार्जेंट कब रुकने वाला था। बरफीली हवा और बौछार में मेरे साथ हो लिया। लगभग एक मील पैदल चल कर हम स्मिथ के दफ्तर पहुंचे। केयरटेकर बाजार गया हुआ था पर उस की पत्नी घर पर थी।

मिस्टर स्मिथ का फोन नंबर मिल गया। केयरटेकर की पत्नी ने आफिस का कमरा भी खोल दिया। हम ने फोन किया, स्मिथ घर पर ही था। उस का घर वहां से सातआठ मील दूर रहा होगा। उसे मेरे लंदन आने का समाचार तो मिल चुका था। पर डंडी आने के प्रोग्राम का पता नहीं था। होता भी कैसे, प्रोग्राम अचानक ही तो बना था ! बड़ा प्रसन्न हुआ और खुद ही चंद मिनटों में बड़ी सी हंबर कार ले कर आ पहुंचा। सार्जेंट विदा लेते समय मुझे धन्यवाद देने लगा कि इतने समय तक मेरा साथ रहा। मैं उस के सहज, शिष्टतापूर्ण व्यवहार पर चकित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था । मन ही मन सोचता रहा अपने यहां के पुलिस विभाग के सभी अफ़सरों के बारे में ।

बारह वर्ष की लंबी अवधि के बाद अपने मित्र से मिल रहा था । मैं ने देखा, वह पहले से भी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न था, सिर्फ उस के बालों में कुछ सफेदी आ गई थी ।

उस का बंगला एक छोटी सी पहाड़ी की टेकरी पर था । बहुत ही सुंदर और सुरम्य स्थान लगा । चारों तरफ हरियाली और बीचबीच में फूल खिले थे । थोड़ीबहुत बरफ अब भी थी मगर उस से प्राकृतिक सौंदर्य में और भी निखार आ गया था । हम जैसे ही घर पहुंचे, एक निहायत खूबसूरत युवती ने मुस्कराते हुए स्वागत किया । स्मिथ ने परिचय कराया, "मेरी पत्नी डोरा......"

डोरा ने बताया, "मेरे पति अकसर आप की चर्चा करते रहे हैं ।"

खाने की व्यवस्था इतनी देर में हो चुकी थी । भूख मुझे भी लग आई थी । बहुत ही जायकेदार निरामिष भोजन मिला । मिसेज स्मिथ ने बड़े स्नेह और आग्रह के साथ भोजन कराया । उस का व्यवहार कुछ ऐसे ढंग का था मानों वर्षो का परिचय हो । मैं भोजन कर रहा था और सोचता जाता था कि इन दोनों की उमर में लगभग पचीस वर्ष का फर्क है । द्वितीय पत्नी और वह भी सुंदरी, फिर भी परस्पर इतना स्नेह और विश्वास ! हमारे देश में गरीब मांबाप की बेटियां ही वृद्धों को दी जाती हैं । पर ऐसी स्थिति में पत्नियां पति पर शासन करती हैं और उन पर संदेह भी ।

स्मिथ ने मुझे मौन देख कर पूछा, "क्या सोचने लगे ?"

मैं ने मुसकरा कर कहा, "अब मालूम हुआ कि आप जवान कैसे बन गए !" दोनों की जिज्ञासाभरी दृष्टि मुझ पर थी । मैं कहने लगा, "हमारे यहां कामशास्त्र के आचार्य महर्षि वात्स्यायन ने लिखा है कि युवा, स्वस्थ, मधुरभाषिणी और सुंदरी स्त्री के साथ अच्छा भोजन और सेवा मिले तो वृद्ध भी जवान हो जाता है । अब समझ जाइए कि आप पर उमर का असर क्यों नहीं हुआ ।"

दोनों हंसने लगे ।

स्त्रियों को अपनी प्रशंसा अच्छी लगती है, चाहे वे किसी भी देश की हो । मेरी बात से डोरा बहुत खुश हुई । खातिरदारी और अधिक हो गई । उस ने विशेष अनुरोध किया कि वात्स्यायन के कामविज्ञान का अंग्रेजी अनुवाद अवश्य भेज दें । मैं ने वादा किया कि भेज दूंगा ।

यूरोप के विद्वानों में भारतीय संस्कृति और दर्शन के प्रति बड़ा आदर है पर जनसाधारण भारतीय ज्योतिष में विश्वास रखते हैं । मैं इस बात को पहले से जानता था इसलिए विदेश यात्रा के पूर्व मैं ने हस्तरेखा के संबंध में दोचार पुस्तकें पढ़ कर हलकी सी जानकारी ले ली थी। किताबें साथ रखता था । अकसर मित्रमंडली या परिचितों में लोग अपनीअपनी किस्मत के राज पूछ बैठते थे । मैं ने कुछ गोलमोल बातें याद कर लीं । दस में सातआठ तो सब पर सही बैठ ही जाती थीं । भविष्य जानने की इच्छा मंत्री से चपरासी और राजा से रंक तक सब में रहती है । मेरे नुसखे से मुझे बड़ी मदद मिल जाती । ट्रेन, बस, रेस्तरां और क्लबों में रंग जम जाता ।

डोरा का हाथ भी मैं ने देखा, बताया, "बचपन संघर्षमय वातावरण से गुजरा है, पर जवानी और बुढ़ापा आनंद से कटेगा । प्रसिद्धि भी है भाग्य में । समाजसेवा के प्रति रुचि होनी चाहिए क्योंकि दया और करुणा के लक्षण हैं । संतान दो होनी चाहिए ।"

इतनी ही देर में डोरा के चेहरे पर लाली आ गई थी । वह खुश नजर आई कहने लगी, "देखा, जोन, मिस्टर टांटिया कहते हैं कि हमें दो बच्चे होंगे । मैं ने तो तुम से पहले ही कह दिया था ।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं सोचने लगा, चाहे पूरब की हो या पश्चिम की, नारी मातृत्व का गौरव पाए बिना अपने को पूर्ण नहीं मानती । प्रकृति का यह विधान चिरकाल से सर्वत्र एक सा रहा है ।

दोनों ने वादा किया कि पहला बच्चा होने के बाद वे भारत आएंगे और मेरे साथ ताजमहल और कश्मीर देखने जाएंगे ।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद स्मिथ दंपति मुझे आसपास के गांवों में घुमाने ले गए । डोरा कार चला रही थी । मैं उस के पास बैठा था, स्मिथ पीछे की सीट पर । उस दिन हम ने शायद सौ-सवासौमील का चक्कर लगाया होगा । वर्षा कम हो गई थी और हलकी धूप निकल आई थी । खेतों में अनाज की बालियां झूम रही थीं । कहींकहीं खेत कट भी चुके थे । काफी बड़े पैमाने पर यांत्रिक खेती यहां होती है । जगहजगह अनाज के ढेर लगे हुए थे । मोटी-मोटी गायों, भेड़ों और सुअरों को चरते देखा । बातचीत में पता चला कि गायों से औसतन दैनिक तीसपैतीस सेर दूध मिलता है । साढ़ों की कीमत यहां पचास हजार से पांच लाख तक है । यहां से ब्राजील और मेक्सिको तक साढ़ भेजे जाते हैं ।

एक किसान के बंगले पर गए । वह स्मिथ का परिचित था ।

ताप-नियंत्रित छोटा सा मकान, टेलिविजन, टेलीफोन, लाइब्रेरी और सारी आधुनिक सुविधाएं । करीब आधा सेर ताजी क्रीम के साथ चेरी का नाश्ता हम सभी के सामने रख दिया गया । बहुत कहने पर भी वह किसान नाश्ता कम करने पर राजी न हुआ । हमारे गांवों की तरह यहां भी जबरन परोसने का रिवाज है ।

देहातों को देख कर जब हम घर लौटे तो रात के नौ बज गए थे । देखा, चारपांच स्त्रीपुरूष हमारी राह देख रहे हैं । शायद उन्हें किसी ने बता दिया था कि भारत से एक अच्छे ज्योतिषी आए हैं ।वे सब अपनाअपना भाग्य जानने की उत्सुकता ले कर तीनचार घंटों से धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा में बैठे थे । थकावट का बहाना करना उचित नहीं लगा । एकएक कर सब की हस्तरेखाओं को एक कागज पर उतारा और सब को अलगअलग ढंग से अलगअलग बातें बताईं । कुल मिला कर सारांश था : उपकार का बदला अपकार से मिलता है, घरवालों से सहयोग और प्रेरणा कम मिलती है, बचपन में दोतीन बार बीमारी ने घेरा, तीनचार वर्ष बाद अच्छे दिन आ रहे हैं आदि । मैं ने सदा ध्यान में रखा है कि निराशाजनक बातें न कहना ही अच्छा रहता है । कभीकभी इस से मानसिक धक्का पहुंचने का अंदेशा रहता है । आश्चर्य है, मेरी भविष्यवाणी से सबों को संतोष हुआ और धन्यवाद देते हुए चले गए । रह गई केवल एक किशोरी । वह एकांत में कुछ बातें करना चाहती थी । मैं ने उसे अगले दिन सुबह आने के लिए कहा ।

स्मिथ दंपति के साथ भोजन की टेबल पर बैठा । गांव में किसान के घर क्रीम और चेरी बहुत खा चुका था इसलिए भूख थी नहीं । फिर भी आग्रहवश कुछ ले लिया । डोरा से मालूम हुआ कि लड़की का नाम जेन है । एक लड़के से प्रेम हो गया और लड़के ने विवाह का वादा किया था । पिछले साल लड़का न्यूजीलैंड चला गया और वहां शायद किसी दूसरी लड़की के प्यार में फंस गया ।यह है जो उस की प्रतीक्षा में बैठी है, नहीं तो बीसियों युवक इस से शादी करने को तैयार हैं । धनवान पिता की इकलौती बेटी है, कालिज तक की शिक्षा पाई है ।

यही सब बातें तो मैं जानना चाहता था । भोजन कर के जब मैं अपने कमरे में गया, रात के १२ बज रहे थे । मिसेज स्मिथ एक बार कमरे में फिर आई और मेरे लिए की गई व्यवस्था खुद देख कर चली गईं । शायद कुछ देर और बातें करती पर मुझ पर जोरों की नींद आ रही थी ।

दूसरे दिन सुबह डोरा बहुत ही प्रसन्न दिखाई दी । वही फुर्तीलापन और चुहल । कहने लगी, "यदि आप भी जवानी का नुसखा आजमाना चाहते हैं तो जेन या किसी दूसरी लड़की से बात चलाऊं । स्काट लडकियां अच्छी पत्नियां साबित होती हैं । हमारे यहां एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय डाक्टर हैं, वह अपनी स्काट पत्नी से बहुत खुश हैं। सुस्वादु भोजन बनाने की कला और खुशमिजाजी जितनी हम में आप पाएंगे उस की चौथाई भी अंगरेज स्त्रियों में नहीं।"

मैं ने हंसते हुए धन्यवाद दिया और कहा, "क्षमा करें, मेरी स्वस्थ और सुंदर पत्नी भारत में मौजूद है।"

इसी बीच जेन पहुंच गई। बहुत ही सुंदर कपड़ों में, सुमधुर सुगंध लगाए हुए। उपहारस्वरूप एक गुलदस्ता और फल उसके साथ थे। मैं उसे एक एकांत कमरे में ले गया। चारपांच मिनट तक हाथ उलटपलट कर देखे, फिर बताया, "सच्चा प्यार धैर्य मांगता है। प्रेमी पूर्व दिशा में कहीं है, वह जल्द ही आएगा। परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए।"

जेन के चेहरे पर खुशी की लहरें नाच उठीं। उस की पलकें भीग गई थीं। पूछने लगी, "महोदय, कितने दिन में मेरा रोबी आ जाएगा ? उस का स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

वह मुझे अपनी शादी में आमंत्रित करना चाहती थी। मैं ने उसे अपना कार्ड दे दिया।

डंडी की जूट मिलें और डॉक्स देखने में मेरी दिलचस्पी नहीं थी इसलिए हम लोगों ने ५० मील दूर स्काटलैंड की राजधानी और बड़ा शहर एडिनबरा देखने का प्रोग्राम बनाया। दोपहर के खाने के लिए वहां के होटल में सूचना दे दी।

एडिनबरा की आबादी करीब पांच लाख है। इसे उत्तर पश्चिमी यूरोप का एथेंस भी कहते हैं क्योंकि शहर का एक भाग पुराना है और दूसरा नया। बाजार, दुकानें, होटल और क्लब यूरोप के सभी शहरों में लगभग एक जैसे हैं। फिर भी मैं शहर या देश विशेष की कोई खास कलात्मक अथवा कारीगरी की चीज अवश्य संग्रह कर लेता था। एडिनबरा की ऊनी ट्वीड मशहूर है। गरम कपड़ों में आज भी इस का मुकाबला नहीं। कलकत्ते में डी० सी० एल० आई० या हाइलैंडर्स टीम के फुटबाल खिलाड़ियों को या ईडन गार्डन के बैंड बजाने वालों को मोटी धारीदार ऊनी ट्वीड के ऊंचे घाघरे पहन कई बार देखा था। एक स्टोर से मैं ने कुछ कपड़े खरीदे। बहुत मना करने पर भी स्मिथ ने खुद ही दाम दे दिए। इच्छा थी, कुछ और भी चीजें खरीदूं, पर फिर संकोचवश विचार बदलना पड़ा।

होटल में निरामिष भोजन के लिए हिदायत दी गई थी पर खाना खाने के बाद पता चला कि आलू चर्बी में तले गए थे। मन में बड़ी ग्लानि हुई, पर कहता क्या ! होटल वाला यह सुन कर चकित रह गया कि निरामिष भोजन में चर्बी का उपयोग करना भी हमारे यहां वर्जित है।

लंच के बाद हम एडिनबरा कैसल देखने गए। यह ऐतिहासिक दुर्ग ४५० फीट ऊंची पहाड़ी पर है। प्राचीन काल में सुरक्षा की दृष्टि से किले पहाड़ियों पर ही बनाए जाते थे। ऊपर से तीर और गोलों के अलावा शत्रुओं पर पत्थर और गरम तेल भी फेंके जाते थे। इस का वास्तविक इतिहास सातवीं शताब्दी से मिलता है। बताते हैं, राजा एडविन ने इसे बनवाया। अट्ठारहवीं शताब्दी तक, यानि पिछले ११०० वर्षों में इस की यूरोप के महत्त्वपूर्ण दुर्गों में गिनती की जाती थी। इस की चर्चा और उल्लेख इतिहास और साहित्य में भी मिलता है।

शेक्सपीयर के मैकबेथ का मालकम ग्यारहवीं शताब्दी में यहां रहता था। ब्रिटेन के इतिहास में प्रसिद्ध मेरी क्वीन आफ स्काट्स भी कुछ दिन तक इस में रही थी। २० इंच के मुंह की १५० मन वजनदार पंदरहवीं शताब्दी की एक तोप भी यहां रखी है। शायद यह अपने जमाने में यूरोप की सब से बड़ी तोप थी। इस कैसल ने बड़ीबड़ी लड़ाइयां देखी हैं। सर वाल्टर स्काट ने इस की पृष्ठभूमि पर अपने कई प्रसिद्ध उपन्यास लिखे हैं।

किले को देख कर मुझे चित्तौड़ और रणथंभौर के गढ़ों की याद आ गई। शौर्य और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साहस का परिचय यहां भी रहा है पर त्याग, बलिदान और मान के लिए मर मिटने का अद्वितीय जौहरव्रत भारत के सिवा और किस देश के इतिहास में देखने को मिलता है ? सिर पर केसरिया पगड़ी बांधे शत्रुओं के उमड़ते सागर में नंगी तलवार लिए वीरों का कूद पड़ना, स्वयं चिता बना कर सतीत्व रक्षा के लिए हजारों रमणियों द्वारा बच्चों को गोद में लिए मृत्यु का आलिंगन कर लेने का गौरवपूर्ण अध्याय हमारे अलावा किस देश के इतिहास में है ? मैं ने डोरा को यह सब बताया तो वह सन्न रह गई। कहने लगी, "भला अबोध बच्चों को भारतीय नारियां किस प्रकार जला देती थीं ?"

मेरा जवाब था, "यह बात आप लोगों की समझ में आने की नहीं है।"

किले के विभिन्न कक्षों में बादशाहों के हथियार, पोशाक और गहने रखे थे। डोरा सब के बारे में बता रही थी। इस ढंग के संग्रह इंगलैंड और यूरोप के विभिन्न नगरों में इतनी बार देख चुका था कि अब उन के प्रति विशेष आकर्षण नहीं रह गया था।

मेरी क्वीन आफ स्काट्स के बारे में इंगलैंड के इतिहास में पढ़ चुका था। स्काटों की यह रानी इंगलैंड की प्रसिद्ध एलिजाबेथ प्रथम की समकालीन थी। इस ढंग की महिलाएं सदियों में एकाध ही हुआ करती हैं। भारत में भी लगभग १५० वर्ष पहले सरधना की बेगम समरू में अत्यधिक का ु क प्रवृत्ति के साथसाथ राजनीतिक षड्यंत्र और साहस का परिचय मेरी की तरह ही मिलता है।

रानी मेरी का महल होलीरूड देखने गया। यह ८०० वर्ष पुराना है। ऊबड़खाबड़ पत्थरों के बेडौल कमरों, पुराने राजाओं की दिनरात के काम में आने वाली चीजों को देख कर ऐसा लगता था कि वास्तव में ३०० वर्ष पहले तक ब्रिटेन हमारे मुकाबले में असभ्य और जंगली देश रहा होगा, जहां या तो समुद्री लुटेरों की या फिर स्काट के उपन्यासों में वर्णित ड्यूक अथवा लार्ड नामक सामंत जमींदारों की प्रधानता रही होगी। इन की क्रूरता और शोषण के तरीकों को पढ़ कर रोएं खड़े हो जाते हैं।

जिस कक्ष में मेरी रहती थी, उसे आज भी पूर्ववत रखा गया है। यहां तक कि ४०० वर्ष पहले के फर्नीचर, बरतन, कपड़े और अन्य वस्तुएं भी पहले की तरह रखी हैं। रानी मेरी के प्रेमी रोजियो की, उस के द्वितीय पति डार्नले ने जिस कमरे में हत्या की थी, वहां पीतल की एक तख्ती भी लगी देखी। समझ में नहीं आया कि कौन सी बहादुरी, त्याग या बलिदान के स्मारक के रूप में इसे लगाया गया है।

यहां दो प्रसिद्ध गिरजे भी देखे। एक रोमन कैथोलिक है, दूसरा प्रोटेस्टेंट। दोनों ही ईसाई धर्म के दो अलगअलग पंथों के हैं। धर्मांधता के कारण दोनों के अनुयायियों ने एकदूसरे के गिरजे को कई बार नष्ट किया और आग लगाई। मैं ने डोरा से कहा, "यदि असभ्य और बर्बर लोग ऐसा जघन्य काम करते तो बात समझ में आ सकती थी पर ब्रिटेन तो संसार में सभ्य कहलाने का दावा करता था। दया, क्षमा, प्रेम की अमर वाणी के प्रचारक यीशू के मंदिरों को ईसाइयों द्वारा नष्ट किया जाना, अन्य धर्म वालों या अल्प विकसित लोगों के सामने ब्रिटेन का क्या स्वरूप उपस्थित करता होगा ?"

डोरा चुप थी मगर स्मिथ ने कहा, "पाशविकता मनुष्य की सब सेबड़ी कमजोरी है। वह किसी भी आड़ में उभर सकती है। उसके लिए धर्म को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। भारत में भी तोउस के उदाहरण हैं।"

डोरा ने प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा।मैं नेकहा, "ठीक है, भारत में उदाहरण हैं पर वह भारतीयों के नहीं। भारत में अरब, तुर्क और ईरानी आए, अपने साथ इसलाम लाए। उसी परंपरा में धर्मांधता ने तोड़फोड़ मचाई, मंदिरों और पुस्तकालयों को नष्ट किया गया। लेकिन मुसलमानों ने एकदूसरे की मसजिदों को कभी नहीं तोड़ा।"

शाम हो रही थी। अभी तक हम सर वाल्टर स्काट का निवासस्थान नहीं देख सके थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्काट की कलम में गजब का जादू था । इस एक कवि और उपन्यासकार ने स्काटलैंड जैसे छोटे से प्रदेश को दुनिया में मशहूर कर दिया।अंगरेजी पढ़ा हुआ शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिस नेस्काट को नहीं पढ़ा होगा । स्काट ने जितना लिखा है, उतना विश्व के दस पाँच ही लेखक लिख पाए होंगे । हमारे यहां रवींद्र की तुलना उससे की जा सकती है ।

स्काटलैंड के रमणीक स्थानों का वर्णन, उस के वीरों की गाथाएं, स्काट ने अपनी रचनाओं में लिपिबद्ध की हैं । उस के उपन्यासों में 'दि एबोट एंड केविलवर्थ' नामक रचना मैं ने दो-दो बार पढ़ी थी, इसलिए जब होलीरूड महल देखा तो कुछ नवीनता नहीं लगी । एडिनबरा की प्रिंसेस स्ट्रीट में उसकी स्मृति में गोथिक शैली का एक भव्य स्मारक बना कर स्काटलैंड की जनता ने वाल्टर स्काट के प्रति स्नेह और कृतज्ञता व्यक्त की है । यहां स्काट और उसके प्रिय कुत्ते की बड़ी सजीव मूर्ति प्रसिद्ध मूर्तिकार सर जान स्टील द्वारा निर्मित है ।

डंडी वापस पहुंचतेपहुंचते रात के दस बज गए । थकान कुछ इतनी हो गई थी कि अपने कमरे में लौटते ही मुझे गहरी नींद आ गई ।

स्काटलैंड तीस हजार वर्ग मील का छोटा सा देश है । हमारे यहां के राजस्थान राज्य की जनसंख्या की चौथाई आबादी है, केवल बावन लाख । इस का उत्तरी भाग पहाड़ी है और वहां आबादी भी बहुत कम है । शिल्प, उद्योगधंधे आदि ज्यादातर दक्षिणी भाग में ही केन्द्रित हैं । यहां का सब से बड़ा उद्योग है, जहाज निर्माण । कोनार्ड लाइन्स के विश्व विख्यात जहाज 'क्वीन मेरी' और 'क्वीन एलिजाबेथ' इस अंचल के ग्लासगो नगर में बने थे । पटसन की बहुत सी मिलें और कारखाने भी स्काटलैंड में हैं । शीशे और स्टील के कारखाने भी इस प्रदेश में काफी हैं । स्काटलैंड की सबसे बड़ी खूबी है इस की बेहतरीन व्हिस्की । यह फ्रेंच और इतालियन शराबों को मात देती है । वे दोनों उम्दा किस्म के अंगूरों के देश होने पर भी, लाख कोशिशों के बावजूद स्काच व्हिस्की की क्वालिटी नहीं बना पाए ।

स्काटलैंड का सब से बड़ा शहर है ग्लासगो । बड़े शहरों में हर जगह एक सा वातावरण रहता है । एक जैसे होटलक्लब, म्यूजियम, नाइट क्लब आदि । इनमें मुझ जैसों के लिए न तो कोई नवीनता थी और न आर्कषण । इसलिए हमारे कुल्लू या मनाली की तरह के उत्तरी स्काटलैंड, जिसे हाइलैंड कहते हैं, देख कर स्काटलैंड की यात्रा समाप्त करने का स्मिथ से अनुरोध किया । उसे दफ्तर में जरूरी काम भी था । शायद डायरेक्टरों की मीटिंग बुलाई गई थी । उसकी फर्म काफी बड़ी थी और वह उस का अध्यक्ष था । इसलिए मीटिंग में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी । अपनी विवशता के लिए वह बड़ा संकोच अनुभव कर रहा था । बड़े प्यार भरे शब्दों में डोरा से उस ने मेरा साथ देने के लिए अनुरोध किया । मैं सोच रहा था कि इतना संपन्न व्यक्ति है, पर जरा भी अभिमान नहीं । अपनी सुंदर युवती पत्नी को मेरे साथ ऐसी बीहड़ यात्रा पर दो दिनों के लिए अकेले छोड़ दे रहा है । हमारे यहां शायद कोई साधारण व्यक्ति भी ऐसा न करे, धनिकों की बात तो दूर रही । इनको एक दूसरे पर कितना गहरा विश्वास है ।

डोरा खुशीखुशी राजी हो गई । जेनी भी वहीं बैठी थी, वह भी साथ चलने को तैयार थी । हम तीनों नाश्ता कर मिस्टर स्मिथ की बड़ी हंबर कार में पश्चिम उत्तर के पर्वतीय अंचल को देखने निकल पड़े । रात में वहीं एक होटल में ठहरने की व्यवस्था की ।

यात्रा लंबी थी । रास्ता भी बहुत उतारचढ़ाव वाला था । इसलिए शोफर को साथ ले लिया । लेकिन कार बारी-बारी से वे दोनों चला रही थीं । शायद इतनी मेहनत न भी करतीं पर मैंने डोरा के दो बच्चे और जेनी को उसका मनचाहा पति जो दे दिया था ।

स्काटलैंड के जिस हिस्से से हम जा रहे थे, वह पहाड़ों, नदियों और झीलों का प्रदेश है । यद्यपि रास्ता चढ़ाव उतार वाला है, फिर भी खेती सभी जगह दिखाई दी।हमारे यहां के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहाड़ी प्रदेशों की तरह कटावदार खेत बने हुए थे।

लंच हमें इंवरनेस में लेना था। यह स्काटलैंड के पर्वतीय उत्तरी अंचल की राजधानी है। १२५ मील लंबा सफर था मगर हंसी, दिल्लगी और बातचीत में रास्ता आसानी से कट गया। समय और थकान का अनुभव भी न हुआ। चाकलेट, बिस्कुट के अलावा फ्लास्क में काफी भी रख ली गई थी।

रास्ते में थोड़ी देर के लिए माधुहेराग नाम के एक पहाड़ी कस्बे के क्लब में कुछ देर के लिए ठहरे। चारों ओर पहाड़ और हरियाली थी। इन की ऊंचाई हमारे यहां के पहाड़ों की सी नहीं थी, फिर भी उत्तरी ध्रुवांचल के निकट होने के कारण यहां सर्दी बहुत थी।

माधुहेराग अच्छा रमणीक स्थान है। देवप्रयाग, केदारनाथ के मार्ग में भी ऐसे पहाड़ हैं, पर यहां के पर्वत सीधे दीवार की भांति खड़े हैं। इन्हें अंगरेजी में 'क्लिफ' कहते हैं। इन ऊंचे कगारों से नीचे, बहुत नीचे रुपहली नागन सी बहती नदी, कुंडली मारे सर्प की तरह घुमावदार सड़कें और घनी हरियाली, आंखों को कहीं और देखने नहीं देती।

हम जहां चाय पी रहे थे, वह स्थान एक ऊंचे स्थान पर था। नीचे गहराई इतनी कि देखते ही कंपकपी आ जाए। डोरा ने बताया कि इस से भी कहीं अधिक ऊंचे और भयावह 'क्लिफ' देखने के लिए हम लोग चल रहे हैं।

इंवरनेस पहुंचे। दिन के एक बजे का समय था। देखा, हम दोनों के लिए निरामिष भोजन की व्यवस्था की गई है। मैं ने डोरा से उस की असुविधा की चर्चा की तो उस ने हंस कर कहा, "मेहमान जब निरामिष में रुचि रखे तो मेजबान को वही करना चाहिए। यों कभीकभी जायका बदलने के लिए भी यह जरूरी है।"

मैं ने भी हंसते हुए तुरंत कहा, "वर्ष में छः महीने घूमता रहता हूं, सब जगह आप सरीखे मेजबान तो मिलते नहीं, खाना तो होटलों में ही पड़ता है। कोशिश रहती है कि निरामिष रहूं पर कहींकहीं अपवाद हो जाता है। आपने देखा, कल एडिनबरा में चर्बी में तले आलू खा लिए।"

वेटर कहने पर भी बिल नहीं ला रहा था। मैं ने कारण जानना चाहा। डोरा ने बताया कि स्मिथ चूंकि डाइनर्स क्लब का सदस्य है इसलिए बिल क्लब की मारफत बाद में भेज दिया जायगा।

इंवरनेस तीस हजार की आबादी वाला पुराना शहर है। समुद्र से थोड़ा हट कर मोरे नदी के किनारे बसा हुआ है पर बड़ेबड़े जहाज यहां साल भर आया करते हैं। ऊनी कपड़े, मशीनें, लोहे का सामान और जहाज बनाने के कारखाने भी यहां हैं। कलकत्ता की जूट मिलों के केलेडोनियन, चिवियट और फोर्ट विलियम आदि परिचित नाम यहां सुनने में आए। हमारे यहां की मिलों के नाम हिंद, बंगाल या कलकत्ता पर नहीं दे कर विदेशी नामकरण करना उचित तो नहीं था पर गुलामी हमारी थी और राज्य इन का, इसलिए इन की मरजी को कौन चुनौती देता!

स्थानीय बाजार और नदी किनारे का चक्कर लगा कर हम आगे जाने की तैयारी करने लगे। जेनी ने कहा, "यहां से लगभग एक मील पर नेस नाम का एक छोटा सा द्वीप है। वहां के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों को देख कर मनुष्य अपनी सारी परेशानियां भूल जाता है। मधुयामिनी मनाने के लिए यहां सैकड़ों जोड़े आया करते हैं। क्या आप वहां जाना पसंद करेंगे?"

हंसते हुए मैं ने उत्तर दिया, "रोबी के विदेश से आ जाने के बाद तुम उस स्थान को अपने लिए सुरक्षित रखो। जब मेरी शादी हुई, उस समय तक न तो हमारे यहां मधुयामिनी की प्रथा चली थी और न इस की सुविधा ही थी। वैसे इस के लिए हमारे यहां भी एक से एक रमणीक स्थल हैं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करीब पांच बजे हम इंवरनेस से सिलमेन के लिए रवाना हुए। यह स्काटलैंड के सब से उत्तरी छोर पर है। रास्ता बीहड़ और सुनसान होता जा रहा था। शाम होने के कारण हवा में ठंडक आ गई थी। डोरा और जेनी बीचबीच में थोड़ी सी व्हिस्की ले कर आदत के अनुसार शरीर को गरम रखने की कोशिश कर रही थीं। मुझ से भी उन्होंने बहुतेरा कहा पर मैं अलर्जी का बहाना बता कर टाल गया। पश्चिमी देशों में यदि कोई महिला साथ पीने या नाचने के लिए अनुरोध करे तो उसे धन्यवाद दे कर मंजूर कर लेने का रिवाज है। इनकार करने पर वे बुरा मान जाती हैं।

इंवरनेस से सिलमेन की दूरी लगभग सौ मील है। इस रास्ते में मैं ने जो दृश्य देखे उन्हें आज भी नहीं भूल पाया हूं। हमारे यहां नदियां पहाड़ों से निकलती हैं और समुद्र में गिरती हैं पर इन उत्तर यूरोपीयादेशों में उलटी बात है। समुद्र से पानी रास्ता काट कर बड़े जोरों से भूभाग में सैकड़ों मील बढ़ जाता है। यहां इन्हें फियर्ड, फर्थ या लोच कहते हैं। पानी के कटाव से रास्ते में कच्ची चट्टानें टूट या कट जाती हैं, पक्के पत्थर बच जाते हैं। इस प्रकार फर्थ या फियर्ड के दोनों ओर के पहाड़ ऊंची दीवार या कगार से बन जाते हैं जिन्हें यहां क्लिफ कहते हैं। ऐसे दृश्य हमारे यहां देखने को नहीं मिलते। सैकड़ों फीट नीचे सागर का जल धरती की गोद में लोटने के लिए बढ़ता जाता है। किनारों पर के ऊंचे कगारों से देखने पर रोमांच हो आता है।

एक जगह देखा, शायद एक हजार फीट से भी ऊंचा क्लिफ होगा। वहां खूंटी गाड़ कर रस्से के सहारे कुछ युवक उतर रहे थे। जरा भी पैर फिसला कि मृत्यु निश्चित। दोनों ओर की पहाड़ियों पर एक मजबूत मोटा रस्सा बांध रखा था। वे लोग इस के सहारे लटकते हुए पार जा रहे थे। मैं सोच रहा था कि खेल या कौतुक जरूर है पर है बड़ा दुस्साहसिक। डोरा से पूछा, "आखिर अकारण इस तरह का खतरा मोल लेने से क्या लाभ ? कहीं चक्कर आ गया, मामूली चूक हो गई तो हजारों फीट नीचे गहरे पानी में गिर कर मौत की लपेट में आ जाना निश्चित है।"

डोरा का जवाब था, "अगर आप ही की बात मान ली जाए तो फिर न तो उत्तरी ध्रुव में स्काट जाता और न तेनसिंह और हिलेरी ही एवरेस्ट पर चढ़ते।"

सिलमेन पहुंचे तो रात के नौ बज गए थे। हलकी वर्षा हो रही थी। सर्द हवा कंपा देने वाली थी। जोरों से 'सांयसांय' की आवाज आ रही थी मानों कोई अजगर फुफकार रहा हो।

होटल की बुकिंग पहले से करा रखी थी। इसलिए कार से उतरते ही दौड़ कर भीतर चले गए। ताप नियंत्रित हाल में पहुंच कर बड़ी राहत मिली। रास्ते भर कुछ न कुछ खाते हुए आए थे। पर इन उत्तरी ठंडे देशों में भूख जोरों की लगती है।ओट्स का दलिया, क्रीम मिला दूध और कई तरह की मिठाइयां परोसी गईं। भोजन कर के उठे, तब दस बजे थे।

डोरा ने अनुरोध किया, "बाहर निकल कर जरा प्रकृति के दृश्य देखे जाएं। इस ढंग की हवा और मौसम उत्तरी अंचल की अपनी विशेषता है, इस का अनुभव आप को जरूर कर लेना चाहिए।"

उस झंझावात में बाहर जाने का मन तो कतई नहीं था। मगर डोरा के अनुनयविनय को टाल न सका। मतवाले हाथी की तरह वेग से चलते प्रभंजन की चाल देखने हम निकल पड़े।

इस अंचल में अमरीका तथा अन्य यूरोपीय देशों से यात्री काफी संख्या में आया करते हैं। इसलिए रात के एकडेढ़ बजे नाचगाने, ताश और तरह-तरह के खेल होते रहते हैं। पर्वतीय स्काटलैंड का जीवन बहुत ही अबाध रहा है। जलवायु और प्रकृति ने यहां के लोगों को सदियों से कष्टसहिष्णु और परिश्रमी बनाया है। इसी लिए उन्मुक्त जीवन और अबाध गति इन के स्वभाव की विशेषता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाच और गाने का समां बंधा था। लोक नृत्य की ताल पर सभी मस्त थे। सब ने पी रखी थी, इतनी कि मतवाले से हो रहे थे। फिर भी देखा, अभद्रता और अशिष्टता कहीं भी नहीं है। डोरा और जेनी, दोनों ने मुझे नाच में साथ देने के लिए कहा। भला मैं उस हाइलैंडरी उछलकूद में कहां साथ देता! थकावट आदि का बहाना बना कर टालमटोल कर ही रहा था कि उन्हें दो साथी खींच ले गए।दोनों खूब नाचीं। अच्छी लग रही थीं। नाचतेनाचते जब थक जातीं तो आ कर दो घूंट गले के नीचे उतार लेतीं।

डेढ़ बज रहे थे।मैं ने उन्हें इशारे से बुला कर कहा कि कल हमें २०० मील का सफर करना है, अब सोना चाहिए। दोनों मुसकराने लगीं और नाच के गोल से निकल आईं।

उस दिन की याद आज भी आ जाती है। शरत बाबू के 'शेष प्रश्न' के कमल की उक्ति भी इस तरह की है कि जीवन के कुछ क्षणों में सुख का भी यथेष्ट मूल्य है।

दूसरे दिन वापस डंडी के लिए रवाना हुए। रास्ते भर दोनों ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, भारतीय स्त्रियों, वैवाहिक जीवन आदि पर तरहतरह के प्रश्न करती रहीं। शाम को डंडी पहुंच गए। स्मिथ राह देख रहा था। इन लोगों ने इस ढंग की यात्रा न जाने कितनी बार की होगी, फिर भी मुझे खुश करने के लिए कहने लगीं कि इस बार की तरह आनंद शायद ही कभी मिला हो। हमारी बातचीत स्मिथ को सुनाने लगीं। स्मिथ कह रहा था, "साथ न जा सका।" अतिथि सत्कार की यह मधुरता बरबस स्नेह में बांध देती है।

अगले दिन सुबह उन सब को भारत आने का निमंत्रण दे कर लंदन के लिए रवाना हो गया। स्टेशन पर स्मिथ, डोरा और जेन के अलावा और कई परिचित आए थे। ट्रेन बहुत दूर निकल गई। तब भी दूर, बहुत दूर डोरा और जेनी के हिलते हुए रुमाल स्नेह बिखेर रहे थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजनीति, शासक बदलते रहे, लेकिन पेरिस की परियां ?

पेरिस में एक रात

लंदन से पेरिस वायुयान द्वारा सिर्फ घंटे भर का सफर है । दृष्टि खिड़की मे बाहर थी कहींकहीं रूई जैसे बादलों के ढेर दिखलाई पड़ रहे थे । लेकिन मन की दृष्टि पेरिस पर थी ।

पेरिस ! फ्रांस की राजधानी ! फ्रांस ! वह देश जो आधुनिक पाश्चात्य विचार धारा का प्रवर्त्तक है । वाल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, अनातोले फ्रांस, रोमांरोलां और बाल्जाक का देश फ्रांस ! पश्चिम को समता, बंधुत्व और स्वाधीनता का पाठ पढ़ा कर साहित्य, संस्कृति और राजनीति को एक नई दिशा देने वाला फ्रांस ! और पेरिस ! फ्रांसीसी लोग उसे 'पारी' कहते हैं लेकिन पारी नहीं, वह परी है—सजीली, छबीली, चिरयौवना ! सीन नदी के दर्पण में वह अपना सौंदर्य देखती है, मुसकराती है और इठलाती है । राजनीति बदलती रही, सत्ता हस्तांतरित होती रही, पर परी मुसकराती ही रही ।

सोचने लगा, 'रोम और एथेंस का वैभव काल को विजित न कर सका, लेकिन पेरिस ? इस को तो निराली ही जन्मघुट्टी मिली है । तीनतीन बार जर्मन तोपें गरजीं, इस के सीने मे टकराईं, पर इस की मुसकान बंद न कर सकीं । यह हंसती ही रही और आज भी हंस रही है, इठला रही है ।'

पेरिस की मीनारें दिखलाई देने लगीं । वायुयान की परिचारिका की आवाज आई, "हम पेरिस पहुंच रहे हैं ।" और कुछ ही क्षणों में वायुयान पंख तोलता हुआ पेरिस की धरती चूमने लगा । कौतूहल बल्लियों उछल रहा था । वायुयान एक हलकी सी उछाल के बाद स्थिर हो गया ।

सीढ़ियों से उतरने लगा । शाम की ठंडी हवा के एक झोंके ने कहा, 'यह पेरिस है ! कदम जरा संभाल कर रखना ।'

पूर्वनिश्चित होटल में पहुंच कर यात्रा की क्लांति दूर की । इस यात्रा में मेरे पास पेरिस घूमने के लिए समय कम था । लंदन में ही तय हो गया था कि सब से पहले पेरिस की रात देखी जाए । भोजन आदि से निवृत्त हो कर घूमने निकला । चौड़ी सड़कें, दोनों ओर वृक्षों की कतारों के पीछे बादलों को छेड़ती हुई मीनारें, गुंबदों की चोटियां बिजली के प्रकाश में मानों परी सी सजी आंखें चौंधिया रही थीं । स्त्रीपुरुष मौज में चले जा रहे थे । दुकानें तो मानों सजी हुई प्रदर्शनी ही हों । चीजें इस कदर आकर्षक ढंग से सजी थीं कि आंखें देखती ही रह जातीं । द्वारपाल सामंत युग के प्रहरी से लगते थे । भड़कीली पोशाकें, ऊंचे कालर, उठी हुई गरदनें और तना सीना, कोई ताज्जुब नहीं यदि इन दुकानों मे गुजरते हुए आदमी को अपनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उम्दा से उम्दा पोशाक में भी कुछ नुक्स दिखलाई पड़ जाए । 'साए लेजां' नाम की विश्वविख्यात सड़क की दुकानों को देखता हुआ आगे बढ़ रहा था । संसार की सब से प्रसिद्ध दुकानें और सब से चतुर तथा व्यवहारकुशल दुकानदार यहीं देखने में आते हैं ।

रात के दस बज रहे थे । पर पेरिस की शाम की अभी शुरुआत ही हुई थी । पेरिस की शाम मशहूर है। जहां कहीं जाओ मौज के सभी साधन मौजूद हैं । कानून की मानों कोई पाबंदी नहीं । ओपेरा, थियेटर, सिनेमा तो सभी शहरों में हैं । लेकिन 'रात्रि क्लब' और 'केसेनो' इस इंद्रपुरी की अपनी विशेषताएं हैं । ऐसे क्लबों की संख्या काफी है । आप की जेब भारी होनी चाहिए, फिर जैसी इच्छा हो वैसा क्लब चुन लीजिए । रात हसतेखेलते—आमोदप्रमोद में गुजर जाएगी ।

मैं इसी तरह का एक रात्रि क्लब देखने जा रहा था कि अचानक किसी ने पीछे से आ कर पूछा, "महाशय, कैसा लगा पेरिस ?"

"अभी तो देख रहा हूं" मैं ने उत्तर दिया ।

उस ने तुरंत ही कहा, "क्या आप पेरिस की कलात्मक चीजें भी देखना पसंद करेंगे ?"

"अवश्य, लेकिन, मुझे जोरों की प्यास लगी है ।"

उस भले आदमी ने एक भेदभरी मुसकान के साथ मेरी ओर देखा और पास ही के रेस्तरां में ले गया । मुझ से पूछा, "कौन सी शराब पसंद करेंगे ?"

मैं ने उसे बताया, "मै शराब नहीं पीता, अलबत्ता दूध या चाय पी लूंगा ।"

पेरिस के उस देवदूत ने बड़े तपाक से मेरे लिए दूध का आदेश देते हुए अपने लिए शराब की फरामाइश कर दी । कहना नहीं होगा कि मुझे ही दोनों का बिल चुका कर अपनी जेब कुछ हलकी करनी पड़ी । शराब पीते हुए, उस ने अपनी जेब से कई तरह की अश्लील तसवीरों का लिफाफा निकाला । लेकिन मेरी बेरुखी देख कर बेचारा चुप रह गया । पर उस ने हिम्मत नहीं हारी । कहने लगा, "महाशय, पेरिस है यहां जीवन है । दुनिया के किसी भी कोने के आनंद प्राप्ति के दुर्लभ साधन भी यहा मनुष्य को सहज प्राप्त हैं । लोग पेरिस आते ही इसी लिए हैं । यहां मनुष्य तो क्या, पत्थर की प्रतिमाएं भी बोलती हैं ।"

इसी दौरान उस लिफाफे से एक मस्ती भरी नवयौवना की तसवीर निकाल कर दिखाते हुए वह कहने लगा, "इसे देखिए । यह मेरी भतीजी है । इस का भारत तथा उस के निवासियों के प्रति बड़ा रुझान है । बहुत अच्छा रहे कि जब तक आप पेरिस में हैं, इस के साथ कुछ समय बिताएं ।'

परंतु मैं पेरिस के ऐसे बिना पहचाने हुए मित्रों से पहले से ही सावधान था, इसी लिए, मोशिए को धन्यवाद देता हुआ रात्रि क्लब के लिए आगे बढ़ गया ।

पेरिस की रात्रि क्लबों में लोग लुकछिप कर नहीं जाते । एक ही क्लब में भाईबहन, पितापुत्र और मांबेटी निस्संकोच भाव से पीते या नाचते हुए मिल जाते हैं । वहां बड़ेबड़े राजनीतिज्ञों, कलाकारों, लेखकों और विचारकों को देख कर भी आप को आश्चर्य नहीं होना चाहिए । पतिपत्नी को भी आप वहां पाएंगे, लेकिन अलगअलग जोड़ों में नाचते हुए ।

मध्यम स्तर के एक क्लब के फाटक पर पहुंचा । सुसज्जित द्वारपाल वरदी पहने खड़ा था । मुझे देख कर, उस ने बड़े अदब के साथ दरवाजा खोला और जरा झुका । मैं अंदर चला गया । पास ही काउंटर पर बैठी एक षोडशी ने मदभरी मुस्कान के साथ ओवरकोट और टोपी रख देने के लिए कहा । ओवरकोट की जरूरत थी भी नहीं । कारण, बाहर जैसी सर्दी अंदर न थी । इमारत ताप नियंत्रित थीं ।

क्लब का प्रवेश शुल्क भारतीय मुद्रा के हिसाब से सोलह रुपए चुका कर ऊपर हाल में गया । फर्श पर मोटे रोएंदार नरम गलीचे । छतों से लटकती हुई बेनिस के कीमती बिल्लोरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शीशों की बड़ीबड़ी फानूसें तथा दीवारों पर कीमती चित्रों और आदमकद आईनों वाला हॉल ऐसा लगता था मानो मध्य युग का कोई भव्य राजप्रासाद हो। फर्क केवल इतना ही था कि जहां उस समय के राजप्रासादों में केवल एक ही देश के लोग दिखलाई पड़ सकते थे, वहां बीसवीं सदी के इस राजप्रासाद में विभिन्न देशों के लोग आनंद ले रहे थे।

सामने से एक वेटर आया। उस ने झुक कर सलाम करने के बाद एक खाली कुरसी की ओर बैठने का संकेत किया। मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार के प्रश्न चक्कर काट रहे थे। रात का सूर्य देखा लेपलैंड में, नंदन कानन की छटा देखी स्विट्जरलैंड में और अब साक्षात इंद्र का दरबार देख रहा हूं पेरिस में। सब के सामने टेबल पर मदिरा के प्याले थे और आंखों में थी खुमारी, मानों सारा वातावरण ही मदिरामय हो। सामने ही एक बड़ा मंच था जिस पर संगीत की हर तान पर पूर्ण और अर्धनग्न युवतियां थिरकती हुई नाच रही थीं। लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह की विलासिता का हाल पढ़ा था। वह इंद्रसभा रचाता था। पर जो मैं यहां देख रहा हूं, इस के सामने वह इंद्रसभा एक खिलवाड़ ही रही होगी!

विचारों मे गोते लगा रहा था कि दो सुंदरियां बगल में आ बैठीं, ऐसे निस्संकोच भाव से जैसे मेरी और उन की वर्षों पुरानी जानपहचान रही हो। वेटर ने भी बड़े तपाक से शराबों की एक लंबी फेहरिस्त पेश की। ऊपर से नीचे तक कई तरह की शराबों के नाम और दाम लिखे हुए थे। कीमत बाजार से छः गुना अधिक थी।

जब मैं ने वेटर से कहा कि मैं शराब नहीं पीता तो उस ने बड़े आश्चर्य से मुझे देखा और तुरंत ही हेडवेटर को बुला लाया।

उस ने बड़े ही नम्र भाव से कहा, "कोई बात नहीं। सुरा न सही, सुंदरियां तो हैं। सुरापान वे करेंगी, मनोरंजन आप का होगा।"

लेकिन इस बात पर भी मेरे राजी न होने पर उस ने अपने निचले होंठ को जरा बिचका कर दोनों कंधों को ऊपर की ओर सिकोड़ लिया। फिर उसी संकोच और विनम्रता के साथ कहा, "महाशय, सुरापान न करने वालों के लिए वह सामने की गैलरी है जहां से खड़े हो कर नाच देखा जा सकता है।" पंच मकार के भैरवी चक्र से बचे रहने के लिए मैं ने गैलरी में खड़े रहने में ही अपनी और अपने बटुए की भलाई समझी।

प्रायः घंटे भर गैलरी में रहा। एक लैमनेड पिया। दाम चुकाए दस रुपए। यहां से सारे हाल की रंगरेलियों का दृश्य बखूबी देखा जा सकता था। सभी यौवन और मदिरा के नशे में झूमते हुए आनंद ले रहे थे। सभी जिंदगी के इस पार की ही फ़िक्र में थे। उस पार की बात सोचने की फुरसत भला किसे थी!

चित्त एकाएक ऊब गया और होटल की ओर लौट पड़ा। मध्य रात्रि का समय था। सड़कों पर भीड़ नहीं थी, पर लोग चलफिर रहे थे। रास्ते में भी कई महिलाओं ने अभिवादन किया। क्यों? मन में आया कि यह प्रश्न पूछें, पर फ्रेंच नहीं जानता था। मैं ने एक स्त्री को तो अंगरेजी में जवाब भी दिया। "मेरे पास पैसे नहीं हैं, आप को निराशा होगी।"

उस का जवाब था। "कितने हैं?"

मै तेजी से कदम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया।

होटल पहुंच कर कपड़े बदले और बिस्तर पर लेट गया। बड़ी शांति अनुभव की। इतने अल्प समय में परियों के पेरिस का जो दृश्य सामने आया, उस ने मस्तिष्क को सोचने के लिए काफी सामग्री दी। यही वह नगरी पेरिस है जहां सऊदी अरब के अमीर और ईरान के पाशा तेल की रायल्टी से प्राप्त धन को पानी की तरह बहाने के लिए आते रहते हैं! अपने देश की बातें याद आ गईं। राजेमहाराजे, रईस और जमींदार भी कभी इस पेरिस में गरीब प्रजा की गाढ़ी कमाई को दोनों हाथ लुटाते थे। कभीकभी तो पेरिस के किसी विख्यात क्लब में एक ही रात्रि का उन का बिल लाखों रुपयों तक पहुंच जाता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यही कारण है कि आज भी भारतीयों के पीछे पेरिस की सुंदरियां दौड़ती रहती हैं। उन बेचारियों को क्या मालूम कि अब न वे राजेमहाराजे रहे और न रजवाड़े। सामंतशाही के अवसान से नरेशों को तो खेद हुआ ही पर यहां की परियों और दुकानदारों को भी कम दुख न हुआ होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कला और संस्कृति का केंद्र

पेरिस

रात्रि क्लबों का माहौल पेरिस का इकतरफा पहलू है। फ्रांस और पेरिस को केवल ऐय्याशी, मौज और शौक की जगह समझना भारी भूल होगी।

पेरिस में दूसरा दिन। तड़के ही उठा। नाश्तापानी किया। आज पेरिस का एक और रूप देखना था। यह नगरी सिर्फ परी ही नहीं है बल्कि फ्रांसीसी संस्कृति, सभ्यता और चेतना का उद्गम है। आज उस पेरिस को देखना था जिस ने बड़ेबड़े विचारक, कलाकार, लेखक और शिल्पी पैदा किए हैं, जिस के विश्वविद्यालय में दीक्षित होने वाले आज भी हजारों विद्यार्थी विदेशों से आते रहते हैं, जिस ने नेपोलियन और फ्रांस जैसे वीर, जोन ऑफ आर्क जैसी वीरांगना, राब्सपिअर जैसे राजनीतिज्ञ संसार को दिए हैं।

इस उद्देश्य से टामस कुक की पैसेंजर बस का एक टिकट २५ रुपए में लिया। इस में सब से बड़ी सुविधा यह थी कि अंगरेजी में सब बातें समझने वाला एक गाइड भी साथ था। इस बस में चालीसपचास यात्री आराम से बैठ सकते हैं। सुबह नौ से बारह बजे दोपहर तक, और फिर दो से छः बजे शाम तक बस पेरिस के मुख्यमुख्य दर्शनीय स्थानों को दिखा देती है। इस में स्थानों को अपनी इच्छानुसार देखने का सिलसिला तो नहीं बन पाता और न किसी स्थान विशेष को अधिक समय तक देखने का अवसर ही मिल पाता है, फिर भी बहुत कम खर्च में इतने सारे स्थान एक ही बार में देख लेने की बड़ी सहूलियत हो जाती है। इस के अलावा कई यात्रियों से परिचय लाभ का भी अच्छा अवसर मिल जाता है। हां, यदि किसी स्थान को विशेष रूप से देखने की इच्छा हो तो उसे दूसरी बार अलग से जा कर देखा जा सकता है।

सब से पहले इतोले पहुंचा। यहां से १२ सड़कें निकलती हैं। ठीक बीचोंबीच साएं लेर्जो का एक वृत्ताकार उद्यान है। इसी उद्यान के केंद्र में विजयतोरण है जिसे सम्राट नेपोलियन ने अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाया था। १६४ फुट ऊंचा फ्रांस का यह स्मारक अपने देश के गौरवमय इतिहास के उस पृष्ठ की याद दिलाता है जब साधारण परिवार में उत्पन्न होने वाले एक असाधारण वीर ने यूरोप के बड़ेबड़े सम्राटों का दर्प चूर कर दिया था। फ्रांस के लोग विलासप्रिय हैं लेकिन वे तलवार के धनी भी हैं। वे अपने देश के लिए, भारत के राजपूतों की तरह, जान हथेली पर रख कर मृत्यु से खेलना भी जानते हैं। इस विजयतोरण के चारों कोनों पर चमकीली धातु से बनी चार भव्य मूर्तियां हैं जिन में कलाकारों ने रण प्रयाण, विजय, शांति और प्रतिरोध की भावनाओं को अपनी कल्पना के अनुसार मूर्त रूप दिया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन मूर्तियों की कारीगरी और कला को देख कर फ्रांस की १८वीं शती की कला का उत्कर्ष प्रत्यक्ष सामने आ जाता है।

संसार प्रसिद्ध साए लेजां नाम की सड़क यहीं से निकलती है, जो संसार भर में अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है। मैं ने यूरोप के प्रायः सभी देशों का भ्रमण किया है। ज्यूरिच, स्टाकहोम, कोपेनहेगन, हेग और ब्रूशेल्स आदि सुंदर से सुंदर शहरों को देखा, लेकिन इतनी सुंदर सुविस्तृत सड़क कहीं भी देखने में नहीं आई। बीच में सवारियों के लिए बहुत चौड़ा रास्ता, दोनों तरफ वृक्षों की कतारें, उस के बाद पैदल चलने वालों के लिए रास्ते, और फिर बड़ीबड़ी दुकानें, जिन में सुई से ले कर हीरेजवाहरात तक खरीदे जा सकते हैं। सड़क की सफाई और चमक तो इतनी ज्यादा है कि बहुत से विदेशियों को तो इस के रबर की बनी हुई होने का भ्रम हो जाता है। हमारे देश में तो यह मशहूर भी है कि पेरिस में रबड़ की सड़कें हैं।

इसके बाद प्लेस द ला कंकर्ड देखा। फ्रेंच सम्राट लुई १५वें ने इस स्मारक को अपनी विजय के उपलक्ष्य में बनवाया था। लेकिन इसी स्मारक के नीचे जनता ने उसके उत्तराधिकारी १६वें लुई की गर्दन फरसे से काट दी थी। वास्तुशिल्प और कला की दृष्टि से निःसंदेह १५वें लुई का यह स्मारक संसार में एक विशिष्ट स्थान रखता है। मिस्र की विजय के बाद नेपोलियन वहां से ७५११ फुट ऊंचा एक स्तम्भ लाया था। २३० टन के पत्थर का यह स्तंभ अनुमानतः ३,३०० वर्ष पुराना है और इस पर प्राचीन मिस्री लिपि में कुछ लेख खुदे हुए हैं। इस स्तम्भ को स्मारक के ऊपर खड़ा किया गया है।

इसके बाद हम विश्व का सबसे विशाल और प्रशस्त राजप्रासाद देखने गए जिसे लूव्रे कहते हैं। इसका निर्माण १२०० ई० में प्रारम्भ हुआ और १८७० ई० में यह बनकर तैयार हुआ था। इसके बनाने में लगभग ७०० वर्ष लगे थे। पहले यह एक किला था, बाद में फ्रांस के राजाओं ने इसे महल के रूप में परिवर्तित कर दिया। अब इसके एक भाग में फ्रांस का वित्तमंत्रालय है और शेष भागों में सात बड़े-बड़े संग्रहालय जिनमें विश्व की बहुमूल्य कलात्मक वस्तुओं का संग्रह है। मोना लिसा का प्रख्यात चित्र मैं देखता ही रह गया। उसके मुख की रहस्यमयी मुस्कान आज भी स्मृति में ताजा है। इस चित्र को बेचा जाय तो वाशिंगटन तथा ब्रिटिश म्यूजियम कई करोड़ रुपये तक दे सकते हैं।

फ्रांस के विभिन्न नरेशों के जवाहरात यहां देखे। राजाओं के पतन के कारण प्रायः सभी देशों में एक से ही रहे हैं—सत्ता का दुरुपयोग और विलासिता। हमारे यहां मुगल सम्राट और लखनऊ के नवाब भी इसी कारण गए लेकिन फ्रांस के राजाओं की अपेक्षा उनकी किस्मत अच्छी रही क्योंकि जनता ने उन्हें केवल तख्त से ही ढकेला, फरसे से उनकी गर्दन नहीं उड़ाई।

लूव्रे के बाद विश्वविख्यात नात्रेदम का प्राचीन गिरजा देखने गया। छोटी सी पहाड़ी पर बना यह गिरजा दूर से भी प्रभावशाली लगता है। पेरिस के इतिहास में इसका स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। नेपोलियन का राज्याभिषेक इसी गिरजे में हुआ था। इस गिरजे की वेदी फ्रांस के अनेकों राजाओं और राजकुमारों के विवाहों की साक्षी है। नात्रेदम फ्रांस की सात्विक भावना का जीवित प्रतीक लगता है।

इस गिरजे की दीवारों पर माता मरियम, ईसा और अनेक संतों के चित्र अंकित हैं। खिड़कियों में रंगबिरंगे पारदर्शी शीशों के टुकड़ों से अत्यंत सुंदर चित्र बनाए गए हैं। यह यूरोप की एक अनूठी कला है, इस गिरजे में उसके बहुत सुंदर नमूने हैं।

नेपोलियन की कब्र देखकर उसकी स्मृति ताजी हो उठी। फ्रांस का यह साधारण व्यक्ति अपने अदम्य उत्साह, साहस और वीरता से यूरोप की राजनीति का श्रेष्ठ नायक बन गया। उसने फ्रांस की नालियों में लुढ़कते हुए राजमुकुट को तलवार की नोंक से उठाकर, अपने सिर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर रख लिया।

एक समय ऐसा भी था जब इंगलैंड में माताएं अपने बच्चों को नेपोलियन के नाम से डराकर सुलाती थीं, फिर एक जमाना ऐसा भी आया जब वह अंगरेजोंका कैदी बन गया। अपने देश से बहुत दूर, सेंट हेलेना के निर्जन टापू पर कैद में उसकी मृत्यु रहस्यमय ढंग से हुई। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने इच्छा प्रकट की थी, कि 'मेरी लाश सीन नदी के किनारे फ्रांसीसियों के बीच दफनाई जाए, जिन्हें मैं ने आजीवन प्यार किया है।'

यह स्पष्ट है कि नेपोलियन के विजय अभियानों से फ्रांस का गौरव बढ़ा था। उसके प्रताप के आगे सारा यूरोप झुक गया था। फ्रांसीसियों ने अपने इस राष्ट्रीय वीर की कब्र को जी भरकर सजाया है और इसके प्रति श्रद्धा और स्नेह प्रदर्शित किया है। जिस जगह नेपोलियन की कब्र है वहां एक बड़ा संग्रहालय भी है। प्रसिद्ध बादशाह लुई १४वें ने घायल सिपाहियों के रहने के लिए इसे बनवाया था। इसी कारण इसका नाम 'घायलों का स्थान' है। यहीं 'चर्च आफ इनवालिद्स' है जिसके गुम्बद में सोने के ३,५०,००० पत्र लगे हैं।

दिल्ली की कुतुबमीनार, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल, लंदन का टावर आफ लंदन, रोम का सट पीटर का गिरजा, जिस तरह अपने-अपने नगर के प्रतीक हो गए हैं, उसी तरह पेरिस का प्रतीक है—एफिल टावर। १५,००० टन लोहे की मीनार के इस ढांचे को खड़ा करने में दो वर्ष का समय लगा था। इसकी ऊंचाई ६८४ फुट है। इस पर चढ़कर सारा पेरिस बखूबी देखा जा सकता है।

लिफ्ट से ऊपर चढ़ा। ऊपर एक छोटा सा रेस्तरां है। ऊपर से देखने पर पेरिस खिलौने सी लगी। पिछले महायुद्ध में विजेता जर्मनों ने इसके लोहे को युद्ध के कार्यों में लगाने की बात एक बार सोची थी लेकिन आने वाली पीढ़ियां उनका नाम किस प्रकार स्मरण करेंगी, यह सोच कर उन्होंने अपना विचार त्याग दिया था।

जैसे लंदन का केंद्रस्थल पिकाडली सर्कस है, इसी तरह पेरिस के सामाजिक जीवन का केंद्र ओपेरा है। यहां कई तरफ से प्रधान सड़कें आकर मिलती हैं। बीचोंबीच में विश्वविख्यात ओपेरा है। यह संसार का सबसे बड़ा थियेटर है, जिसको बनाने में उस समय भी ढाई करोड़ रुपए लगे थे।

इसके साथ ही कलाकारों की ज्ञानवृद्धि के लिए एक उत्तम संग्रहालय भी है, जिसमें नाट्यशाला संबंधी चालीस हजार पुस्तकें और साठ हजार चित्र हैं।सम्पूर्ण भवन संगमरमर से बना है। इस में २,२०० आदमियों के बैठने की जगह है। विश्व के बड़े से बड़े कलाकार की भी यह इच्छा रहती है कि उसे इसके रंगमंच पर एक बार अभिनय करने का अवसर प्राप्त हो।

वरसाई पेरिस से बारह मील दूर है। इतिहास ने यहां कई करवटें बदली हैं। यहां का राजमहल संसार के प्रसिद्ध राजमहलों में से एक है, बल्कि यों कहिए कि यह अपने ढंग का निराला ही है। लुई १३वें ने इसे सन् १६२६ ई० में बनवाना प्रारंभ किया था। इसके बाद उसके जितने भी उत्तराधिकारी हुए, सभी ने इसके निर्माण में अरबों रुपए लगाए। लाखों लोगों से बेगार ली गई।

राजप्रासाद तैयार हुआ। फ्रांस का सरकारी केंद्र पेरिस से हट कर वरसाई के महलों में आ गया जिस में राजकाज के उत्तरदायी दस हजार अमीरउमरावों के रहने की व्यवस्था थी। उस समय वरसाई के राजप्रासाद के उद्यान विश्व में अपनी सुंदरता का सानी नहीं रखते थे। इन की हरियाली कायम रखने के लिए सीन नदी से नहर लाने में करोड़ों रुपए खर्च हो गए थे।

इस महल के पश्चिमी भाग की लबाई १,८०० फुट है। ३७५ खिड़कियां महल के कक्षों को सूर्य के प्रकाश से आलोकित करने के लिए बनाई गई हैं। महल में देखने लायक जगह है—लुई १४वें का शयनागार और उस से लगा हुआ शीशमहल।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह सम्राट लुई १६वें की प्रियतमा महारानी मेरी अंतोनिता का नृत्यकक्ष था। संसार के इतिहास में इस की बहुत चर्चा हुई है। शीशमहल सचमुच अपूर्व कल्पना और रुचि का द्योतक है। बहुमूल्य शीशों के झाड़ टंगे हैं, बिल्लौरी कटाई के अगणित शीशे कमरों की दीवारों में ऊपर से नीचे तक जड़े हुए हैं। जहां प्रकाश की एक ही किरण लाखों में बदल जाए, वहां रोशनी जलाने पर कैसी अपूर्व छटा होती होगी, इस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस को देख कर यही अनुभव होता है कि लुई १६वें और मेरी अंतोनिता ने वैभव, विलासिता और ऐश्वर्य की हद पार कर दी थी। तभी तो नंगीभूखी प्रजा ने उन को महलों से बाहर निकाल कर पेरिस की सड़कों पर खड़ा कर, उन के सिर धड़ से अलग कर दिए थे।

कलकत्ते में जैसे चाइना टाउन, बनारस में ठठेरी बाजार और दिल्ली में दरीवा के आसपास की गलियां हैं, पेरिस में इसी से मिलताजुलता है लेतिन क्वार्टर। यहां पर आज से १,७०० वर्ष पहले रोमन विजेता रहते थे। उस के बाद पेरिस का रूप बदलता गया। लेकिन यह जगह आज भी उसी रूप में है। रूस के महान शासक लेनिन ने यहां की छोटीछोटी चाय की दुकानों में बैठ कर अपने निष्कासन के दिन बिताए थे। उस ने यहीं पर रूसी क्रांति की योजना तैयार की थी। पेरिस के वैभव के साथसाथ इस को भी देखना जरूरी है।

पेरिस कई सदियों से शिक्षा का केन्द्र रहा है और आज भी यहां दुनिया के हर कोने से हजारों की संख्या में विद्यार्थी आ कर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

वैसे तो इस इंद्रपुरी में जितना भी खर्च किया जाए, कम है, लेकिन साधारण ढंग से एक व्यक्ति का निवास और भोजनादि का खर्च चालीस-पैंतालिस रुपए प्रति दिन पड़ जाता है।

फ्रांस में पेरिस और वरसाई के अलावा और भी अनेक दर्शनीय स्थान हैं, लेकिन केवल उन विदेशियों के लिए, जिन की जेब में पर्याप्त धन है और मन में अतृप्त आकांक्षाएं हैं। समुद्र के किनारे बसे हुए मांते कार्लो, नीस और केन आदि प्रसिद्ध शहरों में कंचन और कामिनी के आकर्षण की होड़ सी लगी रहती है। शराब के प्याले होंठों से लगा कर जुए के एकाएक दांव पर करोड़ों का वारान्यारा होता रहता है। मांते कार्लो की तो सारी आय ही उस जुएखाने से है। स्वर्गीय आगा खां का स्थायी निवास स्थान यहीं पर था।

फ्रांस और विशेषत: पेरिस को देखने पर सिर्फ एक ही प्रश्न उठता है, 'क्या यहां के लोग सचमुच सुखी हैं ?'

शारीरिक तृप्ति की तो कोई सीमा नहीं। इस के साथ तो सदा 'अत: पर:'—इस के बाद क्या ?—लगा ही रहता है। क्या उन के भी मन में यह प्रश्न उठा करता है

'तुम दे कर मदिरा के प्याले,
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का,
उपचार न जाने क्या होगा ?'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विदेशी आक्रमण के बाद भी संपन्न
गिरजों का देश बेलजियम

लंदन में रहते कई दिन हो गए थे। मन कुछ ऊब सा गया था। सोचा, 'पश्चिमी यूरोपीय देशों को क्यों न देख लिया जाए!' इन देशों के लिए विसा लेने में दोतीन दिन लग गए। यह काम जरूरी था, क्योंकि विदेशों में विसा और पासपोर्ट का दुरुस्त रहना आवश्यक है।

बेलजियम यूरोप के उत्तरपश्चिम में हालैंड, फ्रांस और जर्मनी से घिरा हुआ एक छोटा सा देश है जिस का क्षेत्रफल केवल ११,७०० वर्ग मील है। यह भारत से ११० गुना छोटा है और यहां की आबादी ११० लाख है। दुनिया के घने बसे हुए देशों में इस की गणना है। जितनी विपदाएं इस राष्ट्र पर आई है, उतनी शायद ही अन्य किसी पर। कभी पड़ोसी देश हालैंड इसे उदरस्थ कर लेता था तो कभी फ्रांस, आस्ट्रिया और जर्मनी छीनाझपटी में इस के हिस्से दवा लेते थे। ताज्जुब यह है कि सुदूर दक्षिण का स्पेन भी इस होड़ में शामिल था। फिर भी बेलजियम जीवित रहा। पिछले दो महायुद्धों के भयंकर जर्मन आक्रमण और बमबारी में इस की काफी बरबादी हुई। लेकिन जिस धैर्य और परिश्रम से इस ने अपने को संभाला वह अनुकरणीय है।

यूरोप आया था वायुयान से। समुद्रयात्रा का अवसर मिला न था, इसलिए निश्चय किया कि बेलजियम जल मार्ग से जाऊंगा। लंदन के विक्टोरिया स्टेशन से ट्रेन में बैठ कर डोवर पहुंचा। यहां एक छोटे से यात्रीवाही जहाज में बैठ कर बेलजियम के बंदरगाह ऑस्टेंड के लिए रवाना हुआ। डोवर से इसकी दूरी ६५ मील है। जहाज से करीब तीनसाढ़ेतीन घंटे लगते हैं। यात्रा लंबी न सही, पर है तो समुद्र यात्रा, यह सोच कर मन में प्रसन्नता हो रही थी। कभी पढ़ा था कि प्रथम बार समुद्र यात्रा में सिर चक्कर खाता है, मिचली आती है, इत्यादि। लेकिन मुझे ऐसा कोई कष्ट नहीं हुआ। वैसे यह तो महज इंगलिश चैनल की यात्रा थी, प्रशांत या अटलांटिक सागर की नहीं।

जहाज में बहुत से यात्री थे। कुछ आपस में बातें कर रहे थे, कुछ पत्रपत्रिकाएं पढ़ रहे थे और कुछ चुपचाप दृश्य देख रहे थे। शोरगुल का नाम नहीं, सभी प्रसन्न थे। जहाज में साफसुथरा रेस्तरां था और साधारण घरेलू खेल के लिए अलग कमरे भी थे। यात्री खानेपीने और खेलने में लगे थे। अपने यहां कलकत्ता से गंगासागर जाने वाले जहाज और यात्रियों का दृश्य याद आ गया। कितनी गंदगी और बेसब्री का वातावरण रहता है उन में!

जहाज के डेक पर आ कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया। यूरोप का किनारा दिखाई देने लगा। मछली पकड़ने की आधुनिक नावें भी समुद्र में दिखाई पड़ीं। पास के लाइट हाउसों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पीछे से गिरजों की ऊंची मीनारें बहुत अच्छी लग रही थीं ।

लगभग ढाई बजे जहाज आॅस्टेंड बंदरगाह पर पहुंचा । बेलजियम का यह तीसरा प्रमुख बंदरगाह है । युद्ध के बाद इस की और भी उन्नत्ति हुई है । यहां से ब्रुसेल्स, कोलोन और बर्लिन को सीधी ट्रेनें जाती हैं । ब्रूजे और घेंट तक नहरें भी गई हैं, जिन से माल के परिवहन में सुविधा रहती है ।

यहां की मछली का व्यवसाय अच्छा बढ़ाचढ़ा है । पता चला कि बेलजियम में मत्स्य उद्योग का यह केन्द्र माना जाता है । शहर घूम कर देखा, अच्छा लगा । बंदरगाहों में आम तौर सें गदगी रहती है पर यहां वैसा वातावरण नहीं था । यहां का समुद्रतट सुंदर और मनोरम है । इस लिए बेलजियम के अलावा यूरोप के अन्य भागों से भी लोग यहां छुट्टियां मनाने आते हैं । शहर में मत्स्य उद्योग प्रशिक्षण केन्द्र तथा नौविद्यालय देखा । इन उद्योगों के कारण आॅस्टेंड की शोभा बढ़ गई है । यहां का अधिकाश व्यापार इंगलैंड से होता है, अतएव अंगरेजी समझने वाले मिल जाते हैं ।

यहां से बेलजियम के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर ब्रुज गया । ब्रुजे का अर्थ फ्लैमिश में होता है—पुल अथवा वह स्थान जहां पुल हों । यह नहरों का नगर है । यहां सड़कों की तरह नहरें हैं । इन पर ८२ पुल हैं । शायद इसी लिए इस का नाम ब्रुजे पड़ा । मध्य युग में यह उत्तर यूरोप का पेरिस था । आज सें पांच सौ वर्ष पहले इसके किनारे तक समुद्र था । संसार के बड़ेबड़े जहाज देशदेशांतर से माल ले कर इस के बंदरगाह में पहुंचते थे । व्यापार का बड़ा केन्द्र होने के कारण जहाजों की भीड़ लगी रहती थी । यहां के भाव से यूरोप के भाव घटतेबढ़ते थे । सभी देशों के प्रतिनिधि तथा व्यापारी यहां रहते थे ।

लेकिन सब दिन एक से नहीं होते । ब्रुजे से समुद्र दूर हटने लगा और बंदरगाह में रेत भरने लगी । इसलिए जहाजों का आना भीं बंद हो गया । धीरेधीरे समुद्र यहां से छः मील दूर हट गया । बाहरी दुनियां से इस का सम्पर्क टूट सा गया । अब, यह केवल १५वीं शताब्दी का एक श्रीहीन नगर मात्र रह गया है ।

शहर देखने से ऐसा लगता था कि मध्ययुगीन यूरोप में पहुंच गया हूं । जिधर दृष्टि जाती थी, चिमनी लगे, ढलुवा छतों वाले दोमंजिले तिमंजिले मकान, शीशेदार लंबी खिड़कियां, दीवारों से निकली छड़ों के सहारे लटकते वर्गाकार झंडे, जिन पर धार्मिक कथानक तथा 'क्रूसेड' के रंगबिरंगे चित्र कढ़े हुए थे । नहरों में झांकते हुए ये मकान हलके प्रकाश में बड़े सुन्दर लग रहे थे ।

पेरिस की तरह यहां भी सड़कों की पटरियों पर काफे और रेस्तरां हैं । नागरिक यहां बैठे गप्पें लड़ाते हैं, शतरंज खेलते हैं । मैं एक रेस्तरां में गया । शाकाहारी भोजन यहां आसानी से मिल गया ! भोजन अच्छा बना था । इंगलैंड से यहां पैसे भी कम लगे ।

शहर के अंतिम छोर पर 'प्रेम सरोवर' देखने गया । कलकत्ता की लेक की तरह लोग यहां टहलने आते हैं । मनोरंजन के लिए क्लब भी हैं । जगह साफ और खुली है । नावों की दौड़, तैराकी और अन्यान्य खेलकूद भी होते रहते हैं । विश्राम के लिए एक बेंच पर बैठ गया । थोड़ी देर बाद मुझ से पूछ कर एक प्रौढ़ सज्जन बेंच की दूसरी ओर बैठ गए । आपसी परिचय के बाद बात ही बात में मैं ने पूछा, "ब्रुजे के जीवन में आधुनिकता है पर मकानों में नहीं । ऐसा क्यों ?"

उन्होंने बताया कि यहां के पौरनिगम की ओर से शहर की विशेषता बनाये रखने के लिए मकानों में मध्ययुगीन परपरा के कायम रखने की हिदायत है ।

दूसरे दिन घूमते हुए देखा कि मध्ययुगीन पोशाक में बड़ीबड़ी प्रतिमाएं एक जुलूस में निकाली जा रही हैं । छोटे बच्चे इन्हें देख कर बहुत खुश हो रहे थे । अपने यहां दशहरे में कुंभकर्ण तथा रावण की कागज और कमचियों की प्रतिमाओं का खयाल आ गया । पूछने पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पता चला कि इन प्रतिमाओं को पास ही किसी मेले में ले जाया जा रहा है।

ब्रुजे के गिरजों में 'पवित्र रक्त', सेंट साव्यूर और नात्रेदाम प्रसिद्ध है। यहां का नात्रेदाम १४वीं शताब्दी का है। यह उतना बड़ा नहीं है जितना कि पेरिस का। माइकेल एंजेलो की एक उत्तम कलाकृति 'माता और शिशु' ब्रुजे के नात्रेदाम में देखी। यह एक पत्थर की मूर्ति है। माता मरियम की गोद में बालक यीशु है। सरलता और वात्सल्य की बड़ी स्वाभाविक अभिव्यजना इस में दिखाई पड़ी।

सेंट साव्यूर का गिरजा १३वीं या १४वीं शताब्दी का है। इस की दीवारों और खिड़कियों पर वने चित्र देख रहा था कि तभी एक वृद्ध पादरी आए। पूछने पर उन्होंने चित्रों के भाव समझाए। चित्र बाइबिल की विभिन्न कथाओं से संबंधित थे।

मेरे मन में एक प्रश्न बारबार उठता था। बेलजियम के लोग उद्यमी और धार्मिक प्रवृत्ति के हैं और हर प्रकार से साधन संपन्न भी। अफ्रीका में इन का उपनिवेश, बेलजियम कांगों, इन के अपने देश से ८० गुना बड़ा था। हीरा, तांबा, लोहा ओर रेडियम वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। फिर भी बेलजियम की उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी होनी चाहिए।

वृद्ध पादरी महोदय से मैं ने पूछा, "बारबार बेलजियम में ही युद्ध, अग्निकांड आदि क्यों होते हैं जिस से देश की प्रगति रुक जाती है?"

"महाशय, शोषण और अत्याचार पाप है। इस का फल हमारा देश भोगता है।"

"लेकिन मैं ने कभी इसे दूसरे राष्ट्र पर हमला करते नहीं सुना, बल्कि इस के विपरीत दूसरे राष्ट्र ही इस की स्वाधीनता का हरण करते रहे हैं," आश्चर्य से मैं ने कहा।

"यह तो ठीक है और आप जहां कहीं भी जाएंगे, बेलजियम सभ्य, शिष्ट और स्नेहशील मिलेंगे, लेकिन इन्हें बेलजियम कांगों में आप क्रूर और अशिष्ट पाएंगे......और हमारी सरकार भी इस विषय में चुप रह कर शोषण को बढ़ावा देती रही हैं," पादरी ने कहा।

"इस का कारण!"

"हीन मनोवृत्ति के लोग उपनिवेश में प्रारंभ से ही जाते रहे हैं। सामाजिक अपराध, चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि के मामले में दंडित होने पर सरकार इन्हें वहां भेजती रही है। इस प्रकार ऐसे लोग वहां इकट्ठे होते गए। वे ही शोषण और गंदगी का वातावरण फैला रहे हैं......हमें प्रभु ईसा ने क्षमा, दया और प्रेम की सीख दी है। कयामत के दिन भगवान प्रत्येक से हिसाब लेंगे। और प्रभु की कृपा से हम बच भी जाएंगे पर यीशु की बात माने तब तो!......कयामत तक के लिए ईश्वर दंड को टाल थोड़े ही देंगे।"

इसे सुन कर मुझे अपने देश में डलहौजी, क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज के कुकृत्य तथा गोरों के अत्याचार की बातें याद आ गईं।

'पवित्र रक्त' का गिरजा, ब्रुजे में सब से अधिक प्रतिष्ठित हैं। यह बहुत बड़ा नहीं है पर महात्मा ईसा के रक्त की कुछ बूंदें यहां सुरक्षित हैं, इसलिए इस गिरजे के प्रति विश्व में बड़ी श्रद्धा है। गिरजा दोमंजिला है और १२वीं शताब्दी का बना हुआ है। पवित्र रक्त कैसे प्राप्त हुआ किस प्रकार यहां पहुंचा, यह मेरे लिए कौतूहल का विषय था। पूछने पर पता चला कि सन ११५० में फ्लेंडर्स के कांउट मुसलमानों से येरूशलम को बचाने के लिए क्रूसेड (धर्मयुद्ध) में शामिल हुए। उन की अपूर्व वीरता और साहस के कारण ईसा मसीह का जन्मस्थान बच गया। इसलिए येरूशलम के राजा ने प्रसन्न हो कर महात्मा ईसा के रक्त की ये बूंदें एक बंद तावीज में काउंट को भेंट दीं। महात्मा ईसा को जब सूली पर चढ़ाया गया तो रक्त की बूंदें उन के एक शिष्य ने इकट्ठी कर ली थीं। अब आठ सौ वर्षों से यह तावीज बड़ी सावधानी से इस गिरजे में सुरक्षित है। १४वीं शताब्दी से यह परंपरा है कि वर्ष में एक बार पवित्र रक्त को बड़ी धूमधाम से जुलूस में ले कर सारे शहर में घुमाया जाता है। जुलूस में सरकारी अफसर और नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति मध्ययुगीन पोशाकों में सम्मिलित होते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन १६३८ में यहां के एक पादरी ने पवित्र रक्त के इतिहास के आधार पर नाटक लिखा था। शहर के घंटाघर के खुले स्थान पर यह अभिनीत हुआ। लगभग २,५०० व्यक्तियों ने इस में भाग लिया, जिस में बच्चे-बूढ़े, मर्दऔरत सभी नागरिक शामिल थे। यह नाटक इतना सफल रहा कि बाद में कई बार खेला गया। लाखों लोगों ने इसे देखा, जिस में यूरोप के अन्यान्य देशों के अलावा अमरीका से भी दर्शक आए थे। इसे आज भी हर पांचवें साल खेला जाता है।

ब्रुजे का सब से प्रसिद्ध स्थान है मार्केट स्क्वायर। पास ही १३वीं शताब्दी का बना घंटाघर है। पहले इस के सब से नीचे के भाग में गोदाम थे जिन में जहाजों से उतार कर माल रखा जाता था।

आवश्यक अनुमति ले कर इस की वर्गाकार मीनार की ऊपरी मंजिल में पहुंचा जहां छोटेबड़े ४७ घंटे लगे हुए हैं। ये प्रत्येक १५ मिनट पर, निश्चित राग में, बजाए जाते हैं। मीनार के सब से ऊंचे हिस्से में एक विशाल घंटा था। मध्य युग में इसी मीनार पर खड़े हो कर पहरेदार चारों ओर नजर रखते थे। आग लगने पर अथवा शत्रुओं के आक्रमण के समय घंटे बजा कर लोगों को सावधान करते थे। मध्ययुगीन यूरोप में नगरों को स्वायत्तशासन के अधिकार प्राप्त थे। ब्रुजे के इन अधिकारों के कागजात बड़ी सावधानी से आज भी यहां सुरक्षित हैं।

ब्रुजे से ट्रेन में बैठ कर एक घंटे में घेंट पहुंचा। शहर पुराना जरूर है, पर ब्रुजे जैसा नहीं है। दो छोटीछोटी नदियां घेंट के बीच से होकर बहती हैं और कई नहरें भी हैं जिन से यहां के महल्ले छोटेछोटे द्वीपों जैसे लगते हैं। पहले यह एक प्रसिद्ध बंदरगाह था लेकिन एंटवर्प की उन्नति के कारण इस का महत्त्व अब कम हो गया है। यहां दसवीं शताब्दी में बना सेंट बेवो का गिरजा देखा। वैसे सेंट निकोलस का गिरजा यहां सब से पुराना है। शहर के बीच एक घंटाघर है। इस की वर्गाकार मीनार ३०० फीट ऊंची है।

यहां एक विश्वविद्यालय है जिस में शिल्पोद्योग, इंजीनियरिंग और कला की शिक्षा दी जाती है। इस के पुस्तकालय में तीन लाख से अधिक पुस्तकें और दो हजार से अधिक हस्तलिखित ग्रंथ हैं।

व्यापार की दृष्टि से बेलजियम के प्रमुख शहरों में यह एक है। यहां रुई और पटसन औ सूती कपड़ोंकी रंगाई के तथा चमड़े और चीनी के कारखाने हैं। इन के अलावा लोहे और तांबे की ढलाई के तथा मशीनें, कलपुर्जे और शराब बनाने के कारखाने भी हैं।

घेंट को पिछले दो महायुद्धों से बहुत नुकसान उठाना पड़ा था। उद्योग धंधे बरबाद हो गए थे। लेकिन अब यह प्रगति कर रहा है।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आधुनिक व प्राचीन योरुप की मिलीजुली झलक

हीरों के देश बेलजियम में

घेंट से ब्रुशल्स पहुंचा । ट्रेन में एक अमरीकन यात्री ने बताया था कि आधुनिक और प्राचीन यूरोप को बेलजियम में पा सकते हैं और बेलजियम को ब्रुशल्स में । बात कुछ उलझी सी लगी थी पर निकली सही । ब्रुशल्स यूरोप में अपने ढंग का एक ही शहर है । यहां, जहां शताब्दियों पुराने मकान हैं वहां आधुनिक ढंग के बने भव्य भवन भी हैं । बेलजियम यों गिरजों का देश है । इसी से ब्रुजे और घेंट की तरह यहां भी विशाल और ऊंचे गिरजे देखने को मिले ।

बेलजियम के इतिहास में ब्रुशल्स का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इसी की सड़कों पर डच सेनाओं को परास्त कर स्वाधीन बेलजियम की नींव पड़ी । सन १८३० में यह शहर बेल्जियम की राजधानी बना । आज भी ब्रुशल्स के नागरिक बड़ी शान से इसे 'ला कपिताल' कहते हैं ।

उद्योगधंधों में ब्रुशल्स सदियों से बढ़ाचढ़ा रहा है । यूरोप के अन्य उन्नत देशों में ज्यों-ज्यों औद्योगिक विकास होता गया, ब्रुशल्स भी इस दौड़ में उनसे पीछे नहीं रहा । हीरों के लिए एंटवर्प प्रसिद्ध है तो शीशे के सामान के लिए ब्रुशल्स । यूरोप के प्रायः सभी बड़े शहरों से रेलों और सड़कों द्वारा सीधा संबंध जुड़ा होने के कारण यह एक बड़ा व्यापारिक केंद्र है । यही कारण है कि यहाँ की सड़कों पर प्रायः सभी देशों की बोली सुनने को मिल जाती है ।

ब्रुशल्स को दूसरा पेरिस भी कहते हैं । बड़ेबड़े होटल, नाइट क्लब, रेस्तरां और कांफे । आधुनिक जीवन के प्रायः सभी आकर्षण यहां मौजूद हैं, लेकिन फिर भी पेरिस की सी उच्छृंखलता और नग्नता का प्रदर्शन यहां आपेक्षाकृत कम है ।

शहर देखने के लिए ट्राम अच्छा साधन लगा । अन्य सवारियों के मुकाबले ट्राम कहीं अधिक सस्ती और सुविधाजनक है । पांच फ्रेंक यानी आठ आने के टिकट से एक यात्रा कर सकते हैं । दो बार में यदि ट्राम बदलनी है तो सात फ्रेंक का एक टिकट मिलता है । ६० फ्रेंक के टिकट से बीस बार यात्रा की जा सकती है । नवागंतुक को यहां कठिनाई नहीं होती क्योंकि स्टेशनरी और पुस्तकों की दुकानों पर शहर का नक्शा मिल जाता है । ट्रामों पर सड़कों के नंबर लिखे रहते हैं इसी से नक्शा देखकर सही स्थान पर आसानी से पहुंचा जा सकता है ।

शहर घूमते हुए मैंने देखा कि यहां का ग्रांड पैलेस अपने शहरों के चौक जैसा है । बेलजियमके अन्य शहरों में भी इसीं प्रकार के ग्रांड पैलेस हैं । ब्रुशल्स का टाउनहाल भी यहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। इसके मुकाबले की इमारत बेलजियम में दूसरी नहीं। इसके बीच की मीनार ३६० फुट ऊंची है जो दिल्ली की कुतुबमीनार से भी १२० फुट अधिक ऊंची है। टाउनहाल भवन में सुप्रसिद्ध चित्रकारों तथा मूर्तिकारों की कलाकृतियां हैं।

ग्रांड पैलेस के चारों ओर पुराने ढंग के मकान हैं जिनमें व्यापारिक कोठियां हैं। चौक में प्रातः बाजार लगता है जहां शहर के आसपास से किसान आदि अपनाअपना माल थोक व्यापार के लिए ले जाते हैं। बड़ी जल्दी क्रयविक्रय समाप्त हो जाता है।दिन निकल आने पर जरा भी अनुमान नहीं होता कि यहां बाजार लगा था।

रविवार की सुबह यहां तरहतरह की चिड़ियां बिकती हैं। मुझे पता चला कि बेलजियम में कबूतरबाजी का बड़ा शौक है। इनकी उड़ानें स्पेन और उत्तरी अफ्रीका तक होती हैं। रेडियो में प्रति रविवार को प्रसिद्ध उड़ानों की सूचनाएं प्रसारित की जाती हैं। यहां के लोगों को मुर्गे लड़ाने का शौक भी है, पर इसे रुचि संपन्न लोग कम पसंद करते हैं।

ब्रुशल्स भी दिल्ली और नई दिल्ली की तरह दो भागों में बंटा हुआ है। शहर के पुराने भाग से नए में जाते हुए सेंट गुडले का गिरजा बहुत आकर्षक लगा। प्लेस रायल पर शहर के नए भाग की प्रायः सभी बड़ी सड़कें आकर मिलती हैं। पास 'पार्क ब्रुशल्स' है, जहां सन १८३० में बेलजियनों ने डच सेना को पराजित किया था।

यहां के न्यायालय का विशाल और शानदार भवन खुली चौकोर जगह में बना हुआ है। पास ही ब्रुशल्स का प्रसिद्ध पुस्तकालय विब्लियोथिक रायल देखा। यहां की पुस्तकों का संग्रह न केवल बेलजियम में बल्कि सारे यूरोप में महत्वपूर्ण माना जाता है। हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर यूरोप की मध्ययुगीन संस्कृति, कला, धर्म तथा इतिहास का अध्ययन करने के लिए बहुत से विद्यार्थी दूरदूर से यहां आया करते हैं।

एक जमाना था जब ब्रुशल्स के चारों ओर दिल्ली की तरह दीवारें थीं, इसका परिचय 'पोर्ट द हाल' से मिलता है। यहां प्रवेश द्वार पर किले के अनुरूप एक इमारत है। आजकल यहां प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों का एक संग्रहालय है।

बेलजियम में उत्सव खूब मनाए जाते हैं! मेले यहां अकसर होते रहते हैं। शहर के अनेक पार्कों में कोई न कोई कार्निवल या मेला लगा ही रहता है। यहां प्रतिवर्ष जुलाई और अगस्त मास में एक बड़ा मेला लगता है। इस मेले में देश के विभिन्न स्थानों के निवासी परस्पर मिलकर उत्सव मनाते हैं।

ब्रुशल्स बेलजियम की दिल्ली है तो एंटवर्प कलकत्ता या बंबई। कला एवं संस्कृति के साथ ही यह व्यापार का एक प्रमुख केंद्र है, इसलिए यहां के नागरिक इसे 'ला मेत्रोपाले' कह कर फूले नहीं समाते।

एंटवर्प में पटसन के हमारे एक बड़े एजेंट मिस्टर विलियम रहते थे। यद्यपि अब तक उन से साक्षात्कार नहीं हुआ था, फिर भी व्यापारिक संबंध होने के कारण हम आपस में अच्छी तरह परिचित थे। मैं इन के आफिस पहुंचा। मैं ने अपना विजिटिंग कार्ड भेजा, कुछ क्षण बाद ही एक वयोवृद्ध किंतु स्वस्थ और प्रसन्न व्यक्ति कमरे से बाहर आए। उन्होंने बड़े स्नेह और आत्मीयता के साथ हाथ मिला कर पूछा, "कब आए ? आपके आने की सूचना हमें नहीं मिली।"

मैं ने उन्हें बताया कि मैं ब्रुशल्स से सीधा यहां आ रहा हूं। दोएक दिन आप के शहर को देख कर फिर राटरडम जाऊंगा।

"ठहरे कहां हैं ?"

"क्वींस होटल में।"

मिस्टर विलियम ने हंसते हुए कहा, "आप बेलजियम घूमने आए हैं तो हमारे देश के घरेलू जीवन की झांकी भी आप को देखनी चाहिए। होटलों मे भला यह सब कहां मिलेगी!"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपने कमरे में बैठाते हुए उन्होंने कहा, "होटल से सामान लाने के लिए फोन कर दीजिए।"

मेरे बहुत समझाने पर भी वह न माने। मुझे होटल फोन करना ही पड़ा। वह घर साथ ले जाने लगे, पर मैंने कहा, "पता दे दीजिए, मैं शाम को पहुंच जाऊंगा, तब तक शहर घूम लूं।" उन्होंने पता देने के बदले अपनी मोटर दे दी।

ड्राइवर होशियार था। शहर देखने में सुविधा रही। बेलजियम के अन्य शहरों की अपेक्षा यहां पुराने ढंग के मकान कम हैं। ब्रुजे के बंदरगाह में रेत भर जाने के कारण एंटवर्प ने पिछले दो सौ वर्षों मे बहुत उन्नति की है। यहां १५वीं शताब्दी तक के गिरजे और इमारतें हैं जो पहले सरकारी दफ्तर, सैनिक कार्यालय, ड्यूकों अथवा काउंटों के आवास थे। नात्रेदाम का गिरजा यहां भी देखा। यहां के म्यूजियम और गिरजों में बेलजियम की कला और संस्कृति की महत्त्वपूर्ण निधियां सुरक्षित हैं। चित्रों के समृद्ध संकलन में फ्लेमिश, डच, जर्मन तथा फ्रेंच शैली के अतिरिक्त आधुनिक ढंग की यूरोपीय कृतियां भी देखने को मिलीं।

बागबगीचे ब्रुशल्स की भांति यहां भी काफी संख्या में हैं। शहर की १८ लाख जनसंख्या है, फिर भी शहर खुला और साफ है। यहां के चिड़ियाघर की बहुत तारीफ सुनी थी। यहां पशुपक्षियों को स्वाभाविक वातावरण में रखा जाता है। दर्शक भी इन्हें छेड़ते नहीं, इसलिए यहां के पशुपक्षी परेशान नहीं लगे।

शाम हो रही थी। बाजार में रंगबिरंगे फूल बिक रहे थे। डचों की तरह बेलजियन भी फूल बहुत पसंद करते हैं। आपसी व्यवहार में अपना स्नेह और सौजन्य प्रदर्शित करने के लिए उपहारस्वरूप फूलों का गुच्छा देते हैं। श्रीमती विलियम को भेंट देने के लिए मैं ने भी कुछ फूल लिए। मिस्टर विलियम के घर पहुंचा। उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्र से मेरा परिचय कराया। लुई अपने पिता के साथ ही व्यापार की देखभाल करता है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "ये शाकाहारी हैं, भोजन निरामिष बनाना।"

नौकर के होते हुए भी अतिथि के लिए खाना स्वयं घर की मालकिन ही बनाती हैं। यूरोप में कई जगह यह बात देखी।

श्रीमती विलियम भोजन की तैयारी के लिए चली गईं, हम तीनों में बातों का सिलसिला जारी हुआ। इसी सिलसिले में मुझे ज्ञात हुआ कि पिछले महायुद्ध में एंटवर्प को भीषण क्षति उठानी पड़ी। बमों की मार से शहर के २० हजार मकान बरबाद हुए और तीन हजार नागरिकों के प्राण गए। मैं आश्चर्यचकित था कि युद्ध की समाप्ति के बाद बेलजियम ने कितनी उन्नति कर ली है। तभी लुई ने प्रश्न किया, "कैसा लगा हमारा देश ?"

मैं ने कहा, "सरसरी तौर पर देखने से हम पूर्व के लोगों के लिए पश्चिम के सभी देशों की सभ्यता और संस्कृति एक सी जान पड़ती हैं। इन देशों में लोंग रूढ़ियों को उखाड़ते हैं पर स्वस्थ परंपरा को भी संजो कर रखते हैं। इस से संस्कृति निखर उठती है। मुझे आप की बातें विशेष पसंद आईं।

भोजन तैयार हो कर आ गया था। हम चारों भोजन करने बैठ गए। तभी मिस्टर विलियम ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "लुई को जूट की पूरी जानकारी के लिए भारत भेजना चाहता हूं, पर ये जाने नहीं देतीं।"

मैं ने पूछा, "क्यों ?"

महिला ने सिर हिला कर कहा, "ना...ना...मैं ने सुना है और अखबारों में पढ़ा है कि हिंदुस्तान में लोग दिनदहाड़े एकदूसरे को छुरा भोंक देते हैं।"

मैं यह सुन कर मन में झेंपा। लेकिन बात को संभालते हुए मैं ने कहा, "देश के विभाजन के बाद राजनीति के विषैले प्रभाव और धर्मांधता की वजह से कुछ इस तरह की दुर्घटनाएं हो जाती हैं। आप विश्वास करें आम तौर पर ऐसी बारदातें नहीं होतीं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिस्टर विलियम ने बात जारी रखते हुए कहा, "ये भूल जाती हैं कि मध्ययुगीन यूरोप में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट एकदूसरे की जान के किस कदर दुश्मन हो गए थे ।"

मैं ने मुसकराते हुए कहा, "मिस्टर विलियम, यह मां का दिल है ।"

भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा पर मिस्टर विलियम को संतोष न था, कहने लगे, "मैं बड़ाई तो नहीं करता । लेकिन भोजन के मामले में हम लोग इटालियनों की तरह बनाने, खाने और खिलाने के लिए प्रसिद्ध हैं । भ्रमण और भोजन के आनंद के लिए विदेशी यहां आते हैं...क्या बताऊं, आप शाकाहारी हैं ।

मैं ने कहा, "इस में यह और जोड़ दीजिए कि बेलजियन निरामिष भोजन भी अत्यंत स्वादिष्ट बनाते हैं ।"

हम लोग हंस पड़े । भोजन के बाद कॉफी पीते हुए अगले दिन का कार्यक्रम बना । मेरे बारबार मना करने पर भी लुई को आफिस से छुट्टी दे कर उन्होंने मेरा गाइड बना दिया ।

सुबह नाश्ता कर घूमने निकले । पिछले दिन क्याक्या देख लिया था, वह लुई को बता दिया । हम एंटवर्प के चौक ग्रांड पैलेस पहुंचे । यहां का टाउनहाल ब्रुशल्स जैसा पुराना नहीं है । आसपास के मकान भी नए ढंग के हैं । लुई ने चौक के बीच का फव्वारा दिखाते हुए कहा, "यह ब्रेवी का फव्वारा है ।"

पास जा कर देखा कि विजय गर्व से खड़े एक पुरूष के पास झुकी हुई असुर की सी आकृति की कटी बांह में से पानी की धार निकल रही है । लुई ने बताया, "इस मूर्ति में शहर के नाम का रहस्य है । लोक कथा है कि रोमन शासनकाल में द्रुआंन एंतिगांन नाम का एक असुर यहां रहता था।पास बहती शेल्ड नदी से गुजरने वाली नावों से वह कर वसूल करता था । कर न अदा करने पर मल्लाहों का दाहिना हाथ काट कर नदी में फेंक देता था । हाथ काटकर फेंकने को हमारी फ्लेमिश भाषा में हेंडवर्पन कहते हैं, जो कालांतर में एंटवर्प हो गया ।"

वीर पुरुष की आकृति की ओर इंगित कर उस ने बताया, "इन का नाम सेल्वियस ब्रेवी है । इन्होंने असुर को पराजित किया और उस के हाथ काट दिए ।"

प्रोटेस्टेंट होने पर भी भारत और ग्रीस की तरह बेलजियम में भी पौराणिक कथाओं पर विश्वास किया जाता है, इन्हीं के आधार पर प्रतिमाएं बनाने में इन की रुचि है । यहां के गिरजों में भी पौराणिक कथाओं के चित्र और प्रतिमाएं बहुत हैं ।

एंटवर्प को हीरों की नगरी भी कहते हैं । विश्व में राटरडाम और एंटवर्प हीरे की उम्दा तराशी के लिए प्रसिद्ध हैं ।

यहां के इस उद्योग ने बेलजियम की आर्थिक उन्नति में बहुत महत्त्वपूर्ण योग दिया है । पिछले महायुद्ध में इस क्षेत्र को बहुत क्षति पहुंची, लेकिन मेहनतकश कारीगरों और व्यवसायियों ने बिगड़ी हुई स्थिति को फिर से संभाल लिया । बेलजियम को इस व्यापार से विदेशों से अच्छी आय हो जाती है । पेलिकान स्ट्रीट हीरे का प्रमुख बाजार है ।

लुई मुझे अपने एक परिचित व्यापारी के यहां ले गया । तराशी की सफाई और कारीगरी को देख कर तबियत खुश हो गई । छोटेबड़े सभी आकार के हीरे थे । लाल, नीली, पीली और हरी आभाओं के हीरे पहलेपहल यहां देखे । दाम भी सस्ते थे, भारत से आधे बल्कि उस से भी कम ।

व्यापारी ने आग्रह किया, "अपनी पसंद के चुन लीजिए ।"

मैं ने बताया, "हमारी सरकार ने इस के आयात पर प्रतिबंध लगा रखा है ।"

उस ने हंस कर कहा, "इस बाजार में प्रति दिन विश्व के कोनेकोने से न जाने कितने हीरे किस राह आते हैं और चले जाते हैं । भारत से तो कई व्यापारी साल में कई बार आ कर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काफी माल उठा ले जाते हैं ।"

मैं ने कहा, "यह संभव है, क्योंकि तस्कर व्यापार की रोकथाम बड़ी मुश्किल से हो पाती है । फिर भी हमारी सरकार इस दिशा में काफी प्रयत्नशील है ।"

पता चला है कि बेलजियम की सरकार भी अब इस दिशा में सख्ती करने जा रही है ताकि आनेजाने वाले समस्त रत्नों का ब्योरा व्यापारियों से ले कर वसूल करने में सुविधा रहे ।

वैसे तो शहर में कई अच्छे बाजार हैं किंतु इन में मेईर अपनी सजावट और विविधता के लिए लोकप्रिय है । लखनऊ की तरह यहां भी चिकन की जैसी कढ़ाई होती है । बहुत ही आकर्षक बेलबूटे यहां की महिलाएं हाथ से काढ़ती हैं । मुझे यह बहुत पसंद आए, कुछ मैं ने भी खरीदे । एक सिरे पर २४ मंजिली इमारत दिखाते हुए लुई ने कहा, "तोरेन जे बौ पर से आप को सारा शहर एक नजर में दिखा दूं ।"

कलकत्ते में १५ मंजिली इमारतों पर तो चढ़ा था पर इतनी ऊंची इमारत पर अब तक चढ़ कर नहीं देखा था । शहर के बाहर हरेभरे खेतों की हरियाली के बीच शेल्ड नदी का जल हीरों की पंक्ति की तरह चमक रहा था । गिरजों के ऊंचे बुर्जों पर तथा क्रासों पर सूर्य की सुनहली किरणें फिसल रही थीं ।

वहां से उतर कर नदी के किनारे स्टीन देखने गए । पहले यह एक दुर्ग था लेकिन अब यहां एक नौसंग्रहालय है । यहां समुद्र और जहाजरानी की सभी आवश्यक वस्तुओं का अच्छा संग्रह है । मुझे इस संबंध में थोड़ीबहुत जानकारी मिली । मुझे आश्चर्य हो रहा था कि कितना छोटा सा देश है बेलजियम, सिर्फ ४० मील का समद्रतट इस के पास है, फिर भी हालैंड और नार्वे की तरह इस ने कितनी प्रगति इस दिशा में कर ली है । हम हजारों वर्षों से वरुण देव की पूजा जरूर करते रहे हैं, पर इतना विस्तृत समुद्रतट होते हुए भी इस दिशा में हम कितने पिछड़े हुए हैं !

लूई का साथ मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ । बेलजियम जीवन की बहुत सी बातें उस ने बताईं । एक मजे की बात यह भी सुनी कि हमारी तरह उन के यहां भी घरों की दीवार, जमीन या चूल्हों के पीछे से वक्त जरूरत खासी रकम निकल आती है । डेनमार्क की तरह साइकिल दौड़ यहां का प्रमुख राष्ट्रीय खेल है । भारतीयों की तरह फुटबाल के खेल में भी इन्हें बहुत दिलचस्पी है ।

स्टीन के पास से ही एंटवर्प का बंदरगाह शुरू हो जाता है । यह यूरोप के बड़े बंदरगाहों में से एक है । विदेशों से कई जहाज यहां माल लेने और उतारने आते हैं क्योंकि हेमवर्ग की तरह मध्य यूरोप के देशों के माल का आवागमन इसी मार्ग से होता है । जहाजों की मरम्मत की व्यवस्था भी यहां अच्छी है । माल की लदाई और निकासी इतनी तत्परता और कुशलता से की जाती है कि आए हुए जहाजों को ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती ।

एंटवर्प का पटसन उद्योग डंडी की तरह काफी उन्नत है । भारत और पाकिस्तान से पाट यहां की मिलों के लिए आता है । यहां की जूट मिलें देखना चाहता था, लुई ने टेलीफोन से पहले ही प्रबंध कर लिया था । जूट मिलें बड़ी तो नहीं हैं, मगर बहुत साफ और यांत्रिक दृष्टि से हमारे यहां से काफी उन्नत । इन में केवल बोरे और टाट ही नहीं बनाए जाते बल्कि तरहतरह की अन्य वस्तुएं, जैसे गलीचे, कंबल, दरियां आदि भी बनती हैं ।

मजदूरी हमारे यहां से छः गुनी अधिक है लेकिन प्रति मजदूर उत्पादन भी इसी अनुपात में अधिक है । यही कारण है कि जूट पैदा करने वाले देश भारत की टक्कर में विश्व के बाजारों में यह टिका हुआ है ।

शहर देख कर हम शाम को घर लौटे । मिस्टर विलियम पहले ही आ गए थे । हम ने साथ ही भोजन किया ।

रोटरडम जाने के लिए विदा लेते समय मैं ने श्रीमती विलियम से कहा, "लुई को अकेला

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
आप नहीं छोड़ना चाहतीं तो आप चारों भारत आइए।"

श्रीमती विलियम ने आश्चर्य से पूछा, "चौथा कौन ?"

मैं ने कहा, "आप की होने वाली पुत्रवधू !"

सभी हंसने लगे।

हाथ में फूलों का गुच्छा देते हुए उन्होंने दो छोटेछोटे पैकेट दिए। एक में हाथ की बुनी सूत की जालियां थीं और दूसरे में रोटरडम तक के लिए केक और बिस्कुटों का नाश्ता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भूलोक का एकमात्र नंदनकानन ?

स्विट्जरलैंड

भूलोक का नंदनकानन कहने से भारतीयों को सहज ही कश्मीर का ध्यान आता है लेकिन संसार का कोई देश यदि वास्तव में इस नाम का अधिकारी है तो वह स्विट्जरलैंड है। प्रकृति का सौंदर्य कश्मीर में भी अनुपम है और निस्संदेह प्रकृति अपना रूप वहां पलपल संवारती रहती है, लेकिन मानव के हाथ उसे नहीं संवारते। इसलिए स्वच्छता की कमी उस के रूप को निखरने नहीं देती।

इस के विपरीत स्विस लोगों ने अपने देश में जहां भी कहीं सुरम्य स्थल पाया, उस की शोभा बढ़ाई है, उसे सजाया और संवारा है। उन्होंने विज्ञान की उन्नति के दंभ में अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के खयाल से प्रकृति के रूप को वैज्ञानिक अस्त्रों से बिगाड़ा नहीं, बल्कि विज्ञान की सहायता से अपने देश के सुंदर स्थानों को पर्यटकों के लिए सुगम, सुविधापूर्ण और सुरक्षित बना लिया है।

वैसे तो हमारे देश में भी सुंदर स्थानों और प्राकृतिक छटा का अभाव नहीं है पर इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हम ने उसे सजाने-संवारने की कभी कोशिश नहीं की। आज स्वाधीन होने के बाद भी इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम ही गया है।

स्विट्जरलैंड में मैं ने ऊंचीऊंची दुर्गम पहाड़ियों की चोटियों पर लोगों को तार की मजबूत रस्सियों के सहारे झूलते हुए देखा है। कहीं कोई पहाड़ी नदी उर्वशी की भांति धरती पर उतर रही है तो कहीं कोई पहाड़ी नदी हजारों फीट ऊंचे पर्वतों की घनी बनाली के बीच लुकछिप कर मुसकान बिखेरती भाग रही है। ऐसे अवसरों पर मन में बराबर यही बात आई कि स्वदेश लौटने पर प्रकृति को कुरूप बनाने की चेष्टाओं में यदि कुछ भी रोकथाम करा सका तो अपने को धन्य मानूंगा।

डेवोस के पहाड़ों के पास एक सुदर झरने के किनारे नाश्ता करने बैठा तो मुझे अपनी बद्रीनाथ यात्रा का स्मरण हो आया। मैं ने वहां भी हनुमान चट्टी से आगे कलकल करते एक झरने के किनारे सुस्ता कर कुछ चनाचबैना करने का विचार किया था, लेकिन कहीं से दुर्गंध का एक झोंका आया और मैं ने सिर घुमा कर जो दृश्य देखा, उस से भूख का भाग जाना स्वाभाविक ही था।

मन में बड़ी ग्लानि हुई। कुछ तीर्थ यात्री झरने के किनारे बैठे शौच कर रहे थे। मैं ने दो गेरुआ वस्त्रधारी साधुओं को रोका तो वे झगड़े पर उतारू हो गए। दूसरे भक्तों ने भी मुझे ही बुराभला कहा। मुझे चुप हो जाना पड़ा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरी ओर स्विट्जरलैंड के लोगों को सफाई का इतना अधिक ध्यान रहता है कि यदि कहीं कूड़े का टब न हो तो वे छिलके वगैरह अपनी जेबों में डाल लेंगे और स्थान को गंदा करने का विचार तक भी मन में नहीं लाएंगे।

स्विट्जरलैंड की प्राकृतिक छवि में अपनी अलग विलक्षणता है। सारा देश ही सुंदर है, पर मुझे यंगफ्राऊ की छटा ने सब से अधिक प्रभावित किया। आज भी वे दृश्य मानसपटल पर ज्यों के त्यों अंकित हैं। यंगफ्राऊ का अर्थ है नवयुवती। मैं ने स्विट्जरलैंड में सभी के मुंह से इस स्थान के अप्रतिम सौंदर्य की चर्चा सुनी थी। इसी लिए मैं यंगफ्राऊ के आकर्षण में बंधा हुआ इंतरलाकेन जा पहुंचा।

इंतरलाकेन का अर्थ है, दो झीलों के बीच की भूमि। नाम सार्थक है। यह ब्रायंज और थून नामक दो झीलों के बीच बसा छोटा सा कस्बा है। चारों ओर के पहाड़ झीलों के जलदर्पण में अपनी शोभा देख कर झूमने से लगते हैं। कभीकभी लगता है कि बादल अपना रूप निरखने के लिए झीलों की सतह पर झुकते चले आ रहे हैं।

इस की अपनी आबादी करीब तीनचार हजार ही होगी। लेकिन गरमियों में बर्फ पिघलने और शीत का प्रकोप कम होने पर यहां पर्यटकों का अच्छाखासा जमाव हो जाता है। इसी कारण इतना छोटा सा कस्बा होने पर भी यहां चौसठ होटल हैं, जिन में पाच हजार यात्री ठहर सकते हैं।

यहां के कस्बों और बाजारों में पर्वतारोहण तथा अन्य कई प्रकार के खेलकूद की सारी सामग्री मिल जाती है। पर्यटक लोग अपने साथ अनुभवी तथा कुशल गाइड ले कर पर्वतारोहण के लिए निकल पड़ते हैं।

स्विट्जरलैंड के गाइड और दुकानदार पर्यटकों से अधिक पैसा लेने के चक्कर में नहीं रहते। वे उतना ही मांगते हैं जितना उचित होता है। साथ ही ग्राहक को शिष्टाचार और स्नेह भी देते हैं। यही वजह है कि यहां खर्च करना खलता नहीं।

यहां जर्मन भाषा बोली जाती है। भावताव में दुकानदारों को अपनी बात समझाने में असमर्थ होने पर मैं उन के सामने पैसे रख देता और वे खुद ही अपने वाजिब दाम उठा लेते थे। ऐसा कभी नहीं लगा कि मैं ठगा गया हूं। दुकानों में सामान बेचने वाली प्रायः सुंदर और स्वस्थ युवतियां ही होती हैं, जो सामान दिखाने के साथ ही साथ शिष्ट मुसकान भी बिखेरती रहती हैं।

मैं ने एक बार एक दुकान में कई चीज देखने पर भी कुछ नहीं खरीदा, फिर भी वहां की सेल्स गर्ल मुझे फाटक तक पहुंचाने आई और वापस जाते हुए कहती गई, "थैंक्यू सर!" मुझे बरबस ही कलकत्ता की एक घटना याद आ गई। मैं एक दुकान में पेन खरीदने गया था। दोतीन मिनट तक तो दुकानदार ने बात ही नहीं की, फिर जब मैं ने खुद ही पेन के चुनाव करने की सोची तो उस ने इस तरह घूरना शुरू किया जैसे मैं पेन उठा कर भागने वाला हूं। मैं ने जब उस से वाटरमैन या स्वान पेन दिखाने को कहा तो वह झल्ला कर बोला, "क्यों शोर मचाता! हमारा भी टाइम वेस्ट करता और अपना भी। तुम को पेनवेन कुछ नहीं खरीदना, जाओ!" जरा देखिए, कितना अंतर है दोनों में।

पश्चिम के लोगों में मैं ने एक विशेषता पाई कि उन के खेलकूद और मनोरंजन में साहस और सजीवता का पुट रहता है। वहां प्रत्येक सबल, स्वस्थ और समर्थ नागरिक जिस ढंग से अपने अवकाश का उपभोग करता है, वैसा साधारणतया हमारे यहां नहीं पाया जाता

मार्च का महीना बीत रहा था लेकिन ठंडक कम नहीं हुई थी। इस के बावजूद इंतरलाकेन में पर्यटकों का आगमन शुरू हो गया था। क्लबों और होटलों में चहलपहल बढ़ रही थी। नृत्यशालाओं और रेस्तराओं में खिलखिलाहट गूंजने लगी थी! लोग हंसी और नाच

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के साथ अपने अवकाश का लाभ उठा रहे थे। कोई स्केटिंग की तैयारी कर रहा था तो कोई स्की की और कोई रस्सियों के सहारे दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़ कर उन के शिखर को चूमने के प्रयास में लगा था।

स्की भी कितने जीवट का खेल है। दोनों पैरों के तलवों में आगे की ओर उठी हुई लकड़ी की दो चिकनी पटरियां बांध कर बर्फ पर फिसलना। मैं ने भी पांच सवारों में अपना नाम लिखाना चाहा, पर बिल्कुल निकम्मा साबित हुआ। दसबीस फीट फिसलने पर ही या तो आसमान देखता या जमीन सूंघने लगता। कई बार कोशिश की पर सब बेकार रहा। लिहाजा स्की को दंडवत् प्रणाम किया और अन्य लोगों को स्की करते देख कर ही दिल का अरमान पूरा कर लिया। स्की की पटरियां बांधे हजारों फुट की ऊंचाई से बर्फ पर तेजी से फिसलते हुए और छलांगें भरते लोगों को देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है।

स्विट्जरलैंड का यह राष्ट्रीय खेल है। इसके अलावा विदेशों से प्रति वर्ष हजारों खिलाड़ी यहां अपने करतब दिखाने आते हैं। स्की के लिए वास्तव में अभ्यास के साथ ही बल और एकाग्रता भी चाहिए। मेरे पास उत्साह, बल और कुशल गाइड, सब थे। लेकिन मेरा बल स्की के मामले में बल खा गया क्योंकि प्रिंस अलीखां की तरह अपना पैर तुड़वाना मुझे ठीक नहीं जंचा।

इंतरलाकेन और उस के आसपास खूब घूमा। दृश्य बड़े ही सुन्दर थे। उन को देख कर जब मुझ जैसे साधारण मनुष्य का हृदय भी खुशी से भर उठा तो पश्चिम के बड़ेबड़े कलाकारों और साहित्यकारों का भावविभोर हो जाना स्वाभाविक ही है। महाकवि गेटे, शेली कीट्स और महान विचारक तथा साहित्यकार थैकरे, रस्किन, लांगफ़ेलो मार्कट्वेन आदि कीकृतियों में इंतरलाकेन के मनोरम दृश्यों की नैसर्गिक, छाया स्पष्ट दिखाई देती है। अंगरेजी के रोमांटिक कवि बायरन ने अपनी विश्व प्रसिद्ध कृति 'मैनफ्रेड बेजनेज' यहीं लिखी थी।

लेकिन इंतरलाकेन मुझे रोक न सका। यंगफ्राऊ का आकर्षण अपनी ओर खींच रहा था। मैं उसी ओर बढ़ चला। कई पर्यटक साथ थे। उन में से अधिकांश विदेशी थे और बड़े हंसमुख थे। यूरोप में, इंगलैंड को छोड़ कर साधारणतया यात्रा नीरस नहीं होती। वहां के लोग विदेशियों और विशेष कर हम भारतवासियों से तो जानपहचान कर ही लेते हैं।

मैं ट्रेन में बैठा बाहर के दृश्य देख रहा था। पास ही दो युवतियां बैठी थीं। वे अपनी भाषा में बातचीत कर रही थीं। कभीकभी नजर बचा कर मेरी ओर भी देख लेती थीं। लगा जैसे वे मेरे ही बारे में बातें कर रही हैं। मैं ने उन की ओर मुड़ कर देखा तो उन में से एक अंगरेजी में पूछ ही बैठी, "क्षमा कीजिएगा, क्या आप भारतीय हैं?"

"जी, हां, आप काअनुमान सही है," मैं ने कहा।

"देखिए न, मेरी बहन कहती है कि आप भारतीय नहीं हो सकते। वे इतने स्वस्थ नहीं होते।"

मुझे हंसी आ गई। मैं ने कहा, "दुबलेमोटे और लंबेनाटे मनुष्य तो हर देश में होते हैं।"

दोनों हंस पड़ी। परिचय होने पर पता चला कि वे रईस घर की हैं और छुट्टियां मनाने निकली हैं। विचारविनिमय का सिलसिला चला। गांधी, नेहरू और रवींद्र से ले कर हमारी सांस्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्था ही नहीं, स्त्रियों के अधिकार, विवाह, भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या और यहां तक कि परिवार नियोजन आदि पर चर्चा हुई। उन के साथ जिस तरह बिना किसी झिझक के खुल कर बातें हुई, उस तरह बातें करना हमारे देश में संभव नहीं। मैं शुरू में कुछ हिचक रहा था। स्वाभाविक भी था क्योंकि महिलाओं के साथ इन विषयों पर विचारविनिमय करने का पहले कभी मौका नहीं पड़ा था। लेकिन उन यूरोपीय बहनों के सहज, मुक्त भाव ने मेरी हिचक मिटा दी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस घटना की याद आते ही मन में विचार उठता है कि हम अपने यहां यथार्थ पर जो परदा डालते हैं, उसे पश्चिम में बुरा माना जाता है। वैसे यह बात काफी हद तक सही भी है क्योंकि हमारी वर्तमान संस्कृति में शिष्टाचार के नाम पर दकियानूसी खयालों का समावेश हो गया है और आचारभ्रष्ट होते हुए भी सदाचार का दिखावा किया जाता है।

विद्युत चालित हमारी ट्रेन पहाड़ की ऊंचाई पर क्रमशः बढ़ती जा रही थी। स्विट्जरलैंड में सभी ट्रेनें बिजली से चलती हैं। लेकिन हमारी यह यात्रा पूरी तरह से भिन्न थी। हमारे देश के दार्जिलिंग और शिमला की भांति यहां यंग्रफ्राऊ की चोटी पर चढ़ने के लिए पहाड़ की ढलान को काटछांट कर रास्ता नहीं बनाया गया है। स्विस इंजीनियरों ने पहाड़ के भीतर ही सुरंगें काट दी हैं। ट्रेन उन में से गुजरती हुई चोटी की ओर बढ़ती जाती है। यात्रियों को पता तक नहीं चलता कि वे प्रति पल समतल भूमि से कितने ऊपर उठते जा रहे हैं। जहां पहाड़ काट कर बाहर का दृश्य देखने के लिए जगह बनाई गई है, वहां ट्रेन बीचबीच में कुछ देर के लिए रुकती भी हैं। यात्री वहां उतर कर पहाड़ की ऊंचाई से शोर मचा कर गिरते हुए झरने इठलाती हुई पहाड़ी नदियां और स्वच्छ बर्फ पर तैरते हुए बादल देखते हैं।

हमारी ट्रेन बेनजेन में कुछ देर रुकी। सुन रखा था कि वहां से सूर्यास्त का बड़ा ही अनुपम दृश्य दिखाई देता है। लौटते समय बेनजेन पंहुचा तो सूर्यास्त का ही समय था। अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। बाहर की ओर आया। देखा कि सूर्य पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे जा रहा है और संध्या बर्फीले शिखरों तथा घाटियों पर केसरिया रंग बिखेर कर सूर्य को विदा दे रही है।

बेनजेन के बाद हमारी ट्रेन फिर सुरगों में खो गई। ट्रेन के प्रकाश में पहाड़ी चट्टानों के अलावा कुछ नहीं सूझता था। हम कुछ ही देर में शेईदेंग पहुंच गए। यहां से यंगफ्राऊ के लिए ट्रेन बदलनी पड़ती है। यंगफ्राऊ की खास यात्रा यहीं से शुरू होती है। ट्रेन फिर पर्वत के गर्भ में समा गई और चक्कर काटती हुई आइजमीयर (हिम सागर) पहुंची। यह स्थान १०,३६८ फुट की ऊंचाई पर पर्वत की विशाल ठोस चट्टानों को काट कर बनाया गया है और स्विस इंजीनियरिंग कौशल का एक उत्तम नमूना है। आइजमीयर जैसा नाम है, वैसा ही उसे पाया। गरम कपड़े पहन रखे थे, फिर भी ठंड महसूस होने लगी। यहां से हमारी यात्रा का अंतिम चरण आरंभ हुआ।

आखिर ट्रेन यंगफ्राऊ पहुंच ही गई। यह संसार का सबसे ऊंचा रेलवे स्टेशन है। मैं ने यहीं पर यूरोप के सबसे ऊंचे होटल 'बर्ग हाऊस' में नाश्ता किया। इस होटल में यात्रियों के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। स्की से हाथपैर टूटने पर प्राथमिक चिकित्सा की भी व्यवस्था है। रहने के लिए गरम और आरामदेह जगह तथा भोजन की सुव्यवस्था देखकर मन खुश हो गया।

लिफ्ट के सहारे यंगफ्राऊ की ऊंची चोटी पर जा पहुंचा। इस चोटी पर एक विशालकाय दूरबीन लगी हुई है जिस से समीपवर्ती देश देखे जा सकते हैं। यह सब देख कर चारों ओर बचपन में पढ़ी परियों की कहानी जैसी विचित्रता नजर आई। यहां बर्फ का एक मकान है जिस में बर्फ की ही मेजें, कुरसियां और मोटर मौजूद हैं। पैंसठ वर्षों से यह मकान और इस की सभी वस्तुएं आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। सर्दी की वजह से यहां बर्फ पिघल नहीं पाती।

यंगफ्राऊ १२,००० फुट ऊंचा है। यद्यपि इस की ऊंचाई हिमालय की चोटियों से कम है, फिर भी इस की अपनी एक विशेषता है और अपना एक आकर्षण है। इस के पार्श्व में पहुंचना उतना कठिन नहीं। विज्ञान ने सब कुछ सुलभ बना दिया है। यहां प्रकृति की मुक्त छवि के विभिन्न रूपरंगों का आनंद जिस सरलता से लिया जा सकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह देख कर तो दांतों तले उंगली दबानी पड़ी कि इतनी खतरनाक ऊंचाई पर भी लोग स्की करते हैं। जरा भी चूके कि जान गई। हालैंडवासी जिस प्रकार समुद्र के चप्पेचप्पे की पूरी जानकारी रखते हैं, उसी प्रकार स्विस लोगों को अपने पर्वतों की जानकारी है। उन का साहस और उत्साह असीम है। यहां तक पहुंचना कभी असंभव रहा होगा, लेकिन स्विस इंजीनियरिंग कौशल ने यंगफ्राऊ का प्राकृतिक सौंदर्य संसार के लिए सुलभ बना दिया है।

मैं जिस समय यंगफ्राऊ के शिखर पर पहुंचा, वहां दोपहर थी। सूर्य के प्रकाश में बर्फ चांदी की तरह चमक रही थी। चारों ओर कुहासा था। उस शांत वातावरण में मानस पटल पर स्विट्जरलैंड की सारी यात्रा के चित्र एकएक कर उभर आए। सोचा, 'आखिर यह भी मर्त्यलोक है, यहां भी कभी अभाव और आवश्यकता रही होगी। लेकिन अब यहां गरीबी का दानव क्यों नहीं दिखलाई पड़ता ?' मुझे लगा, मेरा स्विस गाइड मुझे देख कर मुस्करा रहा है। मुझे वहीं अनुभव हुआ कि श्रम का सही अर्थ समझने पर मनुष्य देवत्व पा सकता है।

गाइड ने पूछा, "सर्दी अधिक तो नहीं लग रही है ? नीचे उतरेंगे ?"

"स्वर्ग से नीचे उतरने को क्यों कहते हैं !" मैं ने उत्तर दिया।

हम दोनों हंस पड़े।

स्विट्जरलैंड जैसे एक छोटे से देश के जिन कुशल इंजीनियरों को विश्व की सब से ऊंची रेलवे लाइन बिछाने का यश प्राप्त है, उन्हीं को यूरोप के हिमालय आल्प्स को काट कर भूतल की सब से लंबी सुरंग बनाने का भी श्रेय है।

वैसे तो उन्होंने १७७८ में ही मोंटकेनिस नामक आठ मील लंबी सुरंग बना ली थी लेकिन सिंपलन सुरंग का तो अपना अलग ही महत्त्व है। इस सुरंग के बनाने का काम १८९८ में शुरू हुआ था और १९०५ में पूरा हुआ।

इस कठिन कार्य को १,००० मजदूरों ने रातदिन तीन पाली में काम करके साढ़ेछः वर्षों में पूरा किया। सवाबारह मील लंबी इस सुरंग को कहींकहीं तो सात हजार फुट ऊंचे पहाड़ों का बोझ सहना पड़ता है। अधिक चौड़ी सुरंग बनाने से ऊपर के पहाड़ों के धंसकने का भय था इसलिए ५६ फीट की दूरी पर दो समानांतर सुरंगें बनाई गई हैं। और हर छः सौ फुट के बाद दोनों के बीच आनेजाने का मार्ग बना दिया गया है। इस तरकीब से काम भी शीघ्र समाप्त हो गया और सुरंगों के भीतर हवा के प्रवेश में भी आसानी हो गई।

ढाई मील तक सुरंग बन जाने पर एकदम ठंडे बर्फीले जल की धारा प्रबल वेग से निकल आई, जिस का बहाव प्रति मिनट साढ़ेदस हजार गैलन और दबाव प्रति इंच छः सौ पौंड था। इस आकस्मिक विपत्ति से वे घबराए तो, लेकिन उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। काम चलता रहा। प्रकृति का कमाल देखिए, कुछ ही आगे बढ़ने पर गरम पानी की धारा निकल आई। दोनों के मिलने से तापमान संतुलित हो गया। सिंपलन सुरंग बन कर तैयार हो गई। इस सुरंग को देखने आज भी दुनिया के हर कोने से लाखों पर्यटक आते हैं और मनुष्य की इस रचना को देख कर विस्मित हो उठते हैं।

विश्व विजयी वीर नेपोलियन को आल्प्स के ऊपर अपनी सेना ले जाने में हजारों सैनिकों तथा अपरिमित युद्ध सामग्री से हाथ धोना पड़ा था। उसी आल्प्स पर अब मुट्ठी भर इंजीनियरों ने काबू पा लिया है अब इस समय लोग रात में जेनेवा से चल कर ट्रेन में आराम से सोते हुए सुबह ईटली के मिलान नगर पहुंच जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पश्चिमी योरुपियन संस्कृतियों का मेल ?

आल्प्स की गोद में

मैं दो तीन बार स्विट्जरलैंड हो आया हूं—पहले १९५० और फिर १९६२ और १९६४ में। पहली बार मुझे दो महीने रहने का अवसर मिला था। सारा देश घूमने के लिए पर्याप्त अवकाश था। प्राकृतिक सौंदर्य देखने के साथसाथ मुझे स्विस जनता के निकट सम्पर्क में आने और उस का जीवन देखनेसमझने का भी मौका मिला। प्राकृतिक छवि तो आकर्षक थी ही परंतु मैं वहां के सामाजिक जीवन से कहीं अधिक प्रभावित हुआ। कर्मठ जीवन उस देश की बहुमुखी उन्नति का एकमात्र कारण है। कशमीर में केवल प्रकृति मुसकराती है पर स्विट्जरलैंड में प्रकृति और स्विस जनता दोनों ही मुसकराते मिलते हैं।

आल्प्स की गोद में बसा हुआ वह एक छोटा सा देश है। उस की आबादी केवल ५६ लाख है, लेकिन वहां इतनी सी आबादी के लिए भी न पर्याप्त अन्न पैदा हो पाता है और न उस के पास खनिज पदार्थों का कोई भंडार ही है जिस से वहां की जनता अपने लिए खाद्य सामग्री तथा जीवन के अन्य आवश्यक साधन जुटा सके।

वहां परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण रखा जाता है। इसी का फल है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान संसार के दूसरे देशों की जनसंख्या में साठसत्तर प्रतिशत तक वृद्धि हो गई है और स्विट्जरलैंड की जनसंख्या उस अनुपात में नहीं बढ़ पाई।

खाद्य सामग्री तथा जीवन के दूसरे आवश्यक साधन जुटाने के लिए स्विट्जरलैंड के निवासियों ने निर्यात का मार्ग अपनाया है। उन्होंने अपने सभी शिल्पोद्योगों का यही एक उद्देश्य बना रखा है। वे विदेशों से कच्चा माल, जैसे लोहा, कोयला तथा अन्य आवश्यक खनिज पदार्थ मंगा कर अपने यहां तैयार किया हुआ माल, मशीनें, घड़ियां, दवाएं, बिजली का सामान आदि विदेशों को भेजते हैं। शिल्पोद्योगों की इस नीति के कारण स्विट्जरलैंड को विदेशों से काफी धन मिल जाता है। इस धन का कुछ भाग खाद्य सामग्री जुटाने में, कुछ कच्चे माल के आयात में और शेष राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यय किया जाता है।

स्विस सामाजिक जीवन की रीढ़ शिल्पोद्योग ही है। इसी लिए वहां की जनसंख्या का ४२ प्रतिशत भाग किसी न किसी रूप में शिल्प से संबंधित है। हर व्यक्ति की कार्यकुशलता तथा उस की क्षमता का वहां ध्यान रखा जाता है। स्विसों को सदा इस बात की चिंता बनी रहती है कि उन की वस्तुएं दूसरे देशों की वस्तुओं के मुकाबले ऊंची किस्म की और टिकाऊ सिद्ध हों। यही कारण है कि संसार भर में स्विट्जरलैंड में बने डीजल और मैरीन के बड़ेबड़े इजनों से ले कर छोटीछोटी घड़ियों तक की मांग सब से अधिक रहती है। अमरीका, फ्रांस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और जर्मनी जैसे औद्योगिक राष्ट्रों के बीच भी स्विट्जरलैंड का अपना एक विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण स्थान है ।

इसका एक दूसरा कारण यह है कि उन्होंने अपने उद्योगधंधों को अन्य देशों की भांति पूरी तरह मशीनों के हवाले नहीं किया है । इसीलिए उनकी बारीकी और उनके टिकाऊपन का मुकाबला करना कठिन होता है । यहां कुटीर, शिल्प और बृहद् उद्योग में बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ है । उदाहरण के लिए, एक घड़ी में १२६ से २०० तक पुरजे लगते हैं और सामान्यतः हम समझते हैं कि इनके लिए वहां बड़ेबड़े कारखाने खड़े होंगे । लेकिन मैंने ज्यूरा अंचल में हजारों कारीगरों को अपनेअपने घरों में ही इन पुरजों को तैयार करते देखा है । हर कारीगर घड़ी का एक न एक पुरजा तैयार करने में सिद्धहस्त होता है । इसीलिए अमरीका और ब्रिटेन की घड़ियां लाख कोशिश के बावजूद स्विट्जरलैंड की ओमेगा और रोलेक्स के आगे ठहर नहीं पातीं ।

शिल्पोद्योग की यह नीति इतनी सफल हुई है कि आज स्विट्जरलैंड की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई है । पिछले वर्षों के दौरान बड़ेबड़े राष्ट्रों के सिक्कों की क़ीमतों में काफी उतारचढ़ाव आए, लेकिन स्विस सिक्के की कीमत स्थिर ही रही । इतना ही नहीं, स्विस सरकार को अपनी अर्थ व्यवस्था की दृढ़ता पर इतना भरोसा है कि वहां आप बैंकों में किसी भी देश की मुद्रा बदल सकते हैं । उनको इस बात का भय नहीं कि उनकी मुद्रा बाहर चली जाएगी ।

द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप सन १९५० में सारा यूरोप महंगाई के बोझ से दिनोंदिन दबता जा रह था, लेकिन स्विट्जरलैंड में महंगाई अपना पैर ज्यादा नहीं पसार पाई । उन दिनों वहां अधिक आवश्यक वस्तुओं के दाम भी सामान्य थे—दूध आठ आने सेर था, दही बारह आने सेर, आटा एक रुपए सेर और सेब तीन आने का एक था ।

चौदह वर्ष बाद यानी सन १९६४ में जब मैं तीसरी बार वहां गया तो मूल्यों में पचास प्रतिशत वृद्धि तो अवश्य हो गई थी लेकिन औसत आय के हिसाब से वे मूल्य भारत के मुकाबले बहुत कम थे ।

वहां मजदूरी के काम की इतनी अधिक गुंजाइश है कि पड़ोस के देशों से भी लोग आकर मजे में जीविकोपार्जन करते हैं । इटली और ग्रीस के लोग काफी संख्या में आते हैं । कहीं कहीं तो भारतीय डाक्टर भी बसे हुए हैं । उनकी प्रैक्टिस भी अच्छी चलती है ।

एक स्विस परिवार में आम तौर से चार व्यक्ति होते हैं । प्रति व्यक्ति हजारबारह सौ रुपये मासिक आय के हिसाब से पूरे परिवार की औसत आय तीनचार हजार रुपए तक बैठती है । हमारे देश जैसी आर्थिक असमानता भी वहां नहीं दिखाई देती है कि एक ओर तो असंख्य परिवारों को एक वक्त खाना भी मुअस्सर नहीं और दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जिनकी मासिक आय कई लाख रुपए तक पहुंचती है । संपन्न से संपन्न स्विस परिवार की मासिक आय, आय कर देने के बाद, पचीस तीस हजार रुपए से अधिक नहीं बैठती । यही वजह है कि अधिक असमानता न होने के कारण जनजीवन में विषमता नहीं दिखाई पड़ती ।

उनका आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण भी इतना स्पष्ट और स्वस्थ है कि आज वे साम्यवाद को खुली चुनौती दे रहे हैं । उनका मत है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक नहीं कि व्यक्ति के श्रम का जबरन राष्ट्रीयकरण करके उसे मनुष्य से मशीन का पुरजा बना दिया जाए । स्विट्जरलैंड के सारे उद्योगधंधे गैर सरकारी क्षेत्र में हैं । केवल डाकतार, टेलीफोन और रेलवे सरकारी क्षेत्र में हैं ।

उन्होंने इसी तरह अपनी राजनीतिक समस्या भी हल कर ली है । सारा देश २२ छोटेछोटे कैंटनों (स्वतंत्र राज्य सरकारों) का एक संघ है । प्रत्येक कैंटन स्वतंत्र है । उसके अपने अलग नियम और क़ानून बने हुए हैं । ये कैंटन कभी भी एकदूसरे के मामलों में हस्तक्षेप

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
नहीं करते । यहां तक कि केंद्र भी इनके मामलों में दखल नहीं देता ।

स्विट्जरलैंड की सीमा जर्मनी, फ्रांस और इटली से मिली हुई है । इन देशों के लोग सदियों पहले वहां जाकर बस गए थे । इसलिए वहां आज भी इन तीनों देशों की भाषाएं बोली जाती हैं । इन तीनों राष्ट्रों में अनेक बार भयानक युद्ध हो चुके हैं, रक्तपात हो चुका है पर स्विस राष्ट्रीयता के संगम पर जर्मन, फ्रेंच और इतालियन सांस्कृतिक धाराएं अपना वैमनस्य भुलाकर त्रिवेणी बन गई हैं ।

उत्तरपूर्व में जर्मनभाषी, पश्चिम में फ्रेंचभाषी और दक्षिण में इतालियनभाषी स्विस नागरिकों के शरीर में जर्मन, फ्रेंच और इतालियन पूर्वजों का रक्त भले ही बहता हो, अपने व्यक्तिगत जीवन में उनको अपनी भाषा और संस्कृति पर कितना ही नाज क्यों न हो, लेकिन राष्ट्र का सवाल उठने पर वे सभी एक हो जाते हैं । वे केवल इतना जानते हैं कि वे स्विस हैं और स्विट्जरलैंड उनका अपना देश है । काश, हम भारतीयों में भी यह भावना इतनी गहरी होती !

स्विट्जरलैंड में जहां भी जाइए, सभी जगह कर्त्तव्य और नैतिकता की भावना दिखाई पड़ती है । लोग शांतिप्रिय हैं । 'जियो और जीने दो', के सिद्धांत का प्रभाव उनके जीवन और उनकी विचारधारा में स्पष्ट झलकता है । चोरी और उचक्केपन का कहीं नाम नहीं है । पेरिस और काहिरा की तरह वहां परदेसियों, बच्चे, बूढ़ों और स्त्रियों के ठगें जाने का भय भी नहीं है । पुलिस का काम शांति बनाए रखना और लोगों की सहायता करना है । विदेशियों के निरंतर आवागमन के कारण उनकी सहायता के लिए पुलिस विभाग का रहना जरूरी है ।

मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है । एक बार मेरा पासपोर्ट खो गया था । चित्त उदास और परेशान था क्योंकि उसके बिना विदेशों में बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं । पासपोर्ट के साथ ही कुछ रुपए और कुछ जरूरी कागजात भी थे । चिंता में था, लेकिन दूसरे दिन सुबह की डाक से पासपोर्ट आ पहुंचा । सारे कागजात और रुपए ज्यों के त्यों थे । दूसरा कोई देश होता तो कागजात और पासपोर्ट भले ही मिल जाते पर रुपए शायद ही मिलते । दरअसल जिन सज्जन को वह पासपोर्ट मिला था, उन्होंने भारतीय नाम देख कर उसे एयर इंडिया के जेनेवा कार्यालय को भेज दिया और वहां से मेरे पास भेज दिया गया ।

मैं एक बार जेनेवा के एक कैफे में खूंटी पर फैल्ट हैट लटका कर टेबल पर चला गया था । काफी पीकर पैसे चुकाने के बाद जब चलने लगा तो देखा हैट नदारद । आश्चर्य तो हुआ, पर चुपचाप अपने होटल लौट आया। दूसरे दिन जब फिर पहुंचा तो देखा हैट उसी खूंटी पर ज्यों का त्यों टंगा था और साथ में एक पुर्जा था —'भूल के लिए खेद है ।'

स्विस लोगों में अनुचित लाभ उठाने की प्रवृति भी नहीं दिखाई दी । इसका भी मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है । मेरे छोटे भाई तपेदिक की चिकित्सा के लिए लेजां में रहते थे । लेजां पहाड़ी पर बसा हुआ एक छोटा सा कस्बा है और अपनी खास जलवायु के कारण तपेदिक की चिकित्सा के एक केन्द्र के रूप में भी प्रसिद्ध है । वहीं भाई की चिकित्सा के सिलसिले में मुझे विश्वविख्यात चिकित्सक और शल्यशास्त्री डाक्टर जेनेर से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरे भाई का आपरेशन किया। यद्यपि आपरेशन काफी बड़ा था, लेकिन पारिश्रमिक के रूप में उन्होंने केवल बारह सौ रुपए ही लिए । वें आपरेशन के बाद भी १५ दिन तक प्रति दिन जाकर रोगी को देख आते थे । उसकी अलग से कोई फीस उन्होंने नहीं ली । सहज ही मेरा ध्यान अपने गरीब देश के चिकित्सकों की बढ़ी हुई फीस की ओर चला गया ।

स्विट्जरलैंड सदा से शांतिप्रिय और निरपेक्ष राष्ट्र रहा है । उस के सीमावर्ती देश सदियों से आपस में लड़तेझगड़ते और मारपीट करते रहे हैं, पर उस ने स्वयं कभी किसी का पक्ष नहीं लिया । जर्मनी, इटली और फ्रांस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र यदि चाहते तो दो महायुद्धों के दौरान कभी भी अपने इस छोटे से पडोसी को कुचल सकते थे, पर उन को भी इस की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निरपेक्षता का लिहाज करना पड़ा। उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र की आवश्यकता महसूस की जहां बैठ कर वे समझौते की बातचीत कर सकें। ऐसी स्थितियों में स्विट्जरलैंड ने संदेशवाहक का काम कर के विपक्षियों को एकदूसरे के निकट आने का अवसर दिया। इस के अतिरिक्त, जब युद्ध से जर्जर यूरोप के नागरिक अन्नवस्त्र के अभाव मे त्राहित्राहि करने लगे, तब इस छोटे से राष्ट्र ने उन को अन्नवस्त्र दिया और असहाय तथा अनाथ बच्चों का पालनपोषण भी किया।

इस छोटे से राष्ट्र ने सेना का संगठन अपनी शांतिप्रिय नीति के अनुकूल ही किया है। स्विसवासी न तो किसी दूसरे देश पर अधिकार करने की इच्छा रखते हैं। और न ही किसी दूसरे राष्ट्र का अधिकार अपनी धरती पर सहन करने को तैयार हैं। उन का समूचा सैनिक संगठन सुरक्षा की दृष्टि से ही किया गया है।

१६ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक स्विस नागरिक के लिए चार महीने की सैनिक शिक्षा अनिवार्य है। इस के अतिरिक्त उन को अभ्यास के लिए प्रति वर्ष एक निश्चित अवधि तक सैनिक दस्तों में रहना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक एक समर्थ सैनिक भी होता है। आवश्यकता पड़ने पर स्विस सेना बात की बात में आधुनिकतम अस्त्रों से लैस हो कर मातृभूमि की रक्षा के लिए डट सकती है, लेकिन स्विस सरकार एक विशाल सेना रखने के व्यय भार से हमेशा ही मुक्त रहती है। राष्ट्र का धन सेना और अस्त्रशस्त्रों पर खर्च न कर के अन्य उपयोगी तथा उत्पादन कार्यो मे लगाया जाता है।

स्विस लोगों का घरेलू जीवन भी यूरोप के अन्य देशों से थोड़ा भिन्न है। उन में फ्रांस के लोगों जैसी स्वच्छंदता नहीं। उन की बातचीत, व्यवहार और काम के तरीकों में एक संयमित गति रहती है। जीवन में स्वतंत्रता है, पर पेरिस और वेनिस जैसी नहीं। स्वछन्दता का अर्थ यह नहीं कि वह नैतिकता की सीमा पार कर जाए। स्विट्जरलैंड में जहां भी किसी स्त्री या पुरुष ने सीमारेखा को पार किया, वहीं वह लोगों की निगाह से गिर जाता है। वहां समाज में स्त्रियों का दरजा बहुत कुछ भारत जैसा है। हां, हमारे यहां स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त है और वे राजनीति में भी दखल रखती हैं लेकिन स्विस स्त्रियों इन दोनों अधिकारों से वंचित हैं।

स्विस लोगों को देशविदेश के पर्यटकों से करोड़ों रुपए की आमदनी होती है। संसार के सभी देशों से लाखों की संख्या में पर्यटक यहां आ कर प्रकृति की अनुपम छटा देख कर व्यस्त और थके हुए जीवन से कुछ समय के लिए छुटकारा पाते हैं। इन पर्यटकों का आदरसत्कार भी एक बड़ा अच्छा व्यवसाय हो गया है, जिस में जनसंख्या का काफी बड़ा भाग लगा हुआ है। स्विस लोगों ने अपने अन्य धंधों की भांति इसे भी एक सुव्यवस्थित रूप दे दिया है।

सभी रमणीय स्थानों में गाइड और होटल मौजूद हैं। उन के कारण पर्यटकों को यह नहीं लगता कि वे किसी अपरिचित और अनजान देश में आ गए हैं। सभी जगह स्वाभाविक मुसकान के साथ उन का स्वागत किया जाता है। वे अपनी जेब के मुताबिक होटल चुन सकते हैं। १० से ७० रुपए प्रति दिन तक के होटल मिलते हैं। इस किराए में रहने के साथसाथ सुबह का नाश्ता भी शामिल रहता है।

सरकार भी पर्यटकों के लिए हर प्रकार की सुविधाएं जुटाती है। प्रत्येक स्टेशन पर स्टेट बूफे हैं, जहां सस्ते दामों में अच्छा भोजन मिल जाता है। रेलवे की ओर से भी सस्ते दर पर पंद्रह दिन तक इच्छानुसार यात्रा के टिकट मिलते हैं, जिन्हें ले कर आप कहीं भी जा सकते हैं।

यों तो स्विट्जरलैंड के सभी शहरों और कस्बों को स्विस जनता ने आकर्षक ढंग से सजायासंवारा है, उन की सफाई का पूरा खयाल रखा है, लेकिन मुझे जेनेवा, बर्न, बेजल ज्यूरिख और ल्यूजर्न विशेष सुंदर लगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जेनेवा अपने ही नाम की झील के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। शहर की आबादी तो डेढ़ लाख ही है, पर इस का महत्त्व अंतरराष्ट्रीय है। प्रथम महायुद्ध के बाद 'लीग आफ नेशंस' का प्रधान कार्यालय यहीं स्थित था। आज भी संसार की बड़ीबड़ी राजनीतिक समस्याएं हल करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि और राजदूत यहां अधिवेशनों और सम्मेलनों में एक साथ बैठ कर विचार करते हैं। ऐसे अधिवेशनों से संसार में स्विट्जरलैंड का यश बढ़ता है और उसे अच्छाखासा आर्थिक लाभ भी होता है।

बर्न के भारतीय दूतावास में मैं ने अपने देश के प्रमुख नेताओं के चित्र देखे। यूरोप में काफी लंबे अरसे के बाद मुझे यहीं के वातावरण में अपने देश की सहज आत्मीयता मिली। दूतावास यहां से एक बुलेटिन के रूपमें भारतीय समाचार प्रकाशित करता है। स्विट्जरलैंड की राजधानी होने के अलावा बर्न एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर भी है।

बेजल उत्तरपश्चिमी कोने पर बसा हुआ है और व्यापार की दृष्टि से राइन नदी का प्रमुख बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र है। अंतरराष्ट्रीय लेनदेन के कारोबार में यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। स्विट्जरलैंड के रासायनिक उत्पादनों के मामले में यह सबसे बढ़ाचढ़ा है। विश्व प्रसिद्ध औषधि निर्माता सीबा कम्पनी का कारखाना यहीं है। बेजल में ही संसार की प्रसिद्ध आयात-निर्यात कंपनियों के कार्यालय हैं। यहां प्रति वर्ष अप्रैल में एक औद्योगिक प्रदर्शनी आयोजित की जाती है जिस में संसार के विभिन्न देशों से लाखों ग्राहक पहुंचते हैं।

ज्यूरिख यहां का सब से बड़ा शहर है। इस की आबादी लगभग चार लाख है। इसकी गणना विश्व के सब से सुंदर और बड़े शहरों में की जाती है। यह संसार भर में घड़ियों और मशीनों के निर्माण का एक प्रमुख केंद्र माना जाता है। सभी कल कारखाने प्रायः बिजली से चलाए जाते हैं। इसी लिए ज्यूरिख के आसपास कलकारखानों की भरमार होते हुए भी गर्द और धुएं का नाम नहीं है। उन की बनावट भी स्कूलों जैसी है। इस शहर की एक विशेषता यह है कि अन्य शहरों की भांति यहां लोग रात में काफी देर एक क्लबों और रेस्टोरेंटों में नहीं रहते। सारा वातावरण रात के १२ बजे तक शांत हो जाता है।

इस के आसपास प्राकृतिक दृश्यों का भी काफी आकर्षण है। पहाड़ियां, झीलें और वन बरबस ही आकर्षित कर लेते हैं। ज्यूरिख यों भी झील के किनारे बसा हुआ है और फिर शहर के बीचोंबीच लिम्मत नदी की धारा इस की छटा को और भी कई गुनी बढ़ा देती है। विश्वप्रसिद्ध होटल दोल देयर यहीं पर है। इस होटल में प्रायः अमरीकन और भारतीय ही ठहरते हैं।

छोटे कस्बों में मोंत्रो, भेभे, लूजां, न्यू सेटल आदि बड़े ही सुंदर कस्बे हैं। लूजा और न्यू सेटल विद्या के केंद्र भी हैं। यहां विदेशों से हजारों छात्र पढ़नेलिखने के लिए आते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जहां असंभव भी संभव हो गया

हालैंड

राम ने समुद्र को मानव के पराक्रम और पौरुष की एक सीमा के रूप में स्वीकार नहीं किया था। रामेश्वरम् का पुल इस का सांक्षी है। यह बात त्रेता युग की है और एक किंवदंती मालूम पड़ती है। लेकिन चौंकिए नहीं ! इस संसार में एक ऐसा देश भी मौजूद है जिस ने महासागर को अपने पराक्रम की सीमा मानने पर विवश कर दिया है। उस ने महासागर को बांधा ही नहीं, उसे मीलों पीछे धकेल दिया है, उस से अपने उपयोग के लिए लाखों एकड़ भूमि छीन ली है और अपनी लगातार मेहनत के बल पर उसे उपजाऊ बना लिया है। इसी लिए इस संबंध में एक कहावत प्रसिद्ध है : विश्व को परमात्मा ने बनाया लेकिन हालैंड को डचों ने।

हालैंड समुद्र से नीचा है, इसलिए उसे नीदरलैंड यानी निचली भूमि वाला प्रदेश भी कहा जाता है। हालैंडवासी डच कहलाते हैं।

महाभारत में एक कथा है कि किसी नगर के समीप एक दानव रहता था। उस की भूख मिटाने के लिए नगर के परिवारों को बारीबारी से प्रति दिन एक व्यक्ति भेजना पड़ता था। हालैंडवासियों कोभी अपनेपड़ोसी दानव समुद्र से जूझने के लिए लगातार ८०० वर्षों तक अपने हर परिवार से सबल स्त्रीपुरुषों को हाथों में बेलचे थमा कर निश्चित समय के लिए मौत और जिंदगी की लड़ाई पर बारीबारी से भेजना पड़ता था। अंत में वे विजयी हुए।

लेकिन हमेशा से पराक्रमी समुद्र भला इतनी जल्दी अपनी हार क्यों मानता ! एक बारतो वह क्रोध से कांपता हुआ, प्रलयंकारी गर्जनतर्जन करता हुआ बांध तोड़ कर आगे बढ़ गया। सारा का सारा हालैंड जलमग्न हो गया था। चारों तरफ विनाश ही विनाश दिखाई देने लगा था। धनजन की इतनी क्षति हुई कि अनुमान लगाना संभव नहीं।

यह घटना आज से लगभग ५०० वर्ष पहले की है। तब न आज जैसे साधन थे और न सुविधाएं उपलब्ध थीं। केवल कुछ पनचक्कियों द्वारा अथाह जलराशि को उलीचना तो टिटहरी का समुद्र सोखने का प्रयास जैसा ही था। उस आपत्तिकाल में पड़ोसी राष्ट्रों ने अन्नवस्त्र आदि से हालैंड को सहायता तो दी पर ताने भी कम नहीं दिए, 'चले थे कुदरत को बदलने ! अरे, भला कभी समुद्र को भी बांधा जा सकता है !'

हालैंडवासियों के क्षोभ का अंत नहीं था। लेकिन संकट के समय वे हिम्मत न हारे और अपने पुरुषार्थ द्वारा उन तीखे व्यंग्य वचनों का करारा जवाब देने को कटिबद्ध हो गए। सारे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देश में समुद्र के खिलाफ युद्ध पर जुट जाने का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। बचे हुए बच्चे, नौजवान, बूढ़े और युवतियां सभी ने मिल कर दृढ़ प्रतिज्ञा की—कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामि अर्थात या तो समुद्र बांध कर रहेंगे या मौत का आलिंगन करेंगे !

सदियों तक हालैंडवासियों का एकमात्र लक्ष्य समुद्र पर विजय प्राप्त करना ही था। दिनरात के अथक परिश्रम तथा अनेक बलिदानों के बाद एक दिन उन की मनोकामना पूरी भी हुई। उन्होंने अपनी खोई हुई जमीन को समुद्र से छीन कर एक बड़ा ही सुदृढ़ बांध (डाइक) का निर्माण किया, जिस का कुछ हिस्सा आज भी मौजूद है।

इस अभूतपूर्व विजय ने हालैंडवासियों को संसार के दूसरे राष्ट्रों की नजरों में बहुत ऊंचा उठा दिया और वे स्वयं भी अपनेआप को पराक्रमी, सहनशील और धैर्यवान अनुभव करने लगे। इन सैकड़ों वर्षों के युद्ध में वे समुद्र के स्वभाव को इतनी अच्छी तरह पहचान गए कि उन की नौकाएं बिना रोकटोक विश्व के कोनेकोने की यात्रा करने लगीं। उन की गणना प्रथम कोटि के नाविकों में होने लगी।

उस समय ब्रिटेन की नौशक्ति काफी बढ़ीचढ़ी थी। भला डचों को इस क्षेत्र में बढ़ते हुए वे कैसे देख सकते थे ? एक दिन अकारण ही उन्होंने इस गरीब थके हुए देश पर धावा बोल दिया। परंतु जिस वीर जाति ने समुद्र के छक्के छुड़ा दिये थे वह मनुष्यों से कहां हार मानने वाली थी ? उन्होंने अंतिम सांस तक शत्रुओं का वीरता के साथ मुकाबला किया। नतीजा यह हुआ कि सन १६७४ ई० में अंगरेजों को संधि करने पर बाध्य होना पड़ा।

अठारहवीं सदी के अंत में नेपोलियन बोनापार्ट की आंधी सारे यूरोप पर छा गई थी। दूसरे देशों की तरह, छोटे से हालैंड को भी उस के सामने घुटने टेक देने पड़े थे, पर कुछ वर्षों बाद ही वह पुन: स्वतंत्र हो गया।

स्वाधीनता की इस नवीन अवधि के १५० वर्षों में डचों ने अपने देश को हर तरह उन्नत बनाया। बड़ेबड़े जहाज बनाने के कारखाने खुल गए, बिजली के सामानों, मशीनों और रेडियो का तो यह प्रमुख निर्माता बन गया। हेग में विश्व का उच्चतम न्यायालय स्थापित हुआ। एमस्टर्डम दुनिया के बहुमूल्य हीरों के क्रयविक्रय का प्रमुख केंद्र बना और रोटरडम लंदन के बाद यूरोप का सब से बड़ा बंदरगाह।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, डच कष्ट सहने के अभ्यासी होते हैं, पर वे बड़े सैलानी, कलाप्रेमी, खानेपीने के शौकीन और फूलों के अनुरागी भी कम नहीं होते। प्रत्येक घर में फूलों का एक छोटा सा बगीचा और कुछ हाथ की बनी तस्वीरें मिलेंगी, चे चाहे वे सुप्रसिद्ध चित्रकारों की हों अथवा उन की स्वयं की बनाई हुई।

वहां वर्ष में कई बार फूलों की प्रदर्शनियां होती हैं, जिन में अच्छे फूलों पर इनाम दिए जाते हैं। इस तरह हालैंड को फूलों के व्यापार से भी बड़ी आमदनी हो जाती है। प्रदर्शनी में आए हुए फूलों के पौधों में से किसीकिसी के तो बीस हजार रुपयों तक दाम लग जाते हैं।

हालैंड और डेनमार्क में साइकिलों का प्रचलन है। छुट्टी के दिन यदि हल्की सी धूप निकल आती है तो हजारों की संख्या में वे लोग बालबच्चों के साथ साइकिलों पर सवार हो कर दूर समुद्र तट या डाइक पर सैर के लिए चले जाते हैं। एक साइकिल पर पतिपत्नी और दो बच्चों का बैठना तो साधारण बात है। इस दृश्य का अंदाज नई दिल्ली की उन सड़कों से लगाया जा सकता है जहां दफ्तरों की छुट्टी के समय सड़क अनगिनत साइकिल सवारों से भर जाती है।

हालैंड मे गोपालन भी एक मुख्य धंधा है। एकएक गाय से प्रति दिन मन सवामन दूध पाना तो साधारण बात है। वहां की गायें हमारे यहां की भैंसों से भी बड़ी होती हैं। दक्षिण व उत्तरी अमरीका वाले अच्छी नस्ल के बछड़े पैदा करने के लिए यहां से एकएक सांड

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पचासपचास हजार रुपयों तक मूल्य दे कर खरीदते हैं। अपने यहां पिलानी (राजस्थान) में भी हालैंड का सांड़ है जिस से उत्पन्न गायों के ४५ पौंड तक दूध प्रति दिन होता है।

यहां खेलकूद भी जीवन का प्रमुख अंग हैं|वैसे तो सभी तरह के खेल होते हैं, परंतु शीतकाल में जब नहरें जम जाती हैं, तब बर्फ पर स्की का खेल शुरू हो जाता है। इसी तरह गरमी में इन्हीं नहरों में नावों की दौड़ और तैरने की प्रतियोगिताएं भी होती रहती हैं।

हालैंड के सभी शहर समुद्र के किनारे पर बसे हुए हैं। इसलिए यहां समुद्रस्नान और तैरना जीवन का आवश्यक अंग हो गया है। हर जगह स्नान की उचित व्यवस्था है। अन्य यूरोपीय देशों की तरह यहां हजारों की संख्या में लोग समुद्रस्नान करते रहते हैं, परंतु यहां वेनिस और मोंतेकार्लो की तरह स्त्रीपुरुषों को अर्द्धनग्नावस्था में नहीं देखा जा सकता। जनजीवन सुखी प्रतीत होता है, क्योंकि वस्तुओं के मूल्य, अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा कम हैं। खास कर दूध, दही, पनीर, मक्खन और फल बहुत ही सस्ते हैं।

इस छोटे से देश में २५० संग्रहालय (म्यूजियम) हैं, जिन में से हेग, एमस्टर्डम और रोटरडम के संग्रहालय तो विश्वविख्यात हैं।

यद्यपि इंगलैंड की तरह हालैंड भी एक साम्राज्यवादी देश है, पर दोनों के वर्तमान शासकों के सहनसहन और शानशौकत में बहुत बड़ा अंतर है। ब्रिटेन की महारानी का निजी खर्च प्रति वर्ष लाखों रुपए होता है, जब कि हालैंड की महारानी जुलियाना बहुत ही साधारण ढंग से अपने पति और बच्चों के साथ हेग के एक देहाती अंचल में रहती हैं। उन की तीन लड़कियां पब्लिक स्कूल में आम बच्चों के साथ ही पढ़ती हैं।

मैं सर्वप्रथम एंटसर्व से ट्रेन द्वारा रोटरडम गया। रास्ते में एक सीमा चौकी पर पासपोर्ट की जांच की गई। हमारे देश की चौकियों की तरह यहां मालअसबाब उलटपलट और अव्यवस्थित नहीं किया गया और न वस्त्र खुलवा कर तलाशी ही ली गई। इस का कारण यह है कि इन देशों के आपसी संबंध अच्छे हैं और लोगों का नैतिक स्तर भी ऊंचा है। यहां पूर्वी देशों जैसा तस्कर व्यापार नहीं होता।

रोटरडम की आबादी करीब दस लाख है। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनों ने बमबारी से कुछ दिनों में ही इस के दस हजार मकान और तेरह सौ कारखाने नष्ट कर दिए थे। इस से जो हानि हुई उस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। तेजी से रोटरडम का पुनर्निर्माण हुआ और थोड़े समय में ही वह पहले से अधिक सुंदर और समृद्ध बन गया। यह डचों के परंपरागत मेहनती होने का सबूत है।

समुद्र के किनारे, राइन तथा मांज नदियों के मुहाने पर स्थित होने के कारण, रोटरडम विश्व के सर्वोत्तम बंदरगाहों में गिना जाता है। उत्तरी जर्मनी और स्विट्जरलैंड के आयातनिर्यात के लिए यह एक बड़ा बंदरगाह है, और इसे भी उन देशों के विकास का लाभ मिल रहा है।

रोटरडम बंदरगाह के गोदामों में आठ करोड़ मन माल रखने की जगह है। प्रति दिन यहां तीस लाख मन माल चढ़ाया और उतारा जाता है। इस काम के लिए ३५० छोटीबड़ी मशीनें लगी हुई हैं। बंदरगाह के अनुरूप ही, यहां विशाल रेलवे स्टेशन है, जहां केवल मालअसबाब उतारनेचढ़ाने के लिए साइडिंग की लंबाई १२५ मील है।

दर्शनीय इमारतों में प्रथम स्थान यहां के नवनिर्मित वाणिज्य भवन का है, जिस के निर्माण में पांच करोड़ रुपए खर्च हुए हैं। उस में सब प्रकार के व्यावसायिक और औद्योगिक कार्यालय हैं। साथ में माल रखने के गोदाम भी हैं। इस से आपसी विनिमय में समय, शक्ति और व्यय तीनों की बचत हो जाती है। अगर भारत के कलकत्ता, बंबई और मद्रास आदि बड़ेबड़े औद्योगिक केंद्रों में भी इसी तरह के वाणिज्यभवनों का निर्माण हो जाए, तो लोगों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रम की बड़ी बचत हो और कितनी ही अनावश्यक कठिनाइयां दूर हो जाएं।

अन्य दर्शनीय स्थानों में, यहां नदी के नीचे बनाई हुई सुरंग की सड़क भी है। पहले इस नदी के ऊपर बने हुए पुल द्वारा आवागमन होता था, परंतु ज्योंज्यों रोटरडम का महत्व बढ़ता गया, उन्हें इस सुरंग की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होती गई।

रोटरडम से ट्रेन द्वारा शाम को विश्वविख्यात नगर व हालैंड की राजधानी हेग पहुचा। हेग न केवल हालैंड की राजधानी है, बल्कि यहां विश्व का उच्चतम न्यायालय भी है, जिस के अधिवेशन संसार के प्रसिद्ध पीस पैलेस (शांति भवन) में होते हैं। सर्वप्रथम इस भवन के निर्माण के लिए सन १९०० ई० में अमरीका के उदार, मानवता प्रेमी अरबपति एंड्र्यू कारनेगी ने ६० लाख रुपए दिए थे। उस के बाद अन्य देशों ने भी इसे बनाने में काफी सहयोग दिया था। सन १९१३ ई० में यह भव्य भवन बन कर तैयार हो गया था। इस में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के अलावा कानूनी पुस्तकों का भी विशाल संग्रह है।

सुंदरता व भव्यता की दृष्टि से हेग मुझे यूरोप के अन्य सभी नगरों से अधिक आकर्षक और मनोरम प्रतीत हुआ। डचों को अपने इस नगर पर नाज है। वे उसे यूरोप का सब से सुंदर नगर कहते हैं। यहां विश्व की विविध समस्याओं के समाधान के लिए वर्ष में पचासों सम्मेलन होते रहते हैं, जिन में सम्मिलित होने के लिए संसार के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में बड़ेबड़े राजनीतिज्ञ और विधिवेत्ता आते हैं। इस से हालैंड को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के साथसाथ विदेशी मुद्रा भी कम नहीं प्राप्त होती।

हेग के सेवेननिगेम समुद्रतट की स्मृति मेरे मन में आज भी ताजी है। यह यूरोप के प्रसिद्ध समुद्री तटों मे से एक है। मीलों तक पक्की सड़क है। एक तरफ बड़ेबड़े होटलों की कतारें हैं, दूसरी तरफ समुद्री रेत पर नहाने वालों के लिए काठ के छोटेछोटे केबिन बने हुए हैं।

काफी घूमने व देखने के बाद थकावट महसूस हुई और भूख भी जोरों से लग आई। इसलिए निकट के 'विक्टोरिया' नामक होटल में पहुंचा। इस का विशाल और सुसज्जित डाइनिंग हाल देख कर मैं दंग रह गया। फर्श पर कीमती कालीन बिछे हुए थे और ऊपर वेनिस के बिल्लौरी कांच के बड़ेबड़े फानूस लटक रहे थे। इस होटल की गणना यूरोप के सर्वश्रेष्ठ होटलों में है। कहते हैं कि महारानी विक्टोरिया भी कभीकभी राजकाज से अवकाश निकाल कर यहां आ कर ठहरती थीं।

परिचारिका को मैं ने दूध, मक्खन और रोटी लाने के लिए कहा। यूरोप के इन उत्तरी देशों में चाय और काफी की अपेक्षा दूध बहुत ही सस्ता है। यहां एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन देशों में दूध के लिए केवल गाय का ही उपयोग होता है, भैंसों या बकरियों का नहीं।

मेरी मेज पर पहली बार जितनी खाद्यसामग्री आई, उस से क्षुधा शांत नहीं हुई तो परिचारिका को बुला कर एक बार और लाने को कहा। यूरोप के इन बड़ेबड़े होटलों में जो परिचारिकाएं रखी जाती हैं, वे बहुत ही स्वस्थ और सुंदर युवतियां होती हैं। स्त्रियों में मातृभावना प्रायः सर्वत्र समान रूप से मिलती है, चाहे वे किसी भी आयु अथवा देश की क्यों न हों।

परिचारिका ने मुझे एक ग्राहक मात्र ही न समझ कर विदेशी अतिथि के रूप में देखा और दूसरी बार बहुत सा मक्खन, रोटी और दूध ले आई। खा-पी कर तृप्त होने के बाद बिल आया तो केवल सवा चार रुपए का। इतनी ही सामग्री का बंबई, कलकत्ता या नई दिल्ली के होटलों में पांचछः रुपयों से कम नहीं लगता। हालैंड के इस होटल की खाद्यसामग्री से अपने यहां के होटलों की कोई तुलना ही नहीं हो सकती।

हेग और सेवेननिगेम के बीच में छोटे बच्चों के लिए मदुरोडेम नाम का एक बौना आदर्श

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शहर बसा हुआ है। इस का क्षेत्रफल तो कुल साढ़े चार एकड़ है, परंतु इतनी सी जगह में ट्रेन, बस एयरपोर्ट, होटल, मकान, कारखाने, बाजार, रेस्तरां, टाउनहाल आदि सभी कुछ हैं। इस के निर्माण का भी अपना एक अनोखा इतिहास है। हालैंड के एक धनी व्यापारी का किशोर पुत्र युद्धकाल में जर्मनों की कैद में भीषण यातनाओं से मार डाला गया था। उसी की यादगार में बच्चों का यह शहर बसाया गया है। इस आधुनिक लिलिपुटियन शहर (बौने नगर) को देखने के लिए लाखों की संख्या में यात्री आते हैं जिन से साधारण शुल्क लिया जाता है और वह सारी निधि टी० बी० सेनीटोरियम को दे दी जाती है। इस प्रकार लोगों के मनोरंजन के साथ एक उपयोगी संस्था के संचालन में भी बड़ी सहायता मिल जाती है।

ऊपर हम उल्लेख कर आए हैं कि डच फूलों के बड़े शौकीन होते हैं। उन्होंने सुंदर तरीके से इस शौक को देश की आमदनी का भी एक जरिया बना दिया है। कोकनहाफ शहर में सिर्फ फूलों के ही बाग हैं, जहां सैकड़ों तरह से प्रयोग और परीक्षण उन पर होते रहते हैं।

विभिन्न नस्लों के पशुओं की मिश्रित जातियां जैसे तैयार की जाती हैं वैसे ही भिन्नभिन्न जाति के पौधों की कलमों के चश्मे चढ़ा कर नाना प्रकार के रंगों और आकृतियों के फूल उपजाए जाते हैं, जिन्हें देखने के लिए विदेशों से लाखों की संख्या में यात्री आतेजाते रहते हैं। कोकनहाफ के समीप ही आल्ससीर नामक शहर में इन फूलों का नीलाम प्रति सप्ताह होता है। इस शहर का अस्तित्व ही यदि फूलों के इस व्यापार पर आधारित कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फूलों के निर्यात से हालैंड को बीस करोड़ रुपए की वार्षिक आमदनी हो जाती है।

एमस्टर्डम हालैंड की व्यापारिक राजधानी तथा सब से बड़ा शहर है। ५०० वर्ष पहले जहां दलदली जमीन और छिछले पानी का जमाव था, वहां डचों ने इतना सुंदर और विशाल नगर बना लिया है कि इस को यूरोप का दूसरा वेनिस कहा जाता है। स्वच्छता, मकानों की सुंदरता और सड़कों की चौड़ाई में तो यह वेनिस से भी बढ़ाचढ़ा है। वेनिस को यदि हम भारत का वाराणसी कहें, तो इसे सहज ही बंगलौर की उपमा दी जा सकती है।

नौ बजे ही जलपान से निवृत्त हो कर शहर देखने निकला। होटल के सामने की नहर में एक मोटर बोट खड़ा देखा, जिस में लोग सवार हो रहे थे। मैं ने समझा कि यह भी कोई किराए का बोट है, अतः मैं भी उस में जा सवार हुआ। कोई पंदरह मिनट बाद करीब ५० यात्रियों को ले कर बोट कई नहरों से गुजरता हुआ खुले समुद्र में पहुंच गया। मैं ने साथ के यात्रियों से पूछने की चेष्टा भी की कि हम जा कहां रहे हैं, परंतु अंगरेजी यूरोप के खासखास होटलों व बड़ीबड़ी दुकानों के अलावा और कहीं काम नहीं देती। फ्रेंच मैं जानता नहीं था। लाचार हो कर चुपचाप बैठा रहा।

कुछ देर बाद मोटर बोट अथाह जलराशि के बीच एक टापू के पास जा कर रुका। वहां एक जहाज बनाने का बड़ा कारखाना था। सब यात्री बोट से उतर पड़े, केवल मैं ही रह गया। समझ में नहीं आया कि वास्तविकता क्या है? संकेत की भाषा में बोट चालकों को समझाया कि मुझे तो वापस शहर जाना है, परंतु सफलता नहीं मिली। सौभाग्य से, वहीं पर कारखाने में अंगरेजी जानने वाला एक कर्मचारी मिल गया। उस ने बताया कि यह बोट तो इस जहाजी कारखाने के कर्मचारियों को शहर से लाने और ले जाने के लिए है, यह इन्हें ले कर शाम को ही वापस लौटेगा।

अब मेरी समझ में बात आई कि मुझे भी कारखाने में जाने वाला समझ कर न तो किराया ही मांगा गया और न जाने की जगह का नाम ही पूछा गया। बड़े असमंजस में पड़ा। शहर से मीलों दूर, समुद्र के बीच, भूख काफी महसूस हो रही थी। कोई एक घंटे बाद सामने से एक बड़ा बोट आया। संयोग से यह यात्रीबोट था। डेढ़ रुपया दे कर उस से करीब दो बजे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वापस एमस्टर्डम पहुंचा । इस के बाद तो यात्री सहायक केंद्र पर जा कर सारी बातों की जानकारी कर ली और वहीं से शहर का एक नकशा भी ले लिया ।

एमस्टर्डम की एक छोटी सी घटना मैं आज भी नहीं भूल पाता । एक महिला से मैं ने किसी रास्ते का पता पूछा जो उस ने संकेत से बता दिया । थोड़ी दूर जाने के बाद पीछे से एक आदमी दौड़ता हुआ आया और टूटीफूटी अंगरेजी में बताया कि मेरा रास्ता उस तरफ न हो कर दूसरी तरफ से है । वह महिला भी उतनी देर तक वहीं खड़ी हुई मेरी तरफ देखती रही । जब मैं सही रास्ते की तरफ मुड़ गया तब वह अभिवादन कर के लौटी । संभवतः जो रास्ता बताया था उस में भूल हो गई थी और इसी लिए उस ने वह आदमी दौड़ा कर मुझे परेशानी से बचा लिया । इस घटना से मेरा ध्यान अपने देश के ऐसे लोगों की तरफ चला गया जो अपरिचित राहगीरों को रास्ता पूंछने पर या तो झिड़क देंगे या जानबूझ कर गलत रास्ता बता देंगे ।

हालैंड में जा कर यदि जाइडरजी का बांध, सीफोल का हवाई अड्डा न देखा जाए, तो यात्रा अधूरी ही समझी जाएगी । जाइडरजी का बांध १६२० में बनना शुरू हुआ और १६३२ में बन कर तैयार हुआ था । यह २७ मील लंबा है । एक तरफ अथाह खारा समुद्र है, तो दूसरी तरफ मनुष्य निर्मित मीठे पानी की झीलें व हरीभरी कृषि योग्य उपजाऊ जमीन । बांध की दीवार इतनी चौड़ी बनाई गई है कि उस पर एक साथ मोटर, साइकिल, पैदल चलने वालों के लिए अलगअलग सड़कें हैं । छुट्टी के दिन इस बांध पर हालैंड के युवक और युवतियों व बच्चों का मेला लगा रहता है ।

इसी तरह सीफोल के हवाई अड्डे को भी दुनिया का आठवां आश्चर्य कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा । सौ वर्ष पहले जहां समुद्र लहरा रहा था, वहां विश्व का सब सेबड़ा हवाई अड्डा बन जाना, कम आश्चर्य की बात नहीं । प्रति दिन सैकड़ों वायुयान यहां आतेजाते हैं । उड्डयन के क्षेत्र में आज भी 'के० एल० एम०' के हवाई जहाज और उन के डच चालक संसार में अपना सानी नहीं रखते ।

अंत में यहां के विश्व प्रसिद्ध फिलिप्स के कारखाने के बारे में दो शब्द लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा । जहां फिलिप्स का कारखाना है, वहां जमशेदपुर की तरह आइडहोवेन नाम का एक नगर ही बस गया है । पैंसठ वर्ष पहले बहुत छोटे पैमाने पर इस कारखाने की नींव पड़ी थी । आज दुनिया में उस की पचहत्तर शाखाएं हैं, जिन में एक लाख से भी अधिक आदमी काम करते हैं । फिलिप्स के रेडियो, मांइक्रोस्कोप एवं बिजली के अन्य उपकरणों का वार्षिक उत्पादन करीब दो सौ करोड़ रुपए के मूल्य का होता है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आक्रमणकारियों का शिकार

गिरजों गोंदोलों के बीच

विश्व के नंदनकानन में घूमते समय मन में विचार उठे कि पेरिस, बर्लिन, मास्को, हेग, लंदन आदि यूरोपीय शहरों में विविधता और वैचित्र्य की कमी नहीं। सभी यूरोपीय शहरों का अपनाअपना रूप है, अपनीअपनी विशिष्टताएंहैं। मन पर इन सभी शहरों और देशों की अलगअलग तरह की छापें पड़ती हैं, अनेकता का पता चलता है। लेकिन इस अनेकता में एकता का आभास भी स्पष्ट है।

जीवन और उस की मूल समस्याओं के प्रति पश्चिमी देशों के लोगों के दृष्टिकोण, उन की सहज प्रतिक्रियाओं और उन के तौरतरीकों में काफी हद तक समानता है। लगता है कि उन के संस्कारों की बुनियाद एक ही है। पश्चिमी सभ्यता की विभिन्न बेलें रोमन और यूनानी संस्कृतियों की मिट्टी और खाद से पनपी और फलीफूली हैं।

इसी लिए इच्छा हुई कि इटली और यूनान को भी अवश्य देखना चाहिए। उस से पश्चिमी संसार को समझने में और अधिक सहायता मिलेगी। स्विट्जरलैंड से फिर मैं रोमन संस्कृति का केंद्र इटली देखने उड़ चला। हमारा विमान अपने पंख पसारे आल्प्स् की ऊंची, बरफानी चोटियां लांघ कर मिलान के हवाई अड्डे पर मंडराने लगा। इटली पहुंचना आज कितना आसान हो गया है!

अभी पिछली शताब्दी तक तो इटली पहुंचने का सब से आसान साधन समुद्री मार्ग ही था क्योंकि इस के उत्तर में हिमालय की तरह आल्प्स् की ऊंचीऊंची चोटियां खड़ी हैं। उन को पार करने में कई विदेशी आक्रांता प्राणों की बलि दे चुके थे। समुद्री मार्ग आसान था। इटली के तीन ओर समुद्र है। मानचित्र देखने से लगता है जैसे वह भूमध्य सागर के जल में अपने पैर बढ़ाये बैठा हो।

अब विज्ञान ने वायु मार्ग के अतिरिक्त स्थल मार्ग भी सुलभ बना दिया है। आल्प्स् का पेट चीर कर सुरंगें बना दी गई हैं। संसार की सब से लंबी बारह मील की सुरंग –सिपलन, के जरिए हम चंद ही घंटों में पेरिस से मिलान पहुंच जाते हैं।

मिलान के हवाई अड्डे से अपने पहले से तय किए हुए होटल में पहुंचा। शहर का नक्शा पेरिस से बहुत कुछ मिलताजुलता है लेकिन पेरिस की भव्यता और सजीवता तो उस की अपनी ही है। इस में मध्य भाग को केंद्र बना कर परिधि की तरह दो सड़कें एकदूसरे के समानांतर चली गई हैं जिन को सीधी सड़कें आपस में जोड़ती हैं। लगभग सभी बड़ी सड़कों पर छायादार वृक्षों की कतारें करीने से लगी हुई हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मध्य भाग को ऐतिहासिक मिलान कहना ही ठीक रहेगा। यहीं अधिकांश प्राचीन इमारतें और भग्नावशेष हैं। समय की कमी के कारण मैं उन खंडहरों के वैभव को सरसरी निगाह से ही देख पाया। फिर भी उन को देखते समय मुझे बारबार यही लगा कि इतिहास ने हमारे देश की तरह यहां भी कई बार करवटें बदली हैं।

जैसे भारत पर शक, हूण, तुर्क, पठान और मुगलों के आक्रमण गंगायमुना की शस्यश्यामला भूमि के कारण होते रहे हैं, उसी तरह इटली के लोंबार्डी के हरेभरे मैदानों ने अपने धनवैभव के कारण यूरोप के आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकर्षित किया। नुकीले भालों और चमचमाती तलवारों की टक्करें देखने के अनगिनत अवसर दिल्ली की तरह मिलान को भी प्राप्त हुए हैं।

मिलान उत्तरी इटली का एक प्रमुख धार्मिक केंद्र रहा है। शहर के मध्य भाग में स्थित प्राचीन गिरजे, संन्यासियों के मठ और संकरी गलियां सदियों की घटनाओं पर प्रकाश डालती हैं। शहर के इस भाग में वातावरण बिल्कुल बदला हुआ सा मिलता है। कुछ देर के लिए उन में खो जाना पड़ता है, तब खयाल तक नहीं आता कि हम २०वीं सदी के किसी आधुनिक शहर में हैं।

वास्तुकला और विशिष्ट मतों के कारण प्रत्येक गिरजा अपना अलग महत्त्व रखता है। मुझे संत अंब्रोजियो का गिरजा तथा ड्यूमा कैथेड्रल बड़े भव्य और आकर्षक लगे। विगत महायुद्ध की विभीषिका के परिणामस्वरूप संत अंब्रोजियो के गिरजे को बड़ी क्षति पहुंची है। १९४३ की बममारी से कई अंश ध्वस्त हो गए थे।

इस गिरजे का धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इस का निर्माण चौथी शताब्दी में शुरू हुआ था। फिर बारहवीं शताब्दी में इस का पुनर्निर्माण हुआ और कुछ नए अंश जोड़े गए। इस की वेदी पर अनेक नरेशों को राजमुकुट पहनाया गया है। भित्ति चित्र काफी प्राचीन हैं। मैं ने संत अंब्रोजियो के विविध चित्र देखे जो नवीं शताब्दी के आसपास के हैं। इन से उस काल के रहनसहन, पोशाक और आचारविचार का परिचय मिला है।

ड्यूमा कैथेड्रेल की गणना संसार के विशाल गिरजों में की जाती है। कहते हैं कि इस के निर्माण में लगभग ५०० वर्ष लगे थे। दूसरे महायुद्ध की बमबारी ने इसे भी बहुत हानि पहुंचाई। गनीमत है कि यह पूरी तरह से समाप्त हो जाने से बच गया, वरना आने वाली पीढ़ियां विश्व की एक बहुत सुंदर कलाकृति से वंचित रह जातीं। मैं ने सुप्रसिद्ध चित्रकार ल्योनार्दो की श्रेष्ठतम कृति 'अंतिम भोज' भी यहीं देखी। सचमुच यह चित्र बेहद आकर्षक है।

चित्र में महात्मा ईसा अपने शिष्यों के साथ अंतिम भोज पर बैठे हैं। उन्हें दूसरे ही दिन सूली पर चढ़ाया जाने वाला था। भोज में वह व्यक्ति भी शामिल है जिस ने महात्मा ईसा के साथ विश्वासघात किया था। ल्योनार्दो की तूलिका ने प्रत्येक व्यक्ति के मनोभावों को बड़ी सफाई और खूबसूरती से व्यक्त किया है। महात्मा ईसा के चेहरे पर शांति, दया, क्षमा और सात्त्विकता के भाव स्पष्ट झलकते हैं। भक्तों की आंखों में श्रद्धा, भक्ति और विश्वास है।

ल्योनार्दो के अलावा विश्व के अन्य बड़ेबड़े चित्रकारों ने भी 'अंतिम भोज' को चित्रित करने की कोशिश की, पर वह सूरत, वह सीरत, किसी से न बनी। इस चित्र में महात्मा ईसा को अंतिम उपदेश देते हुए देख कर लगा कि स्वयं करुणा की मूर्ति साकार हो।

मैं ने पेरिस पहुंच कर लूव्रे में ल्योनार्दो की 'मोनालिसा' भी देखी। मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों कला पारखी 'मोनालिसा' को पहला और 'अंतिम भोज' को दूसरा स्थान देते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थानों में स्काला थियेटर, आर्क आफ पीस और रायल विला प्रमुख हैं। स्काला अपने परिमार्जित और कलापूर्ण संगीत, नृत्य तथा नाटकों के लिए केवल इटली में ही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं, सारे विश्व में अनुकरणीय माना जाता है। शहर में कई अजायबघर भी हैं, जहां इतिहास, कला, समाजशास्त्र और धार्मिक महत्त्व के अध्ययन की बहुत सी सामग्री है।

इटली के अन्य शहरों और मिलान में एक उल्लेखनीय भेद यह है कि यहां के स्थानीय लोग अधिक परिश्रमी और व्यवहारकुशल हैं। दक्षिणी इटली में कुछ गरम जलवायु होने के कारण लोगों में परिश्रमशीलता कम देखने में आई।

मिलान इटली का औद्योगिक और व्यापारिक केंद्र है। मैं ने शहर में शेयर बाजार भी देखा। व्यापारी बड़े जोरों से हाथ फटकारते हुए भावताव में व्यस्त थे। मैं सोचने लगा कि अकेले कलकत्ता और बंबई में ही यह रोग नहीं, यह तो सारे विश्व में फैला हुआ है। एक गोलमटोल सज्जन मुसकरा कर अभिवादन करते हुए बोले, "क्या मैं आप की कुछ सेवा कर सकता हूं ?"

मैं ने बताया कि यह दृश्य मुझे अपने देश की याद दिलाता है। मैं यहां केवल दर्शक हूं, सौदा करने नहीं आया।

वह हंस कर बोले, "सिन्योर, मनुष्य और पैसे का संबंध सब देशों में एक सा है। भेद है तो सिर्फ नाम का।"

हम दोनों हंसने लगे।

मिलान के बाद मैं वेनिस गया।

वेनिस मिलान से करीब ७० मील पूर्व की ओर एड्रियाटिक सागर के उत्तरी छोर पर बसा है। दरअसल यह शहर कई छोटेछोटे द्वीपों का पुंज है। वेनिस की सुंदरता के बारे में बहुत दिनों से सुनता आ रहा था। आंखों के सामने देख कर लगा कि इस के लिए जो भी कहा गया है, उस में कुछ भी गलत नहीं।

इस की स्थिति सामुद्रिक व्यापार की दृष्टि से बहुत अच्छी है। आधुनिक युग में यूरोप के बाजार पर लंदन का जो नियंत्रण है, प्राचीन काल में वह सौभाग्य वेनिस को प्राप्त था। स्वेज मार्ग बनने पर इस का महत्त्व धीरेधीरे घटता गया। जो भी हो, यह अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वाणिज्यव्यापार के क्षेत्र में शुरू से ही आगे रहा है। इन्हीं कारणों से यह लगातार समृद्ध होता गया।

यहां के निवासी सुदूर अतीत सें पश्चिम और पूर्व के संपर्क में बराबर रहते आ रहे हैं। यही कारण है कि यहां के कलाकौशल का भी अपना एक अनोखा रूप है जो शेष इटली से भिन्न है। बेलबूटे, कढ़ाईसिलाई और कटाईछटाई का इस का अपना निराला ढंग है जो सदा से ही आकर्षक रहा है।

आज भी वेनिस की बनी कांच की वस्तुएं अपनी नक्काशी और तराशी के कारण दुनिया में अद्वितीय हैं। सजावट के लिहाज से यहां के झाड़फानूस विश्व के सभी देशों में बड़े लोकप्रिय हैं। ये सामान यहां लाखों लोगों की रोजी का बहुत अच्छा साधन बन गए हैं।

वैसे इटली के सभी देशों में मोलभाव चलते हैं पर वेनिस के बाजारों के क्रयविक्रय के दृश्य तो देखने ही लायक होते हैं। यहां यों भी चीजें मंहगी हैं, फिर नफीस चीजों का तो कहना ही क्या ! यहां विदेशों से आने वाले यात्रियों को फंसाने वालों की कमी नहीं है। मुझे भी एक ऐसा मौका पड़ा।

चाय का एक सेट खरीदना चाहता था। सन मारको के विश्वप्रसिद्ध बाजार में गया, एक दुकान पर पहुंचा। दाम अनापशनाप। मुंह फेर कर लौटने लगा तो दाम तीनचौथाई। दुकान के बाहर पैर रखा कि दाम आधा।

इस चमत्कार से पुराने समय के जयपुर की दुकानें याद आ गईं। मैं ने जिस दुकान से सेट खरीदा उस ने तो कई गुना दाम बता दिया था। मैं ने भी सोचसमझ कर अपना दाम बताया। पैर बाहर रखा पर सिन्योर कुछ बोले नहीं। मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ पर इस से अधिक आश्चर्य तब हुआ जब दुकान छोड़ कर चार कदम आगे बढ गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिन्योर दुकान से उतर आए और एहसान जता कर कहने लगे, "आप विदेशी हैं, वरना......क्या कहूं, आप ने तो कौड़ियों का भाव बताया है।" फिर आसमान की ओर देख और अपनी गोलमटोल आंखें नचाते हुए बोले, "क्या कहूं, सिन्योर, लोग वेनिस की चीजें विदेश न ले जाएं, यह मुझे गवारा नहीं। चलिए, ले जाइए!"

आखिर इटालियन मुद्रा में कीमत (भारतीय ३७० रुपए) दे कर वह सेट खरीद ही लिया। आज भी जब विशिष्ट अतिथियों को उन कपों में चाय पिलाता हूं तो वे उस की नक्काशी और सुनहरे काम की सराहना किए बिना नहीं रहते।

वेनिस शहर की बनावट निराली है। छोटेछोटे द्वीपों पर बसा होने के कारण आज भी यातायात के प्रमुख साधन नावें और मोटरबोटें हैं। हालांकि पुलों द्वारा द्वीप कहींकहीं पर जुड़े हुए हैं और इन पुलों पर मोटरें और बसें भी दौड़ती हैं। लेकिन फिर भी खासखास रास्ते नहरों के ही हैं। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इटली के अन्य शहरों की तुलना में यहां विशेष अंतर नहीं। एक बात अवश्य है कि यहां गिरजों के अलावा बहुत सी ऐसी पुरानी भव्य इमारतें भी हैं जिन्हें मध्य युग में रईसों या सामंतों ने बनवाया था। हां, आज मरम्मत के अभाव में वे जीर्णशीर्ण पड़ी हैं।

वेनिस में सिनेमाघर, थियेटर, म्यूजियम और आपेरा हाउस भी हैं। आकर्षण के सभी प्राचीन और आधुनिक साधन वहां उपलब्ध हैं। लेकिन इतना सब होते हुए भी वहां का विशेष आकर्षण है गोंदोला।

हंसिनी की भांति सुंदर सजीली इन नौकाओं को वेनिस की नहरों के शांत जल में मस्ती के साथ चलते देख कर सम्मोहित हो जाना स्वाभाविक है।

गोंदोलों में सजावट के साथसाथ आराम का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। इन में साफ और नरम बिस्तरे, शीशे जड़े शृंगार टेबल, आईने और कामदार परदे लगे होते हैं। विलास के इन सारे साधनों का आकर्षण सजावट और सफाई के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है।

बनारस के बजरे और काश्मीर के शिकारे गोंदोलों के सामने कुछ नहीं हैं, क्योंकि इन में सुख और विलास के उतने साधन नहीं होते। यही कारण है कि आज मोटरबोट के युग में भी वेनिस में गोंदोला मस्ती और शान से झूमता है।

गोंदोला खुद ही बहुत आकर्षक होता है लेकिन उस के प्रति आकर्षित होने का कारण है उस का एकाकी मल्लाह, उस का स्वस्थ और सुगठित शरीर तथा उस का मस्ती भरा प्रेम संगीत। यही कारण है कि संसार के दूरदूर के इलाकों से आ कर विलासप्रिय स्त्रियां गोंदोलों में हफ्तों गुजार देती हैं। मल्लाहों पर धन और तन निछावर करती हैं। गोंदोला उन के लिए शारीरिक सुख प्राप्त करने का प्रतीक बन गया है।

नहर के किनारे खड़ा मैं इन्हीं बातों पर विचार कर रहा था कि रात ढलने लगी। मैं होटल की ओर चल पड़ा।

सुबह देर से उठा। उस वक्त वेनिस धूप में नहा रहा था। आज वेनिस से विदाई लेनी थी। सोचा, 'यहां का विश्व प्रसिद्ध समुद्र तट लिडी अवश्य देख लेना चाहिए'। मैं ग्रांड कैनाल (बड़ी नहर) से होता हुआ समुद्र तट पर पहुंचा।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्या अभी भी विश्व की सारी सड़कें रोम तक पहुंचती हैं ?

योरुप की अमरपुरी रोम

वेनिस से रोम के लिए ट्रेन में बैठा। उत्तरी इटली की यात्रा मिलान और वेनिस देख कर समाप्त कर चुका था। अब रोम और नेपल्स देख कर दक्षिणी भाग की यात्रा पूरी करना चाहता था। सुंदरता की रानी फ्लोरेंस और जेनेवा को देखने की इच्छा मन में ही रह गई। समय बहुत कम था।

रोम पहुंचने की खुशी में रोमरोम पुलकित हो रहा था। ट्रेन अपनी रफ्तार से भाग रही थी। स्वीडन और स्विट्जरलैंड की ट्रेनों में बहुत घूम चुका था इसलिए इटली की ट्रेन यात्रा उन के मुकाबले अच्छी नहीं लगी।

बचपन में पढ़ा था कि रोम एक दिन में नहीं बना, विश्व की सारी सड़कें रोम पहुंचती हैं इत्यादि। अब प्रौढ़ मस्तिष्क उन्हीं बातों पर विचार कर रहा था। अवश्य ही रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ होगा। उसे बनने में सदियां लगी होंगी। नईनई विचारधाराओं ने उसे प्रभावित किया होगा। धर्म और संस्कृति का केंद्र रहा है रोम। आज भी है।

ईसाई धर्म के कैथोलिक मत का तो यह तीर्थ है। सारा पाश्चात्य जगत ही ईसाई है। इसी लिए श्रद्धा, भक्ति और प्रेम ने उन्हें रोम की ओर आकृष्ट किया। बाधाएं, विपत्तियां पार कर इस तीर्थ स्थली के दर्शन मात्र से अपनी आंखों को तृप्त कर अपने को और अपने जीवन को वे आज भी धन्य मानते हैं। सोचने लगा, 'वैभवशाली इतिहास के रोम का रूप आज जाने कैसा होगा! शायद हमारी दिल्ली की तरह या काशी की तरह। मकानों की बनावट में भिन्नता भले ही हो, वातावरण एक सा ही होगा।

रोम पहुंचा। देखा, बिलकुल आधुनिक वातावरण था वहां। स्टेशन पर अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा कुछ शोरगुल अधिक था—बहुत कुछ हमारे देश का सा। सामान उठाकर होटल की ओर जाते हुए सोचने लगा कि संसार के प्राचीनतम समझे जाने वाले इस नगर में तो लंदन, पेरिस, स्टाकहोम, ब्रुशेल्स नजर आते हैं। पर प्राचीन रोम की झांकी नहीं मिलती। कहीं भी नहीं मिलती, न पोशाक में और न लोगों के ढंग में।

मेरा आर्कषण आधुनिक रोम से अधिक प्राचीन रोम की ओर था। अतः मैंने पहले इसे ही देख लेना ज्यादा ठीक समझा।

रोम की पहली बस्ती ईसा पूर्व आठवीं सदी में बसी थी। आज तक स्थिर नहीं हो पाया है कि इस अमरपुरी के आदिवासी कौन थे और कहाँ से आकर बसे थे। बहुत से लोगों की धारणा है कि ट्राय के युद्ध से बच कर भागे हुए कुछ लोग एशिया माइनर से आकर पहले-पहल यहां बस गए थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रोम के खंडहरों को देखकर ध्यान बरबस सुदूर अतीत की ओर चला जाता है। राजवंश और जनतंत्रों के उत्थानपतन, रोमन प्रभुत्व का उदय और अवसान मानो सभी एक साथ मस्तिष्क में घूम जाते हैं। यहां इतने ऐतिहासिक खंडहर और भवन हैं कि प्रत्येक का वर्णन कर सकना संभव नहीं। इस पर सदियों तक आक्रमणकारियों के प्रहार होते रहे हैं। नएनए प्रासाद बने, पिछले कुछ तोड़े गए, कुछ स्वयं ही देखरेख के अभाव में पुराने पड़ गये।

इन्हीं खंडहरों में रोम के प्रसिद्ध कोलीसियम (एंफी थियेटर) को देखा। चार तल्ले के इस विशाल वृत्ताकार भवन के चारों ओर दर्शकों के बैठने का स्थान है। एक ओर वह स्थान भी है जहां सम्राट खुद बैठकर प्रदर्शन देखते थे। सामंत अपने पदानुसार बैठते थे। ठीक बीच के हिस्से में एक वृत्ताकार बड़ासा आंगन है यहीं वे प्रदर्शन हुआ करते थे। प्रदर्शन क्या थे—नृशंसता का नग्नतम रूप था। हमारे देश में तो शायद ही इस प्रकार के प्रदर्शनों का विवरण मिले।

एंफी थियेटर के विशाल आंगन में मनुष्य और पशु में युद्ध कराया जाता था। कभी जंगली सुअर तो कभी भूखे सिंह के सामने मनुष्य को छोड़ दिया जाता था। दृश्य कितना वीभत्स हो उठता होगा।

याद आया कि कहीं तो क्रूर सम्राट नीरो ने ईसा मतावलंबियों को एक जगह इकट्ठा कर, उन पर भूखे सिंह छोड़ दिए थे। रोमांच हो आया। आश्चर्य हुआ कि क्या यही जूलियस सीजर के सुरम्य देश की संस्कृति और सभ्यता थी? क्या इसी रोमन संस्कृति और सभ्यता ने पश्चिम को कानून का बोध कराया था? क्या यह वही रोमन संस्कृति थी जो आज भी यूरोप ही नहीं बल्कि सारी पाश्चात्य सभ्यता की आधारशिला है? किस प्रकार एंफी थियेटर में बैठे पचास हजार दर्शक मनुष्य के चिथड़े उड़ते देखते और बरदाश्त करते थे? परंतु मनुष्य भी तो मूलतः पशु ही है। पश्चिम का महान जीवशास्त्री डारविन यही तो कहता था।

रोम के खंडहरों और प्राचीन भवनों को देखकर बीती हुई शताब्दियों के इतिहास की परतें एकएक कर खोलने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि उन में अपने अपने समय की छाप अंकित मिलती है। लोगों के रहन-सहन और रुचि का परिचय मिल जाता है। यह निस्संदेह इटली और खासतौर पर रोम की सभ्यता के लिए सौभाग्य की बात है कि विदेशियों के आक्रमण तो उनपर हुए पर वहां के सांस्कृतिक चिह्नों को हमारे देश की तरह मटियामेट नहीं किया गया।

यही नहीं, रोम का यह भी सौभाग्य रहा है कि प्राचीन भवनों और जीर्णप्राय ऐतिहासिक स्थलों का पुनर्निर्माण भी समय-समय पर होता रहा है। इस दृष्टि से वहां के पोप (धर्मगुरु) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १५वीं शताब्दी से तो समय-समय पर विभिन्न पोपों की चेष्टा यही रही है कि रोम का गौरव बढ़े और सांस्कृतिक केंद्र कहलाने का उसका अधिकार कायम रहे।

यही कारण है कि आज भी रोम में ऐतिहासिक शृंखला की कड़ियां टूटी नहीं हैं नेपोलियन के साथ युद्ध होने के बाद, इटली में प्रादेशिकता की भावना धीरेधीरे घटने लगी और एकता की भावना बढ़ने लगी। रोम का महत्व बढ़ा और एक बार फिर रोम यूरोप की संस्कृति का नियंत्रण करने लगा। बाद में भी सम्राट विक्टर एमेन्युएल ने इसे सजाने संवारने में कोई कसर न रखी। यूरोप और सुदूर अमरीका से लोग वहां के जीवन का आनन्द लेने के लिए आने लगे। आज का रोम अपने उस गौरव को अभी तक सफल उत्तराधिकारी के रूप में सुरक्षित रखता आया है।

पियाजा द स्पाना के महल्ले में टहलते हुए मैंने ग्रीक, अमरीकी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी आदि तमाम लोग देखे। पिछले महायुद्ध से पहले इटली के तानाशाह बेनिटो मुसोलिनी ने भी इटली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की राजधानी को खूब संवारा था।

चौड़े रास्तों, बागबगीचों, नए ढंग के बड़ेबड़े भवनों और बिजली की सुविधा के कारण रोम यूरोप के अच्छे से अच्छे शहरोंसे टक्कर लेने लगा।आज रोम की आबादी बीस लाख से भी ऊपर है, जब कि इसी शताब्दी के प्रारम्भ में वह सिर्फ चार लाख थी। शहर की सबसे बड़ी समस्यां है यातायात की भीड़। ठीक यही समस्या तो हमारे यहां बंबई, कलकत्ता और दिल्ली में भी है।

शाम का समय था। मैं काफे ग्रेको में बैठा काफी पी रहा था। काफे ग्रेको रोम का एक प्रसिद्ध कैफे है जहां लेखक, कलाकार, पत्रकार और कुछ छात्र एकत्र हो जाते हैं। मेरे पास की टेवल पर इटालियन, अंगरेज और अमरीकी युवक बैठे हुए थे। वे आपस में बातें कर रहे थे। इटालियन भी साफ अंगरेजी बोल रहा था। कभीकभी तीनों ही मेरी ओर देख लेते थे। मेरी दृष्टि इटालियन से मिली तो उसने मुस्कराकर अभिवादन किया और तुरंत आकर पूछा, "अंगरेजी, फ्रेंच, इटालियन कौन सी भाषा में बात करने में आपको सुविधा होगी? शायद आप भारतीय हैं!"

मैंने अंगरेजी में कहा, "आपका अनुमान सही है। मैं भारतीय हूं।"

हम चारों एक टेवल को घेर कर बैठ गए। अब मैं वक्ता बना और शेष तीनों श्रोता। उन्होंने भारत और भारतीय संस्कृति के संबंध में प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मैंने समझाने की कोशिश की कि दुर्भाग्यसे पिछले दो सौ वर्षों से हम ऐसे देश के आधीन रहे जिसने हमारी संस्कृति और इतिहास को सही तौर पर दुनियां के सामने नहीं रखा।

जिस प्रकार काशी की यात्रा सारनाथ के बिना और मथुरा की वृन्दाबन के बिना पूरी नहीं होती, उसी प्रकार रोम जाकर वेटिकन न देखना रोम न देखने के बराबर ही है। रोम का महत्व केवल ऐंतिहासिक ही नहीं है, बल्कि उसके साथ ईसाई धर्म का गौरव भी जुड़ा हुआ है। उसका केन्द्र स्थल है वेटिकन—पोप का प्रासाद।

वेटिकन रोम के अंतर्गत एक छोटा साराज्य है।इस की अपनी सरकार है, अपनी डाकतार व्यवस्था है और साथ ही अपनी पुलिस और रेडियो स्टेशन है। इस राज्य का सर्वोच्च शासक है धर्मगुरु पोप। पोप का अधिकार, उस की श्रद्धा का साम्राज्य इतना विस्तृत और असीम है कि वहां सूर्यास्त होता ही नहीं। पोप का सारा समय अध्ययन और धर्म चिंतन में ही बीतता है। विश्व में उनका प्रभाव तथा आदर कम नहीं है। ईसाई चाहे कैथोलिक हों या प्रोटेस्टेंट, पोप को दोनों ही आदर की दृष्टि से देखते हैं।

संसार के सभी देशों के कैथोलिक ईसाई पोप के वाक्य को वेदवाक्य मानते हैं। संसार के सभी राष्ट्र वेटिकन राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखते हैं। पिछले महायुद्ध के दौरान रोम पर सैकड़ों बार बमबारी हुई लेकिन बमवर्षकों नें हमेशा इस बात का ध्यान रखा कि कहीं वेटिकन राज्य को कोई हानि न पहुंचे।

वेटिकन का निर्माण वास्तव में पांचवीं शताब्दी के शुरू में हुआ था। पिछली पंदरह शताब्दियों में संसार के कोनेकोने से श्रद्धालुओं ने श्रेष्ठतम वस्तुए यहां भेंट में ला कर अपने को धन्य माना। लोगों ने अपने जीवन भर की कमाई पोप के चरणों में अर्पित कर दी। यही कारण है कि आज यहां जैसी बहुमूल्य सामग्री संग्रहीत है, वैसी न ब्रिटिश म्यूजियम में है और न वाशिंगटन या लूव्रे में ही।

विश्व की दुर्लभ वस्तुएं, महत्त्वपूर्ण पुस्तकें और चित्र यहां देखने को मिलते हैं। विश्व के महान कलाकारों ने वेटिकन गिरजों और मठों को सजाने मेंअपने कोधन्यमाना और इसी में सारा जीवन लगा दिया।

इतना वैभव, आदर और असीम अधिकार किसी भी व्यक्ति का चित्त डावांडोल कर सकता है लेकिन मौजूदा पोप को देख कर मानना पड़ता है कि सात्विकता के आगे मानसिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेकार ठहर नहीं पाते। यों पिछली दोतीन सदियों से पोप के चुनाव में बहुत सतर्कता और सावधानी बरती जाती है।

बेंटिकन को अच्छी तरह से देखने के लिए काफी समय चाहिए। मैं ने तो सरसरी निगाह से दीवारों पर टंगे चित्र देखे। ज्यादातर जिहाद के चित्र थे। इसके अलावा ईसाई धर्म से संबंधित और बहुत से सुन्दर तथा चित्ताकर्षक चित्र भी थे। ये चित्र विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली कलाकारों द्वारा बनाए गए हैं। कुछ तो इतने बहुमूल्य हैं कि प्रत्येक का मूल्य पचास लाख रुपए तक आंका गया है। यदि पोप के संग्रहालय का मूल्य आंका जाए तो अरबों तक पहुंचेगा। मैं ने यहीं पर सिस्टाइन के गिरजे में विश्व के दो प्रसिद्ध कलाकारों, माइकेल एंजिलो और रेफियल के सर्वोत्तम चित्र देखे।

वेटिकन में बहुत से गिरजे और मठ हैं। मठों में ईसाई साधु रहते हैं। वहां किशोर साधुओं को भी देखा जिन्हें ईसाई धर्म तथा धार्मिक आंचारव्यवहार में पारंगत बना कर पूर्ण रूप से योग्य साधु बना दिया जाता है। इटली की पहाड़ियों में साधुओं के कुछ ऐसे संप्रदाय भी हैं जो अपने मठों में ही तपस्या करते-करते सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं और वहां से कभी नीचे नहीं उतरते।

वेटिकन में ही विश्व प्रसिद्ध संत पीटर का गिरजा है। यह महात्मा ईसा के मुख्य शिष्य संत पीटर के स्मारक स्वरूप बनाया गया है। ईसाई मत वास्तव में संत पीटर का बड़ा ऋणी है। फिलस्तीन के मरुस्थल में महात्मा ईसा ने करुणा और क्षमा का मंत्र बर्बर गिरोहों को सुनाया पर वह सूली पर चढ़ा दिए गए थे।

ईसा की मृत्यु के बाद, संत पीटर उन का संदेश पश्चिम की ओर पहुंचाते हुए रोम पहुंचे। रोमन शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता में इन के प्रेम और शांति के संदेश से आशा, धैर्य और जीवन के प्रति विश्वास का संचार हुआ।

ईसा को मानने वालों की संख्या बढ़ने लगी। ईसा के जन्म को ६७ वर्ष हो चुके थे। रोमन साम्राज्य का गौरव नष्ट होने की राह पर था। नीरो जैसा विवेकहीन सम्राट गद्दी पर था। उस ने ईसाइयों को हजारों की संख्या में या तो पहाड़ों की चोटी से गिरवा दिया या आग मे भुनवा दिया। संत पीटर भी जीवित ही जलां दिए गए। ईसाइयों पर भूखे सिंह छोड़े गए। सब कुछ होते हुए भी अंत में सच की ही जीत हुई। नीरो पागल हो कर मर गया।

ईसाई धर्म रोमनों में और फिर रोमनों के द्वारा उन के साम्राज्य के कोनेकोने में फैला। थोड़े ही दिनों में सारा यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका ईसा की वाणी में दीक्षित हो गया। यूरोप के प्रभुत्व के साथसाथ विश्व के कोनेकोने मे ईसाई धर्म का प्रचार हो गया।

संत पीटर का गिरजा विश्व की सब से बड़ी इमारत तो है ही, साथ ही कलापूर्ण भी कम नहीं है। इस की ऊंचाई के सामने दिल्ली की जामा मस्जिद बहुत छोटी है। इस की वास्तुकला तो अचंभे में डाल देती है किंतु निर्माण कौशल भी कम आश्चर्य नही पैदा करता। इस के अंदर ६० हजार व्यक्ति बड़ी आसानी से प्रार्थना कर सकते हैं। अंदर चारों ओर दीवारों और मेहराबों पर धार्मिक चित्र बने हुए हैं।

इस गिरजे में अनगिनत स्मारक और समाधियां हैं। सब से महत्त्वपूर्ण है संत पीटर की विशाल कांस्य मूर्ति। संत पीटर एक कुरसी पर बैठे हैं और उन का शरीर वस्त्र से ढका हुआ है। एक हाथ में कुंजियां हैं और एक हाथ की तर्जनी तथा बीच की उंगली किसी विशेष भाव को बता रही है। चेहरे पर घनी दाढ़ी है। सिर के घुंघराले बालों के पीछे एक चक्र सा है जो सहज ही श्रद्धा और आदर की भावना जगाता है। संत पीटर का एक पैर कपड़ों में ढका हुआ है और दूसरा बाहर की ओर बढ़ा है। भक्तों के स्पर्श से चरण का यह अंश घिस गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिन भर घूमते रहने के कारण मैं काफी थक गया था। इसलिए अपने होटल जल्दी लौट आया और आराम करने लगा। खिड़की के सामने टाइबर नदी दिखाई दे रही थी। उसी को एकटक देखने लगा। देख कर बड़ी शांति मिली। लगा कि सिकंदर ने जो एक साम्राज्य फैलाया था, सो ढह गया। रोमन भी तलवार की नोंक पर साम्राज्य पर साम्राज्य स्थापित करतें गए पर वे भी टिक न सके। आश्चर्य है कि निहत्थे गौतम और ईसा का साम्राज्य काल के गाल में क्यों नहीं समाया!

टाइबर से आती हुई हवा के एक झोंके ने फुसफुसा कर कान में कहा, "तलवार की नोक शरीर ही छेद सकती है पर क्षमा और प्रेम तो हृदय में घर बना लेते हैं।" तुरंत ही ख़याल आया स्तालिन, मुसोलिनी, हिटलर का और उन की तुलना में अपने बापू का।

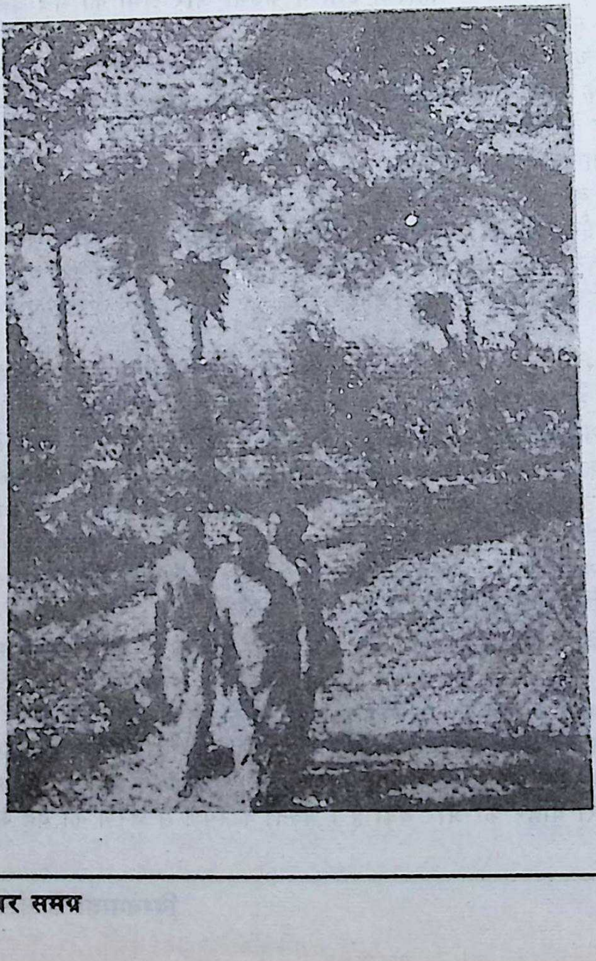

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संस्कृति व सभ्यता ज्वालामुखी को भेंट

पांपियाई की भस्म समाधि पर.........

सुबह के आठ बज चुके थे। बादलों के टुकड़े आसमान में धीरेधीरे तैर रहे थे। समुद्र की लहरों से अठखेलियां करती हुई हवा पास से कुछ फुसफुसा कर चली जाती थी। जाडा बीत चुका था, फिर भी रहरह कर एक सिहरन हो उठती थी।

हमारी बस नेपल्स से पांपियाई का रास्ता तय कर रही थी। बस काफी आरामदेह थी। सामने ड्राइवर की बगल में गाइड हाथ में एक छोटा सा माइक्रोफोन लिए बीचबीच में हमें आसपास के स्थानों की विशेषताएं बताता जा रहा था।

नेपल्स से पांपियाई का फासला केवल १४ मील है। अलकतरे की साफ सड़क पर बस दौड़ रही थी। दोनों ओर के खेत, अंगूर, सेव और दूसरी किस्म के फलों के बाग बड़े ही मोहक लग रहे थे। बीचबीच में किसानों के साफसुथरे मकान वातावरण की शोभा और भी आकर्षक बना रहे थे। इन्हें देख कर मेरा ध्यान अनायास ही अपने देहातों के घरों की ओर चला गया। मुझे लगा कि विदेशी जब हमारे यहां देहात के घरों को देखते होंगे तो सोचते होंगे कि हम भारतीयों को रहने का ढंग नहीं आता। स्वच्छता और सौंदर्य के प्रति हमारा आकर्षण कम है। इटली की आर्थिक अवस्था साधारण है। वहां के रहनसहन का स्तर भी अन्य यूरोपीय देशों से कहीं अधिक गिरा हुआ है। फिर भी, यहां के किसानों के घर गरीबी को जाहिर भले ही करें, पर उन में फूहड़पन हरगिज नहीं मिलेगा।

दाहिनी ओर नजर गई। समुद्र गर्जन कर रहा था। कुछ दूरी पर देखा, विसुवियस खड़ा था। एकटक देखता रहा उस ज्वालामुखी को। बादलों की चादर से उस का सिर ढका हुआ था और शरीर कुहासे के झीने आवरण में घिरा हुआ था। लगा कि विसुवियस प्रगाढ़ निद्रा में मग्न है।

गाइड की आवाज आई, "ये कालेकाले पत्थर जो आप लोग देख रहे हैं, विसुवियस के लावा से बने हैं। रागरंग के इस सुंदरतम नगर के साथ विसुवियस ने आग की फाग खेली थी और कुछ ही देर में वह भस्मंसमाधि में लीन हो गया था।"

सामने विसुवियस था और उस के पैरों पर पांपियाई। पांपियाई नहीं, बल्कि उस के खंडहर और राख की ढेरियां।

"इस नगर का भी अपना एक जमाना था। कितनी ही शताब्दियों की मंजी हुई, अपनी संस्कृति और सभ्यता की गरिमा में डूबी हुई पांपियाई सुंदरता में अद्वितीय थी। नगरवासी ऐश्वर्य संपन्न थे। इस की रीतिनीति और संस्कार के अनुकरण में देशदेशान्तर अपने को धन्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानते थे। लेकिन कराल काल की गति इतनी न्यारी है कि उस के एक ही इशारे पर विसुवियस ने हुंकार भरी और उसके एक ही विकट उच्छ्वास में सदियों की सभ्यता और संस्कृति राख की ढेरी के नीचे दब गई। जिंदगी की मुसकान पर मृत्यु की यवनिका गिर पड़ी। मिट गया पांपियाई का अस्तित्व और बच रहे। ये खंडहर......"

एक झटका लगा। हमारी बस रुक गई। सभी यात्री बस से उतर पड़े। पांपियाई में प्रवेश किया।

गाइड परिचय देने लगा, "इस नगर की उत्पत्ति के बारे में विद्वान आज भी एकमत नहीं हो पाए हैं कि यह सर्वप्रथम कब बसा था। लेकिन इतना सभी मानते हैं कि ईसा के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व इस नगर का यश और ऐश्वर्य विश्व प्रसिद्ध हो चुका था।' उस ने मुसकरा कहा, "महानुभावों, किसी सुंदरी के लिए तलवारों का खटकना कोई आश्चर्य नहीं। कई साम्राज्यों ने पांपियाई को अपनाने के लिए आपस में अपनीअपनी शक्ति आजमाई और खून की नदियां बह गईं। अंत में ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी में इस पर रोम का अधिकार हुआ। इस के बाद से इस जनपद के ऐश्वर्य का विकास निरंतर होता ही गया। रोम के धनिक सामंत, व्यापारी तथा नागरिकों के आवास यहां तभी से बनने शुरू हुए। समुद्र के सान्निध्य ने इसे वाणिज्य में प्रतिष्ठा दी और कृषि ने इसे उन्नतिशील बनाया। इस की जनसंख्या क्रमशः बढ़ती गई।"

पांपियाई का इतिहास बताता है कि सन ६३ ईसवा में एक भीषण भूकंप ने नगरी को बुरी तरह से झकझोरा था और काफी नुकसान पहुंचाया था। वर्षों तक पुर्ननिर्माण का कार्य नागरिकों ने साहस और उत्साह के साथ चलाया। लेकिन उसे कहां पूरा होना था!

सन ७९ ईसवी की बात है, रात हो चुकी थी। दिन भर के परिश्रम से निपट कर लोग घरों में निश्चित बैठे थे। कुछ आमोदप्रमोद में लीन थे। विसुवियस अपने चरणों के पास बैठी सुंदरी पांपियाई पर एक विकट अट्टहास कर उठा। फूट निकले धुएं के बादल, राख के गुबार और दहकते शोलों के फव्वारे। जलते हुए लावा की सहस्र धाराएं फूट पड़ीं।

काल की इन लपलपाती जीभों के बीच पांपियाई घिर गई। लोगों को भागने का मौका तक नहीं मिला। जहरीले धुएं और राख की आंधी और अंगारों की वर्षा। जो जहां था, वहीं रह गया। समुद्र के रास्ते भी बच निकलना असंभव था। समुद्र में भी लावा अनेक धाराओं में बह रहा था। मीलों तक समुद्र का पानी खौल उठा। ध्वंस इतना व्यापक हुआ कि फिर इसे सिर उठाने का मौका नहीं मिला। पुर्ननिर्माण असंभव था। करता कौन? किस में इतना साहस था कि विसुवियस के पराक्रम को चुनौती दे?

प्रलय-तांडव के शांत होने पर बच कर भागे हुए कुछ लोग अपनीअपनी धनसंपत्ति के उद्धार के लिए लौटे, लेकिन सफल न हो सके। अब तो सब कुछ राख पत्थर और लावा के नीचे दबा पड़ा था। लावा जम कर चट्टान बन गया था। कहींकहीं तो ३० फुट मोटी परत जम गई थी। खोद कर कुछ निकालना व्यर्थ था। प्रकृति के सामने मनुष्य को पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

मध्य युग में पांपियाई की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया। इस की कहानी विस्मृति के गर्भ में पड़ी रही। १६वीं शताब्दी के अंतिम चरण में लोगों का ध्यान इस की तरफ गया। उद्धार का कार्य प्रारंभ किया गया लेकिन प्रगति बहुत ही सुस्त और सीमित रही। १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में फ्रांसीसी सरकार ने यह कार्य अपने हाथों में लिया और तब से लगातार इस दिशा में प्रगति होती रही है। धीरेधीरे इटली सरकार का भी ध्यान पांपियाई की ओर गया और उस ने १८६१ में खुदाई का काम अपने जिम्मे ले लिया।

गाइड के साथ घूमता हुआ सब कुछ देख रहा था। दो हजार वर्ष पूर्व यही एक जनपद था। इस की निर्माणव्यवस्था, कानूनकायदे और यहां के रहनसहन के तरीके को देख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर ऐसा अनुमान होता है कि आधुनिक ढंग के शहरों का सूत्र हमारे यहां के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की तरह यहां भी रहा होगा। नगर के चारों ओर दीवारें थीं। उन दिनों स्वरक्षा और सुरक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था का रहना आवश्यक माना जाता था। रास्ते अच्छे बने थे। बारहचौदह फुट से अधिक चौड़े तो नहीं थे, मगर विशेषता यह थी कि इन पर फुटपाथ बने थे। सड़कें नगर के महत्त्वपूर्ण अंचलों में अपेक्षाकृत प्रशस्त बनाई गई थीं। इन पर चौड़ीचौड़ी पटरियां भी थीं। ये पटरियां अथवा फुटपाथ प्रायः सभी सड़कों से ऊंचे रखे गए थे। इस मे गाड़ियों के आनेजाने में दिक्कत होने की संभावना नहीं थी।

मकान और रास्ते जल निस्सारण सुविधा को ध्यान में रख कर बनाए गए थे। कई स्नानागारों के ध्वंसावशेष स्पष्ट बताते हैं कि एक साथ ही गरम और ठंडे पानी के भरे जाने का प्रबंध था।

एक स्थान बहुत कुछ चौक जैसा लगा। शायद यही पांपियाई का व्यवसाय केंद्र रहा होगा, क्योंकि इसी के चारों ओर नगर का विस्तार है। केंद्रस्थल में बाजार हाट और न्यायालय भी था। इन्हें देख कर पता चलता है कि पांपियाई का वाणिज्यव्यापार कितना उन्नतिशील रहा होगा। नागरिकों के मनोरंजन की भी व्यवस्थां थी। नाट्यशालाओं के खंडहरों को देख कर ताज्जुब होता है। उन में पांच हजार व्यक्तियों तक के बैठने की व्यवस्था थी। इन नाट्यशालाओं पर यूनानी वास्तुशैली का प्रभाव है।

इटली की सरकार ने पांपियाई में एक म्यूजियम बना दिया है। म्यूजियम छोटा लेकिन अच्छा है। यहां संग्रहीत नमूनों से पांपियाई की कहानी स्पष्ट हो जाती है। लेकिन व्यवहार में आने वाली विभिन्न वस्तुओं को देख कर नागरिकों के जीवन स्तर का सहज अनुमान हो जाता है। केशविन्यास के कांटे, गले के हार, चूड़ियां तथा इसी तरह के नाना प्रकार के वस्त्राभूषण स्त्रियों के शृंगार और रुचि का परिचय देते हैं।

तरहतरह के बरतनों के साथ सुरापात्र भी हैं, जो बताते हैं कि जीवन में विलास का प्रवेश कहां तक था। विभिन्न प्रकार की प्रतिमाएं भी वहां देखने में आईं। ये सभी, अधिकांश लोहे और तांबे की बनी थीं। यहां रखे छुरीकांटे, तराजू और तमाम वस्तुओं से उन के सामाजिक जीवन का भी परिचय मिला।

म्यूजियम के एक भाग में प्लास्टर किए गए शरीर देखने में आए। एक स्त्री का शरीर देखा। वह एक हाथ की कोहनी में अपना मुंह छिपाए है और दूसरे हाथ की मुद्रा उस की घबराहट बताती है। ज्वालामुखी से निकलते विषैले धुएं से बेचारी का दम घुटा होगा। एक कुत्ते का शरीर देखा, विष के प्रभाव से उस का शरीर बिल्कुल धनुष की तरह ऐंठ गया था।

म्यूजियम में जो भी संग्रहीत है, वह वास्तव में उद्धार से प्राप्त वस्तुओं का एक अंश मात्र है। बहुत सी वस्तुएं यूरोप के अन्य देशों में ले जाई गई हैं, जिस में सब से अधिक फ्रांस के लूव्रे म्यूजियम में संग्रहीत हैं। अमरीका के न्यूयार्क संग्रहालय में भी पांपियाई के कुछ ध्वंसावशेष ले जाए गए हैं।

विसुवियस पर चढ़ने के लिए एक सड़क बना दी गई है। मोटर इसी रास्ते पर विसुवियस के मुख से कुछ सौ फुट दूर तक यात्रियों को ले जा सकती है। पैदल तो कोई मुंह तक भी पहुंच जाए, पर शामत किसे आई है और आफत मोल लेना किसे पसंद होगा!

यात्रियों की सुविधा के लिए यहां एक पोस्टआफिस है, एक अच्छा सा रेस्तरां है और कुछ छोटीछोटी दुकानें हैं। इन दुकानों में इटली के विभिन्न भागों में बनी शौक की चीजें मिलती हैं।

शाम हो चुकी थी घूमतेघूमते काफी थक गया था। बस लौटने में अभी देर थी। मैं रेस्तरां में बैठ कर काफी पीने लगा। खिडकी के बाहर विसुवियस दिखाई पड रहा था। वह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अब भी हल्का धुआं उगल रहा था।

मैं सोचने लगा कि इस का धुआं बताता है कि यह सुप्त नहीं है और न शांत ही है। पर अब यह किस पांपियाई को ग्रसने के लिए भीतर ही भीतर उबल रहा है ?

सहसा लगा कि हल्के से वाष्प ने मेरी दृष्टि को धुंधला कर दिया और कान में कोई कह गया, 'यह नफरत भरी निगाहें मुझ पर हैं या प्रकृति पर ? खुद पर क्यों नहीं ! हिरोशिमा और नागासाकी को किस ने ग्रसा ? मैं ने, फ्युज़ियामा (जापान का ज्वालामुखी) ने या तुम ने ?'

मैं चौंक उठा। देखा गरम काफी की भाप ने चश्मा धुंधला कर दिया है। उतार कर चश्मे को साफ किया जल्दीजल्दी काफी पीने की कोशिश करने लगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो योरोपियन सभ्यता की जन्मभूमि थी
ग्रीस

रोम से वायुयान द्वारा एथेंस आ रहा था, पाश्चात्य सभ्यता के दूसरे मूल स्रोत यूनान की राजधानी एथेंस । जहाज जब यूनान की भूमि पर मंडराया तो ऊबड़खाबड़, बंजर पर्वतीय भूमि देख कर राजस्थान के चित्तौड़ क्षेत्र की याद आ गई । मन में प्रश्न उठा, क्या इस प्रकार की शुष्क भूमि में ही ऐसे वीर उत्पन्न होते हैं, जिन की गौरवगाथा वर्णन कर के होमर और चंदवरदाई अमर हो गए ?

फ्रांस और स्विट्जरलैंड में मित्रों ने पूछा था कि आप विश्व के सुंदरतम स्थानों को देखने के बाद यूनान जैसे नीरस और निर्जन देश में क्यों जा रहे हैं ? परंतु प्राचीन सभ्यता के अवशेषों, विश्वविख्यात आर्कोपोलिस पर्वत और देवी एथीना का मंदिर देखने के मोह ने विवश कर दिया ।

विश्व के इतिहास में भारत एवं मिस्र के समान यूनान का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । जिस समय अन्य यूरोपीय देशों के निवासी गुफाओं में रहते और वल्कल पहनते थे, उस समय यूनान अपनी सभ्यता के चरमोत्कर्ष पर था । यद्यपि भारत और मिस्र जैसा पुराना इतिहास तो यूनान का नहीं है, परन्तु जितनी सामग्री उस के इतिहास के बारे में उपलब्ध है, वह इन दोनों देशों की अपेक्षा कहीं अधिक है । यदि किसी को केवल आमोदप्रमोद के लिए रात्रिक्लब ओर बड़ेबड़े ऐय्याशी के साधन ही चाहिए, तो यह उपयुक्त स्थान नहीं; किंतु जो मानव की सतत विकासोन्मुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के अभिलाषी हों, उन्हें यूनान अवश्य जाना चाहिए । भारत से लंदन जाने वाले यात्रियों को यूनान जाने के लिए कोई अतिरिक्त व्यय नहीं करना पड़ता । कुछ हवाई कंपनियों के जहज एथेंस में भी उतरते हैं । वे यात्रियों को इस बात की सुविधा देते हैं कि वे कुछ दिन वहां बिता सकें ।

एथेंस को यूनान की दिल्ली कहना उपयुक्त होगा । यूनान के इतिहास में इस नगर का वैसा ही स्थान है, जैसा भारत के इतिहास में दिल्ली का । एजियन समुद्र के किनारे बारह लाख की जनसंख्या का यह नगर राजधानी होने के साथसाथ एक बड़ा बंदरगाह और व्यापार केंद्र भी है ।

ग्रीस बहुत धनी देश नहीं है और उस के साधन भी सीमित हैं, इसलिए एथेंस में नई दिल्ली की तरह बड़ेबड़े भव्य भवन देखने को नहीं मिलते । परंतु वहां के निवासियों का आतिथ्य सत्कार और नगर की सुंदरता व स्वच्छता यह कमी पूरी कर देती है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैं नाश्ता कर के पैदल घूमने निकल गया । सब से पहले आर्कोपोलिस पर्वत पर गया जो शहर से थोड़ी दूर पर ही है । इस पर्वत ने अनेक उतारचढ़ाव देखे हैं । यहीं पर सत्यान्वेषी सुकरात को जहर का प्याला पिलाया गया था । यहीं वीर सिकन्दर ने अपनी विश्वविजय का अभियान आरंभ किया था । जिस समय सिकंदर की वीर जननी अपने पुत्र को विश्वविजय के लिए लाखों सैनिकों के साथ आशा भरी विदाई दे रही थी, उस समय यह निर्मोही पर्वत मन ही मन सोच कर हंस रहा होगा कि यह विदाई ही अंतिम विदाई है ।

उस बात को आज ढाई हजार वर्ष हो चुके हैं । अन्य देशों की तरह यूनान में भी परिवर्तन चक्र निरंतर चला । कभी तो यहां के वीर अनेक देशों से लूट की सामग्री और दासदासियों को ले कर विजयी हो कर आए और कभी ऐसा समय भी आया कि रोमन और तुर्की सेना के आक्रमण से इन्हें एथेंस खाली कर के भाग जाना पड़ा ।

वैसे तो आर्कोपोलिस पर्वत पर कई इमारतों के खंडहर दृष्टिगोचर होते हैं, पर सब से पहले मैं पार्थेनान के खंडहरों में संगमरमर से बने देवी एथीना के मंदिर में गया ।

विश्व की कला कृतियों में इस मंदिर का अनुपम स्थान है । आज यहां चारों तरफ बिखरे हुए संगमरमर के पत्थरों और खंडित मूर्तियों के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता; पर २,००० वर्ष पहले एक ऐसा भी समय था, जब इसी मंदिर के प्रांगण में बैठ कर सम्राट लीरो अपने सरदारों के साथ विश्वविजय की रूपरेखा बनाया करते थे और विजय अभियान के पूर्व देवी एथीना से वरदान मांगते थे ।

एक कोने में कब्र के एक पत्थर पर बैठे हुए मैं ने सोचा—मनुष्य कितना विस्मरणशील है । शायद इस कब्र में ही कोई ऐसा प्रतापी सरदार सोया होगा, जिस ने किसी समय अपनी तलवार से हजारों बच्चों और स्त्रियों को अनाथ कर दिया होगा और आज उस के अवशेष कुछ मिट्टी के कणों में बदल गए हैं । उस समय मुझे कवि की यह वाणी याद आ गई

जहां शाह जमशेद विभव था, वही जहां मदिरा लहरी,
बने आज उन राजगृहों के सिंह श्रृंगालादिक प्रहरी ।
करते थे जो यहांवहां की व्याख्या रातरात भर जाग,
सब धकियाए गए अंत में, भूल गए सब रागविराग ।

करीब तीन हजार वर्ष पूर्व एथेंस का नाम केक्रोपिया था । यहां के एक वीर सरदार थैसस ने देवी एथीना के नाम पर नगर का यह नाम रखा था । उस के बाद की छः शताब्दियों में तो इसी जगह से यूनानी साम्राज्य का शासन संचालित होता रहा ।

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में ग्रीस में पैरीक्लीज नाम का एक महापुरुष हुआ, जिस की वक्तृत्वशक्ति और कार्यकौशल से ही आर्कोपोलिस की इमारतें बनीं । इन्हें बनाने में मिस्र के पिरामिडों की तरह गुलामों से जबरन मेहनत नहीं कराई गई थी । ग्रीसवासियों ने स्वेच्छा से श्रमदान द्वारा लगातार चौदह वर्ष में इसे पूरा किया था । ऐसा कहा जाता है कि उस समय ऐसी इमारत विश्व के किसी भी देश में नहीं थी । अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि दुनिया में आ कर यदि एथेंस नहीं देखा तो जीवन वृथा है ।

प्रथम ईसवी शताब्दी में रोमनों ने यूनान को विजित कर लिया और एथीना के मंदिर में माता मरियम की मूर्ति स्थापित कर दी गई । इस के बाद पंद्रहवीं शताब्दी में तुर्कों ने एथेंस पर कब्जा कर लिया और एथीना का मंदिर, माता मरियम का गिरजा कुछ शताब्दियों के लिए मसजिद के रूप में बदल गया । तीन सौ वर्षों के तुर्की शासन में यूनान को जो सांस्कृतिक और जन हानि उठानी पड़ी, वह कभी पूरी न हो सकी ।

आर्कोपोलिस के खंडहर देखतेदेखते शाम हो गई । गरमी महसूस हो रही थी, क्योंकि अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा यूनान अधिक गरम देश है । तो भी इन खंडहरों में कुछ ऐसा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आकर्षण था कि वहां से वापस आने को जी नहीं करता था। एक बड़े खंडहर में बैठ कर थकावट मिटा रहा था कि नींद सी आ गई। हठात् रवि बाबू की 'क्षुधित पाषाण' कहानी के नायक की तरह मैं भी दो हजार वर्ष पहले के यूनान में पहुंच गया, जहां विचित्र वेशभूषा में लोग अनेक प्रकार के रागरंग कर रहे थे। थोड़ी देर बाद एक सिहरन सी महसूस हुई और आंखें खुलने पर परियों की जगह विशाल संगमरमर के खंभे दिखलाई दिए। आखिर, जी कड़ा कर के पर्वत से नीचे उतर वास्तविक जगत में आ गया।

संध्या समय एथेंस का राष्ट्रीय संग्रहालय देखने गया। २,७०० वर्षों के लंबे व्यवधान की जितनी यादगारें, मूर्तियां और वस्तुएं इस में संग्रहीत हैं, उतनी शायद ही अन्यत्र कहीं हों। वैसे तो लंदन, मास्को, पेरिस और वाशिंगटन के संग्रहालय संसार में बड़े अद्भुत माने जाते हैं, पर एथेंस में अन्य प्राचीन दर्शनीय वस्तुओं की भी कमी नहीं। इन में प्रमुख है : नायक का मंदिर, एपागस और एगस के गिरजे, क्रेमिसिर्स की कब्रगाह, डिनोश का थियेटर हाल और स्टेडियम। परंतु एथीना के मंदिर और पार्थेनान के खंडहरों का वर्णन ही यहां पर्याप्त होगा।

इस प्राचीन एथेंस के साथ एक नया एथेंस भी है, जिसे हम इंद्रप्रस्थ के मुकाबिले में नई दिल्ली कह सकते हैं। यह नगर आज से १२५ वर्ष पूर्व बसाया गया था। अन्य यूरोपीय नगरों की तरह यहां भी विश्वविद्यालय, क्लब, बाजार, दुकानें, सड़कें, पुस्तकालय, सरकारी दफ्तर, सिनेमा, नाटक गृह आदि सब कुछ हैं। परंतु फ्रांस और बेलजियम से लौटे पर्यटक के लिए इन में कुछ आकर्षण नहीं रह जाता। एक बात मुझे अवश्य अनुभव हुई कि यहां के निवासियों में पूर्व और पश्चिम का सम्मिश्रण है, इसलिए यूरोप के पश्चिमी देशों की अपेक्षा वे सुंदर और गोलाकार मुखाकृति वाले हैं। वेशभूषा में भी पश्चिमी यूरोपीय देशों से कुछ अंतर मालूम देता है। कई जगह लंबी दाढ़ी वाले, चोगे और लंबी टोपी पहने पादरी भी दिखाई दिए। इस के सिवाय, गलियों और सड़कों पर भी हमारे यहां की तरह मिठाइयां और अन्य वस्तुएं बेचने वालों के खोमचे दिखलाई पड़ जाते हैं। कुछ बाजार तो भारत के बाजारों जैसे हैं।

यूनान बहुत बड़ा देश नहीं है। इस का क्षेत्रफल ५० हजार वर्गमील और आबादी करीब ७५ लाख है। न तो यहां बड़ेबड़े कारखाने हैं और न खनिज संपत्ति ही अधिक है। इसलिए अमेरिका व यूरोप के संपन्न देशों की तरह यह देश धनी नहीं है, तो भी इस की अपनी सभ्यता है, अपना इतिहास है। आज भी जब कोई विदेशी यूनानियों से बातें करता है तो उसे उन के गौरवपूर्ण अतीत की झलक मिलती है।

१९४० के अंत में जर्मनों और इटालियनों ने इस देश पर अधिकार कर लिया था जो तीन वर्षों तक कायम रहा। इस अवधि में इसे बहुत हानि उठानी पड़ी। १९४४ में मित्र राष्ट्रों की सहायता से वह फिर स्वतंत्र हुआ और वहां के लोग इन २० वर्षों में अपने देश को आगे बढ़ाने में कुछ अंशों तक सफल भी हुए हैं।

एथेंस और आर्कोपोलिस के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान देखने योग्य हैं, जैसे क्रीट और स्पार्टा। परंतु मेरे पास समय कम था और स्वदेश लौटने की जल्दी थी, इसलिए उन्हें देख न सका और वायुयान से काहिरा आ गया।

यद्यपि थोड़े समय ही ठहर सका, परंतु जो भी देखा, उस की स्मृति जीवन भर बनी रहेगी। यहां की एक घटना आज भी हृदय पर अंकित है। उस का उल्लेख कर यह लेख समाप्त करूंगा।

एथेंस प्रवास के समय 'टी० डब्लू० ए०' (एक अमरीकी वायुयान कंपनी) के युवक अफसर श्री कोर्नोपोलिस से मेरी मित्रता हो गई थी। उन्होंने मुझ से कहा कि वे एक बार मुझे अपनी पत्नी से मिलाना चाहते हैं। चार महीने पहले उन का ढाई वर्ष का इकलौता बच्चा काल कवलित हो गया था। उस दिन के बाद से प्रत्येक दिन उन की स्त्री तीनचार घंटे उस की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कब्र पर बैठ कर रोती थी। वह कुछ विक्षिप्त सी भी हो गई थी। उन्होंने उस से मेरा जिक्र किया था। वह मुझसे एक बार मिलना चाहती थी।

दूसरे दिन उन के घर जा कर थोड़ा नाश्ता किया और उन की पत्नी से मिला। वह उस समय भी शोक चिह्न धारण किए हुए थी और बहुत ही उदास मालूम देती थी। उस ने मुझ से कहा, "भारत की ज्योतिष विद्या के बारे में मैं ने बहुत कुछ सुन रखा है। कृपया मेरा हाथ देख कर बताएं कि मेरा भविष्य क्या है?"

यद्यपि मैं ज्योतिष का क ख ग भी न जानता था, परंतु उस शोक संतप्त मातृ हृदय को सांत्वना देने के विचार से मैं ने हाथ देख कर कहा, "दो वर्ष के भीतर ही आप को पुनः पुत्र प्राप्ति होगी।"

यह सुन कर उस के उदासीन चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दी। मैं ने भी अपनी बात में असत्य के पीछे सत्य के दर्शन पाए। संयोग वश दो वर्ष बाद अचानक ही एक दिन उस के पति का पत्र मिला, जिस में उस ने अपनी और अपनी स्त्री की ओर से बहुत ही कृतज्ञता से लिखा था 'आप के कथनानुसार हमें पुत्र की प्राप्ति हुई है। हमें बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि आप एक बार हमारे यहां आ कर बच्चे को आशीर्वाद दें।"

काश! मैं फिरसे यूनानजा कर उस दम्पत्ति से मिल पाता!

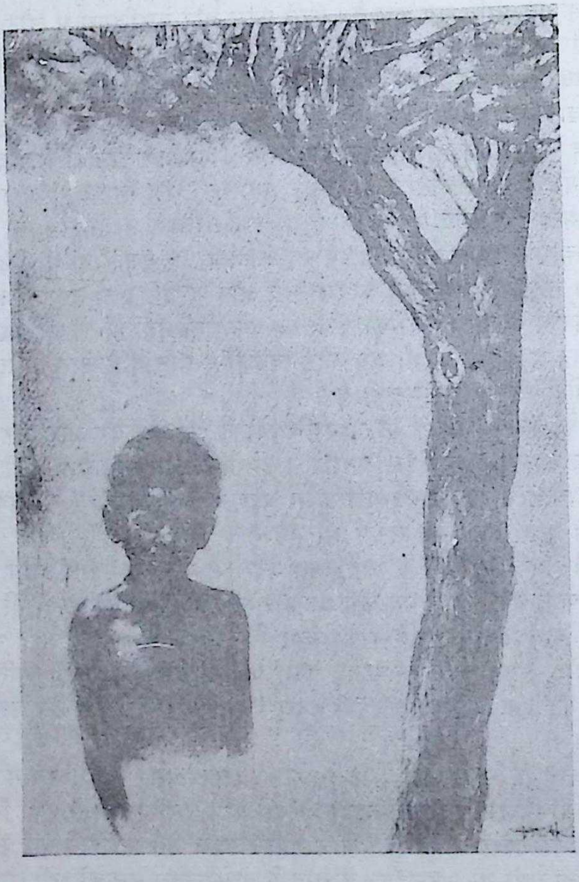

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ताशकन्द

१९६५ के ताशकन्द समझौते के बाद हमारे देश के साधारण से साधारण व्यक्ति की जबान पर यह नाम आ गया । किन्तु सन १९६१ में जब हम ताशकन्द गए थे, उन दिनों भारत के बहुत कम लोग इस के नाम से परिचित थे। इनमें बहुतों की जानकारी इतनी सी थी कि ताशकन्द रूस के विशाल सोवियत संघ के एक राज्य का प्रमुख शहर है। कुछ लोगों का यह ख्याल था कि ताशकन्द हिमालय के उस पार मध्य एशिया में इस्लामी सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख केंद्र है।

बचपन में पढ़ा था कि हिमालय पर शिवपार्वती विचरण करते हैं। बालबुद्धि इन सब बातों को सत्य मानती थी। महाभारत की कथा में भी सुनते थे कि सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चीन, अफगानिस्तान और गांधार तथा हिमालय के उस पार के देशों से बहुमूल्य उपहार भेजे गए थे। वैसे ये पड़ोसी देश भी हैं इसलिए इन्हें देखने की बहुत दिनों से इच्छा थी।

कुछ वर्षों बाद प्रसिद्ध पर्यटक स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन के सम्पर्क में आया। वे तन्मय हो कर सोवियत रूस की सर्वांगीण उन्नति के बारे में सुनाते थे। उनकी 'वोलगा से गंगा' ने भी जिज्ञासा के बीज को अंकुरित किया। परंतु उन दिनों रूस देखने की अनुमति साम्यवादी विचारधारा के लोगों के अलावा किसी अन्य को नहीं मिलती थी। हिमालय का लंघन संभव था परंतु लौह प्राचीर के भीतर जाना दुष्कर। उधर झांकना तक खतरे से खाली नहीं था।

मई सन् १९६१ को एक दिन श्री जी० डी० बिड़ला ने कहा—"रूस सरकार का निमंत्रण है, तुम चलोगे क्या ?" भला, मेरी इन्कारी का सवाल ही कहां था ? ऐसे मौके के ताक में तो था ही। दूसरे ही दिन उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी।

यात्रा की तैयारी कर ली गयी। श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका को भी साथ जाने के लिए राजी कर लिया। वे ७५ वर्ष के हैं परंतु उनमें शारीरिक शक्ति और जोश युवकों से भी ज्यादा है। यात्रा के लिए तो हमेशा तैयार रहते हैं, चाहे उत्तरी ध्रुव की हो या टिम्बकटू की। यात्रा में हमारे अलावा बिड़लाजी के दो निजी सचिव और तीनचार अन्य मित्र थे।

मई का महीना था। दिल्ली में इन दिनों नौ बजे सुबह से ही आसमान से आग बरसती है और राजस्थान से उड़ी धूल की आंधियां चलती हैं। मगर हम ऊनी गरम कपड़े पहने, हाथों में ओवरकोट लिए रूस की यात्रा पर चल पड़े। लोगों की निगाह में भले ही कुछ लगे हों पर बात यह थी कि रूस में इस समय भी जोरों की सर्दी पड़ रही थी। मोटे गरम कपड़े और ओवरकोट सन्दूक में रखते तो सामान के बतौर उनका भी किराया लग जाता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अबतक हमने अधिकतर अपने ही देश के एयर, इण्डिया या अन्य आरामदेह हवाई जहाजों से यात्रा की थी। इनमें सब प्रकार की सुविधा रहती है। इस यात्रा में जिम रूमी यान 'एयरो फ्लोट' में बैठे, वह बड़ा और तेज तो जरूर था मगर साज-सज्जा में मामूली सा था। इसके अलावा जो तहजीब, खातिरदारी और स्नेहपूर्ण व्यवहार भारतीय या अन्य यूरोपीय एयर होस्टेसों से मिलती रही है, उसका इसमें सर्वथा अभाव मिला। सच पूछा जाय तो हवाई जहाज की लम्बी और उबा देने वाली यात्रा में आधी थकावट तो इनकी सुन्दरी परिचारिकाओं के मधुर व्यवहार और बातचीत से ही मिट जाती है। यह रूसी यान १०० यात्रियों का था, एयर होस्टेस की जगह थे कद्दावर रूसी जवान। अपनी तरफ से तो ये बिचारे हर तरह की सहायता करने को तैयार रहते परन्तु वह स्नेहपूर्ण मुस्कान और सुमधुर सुगन्ध इनके पास कहां से आती ? इनकी भाषा भी साफ समझ में नहीं आती थी। कुर्सियों के गद्दे और कमर की पट्टियां सेना के प्लेनों जैसी थीं। ऐसा लगा मानो रूस का सबसे पहला काम सैनिक तैयारी के बारे में सोचना है फिर और कुछ। हमें बताया गया कि इसी ढंग के दोतल्ले हवाई जहाज भी रूस में बनाए जा रहे हैं जिनमें ढाई सौ यात्री बैठ सकेंगे।

यान की गति संभवत: ६०० मील प्रति घंटे की थी इसलिए हम दो ही घंटों में नगराज हिमालय की ऊंची चोटियों पर से उड़ रहे थे।

हमारे प्लेन की ऊंचाई ३५-४० हजार फुट थी परंतु बर्फानी चोटियां भी बीस पचीस हजार फुट ऊंची थीं। इसलिए वे काफी नजदीक दिखाई पड़ रहीं थी और ऐसा लग रहा था कि हिमसागर की ऊंची लहरों पर से हम उड़ रहे हैं। बर्फ ही बर्फ. न हरियाली और न नदी नाले या सड़कें। चमकीली बर्फ पर धूप पड़ रही थी। मानो चांदी का सागर लहरा रहा हो। दुर्गम हिमालय चांदी की चादर ओढ़े मुझे बुलाता सा लगा। सोचनेलगा—यात्रियोंने ठीक ही लिखा है कि कैलाश और मानसरोवर के दृश्यों को देखकर मनुष्य आत्म विस्मृत हो जाता है. वहां से वापस आने को जी नहीं चाहता। कठोर शीत में मृत्यु की आशंका रहती है. फिर भी वह खिंचा ही रह जाता है। अमरनाथ की यात्रा की मेरी अपनी ही घटना का स्मरण आया। मैं भी तो वहां पर बर्फानी चोटियों के शांत और सौम्य दृश्य को आधी रात तक देखता ही रह गया था।

इन्हीं ऊंचे हिम शिखरों को पार कर कितनीं जातियां हमारे देश में आयीं। हमारे यहां से कितने ही लोग इन्हीं घाटियों से गुजरे। बल्ख. बदख्शां. समरकंद और बुखारा......ताशकंद भी तो इन्हीं में है......हिमालय के उस पार। कल्पना में ऐसा लगा मानव गैरिक वस्त्र पहने बौद्ध भिक्षुओं की कतार धीरेधीरे इन्हीं बर्फानी घाटियों से आगे बढ़ रही है।

भारी सी आवाज सुनाई पड़ी। वेटर ने नाश्ते के लिए पूछा था। इच्छा नहीं थी. मैंने इंकार कर दिया। विचारों का तार टूट गया। मन में सोचा, कल्पना से यथार्थ कितना भिन्न होता है।

यदि हम किसी दूसरी कम्पनी के हवाई जहाज से जाते तो उसी किराये में काबुल को देखने का सुयोग मिल जाता। मगर ये बड़े जहाज दिल्ली से उड़ कर सीधे ताशकंद आकर रुकते हैं। हम तीन साढ़े तीन घंटों में ताशकंद के हवाई अड्डे पर पहुंच गए। मन में प्रसन्नता सी हुई। आखिर पहुंच ही गया हिमालय के उस पार और लौह प्राचीर के भीतर।

यद्यपि यूरोप के कई देशों की यात्रा पहले कर चुका था परंतु रूस की यह मेरी प्रथम यात्रा थी। ताशकंद सोवियत संघ के उजबेकिस्तान की राजधानी है। यों भी रूस अन्य यूरोपीय देशों से भिन्न सा लगता है और यहां का वातावरण तो रूस से भी काफी अलग ढंग का है। हमारी अगवानी के लिए मास्को से रूसी सरकार के विदेश मंत्रालय के दो अधिकारी आये थे. वे अंग्रेजी अच्छी तरह समझते और बोलते थे। अत्यंत सौजन्य से उन्होंने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपना परिचय देते हुए सोवियत सरकार की ओर से हमारा स्वागत किया। अन्य तीन-चार व्यक्ति जो वहां खड़े थे, उनसे परिचय कराया। नगर के मेयर के अलावा यहां के व्यापार चेम्बर की प्रधान श्रीमती हमीदा भी थीं। ये अंग्रेजी नहीं जानती थीं अतएव, परिवाचक के माध्यम से बातचीत हुई। परिचय से अंदाज मिला कि श्रीमती हमीदा न केवल सुशिक्षिता हैं बल्कि अपने विषय और दायित्व की काफी जानकारी रखती हैं।

ताशकंद का एयरपोर्ट कोई खास अच्छा नहीं लगा। साधारण सा था, हमारे यहां के पटना या वाराणसी के जैसा कहा जा सकता है। कई प्रकार के छोटे-बड़े हवाई जहाज बहुत बड़ी संख्या में खड़े थे। विश्व में अमेरिका के सिवाय रूस के पास सबसे ज्यादा हवाई जहाज हैं, जिन्हें देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में बांट रखा है।

हमारे स्वागत के लिए एयरपोर्ट के रेस्तरां में नाश्ते का आयोजन किया गया था। दरअसल, बात यह थी कि हमारे पासपोर्ट और वीसा की जांच की जा रही थी। इसमें कुछ देर लगनी संभव थी। चूंकि, हम सरकार द्वारा आमंत्रित थे, इसलिए वे इन बातों का हमें आभास नहीं होने देना चाहते थे। रूस में विदेशियों के विसा वगैरह की जांच बड़ी सतर्कता और कड़ाई से की जाती है। यों, हमारे बारे में पूरी जानकारी भारत में रूसी राजदूत श्री बेनेडिक्टोव द्वारा वहां दी जा चुकी थी। साथ ही यह भी बता दिया गया था कि हम निरामिष भोजी हैं और वोदका की जगह पानी पीते हैं। पानी का खास हवाला देना भी जरूरी था क्योंकि यूरोप में आम तौर से पानी की जगह लोग बियर पीते हैं। खैर, रेस्तरां में हमारे सामने रोटी, मक्खन और फलों की तश्तरियां रखी गयीं। ये सब तो साधारणतया अच्छी थीं, मगर काफी जो हमें दी गयी थी, वह काली और कुछ बदबूदार थी, दूध चीनी भी उसमें नहीं था। थोड़ी सी ही गले की नीचे उतार पाए, उबकाई सी आने लगी।

मि० मिरकाव, जो हमें मास्को से लेने आए थे, आग्रह करने लगे कि थोड़ी ही सही, मेजबानों की स्वास्थ्यकामना के लिए हमें वोदका जरूर पीनी चाहिए वरना वे अपना अपमान समझेंगे। वोदका की तेजी की शोहरत हम सुन चुके थे, इसलिए उनकी शुभकामनाएं हमने पानी के गिलास दिखाकर ही की। हमारे एक साथी ने कुछ वोदका पी, वे इससे पूर्व कई बार रूस आ चुके थे।

एयरपोर्ट से हमारा होटल करीब आठ दस मील था। सड़क अच्छी थी, दोनों तरफ हरे वृक्षों की लम्बी कतार थी, मगर मकान बहुत ही साधारण तरीके के थे। यूरोप के अन्य देशों की सी उनमें भव्यता नहीं थी। इन्हें देखकर रूसी जनजीवन की समृद्धि का परिचय भी नहीं मिलता। हमने रूस के विदेशी प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा था कि सोवियत संघ में पिछड़े इलाकों को भी खुशहाल बना दिया गया है।

सोवियत संघ का यह अंचल मध्य एशिया के तुर्किस्तान का अंश है। उजबेक, कज्जाक किरगिज आदि जातियां यहां रहती हैं। इनके रक्त में मंगोल मिश्रण है। अधिकांश इस्लाम के अनुयायी हैं। मुल्ले और मौलवियों का चूड़ान्त प्रभाव यहां के जनसमाज पर सदियों से रहा है। छोटे-छोटे स्वतंत्र जनपद के रूप में ये बिखरे हुए थे। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व रूस ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। पिछले पैंतालिस वर्षों से यहां साम्यवादी शासन है। फिर भी, वहीं इस्लामी शक्लें दिखाई पड़ीं। लोग लम्बे चोगे अमामे की जगह घटिया पुराने कोटपतलून पहने हुए थे—जैसे हमारे कलकत्ते की हरिसन रोड की दुकानों में मिलते हैं। कपड़े की गोल और छोटी टोपी। हमारे यहां बेढंगे या नासमझ को उजबक कहते हैं। क्यों कहते हैं पता नहीं। वैसे उजबेक बहादुर और लड़ाकू भी होते हैं। इन्हें जो बात जंच गई, उसमें तर्क की गुंजाइश नहीं। यह इनकी खूबी है। संभव है, अभी तक साम्यवाद इनके मन में जंचा बैठा है वरना कुछ न कुछ ये कर ही बैठते।

हम जिस होटल में ठहराए गए थे, वह छः मंजिला था। आधुनिक साजसज्जा से सम्पन्न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी था फिर भी फर्नीचर और गलीचों को देखकर ऐसा आभास हुआ कि हमारे देश के कलकत्ते, बंबई या दिल्ली के बड़े होटलों से यहां का स्तर काफी नीचा है।

अभी शाम के भोजन में तीनचार घंटे का समय था। अपनी घुमक्कड़ आदत के अनुसार मैं बिना किसी को सूचना दिए शहर देखने निकल पड़ा। ताशकंद भी दुनिया के पुराने शहरों की तरह दो हिस्सों (नये और पुराने) में बँटा हुआ है। शहर के पुराने भाग को देखने के प्रति मेरी रुचि अधिक रहती है, क्योंकि इन जगहों में वहां की प्राचीन संस्कृति का परिचय मिलता है। साथ ही, देश और जाति के इतिहास की परत भी सामने आ जाती है। आधुनिक भाग के प्रति आकर्षण न रहने का कारण है कि यहां लन्दन, पेरिस, ब्रूशेल्स, बर्लिन आदि शहरों की नकल दिखाई देती है।

ताशकंद मध्य एशिया के बुखारा, समरकद, बल्ख या बदख्शां की तरह प्राचीन तो नहीं है फिर भी अरब से फैली इस्लामी सभ्यता और संस्कार के पिछले १४०० वर्षों का इतिहास यहां मिलता है। पुराने गंदे मकान, तंग गलियां, फटे गंदे और पुराने कपड़े पहने आदमी और बच्चे, पीठ पर चमड़े के थैले लिए आवाजें लगाकर शर्बत बेंचते फेरी वाले—ये सारे दृश्य हमें सदियों पहिले के बगदाद और बसरा में ले जाते हैं। मैं घूमता हुआ यह सब देख रहा था। दिमाग में ख्याल उठ रहे थे अरबों रुपए प्रतिवर्ष प्रचार में खर्च कर सोवियत रूस दुनिया को यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि साम्यवादी **विशाल साम्राज्य** के हर क्षेत्र में अमनचैन है, खुशहाली है, गरीबी, गंदगी और जहालत नहीं है।

सूखा जलवायु है। प्यास लग आयी परंतु पानी पीने को मन नहीं हुआ। दिक्कत भी थी हिन्दी की तो बात ही क्या अंगरेजी जानने वाला भी कोई नहीं मिला। थोड़े से सिके हुए तरबूज के बीज लिए और पानी की जगह लेना पड़ा घटिए दर्जे का एक लेमन। अवसाद और थकान का मारा किसी तरह होटल वापस आया।

पहुंचते ही प्रश्नों की झड़ी बरस पड़ी। "कहां गए," "कब गए," "कैसे गए," "किससे मिले," "क्या कहा"...... और न जाने क्या क्या। झुंझलाहट खुद पर आगयी, क्योंकि मैं भूल गया कि लौह दीवार के अंदर आया हूं। परन्तु भूल तो मुझसे हो चुकी थी, पछतावा भी हुआ। कुछ झमेला उठता परन्तु दिल्ली से रूसी दूतावास ने शायद हमारे बारे में अच्छी सिफारिश की थी, इसलिए बात वहीं खत्म हो गई। हमारे सरकारी रूसी सहायक कहने लगे "बात कुछ नहीं, हम नहीं चाहते कि अनजान जगह हमारे मेहमान परेशान हों। उस पर भाषा की भी तो दिक्कत है और बिनाबजह आप का समय बर्बाद होने का अंदेशा रहता है। आप जहां भी जाना चाहें, हम में से किसी को साथ ले लें। इस से आप को जाने और समझने में सुविधा रहेगी।" मैं मुस्करा उठा। शायद हम दोनों एक दूसरे का आशय समझ गए।

थकावट थी ही, मन में ग्लानि भी थी। न भूख लगी न प्यास, फिर भी औपचारिकता के नातें भोजन की टेबुल पर बैठना पड़ा। क्राकरी बहुत साधारण सी और नेपकिन घटिया कपड़ों की। मक्खन, रोटी और फल बेशक बड़ी मात्रा में थे। अपनी टेबुल से नजर हटा कर दूसरी टेबुलों को देखा—बहुत सी मोटी रोटियां और काली काफी थी, नेपकिन कागज के। कहना न होगा कि हमारे लिए विशेष प्रबंध किया गया था।

भोजन के उपरांत होटल की छत पर के रेस्तरां में हम गए। और जाते ही कहां? व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी नहीं। रेस्तरां में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। समझ में नहीं आया, उजबेकी धुनें हैं या रूसी। पेरिस के फौली बर्जे और सेवाय के संगीत तथा नृत्य की तुलना में ये बहुत ही हलके लगे।

रात दस बजे सोने के कमरे में चला आया। जी चाहता था जरा घूम आऊं। हवा में ठंडक हो गयी थी, मगर मन की घुटन से परेशान था। ख्याल आ गया कि दिन में थोड़ी देर के लिए गया, उस की इतनी जांच पड़ताल हुई तो फिर रात में जाना तो और भी सन्देहास्पद हो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सकता है। सोने की चेष्टा करने लगा. कमरा तापनियंत्रित नहीं था। विस्तर वगैरह भी साधारण से थे किंतु दिन भर की थकान के कारण आंखें लग गयीं। दुस्वप्न आते रहे—मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है. साईबेरिया चालान कर दिया गया है. चारों ओर बर्फ ही बर्फ है। कहीं रेनडियर दीखते हैं तो कहीं भालू। सुबह उठने पर सपनों की छाप का असर दिमाग में था। यह थी रूस में मेरी पहली रात।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता कर यहां के व्यापारिक चेम्बर में गए। यद्यपि यहां के सारे कारखाने और उद्योग सरकारी नियंत्रण में हैं फिर भी चेम्बर वगैरह हमारे यहां की तरह ही हैं। अध्यक्षा ने हमें वहां के व्यापार उद्योग की जानकारी संक्षेप में दी और अंग्रेजी में छपे हुए कुछ विवरणपत्र दिए। उन्होने बतायाकि १६१७ क पहले यह इलाका पिछड़ा हुआ था। न तो यहां कारखाने थे और न पर्याप्त रूपमें खेती ही थी। सोवियत सघ में यह १६२५ में आया। उस क बाद यहां नाना प्रकार के कारखाने खुले हैं। पास की पहाड़ियों में तेल, तांबा तथा अन्य खनिज पदार्थ भी मिले हैं—बेहतरीन किस्म की रूई, फल और सूखे मेवे उत्पन्न करते हैं। विदा के समय हमें उजवेकी काली टोपी दी जिसे पहना कर फोटो लिया गया। यहां चायपान के दौरान में हमारे दल के नेता श्री बिड़ला का संक्षिप्त भाषण भी हुआ।

इस के बाद हमें कपड़े की एक मिल दिखाने ले गए। यह काफी बड़ी थी किंतु मशीनें हमारे यहां की आधुनिक मिलों से कहीं घटिया थीं। किसी देश विशेष की समृद्धि का अनुमान वहां के पहनावे और खानपान से लग जाता है। यहां हमारे देखने मे आया कि बहुत हल्के दरजे का और मोटा कपड़ा बनाया जा रहा है। मजदूरों के बारे में पता चला कि ३५०) ४००) रु मासिक प्रति व्यक्ति है। जनरल मैनेजर और अन्य आफिसरों को १५००) रु.से २०००)रु तक का वेतन मिलता है अर्थात मजदूर और आफिसरों का वेतनमान का अंतर अधिक से अधिक १ और ५ का है। हम ने महसूस किया कि इस बात में साम्यवादी विचारधारा को अवश्य सफलता मिली है। हमारे यहां बड़े साहबों का मासिक वेतन किसीकिसी प्रतिष्ठानों में सब मिला कर २०-२२ हजार तक है, जबकि उनके साथ काम करने वाले मजदूरों को १२५-१५० रु० ही मिलता है।

मिल देखने के बाद हम दोपहर के भोजन के लिए होटल वापस आ गए। भोजन की टेबुल पर कई प्रकार के फलों को देख कर मैं ने पूछा कि क्या ये विविध प्रकार के फल यहीं होते हैं? पता चला कि सोवियत संघ के इस अंचल में कुछ फल तो होते हैं मगर बाकी बाहर से मंगाये गए हैं।

भोजन के बाद हमें शहर के नए हिस्से को और वहां की संस्थाओं को दिखाने के लिए ले जाया गया। रास्ते में हमने लक्ष्य किया कि लोग बेकाम बैठे बातचीत कर रहे हैं। उन की शक्ल, उन का पहनावा, उन की चाल बता रही थी कि जिंदगी का बोझ वे ढो रहे हैं। इस के पूर्व हमने भारत में सोवियत पत्रों में पढ़ा था कि साम्यवादी रूस में बेकारी की समस्या का हल निकाल लिया गया है।

हम एक स्टोर में गए। चीजें अधिक नहीं थीं। जो भी थीं घटिया किस्म की। हमें खरीदारी करनी नहीं थी फिर भी जिज्ञासावश दाम पूछे। प्रत्येक के लगभग इस प्रकार थे

महिलाओं के लिए रेक्सिन हैण्डबैग	—	१००) से	१५०) रु.
टेबल क्लाथ	—	१२५) से	१५०) रु.
चाकलेट (एक पाउण्ड)	—	२०) से	३०) रु.
नेकटाई	—	४०) से	६०) रु.
सूती कमीजें	—	१२०) से	२००) रु.
ऊनी सूट (साधारण)	—	१०००) से	१५००) रु.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूती सूट (साधारण)	—	४००) से	६००) रु.
सिगरेट केस (साधारण धातु का)	—	२००) से	३००) रु.
जूते	—	३५) से	१६०) रु.

चीजों का दाम जानकर चकित होना स्वाभाविक था। हमने यह भी सुना कि कोई-कोई विदेशी पर्यटक चुपके से यहां कुछ चीजें बेच भी देते हैं। मगर इससे क्रेता और विक्रेता दोनों को ही खतरा रहता है। सोवियत सरकार इस ढंग के कानूनं उल्लंघन पर कड़ा दण्ड देती है। हमने साथ के सरकारी अधिकारी से इन ऊंचे दामों के बारे में पूछा तो वे विचारे संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाए। दूकानें सब सरकारी थीं इसलिए लागत और पड़ता का तो सवाल ही नहीं था।

कार्यक्रम कुछ अरुचिकर सा लग रहा था। हमने लक्ष्य किया कि हमें पहले से निर्धारित की हुई जगहें दिखाई जा रही हैं, जहां हमारे लिए पूर्व निश्चित तैयारी है। उपाय भी नहीं था। तन के साथ मन को भी चलाने का असफल प्रयोग साम्यवादी कहां तक करते रहेंगे कुछ समझ में नहीं आया। प्रभुदयाल जी ने शहर के पुराने हिस्से को देखने की इच्छा प्रगट की तो सरकारी आफिसर बहाने बनाकर उसे टाल गये। हम लोगों ने भी अधिक आग्रह करना उचित नहीं समझा। मैंने धीरे से उन्हें कहा, "कोई बात नहीं, कल मैं अकेले ही बहुत कुछ देख आया हूं आपको पूरी जानकारी दे दूंगा।"

हम चाहते थे कि यहां की आर्थिक अवस्था और व्यवस्था की कुछ जानकारी पा सकें। श्री मिरकोव से पूछने के अलावा कोई चारा नहीं था। रीडर्स डाइजेस्ट में एक लेख पढ़ा था कि साम्यवादी देश कुछ समय पहले तक तो अभेद्य, लौह प्राचीर के अन्दर थे। वहां से किसी प्रकार के आंकड़े मिलने सम्भव नहीं। हांलांकि, अब कुछ शिथिलता अवश्य की गयी है परन्तु वहां दूसरे देशों की तरह जानने या जांचने की सुविधा कतई उपलब्ध नहीं है। फिर भी मेरा अनुमान है जो बातें हमने पूछी—उनका जबाब गलत मानने का हमारे पास कोई कारण नहीं है। १८६५ तक उजबेकिस्तान तुर्किस्तान का एक अंचल था। ज्यादातर जमीन रेतीली और रेगिस्तानी है, पहाड़ भी हैं। नदियों मे आमू और सायर भी हैं। जिनके किनारे रूई और फलों की खेती और बागवानी की जाती है। रेगिस्तानी हिस्सों में वैज्ञानिक साधनों के द्वारा खेती करने का प्रयास प्रारम्भ किया गया है जिससे अच्छी किस्म की रूई यहां बड़ी मात्रा में पैदा होने लग गयी है। फिर भी अन्न के लिए इस अंचल को सोवियत संघ के अन्य प्रदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। साम्यवादी क्रान्ति के पूर्व यहां की साक्षरता थी तीन प्रतिशत किन्तु इस समय यह बढ़ कर अस्सी प्रतिशत हो गयी है। महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। कुछ कट्टर मुल्ला और मौलवियों ने इसका विरोध किया और उत्पात—उपद्रव की चेष्टा की किन्तु उनका कठोरता के साथ दमन कर दिया गया। यद्यपि सोवियत संघ के केन्द्रीय भाग की तरह यहां उन्नत वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं और अनुसंधान केन्द्र नहीं हैं फिर भी कपड़े की मिल, रासायनिक और लकड़ी चिराई के कारखाने हैं। हम जानना चाहते थे कि यहां के मिल और कारखानों की उत्पादन क्षमता कितनी है पर पूछने पर हमें जानकारी नहीं मिली। वे लोग विवश थे, शायद उन्हें पहले ही हिदायत दी जा चुकी थी कि क्या दिखाना और कितना बताना है।

दूसरे दिन जब हम मास्को के लिए रवाना होने लगे तो ताशकन्द के अपने मेजबानों को भारत से आए छोटेछोटे उपहार भेंट दिये। शुरू में तो वे इन्हें स्वीकारने में कुछ हिचके परन्तु आफिसरों के रुख को देखकर खुशीखुशी सबों ने ले लिया। हमारे लिए तो वे कुछ ही रुपयों के थे किन्तु वहां के दामों में ये दुर्लभ जरूर थे और शायद उनका खरीदना उनके बस की बात भी नहीं थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्लेन मे बैठा सोचने लगा कि जीवन में इस प्रकार के अवसर कई बार आते हैं। हम नयी जगह जाते हैं—वहां के लोगों से मिलते हैं—कभीकभी उनमें से किसी से मेलजोल भी हो जाता है। परन्तु फिर शायद ही कभी उनसे मिलना होता है। यात्री यदि इन यादों को मन में संजोए रखे तो उसके लिए शान्ति से जीवनयापन कठिन हो जाता है। इसलिए ही शायद हमारे धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि किसी भी वस्तु या घटना से लगाव मत रखो।

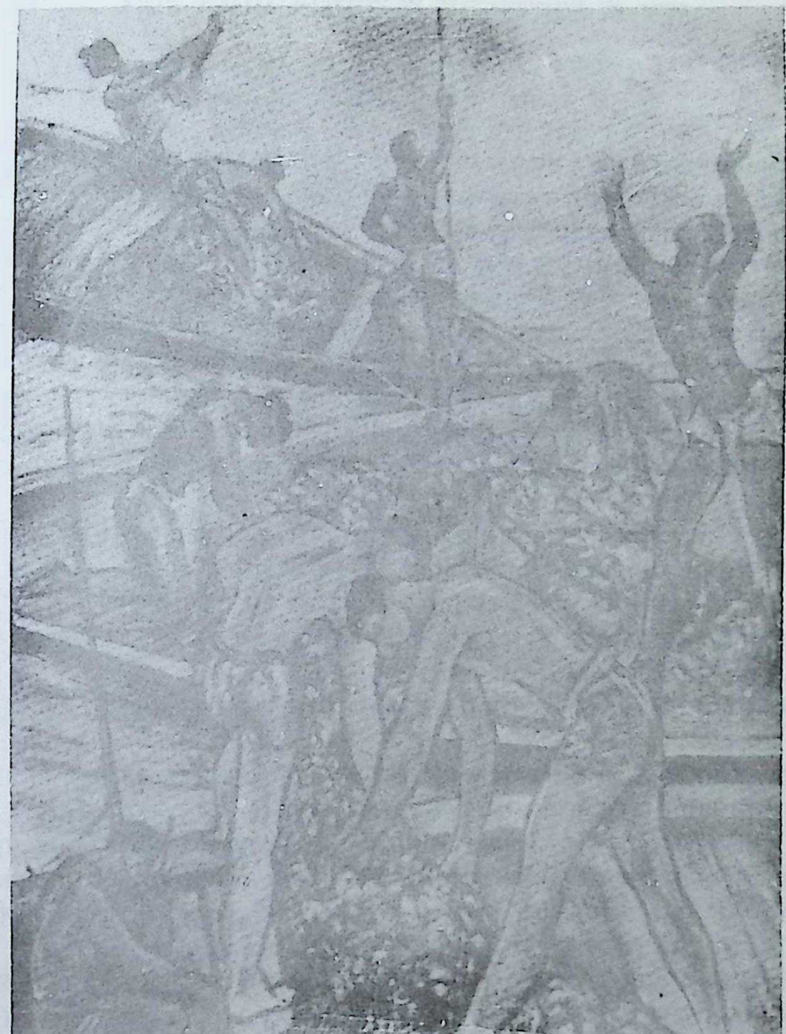

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूस के उतारचढ़ाव से संबंधित प्रसिद्ध शहर

मास्को—१

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में रूस व जापान के युद्ध के कारण भारतीय राजनीति के विद्यार्थी यूरोप में ब्रिटिश और जरमनी के अतिरिक्त रूस का नाम भी जानने लगे थे। १९१९ में जलियांवाला बाग का हत्याकांड हुआ और इसके बाद १९४२ तक भारतीय स्वतंत्रता के सेनानियों पर विदेशी नौकरशाही के साथसाथ देशी रियासतों के राजेमहाराजे और नवाबों के अत्याचार इस कद्र बढ़ रहे थे कि उनकी स्वेच्छाचारिता, नृशंसता और बर्बरता कोजारशाही कहा जाता था अर्थात रूस के सम्राट जार के द्वारा किये गए अत्याचारों से तुलना की जाती थी। रूस में जारों का शासन १९१७ तक रहा। उसके बाद वहां लेनिन के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह किया। अंतिम जार सम्राट प्रजा द्वारा परिवार सहित मार डाला गया। इससे पूर्व भी कई बार जनता ने जारशाही का अंत करने के लिए विद्रोह किया था।किंतु कज्जाक सिपाहियों के द्वारा उसे कुचल दिया गया। इन घटनाओं को पढ़ सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

१९१७ के बाद से रूस में जनतंत्र का अंत कर साम्यवादी शासन की स्थापना हुई। पूर्व में प्रशांत महासागर, उत्तर में उत्तरी ध्रुव सागर, पश्चिम में बाल्टिक सागर तथा दक्षिण में हिमालय की हिंदूकुश की श्रेणियां तथा पामीर का पठार। इस विशाल भूखंड में फैले रूस साम्राज्य को सोवियत समाजवादी संघ की संज्ञा दी गई। साम्यवादी सरकार का शासन यहां १९३९ ई० तक निर्विघ्न चलता रहा।

इस समय तक यूरोप के राजनीतिक मंच पर हिटलर का सिक्का जम चुका था।

हिटलर भी अपने को समाजवादी कहता था और उसने अपने दल का नाम भी रखा राष्ट्रीय समाजवादी दल (नेशनल सोशलिस्ट पार्टी—नात्सी)। प्रथम महायुद्ध के बाद दो धाराएं यूरोप में पनपीं—एक साम्यवाद के रूप में रूस में, दूसरी उस के कुछ वर्ष बाद, नात्सीवाद या फासिस्टवाद के रूप में जरमनी, इटली और स्पेन में। हिटलर के अधिनायकत्व में जरमनी ने आशातीत प्रगति की। वह अपने देश में पूजा जाने लगा। विदेशों के लोग विस्मय से उसे देखने लगे। रूस की प्रगति तब तक धीमी ही रही।

जो भी हो, ये दोनों धाराएं एक दूसरे से दूर हटती गईं। स्थिति यहां तक बनी कि एक दूसरे को साम्राज्यवादी, विस्तारवादी आदि कहने लगे। हिटलर के प्रताप और प्रभुत्व से सारे यूरोप के देश, विशेषतः ब्रिटेन और फ्रांस आतंकित हो उठे। हिटलर दहाड़ उठा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साम्राज्यवादी ब्रिटेन और फ्रांस के विरुद्ध उत्कट राष्ट्रवाद और जातिवाद ने जिहाद बोल दिया। १६३६ में युद्ध छिड़ गया। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि नए युग के यूरोप की एक विशेष धारा का संघर्ष साम्राज्यवाद से छिड़ा, किंतु आश्चर्य की बात यह हुई कि एक वर्ष के अन्दर ही समाजवादी रूस और जरमनी की आपसी टक्कर कमजोर पोलैंड के बंटवारे को लेकर हो गई। रूस भी ब्रिटेन व फ्रांस की मित्र-शक्ति में सम्मिलित हो गया।

सन १६४१ से १६४५ तक चार वर्षों में मित्र राष्ट्रों ने रूस को अपरिमित युद्ध सामग्री दी। इसी सिलसिले में इन देशों के लोगों का आवागमन भी वहां संभव हुआ, अन्यथा रूस में दूसरे देशों की भांति प्रवेश पाना सहज और सरल नहीं था। इस प्रकार बाहरी दुनिया को रूस के साम्यवादी शासन एवं उसकी प्रगति का अनुमान हो सका। पर ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ, मित्रों की मैत्री ढीली पड़ गई। सोवियत रूस औरं अन्य जनतंत्री राष्ट्रों में संदेह की खाई बढ़ती गई। ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि दोनों के शासनतंत्र के सिद्धांतों में मूलभूत अंतर तो था ही।

स्वाधीनता के बाद भारत ने प्रारंभ से ही विश्व की राजनीति में अपने को गुटबंदी से पृथक रखने की तथा सबसे मैत्री की नीति अपनाई। इसलिए स्टालिन के शासनकाल में भी रूस से हमारा व्यवहार मैत्रीपूर्ण रहा। फिर भी साम्यवादी शासन ने रूस को लौह प्राचीर के अंतर्गत ही रखा। जो समाचार रूसी सरकार के मुखपत्र पर 'प्रावदा' में प्रकाशित होते थे. उनसे ही थोड़ी बहुत जानकारी वहां की मिलती थी।

१६५५ में रूसी प्रधानमंत्री बुल्गानिन और वहां के साम्यवादी दल के मुख्य नेता श्री ख्रुश्चेव भारत आए। आज भी हमें याद है कि भारतीय जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया था। उसके बाद जब हमारे प्रधानमंत्री श्री नेहरू रूस गए तो रूसी जनता ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। रूस के इतिहास में शायद ही इतना विशाल जन-समूह किसी विदेशी राजनयिक अथवा नेता के लिए एकत्र हुआ होगा। रूसी जनता भारत की गुटनिरपेक्ष नीति से प्रभावित थी और उसे एशियाई देशों में अग्रणी समझती थी। उन्हें विश्वास था कि श्री नेहरू विश्वशांति के लिए अटूट प्रयत्न और परिश्रम कर रहे हैं।

निकिता ख्रुश्चेव के प्रधानमंत्री बनने के बाद रूस के बंधनों में कुछ ढिलाई हुई। भारतीयों के लिए विसा (प्रवेश पत्र) मिलने में भी कुछ सुविधा होने लगी। वहां स्टालिन की दमन नीति की खुले तौर पर आलोचना होने लगी। विदेशों से बहुत से यात्री जाने लगे तथा रूसी कलाकार और इंजीनियरों को भी दूसरे देशों में जाने की अनुमति मिलने लगी।

इस से पूर्व हमारे देश से कुछ पर्यटक विद्वान रूस हो आए थे, जिन में राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ने वहां के बारे में लिखा भी है किंतु ऐसी धारणा है कि ये साम्यवादी विचारधारा के पोषक थे, इसलिए इनकी बातें पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं।

ताशकंद में दो दिन ठहर कर हम मई की एक दोपहर में मास्को पहुंचे। एयरपोर्ट पर कई रूसी अधिकारी थे, इसलिए जांच पड़ताल में देर नहीं लगी। इस समय तक मैं अमरीका नहीं गया था। इसलिए एयरपोर्ट का भव्य रूप देख कर चकित रह गया। हजारों छोटे बड़े वायुयान खड़े थे।

वहां से मास्को शहर लगभग पचास किलोमीटर होगा। रास्ते में हरे भरे खेत और बस्तियां दिखाई पड़ीं। फिर एक बहुत ही शानदार गुंबज दिखने लगा। हमें बताया गया यह मास्को विश्वविद्यालय का गुंबज है। इस के बाद एक अच्छी चौड़ी सड़क पर पहुंचे। दोनों ओर एक सरीके बने सात मंजिले मकान थे। इन की संख्या हजारों की रही हो तो आश्चर्य नहीं। हमें श्री मिरकोव ने बताया कि साम्यवादी सरकार ने पहला काम लोगों के आवास की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यवस्था का किया है और उसी उद्देश्य से ये मकान बनाये गये हैं । पहले के बने सारे मकान जो व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में थे, उन का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है । इसलिए व्यक्ति विशेष द्वारा कानूनी अड़चन उठाने का सवाल नहीं रहा ।

हमें वहां के प्रसिद्ध होटल 'लेनिनग्राद' में ठहराया गया । सारा होटल वातानुकूलित था । सर्दी इतनी अधिक थी कि बिना इस के कमरे में रहना या काम करना संभव नहीं था । एयरपोर्ट से चलते समय सनसनाती सर्द हवा ने हमें आगाह कर दिया था कि हम उस मास्को में हैं जहां की ठंडक में नेपोलियन और हिटलर की फौजें जम गई थीं । पूछने पर पता चला कि इन महीनों में जब कि भारत में गरमी के मारे आदमी पसीने से नहा उठता है और धरती तवा हो जाती है, यहां तापमान शून्य तक रहता है तथा जाड़े में तो शून्य से भी कहीं नीचे चला जाता है ।

होटल पहुंचते शाम हो गई थी परंतु लगता था दिन ढला नहीं । यहां मई जून में १०, ११ बजे तक प्रकाश रहता है खाना खा कर बाहर जाने का मन था, किंतु मिरकोव और उस के साथी किसी काम से बाहर गए थे । शायद हमारी अब तक की यात्रा का हवाला देने और आगे के लिए हिदायत लेने । ताशकंद के अनुभव ने हमें सिखा दिया था कि पूर्व सूचना और सरकारी साथी के बिना सोवियत देश में घूमना परेशानी को न्योता देना है । अतएव, होटल के ही इर्दगिर्द टहलने लगे ।

होटल के स्वागत कक्ष में काफी संख्या में विदेशी दिखे । इच्छा तो हुई कि बातचीत कर जानकारी प्राप्त की जाए, पर प्रभुदयालजी के संकेत से संभल गया । अंगरेजी के कुछ समाचारपत्र वहाँ दिखाई पड़े । देखा, मास्को से ही प्रकाशित थे और समाचारपत्र की अपेक्षा प्रचारपत्र अधिक लगे । बाद में पता चला कि यहां विदेशी समाचारपत्रों के प्रसार को सरकार प्रश्रय नहीं देती ।

होटल के सामने एक बहुत बड़ा मैदान था । घुटन सी हो रही थी अतः मैं और प्रभुदयालजी वहां आ कर एक बेंच पर बैठ गए । आसपास रूसी नागरिक भी घूमफिर रहे थे । इन का स्वास्थ्य अच्छा था । कद लंबा, चौड़ी हड्डियां और चेहरे पर चमक थी । स्त्रियां अपेक्षाकृत स्थूल और ठिंगनी लगीं । शरीर पर इन के गरम कपड़े तो जरूर थे, पर थे घटिया दरजे के । जूते भी फटे से । वातावरण स्वच्छंद और उन्मुक्त था, पर यूरोप के अन्य शहरों जैसा उच्छृंखल नहीं । पेरिस, लंदन और रोम के पार्कों के रात्रिकालीन दृश्य तो यहां कतई न दिखे ।

हमारे पास कुछ स्त्रीपुरूष आ कर खड़े हो गए । पूछने लगे, 'तुर्की या इंदिस्की (भारतीय) ?' रूसी हमें आती नहीं थी, अंगरेजी बेकार थी, हिंदी का सवाल नहीं । हम ने मुसकराते हुए कहा, 'इंदिस्की' और नमस्कार किया । पंडित नेहरू ने रूस में नमस्कार को लोकप्रिय बना-दिया था । हमारे नमस्कार से सभी प्रसन्न हुए । दो एक ने तो मुस्करा कर हाथ भी जोड़े । मैं ने लक्ष्य किया कि हमारे गरम मोटे ओवरकोट, कलाइयों पर दस्ताने और जूतों को वे निगाह बचा कर बारबार देख रहे थे । स्वाभाविक ही था, क्योंकि वहां के स्तर के अनुसार ये चीजें बेशकीमती थीं ।

सर्दी बढ़ने लगी । लोगबाग जाने लगे । हम भी ग्यारह बजे अपने कमरे में आ गए और सो गए । होटल की ग्यारहवीं मंजिल पर हमें कमरा दिया गया था ।

दूसरे दिन सुबह उठ कर खिड़की के पास आया । हलका कुहरा था, फिर भी पास के मकान और सड़कें साफ दिखाई पड़ रही थीं । नीचे झुक कर देखा, पुराने मकान थे । जर्जर । रहनसहन का स्तर भी काफी नीचा लगा ।

इन उत्तरी देशों में सर्दी इतनी अधिक पड़ती है कि पसीना आता ही नहीं । इसलिए लोग स्नान की आवश्यकता महसूस नहीं करते । यों अरब में भी, जहां गरमी काफी पड़ती है, स्नान के प्रति लोगों में उदासीनता ही है, शायद पानी की कमी के कारण । पर हम तो भारतीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संस्कारों में पले हैं। इसलिए रूसी सर्दी का हमारी दिनचर्या पर असर नहीं पड़ा। हम ने स्नान किया और नाश्ते के लिए तैयार हो गए।

आठ बजे हम नाश्ते के लिए भोजन कक्ष (डाइनिंग रूम) में आए। हमारे लिए अलग से एक बड़ी सी मेज सजा कर रखी गई थी। उस पर गुलदस्ते रखे थे, सभी तश्तरियों में अनेक प्रकार के फल, फलों के रस, दूध के बड़ेबड़े कैंटर आदि। कई प्रकार की मिठाइयां भी थीं। हम ने लक्ष्य किया, ताशकंद की भांति यहां भी अन्य व्यक्तियों की मेजों पर मोटी रोटियां, भुना हुआ रसदार मांस और काली कॉफी रखी हुई है। मैं ने धीरे से प्रभुदयालजी से कहा, "रूस की जलवायु अच्छी है, वरना ऐसे आहार पर इन का स्वास्थ्य कैसे बना रहता!"

हमारा एक अन्य साथी फुसफुसाया, "साम्यवाद तो सब के लिए बराबरी का दावा करता है, फिर भोजन में इतना अंतर क्यों?"

श्री भट्टाचार्य ने इस का जवाब दिया, "हमारे यहां भी तो विदेशी मेहमानों के लिए ट्रेनों में नई बोगियां लगती हैं, स्पेशल ट्रेनें दौड़ा दी जाती हैं, वरना आम जनता तो तीसरे दरजे में खड़ेखड़े भी चली जाए तो गनीमत है।"

नाश्ता कर के सब से पहले हम लेनिन और स्टालिन की समाधियां देखने गए। ये क्रेमलिन की दीवार के बाहर रेड स्क्वायर में हैं। इस जगह के बारे में हम ने बहुत कुछ पढ़ रखा था। राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति के सेनानी वीरों की खून की होली—जार के कज्जाक सैनिकों द्वारा यहां अनेकों बार खेली गई थी। अंतिम युद्ध भी इसी लाल चौक में सन १९१७ में लड़ा गया, जब कि जार सरकार के सशस्त्र सैनिकों ने भूखीनंगी निरीह जनता पर गोली चलाने और उन्हें घोड़ों के पैरों के नीचे रौंदने से इनकार कर दिया था। उस समय के शहीदों की पांच सौ समाधियां क्रेमलिन की दीवार से सटी हुई हैं।

लेनिन और स्टालिन का समाधि स्थल भी क्रेमलिन की दीवार के पास रेड स्क्वायर के कोने में है। बाहर से काले और लाल संगमरमर की बनी यह इमारत विशेष आकर्षक नहीं लगती। फिर भी देशविदेश के दर्शनार्थियों की लंबी कतारें यहां लगी ही रहती हैं। हमारे साथ के अधिकारी ने वहां खड़े प्रहरियों को कुछ संकेत किया, हमें क्यू में खड़ा नहीं होना पड़ा। हम ने यह भी लक्ष्य किया कि रूसी नागरिक जो वहां खड़े थे, उन्हें बुरा नहीं लगा, अपितु हमें विदेशी जान प्राथमिकता देने पर वे प्रसन्न थे।

प्रवेश द्वार से लगी कुछ सीढ़ियां उतरने पर हम ने देखा, दो ऊंची टेबल शीशे से ढकी कक्ष में रखी हैं। एक पर लेनिन और दूसरी पर स्टालिन फौजी वरदी में सोए हुए हैं। चेहरे की भावभंगिमा, कपड़ों की ताजगी और सफाई देख कर यह अनुभव ही नहीं होता कि वे शव हैं। लेनिन की शक्ल पर कुछ शिकनें जरूर हैं ऐसा शायद इसलिए कि लेनिन अंतिम वर्षों में अस्वस्थ रहा। पर स्टालिन तो ऐसा लगता है जैसे अभी सोया है। जो भी हो रूस के इन दो भाग्य-विधायकों को देख कर बहुत सी बातें मेरे दिमाग में घूमने लगीं।

साम्यवाद ईश्वर को अथवा दैवी शक्ति को नहीं मानता। धर्म उस के लिए मानसिक विकृति अथवा दुर्बलता का द्योतक है। किंतु मनुष्य के शव की पूजा! इसलाम में भी तो मूर्तिपूजा का निषेध है, पर काबा के पत्थर को सभी चूमते हैं। हजरत मुहम्मद साहब के बाल को शीशे की नली में हिफाजत से रखा गया है। हजारों सिर उसे देखते ही झुक जाते हैं। फिर क्यों मुसलमानों ने नालंदा और राजगृह के बौद्धबिहार उजाड़े, सोमनाथ को खंडहर बनाया? इसाइयों ने भी यही किया। क्रुसेड के नाम पर दानव बन मानवता को तलवार के घाट उतार कर अपने लिए स्वर्ग द्वार खुलवाए। साम्यवाद ने उसे दुहराया। गिरजों और मसजिदों को म्यूजियम बना दिया। हजारों पादरियों और मुल्लाओं को साइबेरिया भिजवा दिया। साम्यवाद के नशे में या उस के आतंक से रूसी जनता ने सब कुछ सहा।

मैं देख रहा था, कितना सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व था स्टालिन का। फिर भी यह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यक्ति कितना क्रूर और दुर्धर्ष आजीवन रहा। इस के सामने जाते और बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। आज वह निर्जीव और असमर्थ पड़ा है। शीशे से ढका न रहता और प्रहरी भी नहीं रहते तो शायद मैं उस की उस तर्जनी को अवश्य छूता, जिसके इशारे से लाखों के जीवन का ही नहीं, अनेक देशों के भाग्य का वारान्यारा होता था।

हम जिन दिनों रूस में थे, स्टालिन की नीति की खुली आलोचना वहां होने लगी थी। उस की तस्वीरें राजकीय भवनों से हटा दी गई थीं। कहा जाता था कि वह मार्क्सवादी की जगह व्यक्तिवादी था।

स्वदेश आने के कुछ दिनों बाद पता चला कि स्टालिन का शव क्रेमलिन की उस समाधि से हटा दिया गया है और कहीं दूर अनजान जगह भेज दिया गया है। आश्चर्य हुआ। जीवित व्यक्तियों से तो वैर भुगताने की बात सुनने और समझने में आती है। मरने के बाद तो बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी वैर की भावना समाप्त हो जाती है, फिर स्टालिन तो थोड़े वर्ष पूर्व रूस के वर्तमान नेता और अधिकारियों का सर्वोच्च कामरेड था। पर यहां शव को भी प्रायश्चित्त करना पड़ा। स्टालिन ने भी अपने जीवन में लाखों को मौत के घाट उतारा। बेघरबार किया। अपने साथियों में से बहुतों को साइबेरिया की सर्दी में ठिठुर कर मरने को भेज दिया या षड्यंत्र कर उन की हत्या करा दी। ट्राटस्की को, जिस ने साम्यवाद की स्थापना में उस से कम सेवा नहीं की, स्टालिन के आतंक से स्वदेश छोड़ना पड़ा। फिर भी सुदूर मेक्सिको में जिस नृशंसता से उस की हत्या हुई, वह किसी से छिपी हुई बात नहीं है। हमारे देश में ऐसी घोर नृशंसता का केवल एक ही उदाहरण मिलता है औरंगजेब का, जिस ने दारा के कटे सिर को धूल में लपेट, बूढ़े हाथी पर रख सारे शहर में घुमाया था। सभी कट्टरताओं का रूप एक सा होता है।

समाधि स्थल देख कर हम क्रेमलिन गए। क्रेमलिन के साथ रूस का इतिहास कुछ इस कदर जुड़ गया है कि इसे एकदूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस का निर्माण १२ वीं शताब्दी में हुआ। इन दिनों मंगोल और तातारों के हमले अकसर हुआ करते थे। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से क्रेमलिन के चारों ओर प्राचीर बना दी गई। शुरू में यह लकड़ी की बनी थी, जो हमलावरों को रोकने में असफल रही, बाद में इसे ईंटों और पत्थरों की बना कर पक्का कर दिया गया। प्राचीर खड़ी करने के बाद धीरेधीरे इस में गिरजे, गुंबज और महल बनते गए। सब से विशाल मीनार की ऊंचाई २२१ फुट है, हमारे कुतुब मीनार के बराबर।

मास्कोवा नदी क्रेमलिन से सट कर बहती है। यहीं लगभग १२५ वर्ष पूर्व जार ने अपना प्रसिद्ध महल बनवाया जिस में आजकल साम्यवादी पार्टी के बड़ेबड़े जलसे हुआ करते हैं। यहीं क्रेमलिन का म्यूजियम भी है जिस की गणना संसार के बड़े संग्रहालयों में होती है। यह तीन विशाल भवनों में है पहले में जारों की निर्जी वस्तुएं संग्रहीत हैं, राजमुकुट, सिंहासन, वस्त्र, पोशाक आदि। विदेशों से उन्हें जो बहुमूल्य उपहार भेंट किए जाते थे, वे सब यहां सजा कर रखे गए हैं। यों तो ब्रिटेन तथा अन्य कई देशों में म्यूजियम हैं, जिन में अच्छे और कीमती संग्रह हैं, किंतु जैसा कि हम ने पेरिस के लुव्रे और मास्को के क्रेमलिन में देखा, अन्यत्र कहीं भी इतनी दुर्लभ और अमूल्य वस्तुएं देखने में नहीं आईं।

दूसरे भवन में हथियारों का अद्वितीय संग्रह है। नाना प्रकार के हथियार विभिन्न समय के हैं। फ्रांस के सम्राट नेपोलियन से छीनी गई अनेक प्रकार की तोपें भी रखी हैं। तीसरे भवन में जार की सरकार का सचिवालय था। राजतंत्र के अवसान के बाद यह लेनिन का आवास बना। हम ने उस का अध्ययन कक्ष देखा। दावात,कलम, पैड आदि सारी चीजें इस प्रकार सजीसजाई रखी हैं, मानों थोड़ी देर पहले ही लेनिन वहां से लिख कर गया हो।

इन सामग्रियों के बारे में जानकारी देने के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित गाइड रहते हैं। इन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के अलावा विभिन्न भाषाओं में पुस्तकें भी हैं। किंतु वे तो रिसर्च स्कालरों के काम की हैं जो महीनों यहां बैठ कर साम्यवाद के विकास और उस के गूढ़ तत्त्वों का अध्ययन करते हैं। हमें तो दो-तीन घंटों में यहां सब कुछ देख लेना था।

क्रेमलिन में तीन प्राचीन गिरजे भी हैं। एक में जहां जारों का राजतिलक होता था, वहां अब साम्यवादी नेताओं की समाधियां हैं। यहां हम ने विश्व का सब से बड़ा घंटा देखा। २३० वर्ष पूर्व इसे जार ने बनवाया था। वजन है ५,६०० मन, ऊंचाई और घेरा है क्रमशः १८ फुट और ६० फुट।

दोपहर हो आई थी। यद्यपि सुबह डट कर नाश्ता किया था, ठंडा देश है, घूमे भी बहुत, भूख लग आई। फाटक के बाहर रेड स्क्वायर में आ गए। छुट्टी का दिन था हजारों दर्शक इधरउधर घूम रहे थे। हम ने १ मई की फौजी परेड की तसवीरें देखी थीं, यह चौक हमें अपरिचित नहीं लगा।

एक बजे होटल आ कर भोजन कक्ष में गए। हम शाकाहारियों के लिए रोटी, मुरब्बे, मक्खन, केक और फलों के रस की व्यवस्था थी। हमारे साथियों में जो आमिषाहारी थे, उन के लिए एक बेशकीमती और दुष्प्राप्य सामग्री मंगाई गई थी मछली के अंडे। रूसी भाषा में इसे 'केवेयर' कहते हैं। चिरमी के आकार के काले मटमैले से। इन्हे चख कर हमारे साथी स्वाद की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। भोजन के बाद प्रथानुसार वोदका पी कर स्वांस्थ्य के लिए शुभकामना की गई। हम ने फलों के रस के गिलास ऊंचे उठा कर प्रथा का निर्वाह किया।

मास्को में हमारा प्रवास छः दिन का था। इसी के अनुसार सरकार ने प्रोग्राम बना दिया था। मैं इस आशा में रहा कि अन्य देशों की भांति यहां भी सरकारी मेहमानों के लिए एक दिन 'अपनी मर्जी से घूमोफिरो' की छूट मिलेगी, पर मेरा अनुमान गलत निकला। दिन के तीन बजे श्री मिरकोव के साथ उद्योग और कृषि संबंधी यहां की स्थायी प्रदर्शनी देखने गए। वैसे हमारे देश में भी प्रदर्शनियों के आयोजन होते रहते हैं। पर यहां जो कुछ देखा, अद्भुत और कल्पनातीत था। ५०० एकड़ के मैदान में सैकड़ों विशाल भवन बने थे। बीचबीच में दूब के लान और फूलों के बगीचे थे, जिन में फव्वारे चल रहे थे।

प्रवेश द्वार देखते ही प्रदर्शनी की भव्यता का अनुमान हो जाता है। द्वार के ऊपर रूसी कृषक दंपति की विशाल धातु मूर्ति है जो वहां के मूर्धन्य शिल्पियों द्वारा बनाई गई है। हाथों में जौ की बालियां लिए हुए वे कदम बढ़ा रहे हैं। मिरकोव ने बताया कि इस में ३०० से अधिक मंडप सोवियत संघ के प्रत्येक जिलों के हैं। जिन में वहां के उद्योग और कृषि के उत्पादन का प्रदर्शन किया गया है। लाखों व्यक्ति इसे देखने के लिए प्रति वर्ष आते हैं। विद्यार्थियों के लिए तो यहां इतनी सामग्री एकत्रित है कि उन्हें बहुत कुछ सीखने और समझने की सुविधा सहज ही मिल जाती है। अनेक विदेशी यात्री और विद्यार्थी भी यहां आते रहते हैं। श्री मिरकोव ने बताया कि इसे अच्छी प्रकार देखने के लिए महीनों का समय चाहिए। हमें तो उसे समयाभाव के कारण सरसरी तौर पर देखना था इसलिए मोटरों से ही प्रमुख मंडपों को देखा।

केंद्रीय मंडप सब से बड़ा है। यहां जारों के समय की खेती की स्थिति, उस के आंकड़े, भूमि की उर्वरा शक्ति, उत्पादन और कृषि के औजार आदि दिखाए गए हैं। साथ ही साम्यवादी शासन के इन ४५ वर्षों में कृषि की कितनी उन्नति हुई है और वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग से कितना अधिक विकास हो सका है, इस के आंकड़े एवं विवरण चित्रों तथा प्रत्यक्ष यंत्रों द्वारा प्रदर्शित हैं। सब प्रकार के शस्यादि अन्न एवं फल शीशे की मेजों पर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से सजे हैं।

अन्य मंडपों में अपनेअपने अंचल की विशेष जानकारी दी गई है। किसी में भेड़बकरियों एवं मधुमक्खियों की नसलसुधार की दिशा में प्रगति, तो किसी में मुर्गी पालन की, कहीं मछली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो कहीं सुअर, गाय, घोड़े की। कहीं जंगली पेड़ों की नसल सुधार कर उन्हें मोटा और लंबा बनाने की दिशा में प्रगति दिखाई गई है तो कहीं सब्जियों और फलों के विकास और उत्पादन का नवीनतम परिचय दिया गया है। जार्जिया के चाय के उत्पादन प्रयास पर भी प्रकाश डाला गया है। सभी मंडपों में गाइडों के अलावा सभी भाषाओं के आवश्यक विवरण उपलब्ध हैं। अंगरेजी और फ्रेंच की तो बात ही क्या, अरबी, फारसी, चीनी और जापानी में भी हैं। पर भारतीय भाषाओं में कोई भी परिचय देखने में नहीं आया, हिंदी में भी नहीं। भारत में सोवियत प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित रूस के हिंदी प्रेम की यह असलियत जान कर आश्चर्य हुआ।

दर्शकों में विद्यार्थी काफी संख्या में थे। तीनचार कक्षों को सरसरी तौर पर देखने में दो घंटे लग गए। अभी हमारी रुचि के विषय—उद्योग और विज्ञान के मंडप नहीं देखे जा सके थे। इसलिए कार में बैठ कर उस हिस्से में गए।

यहां जो कुछ देखा, उस से अंदाजा हुआ कि द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने तक रूस औद्योगिक यंत्रों के निर्माण और कौशल में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका से काफी पिछड़ा हुआ था, क्योंकि उस ने अपनी सारी शक्ति कृषि के विकास में नियोजित कर दी थी। युद्ध के बाद के इन १५ वर्षों में शिल्प और उद्योग की ओर ध्यान दिया गया और विभिन्न प्रकार की छोटीबड़ी मशीनों का उत्पादन किया जाने लगा है। फिर भी जो निपुणता और कारीगरी पश्चिमी जरमनी, स्विट्जरलैंड और ब्रिटेन की मशीनों में दिखाई पड़ती है, वह यहां नहीं है। हां, खेती के ट्रैक्टरों के उत्पादन में ये सब से आगे हैं। वे सस्ते हैं तथा छोटेबड़े कई प्रकार के हैं। विज्ञान मंडप में राकेट और स्पूतनिक के माडल देखने को मिले। प्रथम स्पूतनिक, जो अंतरिक्ष में भूमंडल की कई परिक्रमा कर चुका था, हम ने यहां देखा। गाइड ने गर्व से कहा, "इस दिशा में हम अमरीका से बहुत आगे बढ़ चुके हैं।"

यह सही था, क्योंकि कुछ दिनों पूर्व ही रूसी युवक यूरी गागारिन अंतरिक्ष की सफल यात्रा कर आया था। हम ने मिरकोव से पूछा, "क्या सोवियत संघ ऐसे भी राकेट बना रहा है जो बटन दबाते ही निर्दिष्ट लक्ष्य पर विस्फोट कर देंगे?"

उस ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। संभवतः उसे पता न हो या इन विषयों पर न बोलने की सरकारी निर्देश हों। जो भी हो, किंतु आज यह किसी से छिपा नहीं कि अमरीका और रूस दोनों ने ही ऐसे संहारक प्रक्षेपास्त्र बना लिए हैं।

उस समय तक हाइड्रोजन बम बन चुका था। किंतु प्रदर्शनी में एटम और हाइड्रोजन दोनों ही प्रकार के बम नहीं रखे गए थे।

३०० मंडपों में से हम केवल सातआठ ही देख पाए थे कि रात होने लगी। ठंडक होने के बावजूद थकावट आ गई। वहीं एक कक्ष में बैठ कर गरम काफी ली और रवाना हुए। देखा, करोड़ों पावर की तेज रोशनी के रंगीन बल्ब और नियोन जगमगा रहे हैं। यदि आधुनिक रूस का सही परिचय इस प्रदर्शनी से मिलता है तो यह मानना पड़ेगा कि साम्यवादी प्रयोग को सफलता मिली है, किंतु निर्णय पर तो तभी पहुंचा जा सकता है जब जनसाधारण से मिल कर, गांवों में जा कर वास्तविक स्थिति का अध्ययन स्वतंत्र एवं बेरोकटोक करने दिया जाय। यों तो हम भी विदेशियों को भाखड़ानंगल और चंडीगढ़ दिखा कर अपने देश की प्रगति का परिचय करा देते हैं। हम इतनी ईमानदारी अवश्य रखते हैं कि विदेशियों पर आवागमन के और जनसाधारण से मिलने के मामले में कोई प्रतिबंध नहीं रखते। हमारे यहां जिस प्रकार महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता मानते हैं, आधुनिक रूस में लेनिन के प्रति उसी प्रकार की श्रद्धा है। रूस भी भारत की तरह सदियों तक ऐयाश और क्रूर शासकों द्वारा शोषित और त्रस्त रहा। दोनों ही देशों में आम लोग भूखों मरते रहे हैं। अन्न उपजाने वाले किसानों के बच्चे अभावों में दम तोड़ते रहे हैं। नवाबों और बादशाहों ने तीतर, बटेर और कुत्तों की फौज पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लाखों रुपए बर्बाद किए, पर रियाया की राहत के लिए अस्पताल और स्कूल की आवश्यकता नहीं समझी। किसी ने आवाज उठाई तो कोड़े बरसे। भारत में गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन चला कर राष्ट्र को नया जीवन दिया। रूस में लेनिन ने हिंसात्मक क्रांति से राजतंत्र को समाप्त किया। यह विवाद अभी अनावश्यक है कि सही रास्ता कौन सा था। समय इस का निर्णय करेगा।

दूसरे दिन हम लेनिन की स्मृति में बने स्मारकभवन को देखने गए। सर्वप्रथम हमें क्रांति चौक के संग्रहालय में ले जाया गया। इस विशाल भवन में १९१७ में जार के समर्थकों ने भाग कर शरण ली थी, किंतु क्रांतिकारी सैनिकों ने उन को बाहर ला कर गोली से उड़ा दिया था। इसलिए इस का नाम क्रांति चौक पड़ा।

संग्रहालय में रूस के गत १०० वर्षों का पूरा इतिहास है। क्रांतिकारियों को कैसी यातनाएं दी गईं, किन संघर्षों से गुजर कर साम्यवादी शासन की स्थापना की जा सकी आदि सब बातें चित्रों और चार्टों के माध्यम से दिखाई गई हैं। लेनिन द्वारा बरती गई सभी वस्तुएं यहां सजा कर रखी गई हैं। उस के अंतिम काल में पहने गए ओवरकोट को भी देखा, जिसे छेद कर गोली निकल गई थी।

मास्को स २० मील दूर गोर्की नाम का गांव है, जहां लेनिन ने अपने जीवन के अंतिम छः वर्ष बिताए थे। जीवन की विषमताओं से और देश की उथलपुथल की चिंताओं से जूझते हुए, विदेशों में दीर्घ काल तक अभावग्रस्त में रहने के कारण उस का स्वास्थ्य टूट चुका था। इसलिए स्वतंत्रता के बाद १९१८ में वह मास्को से यहां आ कर रहने लगा। १९२४ तक यहीं रहा। आसपास गरीब किसानों के छोटेछोटे घर हैं। एक प्रकार से यह देहात ही है। लेनिन के इस स्मारक में उसे लिखे गए अगणित पत्र तथा उपहारों का संग्रह है। लिखने की मेज, पहनने के कपड़े और पलंग आदि सभी सुरक्षित हैं। इन्हें देखते हुए मुझे लेनिन के जीवन की एक घटना याद आ गई। हमारे क्रांतिकारी नेता राजा महेंद्रप्रताप एक बार लेनिन से मिलने यहां आए थे। उन का सामान एक मजदूर ढो कर लाया था। लेनिन ने पहले उस मजदूर से हाथ मिलाया फिर राजा साहब से।

रूस के महान लेखक मैक्सिम गोर्की से लेनिन की गहरी मित्रता थी। कहना चाहिए कि वह गोर्की का अनन्य भक्त था। इसलिए इस गांव का नाम गोर्की रखा गया। रूस में आज भी लेनिन के बाद यदि किसी का नाम है तो वह है गोर्की और तालस्ताय का।

मास्को से गोर्की जाते समय किसानों के घर दिखाई दिए। इन से सटे हुए छोटेछोटे खेत और फलों के बगीचे थे। पूछने पर पता चला कि ख्रुश्चेव की सरकार ने सहकारी खेती (कलखोज) के साथसाथ अन्य लोगों को छोटे पैमाने पर निजी खेती करने की भी छूट दी है। इस की उपज को वे खुद काम में ले सकते हैं अथवा बाजार में बेच भी सकते हैं। हमें अन्य सूत्रों से यह जानकारी भी मिली कि निजी खेती की प्रति एकड़ उपज सहकारी खेती की उपज से दुगनी से भी अधिक है। उन के द्वारा बहु प्रचारित सहकारी खेती की वास्तविकता की पोल न खुल जाए, इसलिए रूसी सरकार इस तथ्य को छिपाती है। किसानों का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा दिखा। हम उन के घरों में जा कर उन के रहनसहन को देखना चाहते थे पर यह संभव न था। दूर से ही देख कर संतोष कर लिया। छोटे खेतों में ट्रैक्टर के उपयोग का प्रश्न नहीं उठता। हां, इन में छोटे मोटरचालित यंत्रों को देखा। जमीन की खुदाई वगैरह का काम किसान नरनारी अपने हाथों से ही कर रहे थे।

दोपहर बाद हमें विदेश व्यापार मंत्री से मिलने जाना था। नई दिल्ली की तरह यहां भी विभिन्न मंत्रालयों के अलगअलग भवन हैं। शान्त वातावरण, सफाई और अपने काम के प्रति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रुचि ने हमें वहां के अनुशासन का अच्छा एवं प्रभावशाली परिचय दिया । मंत्री महोदय से औपचारिक बातों के बाद रूस के आयातनिर्यात से संबंधित चर्चा हुई । भारत से रूस में किस प्रकार आयात बढ़ाया जाए, चायनाण्ता के साथ इस पर भी चर्चा हुई ।

हमने लक्ष्य किया कि यद्यपि उन में बहुत से अंगरेजी जानते थे. फिर भी बातचीत दुभाषिए के माध्यम से कर रहे थे । इस प्रकार उन्हें सोचने और समझने का मौका मिल जाता था । शायद यह भी उद्देश्य हो कि एकदूसरे की बातों पर निगरानी भी रख सकें ।

उन की बातचीत से ऐसा आभास हुआ कि सारी बातों का खाका पहले ही तैयार कर लिया गया था । विदा करते समय उन्होंने हमें रूस के व्यापार के संबंध में बहुत सी सचित्र पुस्तकें भेंट कीं ।

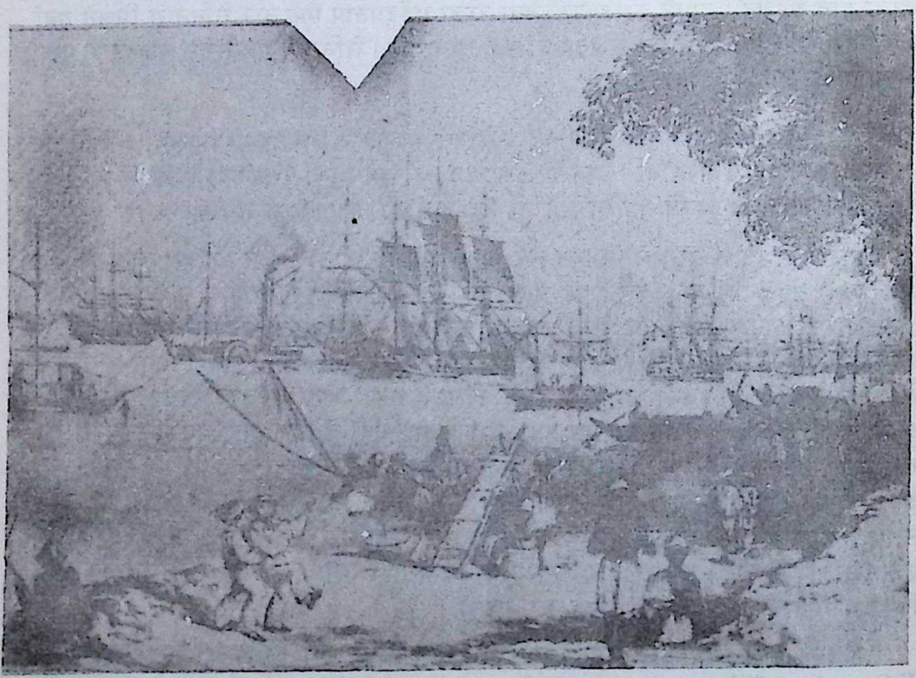

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धर्म के साथसाथ मानवता से भी चिढ़ ?

मास्को—२

मास्को में रहते दो दिन हो गए थे। इस छोटे से अर्से में कभीकदास अकेले ही घूम लेने के बाद कुछ हिम्मत बढ़ी।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की निजी सचिव श्रीमती ज्ञान दरबार के भाई श्री परमात्मा प्रकाश वहां के रेडियो के हिंदी विभाग में थे। दिल्ली से रवाना होते समय श्रीमती दरबार ने उन का एक परिचय पत्र मुझे दे दिया था। रूस के बारे में निष्पक्ष जानकारी भी लेनी थी इसलिए अगले दिन उनसे मिलने का प्रोग्राम तय किया।

सुबह चार बजे उठा। प्रभुदयालजी सो रहे थे। चुपके से बिस्तर छोड़ तैयार हो गया। खिड़की से बाहर झांककर देखा—कुहासे की हलकी सी चादर में मास्को अलसाया सा करवटें ले रहा था। किसी को कुछ कहे बिना होटल से बाहर निकल गया।

उजाला हो गया था पर सड़कों पर इक्केदुक्के ही आदमी दिखाई पड़ रहे थे। औरतें लम्बे ब्रश से सड़कें साफ कर रही थीं। स्वास्थ्य इन का अच्छा था पर इन में से कुछ काफी वृद्धा थीं। वे इस काम के लायक नहीं थीं। भारत में इस उम्र की औरतें शायद ही काम करती हों। आम तौर से अपने यहां इन की परवरिश परिवार वाले ही करते हैं। जो निहायत अभागन होती हैं, उन्हें पेट पालने के लिए भीख मिल जाती है। धीरेधीरे सड़क पर बढ़ता हुआ सोचने लगा साम्यवादी व्यवस्था में संयुकत परिवार का तो सवाल ही नहीं रहता। फिर इन बूढ़ेबूढ़ियों के पालनपोषण की जिम्मेदारी सरकार की है। जीवन की संध्या के बोझ ढोते हुए इन के लिए यदि आश्रम बना कर विश्राम करने की व्यवस्था होती तो कहा जा सकता था कि सामाजिक दायित्व का निर्वाह सरकार स्वयं कर देती है। कम से कम मानवता के नाते यह अपेक्षित भी है। भले ही धर्म के नाम से साम्यवादी चिढ़ते हों पर मानवता का तो वे दावा रखते हैं। हम ने अन्य यूरोपीय देशों में देखा था वृद्धों के लिए आवासगृह और खानेपीने की व्यवस्था सरकार द्वारा समुचित रूप से है।

कदम बढ़ाता हुआ भूगर्भ ट्रेन के स्टेशन पर पहुंचा। नक्शा जेब में था ही। एक बार फिर से उसे देख लिया। यूनिवर्सिटी क्षेत्र में जाना था। मास्को की खूबी है भूगर्भ ट्रेनों की। लन्दन पेरिस, बर्लिन अथवा पृथ्वी के किसी भी देश में इस का मुकाबला नहीं। भूगर्भ स्टेशनें क्या हैं मानो वास्तुशिल्प और कलाकारीगरी के अद्‌भुत नमूने हैं। सफाई बेमिसाल और बेजोड़। मुझे ऐसा लगा कि साम्यवादी सरकार विशेष रूप से इन की व्यवस्था पर ध्यान रखती है। प्रकाश की सुंदर व्यवस्था और जगहजगह साम्यवादी प्रतीक, विचारक और नेतृवर्ग की मूर्तियां करीने से लगी हैं। रूस के सर्वोत्तम रंगीन मारबल का प्रयोग यहां किया गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ ही मिनटों में ट्रेन आ गयी। कम ही यात्री थे। बहुत धीरेधीरे आपस में बोल रहे थे। कुछ बची नजर से मुझे देख भी लेते थे। कुछ मुस्कराते भी थे देख कर। मुझे पिछले ५-६ दिनों में पता चल गया था कि रूस वालों के लिए विदेशियों से मिलनाजुलना खतरे से खाली नहीं और बिला वजह न्योता देने का साम्यवादी शासन में शायद ही कोई साहस करे। इंगलैंड के लोग साधारणतया अपरिचितों से खिंचे से रहते हैं किंतु यहां वालों की तरह बंधेबंधे नहीं। फ्रांस, जर्मनी, इटली या यूरोप और अमेरिका के सभी देशों में जनता को विदेशियों से बोलने या मिलने जुलने की पूरी छूट है। यांत्रिक व्यवसाय की वृद्धि के लिए वे विदेशियों से बातचीत और मित्रता करने को उत्सुक रहते हैं। किंतु मानव समाज में पारस्परिक मिलन को नियंत्रण में रख कर आज के साम्यवादी देश किस प्रकार विश्व को अनुप्रेरित करने की सोच रहे हैं—समझ में आया नहीं।

बात की बात में गंतव्य स्टेशन पर ट्रेन पहुंच गयी। स्टेशन से निकल कर ऊपर सड़क पर आया। देखा, सैकड़ों मकान एक सरीखे चारों तरफ बने हुए हैं, और बहुत से बन रहे हैं। हमारे यहां भी कलकत्ते में साल्टलेक अंचल में स्व० बिधानचन्द्र राय की प्रेरणा से पश्चिम बंग सरकार ने जनता के आवास के लिए कुछ मकान बनाए हैं। परन्तु कलकत्ते की बढ़ती हुई आबादी के लिए अब तक यह प्रयत्न अपर्याप्त सा ही रहा है। मास्को में पश्चिम जर्मनी या हालैंड की तरह सब के लिए तो मकान नहीं बन पाए फिर भी प्रयत्न जोरों से चालू है। सड़क का नाम खोजने लगा। दिक्कत हुई, कारण कि रूसी लिपि समझ में आती नहीं थी। लोगों से बातचीत करने में भाषा की समस्या बाधक थी। आखिरकार, सभ्यता के आदिम युग की भाषा का प्रयोग किया यानी हाथ और मुंह से संकेत। काम कुछ बना. रूसी अंग्रेजी सहायक पुस्तक भी सहायक बनी।

करीब तीस मिनट लगे। चक्कर लगाता हुआ उन के मकान पर पहुंचा। स्वचालित लिफ्ट से सातवीं मंजिल पर पहुंच कर उन के फ्लैट में लगी घन्टी की बटन दबाई। कुछ ही देर बाद रात के लिबास में ही पतिपत्नी ने दरवाजा खोला। उन की शक्ल के तनाव से जाहिर हो रहा था कि इतनी सुबह को अप्रत्याशित रूप से मीठी नींद में विघ्न पहुंचाने वाले का स्वागत करने को वे दरवाजा नहीं खोल रहे हैं। किंतु ज्यों ही उन्होंने मुझे देखा, पहचान लिया, "अरे रामेश्वर जी, आइए। नमस्ते......हम तो आप की प्रतीक्षा में परसों से ही थे......दिल्ली से आप के बारे में हमें हेडाजी ने लिखा है।" श्रीमती हेडा, श्रीमती प्रकाश की बड़ी बहन हैं और दिल्ली में मेरे पड़ोसी। इसलिए, एक प्रकार से बिना पूर्व मिलन के ही पतिपत्नी दोनों का ही मैं परिचित था। पारस्परिक झिझक क्षणों में मिट गयी। मुझे ड्राइंग रूम में बैठा दोनों कपड़े बदल कर आ गए। उन्हें ताज्जुब हो रहा था कि इतने सबेरे होटल से चल कर इतनी दूर अकेला ही आया हूं। मैने हंसते हुए कहा, "घुमक्कड़ों के लिए अकेलापन या अजनबीपन बाधक नहीं, प्रेरक होता है। मैं ने तो सुदूर उत्तर के वीरान लैपलैन्ड में भी अकेले ही भ्रमण किया है।" श्री प्रकाश कहने लगे, "भाई वह तो स्वीडेन है, वहां की बात और है। क्या यहां आप से किसी सिपाही ने पूछताछ नहीं की? आप ने हिम्मत के साथसाथ जोखिम का काम किया, टाटिया जी। यह न भूलें यह मास्को है, साम्यवादी रूस की राजधानी। यहां के नियम मानने में शिथिलता न लायें। आप ने खुफिया पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी वेरिया के बारे में तो पढ़ा ही है। भविष्य में सतर्क रह कर घूमाफिरा करें।"

करीब घंटे भर तक बातचीत होती रही। अपने परिचित और रिश्तेदारों की खोजखबर, दिल्ली की गतिविधि, देश के बारे में नाना प्रकार की जिज्ञासा, सभी पर जी भर कर उन्होंने बातें कीं। छोड़ना ही नहीं चाहते थे क्योंकि स्वदेश के लोग वहां बहुत कम मिलते हैं। कुछ भारतीय हैं जरूर पर वे या तो दूतावास में या इंजीनियरिंग कालेजों में। कहने लगे, "मास्को रेडियो पिछले चार दिनों से आप लोगों की खबरें प्रसारित कर रहा है। मुझे तो आश्चर्य हो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहा है कि भारतीय पूंजीपतियों के सिरमौर श्री बिड़ला को यह साम्यवादी सरकार इतना महत्त्व किस कारण से दे रही है। शायद रूसी प्रधान मंत्री ख्रुश्चेव की नीति कुछ मौलिक परिवर्तन की दिशा में बढ़ रही है।"

मैं ने उन का फ्लैट देखा। तापनियंत्रित दो कमरों का है, स्वयं सम्पूर्ण यानी गुसलखाना रसोई पानी वगैरह सब कुछ है। किराया यहां मासिक वेतन और परिवार के सदस्यों की संख्या पर धार्य है। यदि केवल पतिपत्नी हैं और मासिक आय १५०० रु० है तो फ्लैट का किराया लगेगा २०० रु० किन्तु यदि साथ में दो बच्चे हैं और वेतन ५०० रु० है तो उसी फ्लैट का किराया होगा ३५ रु०। मुझे यह व्यवस्था और अनुपात बहुत जंचा। भारत में भी इस पद्धति को अपनाना अपेक्षित है। रूस में सारे मकान सरकारी हैं। हजारों की तादाद में हर साल मकान बनाए जा रहे हैं फिर भी आवास का अभाव अभी बना हुआ है। मजदूरों के कमरों में रेल के कम्पार्टमेंट की तरह सोने के लिए नीचे ऊपर खाटें बनी हैं। यानी १० × १२ फुट के कमरे में आठ व्यक्ति रहते हैं। वे बारीबारी से सोते हैं। पहली पारी के मजदूर जब आते हैं तो दूसरी पारी के कारखाने चले जाते हैं। इन के सामान रखने की सन्दूकें खाट में ही बनी है। एक प्रकार से, इस ढंग के आवास को छोटी डॉरमेटरी कहा जा सकता है।

खाने की चीजों के बारे में उन्होंने बताया कि मोटी रोटी और सुअर का मास तो सस्ता मिल जाता है। इन के अलावा, दूसरी चीजें काफी मंहगी हैं। दूध-मक्खन और फलों की बहुतायत नहीं हैं। चिकनाई की पूर्ति सुअर की चर्बी से हो जाती है। आम तौर से यहां के लोगों की खुराक अधिक है यानी ३०००-३२०० कैलोरी प्रति व्यक्ति का औसत है। सर्द मुल्क के लिए इतना शायद जरूरी है भी। निरामिषों के लिए काफी दिक्कत है।

काम करना सब के लिए जरूरी है, चाहे स्त्री हो या पुरुष। जब महिलाएं काम पर जाती हैं तो अपने शिशुओं को सरकारी 'क्रीजों' में छोड़ जाती हैं। यहां उन की देखभाल नर्सें करती हैं, काम से वापसी पर अपनेअपने बच्चे लेकर घर चली जाती हैं। इन क्रीजों का संचालन और संगठन सरकार स्वयं करती है।

उन की बातों से काफी जानकारी मिली, जो रूस में दूसरी जगह मिलनी संभव नहीं थी। रूस के बारे में पक्ष विपक्ष में अतिरंजित चित्रण ही मिलते हैं। इसी कारण साम्यवादी पद्धति के प्रयोग का यथार्थ परिणाम सामने आ नहीं पाता।

बहुत दिलचस्प बातें हो रही थीं, मगर मेरी लाचारी थी कि नाश्ते के पहले ही मुझे अपने होटल पहुंच जाना चाहिए था। अतएव, उन्हें दूसरे दिन सुबह अपने यहां आने का निमंत्रण देकर विदा ली।

होटल वापस आकर देखा मि० भट्टाचार्य ढूंढ रहे थे। कुछ चिन्तित भी थे। मैं ने अपना भ्रमण वृतान्त सुनाया तो वे चकित रह गये। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी जल्दी और अकेले दस मील जा कर, भेंट मुलाकात कर कैसे ८ बजे तक वापस आ गया। मैं ने धीरे से कहा—"भट्टाचार्य जी, घुमक्कड़ लोगों के पैरों में चक्कर होता है। वे एक जगह जमकर बैठ ही नहीं सकते। रही खतरे और झंझट की बात सो वह उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और अफ्रीका के भयावह जंगली देशों से तो यहां कम ही है।"

साढे आठ बजे मिरकोव वगैरह आ पहुंचे। उन से मैंने अपनी सुबह की सैर के बारे में कोई जिक्र नहीं किया।

नाश्तेके बाद यहां के ट्रक निर्माण का कारखाने को देखने गए। काफी बड़ा था। संभवतः पैंतालिस हजार मजदूर वहां काम कर रहे थे। इस कारखाने की उत्पादन क्षमता थी डेढ़ लाख ट्रक प्रति वर्ष की। हमारे देश के मोटरट्रकों के सारे कारखानों से अकेले ही इसका उत्पादन कहीं ज्यादा था। किन्तु अमेरिका के बड़बड़े कारखानों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहां भी चेन सिस्टम यानी शृंखला पद्धति थी। एक ओर से चल कर घूमती हुई जंजीरों पर इंजन के पुर्जे लगते जाते थे, फिर चेसिस बैठाई जाती थी और इस प्रकार अन्त में दूसरी ओर से ट्रक तैयार होकर निकलती थी। यहां के एक ट्रक पर लागत बैठती है लगभग १०,००० रु० देखने में काफी मजबूत लगती भी। हमारे यहां एक ट्रक पर लागत बैठती है लगभग २२,००० रु० इस के अलावा सरकारी टैक्स है। १५,००० रु० अर्थात ग्राहक को ३७,००० रु० में एक ट्रक पड़ जाती है। कारखाने की व्यवस्था अच्छी थी और मजदूर अनुशासन मानते हैं। काम के समय बातचीत और चुहलबाजी जो आमतौर से हमारे यहां साधारणसी बात है, यहां के मजदूरों में नहीं देखने में आयी। मुझे बताया गया कि व्यक्ति की कार्यक्षमता पर पदोन्नति और सुखसुविधा का ध्यान रखा जाता है। अनुशासन का स्तर सैनिक कठोरता की तरह है। कारखानों के अन्दर दलबन्दी या विरोध प्रदर्शन की गुंजाइश नहीं है और न इन हरकतों को सरकार ही प्रोत्साहन देती है। मजदूर स्वस्थ और प्रसन्न लगे। इन में स्त्रियों की भी काफी संख्या थी जो भारी काम भी बड़ी दक्षता से कर रही थीं। हड़ताल के बारे में मैं ने पूछा तो बताया गया, मजदूर कारखानों को अपना समझते हैं क्योंकि सब राष्ट्र की सम्पत्ति है और देश की समृद्धि में ही उन का जीवन और सुखसुविधा सम्पूर्ण रूप से आधारित है। सरकार की व्यवस्था और नियंत्रण रहने के कारण सब के साथ एक सा व्यवहार रहता है। अनुशासन भंग के लिए कड़ा दंड है। यह भी सुना गया बड़ेबड़े खुफिया अफसर साधारण मजदूरों के साथ मिल कर काम करते हैं और उन की गतिविधियों पर नजर रखते हैं। इस स्थिति में हड़ताल की कल्पना में ही जान पर जोखिम है। मैं सोचने लगा कि भारतीय साम्यवादी दल के नेतागण तो आये दिन कारखानों की तोड़फोड़, दंगे और हड़तालों को प्रोत्साहन देते रहते हैं। शायद मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार उन के लिए सबसे जरूरी और पहला काम है साम्यवाद प्रचार। इस के लिए अगर देश का औद्योगिक उत्पादन घटे या बेकारी हो तो भी उन्हें कोई परवाह नहीं। सच पूछा जाय तो वे तो चाहते ही हैं कि पूरी तौर से अव्यवस्था हो जिससे पड़ोसी साम्यवादी देशों को हस्तक्षेप का मौका मिले।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्र के निर्माण या पुनर्गठन में अनुशासन और कठोर नियंत्रण परमावश्यक है। रूस ने पूरी तौर से इस का प्रयोग किया। जनता का सहयोग भी उसे मिला। कारण कि उस के सामने राष्ट्र का और उन के स्वयं के जीवनमरण का प्रश्न था। १६४२ में जर्मनी की नाजी फौजें पौलेंड आदि देशों को रौंदती हुई मास्को के भीतर पहुंच गयी थीं। वहां के कारखाने ध्वस्त किये जा चुके थे या रूसियों ने स्वयं नष्ट कर दिये थे ताकि जर्मनों को फायदा उठाने का मौका न मिले। अधिकांश मकान भी बमों की मार से ढह चुके थे। उसी रूस में अब एक दूसरा ही नजारा देखने में आता है। नाजियों की पराजय के बाद जिस द्रुतगति से देश का पुनर्निर्माण और पुनर्गठन हुआ वह अनुकरणीय है। मास्को के पुनर्निर्माण को तो अद्भुत और अभूतपूर्व कहना चाहिए। यहां के स्वस्थ और प्रसन्न नागरिकों के चेहरे पर इस सफलता का गर्व परिलक्षित होता है।

मोटर ट्रकों का कारखाना देखने के बाद हम शहर के अन्य स्थानों को देखने के लिए निकले। तीन एक सरीखी बड़ीबड़ी कारों का एक साथ होना वहां वालों के लिए कुछ ताज्जुब की बात थी। क्योंकि, एक तो वहां कारें कम हैं और दूसरे जो हैं भी वे आमतौर से मंझोली या छोटी हैं। 'पोवेदा' कार के दाम १२,००० रु० थे जब कि जिन कारों में हम सैर कर रहे थे। उन की उन दिनों कीमत ५५,००० रु० थी। टैक्सियां सबकीसब सरकारी थी ही—कारें भी अधिकतर मंत्री, अफसर या विदेशी दूतावासों की थीं। किसीकिसी प्रोफेसर या कलाकार के पास अपनी कार भी थी।

मास्को आधुनिक रूस की सर्वोत्तम कृति है। इसे वे बड़े गर्व से विदेशियों को दिखाते हैं। बड़ीबडी चौड़ी सड़कें, दोनों तरफ एक सरीखे बने नएनए मकान, थोड़ीथोड़ी दूर पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बागबगीचे और विभिन्न विषय और रुचि के संग्रहालय। दुनियावालों के सामने इन सब को साम्यवादी सरकार अपनी सफलताओं के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करती है।

यहां का लेनिन पुस्तकालय वाशिंगटन के कांग्रेस पुस्तकालय के बाद विश्व का सब से बड़ा पुस्तकालय माना जाता है। इस में १५० भाषाओं की दो करोड़ बीस लाख पुस्तकें हैं। १८-२० बड़ेबड़े पाठागार हैं जहां २५०० व्यक्ति बैठ कर आराम से पढ़ सकते हैं। अलग-अलग भाषाओं के सूचीपत्र हैं। मैं ने हिंदी सूचीपत्र देखा। मुझे ऐसा लगा अन्य देशों की तरह या तो इन्होंने हिन्दी के प्रति उपेक्षा बरती है या उन्हें सही जानकारी नहीं मिली है। इस दिशा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा को चाहिए कि विदेशों को वे हिन्दी के प्रकाशन के संबंध में आवश्यक सूचनाएं दें और उनसे सम्पर्क स्थापित कर सहयोग दें। हमारी सरकार से यह आशा हम नहीं रख सकते। कारण, हिंदी के प्रति अभी तक सरकारी नीति दुविधाग्रस्त हैं। वहां हम ने, तुलसी, प्रेमचंद और मैथलीशरण आदि की कृतियां देखी।

मास्को में दूसरा बड़ा आकर्षण है त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी। इस में पिछली नौ शताब्दियों में उच्चकोटि के कलाकारों द्वारा बनाये गए पचास हजार चित्र हैं। इन में एक दो तो इतने कीमती हैं कि उन का मूल्य आंका नहीं जा सका है। रूसी क्रांति के उत्तर काल की घटनाओं के चित्र काफी संख्या में हैं। किंतु पूर्व क्रांतिकाल के चित्रों में कला की बारीकियां ज्यादा खिलती सी लगीं। यद्यपि मैं कला पारखी तो नहीं हूं परंतु मुझे विश्व के बड़ेबड़े कला संग्रहालयों में जा कर वहां के चित्रों के सामने देर तक बैठ कर देखने का शौक है। मुझे ऐसा लगा कि शाश्वत मानव भावनाओं की अभिव्यंजना भौतिक विचारों की तुलना में कहीं अधिक स्पष्ट और पुष्ट निखरती है। ईसा मसीह संबंधी धार्मिक चित्र तो हृदय में सहज भाव से करुणा का उद्रेक करा देते हैं। रूसी कलाकारों द्वारा बनाये गये चित्र कहींकहीं तो रेफेल, ल्योनार्दो अथवा यूरोप के मध्ययुगीन प्रसिद्ध कलाकारों की टक्कर के हैं। इन्हें देखते हुए दर्शक आत्मविस्मृत से हो जाते हैं। मृत ईसा के चित्र को देखते समय ऐसा लगा मानों सचमुच ही उस करुणामूर्ति ने अभी कुछ ही क्षण पहले देह त्यागी हो। तूलिका की सफाई देखते ही बनती है। सूली से उतार कर ईसा को नीचे सुलाया गया है। आंखें अधखुली हैं, अंगों से खून बह रहा है। आंखों में अपूर्व प्रेम, दया और क्षमा है। मुखमंडल पर शांति के साथ नैसर्गिक तेज है। चारों ओर उन्हें घेर कर उन के भक्त शोकाकुल हैं।

साम्यवादी क्रांति से संबंधित कुछ चित्र ही मार्मिक लगे। इन में से एक में दिखाया गया है कि जार सरकार के विरोधी क्रांति के सेनानियों को साइबेरिया निष्कासन किया जा रहा है, जहां से वापस आना सर्वथा असंभव है। बल्कि वर्ष दोवर्ष में उन की मृत्यु अधिक निश्चित है। उन के निर्विकार चेहरों में एक दृढ़ता झलकती है किन्तु इन के आत्मीय, पितामाता, पत्नीपुत्रों के विलाप के दृश्य देख कर चित्त आर्द्र हो उठता है। दूसरा एक चित्र देखा, कज्जाक फौजियों के घोड़ों की टापों के नीचे रौंदे गये एक युवक की लाश का। पत्नी उस के पास अर्द्ध विक्षिप्त सी बैठी है, वेदना और विलाप का यह चित्र स्वतः ही अत्याचारी जारों के प्रति क्षोभ उत्पन्न कर देता है। मैं ने पेरिस और लूव्रे में देखा था कि सैकड़ों स्त्रीपुरुष गैलरी के सामने रखी बैंचों पर बैठे हुए तन्मय हो कर वहां के चित्रों को देखते रहते हैं। बहुतों की तो यह दैनिक दिनचर्या है। भावुक लेखक, कलाकार और वास्तुशिल्पी इन चित्रों से प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं। ऐसी बात मास्को में नहीं दिखाई पड़ी।

आज का रूस साम्यवादी है, इसलिए उस का विश्वास द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में है। इसी का प्रचार और प्रसार वहां निरंतर चलता रहता है। फिर भी मैं ने यह लक्ष्य किया कि ईसाई धर्म से संबंधित चित्रों के सामने स्त्रीपुरुष मौन हो कर प्रार्थना करते हैं। ऐसा लगता है कि युगों से चले आये धार्मिक संस्कारों को कानून और प्रचार के धक्के से मानव मन से निकाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फेंकना किसी प्रकार भी संभव नहीं ।

मास्को की दुकानें अन्य देशों से भिन्न लगती हैं । यहां आमतौर से चीजों की विविधता बहुत कम दिखाई पड़ती है और वह चहलपहल या उत्साह खरीददारों में नहीं मिलता जो अन्य देशों में है । संभवतः साधारण जनता की क्षीण क्रयशक्ति इस का कारण है ।

दोपहर के बाद हम मास्को के सब से बड़े डिपार्टमेंट स्टोर्स 'गुम' में गये । यह स्टोर एक अच्छा खासा बाजार ही है । चार मंजिला विशाल भवन है जिस में बड़ेबड़े कमरे हैं । इन में विभिन्न प्रकार की चीजें सजा कर रखी गयी थीं । दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं के दाम तो हमारे यहां से लगभग दुगुने थे परंतु शौक की नायाब चीजों के दाम लगभग दस या पंदरह गुने अधिक । इस के बारे में हमें पहले ही से जानकारी थी कि साम्यवादी रूस में यदि किसी कलाकार, साहित्यकार या शिक्षाविद को बहुत अधिक वेतन दिया जाता है तो दूसरे हाथ से इन्हीं स्टोर्स के माध्यम से सरकार उन से पैसे वापिस वसूल भी कर लेती है । यादगार के बतौर मैं ने यहां के दोतीन पोस्टकार्ड खरीदे जिन में एक था महाकाश के प्रथम सफल यात्री युरी गागारीन का और दूसरा था महाकाश को चीरता हुआ उस के राकेट यान का ।

फ्रांस में राज्यक्रांति लाने का श्रेय वहां के साहित्यकारों का रहा है । इंगलैंड की जनता को भी औलिवर क्रॉमवेल के जमाने में मिल्टन के काव्यग्रंथों ने बड़ा प्रभावित किया था । भारत के साहित्यकार और कवि भी जनता के हृदय के सोये हुए भावों को जगा कर समाज और देश की विचारधारा को बराबर दिशादान देते रहे हैं । इसी प्रकार रूस में क्रांति का प्रचार और प्रसार वहां के साहित्यकारों के कारण ही संभव हुआ । आज भी वहां की साम्यवादी सरकार उन्हें भूली नहीं है बल्कि उन्हें देवता की भांति पूजा जाता है । उन की स्मृति में संग्रहालय, पार्क, सडकें और नगर तक के नाम रखे गए हैं । जिस आदर और श्रद्धा से हम गीता, रामायण और भागवत को देखते हैं उसी प्रकार रूस में कार्लमार्क्स के कैपिटल के बाद तालस्ताय और गोर्की की रचनाएं पढ़ी जाती हैं । तालस्ताय की अन्ना करनीना, युद्ध और शांति तथा गोर्की की मां और मेरे विश्वविद्यालय को केवल साहित्यिक महत्व ही वहां नहीं मिला है बल्कि उन का स्थान सैद्धांतिक दृष्टि से भी काफी ऊंचा है ।

उसी दिन शाम को भारतीय राजदूत श्री के पी एस. मेनन ने हमें दूतावास में भोजन के लिए आमंत्रित किया था । प्रायःसौ-सवा-सौभारतीय जो उन दिनों मास्को में थे, शामिल हुए । भारतीय संगीत और वाद्य का कार्यक्रम भी था । भोजन अपने ही देश का था । ताजगी आ गयी । पारस्परिक परिचय हुआ । दूतावास के लोगों के सिवाय भिलाई कारखाने से बहुत भारतीय युवक शिक्षा लेने के लिए यहां आए हुए थे । बातचीत करने पर पता चला कि वे वहां के अनुशासन और शिक्षा पद्धति से प्रभावित हैं । आम तौर से रूसियों का व्यंवहार भी उन के प्रति स्नेहपूर्ण है किंतु एक कसक सब के मन में थी कि मुक्त परिवेश और स्वच्छंदता का वहां अभाव है । हर जगह एक परदा सा रहता है ।

इन दो घंटों में हंसी और कहकहे के बीच मन का बोझ हल्का हुआ । ऐसा लगा कि हम दिल्ली या कलकत्ते के किसी उत्सव में शामिल हैं । रात दस बजे होटल वापस आये । मास्को की सड़कें रोशनी में मुसकरा रही थीं । ट्राफिक की लाल, पीली, हरी बत्तियां खिड़कियों से देख रहा था । सामने के मकान के कमरे की खिड़की पर पर्दा नहीं था । बरबस नजर उधर चली गयी । वहां देखा आदम का बेटा हौवा की बेटी की मानमनुहार कर रहा था ।

धीरे से अपने कमरे की खिड़की बंद कर के सोने का प्रयत्न कर ने लगा ।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मशीनवाद के घेरे में......

मास्को—३

सुबह नाश्ते पर परमात्माप्रकाशजी सपत्नीक आए। किसी खास मीनू का इंतजाम उन के लिए किया जाना संभव नहीं था। जैसा कि आम तौर पर मास्को में हम प्रति दिन के नाश्ते में लेते रहे, उसी ढंग की चीजें थीं। हां, चिवड़े और बादाम की बरफी जो हम अपने साथ भारत से ले आए थे, तश्तरियों में रखे गये। हम यह जानते थे कि स्वदेश से दूर रहने पर अपने देश की हर चीज प्यारी लगती है। प्रकाश दंपति तो हमारे विशुद्ध देशी चिवड़े और बरफी के टुकड़ों को चख कर बड़े प्रसन्न हुए, कहने लगे कि एक लंबे अरसे के बाद ये चीजें मिली हैं, इन से अपूर्व तृप्ति मिली। मैं ने एक डब्बे में वे दोनों चीजें रख कर उन्हें भेंट देते हुए कहा, साथ रख लीजिए तृप्ति का खजाना। दोनों हंस पड़े।

इन लोगों को रूस आए करीब साल भर हो चुका था। नाश्ते के दौरान मैं ने अपने दिवगंत मित्र राहुल सांकृत्यायन की पत्नी के बारे में जानना चाहा। सुना था कि वे मास्को में ही रहती हैं। अतः उन्हें व उन के पुत्र को एक बार देखने और उन से बातचीत करने की इच्छा थी। प्रकाशजी ने कहा, होंगी तो संभवतः यहीं, पर हम ने कभी उन के बारे में रुचि रखी नहीं और न जानने का प्रयास ही किया।

कुछ मुसकरा कर वह कहने लगे, "राहुलजी यदि स्वदेश जा कर दूसरी पत्नी अपना सकते हैं तो क्या उन की रूसी पत्नी दूसरा पति अपने देश में नहीं चुन लेगी ? भारतीय पत्नी की तरह आजीवन पति के नाम की माला जपने की प्रथा यहां नहीं है। रूस में अन्य यूरोपीय देशों की तरह व्यक्तिगत जीवन में उच्छृंखलता नहीं है, लेकिन तलाक दे कर पुनर्विवाह के लिए तो छूट है।

यहां स्त्रीपुरुष तभी बंधते हैं जब उन्हें परस्पर की आवश्यकता का नितांत अनुभव होता है। अवैध प्रणय का कोई प्रश्न नहीं। अतएव, अवैध संतान का सवाल नहीं। न किसी को विश्वामित्र की तरह तपोभंग की ग्लानि होती है न कोई शकुंतला की तरह त्याज्या ही। सरकार संतति की परवरिश करती है। नई पीढ़ी में बहुतों को अपने जनक का परिचय न मालूम हो तो कोई बात नहीं।

फिर भी यहां उद्दाम उच्छृंखलता नहीं है, जो पश्चिम के अन्य देशों में देखने में आती हैं। रूस में 'बीटल कट' लड़केलड़कियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता। हमारे देश में विशेषतः बंगाल में 'भूखी पीढ़ी' की एक नई परंपरा चली है। इस ढंग के विचार और आचार यहां देखने में नहीं आए। स्वच्छंदता है जरूर, पर उस में एक शिष्टता है और आचार भी। यही कारण है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि आम तौर से यहां के युवकयुवतियों का स्वास्थ्य अच्छा है ।

स्पष्ट है कि ऐसे वातावरण में तालाक की सुविधा और असुविधा का सवाल महत्त्व नहीं रखता । फिर भी तलाक होते हैं और पुनर्विवाह भी । किंतु तभी जब कि पतिपत्नी के स्वभाव और स्वार्थ टकराते हैं । लोग इन मामलों पर ध्यान नहीं देते हैं ।

परिवार नियोजन को सोवियत सरकार प्रोत्साहन नहीं देती, बल्कि जो महिला जितने अधिक बच्चों की जननी होती है, उस की प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक होती है । १२ बच्चों की माता को 'नगरमाता' का गौरव दिया जाता है । एक महिला के १७ बच्चे जीवित थे, उसे 'देशमाता' की उपाधि से विभूषित किया गया और उस का सार्वजनिक अभिनंदन हुआ । मुझे इन बातों को सुन कर याद आया, हमारे यहां भी 'दूधों नहाओ, पूतों फूलो' का आशीर्वाद बड़ेबूढ़े देते थे, क्योंकि जमीन बहुत थी और जनसंख्या कम ।

रूस में परिवार नियोजन की आवश्यकता है भी नहीं, क्योंकि विशाल सोवियत भूमि की जनसंख्या सिर्फ बीस करोड़ है । खनिज बहुत है । उन्हें तो जन चाहिए अधिक से अधिक, जिन की मेहनत से साइबेरिया जैसे उजड़े प्रदेश को आबाद कर सकें ।

मैं ने प्रसंगवश पूछा, "क्या साइबेरिया के मरुस्थल को खलिहान या औद्योगिक अंचल बनाना संभव हो सकता है ?" उन्होंने बताया कि सोवियत वैज्ञानिक प्रकृति से टकराने से डरते नहीं । उत्तरी ध्रुव के बर्फ के समुद्र में यदि नौमार्ग बना लेना संभव हो सका तो साइबेरिया की धरती में भी वे लहराते खेत एक न एक दिन बना ही लेंगे । जहां तक उद्योगों का सवाल है, वे तो थोड़ी मात्रा में इस अंचल में स्थापित हो चुके हैं ।

प्रकाश दंपति विदा हो ही रहे थे कि सरकारी गाइड हाजिर हो गए । हमें संसद देखना था । गाइड बारबार घड़ी देखने लगे । समय की पाबंदी के औचित्य पर हमें आपत्ति नहीं है, पर समय को सेकंड की सुई पर बांधना मन में एक बोझ सा पैदा करता है । खैर, हम निकल पड़े ।

भारत की तरह सोवियत रूस की धरती की कोख भी खनिज से भरी हुई है । शायद ही ऐसा कोई खनिज पदार्थ हो जो यहां न पाया जाता हो । कोयला, क्रोमाइट, पेट्रोल, सोना, मैंगनीज, तांबा इत्यादि सभी कुछ प्रचुर मात्रा में यहां उपलब्ध हैं । रूस इन के उत्पादन में संसार के अग्रणी देशों में माना जाता है ।

आम तौर से हम जिसे रूस कहते हैं वह इस विशाल राष्ट्र का केवल एक भाग है, जो यूरोप में है । सही माने में तो सारे देश को सोवियत भूमि कहना चाहिए । इस में रूस, यूक्रेन, बाइलोरूस, अज़रबईजन, जार्जिया, आर्मेनिया, कज्जाकिस्तान, तुर्कमनिस्तान, किरगिजस्तान, ताजिकस्तान, उजबेकिस्तान, लातिविया, इस्टोनिया, लिथुआनिया और मोलडाविया के गणराज्य हैं । पृथ्वी का यह सब से अधिक विस्तृत राष्ट्र है । एक ओर प्रशांत महासागर की लहरें इस की पूर्वी तटों से टकराती हैं, दूसरी ओर फिनलैंड की खाड़ी इस के पश्चिमी सागर तट की सीमा रेखा है । पृथ्वी की भूमि का छठवां भाग सोवियत शासन के अंतर्गत है । केवल विषुवत् रेखा की भीषण गरमी को छोड़ कर सब प्रकार की जलवायु इस विशाल भूखंड पर कहीं न कहीं मिलेगी ही ।

मन में बड़ी इच्छा थी कि मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित कम्युनिज्म के प्रयोग के परिणाम निकट से देखूं । सोवियत भूमि में आने के पूर्व भारत में इस के बारे में काफी प्रचार सामग्री पढ़ने को मिली थी । अपने देश में कम्युनिस्टों द्वारा समयसमय पर सोवियत रूस और चीन भ्रमण के अनुभव पर संस्मरण पढ़ कर जिज्ञासा बढ़ती थी कि शाश्वत और स्वाभाविक मानव प्रवृतियों की उपेक्षा अथवा दमन कर के समाज में साम्य प्रतिष्ठित करने में आखिर ये देश किस सीमा तक सफल हो सके हैं ।

ट्राटस्की से ले कर बेरिया तक बडेछोटे लाखों व्यक्तियों का जीवन के मंच से नेपथ्य में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लापता हो जाना सर्वविदित है। मित्र देश हंगरी में १९५६ में जो कुछ रूसियों ने किया उस की तुलना में नाजी फौजों के फ्रांस और नार्वे के अमानुषिक अत्याचार बहुत हल्के ठहरते हैं, और फिर वे तो युद्ध के दौरान किए गए थे।

उन दिनों रूसी संसद का सत्र चालू नहीं था। फिर भी दोचार व्यक्ति जो शायद संसद सदस्य थे वहां के पुस्तकालय में मिल गए। मुझे आशा थी कि वे दिलचस्पी के साथ हम से मिलेंगे। मेरा ख्याल गलत निकला। प्रतिबंध यहां भी था। हमें दोएक ने देखा जरूर, मगर अनदेखा कर दिया।

सोवियत संसद भवन काफी बड़ा है और भव्य भी। लेकिन हमारे संसद भवन की तो बात ही न्यारी है। यहां ३,००० दर्शकों के बैठने की जगह है। सदस्यों की संख्या ७७५ है जिसमें १९० महिलाएं हैं, दोतिहाई मजदूर और किसानों के प्रतिनिधि हैं और शेष बुद्धिजीवी वर्ग के डाक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, प्रोफेसर, लेखक आदि हैं। गणतंत्र का दावा साम्यवादी सोवियत जरूर करता है पर वहां दूसरी पार्टी है ही नहीं। साम्यवाद के सिवा दूसरी किसी विचारधारा का पोषण करना देशद्रोह समझा जाता है। अतएव यहां जो चुनाव होते हैं वे मुख्यत: व्यक्तियों के चयन के लिए। निर्वाचन का सारा व्यय सरकार वहन करती है। इसलिए गरीब से गरीब भी संसद सदस्य या मंत्री बन सकता है। यद्यपि एक ही पार्टी है फिर भी अपनेअपने क्षेत्र की समस्याओं को ले कर काफी जोरदार बहस हो जाया करती है, व्यंग्य और हंसी का वातावरण भी हमारे देश की ही तरह रहता है।

रात्रि में हम बहुचर्चित बोलशाय थियेटर देखने गए। विश्व में सिवा अमरीका के शायद ही इतना बड़ा थियेटर हाल कहीं हो। रंगमंच बहुत ही विशाल था। पर साजसज्जा साधारण दर्जे की थी। यहां अभिनेताओं की संख्या सैकड़ों रहती है। हमारे साथ एक द्विभाषी महिला कर दी गई थी जो हमें अंगरेजी में वहां की विशेषताएं समझाती जाती थी। मैं ने चुपके से प्रभुदयालजी से कहा कि प्रेमचंद और राहुल का नाम लेले कर सोवियत प्रचार यंत्र भारत में हिंदी प्रेम का जो रूप प्रदर्शित करता है उस का वास्तविक रूप यहां देखने में आता है कि हमारे लिए एक हिंदी दुभाषिए की व्यवस्था न की जा सकी।

द्विभाषी का स्वभाव मधुर था पर उस की अंगरेजी का रूसी ढंग थोड़ा बाधक था। शायद उस ने महसूस भी किया और इसलिए वाणी और संकेत दोनों से वह हमें समझाती रही।

भारत से रूसी राजदूत श्री बेनेडिक्टोव उन दिनों किसी कार्यवश मास्को आए हुए थे। वह हमसे मिलने होटल में आए। हम ने विभिन्न विषयों पर उन से कई सवाल पूछे। हमें लगा कि उन के उत्तर स्पष्ट थे, घुमावदार कम। मकानों के बारे में उन्होंने बताया कि व्यक्तिगत संपत्ति का तो अंत कर दिया गया है, अतएव मकान सारे सरकारी हैं। प्रति वर्ष लाखों की संख्या में नए मकान बन रहे हैं, फिर भी आवास की कमी है। हां, लोग सड़कों के फुटपाथों पर नहीं सोते। सरकार आवास तो दे ही देती है, भले ही पालीपाली से एक ही बिस्तर पर सोना पड़े।

सोवियत रूस साम्यवादी है जरूर, पर इस का अर्थ यह नहीं कि यहां सभी की आय, वेतन या मजदूरी समान है। सब से अधिक आय कलाकार, लेखक और वैज्ञानिकों की है। अधिकतम २०,००० रुपए मासिक तक, जब कि मजदूर और क्लर्कों को केवल छ: सात सौ रुपए तक मिलते हैं। कम आमदनी वालों के लिए सरकार सुलभ दर में प्रयोजनीय वस्तुओं की व्यवस्था कर देती है। जब कि शौक की चीजों की कीमतें इतनी अधिक हैं कि इन्हें खरीदने में काफी पैसे निकल जाते हैं। सर्दी या भूख से मरने का सवाल उठता नहीं; क्योंकि भोजन और वस्त्र की जिम्मेदारी सरकार की है। हम सोचने लगे कि जब १ और ३० का यहां अंतर है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो फिर किस बूते पर ये समता का ढिढोरा पीटते हैं, स्वीडन या स्विट्जरलैंड में ज्यादा से ज्यादा १ और १५ का अंतर है जब कि वे देश साम्यवादी विचारधारा से बहुत दूर हैं।

हम ने एक खास उद्देश्य से एक पेचीदा सवाल उन से किया कि सोवियत भूमि में विदेशी यात्री अन्य देशों की अपेक्षा कम क्यों आते हैं ? उत्तर बहुत ही बुद्धिमानी का था, संपूर्ण रूप से मानने योग्य तो नहीं पर कुछ अंशों में युक्तपूर्ण तो कहना पड़ेगा। उन्होंने बताया, "सोवियत सरकार अपने देश में यूरोपीय देशों की तरह हर प्रकार के कामोत्तेजक मनोरंजन और साधनों को प्रोत्साहन नहीं देती। रात्रि क्लब और जुए से पैसे कमाना हम अनुचित मानते हैं, इसलिए वह मौजबहार यहां कहां ? यही वजह है कि विदेशी यात्री कम ही आते हैं।" मुस्कराते हुए उन्होंने आगे कहा, "आपके देश में भी तो इन्हीं आदर्शों की प्रतिष्ठा है !"

लंच के पहले लेनिन हिल पर बने मास्को विद्यालय देखने गए। सचमुच, रूस की यह अनुपम कृति है। इसे एक प्रकार से अलग शहर कहा जा सकता है। इस के बीच के गुम्बज की ऊंचाई ७८७ फुट है, जो यूरोप में सब से ऊंची है। १९४८ से १९५३ तक लगभग ५५० करोड़ रुपये की लागत से यह विश्वविद्यालय बन कर तैयार हुआ। इसमें १५,००० कमरे, १,९०० प्रयोगकक्ष, ११३ लिफ्ट हैं। वार्षिक बजट लगभग पैंतालिस करोड़ का है। इसके सिवा बहुत बड़ी राशि नए भवन बनाने में खर्च की जाती है। यहां लगभग ३० हजार विद्यार्थी विभिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं। रूस को विज्ञान के क्षेत्र में जो सफलता मिली है, उसका श्रेय एक प्रकार से मास्को विश्वविद्यालय को है। विद्यार्थियों के आवास सादगीपूर्ण हैं। हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों के रहन सहन का स्तर इन के मुकाबले कहीं महंगा और फैशनेबल कहा जा सकता है। इन से मिलकर बड़ी खुशी हुई। सभी अपने अपने पाठ्य विषय में रुचि रखते मिले।

विश्वविद्यालय से वापस आते समय हमने कारें छोड़ दीं और मेत्रो (भूगर्भ ट्रेन) से आए। मेत्रो में इसके पहले सफर कर चुका था पर उस समय बहुत सवेरा था अतः लोगों की चहल पहल कम थी। इस समय काफी भीड़ थी। मेत्रों की सजावट और शान देखते ही बनती हैं। बड़े लोगों में किसी न किसी तरह का शौक होता है। प्रियदर्शी अशोक को बौद्ध धर्म के प्रचार का शौक था तो मुहम्मद तुगलक को बेकसूरों को फांसी चढ़ा देने का। जहांगीर को न्याय की धुन थी तो शाहजहां को इमारत बनवाने की और औरंगजेब को मंदिरों को ध्वंस करने की। इसी शताब्दी में सम्राट विलियम कैसेर को अनेक प्रकार के घोड़े रखने का और पंचम जार्ज को पुराने स्टाम्प इकट्ठा करने का शौक था।

कभीकभी शासकों का शौक राष्ट्र की काया कल्प करा देता है। स्टालिन जब रूस के राष्ट्र नायक थे, उनके एक शौक ने मास्को को अनोखा बना दिया। वह था, मेत्रो को ज्यादा खूबसूरत बनाना। वह इस के प्रत्येक स्टेशन की प्लान, इस के निर्माण, इसकी सजावट में व्यक्तिगत रुचि रखता था। कहां कौन सी मूर्ति बैठाई जाय और किस रंग का संगमरमर लगे और उस पर विशेष कोण से प्रकाश डाला जाए, इतनी बारीकियों का वह स्वयं ध्यान रखता था। यहां रूस के जनजीवन, इतिहास और संस्कृति के सजीव चित्र सजे हैं। किराया वाजिब और गाड़ियों की गति काफी तेज है।

ट्रेन में हमारे इर्दगिर्द रूसी स्त्रीपुरुष आकर बैठ गए। कुछ बातें करने का प्रयत्न करने लगे। हमें आश्चर्य हो रहा था, क्योंकि रूस की अब तक की यात्रा में लोग हमारी ओर खिंचते तो जरूर थे मगर पास कम आते थे। यहां बीचबीच में गांधी, नेहरू और राजकपूर के नाम सुनने में आये। कुछ ने रूसी में कुछ पूछा भी पर हमारे कुछ पल्ले नहीं पड़ा। कामराद, तवारीश, गास्पुदीना कहकर हम दोनों हाथ जोड़ते जाते थे। दोनों ओर से मुस्कराकर हाथ जोड़ने का क्रम चलता रहा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शायद यूनिवर्सिटी के कालेजों की पहली पारी की छुट्टी हुई थी, इसलिए ट्रेन में बहुत से विद्यार्थी थे। उन्होंने हमें बहुत प्रभावित किया। उनका संयम, अनुशासन और व्यवहार हमारे यहां के उच्छृंखल छात्र समाज की तुलना में एक आश्चर्य की सृष्टि करता है। हमें आदरपूर्वक उन्होंने जगह दी। आपस में इतने धीरेधीरे बातचीत कर रहे थे कि पता नहीं चला था कि छात्रों का झुंड ट्रेन में है। हमारे यहां तो छात्रों का दल ट्रेन में सवार हुआ कि इंजन ड्राइवर से लेकर गार्ड तक की शामत आ गई। टिकट चेकर तो बेचारे चुपके से चल देते हैं। महिला यात्रियों के साथ अशोभनीय बातें रोज की चर्चा हो गई है। लंदन में भी छात्रों में खुले आम गुंडागर्दी है। रूस के छात्र इस मुकाबले में देहाती भले ही लगते हों, पर हैं सभ्य। हमें सबसे ज्यादा प्रभावित किया बच्चों ने। स्वस्थ चेहरे, चमकती आंखें, मुस्कराते होंठ, कोई कोट के पल्ले पकड़ता, कोई हमारे हाथ घिस कर देखता कि हमारे रंग का उस पर कुछ असर हुआ या नहीं। इसमें संदेह नहीं कि रूसी सरकार इन का बड़ा ख्याल रखती है।

एक शाम हम मास्को की दुकानों में घूमते हुए किसी एक में जा पहुंचे। कहना न होगा कि यहां दुकानें सरकारी होती हैं। बहुत तरह की चीजें थीं, पर घटिया दर्जे की। हमें कुछ खरीदारी तो करनी थी नहीं, महज दामों के बारे में जानकारी लेनी थी, दो चार रुपयों की कुछ चाकलेट लेकर बाहर आए। कीमतें हमारे यहां से काफी ऊंची थी—खासकर बढ़िया चीजों की कीमतें तो दस गुनी तक। मैं ताज्जुब कर रहा था कि सोवियत जनता के मनोभावों को शायद कठोर शासन और बेरिया के आतंक ने कुचल दिया है। यहां सरकार पर यह दबाव नहीं दिया जाता कि वाजिब दामों में बढ़िया चीजों को उनके लिए क्यों नहीं मंगाया जाता।

हमारे देश में यदि ऐसा हो तो जुलूस और नारों से शासन का सिंहासन हिल उठे और सरकार को अपनी आयात नीति के बारे में रद्दोबदल करने के लिए बाध्य होना पड़े। आश्चर्य यह लगा कि हजामत भी सरकार ही बनाती है, यानी सैलून भी सरकारी और बूटपालिश तक सरकारी है। होटल आ कर आपस में चर्चा होने लगी कि इंगलैंड, फ्रांस, स्वीडन, जरमनी आदि देशों के मुकाबले में रूस के जनजीवन का स्तर नीचा होने पर भी रूस की शक्ति का विश्व में महत्व है। विज्ञान के क्षेत्र में अमरीका जैसे साधनसंपन्न राष्ट्र का रूस प्रबल प्रतिद्वंद्वी है।

एक बात रूस और भारत में करीब एक सी लगी कि सार्वजनिक पार्कों में या सड़कों के निराले कोनों पर फ्रांस, इंगलैंड या बेल्जियम की तरह नरनारी प्रगाढ़ आलिंगन और चुम्बन में रत नहीं दिखाई देते। हवाई में तो इस से भी कहीं आगे बढ़ जाते हैं। मास्को में स्त्रीपुरुष पासपास बैठे बातचीत में मग्न जरूर दिखाई देते हैं, पर सीमा रेखा से आगे बढ़ने के थोड़े प्रयास के साथ ही पुलिस की सीटी उन्हें सचेत कर देती है। कई बुकस्टालों पर हम गए पर कहीं कामोत्तेजक मैगजीनें या पोस्टकार्ड नहीं दिखाई पड़े। लंदन और पेरिस की तरह यहां सड़कों पर 'पिंप' (दलालों) को साए की तरह चलते नहीं देखा। इस ढंग के लोगों को यहां बहुत ही कठोर दंड दिया जाता है। मास्को के टैक्सीचालक भी शिष्ट और विनयशील हैं। विदेशों के टैक्सी ड्राइवरों का कटुतिक्त अनुभव हमें था। 'टिप' के लिए किस तरह मुंह बिचकाते और झल्लाते हैं, पर यहां वह सब कुछ नहीं था।

सोवियत देश में पुरुषों की तरह स्त्रियां भी काम पर जाती हैं। इसलिए इनके बच्चों के लिए हर महल्ले में शिशुगृह हैं। इन में डाक्टर, नर्स और परिचारिकाएं नियुक्त रहती हैं। सब की पोशाक एक सी और खाना एक सा। इन शिशुगृहों को क्रेशे कहते हैं। इनमें उमर के अनुसार बच्चे अलगअलग रखे जाते हैं। उन के लिए मनोरंजन के अच्छे साधन रहते हैं। महिलाएं काम पर से वापस आते समय इन्हें साथ ले कर चली जाती हैं। बच्चे यहीं प्रारंम्भिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिक्षा भी पा लेते हैं। इन्हें रखने का शुल्क मातापिता की आय के अनुपात मे लगता है। अतएव अधिक वेतन या कम वेतन पाने वालों के बच्चों के लालनपालन में भेदभाव की गुंजाइश नहीं।

स्कूलों के लंबे अवकाश में अथवा गर्मियों की छुट्टियों में स्कूलों की तरफ से बच्चों को समुद्र के उपकूल या रमणीक स्वास्थ्यप्रद पर्वतों पर घुमाने ले जाया जाता है। इस अवधि में अध्ययन के साथसाथ पारस्परिक सहयोग की भावना को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जाता है। स्कूल, कालेज और घरों में किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जाएं, यह भी सरकार ही निश्चित करती है। अर्थात साम्यवाद की विरोधी विचारधारा का साहित्य यहां के बुकस्टालों और लाइब्रेरियों में नहीं मिलता। प्रत्येक दल के साथ शिक्षक के अतिरिक्त डाक्टर भी रहते हैं।

सोवियत सरकार एकतंत्री है। शिक्षा में वह इस ढंग से साम्यवाद का अनुप्रवेश करा चुकी है कि नई पौध की विचारधारा इतनी कुंठित सी है कि साम्यवाद के अलावा और भी कोई सामाजिक व्यवस्था है या संभव है, इस की कल्पना वह नहीं कर पाती। मार्क्स एंजेल्स और लेनिन आदि उन के लिए अवतार हैं। कुछ समय पहले तक स्टालिन भी था, पर अब पाठ्यपुस्तकों से उस का नाम निकाल दिया गया है। आश्चर्य तो यह है कि धर्म न मानने वाले साम्यवाद ने स्वयं को एक धर्म बना दिया और उस में भी मसीहों की ठीक उसी ढंग से सृष्टि की जैसे इसलाम ने मुहम्मद साहब की और ईसाइयों ने ईसा की।

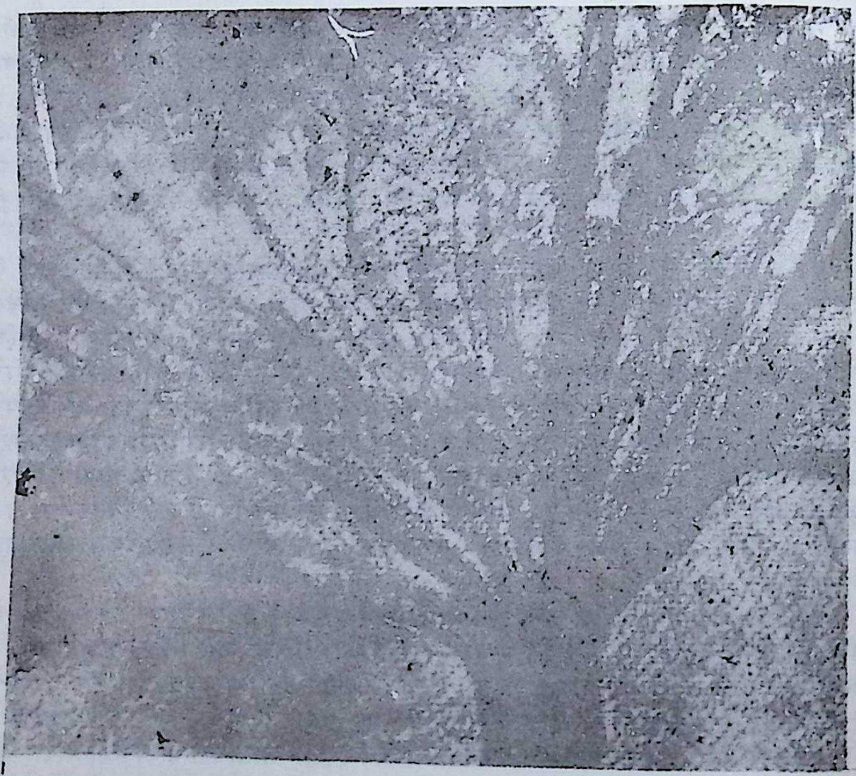

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिस की हर बात पर मास्को से होड़ लगी रहती है......

लेनिनग्राद-१

मास्को से लेनिनग्राद हमें हवाई जहाज से आना पड़ा। चाहते तो हम थे कि ट्रेन से सफर करें, ताकि सोवियत देश के ग्राम्यांचल की झांकी के साथसाथ यहां की ट्रेनों के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें, किन्तु कुछ तो समयाभाव के कारण और कुछ सरकारी व्यवस्था की वजह से हमारी यह आकांक्षा पूरी न हो सकी।

मास्को में हम पांच दिनों तक रहे मगर जितनी जानकारी सोवियत शासन व्यवस्था अथवा वहां के जनजीवन के विभिन्न पक्षों के संबंध में पाना चाहते थे वह संभव न हो सका। पहली बाधा तो भाषा की और दूसरी सरकारी गाइड के रूप में मिरकोव और उस के साथी की, जो छाया की तरह सदैव साथ रहते थे। जो चीज न दिखानी हो या जो न बताना हो, उस के लिए उन के पास बनेबनाए बहाने तैयार रहते थे। इस ढंग का रुख उन का रहता था कि हमारा उत्साह अपनेआप ही ठंडा हो जाता। वैसे वे दोनों बहुत ही नम्र और हंसमुख थे और पिछले सात दिनों में उन्होंने किसी प्रकार की शिकायत का मौका नहीं दिया।

मैं ऊब चुका था। इसलिए मैं ने श्री बिड़ला और साथियों को मास्को में छोड़ कर प्रभुदयालजी के साथ लेनिनग्राद देख लेने का निश्चय किया। इस बार हम मास्को के जिस एयरपोर्ट से रवाना हुए वह पहले जितना न तो बड़ा था और न साफसुथरा। बाथरूम बगैरह भी गंदे थे, रेस्तोरां घटिया सा। साथ के यात्री सभी रूसी थे, जिन में से अधिकतर अंगरेजी नहीं समझते थे।

लेनिनग्राद से हम सर्वथा अपरिचित थे। फिर भी हम खुश थे क्योंकि मिरकोव और उस के साथी से पिंड छूट गया था। वे मास्को ही बिड़लाजी के साथ रह गए। यहां का एयर पोर्ट लंदन, पेरिस या बर्लिन की तरह व्यस्त नहीं रहता। हम ने वहां लगी समयसारणी देखी तो पता चला कि आनेजाने वाले हवाई जहाजों की कुल संख्या चालिसपैंतालीस मात्र है। इस से कहीं ज्यादा तो बंबई, कलकत्ता के एयरपोर्टों में हैं जब कि हमारा देश पिछड़ा और अल्प उन्नत समझा जाता है।

एयरपोर्ट से हम अपने पूर्व निश्चित होटल अस्टोरिया के लिए टैक्सी से रवाना हुए। रास्ते में हम ने देखा, प्रासाद सरीखे कई एक मकान खंडहर से हो रहे हैं। कुछेक नए ढंग के ऊंचे बन रहे हैं। टैक्सी वाले से पूछा, यानी हाथ और उंगलियों को नचा कर संकेत से पूछा तो उसी भाषा में उत्तर मिलाकुछ तो पुराने होने के कारण गिराए जा रहे हैं और कुछ नाजियों के आक्रमणकाल में ढह गए थे। हम ने देखा कि कई मंजिलों के ऊपर लोहे के ढांचों पर झलाई का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काम हो रहा है और चिनगारियां नीचे गिर रही हैं । यह भी देखा कि मोटा काम औरतें कर रही हैं । कई मंजिल ऊंचे मकान के सहारे लगे ढांचे पर खड़ी हो कर लोहे की बीमों में झलाई का काम कर रही थीं । हमारे गरीब देश में सिर पर ईंटें रख कर बांस की सीढ़ियों के सहारे औरतों को चढ़ते देखना आश्चर्य नहीं. किंतु सभ्य और उन्नत साम्यवादी राष्ट्र में भी इस ढंग का काम पेट के लिए इन को क्यों करना पड़ता है. यह समझ में आया नहीं ।

टैक्सी में हम ने आपस में सोवियत शासन या व्यवस्था के बारे में कोई बात न की । हमें डर था कि कहीं टैक्सी वाला खुफिया न हो । होटल पहुंच कर हम ने अपने कमरे में सामान रखा । हाथ मुंह धो कर, रेस्तरां में आ कर हम जलपान करने लगे । हमारी टेबल एक कोने में थी, सिर्फ तीन कुरसियां लगी थीं । दो पर हम बैठे, एक खाली रही । आसपास के टेबलों पर लोग बैठे थे ।

थोड़ी देर बाद हम ने देखा कि एक लंबा सा आदमी कंधे पर कैमरा लटकाए हमारी ओर आ रहा है । लगा, आ गया—शायद हमारे लिए मास्को से सरकारी मेजबान । मुसकरा कर इशारे से खाली कुरसी पर बैठने की उस ने इजाजत ली और नाश्ता करने लगा । मैं ने हिंदी में प्रभुदयालजी से धीरे से कहा, "लगता है, यह 'देवदूत' (गाइड के रूप में खुफिया) नही है ।"

"चुपचाप देखे जाओ," कह कर नाश्ता करते हुए प्रभुदयालजी ने चिवड़े और बरफी को अपने झोले से बाहर किया ।

हम ने देखा कि आगंतुक बड़े गौर से हमारी ओर कनखियों से देख रहा था । अपने चिवड़े और बरफी का जादू विदेशों में हम कई बार आजमा चुके थे । इसलिए इन का नाम हमने 'खुल जा समसम' रखा था । मैं ने आगंतुक से बिना झिझक अंगरेजी में कहा, "भारत का है, आप भी कुछ चखना पसंद करेंगे ?"

हमारा निशाना अचूक बैठा । "ओह, जरूर.....निःसंदेह ! आप भारत के हैं ?" साफ अंगरेजी में कह कर वह हमारी तरफ मुखातिब हुआ । फिर पारस्परिक परिचय हुआ । आगंतुक मिस्टर जौन स्वीडिश पत्रकार थे । अपने देश के किसी दैनिक के संवाददाता के रूप में पिछले चार महीनों से रूस में प्रवास कर रहे थे । हमें आश्चर्य हो रहा था कि किसी भी विदेशी, यहां तक कि कम्युनिस्ट देशों के लोगों की गतिविधि पर भी जब रूस में नियंत्रण रखा जाता है, तो पत्रकार और संवाददाता के रूप में मिस्टर जौन को स्वच्छंद जानेआने की सुविधा किस तरह मिल सकी ! पूछने पर उन्होंने बताया कि पिछले महायुद्ध में स्वीडन तटस्थ रहा है । रूस के साथ उसके संबंध अच्छे रहे हैं, इसलिए अन्य देशों के संवाददाताओं से उन्हें अधिक छूट है, फिर भी परोक्ष रूप से नियंत्रण तो रहता ही है ।

बोलशाय में उस दिन एक नाट्यरूपक था । रूसी भाषा में संवाद और संलाप होने के कारण बारबार हमें द्विभाषी की मदद लेनी पड़ रही थी । 'युद्ध का कितना भयंकर परिणाम होता है, इस की कथावस्तु थी । अभिनय मंजा हुआ था और कलाकारों का कौशल भी उच्च स्तर का । अंतर्विराम के बाद स्टेज पर एक व्यक्ति आया जिस के लिए लगातार करीब पांच मिनट तक जोरजोर से तालियां बजती रहीं । पहले तो हमने समझा कि कोई राजनीतिक नेता होगा, पर बाद में जानकारी मिली कि वह देश का सर्वश्रेष्ठ वाद्यसंगीतकार था । यहां लेखकों या वैज्ञानिकों को सब से अधिक आदर और स्नेह मिलता है, उस के बाद कलाकारों को और तब कहीं अन्यान्य नेताओं को । धनसंपति का संचय संभव नहीं, अतएव धनी या संपत्तिशाली की प्रतिष्ठा का सवाल ही नहीं उठता !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक आम, बादाम की बरफी और चिवड़े हम ने उन्हें दिए। आम तो शायद पहले कहीं वह खा चुके थे, किन्तु बरफी और चिवड़े उन्होंने पहली बार देखे और चखे। उन्होंने बड़ी रोचकता के साथ इन के नाम पूछे और नोट किए। शायद उन्हें ये चीजें बहुत ही स्वादिष्ट लगीं।

मिस्टर जौन को हमने बताया कि हम अपने देश के संसद सदस्य हैं और शासकदल कांग्रेस के हैं। पंडित नेहरू के विचारों से सर्वथा सहमत हैं और हमारी यात्रा का उद्देश्य है, विदेशों के औद्योगिक विकास की जानकारी प्राप्त करना। सोवियत सरकार के आमंत्रण पर ही रूस आए हैं, इसलिए हमारी इच्छा है कि इस महा देश के बारे में अधिकाधिक परिचय प्राप्त करें। इस के बाद हम फिनलैंड होते हुए स्वीडन जाएंगे। हमने बताया कि भाषा की दिक्कत और सरकारी नियंत्रण में कारण हम यहां के बारे मे आशानुकूल जानकारी नहीं कर पा रहे हैं।

पता नहीं, भारत ने या भारतीय मिठाई ने उन्हें प्रभावित किया, वह हमें यथासाध्य सहयोग देने को तैयार हो गये। यही नहीं उस अनजाने शहर में वह हमारे लिए बिना फीस के गाइड़ बने और सारे दिन की सर्विस अपनी मोटर के साथ दी।

उन्होंने हमारे लिए प्रोग्राम बना दिया और कहा, "बातचीत हम बाहर घूमतेफिरते करते रहेंगे, खानेपीने के टेबल पर नहीं। क्योंकि हो सकता कि कोई गुप्त माक्रोफोन टेबल पर हो या पास की टेबल पर अंगरेजी जानने वाला गुप्तचर हो। आप लोग प्रश्न बहुत सावधानी से करें और जितना उत्तर दूं उसी से संतोष कर लें। "दो घंटे बाद हरमिटेज में मिलने का वचन देकर उन्होंने हम से विदा ली।

हम दोनों अकेले ही शहर घूमने निकल पड़े। लेनिनग्राद सोवियत संघ का दूसरा वृहत्तम नगर है और संसार के बड़े शहरों में इस का स्थान (शायद ग्यारहवां) है। यहां की जनसंख्या लगभग तीस लाख है.।

लेनिनग्राद बहुत कुछ वीनिस या एम्सटडेम की तरह सौ से भी अधिक छोटे-बड़े द्वीपों पर बसा हुआ है। यहां करीब चार सौ पुल हैं जो यहां के विभिन्न महल्लों को एकदूसरे से जोड़ते हैं। ग्रीष्मऋतु में तो यहां अठारहउन्नीस घंटे तक सूर्य का प्रकाश रहता है, और जाड़े में नौ बजे दिन तक अंधेरा। इसका कारण यह है कि ६० अक्षांश पर स्थित होने के कारण यह ध्रुवांचलीय क्षेत्र में है। सरदी यहां इतनी ज्यादा पड़ती है कि तापमान शून्य से भी ३० डिग्री नीचे उतर जाता है। नेवानदी जाड़े के मौसम में जम कर पत्थर सी हो जाती है। उस समय यहां के निवासी इस पर तरहतरह के खेल खेलते हैं। बडी हिम्मत और जीवट की जरूरत इन खेलों के लिए पड़ती है शरीर में बल, स्नायुयों में शक्ति और अभ्यास इन के लिए आवश्यक है। भारत में आए हुए 'हालिडे आन आइस' से इस की कुछ झांकी मिल सकती है। इन खेलों को देखने के लिए सोवियत संघ के दक्षिणी भाग तथा पड़ोसी देशों से हजारों यात्री आया करते हैं।

संसार के अन्य बड़ेबड़े शहरों की तरह यहां भी इतिहास ने करवटें बदली हैं, मामूली व्यापार केंद्र था यह किसी जमाने में। स्वीडन के व्यापारी नेवा के मुहाने पर जहाजों से आयाजाया करते थे और रूस से माल की खरीदफरोख्त करते थें। यहां दलदली जमीन थी, सरदी हद से ज्यादा पडती थी। रूस के प्रसिद्ध सम्राट पीटर महान को धुन चढी कि राजधानी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहीं बने, ताकि यूरोप के सभ्य देशों के निकट वे केंद्र बना सकें।

पीटर रूस को दकियानूसी घेरे से बाहर ला कर यूरोप के देशों की पंक्ति में बैठाना चाहता था। रूस को आधुनिक बनाने में उस का अवदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सम्राट पीटर ने अपनी मुराद पूरी की और लेनिनग्राद को सन १७१७ में रूस की राजधानी बनने का गौरव मिला। किंतु उस ने इसें अपना नाम नहीं दिया। बल्कि ईसाई धर्म के महान प्रचारक संत पीटर की स्मृति में इस का नाम सेंट पिट्सबर्ग रखा। इस के नाम से जुड़ी हुई जरमन भाषा की बू हटाने के लिए बाद में इस का नाम बदल कर पेत्रोग्राद रखा गया। लेनिन के प्रति कम्युनिस्टों की अपरिमित भक्ति के काण इस का नाम १९२४ में लेनिनग्राद कर दिया गया। लगभग दो सौ वर्षों तक इस ने रूस का शासन किया। यहीं जारशाही का राजदंड घूमता रहा। यहीं से पीटर, कैथरीन और अलेग्जेंडर ने विशाल रूसी साम्राज्य पर निरंकुश शासन किया। फिर यहीं केंद्र बना जारशाही का तख्ता उलटने का। सम्राटों की मानमर्यादा, भय, आतंक उनकी अच्छाइयां या बुराइयां सभी को साम्यवादी क्रांति ने समान रूप से धूलिधूसरित कर दिया। शहर को देखने पर बारबार मन में भावना उठती है : 'खंडहर बता रहे हैं, इमारत कितनी बुलंद थी !'

खैर, आज भी लेनिनग्राद शानदार है। उद्योगधंधों और कलाकौशल सभी में वह दूसरे सोवियत नगरों से आगे है। सोवियत संघ के बंदरगाहों में लेनिनग्राद को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस की गोदी लगभग सोलह मील लंबी नहर के जरिए सागर से जुड़ी है और संसार के बड़े बंदरगाहों में मानी जाती है। लगभग तीन सौ विदेशी जहाज यहां पर प्रति वर्ष आते हैं। कलकत्ता और बंबई में इस से कहीं अधिक जहाज विदेशों से आया करते हैं, जब कि संसार के चुने हुए बंदरगाहों में इन की गिनती नहीं होती। कारण स्पष्ट है, इस समय तक भी रूस विदेशी व्यापार के प्रति शंकाशील है।

जनसंख्या की दृष्टि से मास्को लेनिनग्राद से दोगुना है और सोवियत संघ की राजधानी होने के कारण उस का महत्त्व भी अधिक है। फिर भी, जहां तक कला और वास्तुशिल्प का सवाल है, इस की बराबरी में रूस का कोई भी शहर नहीं आता। संसार के सुंदरतम नगरों में इस की गिनती होती है। अब तक जिन बड़ेबड़े शहरों में जा चुका था उन में बंगलौर, स्विट्जरलैंड के ज्यूरिख और लूजर्न, पेरिस, स्टाकहोम, हेग और वियना के समकक्ष इसे माना जा सकता है।

लेनिनग्राद की सड़कों पर घूमते हुए लगता है कि यूराप के किसी अच्छे शहर में हम हैं। शहर के केंद्रीय भाग को हम देख रहे थे। हमें यहां टूटीफूटी अंगरेजी समझने वाले बीचबीच में मिल गए। इन से बड़ा सहारा मिला। भारतीय भाषाओं में यों ही यात्रा वृत्तांत बहुत कम हैं, बंगला में कुछेक हैं जरूर। लेनिनग्राद के विषय की आधुनिक ज़ानकारी के बारे में तो अंगरेजी में भी बहुत ही कम सामग्री है। इसलिए यहां के स्थानीय लोग बड़ी रुचि के साथ अपने शहर के इतिहास और श्रेष्ठता को बताते हैं। मास्को में यह बात नहीं है।

यहां कुछ वृद्धों से बातें करने पर लगा कि वे अपने भूतपूर्व सम्राट व सम्राज्ञी की चर्चा में उसी प्रकार रुचि रखते हैं जैसे ब्रिटेन के लोग। बड़ी खुशी से उन के व्यक्तिगत जीवन की प्रणय कथा, उन की मनमानी या जिद्दीपन का बयान करते हैं।

यहां स्मोलेनी इंस्टीट्यूट को देखते समय उन्होंने बताया कि यह विद्यालय मूलतः राजघराने अथवा रईसों की कन्याओं के लिए बनाया गया था। सन १९१७ में इसे बोलशेविकों ने अपना प्रधान केंद्र बनाया। लेनिन इसी भवन की तीसरी मंजिल पर रहता था।

पास के तवारिश भवन को भी हम ने देखा। इस के बारे में बड़ा मनोरंजक इतिहास है। इसे रूसी सम्राज्ञी कैथरिन ने अपने प्रेमी प्रिंस पोतोम्किन के लिए बनवाया था। क्रिमिया के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

युद्ध में विजयी होने पर उसे उपहार में दिया गया। प्रिंस ने इसे दूसरे को दे दिया मगर कैथरिन ने फिर इसे खरीद कर अपने प्रेमी प्रिंस को दोबारा उपहार में दे दिया। इस ढंग की राजसी मौज की बात मैं ने पहले कभी नहीं सुनी थी। उन्नीसवीं शताब्दी तक यूरोप के राजघरानों की इस प्रकार की खुली प्रेम चर्चाओं की कथाएं भरी पड़ी हैं।

लेनिनग्राद को बनानेसंवारने का दो वास्तुकारों को बहुत बड़ा श्रेय है। दोनों में इतालवी रक्त था। एक का नाम था वार्त्तालोम्यों रास्त्रेली। इस का जन्म पेरिस में हुआ था, किंतु सन १७१६ में यह रूस में आ कर बस गया। इसी ने शरद प्रासाद तथा अन्यान्य राजप्रासाद बनाए। दूसरा था कार्लो इवानोविच रोस्सी। लेनिनग्राद की एक इतालवी नर्तकी का यह पुत्र था। रोसी ने यहां के सीनेट, बैले स्कूल, पुस्तकालय और अलेग्जेंड्रेस्की थिएटर का निर्माण किया। इस थिएटर का नाम अब रूसी साहित्यकार की स्मृति में पुश्किन रख दिया गया है।

जार शासन के अंत के साथसाथ लेनिनग्राद के प्राचीन और मध्ययुगीन गौरव का अवसान हुआ। अप्रैल १९१७ में लेनिन स्विट्जरलैंड से यहां आया। चंद महीनों में उस के क्रांतिकारी विचार शोषित और आतंकित रूसी प्रजाजनों के दिमाग में घर कर गए। अक्टूबर में साम्यवादी मजदूरों और मल्लाहों ने शरद प्रासाद को घेर लिया। मल्लाहों के पास उस समय 'औरोरा' नामक एक युद्ध पोत भी था। इस पर से उन लोगों ने शरद प्रासाद पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। यहीं से लेनिन की शक्ति का निखार हुआ। जहाज आज भी वहां के नेवल म्यूजियम में है। हम ने प्रश्न किया कि जार के प्रति रोष था, पर ज़ार तो मार्च १९१७ में ही सिंहासन त्याग चुका था। उत्तर मिला, ठीक है अस्थायी सरकार जरूर थी पर शोषित वर्ग इतना असंतुष्ट हो चुका था कि उस में धैर्य नहीं था और शासन सूत्र को हाथ में लेने के लिए लाल क्रांति की जरूरत पड़ी।

विद्रोह हुआ, लूटमार हुई, हजारों जानें गईं। भुखमरी और बेकारी फैली। साम्यवादी सरकार ने शोषित वर्ग का त्राता बन कर लोगों का दमन किया। पहले था जार का आतंक. अब जनता के नाम पर जनता में जनता की सरकार का आतंक छा गया। जनसंकुल नगर की आबादी इक्कीस लाख से घट कर १९२० में सात लाख रह गई।

समाचारों पर लाल सरकार ने रोक लगा दी। यह क्रम स्तालिन की मृत्यु तक चला। अपने शासनकाल में स्तालिन ने जितनी हत्याएं करवाईं उन की उस समय किसी को खबर तक न लगी। इतिहास में चंगेज, तैमूर, और नादिरशाह आदि के बारे में सुना जाता है कि हजारों को उन्होंने कटवा दिया। पर यह भी सही है कि वे लुटेरे या डाकू ही माने जाते रहे. नेता या कामरेड नहीं। हां, शासकों ने, राजाओं ने भी कभीकभी ऐसे जघन्य आचरण किए हैं पर साम्यवादी शासकों ने उन से कम नहीं किया। तो फिर क्या अंतर रहा सामंतवाद और साम्यवाद में ?

लेनिनग्राद और मास्को में हमें वैसा फर्क लगा, जैसा कि अपने देश के बंगलौर और कलकत्ता में है। यद्यपि लंदन या न्यूयार्क की तरह मास्को के नागरिक काम पर भागते नजर नहीं आते फिर भी लेनिनग्राद से कहीं ज्यादा भीड़ वहां नजर आती है। शाम को नागरिक जिस मौज में लेनिनग्राद की सड़कों पर मिलते हैं वह नजारा मास्को में देखने में नहीं आता। सेंटों की सौरभ बिखेरती महिलाएं भी लेनिनग्राद में मिल जाएंगी, पर मास्को में नहीं आश्चर्य है कि 'बुर्जुआ' प्रवृत्ति थोड़ीबहुत मात्रा में यहां जीवित कैसे रह पाई !

एक बात की लेनिनग्राद और मास्को में होड़ सी लगी रहती है। यहां वाले मास्को वालो को अपने से घटिया मानते हैं। यहां की एक भूगर्भ ट्रेन में सफर कर रहा था। मैं ने बातचीत के सिलसिले में बताया कि मास्को के मेत्रो में भी बैठ चुका हूं। तुरंत उत्तर मिला "मगर वहां

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो इस ढंग की खूबियां नहीं हैं।" पता नहीं किन खूबियों की तरफ उन का इशारा था! क्योंकि जहां तक मेत्रो का सवाल था, मास्को की यहां से बहुत ज्यादा सुंदर थी। लेनिनग्राद और मास्को की प्रतिद्वंद्विता इतनी गहरी है कि दोनों के म्यूजियम किसी एक कला वस्तु को अपने यहां लाने के लिए दूसरे देशों में भी मूल्य की ऊंचीऊंची बोली बोलते हैं।

मास्को का बोलशोय थिएटर मशहूर है, लेकिन लेनिनग्राद का बैले भी नायाब माना जाता है। यहां वालों की एक मजेदार शिकायत यह सुनने में आई कि मास्को वाले उन के कलाकारों को अपने बैले के लिए 'हरण' कर ले जाते हैं। मुझ से तो एक युवक ने यह भी कहा, "अच्छा किया जो आप यहां चले आए, मास्को में जिंदगी है कहां?"

शहर का केंद्र भाग पेरिस के पैले द ला कांकर्द से बहुत कुछ मिलता है। यहां हम ने दो प्रतिमाएं देखीं। एक दिसंबर चौक में रूसी सम्राट पीटर महान की है। कांसे की बनी यह प्रतिमा बहुत ही शानदार है। सम्राट घोड़े पर सवार है, गर्वोन्नत मस्तक है उस का। यह सम्राट था भी अत्यंत व्यक्तित्वशाली। कहा जाता है, कि पीटर जितना दीर्घकाय था उतना ही बलिष्ठ भी। लंबाई ६ फुट ६ इंच। इस के शौर्य और बल की गाथाएं आज भी लोगों की जबान पर हैं। रूस का इतिहास इस के कृतित्व से भरा पड़ा है। क्रूर भी वह कम नहीं था। बारह हजार लोगों को इस के हुक्म से एक ही दिन मौत के घाट उतार दिया गया था। फिर भी यदि यह कहा जा सकता है कि स्तालिन ने रूस को दुनिया के सर्वशक्तिमान राष्ट्रों की पंक्ति में बैठा दिया, तो यह कहना ही पड़ेगा कि पीटर ने अंधकार में पड़े पिछड़े रूस को प्रकाश दिखाया और यूरोप के उन्नत देशों के बीच खड़ा कर दिया। पीटर की यह प्रतिमा दो फ्रांसीसी मूर्तिकारों ने बनाई है।

दूसरी प्रतिमा है रूसी सम्राट निकोलस प्रथम की। इस सम्राट के बारे में एक मजेदार बात सुनने में आई। आज का सिटी हाल मूलतः मेरिस्की प्रासाद था। सम्राट ने इसे अपनी रानी मेरी के लिए बनवाया था। मगर रानी को यह प्रासाद जंचा नहीं। न जंचने का कारण यह था कि सम्राट की घुड़साल क्यों इस की किसी एक खिड़की से दिखाई पड़ती है! राजारानियों के चोंचले प्रायः सारे देशों में एक समान ही रहे हैं।

मिस्टर जौन से हमें निश्चित स्थान और समय पर मिलना था। समय कम रह गया था। घूमतेघूमते कुछ थकान सी हो आई। काफी पीने के लिए हम एक रेस्तरां में गए, ताकि थोड़ी ताजगी आ जाए। यहां भी वातावरण मास्को से भिन्न था। लोगों के चेहरों पर ताजगी और कुछ बेफिक्री भी लगी। एक टेबल पर हम बैठ गए। एक अध्यापक पहले से बैठा था, विज्ञान का था। स्वयं ही उस ने हम से परिचय किया। हमें भारत का जान कर उसे बड़ी खुशी हुई। उस का कोई चाचा रूसी क्रांति के समय भारत भाग गया था, फिर स्वदेश वापस लौटा नहीं। थोड़ी बहुत बातचीत के बाद उस ने कहा, "निश्चय ही मास्को से हमारा शहर आप को ज्यादा अच्छा लगा होगा।" हम ने यह स्वीकार किया।

वह आगे कहने लगा, "हमारा शहर दुनिया में बेजोड़ हो उठता, मगर नाजियों के कारण इस के विकास में बहुत बड़ी बाधा पड़ गई। सन १९४१ के अगस्त में नाजी लुटेरे साम्राज्यवादी नशे में अपनी अजेय फौजों को ले कर हमारे शहर पर चढ़ आए। उन्होंने जबरदस्त घेरा डाल दिया। वह घेरा ९०० दिन के घेरे के नाम से प्रसिद्ध है। बमबारी से शहर को वे तहसनहस करते रहे। फिर भी हमारे बहादुर कामरेडों ने उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया, बमों की मार से तो लोग मरते ही थे पर भुखमरी और संक्रामक व्याधियों से भी काफी लोग मरने लगे। अनुमान है कि इस दौरान में लेनिनग्राद ने अपने आठ लाख नागरिक खो दिए। फिर भी हम हिम्मत नहीं हारे। जैसे ही बमवर्षा रुकती कि हमारे नागरिक खंदकों से या मलबों से मृतकों को निकाल लाते, घायलों की सेवाशुश्रूषा करते और फिर अपने दैनिक काम में लग जाते।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"आखिर जनशक्ति के सामने साम्राज्यवादी नाजी टिक न सके। जनवरी १६४४ में उन्हें हार कर यहां से हटना पड़ा। उन के लाखों सैनिक बर्फानी हवा और ठंड से जम कर अकड़ गए। सदा के लिए नेवा नदी में रह गए। युद्ध विशारदों का तो यहां तक कहना है कि यदि नाजी रूस पर हमला नहीं करते तो उन की सर्वोत्तम फौजें बरबादी से बच जातीं और बहुमूल्य युद्ध सामग्री भी नष्ट न होती। तब शायद युद्ध का नतीजा दूसरा ही होता। रूस से नेपोलियन भी टकराया था, मास्को में तो घुस गया था। तालस्ताय के 'युद्ध और शांति' में इस का वर्णन है। नेपोलियन को भी पता चल गया कि रूस का किसान केवल धरती की छाती नहीं चीरना जानता, साम्राज्यवादी लुटेरे के सिर छेदना भी जानता है। उस समय मैं बहुत छोटा था, पर मैं ने भी यथाशक्ति लड़ाई में भाग लिया था।"

उस की जोश भरी बातों में सचाई थी। मगर जब उस ने यह कहा कि दुनिया में कहीं ऐसी मिसाल नहीं मिलेगी तो हम ने उसे बताया कि हमारे भारतवर्ष में इस ढंग के एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। मैं ने चित्तौड़ के घेरे की बात बताई।

वह आश्चर्यचकित रह गया, कहने लगा, "मगर वह तो एक व्यक्ति की जिद की बात थी, पर यहां तो पूरी जनता का बलिदान था।"

हमें देर हो रही थी, अतः उस से विदा लेते हुए हम ने कहा, "राजा हो या नेता, सभी के पीछे जनता का बल तो रहता ही है। व्यक्ति यदि समष्टि को साथ ले कर चलता है तो समष्टि स्वतः उस में सिमट जाती है।"

मैं ने देखा, वह कुछ उलझाउलझा सा काफी पीने लग गया।

रास्ते में प्रभुदयालजी मुझे समझाने लगे, 'सोवियत शासन अथवा साम्यवादी तरीके में व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया जाता है। मास्को में यह देख चुके हो। बहुत बचपन से उस के विचार को केवल साम्यवादी सरकार की समर्थित दिशा में ही बढ़ने दिया जाता है। फलतः यहां इतिहास और संस्कृति की विविधता को समझने और परखने की शक्ति नई पौध में है कहां। यह तरीका लगभग पिछले तीस वर्षों से अपनाया गया है। इस का ध्यान रखना चाहिए। यहां बहस का मौका नहीं देना चाहिए। कहीं किसी दूसरे मिरकोव की छाया लगी कि अब तक का सारा मजा किरकिरा हो जाएगा।"

हरमिटेज के करीब हम आ गए। देखा, मिस्टर जोन लान में खिले फूलों को देख रहे हैं। वह आगे बढ़ आए, कहने लगे, "कोई दिक्कत तो नहीं हुई?" हम ने उन्हें अपने अनुभव के बारे में संक्षेप में सुना दिया। "आप अच्छी किस्मत वाले हैं दोस्ती करना जानते हैं।"

मिस्टर जोन हम दोनों को साथ ले कर हरमिटेज दिखाने ले चले। उन्होंने बताया, "यहां के दर्शनीय स्थानों में यह सर्वोपरि है। रोम के वेटिकन और पेरिस के लुब्रे म्यूजियम के समकक्ष इस संग्रहालय को माना जाता है। अलभ्य वस्तुएं यहां संगृहीत हैं। वास्तव में पहले यह जार का राजप्रासाद था। यह इतना बड़ा है कि यदि इस के सारे बरामदों में घूमा जाए तो १६ मील का चक्कर लग जाए। इस में १,५०० बड़ेबड़े कक्ष हैं। इन में से सिर्फ ४०० को संग्रहालय के काम में लाया गया है। इस की चित्रशाला का संग्रह भी अमूल्य है। राम्बैर्ड, पिकासो, रूबेंस, टिटान, ल्योनार्दो दविंची आदि के दुर्लभ चित्र यहां मिलेंगे। इन में से किसीकिसी का मूल्य करोड़ दो करोड़ तक है।

मैं ने लुब्रे और वेटिकन में इन में से प्रायः सब प्रसिद्ध चित्रकारों की बनाई अन्य तसवीरें पहले देखी थीं।

हरमिटेज का आकर्षक अंश है इस का खजाना। इस में प्रवेश के लिए अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है। हम ने पहले से इन्तजाम कर लिया था। खजाने में संसार के अद्वितीय सोने के गहने, बरतन और वस्तुएं हैं। प्राचीनकाल से ले कर जार के समय तक के स्वर्णाभूषण देखने लायक हैं। मिस्र के सम्राट् तुत्मखामन की समाधि से निकाले गए स्वर्ण पात्र, अलंकार और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजचिह्न भी यहां देखे ।

रूसी सम्राटों के जवाहरात, अलंकारआभूषण और उन के काम में आने वाली वस्तुएं देखीं । सोने की बनी इन चीजों की कारीगरी और सफाई बेशक लाजवाब हैं, पर दक्षता जो भारतीय कारीगरों के हाथ में है वह इन चीजों में नहीं दिखाई पड़ी । ठोस सोने की एक बड़ी सी शृगांरदानी देखी । ६० कक्ष थे उस में । यह रूस की सम्राज्ञी अन्ना की थी । सन १७१० से १७४० तक इस का शासनकाल रहा है । इन्हें स्नान से बड़ी चिढ़ थी । बदन पर खुशबूदार उबटन लगवा लेती थी और उसे साफ करा लेती थीं । यहीं एक कंबल देखा, जिसे तुर्की के सुलतान ने सम्राट निकोलस प्रथम को सन १८३० में उपहार दिया था । ८६ बड़ेबड़े हीरे, जो हमारे यहां के नए पैसे के बराबर होंगे, इस पर जड़े हुए हैं । प्रकाश की किरणें इन हीरों पर बिखर कर समय की करवटों को मुसकरा कर बता रही थीं । मैं सोच रहा था कि यद्यपि रूस की सर्दी के अनुरूप ही कंबल मोटा और गरम है पर क्या इन हीरों से कंबल की गरमी और बढ़ जाती है ? इन सब के अतिरिक्त ६० सन्दूकों में बंद किए हुए आभूषण वहां और थे ।

पीटर महान के कक्ष की ओर जाते हुए मैं ने मिस्टर जोन से कहा, "अचंभे की बात तो यह है कि साम्यवादी सरकार ने ६० बड़ेबड़े संदूकों में भरे ठोस सोने के पात्र और आभूषणों को बेच कर अपने शासनकाल के प्रारंभिक दिनों की भुखमरी से अपने भूखे नागरिकों को बचाया क्यों नहीं ? विदेशी तो बड़ीबड़ी कीमतें इन के लिए दे देते । लाखों व्यक्तियों के प्राण बच जाते ।

मिस्टर जोन ने कहा, "इन चीजों का ऐतिहासिक महत्व है, इसी लिए इन्हें सुरक्षित रखा गया है । बात सही है मगर साम्यवादी तो इतिहास, धर्म और संस्कृति को स्वीकार करते नहीं—यहां तक कि अपने देश के भी । जिस तरह इस्लाम या ईसाई मजहब में धर्म, सभ्यता और संस्कार की शुरुआत मानी जाती है उन के अपनेअपने पैगंबर के आविर्भाव के साथ उसी प्रकार साम्यवादी भी मार्क्स के आविर्भाव के साथ यथार्थ सभ्यता और संस्कृति का विकास मानते हैं । उन के लिए इस के पूर्वकाल की सभी बातें जंगलीपन की हैं, उन में वर्ग संघर्ष है, शोषण है ।"

"मेरा ख्याल है कि जारों की इन बहुमूल्य वस्तुओं का प्रदर्शन इसलिए कराया जाता है कि लोग समझें कि जार शासक जनता का शोषण कर के कितनी ऐयाशी करते थे"—मैं ने अपने विचार रखे ।

सम्राट पीटर के कक्ष में उस के निजी काम में आने वाली चीजें देखीं । शरीर के अनुरूप ही उस के शस्त्र भी लंबेचौड़े थे । वहीं एक नुकीली गदा भी रखी थी, जिस से उस ने अपने बेटे का सिर फोड़ दिया था । कहते हैं, कि उसे अपनी रानी के चरित्र पर संदेह हो गया था । जहां तक उस ने रानी के प्रेमी की नृशंस हत्या की वह तो समझ में आने की बात है, पर बेचारे बालक का क्या कसूर था ?

सभी कक्षों को यदि सरसरी तौर पर देखा जाए, तो कम से कम दो दिन का समय चाहिए । हमारे पास तो इतना ही समय पूरे लेनिनग्राद के लिए था । अतएव हम काजान कैथड्रेल देखने के लिए निकल पड़े ।

रोम के सेंट पीटर्स गिरजे के अनुरूप यह बनाया गया है । इसे सन १८०१ में बनाना शुरू किया गया और लगभग ग्यारह वर्षों में पूरा किया गया । इस के ऊपर का गुंबद रूस भर में सब से अधिक सुंदर है । मेरा ख्याल था कि रूस का यह सब से सुंदर गिरजा अब भी उपासना मंदिर होगा । मगर यहां आने पर पता चला कि सन १९२९ में इसे विज्ञान की अकादमी बना दिया गया था और इन दिनों यह धर्मों के इतिहास का संग्रहालय है । धर्म के नाम पर जो बिभिन्न अत्याचार किए जाते रहे हैं उन की सजीव झांकियां यहां देखने में आती हैं । एक झांकी में देखा कि बंदियों को जलाया जा रहा है । दूसरे में देखा, उन के शरीर की बोटियां

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उबाली जा रही हैं। यहीं एक औजार ऐसा देखा जो बंदियों के मुंह पर लगा दिया जाता था ताकि उन का मुंह न खुल सके। बंदी को भूखा रख कर कई दिनों बाद उस के मुंह पर यह औजार वे लगा देते थे और उस के सामने खाना रख देते थे। बेचारा खाना देखता था और घुटघुट कर मरता था। एक ऐसी कुरसी देखी जिस में नुकीले कांटे लगे थे। उस पर भूखे बंदी को बैठने के लिए विवश किया जाता था। वे उसे उसी से बांध देते थे और खाना देते थे। लहूलुहान हो कर वह दो कौर खा भी नहीं पाता था कि दम तोड़ देता था।

खड़ा हुआ मैं एकटक कब तक न जाने उस कंटीली कुरसी को देखता रहा। मिस्टर जौन ने कहा, "गौर से क्या देख रहे हैं?"

मैं सचेत हो गया, धीरे से कहा, "सोच रहा हूं कि इन अमानुषिक यंत्रणादायक वस्तुओं को दिखा कर कहीं साम्यवादी नेता अपने किए गए अत्याचारों को ढकने का प्रयत्न तो नहीं कर रहे हैं?"

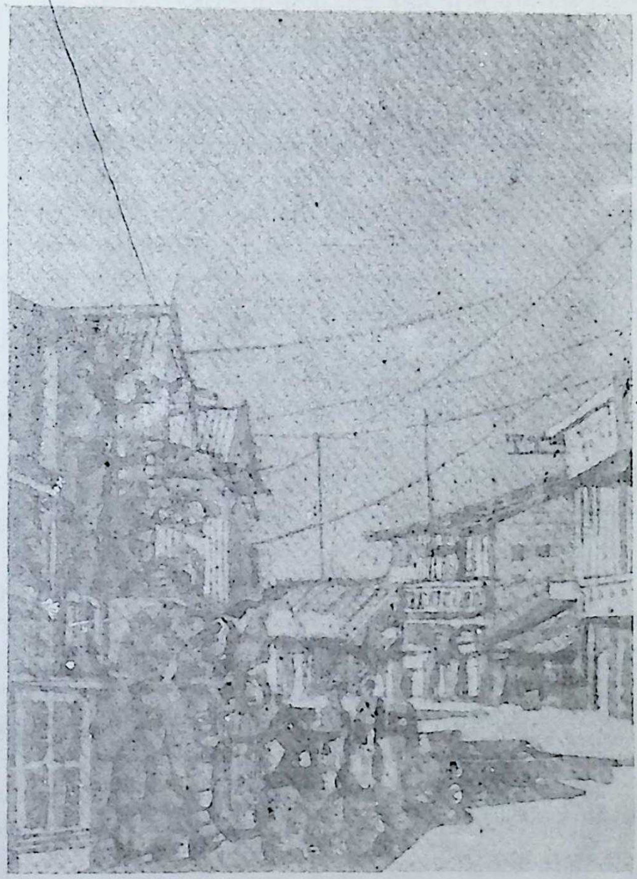

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खंडहरों में सच्चाई की ढूंढ़ ?

लेनिनग्राद–२

काजान ग़िरजाघर देखने पर कुछ भारी सा हो गया था। तरहतरह के विचार उठने लगे। मैं ने मिस्टर जौन से अनुरोध किया कि अब गिरजाघरों को न देख कर ऐतिहासिक महत्त्व के किसी स्थान को देखा जाए। हम संत पीटर और पाल के किले की ओर चले।

सिलेटी रंग की नीवा नदी के बीच किले की पीले रंग की मीनारें आसमान में बादलों से छेड़छाड़ कर रही थीं। दूर से ऐसा लगता था मानो छोटा सा किला होगा पर अंदर जाने पर देखा कि अपने में यह एक अच्छीखासी बस्ती है। इस किले को सम्राट पीटर महान ने बनवाया था। काफी पुरानी इमारतें यहां हैं जो देखभाल की वजह से अब भी दुरुस्त हैं। निकोलस प्रथम को छोड़ कर प्राय: सभी रूसी सम्राटों की समाधियां इस में हैं। कई अच्छे गिरजे भी सम्राटों द्वारा इस में बनवाए गए थे जो आज भी हैं। हम ने संत निकोलस का गिरजा देखा। पुराना होने के बावजूद इस की सुनहली चमक आज भी शानदार है। युसुवोव महल का वह स्थान भी देखा जहां रासपुतिन की हत्या की गई थी। यहीं हमने सम्राट पीटर का ग्रीष्म प्रासाद देखा। चारों तरफ कुंज और उपवन हैं, जगहजगह कलापूर्ण प्रस्तरमूर्तियां हैं। जाडे में इन्हें लकड़ी की पट्टियों से ढक दिया जाता है ताकि पाले और ठंड के कारण चटक न जाएं। मुझे लेनिनग्राद भर में इस प्रासाद से अधिक आकर्षक स्थान दूसरा न लगा।

समय सब कुछ बदल देता है। दिल्ली का लाल किला, जो कभी सल्तनते मुग़लिया के शहनशाहों का महल था, उन्हीं के लिए बंदीगृह बना। देश की आजादी के लिए जान देने वाले आजाद हिंद फौज के सिपाहियों का मुकदमा भी यहीं पर हुआ। इसी तरह संत पीटर और पाल के किले ने जारशाही के नजारे देखे और उन्हीं के लिए यह कारागार भी बना। पीटर प्रथम के शासनकाल से यह अत्याचार और हत्या का प्रधान केंद्र बना रहा। लगभग दो सौ वर्षों में यहां न जाने कितने लोग जीतेजी गाड़ दिए गए, कठोर यंत्रणा देदे कर मार डाले गए या इस की सड़ी बदबूदार अंधेरी कोठरियों में पड़ेपड़े पागल हो गए। रूस के बड़ेबड़े क्रांतिकारियों को यहां कारावास का दंड मिला। प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक दास्तोवस्की को यहीं कोठरी में बंद किया गया था।

किला देख कर हम लेनिनग्राद का स्टेडियम देखने निकले। रास्ते में एक मसजिद भी देखने को मिली। ईसाई प्रधान अंचल में मसजिद का होना विस्मयकारी था, खास तौर से इसलिए कि रूस में धर्म को महत्त्व नहीं दिया जाता है। पूछने पर पता चला कि रूस में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ईसाइयों के बाद मुसलमानों की संख्या सब से ज्यादा है। सोवियत देश के एशियाई क्षेत्र के कई राज्यों में तो मुसलमानों की संख्या अधिक है ही, यूरोपीय अंचल के जार्जिया और आरमेनिया आदि इलाकों में भी इन की संख्या काफी है। लेनिनग्राद जारों के समय राजधानी थी और अब भी यहां काफी संख्या में मुसलमान आतेजाते रहते हैं, इसलिए मसजिद में जुमे के दिन काफी चहलपहल रहती है।

इन के अलावा, यहूदी और बौद्ध भी सोवियत देश में हैं। इन दिनों रूस में लगभग ढाई लाख यहूदी हैं। बौद्ध बहुत कम हैं पर मध्य एशिया में इन की संख्या काफी है। एक समय था जब अफगानिस्तान की सीमा से ले कर चीनसागर तक बौद्धविहार जगहजगह बने थे। इस्लाम के अभ्युदय के साथ ही बौद्धोंका पराभव हुआ। आज भी इन के अवशेष यत्रतत्र मिल जाते हैं।

रूस में यहूदियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है। जरमन नाजियों की तरह उन पर कठोर अत्याचार भले ही न किए गए हों पर इन्हें नाना प्रकार से हतोत्साहित किया जाता रहा है और अब भी यही सिलसिला है। इस के कारण का सही अनुमान लगाना कठिन है। शायद संयुक्त अरब राष्ट्रों की तुष्टि के लिए यहूदियों से तनाव बनाए रखना आवश्यक समझा जाता हो। रूस वालों की यह भी धारणा है कि यहूदी एक अंतर्राष्ट्रीय कौम रहीं है। अब इजरायल इन का अलग राष्ट्र बन गया है। ऐसी स्थिति में, इन की वफादारी अन्य देशों के प्रति नहीं हो सकती है, इसी लिए इन पर विश्वास कम किया जाता है। यों तो सोवियत सेना और सरकार में ऊंचे पदों पर कुछेक यहूदी हैं पर धीरेधीरे ये हटाए जा रहे हैं।

स्टेडियम शहर से लगभग छःसात मील दूर है। इस में दाखिल होने के पहले एक प्रवेश पत्र दिखाना पड़ा। मिस्टर जोन ने इस के लिए पहले ही प्रबंध कर दिया था। स्टेडियम देख कर अनुमान होता है कि सोवियत जनता और सरकार दोनों का उत्साह खेलकूद के प्रति काफी है। खेलकूद को यहां के लोग राष्ट्रीय महत्त्व देते हैं और विदेशों से प्रतियोगिता में आगे बढ़े रहने का प्रयास करते हैं। एक पृथक मंत्रीपरिषद की देखरेख में खेलकूद का प्रबंध होता है। सोवियत संघ में दो खेल बहुत ही जनप्रिय हैं—मैदान में फुटबाल और घर में शतरंज। अन्य यूरोपीय देशों की तरह यहां गोल्फ के प्रति रुचि नहीं है। सारे देश में अच्छेअच्छे क्लब हैं। पता चला इन क्लबों में लगभग तीस लाख अच्छी श्रेणी के खिलाड़ी हैं। सरकार की ओर से इन के खाने पीने और रोजगार की विशेष व्यवस्था की गई है।

स्टेडियम के बाद मिस्टर जोन हमें ओरिएंटल इंस्टीच्यूट में ले गए। भारत में हमें एक बार राहुलजी ने बताया था कि यह रूस में प्राच्य विद्या तथा संस्कृति के अध्ययन का केंद्र है। भारत की लगभग सभी भाषाओं के शीर्ष लेखकों की चुनी हुई कृतियों का रूसी में यहां अनुवाद होता है। हम ने दिवंगत बारान्निकोव द्वारा तुलसी के 'रामचरितमानस' का अनूदित संस्करण देखा। यहां हमें हिंदी भाषी रूसी भी मिले। मुझे ऐसा लगा कि रूस में भले ही द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रति अधिक आस्था हो, क्योंकि साम्यवादी सरकार ने जनता के विचारों को इसी दिशा में मोड़ दिया है, फिर भी भारतीय चिंतन के प्रति वहां जिज्ञासा है। अच्छा होता, यदि हमारे यहां भी प्रयास किया गया होता कि हम विदेशों में अपनी संस्कृति और साहित्य का प्रसारप्रचार बढ़ाएं। हमारे बड़ेबड़े मठाधीश, जिन के पास प्रचुर संपत्ति और साधन हैं, यदि भारतीय संस्कृति के प्रचार में थोड़ी सी भी रुचि लें तो न केवल हमारी राजनीतिक मर्यादा पुष्ट होगी, बल्कि दूसरे देशों से हमारा मैत्रीसंबंध भी अधिक बढ़ेगा। कम से कम पूर्वी एशिया और रूस के साथ तो निश्चित रूप से।

ओरिएंटल इंस्टीच्यूट में संस्कृत, पाली, हिंदी, तमिल, बगला आदि भाषाओं के अच्छेअच्छे ग्रंथों के अनुवाद हो रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रात हो आई थी। हम बंदरगाह की ओर गए। जून का महीना था पर हमें सर्दी लग रही थी। बंदरगाह के किनारे बहुत से मल्लाह युवतियों के साथ प्रेमालाप में तल्लीन थे। इस ढंग के दृश्य हम ने मास्को में नहीं देखे थे। हम ने मिस्टर जोन से कहा, "रूस में तो इन बातों को प्रोत्साहन नहीं मिलता, फिर यहां यह सब कैसे ?" उन्होंने जवाब दिया, "यह दृश्य आप को अजीब सा लगता है पर भूख की पूर्ति तो करनी ही पड़ती है, चाहे वह पेट की हो या सेक्स की। ये मल्लाह महीनों घर से दूर रहते हैं इसलिए जहाज से उतरने पर इन का सब से पहला काम होता है—साथी ढूँढ़ कर मौजमस्ती में डूब जाना। सभी देशों में ऐसा होता है। हांगकांग, सिंगापुर, मार्सलीज, पोर्ट्स्माउथ आदि में इसी ढंग के दृश्य देखने में आते हैं।" हम ने कहा, "पर बंबई, मद्रास, कलकत्ता में नहीं।"

रात्रि के लगभग बारह बजे हम होटल वापस आ गए। इस समय भी कुछकुछ प्रकाश था। मिस्टर जोन ने हमारे साथ काफी पी और अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित कर विदा ली। चलतेचलते हंसते हुए कह गए, "चिवड़े और बरफी तैयार रखें !"

हमारे विशेष आग्रह पर दूसरे दिन सुबह मिस्टर जोन स्वीडिश दूतावास के अपने एक मित्र को साथ ले आए। हमारा परिचय कराते हुए उन्होंने मित्र से कहा कि वह बिना संकोच अथवा दुविधा के रूस संबंधी प्रश्नों के बारे में हमें बता सकते हैं, क्योंकि हम केवल जिज्ञासु हैं, हमारा उद्देश्य रूस अथवा साम्यवाद के विरोध में प्रचार करना नहीं है।

हम यह जानना चाहते थे कि रूस की जनता ने एकाएक इस प्रकार रक्तक्रांति को कैसे स्वीकार कर लिया ? फ्रांस में भी क्रांति हुई, इंगलैंड में भी, पर वहां तो परिस्थिति इतनी जल्दी नहीं बदली !

उत्तर में हमें बताया गया कि यहां की जनता अशिक्षित थी और जारों के अत्याचार, सामंतवादी शोषण और धर्माचार्यों के पाखंड के कारण आर्थिक व्यवस्था इतनी असंतुलित रही कि उस से छुटकारा पाने का अन्य कोई उपाय समझ में नहीं आया। लोग किसी भी मूल्य पर परिवर्तन चाहते थे और इसी लिए क्रांति को उन्होंने स्वीकार किया। यदि उन्हें यह अनुमान होता कि क्रांति के कारण उन का व्यक्तित्व नष्ट हो जाएगा तो शायद वे साम्यवादी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते। जो भी हो, जारशाही का अंत करके यहां प्रजातंत्रवादी सरकार बनी। पर १५ वर्ष बाद स्तालिन के शासन में उस का रूप अधिनायकवादी हो गया। मार्क्स का नाम केवल प्रचार के लिए ही रह गया।

स्तालिन ने भी वही किया जो पीटर और निकोलस करते थे। जनता में भीतर ही भीतर असंतोष फैला, पर उस के जीवनकाल में उस के रोबदाब के सामने किसी प्रकार का विद्रोह अथवा विरोध न हुआ। स्तालिन की मृत्यु के बाद इस असंतोष का सब से अधिक लाभ उठाया ख्रुश्चेव ने। उस ने जनता को बताया कि स्तालिन ने तानाशाही चलाई जो मार्क्सवाद के प्रतिकूल है। इस प्रकार के प्रचार से उस ने अपनी शक्ति बढ़ा ली।

इस प्रसंग में मैं ने उन से पूछा, "यह बात कहां तक सच है कि स्तालिन की हत्या की गई ?"

उन्होंने कहा कि संदेह लोगों में है पर निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। स्तालिन की मृत्यु किस प्रकार हुई, इस पर उन्होंने जो कुछ बताया, वह हमारे लिए एक नई जानकारी थी।

अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाचारपत्र मे प्रकाशित घटना का उल्लेख किया। घटना इस प्रकार है कि स्तालिन की तानाशाही का विरोध वोरोशिलोव ने किया। अपनी सेवाओं के कारण उसका प्रभाव और व्यक्तित्व रूसी नेताओं में स्तालिन से कम नहीं था। दोनों में विवाद और विरोध भीतर ही भीतर बढ़ता जा रहा था। उन्हीं दिनों रूसी प्रेसीडियम के समस्त सदस्यों की चिकित्सा का भार नौ प्रसिद्ध यहूदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डाक्टरों को सौंपा गया था। स्तालिन ने जनवरी १९५३ में चिकित्सकों को यह कह कर गिरफ्तार करा लिया कि इन्होंने सदस्यों की हत्या करने की योजना बनाई। दो डाक्टरों को तो इस बुरी तरह पीटा गया कि वे मर गए। दरअसल दोष बेबुनियाद था किंतु स्तालिन यहूदियों में आतंक की सृष्टि कर के उन्हें सुदूर साइबेरिया में बसाना चाहता था ताकि वे किसी से संपर्क न रख सकें। वोरोशिलोव ने एक बैठक में इस का विरोध खुले रूप से किया। मोलोतोव और कागनोविच भी उस के मन के थे, पर उनमें विरोध करने का साहस नहीं था। वोरोशिलोव ने प्रेसीडियम की एक बैठक में अपनी जेब से सदस्यता का कार्ड निकाल कर मेज पर फेंकते हुए कहा, "यदि बेकसूरों के प्रति इस ढंग की कार्यवाही की गई तो कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बने रहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी।" स्तालिन क्रोध से तमतमा उठा। उसने वोरोशिलोव को डपटा, "तुम कौन हो सदस्य बनने या छोड़ने वाले! यह तो मैं हूं जो निर्णय करूं कि तुम्हें सदस्य बनाए रखा जाए या निकाल दिया जाए।"

इस पर कुछ फुसफुसाहट हुई। लेकिन जब उपस्थित सदस्यों की नजर स्तालिन पर पड़ी तो उन्होंने देखा कि वह कुर्सी से लुढ़क चुका है और फर्श पर औंधा पड़ा है। बेरिया, जिसे बाद में ख्रुश्चेव ने मरवा दिया था, खुशी से नाच उठा। कहने लगा, "आखिर हम आजाद हुए।"

इसी बीच स्तालिन की लड़की स्वेतलाना खबर पा कर घटनास्थल पर आ गई। उस ने पिता के सिर को उठा कर गोद में रख लिया। स्तालिन के शरीर में अब भी गरमी थी, पर वह कुछ बोल न पाया। यह बेहोशी उस की मौत तक बनी रही।

यह सही है कि स्तालिन ने तानाशाही की और अपने को पुजवाया, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उसने रूस को सशक्त बनाया और संसार के अग्रणी राष्ट्रों में प्रतिष्ठित किया।

१९२८ के बाद रूस ने पंचवर्षीय योजनाएं शुरू कीं। आशानुकूल इनमें सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी, एक पिछड़े हुए विशाल देश के विकास के लिए इस के सिवा अधिक सुविधाजनक रास्ता और हो भी क्या सकता था? आज खाद्यान्न और खनिज पदार्थों में रूस स्वावलम्बी है। फौजी सामान और आणविक शक्ति में उसके प्रतिद्वन्द्वी इंगलैंड, फ्रांस और जरमनी नहीं हैं। उस का प्रतिद्वंद्वी है अमरीका, जबकि अमरीका का वार्षिक बजट रूस से कहीं बढ़ाचढ़ा है।

शिक्षा में रूस ने आशातीत प्रगति की है। तीन दशकों में ३० प्रति शत से बढ़ा कर ९९ प्रति शत लोगों को शिक्षित बना देना मामूली बात नहीं।

विश्व की सब से बड़ी जनसंख्या वाले किंतु गिरे हुए राष्ट्र चीन को भी रूस ने उठाया और शक्तिशाली बनाया। अपने अनुभवी फौजी अफसर और इंजीनियरों को वहां भेज कर रूस ने चीनियों को तैयार किया। आज वही चीन रूस विरोधी बन गया है। रूसी भी सावधान हो चुके हैं। युगोस्लाविया के प्रसिडेंट टीटो के विरोध को सोवियतवासियों ने सह लिया है पर चीन के प्रति ऐसी संभावना नहीं रहेगी। रूस और चीन के बिगड़ते संबंध इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। रूस वालों की धारणा है कि चीनियों के समान एहसानफरामोश और धोखेबाज विश्व में शायद ही कहीं हों। मैंने हंसकर कहा, "हम तो इसके भुक्तभोगी हैं, हमसे ज्यादा इस तथ्य को कौन जानता है!" फिर पूछा, "दोनों ही मार्क्स के सिद्धांत को मानते हैं, दोनों ही साम्यवादी हैं, फिर यह असाम्य क्यों?"

वह कहने लगे, "सब से बड़ा वाद स्वार्थवाद है, इसे न भूलना चाहिए। मनुष्य के जन्मकाल से यह उसके साथ जुड़ा हुआ है और सुविधानुसार समयसमय पर इसके नामकरण होते रहते हैं।" हम सभी हंस पड़े। वह कहने लगे, "साम्यवादी देश जनता को भुलाने के लिए मार्क्सवाद का नाम अपनेअपने ढंग और तरीके से लेते रहते हैं।" अन्यथा हैं ये सभी एक दूसरे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
से दूर । मार्क्स ने १८६७ में जब कैपिटल लिखा था तो उस समय स्थिति दूसरी थी। उद्योगधंधों की शुरुआत थी. मजदूरों का शोषण खूब होता था । प्रतिदिन बारह से सोलह घंटे तक उन्हें काम करना पड़ता था और समाज में बहुत बड़ी विषमता थी।पर समय के साथसाथ मान्यताएं बदलती गईं । श्रमिकों की सुखसुविधा का ध्यान, स्वार्थ पूर्ति की दृष्टि से ही सही, सभी जगह आवश्यक समझा गया चाहे वह पूंजीवादी व्यवस्था हो या साम्यवादी । इस समय यदि मार्क्स जिंदा होता तो शायद उसे कैपिटल लिखने की कोई जरूरत नहीं होती क्योंकि इन सौ वर्षों में उस के विचारों के विरोधी देशों में मजदूरों या किसानों की दशा कम उन्नत नहीं हुई है । यदि स्वीडन, अमरीका, पश्चिमी जरमनी और स्विट्जरलैंड को एक पलड़े पर रखा जाए और दूसरे पर रूस, पोलैंड, चीन, पूर्वी जरमनी को तो इस कथन की सच्चाई का अंदाज मिल जाएगा ।

५६-५७ में हंगरी में जिस नृशंसता से लाखों व्यक्तियों की हत्या की गई थी , उस के सिलसिले में उन्होंने बताया कि साम्यवादी सिर्फ मानते हैं कि सिद्धांत के आगे व्यक्ति का जीवन कोई भी मूल्य नहीं रखता । यदि हंगरी का विद्रोह सफल हो जाता तो फिर सोवियत गुट के अन्य देश भी सिर उठाते और तब रूस की सत्ता की साख घट जाती । इसीलिए मानअपमान या आलोचना की परवाह किए बिना कठोरता से दमन किया गया । राजनीति का उन का यह प्रयोग अब तक सफल रहा है । लोग उंगलियां भले ही उठा लें पर सिर नहीं उठा सकते ।

हमें जितनी जानकारी यहां दो दिनों में मिली, मास्को में पांच दिन तक रह कर भी नां पा सके थे । हम चाहते थे उन से और प्रश्न पूछें, पर ऐसा संभव न हुआ । समय उन के पास था नहीं और हमें भी अपने अगले कार्यक्रम के लिए तैयार होना था । शाम के प्लेन से हमें फिनलैंड की राजधानी हेलसिंकी जाना था । इसलिए दिनभर में जितना कुछ संभव था, देख लेना चाहते थे ।

यों तो लेनिनग्राद में ४८ म्यूजियम हैं पर हम इन से बड़ेबड़े म्यूजियम अब तक देख चुके थे. इसलिए हम उन में नहीं गए । फिर भी हम ने प्राकृतिक इतिहास के संग्रहालय को देखा । इस की तारीफ मास्को में हम ने सुनी थी । प्रागैतिहासिक काल से आज तक की वस्तुओं का संग्रह बड़े करीने से यहां है । हम ने यहां दस हजार वर्ष पहले का एक हाथी देखा जिसे एक शिकारी ने साइबेरिया में बर्फ के नीचे ढका पाया था । वहां से इसे टुकड़ेटुकड़े कर के लाया गया और बाद में जोड़ कर वहां रख दिया गया । हजारों वर्ष पहले किस प्रकार मनुष्य और पशु साथसाथ रहते थे, किस प्रकार मानव समाज ने विकास किया, इन्हें क्रमबद्ध रूप से माडलों द्वारा यहां दिखाया गया है ।

नौसेना का म्यूजियम भी हम ने देखा । इसे 'एडमिरल्टी' कहते हैं । यह भवन आधा मील लंबा है । इसे रूसी सम्राटों ने बनवाया था । यद्यपि रूसी नौसेना की शक्ति कभी भी उल्लेखनीय नहीं रही पर जारों को बड़े और विशाल भवन बनाने का शौक था इसलिए यह भवन बना । आज भी रूसी नौशक्ति प्रथम पंक्ति में नहीं है । म्यूजियम में हम ने पुरानेपुराने हथियार, जहाजों के माडल और विभिन्न युगों में बने नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्र देखे ।

हमें बताया गया था कि यदि रूसी कला का निखार देखना हो तों लेनिनग्राद के किसी थियेटर, विशेषतया किरोव को तो जरूर देखा जाए । हमें शाम को ही लेनिनग्राद छोड़ना था इसलिए इच्छा मन में ही रह गई ।

लेनिनग्राद मे कई तरह के बड़ेबड़े कारखाने हैं । इन में कई तो रूस में सब से बड़े माने जाते हैं । इन में से एक में हम गए । जो बिजली के पंखे बनाने का कारखाना था । अनुशासन और प्रबंध का परिचय तो हमें मास्को में ही मिल चुका था । इस में करीब दस हजार मजदूर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं और इंजीनियर हैं लगभग ढाई हजार। जब हम ने प्रश्न किया कि आखिर ढाई हजार इंजीनियर यहां क्या करते हैं तो उत्तर मिला, "सुदक्ष स्नातक (ग्रेजूएट) भी यहां साधारण मजदूरी करते है ताकि सभी तरह के काम की व्यावहारिक जानकारी प्राप्त कर सकें।"

लेनिनग्राद से चलते समय इस की यादगार के तौर पर हम कुछ ले जाना चाहते थे। मैं ने एक रोंएदार मफलर खरीदा। दाम बहुत ज्यादा था। हमारे पास रूसी रूबल बच गए थे इसलिए खरीद लिया। थोड़े से भारतीय रुपए देने लगा तो दुकानदार ने लेना अस्वीकार कर दिया। हां, अमरीकी डालर लेने को वह तैयार था। हम ने मिस्टर जोन की मारफत कहा "भारत तो आप का मित्र देश है, फिर भी हमारे सिक्के से ज्यादा आप अमरीकी सिक्के को मान्यता देते हैं, यह बात समझ में नहीं आती।"

बड़ा रोचक उत्तर मिला, "दोस्ती और सिक्के की कीमत अलगअलग है।"

ध्यान आया कि दस वर्ष पहले जब यूरोप आया था, उस समय हमारे सिक्के की साख थी—दूसरे सिक्कों के मुकाबले हाथोंहाथ चलता था। स्पष्ट था कि हम ने असंतुलित ढंग से अपनी योजनाएं बनाई हैं।

फर (रोएं) के बारे में हमें बताया गया कि साइबेरिया में छोटे चूहे जैसा एक जानवर पाया जाता है, उसी की खाल से यह बनता है। फर से मफलर के अलावा कोट भी तैयार होता है जिसे 'सैबर' या 'मिंक कोट' कहते हैं। उम्दा किस्म के एक कोट की कीमत पांच लाख रुपए तक होती है। हमारे पास न तो ऐसे कोट खरीदने के लिए रुपए ही थे और न इच्छा ही। पहले इस बात का पता रहता तो दुकानदार से पूछ कर कम से कम इन कोटों को देखते जरूर और अगर वह मंजूरी दे देता तो हाथ से छूते भी।

हमारे बहुतेरा मना करने पर भी मिस्टर जोन एयरपोर्ट पर हमें छोड़ने के लिए आए और विदा कर ही वापस गए। उन के स्नेहपूर्ण व्यवहार से हमें लगा कि पूर्वजन्म संबंधी हमारी धारणाओं में शायद कुछ तथ्य है, अन्यथा महज एक बार की मामूली सी जानपहचान में इतना स्नेह और अपनापन कैसे संभव हो सका। उन का कार्ड आज भी सुरक्षित है और उन से फिर से मिलने की भी बात थी पर दोनों ही पक्ष जानते थे कि शायद यह संभव नहीं होगा। विदाई के समय हम लोगों की आंखें गीली थीं। वायुयान में बैठा सोचने लगा, 'जीवन में न जाने कितने क्षण ऐसे आते हैं जिन की पुनरावृत्ति होती नहीं पर उन की अमिट छाप हृदय और मस्तिष्क पर रह जाती है।

सन १९५० में अपनी ग्रीस यात्रा में मिस्टर निगानी की पुत्रशोकाकुल पत्नी के साथ बिताए आधे घंटे की याद अनायास ताजा हो उठी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रेगिस्तान की अमृत धारा

पिरामिडों के देश में

पश्चिमी यूरोप के बाद यूनान भी देख चुका था। अब देखना था मिस्र—पिरामिडों का देश। ठीक भी यही लगा, क्योंकि इतिहास के अरुणोदय काल में ही यूनान की भांति नील की घाटी में भी मानव सभ्यता की एक धारा प्रवाहित हुई थी, जिसे मिस्र सभ्यता कहते हैं। यूनान, बेबीलोन और सिंधु घाटी की प्राचीनतम सभ्यताओं की भांति ही इस की महिमा और गरिमा भी विकसित होती चली गई थी और अब इस के अवशेष बताते हैं कि भौतिक उन्नति में भी यह अपनी समकालीन सभ्यताओं से किसी कदर कम न थी।

मिस्र जाना पहले से तय था। एथेंस में सभी काम निपटा कर हवाई अड्डे पर पहुंचा। मई का महीना था, मौसम साफ था।

दो घंटे में यूनान से मिस्र, खयाल आया, आज से ५,००० वर्ष पूर्व कितना समय लगता होगा ? अपने विजयोन्माद में चूर, आंधी की तेजी से बढ़ता हुआ सिकंदर भी कितने दिनों में मिस्र तक पहुंच पाया होगा ?

ध्यान भंग हुआ। विमान की परिचारिका कह रही थी, "काहिरा आ रहा है और अब हम नीचे उतरेंगे।"

विमान ने मिस्र की धरती का स्पर्श किया। उस समय रात के साढ़े बारह बज रहे थे। चुंगी अफसरों के घेरे से बाहर निकला। हमें 'टी० डब्लू० ए०' (ट्राम वर्ल्ड एयरवेज) की बस ने नगर में अपने पूर्व निश्चित स्थान 'विक्टोरिया होटल' पहुंचा दिया।

होटल यूरोपीय ढंग का था—साफ और आरामदेह—लेकिन दिल्ली के 'अंशोक' और 'इंपीरियल' के मुकाबले का नहीं। बिस्तर पर पीठ सीधी करते ही नींद आ गई।

सुबह उठा। दिन चढ़ आया था। आठ बजे थे। गरमी ने बता दिया कि यह अफ्रीका है और सहारा का रेगिस्तान यहां से दूर नहीं। नित्य कर्म से निपट कर होटल से निकला।

रास्ते और बाजार बहुत कुछ पुरानी दिल्ली और कलकत्ता की 'जकरिया स्ट्रीट' की तरह थे। रोमन और अरबी लिपि में लिखे साइनबोर्ड और अधिकांश लोग ताम्रवर्ण के तथा लंबेचौड़े थे। उन्हें देख कर लगा कि मिस्र सदियों से अरब और अफ्रीका का संगमस्थल रहा होगा। उन का पहनावा भी अरबों का सा था। लंबे चोगे अमामे, ढीले पायजामे और ऊंची लाल टोपी। किसीकिसी की टोपी के चारों ओर फेंटा भी बंधा हुआ था। बातचीत के तौरतरीके भी बहुत कुछ अपने यहां की तरह थे। बुरकों में औरतें, मसजिद, मुल्लेमौलवी और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शेख—वातावरण अपरिचित नहीं लगता था, शायद इसी लिए कि करीब नौ सौ वर्षों तक भारत पर भी इस्लाम का प्रभुत्व रहा है।

चीजों की सजावट में भी बहुत अपनापन सा था। एक जगह देखा, तरबूज के भुने हुए बीज और नमकीन चने रखे हुए थे। एक जगह बड़े तरबूज की रसदार फांकें भी सजी थीं। पेट भर चने और बीज़ खाए, फिर ऊपर से तरबूज। तृप्ति महसूस हुई। याद आया राजस्थान में बाजरे के सिट्टे खा कर मतीरे का पानी पीना।

शहर के मकान विशेष आकर्षक नहीं लगे। वास्तुकला की दृष्टि से ये हमारे यहां से अच्छे नहीं हैं। नए मकान यूरोपीय ढंग के थे। मुहम्मद अली की मसजिद बड़ी तो जरूर है पर दिल्ली की जामा मसजिद और अजमेर की दरगाह शरीफ की विशालता और शान कुछ और ही है।

गरमी सता रही थी। नहाना चाहता था। सोचा कि नील ही में क्यों न नहाऊं ? और चल पड़ा। नील थोड़ी ही दूरी पर थी। तौलिए में कपड़े लपेट कर किनारे रखे और जांघिया पहने नदी में उतरा। अब तक देश के बाहर इस प्रकार खुल कर नहाने का अवसर नहीं मिला था। आनंद आ गया। लगा गंगा में स्नान कर रहा हूं। तैरने के लिए हाथ चलाए ही थे कि पास ही से आवाज आई "अच्छी तरह तैरना तो जानते ही होंगे ?"

देखा—पास ही एक बुजुर्ग स्नान कर रहे थे। गेहुंआ रंग, स्वस्थ शरीर, हलकी दाढ़ी और ऊपर की ओंठ पर बारीक मूछें। मैं ने मुसकरा कर कहा, "जी हां, तैर लेता हूं।"

"कैसा लगा हमारा देश ?" सवाल अंगरेजी में पूछा गया।

"अभी कुछ देख नहीं पाया कल रात ही आया हूं," मैं ने कहा।

'हमारा देश' सुन कर कुछ ताज्जुब हुआ था, इसलिए मैं पूछ ही तो बैठा, "माफ कीजिए, क्या आप यहीं के हैं ?"

उन्होंने हंस कर उत्तर दिया, "जी हां, क्या मेरी अंगरेजी की वजह से आप मुझे कहीं और का समझ रहे हैं ? फ्रेंच, इतालियन और जरमन बोलने वाले भी आप को यहां मिल जाएंगे।"

मैं ने कहा, "मेरा ख्याल था कि मिस्रवासी ताम्रवर्ण के होते हैं, मगर आप...... आप......"

वह कहने लगे, "आप का अनुमान सही है, पर पूरी तरह से नहीं। हमारे देश कर उत्तरी भाग अरब और यूरोप के समीप है, इसलिए दक्षिण की अपेक्षा यहां वालों का रंग आपको साफ मिलेगा। इस के अलावा कुछ अरब, तुर्क, यहूदी, यूनानी और इतालियन भूमध्यसागरीय तट पर सैकड़ों वर्षों से बसे हुए हैं। उन की मिश्रित संतानें अपनी सुंदरता के लिए संसार में बेजोड़ हैं।"

बातचीत में मजा आ रहा था। मैं ने कहा, "बचपन में पढ़ा था कि मिस्र नील की देन है। इसी लिए नील के प्रति आप लोगों के हृदय में बड़ी श्रद्धा है। आज मैं ने अपनी स्नान की हुई पवित्र नदियों की संख्या में एक और बढ़ा ली है।"

मिस्री बुजुर्ग ने कहा "जनाब, हमारे लिए तो यह आबेहयात है। हमारा संपूर्ण देश रेगिस्तान है। पश्चिम में लीबिया से गरम रेत की आंधियां आती हैं और पूर्व में अरब का रेगिस्तान है। बस, बीच में यह अमृत की धारा मौजूद है। इथोपिया के पठारों के उपजाऊ मिट्टी ला कर यह अपने किनारों पर जमा करती जा रही है। इसी में खेती कर के हम कुछ अन्न उपजा लेते हैं। हम यहां विश्व की सर्वोत्तम रुई पैदा कर, उसे अन्य देशों को निर्यात कर के अपनी आर्थिक दशा संभाले हुए हैं। वरना न तो हमारे पास अच्छे उद्योग धंधे हैं और न खनिज पदार्थ ही। हमारे यहां ८० प्रति शत लोग नील के किनारे खेती कर के जीवनयापन करते हैं। शेष २० प्रति शत शहरों में रहते हैं। शहर भी इसी पट्टी के दोनों किनारों पर हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिस्र में नील भी खुदा की तरह एक ही है," कह कर वे हंसने लगे।

देर तक नहाने के बाद हम बाहर निकले। उन्होंने कपड़े पहनते हुए कहा, "चलिए काफी पीएं, सामने कहवाघर है।"

मिस्र में चाय की जगह काफी पीने का प्रचलन है।

कहवाघर हमारे यहां के मद्रासी रेस्तरां की तरह था। कमरे की दीवार पर प्रेसीडेंट नासर और मक्का शरीफ के चित्र, कुरान शरीफ की सचित्र आयतें और कुछ कलेंडर टंगे थे। हम एक छोटी टेबल के किनारे बैठ गए।

मैं ने पूछा, "हलकी मंगाऊं या कड़ी ?" उन्होंने सहज मुसकान के साथ कहा, "अपनी ओर से मंगाने की बात भारत में आप मुझ से कर सकते हैं, यहां तो मैं ही आप से पूछूंगा।"

काफी बुरी नहीं थी। उन्होंने बड़े ही उत्साह से अपने देश के बारे में जानकारी दी। मुझे ऐसा लगा कि वास्तव में मिस्र को दक्षिण से उत्तर तक देखने के लिए कम से कम दस दिन का समय चाहिए। इसी प्रसंग में मैं ने कहा, "अगर आप बुरा न माने तो एक बात पूछूं ?"

"शौक से पूछिए।"

मैं ने कहा, "पेरिस में शाह फारूख के बारे में कुछ ऐसी चर्चा सुनी कि दुनिया के हर कोने की सुंदरियों का एक बड़ा मजमा इन के हरम में था, जिस पर करोड़ों रुपए सालाना खर्च किए जाते थे। इन की ऐयाशी और इन के अजीबोगरीब शौकों पर इसी तरह मिस्र की बेशुमार दौलत बरबाद होती थी। इसे आपके देश ने कैसे बरदाश्त किया ?"

बुजुर्ग महोदय ने संजीदगी से कहा, "जनाब, शेख और बादशाह कुवैत, हिंदुस्तान या मिस्र, कहीं के भी हों, जब तक उन के पास निरकुश सत्ता रहेगी, नतीजा साफ ही है।"

इस संक्षिप्त उत्तर से मुझे अपने सवाल का जवाब मिल गया और याद आ गया अपने देश के नवाब और राजाओं के लज्जास्पद, विवेकहीन कारनामे। विदा होते समय बुजुर्ग महोदय ने मेरे हाथ अपने हाथों में ले कर सीने से लगाए।

पीछे मुड़ कर देखा—छोटीछोटी डोंगियां और नावें पाल ताने नील की लहरों में तिर रही थीं। लहरें धूप में चमक रही थीं। याद आ गई भारतेंदु की पंक्ति—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।

काहिरा से सात मील दक्षिण में गिजे नामक स्थान है, विश्वविख्यात पिरामिड हैं। बस में बैठ कर उधर ही चल पडा। शहर से निकलते ही, गरम रेत और सूखी हवा के थपेड़े लगने लगे। मैं ने सोचा, 'बीच सहारा में तपती रेत की आंधियों में कैसी गुजरती होगी ?'

गिजे से पिरामिड डेढ़ मील पर हैं। बस से उतरते ही, गधे और ऊंट वालों ने घेर लिया। गरमी के कारण यात्री बहुत कम थे। इसलिए सभी अपनी ओर खींचातानी कर रहे थे। अंगरेजी, फ्रेंच और इतालियन के टूटेफूटे शब्दों में वे अपनीअपनी सवारी की प्रशंसा कर रहे थे। उन वाक्यों के बीच हिंदी का 'बहुत अश्चा' शब्द सुन कर मुझे सचमुच बहुत अच्छा लगा। मैं उन के मोलभाव से चौकन्ना था, क्योंकि इस विषय में पहले पढ़ चुका था।

सोच रहा था कि गधे पर बैठूं या ऊंट पर ? गधे की सवारी में किफायत, ऊंट की सवारी में ज्यादा खर्च। गधों को देखो—कान लटकाए खड़े थे। गधे की सवारी को अपने यहां अच्छी नहीं मानते, लिहाजा सोचा कि रेगिस्तान का जहाज ही उपयुक्त रहेगा। बड़ी हुज्जत के बाद 'अब्दुल' से ऊंट का किराया तय हुआ तीन रुपए। यहां एक बात देखी—जैसे हमारे यहां आमतौर पर हर नेपाली 'बहादुर' है, उसी तरह हर मिस्री 'अब्दुल' है।

रास्ते में अब्दुल ऊंट की नकेल थामे चला जा रहा था। ऊंट की चाल सुस्त पर अब्दुल की जवान चुस्त थी। टूटीफूटी अंगरेजी में अपनी, अपने खानदान की और अपने ऊंट की तारीफ। कान खड़े हो गए जब मुझे यह बतलाया गया कि मैं उस कमाल पर बैठा हुआ हूं जिस पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुप्रसिद्ध जरमन जनरल रोमल बैठ चुका था। इतना ही नहीं, रोमल को हटा कर जब जनरल मांटगोमरी काहिरा आया तो उस ने तमाम ऊंटों में से इसी को पसंद किया था।

"अंगरेज बुरे हो या भले, होते हैं, कद्रदां! वैसे आप के यहां के कश्मीर के महाराजा ने भी इस की चाल से खुश हो कर १००) रुपए तो बतौर बख्शीश ही दे दिए थे," अब्दुल ने लखनऊ के इक्के वालों के से अंदाज में कहा।

एक तो सिर पर कड़कड़ाती धूप, दूसरे कमाल की चाल। परेशानी हो रही थी। तिस पर जनाब अब्दुल ने फरमाया, "यह शुक्र समझिए कि आप को उन ठगों से बचाने के लिए मैं ने यों ही तीन रुपए कह दिए, वरना दस से कम में तो मेरा कमाल अपनी नकेल ही नहीं थामने देता।"

उस की बकवास पर खीझ तो बहुत ही आ रही थी, लेकिन बियाबान सहारा में उस दैत्याकार डीलडौल को देख कर चुप कराने के बजाए खुद ही चुपी साधे रहने में भलाई समझी।

हाल इंतहा बेहाल हो रहा था, पर पिरामिड के पास पहुंचने पर शांति मिली। ऐसी समाधियां संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हैं। इन का निर्माण प्रायः छः हजार वर्ष पूर्व हुआ था। कितने विशाल हैं ये पिरामिड, इस का अनुमान इस तरह लगाया जा सकता है कि खूफू के पिरामिड में, जो सब से बड़ा पिरामिड है, लगभग ३० लाख टन बड़ीबड़ी शिलाएं लगी हैं। इन का कुल वजन १७ करोड़ मन आंका गया है।

मिस्र के महाराजे इन पिरामिडों को इसलिए बनवाते थे कि मृत्यु के बाद वे इन में समाधिस्थ कर दिए जाएं। शव के साथ उन की प्रिय वस्तुएं—अलंकार, स्वर्णपात्र, राजचिह्न वस्त्रादि—इन में रखे जाते थे। इन में जो ठोस स्वर्ण के बने वजनी किस्म के अलंकार पात्र अथवा राजचिह्न हैं, उन को अब मिस्र के राज्य संग्रहालय में रख दिया गया है।

इन की दीवारों पर राजाओं के जीवन की प्रमुख घटनाओं और कीर्ति के चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे और उन का वर्णन भी रहता था। पत्थरों पर खोदे हुए चित्रों के साथ कहींकहीं रंग का भी प्रयोग किया गया है। राजाओं का शव रासायनिक लेप लगा कर एक विशेष प्रकार के ताबूत में बंद कर दिया जाता था। इस शवाधार को 'ममी' कहते हैं। इस ताबूत को पत्थर के एक बड़े बक्स में रख दिया जाता था। इस पर राजा की प्रतिमूर्ति, उस का राज्यकाल आदि अंकित कर दिया जाता था। ममी में रखे हुए शव सड़तेगलते न थे। लेप का रासायनिक नुस्खा क्या था, इस का पता आज तक नहीं चल पाया है।

पिरामिड का निर्माण अत्यंत कष्टकर तथा व्ययसाध्य था। हजारों गुलाम बड़ेबड़े पत्थर सैकड़ों मील की दूरी से लंबी रस्सियों से खींच कर लाते थे—दहकती बालू की आंधी में जहां पानी का नाम नहीं। कितनी जानें गई होंगी, यह कल्पनातीत है।

इन के पास ही स्फिंक्स की विशाल मूर्ति है, जिस की ऊंचाई १८९ फीट है। इस का सारा शरीर सिंह का परंतु सिर मनुष्य जैसा है। इस ढंग की मूर्ति के बनवाने में राजा की शक्ति और पराक्रम के प्रदर्शन की भावना रहती थी। अपनी कीर्ति और यश को अमिट रखने की आकांक्षा मनुष्य में कितनी अधिक रहती है—पिरामिड, कुतुबमीनार और ताजमहल इसी के तो प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रयत्न हैं।

पिरामिड से वापस बस स्टैंड पर आया। दो बज रहे थे। अब्दुल को तीन रुपए देने लगा तो वह झगड़ा करने पर उतारू हो गया। हाथ हिलाते हुए चिल्ला कर कहने लगा, "दस की बात हुई, देते हैं तीन रुपए!"

शोर सुन कर दूसरे ऊंट वाले भी वहां आ गए। आश्चर्य तो यह था कि जाते समय जहां सभी आपस में उलझ रहे थे, अब सब उसी की तरफदारी करने लगे। खैर, किसी प्रकार दूसरे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोगों के बीचबचाव से पांच रुपए में छुट्टी मिली। मैं सोचने लगा कि पूर्वी देशों में हम लोग अपने इस व्यवहार के कारण पर्यटन व्यवस्था को कितनी हानि पहुंचाते हैं और साथ ही विदेशियों की नजरों में अपने राष्ट्र को कितना नीचे गिराते हैं।

ग्जि से बस पर बैठ कर शहर लौट रहा था। मन में विचार उठे, 'नील में मिले बुजुर्ग व्यक्ति और ऊंट वाला अब्दुल, दोनों ही तो मिस्र के हैं! शिक्षा और संस्कार मनुष्य को कितना प्रभावित करते हैं! जिस देश में इन बातों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा, वहां निश्चय ही अब्दुल कम मिलेंगे।" खिड़की से बाहर देख रहा था। पिरामिड ओझल हो चुके थे। कितना श्रम, धन और समय लगाया गया था इन पर! सदियां गुजर चुकी हैं, जमाना कहां से कहां आ गया है।

शहर आ कर नाश्ता किया। संग्रहालय देखने गया। दरवाजों पर गाइडों ने घेर लिया। मैं ने किसी को साथ नहीं लिया। समय कम रहने के कारण सरसरी तौर पर यह देखना चाहता था। मिस्र का यह संग्रहालय बहुत बड़ा नहीं है। संग्रह में भी उतनी विविधता नहीं जितनी की कलकत्ता म्यूजियम में है। मेरी दिलचस्पी मिस्र की शिल्पकला, पुरातत्व और इतिहास में थी, इसलिए उन्हीं को देखने लगा। मिस्र के प्रागैतिहासिक और प्राचीन काल की बहुत सी वस्तुएं देखीं। लेकिन मैं ने अनुभव किया कि उन की बारीकियां समझना मेरे लिए कठिन था। अच्छा होता कि 'इजिप्टालोजी' (मिस्र के पुरातत्व की विद्या) का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेता या गाइड को साथ ले लेता।

यहीं ममी में रखा हुआ तुतेनखामन का शव देखा। उस की बहुमूल्य वस्तुएं भी यहीं सुरक्षित हैं। यह सम्राट आज से ३,३०० वर्ष पूर्व हुआ था। धन के लोभ से पिरामिडों की लूटखसोट सैकड़ों वर्ष तक चलती रही। लेकिन रेत के नीचे दब जाने के कारण तुतेनखामन का पिरामिड सुरक्षित रह गया। पंपियाई की कुछ वस्तुएं भी इटली में इतनी ही अच्छी हालत में देखने को मिलीं लेकिन वे इन से १४ शताब्दी के बाद की थीं।

अन्य वस्तुओं में प्राचीन अस्त्रशस्त्र, चित्र, अलंकार, लकड़ी के बक्स इत्यादि की बनावट प्राचीन मिस्रवासियों की परिमार्जित रुचि का परिचय दे रही थीं। ३,३०० वर्ष पहले के सोनेचांदी के कुछ बरतन भी दिखे जो खिले हुए कमल के आकार के थे। इन वस्तुओं को देख कर पता चलता है कि भारत की तरह यहां भी शायद सूर्य, अग्नि, सर्प और गरुड़ की पूजा देवीदेवताओं के रूप में होती थी। राम शेष नामक सम्राट भी यहां हुए थे। ऐसा लगता है कि सुदूर अतीत में हमारे देश से मिस्र का घनिष्ठ संबंध रहा होगा।

संग्रहालय में अस्वान के बांध का एक माडल भी देखा। याद आया कि सुबह एक मिस्री बुजुर्ग ने कहा था कि पर्यटक पिरामिड देखने तो आते हैं पर अस्वान का बांध कोई नहीं देखता। वास्तव ने इसी बांध ने मिस्र की काया पलट की है। सचमुच ही यह बांध आधुनिक मिस्र का एक आश्चर्य है। इसका निर्माण १८९८ में आरंभ किया गया और १९०२ में जाकर यह पूरा हुआ था। अब यहां एक अन्य विशाल बांध बन रहा है।

यहीं विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर से भेंट हो गई। उन्होंने कहा, "लगता है, आपकी रुचि का विषय है।"

मैंने कहा, "जी हां, आजादी के बाद अब हमारी राष्ट्रीय सरकार ने भी इस ढंग के कई बांध बनाए। लेकिन साथ ही यह भी देख रहा हूं कि नील के पानी को रोक कर इस बांध ने २०० मील की एक कृत्रिम झील तो बना दी है, पर इसमें फिले द्वीप अबू सिंबल, सिबुआ के मंदिर इत्यादि पुरातत्व के महत्वपूर्ण स्मारक जलमग्न हो गए हैं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रोफसर ने कहा, "जनाब, अतीत के स्मारकों की रक्षा का मोह हमें भी किसी से कम नहीं, लेकिन वर्तमान की आवश्यकताओं यानी अन्नवस्त्र आदि की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अस्वान पर हमें नाज है। यह हमारा पुण्य तीर्थ है, जो सैकड़ों पिरामिडों, दरगाहों और मसजिदों से कहीं पाक है।"

सीढ़ियों से उतरता हुआ सोच रहा था, "अस्वान का बांध या पिरामिड, मिस्र की जनता किसे हृदय से दुआ देती है? सचमुच, किस पर नाज है उसे?"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

झीलों और द्वीपों का देश

फिन्‌लैंड

रूस में दस दिन रहने के बाद लेनिनग्राद से हम हेलसिंकी के लिए रवाना हुए। जेट विमान से ४० मिनट की उड़ान है। फासला बहुत कम, फिर भी दूसरा देश तो है ही। राजनीति, भाषा, अर्थव्यवस्था और रहनसहन के तौरतरीके भी भिन्न हैं। हमारे दूसरे साथी मास्को में रह गए, इसलिए इस यात्रा में मेरे साथ केवल प्रभुदयालजी थे।

साधारणतया किसी भी देश के पर्यटन के पहले उसके भूगोल, इतिहास, राजनीति समाज व्यवस्था एवं आचार इत्यादि की जानकारी हम पुस्तकें पढ़ कर कर लेते थे। लाभ यह हुआ कि हम नए देश में अनाड़ी से न लगे और भ्रमण का आनन्द भी मिला। प्रायः हर देश में टूरिस्ट आफिसों में दर्शनीय स्थानों के संबंध में विवरण और नक्शे मिल जाते हैं। इसके अलावा एक छोटी पुस्तिका भी मिल जाया करती है, इसमें उस देश के रोजमर्रा के जरूरी शब्दों का अनुवाद अंगरेज़ी में रहता है।

फिनलैंड यूरोप के उत्तरी छोर पर एक छोटा सा देश है। पूरे देश की जनसंख्या है केवल चौवालिस लाख, अर्थात हमारे कलकत्ते से भी कम और क्षेत्रफल सवा लाख वर्ग मील है। यानी बहुत कुछ हमारे राजस्थान के क्षेत्रफल के बराबर। इतने छोटे देश में अस्सी हजार टापू और साठ हजार झीलें हैं। इसलिए इसे 'द्वीपों और झीलों' का देश भी कहते हैं। यहां के अधिकांश भूभाग पर लकड़ी के जंगल हैं जो वर्ष में आठ महीनें बर्फ से ढके रहते हैं।

फिनलैंड छोटा राष्ट्र है लेकिन इसमें राष्ट्रीय चेतना सदैव जागृति रही। उत्तरी सीमा पर नारवे है, पश्चिम में है संपन्न राष्ट्र स्वीडन और पूर्व में है साम्यवादी और शक्तिशाली सोवियत रूस। ११० वर्ष तक रूस के शासन में रहा, लेकिन स्वाधीनता के लिए सदैव यहां के निवासी प्रयत्नशील रहे। रूस में जार के अत्याचार के कारण असंतोष बढ़ता गया। बोलशेविक शक्ति बढ़ी, राजतंत्र की नींव हिल उठी। सन् १९१७ में जार के परिवार की हत्या कर दी गई। शासन ढीला था ही, फिनलैंड इसी मौके पर स्वतंत्र हो गया।

स्वतंत्र फिनलैंड अपने पिछले कष्टमय जीवन को भूला नहीं। रूस और पड़ोसी स्वीडन ने उस पर जो जोरजुल्म किए थे, उससे वह सर्तक रहकर अपने को संगठित और शक्तिशाली बनाने में अग्रसर हो गया।

इतिहास साक्षी है कि धर्म प्रचार के नाम पर जिस ढंग के अत्याचार और दुर्नीतियों को विदेशों में अपनाया गया वैसा भारत ने किसी भी राष्ट के साथ नहीं किया। हमने जिहाद के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाम पर अपनी फौजें नहीं भेजीं बल्कि शांति के दूत श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलाया, तिब्बत, मंगोलिया और चीन में भेजे। धर्म प्रचार के नाम पर यूरोप और अरब देशों में हत्या, लूट और बलात्कार करना गौरव समझा जाता रहा है। क्योंकि इस कृत्य में धन तथा दासदासियों की लूट के साथसाथ गाजी बनने का या स्वर्गद्वार खुलने का सौभाग्य भी मिलता था। मुहम्मद गजनी बख्तियार खिलजी और औरंगजेब की धर्मांधता हमने सुनी थी पर सभ्यता का दम भरने वाले यूरोप के धर्मगुरु पोप के आदेशानुसार ईसाइयों ने (क्रूसेड) धर्मयुद्ध के नाम पर जो भयंकर अत्याचार और रक्तपात किये हैं। उसकी कल्पना कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

फिनिश ईसाई नहीं थे। इसलिए बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में स्वीडन ने पवित्र धर्म-प्रचार के नाम पर इन निरीह लोगों पर तीन बार हमला किया। हजारों बच्चे, बूढ़ों और स्त्रियों को लकड़ियों के घरों में आग लगाकर जिंदा जला दिया या अन्य प्रकार से मार डाला। इसके करीब ५५० वर्ष बाद रूस के सम्राट अलेग्जेंडर प्रथम ने सन् १८०९ में फिनलैंड पर आक्रमण कर वहां स्वीडन की सत्ता खत्म कर दी। १०८ वर्ष बाद, ६ दिसम्बर १९१७ को फिनलैंड स्वतंत्र हुआ और १७ जुलाई १९१९ के दिन उसने अपने लिए गणतंत्र की घोषणा की।

फिनलैंड में शासन के सर्वोच्च अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में हैं। वहां संसद में २०० सदस्य हैं जो हमारे यहां की तरह निर्वाचित होते हैं। विधान या कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति एवं संसद में निहित है। राष्ट्रपति का निर्वाचन छः वर्षों के लिए होता है।

उत्तरी ध्रुवांचल के निकट होने के कारण यह शीत प्रधान देश है। फिर भी, प्रकृति यहां अनुदार नहीं है। दर्शनीय और रमणीय स्थल एक नहीं, अनेक हैं। ऊंचे नुकीले पत्तों वाले पेड़ों के घने जंगल, झील और टापुओं से यह देश भरा है। इस देश के उत्तरी भाग में बर्फीली आंधियां और तूफान जाड़े के मौसम की दैनिक घटनाएं हैं, तो मध्य रात्रि का मुसकराता चांद सा सूरज सृष्टि के सूत्रधार के प्रति श्रद्धा की प्रेरणा भी देता है वर्ष में आठ नौ महीने झीलों का पानी जम कर चट्टान सा कड़ा हो जाता है। इनपर विविध प्रकार के खेल होते रहते हैं। स्वाधीन फिनलैंड इनका आनन्द उठाता है। अपनी पराधीनता के दिनों में उसका नैसर्गिक वैभव उपेक्षित रहा। पराधीन देशों की उन्नति का ध्यान दूसरों को क्यों रहेगा, चाहे वह देश भारत हो या फिनलैंड।

सन् १९१७ से १९३९ तक बाइस वर्ष फिनिश जनता और सरकार अपने देश को सजाने, संवारने और सुधारने में लगे। यह दीर्घ अवधि विश्व भरमें बड़ी मदी की थी लेकिन फिनिश जनता ने इसी समय अपने देश को समृद्ध किया, यह उनकी लगन और परिश्रम का पुष्ट प्रमाण है। आज फिनलैंड की गणना सैलानियों के लिए कश्मीर, स्विट्जरलैंड और स्वीडन से की जाती है।

सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ा। इस समय तक रूस विश्व की बड़ी शक्तियों में हो गया था। उसके पास अजेय सेना और अमोघ अस्त्र थे। साम्राज्यवादी और साम्यवादी देशों के इरादों में ज्यादा फर्क नहीं होता, हां, तरीके कुछ अलग-अलग होते हैं। साम्राज्यवादी दूसरे देशों को बहाने बनाकर हड़पते हैं और साम्यवादी सीधे हमला कर बैठते हैं। औरों का अनुभव कैसा हैं, हम यह नहीं जानते पर भारत ने ब्रिटेन और चीन से यही अनुभव प्राप्त किया है। साम्यवादी रूस ने भी इसी तरह सन् १९३९ में छोटे से शांतिप्रिय एवं निरीह राष्ट्र फिनलैंड पर जल, थल और नभ से एक साथ हमला बोल दिया। उन दिनों रूस मित्रराष्ट्रों में नहीं था। इसलिए ब्रिटेन और अमरीका ने मौखिक सहानुभूति तो फिनलैंड के साथ पूरी दिखाई पर सैनिक सहायता के नाम पर एक भी हथियार या सिपाही नहीं भेजा फिर भी फिनिश वीर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

११० दिनों तक रूसी शक्ति का मुकाबला करते रहे। छोटा सा देश, सीमित साधन, कब तक टिकता? उसकी युद्ध और खाद्य सामग्री घट गई। जनहानि देखकर विवश हो गया। १८ मार्च १९४० को रूस के साथ सन्धि करनी पड़ी। हार वह भूला नहीं।

जरमनी ने १९४१ में जब रूस पर हमला किया तो उसी थकीहारी फिनिश जनता की रगों में जोश उमड़ पड़ा। तीन महीने के अंदर ही उसने रूस को अपने देश से निकाल बाहर किया। लेकिन इस समय तक रूस मित्र-राष्ट्रों के गुट में शामिल हो चुका था। ब्रिटेन और अमरीका की फौजी सहायता से रूस ने युद्ध में थके हुए फिनलैंड पर सितंबर, १९४४ में फिर हमला कर दिया। लाचार होकर फिनलैंड ने रूस से संधि की और शर्तों के अनुसार देश का कुछ कीमती हिस्सा और २२५ करोड़ का हरजाना आठ किश्तों में चुकाना मंजूर किया। साम्राज्यवाद और साम्यवाद का यह गठबंधन राजनीति के अध्येताओं के लिए एक ज्वलंत दृष्टांत है।

हारे और थके फिनलैंड के पास इतना धन कहां था? उसने हिम्मत नहीं हारी। नंगे और भूखे रह कर फिनिश लोगों ने अपनी सर्वोत्तम लकड़ियां और अन्यान्य सामग्री देकर १९५२ तक यह कर्ज पटा दिया। जानकार लोगों का कहना है कि रूस ने कम से कम दोगुनी रकम का माल कर्ज के एवज में वसूल किया। समता और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का यह रूसी तरीका न्यायसंगत किसी भी स्थिति में नहीं कहा जाएगा।

फिनिश स्वभाव से ही परिश्रमी और उद्यमी हैं। सर्दी इतनी ज्यादा यहां है कि बिना कड़े काम के मनुष्य रह नहीं सकता। जंगलों और खानों में संपदा भरी पड़ी है। सन् १९५२ के बाद फिनलैंड दोगुने उत्साह से अपनी प्राकृतिक संपदा का लाभ उठाने में जुट पड़ा। इसकी उन्नति भी द्रुति-गति से हुई। सन् १९६० के जन में जब हम वहां थे, यह संपन्न और उन्नत देशों में गिना जाने लगा था।

लेनिनग्राद से हम शाम को साढ़े छः या सात बजे हेलसिंकी पहुंचे। कस्टम की औपचारिकता से निवृत्ति होकर जंब होटल आए, आठ बज रहे थे। हेलसिंकी फिनलैंड के दक्षिण में है। फिर भी ध्रुवांचल में होने के कारण वर्ष के तीन महीने तक तो यहां एक-डेढ़ बजे तक कुदरती रोशनी रहतीं है। इसलिए रात्रि का भोजन कर हमने १० बजे शहर का एक चक्कर लगा लेना तय किया।

हेलसिंकी फिनलैंड का प्रमुख शहर है और राजधानी भी। बाल्टिक सागर में फिनलैंड की खाड़ी से सटा यह शहर लंदन या मास्को की तरह व्यस्त और भव्य तो नहीं लगता पर उनसे ज्यादा शांत और सौम्य है। यहां की आबादी है पांच लाख। हम ऊनी पायजामे पर ऊनी पतलून और पांच-छः गरम पोशाक पहने दुकानों में मोटे शीशे की चद्दरों के पीछे सजी चीजों को देखते जाते थे। कुछ ही घंटे पहले हम रूस के एक प्रमुख शहर से आए थे। वहां की दुकानों में काउंटरों पर या आलमारियों में कुछेक भोंडी और सस्ती चीजें ही देखने में आई थीं। रूस के अन्य शहरों में भी ऐसा हीं नजारा देखा था। पर यहां के बाजार और दुकानों में सुरुचिपूर्ण कलात्मक वस्तुओं को देखकर ऐसा लगा मानों खोई-खोई सी चीजें सामने आ रही हों। मैंने प्रभुदयालजी से कहा, "जो कुछ भी हमने रूस में देखा, यदि साम्यवाद का यही अंजाम है तो पूंजीवाद उससे कहीं बेहतर है।" कहने को तो कह गया मगर न जाने क्यों मैं कुछ सहम सा गया और आसपास झांकने लगा। प्रभुदयालजीने मुसकरा कर कहा, "डरने की क्या बात है, आदत पड़ गई क्या? यह रूस नहीं फिनलैंड है, भारत की तरह यहां बोलने के लिए स्वाधीन हो।" हम दोनों हंस पड़े।

दूध, रोटी, पनीर और फलों की दुकानें बहुत रात होने पर भी खुली थीं। दूसरे दिन सुबह के लिए बहुत से फल और पैकटों में दूध लेकर वापस आ गए। आजकल यूरोप और अमेरिका में दूध बोतलों की जगह मोटे मोमिया कागज या प्लास्टिक की थैलियों में बिकता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। वापस आते समय रास्ते में हमने दो-एक लोगों को बायलन बजाकर भीख मांगते हुए देखा। हमें ताज्जुब हुआ क्योंकि इटली, ग्रीस आदि यूरोप के दक्षिणी देशों में भी तो भिखमंगे दिखाई देते हैं, पर उत्तरी यूरोप के देशों में नहीं मिलते। पूछने पर पता चला कि कुछ लोग यदा-कदा रूस से भागकर यहां आ जाते हैं। ऐसे ही व्यक्ति शुरूशुरू में गा बजाकर भीख मांगते हैं।

जून से अगस्त तक यूरोप के दक्षिणी देशों और अमरीका से बहुतबड़ी संख्या में सैलानी यहां आते रहते हैं। इसलिए रात्रिक्लबों और नृत्यशालाओं में बहुत चहलपहल रहती है। अंगरेजी के थियेटर और सिनेमा यहां हैं। वेनिस और पेरिस में जिस प्रकार की उच्छृंखलता और नग्नता का प्रदर्शन होता है, वह यहां अपेक्षाकृत कम है। फिर भी नाइटक्लब और कैबरे, मंदिर या गिरजे तो हैं नहीं, इसलिए चाहे पेरिस हो या हेलसिंकी, लोग इनमें जाते ही हैं उद्दाम लालसा लेकर, मात्रा चाहे ज्यादा हो या कम।

अगले दिन सुबह चार बजे अपने आप ही मैं जाग गया क्योंकि धूप निकल आयी थी। रात को यहां इन महीनों में होती ही नहीं। सोते समय खिड़कियों पर काले परदे लगाना भूल गए थे। रोशनी में सोने की आदत नहीं। देखा, प्रभुदयालजी गहरी नींद में सो रहे हैं।

पिछली रात को घूमते समय पता चला था कि यहां गरम पानी और भाप के 'साउना' स्नानगृह हैं जो शहर में सैकड़ों की संख्या में हैं। केवल विदेशियों के लिए ही नहीं बल्कि स्थानीय लोगों के लिए भी ये आकर्षण रखते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक स्नान के साथसाथ इन्हें शारीरिक व्यायाम का अच्छा माध्यम माना जाता है। ऐसे स्नानगृह कई प्रकार और श्रेणी के होते हैं। दस रुपये से लेकर पचास साठ रुपयों तक के।

लंदन और हाम्बर्ग के बाथहाउसों के उन्मुक्त वातावरण को मैं अपनी पिछली यात्रा में देख चुका था। इसलिए प्रभुदयालजी को बिना कहे अकेला ही स्नान करने चला गया क्योंकि उनके सामने निर्वस्त्र होकर नहाने में संकोच होता। मध्यम श्रेणी के एक 'साउना' में गया। जरा सवेरे पहुंचा था इसलिए भीड़ नहीं थी। फिर भी बीसपचीस स्त्रीपुरुष तो थे ही।

प्रत्येक के लिए एकएक छोटी कोठरी सी रहती है उसमें कपड़े वगैरह उतारकर भाप के कमरे में चले जाते हैं; वहां एक प्रकार के घास से शरीर को रगड़ते रहते हैं और बीचबीच मे ठंडे पानी के फव्वारे के नीचे स्नान भी करते रहते हैं। कम या ज्यादा कई मात्रा के ताप के कक्ष हैं। सिर पर ठडा तौलिया रख लिया जाता है, नहीं तो चक्कर आने का अंदेशा रहता है। कुछ देर तक स्नान करने के बाद वहीं पर बने एक तालाबनुमा बड़े हौज में तैरने के लिए आ जाते हैं। स्त्रियां बिकनी पहने रहती हैं; शेष सारे अंग खुले रहते हैं। पश्चिम के देशों में प्रथा है कि पुरुष, स्त्रियों के सामने निर्वस्त्र नहीं होते, यहां तक कि गंजी या बनियान तक नहीं उतारते। इन स्नानगृहों में पूरी छूट है। यहां एक प्रकार से 'न्यूडिस्ट क्लब' का वातावरण रहता है। मैं ने लक्ष्य किया कि इतने उन्मुक्त वातावरण में भी शालीनता की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं होता। उत्तरी यूरोप के प्रायः सभी बड़े या छोटे देशों में इस प्रकार के सार्वजनिक स्नानगृह हैं। पर अशोभनीय वारदात शायद ही कहीं हो। बल्कि ये सामाजिक स्तर पर मिलनेजुलने के अच्छे माध्यम माने जाते हैं और हैं भी। इन दिनों दक्षिणी यूरोप में भी ऐसे क्लब हो गए हैं पर वहां का वातावरण कुछ दूसरे ढंग का रहता है।

स्नानगृह में, मैं ही अकेला भारतीय थां। इसलिए मेरे प्रति लोगों में दिलचस्पी थी। भारत के बारे में यहां के लोगों की जानकारी बहुत कम है। हमारी सरकार का प्रचार विभाग भी इन देशों में अपेक्षित रूप से सक्रिय नहीं है। हम संपर्क भी यूरोप में ज्यादातर ब्रिटेन, फ्रांस, जरमनी और रूस आदि देशों से रखते हैं। बड़े आग्रहपूर्वक ये मिले। मैं ने देखा कि हमारे देश से इतना कम संपर्क रहने पर भी इन में बहुत से गांधीजी, नेहरूजी और रवींद्रनाथ के बारे में काफी कुछ जानते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लगभग डेढ़ घंटे वाष्पस्नान और तैरने में लग जाते हैं। शरीर इतना हलका हो जाता है और मन ऐसा प्रसन्न कि आसमान में उड़ने की तबियत होती है। स्नान के बाद सुस्वादु काफी पीने को मिलती है। मुझे पूरी तरह याद नहीं, पर चार्ज शायद १२ रुपए या १४ रुपए लगे।

अपनी विदेश यात्रा में हर जगह मैं मध्यम श्रेणी के रेस्तरां और क्लबों को चुनता था, क्योंकि इन में जनसाधारण से भेंट हो जाती थी। उन के जीवन और वहां की विचारधारा को नजदीक से देखने और समझने का मौका मिलता था। एक और सुविधा यह भी होती थी कि मध्यम श्रेणी की जगहों के खर्च कम लगता था।

नहाधो कर साढ़े आठ बजे होटल लौटा तो प्रभुदयालजी बैठे राह देख रहे थे। कुछ चिंतित भी थे। उन्हें फिक्र हो रही थी कि नया देश है, भाषा की भी दिक्कत है। संकोच के साथ मैं ने स्नानगृह की बात कही तो हंसते हुए कहने लगे, "मुझे क्यों नहीं जगा लिया, मैं भी साथसाथ चलता।"

विदेशों में होटल या रेस्तरां में हम पहले ही सरल और स्पष्ट अंगरेजी में कह देते थे, "नो फिश, एग्ज एंड मीट।" यानी मछली, अंडे और मांस नहीं, केवल दूध, मक्खन और रोटी। नाश्ते के लिए परिचारिका आई। बहुत से टोस्ट के साथ मक्खन, मीठी चटनी और साथ में दो बड़ेबड़े कैंटर दूध से भरे हुए। बहुत समझाया कि इतने सारे दूध का क्या होगा? पर किसी तरह कम करने को तैयार न हुई, केवल हंसती रही। आखिर हिम्मत कर सारा पी ही लिया। स्वाद के क्या कहने, उत्तरी यूरोप के देश दूधमक्खन के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं।

हमारे होटल में एक फ्रेंच यात्री से जानपहचान हो गई। अंगरेजी अच्छी तरह बोल लेता था। कई बार यहां आ चुका था। दोएक दिन बाद लैपलैंड जा रहा था, हमें भी आग्रह करता रहा कि ऐसे मौके आप को बारबार नहीं मिलेंगे। जब भारत से इतनी दूर उत्तरी ध्रुव के पास तक आ ही गए हैं तो क्यों नहीं तीनचार दिन का समय निकाल कर उस के साथ चलें और लैपलैंड, रेंडीयर और मध्य रात्रि का सूर्य और बर्फानी आंधियां देख लें।

हमारे लिए यहां की सर्दी भी काफी थी, चमड़े के वस्त्र भी हमने नहीं लिए थे, जिस से कि बर्फानी हवाओं के थपेड़े सहे जा सकें। फिर मैं तो वहां तक सन १९५० में ही हो आया था। इसलिए उस का आभार मानते हुए हमने प्रस्ताव के लिए नाहीं कर दी।

नाश्ता इतना ज्यादा कर लिया था कि दोपहर के भोजन की जरूरत नहीं रही। फ्रेंच मित्र के साथ बाजार देखने निकल पड़े। हर तीसरी दूकान फलों या फूलों की थी। शराब या बियर तो प्रायः हर दूकान में। पानी की जगह यहां लोग इन्हें पीते हैं। इस के बारे में यह पता चला कि अत्यंत ठंडे देशों में केवल पानी पीने से फेफड़ों में सर्दी जम जाने का भय रहता है, सर्दी से बचाव के लिऐ ब्रांडी या दूसरी किस्म की शराब पीना जरूरी है। मगर हमें कहीं भी ऐसी जरूरत महसूस नहीं हुई। हम पानी पीते रहे और हमें न सर्दी लगी और न हमारे फेफड़ों में ही सर्दी जमी।

इन देशों में एक बात आमतौर पर देखने में आई कि बागबगीचों, रेलवेस्टेशनों, एयरपोर्ट; रेस्तरां, थियेटर और बाजारों में एक तरफ किसी कोने में स्त्रीपुरुष बिना संकोच या झिझक के आलिंगन अथवा चुंबन लेते रहते हैं। फ्रेंच साथी ने इस के लिए दलील दी कि गरम मुल्कों की बात और है पर सर्द मुल्कों में तो शरीर की उष्णता को स्थिर रखने के लिए आलिंगन और चुंबन करते रहना ज़रूरी है। मुसकराते हुए उस ने कहा कि इन देशों में यदि उत्तेजक साधन और माध्यम न अपनाए जाएं तो हमारी जनसंख्या की वृद्धि ही रुक जाएगी।

हो सकता है, इन बातों में कुछ तथ्य हों, पर हम भारतीयों के लिए तो यह शालीनता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और मर्यादा की सीमा के बाहर की बातें लगीं। हमारे यहां भी लद्दाख और उत्तरी कुमायूं आदि ऐसे काफी अंचल हैं जहा कड़ी सर्दी पड़ती है। वहां शरीर की उष्णता के लिए इस ढंग के माध्यम और साधन की जरूरत कभी नहीं समझी गई। कुछ छोटीमोटी चीजें बाजार से खरीदीं। सर्दी इतनी थी कि दौड़ने का मन करता था। थकावट का नाम नहीं था। बस में बैठ कर पास के एक देहात में पहुंचे। अच्छा लगा। चमकदार और चिकनी लकड़ी के छोटेछोटे मकान थे। हरेक घर के साथ फलों और फूलों का बाग, स्त्रियां और बच्चे काम कर रहे थे। सभी स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई पड़े। शरीर सुडौल और सुंदर।

एक घर के सामने हम रुके। गृहणी थोड़ीबहुत अंगरेजी जानती थी। उसने बड़े प्रेम से अपना बगीचा दिखाया। मना करने पर भी फलों का रस पिलाया। देखा, मकान छोटा था पर आधुनिक सभी साधनों से संपन्न, टेलिविजन, हीटर, टेलिफोन, छोटा सा पुस्तकालय। अपने देश के देहात के घरों के लिए तो आज भी ये सारी चीजें कल्पना तक ही सीमित हैं। गृहिणी ने बताया कि पति की फलों की दुकान है हेलसिंकी में। सुबह नौ बजे जाता है, दिन का भोजन वहीं करता है, शाम के बाद नौ बजे घर लौटता है। गांव में एक सरीखे मकानों को देख कर हम ने कारण पूछा तो उस ने बताया कि कुछ वर्ष पहले अग्निकांड में सारा गांव जल गया था। जब गांव नए सिरे से बसा तब सभी मकान एक ढंग के बना लिए गए। इस बार भी मकान लकड़ी के ही हैं पर अब आग बुझाने के उन्नत और वैज्ञानिक साधन हैं।

वहीं पर गांव के स्कूल की अध्यापिका से मुलाकात हुई। रूसी, स्वीडिश, अंगरेजी और फ्रेंच भी जानती थी। एनी बेसेंट की गीता का अंगरेजी अनुवाद उस ने पढ़ा था। तभी से भारतीय दर्शन के प्रति रुचि हुई। उस का विश्वास था कि भौतिक उन्नति से सुख भले ही मिल जाये पर वास्तविक आनंद नहीं। सुदूर उत्तरी ध्रुवांचल में भारतीय विचार के इस तत्व को सुन कर बड़ी खुशी हुई। फिनलैंड के बारे में उस ने बहुत सी बातें बताईं। शिक्षा के क्षेत्र में फिनलैंड के शासन ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किये हैं। शायद ही कोई अनपढ़ व्यक्ति फिनलैंड में मिले। अपनी भाषा के अलावा रूसी और अंगरेजी बहुत से लोग जानते हैं। उस ने यह भी बताया कि यहां की स्त्रियां पुरूषों से अधिक भाषाएं जानती हैं, क्योंकि उन्हें पढ़ने और सीखने की फुरसत ज्यादा रहती है।

हमने राय मांगी कि हम फिनलैंड में क्या देखें? उस ने कहा भारत की विविधता के मुकाबले में छोटा सा फिनलैंड कुछ खास तो पेश नहीं कर सकता, फिर भी ओलंपिक स्टेडियम और विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी जरूर देख ली जाए, अगर समय मिले तो ओलंको भी। ओलंको का ट्रेन से केवल दो घंटे का रास्ता है। वहां आप को विश्व के हर कोने के लोग मिलेंगे। कोई बर्फीले ठंडे पानी की झील में तैर रहा है तो कहीं घुड़सवारी की प्रतियोगिता चल रही है। टेनिस, गोल्फ, फुटबाल, हाकी, वालीबाल आदि दुनिया भर के खेलकूद और विभिन्न तरीके की कुश्तियां भी देखने को मिलेंगी। मनोरंजन के काफी साधन हैं। हां, नाइटक्लब और कैबरे नहीं हैं।

हेलसिंकी आ कर हम यहां के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में गए। यहां हम ने देखा, प्राय: सभी भाषाओं की आठदस लाख पुस्तकें थीं। कलकत्ते की हमारी नेशनल लाइब्रेरी में इस से कुछ अधिक संख्या जरूर है, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि फिनलैंड हम से सौ गुना छोटा देश है। भारतीय भाषाओं की पुस्तकें देखने में नहीं आईं। अंगरेजी, फ्रेंच और जरमन में संस्कृत की पुस्तकों के अनुवाद जरूर देखे। हम ने एक बात की कमी अनुभव की कि विदेशों के छोटछोटे राष्ट्रों में हमारी ओर से संपर्क स्थापन करने के प्रति ऐसी उदासीनता बरती जाती है कि उसे उपेक्षा का पर्यायवाची कहा जाए तो असंगत न होगा। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारी आवाज का साथ देने वालों की संख्या बहुत कम रहती है। हमारे विदेश मंत्रालय के लिए यह विशेष ध्यान देने की बात है। ऐसी स्थिति में यहां के पुस्तकालय में हिंदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साहित्य या भाषा संबंधी पुस्तकें या उन के अनुवाद का न होना स्वाभाविक है। आज प्रचार का युग है। दूसरे बड़े देश अपने विशिष्ट साहित्य को विश्व के बड़ेबड़े पुस्तकालयों को भेंट के रूप में भेजते रहते हैं। लाइब्रेरी के कक्ष ताप नियंत्रित हैं। अध्येताओं के लिए भी यहां हमारी नेशनल लाइब्रेरी की तरह हर प्रकार की सहायता और सुविधा सहज उपलब्ध है। कैंटीन की सुविधा और वातावरण तो हमारे से कहीं अधिक सुंदर और स्वच्छ।

फिनलैंड की गाइडबुक में यहां के दर्शनीय स्थलों का उल्लेख था—संसद भवन, नेशनल म्यूजियम, वाटरटावर, किला और ओलंपिक स्टेडियम। लेनिनग्राद, मास्को के म्यूजियम तो हम ने पिछले हफ्ते में ही देखे थे, पेरिस के लूव्रे और वेटिकन में पोप की आर्ट गैलरी भी हम देख आए थे। इसलिए इन में अब रुचि न रही। ओलंपिक स्टेडियम और वाटरटावर देख लेना तय किया।

ओलंपिक स्टेडियम १९४० में विश्व के खेलों के लिए बनाया गया था लेकिन महायुद्ध के कारण उस वर्ष खेल नहीं हो सके। अतएव, फिर से १९५२ में इस की साजसज्जा की गई और उस वर्ष यहीं विश्व के खेलों की प्रतियोगिता हुई। दुनिया के कोनेकोने से, हर छोटेबड़े राष्ट्र से यहां चुनेचुने खिलाड़ी आए थे। अमरीका, फ्रांस, रूस और ब्रिटेन का तो कहना था कि फिनलैंड कहां से बाहर के इतने खिलाड़ियों और दर्शकों को जगह दे सकेगा, इतना बड़ा स्टेडियम कैसे बना पाएगा? फिनलैंड इन बातों से निराश नहीं हुआ। दूने उत्साह से उस ने चुनौती स्वीकार की। दो वर्ष के कठिन परिश्रम और करोड़ों की लागत से आखिर यह स्टेडियम बना ही डाला। फिनलैंड अपने रंगबिरंगे संगमरमर के लिए प्रसिद्ध है। इस से विदेशी मुद्रा की उसे अच्छी आमदनी हो जाती है। पर स्टेडियम निर्माण के समय अच्छे किस्म के पत्थरों का निर्यात रोक दिया गया क्योंकि उसे प्रदर्शनी का फर्श बनवाना था। उसी समय हेलसिंकी की सुंदरता को देखने के लिए एक बहुत ऊंचा टावर भी बनाया गया।

हम ने सुना कि १९५२ में जब यहां सारे देशों से खिलाड़ी और शौकीन दर्शक आए तो उन्हें स्टेडियम देख कर विस्मय हुआ क्योंकि अब तक अमरीका और फ्रांस भी इतनी अच्छी व्यवस्था नहीं कर पाए थे। हमारे भारतीय हाकी टीम के खेल को आज भी यहां वाले याद करते हैं। भारतीयों को तो वे हाकी का जादूगर कहते हैं। यहां की ओलंपिक प्रतियोगिता में भारत हाकी और पोलो में शीर्ष स्थान तक पहुंचा था।

सुबह नाश्त में सेरों दूध, पाव रोटी और मक्खन ले लिया था। एक तो दिन भर घूमते रहे और दूसरे यहां की ठंडी स्वास्थ्यकर हवा। भूख जोरों की लग रही थी। होटल लौट कर उबला साग, पाव रोटी और भारत से लाए हुए चिवड़े की खीर खा कर भूख शांत की। हम ने देखा कि हमारी तरह दूसरे यात्री भी यहां ज्यादा खाते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि यहां प्रति व्यक्ति की औसत खुराक ३,२०० कैलोरी से भी अधिक है, जब कि भारत में यह औसत १,६०० के लगभग है। हमरा फ्रेंच मित्र हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। मुसकरा कर कहने लगा, "अभी तो दस ही बजे हैं, क्यों न नाइटक्लब चला जाए। आप विदेशी मेहमान हैं, अगर इन के नाइटक्लब में न गए तो ये बुरा मान जाएंगे।" बुरा मानने वाली बात पर हंसी आई। हम ने थकावट का बहाना बताकर उस से छुट्टी ली।

दूसरे दिन हमें विश्व के सब से धनी देश स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम के लिए सुबह ही एयरपोर्ट जाना था। कमरे में आ कर प्रभुदयालजी सो गए। मुझे नींद नहीं आ रही थी, खिड़की के पास खड़ा हो गया। शहर की झांकी देखने लगा। वेनिस की तरह सैकड़ों टापुओं पर बसा यह नगर उस से कितना स्वच्छ है। आचारविचार और व्यवहार में भी। सड़कों पर से जब चाहें, जहां चाहें इसकी लहरें दिखाई पड़ जाती हैं। सागर की ओर दृष्टि गई। देखा छोटेबड़े जहाजों की बत्तियां दीवाली सजा रही हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषम परिस्थितियों में जूझने की शक्ति

नार्वे

'दो फूल साथ फूले, किस्मत जुदाजुदा है,' बहुत दिनों पहले किसी नाटक के गाने में इसे सुना था। जब स्वीडन के बाद नार्वे देखने गया तो उक्त पंक्ति याद आ गई। स्वीडन और नार्वे दोनों पड़ोसी हैं। एक हजार मील तक जुड़ी हुई सीमा, दोनों स्थानों के लोगों का एकसा पहनावा, एक सी चालढाल, शारीरिक गठन, रीतिरिवाज़ और एक से ही प्राकृतिक दृश्य। लेकिन जहां स्वीडन विश्व के संपन्नतम देशों में से हैं, नार्वे अपने जीवन के संघर्षों में निरंतर जूझता चला जा रहा है। बर्फीले तूफान और समुद्री लहरों के थपेड़ों को सहता हुआ वह किसी न किसी तरह विश्व के रंगमंच पर अपना अस्तित्व कायम रखने की कोशिश कर रहा है।

स्वीडन को दुनिया का सर्वोत्तम लोहा, तांबा और कागज बनाने की लकड़ी प्रचुर मात्रा में प्रकृति ने दे रखी है, जब कि नार्वे के हिस्से में आए हैं पहाड़, गिरिनिखात (फियर्ड) और नदियां। इस छोटे से देश में डेढ़ लाख तो टापू ही हैं। विचित्र और तरहतरह के हैं ये—पहाड़, फियर्ड और झीलों से भरे हुए। प्रकृति यहां अनुदार है फिर भी यह हमारे देश की तरह गरीब नहीं है। इस बात का सहज अनुमान इस से लग सकता है कि हमारी राष्ट्रीय आय से उस की आय १३ प्रतिशत अधिक है जब कि जनसंख्या है—० . ७ प्रतिशत। प्रति व्यक्ति वहां वार्षिक आय है दस हजार रुपए जब कि हमारे यहां प्रति व्यक्ति वार्षिक आय केवल ४५० रुपए है।

भौगोलिक कारणों का प्रभाव स्थानीय जनजीवन और संस्कृति पर पड़ता है। इसी लिए नार्वे के बर्फीले तूफानों, कठोर भूखंड और गिरिनिखातों का प्रभाव वहां के निवासियों पर भी पड़ा है। वे दुर्धर्ष, कठोर और कष्टसहिष्णु बन गए। नार्समेन, नार्मन, नार्डस और वाइकिंग के नामों को सुन कर किसी जमाने में यूरोप के देशों में कंपकंपी उठ जाती थी। आज से हजार सवा हजार वर्ष पहले, जब कि न तो उन्नत वैज्ञानिक साधन थे और न भौगोलिक ज्ञान, हजारों की संख्या में वाइकिंग बड़ेबड़े जहाजों के जरिए समुद्र की ऊंची लहरों को चुनौती देते हुए आंधी की तरह जिस देश में उतर पडते थे वहां हाहाकार मच जाता था।

कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि मानव की आदि सभ्यता का विकास नार्वे से ही हुआ। यह बात कहां तक सही है, कहना कठिन है पर दसबारह हजार वर्ष पहले मनुष्य के काम में आने वाली चीजें यहां अवश्य मिली हैं। अन्वेषण अब भी जारी है। यहां की चट्टानों के बारे में भूतत्त्वशास्त्रियों की राय है कि वे अस्सी लाख वर्ष पुरानी होंगी।

जमाना करवटें बदलता है। नार्वे के दुर्धर्ष नाविक आज अपने पूर्वजों की तरह खूंखार और क्रूर भले ही न हों, फिर भी है उन का जीवन कठोर और संघर्षमय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नार्वे में भूमि का केवल तीन प्रति शत भाग कृषि योग्य है, २४ प्रति शत जंगलों से भरा पड़ा है और शेष ७३ प्रति शत में पहाड़, गिरिनिखात (फियर्ड) और झीलें हैं। वहां का कुल क्षेत्रफल १.२५ लाख वर्ग मील है।

नक्शा देखने पर नार्वे ऐसा लगता है मानों एक बड़ी ह्वेल मछली हो। यह भी बड़ी मजेदार बात है कि नार्वे की छत्तीस लाख की आबादी में से लगभग नब्बे हजार मछुवे हैं। इन के पास चालीस हजार नावें या बोट हैं। ये लोग वर्ष में तेरह लाख टन मछलियां समुद्र से निकाल कर अपने देश की खाद्य समस्या हल करते हैं। बची हुई मछली को विदेशों में निर्यात कर दिया जाता है।

ह्वेल मछली के तेल के लिए विश्व को नार्वे पर निर्भर रहना पड़ता है। इन दैत्याकार समुद्री जीवों को पकड़ने के लिए अत्यंत साहस और बल की जरूरत पड़ती है। नार्वे के लोगों के भोजन में भी मछली और समुद्री जीवों की प्रधानता है।

मई के तीसरे सप्ताह से लगातार दो महीने तक यहां सूर्यास्त नहीं होता। इसी प्रकार आधे नवंबर से जनवरी तक उत्तरी नार्वे में घनघोर अंधेरी रात रहती है। ऐसा लगता है कि उत्तरी ध्रुव के बर्फीले तूफानों से भयभीत हो कर सूर्य सदा के लिए छिप गया हो। इन दिनों उत्तरी पूर्वी भाग में इतनी कड़ाके की सर्दी हो जाती है कि मुंह से थूक जमीन तक गिरतेगिरते बर्फ बन जाता है। लेकिन यह बात नार्वे के पश्चिमी हिस्से पर लागू नहीं होती। अमरीका से चली गल्फ स्ट्रीम की गरम जलधारा अतलांतिक को पार कर नार्वे के पश्चिमी तट से होकर मुड़ती है इसलिए पश्चिमी भाग में समुद्र जहाजरानी के लिए वर्ष भर खुला रहता है। हजारों वर्षों से विश्व के विभिन्न समुद्रों में विषम परिस्थितियों से जूझने के कारण नार्वेवासी नौविद्या में बड़े प्रवीण हो गए हैं। जहाजरानी में नार्वे का संसार में तीसरा स्थान है।

अनुमान था कि कठोर सर्दी में यहां के लोग घरों में रहते होंगे पर देखा कि स्थानीय लोगों की दिनचर्या में मौसम की बेरुखी से कोई अंतर नहीं आता। लोग यथावत अपने गाय, बैल, सुअर, भेड़ संभालते हैं, दैनिक काम पर आते हैं। खेती के लायक जो भी थोड़ीबहुत जमीन यहां है, वह जब बर्फ के नीचे दब जाती है तो लोग उन दिनों दूसरे धंधों में लग जाते हैं।

नार्वे में कोयले का सर्वथा अभाव है और पेट्रोलियम भी यहां नहीं है। इसलिए नार्वेवासियों ने अपने कारखानों या मशीनों को चलाने के लिए जलशक्ति का उपयोग किया है। जल से विद्युत पैदा कर पूरे देश की औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। विश्व में सब से ज्यादा व्यक्तिशः विद्युत उत्पादन की दृष्टि से नार्वे अग्रणी है।

'निशा सूर्य के देश में' नामक लेख में नार्विक की चर्चा मैं ने की है। लगभग तेरह हजार की आबादी का यह शहर है। हैमरफास्ट को छोड़ कर विश्व का यह सब से उत्तरी पोर्ट है। गल्फस्ट्रीम की उष्ण जलधारा के काण यहां बर्फ जम नहीं पाती. इसलिए जहाजों के आवागमन के लिए यह वर्ष भर खुला रहता है। स्वीडन की किरुना के विश्वविख्यात लोहे की खानों के उत्पादन का अधिकांश निर्यात यहीं से होता है।

नार्विक से करीब डेढ़ सौ मील उत्तर में हैमरफास्ट है जो उत्तरी ध्रुव से केवल ६० मील के फासले पर है। एक बार तो इच्छा हुई कि इसे भी देख लिया जाए पर साथी न रहने के कारण नहीं गया। यहां की आबादी केवल छः हजार है। यात्रियों के लिए मई से जुलाई तक हवाई मार्ग खुला रहता है।

स्वीडन से आते समय मैं ने ट्रेन से सफर किया था। किरुना से होता हुआ नार्विक आया था। जाते समय मैं ने निश्चय किया कि जहाज, बस या कार से ओसलो की यात्रा की जाए। इस प्रकार इस देश को अपेक्षाकृत अच्छी तरह देखने का मौका मिल जाएगा।

टूरिस्ट आफिस में जाने पर पता चला कि जहाज के लिए तो दो दिन रुकना पड़ेगा पर उसी दिन दोपहर को विजे की तापनियंत्रित डीलक्स स्टेशन वेगन जा रही है। उस में कुल नौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सीटें थीं । ड्राइवर दो थे जो गाइड का भी काम करते थे । विंजे यहां के विश्वसनीय ट्रावेल एजेंट हैं । इन के नाना प्रकार के टूर प्रोग्राम रहते हैं । इन की कारों और बसों में एक मोटरसाइकिल भी रहती है । रास्ते में कुछ खराबी होने पर इसी से पास के गांव में खबर दे दी जाती है जिस से फौरन आवश्यक मदद मिल जाती है ।

ओसलो की यात्रा लंबी थी । सात सौ मील का सफर, बीहड़ और खतरनाक पहाड़ी रास्ते और बस्ती दूरदूर पर । सोचने लगा, 'जीवन में बहुत ही कम अवसर ऐसी यात्रा के लिए आते हैं और इन स्थानों पर आना तो शायद ही फिर संभव हो । फिर क्यों न इस मौके का लाभ उठाया जाए !' साथ के यात्रियों में से दो अमरीकी वृद्धाएं थीं । उन्हें इस कठिन यात्रा के लिए तैयार देख कर मेरा उत्साह भी बढ़ा । ५०० रुपयों की टिकट चार दिन की उस यात्रा के लिए मैं ने खरीद ली । होटल और भोजनादि के चार्ज इस में शामिल थे । ट्रेन या हवाई जहाज से किराया कम लगता पर नार्वे के जो दृश्य मैं ने इस यात्रा में देखे, वे ट्रेन या हवाई जहाज से जाने पर नहीं देख पाता ।

दोपहर को दो बजे हम रवाना हुए । आफ्टे फियर्ड के किनारेकिनारे हमारी गाड़ी जा रही थी । रास्ता बहुत ही विकट और उतारचढ़ाव वाला था । कहींकहीं फेरी से भी पार उतरना पड़ता था । तीन घंटे में लगभग सौ मील का रास्ता तय किया । फियर्ड पर फेरी की इतनी अच्छी व्यवस्था है कि गाड़ी के पहुंचते हीं उसे पार कर दिया जाता है । मुसाफिर गाड़ी में ही बैठे रहते हैं, उन्हें उतरना नहीं पड़ता । पांच बजे शाम को हम सारेफोल्ड नाम के एक गांव में कुछ देर के लिए रुके । जितनी देर में नाश्ता पानी किया, उतनी देर में गाड़ी की देखभाल पूरी तौर पर कर ली गई । पूरी सफर में इस प्रकार की व्यवस्था रखी जाती है कि मशीन की गड़बड़ी से असुविधा न हो ।

उस रात हम भो नाम के गांव में रुके । यों तो रात के नौ बजे थे पर रोशनी दिन की तरह थी । गांव को देखते हुए होटल की व्यवस्था अच्छी थी । निरामिष यात्रियों को ऐसे स्थानों पर दिक्कत होती है क्योंकि आमतौर पर यहां मछली और समुद्री जीवों के ही मीनू बनते हैं । होटल और रेस्तरांओं में आए दिन खाना ही पड़ता है । लोगों को सामिष खाते देख अभ्यस्त सा हो गया था फिर भी यहां तरहतरह के समुद्री जीवों को पका कर जब मेज पर रखा देखा तो उबकाई सी आने लगी ।

यूरोप के अन्य स्थानों की तरह यहां भी भोजन के साथ वाद्य, संगीत और नृत्य के कार्यक्रम चलते रहते हैं । संगीत की धुन अच्छी लगी । पेरिस, वेनिस या ब्रूसेल्स की तरह उत्तेजना पूर्ण नहीं थी । यात्रियों के मनोरंजन के लिए गांव से लड़कियां आ जाती हैं । साथियों ने नाचना शुरू कर दिया था । दोनों ड्राइवर भी कपड़े बदल कर नाचगाने में शामिल हो गए थे । दोएक महिलाओं ने मुझे भी साथ नाचने के लिए आमंत्रित किया पर मैं इस दिशा में कोरा था ।

दूसरे दिन सुबह यहां के ग्रीटे और ग्लेशियर देखे । ग्लेशियर वर्फ के झरने होते हैं । ऊंचेऊंचे पहाड़ों पर से आने वाला नदी का जल ठंड के कारण बर्फ की तरह जम जाता है और धीरेधीरे नीचे खिसकता है । अपने यहां मनाली से आगे रोहतांग का ग्लेशियर देख चुका था । इसलिए ग्लेशियर के बारे में पहले से ही जानकारी थी ।

दोपहर में नामसोम नाम के एक गांव के होटल में पड़ाव डाला । यहीं लंच लिया । पिछली रात रुचि के अनुकूल भोजन नहीं मिला था । इस अनुभव के कारण आगे के स्थानों पर पहले ही सूचना दे दी गई थी । यहां निरामिष भोजन अच्छा मिल गया । लंच के समय गाड़ी को देखा जा रहा था । विश्राम के लिए भी थोड़ा सा समय हाथ में था । गांव देखने निकल पड़ा ।

छोटा सा साफसुथरा गांव । सागर के लहरें दौड़दौड़ कर किनारा चूम रही थीं । मछली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पकड़ने का यह एक प्रमुख केंद्र है। मछियारों की बस्ती और उन का रहनसहन देखा। अपने देश के कोंकण, तमिलनाडु, उड़ीसा और बंगाल में भी मछियारों की बस्तियां देखी थीं। मगर कितना अंतर है! नार्वे संपन्न देश नहीं है और वहां जीवन भी संघर्षमय है, फिर भी देखा कितना उन्नत स्तर है यहां का! आधुनिक यांत्रिक साधन, सहकारिता और श्रम का संतुलित समन्वय कर उपार्जन को इन लोगों ने सरल बना लिया है। बच्चों को देखा, हमारे यहां की तरह लावारिस से नहीं घूम रहे थे। शिक्षा और खेलकूद की व्यवस्था अच्छी थी। बच्चों में अनुशासन भी था।

अधिकांश बोटों में मोटरें लगी थीं। पकड़ी गई छोटीबड़ी मछलियां ढेरों पड़ी थीं। किसीकिसी का वजन तो पचाससाठ मन तक था। अनेक मछलियां आकार में इतनी बड़ी थीं जैसे हमारे यहां की भैंसें।

निरामिष होने के कारण वह दृश्य मेरे लिए भले ही रुचि कर न हो पर इन की व्यवस्था और व्यवस्थित जीवन का प्रभाव मन पर जरूर पड़ा। कार की लंबी यात्रा में थक जाना स्वाभाविक है पर यहां कि खुली ठंडी हवा ने ताजगी पैदा कर दी है।

दो दिनों में हम ने करीब चार सौ मील का सफर पूरा किया। रात में उत्तरी नार्वे के एक कस्बे टरोंवियम में ठहरे। आबादी लगभग सत्रह हजार होगी। किसी समय यह नगर नार्वे की राजधानी था। वाइकिंग इसे जहाजों के लिए सुरक्षित गोदी समझते थे और अपने बड़ेबड़े जहाज यहां खड़े करते थे। यह कस्बा अपने नाम के फियर्ड के किनारे बसा हुआ है। रात का भोजन कर नगर का एक चक्कर लगा आया। रात के ग्यारह बज रहे थे पर प्रकाश काफी था। नार्वे में अब तक जो देखा, उस से यहां का वातावरण कुछ भिन्न लगा। मल्लाह लड़कियों को साथ लिए घूमते दिखाई पड़े। शराब में स्त्रीपुरुष धुत्त थे और शोरशराबा भी कम नहीं था।

कहते हैं चार कदम चलते ही पहचान दोस्ती में बदल जाती है। दो दिनों के सफर में साथी यात्रियों से जानपहचान अच्छी हो गई थी। भारतीय होने के नाते उन सब की उत्सुकता मेरे प्रति कुछ अधिक थी। मौकेबेमौके तरहतरह के सवालों के जवाब दे कर उन की जिज्ञासा शांत करता रहता था। सवाल भी बड़े अजीब थे। एक महिला ने पूछा कि रंग को सांवला बनाने का सब से उत्तम उपाय कौन सा है? एक अन्य महिला ने जानना चाहा, भारतीय ग्रामीण चित्रों में मर्द के पीछे औरत चलती देखी जाती है, साथ क्यों नहीं चलती? होली में अपने मुंह को रंग कर लोग सड़कों पर क्यों नाचते हैं? आप के यहां पत्नियां पतियों से इतनी डरती क्यों हैं?

इस से लाभ भी हुआ। हम सब की आपसी झिझक मिट गई और हंसीखुशी के वातावरण में यात्रा और आनंदपूर्ण हो गई।

अगले दिन सुबह उठ कर देखता हूं कि तैराकी की पोशाक में सभी साथी तैयार हैं। मुझ से भी फियर्ड में तैरने के लिए बहुत अनुरोध करने लगे, पर मैं गरम कपड़ों में भी सर्दी महसूस कर रहा था। तब भला खुले में तैरने की हिम्मत मुझे कैसे होती! महिलाओं से बहुत कहनेसुनने पर किसी तरह छुटकारा मिला। साथ उन के जरूर गया। इतनी सर्दी में भी लोग खूब तैरे।

लौट कर नाश्ता किया और फिर अपनीअपनी सीटों पर गाड़ी में जा बैठे। दिन भर में हम ने कोई तीन सौ मील की दूरी तय की। रास्ते में दृश्य लगभग एक से ही मिलते रहे। नदियां, झीलें, फियर्ड, गांव और उन के आसपास खेत। कहींकहीं नदियां बहुत तेज धार से बहती मिलीं। इसी प्रकार निखातों के बीच से समुद्र का जल भी देखा। बड़े वेग से प्रवेश कर रहा था। जब किसी कगार पर से हमारी गाड़ी गुजरती तो नीचे झांक कर देखने पर भय सा होने लगता था। ड्राइवर यहां होशियार होते हैं, वरना हाथ सधे न रहें तो गाड़ी का संभलना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुश्किल ही है । तब हड्डीपसली का पता तक न चले, गहरे खड्ढों में जलसमाधि निश्चित है ।

रात में हम लिलेमर नाम के एक गांव में ठहरे । लगभग तीनचार हजार सैलानी यहां हर समय रहते हैं । कहते हैं कि यहां के रेस्तरां का भोजन बड़ा स्वादिष्ट बनता है । मेरे लिए स्वाद चखना संभव न था क्योंकि भोजन क्या था मछली, केकड़े और भांतिभांति के घोंघे थे । जो भी हो, दूध, मक्खन, रोटी भी यहां अच्छी मिली । गांव छोटा सा था मगर आधुनिक साधन सभी मौजूद थे ।

तीसरे दिन शाम को हम नार्वे की राजधानी ओसलो पहुंचे । नार्विक से ओसलो की यात्रा काफी लंबी और बीहड़ थी । फिर भी जितना आनंद इस में मुझे मिला, वह एक मधुर स्मृति के रूप में आज भी मैं ने संजो कर रख छोड़ा है ।

प्रकृति एक ऐसी श्रेष्ठ कृति है जिसे बिना किसी अतिरिक्त खर्च के हम उपयोग कर सकते हैं । हमारे देश में भी अपूर्व रमणीय स्थल हैं । हो सकता है, प्राचीनकाल में अतिथि सत्कार की भावना के कारण इन स्थानों में यात्रियों को असुविधा न हुआ करती हो पर आज के युग में तो हमें इन को लोकप्रिय बताने के लिए आवागमन के उन्नत साधनों और आधुनिक सुखसुविधा की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी । अपने यहां जिन्होंने पहलगांव से अमरनाथ और मनाली से रोहतांग की यात्रा की है, उन्हें हमारी कमियों का व्यक्तिगत अनुभव हुआ होगा ।

ओसलो इस देश की राजधानी भले ही हो पर यह मुझे विशेष आकर्षक नहीं लगा । संभव है इसलिए की इस से पहले मैं यूरोप के कई एक बड़ेबड़े शहरों को देख चुका था । कहते हैं, यह शहर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है लेकिन शहर घूमने पर ऐसा नहीं लगता । हां, यहां के म्यूजियमों में प्राचीनकाल के चिह्न अवश्य मिल जाते हैं । वाइकिंगों की पोशाक, हथियार और नावें रखी हुई हैं । शहर में पुराने जमाने के दोएक गढ़ या किले भी हैं ।

यह अपने ही नाम के फियर्ड पर बसा है । पांच लाख की आबादी वाला यह शहर नार्वे का प्रमुख बंदरगाह है । जहाज यहां साल भर आयाजाया करते हैं । उत्तरी यूरोप के बड़े बंदरगाहों में इस की मान्यता है ।

यदि नार्विक में मध्यरात्रि का सूर्य देखने न जाता तो शायद यहां आता भी नहीं । बस, केवल अपनी घुमक्कड़ी प्रवृति ने मुझे इस उत्तरी ध्रुवांचलीय स्थान को देखने के लिए प्रेरित कर दिया । इस यात्रा में प्रभुदयालजी साथ नहीं थे । भोजन की असुविधा साधारणतया मुझे हुई नहीं क्योंकि स्कैंडिनेविया के देशों में दूध, मक्खन, रोटी और पनीर बहुतायत से मिल जाते हैं ।

ओसलो के लिए मैं ने होटल में पहले से बुकिंग नहीं कराई थी । गरमी के इन दिनों में मेरी तरह दूसरे बहुत से यात्री ध्रुवांचलीय स्थानों से घूमते हुए यहां आ जाते हैं । इसी लिए होटलों में जगह की कमी हो जाती है । मैं ने तीनचार होटलों में कोशिश की पर सफल न हो सका । एक बार तो यहां तक भ्रम हुआ, कि रंगभेद की भावना के कारण शायद मुझे स्थान नहीं दिया जा रहा है पर देखा, मेरी तरह अन्य गैर यूरोपीय लोग उन्हीं होटलों में हैं तो यह भ्रम मिट गया ।

कुछ पशोपेश में पड़ गया । रात के दस बज चुके थे । सोचने लगा कि आवास की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए । खैर, कुछ और कोशिश करने पर जगह मिली एक छोटी सी सराय (पेंसन) में । अवकाश प्राप्त व्यक्ति अपने मकान में तीनचार कमरे किराए पर उठाने के लिए रख छोड़ते हैं । इन के यहां किराएदारों के लिए चाय, नाश्ते, भोजन आदि की भी व्यवस्था रहती है । अधिकतर इन पेंसनों की मालकिन महिलाएं होती हैं । कमरे में गया, एक अजीब सी सीलन की गंध मिली । वह गंध अब तक याद है । बहरहाल, मैं खुश था कि चलो जगह तो मिल गई वरनाअनजान शहर में सारी रात भटकता ही रह जाता ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सामान रख कर बैठा ही था कि मालकिन की लड़की दूधरोटी ले कर आई। देखता हूं कि उस के साथ एक अन्य लड़की हाथ में बैग ले कर आई है। पहली के चले जाने पर दूसरी लड़की बैग खोल कर उस में से कई तरह की सिगरेटें निकाल कर दिखाने लगी। मैं ने कई बार उसे समझाया कि मैं सिगरेट नहीं पीता पर वह तो मानो छोड़ने को तैयार ही नहीं थी। टूटीफूटी अंगरेजी में बेतरह मनुहार करने लगी कि कुछ न कुछ पसन्द कर ही लूं। सट कर इस प्रकार बेतकल्लुफी से बैठ गई जैसे बहुत पुरानी जानपहचान हो। लाचार हो कर मुझे आवाज में कुछ बेरुखी ला कर उसे जाने के लिए कहना पड़ा।

दूसरे दिन सवेरे मैं ने सराय की मालकिन से रात की घटना का जिक्र किया। वह मुसकरा कर कहने लगी कि आप ने बड़ेबड़े होटलों को छोड़ कर मेरी सराय में रहना पसंद किया, इस से हमारे समझने में कुछ भूल हो गई। क्या कहूं आप ने पसंद ही नहीं की, नहीं तो वह आप की ओसलो यात्रा को बहुत ही मधुर बना देती। अपने देश में पंजाब, अन्य पहाड़ी इलाकों के होटलों के बारे में इस ढंग की बातें सुनी थीं पर इन सभ्य और उन्नत देशों में भी यात्रियों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था रहती है, यह तो यहां आ कर ही जान पाया।

मालकिन क्याक्या कह गई, ठीक समझ नहीं पाया पर शायद उस का आशय था कि जो आत्मीयता और सुखसुविधा उस की इस सराय में मिल सकती है, वह बड़े होटलों में नहीं मिलेगी। उस ने यह भी कहा, "यूरोप और अमरीका के अलावा दूसरे देशों के भी विशिष्ट व्यक्ति इस सराय में ठहरा करते हैं और हफ्तों के लिए बुकिंग करा लेते हैं। आप का तो महज दो ही दिनों का प्रोग्राम है। चाहें तो गाइड के रूप में किसी सहायक को साथ कर दूं। चार्ज टूरिस्ट प्रतिष्ठानों से बहुत ही कम लगेगा।"

ओसलो में मैं किसी को जानता नहीं था, न मुझे इस सरायों के बारे में ही कुछ पता था। इसलिए विदेश में अप्रत्याशित झंझटों से बचने की प्रेरणा और मितव्ययी होने की आदत के कारण उस के दोनों सुझावों के लिए मैं ने धन्यवाद दिया और गाइड न ले कर गाइडबुक लेना स्वीकार किया।

गाइडबुक पढ़ कर मैं ने मोटे तौर पर शहर घूमने का एक कार्यक्रम बना लिया। पूरे दिन के लिए तीन रुपए में ट्राम की टिकट ले ली।

सब से पहले मैं जहाज बनाने के कारखाने देखने गया। नार्वे उन दिनों जहाजरानी के उद्योग में विश्व में द्वितीय स्थान पर था। अब तो जापान सब से आगे बढ़ गया है इसलिए इस का स्थान तृतीय माना जाता है। जो भी हो, नार्वे का यह उद्योग उस की आर्थिक स्थिति को संभालने में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। केवल जहाजों के किराए से ही नार्वे की वार्षिक आय १६० करोड़ रुपए है यानी इस देश की आबादी के अनुसार प्रति व्यक्ति ४५० रुपए। यह आय हमारे भारतवर्ष की कुल आय से भी कुछ अधिक है।

यहां के जहाजों के कारखाने और इस उद्योग के विकास को देख कर नार्वेवासियों के प्रति मन में आदर का भाव उठना स्वाभाविक है। दैनिक जीवन के लिए आवश्यक अन्नवस्त्र और उद्योगों के लिए प्रयोजनीय धातु और कोयले के अभाव को इन्होंने केवल श्रम और अध्यवसाय से दूर किया है। १४५ लाख टन के जहाज तो केवल यहां के प्रतिष्ठानों के पास हैं। इस के अलावा ५० लाख टन के जहाज इन के कारखानों में प्रति वर्ष बनाए जाते हैं। आठ मील लंबी गोदी में सूखे डौक, तैरते डौक और पानी के डौक पर बने बीसियों कारखाने हैं जिन में जहाजों के बृहदाकार ढांचे खड़े रहते हैं। देख कर तब आश्चर्य होता है जब कि थोड़े समय में ही लोहे के इन पिंजरों को सुंदर जहाजों में बदल दिया जाता है। तब ये महासागरों की ऊंचीऊंची लहरों को लांघते हुए दुनिया के कोनेकोने में माल और यात्री पहुंचाते हैं, अपने देश के लिए धन बंटोरते हैं और उस धन से अन्नवस्त्र तथा अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल खरीदते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखा, मजदूर काफी स्वस्थ थे।लगन और मेहनत से काम पर जुटे हुए थे। एक कारखाने के निरीक्षक से पूछने पर पता चला कि इन के मुकाबले में केवल पश्चिमी जरमनी के मजदूर ही कार्य कुशलता और परिश्रम में ठहर पाते हैं।

मजदूरों की केंटीन में गया। काफी और रोटी ली। कीमत को देखते हुए बुरी न थी। इन लोगों के मीनू को देखा, मांसाहार प्रधान है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अत्यंत शीतप्रधान अंचल में होने तथा अन्न की कमी के कारण यहां मांसाहार आवश्यक हो जाता है। इन लोगों से बातें भी कीं। रूसी मजदूरों से ये कहीं अधिक जानकारी रखते हैं। इस का कारण शायद यह है कि रूस में निर्धारित काम और सरकार द्वारा नियंत्रित जीवन है। परिणाम यह होता है कि व्यक्तित्व कुंठित रहता है और व्यक्ति केवल यह सोचता है कि वह बड़ी मशीन का एक पुर्जा मात्र है। इसलिए वहां व्यक्ति केवल सौंपे गए काम, भोजन और भोग तक ही सीमित रहने का अभ्यस्त होता है। वहां न उस के पास अतीत है और न भविष्य, वह केवल वर्तमान देख सकता है। नार्वे के मजदूरों में ऐसी बात नहीं है। वे घरपरिवार, देशविदेश के बारे में सोचते है और एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर कदम बढ़ाते चलते हैं। उन का जीवन जड़वत् नहीं, चेतनापूर्ण है। फुरसत के समय वे इब्सन के साहित्य के बारे में भी चर्चा करते हैं।

जहाज के कारखानों को देखकर वापस आ गया। यहां की सबसे बड़ी सड़क है: कार्ल जीन्स गेट। इसी पर ओसलो की प्रसिद्ध इमारतें हैं। राजप्रासाद, संसद भवन, बड़ेबड़े दफ्तर, दुकानें और सब्जी के बाजार तक इसी एक सड़क की दोनों पटरियों पर मिल जाएंगे। ट्राम का पास सारे दिन के लिए था इसलिए इधर से उधर, रात के नौ बजे तक चक्कर लगाता रहा। लंबे तड़गे स्वस्थ चेहरों और खुशहाली को देखकर बार बार मन में विचार उठता था कि यदि इन देशों के लोग, जहां प्रकृति तक अनुदार है, मेहनत करके खुशहाली ला सकते हैं तो हम अपने देश को, जहां खेतों पर नाज की बालियां मस्ती से झूमती हैं और धरती अपनी कोख से शिल्पोद्योग के लिए भांतिभांति का कच्चा माल देती है, क्यों नहीं संपन्न बना पा रहे हैं?

रात दस बजे अपनी सराय में लौटा। बाजार से कुछ फल और सब्जियां लेता आया था। देखा, मांबेटी राह देख रहीं थीं। उन्हें सब्जियां दे दीं और अगले आधे दिन के लिए एक गाइड की व्यवस्था कर देने को कहा। मैं चाहता था कि वाईकिंग म्यूजियम, संसद भवन, ग्रामीण म्यूजियम के अलावा विश्व के महान नाट्यकार इब्सन का निवास स्थान भी देख लूं। गाइड के लिए आधे दिन का चार्ज देना पड़ा ३० रुपया। लंच का खर्च और यातायात का किराया ऊपर से। सराय में ठहरने की वजह से किराए में जो बचत हुई थी, वह सभी रकम गाइड के खर्च में लग गई।

मईजून में स्केंडिनेविया में रात के बारह एक बजे तक दिवालोक रहता है। सोते समय अंधेरा करने के लिए दरवाजे और खिड़कियों पर काले परदे गिरा दिए जाते हैं। रात को मालकिन की लड़की आई और परदे गिराकर चली गई। जाते समय उसने शुभरात्रि का अभिवादन करते हुए सुखद निद्रा की कामना की। पश्चिमी देशों में बतौर पेइंगगेस्ट ठहरने पर मालकिन या परिवार के लोगों का ध्यान अतिथि की सुखसुविधा पर बहुत रहता है। कम खर्च और आत्मीयता के कारण बहुत से लोग इस व्यवस्था को होटलों से ज्यादा पसंद करते हैं।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे नाश्ता करके उठा तो देखता हूं कि गाइड के रूप में वही सिगरेटवाली लड़की हाजिर है। देखा, किसी प्रकार का संकोच या झेंप अथवा रोष की झलक उसके चेहरे पर न थी। ऐसी दिखती थी मानों पहले पहल मिल रही हो। मालकिन ने उसका परिचय कराया नाम था :डोरोथी। हम दोनों घूमने निकल पड़े।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सबसे पहले विदोय प्रायद्वीप में यहां के म्यूजियम देखने थे। रास्ते में हमने देखा ओसलो फियर्ड में इतनी संख्या में छोटेबड़े बोट तेजी से आ जा रहे थे कि किसी भी समय आपस में टकरा जाने की संभावना थी। पर नार्वे के मल्लाह इतने कुशल हैं कि इस संकरे फियर्ड में बड़ी तत्परता और सफाई से बोट निकाल ले जाते हैं।

बाहर से देखने पर यहां के म्यूजियम लंदन और पेरिस के म्यूजियमों के मुकाबले में नहीं ठहरते पर अंदर जाने पर संग्रह बेजोड़ लगते हैं। एक कक्ष में देखा नानसेन का 'फ्राम' जहाज रखा है। वे सारी वस्तुएं भी रखी हैं जिन्हें वे उत्तरी ध्रुव की यात्रा में ले गया था। इस छोटे से जहाज को देखकर आश्चर्य होता है कि आज से ७० वर्ष पहले, जब विमान न तो इतना उन्नत था और न आज के से साधन थे, उत्तरी ध्रुव की खतरनाक यात्रा इस छोटे से बोट में करने का साहस उससे कैसे किया! उसकी लिखी हुई पुस्तक 'उत्तरी कोहरा' पढ़ने पर पता चलता है कि उसे अपनी इन यात्राओं में कितने कष्ट झेलने पड़े थे।

पास ही देखा 'कोनटिकी' नाम का जहाज भी था। इसे बोट कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। हाइड्रल नाम के नार्वे के एक युवक ने इसी पर पेरू से पोलेनेशिया तक की समुद्र यात्रा की। लगभग ५०० मील की लंबी और कष्टों से भरी यात्रा, ऊपर से प्रशान्त की ऊंची लहरें। फिर भी साहसपूर्ण यह दुस्साहसिक कार्य उसने पूरा कर ही लिया। कोनटिकी पुस्तक में इस यात्रा के कष्ट और अनुभवों का वर्णन पढ़कर ऐसे नवजवानों के प्रति आदर के भाव जाग उठते हैं जिन्होंने हर प्रकार के खतरे उठाकर अपने देश के गौरव को बढ़ाया।

ग्यारह सौ वर्ष पहले के तीन वाइकिंग युद्धपोत देखे। इन्हीं पर बैठकर नार्वे के योद्धा अबाध रूप से यूरोप के देशों पर उमड़ पड़ते थे। इनके बारे में जो पढ़ने को मिलता है उससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार की बर्बरता की तुलना रोम के वहशी सम्राट नीरो के कारनामे अरबों या तुर्कों द्वारा जेहाद अथवा नादिरशाह की खूंरेजी से की जा सकती है। आज के युग में नाजी फौजों और साम्यवादियों ने भी कम अत्याचार नहीं किए हैं। फिर भी सभ्यता का एक परदा इन लोगों ने जरूर रखा था। लोगों की नजरों से दूर नाजी कंसंट्रेशन कैंपों और साइबेरिया की वीरान जेलों में हजारों की तादाद में घुटाघुटा कर लोगों के दम तोड़े गए जबकि प्राचीन काल में सरेआम आगजनी और कत्लेआम किया जाता था। सुसभ्य अंगरेज और डच भी किसी से कम नहीं थे। हां इनका तरीका जरूर कुछ भिन्न रहा है। ये जोंक या चीते की तरह खून पीते रहे। जब देश नंगाभूखा हो गया तब उसे आजाद कर इन लोगों ने इंसानियत का डंका पिटवा दिया। शायद मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति उसकी चिर सहचरी है।

डोरोथी से बीचबीच में आवश्यक जानकारी मिलती जा रही थी। मैंने उसे बताया कि हमारा देश भी किसी समय सामुद्रिक व्यापार और यात्राओं में अद्वितीय था पर हमने यूरोप वालों की तरह कभी बर्बरता नहीं की। विदेशों को हमने लूटा नहीं, उन्हें दिया ही, और जो दिया वह आज भी उनकी सभ्यता और संस्कृति में है। वर्मा, मलाया, स्याम और इंदोनेशिया से लेकर सुदूर दक्षिण अमरीका तक देश इसकी साक्षी दे रहे हैं।

वाइकिंगों के आक्रमण योजनाबद्ध और सुसंगठित होते थे। वे पहले पास के किसी टापू पर जहाज और सामान इकट्ठा कर लेते, फिर वहां से सैकड़ों नावों में सवार होकर धावा बोल देते थे। गांवों में आग लगाना और मारते काटते ध्वंस करते निकल जाना उनका पूर्वनियोजित कार्यक्रम होता था। सिवा जवान औरतों के, शेष सभी को वे आग में ढकेल देते थे। युवतियों से मनमानी करने के बाद वे उन्हें वहीं रोता-कल्पता छोड़ देते, साथ ले जाने की उन्हें फुरसत कहां थी! ले भी जाते तो अपने देश में उन्हें खिलाते क्या? वहां तो पहले से ही खाद्य सामग्री का अभाव था। अपार क्षति पहुंचाकर अट्टहास करते हुए अन्न और सम्पदा से लदे जलयानों और युद्धपोतों को लेकर वे फिर अपने देश को वापस आ जाते थे। जब कोई बड़ा योद्धा मर जाता तो उसके जलयान को उसकी लूट की सम्पत्ति के साथ दफना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देते थे। ऐसी ही तीन नौकाएं मिली हैं जिन्हें यहां म्यजियम में रखा गया है।

ग्यारह सौ वर्ष बाद इन्हीं वाईकिंगों की आसुरी प्रवृत्ति उभर आयी नाजी जरमनों में। उन्हीं वाईकिंगों की तरह वे उमड़ पड़े नार्वे पर। नार्वे श्रीहत हुआ। अपार धन की हानि हुई नाजियों ने हजारों की संख्या में लोगों को गोली से उड़ा दिया। क्विसलिंग नामक एक राष्ट्रवादी नार्वे-वासी को हिटलर ने यहां के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। सन् १६४० से १६४५ तक नार्वे पर जरमनों का अधिकार रहा। छः लाख जरमन फौजों ने इस देश को उत्तर से दक्षिण तक बुरी तरह रौंदा।

इन वर्षों में नार्वेवासियों ने धैर्य, संयम और साहस का जो परिचय प्रस्तुत किया है, उसकी मिसाल बेजोड़ है। सारा राष्ट्र मानों एक नियोजित रूप से संगठित हो कष्टसहिष्णु बन उठा और विदेशियों से असहयोग करने लगा। नार्वे के राजा ने लंदन में अपनी सरकार संगठित कर ली। जहाज पहले ही बच निकले थे। वे मित्र राष्ट्रों के युद्ध के सामान, तेल, सेना और हथियारों को ढोने में लगे रहे। इनमें से बहुतों को जरमन पनडुब्बियों ने नष्ट कर दिया, फिर भी, वे नार्वे वालों को पस्तहिम्मत न कर सके। नार्वे के लोग, जो विदेशों में थे वहीं से संगठित होकर जरमनों को परेशान करने में जुट पड़े।

जरमनी हारा और क्विसलिंग को गोली मार दी गई। जहां वह मारा गया था, वहीं पास में सैनिकों का एक स्मारक बनाया गया। शायद, याद दिलाने की इस भावना से कि नार्वे में एक क्विसलिंग पैदा जरूर हुआ मगर हजारों ऐसे भी हुए जिन्होंने देश की प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी।

वाईकिंगों की नौकाओं के संग्रहालय के निकट ही विगत एक हजार वर्षों में बने नार्वे के मकानों की प्रदर्शनी है। पुराने जमाने के मकान देखे। लकड़ी के मोटे लट्ठों को ऊपर नीचे खड़ा कर घरनुमा बनाया गया है। उसी रंग की बेडौल टेबल, कुरसियां और दूसरी चीजें देखने को मिलीं। खानेपीने के बरतन लकड़ी के थे। इन्हें देख कर मैं अपने यहां के हजार वर्ष से भी पहले के मकानों और लकड़ी के सामानों के बारे मे सोचने लगता था। कितनी कारीगरी, खूबसूरती और नफासत हमारे यहां थी! कितने संपन्न, सभ्य और सुसंस्कृत थे हम! लेकिन आज ?......ऐसा क्यों ?

दोपहर हो गई थी। हम विदोय से यहां की नेशनल लाइब्रेरी में गए। डोरोथी का कार्यक्रम मेरे साथ केवल आधे दिन का था। मैं ने उसे छुट्टी दे दी। मैं पुस्तकालय में रुक गया ताकि नार्वे के बारे में कुछ आंकड़े और आवश्यक जानकारी पा सकूं।

नार्वे में शायद ही कोई निरक्षर मिले। यही नहीं, अनेक भाषाएं जानने वाले लोग भी यहां मिल जाएंगे। अंगरेजी का जितना प्रचलन यहां है, उतना पड़ोसी देश फ्रांस या जरमनी में नहीं है। पचास करोड़ लोगों के देश भारत की नेशनल लाइब्रेरी से छत्तीस लाख की आबादी वाले इस देश की लाइब्रेरी में पुस्तकें अधिक हैं। इस के अलावा यहां और भी बड़ेबड़े पुस्तकालय हैं। जहां कहीं भी जाइए, स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान, कुछ न कुछ पढ़ते मिल जाएंगे।

जानता था, यहां भी हिंदी में पुस्तकें नहीं मिलेंगी। हम ने आज तक इस का प्रयास ही नही किया कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पचास करोड़ की राजभाषा को सुपरिचित कराया जाए। फिर भी, हिंदी कोई भाषा है, इसे ध्यान में लाने के लिए मैं ने कुछ पुस्तकें हिंदी में देने का अनुरोध किया। पुस्तकालय का सहायक चीनी, जापानी, तुर्की, अरबी, फारसी का नाम तो जानता था। रवींद्र के कारण बंगला का नाम भी उस ने सुना था, पर हिंदी हिंदुस्तान की राजभाषा है, इस की उसे जानकारी नहीं थी। मैं मुसकरा उठा लेकिन उस पर नहीं, स्वयं पर, अपने देशवासियों पर, अपने दूतावासों पर जो विदेशों में अपने देश की राजभाषा का प्रयोग तक करने में संकोच अनुभव करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बहरहाल, उस ने हिंदी के लिए विवशता बताई और कहा कि अंगरेजी में पुस्तकें मिल सकती हैं। मैं ने विषय बता दिए, थोड़ी ही देर में मेरी टेबल पर पुस्तकों का अंबार लग गया। मुझे जो जानकारी लेनी थी, आसानी से मिल गई। प्राप्त आंकड़ों से मुझे यह विचार बदल देना पड़ा कि नार्वे संपन्न देश नहीं है। हां, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, पश्चिमी जरमनी और अमरीका की अपेक्षा यह गरीब जरूर है।

द्वितीय महायुद्ध में जरमनों ने यहां के सारे कारखाने नष्ट कर दिए थे। युद्ध के बाद देश में न तो उधोगधंधे बचे और न खाने के लिए अनाज। बची थी केवल एकता की भावना कि राष्ट्र को किस प्रकार पुनर्जीवित किया जाए। अमरीका ने इन्हें आठ वर्षों में २,५०० करोड़ रुपए की मदद पहुंचाई। इस राशि को सुनियोजित ढंग से काम में लगा कर नार्वे की जनता ने अपने शिल्पोद्योग का विकास किया और उत्पादन क्षमता पहले से डयोढ़ी कर ली। बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थिति हमारे देश की भी रही है बल्कि हमारे पास कच्चा माल था, शिल्पोद्योग नष्ट नहीं हुए थे, अमरीका और अन्य देशों से आर्थिक सहायता भी काफी मिली, हमारे रुपए इंगलैंड पर पावने भी थे, मगर सर्वस्व स्वाहा कर दिया हम ने। हम आज भूखे हैं और कर्जदार भी। अभाव का कारण केवल एक है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता का बोध न मालिकों में है और न मजदूरों में, न शिक्षकों में है और न विद्यार्थियों में।

नार्वे में प्रति वर्ष दस लाख यात्री विदेशों से आते हैं। इस से इन्हें लगभग बाइस करोड़ रुपए की आमदनी हो जाती है। जीवन में आगे बढ़ना इन्होंने अच्छी तरह जान लिया है। उत्साह और जिज्ञासा यहां के लोगों में पर्याप्त है। यही कारण है कि पिछले पचास वर्षों में अकेले नार्वे में सात ऐसे व्यक्ति पैदा हुए जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला है। ध्यान देने की बात है कि नार्वे से लगभग डेढ़ सौ गुनी बड़ी आबादी वाले हमारे देश में अब तक केवल दो ही व्यक्ति इस गौरव से विभूषित हो सके हैं।

वैसे नार्वे के पास केवल ३३,००० जवानों की जल, थल और नभ सेना है पर यहां १६ से १९ वर्ष तक के प्रत्येक युवक को सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। इस से जरूरत पड़ने पर इन्हें प्रशिक्षित सैनिकों का अभाव नहीं रहता।

मैं चकित रह गया कि महज छत्तीस लाख की आबादी है यहां की और टेलीफोन हैं सात लाख। पांच लाख मोटरें और ट्रक इन के पास हैं। इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि इन के जीवन का स्तर कैसा होगा। वृद्धावस्था, बीमारी और बेकारी के लिए यहां बीमे की व्यवस्था है। ऐसी परिस्थिति में सरकार पेंशन देती है। १४०० करोड़ रुपयों का वार्षिक आयात और ६२० करोड़ का निर्यात नार्वे करता है। इस विषमता की पूर्ति होती है इन के मालवाही जहाजों के किराए से और कभीकभी विदेशी सहायता से। देश का वार्षिक बजट १,१०० करोड़ रुपए का है।

लाइब्रेरी में काफी समय लग गया। थियेटर की बुकिंग पहले से कर ली थी। इब्सन का 'जनता शत्रु' नाटक स्थानीय नेशनल थियेटर में चल रहा था। इसे मैं देखना चाहता था। कलकत्ता में मैं ने शंभु मित्र और तृप्ति मित्र द्वारा प्रस्तुत यह नाटक बंगला में देखा था। भाषा न जानने पर भी अधिक दिक्कत नहीं हुई क्योंकि अनुवाद पढ़ा हुआ था। अभिनय में स्वाभाविकता और दक्षता थी, फिर भी मुझे कलकत्ते के 'बहुरूपी ग्रुप' की टेकनिक इन से ज्यादा मंजी हुई लगी।

यूरोप के सभी देशों में बड़ीबड़ी नाट्यशालाएं होती हैं। लोकप्रिय होने के साथसाथ इन्हें राष्ट्रीय महत्त्व का भी माना जाता है। यहां का नेशनल थियेटर भी इसी कोटि का है। पेरिस का 'आपेरा' इस से पूर्व देख चुका था। उस की तुलना में यह बहुत छोटा है। फिर भी, इस छोटे से देश के लिए तो यह गौरवस्वरूप है ही।

थियेटर से वापस जब सराय पहुंचा, रात के एक बजे थे। देखा, मालकिन की लड़की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जगी हुई है। मैं झेंप सा गया मन ही मन। मेरे लिए सारी व्यवस्था कर दी गई थी।

औपचारिकता के नाते मैं ने खेद प्रकट दिया। थकान थी ही, बिस्तर पर जाते ही आंखों पर नींद का परदा गिरने लगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निशा सूर्य के देश में

स्वीडन

बहुत दिनों से सुन रखा था कि हमारी धरती पर उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव नामक ऐसे स्थान भी हैं जहां छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है। पिछली बार स्वीडन गया तो सोचा कि उत्तर के ध्रुवांचलीय प्रदेशों के इतने निकट जब पहुंच ही गया हूं तो क्यों न इस अवसर का लाभ उठा कर निशासूर्य के भी दर्शन कर लूं ! इसी इरादे से नक्शे पर निगाह डाली तो देखा कि उत्तरी ध्रुव को आइसलैंड, स्केंडिनेविया (नार्वे और स्वीडन), फिनलैंड, साइबेरिया और अलास्का एक दायरे में घेरे हुए हैं। स्केंडिनेविया यूरोप के उत्तर में एक प्रायद्वीप है जिस का आकार मुंह खोले हुए शेर की तरह है। उस में दो राज्य या देश हैं। उत्तर पश्चिम में नार्वे है और दक्षिण पूर्व में स्वीडन।

स्केंडिनेविया जाने का कार्यक्रम मेरे यूरोप पर्यटन में था, इसलिए मैं ने सब से पहले वहीं जाना ठीक समझा। तय किया कि पहले स्टाकहोम पहुंचा जाए, फिर वहां से उत्तर की ओर ध्रुवांचलीय प्रदेश लैपलैंड से होते हुए, नारविक के रास्ते, नारवे में प्रवेश कर उस की राजधानी ओसलो लौटा जाए, क्योंकि इस प्रकार स्वीडन और नारवे दोनों को उत्तर से दक्षिण तक देख लूंगा और निशासूर्य के दर्शन भी कर सकूंगा।

स्टाकहोम पहुंचा। यह स्वीडन की राजधानी है। इस में चारों ओर छोटीछोटी पहाड़ियों के साथ झीलों की कतार इस प्रकार गुंथी हुई है कि सारा वातावरण बहुत ही आकर्षक और दर्शनीय हो गया है। शहर के चारों ओर घने वन हैं, जो शहर के इतने निकट हैं कि शहर के मध्य भाग से बीसपचीस मिनट में ही वनों में पहुंचा जा सकता है।

स्टाकहोम की स्थिति सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सच पूछा जाए तो इस की स्थापना ही बाल्टिक सागर के रास्ते पर स्वीडन पर होने वाले आक्रमणों के विरुद्ध एक गढ़ के रूप में हुई थी। बाल्टिक सागर से आने वाले शत्रुओं की सेनाएं मालार झील के रास्ते स्वीडन में काफी अंदर तक पहुंच जाती थीं। उन को मालार झील के मुहाने पर ही रोकने के लिए आसपास की कई द्वीपों पर मोर्चाबंदी की गई थी और केंद्रीय स्थिति वाले द्वीप पर ग्यारहवीं शताब्दी में एक विशाल दुर्ग बनाया गया था। कालांतर में उस दुर्ग के इर्दगिर्द बस्तियां बसती गई। उन का ही विकसित रूप आधुनिक स्टाकहोम है।

नगर का उत्तरी भाग व्यापार और खरीदफरोख्त का केंद्र है। यहां आधुनिक ढंग की दुकानें और कार्यालय हैं। दक्षिण भाग में, जो नदी के दूसरी ओर है, स्टाकहोम द्वीप है। इसी पर स्वीडन का संसद भवन है और उस से आगे प्राचीन दुर्ग के स्थान पर, एक बहुत ही भव्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजप्रासाद खड़ा है। इस का नाम है रायल पैलेस। जिन दिनों रायल पैलेस में स्वीडन के नरेश नहीं रहते, उन दिनों कुछ कक्ष आम जनता के लिए खोल दिए जाते हैं। इस पैलेस में एक संग्रहालय भी है, जिस में भूतपूर्व राजारानियों के इस्तेमाल की वस्तुएं और अस्त्रशस्त्रादि संग्रहीत हैं।

स्टाडेन स्टाकहोम का सब से पुराना भाग है। उसकी कई गलियां बड़ी घुमावदार हैं और कोईकोई तो इतनी संकरी हैं कि ऊपर की मंजिलों में आमनेसामने रहने वाले लोग खिड़कियों से आपस में हाथ मिला सकते हैं। इन गलियों को देख कर काशी की गलियों की याद ताजा हो उठी। यहां के लोगों का मुख्य धंधा नावों पर माल चढ़ानेउतारने का है। नदी के किनारे हर कहीं मालअसबाव से लदी नावें दिखाई पड़ती हैं।

किनारे पर ही खुले में बाजार लगे मिलेंगे। भड़कीले रंगों की रंगबिरंगी छतरियों के नीचे सजी दुकानें बड़ी विचित्र और आकर्षक नजर आती हैं। यहां एक और विचित्रता देखी। कुछ दुकानों पर कांच की बड़ीबड़ी पेटियों में मछलियां तैरती रहती हैं और खरीदफरोख्त के लिए आई स्त्रियां जिंदा मछलियों में से ही अपनी रसोई के लिए मछलियां चुनती हैं।

इस द्वीप का मध्य भाग कुछ ऊंचा है। यहीं स्काटहोम का सब से पुराना कैथेड्रल है। चर्च में काठ पर जड़ी हुई 'संत जार्ज और अजगर' की एक प्राचीन मूर्ति भी देखी।

स्टाकहोम में नीले रंग की ट्रामें ही आवागमन का मुख्य साधन है। ये ट्रामें काफी तेज रफ्तार से चलती हैं।

जनता के रहनसहन के स्तर की दृष्टि से स्वीडन और स्विट्जरलैंड की गिनती संसार के सब से अधिक अमीर देशों में की जाती है। स्टाकहोम में मैं ने रेडियो से युक्त बहुत सी मर्सीडीज और हंबर जैसी महंगी मोटरगाड़ियां टैक्सियों की तरह चलती हुई देखीं!

शहर के बीच से होते हुए ट्राम से डियर पार्क पहुंचा। यहीं स्कासन देखा। यह एक बड़ा अजीबोगरीब संग्रहालय है। इस में स्वीडन के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न वास्तु शैलियों में बने पुराने मकान ला कर रखे गए हैं। यहां सदियों पुरानी पवनचक्कियां, लकड़ी के बने गिरजे, लैप लोगों की झोपड़ियां और विभिन्न इमारतें मौजूद हैं। अधिकांश मकानों में उन के निर्माण काल की ही मेजें, पलंग, कुरसियां आदि रखी हैं। विभिन्न प्रदेशों की तरहतरह की पोशाकें भी यहां रखी गई हैं।

इस संग्रहालय में एक चिड़ियाघर भी है जिस में केवल स्वीडन से बाहर के पशुपक्षी रखे गए हैं। पूरा संग्रहालय इस प्रकार बनाया गया है कि प्राकृतिक शोभा के साथ वह एकरूप हो गया है। कहीं भी कृत्रिमता नहीं आ पाई है।

स्टाकहोम की सब से सुंदर इमारत है टाउन हाल। यह आधुनिक वास्तुकला का एक बहुत ही अच्छा नमूना है और संसार भर में प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इस के निर्माण में बारह वर्ष लगे थे। यह इमारत मालार झील के किनारे एक तिकोने प्लाट पर बनाई गई है। काले पत्थर से बने इस के खंभों और मेहराबों का प्रतिबिंब झील के जल में देखते ही बनता है। इस की छत पर खड़े हो कर उत्तरी यूरोप के वेनिस—स्टाकहोम—को देखा जा सकता है। देखते समय घुमावदार गलियों, चमकती नहरों, हरेभरे पार्कों, नीली ट्रामों, रंगबिरंगी छतरियों वाली दुकानों और नौकाओं का दृश्य बड़ा ही अद्भुत लगता है।

नारविक जाने के लिए मैं ने पूर्व तटीय मार्ग चुना। मतलब यह कि स्टाकहोम से बोदेन होते हुए किरूना के रास्ते नारविक जाने का मार्ग अपनाया। तीसरे दर्जे का टिकट ले कर २३ अप्रैल को दिन के चार बजे ट्रेन में सवार हुआ। यहां के तीसरे दर्जे का किराया हमारे यहां के पहले दर्जे के किराए के बराबर है पर उस में आराम और सुविधाएं हमारे यहां के पहले दर्जे के मुकाबले कहीं ज्यादा हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूरी ट्रेन में गैस के नलों द्वारा ताप को नियंत्रित करने की व्यवस्था है। घंटी बजाते ही ट्रेन का एक कर्मचारी हाजिर हो जाता है। रात को सोने के लिए बिस्तर तैयार मिलता है और साथ ही तौलिया तथा पानी गिलास भी। पश्चिमी देशों में कहीं भी बिस्तर ढोने की मुसीबत नहीं उठानी पड़ती क्योंकि जहाज, हवाई जहाज, रेल आदि की यात्रा में या होटल में, जहां भी ठहरिए, साफसुथरा बिस्तर तैयार मिलता है।

ट्रेन में भोजन आदि की व्यवस्था भी थी। निरामिष होने के बावजूद मुझे, असुविधा नहीं हुई। दूध, पावरोटी और मक्खन पर्याप्त मात्रा में मिल गया। ट्रेन पूर्वी तट के समानांतर बोदेन तक जाती थी।

स्वीडन के इस भाग में बहुत सुंदर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं। इस प्रदेश में घने जंगल हैं। वनों की उपज तथा शिल्पोद्योग से यह संपन्न बन गया है। इस अंचल में नदियां और बंदरगाह भी हैं।

पश्चिम में नारवे के पर्वतों से नदियां निकल कर स्वीडन के आरपार पूर्व में बोधानिया की खाड़ी में गिरती हैं। इन नदियों में काटछांट कर लट्ठे बहा दिए जाते हैं जो बहते हुए कारखानों में पहुंचते हैं। यहां इन्हें काट कर और इन का सामान बना कर निर्यात के लिए बंदरगाहों में भेज दिया जाता है।

लकड़ी का उपयोग कागज बनाने में भी होता है। स्वीडन का कागज संसार भर में प्रसिद्ध है। यहां नदियों के प्रवाह को रोक कर विद्युतशक्ति का भी उत्पादन किया जाता है, जिस से बड़ेबड़े कारखाने चलते हैं।

स्वीडन वासियों पर प्रकृति की बड़ी कृपा है। स्वीडिश भी प्रकृति के प्रति अनुदार नही हैं। वे जंगल में पेड़ों पर आरे चलाते हैं लेकिन साथसाथ उन के विकास की व्यवस्था करते हैं। वे नदियों के प्रवाह को बांध बना कर रोकते हैं पर इस बात का भी खयाल रखते हैं कि बांध के कारण आगे चल कर खेती या जमीन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। यही कारण है कि आज स्वीडन कागज और लकड़ी के उद्योग में संसार के अग्रणी देशों में गिना जाता है। साथ ही वह कृषि के क्षेत्र में भी उन्नति की ओर बढ़ रहा है।

स्वीडन को प्रकृति से एक और वरदान मिला है। वह वरदान है बहुत अच्छे किस्म के लोहे का। यूरोप में सब से अधिक लोहा इसी देश में होता है। यहां लोहे की खानें मुख्यतः दो स्थानों में हैं—मध्यभाग में तथा उत्तर के लैपलैंड में। स्वीडन प्राचीन काल से ही लोहे के उद्योग में अन्य देशों से बढ़ कर रहा है। आज भी अच्छे इस्पात के लिए स्वीडन का लोहा प्रसिद्ध है। स्वीडन को समृद्ध बनाने और विदेशों से धन बटोर कर देने में, कागज और लकड़ी की भांति, लोहा भी मदद कर रहा है। यात्रा काफी आरामदेह थी। शीशे की खिड़कियों पर काले परदे बाहर की रोशनी से बचाव कर रहे थे। इसलिए नींद में बाधा नहीं पड़ी। सुबह आठ बजे नींद खुली।

रात भर में लगभग ७०० मील उत्तर की ओर आ गया था। याद आया, स्वीडन की ट्रेनें अपनी तेजरफ्तारी के लिए प्रसिद्ध है। सुबह की ठंडी हवा में ताजगी थी। एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव हुआ। झटपट तैयार हो गया। शीशे के काले परदे को हटा कर बाहर का दृश्य देखने लगा।

बाहर तेज धूप छिटक रही थी और धरती अप्रैल के उस अंतिम सप्ताह में भी बरफीली चादर से ढकी नजर आ रही थी। कभीकभी छोटेछोटे गांव आंखों के सामने आ कर तुरंत ओझल हो जाते थे।

ट्रेन नौ बजे बोदेन पहुंची। उत्तरी स्वीडन का यह बड़ा रेलवे जंकशन है। साथ ही सैनिक केंद्र और एक औद्योगिक नगर भी है। स्टाकहोम से यहां तक यह ट्रेन एक्सप्रेस रहती है पर इस के आगे पैसेंजर हो जाती है क्योंकि उत्तर के इस प्रदेश में यात्रियों का आनाजाना कम हो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाता है। यहां से उत्तरपश्चिम की ओर किरूना होते हुए नारविक तथा दक्षिणपूर्व की ओर लुएला के बंदरगाह पर पहुंचा जा सकता है।

बोदेन से ट्रेन लगभग साठ मील ही चली होगी कि सफेद पत्थरों की बनी एक सीमारेखा दिखाई पड़ी। मन में प्रश्न उठा, 'स्वीडन की सीमा का अंत यहां तो नहीं होना चाहिए, फिर यह सीमारेखा यहां कैसे ?' इतने में ही एक बोर्ड आंखों के सामने से गुजरा। अंगरेजी तथा अन्य दो तीन भाषाओं में उस पर लिखा था: उत्तरी वृत्त। मुझे खुशी हुई कि मैं अब ध्रुवांचलीय प्रदेश लैपलैंड में पहुंच गया हूं, जहां दो महीने सूर्यास्त होता ही नहीं।

किरूना में लैपों की एक अच्छी सराय है, जहां वे काफी और शराब के प्यालों पर जुटते हैं। मैं भी घूमताघामता वहीं पहुंचा। बड़ी इच्छा थी इन्हें पास से देखनेसमझने की। वहीं एक शिक्षित लैप से भेंट हो गई। वह थोड़ीबहुत अंगरेजी जानता था इसी के माध्यम से बातें कर के लैपों के बारे में काफी जानकारी हासिल की।

लैंप एक आदिम जाति है। लैपों की अपनी एक सभ्यता है। साधारणत: प्रत्येक लैप तीन या कम से कम दो भाषाएं तो जानता ही है। लैपों में कई ऐसे हैं जो डाक्टर है, स्कूल कालिजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापक हैं। स्वीडन की सरकार ने लैपों को समान नागरिक अधिकार दिये हैं। उन की शिक्षादीक्षा की समुचित व्यवस्था है। अपनी बात और अपने लोगों के प्रति जिस प्रकार का लगाव हम लोगों में रहता है उसी प्रकार का लैपों में भी है। भले ही कोई लैप डाक्टर, इंजीनियर या प्रोफेसर बन जाए, स्वजनों का मोह उसे बराबर खींचता रहता है। बहुत से ऐसे लैप भी हैं जो आधुनिकता से पिंड़ छुड़ा कर अपने उसी कठोर जीवन में चले आए हैं और सचमुच उस में वे सुखशांति और आराम का अनुभव करते हैं।

रेगिस्तान में जैसे ऊंट सब से बड़ी संपत्ति और जहाज है, वैसे ही बरफानी प्रदेश में रेंडियर है। यह हमारे देश के बारहसिंगे जैसा होता है। प्राचीन काल में जिस प्रकार गाय की महत्ता हमारे जीवन के विविध अंगों में थी, ठीक उसी प्रकार रेंडियर की महत्ता लैप जीवन में है। इन की आर्थिक और सामाजिक स्थिति इसी के सहारे टिकी हुई है।

बरफानी प्रदेश का यह पशु बरफ के बीच जमने वाली काई जैसी घास खा कर जीवित रहता है। लैपों को इस से अपना आहार और दूध प्राप्त होता है। लैप इस का मांस तो खाते ही हैं, इस की हड्डियों, चर्बी, मज्जा, तंतु, रोएं और चमड़े तक को काम में ले आते हैं। इस के सींग और हड्डियों से हथियार, औजार और दस्तकारी की कलापूर्ण वस्तुएं बनाई जाती हैं। मछली मारने के लिए इस की खाल का उपयोग नाव बनाने में किया जाता है। अपने तंबू सीने के लिए लैप इस की अंतड़ियों तक का धागे के रूप में उपयोग करते हैं। तंबुओं को रेंडियर ढोते हैं।

बाजार से रात के भोजन के लिए मुझे दालचावल, सब्जियां लेनी थीं। सौदा खरीदते समय मैं ने देखा कि शहर में सभी सुविधाएं अन्य आधुनिक शहरों की तरह उपलब्ध हैं। वैसे तो अंगरेजी समझने वाले मिल ही जाते हैं पर मुझे कहींकहीं दिक्कत भी महसूस हुई। ऐसे वक्त सोचने लगा कि स्वेड और अंगरेजी भाषा का स्रोत तो एक ही भाषा से है। आपस में बोल भले ही न सकें पर इन में क्या अंतर है कि परस्पर समझना भी कठिन है? संस्कृत से निकली हमारी हिंदी तो अपनी बहनों गुजराती, बंगला, मराठी, असमी वग़ैरह से इतनी मिलतीजुलती है कि इन के बोलने वाले की भाषा हम बोल चाहे न सकें पर समझ तो लेते ही हैं। मैं नारविक जाने वाली ट्रेन में बैठा था। किरूना पीछे छूटता जा रहा था। सोच रहा था, 'अच्छा हुआ कि यहां के लोग गुटबंदी के चक्कर में नहीं फंसे। फंस जाते तो क्या पता आज अन्य देशों की भांति इन्हें भी अमरीका या रूस का मुंह ताकना पड़ता।'

१० बजे रात को नारविक पहुंचा। नार्वे के उत्तरी भाग में यह व्यापार का प्रमुख केंद्र

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा बंदरगाह है । ध्रुवांचलीय प्रदेश में होने पर भी बंदरगाह बारहों महीने जहाजों के आनेजाने के लिए खुला रहता है । इस का कारण एटलांटिक महासागर के बीच से बहती हुई वह उष्ण धारा है जिसे 'गल्फ स्ट्रीम' कहते हैं, वह यहां बरफ जमने नहीं देती । नारविक बंदरगाह से नारवे अपने यहां तथा स्वीडन का लोहे का सामान और लकड़ी विदेशों को निर्यात करता है ।

इस नगर को पिछले महायुद्ध में जरमनों ने बुरी तरह तहसनहस कर दिया था लेकिन अब नारवे के लोगों के धैर्य और अध्यवसाय के कारण यह फिर से उठ खड़ा हुआ है । यही वजह है कि अच्छेअच्छे होटल तथा यातायात की सारी सुविधाएं यहां बड़ी आसानी से हासिल हो जाती हैं ।

निशासूर्य के दर्शन कराने के लिए स्वीडन तथा नारवे दोनों ही देशों की ट्रेनें, हवाई जहाज, बस आदि नियमित रूप से राजधानी से ध्रुवांचल तक आयाजाया करती हैं । हवाई जहाज से तो ६ घंटे में ही वापस लौटा जा सकता है । स्टाकहोम के हवाई अड्डे से १० बजे रात को हवाई जहाज रवाना होता है । उत्तर की ओर बढ़ने पर रात के समय आप को अंधेरा मिलने के बजाय उजाला मिलता जाएगा । ध्रुवांचल में आप को निशासूर्य के दर्शन करा कर यह साढ़े तीन बजे स्टाकहोम वापस ले जाता है ।

मैं रात के समय नारविक पहुंचा था लेकिन वहां दिन की तरह प्रकाश था ।

दूसरे दिन सुबह की ट्रेन से नारवे की राजधानी ओसलो के लिए रवाना हो गया । जितना मनोहर दृश्य मुझे किरूना और नारविक के बीच सफर में देखने को मिला था, उतना विदेशों में और कहीं नहीं मिला । रास्ते में तोरनेत्रास्क झील का पानी जम कर चट्टान सा बन गया था । लैप मछुए इस पर खेमे डाल कर रह रहे थे । यहीं जीवन में पहली बार निशासूर्य का आलोक देखा । सूर्य यहां मई से जुलाई तक अस्त नहीं होता । अपने यहां सूर्यास्त के घंटे भर पहले सूर्य में जैसी आभा रहती है, वैसी ही आभा रात को १२ बजे मुझे दिखाई पड़ी ।

क्षितिज से कुछ ऊपर को उठा हुआ वह मुसकरा रहा था । उस के दर्शन से ही मेरा शरीर पुलकित हो उठा । मैं समझ न पाया कि उस प्रकाशपुंज को क्या कहूं—दिवाकर, निशाकर या प्रभाकर !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जहां राजा के साए में वास्तविक जनतंत्र पनप रहा है......

डेनमार्क

डेनमार्क स्कैंडिनेविया के देशों में सब से छोटा है। कुछ वर्ष पहले तक इस की प्रसिद्धि 'दूधमक्खन का देश' के नाम से थी। आज भी यह दूध, मक्खन, पनीर, अंडे, मांस इत्यादि के उत्पादन के लिए संसार के अग्रणी देशों में माना जाता है। इस के अलावा पिछले महायुद्ध के बाद जब से इस ने औद्योगीकरण की ओर ध्यान दिया है, यहां उद्योगधंधों का विकास भी द्रुत गति से हो रहा है। डीजल इंजन के बड़ेबड़े कारखाने, सीमेंट, केमिकल और कागज की मिलें भी पूरी सफलता के साथ उत्पादन कर रही हैं।

डेनमार्क का क्षेत्रफल १६,००० वर्ग मील है और आबादी सिर्फ ४६,००,०००। कृषि और पशुपालन यहां का मुख्य व्यवसाय सदियों से रहा है। यूरोप के इतिहास में डेनमार्क का विशेष स्थान रहा है। डेन और स्कैंडिनेविया के 'वाइकिंग' प्रसिद्ध योद्धा माने जाते थे। चंगेजी और तैमूरी आंधियां स्थल पर चलती थीं तो डेन और वाइकिंगों का तूफानी हमला सागर से उठता हुआ उत्तरी यूरोप के तटों से टकराता था। बड़ेबड़े जहाजों पर हजारों की संख्या में ये हमला करते थे। इंगलैंड पर इनका आधिपत्य रहा है। उत्तरी यूरोप इन के नाम से कांप उठता था। अब युद्ध के तौरतरीकें बदल गए हैं—न समुद्री जहाजी योद्धा रहे हैं, और न प्यादे और घुड़सवार ही। उन की जगह राकेट, एटम बम और हाइड्रोजन बमों ने ले ली है। डेनमार्क के लिए इस होड़ में हिस्सा लेना संभव नहीं था, इसलिए उस ने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाया और फलस्वरूप इस के कृषिजात द्रव्य विदेशों के बाजार पर छाए रहते हैं और इस से करोड़ों की आमदनी होती है।

डेनमार्क की अपनी प्रथम यात्रा में मैं अकेला ही गया था। उसी समय स्वीडन के उत्तरी भाग से हो कर किरूना और नारविक भी गया था। विदेशों में चाहे कितने ही आकर्षक और दर्शनीय स्थान क्यों न हों, किंतु बिना साथी के मन नहीं लगता, ज़ल्दी ही स्वदेश लौटने की इच्छा प्रबल हो उठती है। डेनिश अच्छे मेजबान होते हैं। अतिथियों के सत्कार के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। अकेला या अनमना देखने पर पूछपूछ कर प्रेरणा देते रहते हैं, प्रसन्न करना चाहते हैं। इन्हें बड़ा खयाल रहता है कि विदेशी उन के देश के प्रति उदासीनता की भावना न रखें, क्योंकि इस का प्रभाव अन्य यात्रियों पर पड़ सकता है। अकेलापन अखर गया था। दो ही दिन रहा था वहां, पर लौटते समय 'फिर कभी' की भावना ले कर आया। इसी कारण यूरोप भ्रमण के अवसर पर दूसरी बार वहां प्रभुदयालजी के साथ गया।

यूरोप भोगवादी हैं। वहां के देश अपनी स्थिति या अवस्था से संतुष्ट नहीं रहते। पार्थिव

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लाभ के लिए सदैव यूरोपीय राष्ट्रों में होड़ सी लगी रहती है। ४६,००,००० की आबादी के इस छोटे से देश का निर्यात हमारे देश के निर्यात से ज्यादा है, जिस में अधिकांशतः मांस, मछली, अंडे और दूध की बनी चीजें हैं। चकित रह गया यह जान कर कि यहां औसत विदेशी व्यापार प्रति व्यक्ति ६,००० रुपए का है, जब कि हमारे देश का केवल ७० रुपए। इतने पर भी डेनमार्क को अपने पड़ोसी स्वीडन के समकक्ष होने की धुन है। इसी लिए कृषि और पशुपालन के अलावा आधुनिक उद्योगधंधों का भी वह विकास कर रहा है, साथसाथ पर्यटन उद्योग को भी बढ़ाना शुरू कर दिया है। सरकारी प्रोत्साहन से सुसज्जित रात्रि क्लब और कैबरे खुलने लगे । यही नहीं, मई से अगस्त तक टिवोली नाम का एक स्थायी कार्निवल भी बनाया गया। सारे विश्व में इस की प्रसिद्धि हो गई है। इस आकर्षण से दूरदूर से यात्री आया करते हैं।

सन १६६० में डेनमार्क में यात्रियों की संख्या १५,००,००० थी। इस प्रकार केवल पर्यटन उद्योग से उन्हें वार्षिक आय एक अरब दस करोड़ की हुई अर्थात हमारे यहां के प्रति व्यक्ति की आय से ४०० गुनी अधिक।

दूसरी यात्रा में यहां आया तो पहले से होटल की बुकिंग नहीं थी, क्योंकि रूस के बाद हमारा प्रोग्राम पूर्वी यूरोपीय देशों में जाने का था। लेकिन हमारे साथियों ने कहा कि गरीबी और अभाव तो भारत में ही नित्य देखते हैं, फिर क्यों नहीं कुछ दिन सुखी और समृद्ध देशों में रहें। अतः वहां की यात्रा रद्द कर हम यहां आ गए। जून का महीना था। फिर होटल खाली कहां ? किसी प्रकार बिना बाथरूम वाली एक छोटी सी कोठरी मिल गई, जिस में पलंग की जगह दो सोफे थे। यात्रियों की भीड़ इतनी थी कि होटलों के किराए भी बढ़ा दिए गए थे। हमारे यहां मेले के दिनों में मरियल टट्टू के तांगे भी महंगे हो जाते हैं, वही हालत यहां होटलों की थी।

फिनलैंड और स्वीडन में भी हम ने दूधमक्खन की प्रचुरता देखी थी, पर यहां की तो बात ही निराली थी। कहा जाता है कि हमारे देश में कभी दूध की नदियां बहती थीं। मगर महाभारत में यह भी मिलता है कि बालक अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिला कर भुलावा दिया गया था। गरीब मां दूध नहीं दे सकी थी। प्रचुरता या अभाव—किसे सही माना जाए ?

जो भी हो, डेनमार्क में हम ने दूध की नदी या नाले तो बहते नहीं देखे, हां, यह जरूर देखने में आया कि अधिकांश दुकानों में दूध, मक्खन, पनीर और बड़ेबड़े अंडे बिकने के लिए रखे हैं, चाहे वह दवा की दुकान हो या किरानेगल्ले की। नाना प्रकार और आकार के मांस भी सजा कर रखे गए थे। शीत प्रधान देश होने के कारण इन में बदबू नहीं आती थी।

हम इन्हें देख कर यह सोचते थे कि किसी समय हमारे देश के किसानों के पास सैकड़ोंहजारों गाएं रहती थीं। आज भी हमारे देश में साढ़े नौ करोड़ से भी अधिक दुधारू गाएं और भैंसें हैं। अधिकांश प्रांतों में गोवध बंद है, फिर भी न तो गोरक्षा हो पा रही है और न गोसंवर्धन। दूध का अभाव दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। गोवंश का ह्रास हो रहा है। हमारे यहां प्रति व्यक्ति की औसत चार औंस दूध प्रति दिन है। इस की तुलना में डेनमार्क में १४८ औंस दूध का दैनिक औसत है। हम अपने बच्चों को ताजा दूध नहीं दे पाते। अमरीका और विदेशों से सहायतास्वरूप आए हुए मिल्क पाउडर स्कूलों और अस्पतालों में थोड़ी बहुत मात्रा मे देते हैं। आज २० वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी हमारी भारत माता लाखों अश्वत्थामाओं को दूध की तो बात दूर रही आटे का घोल भी पर्याप्त मात्रा में देने में असमर्थ हैं। कैसी विडंबना है !

हमारी गायों की औसत दूध देने की क्षमता प्रति व्यक्ति केवल २५० पौंड है, जब कि इन देशों में जहां गाय माता स्वरूप नहीं है बल्कि उसे जानवर समझा जाता है, दूध की उपज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

औसत ६,००० से ७,००० पौंड प्रति व्यक्ति है। पश्चिम के इन देशों में गोवध पर प्रतिबंध नहीं है बल्कि यहां से अरबों रुपयों का गोमांस निर्यात किया जाता है, फिर भी दूध की धारा क्षीण नहीं होती। स्पष्ट है कि हमारी गोभक्ति में सेवाभाव कम है, दिखावा ज्यादा।

एक स्टोर से दो बोतल ठंडा दूध लिया। शायद एक किलो था। दो क्रोनर (लगभग दो रुपए) दिए। मैं ने सोचा, 'जब भारत में सवा रुपए किलो है तो इस धनी देश में ज्यादा ही दाम होगा।' हमें ताज्जुब हुआ जब डेढ़ क्रोनर वापस मिले यानी आधा रुपया एक किलो के दाम लगे। बाद में यह पता चला कि यह तो खुदरा का भाव था, थोक में तो इस का आधा तक नहीं है। हमें बताया गया कि इस छोटे से देश में, जिस का क्षेत्रफल हमारे राजस्थान का केवल १२ प्रति शत है, ३५,००,००० गाएं और ७५,००,००० सुअर हैं। सन १९६३ में १४,२५,००,००० मन दूध, ७५,००,००० मन मक्खन तथा पनीर और २,८०,००,००० मन मांस का उत्पादन डेनमार्क में हुआ। यही हाल सेब, अंगूर और प्लम्स जैसे फलों का था। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा कि यहां चावल और रोटी खाएं ही क्यों, जब कि ऐसी उत्तम और उपादेय वस्तुएं इतनी सस्ती मिलती हैं। वह हंस कर कहने लगे कि एकदो दिन में ही फल और दूध से मन ऊब जाएगा। आखिर पेट तो अन्न से ही भरेगा।

कापनहेगन डेनमार्क की राजधानी है। वहां समूचे देश की लगभग चौथाई आबादी रहती है—यानी, यहां की जनसंख्या करीब दस लाख है और गरमी के दिनों में तो राजधानी में लाखों की संख्या में बाहर से विदेशों के यात्री आ जाते हैं। इसलिए हम जब वहां पहुंचे तो सड़कों पर चहलपहल खूब बढ़ी हुई थी। अमरीका के अलावा दक्षिणी यूरोप के देशों से आए हुए लोग काफी संख्या में दिखाई पड़े। अरब के शेख भी अमामे चोगे पहने हुए बड़ी शानशौकत से घूम रहे थे। इन के आसपास गोरी स्त्रियों का मजमा लगा रहता था।

आजकल सभी देशों में टूरिस्ट आफिस हैं। इन कार्यालयों में शहर के दर्शनीय स्थानों के विवरण की पुस्तिका, नक्शे के साथ बिना कीमत में मिल जाती है। हम जहां भी गए, इसे जरूर ले लिया करते थे। फिर भी, बिना गाइड के अथवा किसी यात्री मित्र के बहुत सी जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हो पाती। रूस में हम सरकारी मेहमान थे इसलिए वहां हमें निःशुल्क गाइड मिल गए थे, लेकिन अन्य देशों में ये मंहगे पड़ते हैं। इसलिए हम अंगरेजी जानने वाले किसी यात्री से दोस्ती कर लेते थे जो हर तरह की जानकारी और मदद देने को हमेशा उत्सुक रहते थे। विदेशों में सिवा अंगरेजों के अन्य देशों के यात्री आपस में मित्रता करने के लिए इच्छुक रहते हैं।

अपने होटल लौट कर हम ने एक डच दंपति से मित्रता की। यद्यपि हालैंड भी ठंडा देश है फिर भी इन में भ्रमण करने का चाव है। अवकाश मिलने पर ये दूसरे देशों की यात्रा पर निकल जाते हैं। इन से पता चला कि अमरीका भले ही विश्व का सब से धनी देश है लेकिन ईराकी और अरब देशों के मुकाबले में अमरीकी धनिक पैसे लुटाने में शायद ही टिक सकें। ये लाखों रुपए एक यात्रा में खर्च कर देते हैं। वेनिस या पेरिस में कुछ दिन के लिए रह कर वहीं से पांचसात प्रसिद्ध नर्तकी या माडल गर्ल्स को साथ ले आते हैं। डीलक्स होटलों में बड़ेबड़े फ्लैट किराए पर ले लेते हैं, क्योंकि इन के मुसाफिरों और साथी लड़कियों की संख्या बीसतीस तक पहुंच जाती है। उन्होंने हंसते हुए कहा कि सच पूछिए तो इन्हीं लोगों के कारण हम जैसों को होटलों में कमरे मिलने मुश्किल हो जाते हैं।

मैं ने पेरिस की अपनी पिछली यात्रा में इन की शाहखर्ची को एक नाइटक्लब में देखा था। इन वर्षों में तेल की रायल्टी के नए एग्रीमेंटों से इन की आमदनी प्रति वर्ष अरबों रुपए ज्यादा हो गई है, इसलिए ऐयाशी और मौजमस्ती में उस दिन मेहनत की कमाई के रुपयों में से अगर कुछ हिस्सा खर्च भी कर डालें तो ताज्जुब ही क्या! हमारे राजा और नवाब भी तो यही करते थे। इन अरबों में शारीरिक क्षमता कुछ विशेष ढंग की होती है जो यूरोप तथा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अमरीका के लोगों में साधारणतया नहीं रहती। यह भी एक आकर्षण रहता है, जिस कारण संभ्रांत एवं धनी घरों की शौकीन यूरोपीय स्त्रियां भी इन के साथ दूसरे देशों की यात्रा पर चली जाती हैं। पश्चिम के समाज की वह स्वच्छंदता हमारे भारतीय आचारविचार से तो अनैतिक और निम्नस्तरीय रुचि की कही ज़ाएगी। पता नहीं इन देशों के विचारक इस ओर कुछ सोचते हैं, या नहीं।

शहर की सड़कों पर या सार्वजनिक पार्कों में हम ने घूमते हुए लक्ष्य किया कि यहां की स्त्रियां लंबी और मजबूत होती हैं। डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड में सभी जगह हम ने लंबी और तगड़ी स्त्रियां देखीं। रंग गोरा जरूर है पर रूखापन लिए और इन के चेहरे और होंठों पर हल्के रोएं भी होते हैं। दक्षिण यूरोप, इटली, ग्रीस, टर्की आदि की स्त्रियों के चेहरे पर इतना गोरापन नहीं रहता लेकिन इन में लावण्य अधिक होता है। छरहरे बदन की होने के कारण ये उत्तरी स्त्रियों से अधिक सुंदर और आकर्षक लगती हैं।

फिनलैंड और स्वीडन हो कर हम डेनमार्क आए थे। इसलिए यहां का वातावरण भी एक जैसा ही लग रहा था। हमारे यहां कलकत्ता से बनारस की यात्रा की दूरी या समय में फिनलैंड, स्वीडन और डेनमार्क तीनों आ जाते हैं। अर्थात, हमारे प्रांतों से भी इन का क्षेत्रफल छोटा है फिर भी हैं तो ये अलगअलग देश—भाषा भी इन की अपनीअपनी है।

होटलों में पहले से कह देने पर निरामिष (भोजन) तैयार कर देते हैं। फिर भी हमारे भारतीय व्यंजनों में जो स्वाद मिलता है और उन से जो तृप्ति होती है, वह हमें विदेशों के अच्छे से अच्छे या बड़े से बड़े रेस्तरां या होटलों में नहीं हुई। भारत से हम कई प्रकार के अचार, चिवड़े और मिठाइयां साथ ले आए थे, इसलिए स्वाद बदलने के लिए बीचबीच में इन्हें खा लिया करते थे।

डेनमार्क का कुछ भाग हालैंड की तरह समुद्र से नीचा है। इसलिए समुद्री पानी रोकने के लिए बड़ेबड़े डाइक (बांध) बनाए गए हैं। इस में संदेह नहीं कि यूरोपीय लोगों में उद्यम के प्रति विशेष उत्साह रहता है। जहां हम प्रकृति के प्रकोप के आगे विवश हो जाते हैं, बाढ़ से हमारी लाखों एकड़ जमीन प्रति वर्ष परती रह जाती है वहां वे उस से जूझते हैं और उस की सीमा बांध देते हैं। हमें हमारे कच्छ के रन का खयाल आ गया। यदि हम सागर के खारे पानी को यहां आने से रोक पाते तो शायद इस बहुत बड़े भूमि को उपयोग में ले आते। पर अभी तो राजस्थान के बंजर अंचल को ही नहीं संभाल पाए हैं।

द्वितीय महायुद्ध में दूसरे देशों की तरह डेनमार्क भी चार वर्ष तक जरमनों के नाजी शासन के अधीन रहा। जैसा प्रत्येक विदेशी शासक का रवैया रहता है, वैसा ही जरमनों ने किया। यहां से दूध, मक्खन, पनीर और मांस जरमनी भेजते रहे और बेचारे डेन आधे पेट रहते। जरमनी की हार के बाद फिर यहां के राजा के तत्वावधान में जनतंत्रीय शासन हो गया, जो अब तक है। साम्यवादी दल का तो यहां अस्तित्व ही नहीं है। यहां की संसद के १७९ सदस्यों में केवल ११ ऐसे हैं जिन के विचार कम्युनिस्टों से कुछ मिलतेजुलते हैं। सैनिक शिक्षा प्रत्येक के लिए अनिवार्य है। १८ वर्ष की उमर होने पर हरेक नागरिक को १६ महीने के लिए फौज में शामिल होना जरूरी है।

छोटा सा देश है, पर आबादी के अनुपात सा पैदावार कई गुनी है। इसलिए तैयार माल के लिए इसे बाहर बाजार ढूंढ़ना पड़ता है, लेकिन वहां भी पहले से जमे हुए मिलते हैं अमरीका, पश्चिम जरमनी और फ्रांस। उन के सामने इस की क्या गिनती ? फिर भी यह देश अपने यहां उद्योगधंधों को बढ़ावा देने के लिए कच्चे माल का आयात और उस के बदले में कृषिजात वस्तुओं का निर्यात कर के आर्थिक स्थिति का संतुलन ठीक रखता है। इस कारण इस का सिक्का विदेशों के खुले बाजारों में भी निर्धारित दर में चलता है। हमारा देश इस से सौ गुना बड़ा है। हमारा आयातनिर्यात भी काफी है, पर हमारी आर्थिक दशा असंतुलित है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और व्यवस्था सुदृढ़ नहीं। इस कारण से हमारी मुद्रा निर्धारित दर से नीचे मूल्य पर चलती है। हम ने स्विस बैंक में भारतीय सिक्का भुनाया तो एक रुपए के सात आने ही मिले। हमारे लिए यह कम ग्लानि की बात नहीं। सन १९५६ से १९६१ तक के पांच वर्षों में डेनमार्क की आय की वृद्धि ९.४ प्रति शत प्रति वर्ष बढ़ी जब कि हमारी लगभग तीन प्रति शत ही। वहां प्रति व्यक्ति की औसत वार्षिक आमदनी है करीब ग्यारह हजार रुपयों की, जब कि हमारे यहां तीन सौ से साढ़े तीन सौ रुपयों तक की। वहां पशुजात वस्तुओं के अलावा कृषि की उपज भी बहुत है। सन १९६३ में इस छोटे से देश में अनाज का उत्पादन ५५,००,००० टन था, यानी प्रति व्यक्ति ३५ मन। चीनी का उत्पादन हुआ २६ लाख टन। मैं मन ही मन इन आंकड़ों की तुलना में अपने देश की स्थिति रख रहा था। मेरे सामने बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के सूखे/बंजर खेत और मरियल पशुओं के चित्र खिंच जाते थे।

सहकारी व्यवस्था में डेनमार्क बेजोड़ है। प्रत्येक किसान यहां किसी न किसी सहकारी समिति का सदस्य हैं। वह अपने यहां का दूध, पनीर, मक्खन, अंडे और मांस इन्ही सहकारी समितियों के माध्यम से बेचता है। इस नन्हें से देश में इस ढंग की २,००० समितियां हैं, जिन के ५,००,००० सदस्य हैं। इन की वार्षिक बिक्री की राशि है करीब एक अरब पैंतीस करोड़ रुपए। हमारे यहां भी स्वाधीनता के बाद सहकारी समितियों की बाढ़ सी आई थी लेकिन अधिकांश में बेईमानी हुई और गरीब किसानों का रुपया संचालकों की जेबों में चला गया।

हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि यहां करीब एक सौ दैनिक या साप्तहिक पत्रपत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। इन के पाठकों की संख्या २५,००,००० है—यानी, प्रत्येक घर में औसतन दो पत्रपत्रिकाएं जाती हैं। इन के अधिकार में अपने से पचास गुना बड़ा विश्व का सब से बृहद द्वीप ग्रीनलैंड है, जहां की आबादी है केवल चालीस हजार—अर्थात् वहां २० मील पर एक व्यक्ति रहता है।

हम अब तक यह समझते थे कि शारीरिक क्षमता को कायम रखने के लिए मिलाजुला भोजन आवश्यक है, लेकिन यहां पता चला कि ग्रीनलैंड के निवासी केवल मछली और रेंडियर (हिरण की एक जाति) के मांस पर जीवित रहते हैं। वहां अन्न और सब्जी उपजती ही नहीं। पिछले कुछ वर्षों से स्विस हवाई जहाज कंपनी ने ग्रीनलैंड की यात्रा की सुविधा कर दी है। इसलिए, कुछ समय के लिए ही सही, यहां आ कर एक नई दुनिया देखने के लिए यात्री आया करते हैं। सर्दी यहां इतनी है कि थूक और मूत्र जमीन पर गिरने के पहले ही बर्फ में बदल जाता है।

कोपनहैगन के टिवोली गार्डन में सैकड़ों की संख्या में अमरीकी यात्रियों का समूह देखने में आया। इन में अधिकांश बूढ़ी औरतें थीं। बच्चों की तरह आग्रह से कार्निवल घूमघूम कर देख रही थीं। इन के साथ अधिकांश मर्द ग्रीनलैंड घूमने गए थे या कैबरे मे नाच रहे थे। हमारे डच मित्र ने बताया कि अमरीका में सैकड़ों यात्री क्लब हैं, जिन को यूरोप या विश्व भ्रमण का मौका मिल जाता है। ये एक साथ बड़ी संख्या में आते हैं, इसलिए हवाई जहाज के किराए और होटलों के चार्ज में भी सुविधा रहती है।

दूसरे देशों की तरह कोपनहैगन में भी नाइटक्लब और कैबरे बहुत हैं, लेकिन प्रमुख आकर्षण है टिवोली गार्डन। यहां तबियत इतनी बदल जाती है कि इसे 'उत्तरी यूरोप का पेरिस' कहते हैं, लेकिन डेनिश इसे सुन कर यात्रियों से बनावटी गुस्से में कहते हैं, 'पेरिस दक्षिणी यूरोप का कोपनहैगन है।'

डेनमार्क में हमें दो ही दिन ठहरना था, इसलिए हम ने रात्रि में टिवोली गार्डन देखने का कार्यक्रम बना लिया था। रात का भोजन जल्दी कर के हम टिवोली चले गए और आधी रात तक वहां घूमते रहे। टिवोली कार्निवल के संचालन का खर्च इतना बड़ा है कि केवल १ मई से १५ सितंबर अर्थात साढ़े चार महीने ही यह खुला रहता है, और यात्रियों की भीड़ इतनी हो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाती है कि इस समय कोपनहैगन की आवादी सवाई से भी अधिक हो जाती है। टिवोली के नाम की नकल में दूसरे देशों ने भी कार्निवल बनाए पर ऐसी साजसज्जा, आकर्षण और खेलतमाशे वे न जुटा सके और न उन्हें इतनी प्रसिद्धि ही मिल पाई। टिवोली का क्षेत्रफल करीब साढ़ेआठ लाख वर्ग फुट है। इतने खेलतमाशे और मनोरंजन यहां एक ज़गह मिल जाते हैं कि न तो मन ऊबता है और न दूसरी जगह जाने की तबियत होती है।

सब से पहले तो हम ने यहां पटाखों और फुलझड़ियों के खेल देखे। यूं तो भारत में भी दिवाली पर तरहतरह की रोशनी और पटाखों से खेल करते हैं। कलकत्ते में छातू बाबू के बाजार में दिवाली पर होने वाली मशहूर पटाखेबाजी और आतिशबाजी देखी थी। लेकिन यहां इन का कुछ और ही समां था। पांचछः फुट लंबे पटाखे देखे। बत्ती भी उसी अनुपात से लंबी। बड़ी सावधानी से आग लगा दी गई। पहले तो बड़े जोरों का धमाका हुआ फिर आसमान में जा कर रंगबिरंगी रोशनी के बीच से छोटेछोटे अनेक पक्षी निकलते दिखाई पड़े। ये इतने स्वाभाविक बने थे कि पता नहीं चलता था कि ये कागज के बने हैं। कारीगरी देख कर तबीयत खुश हो गई। देखतेदेखते कहीं हवाई जंहाज निकला तो कहीं पैराशूट से उतरते नकली आदमी, कई तरह की चीजें इन आतिशबाजियों से निकलती रही हैं।

हम ने सुना था कि लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह खासखास त्योहारों पर लाखों रुपए आतिशबाजी पर लुटाते थे पर यहां तो डेनिश रोज ही त्योहार और पर्व मनाते हैं।

हम ने अपने यहां की नौटंकी जैसा रूपक भी यहां देखा। यहां इसे पेंटोपाइन कहते हैं। वैसे यूरोप और अमरीका के रंगमंच की उन्नति इन वर्षों में काफी हुई है क्योंकि स्टेज और प्रकाश की व्यवस्था में वैज्ञानिक साधनों का उपयोग किया जाता है, फिर भी बहुत से लोगों की रुचि पुराने ढंग के रंगमंच और रूपकों के प्रति है। हम ने देखा, यहां भी पुराने ढंग के पोशाक पहने, जोरजोर से बोलना और तलवार और भाले घुमाना बहुत बड़ा आकर्षण है।

बीचबीच में विदूषकों की उछलकूद देख कर लोग हंसी से लोटपोट हो रहे थे। खुले मैदान का थियेटर भी चल रहा था। शायद शैक्सपियर के 'किंग लियर' का अभिनय हो रहा था। सब से ज्यादा भीड़ 'फन कार्नर' में थी। बच्चे तो वहां से हटने का नाम ही नहीं लेते थे। तरहतरह की झांकियां, कुरसियां लगी बड़ीबड़ी चर्खियां बिजली से स्वतः संचालित होती थीं। आपस में जोरों की होड़ चल रही थी कि कौन ऊपर आया, कौन नीचे। हमारे यहां भी मेले और प्रदर्शनियां लगती हैं पर उन में इतनी सजावट नहीं होती और न इतनी विविधता। नाच, जुआ और शराब ही टिवोली गार्डन की एक खास विशेषता है।

एक स्थान पर जो हम गए तो एक राक्षस मुंह बाए खड़ा था। हम ने भी पांच रुपए की १५ गेंदें लीं और राक्षस के खुले मुंह का निशाना बनाया, पर हम एक भी गेंद उस में न फेंक सके। बहुत से कीमती इनाम सजा कर रखे हुए थे जो सफल होने पर मिलते। हमें तो एक पेंसिल भी हाथ न लगी।

बहुत से लोग सैकड़ों रुपए विविध प्रकार के खेलों में दांव पर लगा रहे थे। कोई बंदूक का निशाना लगा रहा था तो कोई तीरकमान का। मगर निशाना बहुत कम सही बैठता था। फिर से दूने जोश से दांव लगते थे। ऐसे खेलों से सरकार को प्रति दिन लाखों रुपयों की आय होती रहती है।

रात के १२ बजे हम टिवोली से लौटे। हजारों दर्शक वहां मिले। एक नौजवान भारतीय दंपति से भी भेंट हो गई—वे हनीमून मनाने आए थे, थोड़े दिनों पहले उन की शादी हुई थी। वे दिल खोल कर खर्च कर रहे थे। पता नहीं, उन्हें इतनी विदेशी मुद्रा कैसे मिली! नवयुवक भारत की किसी निर्यात कंपनी का डाइरेक्टर था और पत्नी शायद बीमारी का सर्टीफिकेट ले कर इलाज के बहाने से आई होगी। बडे उत्साह से उन्होंने कहा, "ग्रीनलैंड अगले दिन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाएंगे।" हम सोचने लगे, गरीब भारत का धन विदेशों में इस तरह लुटाने की अवैध या अनुचित सुविधा के कारण हमें विदेशी मुद्रा का कितना हिस्सा खोना पड़ता है !

अगले दिन सुबह का जलपान कर के हम वहां का प्राचीन राजप्रासाद देखने गए। प्राचीन पोशाकें, अस्त्रशस्त्र, चित्र और कुछ जवाहरात देखने में आए। लंदन म्यूजियम या पेरिस के लूव्रे के मुकाबले में ये जंचे नहीं। जो भी हो, इतना जरूर है कि इन से पता चलता है कि यहां का राजवंश प्राचीन है और उत्तरी यूरोप में काफी प्रतिष्ठित।

११ बजे हमें लंदन के लिए रवाना होना था। होटल लौट कर अपना सामान लिया और एयरपोर्ट पहुंचे। प्रभुदयालजी ने कहा, "किसी देश की समृद्धि उस के विस्तार पर नहीं, व्यवस्था पर निर्भर है। डेनमार्क, स्वीडन और स्विट्जरलैंड इस के अच्छे दृष्टांत हैं।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो विश्वयुद्धों की लपटों से झुलसे हुए यूरोप का शांति केंद्र
वियना

वर्षों पहले मैं कलकत्ता की हैरिसन रोड पर जिस मकान में रहता था, उस के सामने ही एक राजवैद्य की बड़ी दूकान थी। उन्होंने एक ही व्यक्ति की दो तरह की आदमकद तसवीर लगा रखी थी। एक थी उस व्यक्ति की दवा खाने के पहले की तसवीर जिस में वह दुबलापतला ढांचा मात्र दिखाई देता था। और दूसरी थी दवा खाने के बाद की जिस में वही व्यक्ति हट्टाकट्टा और गठीला पहलवान सा दिखाया गया था। सैकड़ों व्यक्ति इस विज्ञापन से प्रभावित हो कर वैद्यजी से दवा खरीदते थे। मैं ने खुद भी खरीदी और दूध सेवन भी किया। लेकिन औरों का तो पता नहीं पर मैं पहलवान सा बन नहीं पाया।

विज्ञापन की बहुत बड़ी महत्ता है। इस की शक्ति को सब से ज्यादा अमरीका और यूरोप ने पहचाना है। वहां के व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के साथसाथ सरकार भी अरबों रुपए प्रति वर्ष विज्ञापन पर खर्च करती है। पाश्चात्य डाक्टरों और वैज्ञानिकों के बारे में चर्चा सुना करता था। वियना के डाक्टरों की तारीफ तो बहुत वर्षों से सुनता आ रहा था।

हमारे यहां के राजेमहाराजे इलाज के लिए वहां जाते रहते थे। हजारोंलाखों रुपए खर्च कर आते थे और तारीफ करते थकते नहीं थे। पता नहीं इस में अपनी शान दिखाने की कामना अधिक थी या वहां के डाक्टरों की सुदक्षता। शायद डाक्टर तो उतने योग्य लंदन और ज्यूरिख में भी थे, मगर आस्ट्रिया की यह खूबी जरूर थी कि वहां गरम पानी के स्रोत थे जिन के बारे में आस्ट्रिया वालों ने प्रचार कर रखा था कि चर्म रोग या गठियावात के रोगी के लिए इन झरनों में नहाना अचूक इलाज है। परिणामस्वरूप दुनिया के हर कोने से लोग वहां पहुंचते और इस से आस्ट्रिया को विदेशी धन की आय होती। हमारे यहां भी राजगृह के झरनों के बारे में लोगों की इसी प्रकार की धारणा है किंतु हम ने आस्ट्रिया की भांति व्यापक प्रचार करने का प्रयास शायद ही कभी किया हो। इसलिए विदेशी तो दूर अपने देशवासी भी बहुत कम वहां जाते हैं।

हम शाम के बाद वियना पहुंचे थे। होटल पहुंचतेपहुंचते रात के बारह बज गए। मध्य यूरोप में होने पर भी यहां ठंडक रहती है, क्योंकि यह आल्पस पर्वत के अंचल का देश है। जुलाई के महीने में कलकत्ते की जनवरीफरवरी की सी सर्दी थी। रात काफी हो चुकी थी। भोजन की समस्या हल करने के लिए तय किया कि साथ के चिवड़े और खजूर काम में लाए जाएं। मगर गरम दूध की जरूरत थी जिस से कि चिवड़े की खीर बना सकें। प्रभुदयालजी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मना करने पर भी मैं ओवरकोट पहन कर दूध की खोज में निकल पड़ा। बाजार पहुंचा। भाषा यहां जरमन बोली जाती है। विभिन्न देशों में सैर करते रहने के कारण सभी भाषाओं के आवश्यक शब्द याद हो गए थे। फिर अंतर्राष्ट्रीय भाषा संकेत से तो काम ले ही सकता था। बाजार में उस समय तक भी रेस्तरां खुले हुए थे। दूध की दोतीन बोतलें लीं। फलों के रस की भी दोएक बोतलें ले आया।

अचानक होटल और उस के रास्ते का नाम भूल गया। रात के दोढाई बजे तक भटकता रहा। अपनी जल्दबाजी और जिद पर पछता रहा था। दोनों हाथों में बोतलें, बरफानी सर्द हवा, अनजान शहर और बढ़ती हुई रात का सूनापन। एक टैक्सी वाले को रोका। उसे किसी तरह समझाया कि यहां दो मील के इर्दगिर्द में जितने भी बड़े होटल हैं, उन में चलो। इत्तफाक कुछ ऐसा हुआ कि पहले ही जिस होटल के सामने टैक्सी रुकी, वही हमारा होटल था। भाग कर कमरे में पहुंचा। भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजी काफी चिंतित हो उठे थे। सभ्य और संस्कृत शहर था इसलिए उचक्कों का डर नहीं था। कहीं ईस्ट लंदन या वेनिस होता तो शायद मेरे बारे में ये दोनों साथी उस समय तक पुलिस को खबर दे देते। दोनों की कड़वीमीठी सुननी पड़ी। मुझे अपने ऊपर इतना अधिक आत्मविश्वास था कि उसे घमंड कहा जा सकता है। ताशकंद और मास्को के ग्रामीण अंचल की सैर के बारे में अपनी बड़ाई कई बार उन से कर चुका था। अब वे मुझे आड़े हाथों लेने लगे। बहरहाल, खीर और खजूर का प्रोग्राम रह गया। हम तीनों सिर्फ दूध पी कर सो गए। बिस्तर पर लेटते ही नींद आ गई।

पिछली रात भटकते रहने के कारण थकावट आ गई थी। सोया भी देर से था। आंखें खुलीं तो नौ बज चुके थे। दोनों साथी कब के उठ चुके थे और तैयार थे। अपने प्रमाद और आलस्य पर झेंप गया। जल्दी से तैयार हो कर हम तीनों ने नाश्ता किया और बाहर सड़क पर आ गए।

वियना के लिए हम ने दो दिनों का समय निकाला था। यूरोप के इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नगर के लिए यह कम था। मगर हमारे पास इस के सिवाय अन्य विकल्प भी नहीं था। यहां केवल घूमना नहीं था बल्कि स्टेट बैंक के गवर्नर से मिल कर देश की आर्थिक और औद्योगिक स्थिति की जानकारी भी लेनी थी।

सुबह का समय हाथ से निकल चुका था। टूरिस्ट बस साढ़ेआठ बजे सबेरे आ कर चली जाती है। इसलिए, अब हम ने स्वतंत्र माध्यम से शहर घूमने का निश्चय किया।

थोड़ी दूर पर हमें बहुत ऊंचा सा एक गुंबद दिखाई पड़ा। कुतुबमीनार से इस की ऊंचाई लगभग दूनी लगी। गाइडबुक में देखा तो पता चला कि इसे सेंट स्टीफन का गिरजा कहते हैं। रोम के सेंट पीटर के गिरजे के बाद यूरोप का यह सब से मशहूर और बड़ा गिरजा माना जाता है। सोचा, 'पास ही तो है, अभी पहुंच जाते हैं।'

हम उस ओर बढ़े। दूर चलने पर भी जब वहां नहीं पहुंचे तब गलती महसूस हुई। ऊंचाई के कारण पास लगने वाला वह गिरजा लगभग डेढ़दो मील की दूरी पर था। गाइडबुक से पता चला कि चार लाख वर्ग फुट के क्षेत्रफल में बना हुआ है। इस का शिखर ४५८ फुट ऊंचा है। सन ११३७ में बनना शुरू हुआ और तैयार होने में लगभग साढ़े चार सौ वर्ष लगे। सन १७११ में तुर्कों से युद्ध में जीती गई तोपों को गला कर इस का पीतल का विशाल घंटा बनाया गया जिस का वजन ५५० मन है। आस्ट्रिया की सम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा की इच्छा थी कि इस गिरजे को विश्व का सब से बड़ा धर्मस्थान होने का गौरव प्राप्त हो। इस के लिए उस ने इसे भव्य और विशाल बनाने के अनेकानेक प्रयास किए। एक बार तो यहां तक इरादा कर लिया कि इसे तोड़ कर फिर से बनाया जाए लेकिन सेंट पीटर के गिरजे से बड़ा गिरजा बनाना करोड़ों व्यक्तियों का सहयोग, अपरिमित धन और साधन मांगता था। वह बड़े से बड़े सम्राट के बूते के बाहर की बात थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेंट स्टीफन के गिरजे में बहुत से भित्ति चित्र हैं। कुछेक तो अत्यंत कलापूर्ण हैं मगर वैटिकन में सिस्टनचर्च के विश्व विख्यात चित्रकारों की कलाकृतियों के समक्ष यहां के चित्रों में मुझे कोई मौलिकता नजर नहीं आई।

पिछले दो महायुद्धों की विनाशकारी लपटों में वियना को भी झुलसना पड़ा है। गनीमत है कि यहां की बेहतरीन इमारतें और खूबसूरत्त बुलंद गिरजे काफी हद तक बच गए। यूरोप के अन्य शहरों में मध्यकालीन इमारतों की बड़ी हानि इन महायुद्धों की बमबारी से हुई है। किंतु वियना के गिरजे और मध्ययुगीन इमारत किसी तरह बच गए। इसलिए आज पर्यटकों के लिए इस शहर का एक विशेष आकर्षण है। आज भी यहां साठसत्तर फुट ऊंचे दोमंजिले बड़ेबड़े मकान देखने को मिल जाते हैं। न्यूयार्क या शिकागो में इन पुराने मकानों के जितनी जमीन पर पचाससाठ गुने आवास भवनों का निर्माण करना स्वाभाविक है।

जो भी हो, इन पुराने ढंग की इमारतों की अपनी शान है और उन की बुलंदी गुजरे हुए जमाने का एहसास आज भी जाहिर करती है। हमारे यहां कलकत्ता में आसमान को छूने की होड़ लगाने वाले मकान पिछले दो दशकों में तेजी से बने और बनते जा रहे हैं। फिर भी पुराने ढंग के भव्य और विशाल दोमंजिले मकानों की शान का ये नए आलमारीनुमा मकान मुकाबला नहीं कर पाते। चोरबगान की बड़ेबड़े खंभों वाली संगमरमर की राजेंद्र मल्लिक कोठी आज भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के वास्तुशिल्प की याद दिलाती है।

जिस प्रकार आगरा और दिल्ली को सम्राट शाहजहां ने संवारासजाया, उसी तरह साम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा ने वियना की महत्ता बढ़ाई, इसे सजाया और संवारा। उस ने हाफ्सबर्ग प्रासाद को जी भर के सुसज्जित कर अपने शौक की पूर्ति की। गिरजा देख कर हम हाफ्सबर्ग महल देखने गए। इसे शीशमहल भी कहते हैं। यूरोप के मध्ययुगीन इतिहास में आस्ट्रियाहंगरी साम्राज्य के प्रभाव, शक्ति और ऐश्वर्य का गौरवपूर्ण परिचय मिलता है। इस शक्तिशाली साम्राज्य के सामने फ्रांस और ब्रिटेन दोनों को सिर उठाने की हिम्मत नहीं होती थी।

तुर्कों की असंख्य तीखी तलवारें जब एशिया से ले कर अटलांटिक महासागर तट के राष्ट्रों के छक्के छुड़ा रही थीं, आस्ट्रिया ने उन की नोक को तोड़ डाला था। तुर्कों का हौसला पस्त हुआ और उन्हें वापस लौटना पड़ा।

वियना को मध्ययुग में कला, विज्ञान और संस्कृति का संगमस्थल माना जाता रहा है। आस्ट्रियाहंगरी के सम्राटों की राजधानी सदैव वियना ही रही। हाफ्सबर्ग राजप्रासाद इन सम्राटों का निवास स्थान था और इसी में उन्होंने अपना दफ्तर भी रखा। हालांकि आज आस्ट्रियाहंगरी का साम्राज्य नहीं रहा और न वह प्राचीन राजतंत्र ही, फिर भी इस शीशमहल की भव्यता में अंतर नहीं आया है। इस समय इस के बड़ेबड़े कक्षों में भांतिभांति प्रकार के संग्रहालय, बीस लाख ग्रंथों की नेशनल लाइब्रेरी और सरकारी दफ्फर हैं।

दरअसल इसे महल न कह कर एक शहर कहना ज्यादा सही होगा। इस के विभिन्न कक्ष एक ही समय में नहीं बने, बल्कि तेरहवीं शताब्दी से ले कर उन्नीसवीं शताब्दी तक यानी लगभग छः सौ वर्षों तक बनते रहे। फ्रांस में मैं ने पेरिस का लूव्रे और वर्साई के राजप्रासाद देखे थे। दोनों अपनी विशालता और भव्यता के लिए विश्वविख्यात हैं। किंतु मुझे हाफ्सबर्ग का यह प्रासाद इन से अधिक सुंदर, सौम्य और भव्य लगा।

प्रासाद में घूमते हुए एक मसजिद दिखाई पड़ी। ईसाई राजमहल में मसजिद ! ठीक वैसे ही जैसे मुगल हरम में मंदिर मिल जाए। पूछने पर पता चला कि सन १५२९ में तुर्की फौजें वियना में घुस आई थीं और यहां कुछ समय तक उन का कब्जा रहा। उसी समय में यह मसजिद बनी थी। शहर को उन्होंने मनमाने ढंग से लूटा और बरबाद किया। औरतें, बच्चे और बूढ़े तलवार की प्यास बुझाने के लिए कत्ल किए गए। अनगिनत स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बना तथा अथाह दौलत लूट कर वे यहां से अपनी राजधानी कुस्तुनतुनिया ले गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तुर्कों ने कई बार आंधी की तरह वियना पर आक्रमण किए । सन १६८३ में उन की एक बड़ी फौज ने जबरदस्त हमला किया । वियना के दरवाजे तक वे आ धमके । इस बार ऐसा लगता था कि आस्ट्रियाहंगरी पर सदैव के लिए चांद तारे का हरा झंडा फहरा उठेगा । आस्ट्रिया के लिए यह जीवनमरण का प्रश्न बन गया । उस के हारेयके सोलह हजार सिपाही दीवार की तरह तुर्कों के सामने अड़ गए । वियना के हर घर की स्त्रियों और बच्चों ने जीजान से उन की मदद की । इस प्रकार ६० दिनों तक नाकेबंदी चलती रही । इस बीच यूरोप में ईसाई राष्ट्रों ने संघबद्ध हो कर तुर्कों की इस्लामी खूंरेजी को नष्ट करने का निश्चय किया । चार्ल्स आफ लारेन के नेतृत्व में एक बड़ी ईसाई फौज ने तुर्कों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें छिन्नभिन्न कर डाला । इस के बाद फिर कभी तुर्कों ने मध्य यूरोप की ओर आंख उठाने का साहस नहीं किया ।

महल के बड़े कक्ष में हम ने आस्ट्रिया के सम्राटों के खजाने को देखा । नाना प्रकार के जवाहरात, जेवर, सिंहासन, चांदीसोने के खूबसूरत बरतन और फरनीचर संजेसजाए रखे थे । वैसे लेनिनग्राद के म्यूज़ियम में हम ने रूस के सम्राटों की इस से कहीं अधिक सामग्री देखी थी । इसी प्रकार वर्साई के राजप्रासाद में फ्रांस के सम्राटों की भी चीजें यहां से कहीं अधिक देखने में आईं । लंदन के टावर के संग्रहालय में ब्रिटिश सम्राटों के मुकुट और जवाहरात अरबोंखरबों की कीमत के होंगे । जो भी हो, यूरोप में प्राचीन दुर्लभ वस्तुओं के रखने के प्रति एक विशेष आग्रह राष्ट्रीय गुण के रूप में सर्वत्र है जिस का अभाव हमारे यहां है । पेरिस के लूव्रे संग्रहालय में संग्रहीत चित्रों का मूल्य ही एक अरब पचास करोड़ रुपए के बराबर कूता गया है ।

हाप्सबर्ग का संग्रह फ्रांस, रूस और ब्रिटेन के मुकाबले अधिक प्रभावित न कर सका, फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि इसे अच्छी तरह सजा कर रखा गया है । हमारे पास समय था इसलिए हम ने यहां का हिस्ट्री म्यूज़ियम देखना भी तय किया । किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और उस के इतिहास के उतारचढ़ाव का परिचय ढंग के संग्रहालयों को देखने पर सरलता से मिल जाता है । जिज्ञासु विद्यार्थी और लेखक तो इन जगहों में महीनों बैठ कर जानकारी प्राप्त करते हैं ।

यहां के हिस्ट्री म्यूजियम में सम्राटों के हथियार, युद्ध की पोशाकें और उन के काम में आने वाली चीजों का संग्रह है । युद्ध के घोड़ों के जिरह बख्तर, और सिपाहियों के लोहे के आवरण भी देखे । ऐसे भी यंत्र देखे जिन के जरिए किलों पर से पत्थर और लोहे के गोले बरसाए जाते थे । नाना प्रकार के बेडौल और क्रूर कार्यों में इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार और उपकरण देख कर चित्त क्षुब्ध सा हो उठा था । सोचने लगा कि आदमी इनसान होने का दावा ही करता है, असलियत में हैवानियत का साथ नहीं छोड़ता । इन्हीं विचारों में उलझा हुआ था कि प्रभुदयालजी ने कहा, "फिर भी मौत बरसाने वाले ये साधन आज की अपेक्षा कहीं कम कष्टकर हैं । इन का प्रभाव युद्धक्षेत्र तक ही रहता था, जब कि आज के उन्नत वैज्ञानिक अस्त्रशस्त्र पूरे शहर को नेस्तनाबूद कर के लाखों निरीह नागरिकों का संहार कर देते हैं ।

चार बजे भारतीय दूतावास के सचिव के साथ यहां स्टेट बैंक के गवर्नर से मिलने गए । हमें बातचीत में कठिनाई महसूस नहीं हुई । वह अंगरेजी साफ बोल लेते थे, फिर भी उन्होंने हम से अपनी ही भाषा में बात की । हमारे बीच दुभाषिया था । उन्होंने बताया, "यूरोपीय देशों में फ्रांस को छोड़ कर आस्ट्रिया को दोनों महायुद्धों के कारण दूसरे सब देशों से कहीं अधिक जनधन की हानि उठानी पड़ी । जरमनी का साथ देने के कारण युद्ध के हरजाने की बहुत बड़ी रकम अदा करनी पड़ी । फिर भी जनता के सहयोग से हम राष्ट्र का नवनिर्माण कर सके हैं । जनता ने खुद भी अभाव को सहर्ष स्वीकार किया और निर्यात बढ़ा कर विदेशी धन पैदा किया । इस प्रकार आस्ट्रिया में पुराने उद्योगधंधे संगठित रहे और नएनए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिल्पोद्योगोंकी स्थापना होती रही ।

"सन १९६३ में निर्यात १,१०० करोड़ रुपयों का था और आयात १,६०० करोड़ का, अर्थात सत्तर गुने बड़े हमारे देश से कहीं अधिक । राष्ट्रीय आय थी पांच हजार करोड़ के लगभग यानी प्रति व्यक्ति ८०० रुपए वार्षिक और बजट था १,००० करोड़ का । विदेशी यात्रियों की संख्या उस वर्ष करीब ६० लाख थी । इन से देश को ३९० करोड़ रुपयों की आमदनी हुई ।"

हमें जान कर आश्चर्य हुआ कि उन के देशों की यात्रिक आय स्विट्जरलैंड से भी अधिक है । विश्व में केवल इटली ही एक ऐसा देश है जिस की यात्रिक आय आस्ट्रिया से ज्यादा है ।

हम ने उन के देश के प्रति विदेशी यात्रियों की इतनी रुचि का कारण जानना चाहा । हम ने लक्ष्य किया कि हमारे प्रश्न से उन्हें प्रसन्नता हुई । मुसकराते हुए सगर्व उन्होंने कहा, "वियना के सेंट स्टीफन के पवित्र गिरजे, हाप्सबर्ग के नायाब राजप्रासाद और शीशमहल जैसी ऐतिहासिक इमारतें अन्यत्र कहां देखने को मिलेंगी ! इस के अलावा आस्ट्रिया में आल्प्स पर्वत पर जितने बड़े पैमाने पर बरफ के तरहतरह के खेल होते रहते हैं, उतने और कहीं नहीं। स्पा (झरने) हमारे लिए वरदान हैं । इन के जल में अमृत का सा गुण है। पेरिस, वेनिस, शिकागो, लंदन और दुनिया के सभी बड़ेबड़े शहरों से नाना प्रकार के दुर्व्यसनों के कारण शारीरिक क्षमता को खो कर लोग यहां आते हैं । हमारे यहां के पहाड़ों पर जा कर वे एक नई स्फूर्ति और जीवन पा जाते हैं ।

"कई विदेशी यात्रियों का यह जरूर उलाहना रहता है कि आस्ट्रिया के जीवन में वह मौज, गति और गरमी नहीं है जो पेरिस, वेनिस या लंदन में है । सही है, मगर उद्दाम लालसा ही तो जीवन का चरम लक्ष्य नहीं । प्यास बुझाने की कोशिश में मनुष्य की प्यास बढ़ती जाती है और तब एक दिन वह अपने को इतना आसक्त पाता है कि बरबस गढ़े में गिरता चला जाता है ।"

हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि युद्ध से जर्जर हुए इस छोटे से देश में हर दसवें व्यक्ति के पास एक मोटरकार है और हर तीसरे व्यक्ति के पास एक रेडियो । अनपढ तो कोई है ही नहीं । युद्ध का कर्ज इन लोगों ने कभी का चुका दिया और अब दूसरे देशों को ऋण दे रहे हैं। कृषि की दशा भी अच्छी है । बाइस लाख टन सब प्रकार के अनाज यहां वर्ष में हो जाते हैं यानी नौ मन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष । पशुधन भी अच्छी हालत में है । प्रति तीन व्यक्तियों के पीछे दो पशु हैं । आस्ट्रिया की धरती में लोहा और तेल है । उत्तम किस्म का ग्रेफाइट भी यहां काफी मात्रा में है । युद्ध के बाद अपनी सारी उपज उन्हें ऋण चुकाने में खपानी पड़ी । साठ लाख टन तेल तो अकेले रूस को आठ वर्षों तक क्षतिपूर्ति के रूप में दिया ।

फिर भी यहां अर्थव्यवस्था असंतुलित नहीं हुई । आज इनके सिक्के की प्रतिष्ठा विश्व के मजबूत सिक्कों की तरह है । अब तो कागज, रसायन और अल्युमीनियम का निर्यात कर के आस्ट्रिया अपने को धनी बनाता जा रहा है । इस सारी सफलता के पीछे यहां की जनता की कर्मठता को श्रेय दिया जा सकता है । युद्ध के बाद सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे कर यहां के मजदूरों ने अपने भविष्य को सुखमय बनाया । यह हमारे लिए अनुकरणीय है ।

स्टेट बैंक में हमारे लिए ४५ मिनट का समय था किंतु पूछताछ और बातचीत में लगभग सवा घंटे का समय लग गया । हमें सहर्ष हर तरह की जानकारी उन्होंने दी ।

रात में, यहां का विश्व प्रसिद्ध ओपेरा देखने गए । नाजी आक्रमण से इसको बड़ी क्षति पहुंची थी । आस्ट्रिया के लोग संगीतकला के प्रेमी हैं । भाषा इन की जरमन जरूर है पर स्वभाव जरमनों से कहीं अधिक मृदु होता है । अपने राष्ट्रीय महत्त्व की रंगशाला के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुर्ननिर्माण के लिए जनता ने विपुल धनराशि एकत्र करनी शुरू कर दी और सन १९५५ इसे पहले से भी कहीं अधिक सुंदर और सुसज्जित बना लिया ।

संगीत का स्वर मधुर था, हालांकि भाषा जरमन होने के कारण हम समझ नहीं पाए । ओपेरा की साजसज्जा बड़ी शानदार थी, किसी सम्राट के राजमहल से कम नहीं । संगीत लहरी में सभी झूम रहे थे । हम ने देखा कि यहां पेरिस और हंबर्ग की तरह स्त्रियों में उच्छृंखलता और नग्नता के प्रदर्शन की होड़ नहीं थी ।

ओपेरा के विशाल कक्ष में लोग अनुशासन से शांतिपूर्वक बैठे स्वर लहरी में तन्मय हो रहे थे । आस्ट्रियन मध्ययुगीन आर्केस्ट्रा आज भी सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । इन का दावा है कि दुनिया में संगीत के मामले में इन के समकक्ष कोई नहीं है ।

अगले दिन सुबह नाश्ता कर हम बस से शोनवर्न प्रासाद देखने गए । वियना का यह दर्शनीय स्थल है । इसे 'ग्रीष्म प्रासाद' भी कहते हैं । फ्रांस के सुप्रसिद्ध वार्साई राजप्रासाद के नक्शे पर इसे बनाया गया है । महल के चारों ओर उद्यान और नहर है । आस्ट्रियाहंगरी के सम्राट ग्रीष्मकाल में इस प्रासाद में आ जाते थे । १४० कक्षों का यह महल बाग और नहर के बीच बड़ा सुंदर लगा । यों तो इस में कई सम्राटों के कक्ष हैं पर हमें सम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा के कक्ष और संग्रहालय बहुत आकर्षक लगे ।

सम्राज्ञी थेरेस्सा की गणना अट्ठारहवीं शताब्दी के विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों में होती है । साधारण लोगों के स्वभाव और गुणदोष की चर्चा या टीकाटिप्पणी कम होती है, किंतु राष्ट्रीय मान के लोगों का छोटा सा दोषगुण वहुत व्यापक चर्चा का विषय बन जाता है और युगों तक जनता की जवान और साहित्य के पृष्ठों पर अंकित हो जाता है । समाज और राष्ट्र के सर्वमान्य प्रतिष्ठित आसन पर जब कोई महिला होती है तब तो स्थिति और भी संयम की अपेक्षा करती है ।

इंगलैंड की महासनी एलिजाबेथ प्रथम, फ्रांस की मेरी अंतोनिता, रूस की जारीना और भारत की रजिया बेगम का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है । आस्ट्रिया की सम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा भी इसी कोटि में आती हैं । वह १७४० में आस्ट्रियाहंगरी के विस्तृत साम्राज्य के सिंहासन पर बैठीं और लगभग चालीस वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक उस ने शासन किया । हम ने देखा, उस के १६ पुत्रपुत्रियों के लिए महल में अलगअलग कक्ष थे और सब के लिए पृथक व्यवस्था थी । महारानी के स्वयं के बीसियों कक्ष हैं जिन में आज भी बेहतरीन चीजें सजी हुई हैं । ऐशोइशरत की बहुमूल्य वस्तुएं महारानी की पसंद का परिचय देती हैं ।

चीन और मिस्र के कक्ष को देखते हुए हम भारतीय कक्ष में आए । पलंग, साज और सामान, फरनीचर सभी भारतीय । हाथ के बने सैकड़ों कलापूर्ण चित्र । बड़ा आश्चर्य हुआ कि कांगड़ा, राजपूत, मुगल और दक्षिणी शैली की विशुद्ध भारतीय कलाकृतियों के दुर्लभ संग्रह महारानी मारिया ने किस प्रकार हासिल किये होंगे ? राधाकृष्ण की लीला, रागमाला और पशुपक्षियों आदि के चित्रों के रंगों की ताजगी बता रही थी कि इन की देखभाल सावधानी से की जाती है । अलमारियों में देखा, विभिन्न प्रकार की भारतीय पोशाकें सजी हुई थीं । मैं सोचने लगा कि आस्ट्रिया में इन भारतीय वस्तुओं के आने का क्या स्रोत रहा होगा ? ब्रिटेन ने तो लूटखसोट कर इकट्ठा किया, पर यहां कैसे ? शायद उपहारस्वरूप मिली होंगी या खरीद कर संग्रह की गई हों ।

एक कक्ष में देखा, नेपोलियन के किशोर पुत्र की प्रतिमा रखी थी । नेपोलियन ने आस्ट्रिया को जीत कर फ्रांस में मिला लिया था । एक बार सपरिवार कुछ दिनों के लिए वह वियना भी आया किंतु यहां अचानक उसके प्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई । इस शोक से वह इतना विचलित हुआ कि अविलंब वियना छोड़ कर वापस चला गया, स्मारक के रूप में यह प्रतिमा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यहां रख दी गई । वह अपने इस पुत्र को आस्ट्रियाहंगरी का सम्राट बनाना चाहता था।

ग्रीष्म प्रासाद का उद्यान बहुत ही संवारा हुआ है । नहर की सफाई देखकर तबीयत प्रसन्न हो जाती है ।

अगले दिन हमें आस्ट्रिया से जाना था । हमने शाम को संसद भवन देख लेना तय किया। भारतीय दूतावास के सचिव हमारे साथ थे । क्योंकि हम तीनों ही अपने देश के संसद सदस्य थे, इसलिए हमारे लिए विशेष सुविधा दी गई अन्यथा संसद भवन देखना संभव नहीं होता क्योंकि उन दिनों सत्र चालू नहीं था ।

आस्ट्रिया का संसद भवन कोरिन्थियन शैली पर बना है । राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के राजनीतिज्ञों की प्रस्तर मूर्तियां भवन के चारों ओर सजी रखी हैं ।

ससदीय कार्यों के संपादन के लिए अनेक कक्ष हैं । मुख्य कक्ष, जहां संसद की बैठकें होती हैं, बहुत ही बड़ा है । हमें बताया गया कि आस्ट्रियाहंगरी के विशाल साम्राज्य के पांच करोड़ व्यक्तियों के प्रतिनिधियों के लिए इसे बनाया गया था । लेकिन पहले महायुद्ध के बाद वह साम्राज्य ढह गया, आस्ट्रिया एक छोटा सा राज्य रह गया और हंगरी स्वतंत्र बन गया । वहां से चलते समय संसद भवन के अधिकारी ने हमें आस्ट्रिया के संसदीय कानून की पुस्तकें और स्मृतिस्वरूप अन्य चीजें दीं । उन्होंने हमसे कहा, "केवल वियना को ही आस्ट्रिया न समझें। जब तक साल्जबर्ग और इंजबर्ग की यात्रा नहीं की जाती, आस्टिया देखना पूरा नहीं होता। वियना में सिर्फ आस्ट्रियन लोग मिलेंगे किंतु उक्त दोनों स्थानों पर हमारी प्रकृति का निखार और उसकी खूबसूरती मिलेगी । विभिन्न देशों से आये लोग वहां आमोदप्रमोद में व्यस्त मिलेंगे । विदेशी यात्रियों के लिए होटल, क्लब और रेलवे की टिकटों में विशेष छूट दी जाती हैं ।"

हमारी इच्छा तो हुई पर विदेशी मुद्रा की कमी के कारण गए नहीं ।

वियना में केवल दो दिन रहा । किंतु आस्ट्रिया देखने की इच्छा बनी ही रही । मध्य यूरोप के देशों में स्विट्जरलैंड को छोड़कर शायद सबसे सुंदर शिष्ट और शांत वातावरण यहां का है । आज भी इच्छा होती है कि साल्जबर्ग और आल्पस हो आऊं ।

दूसरे दिन सुबह हम लोग वियना से ४० मील की दूरी पर गरम पानी के झरने देखने गए । वहां जाकर तीन कोठरियां किराए पर लीं । करीब तीस मिनट तक सारे बदन पर एक खुरदरी घास से मालिश की गई । इसके बाद झरने के उबलते पानी में स्नान किया। वास्तव में स्फूर्ति का अनुभव हुआ । राजगृह के झरनों में ऐसा ही लगता है । बहती हुई गरम जलधारा में स्नान करने से रक्त संचालन में तेजी आती है और पेशियों में ताजगी । वैसे, यह सब हर जगह या हर देश में एक सा ही है किंतु वियना में इससे अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाया गया है । स्नान से पहले और बाद में विद्युत उपकरणों से शरीर के समस्त अंगों की मालिश की जाती है । इसके लिए अलगअलग सुसज्जित कोठरियां हैं । स्वस्थ व्यक्ति इस ढंग की मालिश से थकावट से शीघ्र ही मुक्ति पा जाते हैं ।

एक बार के स्नान तथा अन्य उपकरणों के लिए कुल मिलाकर करीब पचास रुपए लिए जाते हैं । इसके अलावा वहां आने-जाने के और दूसरे खर्च अलग । मैंने देखा विदेशों से आए हुए हजारों यात्री विभिन्न प्रकार से घंटों तक स्नान कर रहे हैं । अनेक रंगों के शीशों से छनकर आती हुई रोशनी महीन ताप से वातग्रस्त और रोगग्रस्त शरीर के अंगों को सेंक रहे हैं । भूख लग जाती है तो पास के रेस्तरां में जाकर फलों का रस, दूध, मट्ठा, छाछ या लस्सी पी लेते हैं । शराब यहां देखने में नहीं आई । शायद यहां भी प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञों ने इस की मनाही कर रखी है ।

एक जगह पांचछः युवतियां बिकनी पहने धूप में बैठी थीं । वे बारबार मेरे गेहुंए शरीर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की तरफ देखकर आपस में बातें कर रही थीं। ऐसा लगा कि मेरा रंग शायद उनके कुतूहल का कारण है। इधरउधर घूमता हुआ उनकी ओर चला गया। कई बार पश्चिमी देशों की सैर कर चुका था, इसलिए झेंप मिट चुकी थीं। अभिवादन के बाद बातचीत शुरू हो गई। पता चला कि वे सब इंगलैंड से आई हैं। उनका आकर्षण मेरे शरीर का वर्ण था। वे यहां गरम पानी में स्नान करके और धूप सेंक कर अपने श्वेत वर्ण को सांवला बनाने की कोशिश में थीं। मैं सोचने लगा 'हमारे यहां सांवली लड़की का विवाह होना मुश्किल हो जाता है और एक ये हैं जो अपने दूध से सफेद रंग को सांवला बनाने के लिए इतना धन व्यय कर रही हैं!' झरनों में स्नान करके कुछ नाश्ता किया और टूरिस्ट बस से हम वापस वियना लौट आए।

वियाना के एक महल्ले में जब हमारी बस पहुंची तो देखा कि रास्ते में हजारों स्त्रीपुरुष खड़े हैं। सिपाही उन्हें दूर ढकेलने का प्रयत्न कर रहे थे। पूछने पर पता चला कि सामने के होटल में दो फिल्मस्टार ठहरे हुए हैं और उन्हें देखने के लिए ये सब खड़े हैं।

मैं ने प्रभुदयालजी से कहा कि यह रोग केवल हमारे यहां ही नहीं है, अपितु इन सभ्य देशों में भी उसी तरह है।

लंच के बाद हमें वियना से रवाना होना था इसलिए वहां ज्यादा देर न ठहर कर होटल लौट आए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोहे की दीवार के इस पार...और उस पार

जरमनी

बचपन में जरमनी के बारे में बहुत कुछ सुना था। घर में पंडितपुरोहित आते थे और बड़ों से वेदशास्त्र की चर्चा करते हुए भारत के पतन का कारण बताते थे, "शास्त्र सब यहां से जरमनी वाले ले गए इसलिए वहां तो उन्नति हो रही है और हमारे देश में अविद्या-अज्ञान फैल रहा है।"

जरमनी का इतना ही परिचय उन दिनों जिज्ञासा को जगाने के लिए काफी था।

ब्रिटेन का कट्टर प्रतिद्वन्दी था जरमनी। हर क्षेत्र में ब्रिटेन से उसने टक्कर ली। मजबूती और टिकाऊपन के लिए बाजारों में जरमन माल मशहूर था। लोगों से सुनते थे और अखबारों में भी पढ़ने को मिलता था कि जरमनी ने विज्ञान व शिल्प उद्योग में बड़ी तरक्की कर ली। अनजाने ही खुशी होती थी, वह इसलिए कि दुश्मन के दुश्मन से सहानुभूति होनी स्वाभाविक है। घुमक्कड़ मन में उसी समय से जरमनी देखने की इच्छा का अंकुर पैदा हो गया।

१९१४ में प्रथम महायुद्ध हुआ। देश में उस समय स्वराज्य आंदोलन की लहर चल पड़ी थी। लेकिन गांधीजी ने उस संकट के समय ब्रिटेन को बिना किसी शर्त के सब प्रकार से सहायता दिलाई। ब्रिटेन ने युद्ध के बाद भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करने का वादा किया। बहुत बड़ी संख्या में भारतीय जवान फ्रांस के मोर्चे पर जान की बाजी लगाकर बहादुरी से लड़े। जरमनी हारा जरूर मगर उन्हीं जवानों के मुंह से जरमनों के साहस और बहादुरी की कहानी घरघर में छा गई। ब्रिटेन वादे से मुकर गया, औपनिवेशिक स्वराज्य की जगह मिला जलियांवाले बाग का नृशंस हत्याकांड। भारत पराधीन ही बना रहा लेकिन थके-हारे जरमनी ने हिन्दुस्तानी दिल में अपनी दिलेरी की खूबसूरत तसवीर बना ली।

पराजित राष्ट्र को हार का महंगा मूल्य चुकाना पड़ता है। प्रथम महायुद्ध के बाद वर्साई की संधि में जरमनी को अनेक क्षेत्रों से हट जाने के लिए बाध्य किया गया, जुरमाने और हरजाने के रूप में भी उससे बड़ी रकम वसूल की गई। अफ्रीका और एशिया के देशों से उसका कब्जा हट गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विख्यात राजनीतिज्ञ चर्चिल ने भी स्वीकार किया था कि इस संधि की आर्थिक शर्तें प्रतिहिंसा की भावना से ओतप्रोत थीं।

जो भी हो जरमन लोग अपमान को भूले नहीं। प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया ने हिटलर को पैदा किया। लगभग अठारह वर्षों में फिर से जरमनी उठ खड़ा हुआ किंतु इस बार आसुरी शक्ति और दुर्भावना के साथ। यदि जरमन लोगों को यह विश्वास रहता कि उनकी आर्थिक अव्यवस्था मध्यम मार्ग से सुधर सकती है तो वे गणतांत्रिक व्यवस्था को छोड़ते नहीं और शायद नाजियों के हाथ अपने भविष्य को भी नहीं सौंपते।

नाजियों का उत्थान राष्ट्रीय समाजवाद के नारे पर ठीक उसी तरह हुआ जिस तरह रूस में समाजवाद के नाम पर कम्युनिज्म का उदय। नाजियों ने दिशाहारा जरमनों को सब्जबाग दिखाए, जरमन जाति को दैवी शक्ति सम्पन्न बताया, उन्हें बरगलाया कि दुनिया पर शासन करने का एकमात्र अधिकार केवल जरमनों का है क्योंकि उन में विशुद्ध आर्य रक्त है। नाजियों की गोटी सधती गई। जरमन सैनिक जो निराशा और ग्लानि से भरे हुए बैठे थे, उन के फौजी दस्तों में शामिल होने लगे। सन १९३७ तक हिटलर की नाजी पार्टी जरमनी के राजनीतिक अखाड़े में बाजी जीत ले गई। उस के हाथ में सर्वोच्च सत्ता आ गई।

जर्जर जरमनी की आर्थिक अवस्था को हिटलर ने सुधारा, इसे मानना पड़ेगा। उसने उद्योगधंधे बढ़ाए, बेकारी दूर की, सेना मजबूत की और विदेश नीति में सफलता प्राप्त की। इस से जरमनी की प्रतिष्ठा और सत्ता दोनों बढ़ती चली गईं।

हिटलर की सफलताओं के कारण जरमन जनता ने उसे युगावतार समझ लिया, विदेशनीति की सफलता और सेना के पुनर्गठन ने संस्कारहीन हिटलर में मद भर दिया। उस में क्रूरता, दम्भ, धोखेबाजी और दूसरे देशों के प्रति लोलुपता की भावना बढ़ती गई। भस्मासुर की तरह, उस की सफलताएं ही उस के विनाश और जरमनी के पराभव का कारण बनीं।

सन १९३७ में हिटलर ने खोए हुए क्षेत्र राइनलैंड पर अधिकार कर लिया। सन १९३८ में उस ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर के उसे जरमनी में मिला लिया। इसी वर्ष उस ने चेकोस्लोवाकिया का सुडेटन प्रदेश दखल कर लिया। दलील यह थी कि वह जरमन भाषी अंचल है। आगे चल कर १९३९ में जरमन का पूरे चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार हो गया। इस समय तक आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित जरमन सेना विश्व में बेजोड़ हो गई थी। अगस्त की शुरुआत के साथ ही जरमनों ने पोलैंड पर धावा ब्रोल दिया।

बस, इस घटना ने यूरोपीय राष्ट्रों को जगा दिया। दूसरे महायुद्ध का सूत्रपात हो गया।

मानवता के इतिहास में शायद ही कभी ऐसा भयानक युद्ध हुआ हो। इस लड़ाई में यूरोप प्रमुख रूप से रणांगन बना। जरमन सेना ने आंधी की तरह यूरोप के छोटेछोटे देशों को उखाड़ फेंका। पोलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, डेनमार्क, नारवे, नीदरलैंड, बेलजियम, रूमानिया, बुल्गारिया सभी पर नाजी झंडे लहरा उठे। यूरोप में इटली ने जरमनी का साथ दिया और एशिया में जापान ने। तीनों राष्ट्रों का यह गुट 'धुरीराष्ट्र' और ब्रिटेन, फ्रांस, रूस व अमरीका का गुट 'मित्रराष्ट्र' कहलाया।

युद्ध के प्रारंभिक काल में जरमनी ने फ्रांस की अजेय सैन्यशक्ति को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया। ब्रिटेन घबरा उठा। उस के जीवनमरण का प्रश्न आ खड़ा हुआ। जून १९४१ में हिटलर ने रूस पर धावा किया। बस, यहीं से हिटलर के पीछे पराजय की छाया मंडराने लगी।

वह भूल गया था कि यूरोप को रौंदने वाले नैपोलियन की शक्ति भी रूस में ही कुचली गई थी। रूस की लाल सेना ने जरमनी की नाजी सेना को बढने से रोका। स्टालिनग्राद में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एकएक गज जमीन पर जो लड़ाई हुई, उस की कल्पना शायद हिटलर ने नहीं की थी। एक ओर अमरीकी साजसामान से लैस रूसी सेना के धैर्य और साहस तथा दूसरी ओर जानलेवा बरफीली हवा के सामने हिटलर की सेना की हिम्मत पस्त हो गई। लाल सेना ने नाजियों को पीछे ही नहीं धकेला बल्कि वह जरमनी की राजधानी र्बलिन तक पहुंच गई। रास्ते में पड़ने वाले देश हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि नाजी अधिकार से मुक्त हो गए। उधर पश्चिम और दक्षिण से ब्रिटेन व अमरीका की मिलीजुली फौजें भी र्बलिन की ओर बढ़ीं। फ्रांस की सेना भी मुक्त हो कर र्बलिन में जा घुसी।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथसाथ जरमनी के वैभव और प्रतिष्ठा का भी अंत हो गया। जरमन राष्ट्र का अस्तित्व खंडित हो गया।

उसे अपार जनधन की हानि उठानी पड़ी। अनाथ बच्चों और बेवा स्त्रियों के रुदन से जरमन राष्ट्र कराह उठा।

युद्ध के बाद ब्रिटेन, फ्रांस, रूस आदि विजेता राष्ट्र भी पस्त हो चुके थे। स्वीडन, स्पेन, पुर्तगाल और स्विट्जरलैंड को छोड़ कर यूरोप के सभी राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। इटली तो पहले से ही कमजोर था, जरमनी को इस युद्ध ने विनाश के दरवाजे पर घायल कर के पटक दिया।

जरमनी की तब की हालत देख कर यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि वह निकट भविष्य में कभी उठ सकेगा। लेकिन सोचने या न सोचने से क्या होता है! जरमनी ने देखतेदेखते फिर करवटें लेनी शुरू कर दीं, उस में फिर चेतना आने लगी।

सन १९५० में जब यूरोप गया था तब युद्ध समाप्ति के पांच वर्ष बीत चुके थे। जरमनी जाने का भी अवसर मिला। उस समय केवल ब्रिमेन और हंबर्ग देख पाया था। इतना जरूर अनुभव हुआ कि जरमन लोग लगन के पक्के और कष्टसहिष्णु हैं। समय कम था इसलिए र्बलिन न जा सका। बमबारी से गिरे मकानों के मलबे उजड़ेटूटे कारखाने, भीड़ में विकलांग नागरिकों और वहां के लोगों के संघर्षमय जीवन को देख मन खिन्न हो गया था।

र्बलिन पहली बार १९६१ में गया और दूसरी बार १९६४ में। द्वितीय महायुद्ध के दौरान र्बलिन के बारे में तरहतरह की बातें सुनने और पढ़ने का मौका मिलता था, 'फॉल ऑफ र्बलिन' और 'लांगेस्ट डे' आदि फिल्में भी देखी थीं, इसलिए अनजान शहर नहीं लगा। १९६१ में र्बलिन की सड़कों पर पांव रखते ही मुझे ग्यारह वर्ष पूर्व हंबर्ग के अपने एक मित्र मिस्टर जिगलर की बात याद आ गई। उन्होंने कहा था, "आज आप जरमनी की यह दयनीय दशा देख रहे हैं लेकिन दस वर्ष बाद हमें ऐसा नहीं पाएंगे।"

बात सच निकली। इस एक दशक में जरमनी के कलकारखाने फिर से चालू हो गए और उस ने अपने सारे कर्ज़ भी चुका दिए। यही नहीं, अविकसित देशों को वह आर्थिक, औद्योगिक और तकनीकी मदद भी देने लगा।

जुलाई १९६४ में कोपेनहेगन से हवाई जहाज से शाम के समय हम र्बलिन पहुंचे। हवाई अड्डे आम तौर से शहर के किनारे या उस से कुछ दूर हुआ करते हैं लेकिन र्बलिन का एयरपोर्ट शहर के बीच में है और यह हमारे लिए ताज्जुब की बात थी। चारों ओर ऊंचीऊंची अट्टालिकाएं और बीच में बहुत बड़ा हवाईअड्डा। हम ने ठहरने की व्यवस्था पहले से करा रखी थी। दस मिनट में हम अपने होटल में पहुंच गए।

र्बलिन के लिए हमारे पास तीन दिन का समय था। इसी अवधि में पश्चिमी और पूर्वी र्बलिन देखना था। जलपान कर के हम ने होटल के काउंटर से शहर का नक्शा और गाइडबुक ले ली। कोपेनहेगन में ही र्बलिन के निरामिष रेस्तोरांओं का पता लिख लिया था। डोरैस्वामी के रेस्तोरां की सड़क वगैरह के बारे में रिसेप्शन से आवश्यक जानकारी ले ली।

गाइड यूरोप में बहुत महंगे हैं। वैसे पर्यटकों की सुविधा के लिए हर बड़ेबड़े होटलों की अथवा यात्री संस्थाओं की बसें चलती हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंगरेजी, फ्रेंच और स्थानीय भाषाओं में दर्शनीय या ऐतिहासिक स्थलों का परिचय देने के लिए इन बसों में गाइड रहते हैं। यह सुविधाजनक और सस्ता माध्यम है। हम ने अपने लिए बर्लिन देखने का यही उपाय चुना।

आम तौर से अंगरेजी का प्रचलन यूरोप में अब भी कम ही है। हां, प्रथम महायुद्ध के बाद अमरीकी पर्यटकों के कारण अंगरेजी को कुछ महत्त्व जरूर मिल गया है। होटलों, क्लबों और दुकानों में अंगरेजी से काम चल जाता है।

हमारा होटल यहां के प्रसिद्ध राजपथ 'कुर्फर स्टेंडम' के पास ही था। इसे पश्चिम बर्लिन का प्रमुख केंद्र कहा जा सकता है क्योंकि बड़ीबड़ी दुकानें, शानदार होटल और रेस्तोरां इसी राजपथ पर हैं।

बर्लिन को आधुनिक योजनाबद्ध नगर नहीं कहा जा सकता। हवाई जहाज से देखते ही इस का आभास मिल जाता है।

मूलत: यह स्प्री नदी के निकट एक टापू पर बसाया गया था। यही छोटी सी बस्ती आज का विकासमान बर्लिन है। अब तो यह नदी के दोनों किनारों पर बस गया है, जैसे टेम्स के दोनों ओर भव्य व आकर्षक लंदन नगर बसा हुआ है।

बर्लिन घूमते समय मुझे बारबार जरमनों के देशप्रेम और अध्यवसाय का खयाल आ जाता था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस ऐतिहासिक शहर का लगभग तीन चौथाई भाग भीषण बमबारी से नष्ट हो गया था क्योंकि लाखों टन बम इस पर गिराए गए थे। उसी ध्वंसावशेष पर आज का बर्लिन फिर मुसकरा रहा है।

लगता है जरमन हार कर भी हिम्मत नहीं हारते इसी लिए यह जाति अजेय है, हमारे मध्ययुग के राजपूतों की तरह।

अपनी बांहों में हरियाली लिए प्रशस्त राजमार्ग, भव्य भवन और रंगबिरंगे फूलों से सजे उद्यानों को देख कर कल्पना भी नहीं होती कि जरमन अभी कुछ वर्ष पूर्व विनाश के गहरे गढ़े में जा गिरे थे।

१९५० में जब जरमनी आया था तो ब्रिमेन और हंबर्ग की सड़कों पर बहुत से विकलांग लोग दिखाई पड़ते थे। युद्ध की यह स्वाभाविक परिणति थी। आज लगभग चौदह वर्ष बाद उसी जरमनी में दिखाई दिए स्वस्थ पुरुष व स्त्रियां और सुर्ख गालों वाले हंसते हुए बच्चे। लगता था जरमनों ने दुखदारिद्र्य को जीत लिया है, एक मजबूत नई पीढ़ी नई स्फूर्ति, उत्साह के साथ उठ खड़ी हुई है।

हम पैदल ही सैर करने निकले। कुर्फर स्टेंडम के उत्तरपूर्व से तूरगार्टेन नामक एक सुंदर उद्यान है जो लगभग छः सौ तीस एकड़ जमीन पर फैला हुआ है। उद्यान के बीच में बर्लिन कांग्रेस का भव्य हाल है। पास ही हम ने नए बर्लिन का हंसा क्वार्टर देखा। यह स्थल बर्लिन का सामाजिक केंद्र बिंदु है। १४ राष्ट्रों के श्रेष्ठ स्थापत्य शिल्पियों ने इस का निर्माण किया है। इस अंचल में सुंदर भवन, स्कूल और गिरजों का फिर से निर्माण किया गया है।

बाजार में घूमते हुए देखा, एक से एक उम्दा और नायाब चीजें दुकानों में सजी हैं। ग्राहकों की संख्या भी कम नहीं थी। हम ने खरीदारी भले ही नहीं की पर विभिन्न दुकानों पर जा कर कई प्रकार की चीजें जरूर देखीं। इटली या अन्य दक्षिण यूरोपीय देशों की तरह चीजें न खरीदने पर यहां के दुकानदार झुंझलाते नहीं और न मुंह बनाते हैं। बाजार में घूमने पर साफ पता चल जाता है कि युद्ध से जर्जरित और खंडित जरमनी ने पिछले बीस वर्षों में उद्योग और शिल्प के क्षेत्र में न केवल युद्धजनित हानि को ही पूरा किया है बल्कि आशातीत उन्नति और सफलता भी प्राप्त की है।

शायद दो घंटे घूमे होंगे, कुछ थकान सी महसूस होने लगी। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "नजदीक के किसी रेस्तोरां में चलना चाहिए।" मगर वह तो कम से कम खाने के पक्षपाती रहे हैं इसलिए उन के आदेश के अनुसार केवल एक स्क्वैश पी कर स्वामी रेस्तोरां की खोज में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चल पड़े। रात के नौ बजे जब हम वहां पहुंचे तो देखते हैं कि एक छोटी सी दुकान में रेस्तोरां है। रेस्तोरां में कुछ भारतीय थे और थोड़ेबहुत यूरोपीय भी थे।

दक्षिण भारतीय इडली दोसे और सांभर के दर्शन हुए, फलों का सलाद भी मिला, पर चार्ज बहुत अधिक था। गहरे श्याम वर्ण के स्थूलकाय मद्रासी बंधु मिस्टर स्वामी से हम ने इस का जिक्र किया लेकिन दाम कम करना तो दूर रहा वह तो यह भी मानने को राजी न हुए कि चार्ज ज्यादा है। उन की दलील थी कि निरामिषभोजी यहां बहुत कम हैं, इसलिए ग्राहक कम और बिक्री भी कम। उन का तर्क था कि कम बिक्री को देखते हुए जो कुछ चार्ज किया जा रहा है, वह सर्वथा उचित है। एक और भी जोरदार दलील उन्होंने यह पेश की कि छः हजार मील दूर घर छोड़ कर वह परदेश में रहते हैं और मद्रास से रसम तथा सांभर के मसाले मंगवाते हैं। ऐसी दशा में यदि स्वदेश के ही बंधु दामों की कटौती के लिए कहेंगे तो मद्रास लौट जाना ही उन के लिए अच्छा रहेगा। उन की गरदन हिलाहिला कर मद्रासी अंगरेजी में दी गई दलील ने हमें निरुत्तर कर दिया। हम ने उन्हें आश्वासन दिया कि जब तक बर्लिन में रहेंगे, उन के रेस्तोरां में भोजन करने अवश्य आएंगे।

रात में काफी देर से होटल लौटे। सड़कें नियोन के रंगबिरंगे प्रकाश में चमक रही थीं। चहलपहल और लोगों की बेफिक्री देख कर जरमन राष्ट्र की विकसित शक्ति का सहज अनुमान लग जाता था।

जुलाई का महीना था। हम क्योंकि उत्तरी यूरोप से आ रहे थे इसलिए यहां कुछ गरमी सी लग रही थी। वैसे तापमान केवल ६० फारेनहाइट था जब कि इन दिनों हमारे यहां तापमान ११२-११५ फारेनहाइट हो जाया करता है।

दूसरे दिन सवेरे हमारे होटल में प्रभुदयालजी के मित्र श्री डिटमार सपत्नीक मिलने आए। यहां के बारे में हमें उनसे बहुत कुछ जानकारी मिली। उन्होंने बताया कि बर्लिन शीतयुद्ध का शहर है। यह एक प्रयोगशाला है जहां आमनेसामने पूंजीवादी और साम्यवादी व्यवस्था को कसौटी पर कसा जा रहा है। जहां गणतंत्र का परीक्षण बर्लिन के पश्चिमी भाग पर चल रहा है, वहीं पूर्वी बर्लिन में साम्यवादी एकनायकत्व और शासन के अनुशासन के नाम पर फौजीतंत्र है। उन्होंने संकेत किया कि हमें दोनों भागों में जा कर खुद देख कर निर्णय लेना चाहिए कि जनता किसे चाहती है और दोनों में कौन सा प्रयोग सफल हुआ है! महायुद्ध के पूर्व लंदन और पेरिस के बाद बर्लिन का स्थान था। जरमनी की राजधानी का गौरव तो इसे प्राप्त ही था, हिटलर का हेडक्वार्टर भी यही था। आज भी आम जरमन व्यक्ति, चाहे वह पश्चिम अंचल का हो या पूर्वी, अपनी इस राजधानी को खंडित देखना नहीं पसंद करता। उस की मान्यता है कि जरमनी का और जरमनी के साथ ही बर्लिन का भी एकीकरण अवश्य होगा, भले ही शीतयुद्ध के कारण कुछ विलंब हो जाए।

हम ने उन से प्रश्न किया : जरमनी के इस विकास या पुनरुत्थान के पीछे कौन सा चमत्कार है?

बड़े ही सहज भाव से उन्होंने कहा, "आत्मसम्मान की भावना हमारी जाति का नैसर्गिक गुण है। इस के कारण हम में राष्ट्र के प्रति चेतना है और इसी ने हमें कष्टसहिष्णु बना दिया है। यही मूल कारण है जिस ने हमें फिर से जीवित कर दिया।"

पश्चिम जरमनी ने जो अर्थनीति अपनाई, वह अनुशीलन के योग्य है। उस ने अमरीकी सहायता पा कर हमारी तरह अंधाधुंध बड़ीबड़ी योजनाएं नहीं बनाईं बल्कि मध्यमार्गी नीति को अपनाया। इस प्रकार की नीति को सोशल मार्केट इकोनामी कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि आर्थिक उन्नति के लिए कृषि, शिल्प और उद्योग का विकास इस प्रकार किया जाता है कि व्यक्ति और समाज दोनों का हित हो। रूस का साम्यवादी तंत्र भी अब इसे समझने लगा है, भले ही स्वीकार करने में संकोच करे। मध्यम मार्ग की अर्थनीति के अनुसार निजी संपत्ति और निजी प्रयासों के लिए हर क्षेत्र में पूरी छूट है लेकिन यदि राष्ट्र का हित किसी विशेष

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यवसाय या व्यापार में हो तो उसका राष्ट्रीयकरण तो किया जाता है . फिर भी व्यक्ति और समाज के हितों की अवहेलना नहीं की जाती।

विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया, "युद्ध के कारण जरमनी में मकान बुरी तरह ध्वस्त हुए और आवास की विकट समस्या पैदा हो गई। सोशल इकोनामी के अनुसार मकानों पर नियंत्रण लग गया। किराया बढ़ने नहीं दिया गया। सरकार ने आवास के लिए खुद मकान बनवाए और लोगों को मकान बनाने के लिए ऋण भी दिए। समस्या का बहुत कुछ समाधान हो गया। आज नगरों में गंदी बस्तियां नहीं मिलेंगी। वैसे क्योंकि आबादी तेजी से बढ़ी है इसलिए कुछ दिक्कत अब भी है।"

१९४६ में यहां की आबादी साढ़े चार करोड़ थी, जो १८ वर्षों में बढ़कर लगभग पौने छः करोड़ हो गई है। युद्ध के बाद पश्चिम जरमनी में साठ लाख मकानों की जरूरत थी। इन वर्षों में वहां करीब पचपन लाख मकान बन चुके हैं।

जरमनी के आर्थिक विकास में यहां के मजदूर संगठनों का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है! इन श्रमिक संघों ने देश की नाजुक स्थिति को देखते हुए तय कर लिया था कि औद्योगिक प्रगति के लिए वे विवाद सुलझाने के लिए हड़ताल या 'सुस्त काम' के घातक तरीके नहीं अपनायेंगे। यही नहीं, शुरूशुरू में तो केवल थोड़ी सी मजदूरी लेकर उन्होंने अथक परिश्रम करके नष्ट हो चुके कारखानों को नया जीवन प्रदान कर दिया।

मैंने मिस्टर डिटमार से कहा, "जरमनी के विकास के लिए सबसे बड़ी सहूलियत यह मिली कि १९५५ तक सेना पर कुछ भी व्यय करना नहीं पड़ा और इस समय भी आपका सेना पर खर्च दूसरे बहुत से देशों की अपेक्षा बहुत कम है। इसलिए आपने सारे धन और साधन को देश के नए सिरे से निर्माण में लगा दिया।"

मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "बहुधा विदेशों के लोग हमारे बारे में ऐसा कहते हैं जब कि स्पष्ट है कि हार के बाद न तो हमारे पास धन बचा, न साधन। जिस रूर क्षेत्र में जरमनी को दो महायुद्धों के लिए धन और साधन दिए, उसे युद्ध के दौरान भीषण क्षति उठानी पड़ी। शत्रु के विमानों ने रूर का विनाश कर दिया, कलकारखाने और बस्तियां उजाड़ दीं।

"लोग कोसों चलकर चुकंदर या आलू लाते और किसी तरह परिवार की गुजर करते थे। हालत यह हुई कि फ्रांस रूर की खानों से कोयला निकालता और यूरोप के बाजारों में बेचा जाता था। हमारे मजदूर कम मजदूरी पर टिके रहे। हमें इससे लाभ हुआ क्योंकि हमारी खानें बंद नहीं हुईं। हमें मित्रराष्ट्रों को युद्ध के हरजाने की बड़ी रकम चुकानी थी। उसके बदले हमने कोयला और खनिज पदार्थ दिये। तनाव कम होता गया।

"उद्योगों से विदेशी पाबंदी हटी और औद्योगिक प्रगति तेजी से हुई। इसका बहुत बड़ा श्रेय है हमारे अर्थ मंत्री लुडविग एरहर्ड को। उन्होंने उद्योगों को बढ़ाने के लिए हर प्रकार की सरकारी सहायता दी। पारस्परिक सहयोग से जरमन नागरिक छोटेछोटे शिल्पोद्योग शुरू करने लगे। कल तक बर्तनभाड़े बेचकर जहां पेट पालना दूभर था, आज हमारा जीवन स्तर यूरोप में स्वीडन के सिवा सबसे ऊंचा है। हमारी राष्ट्रीय आय १९५० की तुलना में १३ वर्षों में ९० प्रतिशत बढ़ी है। मजदूरों को भी इतनी बचत हो जाती है कि वे टेलीविजन सेट खरीद सकते हैं और छुट्टियों में सैर करने निकल जाते हैं। अब तो वे मोटरें भी रखने लगे हैं।

हमने लक्ष्य किया कि यहां प्रत्येक व्यक्ति डटकर काम में लगा हुआ है, बेकारी नहीं है। जरमन व्यवसायी महत्वाकांक्षी हैं और यही उनका सबसे बड़ा गुण है।

मिस्टर डिटमार से बात करके हमें बड़ा संतोष हुआ। अंगरेजों में भी हमने स्पष्टवादिता देखी पर कुछ अहमन्यता के साथ। जरमनों की स्पष्टवादिता कुछ नम्रता भरी थी। शायद दो महायुद्धों में हार के कारण यह परिवर्तन हुआ हो। शाम के भोजन का निमंत्रण देकर दोनों ने विदा ली।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमने टूरिस्ट बस से शहर देखने के लिए टिकट ले रखी थी। बस से जाने वाले हम पच्चीसतीस यात्री थे। यात्रा से पूर्व गाइड ने सबको होटल के लाउंज में एक साथ बैठाकर बर्लिन का संक्षिप्त परिचय दिया ताकि शहर देखते समय समझनेबूझने में सुविधा रहे। उसने जरमन, फ्रेंच औरअंगरेजी तीनों भाषाओं में यात्रियों को समझाया। पहले भी हमने बर्लिन के बारे में पढ़ रखा था। उसकी बातों में विशेषता यह जरूर थी कि अपने शहर की तारीफ वह इस ढंग और इस लहजे में कर रहा था जैसे कोई रिकार्ड बज रहा हो। एक फ्रेंच यात्री बोल उठा। "मोशिए, अब हमें अधिक मत ललचाइए, चलिए अपनी स्वर्गपुरी के दर्शन करा दीजिए।"

लगभग नौ बजे रवाना हुए। बस की छत और चारों तरफ की खिड़कियां शीशे की थीं जिससे सभी दृश्य साफ-साफ दिखाई देते थे। गाइड के बैठने के लिए एक ओर ऊंची सीट लगी थी। माइक से वह हमें जानकारी देता जा रहा था। लंदन और पेरिस की तरह यहां भी बड़ेबड़े बागबगीचे हैं। यूरोप के देशों में अपनी राजधानी को सजीली और सुंदर बनाने की होड़ सी मध्ययुग में रहती थी। बिसमार्क और सम्राट विलियम केजर ने बर्लिन को अन्य राजधानियों से अधिक भव्य बनाने का प्रयास किया था। लेकिन भला इंद्रपुरी पेरिस के वैभव और सुंदरता के समकक्ष पहुंच पाना कहां संभव था! हिटलर ने भी इसे बढ़ाया किंतु उसकी प्रेरणा से बने मकान पार्टी और युद्ध के ख्याल से बनाए गए। ये बड़ेबड़े हैं जरूर, पर कलात्मक अभिरुचि का इनमें स्पष्ट अभाव है।

टायर गार्टेन नामक बड़े उद्यान से हमारी बस धीरेधीरे जा रही थी। इस बगीचे के बीच '१७ जनवरी' नाम की एक सड़क जाती है, उद्यान के पश्चिमी किनारे पर १२५ वर्ष पुरानी एक पशुशाला है। १९४४-४५ में यहां के बहुत से पशुपक्षी बमबारी में मारे गए। बहुत बड़ी राशि व्यय कर दुर्लभ पशुपक्षियों को संसार के विभिन्न देशों से मंगाकर इसे फिर से सजाया गया है।

यहां थोड़ी देर हम रुके। छोटेछोटे बच्चे मातापिता की उंगलियां पकड़े गौर से हाथी गेंडे, भालू आदि देख रहे थे। उनकी भाषा भले ही समझ में न आ रही थी पर भाव स्पष्ट थे। कोई पूछता था, "कितना खाता होगा?" कोई अपनी नाक दिखाकर कहता था, "इसके जैसी बना दो!" हमारे साथ भी बच्चे थे। समय हो गया था इसलिए माताएं पकड़पकड़ कर उन्हें बस में ले जाना चाहती थीं और वे इधरउधर बच निकलते थे। आखिर हम लोगों को मदद करनी पड़ी। सभी देशों के बच्चे एक सरीखे चपल होते हैं। पीले हो या गोरे।

इसके बाद हम हंसा क्वार्टर आए। पिछली रात पैदल यहां घूम चुके थे। डलहम म्यूजियम हमें हंसा क्वार्टर के बाद दिखाया गया। यह संग्रहालय युद्ध के पहले विश्व का एक बेहतरीन म्यूजियम माना जाता था। बमबारी में इसे बहुत क्षति उठानी पड़ी। फिर भी रेंब्रा के २६ दुर्लभ चित्र किसी प्रकार बच गए। इनमें तीन दुर्लभ चित्र 'स्वर्ण बख्तर मनुष्य' 'डेनियल का स्वप्न' तथा 'सेम्सन' और 'दलाइला' भी हैं। रयूबन के भी १४ चित्र यहां हैं। ये सब केजर के निजी संग्रहालय से लाए गए हैं।

केवल इन्हीं अद्वितीय कृतियों के कारण यह संग्रहालय आज अपने गौरव को बचा पाया है। इसके अलावा यहां की एक अमूल्य निधि है प्राचीन मिस्र की महारानी नेफ्रीतीती के मस्तक की प्रतिमूर्ति। तीन-साढ़े-तीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र में यह कलापूर्ण प्रतिमा बनाई गई थी। वैसे पत्थर की मूर्तियां भी मिली हैं पर वास्तविक चेहरे से एक-दम मिलती-जुलती इतनी पुरानी प्रस्तर-मूर्ति यहीं मिली है। हमारे यहां बाइसतेइस सौ वर्ष पहले की बनी गौतम बुद्ध की अनेक मूर्तियां मिल जाती हैं पर वे वास्तविक प्रतिमूर्त्ति हैं या नहीं, इसका निर्णय नहीं हो सका है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हवेल नदी के किनारेकिनारे ग्रेनवाल के राजपथ से गुजरती हुई हमारी बस ओलंपिक स्टेडियम पहुंच गई। १६३६ के विश्व की क्रीड़ा प्रतियोगिता के लिए इस का निर्माण हुआ था। १६ मंजिलों की ऊंचाई के विशाल स्टेडियम में एक लाख से भी अधिक दर्शकों के बैठने के लिए स्थान हैं। रेस्तोरां, विश्रामकक्ष, पुस्तकालय, वाचनालय तथा अन्य सुविधाएं भी यहां उपलब्ध हैं।

स्टेडियम से थोड़ी दूरी पर हम एक कृत्रिम पहाड़ी पर पहुंचे। मन में एक कुतूहल सा हुआ कि राजस्थान की तरह यह धूल का टिब्बा इस हरियाली के बीच कैसे बना? गाइड ने बताया, "१६४० के अगस्त से १६४५ के अप्रैल तक मित्रराष्ट्रों ने बर्लिन पर साढ़े बाइस लाख मन बम गिराए। इस के अलावा १६४५ अप्रैल के सिर्फ दस दिनों में जब नाजी विमानभेदी तोपें ठंडी हो चुकी थीं, सोवियत रूस ने ग्यारह लाख मन बम बरसा कर सारे देश को तहसनहस कर दिया। रूस ने स्टालिनग्राद के युद्ध का बदला इस ढंग से चुकाया। इस में बेगुनाह नागरिकों की जानें गईं और अस्पताल, स्कूल, पवित्र गिरजे तथा ऐतिहासिक स्मारक नष्ट हो गए। पता नहीं कम्युनिस्ट तंत्र का यह कौन सा मानवतावादी तरीका था!"

गाइड की आवाज में व्यंग्य तीखा था। उस ने कहा कि गिरजों, मकानों, अस्पतालों आदि के नष्ट होने पर जो मलवा बचा, उस में से कुछ को यहां इकट्ठा कर के रख दिया गया है। युद्ध की विभीषिका और अभिशाप का यह प्रत्यक्ष नमूना है। यह द्वेष, घृणा और स्वार्थ की मानव निर्मित पहाड़ी है जिसे देख कर खुद मानवता कराह उठती है। फ्रेंच यात्री ने कहा, "पोलैंड और स्टालिनग्राद में जरमनों ने कौन सी कमी रखी!"

दोपहर हो गई थी। लंच के लिए हमें फिर अपने होटल वापस आना पड़ा।

भोजन और कुछ देर विश्राम के बाद फिर उसी बस से घूमते हुए करीब तीन बजे हम यहां का विजयस्तंभ देखने पहुंचे। २१० फुट ऊंचा यह स्तंभ १८७० में फ्रांस पर जरमनी की विजय की स्मृति में बनाया गया था। हम इस के ऊपर चढ़े। लगभग सारा बर्लिन यहां से दिखाई देता है। १६३३ में हिटलर द्वारा जलाई गई राइख चांसलरी भी दिखाई पड़ी। पूर्वी बर्लिन की हलकी सी झांकी भी यहां से देखने को मिल जाती है।

हम जुलाई के दूसरे सप्ताह में यहां आए थे। उस समय तक ग्रीन वीक समाप्त हो चुका था। जून में यहां ग्रीन वीक यानी 'हरित सप्ताह' का मेला लगता है। इस मेले में जरमन किसान अपनी उपज के बेहतरीन नमूने पेश करते हैं। कृषि की उन्नति कैसे की जाए, इस के लिए विभिन्न यंत्र और साधनों की प्रदर्शनी लगती है। गाइड ने हमें जरमनी की कृषि योजना का परिचय दिया, जो तथ्यों पर आधारित था। उस ने बताया कि यहां चलाई गई योजना के अनुसार छोटेछोटे रकबों को मिला कर बड़ा किया गया है। इस से यांत्रिक कृषि में अधिक सुविधा हो गई है और उपज भी बढ़ाई जा सकी है। आज पश्चिम जरमनी अपने खाद्यान्नों के लिए आत्मनिर्भर है। अब तो अन्न और कृषि की अन्य वस्तुओं का निर्यात भी यहां से हो रहा है। फलों की खेती भी खूब बढ़ी है।

उत्सवों का ब्योरा देते हुए उस ने बताया कि कला उत्सव सितंबर में मनाया जाता है। इस अवसर पर नाना प्रकार के वाद्ययंत्रों का वादन, गीत और नाट्य रूपकों का आयोजन होता है। विदेशों से लाखों की संख्या में लोग आते हैं।

गाइड विश्वप्रसिद्ध संगीतकार मौजर्ट और वेगनर की खूबियां बता रहा था। उस की बातों में रस जरूर रहा होगा पर हम इस विषय में कोरे थे। एक सहयात्री ने, जो शायद अमरीकी था, स्टेट लाइब्रेरी और राइख चांसलरी दिखाने के लिए कहा। लाइब्रेरी प्रोग्राम में थी ही नहीं इसलिए हम केवल चांसलरी देखने गए।

गाइड ने बताया कि संसार के इतिहास में जघन्य अपराध का शायद ही ऐसा कोई दूसरा दृष्टांत मिले कि देश का सर्वोच्च शासक खुद अपने ही सचिवालय को भस्मसात करा दे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जनवरी सन १९३३ में हिटलर चांसलर चुना गया और ठीक एक महीने बाद यानी २७ फरवरी को उस ने अपने नाजी गुप्तचरों के जरिए चांसलरी के भव्य प्रासाद को खाक में मिलवा दिया, ऊपर से ढिंढोरा पीटा कि साम्यवादियों की साजिश से यह दुष्कर्म हुआ है। इस प्रकार उस ने जरमनी की साम्यवादी पार्टी को अवैध करार दे दिया और नाजी पार्टी के प्रति जरमन जनता का मन जीतने का प्रयास किया।

चांसलरी को देखने पर लगता है कि यह कार्यालय दिल्ली के हमारे सचिवालय से भी बड़ा रहा होगा। इस की कराहती हुई टूटीफूटी अधजली दीवारें आज भी अपने अतीत की गरिमा बताती हैं। शायद स्मृति बनाए रखने के लिए ही इसे इसी हालत में छोड़ रखा गया है।

शाम को हम लोग होटल वापस लौटे। लाउंज तक पहुंचा कर गाइड ने शिष्टतापूर्वक विदा ली। हम ने देखा कि हमारे कुछ साथी गाइड को स्वेच्छा से कुछ भेंट कर रहे हैं। हम ने भी एकएक मार्क (दो रुपए) दिया।

थकान मिटाने के लिए काफी मिली। आम तौर से यहां बिना दूध और चीनी के काफी पीते हैं। हम ने भी कोशिश की मगर गले में जलन और मुंह में कड़वाहट भर गई। काफी से भी ज्यादा यहां बीयर पीने का प्रचलन है। दरअसल बीयर को तो लोग पानी की तरह पीते हैं। करीब एक रुपए में एक बोतल अच्छी बीयर मिल जाती है। पुरुष, स्त्रियां, छात्र, मजदूर सभी पीते हैं। दूसरे देशों की अपेक्षा बीयर की खपत प्रति व्यक्ति यहां कहीं अधिक है।

रात्रि में मिस्टर डिटमार के साथ रेस्तोरां में भोजन करने गए। पतिपत्नी दोनों अंगरेजी जानते थे इसलिए बातचीत और विचारों के आदानप्रदान में कठिनाई नहीं हुई। इन देशों में निमंत्रण पर भोजन का अर्थ है दोढाई घंटे का कार्यक्रम। मीनू के अनुसार एक के बाद एक तश्तरी आती है और साथ में नाना प्रकार के पेय भी चलते रहते हैं। खाने की टेबल पर ही व्यापारव्यवसाय, राजनीति, प्रेमविवाह आदि के महत्त्वपूर्ण मसले तय हो जाते हैं।

हम जरमनी के बारे में और भी जानना चाहते थे। मैं ने श्रीमती डिटमार से जानना चाहा कि महायुद्ध का परिणाम यहां की जनसंख्या पर अवश्य पड़ा होगा, स्त्रियों की संख्या पुरूषों से बढ़ गई होगी।

उन्होंने बताया कि यह युद्धों की स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। १९४६ में प्रति हजार पुरुषों पर ११६ स्त्रियां अधिक थीं पर इन अठारह वर्षों में जनसंख्या बढ़ी है और असंतुलन अब कम हो गया है। उन से जानकारी मिली कि वे लोग अब परिवार नियोजन पर भी ध्यान देने,लगे हैं। पिछली शताब्दी में औसत जरमन परिवार में पांच सदस्य होते थे, जब कि आज औसत केवल साढ़े तीन सदस्यों का है।

जरमनी में हमारे यहां की तरह स्त्रीपुरुषों के पारस्परिक मेल पर सामाजिक प्रतिबंध नहीं है बल्कि युद्ध के बाद कुछ समय तक तो उसे प्रोत्साहन दिया जाता रहा। वहां विवाह योग्य अवस्था पुरुषों के लिए चौबीसपचीस वर्ष है और स्त्रियों के लिए बाइसतेइस वर्ष। स्वेच्छा से विवाह होते हैं और तलाक की सुविधा है फिर भी जरमनी में पारिवारिक व्यवस्था सुगठित है। हाल में जो सर्वे हुआ उस के अनुसार दस हजार व्यक्तियों में से केवल पैंतालिसपचास तलाक के लिए न्यायालयों में आए।

जरमनों का दैनिक जीवन नियमित है। सुबह आठ बजे तक लोग घर से काम पर चले जाते हैं। इस से पूर्व गृहिणी नाश्ता तैयार कर लेती है। नाश्ता साथ ले जाते हैं। बच्चों का स्कूल या किंडरगार्टन,यदि रास्ते में पड़ा तो पिता या माता स्कूल में छोड़ते जाते हैं। शाम को पांच बजे कांम से लौटने पर साथ ले आते हैं। दसग्यारह वर्ष तक के छोटे बच्चों को रात के सातआठ बजे तक सुला दिया जाता है। बच्चों के स्वास्थ्य के लिए यह परंपरा अच्छी लगी। इतवार या छुट्टी का दिन त्यौहार की तरह आमोदप्रमोद, सैरसपाटे में बीतता है। वृद्ध

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मातापिता, अलग रहते हैं। उन्हें सरकारी पेंशन मिलती है। आठदस दिन में वे एक बार अपने परिवार के लोगों से मिलने चले जाते हैं। बहुत वृद्ध हो जाने पर वृद्धालयों में चले जाते हैं।

जरमन मुद्रा के बारे में पता चला कि विश्व के किसी भी देश के मुकाबले में मार्क की साख कम नहीं है। कारण यह कि जरमनी का बजट संतुलित है। आयात से निर्यात अधिक है। उद्योगधंधे इतने अधिक हैं कि उनके लिए जरमन श्रमिक पूरे नहीं पड़ते। लगभग ढाई लाख विदेशी मज़दूर जरमनी के कारखानों में काम पर लगे हुए हैं। अलगअलग कामों के लिए मजदूरी में फर्क जरूर है फिर भी प्रत्येक को लगभग पंदरह सौ रुपए से अठारह सौ रुपए तक प्रति मास मिल जाते हैं। खाद्य सामग्री और देशों की अपेक्षा सस्ती है। फलदूध, मांसमछली की बहुतायत है। हम ने आंकड़ों के अनुसार देखा कि जरमनी में प्रत्येक व्यक्ति को लगभग सवा सेर दूध, आठ औंस मांस या मछली, चार औंस चीनी प्रति दिन मिल जाती है। हम अपने देश में तो इन सारी सुविधाओं की कल्पना भी नहीं कर सकते। रात साढ़े ग्यारह बजे तक डिनर चलता रहा। इस के बाद वे अपनी गाड़ी में हमें होटल पहुंचा गए।

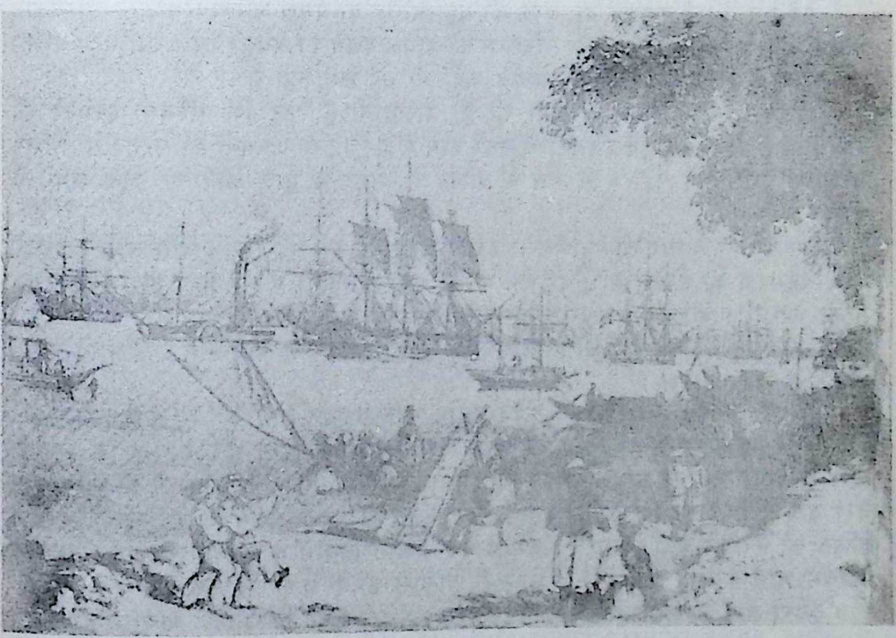

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो विरोधी शक्तियों के राजनीतिक दांवपेच की कसौटी.........

बर्लिन

अगले दिन सुबह नास्ता कर के हम लोग पूर्व बर्लिन के लिए रवाना हुए। पश्चिम जरमनी के नागरिकों के प्रवेश पर वहां कड़ा प्रतिबंध है पर अन्य देशवासियों के लिए नहीं। पासपोर्ट और वीसा दिखाने पर अनुमति मिल जाती है। भारत और सोवियत रूस के आपसी संबंध अच्छे रहे हैं इसलिए हमारे लिए अड़चन का सवाल ही नहीं था, फिर भी पश्चिम बर्लिन से आने वाले शाम के ८ बजे तक ही रुक सकते हैं, उस के बाद उन्हें वापस चला जाना पड़ता है।

मेरे मन में एक कुतूहल था, आज की बहुप्रचलित दो प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं—साम्यवाद और पूंजीवाद—की सफलता और परिणाम को प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिल रहा था। बर्लिन के अलावा ऐसा अवसर विश्व में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

बर्लिन वास्तव में पूर्व जरमनी की ही राजधानी है, जब कि पश्चिम जरमनी की राजधानी है बोन। यह पूर्व जरमनी के मध्य भाग में है। पश्चिम जरमनी की सरहद से लगभग सौ मील दूर। सन १९४८ में रूस ने बर्लिन में बाहर से माल आने पर रोक लगा दी थी।

उस समय एक बार तो वहां निराशा और घबराहट फैल गई क्योंकि बीस लाख व्यक्तियों के जीवनमरण का सवाल था। पर उन करीब ग्यारह महीनों में अमरीका तथा मित्र राष्ट्र सोलह लाख टन खाद्यान्न तथा दूसरे जरूरी सामान हवाई जहाज द्वारा यहां लाए। उस समय अनेक प्रकार की कठिनाइयां बर्लिनवासियों ने सहीं। पर केवल चार प्रति शत लोगों ने पूर्व बर्लिन से राशन लिया।

उस एक वर्ष में अमरीका को १३० करोड़ रुपए सामान लाने के लिए खर्च करने पड़े। जब किसी प्रकार समझौता संभव नहीं हुआ तब मित्र शक्तियों ने सोवियत गुट के देशों के माल के आवागमन पर प्रतिबंध लगा दिया। तब जा कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के बीचबचाव से घेरा उठाया गया पर फिर भी छुटपुट झंझट चलते ही रहे। राजनीति के इन दांवपेचों ने बर्लिन को कसौटी बना दिया है। हम ने देखा कि गणतंत्रीय व संसदीय व्यवस्था शहर के पश्चिम भाग का इन २० वर्षों में बहुमुखी विकास करने में सफल रही है।

दूसरी ओर जो साम्यवादी यह दावा करते हुए नहीं थकते कि उन की व्यवस्था ही मानव के कल्याण का एकमात्र निदान है, तो आज तक वहां बारह लाख नागरिकों के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। इसी लिए जान जोखिम में डाल कर भी वर्षों तक पूर्व

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बर्लिन से भाग कर पश्चिम में आते रहे हैं। बर्लिन के सीने पर दोनों के निशान उभर रहे हैं। प्रत्यक्ष देखने पर खरेपन का खुद ही अंदाज हो जाता है।

दोनों बर्लिन के बीच की दीवार के पास हम पहुंचे ही होंगे कि हमें कुछ तनाव का सा वातावरण मिला। लोगों की शक्ल पर चिंता दिखाई पड़ी। कइयों ने यह भी बताया कि उस पार जाना आज शायद न हो।

मेरे मन में एक सरसराहट सी हुई। प्रभुदयालजी के मना करने पर भी मैं ने दलील दी कि हमारे लिए भय की कोई बात नहीं है। लोगों के कामकाज ठीक हैं। सभी चलफिर रहे हैं। ऐसी स्थिति में खतरे का अंदेशा नहीं है। फिर हम तो भारतीय नागरिक हैं, जिन्हें कई बार पूर्वी यूरोपीय देश विभिन्न जलसों में बुलाते रहते हैं।

हम फीड्रिश स्ट्रेशें से दीवार की ओर बढ़े। दीवार के करीब आने पर हमें पश्चिम बर्लिन के प्रहरियों ने रोका। एक पुलिस वाले ने बताया कि पिछली रात दीवार का एक हिस्सा पूर्व बर्लिन से भागने की कोशिश करने वाले किसी व्यक्ति ने बम से उड़ा दिया है। रूसी सैनिक अधिकारियों का आरोप है कि पश्चिम बर्लिन के अधिकारी वर्ग की साजिश है कि इसी तरह समूची दीवार गिरा दी जाए। यह जरमन साम्यवादी सरकार के सार्वभौम अधिकार पर गहरी चोट है जिसे बरदाश्त नहीं किया जा सकता। इस का प्रतिकार होगा, हरजाना लगेगा। जो व्यक्ति बम के धड़ाके से मरा है उस के लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी आदिआदि। इस के पहले ख्रुश्चेव ने अमरीका तथा दूसरे राष्ट्रों को कई बार कड़ी चेतावनी भी दी थी। और यहां तक प्रचार किया गया था कि पूर्व बर्लिन से जाने वाले पुरुषों से तो गुलामों की तरह काम लिया जाता है और महिलाओं को वेश्यालयों में भेज दिया जाता है।

मेरी समझ में भाषा नहीं आ रही थी पर लोग सारांश बता देते थे। प्रभुदयालजी कोट का पल्ला बारबार खींच कर वहां से हटने के लिए इशारा कर रहे थे, मगर मुझे छोड़ कर खुद हटना भी नहीं चाहते थे। मैं सोचने लगा कि पश्चिम जरमनी से इतनी दूर बर्लिन के पश्चिम भाग के इन मुट्ठी भर सैनिकों का तो मिनटों में सफाया हो सकता है। भा ने की गुंजाइश भी कहां? भागेंगे भी तो साम्यवादी इलाका ही चारों ओर है। इतने में देखा, एक अमरीकी अफसर खाली हाथ अकेले ही दीवार की ओर बढ़ रहा है। वह ठीक वहीं पहुंचा जहां उस पार मचान पर से रूसी अफसर माइक से गरज रहा था। उस ने क्याक्या बातें कीं, सुन नहीं पाया। लेकिन हावभाव से पता चला कि बड़ी संजीदगी से वह कुछ समझा रहा था। थोड़ी देर बाद देखा रूसी संगीनें झुक गईं। वह अफसर मुसकराता हुआ लौट रहा था नाटो संधि के कारण पश्चिम जरमनी अमरीकी गुट में है। सोवियत रूस ने पूर्व जरमनी और बर्लिन से अपनी सेना नहीं हटाई है, इसलिए बर्लिन की सुरक्षा और जरमन संघीय सरकार (पश्चिम जरमनी) के सहयोग के लिए अमरीकी फौजी दस्ता इस समय तक भी यहां रखा गया है।

आवागमन पूर्ववत चलने लगा। मैं सोचने लगा कि सचमुच ही बर्लिन शीतयुद्ध के बारूद के एक ऐसे अंबार पर बैठा है, जो जरा सी चिनगारी से भड़क उठेगा और तब तृतीय विश्वयुद्ध हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अमरीका और रूस दोनों ही यहां हर घड़ी टकरा सकते हैं। दोनों की प्रतिष्ठा और मर्यादा बर्लिन के मसले में दाव पर लगी है, कोई झुकने या हटने वाला नहीं लगता।

हम ने देखा कि दीवार की पश्चिमीओर चौड़ी, उजड़ी और वीरान पट्टी है। इस में झाड़ियां उगी हैं। बीचबीच में सलीबें (क्रास) भी हैं। ये उन लोगों की यादगार हैं, जिन को पूर्वीय भाग से भागने की कोशिश करते समय रूसी प्रहरियों ने गोली से उड़ा दिया था। दीवार के करीब जगहजगह रेस्तोरां और छोटीछोटी दुकानें भी देखने में आईं। हमारे यहां मंदिरों के आसपास काशी, प्रयाग, हरिद्वार में जैसे महात्म्य की सचित्र पुस्तकें मिलती हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसी तरह की किताबें यहां भी मिलती हैं, जिन में इस दीवार का इतिहास रहता है और तसवीरें भी।

बर्लिन की दीवार को देख कर लगता है कि आज का सभ्य कहलाने वाला मनुष्य कितना जंगली और बर्बर है! इस के बनाते समय आसपास की खूबसूरत इमारतें या उन के हिस्से गिरा दिए गए और वहां भोंड़े आकार के भूरे पत्थर चिन दिए गए। कहींकहीं तो मकानों के दरवाजों और खिड़कियों में पत्थर लगा दिए गए हैं। ऊंचे मचान जगहजगह बने हैं। इन पर रातदिन मशीनगन साधे सोवियत प्रहरी डटे रहते हैं। दूरबीन, सर्चलाइट, लाउडस्पीकर इस ढंग से फिट हैं कि कोई चिड़िया भी यदि पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़े तो पता चल जाता है—आदमी की बात ही क्या! फिर भी मुक्तिकामी प्राणों की बाजी लगा कर दीवार फ्रांदने की चेष्टा करते हैं। दीवार के पास कहीं टैंक हैं और कहीं सैनिकों की टुकड़ियां। कानून इतना कड़ा है कि बढ़ता हुआ व्यक्ति यदि 'हाल्ट' कहने पर रुक न जाए तो उसे वहीं गोली से उड़ा दिया जाता है। फिर भी पिछले १० वर्षों में लगभग बीस लाख व्यक्ति दीवार फांद कर पश्चिम हिस्से में आ गए हैं।

युद्ध के बाद जरमनी की बंदरबांट हुई। इस का लगभग एकतिहाई भाग सोवियत रूस ने दबा लिया, जिस में १.०८ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल और डेढ़ करोड़ की आबादी थी। पश्चिम जरमनी के २.४८ लाख किलोमीटर क्षेत्रफल और पांच करोड़ की आबादी के दोतिहाई भाग के हिस्सेदार बने अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस। इसी तरह जरमनी की राजधानी—बर्लिन के टुकड़े हुए। मित्र राज्य तो अब हट चुके हैं किंतु रूसी अभी तक जमे हैं। उन्हें भय है कि साम्राज्यवादी शक्तियां पूर्व जरमनी को हड़प न जाएं।

जो भी हो जरमनी और खास कर के बर्लिन के इस बंटवारे से बड़ी समस्याएं पैदा हो गईं। बापमां एक ओर तो बेटेबेटी दूसरी ओर। दोस्तमित्र, प्रेमीप्रेमिका सभी बिछुड़े। आज वह एक ऐसा शहर है जिस में परिवार बंटे हैं, पानी और बिजली बंटी है, होटल, रेस्तोरां, थिएटर, सिनेमा बंटे हैं, प्रशासन भी बंटे हैं। खड़ी है बीच में भद्दी, मोटी, पत्थर की कांटों वाली दीवार। पार करना तो दूर है, पास जाने में भी भय लगता है।

युद्ध के बाद जरमनी के दोनों भागों में ठीक उसीतरह तनाव है जैसा भारत और पाकिस्तान में। पश्चिम भाग की प्रगति तीव्र रही। उस की आर्थिक समस्याएं सुधरती गईं। किंतु पूर्व भाग में विकास का क्रम मंद रहा है। रूस उन वर्षों में स्वयं युद्ध जर्जरित था इसलिए उस ने इस की उपज से उचितअनुचित तरीकों से लाभ उठाया। संभवतः यह भी एक कारण हो सकता है।

पश्चिम जरमनी के शिल्पोद्योग की प्रगति, आर्थिक सुदृढ़ता और जीवन ने साम्यवादी व्यवस्था में रहते हुए लोगों को स्वाभाविक रूप से आकर्षित किया। परिणाम यह हुआ कि पूर्व जरमनी से प्रति दिन हजारों की संख्या में लोग पश्चिम बर्लिन पहुंचने लगे। फलतः पूर्व जरमनी में कारीगर, मजदूर और विज्ञानविदों का अभाव हो गया, उस के कलकारखाने ठप्प होने पर आ गए। इसलिए इस बाढ़ को रोकने के लिए सोवियत रूस ने शहर के बीचोंबीच खड़ी कर दी बर्लिन की दीवार।

सन १९६२ के आरंभ में सोवियत नियंत्रित पूर्व जरमन अधिकारियों ने योजना बनाई कि विभाजन के अनुसार सरहद पर ३३८ मील लंबी एक दीवार बना दी जाए ताकि लोग भाग कर पश्चिम हिस्से में न जा सकें। सन १९६२ के अंत तक दीवार बनी। औसत ऊंचाई सात फुट है, कहींकहीं इस से भी ऊंची। बीचबीच में लगभग सोलह फुट खुली जगहें भी हैं, जिन में कांटों के तार लगे हैं। पश्चिम बर्लिन के आसपास जहां तालाब और झीलें हैं उन में नावों पर खूंटे लगा कर कंटीले तार लगा दिए गए हैं और इन पर मशीनगनें बैठा दी गई हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जरमनी के शरणार्थियों के बारे में जो आंकड़े मिले हैं उस के अनुसार सन १९६१ तक २३.१० लाख शरणार्थी पश्चिम जरमनी में भाग आए थे। इन में विद्यार्थी, डाक्टर, इंजीनियर और प्रोफेसर तो थे ही पर आश्चर्य हुआ यह जान कर कि हजारों साम्यवादी सैनिक भी भाग कर पश्चिम जरमनी में आ गए। यह सिलसिला अब भी जारी है।

औद्योगिक या आर्थिक प्रगति का अंदाज इसी से चल जाता है कि पश्चिम जरमनी का वार्षिक आयातनिर्यात है २०,५०० करोड़ रुपयों का, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है लगभग दस हजार रुपए, जब कि पूर्व जरमनी का है, ३,७४० करोड़ का और प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है तीन हजार रुपए के लगभग। भारत में प्रति व्यक्ति की आय है ३४० रुपए वार्षिक।

पूर्व बर्लिन में प्रवेश करते समय हम ने देखा कि हमारी तरह साठसत्तर अन्य लोग भी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन में अमरीकी, फ्रांसीसी, चीनी, अफ्रीकी, अरब आदि भी थे।

जांच की रस्म बड़ी कड़ी थी। यूरोपीय विशेषत: जरमनों के पासपोर्ट की जांच बारीकी से की जा रही थी। इस के लिए खुर्दबीन तक काम में लाया जाता था। चौकी से आगे बढ़ कर हम दीवार के पार आ गए। अब जरमन साम्यवादी भूमि में हमारे कदम थे। घूसते ही लगता था कि हम किसी और दुनिया में आए हैं। कई प्रकार की प्रचार सामग्री हमें दी गई, जिस में साम्यवादी सरकार की प्रगति का ब्योरा था। इन पर विदेशी अतिथियों की सम्मति भी दी गई थी।

शाम को आठ बजे तक का समय था। अतएव शहर को बस से व पैदल घूम कर देखने का निश्चय किया। यहां के प्रसिद्ध राजमार्ग अंडेनडेन लिंडेन को देखा। कहा जाता है कि युद्ध के पूर्व यह बहुत ही शानदार था, दोनों ओर बड़ेबड़े मकान थे और छायादार वृक्षों की कतारें थीं। बमबारी से ध्वंस हो गया था। जिस तेजी से पश्चिम बर्लिन ने स्वयं को खंड़हर से निकाल दिया है, वैसा यह भाग नहीं कर पाया है। सड़कों को संवारने की चेष्टा जरूर की गई है पर कसर अब भी काफी है। बर्लिन की प्रसिद्ध संस्थाएं इसी अंचल में रह गई हैं। स्टेट लाइब्रेरी, आपेरा, हिटलर का दफ्तर, हमबोल्ट विश्वविद्यालय इत्यादि।

यहां घूमते समय लगता है कि पश्चिम बर्लिन की तरह गति, कहेकहे, आनंद और उल्लास की झलक लोगों की शक्लों पर नहीं दिखती। ऐसे वातावरण में पर्यटक का उत्साह ठंडा पड़ जाता है।

बिलहेल्म स्ट्रासे पर चांसलरी देखने गए। हिटलर के समय में यह उस का हेडक्वार्टर था। उस ने इसी तहखाने में आत्महत्या की थी। बमबारी और गोलियों की बौछार के चिह्न और मलबे के ढेरों को देख कर मन में स्वत: एक भावना उठ जाती है कि हजारों वर्ष जीवित रखने की महत्त्वाकांक्षा के तृतीय राइस को हिटलर ने शक्ति, वैभव और गौरव के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ा दिया, और फिर उसे ऐसा खींचा कि वह गहरे गड्ढे में जा गिरा—खंडित और श्रीहीन।

हिटलर के बारे में युद्ध के दिनों मे हमारे यहां बड़ी भ्रांत धारणाएं फैली थीं। वह बाल ब्रह्मचारी है, निरामिष भोजी है, उस में तप और तेज है इत्यादि। बाद में पता चला कि परले सिरे का भोगी और क्रोधी था वह। पढ़ालिखा बहुत साधारण था। इसी राइख के तहखाने में उस ने आत्महत्या के एक घंटा पहले अपनी प्रेयसी इवा ब्राडन से विवाह किया। उस समय बाहर रूसी तोपें लोहे की मोटी चद्दरों से मढ़ी, इसकी दीवारों पर मौत के नगाड़े बजा रही थीं। इसी में अलग तहखाने में उस का अनन्य भक्त गोयबल्स विष की गोलियां खा कर सदा के लिए सो चुका था। रूसी सैनिक राइख के तहखाने में घुसे तब आग में हिटलर की लाश जल चुकी थी।

राइख के पास ही मार्क एंजेल्स प्लाजा है। यहां बडेबडे प्रदर्शन और रैली के आयोजन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुआ करते हैं। ऐतिहासिक स्थान, लाइब्रेरी, विश्वविद्यालय सड़क—सबों के नाम यहां बहुत कुछ मार्क्स, एंजेल्स, लेनिन और स्टालिन पर हो गए हैं। मगर स्टालिन के मरते ही ख्रुश्चेव द्वारा उठाई गई विरोध की लहर में उस का नाम सोवियत भूमि और उस के अधिकृत देशों में मिटाया जाने लगा। पूर्व जरमनी और पूर्व बर्लिन में भी यही चल रहा था।

फ्रांक फुर्टेर एली, लगभग तीन मील लंबी सड़क है। यही एकमात्र राजपथ है, जिस पर सोवियत अधिकारियों की नजर गई है। चौड़ी सड़क के दोनों ओर वृक्षों की कतारें हैं। हलके पीले रंग के बड़ेबड़े मकान रूस के युद्धोत्तर वास्तुशिल्प का परिचय देते हैं। इस का नाम बदल कर स्टालिन एली रखा गया था, पर सन १९६१ में कार्लमार्क्स एली कर दिया गया है।

घूमतेफिरते एक रेस्तोरां में हम कुछ जलपान के लिए पहुंचे। काफी और सैंडविच ली। दाम पश्चिम से ज्यादा थे। अगर अनधिकृत तरीके से सिक्के बदल लेते तो किफायत तो जाती, पर साम्यवादी देशों में इस प्रकार का खतरा मोल लेना बहुत महंगा पड़ता है। वहां पर जरमन, रूसी, फ्रांसीसी और दोएक चीनी भी दिखाई पड़े। घूमते समय हमें स्थानीय किसी भी व्यक्ति से चर्चा करने का सुयोग नहीं मिला। संभव भी नहीं था, क्योंकि इस पार की दुनिया लोह दीवार का देश है। मन में उत्सुकता थी कि इस पार रहने वाला जरमन मिल जाता।

एक आकर्षक लड़की ने बड़ी संजीदगी से पास की खाली कुरसी पर बैठने की अनुमति मांगी। मैं ने कहा, 'खुशी से।'

उस ने बियर के लिए आर्डर दिया फिर बदल कर कहा, "अच्छा, काफी ले आओ।"

"शायद आप दोनों भारतीय या पाकिस्तानी हैं," उस ने साफ अंगरेजी में कहा। बातचीत का सिलसिला चल पड़ा। उस ने जानना चाहा कि कैसा लगा पूर्व बर्लिन।

मैं ने अपने मन की प्रतिक्रिया बता दी कि उतना आकर्षक और उल्लासपूर्ण नहीं जितना कि पश्चिम बर्लिन है। मैं ने उसे यह भी बताया कि हमारी धारणा है कि पूर्व जरमनी की शासन सत्ता पूर्णतः सोवियत रूस के हाथ में है, इसी लिए यहां की सरकार में केवल साम्यवादी हैं।

फ्राउ (युवती) ने हमें जानकारी दी, "यहां साम्यवादियों का प्रभाव अवश्य अधिक है पर कई सरकारी पदों पर गैर साम्यवादी भी हैं। रूस की तरह दल का सदस्य होना यहां आवश्यक नहीं।"

"पूर्व जरमनी को जरमन भाषा में 'डोइशे डेमोक्रातिशे रीपब्लिक' अर्थात 'जरमन गणतंत्र राज्य' कहते हैं। इस के संविधान के अनुसार देश के शासन का अधिकार श्रमिक, कृषक एवं बुद्धिजीवियों के हाथ में है। यहां की सब से बड़ी पार्टी है समाजवादी एकता पार्टी। कम्युनिस्ट और समाजवादी गणतंत्री (सोशल डेमोक्रेट) इन दोनों दलों को मिला कर अब एकता पार्टी बनाई गई है। यह अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट दल का एक अंग है जिस का केंद्र रूस की राजधानी मास्को में है। देश के शासन में अन्य पार्टियां भी हैं, जैसे कृषक दल, क्रिश्चियन, डेमोक्रेटिक पार्टी इत्यादि। पूर्व जरमनी में संसद के लिए प्रत्येक पांच वर्ष पर चुनाव किया जाता है। शासन और शासकों की निष्ठा के कारण देश में ऐसा वर्ग ही नहीं रह गया है कि विरोध की गुंजाइश हो।"

इस अंतिम वाक्य ने मुझे चौकन्ना कर दिया। समझते देर नहीं लगी कि फ्राउ सरकारी जासूस या प्रचारक है। मैं ने कहा, "इतना होने पर १७ जून १९५३ के बर्लिन विद्रोह के लिए तो कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए थी।" प्रभुदयालजी ने टेबल के नीचे से मुझे सावधान किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फ्राउ घबराई नहीं। उस ने दलील पेश की कि यह बुर्जुआ लोगों की साजिश थी। आलसी और निकम्मों को रोटी और पैसे दिखा कर भड़काया गया था ताकि किसान और मजदूरों का शासन जम न पाए और वे पूर्ववत शोषण करते रहें।

मैं पूछना चाहता था कि फिर क्या ये निकम्मे व आलसी अपनी जान पर खेल कर पश्चिम चले गए, और अब वहां खेत, खलिहान और कारखानों में काम कर के पैसे कमा रहे हैं। जो न जा सके उन में बहुत गोली से उड़ा दिए गए और शेष अब भी पूर्व जरमनी की जेलों में या रूस के कारखानों में बलात काम पर लगाए गए हैं। उन के बारे में फोटो छाप कर प्रचार यह किया जाता है कि रूस में विदेशी मजदूरों को भी काम मिलता है। पर यह सोच कर कि साम्यवादी देशों में इस प्रकार की आलोचना खतरे से खाली नहीं होती, चुप रह गया।

बातचीत का सिलसिला बदल देना पड़ा। मैं ने पूछा, "आप भी क्या पश्चिम ज़रमनी से घूमने आई हैं ?"

"नहीं, मैं यहीं रहती हूं, सांस्कृतिक रिसर्च कर रही हूं। हां मेरा छोटा भाई, मां और पिता वहीं हैं। मैं ने लक्ष्य किया कि फ्राउ अब हमारे पास से दूसरे यात्री के पास जाना चाहती हैं।

रेस्तरां से निकल कर हम बाजार देखने चले गए। तरहतरह के फल, मेवे, सब्जियां, मांस और अंडे बहुतायत में थे किन्तु अन्य सामान उतने नहीं थे जितने कि पश्चिम में। चित्रशाला और म्यूजियम भी बड़े थे मगर समय कम बचा था इसलिए इन्हें ठीक तरह से देखना संभव नहीं था।

घूमता हुआ दीवार तक पहुंचा। सोचता जा रहा था, राजनीति के दांवपेचों में भी कैसी विडंबना होती है ! भारत बंटा, कोरिया विभक्त हुआ, वियतनाम खंडित है। एक देश, एक भाषा, एक इतिहास और एक संस्कृति, मगर खड़ी कर दी जाती हैं राजनीति की दीवार ! जनता को विभक्त करने के लिए पहले धर्म और संप्रदाय का नारा बुलंद किया जाता रहा है. अब बीसवीं सदी में पूंजीवाद, गणतंत्र, साम्यवाद आदि की दुहाई दी जाती है ! सदियां बीतीं, विज्ञान बढ़ा, मगर क्या मनुष्य अपना हृदय बदल सका ?

हम दीवार के फाटक पर आ गए। हमारी तरह और लोग भी बर्लिन के पश्चिमी भाग में जाने के लिए क्यू लगाए हुए थे। उन से पूर्व बर्लिन के बारे में राय लिखने के लिए कहा जा रहा था। मैं ने लिखा 'पूर्व बर्लिन में जीवन का जो रूप देखा, वह सोचनेसमझने की काफी खुराक देता है।'

चौथे दिन सुबह हमें वियना के लिए रवाना होना था। बर्लिन के पश्चिम भाग में हलहम म्यूजियम, टापर गार्डन, हंसा स्क्वायर, विजय स्तंभ और पशुशाला आदि दर्शनीय स्थल हम देख चुके थे। फिर भी अभी बहुत कुछ देखना बाकी था। हमें जरमनी के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की जानकारी भी करनी थी। बोन स्थित हमारे भारतीय दूतावास के माध्यम से यहां के लैंडसजनट्राल बैंक (रिजर्व बैंक) के जनरल मैनेजर मिस्टर फ्रांज मुसान से दिन के तीन बजे मिलने का समय निश्चित था।

मिस्टर डिटमार आज फिर अपनी कार ले कर आए। उन्होंने पूरे दिन का समय हमें दिया। उन की सहायता के बिना बर्लिन जैसे ऐतिहासिक महानगर को दो दिनों के अल्प समय में देख पाना संभव न हो पाता।

इस बार की यात्रा में हमारी धारणा से कम ही खर्च हुआ। क्योंकि कुछ देशों में हम अपने मित्रों के घर अतिथि के रूप में रहे, भारतीय दूतावास की कारें भी मिलती रहीं, ज्यादातर हम दूसरे दरजे के होटलों में ठहरते रहे, इसलिए बचत हो गई। बचे हुए रुपयों से हम कुछ खरीदारी करना चाहते थे।

बाज़ार में देखा, नाना प्रकार की बेहतरीन वस्तुओं की भरमार है। जरमन कैमरा,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूरबीन, टेपरिकार्डर और बिजली के सामान तो दुनिया में मशहूर हैं। हांगकांग में इन्हीं सब चीजों के दाम हम पचीसतीस प्रतिशत कम देख आए थे। इसी लिए इच्छा रहते हुए भी हम ने कुछ नहीं खरीदा।

कैजर मेमोरियल चर्च देखने गए। १९४३-४४ की बमबारी में इस का अधिकांश भाग टूट गया था। अब फिर से पुर्ननिर्माण किया गया है। कुछ भाग इस समय भी टूटाफूटा था, शायद युद्ध की यादगारी के लिए छोड़ रखा गया है।

शहर का बोटेनिकल गार्डन देखा। काफी प्रसिद्ध है और बड़ा भी, पर मुझे हमारे कलकत्ते के बोटेनिकल गार्डन जैसा नहीं जंचा।

यहां का ओलंपिक स्टेडियम हम ने बस से देखा था। आज घूमते हुए उसे फिर देखा। बहुत ही भव्य और विशाल है। वैसे टोकियो में भी एक लाख दर्शकों के लिए बना स्टेडियम हम पहले देख चुके थे। पर बर्लिन के स्टेडियम में बैठने की सीटों की व्यवस्था और साजसज्जा उस से कहीं अच्छी लगी। दुनिया के हर देश से चोटी के खिलाड़ी विश्व की ओलंपिक प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं। विशिष्ट दर्शक भी विदेशों से बड़ी संख्या में आते हैं। इसलिए स्टेडियम की व्यवस्था भी उसी के अनुरूप की जाती है।

हम ने देखा था कि फिनलैंड जैसे छोटे से देश ने भी स्टैडियम बनाने में करोड़ों रुपए खर्च कर दिए थे। इस से देश को लाभ भी पहुंचता है क्योंकि विदेशी यात्रियों से अच्छे पैमाने पर आय हो जाती है और पर्यटन व्यवसाय का प्रचार भी हो जाता है।

मिस्टर डिटमार हमें और भी बहुत से दर्शनीय स्थल दिखाना चाहते थे पर समय काफी हो गया था इसलिए रेडियो टावर देख कर होटल लौट जाना तय किया। रेडियो टावर की ऊंचाई ५०० फुट है। ऊपर तक लिफ्ट से जाने की व्यवस्था है। बर्लिन के दोनों हिस्से यहां से साफ देखे जा सकते हैं। मोटरों और चलनेफिरने वालों की संख्या देखने से बर्लिन के दोनों भागों की सुखसमृद्धि के फर्क का अनुमान लग जाता है।

होटल में लंच ले कर लैंडसजनट्राल बैंक में जब मिस्टर फ्रांज के कक्ष में पहुंचे तो देखा कि और भी तीनचार व्यक्ति बैठे हैं। पारस्परिक परिचय हुआ। वे सभी बैंक के विभिन्न विभागों के विशेषज्ञ थे। उन्हें हमारी बातचीत में हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। इस से काफी सुविधा रही क्योंकि सूचनाएं साथसाथ मिलती जाती थीं। हमारे वार्तालाप को अंगरेजी में बदलने के लिए, एक अंतर्भाषी भी था और एक स्टेनो भी सारी बातों की टिप्पणियां लिखती जा रही थी।

हम ने उन्हें अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारतीय बैंकिंग व अर्थनीति और उद्योग विकास के बारे में भी उनकी जानकारी है, वे आंकड़े तक सही बता रहे थे।

उन्होंने कहा, "भारत और पश्चिम जरमनी अच्छे मित्र हैं। हम स्वयं भी बहुत संकट से गुजरे हैं, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार भारत की आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रति वर्ष करते जा रहे हैं। हमारा विश्वास हैं कि विश्वशांति और एशिया के देशों को चीन के खूनी पंजे से बचाने के लिए भारत को समृद्ध और सशक्त होना नितांत आवश्यक है।"

जरमनी के औद्योगिक, आर्थिक और कृषि उत्पादन के संबंध में उन्होंने जो आंकड़े बताए, उन्हें सुन कर ऐसा लगा कि हम किसी जादूई करिश्में की बातें सुन रहे हैं। आंकड़े सभी १९६३ के दिए गए थे।

जनसंख्या ५.७० करोड़, बड़े शहरों में बर्लिन, हमबर्ग, कोलोन, एसन और फ्रांकफुर्त। खाद्यान्न का उत्पादन १.५५ करोड़ टन, बीट शुगर १.२५ करोड़ टन, दूध २.०८ करोड़ टन, मक्खनपनीर ६.३० लाख टन, अंडे १,००० करोड़, मछली ५६ लाख टन, कोयला और कोक १७.७३ करोड़ टन, लिगनाइट १२.२५ करोड़ और सीमेंट ३ करोड़ टन। मोटरें और ट्रक २७ लाख, रेडियो और टेलीविजन सेट ५४ लाख।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'दैनिक अखबार निकलते हैं १३७५, जिन की बिक्री है २.३० करोड़। साप्ताहिक और मासिक पत्रों की संख्या ६,५०० और बिक्री १५.२० करोड़।

'आय का बजट ६,५०० करोड़। राष्ट्रीय आय ६४,००० करोड़, यात्रियों की संख्या ६०,००,०००। होटलों में शयन की व्यवस्था १२,००,०००, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय १०,००० रुपए।'

हम मंत्रमुग्ध से यह सब सुनते जा रहे थे और नोट कर रहे थे। बातचीत का सिलसिला समाप्त हुआ। उन्हें धन्यवाद दे कर हम अपने होटल वापस आ गए।

हालांकि दुनिया में अमरीका और दोएक यूरोपियन देश पश्चिम जरमनी से अधिक समृद्ध हैं किंतु हम तुलना कर रहे थे भारत से। हमारा देश इस से नौ गुना बड़ा है पर राष्ट्रीय आय केवल २०,००० करोड़ और प्रति व्यक्ति आय ३६१ रुपए। मोटर और ट्रकों का उत्पादन अवतक हम केवल पचपन हजार तक ही कर पाए हैं। हमारे पास कृषि योग्य बहुत बड़ा भूभाग है। आबादी भी बावन करोड़ की है, प्रचुर खनिज पदार्थ हैं, फिर भी विश्व में हम सब से गरीब देशों में से हैं। जरमनी १६ वर्ष पहले मटियामेट हो चुका था। आज वह संपन्न और समृद्ध है और हम इन १६ वर्षों में दरिद्रतर होते गए।

हम कारणों का विश्लेषण कर रहे थे। प्रभुदयालजी का कहना था कि हमारी सरकार ने मध्यम श्रेणी के कारखाने स्थापित करने के बजाय अधिक महत्त्व दिया बड़ीबड़ी योजनाओं को। राजनीतिक दलबंदी और पार्टियों के प्रभाव में पड़ कर देश की जनसंख्या, श्रमशक्ति, खनिज पदार्थ व उपलब्ध साधनों के आधार पर योजनाएं न बन पाई। फल यह हुआ कि हम बहुत सी आवश्यक वस्तुओं में पिछड़े रह गए। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था भी हमारे यहां नहीं हो पाई। अच्छा होता यदि हमारे कृषि प्रधान देश में सब से पहले सिंचाई और खाद पर ध्यान दे कर खाद्यान्न कि उत्पादन को बढ़ा कर भारतीय अर्थनीति की बुनियाद मजबूत करते।

जरमनी औद्योगिक देश था, फिर भी इस ने पहले छोटे और मध्यम श्रेणी के कारखानों को प्रश्रय और प्रोत्साहन दे कर चालू किया। तब कहीं क्रुप जैसे विशाल उद्योग प्रतिष्ठानों को पुनर्जीवित किया जा सका। कृषि को भी इन लोगों ने सब से पहले संभाला। राष्ट्रीय एकता और चेतना इन में शुरू से ही जागरित रही है। इसलिए यहां के मजदूर नेताओं ने भी देश को पुनर्जीवित करने में पूरा सहयोग दिया।

हमारे यहां ठीक इस के विपरीत हुआ। छोटेछोटे कारखाने और राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगों की परवा किए बिना मजदूर दलों का उद्देश्य रहा— कम काम करो, हड़ताल करो, अधिक मजदूरी की मांग के लिए काम ठप्प कर दो। साम्यवादी मजदूर दलों का तो उद्देश्य ही है अराजकता फैलाना और दलगत स्वार्थ की पूर्ति करना। अपने देश और राष्ट्र के हितों से ज्यादा इन की दृष्टि रहती है साम्यवादी राष्ट्रों के संकेतों पर।

हमारी कांग्रेस पार्टी और सरकार में कुछ प्रच्छन्न साम्यवादी घुस आए। इन में दोएक तो नेहरूजी के मंत्रीमंडल में भी थे। इन्हीं के प्रयत्नों से सरकारी कारखानों में साम्यवादी मजदूर यूनियनों को मान्यता मिली। इस का भीषण दुष्परिणाम भुगतना पड़ा। चीन ने सन १९६२ में आक्रमण किया, उस समय पता चला कि हमारे कारखानों में हथियार नहीं, काफी पर्कुलेटर और सिगरेट लाइटर बनते हैं।

श्रमिकों के नियमकानून भी यहां इस ढंग के बने कि काम कम करने पर भी किसी को बरखास्त करना या हटाना संभव नहीं। इतना ही नहीं उत्पादन कम भले ही हो, घाटा बढ़ता जाए, पर बोनस देना ही होगा। सहकारी संस्थाओं ने भी यूरोपीय देशों में बड़ा ठोस काम किया है, जब कि हमारे देश की ऐसी अधिकांश संस्थाओं ने जनता के पैसे को बरबाद किया। आवश्यकता व योग्यता से अधिक स्थानीय राजनीतिक परिस्थितियों को महत्त्व दिया जाता रहा है। अतएव जरमनी के साथ अपने देश की तुलना करते समय इन बातों का ध्यान रखना अपेक्षित है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बर्लिन के आपेरा और थिएटर यूरोप में प्रसिद्ध हैं। बाख, मोजार्ट, वैगनर और स्ट्राउस पाश्चात्य संगीत के चमकते सितारे हैं। ये सभी जरमनी के थे। आज भी उपासनालयों में इन महान संगीतकारों द्वारा रचित शांत, गंभीर व मधुर स्वरलहरी सुनने को मिल जाती है। केवल यूरोप में ही नहीं, सुदूर अमरीका और आस्ट्रेलिया तक में भी मुरझाए मन में नई जान आ जाती है इन की संगीतलहरियों को सुन कर।

मिस्टर डिटमार ने हम लोगों के लिए प्रसिद्ध सीलर थिएटर में एक बाक्स रिजर्व करा लिया था। रात नौ बजे हम वहां गए। छः मंजिलों की ऊंचाई का यह बहुत ही शानदार थिएटर हाल था। कुरसियां बेहतरीन और आरामदेह, मंच की सजावट भी बहुत सुरुचिपूर्ण थी। उन दिनों वहां केवल कंसर्ट (वाद्य संगीत) का प्रोग्राम चल रहा था। विभिन्न प्रकार के छोटेबड़े वाद्य यंत्रों की मानो एक प्रदर्शनी सी लगी हो। कलाकारों की संख्या ही सैंकड़ों में रही होगी।

जब संगीत का एक पद खत्म होता तो लोग बारबार ताली बजा कर प्रशंसा व्यक्त करते थे। हमें पश्चिमी संगीत की जानकारी नहीं है। स्वरलहरी अच्छी जरूर लगी पर बारीकी समझ में नहीं आती थी। अनजान या अरसिक न माने जाएं इसलिए हम भी ताली बजा कर दूसरे श्रोताओं की तरह दाद दे रहे थे। व्यक्तिगत रूप से मुझे तो अपने यहां की वीणा और सारंगी की स्वरलहरी इन वाद्यों से कहीं ज्यादा मधुर लगती है।

आम तौर से जरमनी के बारे में लोगों की धारणा यही रही थी कि ये बड़े व्यावहारिक, मितव्ययी और कुछ रूखे से होते हैं। पर इस हाल की भीड़, उन की तन्मयता आदि को देख कर ऐसा लगा कि श्रम और विश्राम दोनों का सही उपयोग जरमन समझते हैं।

थिएटर और आपेरा की टिकटें यहां बहुत पहले से रिजर्व हो जाती हैं। इस के लिए एजेंसियां हैं जो अपनी जोखिम पर सैकड़ों सीटें विभिन्न हालों की बुक करा लेती हैं। इन के बंधे ग्राहक होते हैं। रुचि के अनुसार टिकटें उन्हें भेज देते हैं।

कंसर्ट करीब ग्यारह बजे समाप्त हुआ। मिस्टर डिटमार हमें अपनी कार से होटल पहुंचा गए। हम ने आभार मानते हुए उन्हें धन्यवाद दिया।

उन्होंने हंस कर कहा, "इसे कल सुबह तक हवाई अड्डे के लिए अपने पास सुरक्षित रखिए।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मलबे के ढेर......पुर्ननिर्माण के प्रतीक

ब्रिमेन हंबर्ग

सन १६५० में अपनी पहली यूरोप यात्रा में जरमनी के दो ही शहर देख पाया था: ब्रिमेन और हंबर्ग। १६६४ में यूरोप की यात्रा का तीसरा अवसर मिला। इस बार फिर से मैं हंबर्ग तो गया पर ब्रिमेन नहीं जा सका।

अपनी पहली यात्रा में ब्रुशेल्स से ट्रेन द्वारा ब्रिमेन आया था। युद्ध समाप्त हुए लगभग पांच वर्ष हो चुके थे पर उस समय तक शहर की हालत सुधर नहीं पाई थी। टूटे हुए मकान, अस्पताल, गिरजे, बाजार, चारों ओर मलबे के ढेर, खालीखाली सी उजड़ी दुकानें, सूनी सड़कें और विकलांग लोग, कलकारखाने ठप्प, बेरोजगारी के कारण भटकते उदास चेहरे और अनाथ बच्चे—यही थी उस समय जरमनी की तसवीर, जिस पर मित्र राष्ट्रों की बमवर्षा और तोपों की गोलाबारी के निशान अब भी अंकित थे। हंबर्ग के बाद ब्रिमेन जरमनी का सबसे बड़ा बंदरगाह माना जाता था। यहां आते ही मैं ने युद्धोत्तर जरमनी की दुर्दशा देखी, जिस की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

युद्ध के पहले ब्रिमेन का यूरोप के वाणिज्यव्यवसाय में महत्त्वपूर्ण स्थान था। केवल जरमनी ही नहीं बल्कि पासपड़ोस के अन्य राज्यों के भी माल का आयातनिर्यात यहां के बंदरगाह से होता था। यह लगभग चार लाख की आबादी का घना बसा हुआ शहर था, किंतु मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसी खंडहर में आ पहुंचा हूं। अजीब सुनसान और भयानक सा कसबा हो गया था।

युद्ध के कारण जरमनी के जहाज, कारखाने और बंदरगाह बुरी तरह बरबाद हो गए थे। पराजित जरमनी की अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त थी और व्यापार बंद सा पड़ा था, इसलिए चहलपहल न रहना स्वाभाविक था। ब्रिमेन में न तो व्यापारियों का आनाजाना होता था और न यात्रियों का। हां, कभीकभी अमरीकी पर्यटक मिल जाते थे क्योंकि इन पांच वर्षों में अमरीका युद्ध की थकान मिटा चुका था और वहां के कुछ पर्यटक जरमनी के टूटेफूटे शहर देखने भी आ जाते थे। होटलों की दशा बुरी थी। वे बेमरम्मत से पड़े थे और उन में खानेपीने के सामान का अभाव था। सुखसुविधा के आधुनिक साधन भी वे नहीं जुटा पा रहे थे।

यहां आने के बाद मन में एक दुख सा छा गया। सोचने लगा, 'न आता तो अच्छा था।' आज का सभ्य यूरोप अपने इतिहास में चंगेजखां और नादिरशाह को बर्बर और लुटेरे कहता है, ठीक है। बेरहमी से उन्होंने शहरों को उजाड़ा और कत्लेआम किया। किंतु इस बरबादी को देख कर तो ऐसा लगता है कि चंगेज और नादिर आज के इन लोगों से कहीं अधिक दयालु

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और सभ्य रहे होंगे। उन्होंने और जो कुछ भी किया पर मसजिदों को नहीं तोड़ा, जब कि सभ्य ईसाइयों ने तो खुदा के अवतार ईसा के प्रार्थनाघरों तक को नेस्तनाबूद कर दिया। अपने होटल के मैनेजर से मैं ने पूछा, "क्या कारण है कि पांच वर्ष हो गए, मलबे का ढेर हटाया नहीं जा रहा, मरम्मत का काम शुरू नहीं किया जा रहा ?"

उस ने टूटीफूटी अंगरेजी में कहा, "पहले शिल्प उद्योग, कृषि, अस्पताल, स्कूलकालिज ठीक होने हैं और तब इन के बाद दूसरी चीजों की मरम्मत या सुधार का प्रोग्राम है। जब तक बाहर से यथेष्ट सहायता नहीं मिल जाती तब तक हमें अपने ही साधनों और शक्ति पर भरोसा करना होगा। अफसोस है कि युद्ध के हरजाने में हमें अपने अधिकांश साधन देने पड़ गए हैं, हमारी राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग युद्ध के कर्ज चुकाने में चला जाता है। मगर हमारा विश्वास है कि जरमन जाति टूटेगी नहीं, वह फिर उठ खड़ी होगी।"

होटल मैनेजर की बातों में साधारण जरमन नागरिक की कष्ट सहने की शक्ति और दृढ़ विश्वास का पहला परिचय मिला। मुझे पेरिस, ब्रुशेल्स और कोपेनहेगन के नाइट क्लब और कैबरे के दृश्य, वहां की सड़कों की चहलपहल के नजारे याद आ गए। यद्यपि पड़ोस के ही देश हैं पर वे हैं विजेता। जरमनी से युद्ध का हर्जाना वे अब तक करीबकरीब पूरा पा चुके थे। उन में अब युद्ध की थकान भी नहीं रह गई थी। वहां जिंदगी में बहारें लहरा रही थीं।

हमारे यहां शास्त्रकारों ने कहा है कि भूख और काम की आग दबाई नहीं जा सकती। हालांकि भारत ने लूटखसोट और युद्ध की बरबादी देखी है, एक बार नहीं अनेक बार, किंतु कभी भी संपूर्ण भारत इस चपेट में शायद ही आया हो। इसलिए भूख और काम के बारे में जो लिखा गया है उस की वास्तविकता और गहराई व्यापक तौर पर प्रत्येक भारतीय समझ सकेगा, इस में संदेह है। लेकिन युद्ध से जर्जर हो गए जरमनी में हम ने इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा।

युद्ध में १८ से ५० वर्ष तक के पुरुष बड़ी संख्या में मारे गए। कुछ बचे किंतु वे विकलांग हो गए। इसलिए देश में युवा स्त्री और पुरुषों की संख्या में विषमता अत्यंत उग्र रूप में आ गई।

क्लबों, रेस्तोराओं और बारों में अधिकांश प्रौढ़ाएं और युवतियां साहचर्य के लिए लोगों को ढूंढ़ती रहती थीं। अमरीका के नीग्रो फौजियों के कई दस्ते इटली से वहां आ गए थे। वे भी स्वदेश और स्वजनों से बहुत अरसे से अलग थे। युद्ध से फुरसत मिल ही चुकी थी। अब उन के लिए शेष रह गया केवल खाना और मौज करना। यहां उन्हें इस का भरपूर मौका मिला।

मैं यही सोचता था, कहां गया नाजियों के आर्य रक्त का वह दंभ, जिस के चलते लाखों बेगुनाह जरमन यहूदियों को जो सैकड़ों वर्षों से उसी देश में रहते आए थे, आपस में एक-दूसरे से हिलमिल कर रहते रहे थे—अमानुषिक यातनाएं दे कर बेघरबार कर दिया गया, जहरीली गैस की कोठरियों में भूखाप्यासा मार दिया गया ! आइस्टीन जैसे विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक और स्टिफेनज्विग जैसे चोटी के लेखक को स्वदेश छोड़ कर खुद ही देश निकाला लेना पड़ा। आज उसी विशुद्ध जरमन आर्य रक्त में नीग्रो रक्त का मिश्रण स्वेच्छा से हो रहा है।

हमारे धर्मग्रंथ 'महाभारत' में उल्लेख है कि युद्ध का दुष्परिणाम केवल जनधन और भूमि की हानि तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि इस का प्रभाव भावी संतानों पर भी पड़ता है क्योंकि वर्णसंकर संतति की वृद्धि युद्ध के बाद सहज स्वाभाविक है। इस से राष्ट्रीय गुण और विशिष्टता में अंतर आ जाना भी स्वाभाविक है।

यूरोप के पराजित देशों में ऐसा हुआ कि विजेता राष्ट्रों के अज्ञात कुलशील नाविक और सैनिक आए। उन्होंने भरपूर मौज की और कुछ दिनों बाद अपनेअपने देश को चले गए। भोगना पड़ा उन बेचारी माताओं को जिन्हें अपने तरहतरह के सांवले, पीले चेहरों वाले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बच्चों को पालनापोसना पड़ रहा है। पिता का नाम भी किस का कहें, गनीमत यही है कि पश्चिम देशों में ऐसी बातों के लिए अड़चनें नहीं आतीं। फिर जरमनी को तो उस समय किसी न किसी सूरत से अपनी आबादी बढ़ानी थी इसलिए सरकार भी ऐसे संबंधों के प्रति उदासीन थी।

शाम को ब्रिमेन पहुंचा था। बाजार में थोड़ा-बहुत घूमा। तबीयत लगी नहीं। जो कुछ देखा था, दुख पैदा करने के लिए काफी था। शीघ्र ही अपने होटल वापस आ गया। भोजन की इच्छा नहीं हुई। होटल के रेस्तोरां में एक कप काफी पी कर ऊपर अपने कमरे में सोने चला गया।

दूसरे दिन सुबह उठ कर ब्रिमेन शहर का एक चक्कर लगा आया। शहर अच्छा रहा होगा और पुराना भी पर अधिकांश मकान बमवर्षा से टूट चुके थे। पश्चिम की तरफ से इसी नगर से मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जरमनी में प्रवेश किया था, इसलिए यहां बड़ी मोर्चेबंदी हुई थी और बमबारी भी।

यहां का प्रसिद्ध टाउनहाल देखा, जो बच गया था। लगभग साढ़े पांच सौ वर्ष पहले की बनी हुई गोथिक शैली की यह इमारत बहुत शानदार है। इस के भीतर भित्तिचित्र और नक्काशी के काम सचमुच बेमिसाल हैं। लगभग सभी चित्र कलापूर्ण थे और उन में भाव भी अत्यंत स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुए थे। करीब चार सौ वर्ष पहले का ब्रुमन द्वारा बनाया गया प्रसिद्ध चित्र 'सोलोमन का न्याय' देखा। युद्ध के बीच यह अमूल्य कृति सहीसलामत बच गई, गनीमत है!

ब्रिमेन के गिरजे प्रसिद्ध रहे हैं। बेलजियम में ब्रुजे के गिरजों की तरह ये भी कलापूर्ण माने जाते हैं। इन में सैंट अंसजारिस के एक गिरजे का बुर्ज तो लगभग तीनसौ दस फुट ऊंचा था किंतु अप्रैल १९४५ में, जबकि जरमनी एक प्रकार से हार चुका था, मित्र राष्ट्रों की धुंआंधार बमबारी से वह नष्ट हो गया।

मुझे आश्चर्य ही रहा था कि ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस करोड़ोंअरबों रुपए एशिया और अफ्रीका में व्यय करते हैं पर उसी धर्म के पवित्र स्मारकों को, जिन में ईसा और माता मरियम की मूर्तियों तथा अमूल्य धार्मिक चित्र हैं, वे अंधाधुंध बम गिरा कर और तोपों की मार से नष्ट कर देते हैं। यहां के दोतीन गिरजों के खंडहरों में गया, प्रार्थनाघर टूटे हुए थे। मलबे के ढेर के बीच दीवार के जो भी हिस्से खड़े रह गए थे, उन पर अंकित देखा कि सूली पर ईसा के शरीर से खून बह रहा है। मुझे उन की आंखों में इस प्रकार की करुणा भरी झलक दिखाई दी मानो वह अपने धर्मानुयायियों के कुकृत्यों पर आंसू बहा रहे हैं।

बंदरगाह भी देखने गया। गोदियां टूटी पड़ी थीं। कुछ जहाज माल उतार रहे थे। जरमनी से ले जा रहे थे कोयला, तेल और लोहा। बंदरगाह की मरम्मत का काम जिस तेजी से चल रहा था उस से लगता था, सरकार का विशेष ध्यान इस ओर है।

तीन दिन पहले बेलजियम के प्रसिद्ध नगर एटेनबर्ग में था। वह भी जरमन विमानों की बमवर्षा से ध्वस्त हो गया था। लेकिन अब वहां का दृश्य भिन्न था क्योंकि बेलजियम मित्र राष्ट्रों का साथी था इसलिए विजेता भी। पराजित जरमनी के हरजाने की रकम से वहां तेजी से नवनिर्माण हुआ और शहर में फिर से चहलपहल और उल्लास का वातावरण नजर आने लगा। नए मकान, सजी दुकानें, हंसती शकलें......लेकिन यहां ब्रिमेन में ठीक इस के विपरीत वातावरण था। सोचने लगा, "वास्तव में पराजय किसी भी राष्ट्र के लिए अक्षम्य अपराध है।'

दिन भर शहर का चक्कर लगा कर रात में अपने होटल वापस आया। कमरे में आ कर गरम पानी से हाथपैर धो कर थकान दूर की और भोजन के लिए नीचे रेस्तोरां में चला गया। अपनी टेबल पर अकेला ही था। चालीसपैंतालीस की उमर की एक भद्र महिला अपनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अठारहबीस साल की लड़की के साथ मुझ से अनुमति ले कर पास ही बैठ गई । व्यवहार शिष्टतापूर्ण था और बातों में शालीनता थी ।

पारस्परिक परिचय से पता चला कि साथ वाली लड़की उन की पुत्री है । पति युद्ध में गया था, लौटा नहीं, मरने की खबर भी नहीं आई । युद्ध के दौरान पूर्वी पोलैंड में बंदी बनाया गया था, उस के बाद से कोई सूचना नहीं । रेडक्रास की मारफत कोशिशें की जा रही हैं पर सोवियत सरकार सहयोग नहीं देती । पांच साल का एक लड़का भी है ।

बातचीत का सिलसिला युद्ध की विभीषिका से शुरू हुआ था । आर्थिक कठिनाई और पारिवारिक समस्या से गुजरते हुए व्यक्तिगत रुचि पर जिस प्रकार की चर्चा उन्होंने शुरू की, उस से मैं थोड़ा चौकन्ना हो गया । शिष्टाचार के नाते मैं ने उन्हें खाने के लिए पूछा, थोड़े संकोच के साथ वह राजी हो गईं । देख कर ऐसा लगा शायद दोनों ही भूखी थीं ।

उन्हें भोजन में साथ देने के लिए धन्यवाद दे कर अपने कमरे में चला आया । एक अजीब सी घुटन से जूझता हुआ सो गया ।

दूसरे दिन नाश्ता कर के ट्रेन से हंबर्ग के लिए रवाना हो गया । यहां हमारे पटसन के व्यापारिक संपर्क की एक फर्म थी, जिसे मैं ने आने की पूर्व सूचना दे रखी थी । प्लेटफार्म पर, देखा फर्म के मालिक मिस्टर जिगलर उपस्थित नहीं थे, पर स्टेशन के बाहर पोर्टिको में वह मेरी प्रतीक्षा में खड़े मिल गए ।

अभिवादन के बाद उन्होंने संकोच के साथ बताया कि जरमन नागरिकों को स्टेशन, एयरपोर्ट और अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों पर जाने के लिए पूर्वाज्ञा लेनी पड़ती है । अपनी छोटी सी वाक्सवागन कार वह साथ लाए थे । होटल जाते समय उन्होंने बताया कि खेद है, वह मुझे अपने घर न ठहरा सकेंगे । कारण यह है कि उन का मकान बमबारी में ध्वस्त हो चुका है । एक हिस्सा जो बचा है वह बहुत ही छोटा है । छत और दीवारें भी कहींकहीं से टूटी हुई हैं । उन्होंने अपनी असमर्थता और मेरी असुविधा के लिए क्षमा मांगी । मैं ने देखा, उन की आंखें गीली थीं ।

दूसरे दिन सुबह वह होटल आए और मुझे अपने घर ले गए । घर में शरणार्थियों के डेरे की सी हालत थी । छोटे से बरामदे में डाइनिंगरूम बना रखा था । डबलरोटी, काफी और कुछ फल मुझे खाने के लिए पेश किए गए ।

परिवार में उन की पत्नी, दो बच्चे, बूढ़ी मां और छोटे भाई की विधवा पत्नी थी । मिस्टर जिगलर के दोनों छोटे भाई युद्ध में मारे गए थे । उन की मां ने भरे गले से बताया कि उन का एक पुत्र अल अलामीन में भारतीय सिपाही द्वारा मारा गया । उन्होंने कहा, "वह इतना तगड़ा था कि चारपांच अंगरेजों के लिए अकेला ही काफी था । यदि भारत और अमरीका युद्ध में अंगरेजों का साथ नहीं देते तो हम हारते नहीं ।" वृद्धा की बातों का भाषांतर मिस्टर जिगलर कर रहे थे ।

मैं ने खेद प्रकट करते हुए कहा, "पराधीन होने के कारण भारत विवश था । सच मानिए, हमारा मन कभी भी अंगरेजों के साथ नहीं रहा । आप के दो जवान बेटे देश के लिए कुरबान हुए, कम से कम यह गौरव तो आप को मिला । जरा हमारी भारत की उन माताओं के बारे में भी तो सोचिए, जिन के बेटे उस देश को बचाने के लिए मारे गए जिस ने उन के अपने देश को सैकड़ों वर्षों से गुलाम बना रखा था ।" मैंने देखा, मेरी बात से वृद्धा को सांत्वना मिली ।

जिगलर महोदय का कारखाना नष्ट हो चुका था, कारोबार भी अस्तव्यस्त था । उन्होंने बताया कि एक बार तो उनकी हिम्मत पस्त हो गई थी । सहारा मिला अपने ही बचे-खुचे मजदूरों का । चौथाई मजदूरी लेकर वे काम पर डट गए । उन्होंने टूटी मशीनों पर रातदिन काम किया । अब भी बहुत सी मशीनें ऐसी हैं कि उन्हें बदलना निहायत जरूरी है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वहां की मजदूर यूनियनों का कहना है कि सबसे पहले जरमनी के उद्योग-धंधे व व्यापार को संगठित किया जाए, जिससे कि वे अपने माल का निर्यात जारी कर सकें, जहां तक अच्छी मजदूरी का सवाल है, राष्ट्र की आर्थिक दशा के संभलते ही वह अपनेआप बढ़ जाएगी।

उनसे यह भी पता चला कि केवल हंबर्ग में ही नहीं बल्कि सारे जरमनी में हर व्यक्ति राष्ट्रीय पुनर्निर्माण चाहता है और इसके लिए वह अपने बड़े से बड़े स्वार्थ को त्यागने के लिए तैयार है।

सारे दिन मिस्टर जिगलर के साथ शहर में घूमता रहा। ब्रिमेन का सा वातावरण यहां भी देखा। एक बहुत बड़े अस्पताल के अधटूटे हाल में हम खड़े थे। अस्पताल उजड़ चुका था। थकान मिटाने के लिए हम मलबे के ढेर पर बैठ गए।

जिगलर ने कहा, "दस वर्ष पहले हमारा यह नगर यूरोप के शिल्पोद्योग, जहाजरानी, व्यापार-वाणिज्य के प्रमुख केंद्रों में गिना जाता था। एंटवर्प, रांटरडाम और मार्शेलीज तो इसके मुकाबले में क्या टिकते, लंदन तक पिछड़ रहा था। हजारों कारखाने इसके इर्दगिर्द थे। सारे यूरोप के देशों में यहीं से माल जाता था। १९४३-४४ की भीषण बमबारी से इसका दो-तिहाई हिस्सा बिलकुल नष्ट हो गया। अकेले १९४३ के जुलाई-अगस्त महीने में ही हवाई हमलों में यहां कोई साठ हजार नागरिक मारे गए। किस प्रकार का मृत्यु का नृत्य हुआ होगा, यह आप ही सोच लें।

"यहां ४७० स्कूल थे, जिनमें से किसी तरह २५० बच गए हैं। इनमें से ५० में तो पढ़ाई का सिलसिला शुरू किया गया है, शेष में गृहविहीन नागरिकों के लिए आवास की व्यवस्था की गई है। बमवर्षा से ७० रेलवे पुल उड़ा दिए गए और बंदरगाह तो एक प्रकार से बेकार ही हो चुका है। कारखानों की हालत आप देख चुके हैं। टूटे कारखाने में भी यदि काम करें तो भी कच्चा माल और पूंजी चाहिए। कच्चा माल मित्र राष्ट्र हरजाने में ले जाते हैं और पूंजी है नहीं।"

मैंने देखा उनकी आंखें भर आई थीं। खड़े होकर उन्होंने कहा, "मिस्टर टांटिया फिर भी एक जरमन होने के नाते विश्वास के साथ कह सकता हूं कि आज से दस वर्ष बाद यदि आप यहां आएंगे तो हमें ऐसी हालत में नहीं पाएंगे। हम उठ खड़े होंगे। आज हमारे मजदूर और कारीगर वेतन के लिए नहीं, देश के नवनिर्माण के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। जरमनी झुक भले ही गया है, पराजय की व्याधि उसे लगी जरूर है, पर वह टूटेगा नहीं। जरमन हमेशा से राष्ट्रीय मर्यादा को समझते रहे हैं। वे मर नहीं सकते। उन्हें उठना पड़ेगा, वे उठेंगे!"

उनकी आवाज में दृढ़ निश्चय की गूंज थी।

भोजन के लिए उन्होंने बहुत आग्रह किया पर मैंने स्वीकार नहीं किया। मैं जानता था, उनके परिवार के लिए ही पूरा राशन उपलब्ध नहीं है। वह मुझे होटल तक पहुंचा गए। उनसे विदा लेते समय मैं ने उन्हें भारत से लाए हुए तीन रेशमी स्कार्फ उनकी वृद्धा माता, पत्नी और भ्रातृवधू के लिए दिए। उन्होंने कुछ संकोच के साथ स्कार्फों को स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन जिगलर महोदय अपनी छोटी सी कार लेकर आए और मुझे हवाई अड्डे तक पहुंचा कर उन्होंने विदा ली। पहले दिन खींची हुई दो तस्वीरें वह मुझे दे गए जो आज भी मेरे पास यादगार के रूप में सुरक्षित हैं। हवाई अड्डे में भी भीतर जाने की उन्हें मनाही थी। मुझे १९२०-२५ के कलकत्ते के ईडन गार्डेन में हर रविवार के बैंडवादन की याद आ गई, जहां भारतीय दूर खड़े होकर ही देख सुन सकते थे और वहां रखी हुई कुर्सियां व बैंचें केवल विदेशी गोरों के लिए सुरक्षित थीं।

सन १९६४ में जब दोबारा हंबर्ग आया तो देखा कि यह सर्वथा बदला हुआ था। टूटे हुए मकान और ध्वस्त गिरजे, स्कूल, कालिज तथा अस्पताल नहीं दिखाई पड़े। अब उनकी जगह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खड़ी थीं आलीशान इमारतें। कई मंजिलों वाले ये नए भव्य प्रासाद नीले आकाश में सिर ऊंचा किए जरमनी के पुनरुत्थान की कहानी कह रहे थे।

बंदरगाह देखा। विशाल दैत्याकार क्रेन बड़ेबड़े मंचों पर हाथ फैलाए आसानी से ढेर का ढेर माल गोदियों में लगे बड़ेबड़े जहाजों से उठानेरखने में व्यस्त थे। बूढ़ों और विकलांगों की जगह दिखाई पड़े स्वस्थ और सुपुष्ट नागरिक। उन के चेहरों पर स्वतंत्रता की आभा और समृद्धि की मुसकराहट थी। सुंदर और स्वस्थ बच्चे पार्कों व स्कूलों में खेलकूद रहे थे। सहज ही विश्वास नहीं होता था कि उसी नगर में आया हूं जहां लगभग चौदह वर्ष पहले आया था।

लंदन में अपने मित्र जिगलर को पहुंचने की सूचना भेज दी थी। स्टेशन पर वह दिखाई नहीं पड़े। वहां के टूरिस्ट आफिस से ठहरने के लिए प्रयत्न किए किंतु सफलता नहीं मिली। उन दिनों वहां एक औद्योगिक प्रदर्शनी लगी थी, देशविदेश से अनेक दर्शक आए हुए थे। इसलिए अच्छे होटलों में जगह नहीं मिल सकी। काफी कोशिश के बाद स्टेशन के सामने एक पेंशन आवास में एक छोटी सी कोठरी मिली। इसी में मैं और प्रभुदयालजी दोनों ठहरे। कोठरी के साथ में बाथरूम भी नहीं था।

अब तक जिस किसी होटल में हम गए, भले ही वह द्वितीय श्रेणी का होटल रहा हो, हमेशा यह खयाल रखते थे कि बाथरूम कमरे के साथ लगा हो। बिना इस सुविधा के इन ठंडे देशों में शौच, स्नानादि के लिए क्यू में खड़ा रहने के साथसाथ एक झेंप होती है। सामान रख कर किसी एक अच्छे होटल की तलाश में निकले।

संयोग से पहले दरजे के एक होटल में कलकत्ता के हमारे मित्र श्री झाझाड़िया मिल गए। वह उसी दिन वापस जा रहे थे उन्होंने हमारे लिए अपने होटल मैनेजर से बातचीत की किंतु उन का कमरा तो पहले ही से दूसरे यात्रियों के लिए सुरक्षित किया जा चुका था। श्री झाझाड़िया के जरमन मित्र ने भी कई होटलों में जगह के लिए फोन किया लेकिन व्यवस्था न हो सकी। लाचार हो कर हम फिर अपने उसी पैंशन आवास में वापस आ गए।

पिछली यात्रा में मैं अकेला था। विदेश यात्रा का अनुभव भी नहीं था। पर इस बार साथ थे प्रभुदयालजी और कार्यक्रम भी पूर्वनियोजित था। जिन शहरों में भारतीय दूतावास और कौंसिल थे, वहां हमें यथासंभव सब प्रकार की सुविधाएं मिल जाती थीं। हमारे विदेश मंत्रालय ने हमारे कार्यक्रमों की पूर्व सूचना दूतावासों और कौंसिलों में भेज दी थी।

पश्चिम जरमनी से हमारा व्यापारिक संबंध अच्छे पैमाने पर है। किंतु यहां की राजधानी बोन है और व्यापारिक व औद्योगिक केंद्र पश्चिम बर्लिन। इसलिए हंबर्ग में भारत सरकार की ओर से स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है। मेरा खयाल है कि हंबर्ग के आयातनिर्यात और जहाज रानी के व्यापार की दृष्टि से इस शहर में हमारे देश का एक व्यापार कौंसिल होना चाहिए। इस से भारतीयों को काफी सुविधा मिल सकती है।

टेलीफोन डायरेक्टरी से नंबर देख कर जिगलर महोदय को फोन किया। घर पर उन की पत्नी मिली। फोन पर हम उन के जरमन लहजे की अंगरेजी ठीक से समझ नहीं पा रहे थे, फिर भी किसी तरह अंदाजा लगा लिया कि मिस्टर जिगलर व्यापारिक कार्य से अमरीका गए हुए हैं। १४ वर्ष पहले की मेरी मुलाकत की और रेशमी स्कार्फ की याद उन्हें आ गई। हमारे आवास का पता पूछ कर उन्होंने शाम को छः बजे मिलने का वादा किया।

हमें हंबर्ग में केवल दो दिन रुकना था। हम जहां ठहरे थे, उस स्तर के आवासगृह में निरामिष भोजन की सुविधा नहीं मिल पाती है। इसलिए दोपहर का भोजन बाहर ले कर शहर देखने का प्रोग्राम बनाया।

कलकत्ते की तरह हंबर्ग भी कई छोटेछोटे गांवों को मिला कर बसा हुआ है। यहां बारहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी तक के बहुत ही सुंदर गिरजे हैं, जिनकी दीवारों पर अमूल्य धार्मिक चित्र अंकित थे। द्वितीय महायुद्ध में बमवर्षा से अधिकांश नष्ट हो गए। अब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फिर से उसी प्राचीन शैली पर उन्हीं के अनुरूप चित्र बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। पर उन दुर्लभ कृतियों के चित्रकार तो फिर से मिलने से रहे। और न उनकी बारीकियां ही अंकित की जा सकती हैं। इन प्राचीन चित्रों में से कुछ अधजले टूटेफटे जिस अवस्था में भी बच गए, उन्हें बहुत ही संभाल कर रखा गया है। हम ने माता व शिशु तथा क्रुसेड के चित्र देखे।

यहां की कुनस्थल आर्ट गैलरी को जरमनी का सब से बड़ा संग्रहालय माना जाता है। हम ने सैकड़ों छोटेबड़े चित्र और मूर्तियां यहां देखीं। हमें लंदन की नेशनल आर्ट गैलरी के क्युरेटर ने बताया था कि विश्व में दुर्लभ चित्र केवल पचीस या तीस होंगे और ये सब पेरिस के लुव्रे, पोप के बेटिकन, लेनिनग्रांद और वाशिंगटन के म्यूजियमों में संगृहीत हैं। अपने संग्रहालय में भी दोएक का होना उन्होंने बताया। ये चित्र अपनी जगह से हटने के नहीं, चाहे प्रत्येक के करोड़ दो करोड़ रुपए ही क्यों न मिलें !

दूसरे देशों के म्यूजियमों को चित्रों के अलावा अन्य दुर्लभ वस्तुओं के संग्रह के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना पड़ता है। इस में बहुत बड़ी धनराशि व्यय की जाती है। हंबर्ग के इस संग्रहालय को भी युद्ध के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा था। फिर भी अब यहां के संग्रह को देख कर ऐसा लगता है कि बहुत परिश्रम और धन लगा कर संग्रहालय को फिर से अलभ्य और दुर्लभ वस्तुओं से सुसज्जित किया गया है।

यहां का बंदरगाह तो मित्र राष्ट्रों के हवाई हमले से एक प्रकार से नष्ट ही हो गया था। हमें बताया गया कि पिछले दस वर्षों में साठ करोड़ रुपए लगा कर इसे फिर से बनाया गया है। हम एक मोटरबोट से बंदरगाह देखने गए। एल्ब नदी के मुहाने पर बंदरगाह स्थित है। दोनों किनारों पर सैकड़ों कारखानों की चिमनियों से निकलता धुआं वहां के व्यस्त औद्योगिक जीवन का परिचय दे रहा था। नावों से माल उतारा और लादा जा रहा था।

ऐसा लगता था, जैसे उद्योगों के किसी महासागर से हम गुजर रहे हों। हम ने इस तरह का दृश्य या वातावरण केवल न्यूयार्क और शिकागो में ही देखा था। हंबर्ग के बंदरगाह में देखा, विश्व के हर देश के जहाज अपनेअपने झंडे फहराते हुए गोदियों में खड़े थे। मोटेतगड़े तरहतरह के रूपरंग के नाविक उन पर काम करने में व्यस्त थे।

शाम को श्रीमती जिगलर अपनी पुत्री के साथ मिलने के लिए निश्चित समय पर आईं। १४ वर्ष पूर्व उनसे केवल कुछ घंटे के लिए ही मिला था। लड़की तो उस समय शायद पांचछः वर्ष की रही होगी। यदि पहले से बात न कर ली होती तो उन्हें शायद ही पहचान पाता।

अपने इस आवास में उनकी विशेष खातिरदारी करना संभव नहीं था। फिर भी हम ने काफी और कुछ हलके नाश्ते के लिए प्रबंध कर रखा था। हमें जानकर खुशी हुई कि जिगलर परिवार का कारखाना न केवल फिर से चालू हो गया बल्कि अब वह बहुत बड़ा हो गया है। वहां नाना प्रकार की मशीनें बनने लगी हैं। उन का निर्यात विदेशों में हो रहा है। सुदूर ब्राजील और मेक्सिको तक में उन की मशीनों की मांग है।

श्रीमती जिगलर को अपने उद्योगव्यापार की पूरी जानकारी थी। वह अपनी कंपनी की संयुक्त मैनेजिंग ड़ायरेक्टर हैं। उन्होंने बताया कि फ़ैक्टरी का कुल उत्पादन लगभग पांच करोड़ रुपए वार्षिक का है। मजदूरों की संख्या ६०० और आफिस स्टाफ की ३० है। इंजीनियर और सेल्समैन के रूप में पति काम संभालते हैं। हिसाबकिताब, उत्पादन और व्यवस्था की जिम्मेदारी उन पर है। कालिज की शिक्षा समाप्त कर के अब पुत्री ने भी कुछ अंशों में कारखाने की जिम्मेदारी संभालनी शुरू कर दी है।

मैं ने उन से मजदूरों की समस्या को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रश्न पूछे। उन की बातों से पता चला मानो श्रमिकमालिक संघर्ष अतीत के किसी बर्बर देश की बात हो। १९४७ के बाद इन १७ वर्षों में एक बार भी काम रोको, सुस्त काम या हड़ताल की कोई घटना उन के यहां नहीं हुई, अन्यत्र भी नहीं। इस के विपरीत मजदूर क्षमता से अधिक उत्पादन में जुटे रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नतीजा यह हुआ कि उन्हें कारखाने की क्षमता को बढ़ाने के लिए विस्तार करते रहना पड़ा है।

हम उनकी बातों को सुनते जा रह थे और अपने देश की स्थिति की तुलना करते जा रहे थे। कलकत्ते में मेरी जानकारी में एक इसी प्रकार का कारखाना है, जिस का कुल उत्पादन डेढ़ करोड़ रुपए वार्षिक का है। इस में मजदूरों की संख्या करीब एक हजार है। इस के अलावा अन्य स्टाफ डेढ़ सौ के करीब है। मतलब यह कि जिगलर के कारखाने से इस में मजदूरों और स्टाफ की संख्या कहीं अधिक है, जब कि उत्पादन बहुत कम है।

कारण स्पष्ट है, साम्यवादी मजदूर यूनियनें आए दिन झंझटझमेले खड़े किए रहती हैं। इस से आलस्य और दीर्घसूत्रता को प्रोत्साहन मिलता है। सरकारी नियंत्रण है नहीं, इसलिए माल का निर्यात विदेशों में हो नहीं पाता। कच्चा माल हमारे देश में बड़ी तादाद में हैं, किंतु विवशता यही है कि श्रमिक और उनकी यूनियनें उत्पादन के राष्ट्रीय महत्त्व को समझने की कोशिश नहीं करते।

कारण स्पष्ट है, साम्यवादी मजदूर यूनियनें आए दिन झंझटझमेले खड़े किए रहती हैं इस से आलस्य और दीर्घसूत्रता को प्रोत्साहन मिलता है। सरकारी नियंत्रण है नहीं, इसलिए माल का निर्यात विदेशों में हो नहीं पाता। कच्चा माल हमारे देश में बड़ी तादाद में है; किंतु विवशता यही है कि श्रमिक और उनकी यूनियनें उत्पादन के राष्ट्रीय महत्त्व को समझने की कोशिश नहीं करते।

हम यहां की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए। हम ने पिछली बार और इस बार जो कुछ देखा उस की चर्चा श्रीमती जिगलर से की। वह मुसकरा कर कहने लगीं, "यह सब तो आप दूसरे देशों में भी देखते हुए आ रहे हैं। यदि समय हो तो हमारे यहां के पहाड़ी अंचलों और गांवों को भी देख लीजिए।"

शायद उन के कहने का आशय था कि गरमी के मौसम में गांवों की खुली हवा और पहाड़ी अंचलों में बर्फ पर तरहतरह के खेलों में शहरों की घुटन से हमें कुछ राहत मिल जाएगी।

बातचीत में काफी समय हो गया। हम ने बहुत इनकार किया किंतु मिसेज जिगलर के आग्रह को नहीं टाल सके। अगले दिन सुबह उन के घर नाश्ते का निमंत्रण हमें स्वीकार करना ही पड़ा।

रात के भोजन के बाद प्रभुदयालजी सोने चले गए। मैं ने टूरिस्ट बस से शहर घूमने की छुट्टी ले ली थी। शायद सौ रुपए लगे होंगे। इसी में चार नाइट क्लबों और दो फ्री ड्रिंक्स का कार्यक्रम शामिल था। यदि अलग से जाएं तो बहुत ज्यादा खर्च पड़ जाता है।

एल्ब नदी के नीचे से हमारी बस गुजरी। ऊपर वेगवती नदी और नीचे जगमगाती रोशनी, बहुत चौड़ा रास्ता जिस के दोनों तरफ बसों, कारों और यात्रियों का आवागमन था। मैं सोच रहा था कि इतनी ज्यादा ट्रैफिक है पर रुकावट का कहीं नाम नहीं। हमारे कलकत्ते में हावड़ा पुल पर आफिस के समय की भीड़ के कारण भरोसा नहीं रहता है कि समय पर ट्रेन पकड़ भी सकेंगे! यदि हम भी इन की तरह हुगली नदी के नीचे हावड़ा और कलकत्ता को मिलाने वाली सड़क तैयार कर सकें तो आवागमन सुविधाजनक हो जाएगा। जिस से हावड़ा अंचल भी कलकत्ते की तरह ही उन्नत और समृद्ध हो जाएगा।

रात्रि क्लब सर्वत्र एक से हैं। अन्य लेखों में इन की चर्चा कर चुका हूं। जिस प्रकार नशा सेवन करने वाले धीरेधीरे नशीली चीजों की मात्रा बढ़ाते जाते हैं। उसी तरह का रवैया रहता है इन क्लबों में भी। पहले कैबरे और बार रहे होंगे, फिर पेरिस के फाली ब्रुजे की तरह भड़काने वाले दृश्य और नृत्य दिखाए जाने लगे। उन के बाद आए नग्न नृत्यों के क्लब। इन सब में कोशिश यही रहती है कि कामोद्दीपन ने लिए दृश्य, वातावरण और तरीकों में नयापन रहे ताकि ग्राहक जुटते रहें, ऊबें नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस दिन जिन क्लबों में हम गए, उन में दो तो बहुत साधारण थे और एक 'त्रांतला' नाम का विशिष्ट साजसज्जा का क्लब था। इस में केवल प्रवेश शुल्क ३० रुपए है। यहां ज्यादातर राजनीतिक नेता या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही तफरीह के लिए जाते हैं।

चौथा नाइट क्लब, जहां हम ले जाए गए, 'रीपरवान' नाम का था। यह 'सैंट पाली' नामक मल्लाहों के बदनाम महल्ले में है और यह प्रमुख रूप से मल्लाहों तथा सैनिकों का क्लब है। यदि अकेला जा पहुंचता तो भयभीत हो जाना कोई बड़ी बात न होती। यों भी जिस वक्त हम इस में पहुंचे उस महल्ले में मारधाड़, शोरशराबा हो रहा था। सभी देशों के स्त्रीपुरुष दिखाई पड़े। भारतीय नाविक भी थे। यूरोप की लड़कियों के अलावा चीनी, मिस्री व नीग्रो लड़कियां बड़ी निर्लज्जता से नाविकों की छेड़छाड़ को प्रोत्साहन दे रही थीं।

इन क्लबों में रोशनी धीमी रहती है, शायद इसलिए कि लिहाज या शर्म भी उसी के अनुसार कम है। हम सब लगभग २५ यात्री थे, साथ में दो गाइड थे। हर रात यह टूरिस्ट एजेंसी यात्रियों को यहां लाती है। गाइड क्लब वालों के परिचित थे इसलिए यात्रियों के साथ किसी प्रकार के दुर्व्यवहार की संभावना नहीं थी।

हम क्लब में दाखिल हुए तो जिन्हें पीना था, उन्होंने हलकी या कड़ी शराब अपनी रुचि के अनुसार ले ली। पहला कार्यक्रम हुआ नाच का। इस में यात्री भी शमिल हो गए। ज्योंज्यों नशा गहरा होता गया, नाच भी तेज होता गया। फिर बाजे और संगीत तो सहायक थे ही। नाच व उछलकूद शोरचीख की सीमा पर पहुंच कर समाप्त हुआ। थकावट दूर कर के उद्दीपन या उत्तेजना को कायम रखने के लिए शराब का एक दौर और चला।

दर्शक पी कर मतवाले हो रहे थे। अब स्टेज का शो शुरू हो गया। कथानक और दृश्य, हमारे यहां की मर्यादा के अनुसार बहुत ही अश्लील थे। हम भाषा जानते नहीं थे किंतु हावभाव से समझ रहा थे। दिखाया गया कि दो मल्लाह, दो लड़कियों के यहां गए। चारों ने एकसाथ बैठ कर खूब शराब पी। उस के बाद एकएक कर कपड़े उतारने शुरू कर दिए। जब सभी नंगे हो गए तो किसी बात पर आपस में झगड़ा हो गया।

झगड़ा होने पर लड़कियों ने उन की जो पिटाई की उसे देख कर मुझे तो सिहरन सी हो आई। ऐसा लगा कि मैं अपने यहां की फ्रीस्टाइल कुश्ती का दंगल देख रहा हूं। लात और घूंसों की मार तो थी ही, वे दांतों से भी काट रही थीं। हालत यह हो गई कि चारों के शरीर पर से जगहजगह से खून बहने लगा।

हाल में रोशनी कम थी पर स्टेज पर फ्लैश लाइट से तेज प्रकाश किया गया था। मल्लाह भी वापसी वार करते थे पर हर बार लड़कियों की चोटें तगड़ी बैठती थीं। आखिर जब वे दोनों मार खातेखाते बेहोश हो गए तो लड़कियों ने उन्हें कंधे पर उठा कर भीतर की ओर फेंक दिया। उन्होंने एक हाथ पर छोटा सा रूमाल बांध रखा था। मैं ने गाइड से पूछा, "सारा शरीर तो बिलकुल नंगा है, फिर बांह पर रूमाल क्यों ?"

उस ने बताया, "हमारे यहां बिलकुल निर्वस्त्र होना कानूनी तौर पर अपराध है। कानून की पाबंदी के इस नए तरीके को सुन कर मुझे हंसी आ गई। दर्शकों में जो स्त्रियां थीं वे लड़कियों की जीत देख कर तालियां बजा रही थीं और आवाजें कस रही थीं। मैं यह सोचने लगा कि अफ्रीका के जंगली तो सभ्य बनते जा रहे हैं, कपड़े पहनने लगे हैं और जहां कपड़े नहीं हैं वहां पत्तों का आवरण बना लेते हैं, मगर यूरोप के ये सभ्य कहलाने वाले लोग नंगे हो कर इस प्रकार से उछलकूद मचाते हैं।

जिस समय हम होटल पहुंचे, रात के दो बज चुके थे। मैं ने इन चार घंटों में जो कुछ देखा, उस से मन में एक प्रकार की अशांति सी अनुभव होने लगी। दूसरे दिन मिसेज जिगलर से नाइटक्लब का जिक्र किया। वह सहज भाव से हंस कर कहने लगीं, "हमारे यहां इस प्रकार की मान्यता है कि मारपीट से प्रेमीप्रेमिका में उत्तेजना और पारस्परिक प्रेम बढता है। ये सारे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दृश्य उसी पर आधारित होते हैं ।"

मैं ने कहा, "हमारे यहां भी ऐसा मानते हैं । हजारों वर्ष पहले वात्स्यायन ने अपनी पुस्तक 'कामसूत्र' में आपस में दांत और नख से प्रहार करने का उल्लेख किया है । पर वह सब एकांत में होता था, इस तरह सैकड़ों दर्शकों के सामने नहीं ।"

मैं १९५० में जब इन के घर आया था, वही मकान अब भी था पर आज वह खंडहर एक सुंदर बंगला बन गया था । चारों तरफ छोटा सा बगीचा भी था । बेहतरीन फर्नीचर था और पोर्टिको में खड़ी थीं दो 'मर्सिडीज' कारें । श्रीमती जिगलर ने अपने मृत देवर की पत्नी को भी बुला लिया था । पहले मैं ने उसे विधवा देखा था पर अब उस ने फिर से विवाह कर लिया है । पति विज्ञान के प्रोफेसर हैं, वह भी साथ आए थे ।

नाश्ते के समय तरहतरह के विषयों पर चर्चा होती रही । कामधंधे के बाद जरमन साहित्य, इतिहास और कला पर भी बातचीत हुई । हमें प्रोफेसर से कई बातों की जानकारी मिली । विज्ञान के आचार्य होने के साथसाथ उन्हें इतिहास और साहित्य का भी अच्छा ज्ञान था ।

बातचीत के सिलसिले में समय का अंदाज न लगा । घड़ी पर नजर गई तो देखा, दस बज रहे थे । हम ने उन से विदा मांगी । उन्होंने अपनी गाड़ी में हमें हमारे आवास तक पहुंचा दिया ।

समय कम रह गया था, फिर भी हमारी इच्छा थी कि जरमनी के भीष्म पितामह बिस्मार्क का निवास और स्मारक देख लिया जाए । बिस्मार्क ने जरमनी के एकीकरण में प्रमुख भाग लिया था । वह लौहपुरुष माने जाते थे । यूरोप की राजनीति में अपने जमाने में उन की बड़ी प्रतिष्ठा थी । टैक्सी द्वारा हम सैसनवाल्ड नामक उपांचल में गए । बहुत ही सुंदर बगीचे के बीच बिस्मार्क का महल है । उन के काम आने वाली सारी चीजें यहां के संग्रहालय में रखी हुई हैं । ऐतिहासिक दस्तावेज भी सुरक्षित हैं ।

पास ही में बिस्मार्क की कब्र भी हम ने देखी । देखते समय उन्नीसवीं शताब्दी के जरमनी का इतिहास स्मरण हो जाता है । किस प्रकार इस अद्भुत क्षमतासंपन्न व्यक्ति ने ४३ वर्षों तक अथक परिश्रम कर के अपनी सूझबूझ से जरमनी को यूरोप के देशों में शक्तिशाली और शीर्ष स्थान का अधिकारी बनाया । मुझे भारत के लौहपुरुष बल्लभभाई पटेल की याद हो आई । इस प्रकार के महान पुरुष ही राष्ट्र की मर्यादा, प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ा सकते हैं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो पांच सौ वर्षों से चैन से नहीं बैठ सका

तुर्की

स्वराज्य आंदोलन के दिनों में खिलाफत का नाम अकसर हम सुना करते थे। इस के पक्षविपक्ष में उन दिनों बड़ेबूढ़ों में बहस भी जोरों से होती थी। खिलाफत के सिलसिले मे महात्मा गांधी, मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली की भीं चर्चा हो जाती थी। उन दिनों हम बच्चे थे और इन बातों को समझते नहीं थे। बस इतना ही समझते थे कि अंगरेजों ने तुर्कों के साथ अन्याय किया है।

आगे चल कर जब हम स्कूल से निकले तो कमाल पाशा तुर्कों का बेताज का बादशाह हो गया था। लोग उसे अतातुर्क यानी तुर्कों का पिता कहने लगे थे। उस की बहादुरी और सुधारों की बातें सुनने में आईं। तुर्की को यूरोप का मरीज मुल्क कहा जाता था। अब लोग कहने लगे, नवजीवन और नई चेतना ले कर तुर्की उठ रहा है।

तुर्की और भारत का उन तीनचार वर्षों का इतिहास बहुत कुछ साम्य रखता है। वहां का सुलतान हमारे देशी राजामहाराजाओं अथवा नवाबों की तरह अपने स्वार्थ के लिए विदेशी अंगरेजों और ग्रीकों से मिल गया था। हम महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंगरेजों से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अहिंसात्मक संग्राम कर रहे थे जब कि मुस्तफा कमाल पाशा अपने चुने हुए बहादुर सैनिकों और साथियों के साथ अपने देश की स्वतंत्रता के लिए दो बड़े दुश्मनों से एक ही साथ टक्कर ले रहा था।

निष्ठा निष्फल नहीं जाती। आखिरकार १९२२ की जुलाई में अजेय अंगरेजों को तुर्की से बोरियाबिस्तर बांधना पड़ा और अगले एक महीने के अंदर ही तुर्क सैनिकों ने स्मर्नी के युद्ध में ग्रीक सेना को भी तहसनहस कर डाला। किसी प्रकार जान बचा कर बहुत ही थोड़े ग्रीक सिपाही भाग सके। तुर्कों के बदलते रंग को देख कर उन के सुलतान मुहम्मद उसी वर्ष नवंबर में देश छोड कर भाग निकले और माल्टा द्वीप में अंगरेजों के शरणापन्न हुए। सुलतान मुहम्मद के इस पलायन के साथसाथ ४७५ वर्ष की ओटोमन सल्तनत का भी विश्व के रंगमंच पर से पटाक्षेप हो गया।

शत्रु का शत्रु भले ही अपरिचित हो, उस के लिए मैत्री की भावना जाग उठती है। हमारे देश पर अंगरेजों का दमनचक्र जोरों से चल रहा था। वे अत्याचार और उत्पीड़न करते जा रहे थे। जलियांवाला बाग के घाव ताजा थे, रौलट एक्ट बन चुका था। लिहाजा, कमाल पाशा न केवल तुर्कों का ही आदर्श नेता था बल्कि भारत में भी लोकप्रिय हो गया। राष्ट्र सुधार के उस के तौरतरीकों को भारतीय जनता बडे चाव से लक्ष्य करने लगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तुर्की इसलामी राष्ट्र रहा है। मुल्लामौलवियों का रोब और दबदबा सदियों से वहां के जनजीवन को प्रभावित करता रहा है। सुलतान भाग चुका था पर मुल्लामौलवी अभी वहां थे। ऐसी स्थिति में प्रारंभ में तो कमाल पाशा ने इसलाम को राज्यधर्म के रूप में मान्यता दी किंतु अपनी शक्ति प्रभुता के बढ़ते ही एक वर्ष के अंदर तुर्की को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया।

उस की दृष्टि में इसलाम विदेशी धर्म था। इसे वह तुर्कों के लिए विदेशी संस्कार समझता था। इसलाम का जन्म अरब में हुआ और वहीं से प्रसारित होता हुआ तुर्की में आया था। अरबों ने अंगरेजों की मदद से तुर्की को काफी परेशान किया था। इसलिए अपने शासन संगठन को व्यवस्थित करते ही उस ने इसलामी मदरसे बंद करा दिए और कड़े कानून बना कर परदे की प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया। यहां तक कि मसजिदों में अजान तक अरबी में देना निषिद्ध कर दिया। अपने चौदह वर्ष के शासनकाल में उस ने तुर्की को यूरोपीय ढंग से काफी हद तक संस्कारित किया और यूरोपीय राष्ट्रों की पंक्ति में उसे ला कर खड़ा किया।

उन वर्षों में सारे विश्व में मंदी का जोर था। संसार के व्यवसायी और औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक असंतुलन से परेशान थे पर कमाल पाशा का तुर्की अपनी आर्थिक, सामाजिक और सामरिक उन्नति की दिशा में अग्रसर होता जा रहा था। वास्तव में ही कमाल अतातुर्क, तुर्कों का पिता, चरितार्थ हुआ। तुर्क उस के नाम पर जान की बाजी लगाने को तैयार रहते। उन्होंने उसे सुलतान और खलीफा दोनों का सम्मिलित पद देना चाहा किंतु कमाल ने इनकार कर दिया। उसे न अपनी फिकर थी, न अपने परिवार की। निःस्वार्थ भाव से उसने राष्ट्र की सेवा आजीवन की।

भारत से यूरोप जाने पर तुर्की रास्ते में पड़ता है। बिना अतिरिक्त किराए के इस की राजधानी अंकारा और प्रसिद्ध नगर इस्तंबूल को देखा जा सकता है। पर अधिकतर यात्री इस सुविधा का लाभ नहीं उठाते। संभवतः तुर्की के बारे में जानकारी न होने के कारण वे इसे छोड़ देते हैं। यूरोप के लंदन, पेरिस, रोम, बर्लिन के नाम पहले से सुने रहते हैं, इन्हें देखने की उत्सुकता भी रहती है इसलिए सीधे वहीं पहुंच जाते हैं।

सन १९५० में यूरोप की प्रथम यात्रा में वहां के विभिन्न देशों को देखने का अवसर मिला। वापसी में इटली के नेपल्स से सीधे काहिरा को देखता हुआ स्वदेश आ गया था। दूसरी बार सन १९६० में रूस के अतिरिक्त यूरोप के कुछ और नए देशों में गया। तुर्की देखने का आग्रह मन में था पर अंत में समयाभाव के कारण इस बार भी वह छूट गया। १९६४ में विश्वभ्रमण का प्रोग्राम बना। उस में मैं ने सावधानी के साथ तुर्की भ्रमण का कार्यक्रम निश्चित किया। और इस बार चूंकि हमें विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति और व्यवस्था का अध्ययन करना था इसलिए तुर्की को अपने प्रोग्राम में शामिल करना जरूरी भी था।

देश छोड़े ४५ दिन हो गए थे। भारत से बर्मा, दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जापान, अमरीका और यूरोप के अधिकांश देश अपने कार्यक्रम के अनुसार हम ने देख लिए। ग्रीस की राजधानी एथेंस जब पहुंचे तो गरमी सताने लगी। ठंडे देशों से आने के कारण यहां का मौसम गरम लगा। इधर घर की याद भी आ रही थी। हम तीनों साथी विचारविमर्श के लिए बैठे। तय हुआ कि तुर्की और लेबनान तो देख लिया जाए, पाकिस्तान की यात्रा स्थगित कर दी जाए।

ग्रीस और तुर्की पड़ोसी देश हैं। दोनों की राजधानी की दूरी केवल ४०० मील है इसलिए जेट विमान से एथेंस से इस्तंबूल केवल ४५ मिनट में ही पहुंच गए। एयरपोर्ट देख कर ही पता चल गया कि तुर्की पश्चिमी देशों से भिन्न है। अब भी वहां मेंहदी से रंगी दाढ़ियां नजर आ जाती हैं। लंबे अमामे चोगे पहने मौलबी और मुल्ला दिखाई पड़े। महिलाएं बुरके में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो न थीं किंतु वह स्वच्छंदता नहीं थी जो पश्चिमी देशों में दिखाई पड़ती है । अब भी वे सहमी सी रहती हैं । धर्मनिरपेक्ष तुर्की पर आज भी कट्टर इसलामी संस्कार हैं । भले ही बुरके हट गए हैं और मरदों ने कोटपतलून पहन लिए हैं । हवाई अड्डे में इंतजाम भी वैसा चुस्त न था जैसा कि जापान, यूरोप और अमरीका में देखने में आया । सफाई और सजावट भी कम थी ।

यहां भारतीय राजदूत श्री मेहता राजस्थान के उदयपुर अंचल के हैं । उन से पहले से जानपहचान थी । उन्होंने हमारे दो दिन के प्रवास के कार्यक्रम की बहुत ही सुंदर व्यवस्था कर दी । संपूर्ण तुर्की देखना इतने कम समय में संभव नहीं था । इसलिए हम ने विशेष रूप से इस्तंबूल को देखने का निश्चय किया । व्यापार व उद्योग का यह केंद्र है और ऐतिहासिक नगरी भी है । प्राचीन और आधुनिक तुर्की की झांकी यहां एक साथ मिल जाती है । हमारे कार्यक्रम में प्रमुख लोगों से मिलने के साथसाथ नगर के विख्यात राजमहल, म्यूजियम और मसजिदों का देखना भी शामिल था ।

तुर्की एशिया और यूरोप दोनों महाद्वीपों में है । किंतु इस का अधिकांश भाग एशिया में है । बोसफोरस की संकरी जलप्रणाली दोनों महादेशों को पृथक करती है । इसी के दोनों ओर इस्तंबूल बसा हुआ है।आबादी है १५ लाख । यही यहां का प्रमुख बंदरगाह और नगर है । दिल्ली की तरह यहां भी २५०० वर्ष पुराने स्मारक सुदूर गौरवमय अतीत की साक्षी देते हैं तो सामने खड़ा कई मंजिलों का आधुनिक हिल्टन होटल उसे देख हंसता सा दिखाई देता है । संसार के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरों में इस्तंबूल की गणना होती है । समय के साथ नाम भी इस के बदले— कांस्टेनटाइनोपल, कुस्तुनतुनिया और अब इस्तंबूल । नाम भले ही बदलते रहे पर आज भी इसे यूरोप और एशिया का संगम माना जाता है।

चार दिन पहले हम आस्ट्रिया के विश्वप्रसिद्ध नगर वियना में थे । वहां की स्वच्छता, शुद्ध और ठंडी हवा के बाद यहां के पुराने महल्लों का गंदा वातावरण घुटन सी पैदा कर रहा था । विदेश भ्रमण पर जाने वाले भारतीय बंधुओं को मैं राय देना चाहूंगा कि जाते समय ही उन्हें अरब के देश, मिस्र, तुर्की, और ग्रीस देख लेने चाहिए ताकि गरमी और उमस की तकलीफ महसूस न हो ।

बहुत दिनों बाद बर्फ डाले हुए तरबूज के ठंडे शरबत को पी कर धोतीकुर्ते में शहर घूमने निकले । शहर के बीच में बहती हुई गोल्डन हौर्न नदी को स्टीमर से पार कर दूसरे हिस्से में जा पहुंचे । हमें सान सोफिया की ऐतिहासिक मसजिद देखनी थी ।

एक भव्य एवं विशाल गिरजे के कुछ भाग में थोड़ा सा हेरफेर कर मसजिद का रूप देने के लिए बाहर चारों कोनों पर चार मीनारें खड़ी कर दी गई हैं । भीतरी हिस्सा अब भी पहले की तरह है । नीले मुजाएक से कुरान की आयतें अरबी अक्षरों में खूबसूरती से लिख दी गई हैं । हमारे लिए ऐसे परिवर्तन बहुत आश्चर्यजनक नहीं हैं क्योंकि काशी, मथुरा और दिल्ली में इस ढंग की बहुत सी इमारतें हैं । गाइड ने हमें बताया कि सन ३३५ में सम्राट कांस्टेनटाइन ने इसे बनवाया था और अपने समय के बेजोड़ गिरजों में इस की मान्यता थी । संगमरमर और मुजाएक की तरहतरह की टालियों पर कुमारी मरियम की बहुत ही सुंदर और विशाल मूर्ति खुदी हुई है जिस के सामने सम्राट कांस्टेनटाइन घुटने टेक नतमस्तक इस पवित्र गिरजे को उसे भेंट कर रहा है । संजीदगी के साथ पवित्रता की साफ झलक उस के चेहरे पर है । यहां का वातावरण बहुत ही शांत था ।

गाइड ने इस गिरजे के निर्माण का इतिहास बताया तो हम विचारों में डूब गए । हैलियोपोलिस का प्रसिद्ध सूर्य मंदिर और लैकोनिया के कई प्रसिद्ध मंदिरों को तोड़ कर उन के सामान से इस गिरजे का निर्माण किया गया । गाइड ने हमें पत्थरों पर उत्कीर्ण उन प्राचीन प्रतीकों और चिन्हों को दिखाया । मैं खो सा गया । कुछ ऐसा ही कुतुबमीनार देखते समय मुझे लगा था । गाइड बताता जा रहा था, हजारों निरीह व्यक्तियों की हत्या और अग्निकांड भी इसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लिए हुए । कांस्टेनटाइन इतिहास में अमर बनना चाहता था । इस प्रसिद्ध गिरजे का निर्माण कर अपने को ईसाई धर्म का सर्वोच्च संरक्षक कहलाने की उस की उत्कट आकांक्षा थी ।

लगभग ११२० वर्ष बाद जब सम्राट कांस्टेनटाइन का बाइजन्टाइन साम्राज्य इतिहास के पृष्ठों में सिमट चुका था तब एक दिन इस गिरजे के सामने सुलतान फतह मुहम्मद आ खड़े हुए । इसलाम की फतह की निशानी के बतौर उन्होंने इसे मसजिद बना देने का हुक्म जारी किया । सूर्य मंदिर के पत्थरों से बना हुआ सोफिया का गिरजा अब मसजिद बन गया । माता मरियम की प्रार्थना की जगह कलमे पढ़े जाने लगे । मैं सोच रहा था कि प्रत्येक धर्म की मान्यता रही है, शांति और लोक कल्याण । पर इन के अनुयाइयों ने ज्यादातर विपरीत कर्म ही किए । धर्म के नाम पर निरीह स्त्रियों और बच्चों की हत्या की । धर्म स्थानों को नष्ट किया । चाहे वह भारत की काशी या मथुरा हो या फिर तुर्की का कुस्तनतुनिया, आखिर ऐसा क्यों ? क्या तलवार की धार पर ही बहिश्त का दरवाजा खुलता है ?

यों तो ओटोमन तुर्क सम्राट क्रूर और दुर्धर्ष थे फिर भी जहां तक सोफिया के गिरजे का प्रश्न है उन्होंने इसे तोड़ा नहीं बल्कि अपने मूलरूप में ही रखा, यह एक आश्चर्य का विषय है । मैं एक पत्थर की बेंच पर बैठ गया । वातावरण में एक प्रकार की घुटन सी थी । सूर्य मंदिर ढह गया । हमारा सोमनाथ भी तो ढहा है । धर्म के नाम पर इतना अत्याचार ! प्रसिद्ध लेखक इरफान ओर्गो ने लिखा है, 'सोफिया की मसजिद में इतने विभिन्न धर्मों के देवता इकट्ठे हो गए हैं कि शायद वे स्वयं एक प्रकार की घुटन महसूस कर रहे हैं ।'

कमाल अतातुर्क की दूरदर्शिता से आज वह न सूर्य मंदिर है, न गिरजा और न मसजिद, बल्कि एक राष्ट्रीय संग्रहालय है, जहां हजारों यात्री प्रति दिन विदेशों से इसे देखने आया करते हैं ।

यहां से हम ओटोमन सुलतानों के महल देखने गए । समुद्र तट पर थोड़ी ऊंचाई पर एक बहुत बड़े घेरे के अंदर ये बने हुए हैं । सन १९२३ के बाद जब अंतिम सुलतान भाग गया, तब से इसे राष्ट्रीय संग्रहालय बना दिया गया । गाइड से हमें जानकारी मिली कि सुलतान भागते समय अपने साथ अधिकांश कीमती सामान, जेवर और जवाहरात ले गए । फिर भी जो बचा, उन्हीं को यहां संजा कर रखा गया है । बची हुई चीजें भी कम नहीं हैं । इन्हें देख कर एक साथ ही भय और विस्मय होता है । यह भी अंदाज होता है कि उस समय के तुर्की सम्राट कितने बली और कामुक हुआ करते थे ।

आश्चर्य तो यह है कि लंबे अरसे तक इन्हें जनता अपना प्रतिनिधि, अपने राष्ट्र का प्रतीक कैसे मानती रही है ? पाक इस्लाम के ये खलीफा थे । प्राचीन ग्रीक और रोमन सम्राटों की तरह युद्धों में इन्हें स्वयं जाना पड़ता था । इन के नेतृत्व में युद्ध संचालित होते थे । अतएव बड़ेबड़े हथियारों के संचालन की क्षमता इन के लिए आवश्यक थी । इसलिए बचपन से ही इन के खानपान और तालीम की निगरानी रखी जाती थी । अच्छे पहलवान और अनुभवी युद्ध विशारदों की देखरेख में तुर्की शाहजादे प्रति दिन वर्जिश करते थे । सुलतान स्वयं युद्ध संचालन करते हुए इसलामी जोश के साथ जूझते थे ।

जहां युद्ध के समय की इन की अद्भुत वीरता की कथाएं हैं, वहीं शांतिकाल में इन की भोगविलासिता एवं कामपिपासा की चर्चाएं भी बेजोड़ ही हैं । सुलतानों के दरबार में सैकड़ों तजुर्बेकार हकीम रहते थे । इन का काम यही था कि इन की ताकत और कुव्वत कायम रखें । जवाहरात और धातुओं के कुश्ते तैयार होते रहते थे । बूढ़े सुलतानों में जवानी का जोश पैदा कराने की हरचंद कोशिशें चलती रहती थीं ।

इस के पूर्व हम ने वर्साई और वियना के प्रसिद्ध राजप्रासाद देखे थे । किंतु उन में और तुर्की सुलतानों के महलों में एक स्पष्ट अंतर है । उन महलों में भव्यता थी, कला और सौंदर्य के निखार के साथ, जब कि तुर्की सुलतानों के महल बेशुमार दौलत, हथियार और ऐय्याशी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साजोसामान की एक बेतुकी बड़ी प्रदर्शनी लगा रहे थे । कारण स्पष्ट है । साम्राज्ञी मेरी अंतोनिता और मरिया थेरेस्सा सुसंस्कृत पूर्वजों की संतान थीं जब कि ओटोमन सुलतान बर्बर और उद्दंड तुर्क सेनापतियों के वंशज थे । वास्तव में ही संस्कार बहुत बड़ा प्रभाव उत्पन्न करते हैं ।

म्यूजियम के प्रथम कक्ष में पिछले छःसात सौ वर्ष में काम में लाए गए हथियार रखे थे । मध्ययुग में दुश्मनों और बागियों को सजा देने के लिए उपयोग किए गए औजार और हथियारों को देख कर कंपकंपी आ जाती है । कहीं सिर फोड़ने के लिए मनों वजन के हथौड़े तो कहीं तीखे कांटे लगी गोल अलमारियां । इन में मनुष्य को खड़ा कर नीचे से ज्योंज्यों चक्का घुमाया जाता था, घेरा छोटा होता जाता और पूरे शरीर को छेद डालता था । उन दिनों में फांसी या गोलियों से मौत के घात उतारना हल्का दंड समझा जाता था । इस के अलावा उद्देश्य यह भी रहता था कि दूसरे देशों के लोग इन कठोर यातनाओं को देखसुन कर भयभीत रहें और सिर न उठा सकें ।

युद्ध के समय पहनने के लिए जिरहबख्तर भी यहां नाना प्रकार के देखे । घोड़े और हाथियों के जिरहबख्तर भी थे ।

अन्य हथियारों के साथ हम ने यहां भीम की सी गदा भी देखी जिस के गोले पर नुकीले कीलें जड़ी थीं । नाना प्रकार के धनुषबाण देखे । तुर्की तीरंदाजी में मशहूर रहे हैं । पुराने ढंग की बंदूकें रखी थीं, पांचछः फुट लंबी, भद्दी और बेडौल । किंतु तलवारें, किर्च, भाले और नेजे बड़े शानदार थे । इन की मूठों पर चांदी और सोने की खूबसूरत नक्काशी थी । कइयों में बेशकीमती जवाहरात जड़े थे ।

दूसरे कक्ष में सुलतान और बेगमों की सैकड़ों प्रकार की पोशाकें थीं . इन पर जरी और गोटे का काम किया हुआ था । प्रायः सब पर हीरे, पन्ने, मोती और माणिक जड़े थे । गाइड ने बताया कि तुर्की सुलतानों के हरम भोगों के खजाने थे । दुनिया के हर देश से लड़कियां खरीद कर, भगा कर, लूट कर यहां दाखिल की जाती थीं—एक से एक कमसिन और हसीन । हजारों की संख्या में बेगमों की जमात होती थी । इस के अलावा खूबसूरत लड़के भी सैकड़ों की तादाद में रखे जाते थे । इन्हें गिल्में कहा जाता था । बांदियों और हिजड़ों की तो गिनती ही नहीं । आज भी तुर्कों में यह शौक कुछ न कुछ मात्रा में है ।

इसी कक्ष में जवाहरात जड़े सोनेचांदी के लंगोट से देखने में आए । इन में सामने की ओर छोटा सा सुराख था और ऊपर की ओर एक छोटा सा ताला लगा हुआ था । हमारे लिए यह बिलकुल नई चीज थी । पूछने पर पता चला कि सुलतान किसी यात्रा पर अथवा लड़ाई पर बाहर जाते तो कुछ बेगमों और बांदियों को तो अपने साथ ले जाते थे, बची हुई बेगमों के गुप्तांगों पर ये तालाबंद लंगोट लगा दिए जाते थे । बहुत दिनों पहले पढ़े हुए एक लेख की याद आ गई । उस में इन्हें 'चेस्टिटी बेल्ट' कहा गया था । सोचने लगा, 'स्वयं अनेक प्रकार के भोगों में लिप्त रहते हुए निरीह बेगमों पर इस प्रकार के अत्याचार कहां तक वाजिब थे ?' लंगोटों के आकारप्रकार को देख कर बड़ी ग्लानि हो रही थी । इन्हें पहन कर कितनी शारीरिक और मानसिक यंत्रणा और यातना रहती होगी । मातृजाति का जघन्य अपमान ही तो था । हमारी संस्कृति में तो ऐसी कल्पना तक भी किसी ने न की ।

हम ने अरब देशों के इतिहास में पढ़ा था कि उन देशों में नारियों के प्रति आदर की भावना सदैव कम रहीं है । पैर की जूतियों से उन की तुलना की गई है ।

हम तीसरे कक्ष में आ गए । आभूषण, हीरे, पन्ने, नाना प्रकार के रत्न तथा सोनेचांदी के सामान सजे हुए थे । सैकड़ों सोने के दीवट (दीपक रखने की ऊंची स्टूल) देखे, इन में से प्रत्येक का वजन लगभग पंदरह सेर था । आज के सोने के भाव से इन में से एकएक का मूल्य दो लाख रुपए से ऊपर ही होगा । इन दिनों बिजली थी नहीं । महल के कक्षों में बड़ेबड़े दीपक जलाए जाते थे । इन की मोटीमोटी बत्तियों के लिए तेल, घी, मोम या चर्बी का उपयोग किया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाता था। सोने के बड़ेबड़े हुक्के भी दिखाई पड़े। तरहतरह की नक्काशी और मीनाकारी इन पर थी। किसीकिसी की नली तो पंदरहबीस फुट से भी ज्यादा लंबी। ठोस सोने के जेवर भी सजे थे। बेहतरीन हीरेपन्ने और मोती जड़े विभिन्न देशों की कारीगरी के ऐसे जड़ाऊ गहनों की प्रथा हमारे देश में भी रही है। मगर यहां के गहनों की बनावट हमारे यहां से कुछ भिन्न थी। दो बेशकीमती पन्ने देखे। छोटे का वजन था तीन पाव और बड़े का पौने दो सेर। हम ने आज तक हीरेपन्ने या नगीनों का वजन माशारत्ती में सुना था पर सेर दो सेर के तौल के भी ये हो सकते हैं, इस का अनुभव यहीं हुआ।

कीमत के बारे में मैं ने पूछा, तो उत्तर मिला, 'कीमत दे कर तो शायद ही कोई इन्हें खरीद सके क्योंकि एक प्रकार से ये अमूल्य हैं। दुनिया में कहीं भी इस प्रकार के बड़े पन्ने उपलब्ध नहीं हैं। आप के यहां कोहेनूर का अपना इतिहास रहा है, उसी ढंग का इन पन्नों का भी है।'

बात सही थी। कोहेनूर की कीमत भी नहीं आंकी जा सकी। महाराजा रणजीतसिंह की याद आ गई, उन्होंने इस की कीमत दो जूतियां बताई थी। स्पष्ट है, उन का इशारा था बलवान की शक्ति।

इन पन्नों के अलावा हमने यहां, अंडों के आकार के आबदार मोती देखे। वैभव, विलास की विचित्र वीथियों के बीच यही विचार उठ रहे थे कि ये सारी कि सारी चीजें धरी रह गईं। जिन्होंने इन्हें बटोरा वे स्वयं मिट गए। आज उनके नामोंनिशान नहीं। फिर लूटखसोट, वासना, लिप्सा की क्या उपलब्धि रही ? शायद भोगों की क्षणभंगुरता को समझ कर ही हमारे सम्राट भरथरी और सिद्धार्थ ने राज्य और गृह त्याग किया था। रघु, कर्ण और हर्ष के सर्वस्व दान की चर्चाएं भी भारतीय इतिहास में भरी पड़ी हैं।

गाइड ने हंस कर कहा, "जनाब, इन्हीं को देखकर आप हैरत में आ गए ? चलिए बेगमात के हरम अब आपको दिखा दूं।"

हरम में छोटेछोटे सैकड़ों कमरे थे। पहले ही तीन कक्षों में हमारा काफी समय लग चुका था। गरमी महसूस हो रहीं थी, थकावट आने लगी। बेगमों और गिल्मों के कक्षों को हमने सरसरी तौर से देख लिया। हमें ऐसा लगा कि सुंदर और सजे-सजाए कैदखाने हैं। ऊंचीऊंची दीवारों के बीच बड़ी उदासी का वातावरण था। शायद यहां उनकी उदासी भरी आहों का असर अब भी है। दीवार और दरवाजे दहशत पैदा करने के लिए काफी हैं। इन पर तगड़े ख्वाजासराओं (हिजड़ों) का पहरा रहता था। हमें बताया गया कि इन हिजड़ों को इकट्ठा करने के लिए दुनिया के हर कोने में सुलतान अपने विश्वस्त अनुचर भेजते थे। युद्ध के बाद की जीत की शर्तों में धनदौलत और स्त्रियों के साथ इनकी मांग भी की जाती थी।

दोपहर का समय हो चला था। भूख भी लग आई थी। होटल वापस आ गए। श्री मेहता ने लंच का निमंत्रण दिया था। तुर्की के कुछ विशिष्ट व्यक्ति भी आमंत्रित थे। अब तक हम विदेशों में बिना मसाले की साकभाजी खाते आ रहे थे। यहां मसालेदार सब्जियां मिलीं। हमारे देश से भी ज्यादा मसाले डालने का यहां रिवाज है। बीसियों प्रकार के आमिष व्यंजन बने थे। हमारे लिए खासतौर से चावल का पुलाव, नान और कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलों के रस थे। साथ में दही और फल भी थे। तुर्की कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलों के लिए मशहूर है।

हम सब आठ या दस व्यक्ति थे। एक ही टेबल पर बैठे। वैसे यूरोप में और आजकल तो भारत में भी होटलों में सामिष और निरामिष-भोजी एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। यहां एक विचित्र प्रथा है। सम्मानित व्यक्तियों के लिए विविध प्रकार की छोटीबड़ी मछलियां पानी के टबों में रखी जाती हैं। भोजन के समय उन्हें पसंद के लिए लाया जाता है और उसके बाद तलकर तश्तरियों में सजाकर पेश किया जाता है। मेरे लिए तो यह दृश्य बड़ा वीभत्स सा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था, उबकाई आने लगी। बड़ी मुश्किल से अपने को रोक पाया। मुसलिम देशों में भोज चीनियों की तरह काफी समय तक चलता रहता है। नाना प्रकार की चीजें तैयार होती रहती हैं, फरमाइशें और विभिन्न विषयों पर आलाप-आलोचना का क्रम चलता रहता है। श्री मेहता ने हमारा परिचय यहां के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हमीद बे से कराया। वे पहले संसद के सदस्य थे। श्री मेहता के अच्छे मित्रों में हैं। मेहता जी को उसी दिन किसी जरूरी काम से अंकारा जाना था इसलिए उनको हमारी देखभाल की जिम्मेदारी सौंप गए।

भोजन के उपरांत श्री बे के साथ हम उनके फ्लैट में गए जो समुद्र तट पर था। तबियत ताजा हो गई। खूब खुले दिल से बातें हुईं। तुर्की की वर्तमान शासन व्यवस्था और विदेशों से संबंध की चर्चा हुई। तुर्की के इतिहास के संबंध में उन्होंने कहा कि आश्चर्य है कि लोग मिस्र की सभ्यता को सबसे प्राचीन बताते हैं। हमारे देश के खंडहर स्पष्ट कह रहे हैं कि आज से छः सात हजार वर्ष पूर्व हम मिट्टी के बर्तन और पत्तों के घरों के युग से आगे बढ़े हुए थे। यह बात जरूर है कि मिस्र के पिरामिड करोड़ों मन के ठोस पत्थरों के बने हैं। जिन पर आग, पानी या मौसम का असर नहीं और हमारे आपके प्राचीन स्मारक जमीन में दब गए और मौसम के थपेड़ों की चपेट में आ गए।

मैंने कहा, "मेरी कुछ ऐसी धारणा यहां आने पर बनी कि भारत के साथ आपके देश का संपर्क और संबंध बड़ा प्राचीन रहा होगा। सूर्य मंदिर के ध्वंसावशेष सुमेरियन सभ्यता के प्रभाव का संकेत करते हैं। सुमेरु का उल्लेख बहुत बार हमारे यहां आया है। आपके यहां के प्राचीन राजा असुरबानी माल का नाम बड़ा परिचित सा लगा।" हंसते हुए मैंने यह भी कहा, "हमारे पुराण इतिहास में देवअसुर संग्राम के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। शायद बहुचर्चित असुर आपके यहां हुए थे!"

तुर्की के इतिहास के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया, "आज का तुर्की वस्तुतः ओटोमन सुलतानों की ठोस बुनियाद का नतीजा है। सन् १४५३ में ओटोमन (उस्मान) सुलतान मुहम्मद ने डेढ़ लाख फौज के साथ आक्रमण किया और कौस्टेनों को पराजित कर यहां मजबूत मुस्लिम साम्राज्य स्थापित किया। उन्हीं के वंशज सन १६२२ तक राज्य करते रहे। ४७५ वर्षों के सुदीर्घ काल तक एक ही वंश का शासन विश्व के इतिहास में बहुत ही कम मिलता है। सोलहवीं शताब्दी तक तुर्की सुलतानों ने मिस्र और सीरिया के अतिरिक्त पूर्वी यूरोप के बहुत से देशों को जीत लिया। उनकी फौजें मध्य यूरोप के आस्ट्रिया की राजधानी वियना तक पहुंच गईं। तुर्की सेना के वीरों की कथाएं आज भी न केवल तुर्की में बल्कि यूरोप में भी चर्चित होती हैं।

"म्यूजियम में रखे इन के हथियारों और जिरहबख्तरों को देखकर आपको इनकी शारीरिक क्षमता का अंदाज़ हो गया होगा। आप यूनान से आ रहे हैं। वहां तुर्कों के बारे में कहा जाता है कि हम बड़े क्रूर और नृशंस थे। हजारों बांदियां, गिल्में और बेगमों की जमात हरमों में होती थी। हम जबरन मुसलमान बना लेते थे। यह सब कुछ अंशों में रहा होगा। मगर यह भी न भूल जाना चाहिए कि उस युग में ईसाइयों ने भी इसलाम को उखाड़ने के लिए कम जुल्म नहीं किए। पिछले पांच सौ वर्षों में यूरोप के ईसाई मुलकों के साथ हमारे कई जंग हुए। हमें अमनचैन से बैठने का मौका ही नहीं मिला। मगर तुर्क हारकर फिर बीसतीस वर्षों बाद बदला लेते थे। दोगुने जोश से हमला करते थे और अपनी खोई जमीन और इज्जत ही नहीं बल्कि गुलाम और बेशुमार दौलत और हथियार हासिल करते थे। यही रवैया था और यही रिवाज रहा है।

"हमारे यहां के सुलतान मुल्क के बादशाह थे और कौम के खलीफा (धर्म गुरु)। इसलिए जितनी भी लड़ाइयां लड़ी गईं, उन्हें तुर्कों ने जिहाद (धर्मयुद्ध) माना। जंग में जीतने पर जांनिसार सिपाहियों को लूट के माल के अलावा बांदियां और गिल्में बतौर इनाम के दिये,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाते थे। लड़ाई में मरने का खौफ था नहीं, क्योंकि जिहाद में जन्नत मिलती और जन्नत में भी तो हूर और गिल्में हैं।

बड़ी साफ अंगरेजीमें हमीद साहब भावपूर्ण वर्णन कर रहे थे। कहने लगे, "तुर्क किसी भी कीमत पर आजादी का सौदा नहीं पसंद करता। हम पिछड़ गए थे। कुछ दकियानूसी भी हो गए, जमाने के साथ कदम नहीं रहा। शुक्र है कमाल अतातुर्कका, उन्होंने नयी जिन्दगी दी। हम अमरीका के प्रति भी कृतज्ञ हैं। उन्होंने हमें बेशुमार दौलत, फौजी मदद के साथ उद्योगधंधे और शिक्षा की सहायता दी। अमरीका ने महसूस किया कि तुर्क एक बहादुर कौम है जो आन के लिए खुशी से मौत को चूम लेती है। दुनिया के इस भाग में साम्यवाद को रोकने के लिए उसे एक बहादुर साथी चाहिए था। हम से बढ़ कर कौन ?

"हम से अमरीका को कभी शिकायत का मौका नहीं मिला। साम्यवाद की हवा में एक जहरीला नशा होता है। कुछ असर कभीकभी यहां के कालेज के लड़कों पर भी हो जाता है। वे साम्यवादियों के बहकावे में आकर कभीकभी अमरीकी दूतावास के सामने प्रदर्शन भी करते रहते हैं। मगर यह जुनून कायम नहीं रहता, क्योंकि तुर्कियों का विश्वास जनतंत्र में है।"

शाम होने लगी। विदा करते समय श्री बे ने मेरे दोनों हाथ मिला कर अपने सीने पर रख लिए। तुर्की में विदाई के अभिवादन का यही तरीका है। कहने लगें, "इस्तंबूल तुर्की नहीं है, देहात को भी देख लीजिए। चारपांच दिन और रुक जाइए। हमारे ऐतिहासिक स्थान और खंडहर, कृषि और उद्योगधंधों से आप को हमारे देश का सही परिचय मिलेगा।" हमें स्नेह के साथ विदा किया।

शाम हो गई थी फिर भी प्रकाश था। दूतावास के सचिव के साथ हम इस्तंबूल का नया हिस्सा देखने गए। इस अंचल में पूर्वी यूरोप के शरणार्थी बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। जैसेजैसे रूसी साम्यवाद के प्रभाव में पड़ोसी राष्ट्र आते गए, उन देशों के बहुत से लोग, जो उस विचार धारा की चपेट को नहीं संभाल पाए, देश त्याग कर यहां आ गए। इन में से कुछ, जो सम्पन्न थे, उन्होनें व्यापार, व्यवसाय यहां आ कर शुरू कर दिया। बाकी जो गरीब थे उनकी हालत कलकत्ते के आसपास बसे शरणार्थियों की तरह है।

मुझे अपने यहां के सन १९४७ की याद आ गई। पाकिस्तान के जुल्मों ने कितनों को बेघरबार कर दिया। विना मुआवजा दिए कितनों की संपत्ति हड़प ली गई। साम्यवादी देश धर्म के नाम पर न सही पर अपने सिद्धान्त के नाम पर भी तो यही करते हैं। धर्म और सिद्धांत में अंतर ही क्या है ?

तुर्की में अगस्त में फलों की बहुतायत लगी। सेब के आकार के पीच (आडू) केवल दोदो पैसे में हमने खरीदे। बड़े सुस्वादु थे। छोटेछोटे बच्चों ने फलों की टोकरियां लिए हमें घेर लिया। सभी अपने फल दिखाकर खरीदने के लिए कहने लगे। शायद सुबह फल भरी टोकरियों का बोझ सिर पर लाद कर चले थे। अब रात हो रही थी इसलिए घर वापस जाने की फिक्र म थे। इनमें कुछ तो आठ-दस वर्ष के ही थे। सुंदर गौर वर्ण और स्वस्थ थे मगर कपड़े फटे थे। प्रभुदयालजी ने विना जरूरत बहुत से फल खरीद लिए। मैं सोच रहा था, 'जीवन की विषमताएं सभी जगह हैं चाहे वह धनी देश हो या गरीब, स्वीडन हो या तुर्की।

नये इस्तंबूल में कोई खास आकर्षण लगा नहीं। कलकत्ते या बम्बई की तरह सड़कें, बसें और स्टोर थे। बाजार और दुकानें देखते हुए होटल वापस आ गए। फल इतने खा लिए थे कि भोजन भी नहीं किया।

दूसरे दिन सुबह बेरुत के लिए रवाना हुए। हवाई जहाज एयरपोर्ट का चक्कर लगाता हुआ उत्तरपूर्व की ओर बढ़ा। नीचे इस्तंबूल ओझल सा हो रहा था। किंतु तुर्की मन में बैठा था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अरबी संस्कृति का प्रतीक
बेरुत

अपनी सन १९६१ की यात्रा में बेरुत होकर स्वदेश लौटने का प्रोग्राम था लेकिन कुछ तो सफर की थकान और कुछ देश लौटने की प्रबल इच्छा के कारण हम सीधे काहिरा से भारत आ गए। यहां आने पर मित्रों ने उलाहने दिये कि बिना अतिरिक्त व्यय के लेबनान न देखकर तुमने एक संपन्न और सुंदर देश को देखने का मौका खो दिया, दो-तीन दिन और लग जाते, मगर अरब और अरबी संस्कृति को नजदीक से देख लेते वे

खैर, १९६४ में फिर अवसर मिला। हम विश्वयात्रा समाप्त कर के इस्तांबूल से भारत वापस आ रहे थे। रास्ते में लेबनान की राजधानी बेरुत में ठहरने का निश्चय किया।

बेरुत फ्रीपोर्ट है। कस्टम की जांच यहां कड़ाई से नहीं होती। हमें भारतीय दूतावास के सचिव लेने आए थे इसलिए दोएक बात पूछ कर ही औपचारिकता के घेरे से छुट्टी मिल गई। होटल की बुकिंग हम ने पहले से ही करा रखी थी क्योंकि हंबर्ग और वेनिस में ऐसा न करने का कटु अनुभव हो चुका था।

हम जिन देशों से होते आ रहे थे, उस के मुकाबले में रोम, एथेंस और इस्तांबूल के होटल का स्तर घटिया था। हमारी धारण थी कि कुछ इसी प्रकार बेरुत में होटल भी होंगे, किंतु जैसे ही हम होटल में गए, वहां की साजसज्जा, व्यवस्था और खिदमतदानी देख कर तबीयत खुश हो गई। ऐसा लगा कि एशिया के देशों में भी पर्यटन व्यवसाय पर अब समुचित ध्यान दिया जाने लगा है। बहुत ही सुंदर कमरे, रेडियो और बेहतरीन फर्नीचर। मेजों पर लेबनान के दर्शनीय स्थानों, वहां के इतिहास, भूगोल और पर्यटकों के लिए आवश्यक जानकारी की पुस्तकें रखी थीं। इन्हें पढ़ कर यात्रियों को काफी सुविधा रहती है क्योंकि उन्हें अपनीअपनी रुचि के अनुसार क्याक्या देखना है, सिक्के की कीमत क्या है, होटल, मनोरंजन के स्थान, रात्रिक्लब, थियेटर, सिनेमा, ट्रेन, बस और आवागमन के अन्य साधन तथा इसी प्रकार की अन्य बातों आदि की आवश्यक जानकारी मिल जाती है। इन पुस्तकों में स्थानीय भाषा के आवश्यक शब्दों का अनुवाद भी अंगरेजी और फ्रेंच में रहता है। इस के अलावा सुंदर जिल्द की एक बाइबिल भी हमें मेज पर रखी दिखाई पड़ी। पता चला कि स्थानीय बाइबिल एसोसिएशन धर्मप्रचार में करोड़ों रुपए प्रति वर्ष खर्च करती है। सोचने लगा कि हमारे देश में भी धार्मिक संस्थाएं और मठ हैं, जिन के पास बहुत बड़ी संपत्ति है, पर उन के माध्यम से विदेशों में हिंदू धर्म के प्रचार के लिए शायद ही कुछ काम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होता है। हां, रामकृष्ण मिशन जरूर अपवाद है। जिस समय हम होटल पहुंचे, रात हो गई थी। इसलिए उस दिन कहीं नहीं जा पाए। भोजन करके अगले दिन का कार्यक्रम बनाने और लेबनान के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बारे में चर्चा करने लगे।

लेबनान अरब के लैवांत अंचल में है। भूमध्य सागर के पूर्वी छोर का यह छोटा सा अरब राष्ट्र है। इस के दक्षिण में इजराइल है और उत्तर तथा पूर्व में सीरिया। इस छोटे से राष्ट्र की स्थापना तुर्क साम्राज्य के पांच जिलों को मिला कर हुई थी। १६२० में यह स्वाधीन हुआ पर १६४० तक इस पर फ्रांस का संरक्षण रहा। अब यहां का शासन जनता द्वारा निर्वाचित सरकार करती है। संसद द्वारा छः वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति चुना जाता है।

हमें बताया गया कि यह सब से छोटा अरब राष्ट्र है। आबादी है इक्कीस लाख। पांच लाख लोग अकेले बेरुत में ही रहते हैं। आबादी में से आधे मुसलमान हैं और आधे ईसाई। मैं सोच रहा था कि यह भी एक देश है जिस का कुल क्षेत्रफल चार हजार वर्ग मील है। इतना तो हमारे एक जिले का होगा और जनसंख्या कलकत्ता की एक तिहाई मात्र है। फिर भी इस की अपनी सरकार है, शासन है, सेना है और यह सार्वभौम स्वतंत्र राष्ट्र है।

लेबनान में खाद्यान्न का उत्पादन यहां की जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि अधिकांश भूभाग बस केवल जंगल और पहाड़ हैं। केवल २३ प्रति शत भूमि पर खेती होती है। पेट्रोल का उत्पादन भी नगण्य है, केवल सोलह लाख टन प्रति वर्ष जब कि इस से भी छोटे देश कुवैत का वार्षिक उत्पादन साढ़े ग्यारह करोड़ टन और इस के पड़ोसी देश सऊदी अरब का वार्षिक उत्पादन दस करोड़ टन है।

यहां फलों की पैदावार अच्छी होती है। सवा पांच लाख टन अंगूर, सेब और माल्टा यहां होते हैं। लेबनान को प्रकृति ने धनी नहीं बनाया है फिर भी यह चौधराने से अच्छी आय पैदा कर लेता है। विश्व में पेट्रोल की आय के कारण सब से अधिक अमीर देश कुवैत और सऊदी अरब का विदेशी व्यापार लेबनान के माध्यम से होता है। 'ईराक आयल कंपनी' के किरकुक आयल फील्ड से त्रिपोली तक पाइप लाइन है। इसी प्रकार 'ट्रांसअरब आयल कंपनी' की पाइपलाइन भी सऊदी अरब से यहां के बंदरगाह सईदा तक है। इन देशों का तेल लेबनान के बंदरगाहों से ही विदेशों में निर्यात किया जाता है। आज की दुनिया में पेट्रोल को 'तरल सोना' माना जाता है। कुवैत, सऊदी अरब, ईराक आदि को पेट्रोल से बेशुमार आमदनी होती है। लेबनान अपने बंदरगाहों के उपयोग का किराया तो पाता ही है, अन्यान्य डिस्काउंट वगैरह भी पाता है। बीसवीं शताब्दी के शुरू में लंदन जिस प्रकार यूरोप के व्यापार का माध्यम था उसी प्रकार इस समय अरब देशों के लिए लेबनान की राजधानी बेरुत है।

यान्त्रिक व्यवसाय यहां की आमदनी का दूसरा बड़ा स्रोत है। भौगोलिक दृष्टि से लेबनान पूर्व और पश्चिम के देशों को जोड़ने वाली कड़ी है। इसी लिए बेरुत हवाई जहाजों के आनेजाने का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव बन गया है। यात्रियों के लिए यहां क्लब, होटल और मनोरंजन के तरहतरह के आकर्षक साधनों को प्रचुर प्रश्रय दिया गया है। दोनों ओर के यात्री दोचार दिन का समय यहां के लिए निकाल ही लेते हैं। आंकड़ों को देख कर पता चलता है कि १६६४ में यहां लगभग पांच लाख पर्यटक आए जिन से इन्हें करीब अस्सी करोड़ रुपयों की आमदनी हुई। मतलब यह कि यहां की जनसंख्या के हिसाब से प्रति व्यक्ति ४०० रुपए की आय हुई जो कि कुल मिला कर हमारी वार्षिक प्रति व्यक्ति आय के लगभग है।

अन्य यूरोपीय व एशिया के पूर्वी देशों की तरह इन्होंने भी रात्रि क्लबों को काफी तड़कभड़क वाला बना रखा है। ज्यों ही हम होटल पहुंचे, साफ अंगरेजी बोलने वाले दोतीन व्यक्ति बारीबारी से आ कर मिले। वे यहां के रात्रि क्लबों के एजेंट थे। इन्होंने लच्छेदार शब्दों में इजिप्शियन ब्यूटी, न्यून क्लब, न्यूड नृत्य आदि के बारे में बड़ेबड़े प्रलोभन दिए। हांगकांग, होनोलूलू, पेरिस और हंबर्ग जैसे विलासिता के लिए मशहूर शहरों के रात्रिक्लब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम देखते आ रहे थे । इन जगहों में न्यूड नाइट क्लब तो दिखाई पड़े थे पर नंगे स्त्रीपुरुषों के नृत्य आयोजित करने वाले क्लबों के बारे में यहीं आ कर सुना था । यों तो फ्रांस, जरमनी और आस्ट्रिया में न्यूड क्लब वर्षों से हैं; साल में दसपंदरह दिन के इन के कैंप भी लगते हैं पर इन में नग्न नृत्य का प्रोग्राम नहीं रहता ।

दरअसल इन का उद्देश्य भिन्न होता है । प्रकृति से अधिकाधिक संपर्क को प्रोत्साहन देना । इन के शिविरों में सभी सदस्य नंगे घूमतेफिरते हैं पर इन में कामुकता भड़काने को प्रश्रय न दे कर वासनाओं को रोकने की ओर प्रयास रहता है । मुझे इन क्लबों में जाने का मौका तो नहीं लगा लेकिन परिचितों से यही जानकारी मिली । हमारे यहां भी हजारों वर्षों से नागा संप्रदाय के लोग ऐसे ही रहते आ रहे हैं । हमारे यहां जैन साधुमुनि भी दिगंबर ही रहते हैं । हां, विदेशों के दिगंबर क्लबों में स्त्रियां रहती हैं, हमारे यहां नहीं, यह एक भिन्नता अवश्य है । इस के अलावा हमारे यहां आध्यात्मिक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया गया है, उन के यहां नहीं ।

एजेंटों को हमारे पास से निराश हो कर लौटना पड़ा । उन्होंने समझा कि या तो हम परले सिरे के अरसिक हैं या कंजूस । कम से कम उन की शक्ल से यही जाहिर हो रहा था, भले ही उन्होंने हमें मौखिक धन्यवाद दे दिया । इन अरब देशों के रात्रि क्लबों के आसपास मारपीट और लूटखसोट की वारदातों के बारे में हम ने काफी सुन रखा था । इसलिए रुचि न होने पर भी महज अनुभव के लिए ही इतना बड़ा जोखिम उठाना हम ने वाजिब नहीं समझा ।

अगले दिन सुबह नाश्ता कर के हम अपने दूतावास गए । बेरुत में हमारे कौंसल एक पंजाबी सज्जन थे । अरब देशों के बारे में उन का अध्ययन अच्छा था । भारत के साथ अरब देशों के वाणिज्य, व्यापार, आयातनिर्यात आदि के बारे में उन से बातें हुईं । उन्होंने स्पष्ट तो नहीं कहा क्योंकि सरकारी पदाधिकारी थे, फिर भी उन की बातों से हमें अंदाज मिला कि हमारे मंत्री प्रति वर्ष अमरीका, ब्रिटेन, रूस और जरमनी तो जाते रहते हैं, पर हमारी सरकार अरब देशों को तृतीय श्रेणी का मानती है और इन की तरफ अपेक्षित ध्यान भी नहीं देती । जापान, फ्रांस और इटली जैसे उन्नत देश भी अपने विशिष्ट मंत्रियों को समयसमय पर इन देशों में भेजते रहते हैं जब कि हमारे देश से सचिव या उन से नीचे के अफसर ही यहां आते हैं ।

प्रतिक्रिया यह होती है कि भारत के ऐसे रवैए को यहां वाले एक प्रकार से अपना अपमान समझते हैं । यदि हम उपेक्षा की नीति बदल कर अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना लें तो अरब देशों में हमारी चीजों का निर्यात बड़े पैमाने पर हो सकना संभव है ।

कौंसल महोदय ने यह भी बताया कि रौकफेलर, फोर्ड, रुथचाइल्ड और निजाम हैदराबाद के वैभव और दौलत को इन देशों के शेखों ने मात दे दी है क्योंकि 'तरल सोने' की धारा इनकी धरती में बह रही है। उन की बातें तथ्यपूर्ण थीं क्योंकि हम ने खुद भी होनोलूलू, लंदन, कोपेनहेगन और वेनिस में इन्हें पानी की तरह रुपए बहाते देखा था ।

इन देशों में हमारे माल की खपत में बाधा पहुंचाने वाले जिस दूसरे कारण का उल्लेख उन्होंने किया उसे सुन कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाना स्वाभाविक था क्योंकि हम खुद व्यापारी समाज के थे । उन्होंने बताया कि हमारे शिल्पोद्योग की जो वस्तुएं यहां पहुंचती हैं उन की क्वालिटी और माप दोनों के बारे में अकसर शिकायतें आती हैं । भारत में जब वह इन चीजों के निर्माताओं को पत्र लिखते हैं तो या तो जवाब ही नहीं आता और बारबार लिखने पर यदि आ भी गया तो संतोषजनक नहीं होता । यहां तक कि चीजों की किस्म

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भविष्य में सुधारने का आश्वासन तक नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में स्थानीय व्यापारियों को भारतीय वस्तुओं से संतुष्टि नहीं मिल पाती। नतीजा यह हो रहा कि इन देशों में भारतीय माल की साख घट गई है।

अरब देशों के ग्राहकों की धारणा है कि सिवा चीन और पाकिस्तान के दुनिया के सभी देश अपने निर्यात की वस्तुओं की पूर्णता के बारे में भारत से कहीं अधिक ईमानदार और सावधान रहते हैं।

लगभग दो घंटे तक हम अपने कौंसल के साथ रहे। ऐसा लगा कि वह हमें समझाना चाहते थे कि हमारे उद्योगपतियों को व्यवसाय के लाभ के साथसाथ राष्ट्रीय सम्मान और साख का भी ध्यान रखना चाहिए। इस दिशा में सरकार को भी ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि स्टैंडर्ड से हलके माल निर्यात करने वालों को दंड मिले।

हम ने दिल्ली आ कर अपनी जो रिपोर्ट व्यापार मंत्री को दी उस में इन सब बातों का उल्लेख कर दिया गया था।

लेबनान की आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्था के बारे में हमें जानकारी लेनी थी। हमारे दूतावास ने वहां के व्यापार मंत्री से उसी दिन संध्या का समय मुलाकात के लिए तय कर रखा था। हम ने दूतावास के लोगों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और विदा ली।

रोम, एथेंस और इस्तांबूल से ही गरमी महसूस होने लगी थी पर यहां तो वह एक प्रकार से सताने हीलगी। बाजार में अधिक न घूम कर हम सीधे होटल वापस आं गए।

तीन बजे दूतावास के सचिव कार ले कर आए। हम उन के साथ मिस्टर अफ़ज़लबेग के दफ्तर में गए। अपने मुख्य सचिव और अन्य सहायकों को भी उन्होंने बुला रखा था। औपचारिक रूप से पारस्परिक परिचय हुआ। भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व पर बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। गांधीजी और नेहरूजी के बारे में वह कहने लगे कि कई शताब्दियों बाद ही इस प्रकार के अमन के पैगंबर पैदा होते हैं। इन दोनों महान विभूतियों को विश्व अभी समझ नहीं पाया है। सत्य, अहिंसा और पंचशील के सिद्धांतों को अमल में लाने के तरीके जो गांधीजी और नेहरूजी ने बताए हैं, वे गिरते हुए मानव समाज की राहत के लिए एक मात्र उपाय है।दुनिया चांद तक पहुंचने का प्रयास कर रही है मगर वह यह नहीं समझती कि अपने नामोनिशान को मिटाने के लिए उस ने हाइड्रोजन बम और राकेट इस के पहले खुद ही तैयार कर रखे हैं।

'इंशा अल्लाह !' कह कर इस चर्चा को समाप्त कर वह अपने विषय पर आए। कहने लगे कि लेबनान और हिन्दुस्तान के ताल्लुकात कदीमी हैं क्योंकि दोनों की तहजीब पुरानी है। जुवल (बिलोस) पोर्ट शायद दुनिया में सब से प्राचीन है। भारत की बड़ीबड़ी समुद्रगामी नौकाओं से बेहतरीन सामान हमारे यहां हमेशा से आते रहे हैं और इसी रास्ते यूरोप को भेजे जाते रहे हैं। सिर्फ यही नहीं, अरबों ने भारत से ही गिनती सीखी और आज भी हम अंकों को हिंदसा कहते हैं।

गणित, ज्योतिष, और दर्शन के सिद्धांत हिंदुस्तान से बराबर हमारे यहां आते रहे हैं जिन्हें हम से यूनान ने सीखा और उन से यूरोप ने। हंस कर कहने लगे, आज हम उन मुल्कों से पिछड़े हैं मगर खैर है कि हम महसूस करते हैं कि जमाने के साथ हमें कदम रखने हैं इसलिए कुछ पुराने तरीके जो आज के जमाने में बेकार और दकियानूसी साबित हो रहे हैं, हम छोड़ रहे हैं। लेबनान इस ओर दूसरे अरब मुल्कों से ज्यादा खयाल रखता है, इस का आप ने अंदाज किया होगा।"

हम ने बताया, "सिवा मिस्र के हम अन्य किसी अरब मुल्क में अब तक नहीं गए हैं। फिर भी इतना हम जरूर कहेंगे कि आप के मुल्क में आधुनिकता के प्रति लोगों में झुकाव अधिक है और सांप्रदायिक संकीर्णता भी कम है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ देर चुप रह कर वह कहने लगे, "लेबनान ने इतिहास के इशारे को समझा है। हमें फख्र है कि हम अपने कदीमी इखलाख को हासिल करने की तरफ बढ़ रहे हैं। खेती की पैदावार को आधुनिक तरीके से बढ़ा रहे हैं। हमें उम्मीद है कि आने वाले दो तीन वर्षों में हम इस मामले में आत्मनिर्भर हो सकेंगे।"

उन्होंने लेबनान की राष्ट्रीय आय ५०० करोड़ रुपयों की बताई। इस का मतलब है २,५०० रुपए प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष। हालांकि लेबनान केवल ५० करोड़ रुपयों के माल का निर्यात करता है लेकिन क्योंकि कुवैत और सऊदी अरब का माल यहां के बंदरगाहों से आताजाता है इसलिए इन्हें ३६० करोड़ रुपयों की अतिरिक्त प्राप्ति हो जाती है।

शिक्षा की प्रगति के बारे में जो सुना, उस से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। अरब देशों में इजराइल को छोड़ कर सभी देश मुसलमानों के हैं। हमारी धारणा थी कि पाकिस्तान के मुसलमानों की तरह यहां भी धर्मांधता होगी और हर मामले में कुरान और हदीस के बाहर की चीजों को ये भी कुफ्र मानते होंगे। मिस्र में कुछ हद तक भ्रम का निवारण हुआ था पर उसे मैं ने आधुनिकता का थोड़ा सा प्रभाव मात्र समझा था। लेनिन लेबनान में जीवन की गतिविधि और शिक्षा के प्रचारप्रसार के आंकडों को जान कर अपनी धारणा में संशोधन करना पड़ा।

इस छोटे देश में आधुनिक सुविधाओं और सामग्री सें लैस चार विश्वविद्यालय हैं। यहां हजारों स्कूल चल रहे हैं जिन में लगभग तीन लाख पैंसठ हजार विद्यार्थी और दस हजार अध्यापक हैं। इन के अलावा मुल्लामौलवियों के कुछ पुराने ढंग के मदरसे भी हैं।

बातचीत के सिलसिले में हमें बड़े साइस्ता ढंग से इशारा दे दिया गया कि यदि हिंदुस्तान अपनी चीजों का स्टैंडर्ड अच्छा रखे तो लेबनान की मारफत मध्यपूर्व में भारतीय सामग्री की अच्छी खपत हो सकती है। हम पहले से ही अपने उद्योगों के स्टैंडर्ड के बारे में सुन चुके थे। प्रभुदयालजी मुसकरा कर कहने लगे, "शुरू में दिक्कतें कुछ हो जाती हैं मगर हमें उम्मीद है कि हमारे माल के बारे में शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।"

चाय के साथ उन्होंने अपने देश के बेहतरीन अंगूर और माल्टा भीं आग्रहपूर्वक खिलाए। बचपन में देखा था, काबुल से बहुत मीठे अंगूर आते थे, काठ के गोल डब्बों में रुई में लिपटे हुए। यहां के अंगूरों ने उस मधुरता की याद ताजा कर दी।

विदा करनें के लिए वह नीचे गाड़ी तक आए। उन का अनुरोध था कि हम लोग लेबनान की पहाड़ियों में रमणीक जगहों को जरूर देख लें।

बाजार से गुज़रते हुए हम ने देखा कि जगहजगह भारतीय फिल्मों के इश्तहार लगे हुए हैं। हमें अपने दूतावास के सचिव से पता चला कि भारतीय फिल्मों की यहां अच्छी मांग रहती है, लोग उन्हें पसंद भी करते हैं। इस कारण बहुत से स्थानीय लोग हिंदी समझ लेते हैं। प्रभुदयालजी ने धीरे से कहा, "जो काम 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' न कर पाई और हमारी सरकार भीं जिसके लिए अब तक स्पष्ट दिशा नहीं अपना सकी, उसे हमारे सिनेमा वालों ने कर दिखाया।"

बेरुत, फ्रीपोर्ट और यात्रियों के आकर्षण का नगर होने के कारण दुकानों में हर तरह के सामान खूबसूरती से सजे थे। दाम भी वाजिब थे। चीजों को देखने और दाम की जानकारी के लिए हम कई स्टोरों में गए। वहां सभी देशों की चीजें थीं।

यहां एक और विशेषता देखी। अवैध व्यापार यानी तस्करी का धंधा यहां बड़े पैमाने पर होता है। शायद लेबनान सरकार को इस से अच्छी आमदनी होती है क्योंकि पड़ोसी देश में आयात पर सरकारी नियंत्रण और प्रतिबंध है जब कि यहां पूरी छूट है। यही कारण है कि यहां से विदेशी माल पड़ोसी देशों में जाता है। यहां के बाजार में आसानी से सभी देशों के सिक्के बदले जा सकते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम ने इस ढंग की एकदो दुकानों में जा कर सिक्कों के भाव पूछे। अमरीकी डालर स्वीडिश क्रोनर और स्विस फ्रांक की दर अधिकृत दरों से ऊंची थी। ब्रिटेन के पाउंड, पश्चिम जरमनी के मार्क और जापानी येन के भाव अधिकृत दरों के आसपास थे। भारतीय मुद्रा का मूल्य केवल ६० प्रतिशत था और पाकिस्तान का ५० तथा बर्मा का सिर्फ ३० प्रतिशत।

हमारे दूतावास के सचिव का विशेष आग्रह था कि यहां का विश्वविद्यालय जरूर देखना चाहिए। वहां जा कर उन के वार्षिक बजट, अध्ययन की विविध सुविधाएं और व्यवस्था देख कर पता चला कि अमरीकी ईसाई संस्थाएं इन देशों में ईसाइयत के प्रचारप्रसार के लिए बेशुमार धन खर्च करती रहती हैं। हो सकता है कि इस के पीछे उन का कुछ दूसरा उद्देश्य भी हो, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे भूखों को अन्न, नंगों को वस्त्र और गरीबों को शिक्षा दे कर रोजी और रोजगार के काबिल तो बना ही देती हैं। हमारे देश में भी ईसाई मिशनरियां ऐसा करती हैं। हम बहुत शोर मचाते हैं कि धर्म लूटा जा रहा है, हिंदुओं को प्रलोभन दे कर ईसाई बनाया जा रहा है आदि। पर जब हम अपने यहां के शौकीन मठाधीशों और महंतों की जगलों और पहाड़ों में कष्ट सहते हुए ईसाई पादरियों से तुलना करते हैं तो शंका का समाधान अपने-आप हो जाता है।

अमरीकी विश्वविद्यालय में हम ने देखा कि हर देश और हर रंग के विद्यार्थी वहां हैं। संगीत, कला, शिल्प, इंजीनियरिंग, नर्सिंग, चिकित्सा आदि सभी प्रकार के स्कूल और कालेज इस के अंतर्गत हैं। अधिकांश अध्यापक लेबनानी हैं। छात्रों के अनुशासन, रुचि और अध्यवसाय से संचालकों को पूर्ण संतोष है। पिछले वर्ष इस विश्वविद्यालय का शताब्दी जयंती मनाई गई थी।

लौटते समय बाजार से ऊंटगाड़ी गुजरती देखी जो एक प्रकार से हमारे राजस्थान जैसी ही थी। उसी तरह सामान लादे बेफिक्री से नकेल थामे गाड़ी वाला मोटर और ट्रकों की उपेक्षा करता चला जा रहा था। अच्छा लगा कि दौडभाग की दुनिया में कहींकहीं मस्ती की चाल अब भी दिखाई दे जाती है।

बाजार में ऐसे ही घूमते रहे, खरीदारी कुछ करनी थी नहीं। अगले दिन के लिए एक गाइड और कार तय कर ली। हालांकि देखने के लिए कुछ विशेष था नहीं। सफर के आरंभ और अंत में तबीयत में शाहखर्ची आ ही जाती है।

दूसरे दिन गाइड के साथ घूमने निकले। गाइड का नाम था इस्माइल। वह तनिक मोटा जरूर था मगर था बड़ा खुशमिजाज। अंगरेजी साफ जानता था और हिंदी के भी दोचार शब्द बोल लेता था। शुरू में 'गाइडधर्म' के अनुसार करीब आधे घंटे तक उस ने लेबनान और बेरूत के इतिहास के बारे में बताया। लेबनान के इतिहास के सिलसिले में उस ने ईसाइयों और मुसलमानों के बीच मध्ययुग की लड़ाइयों और तनाव की जो बातें बताईं, वे सही जरूर रही होंगी, पर हमें ऐसा लगा कि मुसलमान होने के नाते उस ने कुछ पक्षपात से काम लिया। उस ने बताया कि लेबनान का क्षेत्र मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल के प्रथम और द्वितीय चरण का है। खुदाई करने पर इस के प्रमाण मिले हैं और मिलते जा रहे हैं।

गाइड ने बताया, "नवीं ईसवी में यहां मुसलमान और ईसाइयों में कई बार लड़ाइयां हुईं। अब भी होती हैं क्योंकि ईसाई मुसलमानों को बहका कर कुफ्र की राह ले जाने की अपनी आदत से बाज नहीं आते। लेकिन इतना जरूर है कि अब तलवारों की जगह अकल और हिकमत से लड़ाई होती है। इसलाम को खतरे में डाले रखने के लिए ईसाइयों ने अरब क्षेत्र में यहूदियों को बसा कर इजराइल कायम किया है। यहां से इजराइल सिर्फ १५० मील और यरुशलम २०० मील की दूरी पर है। इजराइल को चारों ओर से अरब मुल्क घेरे हुए हैं। दुनिया के अमन के लिए इजराइल एक कायमी खतरा है। पिछले डेढ़ हजार वर्षों में जितना खून हमारी इस जमीन पर बहाया गया है, उस की मिसाल शायद ही और कहीं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिलेगी ।

मुसलमानों और ईसाइयों, मुसलमानों और मुसलमानों, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिकों, यहूदियों और मुसलमानों में यहां आपस में एक नहीं अनेक बार युद्ध हुए हैं । यहीं नहीं, तुर्की के सुलतानों ने भी जब चाहा, यहां लूटमार मचाई । काफी समय तक यह इलाका उन के अधीन रहा है । तुर्की सुलतानों के हरमों में सदियों तक यहां से हूरें और गिलमें जबरदस्ती ले जाये गये ।"

इस्माइल ने अपनी तकरीर जारी रखी, "अठारहवीं शताब्दी में हिंदुस्तान से पैर उखड़ने के बाद फ्रांस ने यहां अपना प्रभुत्व जमा लिया । १६४० तक यहां उस का प्रभुत्व कायम रहा । वे शायद फिर भी यहां से जाते नहीं मगर कभी तो न्याय की जीत होती ही है । उन के खुद के मुल्क पर जून १६४० में जरमन नाजी फौज चढ़ आई । वे खुद गुलाम हो गए और हमारा लेबनान आजाद हो गया । सन १६४३ में यहां पहला चुनाव हुआ । लेबनान अरब लीग का सदस्य जरूर बना मगर इजराइल से कभी भी हम ने बैर नहीं रखा ।"

मैं ने बात काट कर कहा, "मगर तुम तो इजराइल से नाराज हो, अभी तुम्हारी बातों से पता चला है ।"

इस्माइल जरा गंभीर हो गया । उस ने कहा, "वह मेरी अपनी राय थी ।" अपने विषय पर लौटते हुए उस ने बताया, "क्योंकि इजराइल से लेबनान ने द्वेष नहीं रखा इसलिए लेबनान पर प्रेसिडेंट नासिर की नाराजगी स्वाभाविक थी । १६४६ में जब ईराक में फौजी बलवा हुआ, उस समय यहां भी शायद वहीं हालत होती, मगर यहां के प्रेसिडेंट कमाल सामन ने बुद्धिमानी से काम लिया और अमरीका से सहायता की प्रार्थना की । समय पर अमरीकी फौजें आ गईं । लेबनान अमन के दौरान में तरक्की करता जा रहा है । बेरुत की आबादी १६२६ में सिर्फ ८०,००० थी, अब ५,००,००० है । दुनिया के बड़े और खूबसूरत शहरों में इस की गिनती है ।"

मैं ने कहा, "इस्माइल साहब, कलकत्ता की आबादी साठ लाख है कुछ पता है ।"

मुसकरा कर उस ने कहा, "सुना है, मगर दौलत का दौर बेरुत में है । इसलिए यह बड़ा है और खूबसूरत भी । कुवैत और सऊदी अरब के शेखों के महल यहां हैं, उन के हरम भी हैं । वे यहां बराबर आते रहते हैं ।" उस ने यह भी बताया कि नवाब जूनागढ़ और हैदराबाद के शाहजादे भी यहां तबीयत बहलाने के लिए आया करते थे ।

गाइड की बातों में आकर्षण था । उस की अंगरेजी यूरोप के गाइडों की तरह नहीं थी । भारतीयों की तरह उस में स्पष्टता थी और बीचबीच में वह मजहब, हरम, हुस्न, तवारीख, मुश्किल, वक्त, जमाना, जंग, हिकमत और न जाने कितने ऐसे परिचित शब्द बोलता था इसलिए अपनापन भी लगता था ।

उस ने बताया कि यहां की क्रिश्चियन संस्थाओं के पास खर्च करने के लिए अथाह दौलत है इसलिए उन का रोबदाब भी है । मैं ने कहा, "ईसाई तो आप के देश के गरीबों की सेवा करते हैं, फिर विरोध किस बात का ?"

इस्माइल ने कहा, "वैसे मजहबी आजादी का हक सबों को है, मगर दिक्कत यह है कि विदेशियों की मदद और कोशिशों से जब किसी मजहब को फैलने का सहारा मिलता है तो उस के मानने वालों का झुकाव भी अपने मुल्क की ओर न हो कर गैर मुल्क पर होता है । हम लेबनान में ऐसा होना बर्दाश्त नहीं करेंगे और माफ करें, शायद आप भी अपने मुल्क के लिए ऐसा बर्दाश्त नहीं करेंगे ।"

इस्माइल के तर्क और युक्ति ने मुझे सोचने के लिए काफी मसाला दे दिया । हमारे नागा और मिजो लोगों की समस्या के पीछे भी तो ईसाई पादरियों का हाथ बताया जाता है । शायद वह समझ गया । उस ने विषय को मोड़ते हुए बताया, "लेबनान की भाषा लेबनिन है । इसे अरब की एक उपभाषा कह सकते हैं, मगर इस में मिठास है और सरलता भी । विदेशी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भाषाओं में फ्रेंच यहा अधिक प्रचलित है क्योंकि फ्रांस के साथ हमारा संपर्क अधिक रहा है। अब कुछ वर्षों से अमरीकी ढंग की अंगरेजी का भी प्रचार हो रहा है।"

गाइड की बातें बड़ी रोचक और तथ्यपूर्ण लगीं। उस ने बताया, "यहां एक कालिज है जहां गाइडशिप की शिक्षा दी जाती है। देश के इतिहास, भूगोल, अर्थ नीति आदि के अलावा कई विदेशी भाषाएं भी इन्हें सीखनी पड़ती हैं।"

पिछले ५० दिनों से विश्व के सुंदर और समृद्ध शहरों को हम देखते रहे थे। इसलिए बेरुत में हमारे देखने लायक विशेष कुछ था नहीं। फिर भी इस्माइल के साथ शहर के पुराने भाग के खंडहरों को देखने के लिए कार से गए। हमारे कुतुबमीनार के पास महरौली या राजगृह और नालंदा के खंडहरों की सी इन की हालत थी। कुछ खुदाई भी यहां हुई है। प्राचीन काल के बरतन, मूर्तियां और गहने मिले हैं। असीरियन सभ्यता का यहां प्रभाव था। जो शायद आसुरी सभ्यता रही हो। हमारे पुराणों में देवासुर के संघर्ष का जिक्र आता है।

ईरान का मध्य और पूर्वी क्षेत्र भारत से संबंधित रहा है। इसलिए इन की सभ्यता और मूल संस्कृति से हमारा सामंजस्य है। असीरियन सभ्यता और संस्कृति ने अरब और यूनान को प्रभावित किया है। शायद यही कारण है कि इसलाम, ईसाइयों और यहूदियों के धर्म में कुछ हद तक सामंजस्य मिलता है। खंडहरों के बीच इन्हीं बातों पर सोचने लगा। शायद यही आसुरी सभ्यता और संस्कृति इसलाम के रूप में भारत में फिर से आई।

पास के संग्रहालय में भी कुछ चीजें रखी देखीं। वेशभूषा, पहनावा, रथ, पशुपालन सभी तो जैसे जानेपहचाने से लगे, महाभारत, रामायण और पुराणों में वर्णित से।

ध्यान टूटा। इस्माइल कह रहा था, "हमारी बदकिस्मती है कि यहां से काफी चीजें अमरीका और फ्रांस के म्यूजियमों में चली गईं।"

मैं ने ब्रिटिश म्यूजियम में औरंगजेब की लिखी कुरानशरीफ देखी थी और लंदन टावर में कोहेनूर हीरा। सोचने लगा, 'पराधीन देशों के साथ व्यवहार एक सा ही होता है, चाहे फ्रांस करे या ब्रिटेन।'

पुराने बेरुत से बंदरगाह पर आए। यह बंदरगाह काफी बड़ा और आधुनिक साधनों से सुसज्जित है। यहां १७ बड़ेबड़े जहाज एक साथ ठहर सकते हैं और उन पर माल चढ़ाया या उन से उतारा जा सकता है। संसार के सभी देशों के जहाज यहां आते हैं। सन १९६३ में ३,१०० जहाज इस बंदरगाह पर आए थे। इसी से यहां के कारोबार का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

वापस जाते समय इस्माइल हमें यहां की बड़ी मसजिद में ले गया तो भीतर से हमें यह इस्तंबूल की मसजिद की तरह लगी यानी पुराने गिरजे के ढंग की। हम ने इस बारे में गाइड से पूछा तो उस ने कुछ झिझक के साथ स्वीकार किया, "बारहवीं शताब्दी में क्रुसेडरों (ईसाई धर्म के नाम पर युद्ध करते हुए बलिदान होने वाले वीर) ने इसे बनाया था। इस का नाम 'सैंट जौन बैप्टिस्ट' चर्च था। बाद में इसे मसजिद बना लिया गया।" इस्माइल के झिझक से लगा कि धर्म के नाम पर उपासना गृहों को खंडित करना मुसलमान होने पर भी वह अन्याय समझता है।

इस्माइल से हम ने विदा ली। मैं तो उस के व्यवहार से बहुत ही प्रभावित और खुश था। मुझे वह गाइड नहीं बल्कि एक अच्छा साथी लगा। 'खुदा हाफिज' कह कर जब उस ने विदा ली तो मैं ने दोनों हाथ अपने सीने से लगा लिए। उस की मुसकराती शक्ल आज भी याद आती है।

बेरुत से हमें पाकिस्तान जाने की व्यवस्था करनी थी। हमारे दूतावास ने इस के प्रति उत्साह नहीं दिखाया। इसलिए मेरे दोनों साथी दूसरे दिन सुबह वहां से सीधे दिल्ली के लिए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चले गए । मैं थोड़ा सा खतरा ले कर भी पाकिस्तान देखना चाहता था इसलिए विसा की कोशिश के लिए रुक गया ।

काफी दिक्कत और हमारे दूतावास की कोशिश के वाद मुझे केवल दो दिनों के लिए करांची का विसा मिला । लाहौर के लिए फिर से करांची में पूछने के लिए कहा गया...

इस्तवूल से मेरे साथ एक पाकिस्तानी युवक वेरुत आया था । हवाई जहाज में परिचय हुआ । अपने कारोबार के सिलसिले में यूरोपीय देशों से होता हुआ वह पाकिस्तान लौट रहा था । उसने भी वेरुत में मेरे विसा के लिए काफी कोशिश की । वह खुद पाकिस्तानी दूतावास में हमारे दूतावास के सचिव के साथ गया । वह मन ही मन अपने देश के दूतावास के व्यवहार के प्रति खिन्न भी था किंतु झेंप मिटाने के लिए उसने कहा, "पाकिस्तानी नागरिकों को भी भारतीय विसा मिलने में दिक्कत होती है ।"

हमारे दूतावास के सचिव ने मुसकरा कर नम्रतापूर्वक इसका खंडन किया और बताया कि लगभग हर रोज पाकिस्तानी नागरिकों को भारतीय विसा यहां से दिए जाते हैं ।

युवक का नाम याद नहीं है । उसकी बात से पता चला कि उसके कारोबार का हेड आफिस करांची में है । आयातनिर्यात का व्यवसाय है । उसका पिता और बड़े भाई वहां काम देखते हैं । और वह विदेशों से व्यापार और संपर्क वढ़ाने के लिए घूमता रहता है ।

उसका सुझाव था कि मक्का और मदीना देख लिए जाएं । पास ही हैं । हवाई जहाज से सिर्फ दो घंटे लगते हैं । यदि विदेशी मुद्रा की कमी हो तो सारे खर्च की जिम्मेदारी वह खुद लेने को तैयार था ।

मैंने सुन रखा था कि केवल मुसलमान ही उन स्थानों में जा सकते हैं किंतु उसने बताया कि ऐसी कोई खास पाबंदी नहीं है, कभीकभी यूरोपीय और अमरीकी यात्री भी वहां जाया करते हैं ।

सैलानी मन में एक बार तो इच्छा जगी कि क्यों न इसलामी तीर्थों की भी यात्रा कर ली जाए, शायद ही जीवन में ऐसा मौका हाथ लगे, मगर उसी समय मन में एक शंका और हो आई कि वहां जाकर कहीं किसी संकट में न पड़ जाऊं । अकेला था, हमारी यात्रा के संचालक प्रभुदयालजी सुबह ही वायुयान से चले गये थे । यदि वह होते तो भी शायद ही स्वीकृति देते । मैंने अपने दूतावास को अपनी इच्छा बताई मगर उन्होंने भी इस हज यात्रा के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया । मन को समझाकर रह गया । शाम को 'पाक' एयरवेज के जहाज से करांची जाना पूर्वव्रत निश्चित कर लिया ।

हवाई जहाज तक पहुंचाने के लिए करांची का युवक अपनी कार के साथ आया । उसने अपना फोन नंबर दिया और एक परिचय-पत्र भी । करांची में अपने घर पर ठहरने के लिए अनुरोध भी किया । मैंने देखा कि पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी इंसानों का जितना तनाव अपने देशों में है, उतना दूसरे देशों में नहीं रहता । ऐसा लगता है कि अगर व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों से जरा हट कर एक-दूसरे से मिलें तो मन का द्वेष धुल जाता है । हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी इतिहास, भाषा, पहनावे और रंग की एकता का अनुभव तभी होता है जब कि इन दोनों देशों की भौगोलिक सीमाओं से बाहर हम परस्पर मिलते हैं ।

हवाई जहाज में जाते समय मुड़कर देखा, इस्माइल दौड़ता आ रहा है। हाथों में ताजे अंगूर का एक पैकेट उसने जल्दी से थमा दिया । मैं सिर्फ 'धन्यवाद' दे पाया, मगर बेशक उस लेवनानी गाइड ने एक हिंदुस्तानी दिल को हमेशा के लिए बाँध लिया । यद्यपि ये सब बातें देखने-सुनने में वहुत साधारण सी लगती हैं, पर इनका प्रभाव स्थायी रह जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो कभी भारत का ही एक अंग था

पाकिस्तान

स्वदेश में रहने पर अपने देश के आकर्षण का अनुमान नहीं होता। लेकिन विदेशों में ज्यादा समय रह जाने पर स्वदेश के प्रति कितना प्यार, कितना खिचाव होता है, इसका अंदाज तो व्यक्तिगत अनुभव से ही हो पाता है।

इस बार की विदेश यात्रा में घर की याद जरा जल्दी अनुभव होने लगी। हम सुदूरपूर्व जापान से अमरीका गए और फिर यूरोप से तुर्की होते हुए मध्यपूर्व लेबनान की राजधानी बेरुत पहुंचे। अब तक की यात्रा बड़ी मनोरंजक रही।

पृथ्वी की परिक्रमा में ५० दिन लगे, पर अब ५१वां दिन न तो मुझे अच्छा लगा और न मेरे साथियों को ही। हमारे कार्यक्रम में अभी पाकिस्तान की यात्रा बाकी थी, लेकिन दोनों साथी श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंह और श्री रामकुमार भुवाल का सीधे कलकत्ते की ओर उड़ चले। मैं अपने कार्यक्रम में रद्दोबदल नहीं करना चाहता था, इसलिए ३० अगस्त १९६४ को रात्रि के ११ बजे करांची के लिए रवाना हो गया।

बेरुत से करांची मुश्किल से ढाई घंटे की उड़ान है। खिड़की के बाहर झांककर देखा, दूर पर बेरुत की रोशनियां कांपतीकांपती तेजी से गायब हो गईं। मन नहीं लग रहा था। सोचा, 'पास बैठे सहयात्री से कुछ बातें करूं।' देखा तो उसकी नाक नींद से बातें कर रही थीं। होस्टेस ने मुझे परेशान सा देखकर स्नेह भरी मुसकान से पूछा, "चाय या काफी ?"

'कुछ नहीं, धन्यवाद !" मेरा उत्तर था और मैं आंखें बंद करके सोने की चेष्टा करने लगा।

जेट हवाई जहाज की गति तेज थी, पर मेरा दिमाग उससे भी तेजी से दौड़ रहा था—भारत और पाकिस्तान... दिल्ली और रावलपिंडी... हिंदू और मुसलमान... इंगलैंड और हिंदुस्तान... सत्याग्रह... खिलाफत... दमन और शोषण की आंधियां... गांधीजी... जिन्ना... दंगे... फसाद... चीखपुकार...!

"हम कराची पहुच रहे हैं, कमरबद लगा लें," निर्देश सुनाई पड़ा। ध्यान भग हुआ। कुछ ही क्षणों में विमान के चक्के धरती छू गए। घड़ी देखी रात के डेढ़ बजे थे।

कराची हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव तथा एक अन्य पदाधिकारी लेने के लिए आए थे। इनकी सहायता से करांची के कस्टम की जांच से निकल पाया और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सीधे होटल एयर फ्रांस में जाकर डेरा डाला। जिन देशों से मैं आ रहा था, वहां के होटलों की तुलना में इसका स्तर नीचा था। फिर भी,यह काफी व्यवस्थित था। पलंग पर लेटते ही गहरी नींद में खो गया।

सुबह देर से नींद खुली। अगस्त का महीना था और धूप बादलों से खेल रही थीं। ठंडे देशों की यात्रा करने के बाद यहां गरमी महसूस हो रही थी। तैयार होने के बाद नाश्ता किया और दस बजे भारतीय दूतावास पहुंच गया। विदेश मंत्रालय ने मेरे कार्यक्रम की सूचना पहले से ही उनके पास भेज दी थी तथा आवश्यक निर्देश भी दे दिया था। इस संबंध में निर्धारित कार्यक्रम तय था। होटल इंपीरियल में एक बजे लंच था जिसमें दूतावास वालों ने पाकिस्तान के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को पहले से ही आमंत्रित कर रखा था।

कुछ समय बाकी था। मैं चाहता था कि पाकिस्तान के प्रतिष्ठाता कायदे आजम का मकबरा देख लूं। अधिकांश विदेशी ऐसा ही करते हैं।एक प्रथा सी चल निकली है। हमारे यहां भी राजघाट पर गांधीजी की समाधि पर विदेशी पर्यटक और राजदूत वर्ग के लोग श्रद्धाज्ञापन करते हैं। कायदे आजम का मकबरा ज्यादा अच्छा नहीं लगा। कुछकुछ पीर के मजार जैसा वातावरण था। पास ही वजीरे आजम मरहूम 'लियाकतअली' खां का मकबरा भी था।

हमारे दूतावास ने मुझे पहले ही संकेत कर दिया था कि पाकिस्तान में बंदिशें काफी हैं, विशेष रूप से भारतीयों के लिए, इसलिए जो अच्छा लगे उसकी ही चर्चा की जाए और जो न रुचे उसका जिक्र न करें।

शहर के जिस हिस्से से गुजर रहा था, उसमें कोई नयापन नहीं था। ऐसा लगता था कि कलकत्ता के सर्कस ऐवेन्यू या वेग बगान से गुजर रहा हूं। विदेशों में भारतीय शक्ल देखकर लोग नजर उठाते हैं, पर यहां हमशक्ल होने की वजह से ऐसा कुछ नहीं था।

लंच के लिए होटल पहुंचा। बहुत दिनों बाद भारतीय भोजन का स्वाद मिला।यों तो विदेशों में कभीकभी दूतावासों में यह मौका मिल जाता था, फिर भी ठेठ हिंदुस्तानी खाना नहीं बन पाता था। भोजन के समय आमंत्रित पाकिस्तानी मेहमानों से केवल औपचारिक बातें ही होती रहीं, क्योंकि हमारे दूतावास ने पहले ही बता दिया था कि राजनीतिक चर्चा यहां की सरकार पसंद नहीं करती। थोड़ी देर में ही वातावरण में दम कुछ घुटाघुटा सा लगने लगा।

भोजन के बाद पाकिस्तान के योजना आयोग के अध्यक्ष से मिलने गया। दरअसल हमारी यात्रा का उद्देश्य था—विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक अवस्था, व्यवस्था और उन्नति का अध्ययन। यहां का वातावरण कुछ भिन्न था। योजना आयोग के अध्यक्ष अली साहब ने पाकिस्तान की अर्थ संबंधी योजना, विकास तथा सफलताओं की जानकारी दी। उन की सज्जनता और उत्साह ने अब तक दिल में जमे हुए भारीपन को मिटा दिया। हमारी बातचीत के समय वहां कई विभागों के अफसर भी थे। सभी दिलचस्पी ले रहे थे। बातचीत के सिलसिले में पता चला कि सभी लोग अविभक्त भारत में विभिन्न सरकारी पदों पर रह चुके हैं और अब भी उन के नातेरिश्तेदार भारत में हैं।

पाकिस्तान में आर्थिक विकास अभी अधिक नहीं हुआ है। इस में संदेह नहीं कि पाकिस्तान के औद्योगीकरण के लिए अमरीका और विश्व बैंक ज्यादा उदार रहे हैं। सीटो के सदस्य होने के कारण अरबों रुपयों के अच्छी किस्म के हथियार (टैंक, विमान आदि) पाकिस्तानी शासकों को कम्युनिस्टों से लड़ने के नाम पर अमरीका से मुफ्त मिल गए, जब कि हमें खरीदने पड़े।

विभाजन के समय पाकिस्तान के पास एक भी जूट मिल नहीं थी, लेकिन विदेशी मुद्रा के सहारे पाकिस्तान ने जूट उद्योग में अच्छी उन्नति की है। रुई भी पश्चिमी पाकिस्तान में अच्छे क़िस्म की होती है। इस बात को मद्देनजर रखते हुए पाकिस्तान में कपड़े की मिलें भी स्थापित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर ली गई हैं। नए बड़ेबड़े उद्योगों में कागज की मिलें और सीमेंट के कारखाने हैं।

पाकिस्तान ने, विशेष रूप से पश्चिमी भाग में, औद्योगीकरण तथा कृषि के विकास पर ध्यान रखा है और पूर्वी पाकिस्तान हर प्रकार से उपेक्षित रहा है। मुझे ऐसा लगा कि खाद्यान्न के मामले में हमारी तरह पाकिस्तान को भी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ रहा है। विदेशी मुद्रा का अभाव हमारी तरह पाकिस्तान में भी है। लेकिन अब तक भी वहां दैनिक आवश्यक चीजों के कारखानों की कमी है, इसीलिए विदेशों से आयात के प्रति वहां की सरकार ने कड़ा प्रतिबंध नहीं लगा रखा है। जो भी हो, हम ने यह अनुभव किया कि पाकिस्तान को अपनी योजनाओं में खास सफलता नहीं मिली है और न वहां खुशहाली ही है।

वार्तालाप के कार्यक्रम के बाद उन लोगों ने हमें शहर की कुछ नई इमारतें दिखाईं। इन मे वहां के रिजर्व बैंक की इमारत बहुत बड़ी और शानदार थी। वास्तव में सरकार ने इसे दर्शनीय स्थान बनाने के दृष्टिकोण से रखा है। विदेशों से आए प्रमुख पर्यटकों को यह अवश्य दिखाया जाता है। इस भवन के पुस्तकालय में मैं ने देखा कि भारतवर्ष के बहुत से समाचार पत्र और पत्रिकाएं उपलब्ध हैं। बैंक के कर्मचारियों में से अधिकांश किसी न किसी समय भारत में काम कर चुके थे। एक बुजुर्ग तो मेरे जिले सीकर के ही मिले। देश के विभाजन के बाद वह कराची आ कर बस गए थे। जरा एकांत सा पा कर धीरे से उन्होंने मुझ से अनुरोध किया, "जनाब को थोड़ी सी तकलीफ दे सकता हूं ?"

"शौक से," मेरा उत्तर था।

चट २० रुपए मेरे हाथों में दबा कर कहने लगे, "फलां गांव में मेरी लड़की और नाती हैं।" उन की आंखें डबडबा रही थीं। कहने लगा, "जमाना हो गया देखे हुए, नाती की तो सिर्फ तसवीर ही देखी है। आप को जब भी उस तरफ जाने का मौका लगे, एक बेकस बाप और नाना की तरफ से इन रुपयों के फल और मिठाइयां उन्हें देने की गुजारिश है।"

और उन का गला भर आया। मैं ने रुपए लिए नहीं, ले भी कैसे सकता था। वादा किया कि राजस्थान पहुंच कर उन की सौगात तो पहुंचा ही दूंगा और मौका लगा तो उन की पुत्री और नाती से मिल भी लूंगा।

एक कौतूहल मन में बहुत ही जोर मार रहा था कि देखा जाए यहां पर हिंदुओं की क्या दशा है, क्योंकि राह चलते या सरकारी दफ्तरों में कहीं भी हिंदू दिखाई नहीं पड़े थे। पता चला कि शहर में कुछ हिंदू अभी भी हैं जिन का एक अलग महल्ला है। हमारे दूतावास ने एक ड्राइवर को कार दे कर मेरे साथ कर दिया। दूतावास के अधिकारी खुद उस महल्ले में जाना नहीं चाहते थे। पाकिस्तान सरकार को यह पसंद नहीं था। खैर, मैं हिंदुओं के महल्ले में गया। वहां के वयोवृद्ध सिंधी श्री हीराचंद से मिला। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि उन के सारे के सारे संबंधी घरबार और कारोबार छोड़ कर भारत चले गए। मैं ने उन से पूछा, "इतना खतरा और तकलीफ सह कर आप यहां क्यों रह रहे हैं ?"

उत्तर मिला कि उन की वृद्धा माताजी कुल और परंपरा से स्थापित मंदिर के ठाकुरजी को छोड़ना नहीं चाहतीं, इसलिए उन्हें भी बरबस रुकना पड़ रहा है।

वहां के कुछ और लोगों से बातचीत करने से पता चला कि हिंदुओं पर बहुत ही सख्त निगरानी रहती है। सरकारी नौकरियों तथा सुविधाओं से वे वंचित हैं और तृतीय श्रेणी की नागरिकता की सुविधा भी उन्हें हासिल नहीं। इस महल्ले के लोग शाम होने के बाद आम तौर पर अपने दायरे में ही रहते हैं, कहीं बाहर निकलने का साहस नहीं करते।

मन खिन्न हो गया था। सोचा, 'कराची के बाजारों में जरा घूम लूं।' दुकानों में कलकत्ता, दिल्ली जैसी रौनक नहीं लगी। विदेशी वस्तुएं काफी दिखाई पड़ीं। कराची अभी हाल तक पाकिस्तान की राजधानी थी, लेकिन अब प्रेसीडेंट अयूब खां ने इस्लामाबाद (रावलपिंडी) को यह सेहरा पहनाया है। फिर भी कराची एक अच्छा बंदरगाह और व्यापार की मंडी होने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के कारण पाकिस्तान का बड़ा शहर है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि इस का महत्त्व हमारे कलकत्ता और बंबई शहरों जैसा है।

हमारे राजदूत इस समय कराची में नहीं थे इसलिए रात में दूतावास के प्रथम सचिव के निवास पर भोज का आयोजन था। कुछ हिंदू नागरिक भी आमंत्रित थे। अपने ही लोगों के बीच बातचीत का दायरा मुक्त था। चर्चा पाकिस्तान की राजनीति तथा शासनतंत्र की चल निकली। उन्होंने बताया कि तानाशाही तथा फौजी हुकूमत, जोर और जबरदस्ती पर ही कायम रहती है। पाकिस्तान सरकार ने इस दशा में शिथिलता नहीं आने दी है। कश्मीर के प्रश्न को चालू रखना पाकिस्तानी शासकों के लिए बहुत जरूरी है क्योंकि इस से वहां की जनता की मुसलिम सांप्रदायिक भावना को उभार कर नागरिक अधिकार की मांग से दूर रखने में जहां आसानी रहती है, वहीं विदेशों से भारत के विरोध में सहानुभूति भी सहज ही प्राप्त होती है।

'अब मेरी समझ में आया कि पाकिस्तान सरकार हमें पर्यटन के लिए वीसा देने में क्यों हिचकती है ! बेरुत में भारतीय दूतावास की कड़ी कोशिश के बावजूद केवल कराची का वीसा मिल पाया था। लाहौर के लिए जब कराची में आज्ञा मांगी तो पाकिस्तानी सरकार ने साफ इनकार कर दिया। मगर मेरा मन नहीं मान रहा था। लाहौर का वैभव विभाजन के पूर्व देख चुका था और अब इतने लंबे समय के बाद वर्तमान लाहौर को देखने की मन में तीव्र इच्छा थी। एड़ीचोटी का जोर लगाने पर हमारे दूतावास को मेरे लिए एक दिन का वीसा मिल सका। मैं उसी दिन चल पड़ा।

हवाई जहाज में बैठा उड़ा जा रहा था। नीचे हरियाली, नदी और नाले खिड़की से दिखाई दे रहे थे। बिलकुल हमारे देश का सा दृश्य था। प्रकृति मानों हिंदुस्तान और पाकिस्तान बनाने को तैयार नहीं। हरेभरे खेत, बागबगीचे, सभी तो इन्हीं नदियों की देन है जो भारत से बहती हुई आती हैं। पाकिस्तान भले ही अरबी और ईरानी संस्कृति को ज्यादा गौरवपूर्ण मानता हो पर उस की खुद की बुनियाद तो सनातन भारतीय संस्कृति पर ही है। अफगानिस्तान इसलामी राष्ट्र है पर वहां भी आज अतीत वैदिक आर्य सभ्यता और संस्कृति के लिए आग्रह उठ रहा है। फिर क्या पाकिस्तान अपनी संस्कृति के मूल स्रोत को काट सकेगा ? शायद नहीं।

सफर लंबा नहीं था। लगभग सवा घंटा में ही लाहौर पहुंच गया। एयरपोर्ट से पी आई. ए. के शहरी दफ्तर में गया। यहां के आई. ए. सी. के इंचार्ज श्री जोसेफ के पास उसी समय कराची से हमारे दूतावास का फोन मेरी व्यवस्था के संबंध में पहुंचा था। उन्होंने हर प्रकार से मेरी मदद की और मेरे लिए एक होटल में ठहरने का प्रबंध कर दिया।

लाहौर पहले कई बार जा चुका था। इस की निराली ही शानशौकत रही है। यह भारत का पेरिस कहलाता था। नित नएनए फैशनों की शुरुआत यहीं से होती थी। बेहतरीन बागबगीचे इस की रौनक में चार चांद लगाते थे। व्यापार, उद्योग तथा शिक्षा, तीनों ही प्रचुर मात्रा में थे। यहां के अधिकांश शिक्षाशास्त्री, वकील, बैरिस्टर, व्यापारी और छोटेबड़े उद्योगपति हिंदू ही थे।

सिर्फ एक दिन का वीसा मिला था जो किसी भी बड़े शहर के लिए बहुत ही कम था। फिर लाहौर के लिए तो बहुत ही कम, क्योंकि इस शहर के साथ हमारे इतिहास की अनेक परतें लिपटी हुई हैं। सोचा, 'कार के बजाए बस से ही शहर घूम लूं ताकि लोगों की बातचीत सुनने का मौका मिल सके।'

बस लाहौर की सड़कों से गुजर रही थी। यात्रियों का चढ़ना, उतरना, बातचीत का लहजा सभी अपने देश का सा था। बसों में भीड़ तो हमारी दिल्ली और कलकत्ता जैसी ही थी लेकिन उन की हालत ज्यादा गईगुजरी थी। इधरउधर देख ही रहा था कि अचानक देखा—दो माहबान मेरी ओर बड़े गौर से देख रहे हैं। पता नहीं वे कब बस में आ कर बैठे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नजर मिलते ही करीब आए और सवालों की झड़ी लगा दी, "कब आए, कहां जाएंगे ? शहर में किसकिस से मिले ?"

कुछ झल्लाहट सी हुई । मैं ने उन्हें बताया कि विभिन्न देशों की आर्थिक समस्या का अध्ययन करता हुआ करांची से यहां आया हूं और कल ही दिल्ली चला जाऊंगा ।

एक साथ दोनों की आवाज गूंजी, "पासपोर्ट......वीसा ?"

कहना न होगा, दोनों गुप्तचर थे ।

पासपोर्ट और वीसा साथ ले कर नहीं चला था । मैं ने समझाने की कोशिश की कि 'पेलिटी होटल' में ठहरा हूं, वहीं पासपोर्ट और वीसा दिखा दूंगा । लौट कर मिलने का समय भी बता दिया । मगर सब बेकार । दोनों साथ ही रहे ।

बस दौड़ती जा रही थी। मजा किरकिरा हो गया था । उदास मन से खिड़की के बाहर भागते हुए मकानों और दुकानों को देख रहा था । गवर्नमैंट कालिज के टावर की वही पुरानी घड़ी, जामा मसजिद का वही आलीशान गुंबज, गोल बाग, गुरु अर्जुन की समाधि और लाहौर का किला......सभी तो वैसे ही हैं । आखिर बदला क्या ?

बस कचहरी रोड पर एक तांगे वाले के पीछे जरा धीमी चाल में बढ़ रही थी। 'दयानंद एंग्लो कालिज' का फाटक आया । पहले देवनागरी लिपि में कालिज का नाम भवन की मेहराव पर था पर अब 'इसलामिया कालिज' अंगरेजी और उर्दू में लिखा हुआ है । इसी प्रकार कई मकानों और मंदिरों की हालत देखने में आई । आर्य समाज, सनातनधर्म, सिख समाज की बड़ीबड़ी शिक्षण संस्थाएं और सर गंगाराम ट्रस्ट जैसी दातव्य संस्थाओं पर लाहौर को फख्र था पर पाकिस्तान ने इन का नामोनिशान मिटा दिया है । हुकूमते पाकिस्तान तवारीख भी मिटाने की कोशिश कर रही है । क्या वह मिटा सकेगी ? कहते हैं कि श्री राम के पुत्र लव ने ही लवकोट यानी लाहौर को बसाया था । कहते यह भी हैं कि विजयोन्माद में भरे सिकंदर को इसी के पास रावी तट पर, एक आर्य संन्यासी द्वारा कड़ी, पर स्पष्ट भविष्यवाणी सुन कर वापस लौट जाना पड़ा था । महाराजा रणजीत सिंह की स्मृति और वीर भगतसिंह का बलिदान क्या लाहौर के जर्रेजर्रे से कभी हट सकेगा ? शायद नहीं ।

शाम हो चली थी । मैं अपने होटल लौटा । दोनों सी० आई० डी० छाया की तरह साथ थे । मैं ने उन्हें अपना पासपोर्ट और वीसा दिखलाया और कहने से न चूका कि आप यदि कभी भारत में तशरीफ लाएंगे तो आप के साथ ऐसा बर्ताव वहां कभी भी न होगा । हमारे यहां तो अभी भी करोड़ों मुसलमानों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो हिंदुओं को हैं ।

उन में से एक जरा झेंप गया और कहने लगा, "जनाब, ड्यूटी का तकाजा है ! हम तो हुक्म के बंदे हैं । आप को हमारी वजह से परेशानी हुई पर क्या किया जाए !"

कुछ देर आराम करने के बाद सोचा कि अभी रात का वक्त हाथ में है । सन १६४० में लाहौर की, शाम के बाद की रौनक देखी थी । देखूं अब कैसा लगता है ? खाना खा कर अनारकली बाजार चला गया । वही दुकानें, वही सड़क, सब कुछ वही, पर न तो वहां पहले की सी चहलपहल ही थी और न महाशय राजपाल या आत्माराम एंड संस के साइनबोर्ड ही । ऐसा लगा जैसे अनारकली कह रही हो

"न किसी की आंख का नूर हूं,
न किसी के दिल का करार हूं ।
जो किसी के काम आ सके,
मैं तो एक मुश्तेगुबार हूं ।"

बहुत खोजने पर भी न तो कोई हिंदू ही नजर आया, न कोई सिख । सुना है कि शहर में एक गुरुद्वारा अभी भी बचा हुआ है जहां एक पुजारी अवश्य है, पर उसे बाहर के लोगों से मिलनेजुलने की मनाही है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिल्ली में पाकिस्तानी दूतावास पाकिस्तानी हिंदू और सिखों के संबंध में जो प्रचार सामग्री प्रसारित करता है, वह बिलकुल झूठी और बेबुनियाद है।

विचित्र सी मानसिक स्थिति में रात दस बजे होटल लौटा। बेचैनी और थकावट के मारे बिस्तर पर पड़ गया। उस रात नींद बड़ी ही मुश्किल से सिर्फ दो घंटे के लिए आई। नींद में भी बारबार लगता था कि पुलिस के सिपाहीआ रहे हैं। दूसरे दिन प्रातः इंडियन एयर लांइस के मिस्टर जोजेफ आए। उन से पिछले दिन के अपने अनुभव बताए। उन्होंने कहा, "इसी खयाल से मैं कल दिन में दो बार आप से मिलने आया था, पर मुलाकात न हो सकी। आप का यहां घूमना व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से मुनासिब नहीं था।" हालांकि मिस्टर जोजेफ एंग्लो इंडियन थे, फिर भी उन्हें कई प्रकार की दिक्कतें उठानी पड़ रह थीं। हवाई जहाज पर बैठने के पूर्व एयरपोर्ट पर विदा देते समय उन्होंने बड़ी आजिजी से कहा, "यदि आप भारत में कहीं भी मेरी बदली करवा दें तो मैं आप का बड़ा उपकार मानूंगा।"

हवाई जहाज में बैठा सोचने लगा, 'कैसा रहस्यमय बन गया है पाकिस्तान! कोई भी दिल की बात खुल कर नहीं कह सकता।' लाहौर के मुसलमान होटल के कर्मचारी ने चलते वक्त चुपके से कहा था कि उस की बहन दिल्ली में रहती है, उसे टेलीफोन पर कह दूं कि उस के भाई से मिल आया हूं, वह राजीखुशी है।

प्लेन मे बैठा विचारों को समेट रहा था। कई मुसलमानीमुल्कों से हो आया हूं...... तुर्की, मिस्र, लेबनान...... पर कहीं भी भारतवासियों के प्रति इस ढंग का द्वेष और संदेह का वातावरण नहीं मिला। फिर इस जगह ही क्यों ? यह भी भारत का अंग था, क्या इसलाम के नाम पर भोलेभाले लोगों को गुमराह कर और पाकिस्तान बना कर भी उसके शासकों की हवस पूरी न हो सकी ?"

दूर पर कुतुबमीनार दिखाई पड़ने लगा। मन ने कहा, 'जमाना करवटें बदलता रहता है। पाकिस्तान भी जमाने की एक करवट ही तो है। क्या पता, शायद फिर बदल जाए!"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमारा उपेक्षित पड़ोसी ?
नेपाल

कई बार मुझे नेपाल जाने का अवसर मिला। ये यात्राएं अधिकतर व्यापार के उद्देश्य से थीं। भ्रमण और पर्यटन का लक्ष्य कम था। फिर भी यात्रिक रुचि के कारण प्रत्येक बार नगराज हिमालय के हिमकिरीट को देख कर मन में नवीन उल्लास की प्राप्ति होती रही है।

नेपाल भिन्न देश है। किंतु उस का हमारे देश के साथ काफी सामंजस्य है! संस्कृति, सभ्यता, भाषा, रहनसहन, पोशाक, मकानदुकान सभी हमारी ही तरह। विराटनगर, जनकपुर, वीरगंज आदि क्षेत्रों में तो आभास तक नहीं होता कि हम भारत के बाहर विदेश में हैं क्योंकि भौगोलिक समरूपता इन स्थानों की हमारी तराई जैसी ही है।

नेपाल एक छोटा सा देश है। हिमालय के ऊंचे शिखरों के बीच बसा हुआ वह ऐसा लगता है, मानो नगराज ने वड़े प्यार से इसे अपनी गोद में बैठा रखा हो। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वह अब तक बहुत ही सुरक्षित रहा है। उत्तर में दुर्गम हिमालय के दुर्जेय शिखर, पूरव, पश्चिम और दक्षिण में भारत—उस की संस्कृति का स्रोत, उस का अनन्य उदार मित्र।

यही कारण है कि नेपाल की स्वतंत्रता कायम रही है। भारतीय संस्कृति मुगलों, पठानों और तातारों के हमलों और राजनीतिक करवटों के कारण विपन्न होती रही, किंतु नेपाल में उस का अत्यंत स्वस्थ निखार हुआ। नेपाल निस्संदेह इस दिशा में भारत से कहीं आगे रहा है।

नेपाल की जनसंख्या लगभग एक करोड़ है। यह हमारे विहार प्रदेश के लगभग पांचवें भाग के बराबर है। लंबाई है ५२५ मील और चौड़ाई सिर्फ १२५ मील। जीवन संघर्षमय है। और आय का मुख्य साधन है—कृपि। चावल, पाट, मडुआ, गन्ना आदि की खेती होती है। भेड़बकरियां पाली जाती हैं। दुधारू गौएं भारत जैसी नहीं होती। जंगलों से जड़ीबूटियां इकट्ठी की जाती हैं और लकड़ियां काटी जाती है। अधिकांश उद्योगधंधे अब भी गृहशिल्प की अवस्था में ही हैं। नए शासन में आधुनिक, उन्नत एवं वृहद स्तर पर उद्योगधंधे को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। खनिज पदार्थों की खोज की जा रही है। तांबा मिला है और सीमेंट के उद्योग में भी सफलता मिलने की संभावना है।

इस की भौगोलिक स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि भारत, अमरीका, रूस, फ्रांस, ब्रिटेन, चीन आदि सभी करोड़ों रुपयों की वार्षिक सहायता देते रहते हैं। इन में सब से अधिक सहयोग भारत का है और इस के बाद अमरीका का ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुझे ऐसा लगा कि कुछ वर्षों पहले तक भारत की नेपाल के प्रति उपेक्षा और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारतीय दुर्बलता ने भारत के प्रति नेपाल के विश्वास को हिला दिया है। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय राजनीतिज्ञों के प्रति नेपाल में वह आदर नहीं रहा जो युगों से रहता आया है। उस के पड़ोसी देश तिब्बत को चीन द्वारा उदरस्थ किए जाने पर भी भारत चुप्पी साधे रहा, इसलिए नेपाल को सुरक्षा और स्वरक्षा के लिए बाध्य हो कर चीन से हाथ मिलाना पड़ा। नेपाल की यात्रा में इस विषय पर मेरे कई एक नेपाली मित्रों ने यह राय व्यक्त की। इसी तरह भारत की विदेश नीति की असफलता के कारण नेपाल को पाकिस्तान से भी संपर्क बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ा।

मैं ने पूछा, "क्या चीन की साम्राज्यवादी भूख से नेपाल अपने को बचा सकेगा ?

उन्होंने जवाब दिया, "इसी लिए तो हम अमरीका और ब्रिटेन से मित्रता रखते हैं।"

मेरा प्रश्न था, "नेपाल सदैव एकमात्र स्वतंत्र हिंदू राज्य रहा है। पाकिस्तान कट्टर मुसलमानी देश है। इसलाम ने सदियों तक भारत में हिंदुओं का उन्मूलन किया। इस समय भी पाकिस्तान में उन्हें हर प्रकार से सताया जा रहा है तो क्या वह नेपाल को अछूता छोड़ देगा ?"

उन्होंने गंभीरता से कहा, "नेपाल का राज्यधर्म है—हिंदुत्व। सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता का अशिक्षित जनता पर कितना अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, इसे नेपाली सदैव जानते रहे हैं। इसीलिए विदेशी ईसाई या इसलामी संस्कृति को हमारे देश में प्रश्रय नहीं दिया जाता है।"

मैं ने हंस कर कहा, "बौद्ध होने के नाते चीन को तो सुविधा है।"

"सुविधा थी, पर अब नहीं है। क्योंकि इसी नारे पर तिब्बत को चीन निगल गया। हम सजग हो गए। बुद्धवाद और चीनवाद में अंतर है।" हंसते हुए उन्होंने कहा, "देखिए, रूसवाद और चीनवाद के धक्के से साम्यवाद कितने विवाद में पड़ गया है !"

आम तौर से नेपाल के लोगों में यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि चीन ने अपने स्वभाव के अनुसार नेपाल को सहायता के नाम पर धोखा दिया। कागज की मिल और खनिज पदार्थों की खोजों के बहाने सारे नेपाल के पहाड़ और जंगलों की जानकारी हासिल कर ली। जब कि खदान या कारखाने बनाने का काम कतई शुरू नहीं किया गया। हां, नेपालतिब्बत का मार्ग तेजी के साथ अवश्य पूरा कर दिया गया। भारत ने नई योजनाएं बनाने में सहयोग दिया है, उन्हें क्रियान्वित भी कर रहा है और उस के द्वारा बनाए गए त्रिभुवन राज पथ पर आज भारत से सीधे काठमांडू तक पहुंचा जा सकता है। अमरीका ने भी अस्तपाल, स्कूल, कालिज तथा उद्योगों में आर्थिक तथा तकनीकी सहायता पहुंचाई है।

नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री मातृकाप्रसाद कोईराला मेरे मित्र हैं। कलकत्ते के अपने प्रवास में वे मेरे साथ ठहरते रहे हैं। अपने प्रधान मंत्रित्वकाल में भी एक बार जब वे कलकत्ते आए तो भारत सरकार के अनुरोध के बावजूद मेरे साथ ही ठहरे।

उन का मुझ से सदैव आग्रह रहता था कि मैं नेपाल जा कर कुछ समय उन के साथ रहूं। संयोगवश नेपाल की मेरी यात्राएं ऐसे समय हुईं जब वह मंत्री पद पर नहीं रहे। वैसे नेपाल में जब भी उन से मिला, उन में वही स्नेह, वही सादगी, देश के प्रति उतना ही प्रेम पाया। कोईराला परिवार का अवदान आधुनिक नेपाल के इतिहास में बेजोड़ है। सामंतशाही का अंत करने के लिए जनता को जागृत कर गणतंत्र की स्थापना का अधिकांश श्रेय कोईराला बंधुओं को है। राजनीति की लहरें विचित्र होती हैं। आज उन्हीं कोईरालाओं में श्री बी० पी० और उन के अनुज बंदी हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहली बार १९५४ में काठमांडू गया था। उस समय महाराज त्रिभुवन नेपाल के वास्तविक शासक प्रतिष्ठित हो चुके थे। यह सहज संभव नहीं था। इस की भी एक अनोखी कहानी है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में नेपाल के राजवंश में नाना प्रकार के षड्यंत्र हो रहे थे। १८४६ ई० तक तो स्थिति कुछ इस तरह बनी कि राजघराने का प्रत्येक सदस्य एकदूसरे का शत्रु बन गया। सिंहासन और इसके लिए हत्या करना एक साधारण सी बात थी। हत्याएं नित्य प्रति होने लगीं। महारानी के प्रेमी गगनसिंह की हत्या के बाद युवक जंगबहादुर को प्रधान मंत्री एवं सेनापति दोनों पद दिए गए। इसी बीच महाराजा जब कोट (राजमहल) वापस आए तो उन्होंने अपने को सर्वथा बंदी पाया।

इसके बाद प्रधान मंत्रियों के हाथों में सत्ता रही। इस दीर्घ काल में जंगबहादुर के वंशज ही प्रधान मंत्री बनते आए। पेशवाओं की तरह यह पद उन का पैतृक अधिकार बन गया।

नेपाल नरेश नाम मात्र के 'पांच सरकार' रह गए। प्रधान मंत्री भी महाराज कहलाते थे। संविधान था नहीं। शासन के लिए निश्चत कानूनकायदे भी नहीं थे। इन जंगबहादुरों का हुक्म ही कानून था। प्रजा, भूख, गरीबी, ठंड और रोग की चपेट में पिसती जा रही थी। धन और वैभव राणाओं के घरों में बढ़ता जा रहा था। भोगविलास तो उन दैवी अधिकार थे। सुंदर लड़की देखी कि प्रधान मंत्री के भाईभतीजों के महलों में 'केटी' बना कर रख ली गई। इन राजाओं में कुछ के पास तो अवकाश ग्रहण के समय पचास-साठ करोड रुपए तक इकट्ठे हो जाते थे। अनेक के रुपए तो आज भी विदेशी बैंकों में है।

सन १९४० के बाद भारतीय स्वतंत्रताआंदोलन की गति में तीव्रता आने लगी। इस का प्रभाव नेपाल पर भी पड़ा। प्रमुख कारण थे, उत्तर भारत के विभिन्न कालिजों में पढ़ने वाले अनेक नेपाली नवयुवक। दोनों ही देशों की आर्य संस्कृति ने उन्हें एक सूत्र में पिरो रखा था। भारत में अंगरेजों के विरोध में उस आंदोलन में वे भी हमारे साथ शामिल थे। यहां तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकर्ता की हैसियत से अंगरेजी सरकार द्वारा नाना प्रकार की यातना भी सहते थे। इन्हीं लोगों ने आगे चल कर नेपाली कांग्रेस की स्थापना की।

शासक सजग थे। नेपाल में उन्होंने इसे पनपने नहीं दिया। वे कठोरता के साथ नेपाली कांग्रेस के गणतांत्रिक आंदोलन को कुचलते गए। नेताओं को बंदीगृह में ठेल दिया। अंधविश्वास, कुसंस्कार और गरीबी के भंवर में पड़ी वहां की जनता जुबान तक हिलाने की हिम्मत न कर सकी। फिर भी नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ता राणाशाही की तानाशाही को खत्म करने के लिए भारत में पटना, फारबिसगंज आदि शहरों में रह कर संगठन करते रहे। आंदोलन रुका नहीं।

सन १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ। नेपाली कार्यकर्ताओं की हिम्मत बढ़ी क्योंकि अब राणाओं के मित्र अंगरेजों का उन्हें भय नहीं रहा। उन्हें उन भारतीय नेताओं के सहयोग का भी भरोसा था जिन के साथ सन १९४२ के आंदोलन में उन्होंने कंधे से कंधा मिला कर अंगरेजों से टक्कर ली थी।

सन १९४९-५० का समय नेपाल के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। एरिका नाम की एक जरमन महिला डाक्टर महारानी की चिकित्सा के लिए भारत से बुलाई गई। इस प्रकार नेपाल नरेश के महल में सर्वप्रथम किसी विदेशी महिला का प्रवेश हुआ।

महल में रहते हुए इस का राजपरिवार के सदस्यों से घनिष्ठ परिचय होता गया। कुछ दिनों बाद तो वह एक अभिन्न अंग ही बन गई। उस ने देखा कि यहां सभी सुखसाधन उपलब्ध हैं, वैभव और विलास का अभाव नहीं। फिर भी नेपाल नरेश उदास रहते हैं। उसे समझते देर न लगी कि वह वस्तुतः मुक्त नहीं है। यहां तक कि उन का या उन के परिवार के किसी सदस्य का महल से बाहर निकलना, पत्राचार आदि सभी कुछ राणाओं की स्वीकृति पर निर्भर है। सोने का पिंजरा है, पर पंछी कैद है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी बीच महाराज के विचारों में राणाओं को गणतांत्रिक विचारों का रंग दिखाई पड़ा। अधिकार और सत्ता तो उन के हाथों में थी ही, नरेश पर मुकदमा चला कर उन्होंने उन्हें राज्यच्युत करना चाहा। जनता कुसंस्कार और अंधविश्वास में थी जरूर, किंतु नरेश को वह पांच सरकार ही समझती थी, जब कि राणा थे तीन सरकार।

मौके से लाभ उठा कर नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने पांच सरकार (नेपाल नरेश) के नाम पर जनतंत्र की स्थापना कर राणाशाही से नेपाल को मुक्त करने की आवाज बुलंद की।

एरिका के माध्यम से महाराज ने तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री सिंह द्वारा भारतीय प्रधान मंत्री श्री नेहरू से सहयोग मांगा। श्री सिंह नेहरूजी से मिलने दिल्ली आए। नेपाल नरेश के लिए नेहरूजी का व्यक्तिगत संदेश ले कर वह काठमांडू लौट गए। सारी बातें गुप्त रखी गईं। बस उपयुक्त अवसर की खोज थी।

६ नवंबर १९५० की सुबह को महाराजा त्रिभुवन अपने ज्येष्ठ पुत्र (वर्तमान नरेश) महेंद्र के साथ शिकार खेलने के बहाने महल से बाहर निकले। राणा के विश्वस्त सिपाही उन की निगरानी के लिए साथ थे। भारतीय दूतावास के सामने से वह गुजर ही रहे थे कि दूतावास का फाटक खुला। बिजली की तेजी से राजकुमार महेंद्र ने गाड़ी को भारतीय दूतावास में दाखिल कर लिया। योजना सफल हुई। सिपाहियों को राणाओं के पास लौटा दिया गया।

उस समय प्रधान मंत्री राणा मोहन शमशेर थे। उन्होंने प्रतिवाद किया, गर्जना की और धमकी भी दी कि दूतावास पर हमला किया जाएगा। भारतीय पक्ष ने स्पष्ट किया कि अंतर्राष्ट्रीय विधिनियम के अनुसार इसे भारत पर आक्रमण माना जाएगा। नेपाली जनता के रुख, भारतीय शक्ति और अंतर्राष्ट्रीय मान्यताओं के सामने राणा को झुकना पड़ा।

महाराज त्रिभुवन वीरविक्रमशाह देव सर्व शक्तिमान नरेश बन कर राजमहल में वापस आए। सारे नेपाल में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। महाराजा नें नए सिरे से मंत्रिमंडल का गठन किया। उन का उद्देश्य था कि ब्रिटेन की तरह गणतांत्रिक शासन पद्धति नेपाल के लिए अपनाई जाए। श्री कोईराला प्रधान मंत्री बने।

सन १९५५ में महाराज का हृदय की गति रुक जाने के कारण स्विटजरलैंड में देहांत हुआ। युवराज महेंद्र ने शासन की बागडोर संभाली। उन्होंने नेपाली कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता श्री कोईराला को प्रधान मंत्री मनोनीत किया।

कोईराला बंधुओं के आपसी मतभेद और नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में पद के लिए होड़ ने बड़ी समस्या खड़ी कर दी। इस का कुप्रभाव जनता पर भी पड़ा। सभी एक दूसरे के प्रति दलबंदी करने लगे। वातावरण विषाक्त हो गया। जनता के विचारों के दिशा भी बंदलने लगी। श्री कोईराला और उन के भाई बंदी बनाए गए। प्रजातंत्र एक प्रकार से फिर समाप्त हो गया।

महाराज महेंद्र के निर्देशन में नेपाल का नया संविधान बना। नेपाली संसद की स्थापना राष्ट्रीय पंचायत के नाम से हुई। पर सार्वभौम अधिकार उन के हाथ में ही रहे।

पिछले कुछ वर्षों से नेपाल ने विश्व की राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया है। आज चीन और पाकिस्तान दोनों ही उस की मित्रता का दम भरते हैं, हितैषी होने का दावा रखते हैं। पर यह किसी से छिपा नहीं है कि नेपाल को राणाओं की दासता से किस ने मुक्ति दिलाई?

१९४९ में भारत-नेपाल के पारस्परिक संबंधों में पाकिस्तान और चीन के झूठे प्रचारों के कारण कुछ कटुता आने लगी थी। किंतु श्रीमन्नारायणजी के राजदूत बनने के बाद भ्रांतियां दूर हुईं और अब आपसी संबंध मैत्रीपूर्ण और दृढ़तर हो रहे हैं। पिछले वर्ष प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी का नेपाली जनता ने काठमांडू में अभूतपूर्व स्वागत किया था। भारत ने भी अपनी नाना प्रकार की जटिल आर्थिक समस्याओं के बावजूद नेपाल को बड़े पैमाने पर आर्थिक और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तकनीकी सहायता दी है और आगे भी देते रहने का आश्वासन दिया है। भारत की सहायता से वहां बड़ेबड़े वांध बनाए गए हैं जिस से कृषि का विकास हो और जनता समृद्ध हो। बाहर की दुनिया से संपर्क की सुविधा के लिए त्रिभुवन राजपथ का निर्माण भी भारत के सहयोग से हुआ है। इस के अलावा नेपाल के एक भाग से दूसरे भाग तक आवागमन के लिए सड़कें भी बनाई जा रही हैं।

मैं विराटनगर और वीरगंज तो कई बार गया, किंतु काठमांडू जाने का मौका १३ वर्षों के लम्बे अर्से बाद अगस्त १९६१ में लगा। देखा, इन वर्षों में काठमांडू की कायापलट ही हो गई है। होटल, मकान, दुकान, सड़कें, सभी एक नई सजधज के साथ नजर आईं। पहले वहां 'पारस' और शायद दोएक छोटे होटल थे और अब तो राजकुमारों द्वारा संचालित 'सेलिटी' और 'अन्नपूर्णा' नामक तापनियंत्रित डीलक्स महंगे होटल भी देखने में आए। सड़कों पर विश्व के विभिन्न देशों के बहुत से पर्यटक भी घूमते हुए दिखाई दिए।

१९५० तक जो नेपाल सदियों से विदेशियों के लिए बंद था, आज वही करोड़ों रुपए 'यात्रिक व्यवसाय' से पैदा कर रहा है।

काठमांडू की कुल आवादी लगभग तीन लाख है। इस में पाटण और भक्तपुर भी शामिल है। समुद्र से यहां की ऊंचाई करीब साढ़े चार हजार फुट है। श्रीनगर की तरह यह भी हिमालय के ऊंचे पहाड़ों के बीच एक खूबसूरत वादी (घाटी) है। गरीबी और अमीरी का यहां जैसा फर्क शायद ही कहीं होगा। एक ओर तो ऊंची मजबूत दीवारों के पीछे राणाओं के सुंदर विशाल महल खड़े हैं और उन्हीं दीवारों की दूसरी ओर सड़ी, गंदी गलियां जहां शायद ही कभी सूर्य के दर्शन होते होंगे। सड़ांध भरी तंग कोठरियों में बिलबिलातीबिलखती जनता की ९८ प्रति शत मानवता कैद है। सदियों तक यह क्रम चलता रहा है। आज भी इसे पूरी तरह नहीं हटाया जा सका है।

अपने मेजबानों के साथ मैं बाजार के एक मकान में गया। तंग और गंदी गलियां पार करता हुआ जैसे ही मकान की सीढ़ियों पर चढ़ा कि सड़ांध की भभक आई। सिर चकरा गया। साथी ने मुझे परेशान देखा तो मुसकरा कर कहा, "संडास पीछे की तरफ है। इसीलिए दुर्गंध है। यहां वाले तो अभ्यस्त हैं। सदियों से जमी आदत स्वभाव का अंग बन चुकी है।"

एक मित्र से मिला। नाम नहीं लूंगा। वज्र शरीर जर्जर बन चुका था। धंसी आंखों में प्यार था। पर वह जोश नहीं जो हम ने सन ४२ में देखा था। कुछ कहने से पहले ही प्रश्नभरी दृष्टि का संक्षिप्त उत्तर मिला, "समय की मांग है।" मैं ने साथ भारत चलने का अनुरोध किया। किंतु उन्होंने यह कह कर टाल दिया, "यहां अभी बहुत काम बाकी है। कितनों को आप भारत ले जाएंगे ?" सुन कर मुझे दधीचि की याद हो आयी।

बाजार में देखा व्यापार और उद्योग में राजस्थानी अच्छी संख्या में हैं। थोक व्यापार तो एक प्रकार से इन के ही हाथ में है। वर्षों से यहां बसे हैं। बहुत से तो नेपाली नागरिक बन गए हैं।

दुकानें विभिन्न देशों की चीजों से भरी हुई हैं। फाउंटेन पेन, कैमरे, रेडियो, ट्रांजिस्टर, घड़ियां, टेपरिकार्डर, ब्लेड तथा एक से एक उम्दा चीजें, रेशमी और ऊनी कपड़े। भारत की तरह यहां आयात पर कड़ा प्रतिबंध नहीं है। नेपाल की जनता की अभी तक क्रय शक्ति इतनी नहीं है कि कीमती और शौक की चीजों को खरीद सके। मुझे अपने एक व्यापारी मित्र से जानकारी मिली कि इन कीमती चीजों के ग्राहक या तो केवल संपन्न नेपाली हैं या फिर भारत या विदेश से आए लोग। अधिकांश विदेशी माल चोरी से सीमा पार कर भारत में आता है। इस कार्य में कुछ भारतीय व्यापारी भी हैं। मुझे बड़ी ग्लानि का अनुभव हुआ। सदियों की विदेशी दासता ने हमारा नैतिक पतन किस हद तक कर दिया है। चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया। आज भी वह सर्वनाश करने को तैयार है। फिर भी हमारे यहां चीनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फाउंटेन पेन और रेशमी कपड़े के लिए चोरबाजारी में होड़ लगी है। जब कि हमारे अपने देश में अच्छे से अच्छे पेन और कपड़े बनता है।

बाजार घूमता हुआ नेपाल के सचिवालय की ओर चला गया। पहले काठमांडू एक साधारण शहर था। पुराने ढंग के मकान, राणाओं के महल और मंदिरों के अलावा १९वीं शताब्दी में बना सिंह दरबार—बस यही दर्शनीय स्थल थे। पिछली यात्रा में सिंह दरबार देख नहीं पाया था। इस बार देखा। पहले यह राजमहल था किंतु पचाससाठ वर्षों से नेपाल राज्य का सचिवालय है। इस में १८०० कक्ष हैं, इसी से इस की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

नया नेपाल बहुत कुछ बदल चुका है और बदल रहा है। विश्वविद्यालय, कालिज, हाईस्कूल, ला कालिज, मेडिकल कालिज आदि शिक्षण संस्थाएं शिक्षा के प्रचारप्रसार में लगी हैं। इन की इमारतें आधुनिक ढंग की हैं। नेपाल में साक्षरता बहुत ही कम है। कुल आबादी का केवल आठ प्रति शत ही साक्षर है। पुरुषों में १२ प्रति शत और स्त्रियों में चार प्रति शत ही साधारण रूप से शिक्षित कहे जा सकते हैं। इसी कारण वर्तमान सरकार राष्ट्रीय शिक्षण योजना आयोग का गठन कर देश से अशिक्षा को दूर करने में प्रयत्नशील है। मैं ने देखा, लड़कों के अलावा अब काफी संख्या में लड़कियां भी स्कूलकालिजों में शिक्षा पा रही हैं।

बाजार के बीचोंबीच महारानी के नाम पर एक बहुत ही सुंदर उद्यान बनाया गया है। पिछली बार बालाजू में बाइस धारा देखने गया था। पर इन तेरह वर्षों के पश्चात वह स्थान पहचानने में भी नहीं आता। धाराओं के चारों तरफ बहुत ही सुंदर कुंज बना दिए गए हैं। तैरने के लिए एक सरोवर भी बनाया गया है। इस के पास ही छोटेबड़े कलकारखाने बन रहे हैं। लगा उद्योगधंधे भी नेपाल में अंकुरित हो रहे हैं।

पुराने महल और मंदिर जितने यहां सुरक्षित रह पाए हैं उतने भारत में नहीं। इस का एक बहुत ही स्वस्थ परिणाम यह भी रहा है कि भारतीय संस्कृति अथवा धर्म की विभिन्न धाराओं का सफल प्रयोग और समन्वय यहां संभव हो सका। बौद्ध, वैष्णव और शैव या शाक्त सभी एक हैं। इन के अलगअलग मंदिरों में भी एकदूसरे के प्रतीक रहते हैं और पूजे भी जाते हैं।

सारे नेपाल में मंदिर, स्तूप और मठ भरे पड़े हैं। राजधानी के आसपास पिछली दस शताब्दियों में बने बहुत से मंदिर हैं। इन में विशेष रूप से पशुपतिनाथ, स्वयंभूनाथ, गुह्येश्वरी, मंजुश्री और हनुमान ढोका हैं।

पशुपतिनाथ का मंदिर १३वीं शताब्दी में बना था। काशी के विश्वनाथ और पाटण के सोमनाथ के मंदिर का जितना महत्त्व है, उतना ही पशुपतिनाथ का है। वाग्मति के तट पर बना यह तीर्थ सुदूर दक्षिण भारत और विदेशों से हिंदुओं को युगों से आकर्षित करता रहा है। पशुपतिनाथ के मंदिर की एक और भी विशेषता है। विश्वनाथ और सोमनाथ के मंदिरों को ध्वंस किया गया। काशी का मूल मंदिर आज मसजिद है। इसी प्रकार सोमनाथ का आदि मंदिर ध्वंसावशेष है। दोनों के नए मंदिर बने किंतु पशुपतिनाथ यथावत् है। इस के ऊपर का कलश ठोस सोने का है। आंगन में नंदी की विशाल मूर्ति है।

दर्शन करते समय पुजारी ने 'अस्ति जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्ते......' का मंत्रोच्चार कर चरणामृत दे कर आशीर्वाद दिया। मैं सोचने लगा, हिमालय की दुर्गम श्रेणियां और राजनीति के कृत्रिम व्यवधान हमारी सांस्कृतिक एकता को जोड़ने में भले ही बाधक रहें पर नेपाल और भारत का हजारों वर्ष का संबंध सदा रहा है और रहेगा।

स्वयंभूनाथ का मंदिर देखा। मैं ने समझा था यह शैव मंदिर होगा। पर है यह बौद्ध। एक पहाड़ी के ऊपर बना यह मंदिर लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन है। इस पर पहुंचने के लिए ५०० सीढ़ियां हैं। मुख्य मंदिर के आसपास १३ और भी छोटेछोटे मंदिर हैं। बीच में छः फुट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊंचा और साढ़े तीन फुट मोटा एक चक्र है, जिस पर जप के मंत्र अंकित हैं। इसे घुमा कर भक्तजन मंत्रजाप का फल प्राप्त करते हैं।

मंजुश्री का चैत्य स्वयंभूनाथ मंदिर के पश्चिम में हैं। माघ श्रीपंचमी को यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। हजारों की संख्या में बौद्ध, शैव, शाक्त और वैष्णव मंजुश्री के पूजन के निमित्त आते हैं।

गुह्येश्वरी का मंदिर विशेष रूप से बौद्धों की तांत्रिक शाखा की प्रसिद्ध तीर्थस्थली है।

हनुमान ढोका में महावीर हनुमान जी की विशाल मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा राजा जयप्रतापमल ने करीब तीन सौ वर्ष पूर्व की थी। पास ही में दरबार चौक है और प्राचीन राजप्रासाद। राजमहल भव्य है। इसका सात मंजिला सिंहद्वार लकड़ी का बना है। इस पर खुदाई का काम इतनी बारीकी का है कि आंखें उन पर टिकी ही रह जाती हैं।

अभी तक मैं बुद्ध के जन्मस्थान लुंबिनी वन नहीं जा पाया था। किन्तु काठमांडू के पास ही स्थित बोधीनाथ के स्तूप को देखने का अवसर मिला। यहां तथागत के 'अस्थि अवशेष' हैं। कहा जाता है कि विश्व के विशाल स्तूपों में यह अन्यतम है। धान और मक्के के हरे भरे खेतों के बीच यह बड़ा ही आकर्षक लगता है। तिब्बत, वर्मा, जापान, भारत तथा अन्य देशों से हजारों दर्शनार्थी आते रहते हैं। इसके पास ही तिब्बती लामाओं का एक बिहार भी है। अब तक विश्व के बहुत से बड़ेबड़े गिरजे और मसजिदो को देख चुका था। किन्तु यहां जो शांति और आनंद मिला, वह स्वयं के अनुभव से ही समझा जा सकता है। मैं तथागत बुद्ध की मूर्ति देख रहा था, निर्विकार भाव थे—क्षमा, दया, प्रेम, तेजोमय मुखमंडल से मानों आभा निकलकर सांसारिक विकारों की कालिमा को दूर कर रही थी।

ललितपुर जिसे पाटन भी कहते हैं, मुझे बहुत अच्छी जगह लगी। किसी समय नेपाल की राजधानी थी। आज भी विशुद्ध नेपाली संस्कृति की छाप यहां स्पष्ट दिखाई देती है। मल्लराजाओं के द्वारा बनवाया गया यहां का कृष्ण मंदिर देखने लायक है। इसके पत्थरों पर उत्कीर्ण कारीगरी मथुरा के मंदिरों के समान है।

यहां के लोग काठमांडू से अधिक सुन्दर लगे। ब्राह्मण पुरुष और स्त्रियां तो सचमुच बहुत खूबसूरत हैं। लंबी नुकीली नाक, उन्नत ललाट, बड़ीबड़ी खिंची आंखों को देख कर इन्हें नेपाली मानने में दुविधा हो सकती है।

नेपाल में विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हुआ है। भारत, तिब्बत और मध्य एशिया से आकर लोग यहां बसते गए। किराती, नेवारी और पर्वती—ये तीन नस्ल यहां प्रमुख हैं। किराती और नेपाली तो यहां के मूल निवासी माने जाते हैं।

मुझे मेरे एक नेवारी मित्र ने बताया कि नेपाल में भारत के जौनसार अंचल से किरातों ने प्रवेश किया। बात सही लगी क्योंकि नेपाली रीतिरिवाज में मंगोलीय और भारतीय दोनों प्रथाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट है। किरातों का उल्लेख वेद और महाभारत में मिलता है। इसके बाद मंजुश्री (मंचूरिया) से लोग यहां आकर बसते गए। क्योंकि मध्य एशिया से भारत में प्रवेश के लिए यह मार्ग यद्यपि दुर्गम था फिर भी समय की बचत करा देता था। भारतीय किरात और मंचूरियन लोगों के सम्मिश्रण से नेवारी जाति की उत्पत्ति हुई। यही कारण है कि इनमें दोनों के रीति-रिवाजों का समन्वय मिलता है। नेपाल का मौलिक साहित्य, उस की कला और कौशल की श्रीवृद्धि में इन्हीं नेवारियों का असीम योगदान है। व्यापार के क्षेत्र में भी यह अन्य नेपाली जातियों की अपेक्षा सबसे आगे बढ़े हुए हैं। कलकत्ते में भी इनकी कुछ फर्में हैं जो कस्तूरी आदि का धंधा करतीं हैं।

भारत से समय-समय पर नेपाल में लोग जा कर बसते रहे हैं। मुसलिम शासकों के अत्याचार और उत्पीड़न से परेशान हो कर सुदूर राजस्थान से राजपूत भी वहां जाकर बसते गए जो आगे चल कर पर्वतीय कहलाने लगे। नेपाल की सैनिक जाति के ठकुरी, खस और गुरुंग इनकी संतान हैं जिन्हें हम गोरखा कहते हैं। इनकी भाषा पर भारतीय प्रभाव है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बल्कि यों कहना चाहिए कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह गोरखाली की जननी भी संस्कृत ही है।

कृष्ण मंदिर से बाहर निकलकर एक खुली जगह में बैठ गया। सामने छोटेछोटे सुन्दरसलोने बच्चे खेल रहे थे। गरीबी ने नेपाल को बेहाल कर रखा है फिर भी लोग मस्त रहते हैं। नाचगाना, तीजत्यौहार बड़े शौक से मनाते हैं। बच्चे जमीन पर लकीरें खींच कर हमारे यहां की तरह कबड्डी खेल रहे थे छोटी लड़कियां बाहर बैठी देख रहीं थीं और किसी खिलाड़ी के पिट जाने पर हंसहंस कर तालियां बजा रही थीं।

मैं इन्हें देख रहा था और बरबस यही ख्याल हो आता था कि आठदस वर्षों में इनमें से बहुत से विभिन्न शहरों की गंदी गलियों में रहते मिलेंगे। कुछ सेना में भी भर्ती हो जायेंगे। ब्रिटेन के साथ नेपाल की शायद शर्तबंदी भी है। जो भी हो, अपने देश के स्वजनों से दूर, बहुत दूर ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए उसके उपनिवेशों में थोड़े से रुपयों पर अपनी जान हथेली पर लेकर खेलेंगे। कैसी विडंबना है ! क्या यही इनके साहस और सीधेपन की कीमत है ?

नया नेपाल यह जानता और समझता है। वह अभावों से जूझने में लगा है। जाग्रत नेपाल का एशिया की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान होगा क्योंकि भारत और चीन जैसे दो बड़े राष्ट्रों की शक्ति का संतुलन उसके सहयोग पर निर्भर करता है।

पाटन से लौट रहा था। साथ में कालेज का एक छात्र था। बातचीत के सिलसिले में उसने बड़े गर्व से शुद्ध हिन्दी में कहा, "हमारा देश केवल हिंदू अथवा बौद्ध संस्कृति के लिए ही आकर्षण का केन्द्र नहीं है। सैलानियों को अपनी ओर खींचने के लिए यहां का नैसर्गिक सौंदर्य कश्मीर अथवा स्विट्जरलैंड से कम नहीं। यह सही है कि यहां आधुनिक साधनों का अभाव है जिससे विदेशियों को कुछ असुविधा होती है। फिर भी वे आते हैं।

"पृथ्वी के ऊंचे से ऊंचे हिमाच्छादित शिखर आप यहीं पाएंगे। सागर माथा (माउंट एवरेस्ट), कांचन माला, मकालू, लोहासे, धवलागिरी, अन्नपूर्णा, गौरीशंकर—सभी २३ हजार से २६ हजार फीट की ऊंचाई तक के हैं। शताब्दियों से इन से हम धैर्य, साहस, कर्मठता की प्रेरणा पाते रहे हैं।"

उसने बताया कि उसके कालिज से एक टोली गौरी शंकर चोटी पर २३ हजार फुट की चढ़ाई करने जा रही है। उसने मुझे भी साथ देने के लिए निमंत्रण दिया।

मैंने हंसकर कहा, "शायद बीस वर्ष पहले आपके इस निमंत्रण को मैं स्वीकार कर लेता। परंतु अब तो गौरी शंकर पर जाकर मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम अखिल विश्व के कल्याण पुंजशिव को यदि आप निवेदन कर सकें तो मैं अपने को धन्य मानंगा।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ अपनी–कुछ जग को

प्राक्कथन

स्वर्गीय रामेश्वरजी टांटिया मेरे अच्छे मित्रों में थे। कलकत्ता आने के उपरान्त ही सन् १९४५ में उनसे मेरा परिचय स्व० मित्र मोहन सिंह सेंगर ने कराया था। स्व० टांटिया जी उन दिनों विवेकानन्द रोड पर ही रहते थे और मैं भी वहीं पर। उस समय से ही मैंने उनकी साहित्यिक अभिरुचि का स्पष्ट स्फुरण ही नहीं, क्रियात्मक पक्ष भी देखा और जब भी उनसे अन्य मित्रों के साथ मिलना होता, वे सदैव साहित्य संस्कृति, कला और दर्शन आदि की ही चर्चा करते रहते। उनका व्यक्तित्व अकृत्रिम और उन्मुक्त था; सरल, मृदुल और आत्मीयता से पूर्ण—यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य भी। उनका अन्तर और वाह्य एक था—कहीं दुराव या विसंगति नहीं। उनकी साहित्यिक अभिरुचि व्यवसाय और उद्योग के ऊहापोह में भी कभी कुण्ठित नहीं हुई। वे स्वाध्यायी और ग्रंथपिपासु व्यक्ति थे। उनकी इस प्रकृति ने उनकी रचनात्मक प्रतिभा को और अधिक प्रखर बना दिया। वे स्वभाव से यायावरी वृत्ति के व्यक्ति थे पर इस यायावरी वृत्ति के अन्तर्गत भी उनमें ज्ञानात्मक और अनुभवात्मक प्रवृति ही मुख्य थी और इसके कारण उनकी वैचारिकता भी सहज संवेदनशीलता के साथ अपनी सर्जनात्मक भाव भूमि में भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति हुई। इसका प्रमाण उनकी रचनाएं हैं। जहां एक ओर उन्होंने अपनी दैनन्दिनी डायरी लिखी तो दूसरी ओर अपनी 'विश्व यात्रा के संस्मरण'। संस्मरण और डायरी लेखन अपनी मूल अन्तर्धारा और रचनात्मक प्रक्रिया में कहानी, वार्ता और बोधकथा के निकट पड़ती है। इसी से उनकी कहानियां भी केवल कल्पना प्रसूत नहीं रहीं वरन् उनमें जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियां ही अभिव्यक्त हुईं। स्व० टांटियांजी प्रत्यक्ष प्रमाण पुष्ट मनःपर्याय में विश्वास करते थे। उनकी समस्त रचना प्रक्रिया भी लोकचित्त के साथ संवाद स्थापित करती हुई अपना तादात्म्य खोजती थी। यहीं हमें यह भी जान लेना चाहिये कि कोई भी साहित्यिक कृति मानवीय जीवन के समानान्तर ही अपनी सार्थकता स्थापित करती है और जीवन की यही सामान्य भूमि उसे अर्थवत्ता देती है। रामेश्वरजी की रचनाएं इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। उनकी समस्त कहानियां प्रायः बोध कथाएं हैं और उनका धरातल ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक है। उनकी इतिहास-दृष्टि पैनी और प्रखर है। उनकी मानसिकता समाज के साथ जुड़कर अपना रूप निर्धारित करती है। उनकी वैयक्तिकता संस्कृति के उन तत्वों से निर्मित है जो मानव जीवन के प्रकृत और मान्य प्रतिमानों को अपनाती हुई जीवन की व्यापकता और विभिन्नता में उन्हीं प्रतिमानों को स्थापित करती है।

कुछ वर्ष पहले जब मैं केरल विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने गया तो वहां की पाठ्य-पुस्तक में रामेश्वरजी की रचना को निर्धारित पाया। मैंने अपने मित्र और तत्कालीन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विभागाध्यक्ष डा० विश्वनाथ अय्यर से सहजभाव से पूछा कि रामेश्वर जी की रचना को पाठ्यक्रम में स्थान देने का क्या कारण था। उनका उत्तर प्रभावी और सारवान था। उन्होंने बताया कि उनकी रचनाओं में भाषा की सहजता और सरलता के साथ-साथ प्रभविष्णुता है, जो अपनी अभिधा और मृदुता के कारण कथ्य और तथ्य को स्पष्ट करती है। डा० विश्वनाथ अय्यर के अनुसार दूसरा कारण था उनका जीवन को सहज दृष्टि से देखना, समझना और परखना, जो अनिवार्यत: पाठक या यों कहा जाए कि विद्यार्थी को प्रभावित और आकर्षित कर सके। यह विचार और भाव का या संवेदना और विवेक के पारस्परिक गुंथन का परिणाम होता है। डा० अय्यर का यह विश्लेषण सही है। इसी कारण से उनके ग्रन्थ 'इतिहास के निर्झर' को राजस्थान सरकार ने विभिन्न पुस्तकालयों के लिए क्रयार्थ प्रस्तावित किया है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह भी लघु बोध कथाओं का ही संकलन है। इन बोध कथाओं की आधार भूमि इतिहास और संस्कृति है। इन लघु कथाओं में लेखक ने सहज और सामान्य कथावस्तु में अपने रचनात्मक कौशल से जीवन के गंभीर पक्षों का तथ्यानुशीलन और निरूपण किया है। बोध कथा का वैशिष्ट्य उसकी नैतिक अर्थवत्ता में होता है। उसके मूल्यांकन की भी यही आधार है। किशोर जीवन के सम्यक विकास में बोध कथाओं का बड़ा महत्व रहता है—वे अन्तस्तल को छूकर हमारी जातीय चेतना और संस्कारशीलता के परिष्करण में सहायक होती हैं और इसीसे उसकी रचना भी सोद्देश्य और सप्रयोजन। रामेश्वरजी की अनेक बोध कथाएं संस्मरणात्मक हैं और इसी से उसकी भावभूमि भी अत्यन्त पुष्ट। 'प्रभु का प्यारा' का हीरु और 'पिता का कर्ज' का राभ दयाल जहां ऐतिहासिक हैं, वहीं 'सती' का रामूजी वर्तमान का एक जीवन्त पात्र। हजारी दरोगा क्रूर सामन्ती शासन का प्रतीक है तो चन्दरी बुआ राजस्थान के ग्रामीण और पिछड़ी नारी जाति की। रामेश्वरजी को लोक जीवन और लोक चित्त की गहरी और सही पहचान थी—इसीसे उनकी कहानियां हमारी संवेदना को छूती हुई व्यापक और स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं। यही उनका रचना वैशिष्ट्य है।

मुझे विश्वास है कि ये लघु कथाएं अवश्य ही समादृत होंगी और आज के किशोर वर्ग के व्यक्तित्व के विकास में सहायक।

कल्याणमल लोढ़ा
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय एवं
भूतपूर्व कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय

कलकत्ता
मकर संक्रान्ति
वि० सं० २०४०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्व का सबसे बड़ा मासिक पत्र

१९६४ में न्यूयार्क में हमारे एक अमरीकी मित्र ने टाईम लाइफ रेस्तरां में हमें दावत दी थी। यह रेस्तरां इनकी ५५ तल्ले की इमारत के सबसे ऊपरी तल्ले पर था। न्यूयार्क में बहुत मंहगे रेस्तरां में इसकी गिनती है। वैसे 'टाईम', 'लाइफ,' 'फॉरचून' तीनों पत्रों को मैं बराबर पढ़ता रहता हूं और मेरी धारणा है कि अपने विषय के ये सर्वोत्तम हैं। परन्तु यहां आकर जानकारी इनके बारे में मिली, वह आश्चर्य-जनक थी। इनकी कुल प्रकाशन संख्या है—१४० लाख और दुनिया के सब देशों के हर तबके के लोग इनके पाठकों में हैं। विश्व के सब बड़े शहरों में टाइम के संवाददाता हैं, जिनमें से किसी-किसी के पास अपना हवाई जहाज भी रहता है।

लाइफ के लिए बहुत ऊंचे दर्जे के आर्ट पेपर और टाईम के लिए टिकाऊपन को लिए हुए सफेद पतले कागज़ चाहिए, इसलिए इनकी अपनी कागज की मिलें हैं। कहते हैं कि टाईम की एक टिप्पणी किसी बड़े देश के राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री की स्थिति डांवाडोल कर देती है।

यह सब होते हुए भी टाईम-लाइफ का विश्व में द्वितीय स्थान है, क्योंकि रीडर डाइजेस्ट का प्रकाशन उनसे ८० लाख ज्यादा है।

विश्व के पहले एक सौ धनवानों में तीन समाचारों-पत्रों के मालिक या पुस्तक प्रकाशक भी हैं। रीडरर्स डाइजेस्ट के वालेस, न्यूयार्क टाइम्स की श्रीमती हैज और इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका के विलियम बेंटन। इन तीनों में से प्रत्येक के पास १५० से २०० करोड़ हैं।

रीडरर्स डाइजेस्ट का नाम विश्व के छोटे-बड़े सभी देशों में सुपरिचित है। यह १४ भाषाओं में छपता है और इसका कुल प्रकाशन है २८० लाख। विज्ञापन की दरें बहुत ऊंची हैं, इसलिए कुल आय है लगभग ६० करोड़ वार्षिक।

लेखकों को पारिश्रमिक भी पत्र के अनुरूप ही दिया जाता है। अलग-अलग विषयों के लेखों पर विभिन्न दरें हैं। परन्तु औसत चार पृष्ठ के एक लेख का ६-७ हजार रुपए मिल जाता है। भारतवर्ष में शायद सबसे ज्यादा पारिश्रमिक २० रुपये से ५०० रु० तक है।

विज्ञापन की दरों में देश-विदेश में बहुत बड़ा फर्क रहता है। अमरीका के संस्करण के एक साधारण पृष्ठ का चार्ज है ५०-६० हजार रुपए, जबकि भारत में केवल ३५०० से १०००० रुपए ही है।

इसके विज्ञापनों पर विश्व के करोड़ों ग्राहकों को बहुत भरोसा रहता है, क्योंकि बहुत जांच के बाद विज्ञापन स्वीकार किए जाते हैं। १९५५ तक तो अमरीकी संस्करण में विज्ञापन दिए ही नहीं जाते थे। उसके बाद जब उद्योगपतियों और विक्रेताओं का बहुत आग्रह रहा तब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मि० वालेस ने ग्राहकों के मत लिए और विज्ञापन शुरू हुए। अब भी कुछ विज्ञापन जिनसे ग्राहकों के ठगने का डर रहता है, वापिस लौटा दिए जाते हैं। तम्बाकू और शराब के विज्ञापन डाइजेस्ट में नहीं छपते।

१९४७ के किसी अंक में मुख की फुन्सियों के लिए 'ट्यूब में चमत्कार' नाम की दवा का विज्ञापन निकला। थोड़े दिनों में ही उसकी बिक्री १० गुनी बढ़ गई।

केन्टीकट की एक महिला ने अपने गैरेज में चोकर युक्त मोटे आटे की पावरोटी बनानी शुरू की। मि० वालेस को उसकी रोटी पसन्द आयी। उन्होंने अपनी तरफ से उसकी उपयोगिता और स्वास्थ्यप्रद होने का प्रचार किया। एक वर्ष के भीतर ही उस महिला की बिक्री हो गई ११ करोड़ की और वह एक बहुत बड़े गृह उद्योग की मालकिन बन गई।

१९२२ में १८,००० रु० की पूंजी से वालेस दम्पत्ति ने इस छोटे से प्रयास के रूप में न्यूयार्क के एक गैरेज में शुरु किया था। उसके बाद यह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहा। अमरीका में टाईम-लाइफ की तरह अरबपति और सर्व-साधन सम्पन्न अखवारों की होड़ में रीडरर्स डाइजेस्ट ने न केवल अपना प्रथम स्थान ही बनाया-बल्कि दूसरे सबों को बहुत पीछे छोड़ दिया।

आज इसका अपना विशाल कारखाना ८० एकड़ में न्यूयार्क के पास के चप्पका अंचल में है, जिसमें हजारों सुदक्ष व्यक्ति काम करते हैं। इसके मुख्य अधिकारी मि० लेविस की मासिक तनख्वाह है कुल मिलाकर लगभग ३५,००० रु० और साधारण मजदूरों की कम से कम वेतन है ४,००० रु०।

मि० वालेस बहुत सरल भाषा में सर्वसाधारण के लिए लिखता है। रोचक कहानियां, संस्मरण, साधारण रोगों की सरल चिकित्सा, भ्रमण विवरण और कुछ हास्य के चुटकिले।

सम्पादकगन कहते हैं कि वालेस जो सामग्री चुन लेता है, उसे डाइजेस्ट के ४-५ करोड़ पाठक अवश्य पसन्द करेंगे, क्योंकि वह उनके मन की बात समझता है।

विश्व प्रसिद्ध अन्वेषक रिचार्ड बायर्ड जब दक्षिणी ध्रुव की यात्रा पर गया तो अपने सीमित सामान के साथ पढ़ने के लिए छह अंक डाइजेस्ट के भी ले गया।

संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में प्रकाशित यह पत्र लगभग एक सौ देशों के घर, कार्यालय, पुस्तकालय, रेस्तरां, क्लब और जेलों तक में पढ़ा जाता है।

इसी फरवरी के अंक में एक लेख है "बुढ़ापे को कैसे रोका जाय।" मैंने दो-तीन बार उस लेख को पढ़ा। वास्तव में ही बहुत ज्ञानकारी पूर्ण है। इसी अंक में हंसी के चुटकिलों में से एक कों यहां उद्धृत करता हूं।

विश्व के सर्वश्रेष्ठ शतरंज खिलाड़ी मि० वाल्टज के साथ-लगभग उसी श्रेणी की एक महिला खेल रही थी। एक मित्र ने महिला से पूछा कि विश्व के सर्वोत्तम खिलाड़ी के साथ खेलते हुए आपको कैसे लगता है। उसका जवाब था "यह तो आप इनसे पूछिये।" कितने संक्षेप में कैसी चुनी हुई बात कही गयी है।

मासिक पत्र के सिवाय यहां से डाइजेस्ट सीरिज की पुस्तकें, रिफरेंस की किताबें और विविध प्रकार के कोष भी प्रकाशित होते हैं। इस समय इनके सब प्रतिष्ठानों की वार्षिक बिक्री है २७० करोड़ की-अर्थात हमारे ११०० करोड़ की लागत के हिन्दुस्तान स्टील के तीनों कारखानों के बराबर।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जी, मैं मारवाड़ी हूँ !

कहा जाता है कि लगातार एक दशक तक किसी एक स्थान पर रह जाने से वहां के पूरे नागरिक अधिकार मिल जाते हैं, यदि जन्म भी उसी स्थान का हो, तब तो किसी प्रकार के भेद-भाव का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी परम्परा में, विश्व के सबसे धनी देश अमेरिका और स्वीडेन को अपने यहां बसे हुए भारत के सिक्खों और अफ्रीका के नीग्रो को पूरे नागरिक अधिकार देने पड़े हैं। मैंने अमेरिका के सैनफ्रांसिसको और लॉसएज्लस में देखा कि वहां लाखों चीनी, जापानी, नीग्रो और भारतीय बसे हुए हैं तथा उन्हें विश्व के उस सर्वाधिक धनी और समृद्ध अंचल के पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। इनमें से कई तो वहां के अच्छे व्यापारियों में गिने जाते हैं।

खेद है कि भारत में कहीं-कहीं इसके ठीक विपरीत रूप देखने को मिलता है और वह भी अपने देशवासियों के लिए। कई एक प्रान्तों में वहां बसे हुए अन्य प्रान्तों के लोगों के विरुद्ध दूषित एवं भ्रांत धारणाएँ या भावनाएँ उत्पन्न की जा रही हैं। इसके लक्ष्य विशेषकर राजस्थानी हैं जिन्हें 'मारवाड़ी' कहा जाता है।

यह सुनकर हमें दुःख होता है कि राजस्थानियों के विरुद्ध एकाध प्रान्तों में विशेषकर बंगाल में कहा जाता है कि वे हमारी धरती के नहीं है, (Sons of the Soil) बाहर के हैं।

मैं सोचने लगा, कि क्या बंगाल और राजस्थान एक ही मातृभूमि, भारत के अंगभूत नहीं हैं ? अगर प्रान्तीय सीमाओं को मानकर भी चलें तो भी वर्षों से राजस्थान से भिन्न प्रान्त में रहते आये 'मारवाड़ी' उस प्रान्त एवं वहाँ की धरती और निवासियों से अलग कैसे हुए। कई परिवारों की तो पीढ़ियाँ ही वहाँ जन्मी और पनपीं। इसी तरह बिहार, यू० पी० और उड़ीसा में भी हजारों बंगाली परिवार सैकड़ों वर्षों से रहते आ रहे हैं। मारवाड़ियों के विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि वे केवल व्यापार में लगे रहते हैं। सामान्य जन-जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्ध कम रखते हैं।

राजस्थानी स्वभावतः उद्यमी और साहसी होते हैं। अजीविका की खोज में वे जहाँ कहीं भी गये, वहाँ पनपे और सम्पन्न हुए। पर इस स्थिति में आने के लिए जो घोर परिश्रम करना पड़ा उसमें उन्हें इतना अवकाश नहीं मिल पाया कि वे स्थान विशेष के सामान्य जनजीवन में ज्यादा भाग ले सकें। अब नई पीढ़ी के राजस्थानी अवश्य घुलमिल रहे हैं और आज तो बंगाल में या पंजाब में रहने वाले मारवाड़ी युवकों को जल्दी पहचान पाना मुश्किल है।

बगाल में राजस्थानियों के विरुद्ध वातावरण बनाने में कम्यूनिस्टों का बड़ा हाथ रहा है; चूँकि व्यापारी समाज के होने के कारण राजस्थानी सदा से कांग्रेस का साथ देते रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधिकांश बंगाली-समाज इन विषैले नारों से प्रभावित नहीं है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यह है कि बंगाल केबिनेट में दो मंत्री राजस्थानी हैं।

४०० वर्ष पहिले मुगल बादशाह अकबर के समय में हमारे कुछ पूर्वज राजस्थान से दिल्ली और आगरा आकर बस गये थे। उनकी गणना वहाँ के प्रतिष्ठित व्यापारियों में होती थी। यहाँ तक कि उनकी आव-भगत बादशाह के यहाँ भी थी। १७ वीं सदी में बंगाल की हाकिमी जब मुर्शीदकुली खाँ को मिली तो वह अपने साथ आगरे से कुछ विश्वस्त राजस्थानियों को रसद और दूकानदारी के काम के लिए बंगाल ले आया, क्योंकि हिसाब-किताब, मेहनत और तौल-जोख में उनकी साख से नवाब बहुत प्रभावित था। इन्हीं राजस्थानियों ने बंगाल में अपने-अपने व्यवसाय को जमाया।

१८ वीं सदी के बाद तो बंगाल के इतिहास की हर परत में जगत् सेठों के घराने का वर्णन है। उनकी हुण्डी और बीमा की साख भारत में ही नहीं, विदेशों में भी थी। वे नवाव के अर्थ-मन्त्री के सिवाय प्रमुख सलाहकार भी थे। यहाँ तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनीं को भी बहुत बार उनकी कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था।

कई बार मराठे स्वर्णभूमि बंगाल की प्रसिद्धि सुनकर बड़ी-बड़ी फौजों के साथ यहाँ लूट-पाट के लिए आए। परन्तु जगत् सेठों ने करोड़ों रुपए अपने पास से देकर उन्हें वापस कर दिया और गरीब जनता को उनके अत्याचारों से बचा लिया।

नवाब सिराजुद्दौला के समय जगत् सेठ घराने में सेठ अमींचन्द थे। ये शिताचन्द और फतेहचन्द के बाद हुए। अमींचन्द को इतिहासकारों ने विश्वासघाती और देशद्रोही बताया है, क्योंकि उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी और सिराजुद्दौला के संघर्ष में कम्पनी का साथ दिया था। परन्तु तथ्य तो यह है कि इसके पीछे देश-द्रोह या विश्वासघात की बात नहीं थी बल्कि उनके सामने नवाब ने ही ऐसी हालत पैदा कर दी थी कि कम्पनी का साथ देने के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं रह गया था।

नवाब अलीवर्दी खाँ के लाड़-प्यार से सिराजुदौला ऐयाश और जिद्दी हो गया था और नवाब के मरने के बाद कुछ चाटुकार उसके मुँह लगे हो गये जो जगत् सेठ से ईर्ष्या और द्वेष रखते थे। सेठ अमींचन्द की एक विधवा अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। सिराजुद्दौला ने एक दिन उनकी पुत्री के बारे में घृणित प्रस्ताव भेजा और न मानने पर धमकी दी। सेठ अमींचन्द के सामने उस समय दो ही रास्ते रह गये थे या तो नवाब का प्रस्ताव मानकर अपनी रोती बिलखती पुत्री को उसके हरम में भेजकर उसका कृपा-पात्र बने रहना या फिर अपनी मान-मर्यादा बचाने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शरण लेना।

वे इन दिनों यह भी महसूस करने लगे थे कि नवाब की बढ़ती हुई भोग-लिप्सा के कारण किसी भी भले घर की युवती की इज्जत सुरक्षित नहीं है और उन्हें आये दिन इस प्रकार की शिकायतें सुनने को मिलती थीं, इसलिए उन्होंने ऐसे व्यक्ति के हाथ में देश का शासन रहने देना किसी भी हालत में सुरक्षित नहीं समझा। उस समय कम्पनी की शक्ति नवाब के सामने नगण्य थी, परन्तु सेठ अमींचन्द ने अपनी मान-मर्यादा और धन-सम्पत्ति की बड़ी जोखिम उठाकर भी कम्पनी का साथ दिया। फलस्वरूप पलासी के युद्ध में नवाब की करारी हार हुई। इसके बाद किसी ने नवाब की हत्या कर दी। परिस्थितियों से विवश होकर सेठ अमींचन्द को नवाब के विरुद्ध जाना पड़ा था, पर उसके मरने के बाद उन्होंने उसके परिवारवालों की हर प्रकार से सहायता की और देखभाल भी की।

१९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जगत्-सेठों के सिवाय प्रवासी मारवाड़ियों की बहुत-सी फर्में मुर्शिदाबाद, कलकत्ता और असम में स्थापित हो गयी थीं। इनका नियम था कि कोई भी राजस्थानी युवक कलकत्ते या असम में उपार्जन के लिए आकर उनकी गद्दी में ठहर और खा-पी सकता था। उसके साथ उनका व्यवहार इतना प्रेम और सौजन्य का होता था कि इसे इसमें संकोच का अनुभव नहीं होता। इसके सिवाय कारोबार के लिए भी उसे इनके यहाँ से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५०० या १००० रुपये बिना ब्याज के उधार मिल जाते थे ताकि वह अपनी कपड़े या गल्ले की छोटी सी दूकान कर ले। दूसरे व्यापारी और दूकानदार भी स्थापना (मुहूर्त) के समय कुछ-न-कुछ रकम उसके यहाँ जमा करा देते थे। इस प्रकार मेहनत और ईमानदारी से कुछ वर्षों में उसका व्यवसाय जम जाता था। अब भी असम के प्रत्येक बड़े शहर में एक बड़ा बासा (सबसे पहले स्थापित फर्म) होता है, जहाँ बाहर से आये हुए लोग निस्संकोच ठहरते और भोजन करते हैं, यद्यपि अब यह प्रथा शिथिल होती जा रही है।

इस प्रकार मेहनत और मेलजोल से राजस्थानियों ने अपने पाँव सुदूर प्रान्तों में जमाये तथा वाणिज्य व्यवसाय और उद्योग की दृष्टि से उन स्थानों को उन्नत किया एवं खुद भी सम्पन्न हुए। उद्योग व्यापार के सिवाय मारवाड़ियों ने कभी सरकारी नौकरी, वकालत या डाक्टरी की तरफ ध्यान ही नहीं दिया।

२० वीं शताब्दी में प्रथम महायुद्ध के बाद मारवाड़ी आयात-निर्यात करने लगे तथा उद्योग-धन्धे स्थापित करने लगे। प्रान्तों की राजनीतिक व सामाजिक गतिविधि में भी भाग लेने लगे। बंगाल में नमक-सत्याग्रह और विलायती कपड़ों की दूकानों पर धरने के सिलसिले में न केवल मारवाड़ी पुरुष बल्कि महिलाएँ भी जेल गयीं। जिस प्रान्त में कमाते और रहते आये हैं, उस प्रान्त के धार्मिक कार्यों में मारवाड़ी मुक्तहस्त से खर्च करते रहे हैं। असम, बंगाल और बिहार के प्रत्येक शहर तथा कस्बे में इनके द्वारा संचालित स्कूलें, पुस्तकालय, धर्मशालाएं और अस्पताल एक नहीं, अनेक देखने को मिलेंगे।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भारत छोड़कर जाते समय अंग्रेजों से उनका अधिकांश उद्योग एवं कारबार राजस्थानियों के हाथ में आया और उन्होंने इसे न केवल नष्ट होने से बचाया बल्कि और भी बढ़ाया। आज तो भारत के औद्योगिक प्रान्तों में इनका प्रमुख स्थान है। भारत के विभिन्न भागों में राजस्थानियों का कम-बेशी यही इतिहास है।

विकास के इस दौर में राजस्थानी स्थानीय जन-जीवन और सामाजिक मेल-मिलाप में कम हिस्सा ले पाये।* इसे हम त्रुटि या कमजोरी मान सकते हैं। यद्यपि बगाल में राजस्थानियों का इतिहास लम्बा है, पर वे बंगला भाषा और साहित्य का अध्ययन नहीं कर सके तथा खान-पान की विभिन्नता के कारण न आपस में शादी-विवाह ही कर सके। पर केवल इतने के लिए मारवाड़ी-समाज के अन्य अवदानों को भुला देना न्याय-सङ्गत नहीं है विशेषकर आजकी परिस्तिथियों में जब राष्ट्र को भावात्मक एकता की बहुत आवश्यकता है।

पिछले दिनों बंगाल के एक प्रमुख दैनिक पत्र में एक लेख छपा था जिसका भावार्थ यह था 'कि मारवाड़ियों ने यहाँ के प्रायः सभी उद्योग-धन्धे अपने कब्जे में ले लिए हैं और उनमें ज्यादातर कर्मचारी और अफसर अन्य प्रान्तों के रखते हैं। इस सम्बन्ध में हमें कहना है कि जहाँ तक उद्योग-धन्धों का सवाल है, वह जबरन तो लिए नहीं जा सकते आपस के समझौते और बातचीत से खरीदे-बेचे जाते हैं, इसके लिए न केवल पूंजी बल्कि रुचि, परिश्रम और साहस की जरूरत होती है। कर्मचारी वर्ग तो शायद आफिसों में उसी प्रान्त के ही अधिकतर हैं। मजदूर जरूर उत्तर-प्रदेश, उड़ीसा और बिहार के होते हैं, क्योंकि उनका काम कड़ी मेहनत माँगता है।

हम प्रतिष्ठित व प्रभावशाली समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं से निवेदन करेंगे कि यदि ऐसे आक्षेपों का प्रचार होता है तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य प्रान्तों में भी जरूर होगी जो देश के संगठन के लिए बहुत ही अवांछनीय है।

कुछ लोगों के गलत प्रचार से यह भ्रान्तिपूर्ण भावना हो जाती है कि मारवाड़ी समाज का उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण केवल पैसा कमाना है और देश के विकास और स्वतन्त्रता में उनका

* यह बात अन्य प्रवासियों—पंजाबी, गुजराती, सिंधी आदि के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कोई योगदान नहीं रहा है, परन्तु आजतक के भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे प्रचारों में द्वेष की भावना ही अधिक है। राजस्थान के सपूतों ने राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए सदियों तक संघर्ष किया है। धन और जन की अपार-क्षति उठाकर भी वे प्राणों की आहुति देने में न हिचके। राणा सांगा और प्रताप का शौर्य इस बात का साक्षी है ! वीर दुर्गादास राठौर का त्याग और मीरा की भक्ति को किसी प्रकार भी भुलाया नहीं जा सकता। अगर हम आज के युग को भी देखें तो राष्ट्र के कल्याण और स्वाधीनता के लिए हजारों की संख्या में राजस्थानी युवक और युवतियों के जेल जाने और कठिन यातनाओं के सहने के उदाहरण एक नहीं अनेक मिलेंगे।

एक दिन मैं एस्प्लेनेड के मैदान से गुजर रहा था। कुछ उच्छृंखल युवकों ने मेरी ओर ताना कसा — "यह मारवाड़ी है।" मुझे बुरा नहीं लगा और मैंने गर्व के साथ कहा— "जी हां, मैं मारवाडी हूं।"

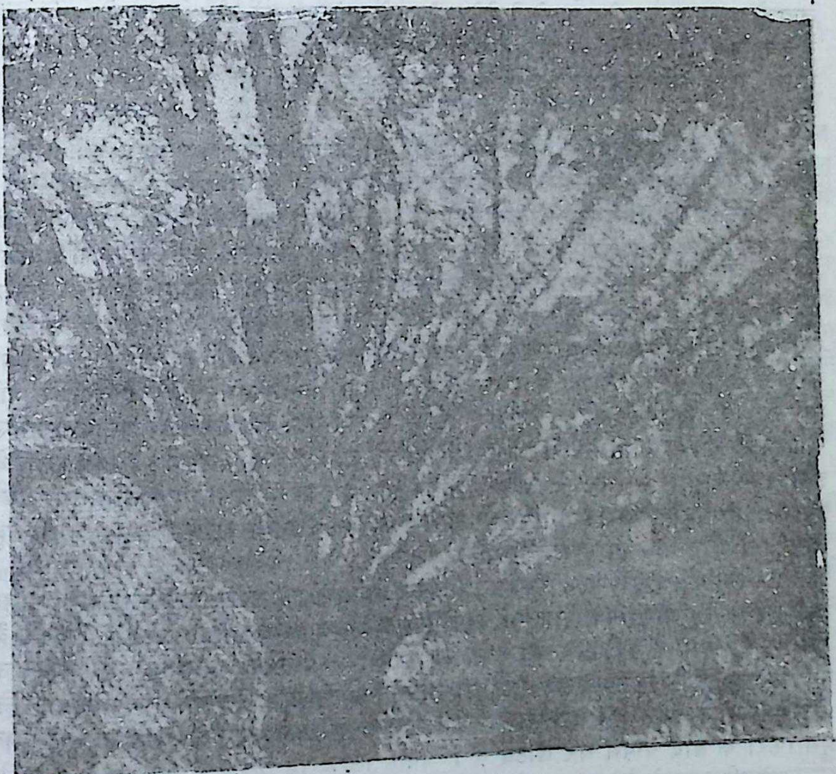

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मारवाड़ी समाज की नई पीढ़ी

बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विमल मित्र ने अपनी पुस्तक "साहब बीबी गुलाम" में आज से सौ सवा सौ वर्ष पहले के धनी बंगाली-व्यवसायी युवकों के दैनिक जीवन की झांकी उपस्थिति की है।

उस समय का अधिकांश वाणिज्य व्यवसाय मल्लिक, सील, लाहा और बसाक आदि बंगाली परिवारों में बंटा हुआ था। उनके यहां पाट और गल्ले आदि की आढ़त के अलावा जहाजों पर माल लादने उतारने के ठेके, फौज को रसद सप्लाई और विलायती आफिसों की ब्रेनियनशिप थी। उनके पुत्रों ने जमेजमाये व्यापार को सम्हालना छोड़ दिया और अधिकांश समय शराब और ऐयाशी में देने लगे। धीरे-धीरे सारा का सारा कारबार नष्ट हो गया।

पूर्वजों ने समझदारी से काम लिया और अधिकांश सम्पत्ति को देवोत्तर कर दिया। इसलिए सब कुछ चले जाने पर भी परिवार को भूखे रहने की नौबत नहीं आयी।

उसके बाद खत्री-समाज की बढ़ोत्तरी हुई और विदेशी फर्मों की बेनियनशिप के सिवाय दूसरे कई प्रकार के व्यापार उनकी कोठियों में होने लगे। कुछ दिनों तक तो उनकी समृद्धि में चार चाँद लगे रहे, परन्तु आगे जाकर वही दशा उनकी भी हुई। प्रति शुक्रवार को चुने हुए मुसाहिबों को लेकर, हर प्रकार की विलास सामग्री के साथ लिलुआ या दमदम के बगीचों में जाते और सोमवार की सुबह अलसाये हुए मन और थके हुए तन के साथ वापस आते। बिना सम्हाल के धीरे-धीरे उनका कारबार बिगड़ने लगा। आफिसों के बड़े साहबों के द्वारा बार-बार की चेतावनी का भी उनपर कोई असर नहीं हुआ। आखिरकार बेनियनशिप उन राजस्थानी युवकों को मिली जो उनके आफिसों में पुर्जा चुकाने या दलाली का काम करते थे। इन्होंने अपने पुराने मालिकों के चढ़ाव- उतार को देख रखा था, इसलिए विलासिता से अलग रहकर कड़ी मेहनत और ईमानदारी से काम करने लगे। उनकी आफिसों का काम भी बहुत आगे बढ़ा और साथ ही समाज में प्रतिष्ठा भी।

उसीका फल है कि आज देश का अधिकांश वाणिज्य एवं उद्योग उनकी सन्तानों के हाथ में है। इतने बड़े औद्योगिक-साम्राज्य के पीछे उक्त समाज का बहुत ही उज्ज्वल इतिहास है। आज से सौ सवा सौ वर्ष पहले जब न तो रेल थी और न पानी के जहाज़ ही, उस समय इनके पूर्वज बिना किसी प्रकार के सहारे के राजस्थान के बंगाल और असम की सुदूर यात्रा, अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए चार-पाँच महीने में पूरी करते थे और छः-आठ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी के बाद वापस घर लौटते थे।

हमें भी बहुत से ऐसे महापुरुषों को देखने-सुनने का मौका मिला है जो बहुत ही साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर चोटी पर पहुँचे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्वप्रथम तो हमारे स्व० प्रधानमंत्री श्री शास्त्रीजी का ही उदाहरण है जो यह कहने में कोई संकोच नहीं करते थे कि कई बार एक पैसा नाव के भाड़े का न होने के कारण उन्हें गंगा के उस पार से काशी में पढ़ने के लिए तैर कर जाना पड़ता था। इसी प्रकार इन्टुक के उपाध्यक्ष, भूतपूर्व उपश्रममंत्री तथा विशिष्ट संसद सदस्य श्री आबिदअली भी एक कपड़े की मिल में साधारण मजदूर थे।

विश्वमित्र सञ्चालक स्वर्गीय श्री मूलचन्द अग्रवाल भी बहुत साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर अपने जीवनकाल में ही भारत के समाचार-पत्र सञ्चालकों में अग्रणी और आदरणीय हो गये थे। वे कहा करते थे कि प्रतिदिन १८-२० घंटा काम करना तो उनके लिए साधारण सी बात थी। यहाँ तक कि कभी- कभी तो उन्हें पत्र की कटाई तथा बँधाई भी स्वयं करनी पड़ती थी।

व्यापारी समाज में भी ऐसे कई उदाहरण मिल जायेंगे। प्रसिद्ध चाय उत्पादक श्री हनुमानबक्स कनोई असम में आज से ६५ वर्ष पूर्व दर्जी का काम करते थे। उसके बाद उन्होंने एक छोटी-सी मोदीखाने की दुकान खोली थी। कुछ वर्षों बाद थोड़ी-सी जमीन में चाय की खेती की और मशीनों के अभाव में कड़ाहियोंमें चाय गर्म करके सुखाते थे। आज उनके फर्म का कठिन परिश्रम और सच्चे व्यवहार के कारण भारत के चाय उत्पादकों में विशिष्ट स्थान है। विदेशों से आये हुए चाय-विशेषज्ञ भी उनके गणेशवाड़ी चाय बगीचे को देखने जाते हैं जिसमें प्रति एकड़ चाय का उत्पादन देश में सबसे ज्यादा है।

विश्व प्रसिद्ध डीजल और बिजली की मोटरों के एवं इञ्जिनों के निर्माता श्री किर्लोस्कर भी एक साधारण कारखाने में मिस्त्री थे और अनेक सुप्रसिद्ध कपड़े की मिलों के मालिक स्वर्गीय मफतलाल कपड़े की फेरी करते थे।

इन सब उदाहरणों का उल्लेख करने का उद्देश्य नयी पीढ़ी के मारवाड़ी समाज के युवकों के बारे में लिखना है। जिनके पास अपने पितामहों और पिताओं का अर्जित किया हुआ धन, यश और जमा-जमाया कारबार है, साथ ही विदेशों के अच्छे फर्मों से व्यापारिक एवं औद्योगिक संबंध भी। खेद है कि आज के अधिकांश धनी युवक उन बंगाली और खत्री समाज की चाल-ढाल को अपनाते जा रहे हैं जिनके बारे में हम पहले लिख चुके हैं। हाँ, समय और साधन दोनों ही बदल गये हैं, इसलिए ७०-८० वर्षों पहले के मौज-शौक के तौर-तरीकों में फर्क जरूर आ गया है।

मैं नई दिल्ली के विज्ञान-भवन के सामने के फ्लैट में रहता हूँ। इस भवन में जलसे और चैम्बरों की मीटिंगें होती रहती हैं। वहाँ प्रायः ही देखता हूँ कि कलकत्ते और बम्बई के युवक बहुत बड़ी— बड़ी फैशनैबुल मोटरों में अपने साथ एक दो पंजाबी सजे-सजाए युवकों को लिए हुए (जो उनकी फर्मों के दिल्ली रिप्रेजेन्टेटिव होते हैं) उन मीटिंगों या जलसों में शामिल होने के लिए आते हैं। इनमें से कई जलसों में संसद सदस्यों को भी बुलाया जाता है, इसलिए उन लोगों से वहाँ मिलना हो जाता है। इसके सिवाय संसद या राष्ट्रपति भवन देखने की पास के लिए या और किसी काम से भी उनसे मिलना होता रहता है।

वैसे दिल्ली में प्राइवेट कारों का किराया ३०-३५ रुपया प्रतिदिन है परन्तु जिन बड़ी गाड़ियों को ये रखते हैं उनका ६५-७० रुपया किराया है। अशोक होटल जिनमें ये लोग ठहरते हैं, उसका भी ८०-१०० रुपया प्रतिदिन पड़ जाता है। इसके सिवाय क्लबों, थियेटरों तथा अनेक प्रकार के खर्च अलग। चार-पाँच दिन की दिल्ली की एक यात्रा में, हवाई जहाज तथा अन्य सब खर्चे मिलाकर, दो-ढाई हजार तक लग जाते हैं। जिन मीटिंगों में ये जाते हैं उनमें न तो इनमें से अधिकांश को कोई पूछता ही है और न इनको वहां कुछ सीखने समझने की जिज्ञासा ही होती है। इसके सिवाय अनेक प्रकार की दूसरी बातें भी सुनने को मिलती हैं जिनका वर्णन यहां न करना ही अच्छा होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कलकत्ते का एक युवक मिला, जिसके पिताजी से मेरा अच्छा परिचय था। उसकी सूट के बारे में बात हुई तो पता चला कि ऊँट के बालों की है और कीमत २२००), २३००) रुपया! क्योंकि आयात के प्रतिबंध के कारण ऐसा कपड़ा भारत कें बहुत कम आ पाता है। मैंने हिसाब लगाया कि उस एक सूट की लागत मेरे डेढ़ सौ धोती, गंजी और कुरतों के बराबर थी।

एक दिन एक युवक मित्र द्वारा ला-बला नाम के प्रसिद्ध रेस्तरां में निमंत्रित हुआ। सब मिलाकर आठ-दस व्यक्ति होंगे जिनमें दो-तीन उसके विदेशी व्यापारी मित्र भी थे। यह जानते हुए भी ऐसी जगह में खाने-पीने की चीजों के बारे में पूछना सभ्यता से बाहर माना जाता है, मन नहीं मानता और आमिष निरामिष के बारे में पूछ लेता हूँ। सूप के बारे में पूछा तो पता चला कि समुद्र के बीच में किसी टापू की चिड़िया के घोंसले का है; जो इस रेस्तरां की विशेष तैयारी मानी जाती है। यह घोषला आमिष है या निरामिष फिर से पूछना ठीक नहीं समझा और सूप नहीं लिया। खाने-पीने पर सारा खर्च करीब पाँच सौ रुपया हुआ जिसमें आधा तो केवल चिड़ियों के घोंसले के सूप का ही था। मन में अपने को भी दोषी अनुभव करने लगा कि मेरे ऊपर भी तो पचास रुपये का खर्च आ गया।

इन बाइस सौ रुपये की ऊंट के बालों की सूट पहिनने वालों तथा ५०) रुपये के चिड़ियों के घोंसले का सूप पीने वाले युवकों से यह कहने का मन होता है कि उनकी सही कीमत तो उसी हालत में ही आंकी जा सकती है जब कि वे अपने पूर्वजों की तरह या आजकल के दूसरे ग़रीब युवकों की तरह अनजानी जगह में जाकर कितना कमा पायेंगे।

मुझे इसी समाज का एक युवक कुछ दिनों पहले कलकत्ते की बेंटिक स्ट्रीट में मिला। नौकरी छूटने के बाद तीन सौ रुपयों की पूँजी से पुराने लोहे के टुकड़े सियालदह, कार्नवालिस स्ट्रीट या इन्टाली से ठेले पर लादकर ५-६ मील प्रति-दिन पैदल चलकर हावड़ा के किसी कारखाने में ले जाता है। वहां उनसे मोटरों के चक्कों के ढक्कन बनवा कर दूसरे कारखाने में पालिस करवा कर यहाँ की दूकानों में विक्री करता है। इस कड़ी मेहनत से उसे २५०)-३००) रुपया मासिक मिल जाते हैं। जिनमें से एक सौ रुपया यहाँ रहने और खाने– खर्च के बाद देकर डेढ़ सौ दो सौ अपने गांव भेज देता है जहाँ उसकी स्त्री, मां और तीन बच्चे हैं।

भारतीय जीवन का आदर्श सैकड़ों हजारों वर्षों से श्रम, संयम और संतोष का रहा है। साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए भी हमें बहुत प्रकार के बलिदान करने पड़े हैं, इसलिए हमारी संस्कृति और समाज के लिए साम्यवाद किसी भी प्रकार वांछनीय नहीं है, परन्तु हमारी आज की स्थिति भी ज्यादा दिन नहीं रह पाएगी। क्योंकि एक ओर तो नाना प्रकार के व्यसनों में पानी की तरह धन बहाया जाता है और दूसरी तरफ देश के करोड़ों बच्चे और बुड्ढों को भूखे पेट और नंगे तन रहना पड़ता है।

विषमता सारे संसार में ही है, परन्तु जब वह सीमा लांघ जाती है तब या तो रूस और चीन की तरह साम्यवाद आता है या अन्य अरब देशों और पाकिस्तान की तरह फौजी तानाशाही। काश, समय रहते हम चेत जायँ और अपनी आवश्यकता एवं विचारों को संयमित करके इस प्रकार का प्रदर्शन न करें जिससे दूसरों के मन में दुःख और ईर्ष्या पैदा हो।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नई पीढ़ी का दूसरा पहलू

'मारवाड़ी समाज की नई पीढ़ी किस तरफ' शीर्षक से लिखे लेख के पक्ष में और विपक्ष में काफी चर्चा हुई। यहां तक कि बम्बई तथा राजस्थान से भी पत्र आये। इससे दो अनुभव हुए। पहला तो यह कि समाज के विभिन्न क्षेत्र के लोगों में इस समस्या पर अच्छे पैमाने पर दिलचस्पी है, क्योंकि सुदूर क्षेत्रों में यह लेख भेजा गया और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि हिन्दी समाचार-पत्र भी काफी बड़ी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों में पढ़े जाते हैं।

उक्त लेख में किसी के प्रति आक्षेप आदि का तो प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि जिन लोगों का चित्रण किया था वे तो सब अपने ही हैं। हाँ, कई दिनों से मनमें एक प्रश्न उठ रहा था उसको लोगों के सामने विचारार्थ रखा था।

जिन लोगों ने इस बारे में अपने विचार बताये या सुझाव रखे, उनमें श्री कालीप्रसाद खेतान तथा विश्वमित्र के "मैदान में मजलिस" के विशेष विचारणीय हैं। खेतानजी विभिन्न समाज के लोगों से मिलते रहते हैं, साथ ही बहुपठित और अनेक देशों की यात्रा कर चुके हैं इसलिए उनके अनुभव भी बहुमूल्य हैं। उन्होंने युवकों के जीवन के दूसरे पहलू के बारे में लिखा वह हर समय में और हर समाज में रहे। सौ-सवा सौ वर्ष पहले के बंगाली-समाज के एक पक्ष का चित्रण मैंने अपने लेख में किया था परन्तु उस समय भी श्री रामकृष्ण परमहंस, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि जैसे महापुरुष मौजूद थे और उन्हीं के पुण्य कृत्यों से आज का बंगाली समाज व्यापार और उद्योग में पिछड़ा होने पर भी शिक्षा, साहित्य, कला, राजनीति, कानून और चिकित्सा क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान रखता है।

इसी प्रकार आज भी जहाँ मारवाड़ी-समाज के कतिपय धनाढ्य युवकों में अत्यधिक फिजूल खर्ची तथा फैशन-परस्ती आ गयी है, वहाँ ऐसे उदाहरण भी अनेक हैं कि सम्पन्न तथा मध्यम दोनों तबकों के युवकों में अच्छी श्रेणी के डाक्टर, इन्जीनियर, अर्थ-शास्त्री, प्रोफेसर और कानून-विशेषज्ञ मिल जायँगे। १९६१ में हमलोग जब रूस गये तब वहाँ मास्को में भी हमें मारवाड़ी युवक शिक्षार्थी मिले और पिछले वर्ष वाशिंगटन और शिकागो में भी मिले जो ऊँची इन्जीनियरिंग शिक्षा के साथ-साथ बचत के समय में ढ़ाई-तीन हजार रुपये महीना उपार्जन कर लेते थे, जिससे वहां का खर्च निकालकर घर भेजने को भी बचा लेते थे। अच्छी श्रेणी के लेखक, कवि, कलाकार, डाक्टर और समाज-सेवी भी हमारे युवकों मे हैं। इन युवकों के प्रयत्नों से ही हम अपना स्थान न केवल उद्योग व्यापार में, बल्कि दूसरी विभिन्न प्रवृत्तियों में भी सुरक्षित रख पाये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे विचार जो श्री सिंघी द्वारा व्यक्त किये गये हैं, उनमें भी दो मत की बात नहीं है। हमें सूट पहनने या रेस्तराँ में खाने का विरोध नहीं है, किन्तु विरोध है चोरी से आयात किये हुए अत्यन्त कीमती कपड़े के सूट से और २० रु० प्रति कप के समुद्र की चिड़िया के घोंसले के सूप से।

जहाँ देश में आवश्यक उद्योगों और बीमारों की दवाई के लिए भी आयात राशि नहीं मिल पाती, वहां ऐसे वाहियात कामों में विदेशी मुद्रा खर्च करना एक प्रकार से देशद्रोह है। अब रही अपने पर कम खर्च करके दूसरे गरीब लोगों और संस्थाओं को सहायता देना। मेरी राय में तो यह भी तभी संभव हो सकेगा जबकि हमारे धनिक युवक दूसरे गरीब लोगों से मिल-जुलकर सहानुभूतिपूर्वक उनकी आवश्यकताएँ सुनेंगे अथवा सार्वजनिक संस्थाओं में भाग लेंगे। इससे उनको जो एक प्रकार की "मानुष गन्ध" आने लगी, उसमें कमी आयेगी ; साथ ही देश में बड़े पैमाने पर फैली हुई गरीबी और भूखमरी को भी नजदीक से देखने का मौका मिलेगा।

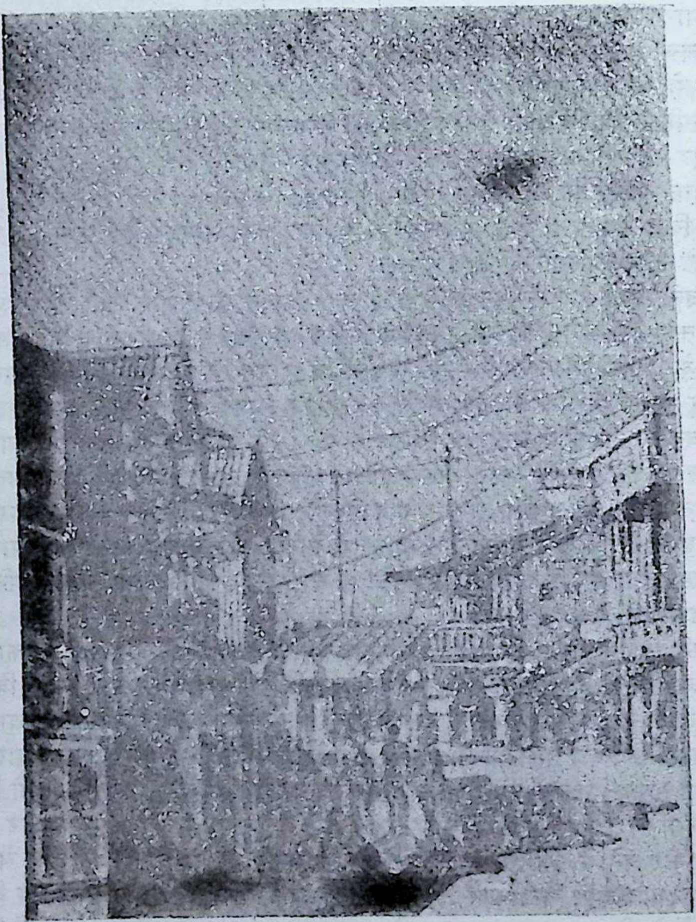

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चरित्र-निर्माण में साहित्य का स्थान

किसी देश के निवासियों के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के निर्माण और विकास में साहित्य का बहुत बड़ा हाथ रहता है । साहित्य समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब-मात्र नहीं है, वह समाज के रुप-निर्धारण में भी सहायक का काम करता है । वह समाज की दिशा का द्योतक मात्र ही नहीं है—दिशा-निर्देशक भी है । जहाँ एक ओर साहित्य समाज की गति का चित्रण करता है, वहाँ दूसरी ओर वह उस गति के क्रम का भी निर्धारण करता है । बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि जब समाज ऊँचा उठता है तो साहित्य का स्तर भी ऊँचा मालूम होता है और जब समाज पतन की ओर अभिमुख होता है तो साहित्य भी उसी प्रकार निम्नगामी नजर आता है, लेकिन हम ध्यान से देखें तो यह मालूम होगा कि साहित्य समाज की दशा का लक्षण मात्र नहीं है—उसका कारण भी है ।

इतिहास में इसके अनेक उदाहरण पाए जाते हैं । रोम साम्राज्य कभी उन्नति के शिखर पर था । जिस साहित्य का उस युग में निर्माण हुआ, वह रोमन समाज को चित्रित करने के साथ प्रेरणा देने का काम भी करता था । लेकिन जब वहाँ के साहित्यकारों ने अपने साहित्य का रुख शुद्ध कलात्मकता को छोड़कर शासकों और सम्राटों की चाटुकारिता और इच्छापूर्ति की ओर मोड़ दिया तो उसके चलते सिर्फ साहित्य का ही नहीं, देश का भी पतन हुआ । अपने शासकों की वासनापूर्ति के लिए जिस प्रकार के साहित्य का निर्माण उन्होंने किया, वह देश को ले डूबा ।

दूसरा उदाहरण लुई १४वें के राज्यकाल में फ्रान्स का है । उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार भी उसकी प्रेमिकाओं के लिए उत्तेजक और अश्लील साहित्य की रचना में लगे रहे—जिसके चलते देश में विलासिता का एक ऐसा वातावरण बना, जिसके शिकार वहाँ के शासक ही नहीं, फ्रान्स का पूरा समाज हुआ ।

अपने यहाँ भी उर्दू और ब्रजभाषा दोनों के साहित्य में एक ऐसा काल आया, जब रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नहीं थी । विलासिता का वह साहित्य शासकों तक ही सीमित न रहा—आम-जनता भी उससे प्रभावित हुई ।

इसके अतिरिक्त संसार के विभिन्न देशों में इसके अनेकों उदाहरण पाए जाते हैं । हमारे यहाँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व वर्षों में सर्वश्री मैथलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने जो साहित्य लिखा था, उसने आजादी की प्रबल इच्छा यहाँ के लोगों में पैदा की । आज हमारे लिए चिन्तनीय विषय यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्र के उत्थान में प्रेरणादायक साहित्य का जो रूप होना चाहिए, वह पर्याप्त मात्रा में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
नहीं हो पा रहा है । मस्ती और निराशा के अलावा उच्छृंखलता एवं विलासिता का भी जोर बढ़ा है, परिणाम यह हुआ कि आम-जनता की रुचि विकृत होती जा रही है । इस विकृति को किसी भी सिनेमागृह में जाकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । जिस तरह के दृश्यों पर तालियाँ पिटती हैं, कहकहे लगते हैं, आवाजें कसी जाती हैं, वह किसी भी सभ्य व्यक्ति का सिर झुका देने के लिए काफी है । आज इस प्रकार की कविताओं, कहानियों और उपन्यासों की भी कमी नहीं है । इससे केवल समाज का ही अहित नहीं हो रहा है—देश का भविष्य भी बिगड़ रहा है । आगे आने वाली पीढ़ी की रुचि, चरित्र और व्यवहार के भी कलुषित होने की सम्भावना है.।

इसलिए इस दिशा में यदि शीघ्र प्रतिकार की चेष्टा नहीं की गई तो देश के भविष्य को नहीं सुधारा जा सकेगा ।

यद्यपि बिना सरकारी कड़े नियन्त्रण के इस प्रकार के गन्दे साहित्य के निर्माताओं को रोकना सम्भव नहीं हैं, फिर भी विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा इस दिशा में सतत् प्रयास अपेक्षित है ।

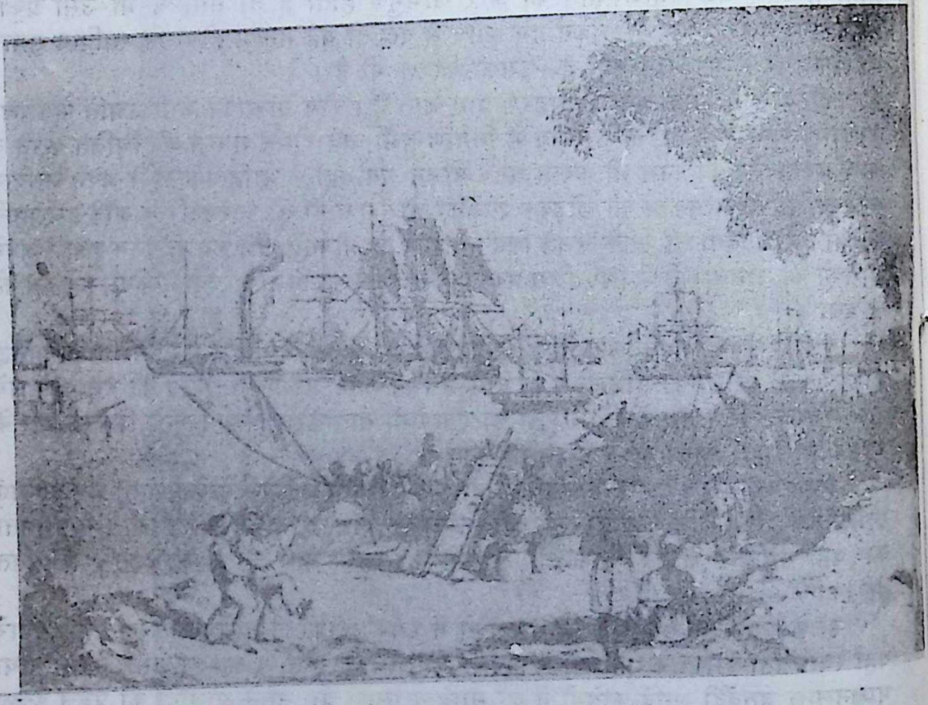

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक विचित्र अनुभूति

जयपुरसे आते हुए सुबह ७ मईको आगरा पहुँचा। लोहामण्डीमें रिक्शा किया और सिकन्दरासे दो मील दूर अपने साहित्यिक मित्र रावीजीक निवास स्थान कैलास के लिए चल पड़ा। कैलाससे करीब आधा मील इधरका स्थान कुछ दूर तक जंगल-झाड़ियोंसे भरा, सूनसान और वीरान है। अचानक ऐसा लगा कि मुझ पर कोई हलकी सी चीज आकर गिरी। चारों तरफ देखा, कुछ भी नहीं था, न कोई आदमी। रिक्शा अपनी चाल चला जा रहा था। थोड़ी दूर आगे जाने पर वैसी ही चीज फिर गिरी जान पड़ी। इस बार सतर्कतासे खोजबीन की, किन्तु कपड़ों पर या रिक्शेमें, कहीं भी कुछ न मिला।

कैलास की श्यामकुटी में रावीजी के घर इसके पूर्व कई बार जा चुका हूँ। परन्तु इस बार न जाने क्यों मनमें एक हिचक सी हुई। अकेले ऊपर जानेके बजाय मैंने रिक्शेवाले से कहा—"चलो देख लें रावीजी हैं या नहीं।"

जब हम दोनों ऊपर पहुँचे तो देखा कि सारा मकान सूनसान पड़ा है। न रावीजी न उनके लोग और न सदा वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी जी। कई बार आवाज देकर उसी पैरों हम दोनों वापस आ गए। पास-पड़ोससे पता चला कि रावीजी यह मकान छोड़कर सिकन्दरासे आगे गीता मन्दिरमें चले गए हैं। मैं उसी रिक्शे पर गीता मन्दिर आ गया।

रावीजी अपने जमे-जमाए स्थान कैलासको छोड़कर यहाँ क्यों आ गए, इसके बारेमें उन्होंने जो जानकारी दी, वह आजके बुद्धिवादी वर्गके लिए शायद अग्राह्य होगी। परन्तु उन जैसे भले और प्रामाणिक व्यक्तिकी बात पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता।

घटना अद्भुत रही। १८ और १९ अप्रैल १९७२ दो दिनोंके लिए वे दिल्ली गए। २० को वापस कैलास आने पर उन्हें बताया गया कि कई बार मकानमें पत्थरों के छोटे-बड़े टुकड़े गिरे और तरह-तरहकी आवाजें भी सुनाई पड़ीं। उन्होंने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। उसी शाम उनके यहाँका दस-बारह वर्षका एक बच्चा स्कूलसे वापस आया। शकल बदली सी और आँखोंमें अजीब सी चमक थी। थोड़ी देर बाद कड़कती हुई आवाजमें कहने लगा—"आइन्दा इस बच्चे को अकेले इस रास्ते पर न भेजिएगा, आज तो मैंने इसकी रक्षा कर दी।"

रावीजीने प्रकोपग्रस्त बालक से पूछा—"आप कौन हैं?" उसने उत्तर दिया "मैं श्यामलाल हूँ, मैंने ही यह मकान बनवाया था। बहुत वर्षों तक इसमें संन्यासीके रूप में रहा। जीवन में कुछ ऐसी गलतियाँ हो गई कि मुझे प्रेतयोनि में रहना पड़ रहा है। अब यहाँ कुछ ऐसी भयानक प्रेतात्माएँ आकर रहने लगीं हैं जो नहीं चाहतीं कि आप लोग यहाँ रहें।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

थोड़ी देर बाद बच्चा अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया। जब उससे पूछा गया तो वह स्वयं चकित हो गया। उसे पहले की बात याद न थी।

संयोगसे रावीजीके साथ उनके साहित्यिक मित्र श्री आनन्द जैन भी दिल्ली से कैलास आए थे। उन्होंने हँसते हुए कहा कि यह सब ढोंग है, मैं एक-दो दिनमें ही आपके भूतों को भगा दूँगा। विज्ञानके इस युगमें इन बातोंको कोई विश्वास नहीं करेगा। इतनेमें ही सोडावाटरकी एक बोतल आकर उनके बीच गिरी। शीशेके टुकड़े चारों तरफ बिखर गए पर किसीको चोट नहीं आई। फिर ईंटका टुकड़ा भी गिरा। सबों ने बहुतेरी जाँच-पड़ताल की पर फेंकने वाला न मिला, न उसका कोई निशान ही।

उसी रात वह बच्चा जोर-जोरसे रोकर कहने लगा,—"साफा बाँधे एक आदमी मुझे ऊपर बुला रहा है।" बच्चेकी माँ वहीं थी, उसने गोदीसे उसे चिपका लिया। थोड़ी देर बाद बच्चे ने कहा,—"माँ, मुझे साधु बाबा बुला रहे हैं।" इस बार वह डरा सा नहीं था। खुद ही खुशी-खुशी ऊपर छतपर चला गया।

वापस आकर उसने बताया कि बाबाजीका सिर घुटा हुआ था, भगवा वस्त्र पहने थे, पैरोंमें खड़ाऊँ। मुझसे कह रहे थे कि मेरी जो यह लोहेकी खाट है, उसका सिरहाना दूसरी ओर कर दो। तुम लोग यहाँसे अब चले जाओ। पास के कैलास मन्दिरसे गोसांईजी आ गए थे। उन्होंने बताया कि श्यामलालजी इसी वेशमें रहते थे। संन्यासी होनेके बाद उन्होंने कुछ अक्षम्य अपराध किए थे।

दूसरे दिन लड़का फिर प्रभावमें आ गया। उससे बात करनेके सिलसिलेमें रावीजीने कहा, "महाराज यदि आप हमारे हितैषी हैं तो हम लोगोंके साथ चाय पीजिये।" प्रेतात्मा के बताए अनुसार एक कप चाय कमरेके भीतर रख दी गई। दो मिनट बाद चायका प्याला खाली मिला। उन्होंने भोजनका भी निमन्त्रण स्वीकार किया। हमने एक थालीमें भोजन सजाकर रखा और कमरा बन्द कर दिया। थोड़ी देर बाद देखा थालीसे दोनों फूलके और दाल समाप्त हो चके थे, चावल ज्योंके त्यों रखे थे। इतनेमें ही एक साबित ईंट आकर गिरी। आनन्दजी भी अब कुछ सहमे। उन्होंने उपस्थित सब लोगोंसे एक कागज पर हस्ताक्षर कराया और उसे ईंट पर बाँध दिया और कहा कि हम चाहते हैं कि यह ईंट सामने की खिड़की पर चली जाय। छोटा सा कमरा था, कोई अन्दर था नहीं। उसे अच्छी तरह बन्द कर दिया गया। कुछ देर बाद खोलने पर देखा गया कि ईंट खिड़की पर रखी है और हस्ताक्षर का पर्चा खुला हुआ है। बच्चे पर उस समय तक प्रभाव था। रावीजी ने कहा कि यदि आप हमें पाँच दिन की मोहलत दें तो हम जैसे भी हों, चले जाएंगे। जवाब मिला, "पाँच दिन तक आप पर कोई बाधा नहीं आएगी। आराम से रहिए।"

२५ अप्रैलको जब वे वहाँसे अपना सामान बाँधकर चलने को तैयार हुए तो किताबोंसे भरी एक बड़ी सन्दूक के लिए सोचा कि फिर कभी ले जाएंगे। मगर देखनेमें आया कि वह दरवाजे तक अपने आप खिसक आई। इशारा स्पष्ट था, आखिर उसे भी लेकर आ गए।

रावीजीकी भतीजी प्रभाजीकी सन्दूकमें एक डायरी थी, उसमें लिखा हुआ मिला, "आदरणीय रावीजी, जैन बहुत तर्कवितर्क करता है, इसे समझा दीजिए और भी बहुत सी बातें थीं। मैंने वह डायरी देखी। भाषा और लिखावट साधारण थी। वह सन्दूक भी मैंने रावीजीके नए स्थान पर देखी।

इन बातों की खबर पाकर श्यामलालजीके पुत्र आए। वे आगरेमें डाक्टर हैं। उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी भी तीन चार दिन पहले जोर-जोरसे कहने लगी थी कि जल्द ही श्यामकुटीका नाश हो जाएगा।

सारी बातें सुनकर मुझे अपने ऊपर गिरी अदृश्य वस्तुकी याद आई। मनमें एक सिहरन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सी हुई ।

श्यामकुटीमें रावीजी बहुत वर्षों रहे । उस निर्जन स्थान को खाली करवानेकी किसी को गरज भी नहीं थी, क्योंकि न तो वहाँ किराया ही आ सकता था, और न किसीके रहनेका प्रश्न था । आस-पासमें वे बहुत ही सेवा-भावी और मिलनसार माने जाते हैं । उनसे कोई वैर-भाव भी रखने वाला नहीं है ।

इस घटनाको उन्होंने अपने 'नये विज्ञापन' के मई अंकमें संक्षेप में प्रकाशित किया । वैसे भी पास-पड़ोसमें यह घटना काफी चर्चाका विषय बनी हुई है । कुछ मित्रोंकी राय है कि टोलीमें वहाँ जाकर रातमें रहा जाय ।

मैं स्वयं भूत-प्रेतोंमें विश्वास नहीं करता । हो सकता है मुझे जो अनुभव हुआ, वह मनका भ्रम हो । परन्तु जिस विस्तार से रावीजी, उनकी भतीजी तथा बच्चोंने बातें बताई उन पर अविश्वासका कारण नहीं बनता । उस बालकको भी देखा, बहुत ही निरीह, सीधा-सादा है । मैंने श्री आनन्द जैनको पत्र लिखा और उनके उत्तरसे मेरी धारणा की पुष्टि होती है ।

बहुत दिनों पहले मैंने बी० डी० ऋषि और लेडबीटरकी पुस्तकें इस सम्बन्ध में पढ़ी थीं । कुछ घटनाएँ भी सुन रखी थीं । परन्तु इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ना चाहूँगा ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का नया प्रयोग

आजसे तीन वर्ष पहले जब देशके चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो इनमें जमा लगभग तीन हजार करोड़ रुपयोंकी पूँजी सरकारी नियन्त्रणमें स्वतः ही आ गयी। परन्तु मूलतः उन बैंकोंके जो भागीदार (शेयर होल्डर) थे, उनको इक्कीस करोड़ रुपये के करीब चुकता पूँजी और रिजर्व का जोड़कर मिल गया। इससे जो लाखों छोटे-बड़े भागीदार थे, वे एक प्रकारसे सन्तुष्ट हो गये। हाँ, इन संस्थाओं की पचासों वर्षकी साख (गुडविल) के लिए कोई मुआवजा नहीं दिया गया था। पिछले वर्ष साधारण बीमा कम्पनियों का जब राष्ट्रीयकरण हुआ तब लोगोंके मनमें यह विश्वास था कि पहले की तरह ही मूल धन और सुरक्षित कोष (रिजर्व फण्ड) को जोड़कर भागीदारों को रुपया मिल जायेगा। परन्तु इस बार सरकारने यह मुआवजा पिछली बारकी तरह (जो उचित और आवश्यक था) न देकर केवल लाभांशके अनुपात से दिया। नतीजा यह हुआ कि अपेक्षित कीमतोंसे लगभग आधी ही हिस्सेदारोंको मिलेगी।

गत फरवरीके विधान सभाओंके चुनावोंके दौरान वित्त मन्त्री श्री चह्वाणने गुजरातमें अपने भाषाणोंमें कहा था कि आवश्यक वस्तुओंके करखानोंका सरकार राष्ट्रीयकरण कर लेगी इसके पूर्व इस सम्बन्धमें संसदमें एकाधिकरणको तोड़ने के लिए २७वीं धारामें संशोधन भी किया जा चुका था। पिछले दिनों जिस प्रकारसे कोकिंग कोयलाकी खानों और इण्डिन कापर कम्पनीको सरकारी तत्वावधानमें बिना मुआविजा तय किये ले लिया गया, उससे उद्योगपतियोंमें चिन्ता होनी स्वाभाविक हीं थीं। अब, नयी दिल्लीमें विश्वस्त सूत्रोंसे पता चला है कि कुछ अर्थ विशेषज्ञों एवं कम्पनी-कानूनके जानकारों ने सरकारको ऐसी सलाह दो है जिससे कि बहुत थोड़े रुपयों में एक नये तरीकेसे उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण हो जाय। इसके लिये एक समिति बन गई है जिसके सदस्य हैं वित्त सचिव श्री आई० बी० पटेल, उद्योग सचिव श्री बी० बी० लाल एवं कम्पनी-कानून सचिव श्री आर० प्रसाद। यह समिति पूरी जाँच और जानकारी करके सरकारको सलाह देगी कि बिना मुआवजा दिये किस प्रकारसे बड़े और जरूरी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो जाय। वैसे, बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट और धर्मार्थ ट्रस्टोंके हिस्सोंकी प्राक्सीसे सरकारका बहत सी कम्पनियों पर इस समय भी अधिकार हो सकता है, परन्तु इसमें इस बातका डर है कि मैनेजिंग एजेन्सी समाप्त होनेके बावजूद उद्योगोंके वर्तमान संचालक नाना प्रकारके झंझट लगा सकते हैं। इसलिए उक्त समितिका पहला कार्य यह होगा कि बड़े-बड़े उद्योगपतियोंको बुलाकर इस बातके लिए तैयार करें कि वे अपने हिस्से सरकारको बेच दें। इस प्रकार से केवल तीस-पैंतीस प्रतिशत हिस्से खरीद कर ही विभिन्न उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण हो जायेगा। अध्यक्ष और प्रबन्ध निर्देशक सरकारी हो जायेंगे.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संचालक-मण्डलमें भले ही वर्तमान संचालकों में से कुछको रहने दिया जाय।

यह भी सम्भव है कि अधिकांश वर्तमान अधिकारियों और तकनीकी विशेषज्ञोंको पूर्ववत अपने-अपने पदों पर बहाल रखा जाय। परन्तु इसमें यह अड़चन आ सकती है कि उनका अधिकतम मासिक वेतन वर्तमान दृष्टिकोणके अनुसार साढ़े तीन हजारसे अधिक न हो जब कि उनमेंसे कइयोंको इस समय पाँच-सात हजार तक मिलते हैं। यहाँतक सुना गया है कि कुछ बड़े उद्योगपतियोंको बुलाकर इस सन्दर्भमें बात-चीत शुरू कर दी गई है। ऐसा अनुमान है कि यदि वर्तमान संचालक स्वेच्छा पूर्वक अपने हिस्से वेचना नहीं चाहेंगे तो आगामी सितम्बर-अक्टूबरसे संसदीय सत्रमें वांचू समिति की रिपोर्ट पर जब विचार होगा, उस समय २७ वीं धारामें भी बड़ा परिवर्तन करके सरकार अपने हाथेमें यह अधिकार ले लेगी कि किसी भी प्रतिष्ठानके हिस्से जो संचालकोंके पास हों उसे सरकार बाजार भावमें खरीदे ले कहा जाता है कि सर्वप्रथम एल्यूमीनियम, लोहे और चीनी के उद्योग लिए जायेंगे। ऐसा लगता है कि अपने आपमें नये ढंगसे राष्ट्रीयकरणकी दिशामें यह एक बहुत बड़ा निर्णय होगा।

देखना यह है कि इन कारखानों की इस समय जैसी प्रगति होती जा रही है और भागीदारोंको भी जो अच्छा लाभांश मिल रहा है वह सरकारी नियन्त्रणमें जानेके बाद रह सकेगी या नहीं। वर्तमान सरकारी क्षेत्रके अधिकांश कारखानोंकी हालत तो शोचनीय है और वे घाटेमें चल रहे हैं।

आज टाटा, बिड़ला, भरतराम और कस्तूरभाई जैसे सुदक्ष संचालकोंके तत्वावधानमें नये होने वाले उद्योगोंके हिस्से जिस तत्परता से बिक जाते हैं, उसमें भी शायद कमी आ जाएगी क्योंकि खरीददारोंको यह भरोसा नहीं रहेगा कि ये कारखाने उन्हींकी देख-रेख में रह पाएंगे या नहीं।

इण्डियन कापरके हिस्सोंका भाव पहले चार रुपयेका था। अब सरकारी नियन्त्रणके बाद उसका भाव २५ प्रतिशत घट गया है। हो सकता है कि जो उद्योग सरकार अपने नियन्त्रणमें लेगी, उनके संचालकोंको वर्तमान कीमत या उससे कुछ अधिक मिल जाए किन्तु शेष बचे लाखों छोटे-बड़े भागीदारोंको तो भविष्यमें शायद ही वर्तमान लाभांश मिल पाएगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुनाहों का बादशाह

महमूद गज़नवी, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी याद आते ही बेकसूरोंकी हत्या, बेकसोंकी अस्मतदारी, मन्दिरोंकी ध्वंस लीला, गाँव, कस्बों, नगरोंकी आगजनी आदि की दर्दनाक तस्वीरें सामने आ जाती हैं।

तैमूरकी तरह ये सब सिर्फ लूटके लिए भारत आए और अपना मकसद पूरा कर चले गए, पर इस लेखके नायक औरंगजेबको यहीं पैदा और दफ़्न होना था।

सन १६१८ में दोहद (गुजरात) में जन्म हुआ। पिता शाहजादा खुर्रम वहाँका सूबेदार था। १६२७ में वह शाहजहाँ के नामसे तख्तनशीन हुआ। औरंगजेब भी तबसे आगरामें रहने लगा। वहीं उर्दू, फारसी और अरबीकी शिक्षा पाई। बादशाह बड़े शाहजादे दारा शिकोह और शाहजादी जहानआरा से विशेष स्नेह करता था, इसलिए शुरूसे ही औरगंजेब कुछ अलग-थलग सा रहकर कुरान शरीफ, मुहम्मद साहब की जीवनी और शेख जैनुद्दीनकी कृतियोंके अध्ययनमें तल्लीन रहने लगा। युवराज दारा शिकोह अधिकतर मौज-शौक व काव्य संगीतमें मस्त रहता। शायरों, सूफी फकीरों तथा हिन्दू सन्तोंकी संगत करता।

सत्रह वर्षकी अवस्था में औरंगजेबको तीन सेनाओं का अधिपति बनाकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया। थोड़े ही समयमें उसने ओरछा पर अधिकार कर लिया अनेक मन्दिर तोड़े और अपार धन सम्पत्ति लेकर वापस लौटा। मुसलमान दरबारी प्रसन्न व प्रभावित हुए। औरंगजेब की मजहबी कट्टरताको बल मिला। आगे जाकर इसीके अनुसार अपने आचरण तथा व्यवहार को ढालता गया। हिन्दू विद्वेष के बल पर वह गाजी बननेका स्वप्न देखने लगा।

१६५२ में एक बड़ी फौजके साथ उसे दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा गया। ६ वर्षकी अवधिमें उसने वहाँकी शासन व्यवस्था और आमदनी की स्थिति सुदृढ़ कर ली। आगरेके दरबार में धाक जम गई। वहाँ उससे सहानुभूति रखनेवाले पहले ही से थे, जो जरूरी सूचनाएं भेजते रहते थे। इनमें बादशाहकी छोटी शाहजादी रोशन आरा प्रमुख थी।

बादशाहने शाहजादा दारा शिकोहको तख्त-नशीन करने का ऐलान कर दिया। वैसे भी वली अहद होने के नाते लम्बे अरसेसे वह बादशाहके नाम पर शासन-संचालन करता आ रहा था। अकस्मात् १६५७ में बादशाहकी बीमारीकी खबर फैली तो तख्तके लिए चारों शाहजादे बेताब हो उठे। बंगाल से शाहशुजा दक्षिणसे औरंगजेब और गुजरातसे मुरादने अपनी पूरी फौजोंके साथ आगराकी ओर कूच कर दिया।

३९ वर्षके औरंगजेब को पिछले २३ वर्षों के शासन व युद्ध संचालनका अनुभव था। अपने व्यक्तित्व पर दीन इस्लामका मुलम्मा चढ़ा चुका था, छल-नीतिमें प्रवीण था ही। मीर जुम्ला और शाइस्ता खाँ जैसे प्रमुख प्रभावशाली व्यक्तियोंको उसने बड़ी आसानीसे अपनी ओर मिला लिया।

मुगल खानदानमें शाही तख्तके लिए खूंरेजी विरासतमें चली आ रही थी, पर पहले और अबकी स्थितिमें फर्क था। बादशाह अभी मौजूद है, वली अहद का ऐलान हो चुका है, शाही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फरमान लम्बे अरसे से उसके दस्तखतसे निकल रहे हैं। औरंगजेबने सोचा, वक्त नए तरीकेका तकाजा कर रहा है। उसने अपने छोटे भाई मुरादको मोहरा बनाया, कहने लगा—हिन्दू परस्त काफिर दारा को शिकस्त देकर सल्तनतको एक सच्चे बहादुर और इस्लाम पर यकीन रखनेवाले मजबूत हाथोंमें सौंप देना ही मेरा फर्ज है। यह तभी मुमकिन है जब आप जैसा कौल फेलका पक्का जांबाज ईमान-परस्त तख्त-नशीन हो। उसके बादमें जिन्दगीके बाकी दिन मक्का शरीफमें सुकूनसे गुज़ार सकूँगा। उसने मुरादको बादशाह बनाने की क़सम खाई। उसे जहाँपनाह-बादशाह हुजूर कहने लगा, दस्तवस्ता कोर्निश करने लगा। बेवकूफ मुराद जालमें फँस गया, तख्तकी सूरत देखनेके पहले ही खुदको हिन्दुस्तानका शाहंशाह समझ बैठा।

धौलपुरके पास धरमतके मैदानमें शाहज़ादोंकी व शाही फौजमें जंग छिड़ा। शाही फौजका सेनापति कासिम खाँ पहले ही से औरंगजेबसे मिला हुआ था। ऐन वक्त पर इस्लामी रंगमें रंगे मुसलमान सिपहसालारोंने धोखा दिया। महाराज जसवंत सिंह अपने बहुतसे राजपूत योद्धाओंको खोकर घायलावस्था किसी प्रकार जोधपुर वापस पहुँचे।

डेढ़ महीने बाद सूमागढ़ का निर्णायक युद्ध हुआ। इसमें बादशाह स्वयं जाना चाहता था, पर औरंगजेबसे मिले हुए दरबारियोंने दारासे कहा—यदि बादशाह सलामत खुद तशरीफ ले जायेंगे तो फतहका सेहरा आपको नहीं, उन्हींको मिलेगा। इस पर उसने बादशाह से अर्जकी कि जबतक बन्दा जिन्दा है, जहाँपनाहको तकलीफ करने की जरूरत नहीं। दारा एक विशाल सुसज्जित फौज लेकर मैदाने जंगमें उतरा। औरंगज़ेबके पास इसकी आधी भी नहीं थी। इस बार भी सिपहसालार खलीलुल्ला खाँ दुश्मनोंसे मिला हुआ था। उसने दाराको घोड़े पर चढ़कर युद्ध संचालन करनेकी सलाह दी। सफेद हाथी का हौदा खाली देखकर शाही फौजने समझा कि दारा मारा गया। बूँदी नरेश छत्रसाल जैसे वीर सेनानी तथा इतनी बड़ी सेना होते हुए भी शाही फौज हार गयी। दूसरे दिन औरंगजेबने बादशाहको पत्र लिखा कि दारा काफिरोंसे मिलकर गद्दी हथियाना चाहता था, इसीलिए मुझे जंगके लिए मजबूर होना पड़ा। अब मैं आपके हुजूरमें हाजिर होकर खिदमत पेश करना चाहता हूँ।

दो-तीन दिनोंमें आगरा शहरकी व्यवस्था कर अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुलतानको किलेका घेरा डालनेके लिए भेज दिया। घेरा कसता गया, रसद व पानी बन्द हो गया। आठ जून को किला उसके कब्जेमें आ गया। जो भी पहरेदार खोजे तथा हरमकी डयूटी पर तैनात सशस्त्र तातारी औरतें मिलीं, सभी को मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार अपने समय का सर्वाधिक सम्पन्न वैभवशाली वृद्ध बीमार बादशाह अपने ही युवक पौत्र द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रमुख दरबारियोंको धन तथा पदका लालच देकर, केवल पन्द्रह दिनोंमें औरंगजेबने पूरे तौरसे अपने पैर जमा लिए बादशाहको कैद हो गयी, मगर बेवकूफ बादशाह हुजूर मुराद की मुराद अभी बाक़ी थी, उसे ठिकाने लगाना था।

फतहकी खुशीमें जश्न मनाया गया। हुजूरे आलम 'बादशाह' को खूब पिलाई गई। शराबके नशेमें धुत्त बेहोश मुरादको क्या पता कि क्या हो रहा है। आँखें खुलने पर उसने अपनेको शाही तख्त पर नहीं, शाही कैदखानेमें पाया। साढ़े तीन वर्ष तक ग्वालियर के किले में भाँति-भाँतिकी कठोर यंत्रणाएं दिए जाने पर भी जब उस अभागेके प्राण न निकले तो औरंगज़ेबने दो गुलामों को भेजकर उसे दुनियाकी कैद से रिहा कर दिया।

आगरा से भागकर दारा सपरिवार दो महीने तक पनाह की खोजमें भटकता फिरा। जहाँ पहुँचा वहीं कोरा जवाब। आखिर अहमदाबादके सूबेदार जीवाँ खाँ ने पनाह दी, एक बार दारा ने उसकी जान बचाई थी। वक्तकी बात, इसी सूबेदार ने इनामके लालचमें दाराको औरंगज़ेबके सिपाहियोंको सौंप दिया। दुःख, थकान और बीमारीकी मारी उसकी प्यारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
नादरा दम तोड़ चुकी थी, लाश पड़ी थी। अहसान फरामोश जीवाँ खाँने इतना भी मौका न दिया कि दारा अपनी बेगमकी लाश दफनवा सकता।

दाराको राजधानी लाया गया। शाहजादे सिपर शिकोह के साथ एक बूढ़ी हथिनी पर बिठाकर दिल्लीकी सड़कों पर घुमाया गया। मैले-कुचैले कपड़े, पैरोंमें बेंड़ियाँ, पीछे नंगी तलवार लिए जल्लाद, ऐसा असहनीय मर्मान्तक दृश्य देखकर, दिल्ली की जनता सिसक-सिसक कर रो रही थी, एक तरफ खड़ा हुआ विश्वासघाती जीवाँ खाँ मुस्कुरा रहा था, जनता से न सहा गया, उसे ईंट-पत्थरों से मार-मारकर वहीं ढेर कर दिया।

दारा कैदखाने भेज दिया गया। उसे मौतके घाट उतारने के लिए कुछ ऐसा न्याय का ढोंग रचना था कि जनता उचित समझे। काजियोंकी बैठक बुलाईगई, मसलेपर विचार हुआ, फतवा दिया गया—सजाये मौत। दूसरे दिन दाराकी लाश शहरमें घुमा दी गई।

अबतक औरंगजेब शुजाको प्यार भरे पत्र लिखता रहा कि तुम बंगाल, बिहार और आसाम पर बेफिकरीसे हुकूमत करो, काफिर दारा व मुरादको सजा देने के लिए मैं दिलोजानसे कोशां हूँ, इनसे फुरसत पाते ही मेरी हविस पूरी होगी फिर वही होगा जो तुम चाहोगे।

शुजा बाहोश था, मगर ऐयाश व आलसी भी। उसे अपनी सेना व सम्पत्ति पर अटूट विश्वास था। उसने सोचा, मैदान से दो के हट जाने पर एक से सलटने में सुविधा होगी। इसलिए जान-बूझकर अनेक मूल्यवान एवं अनुकूल अवसर हाथ से निकल जाने दिये।

मुराद और दारा को ठिकाने लगाकर औरंगजेब ने शुजा पर चढ़ाई कर दी। इलाहाबाद के पास खुजवा में दोनों भाइयों में मुठभेड़ हुई। शुजा बड़ी बहादुरी से लड़ा, पर बेहतरीन हथियारों से लैस नब्बे हजार शाही फौज व तेज सवारों के सामने उसकी सेना के पैर उखड़ गए। वह किसी प्रकार जान बचाकर बंगाल की ओर भागा।

यों औरंगजेब भाइयों और भतीजोंका खून करके और बूढ़े बाप तथा बहिनको कैद करके बादशाह हो गया। दरबार में अधिकांश सुन्नी थे, राजधर्म सुन्नी था, अस्तु सुन्नी-सम्प्रदाय को सन्तुष्ट करने के लिए तख्तशीन होते ही सूफी फकीरों को कत्ल करवा दिया। उन दिनों सरमद नामक एक पहुँचे हुए सूफी सन्त थे, देश दुनिया में उनकी बड़ी शोहरत थी। काजियों से फतवा दिलवाकर इस महान सन्त की गर्दन उतरवा ली। एक पादरी मुसलमान बन गया था, कुछ दिन में वह फिर ईसाई हो गया, उसे भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। बोहरे सम्प्रदाय के धर्मगुरु सैयद कुतुबुद्दीन को उनके ७०० अनुयायियों सहित अहमदाबाद में सरेआम कत्ल कर दिया गया।

दादा 'जहाँगीर' था तो औरंगजेबने भी अपना उपनाम 'आलमगीर' रक्खा। आलमगीर होने के लिए सारा आलम नहीं तो कम से कम सारा हिन्दुस्तान तो साया होना ही चाहिए। इसके लिए उसे अनेक युद्ध करने थे, क्योंकि हिन्दुस्तान के बहुतसे हिस्से मुगल सल्तनतमें नहीं थे। लड़ाइयोंमें लम्बे खर्चके लिए लम्बी रकम चाहिए, इसलिए अपने बुजर्गों द्वारा रद्द किया जजिया कर हर हिन्दू बच्चे, बूढ़े-जवान पर फिर लागू कर दिया। अफसर कड़ाईसे जजिया वसूल करते, लोग खूनका घूँट पीकर रह जाते। खजानेमें बेशुमार दौलत जमा होने लगी। जो नहीं दे पाते, मारे डरके मुसलमान बन जाते। इस्लाम का प्रचार-प्रसार जोर-शोरसे शुरू हो गया। 'आलमगीर जिन्दा पीर' का गगनभेदी घोष गूँजने लगा।

औरंगजेब का मजहबी जोश इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे मन्दिरोंमें सदियोंसे संचित सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात, रत्न, धन आदि अखर रहा था। उसने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरोंको निशाना बनाया। इधर मन्दिर टूटते, उधर हिन्दूओंके दिल टूटते और शाही खजाने पर धन की अजस्र वर्षा होने लगती। अहमदाबादके प्रसिद्ध चिन्तामणि मन्दिरमें पहले गोवध कराया फिर उसे मस्जिद बनवा दिया। मथुराके केशवराय मन्दिरकी ध्वजा काफी दूरसे दिखाई पड़ती थी, औरंगजेब भला इसे कैसे सह पाता, इसे तोड़वा कर मस्जिद निर्मित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करा दी—यद्यपि ऊँची जातिके लोग तो मारे डरके कुछ नहीं बोले, परन्तु कृषक वर्ग व हरिजनों का खून खौल उठा। उन्होंने पूरी शक्तिसे विद्रोह किया, अधिकांश मौतके घाट उतार दिए गए। सतनामी सन्तों की नृशंस हत्या कर दी गई। काशीके विश्वनाथ मन्दिरकी भाँति अनेक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरोंके भग्नावशेष आज भी अपनी करुण गाथा सुना रहे हैं। सन् १६६० में उसने सुदूर दक्षिणके मन्दिरोंको तोड़नेका आदेश दिया। इन ध्वस्त मन्दिरोंकी सूची बनाई जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाय।

अन्य धर्मावलम्बियोंके धार्मिक उत्सव, मेले, पर्व, त्यौहार गुनाह करार दे दिये गये, मन्दिरोंमें शंख-घण्टे बजने बन्द कर दिये गये। हिन्दुओंने बहुत गुहार पुकारकी, पर सब बेकार गई। शिवाजीनेजजिया उठा लिए लेनेके लिए पत्र लिखा, किन्तु औरंगजेब भला इसे क्यों छोड़ता।

आमेर सदासे मुगल साम्राज्य का सहायक रहा। इसी वफादारीके आधार पर वहाँके राजा जयसिंह उच्च मुगल सेनाध्यक्ष थे। औरंगजेबने वहाँके सभी मन्दिर ध्वस्त कराकर सिद्ध कर दिया कि मजहबी दीवानगीमें वह किसीकी वफादारी का लिहाज नहीं करता। पंजाबमें गुरु तेग बहादुर और गोविन्द सिंहके नेतृत्वमें सिक्खोंनें इस अपमान और अत्याचारके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे सैन्य बलसे कुचल दिया गया। सन् १६७५ में दिल्लीमें गुरु तेजबहादुर का सिर काट दिया गया। आज वहाँ पर शीशगंज गुरुद्वारा है। गुरुगोविन्द सिंहके दो बेटोंको दीवारमें चुना दिया गया।

सन् १६८० में औरंगजेब अजमेर आया हुआ था। महाराज जयसिंह व दुर्गादास राठौरकी सलाहसे शाहजादा अकबरने स्वयंको बादशाह घोषित कर दिया। औरंगजेब ऐसे खेलोंका माहिर खेलाड़ी था उसने शाहजादेके सेनापति तहब्वर खाँको लालच देकर अपने खेमेमें आमंत्रित किया और कत्ल कर दिया। यहाँ उसने एक कमालकी चाल चली। अकबरके नाम एक पत्र लिखा—शाबाश मेरे बेटे; राजपूतोंको खूब बेवकूफ बनाया, तुमने उनकी सारी साजिश नाकाम कर दी और सल्तनते मुगलियाको बहुत बड़े खतरेसे बचा लिया। ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि पत्र शाहजादेको नहीं, दुर्गादासको मिले। चाल कारगर हुई। राजपूतोंने अकबरका साथ छोड़ दिया। निराश व दुःखी शाहजादा मारवाड़की ओर चला गया। जब दुर्गादासको असलियतका पता चला तो बड़ा पछतावा हुआ, पर वक्त हाथसे निकल चुका था। अकबर किसी प्रकार सुदूर दक्षिणमें शम्भाजीकी शरणमें जा पहुँचा। औरंगजेब उसके वली अहद, बड़ी बेटी और बेगमोंको किलेमें कैद कर दिया।

उत्तरसे निश्चिन्त होकर उसका ध्यान शिवाजी तथा मराठोंकी बढ़ती शक्तिकी ओर गया। अपने विश्वस्त सेनापति शाइस्ता खाँको बहुत बड़ी सेनाके साथ दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा। चार वर्ष तक लड़नेके पश्चात भी अन्ततः वह पराजित हुआ तो औरंगजेब बौखला उठा और अपने सर्वाधिक सुयोग्य सेनापति जयपुर नरेश जयसिंहको एक सुसज्जित सेनाके साथ शिवाजीको पकड़नेके लिए भेजा। यद्यपि जयसिंह उच्चतम सेनापति था, परन्तु वह हिन्दू था अपने विश्वासपात्र सिपहसालार दिलेर खाँको खबरदारी के लिए साथ लगा दिया। मराठा बड़ी बहादुरीसे लड़े, पर इतनी विशाल सेनाके आगे अधिक समय तक टिक न सके। धीरेधीरे किले उनके हाथसे निकलते गये। पुरन्दरका प्रसिद्ध गढ़ भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए भारतका केवल एक सपूत शिवाजी जानपर खेल रहा है, यह अनुभव कर जयसिंह हृदयसे उनका आदर करते थे। इसी कारण उन्होंने मई १६६५ में पुरन्दरमें शिवाजीसे एक सम्मानपूर्ण सन्धि कर ली और उन्हें पुत्र शम्भाजीके साथ आगरा जाकर औरंगजेबसे भेंट करनेके लिए राजी कर लिया। अपने कुल-देवता गोविन्ददेवकी शपथ खाकर वहाँ उनके साथ प्रतिष्ठा पूर्ण व्यवहारके लिए जिम्मा लिया, इसके लिए स्पष्ट निर्देश देकर अपने पुत्र रामसिंहको साथ कर दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

औरंगजेबने शिवाजीको हर प्रकारसे अपमानित किया, पिता-पुत्रको कैद कर लिया, किस प्रकार शिवाजी पुत्र सहित कैदसे निकल भागे, ये सारी बातें इतिहास प्रसिद्ध हैं।

महाराष्ट्र आनेके बाद शिवाजी दिखावेमें औरंगजेबसे मेल रखते हुए गुप्त रूपसे बड़ी सावधानीसे शक्ति अर्जित करने लगे। १६७० में शाही फौजों पर छापे भी मारने लगे। शाहजादा मुअज्जम सामना न कर सका। शिवाजीने अपने अनेक किले वापस जीत लिए और सूरतको दूसरी बार लूटा। आठ वर्ष तक युद्धमें बादशाहके अनेक अनुभवी सेनापति पराजित हुए तब उसने अपने सबसे बड़े दो सेनापति महावत खाँ व दाऊद खाँको भेजा। कई बारकी हार-जीतके बाद आखिर छोटीसी मराठी सेनाका टिकना कठिन हो गया। भूपाल गढ़का किला उसके हाथसे निकल गया। इस युद्धमें हजारों मराठे वीरगतिको प्राप्त हुए। जो बचे, वे कैद कर लिए गये और उनके हाथपैर काट दिये गये। स्त्रियोंके साथ अमानुषिक अत्याचार किये गये।

१६८२ के बाद औरंगजेब प्रायः दक्षिणमें ही रहने लगा। गोलकुण्डाके सेनापतिको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया और उस अजेय किलेको सर कर लिया। इसी प्रकार बीजापुरको भी वहाँके वजीरों व अधिकारियोंको घूस देकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया। इस तरह धीरे-धीरे सारे दक्षिणको अपने कब्जेमें कर लिया।

गोलकुण्डाका सुल्तान बाबू हसन निहायत नेक व अमन पसंद इन्सान था, हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करता था। शाहजादा शाह आलमके दिलमें इसके प्रति हमदर्दी थी। इसी अपराधमें औरंगजेबने अपने इस शाहजादेको उसके चारों पुत्रों समेत बुलाकर कैद कर लिया और उसकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली।

सन् १६८९ में शम्भाजीको उसके २५ विश्वस्त साथियों सहित पकड़कर दिल्ली लाया गया, १५ दिन तक कठोर यंत्रणाएं देकर मरवा दिया गया।

औरंगजेबका अत्याचार चरम सीमा पर था, पर मराठे वीर इससे हताश नहीं हुए, दुगुने उत्साह से वद्ध परिकर हुए, वे संगठित होकर मुगल साम्राज्यके कस्बे व शहर लूटने लगे। ७५ वर्षके बूढ़े बीमार बादशाहकी कमर झुक गई थी। परिवारमें कलह, सन्तान अयोग्य, इसलिए इतनी बड़ी हुकूमतके बावजूद वह दुःखी तथा परेशान रहता था। मराठा छापामारोंकी चोटोंसे सेनाके सिपाही, हाथी, घोड़े, ऊँट काफी संख्यामें मरने लगे। लगातार युद्धके कारण खजाना खाली हो गया, अफसर इस्लामके नाम पर जोर-जुल्म करते। हर ओर आह-कराहका आलम, अराजकता, विद्रोह—१५ वर्षोंमें हालत खस्ता हो गई। ९० वर्षके आलमगीरके अन्तिम दिन घोर विषाद पूर्ण रहे।

शाहजादे बुढ़ापेकी ओर कदम रख रहे थे, पर उनकी ऐय्याशी जवानी पर थी। वे और उनके बेटे बादशाहतका ख्वाब देखते। पोते अपने पिता व पितामहकी तथा पुत्र अपने पिताकी मौतकी दुआ माँगते। हर ओरसे निराश बादशाहको सन १७०९ की फरवरीमें बेहोशीके दौरे आने लगे, १५ दिनकी बीमारीके बाद २० फरवरीको उसने सदाके लिए आँखें मूँद लीं।

अन्तिम समयमें अपने दो पुत्रोंके नाम जो पत्र लिखे, उनसे उसके असीम मनस्तापका आभास मिलता है। ऐसा लगता है कि मनुष्य चाहे छल-कपटसे जीवनमें बड़ीसे बड़ी उपलब्धि प्राप्त कर ले, परन्तु अन्त समयमें उसके पाप सिर पर चढ़कर बोलते हैं।

औरंगजेब को उसके गुरुकी कब्रके पास दफनाया गया। सन् १९७१ में मुझे यह कब्र देखनेका अवसर मिला। देखते ही उसकी घोर नृशंसताके चित्र आँखोंके सामने आने जाने लगे। मनः स्थिति कुछ अजीब-सी हो गई, जान पड़ा जैसे कोई कानमें कह रहा है—न गया साथ तख्त, न ताज, न राज, यहाँ फ़क़त दो गज़ जमीनके अन्दर मिट्टीमें मिला पड़ा है। औरंगजेब—आलमगीर, आलमका नहीं, गुनाहोंका बादशाह था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शरणागत की रक्षा

राजस्थानका उत्तर-पूर्वी हिस्सा पंजाबसे मिला हुआ है। वहाँ पर देशके विभाजनके समय काफी संख्या में मुसलमान परिवार थे। हिन्दू-मुसलमानोंमें आपसमें भाई-चारा था, एकदूसरेके सुख-दुख, विवाह-शादी और त्यौहारमें बड़े जतन और प्रेमसे हिस्सा लेते थे।

हिन्दुओंकी होलीमें मुसलमान डफों पर धमाल गाते थे और मुसलमानोंके ताजियोंमें मर्सिये सुनकर हिन्दुओंकी आँखोंमें आंसू आ जाते थे। वे भी नए-नए कपड़े पहनकर ताजियोंके जुलूसमें शामिल होते थे, बच्चोंके रोग निवारणके लिए उन्हें ताजियोंके नीचेसे निकालते थे। मुझे याद है हमारे पड़ोसी मुसलमान बच्चे हमें यह कह कर चिढ़ाते थे कि देखो हमारे ताजियों पर कितना सुन्दर गोटा-किनारी लगा है जब कि तुम्हारे देवता हनुमानका मुँह बन्दर सा है और गणेशजीका हाथी सा। हम जब दादाजीसे उनकी शिकायत करते तो वे हमें भुलानेके लिए उन्हें झूठमूठ डाँट देते थे।

हमारे घर के पीछेकी तरफ घासी लीलगरका छोटा सा घर था। हम उन्हें बराबर घासी भैया कहकर पुकारते थे। वे सब भी दादीजीको माँजी कहते। उनके यहाँ जमाई आता तो दादीजी दरी-गद्दा तथा निवारके पलंग भेज देती। उस समय यद्यपि तनोंकी छूआछूत थी पर दिलोंमें प्यार था।

सन् १९४७ के शुरूकी बात है, देश-विभाजनकी चर्चाका अन्तिम चरण था। अंग्रेजी सरकारने भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग मुल्क बनाकर शासन सौंपनेका मसौदा बना लिया था।

पश्चिमी पंजाबसे बड़ी संख्यामें हिन्दू भागकर आ रहे थे तथा पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेशसे मुसलमान लाहौर और सिंध की तरफ जा रहे थे।

इसका कुछ असर राजस्थानके गाँवों-कस्बोंके बाशिन्दों पर पड़ रहा था। कलकत्तेका भीषण दंगा हो चुका था। मुख्य मंत्री सुहरावर्दीकी सीधी कार्यवाही (डाइरेक्ट एक्शन) के कारण सैकड़ों हिन्दुओंका कत्लेआम हो चुका था, वे सब खबरें भी वहाँसे आए हुए लोग बढ़ा चढ़ाकर सुनाते रहते थे।

आखिर १५ अगस्त, १९४७ को देशके दो टुकड़े हो गए। उसके थोड़े दिनों बाद पश्चिम पंजाब में बड़े पैमाने पर जिहाद हुआ। वहाँसे जो ट्रेनें अमृतसर-जालंधर आतीं, उनमें सैकड़ों घायल हिन्दू रहते। युवती स्त्रियोंको लाहौरमें जबरन उतार लिया जाता। ये सब समाचार अतिरंजित होकर दिल्ली, हरियाणा और राजस्थान तक फैले।

राजस्थान और पंजाबकी सीमा पर पाटण नामका एक कस्बा है। उस समय वहाँकी जनसंख्या थी करीब १००००, जिनमें तीन चौथाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुसलमानोंमें अधिकांश गरीब थे, लखारे, रंगरेज, लोहार, कुंजरे तथा अन्य मजदूरी करने वाले । उनकी आजीविका हिन्दू महाजनों पर निर्भर थी ।

पाकिस्तानी मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पीड़ित कुछ हिन्दू शरणार्थी उस गाँवमें सिंध और पंजाबसे आये । उनके अधिकांश स्वजनोंको वहाँ मौतके घाट उतार दिया गया था—बाकी बचे हुए किसी प्रकार दीन-हीन दशामें पहुँचे । उनके मनमें प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही थी ।

उनमेंसे किसी युवकने एक मुसलमान लड़कीका जबरन शील भंग कर दिया । इस प्रकारकी घटना राजस्थानके गाँवोंके लिए नई थी । गाँवकी बहिन-बेटीको धनवान और गरीब सब बहिन-बेटी समझते थे ।

लड़कीके घर वालोंने पंचोंके सामने गुहारकी । युवक और उसके सम्बन्धी जोश और क्रोधमें थे । उनका कहना था कि उनकी बहिन-बेटियोंके साथ पाकिस्तानी गुण्डोंने इससे भी कहीं अधिक अत्याचार किए हैं । उनके स्तन काट डाले गये, उन्हें नंगा करके जुलूसमें घुमाया गया आदि ।

लड़की के भाइयोंने मौका देखकर सिंधी युवकको घायल कर दिया । सारे गाँवमें खबर फैल गई कि वह मर गया है । शरणार्थी और गाँवके कुछ हिन्दू युवक उसके घरके सामने इकट्ठे होने लगे वहाँसे एक बड़ा जुलूस बनाकर वे सब मुसलमानी मोहल्लोंकी तरफ गए । रास्तेमें उनके घर और दूकानें जला दी गई । छिट-पुट खून खराबीकी घटनाएं भी होने लगीं ।

सेठ श्यामलाल वहाँके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे । गाँवमें उनकी बनवाई धर्मशाला, कुएँ और रघुनाथजीका मन्दिर था । उनके घरके पीछेकी तरफ रहीमा नामके एक मुसलमान रंगरेजका घर था । रहीमाकी माँ, पत्नी और तीन-चार छोटे बहिन-भाई थे । दंगाइयोंकी उसके घरकी तरफ़ बढ़नेकी खबरें आ रही थीं । पत्नीके चार-पाँच दिनों पहले ही बच्चा हुआ था, वह सौरीमें थी । प्रत्यक्ष मृत्युको सामने आई देखकर घरके लोग भयसे काँप रहे थे । रहीमाकी बहू गोदमें नन्हें बच्चेको लेकर श्यामलालजीकी माँजीके पास आई और उनके पैर पकड़ कर रोती हुई कहने लगी । "माँजी हम सब दो पीढ़ियोंसे आपके पास रहते हैं, आपका दिया ही खाते हैं । अब हम इन बच्चों और बूढ़े ससुर को लेकर कहाँ जायँ । आपकी शरणमें आ गए हैं, मारो चाहे उबारो ।"

पीछे के दरवाजे से रहीमाके घरवालोंको सेठजीके घरमें लाकर नीचेके तल घरमें छिपा दिया गया ।

यद्यपि दंगाइयोंको शक तो हो गया था, परन्तु लालाजीके ना कहने पर घरमें आकर खोज करनेकी हिम्मत नहीं हुई ।

चार-पाँच दिनों तक दंगेका जोर रहा । वैसे माँजी परम वैष्णव थीं, परन्तु उन सबके रहने-खानेकी व्यवस्था अपने घरमें ही की । उस समय अछूत और मुसलमानों से छूआछूत बरती जाती थी, परन्तु संकट के समय यह सब बातें भुला दी गई ।

दंगा शान्त होने पर उन्हें एक रातमें अपने विश्वस्त आदमियों और सवारियोंके साथ पासके पुलिस थानेमें पहुँचा दिया गया । वहाँसे वे शायद किसी प्रकार पाकिस्तान पहुँच गए ।

यह खबर जब गाँवके लोगोंको मिली तो उनमेंसे बहुतसे श्यामलालजीसे नाराज हुए, बुरा-भला भी कहने लगे । परन्तु उन सबका उलाहना सुनकर उनका एक ही जवाब था कि जो कुछ मैंने किया माँजीकी आज्ञासे किया है । उनकी यह मान्यता है कि एकके कसूरसे दूसरोंको दण्ड क्यों दिया जाय । अगर पाकिस्तानी गुण्डोंने हिन्दुओं पर जुल्म किए तो उसके लिए गरीब रहीमा के अबोध बच्चोंकी हत्या करनेसे क्या इसका बदला चुक जायगा ?

इस गाँवमें १९५६ में एक बार जाने का मुझे मौका मिला । मुसलमानोंके घर या तो

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टूटे-फूटे और उजाड़ पड़े थे या शरणार्थियों द्वारा दखल कर लिए गए थे। वहीं मैंने रहीमाकी कहानी सुनी थी।

संयोगकी बात कि १९६४ में विश्वयात्रा करता हुआ मैं पाकिस्तानसे कराँची पहुँचा। वहाँके रिजर्व बैंकके दफ्तरमें गया हुआ था। मैंने देखा एक बूढ़ा मुसलमान मेरेसे बात करना चाहता है। एक कोनेमें ले जाकर धीरेसे सहमते हुए कहने लगा कि बातचीतसे लगता है आप राजस्थानी हैं। फलाँ जिलेके गाँवमें मेरी बेटी है। सुना है उसके एक बच्चा भी हुआ है, परन्तु अभी तक अपने नातीको नहीं देख पाया हूँ। बेटी-दामादको देखे भी १७ वर्ष हो गए। मेरे हाथमें बीस रुपये थमाते हुए कहने लगा कि बड़ी मेहरबानी होगी, अगर आप इन रुपयोंसे बच्चेके कुर्ते-टोपी और थोड़ी सी मिठाई वहाँ भिजवा देंगे। जितनी तनख्वाह मिलती है, उसमें खर्च चलना भी मुश्किल है, नहीं तो बेटीको भी कुछ भेजना चाहता था। मैंने देखा उसकी आँखें गीली हो आई हैं। मैंने बताया कि यह गाँव मेरे सीकर जिलेमें ही है—चीजें तो भिजवा ही दूँगा, कभी मौका मिला तो तुम्हारी बेटीसे मिलकर राजीखुशीकी खबर भी दे दूँगा। देखा बूढ़ेको मेरी बात सुनकर बहुत सान्त्वना मिली है।

वृद्धसे बात करते हुए मुझे ८ वर्ष पहलेकी रहीमाकी बात याद आ गई। वह भी शायद इसी प्रकार अपने गाँव और घरसे दूर किसी पाकिस्तानके कस्बेमें नौकरी करता होगा। उसे भी इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि और छोटेसे घरकी याद आती होगी।

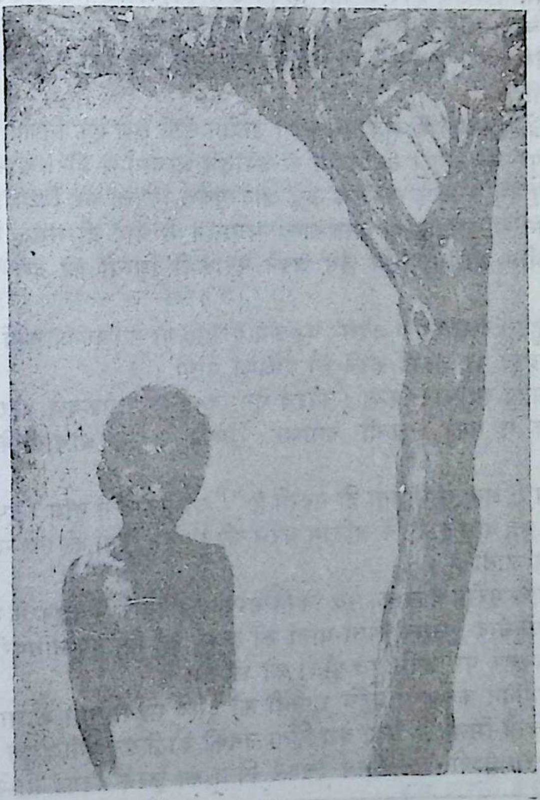

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्बन्ध बराबरी का

महाभारत में कथा है कि एक दिन बालक अश्वत्थामा दूध के लिए मचल गया। उन दिनों दूध बहुत सस्ता था, किन्तु गरीब माँ के लिए वह भी सम्भव न था। आँसू भरी आँखों से आटे का घोल पिलाकर बहलाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे चुप न करा सकी।

द्रोणाचार्य घर लौटे। देखा, बालक रो रहा है। असली बात का पता चला तो स्तब्ध रह गए। अपने ऊपर ग्लानि हुई। दारिद्र्य से मुक्ति के लिए वे आकुल हो उठे।

सहपाठी मित्र महाराज द्रुपद के यहाँ पहुँचे। उन्हें गुरुकुल की बातें याद दिलाईं। द्रुपद ने कहा, "ब्राह्मण! चाहो तो कुछ भिक्षा मिल सकती है। बचपन के किसी समय के परिचय को मित्रता का रूप देकर मेरी भावुकता को उभारने का प्रयत्न मत करो। सम्बन्ध और मैत्री तो बराबरी की होती है।"

अपमानित द्रोण के मन में बात चुभ गई। उन्होंने उसी क्षण एक निर्णय लिया और वहीं से सीधे हस्तिनापुर चले गए। धनुर्विद्या के अप्रतिम आचार्य थे ही। कौरव और पाण्डव कुमारों को शिक्षा देने के लिए राज्य ने उन्हें आदरपूर्वक नियुक्त कर दिया। द्रोण ने कठोर परिश्रम एवं लगन से कुमारों को अस्त्र-शस्त्र संचालन में थोड़े ही समय में निष्णात कर दिया। अर्जुन, भीम और दुर्योधन जैसे अपने पराक्रमी शिष्यों को देख कर गदगद हो उठते।

शिक्षा पूरी हुई। दीक्षान्त के अवसर पर जब गुरुदक्षिणा के लिए आचार्य से आग्रह किया गया तो उन्होंने द्रुपद पर चढ़ाई करने की दक्षिणा माँगी।

कुमारों ने सहर्ष स्वीकार किया। कौरव सेना के प्रचण्ड आक्रमण और रण-कौशल के सामने द्रुपद टिक न सका। बन्दी बनाकर शिष्यों ने उसे आचार्य के समक्ष प्रस्तुत किया।

"कहो राजन! अब तो मित्रता हो सकती है?" द्रोणाचार्य ने पूछा। द्रुपद लज्जित थे। क्या जवाब देते? यह बात द्वापर के अन्तिम चरण की है। इन दिनों की एक सच्ची घटना इस सन्दर्भ में याद आ जाती है।

भिवानी के एक गरीब वैश्य का पुत्र किसी सम्पन्न परिवार में दत्तक के रूप में कलकत्ता आया। बहुत वर्षों बाद उसके पिता-माता की इच्छा हुई कि जगन्नाथपुरी की यात्रा की जाय और इसी अवसर पर अपने पुत्र-पौत्रों को भी देख लें।

थके-हारे एक दिन कलकत्ता पहुँचे। पत्नी को दूसरे सहयात्रियों के साथ धर्मशाला में ठहरा कर स्वयं पुत्र से मिलने के लिए वृद्ध पिता उसकी कोठी पर गया। पुत्र अपनी गद्दी पर बैठा था। उसकी खुशहाली और वैभव देखकर पिता का हृदय गदगद हो उठा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैले कपड़े, ऊँची धोती और बढ़ी दाढ़ी, सकुचाते हुए वृद्ध पिता के एक तरफ बैठ गया। मित्रों के साथ पुत्र गप-शप करता रहा। न तो उठकर पाँव छुए और न राजी खुशी के समाचार पूछे। किसी एक मित्र के पूछने पर बताया कि हमारे गाँव के जान-पहचान के है।

वृद्ध निर्धन था, किन्तु आत्माभिमान के धन से वंचित नहीं। उसके मन में वैभवके मदमें चूर पुत्रकी बात चुभ गयी। राजस्थान की हवा में पला था, अपमान नहीं सहा गया। कह बैठा, "सेठजीके देश का तो मैं जान-पहचान का व्यक्ति हूँ परन्तु इनको जन्म देने वालीका पति हूँ। ये धनवान और हम गरीब, इसलिए इनका हमारा सम्बन्ध हो कैसा ? गलती हुई जो यहाँ चला आया। अच्छा हुआ जो इसकी माँ को ये बातें नहीं सुननी पड़ीं, उसे धर्मशाला में ही छोड़ आया।"

ऐसी अप्रत्याशित और अप्रिय घटना के बाद बैठक जम नहीं पाई। धीरे-धीरे मित्र खिसक गए। वृद्ध तो पहले ही जा चुका था।

कलकत्ते आने के बाद युवक सेठ ने जन्म देने वाले पिता-माता की कभी खोज-खबर न ली। उसमें गुमान आ गया था। परन्तु मुनीम गुमाश्तों के सामने हुई इस घटना के कारण वह बहुत झेंप गया। घोड़ा गाड़ी में पत्नी को साथ लेकर शाम को धर्मशाला में पहुँचा। पिता-माता तब तक पुरी के लिए रवाना हो चुके थे।

कहते हैं, भाग्य गिरत-फिरत की छाया है। कुछ वर्षों में उसके सगे छोटे-भाइयों ने बहुत धन कमा लिया जब कि व्यापार में घाटा होने के कारण उसकी अपनी सम्पत्ति समाप्त हो गई। गरीबी की बात जब देश पहुँची तो माँ का दिल नहीं माना। जिद्द करके वृद्ध पति के साथ कलकत्ते के लिए रवाना हो गए। उस समय तक उसके अपने पुत्रों का यहाँ मकान हो गया था और कारोबार भी बढ़ता जा रहा था।

खबर मिलने पर पत्नी और बच्चों सहित सकुचाता हुआ बड़ा पुत्र मिलने आया। माँ-बाप के पैरों पर गिर पड़ा और बहुत वर्षों पहले किए गए अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा।

"अब तो तुमने मुझे पहचान लिया होगा ?" कहते हुए पिता मुँह फेर कर बैठ गया।

वृद्ध माता एकटक देख रही थी, अपने बड़े बेटे और बच्चों को। बीस वर्ष पहले बारह वर्ष के बालक को उसके सुख की कामना से अपने सीने से पृथक किया था। पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाए माता कुमाता नहीं होती। उसने बेटे को खींच कर छाती से लगा लिया और भरे गले से कहने लगी—"भगवान का दिया तुम्हारे भाइयों के पास बहुत है। मूँग – मोंठ में कौन बड़ा कौन छोटा ? चारों मिलकर कारोबार सम्हालो।"

उसकी आँखें गीली हो आई थीं, दोनों पौत्रों को गोद में उठा कर जल्दी से कमरे के बाहर हो गई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चोंच दी, वह चुगा भी देगा

उन्नीसवीं शताब्दी की बात है। राजस्थानके किसी शहर में एक करोड़पति सेठ था। सब तरह से भरा पूरा परिवार सुन्दरी पतिपरायणा पत्नी और दो आज्ञाकारी स्वस्थ पुत्र। व्यापार के लाभ और व्याजसे प्रतिवर्ष सम्पत्ति बढ़ती रहती। आडम्बरशून्य जीवनचर्या थी, खर्चमें वह बहुत मितव्ययी था। सालके अन्तमें आय-व्ययका मिलान करता और देख लेता कि पिछले वर्षकी अपेक्षा कितनी बढ़ोत्तरी हुई, व्यय कितना रहा।

एक दिन, शहरमें एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् महात्मा आए। सेठने उनकी प्रसिद्धिकी बात सुन रखी थी। आदर-सत्कारके साथ अपने घर ले गया। सेवासे उन्हें प्रसन्न कर दिया। महात्माजी ने जन्म-पत्री देखी। उन्होंने बताया, वृहस्पति उच्च है, सब प्रकारके सुखोंमें जीवन व्यतीत होगा, यश भी भाग्यमें है। आप साधु-महात्माओं और दीन-दुखियोंको प्रतिदिन अन्न भेंट किया करें, इससे आपके वंशमें पाँच पीढ़ी तक धन, वैभव और यश अक्षुण्ण रहेगा।

महात्माजी यह सब बताकर चले गए। सेठ उनके कहे अनुसार दूसरे दिनसे अन्न वितरण करने लगा। परन्तु उसके मनमें एक चिन्ता रहने लगी "मेरी छठी पीढ़ी कैसे रहेगी ? उनका क्या हाल होगा ? उनके लिए क्या किया जाय ?" इत्यादि।

सेठानी और मुनीम-गुमाश्तों ने बहुतेरा समझाया कि छठी पीढ़ीकी अभीसे क्या चिन्ता है ? इतनी सम्पत्ति है, जमा हुआ कारबार, पाँच पीढ़ी तक तो चलेगा ही, आगे भी कोई न कोई उनमें समर्थ होगा जो सम्भाल लेगा। मगर सेठजीका मन मानता नहीं, वे चिन्तामें दुबले होते गए, कुछ बीमार भी रहने लगे।

एक दिन अन्न वितरणके लिए अपनी कोठीकी ड्योढ़ी पर बैठे थे कि एक गरीब ब्राह्मण भगवत-भजन करते हुए सामनेसे गुजरा, सेठने कहा कि महाराज, अन्न की भेंट लेते जाइए। उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "सेठजी इस समयके लिए मुझे पर्याप्त अन्नकी प्राप्ति हो गयी, सायंकालके लिए भी संभवतः किसी दाता ने घर पर सीधा भेज दिया होगा, न होगा तो मैं पूछ कर बता दूँगा।"

कुछ देर बाद ब्राह्मण वापस आया। उसने बताया कि घर पर भी कहींसे सीधा आ गया है, इसलिए आजके लिए अब और नहीं चाहिए।

सेठजी कुछ चकितसे रह गए। कहने लगे, "महाराज, आप जैसे सात्विक ब्राह्मणकी कुछ सेवा मुझसे हो जाए। कमसे कम एक छाज (एक तौल) अन्न अपने आदमियोंसे पहुँचवा देता हूँ, बहुत दिनों तक काम चल जाएगा।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ब्राह्मण ने सरल भावनासे कहा—"दयानिधान, शास्त्रोंमें लिखा है, परिग्रह पापका मूल है, विशेषतः हम ब्राह्मणोंके लिए। आप किसी और जरुरतमन्दको यह अन्न देनेकी कृपा करें। दयालु प्रभुने हमारे लिए आजकी व्यवस्था कर दी है। कलके लिए फिर अपने आप ही भेज देगा। जिसने चोंच दी है, वह चुगा भी देगा।"

सेठजी उस गरीब ब्राह्मणकी बात सुन रहे थे। मन ही मन विस्मित भी थे, "इस तो कलकी भी चिन्ता नहीं, जो आसानीसे मिल रहा है, उसे भी लेना नहीं चाहता। एक मैं हूँ जो छठी पीढ़ीकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ।"

दूसरे दिनसे वे स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई देने लगे। दानधर्मकी मात्रा भी बढ़ गई। उनके चेहरे पर शान्तिकी आभा विराजने लगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिस देश में गंगा-जमुना बहती है।

पिछले दिनों दिल्लीके संसद भवन के सेन्ट्रल हॉलमें गया। मेरे मित्र श्री भोला रावत, एम०पी० ने कहा कि आइये आपको एक पुराने मित्रसे मिलाएं। मैंने चारों ओर नजर घुमाई किन्तु जान-पहचान का कोई भी दिखाई न पड़ा। पासकी वेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी एक बाबाजी बैठे थे। भोला बाबूने हँसते हुए कहा, "पहचाना नहीं? ये हैं श्री महेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ १९६२ तक संसद सदस्य रह चुके हैं!" फिर तो उस दाढ़ी मूँछोंवाले हँसते चेहरे में दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखाई दिए।

१९६२ के पहले हीं उनके मनमें वैराग्य जगा था। आगेके संसदीय चुनावमें खड़े नहीं हुए। अपना भरा—पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर संन्यास ले लिया। पिछले दस वर्षों से भारत के प्राय: सभी तीर्थों और पहाड़ोंकी यात्रा कर चुके हैं। मैंने पूछा कि क्या आपको किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नहीं होता? सीधा सा उत्तर मिला, "वैसे तो संन्यासी को सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान नहीं रहना चाहिए। गंगा-जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेड़ेमें श्रद्धालु माँ-बहनें मिल जाती हैं, इसलिए जानी-अनजानी, किसी भी जगह जाता हूँ। दो रोटी और रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध, दही और सब्जी भी। हाँ, रेलमें बिना टिकट नहीं चलता। वैसे तीसरे दरजेमें सफर करता हूँ, फिर भी इसके लिए पैसेकी जरूरत तो पड़ती ही है। यदि सरलतासे व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ।"

थोड़ी ही देरमें उन्हें बहुतसे परिचित मित्रोंने घेर लिया। एकने पूछा कि महाराज, आप तो बहुत आराम और मौजशौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नहीं होता? उत्तर मिला, "इस नये मोड़से वास्तवमें मुझे सुख और शान्ति मिली है, जिसका शतांश भी इससे पहले जमींदारी और राजनीतिक जीवनमें नहीं मिल पाया।

दूसरे मित्रने प्रश्न किया, "क्या आप अपने परिवारमें कभी जाते हैं?" उन्होंने कहा, "हाँ, कभी कदाच जैसे दूसरे घरोंमें ठहरता हूँ उसी तरह एक दो दिनके लिए वहाँ भी ठहर जाता हूँ।"

महेन्द्र बाबू से हम हमेशा राजनीतिक बहस और हँसीदिल्लगी किया करते थे। परन्तु मैंने देखा अब उनके प्रति सबके मनमें श्रद्धा है, एक दो की आँखें तो गीली हो आईं।

उसी रात मुझे जयपुर जाना था। ऊपरकी बर्थ मिली थी। सदाकी भाँति भगवे रंग का खादीका कुर्ता पहने था। रक्तचाप उपचारके लिए मेरे मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित द्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमें थी जो संयोगसे बाहर दिखाई दे रही थी। कंडक्टर गार्ड टिकट चेक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करता हुआ मेरे पास आया। बड़ी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली बर्थकी व्यवस्था मेरे लिए कर दी। मैंने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यों न इस यात्रामें महेन्द्रजीका नुस्खा आजमाया जाय।

जयपुरका काम थोड़ी देरमें निपटा कर ढाई बजे वाली बससे आगराके लिए रवाना हुआ। बस कंडक्टरने कहा, "बाबाजी, रास्तेमें मेंहदीपुरके हनुमाजी का मन्दिर पड़ता है। दर्शन जरूर कीजिए, तुरन्त परचा देते हैं।" इस स्थान का नाम बहुत दिनोंसे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शाम के पाँच बज गये। मैं उतर पड़ा। मुख्य सड़कसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। ताँगा लेकर वहाँ छः बजे पहुँचा। हलवाइयों; मोदियोंकी छोटी-छोटी दुकानें, दो चार धर्मशालाएँ और एक बेडौलसा मन्दिर, यह था मेंहदीपुर। भीतर जाकर देखा, ढोलक पर कीर्तन हो रहा है और तीन-चार औरतें उसकी ताल पर सर धुन रही हैं, कभी-कभी चिल्ला उठती हैं। मन्दिरके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि बालाजीके प्रभावसे प्रेतबाधा मिट जाती है। खैर मैं इस विवादमें पड़ना नहीं चाहता कि वास्तवमें वे प्रेत-पीड़ित थीं या दर्शनार्थियोंको प्रभावित करनेके लिए पुजारियों द्वारा नियुक्त।

गरमी, सड़ाँध और दुकानों की मक्खियोंसे ऊब उठा और वापस मुख्य सड़क पर आ गया। सात बज रहे थे। घंटे भर खड़ा रहा परन्तु आगरा जाने वाली कोई बस नहीं आई। पता चला, अब कोई बस मिलेगी नहीं। लाचार, सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कुएँकी जगत पर बैठ गया। आठ बज गए अंधेरा हो आया। सोचने लगा, शायद वापस मेंहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामें ठहरना पड़ेगा। इतने हीमें दूरसे आती रोशनी दिखाई पड़ी। कुछ देर बाद देखा, एक ट्रक आ रही है। पास आने पर हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवर ने पूछा, "कहाँ जाना है बाबाजी?" मैने कहा, "आगरा।" इससे आगे कुछ और कह पाऊँ कि उसने बड़े रोबसे अपने खलासी को मेरा सामान ट्रक पर चढ़ानेके लिए कहा। जबतक वह नीचे उतरे, आसपास खड़े भक्तोंने मेरा सामान उसे पकड़ा दिया। ड्राइवरने ट्रक की छतकी ओर इशारा करते हुए कहा, "आप ऊपर आसन लें, कोई कष्ट न होगा।" उसकी आवाजमें स्नेह, श्रद्धा और विनय पाकर मैं कुछ कह न सका। लोहेकी सीढ़ियों के सहारे छत पर चढ़ गया। खलासीने सोनेके लिए अपना एक पुराना सा गद्दा बिछा दिया। मैं उस पर लेट गया।

ट्रक चौड़ी सड़कके दोनों ओरके ऊँचे-ऊँचे पेड़ोंकी झुकी डालियोंके नीचेसे चली जा रही थी। ऊपर खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नई उमरका था, फुर्तीला और तेज। अपने सुख-दुखको सुनाने लगा। पाँच-छः वर्षसे ट्रकोंमें घूमा करता है। घरकी गरीबीने कठोर जीवनके लिए बाध्य किया। माँ छोटे दो भाई और बहनकी देखभाल करती है। बाप शराबी था, पाँच बीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। दौसासे सोपस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। ट्रकके ड्राईवरको उस्ताद मानता है। उसीने खलासीमें भरती किया। उसकी जुबान कड़वी है मगर दिल मीठा। बहुत गालियाँ देता और मारता था, मगर काम सीखा कर छोड़ा। साल दो साल हुए ड्राईविंगका लाईसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकड़ा देता है, मगर अभी पूरीतौर पर गाड़ी छोड़ता नहीं। तनखाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।

मैं सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आँखें झपती थीं। कब गहरी नींदमें सो गया पता नहीं। एकाएक ड्राइवरकी आवाज सुनाई पड़ी, "महाराज भोजन करेंगे?" घड़ी देखी रात ग्यारह बजे थे, जंगलमें रास्तेके किसी ढाबेके सामने ट्रक रुकी थी। हाथ मुँह धोकर वहीं रखी मूँजकी खटिया पर लेट गया। थोड़ी देर बाद शुद्ध देसी घीकी छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और अच्छा दही थालमें रखकर आया, साथमें अचार और प्याज तृप्त होकर खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढाबेवाला संकोच करने लगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करीब डेढ़-दो बजे रात ट्रक आगरेकी सीमा चुंगी पर रुकी। सुनाई पड़ा, "ऊपर कौन है ?" आवाज सुनते ही मैं जग पड़ा था। ड्राइवरने बताया, "एक महात्मा हैं।" ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा कहाँ उतरेंगे महाराज। "मैंने कहा किसी भी धर्मशालाके पास छोड़ दो।" उसने अनुरोध किया, "आज रात क्यों न इसी पर आराम करें सुबह जहाँ मर्ज़ी चले जायें।" मुझे नींद आ रही थी, उसकी बात मान ली और ट्रक पर ही सो रहा।

सुबह पाँच बजे उठा तो देखा कि शहरके बाहर एक पेट्रोल पम्प पर दूसरी ट्रकोंके साथ हमारी ट्रक भी खड़ी थी। ड्राइवर और खलासी मेरे आसपास गहरी नींदमें थे। पासकी झाड़ियों में शौचादिसे निवृत्त होकर आया। उस समय तक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके इस पार नौनिहाईमें रुकी थी। संयोगसे सुबहकी पाली पर जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको अपना कार्ड देकर कहा कि कानपुरमें अपने आफिसमें रखवा देना, मैं वहाँसे मँगवा लूँगा। उसने कहा—"फ़िक्र न करें महाराज, आपका बक्स परसों सुबह तक पहुँच जायगा।" रिक्शेमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम पता पूछा। परन्तु मनमें कहा कि धोखा नहीं होगा।

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहाँ सारा दिन बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुँचा तो पता चला कि कानपुर जानेवाली पैसेन्जर ट्रेनमें फर्स्ट क्लासकी सारी सीटें पहलेसे ही भरी हैं। तीन दिनकी लगातार यात्रासे थका हुआ था। मनमें चिन्ता हुई। देखा, एक कम्पार्टमेन्टमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा, "भाई एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे ?" उन्होंने बच्चोंको एक सीट पर कर दिया और एक पूरी बर्थ मुझे देदी। मैंने देखा, यहाँ भी मेरे वेशने अपना चमत्कार दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

घर पहुँचा तो दो-तीन घंटे बाद अरोड़ा ट्रान्सपोर्टका फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी है, ड्राइवर यहीं बैठा है। आपको प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा क्या मैं स्वयं ट्रकसे आया था या आपके यहाँ आने वाले कोई महात्माजी। मैंने जब उन्हें बताया कि मेंहदीपुरसे आगरा तक मैं ही उनकी ट्रक पर आया हूँ तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

इस यात्रामें एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जन-मानसमें गंगाकी पवित्रता और जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमि पर बसे लोग साधु महात्माओंकी सेवा करते आ रहे हैं। देश का सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ अंशोमें अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बंदरीनाथसे कन्याकुमारी और द्वारिकासे सुदूर कामाख्या तक साधु संन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जीवन की उपलब्धि

ईस्वी पूर्व पहली शताब्दीमें रोममें सिसेरो नामका एक विलक्षण विचारक और वाग्मी हुआ। अपने सदाचार, सद्विचार और निष्ठापूर्ण जीवनके कारण जनमानसको उसने प्रभावित किया था।

रोमन सभ्यता और संस्कृतिका वह स्वर्णिम युग था। पश्चिममें ब्रिटेन, रोम और स्पेन पूर्वमें मेसोपोटामिया और बेबीलोन तथा दक्षिणमें भूमध्य सागर तटीय अफ्रीकाके देश विशाल रोमन साम्राज्यके अंग थे। रोमकी सड़कों पर विदेशोंसे लाए सोना, सुन्दरी और गुलामोंका प्रदर्शन सामन्त बड़ी शानसे करते। वह जमाना था जब संसारकी सभी सड़कें रोमको जाती थीं।

आमोद-प्रमोद, भोग-विलास और बुद्धिचर्चा रोमन नागरिकोंकी दिनचर्या थी, तर्क-वितर्कमें पराजित कर देना प्रतिष्ठाकी बात समझी जाती। यदि इससे निर्णय नहीं होता तो तलवारें खिंच जातीं। रोम के चौकमें असि-द्वन्द्व और वाक-द्वन्द्व के दृश्य आए दिन देखने में आते। सिसेरोके भी व्याख्यान वहाँ होते। उसका सिद्धान्त था, जनतन्त्र ही शासन संचालनका श्रेष्ठ पन्थ है। जनता मन्त्रमुग्ध होकर सुनती।

उन दिनों यूरोपमें समता और बन्धुत्वकी बात कोई नहीं कहता था। गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। सुसभ्य ग्रीक और रोममें भी दास सम्पत्तिके रूपमें थे। अरब और अफ्रीकासे लाए सैकड़ों गुलाम रोमन सामन्तोंके घरोंमें रहते।

ईसासे लगभग ५० वर्ष पूर्व सेनापति सीजर फौजके बल पर रोमका एकाधिनायक बन बैठा। जिन्होंने विरोध किया, मौतके घाट उतार दिए गए। प्रान्तोंमें विद्रोहके प्रयासको क्रूरतासे कुचल डाला गया। सीजर! महान सीजर!! लोग नामसे थर्रा उठते।

यद्यपि सिसेरो व्यक्तिगत विरोधमें नहीं पड़ा, परन्तु जनतन्त्रके सिद्धान्तोंका रोमन फोरममें डट कर प्रचार करता रहा। उसकी जनप्रियता देखकर सीजरने उसके प्राण नहीं लिए, केवल राजधानीसे निर्वासित कर दिया।

अपने कुछ नजदीकी शिष्यों और गुलामोंके साथ वह एक गाँवमें रहकर जनतन्त्र पर ग्रन्थ लिखने लगा। बीच-बीचमें उसे सीजरके आतंक और अत्याचारोंकी खबरें मिलती रहतीं।

अधिनायकवाद महत्वाकांक्षी अधिनायकोंको जन्म देता है और अधिनायकका अन्त भी उन्हींके द्वारा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक दिन सीजरके विश्वस्त मित्र और सेनापति ब्रूटसने सभासदोंकी एक बैठकमें उसकी हत्या कर दी। मरते समय सीजर केवल इतना ही कह पाया "ब्रूटस! तुम भी......"।

राजधानीमें अशांति फैल गई। विशाल रोमन साम्राज्यमें अव्यवस्था बढ जानेके लक्षण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिखाई देने लगे। सेना लेपिड़िसके साथ थी। राजकोष और साधन प्रधान मन्त्री एन्टोनीके पास थे। किन्तु अधिनायकवादसे त्रस्त जनता थी युवक नेता आक्टेवियसके साथ। तीनोंमें युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं।

आक्टेवियसने अपने गुरु सिसेरोको रोमका निमन्त्रण देते हुए लिखा, "रोम पर भयानक विपत्ति आई है। बचपनसे ही आपके सिद्धान्तोंका कायल रहा हूँ। जनता मेरे साथ है, परन्तु धन और सेनाकी कमी है। यदि इस संकटकालमें आकर मेरी सहायता करेंगे तो जनतन्त्रकी स्थापना संभव हो सकेगी।"

मातृभूमिके प्रति अपने कर्तव्य पालन के लिए सिसेरो रोम पहुँचा। बहुत वर्षों बाद आया था। बाल सफ़ेद हो गए थे, दाँत गिर चुके थे, शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी वाणीमें पहलेकी सी ओजस्विता थी। उसकी सभाओंमें लाखोंकी संख्यामें रोमन नागरिक आने लगे। एन्टोनी और लेपिडिस डर गए कि कहीं जनता विद्रोह न कर बैठे।

आखिर, एक दिन रोमके बाहर तीनोंकी एक गुप्त बैठक हुई। सभी भयभीत थे। तय हुआ कि आपसमें व्यर्थकी लड़ाई क्यों करें। रोमन साम्राज्यके तीन हिस्से हुए रोम, ब्रिटेन और स्पेन तथा अफ्रीकाके प्रदेश। राज्योंके संचालनके लिए विपुल धनकी आवश्यकता थी। तीनोंने अपने-अपने धनी मित्रोंके नाम बताए। उनको मार कर धन संग्रहकी योजना बनी। इसके बाद ऐन्टोनीने कहा कि सुचारु रूपसे राज संचालनके लिए सबसे बड़े बाधक होंगे, बुद्धिजीवी, अतएव इन्हें भी अविलम्ब समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे नामोंकी सूची बनी, पहला नाम था सिसेरोका।

आक्टेवियस इस पर अड़ गया। कहने लगा, "जिसकी सहायतासे मैं वर्तमान स्थिति पर पहुँच सका, जो मेरे लिए पितृतुल्य हैं, उनकी हत्याके लिए मैं सहमति कैसे दे सकता हूँ।" समझौता उस दिनके लिए रुक गया किन्तु दूसरे दिन उस महान विचारककी हत्याके लिए तीनों एकमत हो गए। इस प्रकार रोमन साम्राज्यका बँटवारा हुआ।

सिसेरोको सूचना मिल गई। कुछ समय बाद 'रिपब्लिका' ग्रन्थ पूरा कर अपने पुत्र और मित्रोंको सौंपते हुए उसने कहा, "मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हुआ, अब तुम्हें कष्ट न दूँगा।" उन लोगोंने समझानेकी कोशिशकी, "सामने ही द्रुतगामी नौका है, स्वीकृति दें, हम आपको सकुशल ग्रीस पहुँचा देंगे। ग्रीक आपका स्वागत कर गौरव बोध करेंगे।"

सिसेरोका उत्तर था, "मृत्यु अवश्यम्भावी है, थोड़े दिन जीनेके लिए मातृभूमि छोड़कर नहीं जाना चाहता। इसी मिट्टीमें पैदा हुआ, इसीमें मिल जानेपर मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी मनुष्यका जन्म एक उद्देश्यसे होता है, उसकी पूर्ति ही जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। अब जीवनका मोह क्यों।"

सूचना राजधानीमें पहुँची। सिसेरोके सिरके लिए बहुत बड़ा इनाम घोषित था। बीसियों सशस्त्र सिपाही उसे बन्दी बनाने आए। उसके साथियोंने अपनी तलवारें निकाल लीं।

"सावधान, रक्तपात नहीं, बिलकुल नहीं" कहते हुए सिसेरोने आत्म समर्पण कर दिया।

सैनिक उसका सिर और हाथ काट कर रोम ले गए। राजधानीके उसी चौकमें इन्हें सलीव पर टाँगा जहाँ उसने सैकड़ों बार लोगोंको अपने सारगर्भित उपदेशोंसे अभीभूत किया था।

सिसेरोका आत्मोत्सर्ग व्यर्थ नहीं गया, उसका उद्देश्य जनतन्त्र जनमानसमें अमर हो गया। सम्राट और सामन्तोंकी भोगलिप्सा बढ़ती गई। अत्याचार बढ़ते-बढ़ते कुछ वर्षों बाद सम्राट नीरोकी सनक और क्रूरतामें साकार हो उठे। अबाध भोग-लिप्साका अगला कदम पतनकी ओर बढ़ता है, वही हुआ। जनताके अन्दर अधिनायकवादसे मुक्तिकी चिनगारीने ज्वालाका रूप धारण किया। उसकी लपटमें नीरो भस्म हुआ। साम्राज्य खण्ड-विखण्ड हो गया, और साक्षी देनेके लिए बच गये खण्डहर।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फूलों की घाटी

सन् १९५० और १९६४ में १३४०० फीटकी ऊंचाई पर स्विटजरलैंडमें आल्पस पर्वत की चोटी यंगफ्राउ पर हो आया था। लोगों ने कहा कि शायद वहां पतली हवाके कारण सांस लेनेमें कष्ट होगा, परन्तु मुझे ऐसी कोई तकलीफ नहीं हुई । हाँ, यह जरूर था कि स्विस इंजीनियरोंने पहाड़के भीतर सुरंग काट कर ऊपर तक ट्रेन पहुँचा दी है। इसलिए यात्री बिना थकावटके दो घंटेमें इण्टरलॉकनसे वहाँ पहुँच जाते हैं। ऊपर जाते ही ताप नियंत्रित होटल में चाय और नाश्ते की व्यवस्था रहती है।

देश लौटने पर जब वहाँ की सुन्दरता और भव्यताके बारेमें लिखा तो कई मित्रों ने कहा कि तुम एक बार हिमालयके लोकपाल हेमकुण्ड और फूलोंकी घाटी जाकर आओ, फिर दोनों की तुलना करो।

स्माइथकी बहुचर्चित पुस्तक 'फूलों की घाटीके' बारे में बहुत कुछ सुन रखा था, परन्तु उसे कभी पढ़नेका मौका नहीं मिला।

जुलाई ७२ में दो मित्रोंके साथ उत्तराखण्डकी यात्रा के लिए गया। अधिक वर्षाके कारण रास्तेमें रुकावट आगई इसलिए केवल यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी जाकर वापस आना पड़ा, बदरी-केदार नहीं जा सका।

सौराष्ट्रकी यात्रा करता हुआ १६ अगस्तको नयी दिल्ली आया। बदरी-केदार जाकर उत्तराखण्ड पर कुछ लिखनेका विचार था, इसलिए वहां २५-३० बार गए हुए मित्रवर गंगाशरणजी सिन्हा, संसद सदस्यसे सलाहकी।

उन्होंने कहा कि अगर जानेका मन है तो फूलोंकी घाटी देखनेका भी यही उपयुक्त समय है, इसलिए हिम्मत करके हेमकुण्ड और फूलोंकी घाटी हो आओ।

मुझे २४ तारीखको कानपुर वापस लौटना था, इसलिए उसी रात हरिद्वारके लिए रवाना हो गया, गर्म कपड़े दिल्ली में थे नहीं इसलिए केवल खादी के कुर्ते-धोती और तीन कम्बल साथमें ले लिए और श्री प्रबोध सन्यालके उस 'महाप्रस्थानके पथ पर' चल पड़ा।

केदारनाथके लिए ऋषिकेशसे बस द्वारा गुप्तकाशी गया—परन्तु वर्षाके कारण आगेका रास्ता खराब था, इसलिए वापस रुद्रप्रयाग होता हुआ बदरीनाथ चला आया। सन् १९४५ मे पिताजी-माताजीके साथ वहां आ चुका था, परन्तु इन २७ वर्षोंमें बदरीनाथ की काया-पलट हो गयी है—छोटेसे पहाड़ी गाँवकी जगह अब एक सुन्दर क़स्बा बसा हुआ है, जिसमें पाँचसौ गेस्ट हाउस, धर्मशाला और अतिथिशालाएँ हैं—बिजलीकी जगमगाती रोशनीसे सुसज्जित दुकानें। खैर, यहां तो मुझे केवल फूलोंकी घाटीके बारेमें ही लिखना है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसिद्ध पर्वतारोही स्माइथने १९३१ में कामत चोटीसे उतरते हुए, इस स्थानकी झलक देखी थी, परन्तु उस समय उसके साथ बड़ा काफिला था—प्रोग्राम भी नहीं बना हुआ था, इसलिए वहां बिना रुके वापस यूरोप चला गया। परन्तु उसके मनमें इसे देखनेकी प्रबल आकांक्षा बनी रही। उसने लिखा है कि एक प्रकार अनजाना आकर्षण-सा रहा। आखिर १९३८ में वह कुछ पहाड़ी मार्ग दर्शकों और कुलियों के साथ उत्तराखंडकी भुयन्दर घाटीके इस स्थान पर आ पहुंचा।

यहां वह दो महीनें रहा और पूरी खोज-बीनके बाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैली आफ फ्लावर्स' लिखी फिर तो इस अचिन्हें-अजाने स्थानका विश्वमें नाम हो गया और बहुतसे साहसिक यात्री अनेक देशोंसे यहां आने लगे। कहते हैं कि यहांकी मादक हवा और सुगंधसे बेहोशी-सी आ जाती है। एक विदेशी महिला जोआन मार्गरेट लेग तो बेहोश होकर यहीं खड्डमें गिरकर मर गई। मैंने उसकी समाधि इस वीराने स्थान पर देखी। पर्यटक आज भी श्रद्धा-स्नेहसे उस पर दो फूल चढ़ाते हैं। स्वदेश और बन्धु-बान्धवोंसे हजारों मील दूर पुष्पोंकी शय्या पर चिर निद्रामें सोई हुई है।

संयोगसे, यहाँसे चार मील पर सिक्खोंके दसवें गुरू गोविन्द सिहके पूर्व जन्मकी तपस्थली लोकपाल हेमकुण्ड है, जिसका पता बड़ी खोजके बाद १९३२ में लग पाया। हजारोंकी संख्यामें श्रद्धालु सिक्ख स्त्रीपुरुष प्रति वर्ष तीर्थयात्राके लिए जाते हैं, इसलिए अब साधारण पर्यटकके लिए भी फूलोंकी घाटीमें जाना सहज हो गया है।

बदरीनाथसे १३ मील पहले ६००० फीटकी ऊँचाई पर गोविन्द घाट गुरुद्वारा है, यहाँ तक मोटरें और बसे आती हैं। मैं ग्यारह बजे वहाँ पहुँचा। ग्रन्थीजीने बड़े प्रेमसे लंगरमें खाना खिलाया और ऊपर जानेके लिए चार आदमियोंकी एक डण्डी कर दी। वैसे घोड़ा सस्ता और ज्यादा आरामदेह रहता, परन्तु उस दिन सारे घोड़े ऊपर जा चुके थे और मुझे जल्दी थी। वहाँसे साढ़े सात मील ऊपर चढ़कर दस हजार चार सौ फीटकी ऊँचाई पर घाघरिया नामके स्थान पर भी गुरुद्वारा है। फूलों की घाटी और हेमकुण्ड जाने वालों के लिए यह सुस्ताने को जगह है। रातमें वहाँ ठहर गया। यहाँ भी ग्रन्थ साहब की आरतीके बाद कड़ा प्रसाद मिला और सादा भोजन। हेमकुण्ड जाने वाले दस-पन्द्रह सिक्ख यात्री ठहरे हुए थे फिर भी जगह काफी थी। रात्रिमें ओढ़नेके लिए व्यवस्थापक ने ४-५ कम्बलें दे दीं।

दूसरे दिन सुबह साढ़े छः बजे हेमकुण्डके लिए रवाना हुआ। यहाँसे ४ मील दूर १५१०० फीटकी ऊँचाई पर यह पवित्र मनोरम स्थान है।

यहाँकी पतली हवासे मुझे किसी प्रकारके चक्कर नहीं आए। कपड़ोंमें केवल एक कुर्ता और एक खादीकी जाकेट थी, ऊपरसे एक कम्बल ओढ़े था। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा यह पहला मौका था।

दो बजे जब वापस घाघरिया पहुँचा तो काफी थक गया था। मैंने डांडी केवल ऊपर चढ़नेके लिए की थी। खड़ी उतरायीमें बिना अभ्यासके पैरोंके घुटनोमें दर्द हो गया। भोजन करके आराम कर रहा था कि संयोगसे एक घोड़ा मिल गया और फूलोंकी घाटी उसी दिन चला गया।

मार्ग अत्यन्त विकट है। विष्णुगंगाके किनारे ऊँची-नीची पथरीली संकरी सड़क पर घोड़ा चला जा रहा था। कहीं-कहीं तो केवल मुश्किल से दो फीट चौड़ाई ही थी। हिचकोले लगते थे। मन दूर अतीतकी ओर खिंच जाता। मुक्तिकी कामनासे किस प्रकार एकाकी त्यागी संन्यासी इन वन-प्रान्तरोंसे गुजरते होंगे। क्या मिलता होगा उन्हें इन बीहड़ और निर्जन मार्गों पर? क्षण भरमें दृष्टि चली जाती नीचे गहराईमें, गरजती विष्णु गंगा पर। झाग उड़ाती पत्थरोंसे टकराती बढ़ती जा रही थी, किसी भी अवरोधकी अटक नहीं जैसे इसीमें जीवन की सार्थकता हो। एक पुल से घोड़ा गुजरा। ऊँचे दो पर्वतोंके बीच संकरा सा पूल, नीचे वेगवती

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नदी का उफान । जरा सा चूक हुई कि सब खेल खत्म । जिन्दगी और मौतका फासला ही कितना ?

मैं गौर कर रहा था पहाड़ी घोड़ा हमेशा गर्तकी तरफ चलता है पर उसकी सधी चालमें फर्क नहीं आता । घोड़े का मालिक मुझ पर नजर रखे था । जरा भी भयभीत देखता तो दम दिलासा देता रहता । साहसिक घटनाओं, देवता-पुराणोंकी न जाने कहाँ-कहाँ की बातें कहते-सुनाते दो तीन मील की बीहड़ चढ़ाई पार करा दी । हँस कर अन्तमें कहा, "शाब आगयी फूल घाटी ।"

सचमुच, सामने फूलों की घाटीने मुस्करा कर स्वागत किया । जीवनमें देश-देशान्तरोंके भ्रमण-पर्यटनके बहुतसे अवसर मुझे मिले । उत्तरी ध्रुवांचलमें निशासूर्यके दर्शन कर चुका हूँ । स्विटजरलैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रिया की सौंदर्य स्थलियाँ देखी हैं । सहाराके धधकते मरुस्थलमें रेत की आँधियोंको देखा है और बिसूवियसकी उगलती आगमें प्रकृतिके रौद्ररूप महाकाल को देखा हैं । परन्तु यहाँ जो कुछ देखा वह तो प्रकृतिकी अद्भुत और अवर्णनीय रचना थी । मुझे कविवर श्रीधर पाठककी पंक्तियाँ याद आगयीं ।

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप संवारति,
पल पल पलटति, भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति ।"

लगता है, देवाधिदेव शिवको प्रसन्न करनेके लिए आद्याशक्ति पार्वती अपना श्रृंगार कर रही है ।

मेरा भाग्य अच्छा था । मुझे रुपहली धूपमें पूरी घाटीके फूल दिखाई पड़े । बहुत बार घने कोहरेके कारण पर्यटकोंको वहाँ से निराश लौटना पड़ता है । जो कुछ देखा, वह लिखना सम्भव नहीं । अनुभवको शब्दों में उतार सकते हैं, अनुभूतिको नहीं । स्विटजरलैण्डको देखने के बाद मैंने उसे 'भूलोकका नन्दन कानन' समझा था यहाँ आने पर लगा कि यह धारणा भ्रान्तिमूलक थी ।

इस अंचल का नाम भूयन्दरकी घाटी है । मैं सोचने लगा कहीं यह भू इन्द्रका अपभ्रंश तो नहीं । भाषा विज्ञान माने न माने, मैं तो मान बैठा । पता नहीं, इस जगह पर ही प्रकृतिने इतनी कृपाकी, सैकड़ों-हजारों तरह के फूल बिखेर दिये ।

ऐसा लगता है कि ऊन और रेशमसे बुना गया विविध रंगोंका एक गलीचा सा बिछा हुआ है । आमतौर पर दस हजार से अधिक उँचाई पर फूलोंकी तो बात ही क्या हरियाली नहीं मिलती । परन्तु यहाँके हिमशिखरोंकी गोदमें फूलों की बारात भूगोल और प्रकृति शास्त्र के लिए एक जिज्ञासा प्रस्तुत करती है ।

डालियासे भी बड़े और राईके समान छोटे सैकड़ों तरहके फूल देखनेमें आये । आश्चर्य तो यह है कि बर्फानी तूफान, अत्यधिक शीत और ओलोंकी वर्षाको सहकर किस प्रकारसे ये कोमल पुष्प विकसित हो जाते हैं ।

कई विशेषज्ञ यहाँके फूलोंके बीज और पौधे विदेश ले गये, परन्तु अनेक प्रयत्नोंके बावजूद इस प्रकारकी सुगन्ध और रूपरंगके पुष्प पैदा नहीं कर पाए ।

जाते समय मित्रोंने चेतावनी दी थी कि वहाँ पर इतनी ज्यादा सुगन्ध है कि बेहोशी सी आ जाती है । मुझे लगा कि, सुगन्ध वहाँ जरूर है; किसी फूलमें लेवेण्डरकी, किसीमें ताज़ा पिसी हुई कॉफीकी, तो किसीमें अजवायन, दालचीनी और लौंग जैसी । परन्तु बेहोशी अगर किसीको आती भी है तो केवल सुगंध से नहीं बल्कि यहाँके प्राकृतिक सौंदर्य और १२००० फीट की ऊँचाई की पतली हवा से ।

मनुष्य की तरह पशु भी शायद सौंदर्य प्रेमी होते हैं । वंशीलाल और मैं जब इस नन्दन काननमें एक घंटा ठहर कर नीचे उतरने का विचार करने लगे तो देखा कि उसका हीरू घोड़ा फूलोंके ऊँचे-ऊँचे पौधोंमें छिपा हुआ खड़ा है ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुकार-पुचकारने के बाद किसी प्रकार नीचे जानेको उसे तैयार किया और ६ बजकर ३० मिनट तक हम उस अद्भुत वर्णनातीत और अनोखे स्थलसे वापस लौटे ।

रात्रिमें गुरुद्वारेमें लेटा हुआ सोचता रहा कि अगर यह स्थान स्विटजरलैंड या हालैण्डमें होता, तो विश्वमें बड़े पैमाने पर विख्यात होकर हजारों लाखों विदेशी यात्रियोंका आकर्षण। पर्यटन केन्द्र बन जाता, पक्की सड़क बन जाती । ठहरनेके लिए ताप नियंत्रित होटल-मोटल हो जाते; करोड़ों डालर पाउण्ड मार्क आकर यहाँ बिखर जाते । परन्तु हमें तो इन सब बातोंको सोचने-समझने की फुरसत ही नहीं है । बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अजन्ताके अनमोल भित्ति चित्रों का भी एक विदेशी पर्यटकने ही पता लगाया था और बीसवीं शताब्दीमें विश्वके इस अद्वितीय आश्चर्यका भी स्माइथ नाम के विदेशी पर्वतारोही पर्यटक ने ।

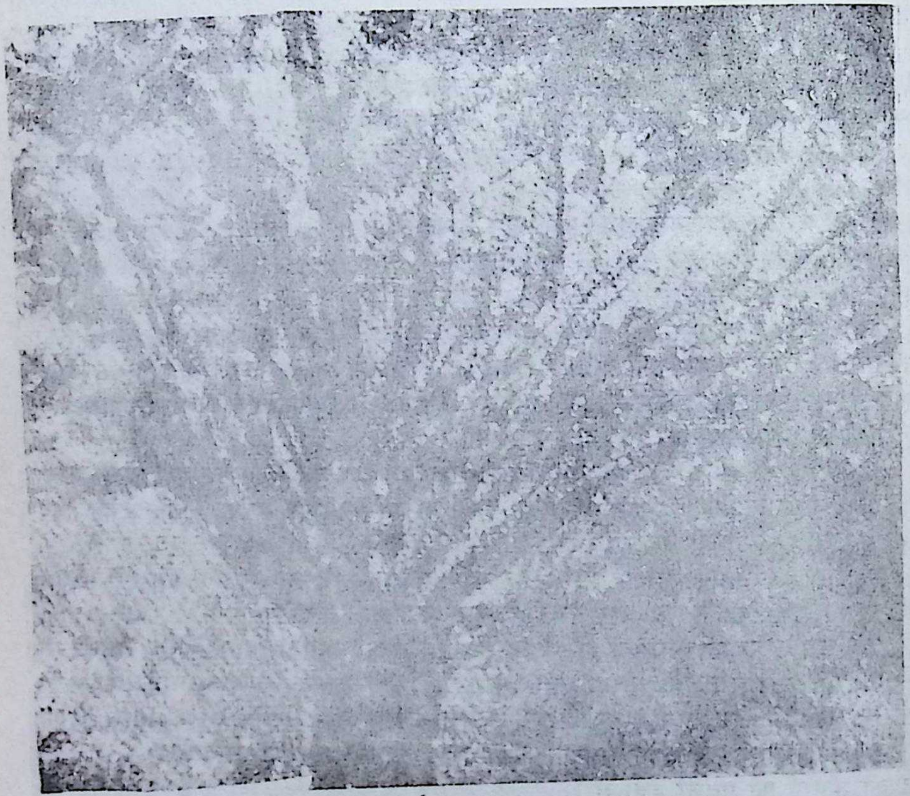

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोकपाल-हेमकुण्ड

भारतीय ऋषि-मुनियोंने न जाने क्यों अपनी तपस्थली दुर्गम हिमाच्छादित देवात्मा हिमालयको चुना था। शायद उनको वहाँकी शुद्ध हवा, स्वच्छ वातावरण और बर्फानी चोटियों ने आकर्षित किया हो।

पर्वतराज हिमालयको केवल मात्र तपस्थली कहना भूल होगी। शिव-पार्वती, दुष्यन्त शकुन्तला और अनिरुद्ध-उषाका प्रथम प्रणय यहींके पहाड़ों के वन-प्रान्तरमें हुआ था। मादक हवा और वातावरणसे विमोहित होकर अश्विनी कुमारोंकी चेतावनीको भूलकर पाण्डुराजने अपने क्षय रोग की परवाह न कर अपने माद्री के साथ संभोग करके एक प्रकारसे मृत्युका आह्वान किया था।

तपोलीन ऋषि मुनियों के साथ-साथ आज भी यहाँके खेतों, खलिहानोंमें ढोर चराती हुई या नदी से पानी लाती हुई उर्वशी, मेनका और रम्भाएँ देखी जा सकती हैं। इस स्थानकी हवामें इतनी मादकता है कि जिससे उद्वेलित होकर शिवजी जैसे तपस्वी के मनमें भी कामोत्तेजना हो आई। आखिर, उन्हें कामदेव को भस्म कर देना पड़ा।

यहीं की एक परम रमणीय मनोहारी बर्फानी घाटीमें सिक्खोंके दशमेश गुरु गोविन्द सिंहजीने अपने पूर्व जन्ममें तपस्याकी थी। उन्होंने स्वरचित ग्रन्थ विचित्र नाटक में लिखा है —

"अब मैं अपनी कथा बखानो ।
तप साधम जिंह विधि मुहि आनो ॥
हेम कुण्ड पर्वत है जहाँ ।
सपत श्रृंग सोभित है तहाँ ।
सपत श्रृंग तह नाम कहावा ।
पांडु राज जहँ जोग कमावा ।
तेंहि हम अधिक तपस्या साधी ।
महाकाल कालिका आराधी ॥"

गुरुजी के स्वर्गवास के बाद २२५ वर्षों तक यह स्थान जनता से छिपा हुआ था।

बीसवीं सदी के शुरू से ही सिक्खों के मन में इस पवित्र तीर्थ को खोज निकालने की आकांक्षा रही। सन् १९३२ में बाबा करतार-सिंह वेदीको पाण्डुकेश्वरमें एक वयोवृद्ध महात्मा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वारा इस स्थान का पता चला और वे अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए यहाँ पहुँच गये।

यहाँ आकर उन्होंने गुरुजी द्वारा वर्णित सात चोटियाँ देखीं और उसके बीच में स्वच्छ निर्मल जल का एक कुण्ड। वहीं पर रखी हुई एक शिला पर ध्यानमग्न होकर बैठ गए। अधिक सर्दी और पतली हवा के कारण बेहोश हो गए।

उसी बेहोशी में उन्हें आभास हुआ कि एक महात्मा कह रहे हैं कि अरे भाग्यवान तेरा जीवन सफल हुआ। यही वह शिला है, जिसपर बैठकर गुरुगोविन्द सिंह जी ने तपस्या की थी। चेतना आने पर बाबा करतार सिंह को एक विचित्र आनन्द की अनुभूति हुई। सारा शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया, एक प्रकार की दैवी शक्ति के प्रादुर्भाव का आभास हुआ।

अमृतसर आकर उन्होंने सारा वृत्तान्त सिक्खों के नेता भाई वीरसिंहजी को सुनाया। वीरसिंहजी ने कुछ साहसी मित्रों को तैयार किया और उनको साथ लेकर इस दुर्गम स्थान पर पहुँचे। बहुत परिश्रम के बाद सन् १९३६ में उसी शिला पर एक छोटे से गुरुद्वारे का निर्माण हुआ।

सन् १९३६ के बाद से श्रद्धालु सिक्खों के जत्थे प्रतिवर्ष यहां आते रहते हैं। उनमें से कइयों ने रात्रि में सरोवर में बिजली की सी चमक देखी। हेमकुण्ड दर्शन के लेखक डा० जवाहर सिंह ने लिखा है कि उन्होंने अपने कई एक साथियों सहित एक बाज पक्षी देखा, जो इनके जत्थे के साथ साथ घाँघरिया तक आया। यही बाज उन्होंने अमृतसर में गुरु के बाग के मोरचे के समय देखा था। उन लोगों की धारणा है कि जो बाज गुरुजी के पास रहता था, वही उनके गुरुद्वारे और तपस्थली में आजतक है।

२० अगस्त, १९७२ को बदरीनाथ की यात्रा करके लौटते समय लोकपाल-हेमकुण्ड जाने के लिए गोविन्द घाट गुरुद्वारे में आया। हेमकुण्ड के लिए जोशीमठ या बदरीनाथ के तहसीलदार से परिपत्र ले लेने पड़ता है, क्योंकि यह क्षेत्र तिब्बत की सीमा पर है।

अलकनन्दा के किनारे गोविन्द घाट गुरुद्वारा पाण्डुकेश्वर से एक मील दूर ६००० फीट की ऊँचाई पर है। यहाँ पर ५०-६० यात्री आराम से ठहर सकते हैं। चाय-पकौड़ी और मिठाई की एक दुकान भी है। वैसे, गुरुद्वारे में यात्रियों के लिए चाय और भोजन की व्यवस्था रहती है।

दूसरे दिन इस क्षेत्र के निरीक्षण के लिए जिलाधीश का ऊपर जाने का प्रोग्राम था, इसलिए अंचल के सारे घोड़े पहले से ही आरक्षित कर लिए गए थे। ग्रन्थीजी ने मेरे लिए ८०) रु० में हेमकुण्ड जाने के लिए चार आदमियों की एक डांडी कर दी थी। अगर घोड़े पर जाता तो केवल ४०) लगते। भोजन करके १२ बजे रवाना हुआ।

अलकनन्दा पर लकड़ी का एक पुल बना हुआ है, उसे पार करते ही खड़ी चढ़ाई मिलती है। रास्ते में जंगली झाड़ियाँ और वृक्ष बहुतायतसे थे।

दो घण्टे चलने के बाद तीन मील पर एक गाँव मिला, यहाँ एक चायकी दुकान थी। डांडी वाले काफी थक गए थे, थोड़ी देर सुस्ताकर आराम करने लगे।

अब शायद हम ८००० फीटकी ऊँचाई पर आ गए थे। हवा में ठंडक थी—रास्ता भी कुछ सीधा था। डांडीसे उतर कर मैं पैदल चलने लगा। एक पढ़ा-लिखा पहाड़ी युवक ऊपर जा रहा था। उसकी बकरियाँ और भेड़ें फूलोंकी घाटीमें चरने को गई हुई थीं। उससे फूलोंकी घाटी के बारेमें बहुत तरहकी जानकारी मिली। मैं तो थोड़ी-सी चढ़ाईमें हाँफ जाता परन्तु वह टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से दौड़ता हुआ ऊपर पहुँच जाता है। उसने बताया कि जून तक यह रास्ता बर्फ से ढँका हुआ रहता है। उस समय यहाँके ग्रामीण ही आ-जा सकते हैं और वे भी केवल भ्यन्दर गाँव तक।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिन के लगभग ३-३० बजे हमलोग गोविन्दघाटसे ५ मील पर भुयन्दर गाँव में पहुँचे। यहाँ चाय पी और गर्म पकौड़ियाँ खायीं।

बहुत वर्षोंसे इस गाँवमें एक वृद्ध बंगाली साधु रहते हैं। उनसे मिलने गया। जवानीमें हिमालय के बहुतसे हिस्सों की उन्होंने यात्राकी है। भुयन्दर घाटी और आसपास के क्षेत्रकी जानकारीकी अंग्रेजी में एक पुस्तक भी लिखी है।

उनको घेरे हुए पहाड़ी स्त्री-पुरुष बैठे थे। वे उन्हें होमियोपैथिक दवा देते हैं। एक प्रकारसे उनके अपने परिवार की तरह हो गए हैं।

मैंने बंगलामें बात शुरू की—बहुत दिनों बाद मातृभाषा को सुनकर उनके मनमें खुशी हुई। शायद ५०-६० वर्ष पहले छोड़े हुए स्वजन और गाँव-घर फिर याद आ गए।

मैंने पूछा, "महाराज, तीर्थ तो बंगाल-आसाममें भी हैं। पड़ोस में काशी भी बड़ा तीर्थ है, वहाँ बन्धु-बान्धव भी मिल जाते, फिर आप इस अजाने-अचिन्हे बीहड़ स्थानमें अकेले रहकर क्यों कष्ट सहते हैं ?"

उन्होंने हँसते हुए कहा—"मेरे ये पूर्व जन्मके बन्धु हैं। इनकी पुकार सुनकर ही यहाँ रहता हूँ। यही मेरे लिए तीर्थ और तपस्थली है। माँ गंगा कलकत्ता और काशीमें हैं और उसका उद्गम स्थल इस क्षेत्र में है इसलिए एक प्रकार से मैं अपने ननिहाल में आया हुआ हूँ।

"जीवनके तीसरे दशक में भ्रमण करता हुआ न जाने किस आर्कषण से यहाँ आ पहुँचा—उन बातों को पचास वर्ष हो गए। अब तो प्रभु से यही प्रार्थना है कि देवताओं की इस हिमाच्छादित भूमि में किसी दिन इन सब लोगों के हाथ से गंगा लाभ करूँ।

महाराज का एक श्रद्धालु भगत चाय बनाकर लाया। 'ना' नहीं कर सका। विदा के समय उन्होंने स्वरचित पुस्तक भेंट की।

भुयन्दर से आगे फिर कड़ी चढ़ाई है—घांघरिया पहुँचे तब पाँच बज गए थे। डांडी वाले इस सर्दी में भी पसीने से तरबतर होकर हाँफ रहे थे। मनुष्य को अपने और परिवार वालों के पेट भरने के लिए सब कुछ करना पड़ता है। अगले दिन फिर इन्हें इससे भी कड़ी चढ़ाई-हेमकुण्ड पर जाना होगा, जहाँ की हवा भी पतली है। इसलिए उबकाई और चक्कर भी आते हैं। शायद जीवन के अंतिम दिनों तक इनका यही कार्यक्रम चालू रहेगा।

घांघरिया का गुरुद्वारा १०,००० फीट की ऊँचाई पर है। श्रद्धालु सिक्खों ने १९३९ में यात्रियों के सुस्ताने के लिए इसे बनाया था। अब तो काफी बड़ा हो गया है। १५-२० स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। ग्रन्थीजी ने बड़े प्रेम से कोने में एक जगह बता दी। थोड़ी देर बाद प्रसाद के रूप में गर्म चाय मिली।

सर्दी और थकावट के कारण कंबल ओढ़कर सो गया था। गुरुग्रन्थ साहब की आरती का समय हो गया, ग्रन्थी जी ने जगाकर कीर्तन में चलने को कहा। सिर पर ओढ़ने को साफा या टोपी नहीं थी, इसलिए कम्बल ओढ़े माथा टेककर कीर्तन में बैठ गया।

जो भजन कीर्तन हुए, वे सब वैष्णव धर्म से मिलते जुलते थे। भाषा भी समझ में आ रही थी। आरती के बाद सुस्वादु कड़ा प्रसाद मिला।

गुरुद्वारे में भोजन के लिए लंगर में बैठना पड़ता है। इनमें छोटे बड़े का भेदभाव नहीं रहता। बड़ेबड़े अफसर और धनी सिक्ख भोजन परोसते हैं तथा सफाई वगैरह का कार्य बड़े प्रेम से करते हैं।

गरम फुलके, दाल और आलू-प्याजकी सब्जी थी। भूखमें यह सादा खाना भी अमृत-तुल्य लगा। भोजनके बाद सबोंने अपनी थाली-कटोरी को राखसे अच्छी तरह मलकर धो-पोंछकर रख दिया।

रातमें काफी सर्दी थी। व्यवस्थापकने ५ कम्बलें दीं—दो मेरे पास थीं। सोते ही खूब नींद आ गयीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे दिन ६ बजे उठा। नित्य कर्मसे निवृत्त होकर तैयार हुआ—इतनेमें डांडी वाले आगये। आज चलना तो केवल ४ मील ही था, परन्तु चढ़ाई थी ५,००० फीटकी।

मैं अचानक ही बिना प्रोग्रामके इस यात्रा पर निकल पड़ा था। इसलिए, गरम कपड़े साथमें नहीं ला सका था। दो कंबले ओढ़कर डांडी पर बैठ गया। आमतौर पर १०-१२ हजार फीट पर हरियाली नहीं रहती, परन्तु इस अंचलमें ही विश्वप्रसिद्ध फूलों की घाटी है, इसलिए हमें रास्तेमें जगह-जगह सुन्दर फूल और पौधे दिखाई दिये। वैसे, बर्फ गल चुकी थी, फिर भी दोनों तरफ पहाड़ोंके कोनोंमें बर्फकी चौड़ी पट्टी थी। कहीं-कहीं इनके बीचसे झाँकती हरियाली प्रकृतिकी जीवनी-शक्तिका परिचय देती थी। काफी कड़ी चढ़ाई पड़ती है, हवा भी पतली है।

डांडी वाले धीरे-धीरे रेंगते हुए ऊपर चढ़ रहे थे, जब थक जाते तो आराम करने लगते। मुझे उनकी थकावट देखकर न जाने कैसा ही लग रहा था, परन्तु मेरा इतनी ऊँचाई और खड़ी चढ़ाई पर जानेका पहला ही मौका था। फिर भी बीच-बीचमें मेरे पैदल चलनेसे उन्हें राहत मिल जाती थी। हमें कुछ पहाड़ी मजदूर लोहेके खम्भे लिए हुए ऊपर जाते मिले। गोविन्दघाट गुरुद्वारेसे १२ मीलकी चढ़ाईके उन्हें २० रुपये मिलते हैं। एक मन बोझ लेकर दो दिनोंमें अथक परिश्रम करके वे ऊपर हेमकुण्ड पहुँचते हैं जहाँ पर गुरद्वारेका निर्माण हो रहा है।

एक अधेड़ सिक्ख दम्पत्ति मेरे साथ-साथ पैदल चल रहे थे। आधी दूरी तो हिम्मत करके पत्नीने किसी प्रकार पार कर ली, इसके बाद एक शिला पर बैठ गई। पतिकी बहुत आरजू-मिन्नतके बाद भी वह जानेको तैयार नहीं हुई। मैंने अपनी डांडीमें बैठ जानेको कहा, परन्तु ऐसा लगा कि वे पैदल यात्रा की मनौती मानकर घरसे चले थे। हम जब करीब एक मील रह गए तो बहुत ऊँचे पर एक झण्डा दिखाई दिया। डांडी वालेने बताया कि वहीं हेमकुण्ड लोकपाल है। ऊँचाई देखकर मनमें कैसा ही भय सा समा गया। रामनामका जप करता हुआ आँख मींचकर डंडी पर बैठ गया। जीवनमें पहाड़ों पर काफी घूमा हूँ, परन्तु इतनी कड़ी ऊँचाई कहीं भी देखनेमें नहीं मिली। मेरे ऊपर पहुँचनेके थोड़ी देर बाद ही वे दोनों भी थके-हाँफे ऊपर पहुँच गए।

१५,१०० फीट पर यह पवित्र स्थान है। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा पहला मौका था। हवामें ऑक्सीजनकी कमीके कारण पतलापन था, फिर भी श्वास लेनेमें खास तकलीफ नहीं हुई। वहाँ ज़ाकर जो कुछ देखा, वह तो वर्णनातीत था। तुलसीदासजीकी उक्ति याद आ गयी, "गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।"

सातों चोटियोंके बीच की घाटीमें एक सुन्दर सरोवर है—उसके किनारे एक छोटा-सा गुरद्वारा बना हुआ है। कहते हैं इसके भीतर रखी हुई शिला पर अपने पूर्व जन्ममें गुरु गोविन्द सिंहजीने तपस्या की थी।

नए गुरद्वारेका भव्य भवन बन रहा था। वर्षमें केवल तीन महीने काम हो पाता है, इसलिए पाँच वर्ष हो गए और समाप्ति में और पाँच वर्ष लग जाएंगे। ५० लाख रुपये इसके लिए श्रद्धालु सिक्खोंने इकट्ठा किया है। ७४ वर्षीय रिटायर्ड इंजीनियर श्री बसनसिंहजी प्रति वर्ष तीन महीने यहाँ रहकर निर्माण कार्यकी देखभाल करते हैं। और भी तीन-चार स्वयंसेवक उनके साथ रहते हैं। चौगुनी मजदूरी देकर नीचेसे मजदूर लाते हैं, जिनमें से कुछ ठंड और पतली हवा नहीं सह सकनेके कारण वापिस चले जाते हैं। उन सबके रहनेके लिए चार-पाँच कोठरियाँ बनी हुई हैं।

'वाह गुरुजीकी फतह' के बाद गर्म चायका गिलास मिला। ग्रन्थीजीने गुरुग्रन्थ साहबके दर्शन कराए। सरोवर में स्नान करनेका मन तो बहुत था, परन्तु हड़कम्प ठंडके कारण विचार छोड़ दिया। मेरे साथ आए हुए पति-पत्नीने जल्दीसे २-३ डुबकी ले ली।

गुरु गोविन्द सिंहजीने अपनी वाणीमें कहा है—'चित न भंयो हमारो आवनको।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वास्तवमें ही यह जगह ऐसी रमणीक और पवित्र है कि नीचे उतरनेका जी नहीं चाहता। यहाँसे ४,००० फीटकी ऊँचाई पर सात चोटियोंके बीचकी चोटी पर एक झंडा फहरा रहा था। पूछने पर पता चला कि कुछ हिम्मती सिक्ख प्रतिवर्ष वहाँ जाकर झंडा लगाते हैं। संयोगसे आती दफे रास्तेमें वे लोग मुझे मिले। उन्होंने बताया कि यद्यपि ऊपर जानेका तो रास्ता नहीं है, पर 'वाह गुरु' का जाप करते हुए किसी न किसी प्रकार पहुँच जाते हैं।

बाबाजीने भोजनके लिए ठहरनेका आग्रह किया, परन्तु डांडी वालोंको नीचे उतरनेकी जल्दी थी और रास्तेकी बीहड़ता और सूनेपनको ध्यानमें रखकर उनके साथ ही जाना चाहता था, इसलिए आधा घंटा ठहरकर वहाँसे रवाना हो गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्व का सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस्

सन १९६० तक मान्यता थी कि फोर्ड और रॉकफेलर विश्व के सबसे धनी हैं। वैसे पहले पन्द्रह धनियोंमें आगा खाँ और निजाम हैदराबादका नाम भी लिया जाता था। परन्तु समय बदलता रहता है—आज निजाम हैदराबाद और आगा खाँ के उत्तराधिकारी केवल १०-१५ करोड़के आसामी रह गये हैं। उन जैसे सैकड़ों हजारों धनी विभिन्न देशोंमें बिखरे पड़े हैं।

फोर्ड और रॉकफेलर घराने यद्यपि पहले दस धनियोंमें हैं, जबकि पिछले बारह वर्षोंसे प्रथम स्थान मिल गया है हावर्ड ह्यूजेस को, जिसके पास लगभग १२०० करोड़ की सम्पत्ति कूँती जाती है।

हॉरल्ड रोबिन्सका प्रसिद्ध उपन्यास 'कारपेट वैगर्स' पढ़ रहा था। प्रकाशकोंका दावा है कि इसकी लगभग ६० लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। मुझे भी इसका वर्णन रोचक किन्तु अजीब-सा लगा। २० प्रतियाँ खरीदकर मित्रोंको भेंट दी। उपन्यास का नायक जोनाका करोड़पति पिता मर गया। उसकी लाश को छोड़कर वह अपनी युवती विमाता रोना (जो विवाहसे पहले उसकी प्रेयसी थी) के पास जाकर प्रेमालाप करने लगा। रोना कहती है कि अगर तुम्हारा पिता आ जायेगा तो उसका जवाब होता है कि पिता अब कभी नहीं आयेगा। इसी प्रकार की और भी बहुत-सी बातें इस किताबमें हैं जो हमारे देश की लक्ष्मण रेखासे तो दूर हैं ही, फ्लावरकी मैडम बोवरी और लोरेन्सकी लेडी चेटरलीज़ लभरसे भी कहीं ज्यादा अश्लील हैं। पुस्तक पढ़ते हुए मैं सोच रहा था कि अगर यही अमरीकी जीवन है तो फिर हम भले और हमारा देश भला।

जानकार मित्रोंने बताया कि उपन्यासका जोना वास्तवमें हावर्ड ह्यूजेस् है, जिसकी जीवनी पर यह उपन्यास आधारित है।

इसके बाद ह्यूजेस् के बारेमें अधिक जानकारी लेने की इच्छा हुई। जो कुछ सामग्री मिली, उसे जान-सुनकर ऐसा लगा कि अत्यधिक धन-सम्पत्ति अधिकांश मनुष्योंको वास्तवमें ही बौरा देती है, खास करके जवानी के समय में।

१९०५ में ह्यूजेस् का जन्म हुआ। उसका पिता एक सफल उद्योगपति था। प्रथम महायुद्ध में उसका बारूद और हथियारोंका कारखाना था, जिसके लाभसे युद्ध समाप्तिके समय उसके पास १५-२० करोड़ रुपये हो गये।

उसकी मृत्यु पर २० वर्षके युवक पुत्र के हाथमें व्यापार-उद्योग आया। पहले से ही पिता-पुत्रमें मेल नहीं था, क्योंकि उस छोटी उम्रमें ही जितनी आदतें उच्छृंखल धनी युवकोंमें होती हैं, वे सब पर्याप्त मात्रामें ह्यूजेस् में थीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिताके मरने पर थोड़े समयके लिए पुरानी आदतें छोड़कर जिस दृढ़ता और लगनसे उसने कारबार को सम्हाला और बढ़ाया, उसे देखकर दूसरे उद्योगपतियों और उसके अपने कारखानेके कर्मचारियों को आश्चर्य हुआ।

शुरूसे हीं वह दक्ष पाइलेट था, उसने हवाई जहाज बनानेका कारखाना खोला और उसके हवाई जहाजोंने तेज चलनेमें विश्वमें नया रिकार्ड कायम किया। उसने स्वयं भी तेज उड़ानों के लिए राष्ट्रीय इनाम जीते, जिससे उसका चारों तरफ नाम फैल गया और उसके उद्योगों को बड़े आर्डर मिलने लगे।

१९३१ में विश्व में, खास करके अमरीका में बड़ी मंदी आई। घटे दामोंमें भी चीजोंके खरीददार नहीं थे। ह्यूजेस ने हिम्मत करके जमीन, मकान, फिल्म स्टूडियो, विभिन्न उद्योगों के शेयर, बड़े-बड़े होटल-मोटल और कैबरे खरीद लिए। अगले ७ वर्षों में यूरोपमें द्वितीय महायुद्ध की तैयारी होने लगी। उसकी खरीदी हुई वस्तुओं के दाम बहुत बढ़ गए और कारखानों को अनाप-सनाप आर्डर मिले। सन् १९४५ में जब युद्ध समाप्त हुआ तब उसके पास ५००-६०० करोड़ रुपये हो गए। उन दिनों अमरीकामें कैपिटल नफे पर टैक्स बहुत कम थे। तेरह वर्षोंमें ३० करोड़ से ५०० करोड़ होना एक अचम्भे की सी बात है, इस सन्दर्भमें मुझे अपने देश की नई दिल्लीकी बात याद आजाती है।

१९२२ में मेरे एक जान-पहचानके व्यक्तिने रेटेन्डन रोड में १२००० गज जमीन ४,५००) रुपयेमें खरीदी। उस समय वहाँ जंगल था। रातमें सियार, गीदड़ और अन्य वन्य पशु घूमते रहते थे।

नई दिल्ली बढ़ती गयी, उसी अनुपातमें जमीनोंके दाम भी ऊँचे होते गए। आज भी वह जमीन उसी व्यक्तिके पास है और उसकी कीमत है—२५०) रुपये प्रति गजके हिसाबसे लगभग तीस लाख रुपये।

अमरीका और यूरोपमें ह्यूजेसके बारे में अनेक प्रकार की किम्वदंतियाँ फैलने लगीं। हजारों स्त्री-पुरुष विभिन्न कामोंसे उससे मिलने का प्रयत्न करने लगे। उसके पाँच सचिवोंके जिम्मे तो केवल यही काम था कि उनमेंसे थोड़े से लोगोंको चुनकर ह्यूजेससे मिलने दिया जाय।

इतना व्यस्त रहते हुए भी उसकी एक अपनी रंगीन दुनिया थी, जिसके लिए वह बहुत जरूरी कामोंको छोड़कर पर्याप्त समय निकाल लेता था। वेश बदलकर बदनाम जुआघर कैबरे और रात्रिक्लबोंमें वह प्रायः ही चला जाता।

पाँच-दस की जगह सौ-दो सौ डालर की बख्शिश देता, इसलिए वहाँ की सब नर्तकियाँ उसके इर्द-गिर्द इकट्ठी रहतीं। उनमेंसे दो-चार को चुनकर वह गुप्त फ्लैटमें ले जाता। उन सब स्थानों का पता केवल उसके निजी सचिवको ही रहता और वह भी बहुत जरूरी होने पर ही वहाँ फोन करता।

१९६५ में ह्यूजेस साठ वर्ष का हो गया। उस समय उसकी सम्पत्ति थी, लगभग १२०० करोड़ रुपये और अब वह विश्व का सबसे धनी व्यक्ति था।

निजाम हैदराबादकी तरह ह्यूजेस् भी बहुत साधारण लिबासमें रहता है। एक बार सैरके लिए लन्दन गया। उसे अपनी किसी प्रेमिकाको हीरों का हार एक उपहार देना था। साथमें उसका निजी सचिव था। वहाँकी रिजेण्ट स्ट्रीट की एक प्रसिद्ध जवाहरात की दूकान में चला गया। वेश-भूषा देखकर उन्होंने पचास-साठ हजारके कई हार दिखाये। उसने कहा—मुझे क़ीमती हार चाहिए, दो-चार लाख के दिखाये गए। ह्यूजेस् ने कुछ रोबसे कहा कि मैंने सुना था कि आपकी दुकान में बेहतरीन गहने रहते हैं, फिर यह सब सस्ती चीजें दिखाकर मेरा और अपना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अगर भारतीय जौहरी होते तो समय को व्यर्थ बरबादी समझकर उसे टरका देते, परन्तु यूरोपके दूकानदार बहुत शालीन और सभ्य होते हैं। उन्होंने एक पन्द्रह लाखका हार दिखाया। हार खरीदकर उसने अपने सचिवसे चेक देने को कहा। जब दुकानवालोंको पता चला कि अरबपति हावर्ड ह्यूजेस् उनकी दूकानमें खड़ा है तो फिर लगे खातिरदारी करने और दूसरी कीमती चीजें दिखाने।

१९६६ में वह इकसठ वर्ष का था। परन्तु ऐय्याशी, अबाध भोग-विलास और नाना प्रकारके व्यापारिक झंझटोंके कारण उसका शरीर थक गया! याददाश्त भी कम हो गई। लोगों में चर्चा होने लगी कि वह विक्षिप्त होता जा रहा है। आखिर उसने मौज-शौक और व्यस्त जीवनसे ऊबकर अवकाश लेने का तय़ किया।

न्यूयार्क, लासऐंजल्स और हालीवुड महलोंको छोड़कर लासवेगास में रहने का तय किया।

तीस वर्ष पहले टी० डब्लू० ए० (प्रसिद्ध हवाई जहाज कम्पनी) के ६६ लाख शेयर लगभग २५ करोड़ में खरीदे थे। वे ४१५ करोड़ में बेच दिए।

लास़बेगासमें कुछ दिनों तक तो ठीक से रहा, परन्तु फिर पुराने संस्कार उभरने लगे और १९७० तक के ४ वर्षों में वहाँ पर बहुतसे जुआघर, कैबरे, रात्रि क्लब और होटल-मोटल खरीद लिए, जिनकी कीमत थी १५० करोड़। अपने रहनेके लिए एक बहुत बड़े होटलका पुर्ननिर्माण कराया, जिसके चारों तरफ काँटेदार बिजलीके तार हैं, रात-दिन कड़ा पहरा रहता है। एक प्रकार से उसे भव्य और सुन्दर जेलखाना ही कहना चाहिए।

मनमें कुछ इस प्रकारका भय-सा समा गया है कि,बाहर नहीं निकलता। उसके विशेष सचिव और कुछ प्रेमिकाएँ भी फोन पर ही बात कर लेती हैं। केवल निजी डाक्टर जाँच और चिकित्साके लिए मिल पाते हैं।

कभी-कभी बिना किसी को सूचना दिए दूसरे स्थानों पर छुट्टी मनाने चला जाता है। उसके अपने दो तेज चलने वाले जेट हवाई ज़हाज हैं। यात्रा के समय दोनों साथ रहते हैं।

दिसम्बर १९७१ में विलफोर्ड इरविंग नामके लेखकने प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक मेग्रिव हिलसे उसकी आत्मकथा प्रकाशनके लिए एक बड़ी रकम अग्रिम ले ली। उसका दावा था कि यह ह्यूजेसने स्वयं टेप रिकार्डिंग करायी है। देश-विदेश में प्रचार हो गया कि ह्यूजेस्की आत्मकथा प्रकाशित हो रही है। जब उसके वकीलोंको पता चला तो पुस्तकके प्रकाशन पर रोक लगा दी गयी। इरविंग पर धोखाधड़ी का मुकदमा प्रकाशकोंने चलाया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैभव, विलास और अन्त

पिछले एक लेखमें मैंने विश्वके सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस्के बारेमें लिखा था। उसके पास १२०० करोड़की सम्पत्ति है। आय है लगभग पच्चीस लाख प्रतिदिन यानी १७००) रुपये प्रति मिनट। इन सबके बावजूद ह्यूजेस अर्ध विक्षिप्त सा, लासवेगासके एक एकान्त महलमें रहता है।

वास्तवमें, इतनी बड़ी सम्पत्ति और आय आश्चर्यकी सी बात लगती है। पिछले दिनो मुगल साम्राज्य के उत्थान और पतन पर कुछ पढ़ते हुए मुझे बादशाह शाहजहाँकी धन-दौलतका जो ब्यौरा मिला उसकी तुलनामें ह्यूजेस्, मैलन, रॉकफेलर, फोर्ड और ओनासिस बहुत ही गरीब दिखायी देंगे।

अकबरके समयसे ही मुगलिया खजानेमें जवाहरात और सोना जमा होना शुरू हो गया था, जो एक सौ वर्षोंमें शाहजहाँके शासन तक बढ़ता ही गया। इसके बाद १६५८ से १७०७ तक ४९ वर्षों के औरंगजेबी शासनकालमें यह सब अथाह धन-दौलत समाप्तप्राय हो गई। सिक्खों, राजपूतों, मरहठों और दक्षिणके सुलतानोंसे लड़नेके लिए औरंगजेबकी फौजमें सवार और पैदल मिलाकर लगभग सात लाख सिपाही थे, जो काबुल-कन्धारसे लेकर दक्षिणमें कर्नाटक तक फैले हुए थे। वह स्वयं १६८१ से १७०७ तकके २६ वर्षोंमें अधिकांशतः दक्षिणकी लड़ाइयोंमें उलझा रहा, इसलिए केन्द्रीय शासन खोखला होता गया और आयमें कमी होने लगी।

शाहजहाँका शासनकाल सन् १६२७ से १६५८ तक रहा। इन ३१ वर्षोंमें न तो देशमें कोई बड़ा अकाल पड़ा और न उल्लेखनीय युद्ध ही हुए। हाँ, दो हजार स्त्रियोंके शाही हरम, शाहजादे और शाहजादियोंकी मौज शौक और ऐय्याशियों पर बहुत बड़ा खर्च होता था। बादशाहकी अपनी बेगमोंके सिवाय सैकड़ों रखैलें और माशूकाएँ थीं। अमीर खलीलुल्ला खाँकी बेगम इनमें प्रधान थी, उसकी जूतियोंमें २० लाखके हीरे पन्ने जड़े थे। फिर भी शाहजहाँके जमानेमें आय इतनी अधिक थी, जिस कारण प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खजानेमें बढ़ते चले गए।

शाही खजानेके सिवाय बलीअहद दाराशिकोह, शाहजादी जहाँनआरा तथा अन्य बेगमों और शाहजादोंके अपने खजाने भी थे। बादशाहके जखीरा और भौरा नामकें दो निजी खजाने थे, जिनकी लम्बाई-चौड़ाई ७० × ३० फीट गहराई १० फीट थी। इनमेंसे एक में हीरे, पन्ने, मोती, माणिक आदि जवाहरात भरे रहते थे और दूसरेमें सोना-चाँदी। जब ये दोनों खजाने भर गए तो खजांचीने अर्जकी कि एक दूसरा बड़ा हौज और बनाना होगा एक दिन दक्षिणका सूबेदार मीर जुमला बादशाहके हुजूरमें आया। उसने अंडेके बराबर एक बेशकीमती हीरा भेंट

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया, जिसकी चमकसे दीवाने खास जगमगा उठा । उस समय तक गोलकुण्डाकी हीरोंकी खानें विश्वमें सबसे बड़ी थीं ।

बादशाह बड़ी देर तक हाथमें लेकर हीरा देखता रहा । भेंट मंजूर करते हुए कहा—"मीरजुमला माबदौलत तुमसे बहुत खुश हैं । इस बेहतरीन हीरेका नाम हम कोहेनूर रखते हैं ।"

अपने लन्दन प्रवासमें मैंने देखा कि वही कोहेनूर ब्रिटेन के बादशाहके ताजमें जड़ा हुआ टावर आफ लन्दनके संग्रहालयमें रखा हुआ है । मैं जब भी लन्दन पहुँचता, इस हीरेको अवश्य देखता । मनमें दुःख होना स्वाभाविक ही था । भारतीय इतिहासकी अनेक बातें उभर कर मानस पर छा गईं ।

शाहजहाँने तख्तेताऊस नामका सोनेका सिंहासन बनवाया । इसकी लम्बाई चौड़ाई १० × ७ फीट थी और ऊँचाई १५ फीट । यह ठोस सोनेका था जिसमें बेशकीमती जवाहरात लगे हुए थे, और इसको बनानेमें सैकड़ों कारीगरोंको ८ वर्ष लगे थे । उस सस्तीके जमानेमें इस पर सात करोड़ रुपये लगे, जो आजकी क्रयशक्तिके हिसाबसे तीन-चार सौ करोड़के लगभग होगा । फारसके शाहने बादशाह जहाँगीरको एक अलभ्य मणि भेंटकी थी । वह भी इस सिंहासनमें जड़ी हुई थी । आज केवल उस मणिकी कीमत ही कई करोड़ रुपये होगी । पता नहीं, अब वह किसी दूर देशमें है अथवा नादिरशाह या अहमदशाह अब्दालीके वंशजने उसको छिपा रखा है या फिर जमींदोज होकर पृथ्वीकी गोदमें सो रही है ।

इस संदर्भमें मुझे टर्कीमें इस्ताम्बूलके म्यूजियममें भूतपूर्व सुलतानोंके खजानेके दो पन्नोंकी याद आ जाती है । एकका वजन था १५०० और दूसरेका ६०० ग्राम । मैंने कल्पना भी नहींकी थी कि इतने बड़े पन्ने हो सकते हैं । क्यूरेटरसे कीमतके बारेमें पूछा तो उत्तर मिला कि दाम देकर विश्वका बड़ेसे बड़ा धनी भी शायद ही इन्हें खरीद सके । जिस प्रकार आपके कोहेनूरका इतिहास रहा है, उसी ढंगका इन पन्नोंका है ।

हमारे देशमें रोम और ग्रीसकी तरह इतिहास लिखनेकी प्रथा नहीं थी, इसलिए बाल्मीकि, पाणिनी और कालिदास जैसे विशिष्ट विद्वानोंके समयको लेकर केवल मन गढ़ंत अन्दाज लगाते हैं, परन्तु मुगल बादशाहोंमें अपना रोजनामचा लिखनेकी आदत थी । उनके यहाँ अरब-फारसके सिवाय फ्रान्स और ब्रिटेन के विद्वान भी रहते थे, इसलिए उस समयके प्रामाणिक तथ्य और अंक उपलब्ध हैं ।

सन् १६५८ में बादशाह शाहजहाँके पास, जब वह औरंगजेब द्वारा कैद कर लिया गया था, निम्नलिखित संपत्ति थी । छोटे बड़े तराशे और बिना तराशे हीरे ५० लाख, मानिक ६० लाख, पन्ना ६० लाख और मोती ३६० लाख रत्ती थे । कुल मिलाकर सारा वज़न ५३० करोड़ रत्ती होता है । आज इन सबकी कीमत जोड़नेके लिए शायद कम्प्यूटरकी दरकार पड़े । हजारों तलवारें, कटारें और दूसरे हथियार थे, जिनकी मूठोंमें बेशकीमती हीरे-जवाहरात जड़े हुए थे । तख्तेताऊसके सिवाय बादशाह और शाहजादोंके लिए ठोस सोनेके नौ सिंहासन और थे । सैकड़ों सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ थीं । जिस सोनेके हौजमें बादशाह गुसल करता था, वह ७ × ५ फीट लम्बा चौड़ा था । इसमें बेशकीमती हीरे पन्ने माणिक जड़े हुए थे । आज इसकी कीमत भी ५०-६० करोड़के लगभग होगी ।

इन सबके सिवाय सात सौ मन सोनेके बरतन थे, जो आजके हिसाबसे लगभग ६० करोड़के होते हैं । ये सब बातें भूल भुलैयाकी सी लगती हैं पर है सब ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित । १६५८ की १० जूनको आगरा गरमीसे लोहेके उबलते लावाकी तरह तप रहा था । औरंगजेबका बड़ा बेटा महमूद सुलतान पाँच हजार चुनें हुए सिपाही लेकर लालकिलेमें गया । वहाँके सब पहरेदारोंको मौतके घाट उतार दिया और ६८ वर्षके बुजुर्ग दादा शाहजहाँको कैद कर लिया ।

ज़िसकी टेढ़ी भृकुटीसे चारों शाहजादे और उनके पुत्र काँपते थें, जिस महमूद सूलतानको

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजहाँने गोदीमें खिलाया था, उसी १८ वर्षके नौजवान शाहजादेके सामने आज वह बिलख-बिलख कर रो रहा था।

इसके बाद भी किलेकी ऊपरी बुर्जमें कैदी बादशाह सातवर्ष तक जिन्दा रहा। जिसकी खिदमत में हजारों बाँदी, मुगलानी, तातारी, हथियारबंद औरतें और खोजे रहते थे। वहाँ अब केवल उसकी बड़ी बेटी जहाँनआरा रह गयी थी।

अपनी जवानीके दिनोंमें उसने सैकड़ों बेकस औरतोंकी अस्मत लूटी। वजीरे आजम शाइश्ताखाँकी युवती बेगमने तो अनशन करके अपने प्राण त्याग दिये थे। वे सब भयावने रूप में उसे नींद में दिखाई देतीं। दारा, शुंजा और मुराद तीनों बेटोंकी और उनके अधिकांश शाहजादोंकी औरंगजेब द्वारा हत्या कर दी गयी थी। बादशाह को रातमें भयानक सपने आते रहते और वह चौंक कर जग जाता। ताजमहल को देखते हुए फिर सारी रात गुजारता। कभी-कभी 'बचाओ बचाओ' कह कर चिल्ला उठता था। सन् १६६५ में इस प्रतापी और विश्व में सबसे बड़े धनी बादशाह ने रोते बिलखते अपना दम तोड़ दिया। बिना किसी आडम्बर के उसकी लाश बेगम मुमताज महल की कब्र के पास ताजमहलमें दफना दी गयी।

सोचता हूँ, क्या मिला शाहजहाँ को इतने बड़े साम्राज्य और वैभवसे, क्या दिया अपरिमित सम्पत्तिने ह्यूजेस् को ? एक नहीं, अनेक दृष्टान्त इतिहासके पृष्ठोंमें हैं। शंकराचार्य ने कहा है :—

अर्थाअनर्थं भावयनित्यं नास्तिततः सुखलेश सत्यम्
पुत्रादपि धनभाजां सर्वत्रैषां विहिता नीतिः ॥

अर्थ ही अनर्थ है। सत्य है कि उसमें सुख लेश मात्र भी नहीं है। अधिक धन होने पर पुत्रोंसे भी भय बना रहता है। यही नीति सर्वत्र लागू है।

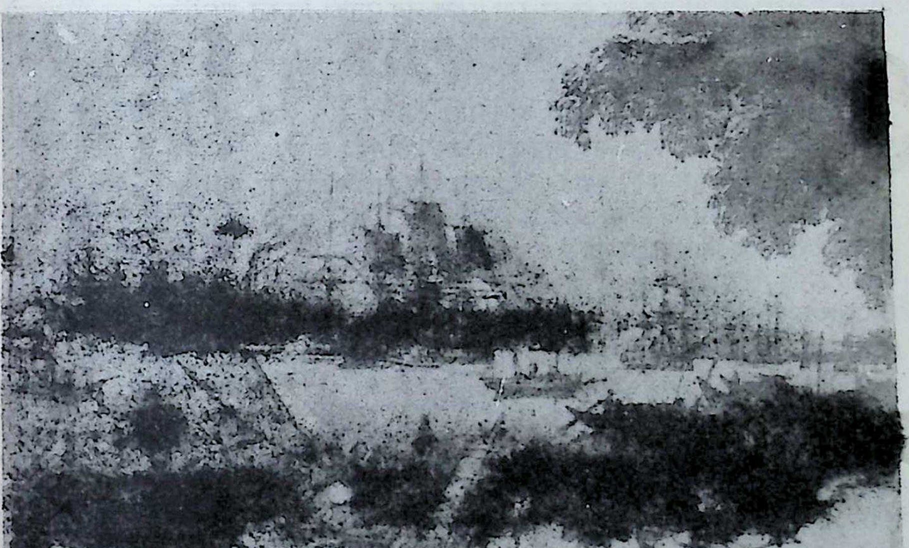

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आज का विद्यार्थी

दिल्ली से ट्रेन में कलकत्ता जा रहा था। डिब्बे में मेरे सिवाय एक नव-विवाहित दम्पति थे और चौथी सीट खाली थी। पत्नी के संकोच को देखकर ऐसा लगता था कि वह प्रथम बार ससुराल जा रही है।

अलीगढ़ स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। डिब्बे के सामने बीस-पच्चीस युवक हाथों में हाकी स्टिक लिए हुए आकर खड़े हो गए और घूरने लगे। थोड़ी देर बाद गाड़ी चलने लगी तो देखता हूँ कि वे सब डिब्बे में घुस आए और आपस में भद्दा हँसीमजाक करने लगे। युवती शर्मिन्दा होकर एक तरफ बैठ गई। परन्तु उनको तो जानबूझकर बात बढ़ानी थी, इसलिए उर्दू की अश्लील गजलें और कौव्वाली गानी शुरू कर दीं। युवक ने आपत्ति की तो झगड़ा करने पर उतारू हो गए, बेचारी लड़की रोने लग गई।

मैं थोड़ी देर तो यह सब देखता रहा परन्तु जब उनकी हरकतें शालीनता की सीमा को पार करने लगीं तो उनसे बहस करना फिजूल समझकर गाड़ी की जजीर खींच ली। गाड़ी रुकने पर गार्ड व टिकट निरीक्षक के अतिरिक्त और भी बहुत से यात्री वहां आकर इकट्ठे हो गए। सारी बातों को सुनकर सबने नौजवानों को बुराभला कहा, परन्तु उन्हें इससे किसी प्रकार की झिझक या शर्म महसूस नहीं हुई। खैर, उस समय बात वहीं समाप्त हो गयी और वे सब दूसरे डिब्बे में चले गए। हमारे पास टिकट निरीक्षक आकर बैठ गया और कहने लगा कि ये सब यहाँ के कालेजों के विद्यार्थी हैं। रविवार या अन्य छुट्टी के दिन इनके लिए ऐसी हरकतें साधारण सी बात हो गई हैं। जहाँ कहीं भले घर की बहू-बेटी को देखते हैं कि आवाज कसने लगते हैं, मौका पाकर छेड़खानी भी कर लेते हैं। इनसे टिकट माँगने पर लड़ाई झगड़ा पर उतारू हो जाते हैं और कभी-कभी मारपीट तक भी कर बैठते हैं। ये प्रायः दस-पन्द्रह की टोली में होते हैं और हम अकेले , इसलिए हमारे पास सिवाय उच्च अधिकारियों को शिकायत करने के दूसरा चारा नहीं रह जाता।

मुझे कुछ दिनों पहले समाचार-पत्रों में पढ़ी हुई लखनऊ की एक घटना याद आ गई कि वहाँ के कालेजों के लड़कों ने स्कूल और क़ालेज जाती हुई लड़कियों को बहुत तंग करना शुरू कर दिया था और अन्त में उनमें से कई-एक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करना पड़ा। आए दिन की तोड़फोड़, हड़ताल, प्रोफेसरों से दिल्लगी और कभी-कभी धमकी देना आदि इनके लिए साधारण बातें हैं :

सोचने लगा, इनके माता-पिता दूसरे जरूरी खर्चों में कटौती करके इनको उच्च-शिक्षा के लिए कालेजों में भेजते हैं। उनकी यही आकांक्षा रहती है कि पढ़-लिख कर वंश का नाम उज्ज्वल करेंगे और हमें बूढ़ापे में कमाकर खिलायेंगे। उन्हें क्या पता कि उनके ये सपूत इस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकार से उनकी गाढ़ी कमाई का धन बर्बाद करते हैं और छ६-७ सात वर्षों में डिग्री प्राप्त करने तक अनेक अवांछनीय बातों से भी जानकार हो जाते हैं। बी०ए० या एम० ए० करने के बाद घर की खेती-बारी या दुकानदारी के बारे में इन्हें शर्म आने लगती है, इसलिए अखबारों में काम खाली 'वान्टेड' के कालम देखकर क्लर्की के लिए प्रर्थनापत्र देते रहते हैं। एक दिन मेरी जान-पहचान का एक मिस्त्री, अपने बी० ए० पास पुत्र की नौकरी के लिए आया। वह स्वयं पढ़ा-लिखा नहीं है, परन्तु हाथ का कारीगर है और प्रतिदिन छः सात रुपये कमा लेता है। बी०ए० पास करने के बाद लड़के को घर के धन्धे में शर्म आने लगी और सवा सौ डेढ़ सौ रुपये की नौकरी ढूँढ़ने लगा। बाप तो साधारण कपड़ों में था परन्तु पुत्र नायलन की बुश्शर्ट, मक्खन-जीन की पतलून और पालिश किए हुए चमचमाते जूते पहने हुए था। मुझें एक हिन्दी और अंग्रेजी के निजी सहायक की जरूरत थी। उसे जोन गुन्थरकी 'इन्साइड एशिया' पढ़ने को दी तो एक-दो पृष्ठ उलटकर कहने लगा कि यह पुस्तक ती हमारे कोर्स में नहीं थी। एक छोटे से वाक्य का अनुवाद करने को दिया तो सात शब्दों में चार गलतियाँ ! लिखने का तात्पर्य यह है कि हमारी आधुनिक शिक्षा का नैतिक और बौद्धिक स्तर निरंतर गिरता जा रहा है।

यह तो हुई गाँवों और कस्बों के साधारण विद्यार्थियों की बात। कलकत्ते और बम्बई आदि बड़े शहरों के धनिकों के अधिकांश लड़कों की तो शिक्षा-प्रणाली और भी विचित्र है। मुझे एक शिक्षा शास्त्री एवं कई संस्थानों के संचालकों ने बताया कि इनके लड़कों को पहुँचाने, लेने और नाश्ता देने के लिए बड़ी-बड़ी कारें स्कूलों और कालेजों में दिनभर आती रहती हैं। इनकी मैट्रिक तक की पढ़ाई और परीक्षा स्कूलों में ही होती है। इसलिए परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए पहले से ही सारी व्यवस्था कर ली जाती है। कालेजों में जाने के बाद इनकी शान-शौकत और भी बढ़ जाती है।

बड़ी-बड़ी मोटरें, बीसों सूट, नए-नए दोस्त और कभी-कभी उनके साथ क्लबों में शराब और नाच भी ! परीक्षा के समय से पहले जितने भी सम्भावित परीक्षक होते हैं, उनको ट्यूशन पर रख लिया जाता है। यहाँ तक कि कुछ लड़कों को पढ़ाने के लिए हजार बारह सौ रुपये मासिक ट्यूशन फीस लग जाती है। खैर, डिग्री तो कालेजों में भी इन्हें किसी-न-किसी प्रकार प्राप्त हो जाती है, परन्तु वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि तो शायद ही होती है।

हमारे पुराने ग्रन्थों में गुरुकुलों की चर्चाएँ हैं कि राजा और गरीब दोनों के लड़के आश्रम में रहकर एक साथ पढ़ते थे। बारी-बारी से सबको आश्रम का काम करना पड़ता था, इसमें भिक्षाटन भी शामिल था। इसके बहुत समय बाद के भी तक्षशिला और नालन्दा के विद्या मन्दिर भारत की शिक्षा-प्रणाली की महत्ता के जीते-जागते उदाहरण रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और श्री गोपालकृष्ण गोखले की याद आती है कि उनके पास न तो पढ़ने को पुस्तकें ही थीं और न रोशनी के लिए तेल ही। इधर-उधर से पुस्तकें माँगकर ले आते और सड़क की रोशनी में पढ़ते रहते। इसके बावजूद वे प्रसिद्ध विद्वान् ही नहीं अपितु आदर्श पुरुष भी हुए। और याद आती है स्वामी दयानन्द सरस्वती की जो वेद, वेदांग और उपनिषद् आदि की शिक्षा प्राप्त करके अपने गुरु बिरजानन्द जी से विदा लेने लगे तो गुरु दक्षिणा में थोड़े से लौंग ही दे पाए थे। उसी दक्षिणा से प्रसन्न होकर गुरु ने उनको हृदय से आशीर्वाद दिया था। ये भी पिछली शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-ही-साथ महान सुधारक भी हुए।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय शिक्षा का रूप बदलने लगा। यहाँ तक कि हमारे इतिहास को भी स्मिथ और मर्सडन ने पूरे तौर पर बदल दिया। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और शिक्षा-शास्त्री मैकाले को इङ्गलैंड जाने पर भारत में प्रचलित की गई शिक्षा के बारे में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूछा गया तो उसने कहा था कि जो काम भारत में हमारी बन्दूक और तोपें नहीं कर सकी हैं, वह काम हमारी चालू की गयी शिक्षा-प्रणाली पूरा कर देगी अर्थात् भारतीयों का रंग तो काला ही रहेगा परन्तु मन से वे अंग्रेज बन जायँगे।

आज एक सौ वर्ष बाद हम मैकाले की भविष्यवाणी की सत्यता महसूस कर रहे हैं। फर्क केवल इतना ही है कि आज से चालीस-पचास वर्ष पहले के कालेजों के विद्यार्थियों को अंग्रेजी भाषा का ठोस ज्ञान हो जाता था जबकि आज उन्हें न तो अंग्रेजी भाषा का ज्ञान हो पाता है और न मातृभाषा का ही।

डिग्री और ज्ञान अलग-अलग चीजें हैं। मेरे एक बुजुर्ग मित्र हैं जिन्होंने केवल अंग्रेजी में प्राइमरी रीडर ही पढ़ी थी परन्तु वे अब तक नियमित रूप से कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी के तो माने हुए विद्वान् हैं ही, संस्कृत और फ्रेञ्च भी जानते हैं।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त कभी स्कूल नहीं गए। परन्तु उनके काव्य-ग्रन्थों पर शोध करके कई व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि ले चुके हैं। एक बार हमे बंगला महाकाव्य वृत्रासुरवध सुना रहे थे। उनके स्पष्ट छन्द-ताल युक्त अजस्र बंगला कविता पाठ को सुनकर वहाँ बैठे हुए विद्वान् अचंभित और आत्मविभोर हो गए।

हम स्कूलों और कालेजों की ऊँची पढ़ाई के विरुद्ध नहीं हैं, क्योंकि आज फिर से गुरुकुल की पढ़ाई न तो व्यावहारिक ही होगी और न वांछनीय ही। परन्तु साथ ही यह भी कहना चाहेंगे कि इस समय की शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा का अर्थ कुछ पुस्तकों का पढ़ लेना या डिग्रियाँ हासिल कर लेना ही नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तो अच्छे नागरिक बनना है। अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय विद्या तो उसका एक साधारण-सा पक्ष है। नैतिक आधार और नैतिकता के बिना कोई शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। हमें युवकों को सुरक्षित के साथ-साथ सु-नागरिक़ बनने पर भी ध्यान देना होगा। इसमें जनता और सरकार की जिम्मेदारी तो है ही परन्तु इसके लिए शिक्षकों का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है।

खेद है कि आज के अधिकांश शिक्षक प्राइवेट ट्यूशनों पर ज्यादा ध्यान देते हैं और स्कूलों या कालेजों में बहुत कम पढ़ाते हैं। इनमें से कई-कई तो ६-७ टचूशन तक करते हैं। कालेज और स्कूल की अध्यापकी तो एक प्रकार से टचूशनों को प्राप्त करने के लिए रहती है। यही नहीं बड़े शहरों में तो शिक्षक ही धनी विद्यार्थियों को पास कराने की व्यवस्था भी कर देते हैं। अभी हाल ही में कलकत्ते की एक प्रसिद्ध शिक्षण-संस्था में इसके लिए ग्यारह शिक्षकों को कार्य-मुक्त कर दिया गया था।

यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य आज के युवकों की आलोचना करना मात्र नहीं है, वरन् उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है कि वे एक महान देश के उत्तराधिकारी हैं इसलिए वे स्वयं और उनका आचार-व्यवहार जैसा होगा वैसा ही देश का रूप भी बनेगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह भूख—यह ऐयाशी

एक दिन मेरे बँगले के माली ने आकर कहा कि दूसरा माली कई दिनों से बीमार है, काम पर नहीं आता। उस समय बात आयी-गयी हो गयी। थोड़े दिन बाद जब फिर कानपुर आया तो देखा कि कई जगह पैबन्द लगी हुई मैली साड़ी में एक बीमार महिला कोने मे खड़ी है। नौकर ने बताया कि माली ज्यादा बीमार है—यह उसकी पत्नी है। उसके सूने-सूने चेहरे पर घबराहट, डर और दैन्यता की छाया स्पष्ट नजर आ रही थी। आयु शायद ३२—३३ की थी, परन्तु उसे ४५ से ५० की भी कह सकते थे।

बँगले के पीछे मालियों और नौकरों की कोठरियाँ थीं। वहाँ जाकर मैने देखा कि माली और उसके तीन दुबले-पतले बच्चे, ८' × ६' की एक कोठरी में फटी हुई टाट पर बैठे हुए थे। उन सबके ओढ़ने के लिए एक जीर्ण-क्षीर्ण पैबन्द लगी हुई गुदड़ी थी। उस चटाई और एक गुदड़ी में वे जनवरी की सर्दी को किस प्रकार सहन कर रहे थे—यह बात समझ से परे की थी। इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह जानकर हुआ कि माली के ४२) मासिक वेतन में ही पाँचों के पेट भरने का, तन ढकने के कपड़ों का और दवा का बजट भी था।

दूसरे दिन मैंने हमारे अस्पताल के बड़े डाक्टर को बुलाकर माली और उसकी स्त्री को उन्हें सुपुर्द किया। कइ प्रकार की जाँच-पड़ताल के बाद पता चला कि माली को तो पेट का यक्ष्मा है और लगातार खुराक की कमी के कारण स्त्री की भी जीवनी शक्ति बहुत कम रह गई है। जैसे भी थोड़ा बहुत बना उसकी व्यवस्था की, सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया। दवा और साधारण पथ्य से शायद उसकी जान भी बच जायगी। उन दो-चार दिन काममें मन नहीं लगा। मालीके परिवार का चित्र आँखों और मन दोनों के सामने घूमने लगा। सोचने लगे कि इनकी प्रति व्यक्ति आय १००) रु० वार्षिक से भी कम है। जबकि देश की औसत आय ४६०) है और किसी-किसी व्यक्ति की तो एक लाख तक है—कारण स्पष्ट है, चूँकि न तो उनका कोई लेबर यूनियन है और न वे किसी प्रकार का विरोध ही कर सकते हैं; इसलिए तिलतिल करके मौत के मुँह की ओर बढ़ते जा रहे हैं। मुझे स्वर्गीय डा० लोहिया के संसद में कहे हुए शब्द याद आ गए, जिन्होंने देश के कुछ व्यक्तियों की निम्नतर आय चार-पाँच आने बताई थी।

उन्हीं दिनों एक धनी घराने में लड़की की शादी थी। बारात किसी दूसरे गाँव से आई थी—मुझे भी एक-दो बार वहाँ जाना पड़ा। लोगों ने बताया कि विवाह पर तीन चार लाख खर्च होगा। खैर, अपनी लड़की को सामर्थ्य के अनुसार सभी देते हैं। परन्तु जो ऊपरी खर्च और तड़क-भड़क वहाँ देखने में आई—वह अभूतपूर्व थी। बँगलेके सहन में सारे पंडाल को फूलों से सजाया गया था। वृक्षों पर हजारों हरे-लाल जगमगाते बल्ब मैसूर के बृन्दावन गार्डेन की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

याद दिला रहे थे। लखनऊ से शहनाई पार्टी बुलायी गई थी। बाराती तथा अन्य आमन्त्रित व्यक्ति १०००-१२०० से कम नहीं थे। उनके लिए चाय, काफी, फलों के रस, सूखे मेवे और कई प्रकार की मिठाइयों पर भी बहुत खर्च किया गया था।

आजकल विवाह में घुड़चढ़ी के समय के सारे कार्य आमतौर पर २ घण्टे में समाप्त हो जाते हैं, परन्तु वहाँ नाच-गाने और कव्वाली गजलों का इन्जाम था—इसलिए रात के १२ बज गए।

दूसरे दिन सज्जनगोठ की जीमनवार (भोज) थी। बड़े-वड़े थालों में नाना-प्रकार के पकवान और ८-१० कटोरियों में कई तरह की साग-सब्जी सजाकर रख दी गई। ज्यादातर लोगों के लिए उतना सब खा पाना सम्भव नहीं था—इसलिए थाली में जूठन रहना स्वाभाविक ही था। मुझे शिकागो के पामर्स हाउस नामके प्रसिद्ध रेस्तराँ में अपने अमेरिकन मित्र द्वारा दिए गए भोज की याद आ गई। बहुत प्रकार की मिठाइयाँ और फलोंको सजाकर रख दिया गया था। जब हमने कहा कि इन सबका एक-तिहाई कर दीजिए, तो हँसकर मिस्टर लेजी ने कहा था आप जितना चाहे खा लीजिए—बचा हुआ नष्ट कर दिया जाएगा—"अधिकता हमारी समस्या है।" परन्तु यह तो विश्व के सबसे धनी देश अमरीका की बातें हैं, जहाँ चीजों के मूल्य का सन्तुलन रखने के लिए कभी-कभी गल्ले और रुई को समुद्र में डुबो दिया जाता है—न कि हमारे भारत की, जहाँ कि हजारों-लाखों परिवार के बच्चों को फटे-चिथड़े और आधा पेट खाना भी मय्यसर नहीं होता। सोचने लगा कि १०० वर्ष पहले मार्क्स ने भी शायद इसी तरह की विपरीत घटनाएँ देखी थी, जिससे उसे "कैपिटल" लिखना पड़ा। यह सच है कि विषमता सारे विश्व में है—परन्तु यह भी सच है कि जब वह हमारे यहाँ की तरह सीमा से बढ़ जाती है तो फिर फ्रांस, रूस और चीन की-सी राज्यक्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। उस समय वहाँ की भूखी नंगी जनता उलट पड़ी तो वहाँ के सम्राटों का सर्वनाश तो हुआ ही—साथ ही उनके निरीह बच्चों तक को जान से हाथ धोना पड़ा था। इतिहास की पुनरावृत्ति तो होती ही है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि फ्रांस, रूस और चीन में तो सर्व सत्तावान सम्राट; जार और राष्टपति थे, जिनके पास फौजें तोपें और बन्दूकें थीं, जब कि हम तो केवल रुपयों के जोर पर ये भौंडे प्रदर्शन और खर्चे कर रहे हैं।

दीवार पर स्पष्ट लिखा है, परन्तु खेद है कि हम पढ़ नहीं पा रहे हैं, क्योंकि हमने जान-बूझकर अपनी आँखें बन्द कर रखी हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समय बदला पर हम नहीं

आज बम्बई और कलकत्ते में आम-चर्चा है कि उद्योगव्यापार मन्दा है। जमीनों और मकानों की कीमतें घट रही हैं—चीजों की बिक्री कम है, आदि आदि।

'अकाल में अधिक मास' की कहावत के अनुसार इस मन्दी के साथ-साथ राजस्थान के कुछ हिस्सों में भयंकर अकाल भी पड़ गया, जिससे हजारों पशु भूख और प्यास से मर जायँगे। भोजन की कमी के कारण मनुष्यों और बच्चों का शरीर घटकर कंकाल सदृश्य रह जायगा।

विभिन्न सेवा-संस्थाओंने वहाँ राहत का कार्य शुरू किया है और इसके लिए धनी-वर्ग थोड़ा बहुत दान भी दे देते हैं। परन्तु खेद है कि आज भी उनकी अपनी मौज-शौक के खर्चे में किसी प्रकार की क़मी तो आई ही नहीं—कुछ-न-कुछ बढ़ोत्तरी ही हुई है। अगर गाँव और पड़ोस के लोग पानी के बिना मर रहे हों तो तैरने के लिए पानी के तालाब को लोग किसी भी हालत में नहीं रहने देंगे। हाँ, सन् १९४३ में कलकत्ते की सड़कों पर लाखों व्यक्ति भूख से मर गए थे—जब कि सामने की दूकानों पर सैकड़ों मन मिठाई सजी रहती थी, परन्तु आज १९६९ है—न कि १९४३।

मेरे एक मित्र जो प्रसिद्ध पत्र-संचालक के सिवाय सब प्रकार से साधन सम्पन्न हैं—पिछले दिनों सपत्नीक दिल्ली आये। वे एक मित्र के फ्लैट में ठहरे थे। सब तरह की सुविधाएँ और आराम उनके लिए उपलब्ध थे। उसी समय फेडरेशन की मीटिंग थी, जिसमें सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते और बम्बई से बहुत से व्यक्ति आए थे। जिनमें कुछ तो सदस्य थे, अधिकांश तमाशबीन। वे भी अगर चाहते तो उनको भी दिल्ली में इस तरहका आतिथ्य मिल जाता, क्योंकि उनके बहुत से सम्बंधी और परिचित मित्र वहाँ रहते हैं और उन दिनों तो संसद का अधिवेशन भी चालू था।

परन्तु उन सबको तो ओबेराय इन्टरनेशनल में ही ठहरना था, जो इस समय भारत मे सबसे महँगा होटल है और जहाँ केवल चाय का चार्ज लगता है—डेढ़ रुपया प्रति कप, टिप अलग! यह भी सुना गया कि वहाँ जगह की माँग इतनी थी कि रिजर्वेशन के लिए सिफारिश करनी पड़ती थी।

मैंने अपने मित्र से कहा कि जब साधारण स्थिति के नवयुवक भी ओबेंराय या अशोक होटल में ठहरते हैं, तो आप लोग वहाँ क्यों नहीं ठहरे? सबसे एक जगह ही मिलना-जुलना हो जाता और इन सब होटलों में ठहरने से बड़प्पन की शान भी है।

उनका जवाब था कि मिलना-जुलना तो कलकत्ते में सार्वजनिक उत्सवों या विवाह-शादियों में इन लोगों से होता ही रहता है और जहाँ तक बड़प्पन और शान का सवाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है—वह फिजूल-खर्ची और दिखावे में नहीं है। हाँ, इसमें एक प्रकार से स्वयं की हीन-भावना की पूर्ति जरूर हो जाती है। मेरे यहाँ से ही उन्होंने दो-तीन भारत प्रसिद्ध व्यक्तियोंको फोन करके मिलने का समय निश्चित किया। मुझे अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं मिल गया, क्योंकि उन बड़ी-बड़ी मोटरों और आलीशान होटलों में ठहरने वालों को तो सचिवों और उप-सचिवों से मिलने के लिए भी दो-चार दिन पहले समय लेना पड़ता है। कारण स्पष्ट है—वास्तव में आज धन और दिखावे का मापदण्ड ही घट रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक गरीब नाईके पुत्र श्री कर्पूरी ठाकुर का बिहार जैसे बड़े प्रान्त का मुख्यमन्त्री और कई साधारण सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंका बङ्गाल प्रान्तमें मन्त्री बन जाना।

इस सन्दर्भ में मेरे दो मित्रों की याद आ जाती है। प्रथम इस समय कैबिनेट मिनिस्टर के सिवाय देश के बड़े नेता हैं। सात वर्ष पहले वे केवल सदस्य थे, परन्तु उस समय भी संसद में उनकी धाक थी। उन्होंने मुझे एक दिन भोजन का निमन्त्रण दिया परन्तु घरमें शायद कहना भूल गए। जब आठ बजे रात में पहुँचा तो वे कुछ सकपका गए परन्तु उसी समय बात को संभाल कर बोले—आपके यहाँ का खाना तो कई बार खा चुका हूँ, सोचा आज अपना खाना जो हम नित्य प्रति खाते हैं—आपको खिलाऊँ। काँसे की थालियों में बिना घी की रोटियाँ, दाल और तेल की एक सब्जी थी—जो वास्तव में स्वादिष्ट लगीं। हँसकर कहने लगे, मैं पहले से कह देता तो आपके लिए शायद घी मँगाया जाता। खैर, आपको भारत के औसत आदमी का खाना खाने का अवसर तो मिला। सोचने लगा इतना बड़ा नाम, विद्वता और सम्मान की भी कमी नहीं, परन्तु रहन-सहन इतना सादा!

बिना पूछे उनके लड़के को एक फार्म में ३५०) रु० माहवार की नौकरी दिला दी। उन्हे पता चला तो वापस बुला लिया, बोले—यह लड़का दुर्भाग्य से बहुत पढ़-लिख नहीं पाया। इसलिए मेरे नाम से नहीं, बल्कि इसकी योग्यता से उचित वेतन मिले—वही वाजिब है।

द्वितीय मित्र यद्यपि मन्त्री तो नहीं हैं, परन्तु सम्मान, विद्वता और सूझ-बूझ में बहुत से मन्त्रियों से बड़े हैं। कई बार बड़े से बड़े पद और काम सम्भालने के लिए कहा गया, परन्तु नम्रता-पूर्वक बराबर टाल देते रहे। हाँ दूसरे योग्य मित्रों को जरूर वैसे कामों पर लगा देते हैं। मैं एक दिन सुबह उनके यहाँ बैठा था, प्रधान मन्त्री के सचिव का फोन आया कि एक बहुत जरूरी काम से प्रधान मन्त्री आपसे अभी मिलना चाहती हैं। उन्होंने कहा कि मैं ९ बजेसे पहले नहीं आ सकूँगा। थोड़ी देर बाद ही फिर फोन आया कि आप नौ बजे आ जायँ।

मुझे भी प्रधान-मन्त्री के यहाँ से बहुत कम, परन्तु दूसरे मन्त्रियों के यहाँ से फ़ोन आते रहते हैं। मैं अन्य प्राग्रामों में रद्दोबदल करके भी वहाँ जाना जरूरी समझता हूँ और इसमें अपनी बड़ाई और प्रभाव की वृद्धि समझते हुए दूसरे मित्रों को भी कह देता हूँ कि फलाँ मन्त्री ने बुलाया था, इस तरह की बातें हुईं आदि। शाम को मैंने उनसे प्रधान मन्त्री की भेंट के बारे में पूछा तो बोले अमुक काम की सलाह के लिए बुलाया था और भी बातें करना चाहती थीं, परन्तु एक कैबिनेट मिनिस्टर और एक प्रसिद्ध उद्योग-पति नौ बजे से विजिटिंग रूम में बैठे थे। शायद उनको नौ और साढ़े नौ बजे का समय दिया हुआ था। प्रधान मन्त्री ने अपने सचिव से कहा कि मुझे इनसे बातें करने में समय लगेगा तुम उन्हें दूसरा समय दे दो। मेरे मित्र ने नम्रता-पूर्वक उनको कहा कि गलती मेरी थी कि दूसरों को दिया हुआ समय ले लिया, मैं कल फिर मिल लूँगा आप उनको बुला लें। प्रधान मन्त्री जब उन्हें बाहर तक पहुँचाने के लिए आईं तो उन दोनों ने देख लिया। दो-तीन दिन बाद उद्योगपतिके यहाँ से मेरे पास फोन आया कि फलाँ व्यक्तिसे तुम्हारी मित्रता है। मैं उनको एक दिन भोजन के लिए बुलाना चाहता हूँ। अगर वे मंजूर करें तो उन्हें फोन कर दूँ। मैंने मित्र से कहा तो उन्होंने हँसकर कहा कि वैसे उनसे मेरी जान-पहचान तो है परन्तु मैं इन दिनों कुछ व्यस्त हूँ इसलिए फिर कभी चलेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह सब लिखने का तात्पर्य अपने धनी युवकों को यह बतलाना है कि शान-शौकत और दिखावे मात्र से ही प्रभाव बढ़ता हैं—यह धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है ।

हमारे भारत में तो ऊँचे-विचार और सादे जीवन का महत्व बराबर रहा है और आज भी है । आज देश की दशा खराब है—खास करके बङ्गाल तो एक प्रकार से ज्वालामुखी के मुँह पर है, जहाँ किसी समय भी भूकम्प आ सकता है । परन्तु खेद है कि वे यह नहीं लक्ष्य करते कि पूँजी भी श्रम की तरह उतपादन का एक अङ्ग मात्र है । अतएव मेहनतकश जब उनके और अपने बीच सुख-साधन का विराट अन्तर पाता है तो उसमें विद्वेष और विद्रोह की आग धधक उठती है । बदले हुए समय का यह सुस्पष्ट संकेत है किन्तु बिडम्बना यही है कि "समय बदला पर हम नहीं" बदले ।

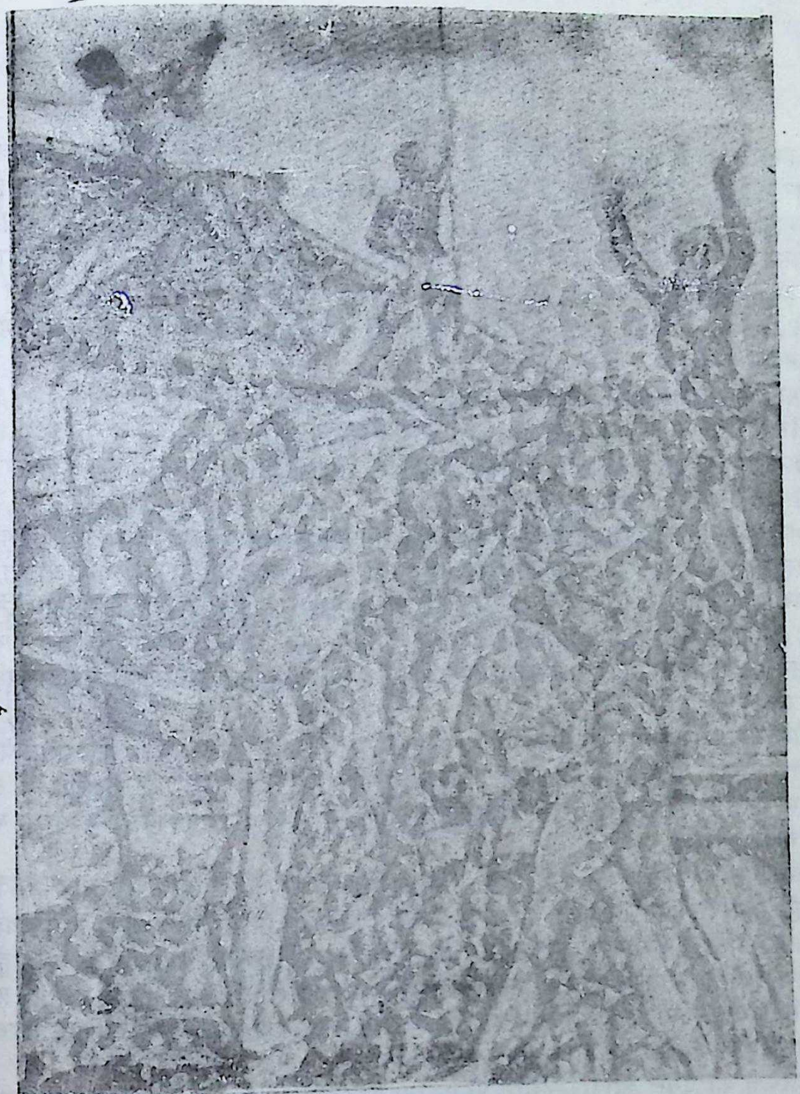

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये विदेशी पुतले

हमने मास्को के क्रेमलीन में देखा था कि जारों के समय के जो भी चिह्न थे, उन्हें बिना यह परवाह किए कि इनका कितना ऐतिहासिक महत्त्व है, पूरी तरह से मिटा दिया गया है।

यही बात दूसरे स्वतंत्र देशों में देखी और सुनी गई है। ब्रिटिश फौजों को हटाने के बाद अमरीका के प्रथम प्रेसिडेन्ट जार्ज वाशिंगटन ने पहला काम यह किया था कि अंग्रेजों द्वारा छोड़े हुए स्मारकों को समाप्त कर दिया। उनकी मान्यता थी कि दुश्मनों के इस प्रकार के चिह्नों से देश के बच्चों के मन में हीन भावना पैदा होती है, वे अपने को दूसरों से छोटा समझने लगते हैं।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय सम्राज्ञी मेरी अन्तोनिता ने विद्रोहियों को कहा था कि "मेरे निरीह बच्चों की जान बख्श दो, भला इन सबका क्या कसूर है?" परन्तु जनता ये सब दलीलें सुनने को तैयार नहीं थी, उनका कहना था कि दुश्मनों के जिन्दे या मुर्दे किसी प्रकार के चिह्नों को हमें नहीं रखना है।

हमारे भारत में सदा से ही दया, क्षमा और सहिष्णुता को प्रधानता दी गयी है। हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी कहा गया है कि बदले की भावना से घृणा उत्पन्न होती है जो किसी हालत में भी वांछनीय नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जिन लोगोंने हमें अपमानित किया, हमारे बच्चों और स्त्रियों की बेरहमी से हत्या की, हमारे ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ दिया और हमारे कारीगरों के हाथ काट दिये, उन सबके स्मारकों की हम रक्षा करते रहें।

वैसे बहुत से अंग्रेज सेनापतियों और अधिकारियों ने यहाँ अनेक प्रकार के अमानुषिक अत्याचार किए, परन्तु राबर्ट क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी के कुकृत्यों से तो इतिहास भरा हुआ है—यहाँ तक कि ब्रिटिश संसद में भी पहले दोनों के काले-कारनामों की लम्बी सूची सुरक्षित है।

हमें स्वतन्त्रता मिले २२ वर्ष हो गये। विश्व में जनसंख्या के लिहाज से हमारा द्वितीय स्थान है—हमारी अपनी संस्कृति भी शायद सबसे पुरानी है। पिछले सौ वर्षों में हमारे यहाँ भी तिलक, गांधी, रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र और जवाहरलाल नेहरू जैसे महान् व्यक्ति पैदा हुए हैं। परन्तु खेद है कि आज भी हम उन विदेशियों की पूजा करते हैं, जिन्होंने इस देश का हर प्रकार से शोषण किया, इसकी मातृ जाति का अपमान किया, इसके बच्चों को अशिक्षित रखा और जालियाँवाले बाग का अमानुषिक हत्याकाण्ड किया।

कलकत्ते की प्रमुख व्यापार-उद्योग प्रतिष्ठानों की सडक का नाम क्लाइवस्टीटहै। इसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकार अपने समय के प्रसिद्ध जालिम वारन हेस्टिंग्स के नाम से भी कई मोहल्ले और सड़कें यहाँ पर हैं। जिस स्थान से इस प्रान्त का शासन संचालन होता है उस जगह का नाम डलहौजी स्क्वायर है।

मुझे पता नहीं है कि जालियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड के सूत्रधार डायर के नाम पर भी कोई स्मारक देश में है या नहीं ? परन्तु उस समय के वाइसराय और पंजाब के गवर्नर के नाम से तो जरूर कुछ यादगार होगी ही।

यद्यपि स्वर्गीय डा० लोहिया ने इस सन्दर्भ में बहुत कुछ कहा और लिखा था। परन्तु खेद की बात है कि सिवाय कुछ सड़कों के नाम बदल देने के आजतक किसी प्रकार के सामूहिक प्रयत्न इसके लिए नहीं किए गए।

इतने वर्षों के बाद भी भारत में विदेशी पुतले खड़े हुए हमारी संस्कृति, सभ्यता और ऐतिहासिक तथ्यों को झूठा साबित कर रहे हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे व्यक्तियों के हैं, जिन्होंने घिनौने तरीकों से मरहठों और सिक्खों की देश-भक्त फौजों को कुचला था।

लार्ड मैकाले ने कहा था कि भारतीयों के रंग के सिवाय उनकी भाषा और वेष अगर अंग्रेजी कर सकेंगे तो हमें भारत में अपने आप सफलता मिल जायगी।

२२ वर्षों से अंग्रजी शासन समाप्त हो गया, परन्तु मैकाले का नुस्खा आज भी अपना काम कर रहा है। स्वतन्त्र भारत के नेता अपने बच्चों को अंग्रेजी लिवास में मिशनरी स्कूलों में भेजने में अपनी इज्जत और मान-बड़ाई समझते हैं। कहते हैं—इनमें से कइयों के दाखिले के लिए १०-१२ वर्षों तक राह देखनी पड़ती है।

उन सब स्कूलों में अभी तक विसेन्ट स्मिथ और मार्सडन के भारतीय इतिहास पढ़ाए जाते हैं, जिनमें झाँसी की रानी को कुचक्रों; ताँत्या टोपे को बागी और बहादुर शाह ज़फर को सनकी बताया गया है, साथ ही क्लाइव, हेस्टिंग्स और डलहौजी को वीर, चरित्रवान और उदार कहा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढ़कर हमारे भावी नागरिकों के मन में जिस प्रकार के उद्गार उत्पन्न होंगे, उसमें शायद दो राय नहीं होगी।

वैसे हर जलसे में हम वन्देमातरम् और जन-मन-गण अधिनायक का गान करते हैं। परन्तु हमें सोचना है कि क्या वास्तव में ही हम इसके अधिकारी हैं ? क्योंकि जिन वीरों ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना आत्मोत्सर्ग किया है, स्मारक तो उन शहीदों के होने चाहिए, परन्तु आज शायद ही कहीं भगत सिंह, सुखदेव, खुदीराम और चन्द्रशेखर आजाद के स्टेच्यू देश के विशिष्ट स्थानों में नजर आवेंगे।

खेद की बात है कि इस समय तक भी हमारी इस स्वतन्त्रता की भूमि पर ये सब विदेशी पुतले सिर उठाये गर्व से हमें हिकारत की नजर से देख रहे हैं और हमारे स्वाभिमान को चुनौती दे रहे हैं !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंग्रेज गये पर अंग्रेजियत नहीं

मुझे अपने लेखों के बारे में कुछ मित्र सलाह देते हैं कि उन्हें अंग्रेजी पत्रों में भी भेजा करूँ। मैं स्वयं भी कभी-कभी इस बारे में सोचता हूँ। परन्तु मेरे अधिकांश लेख एक प्रकार से हिन्दी भाषियों के और एक विशेष वर्ग के लोगों के उपयुक्त ही होते हैं। जहाँ तक आर्थिक विषय के लेखों का प्रश्न है उन्हें अंग्रेजी पत्रों में देने से शायद ज्यादा पाठकों को पढ़ने का मौका मिले— परन्तु वे सब मुझे दूसरे किसी व्यक्ति से अनुवाद कराके भेजने पड़ते हैं। उनमें कभी-कभी मेरे विचारों को पूरा प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। इनमें से कई लेखों का गुजराती और मराठी पत्रों ने अनुवाद किया भी है।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि उत्तर भारत में हिन्दी समाचार-पत्रों के पाठक, अंग्रेजी पत्रों से कहीं अधिक हैं। एक समाचार-पत्र को सारे दिन में औसत ५-६ व्यक्ति पढ़ लेते हैं, जब कि अंग्रेज़ी के पत्र खरीदते तो बहुत से लोग हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश शेयरों और बोरे पाट के भाव को देखकर ही संतोष कर लेते हैं। उनमें से ज्यादातर को दूसरे समाचारों को समझने के लिए हिन्दी समाचार-पत्र पढ़ना जरूरी हो जाता है। खेद तो इस बात का है कि हिन्दी के हिमायती, बातें तो ज्यादा करते हैं, परन्तु व्यवहार में कम जाते हैं। आज भी बँगला और अन्य दक्षिणी भाषाओं के कई समाचार-पत्र डेढ़-दो लाख बिकते हैं।

मुझे कई बार विदेशों में जाने का मौका मिला है। जापान, हालैंड, स्वीडेन, फ्रांस या इटली—कहीं भी यह देखने में नहीं आया कि अपनी भाषा की जगह किसी दूसरे देश की भाषा का प्रयोग होता हो। न्यूयार्क की एक बहुत बड़ी पुस्तकों की दुकान में गया। भारत के बारे में कुछ किताबें देखीं। जब हिन्दी पुस्तकों के बारे में पूछा तो कहा गया कि हिन्दुस्तानी तो अंग्रेजी पुस्तकें ही खरीदते हैं, इसलिये हिन्दी की तो कोई किताब हमारे यहाँ नहीं है। मैंने देखा कि उनके यहाँ दूसरी भाषाओं की बहुत सी पुस्तकें थीं।

लार्ड मैकाले ने भारत से अवकाश लेते समय अपने अंग्रेज अफसरों को गुप्त हिदायत दी थी कि भारतीयों के दिल और दिमाग इस प्रकार के बना दो कि वे अपनी संस्कृति और भाषा को भूलकर ब्रिटेन की संस्कृति और भाषा ग्रहण कर लें। इससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति अपने आप हो जायगी।

संयोग से हमें स्वतंत्रता तो मिल गई। परन्तु बाइस वर्षों के लम्बे समय के बावजूद मैकाले के नुस्खे का प्रभाव अभी तक ज्यों का त्यों कायम है, शायद कुछ बढ़ा ही है। आम जनता की तो बात ही क्या, भारतीय संसद में भी तो अधिकांश सदस्य अधकचरी अंग्रेजी बोलने में ज्यादा शान समझते हैं जब कि वे अच्छी हिन्दी बोल सकते हैं। इसको हम हीन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भावना कह सकते हैं। वैसे सर्वश्री गंगाशरण, प्रकाशवीर शास्त्री, अटलबिहारी वाजपेयी, मधुलिमये आदि चोटी के सदस्य सदा हिन्दी में बोलते हैं और उनको सब भाषाओं के समाचार-पत्रों से बराबर सहयोग मिलता है।

भाषा के सिवाय खानपान और पहनावे में भी इन वर्षों में भी विदेशी प्रभाव बढ़ा है। खास करके पंजाबी और मारवाड़ी समाज में। सुना जाता है कि इन दिनों कलकत्ते के पार्क स्ट्रीट के आसपास पच्चीसों रेस्तराँ और नाइट-क्लब खुल गए हैं जहां एक बार के खाने-पीने के चार्ज लगते हैं ३५-४० रुपये! इनमें खाने के समय के नाच-गाने का चार्ज भी शामिल है। जानकार लोग कहते हैं कि इनके ग्राहकों में ७५ प्रतिशत से ज्यादा पंजाबी और राजस्थानी युवक-युवतियाँ ही रहती हैं।

दिल्ली में एक बंगाली मन्त्री के पुत्र के विवाह में गया था। वहाँ देखा कि जितने भी बंगाली मेहमान थे, वे सब धोती कुर्ते और चादर में थे। इनमें ५-७ तो सुप्रीम कोर्ट के जज या एडवोकेट थे, परन्तु वे घर जाकर पोशाक बदल कर आए थे। इस बार कलकत्ते के कई राजस्थानी समाज के विवाहों में जाने का मौका मिला। वहाँ देखा कि दो-चार व्यक्ति ही धोती कुर्ते वाले थे—बाकी सब कोट, पतलून और टाई में थे। यही नहीं, आजकल तो मुर्दनी (श्मशान-यात्रा) में भी कोट-पैंट और टाई लगाये हुए व्यक्ति दिखाई देते हैं।

सुविधा के लिए अगर कोट-पैंट पहने या अंग्रेजी में बात करें तो कोई एतराज की बात नहीं है, परन्तु भारतीय वेशभूषा या भाषा को मांगलिक और सामाजिक कामों में भी तिलांजलि दे दी जाय—यह कहाँ तक न्यायसंगत होगा?

अभी थोड़े दिनों पहले की ही बात है—एक भारत प्रसिद्ध व्यक्ति के पास बैठा हुआ था। उनके सचिव ने एक साधारण से कागज पर हिन्दी में लिखा हुआ एक नाम दिया। वे स्वयं जाकर उनको लिवा लाये। चार-पांच दिनों की बढ़ी हुई दाढ़ी, खादी की ऊँची धोती, हाथ से धोए हुए कुर्ता-टोपी में एक वयोवृद्ध दुबले पतले से सज्जन थे। बहुत ही संक्षेप में उन्होंने गुजरात और राजस्थान के अकाल के बारे में कुछ बातें कीं। ऐसा लगा कि कपड़ों की तरह वे बातचीत में भी मितव्ययी हैं। नाम पूछने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी। वे थे—गुजरात के प्रसिद्ध संत रविशंकर महाराज। वैसे उनकी जीवनी और भावप्रसंग पढ़ा हुआ था कि किस प्रकार उन्होंने देश के उपेक्षित और अछूत जातियों के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। बिहार के पिछले अकाल में लाखों भूखों-नंगों के लिए अन्न वस्त्र की व्यवस्था की—यह बात सर्वविदित है।

मैं इस ठेठ देहाती व्यक्ति की, उन साहबी ठाठबाट वाले लोगों से तुलना कर रहा था, जो अपनी फर्राटेदार अंग्रेजी के माध्यम से उनके निजी सचिव से मिलने का समय लेने की प्रार्थना कर रहे थे। उपर्युक्त घटना लिखने का उद्देश्य यह है कि मनुष्य में अगर चारित्रिक बल हो तो उसे साधारण वेशभूषा में भी सम्मान मिल सकता है। इसमें अंग्रेजी भाषा या वेशभूषा का प्रयोग जरूरी नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यमुनोत्तरी

सन् १९४५ में माताजी एवं पिताजी के साथ बदरी-केदार जा चुका था। उन दिनों यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी बहुत कम यात्री जाते थे। पहाड़ों की तली में ऊबड़-खाबड़ सँकरी-पथरीली पगडंडियाँ, रास्ते में चट्टियाँ और दूकानें दूरदूर पर; साथी यात्री भी कम मिलते, इसलिए केवल साधु-संन्यासी या थोड़े से हिम्मती यात्री ही उत्तराखण्ड के चारों तीर्थों की यात्रा कर पाते।

सन् १९७१ के अगस्त में समाचार-पत्रों में पढ़ा कि यू० पी० सरकार ने यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी के मार्ग को काफी दूर तक मोटरों के जाने लायक बना दिया है। आवास तथा खाने-पीने की सुव्यवस्था भी कर दी गई है।

उन दिनों मैं कानपुर में रहता था। मेरे कवि-मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित और बालकृष्ण गर्ग ने सुझाव दिया कि हमें उत्तराखण्ड के चारों तीर्थों की यात्रा करनी चाहिए। मेरे पैरों में तो चक्कर है ही, तुरन्त तैयार हो गया। दूसरे दिन ही एक नयी एम्बेसडर कारसे हम चार साथी इस तरह से इस दुर्गम और लम्बी यात्रा के लिये रवाना हो गए, जैसे किसी की बारात में जा रहे हैं।

लोगों ने सलाह दी कि वर्षा के मौसम में यह यात्रा नहीं करनी चाहिए; पहाड़ नीचे की तरफ खिसकते रहते हैं; रास्ते बंद हो जाते हैं; ऊपर से गिरते हुए पत्थरों से भी चोट लगने का भी भय रहता है; परन्तु हम तो माँ गंगा के पीहर अपने ननिहाल जा रहे थे, हमें डर किस बात का था।

उत्तराखण्ड-यात्रा की पुस्तकें पढ़ कर थोड़ी-सी दवाइयाँ, मोमजामे, छाते, गरम कम्बल, रबड़ के जूते, खाने-पीने का सामान, एक स्टोव और दो लालटेन साथ में लेकर चले।

रात में बरेली ठहरे। दूसरे दिन शाम को हरद्वार पहुँचे। वहाँ जैपुरिया अतिथिगृह में ठहर गए। गंगा के किनारे यह एक अच्छा बड़ा मकान है, भोजन की सुव्यवस्था है।

शाम को हर की पेड़ी पर स्नान किया। रास्ते की सारी थकावट मिट गई और मन प्रसन्न हो गया। गंगा के किनारे दूर तक पक्का प्लेटफार्म बना हुआ है। हजारों स्त्री-पुरुष टहल रहे थे, भजन गा रहे थे, कथा सुन रहे थे और चाट के खोमचों वालों के इर्द-गिर्द खड़े हुए नाश्ता कर रहे थे। एक प्रकार से विराट मेला लगा हुआ था। स्नान करके हम गंगा-किनारे एक बेंच पर बैठ गए। २-३ लड़के तेल की शीशियाँ लिए हुए घूम रहे थे। हमने सिर-चंपी कराई। ये लोग सिर की मालिश में इतने दक्ष होते हैं कि चाहे कैसा ही सिर-दर्द हो, आराम मिल जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे दिन सुबह नाश्ता करके ऋषिकेश के लिए रवाना हो गए। बाबा काली कमली वाले के कार्यालय में गए। उनसे आगे के लिए परिचय पत्र लिए। यह संस्था उत्तराखण्ड-क्षेत्र की पिछले सत्तर वर्षों से अद्भुत सेवा करती आ रही है। प्रायः सभी स्थानों में इनके विश्रामगृह और अन्न क्षेत्र हैं। यात्रियों को आवास के सिवाय ओढ़ने-बिछाने के कम्बल भी उधार देते हैं।

ऋषिकेश में हमे सलाह मिली कि पहले यमुनोत्तरी जा कर, फिर गंगोत्तरी जाना चाहिए। भगवान राम के दर्शनों के लिए सन्त तुलसीदास को भी पहले 'हनुमानजी' की आराधना करनी पड़ी थी।

गर्मी के मौसम में हरद्वार और ऋषिकेश में दिन में पत्थर तप जाते हैं। हम जल्दी से ऊपर चले जाना चाहते थे, इसलिए भोजन करने के थोड़ी देर बाद ही नरेन्द्रनगर और टेहरी के लिए रवाना हो गए।

दस मील चलकर चार हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित नरेन्द्रनगर पहुँच गए। अच्छा सुंन्दर छोटा-सा कस्बा है यह—पुराने टेहरी राज्य का प्रमुख स्थान। हम यहाँ नहीं ठहरे और ४१ मील आगे टेहरी के लिए रवाना हो गए।

टेहरी कस्बा पहाड़ की तराई में है। हम फिर २२०० फीट नीचे उतर आए थे। हवा में गर्मी थी—पुराने राजा की राजधानी तथा देहरादून-मसूरी से सीधे रास्ते पर होने के कारण टेहरी अच्छी बड़ी व्यापार की मंडी है।

थोड़ी देर सुस्ता कर चाय पी और २६ मील आगे धरासू के लिए रवाना हो गए। धरासू गंगोत्तरी-यमुनोत्तरी के रास्ते का जंक्शन है; इसलिए यहाँ काफी चहल-पहल रहती है। भागीरथी के किनारे एक पुराना टूटा सा मन्दिर था; वहाँ ठहर गए। हम कानपुर से ही तय करके चले थे कि जहाँ तक सम्भव होगा, स्वयं बनाकर सादा गर्म भोजन करेंगे। इसलिए स्टोवं जलाकर, चावल-दाल-आलू-प्याज-मटर सब मिलाकर पंचमेल खिचड़ी बनाई और बहुत से घी का छौका दे दिया।

वैसे हम लोग सब खाने के शौकीन थे, परन्तु उस दिन की खिचड़ी में जो स्वाद आया, वह तो अनुभव की ही चीज है। दरअसल स्वाद भूख में है और भूख यथेष्ट श्रम से जागृत होती है।

धरासू की ऊँचाई लगभग चार हजार फीट है—मौसम साफ था; हम मन्दिर के पास के चबूतरे पर कम्बल बिछा कर सो गए।

दूसरे दिन सुबह उठकर तथा नित्य कर्म से छुट्टी पाकर ऊपर एक दूकान पर गरम-गरम आलू-प्याज की पकौड़ी और चाय का नाश्ता करके आगे के लिए रवाना हो गए। आज यात्रा तो केवल ५० मील की ही थी, परन्तु रास्ता काफी ऊँचा नीचा था। सड़क भी पिछले दो वर्षों में ही बनी थी; अभी काम पूरा नहीं हुआ था। कहीं-कहीं सुरंग लगा कर रास्ता चौड़ा करने के लिए पहाड़ तोड़े जारहे थे। हम धीरे-धीरे चल कर पाँच घण्टों में ६००० फीट ऊँचाई के दंडौटी गाँव में जाकर ठहरे। मोटर रोड यहीं तक थी। अब आगे यहाँ से यमुनोत्तरी तक १२ मील पैदल जाना था। रास्ता भी कठिन चढ़ाई का था, इसलिए उस दिन यहीं ठहरने का तय किया।

चार-पाँच वर्ष पहले यह शायद छोटी-सी चट्टी थी; परन्तु अब यमुनोत्तरी का मार्ग सुगम होजाने से यात्री बहुत आने लगे हैं; इसलिए नए-नए मकान और दूकानें बन गई हैं। हमने एक कमरा पाँच रुपए किराए में ले लिया। बिस्तर खोल कर आराम करने लगे। भूख लग आई थी, परन्तु खाना कौन बनाए? नाइयों की बारात में सब ठाकुर। कानपुर में किया हुआ व्रत तीसरे दिन ही टूट गया; हलवाई की दूकान से पूड़ी-मिठाई लेकर क्षुधा शान्त की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रात में पिछले दो दिनों की यात्रा की चर्चा होने लगी। हम ऋषिकेश से १२५ मील आगए थे। आज से तीस वर्ष पहले यात्रियों को इतनी यात्रा में १०-१२ दिन लग जाते थे। रुपयों की और साधनों की कमी रहती थी, इसलिए अधिकांश सामान सिर पर ढोकर चलना पड़ता था। १०-१२ मील चल कर दोपहर में और रात्रि में रास्ते की किसी चट्टी पर ठहर जाते थे।

रात में भजन-कीर्तन कथा-वार्ता होती। दूकानदार, भारवाही कुली, घोड़े वाले, डाण्डी वाले और छोटे-छोटे मन्दिरों के पुजारी आदि बहुत से लोगों के परिवारों की परवरिश इस प्रकार होजाती थी। आज वे सब बेकार हो गए हैं। चट्टियों की दूकानें सूनी पड़ी हैं—अधिकांश टूट गई हैं। उस समय यात्री भी रास्ते के कष्टों को दुखदायी नहीं समझते थे; वे उन्हें एक प्रकार की कठिन तपस्या मान कर मन में सन्तोष अनुभव करते थे। पर अब वे बातें समाप्त होगई हैं। अतिरिक्त समान वहीं रख कर, मोटर बन्द करके मकान-मालिक की निगरानी में रख दी। दूसरे दिन सुबह उस १२ मील की कठिन पैदल-यात्रा पर हम सब रवाना हुए। मेरे पैरों में दर्द था, इसलिए एक घोड़ा कर लिया। बाकी के सब लोग हाथ में लाठियाँ लिए पैदल चले। दो भारवाही कुली और एक पण्डाजी—इस तरह हम सब ८ व्यक्ति यमुना मैया के पीहर को चले।

अब हम ७००० फीट की ऊँचाई पर चल रहे थे। खुमानी और चीड़ के वृक्ष पीछे छूट गए थे; फिर भी जमीन और पहाड़ हरे-भरे थे। ठंढी मादक हवा जोरों से चल रही थी; एक तरफ ऊँचे पहाड़ थे, दूसरी तरफ बहुत निचाई में यमुना तीव्र गति से दौड़ती-सी जा रही थी। राणा गाँव तक दो मील का रास्ता इतना विकट था कि जैसे १० मील चले हों। ४ घण्टों में हनुमान चट्टी पहुँचे। शायद इसी तरह के रास्तों के लिए कहावत बनी थी कि 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस।'

हमें आज रात में जानकी चट्टी में ठहरना था, जो यहाँ से चार मील पर थी। हम वहाँ शाम को ही पहुँच कर दाल-फुलका बनाकर खापीकर आराम करना चाहते थे। पंडाजी ने कहा—यह रास्ता पीछे वाले से भी कठिन है।

हल्का खाना खाकर दो बजे चले। शुरू के १ मील में ही गर्गजी तो चीं बोल गए, परन्तु बीच रास्ते में डांडी और घोड़े नहीं मिलते। साथ के यात्री दलों में कुछ वृद्ध स्त्री-पुरुष पैदल चल रहे थे। उन्हें देखकर किसी प्रकार हिम्मत करके वे भी आगे बढ़ते रहे। दुर्योग से बूंदा-बूंदी शुरू हो गई। मोमजामे और छाते साथ में थे; परन्तु हवा की ठंढक और तेजी बढ़ गई।

आखिर ६ बजे शाम को हम जानकी चट्टी पहुँच गए। दूसरे यात्री-दल भी आगए थे; जगह की तंगी थी, इसलिए सब परेशान थे। हमारे पास के काली कमली वाले के परिचय-पत्र ने बहुत मदद दी। हमें ऊपर के तल्ले पर एक कोठरी मिल गई।

जानकी चट्टी लगभग १०,००० फीट की ऊँचाई पर है; यहाँ से बर्फानी चोटियाँ दिखाई देती हैं। मैंने साथियों को बाहर चल कर प्राकृतिक सौंदर्य और ईश्वर की अद्भुत रचना का साक्षात करने को कहा; परन्तु वे सब तो गरम पानी में नमक डाल कर पैरों को सेंक रहे थे। पिछले दिन की काव्य और साहित्य-चर्चा भूलकर सब आँखें बन्द किए बैठे थे।

वर्षा के कारण रात काफी ठंढी हो गई थी। परन्तु हम लोग थके हुए थे; लेटते ही गहरी नींद में सो गए।

दूसरे दिन सुबह साथ के यात्रियों का यमुना मैया का 'जयघोष' और भैरवी राग के भजन सुनकर जागे; देखा वर्षा थम गई थी, आकाश साफ था।

आज हमें यमुनोत्तरी की चढ़ाई करनी थीं—अगले ४ मील में १००० फीट की ऊँचाई

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चढ़नी थी। सूर्योदय होते ही रवाना होगए। शीतल मन्द समीरण बह रहा था। वन-प्रान्तर में नाना प्रकार के वृक्ष और लताएं थीं। हम उल्लास-भरे मन से आगे बढ़ते जा रहे थे। हमें जयदेव कवि का यह भजन याद आगया—"धीर समीरे यमुना-तीरे वसति वने वनमाली।"

मार्ग कहीं पथरीला, कहीं रेतीला था। १० बज गया था। वापस लौटने वाले यात्री मार्ग में मिलने लगे। दोनों तरफ से 'जय जमुना मैया" का घोष होता। सांत्वना मिलती कि आगे का रास्ता अच्छा है; परन्तु यह तो हम शुरू से ही सुनते आ रहे थे, इसलिए जानते थे कि यह केवल धीरज बँधाने की बात है।

आज दीक्षितजी और गर्गजी—दोनों घोड़ों पर थे, इसलिए फिर उन्हें काव्य-चर्चा याद आगई। पहाड़ों की कहीं-कहीं पीली और सफेद चमकती हुई मिट्टी को देख कर सभीने वहाँ सोना और चाँदी होने की सम्भवना प्रकट की।

इस प्रकार लगभग १२ बजे हम उस पतित-पावनी पवित्र यमुनोत्तरी की घाटी में पहुँच गए। जिसके बारे में बचपन से ही सुनते आरहे थे। हमारी नानीजी को अन्तिम समय तक यह पछतावा रहा कि वह यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी के दर्शन नहीं कर सकीं।

सामने ही २०७०० फीट ऊँचा (पूंछ बन्दर) हिमशिखर है। कहते है हनुमानजी लंका-विजय के उपरान्त अयोध्या-आगमन और राजतिलक के बाद भगवान राम से आज्ञा लेकर इसी चोटी पर रहने लगे थे। इसी बन्दरपूंछ के एक भाग कालन्दगिरि से यमुना निकली है, इसलिए इसका एंक नाम कालिन्दी भी है।

गंगोत्तरी से १२ मील ऊपर गोपुर तक तो बहुत यात्री जाते हैं; परन्तु कालिन्दी गिरि पर अभी तक किसीके जाने की बात नहीं सुनी गई।

यमुनोत्तरी आकर श्रद्धालु यात्री सचमुच ही आत्मविभोर हो जाते हैं। सूर्य की पुत्री और यम की बहन का साक्षात्कार करके सब अपने जीवन को धन्य मानते हैं। अधिकांश यात्री मई-जून में आते हैं, इसलिए अब भीड़ ज्यादा नहीं थी। हमें बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला में पर्याप्त स्थान मिल गया।

पूछने पर पता चला कि केवल ४ मील पर ही यमुना-मुख है। आज से पचास वर्ष पहले स्वामी रामतीर्थ वहाँ जा भी चुके थे, जब न तो बर्फ काटने के औजार थे—न रस्सी की सीढ़ियाँ ही। सोचा, हम भी क्यों न वहाँ जाने का प्रयत्न करें। परन्तु किसी ने भी हिम्मत नहीं की, सब निराशा की बात करने लगे। कहने लगे—'स्वामी राम की बात और थी—वे तो यमुनोत्तरी से सीधे गंगोत्तरी भी चले गए थे, जबकि आज तक के सुदक्ष पर्वतारोहियों की भी हिम्मत नहीं हुई।

एक लकड़ी के हिलते हुए पुल को पार करके हम उस पार पहुँचे। वहाँ यमुनाजी का छोटा-सा मन्दिर और तीन तप्त कुण्ड हैं। शुरू में तो पानी बहुत गर्म लगता है, परन्तु एक बार भीतर बढ़ने पर बाहर निकलने का मन नहीं करता। पिछले दिनों की सारी थकावट यहाँ आकर मिट गई।

शाम के भोजन के लिए एक पोटली में चावल आलू बाँध कर कुण्ड में डुबो दिए। कुण्ड के पानी का तापमान १९७ डिग्री है, जबकि बाहर का रहता है—२० से ५५ तक। आस्ट्रिया और जर्मनी इस प्रकार के गर्म कुण्डों के स्नान के लाभ का प्रचार करके अरबों रुपये वर्ष में विदेशी यात्रियों से कमा लेते हैं।

रात्रि में मैया की आरती करके कुण्ड के गर्म जल में पकी हुई चावल-दाल की सुस्वादु खिचड़ी खाकर हम साथी यात्रियों के साथ भजन-कीर्तन में बैठ गए।

संयोग से एक महात्मा वहीं ठहरे हुए थे। वे कई वर्षों से हिमालय के विभिन्न हिस्सों में घूमते रहे हैं। उन्होंने बताया कि जिस छाया-पथ से स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गए थे, उसकी दूरी केवल २०-२२ मील है, जबकि आम चालू रास्ता १०० मील है।

बहुत प्रयत्न करने के बाद भी महात्माजी उस रास्ते से नहीं जासके। उनका कहना था कि जितना दूर तक गए और उनकी दृष्टि गई उन्हें ऐसा लगा कि स्वर्ग और मृत्यु का नियन्त्रण करने वाले देवाधिदेव का सिंहासन यहीं है।

दूसरे दिन सुबह उठे तब मन प्रफुल्लित और प्रसन्न था। रात्रि में अच्छे सपने आए थे। माता के मन्दिर में जाकर चीर चढ़ाया और पूजन किया। ऊपर की गुफा में एक महात्मा रहते हैं; उनके दर्शन करने गए। कहते हैं—पिछले २० वर्षों से वे सर्दी-गर्मी में बारहों महीने यहीं रहते आरहे हैं। शीतकाल में, जब बर्फ जम जाती है, एक कुदाली से बर्फ काट करके केवल नित्य कर्म करने के हेतु थोड़ी देर के लिए ही वे बाहर निकलते हैं; फिर दिन-रात गुफा में ही रहते हैं—भक्त लोग उनके लिए ६ महीनों का आवश्यक सामान जमा करके रख देते हैं।

वे मौन थे, इसलिए बात न होसकी। हम उनकी चरण-धूलि लेकर वापस चले आए। वैसे तीन रात्रि तीर्थ-स्थान में रहने का माहात्म्य है, परन्तु हमें तो जैसे माँ गंगा बुला रही थीं, इसलिए परमेश्वर की उस पुण्य-भूमि को और नैसर्गिक शोभा से परिवृत अदृश्य शक्ति को शत-शत प्रणाम करके वहाँ से वापस रवाना हो गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गंगोत्तरी

विश्व की बड़ी नदियों में गंगा का ३६वाँ स्थान है। अफ्रीका की नील, दक्षिण अमरीका की अमेजन और उत्तर अमरीका की मीसीसीपी—हमारी गंगा से दुगुनी से भी ज़्यादा बड़ी हैं। हमारे यहाँ की ब्रह्मपुत्र और सिन्ध भी गंगा से २५० मील ज्यादा लम्बी हैं, परन्तु जो महत्ता गंगा की है, वह उन दोनों की नहीं। वैसे भी ब्रह्मपुत्र का अधिकांश हिस्सा तिब्बत में और सिन्धु का पाकिस्तान में रह जाता है, जबकि गंगा पूर्ण रूप से भारत भूमि को शस्यश्यामला और सुजला बनाती है। गंगा हमारे लिए केवल नदी नहीं है—बल्कि हमारी जीवनदात्री, अन्नदात्री और मातृस्वरूपा है।

गोमुख और गंगोत्तरी से जल लेकर लोग २५०० मील की यात्रा करके सुदूर दक्षिण के रामेश्वर और कन्याकुमारी की मूर्तियों को उस पवित्र जल से स्नान कराके अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

गंगा और सिन्धु का इतिहास आर्य-सभ्यता से भी पुराना है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता इन्हीं दोनों के किनारे पर पनपी और फली-फूली है।

गंगा-पूजन से मन को शान्ति मिलती है; पवित्र भावों की जागृति और शुभ कर्मों की प्रेरणा मिलती है।

अगर आप गंगा नदी में गोता लगाते हैं, तो वह काशी, नवद्वीप और गंगासागर के समग्र जल में लगाने के बराबर हुआ; क्योंकि १५०० मील की लगातार धारा तो अविभाज्य और अटूट है। भला इससे ज्यादा राष्ट्रीय एकता का प्रमाण और क्या होगा?

श्रीमद्भगवद्गीता पर जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त ज्ञानेश्वर, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविन्द, विनोबा भावे और महात्मा गान्धी जैसे सन्तों और विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से टीकाएँ प्रस्तुत कर श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। साधारण पाठकों के लिए सैकड़ों अन्य लोगों ने भी सरल शब्दों में इस महान ग्रन्थ को सुलभ बनाने का प्रयास किया है।

एक बड़े यज्ञ में वेदपाठी विद्वानों के साथ-साथ स्वाहा का शब्दोच्चार करके साधारण भक्त भी आहुति देते रहते हैं।

इसी उदाहरण से उत्साहित होकर अपने स्वल्प ज्ञान को जानते हुए भी यमुनोत्तरी-गंगोत्तरी पर लिखने का मुझे उत्साह मिला है।

यमुनोत्तरी की यात्रा करके हम चारों साथी दंडोटी चट्टी तक १२ मील घोड़ों पर वापस आए। जाते समय जहाँ दो दिन लगे, वहाँ वापस आती बार केवल ४ घण्टे में ही पहुँच गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पण्डाजी को विदा दी; घोड़े वालों, भारवाही मजदूरों और मोदी का हिसाब चुकता किया। कुछ ऊपर से बख्शिश भी दी। वर्ष में उन्हें केवल चार महीने काम मिलता है; खेती की जमीन है नहीं, अत्यन्त गरीबी है और अभाव में जीवन व्यतीत करते हैं।

शायद कुबेर की अलकापुरी इसी अञ्चल में थी। हो सकता है इनके पूर्वज गंधर्व, यक्ष या किन्नर जाति के रहे हों; परन्तु अब उनके ये बेटे, पोते लोगों को कन्धों पर बैठा कर, उनका बोझा ढोकर अथवा वह भी नहीं मिलने पर ढोर चरा कर या रस्सी बँट कर किसी तरह आधे भूखे, नंगे रह कर परिवार का भरण-पोषण करते हैं।

हम लोग ऋषिकेश से ही खाने का यथेष्ट सामान लेकर चले थे; परन्तु अभी तक उसका खास उपयोग नहीं होपाया था। ऊँची चढ़ाई और लगातार यात्रा से थकावट आजाती है, इसलिए दूकानदारों के यहाँ से दाल-फुल्का या पूड़ी-मिठाई लेकर खाते थे। आज भगवान् कृष्णप्रिया यमुना से साक्षात् करके आरहे थे। मन प्रसन्न था, सब मिल कर रसोंई की व्यवस्था करने लगे।

खा-पीकर मोटर में सामान लाद कर दडौटी को दण्डवत करके हम ३ बजे चले। हमें रात्रि में उत्तरकाशी जाकर ठहरना था। यहाँ से धरासू ६० मील पर है। रास्ता उतार का था, परन्तु पहाड़ी रास्तों पर, चाहे वे चढ़ाव के हों या उतार के, हमेशा मोटर धीरे-धीरे सावधानी से चलानी पड़ती है। मुझे इसका कटु अनुभव अपनी काश्मीर-यात्रा में हो चुका था।

हम उत्तरकाशी पहुँचे; तब संध्या बीत चुकी थी। मन्दिरों में आरती होरही थी और घण्टों की आवाज आरही थी। रात्रि में बिड़ला धर्मशाला में ठहरे; साफ-सुथरे और हवादार कमरे हैं; वहां बिजली-पानी तथा फ्लश की टट्टियाँ।

कहते हैं आर्य इसी रास्ते से विजय करते हुए मैदान की ओर बढ़े थे। किरातार्जुन-युद्ध भी यहीं हुआ था। ऐसी भी मान्यता है कि कलियुग में जब काशी लोप हो जाएगी, तब यही काशी रहेगी। काशी की तरह यहाँ भी अस्सी, वरुणा, दशाश्वमेध और मणिकर्णिका घाट हैं।

शायद ३०-३५ वर्षों पहले यह साधु सन्तों और योगियों की भूमि थी। आज भी उनके आश्रम इसके आसपास के वन-प्रान्तर में हैं। कुछ योगी महात्मा इस समय भी विद्यमान हैं। परन्तु अब तो यह एक बड़ा कस्बा होगया है।

उत्तराखण्ड के तीनों धाम तथा टेहरी का केन्द्र-स्थल होने के कारण यहाँ मोटरों, बसों और ट्रकों की रात-दिन चिल्ल-पुों रहती है। बाजार में सैकड़ों दूकानें हैं। लोग दोनों तरफ से कठिन यात्रा करके आते हैं—इसलिए चटपटी चीजें खाने की तीव्र इच्छा रहती है। देखा बीसियों दूकानें चाट और मिठाई की हैं, जिनके अधिकांश ग्राहक तीर्थयात्री हैं।

सुबह भागीरथी में स्नान किया, वर्षा का मौसम था, नदी पूरे उफान पर थी, पानी भी मिट्टी भरा था। जो आनन्द हरद्वार या देवप्रयाग के संगम में आया, वह यहाँ नहीं था। स्नान करके विश्वनाथ के मंदिर में दर्शन करने गए; यहीं एक पण्डाजी साथ हो गए। इसी प्रांगण में शक्ति का प्राचीन मंदिर है। उसमें एक २६ फीट लम्बा बहुत मोटा त्रिशूल है। कहते हैं, यह देवासुर संग्राम के समय का है। उस पर जो लेख है, वह राहुलजी के मतानुसार आज से एक हजार वर्ष पहले राजा गुह की विजय यात्रा के बारे में है। जो भी हो, हमने आज तक इतना बड़ा त्रिशूल तो क्या, तोप भी नहीं देखी।

इसी प्रांगण में एक बुद्धमूर्ति भी है। संभव है किसी समय यहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा हो। उत्तरकाशी की ऊँचाई ३८०० फीट है। यह घाटी में है; चारों तरफ उच्च गिरि-शिखर हैं। चीड़ और देवदार के वृक्षों से सुगन्धित ठंडी हवा आती रहती है। पहाड़ों के ऊपर से गिरते हुए जल-प्रपात हरे-भरे खेत और नाना प्रकार के पुष्प यात्रियों के मन में शान्ति उत्पन्न करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भोजन करके हम एक बजे मोटर से चले। दृश्य इतने सुहावने थे कि पैदल चलने का मन होता था।

रास्ते की कई चट्टियों से गुजरते हुए हम २७ मील पर गंगनानी चट्टी पर ठहरे। ६२०० फीट की ऊँचाई पर पहाड़ों से घिरा हुआ यह अच्छा सुन्दर स्थान है। यहाँ गर्म पानी के तीन कुंड हैं; पास में ही एक ठण्डे पानी का झरना है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार गर्म पानी में स्नान करके तुरन्त ठंडे पानी में स्नान करने से बहुत-सी बीमारियाँ मिट जाती हैं। हमने गर्म पानी के झरने में तो खूब देर तक स्नान किया, परन्तु बर्फ के समान शीतल जल में स्नान करने की हिम्मत नहीं हुई।

यहीं हमने सुना कि गंगा पार करते समय पाराशर मुनि ने मल्लाह की सुन्दरी पुत्री मत्स्य-गंधा से सम्भोग किया था, जिससे वेदव्यास जी पैदा हुए। परन्तु यही कथा कालपी की यमुना जी के लिए प्रसिद्ध है—पता नहीं कौन-सी बात सही है।

गर्म पानी में स्नान करने के बाद मन और तन में स्फूर्ति आ गई थी। यहाँ से १४ मील पर ही ८४०० फीट की ऊँचाई का इस क्षेत्र का प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हरसिल है। आज से ११५ वर्ष पहले, जब न तो सड़कें थीं और न आवागमन के साधन ही, विलसन नाम का एक अंग्रेज यात्री किसी तरह यहाँ आ पहुँचा। स्थान की रमणीयता देखकर वह मुग्ध हो गया और घर परिवार को भूलकर यहीं रहने लगा। हमने उसके उस समय के बनाए हुए बँगले में कुछ देर ठहर कर चाय-नाश्ता किया।

इस स्थान के बारे में एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। जलंधर दैत्य की पत्नी वृन्दा अद्भुत सुन्दरी और पतिव्रता थी। दैत्यों का बल कम करने के लिए उसका पातिव्रत धर्म नष्ट करना जरूरी था; यह काम सौंपा गया विष्णु को। उन्होंने जलंधर का रूप धारण करके उसका शील भंग किया। जब छल का पता चला तो सती ने शाप दिया कि तुम शिला हो जाओ; वह शिला आज भी वहां पर है। इसलिए इस स्थान का नाम "हरिशिला" या "हरसिल" हो गया।

यहाँ से ६ मील की दूरी पर जागला नाम का प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ भगीरथ ने तप किया था। कहते हैं—यहाँ तक गंगा जी उनके पीछे-पीछे चलीं आईं; परन्तु यहाँ आकर वेग इतना प्रबल हो गया कि यहाँ जो जह्नु ऋषि का आश्रम था, उसको वह बहा ले गईं। ऋषि ने क्रुद्ध होकर भागीरथी (गंगाजी) का आचमन कर लिया। भगीरथ की कड़ी तपस्या के बाद प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी जांघ चीरकर फिर गंगा को पृथ्वी पर जाने दिया। इसीलिए भागीरथी (गंगाजी) का एक नाम 'जाह्नवी' भी है।

घनघोर परिश्रम करके पत्थरों एवं पहाड़ों को तोड़कर जह्नु ऋषि के सहयोग से उसे आगे बढ़ाया। जो भी हो, यह स्थान अत्यन्त भयावह है। नीचे गहरी घाटी में जोर से दौड़ती हुई जाह्नवी को देखकर मन में सिहरन सी हो जाती है।

मोटर का रास्ता यहीं तक बना है। आगे ढाई मील भैरों घाटी तक पैदल जाना पड़ता है। यह चढ़ाई दमतोड़ है। परन्तु यात्री सोचता है—सामने ही तो माँ गंगा का उद्गम है, वहाँ पहुँचकर ही विश्राम लेंगे। भैरों घाटी से फिर साढ़े छः मील तक मोटर बसें जाती हैं।

हम जिस समय गंगात्तरी पहुंचे, शाम हो गई थी। सामने के ऊँचे पहाड़ से शक्ति-रूपणी जगन्माता गंगा बड़े वेग से नीचे उतर रही थीं। जैसे मां को अपने भूखे बच्चे को दूध पिलाने की जल्दी हो—चारों तरफ पवित्र जल के कण बिखर रहे थे। ऐसा लगता था कि भगवान शंकर अपनी जटाओं को हिलाकर मोतियों की बौछार कर रहे हैं।

स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्तरी के छाया-पथ से यहाँ आये थे। उन्होंने जो वर्णन किया है उसको संक्षेप में यहाँ देता हूं—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"यहाँ, दुग्ध धवल कांतियुक्ति शिखरों से देवदार वृक्षों का चिर साहचर्य है; उनका वर्णन राम किन शब्दों में करेगा। यहां परमात्मा पर्वत रूप में निद्रास्थ है, और वृक्ष रूप में श्वास ले रहा है। छाया-पथ के दोनों ओर की रंगबिरंगी पुष्प लताएँ पर्वतों पर कलापूर्ण शाल ओढ़ाती हैं। जब-जब दृष्टि जाती है, ऐसा लगता है स्वर्ग-मृत्यु का नियंत्रण करने वाले देवाधिदेव का सिंहासन यही है।"

हम लोग बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला में ठहर गए। उनके पास पहले से सूचना आ गई थी—कमरे को अँगीठी जलाकर गर्म कर रखा गया था। भोजन की व्यवस्था भी उन्होंने कर रखी थी।

गंगा मैया की आरती का समय हो गया; दूसरे यात्रियों के साथ हम भी हाथ जोड़कर खड़े हो गए। शरीर में एक प्रकार का हर्षोद्वेग-सा हो आया था। आज दो वर्ष बाद भी जब याद करता हूँ तो ऐसा लगता है—जैसे कल की सी बात है। मैने शेक्सपीयर के किसी नाटक में पढ़ा था कि जगह के वातावरण से मनुष्य के मन में अच्छे बुरे का असर होजाता है। यहां आकर उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला।

मुझे योगी अरविन्द की गंगोत्तरी के बारे में कही हुई यह कविता याद आ गई :—

नीरवता जो परम पुरुष की केवल वाणी—
अविज्ञात, आरम्भ शब्द से हीन अन्तमय।
क्षण में दिखी-सुनी सारी वस्तुएँ मिटाती;
एक सकल वर्णन अतीत चोटी पर राजित।

प्रसाद लेकर ऊपर कमरे में आए; भोजन किया। ऊँचाई तो १०४०० फीट ही थी, परन्तु हिमालय के भीतरी हिस्से में होने के कारण सर्दी बहुत थी। कुछ कम्बल क्षेत्र से ले लिए। गहरी नींद में सो गए।

दूसरे दिन सुबह फिर आरती में गए; परन्तु जो आनन्द और अनुभूति रात में हुई वह दिन में नहीं हुई।

कुछ लोग गोमुख जाने की तैयारी कर रहे थे। यहाँ से १२ मील पर १२७५० फीट की ऊँचाई पर वह है। वहाँ से गंगाजी एक छोटे से नाले के रूप में निकली हैं। कहते हैं रास्ता बहुत ही दुर्गम, परन्तु सुन्दर है। मेरा मन तो बहुत था, परन्तु घोड़े जा नहीं सकते थे, पैदल चलने की हिम्मत नहीं थी।

गंगोत्तरी में भी एक महात्मा रहते हैं—उनके दर्शन करने गए। वे हिन्दी बोलते थे—कहने लगे—माँ गंगा से इस बात की शिक्षा लेकर जाओ कि बिना फल की इच्छा के दूसरों की भलाई करते रहो इसी में जीवन की सार्थकता है।" हम थोड़ी देर बैठे; उन्होंने मिश्री का प्रसाद दिया—प्रणाम करके हम चले आए।

चाय-नाश्ता करके माँ गंगा के पीहर—अपने ननिहाल—से एक प्रकार से भारी मन से ही विदा हुए। मनुष्य-जीवन में ऐसे क्षण बहुत कम आ पाते हैं, परन्तु इसकी सुखद याद जीवन पर्यन्त बनी रहती है।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बदरीनाथ

राजस्थान में कहावत है "गया बदरी काया सुधरी" और सैकड़ों वर्ष पहले से ही काया सुधारने के लिए सचमुच ही जवान और वृद्ध स्त्री-पुरुष अल्प सम्बल के साथ परमेश्वर का भरोसा करके इस दुरूह यात्रा पर निकल पड़ते। साथ में रहता था लोटा, डोरी, थोड़े से कपड़े, दो कम्बल, कुछ दवाइयाँ और एक लाठी। एक दरी में सब सामान बाँधकर कंधे पर या सिर पर रखकर गांव पड़ोस के लोगों से विदा लेकर भगवान बदरीनाथ-केदारनाथ के दर्शन करने पैदल यात्रा पर चल देते थे। उस समय न तो रेल थी, न मोटर और न अच्छी सड़कें ही।

लोग उन्हें गाँव के गोरवें तक पहुँचाने आते, श्रद्धा से पाँव छूकर प्रणाम करते। वापस आने की संभावना कम रहती, इसलिए वातावरण में उदासी छा जाती। तीन धाम (रामेश्वर, द्वारका, पुरी) तो बहुत से लोग कर आते, परन्तु चौथा धाम सौ में एक-दो व्यक्ति ही कर पाता। मुझे याद है बदरी-केदार की यात्रा के लिए वैशाख में जाकर जब श्रावण-भादों में यात्री वापस लौटते तब पहले से ही गाँव में चर्चा फैल जाती। उन्हें लेने पचासों आदमी सामने जाते, छोटे पैर छूते, बड़े आलिंगन करते। 'जय बदरी विशाल' के घोष से आसमान गूँज उठता।

दो-चार दिन सुस्ताने के बाद भगवान का प्रसाद होता (हलुवा पूड़ी या लड्डू जलेबी) नाते-रिश्तेदारों को और गाँव के लोगों को सामर्थ्य के अनुसार भोजन कराते और साथ में लाई हुई बदरीनाथ की छोटी-छोटी तस्वीरें और खील-मखानों का प्रसाद देते।

मेरे दादाजी परम वैष्णव थे, तीनों धाम की यात्रा कर आए थे; परन्तु बदरीनाथ नहीं जा पाए। दादीजी हमेशा उदास मन से इस बात का जिक्र करतीं। मैं दो बार बदरीनाथ हो आया हूँ—१९४५ में और १९७३ में। यहाँ दूसरी यात्रा का वर्णन लिखूँगा, कारंण पिछले तीस वर्षों में बहुत से परिवर्तन हो गए हैं।

हाँ तो अगस्त १९७३ में अकस्मात "फूलों की घाटी" जाने का प्रोग्राम बना लिया। सोचा कि पाण्डुकेश्वर से १४ मील ही तो बदरीनाथ है, क्यों नहीं वहाँ फिर एक बार हो आऊँ। साथी कोई था नहीं; परन्तु सोचा जब सुदूर उत्तरी ध्रुवांचल में अर्द्धरात्रि का सूर्य अकेला देख आया, जहाँ न तो कोई मेरी भाषा समझता था, न किसी से मेरी जान-पहचान ही थी, चारों तरफ बर्फ, कुछ लैंप, स्त्री-पुरुष और भोंकते हुए रेण्डियर कुत्ते मात्र थें, तब भला यह तो अपने स्वदेश का बड़ा तीर्थ है सैकड़ों स्वजन बन्धु मिल जाएँगे।

दिल्ली से ट्रेन में चलकर दूसरे दिन सुबह हरिद्वार पहुँचा। पिछले वर्ष भी आया था, परन्तु उस समय गंगोत्तरी जाने की जल्दी थी, इसलिए ठहरा नहीं। इस बार दो-तीन दिन ठहर कर इस पवित्र और प्राचीन स्थान को अच्छी तरह देखना चाहता था। पंडाजी को बुलाया; वे बहुत सी पुरानी बहियाँ लेकर आये। सन १८९५ की मेरे दादाजी की सही देखी;

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वे अपने पिताजी की अस्थियाँ लेकर आए थे। मेरा जन्म तो इसके १५ वर्ष बाद हुआ। मुझे बचपन के दिन याद आगए। वे हम दोनों भाइयों को गोद में बैठा कर रामायण-महाभारत की कहानियाँ सुनाया करते थे। भीम ने बड़े वृक्ष को हिलाकर ऊपर चढ़े हुए कौरवों को गिरा दिया—इसे सुन कर हम बहुत खुश होते थे।

हरद्वार का पुराना नाम गंगाद्वार और मायापुरी भी था; देश की सात पुरियों में इसकी गणना है। कहा जाता है कि समुद्रमंथन के बाद, जब इन्द्रपुत्र जयन्त अमृत कलश लेकर जा रहा था, कुछ देर के लिए वह यहाँ ठहरा था, फलत: अमृत की कुछ बूँदें इस स्थान पर गिर गई थीं। यहाँ इतनी चहल-पहल और इतने दर्शनीय स्थान हैं कि अकेले व्यक्ति का भी मन लग जाता है। तीसरे दिन सुबह बस से ऋषिकेश चला आया। यहाँ के बाबा काली कमली वाले के क्षेत्र से मैं परिचित था, वहीं ठहरा। यद्यपि वहाँ बहुत से होटल-रेस्तरां हैं; परन्तु मैंने क्षेत्र के भंडारे में ही भोजन किया। रोज सैकड़ों व्यक्तियों का भोजन वहाँ बनता है और साधु-महात्माओं को प्रसाद मिलता है; कभी कदाच धनी यात्री खीर-पूड़ी या लड्डू-जलेबी का भंडारा भी करा देते हैं।

लक्ष्मणझूला होकर उस पार गंगा किनारे के गीता-भवन गया। यह संस्था गोविन्द भवन, गोरखपुर द्वारा संचालित है। तीन बड़े-बड़े भवन हैं, ३५० कमरे! श्रद्धालु यात्री और सत्संग के लिए आए हुए लोगों की यथेष्ट उपस्थिति रहती है, विद्वान संत-महात्माओं के प्रवचन होते रहते हैं। पास में ही स्वामी शुकदेवानन्दजी द्वारा स्थापित 'परमार्थ निकेतन' नाम की इससे भी बड़ी संस्था है, जिसमें ५०० कमरे हैं। यहाँ भी कीर्तन, भजन, पूजा-पाठ होते रहते हैं। इस भवन में कई एक मन्दिर और स्थायी झाँकियाँ हैं।

इन दोनों संस्थाओं के सिवाय दर्जनों संस्थाएं यहाँ हैं, जिनमें स्वामी शिवानन्द की 'दिव्य जीवन सोसाइटी' और महेश महर्षि योगी के 'यौगिक आश्रम' में भारतीयों के सिवाय विदेशी साधक भी योग-विद्या सीखने जाते हैं। ऋषिकेश में आकर देवात्मा हिमालय के दर्शन होने लगते हैं, परन्तु उसका विराट रूप तो आगे जाकर ही मिलता है।

यहाँ से ४४ मील पर देवप्रयाग है। यहाँ भागीरथी और अलकनन्दा का संगम है। दोनों नदियों का इतने जोर का वेग है कि लोहे की सांकल पकड़ कर स्नान करना पड़ता है।

यह मन्दिरों और पंडों का शहर है। कहते हैं रावण को मारने से भगवान राम को ब्रह्महत्या का पाप लगा था; उसे दूर करने के लिए उन्होंने यहाँ तपस्या की थी। परन्तु इस प्रकार की बातें हर एक तीर्थ के साथ जुड़ी हुई हैं; पता नहीं उनमें कितनी सत्य हैं।

देवप्रयाग से दूसरी बस से चल कर २४ मील की दूरी पर ६ बजे श्रीनगर पहुँचा। श्रीनगर गढ़वाल क्षेत्र का बड़ा और प्राचीन शहर है; इसी के पास में टेहरी नरेश कीर्तिशाह ने कीर्तिनगर नाम का शहर बसाया है।

श्रीनगर के पहले भीलेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहाँ भील रूपधारी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध हुआ था; प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया था।

हरिद्वार से ८० मील आ गया हूँ। यद्यपि ऊँचाई तो केवल १७०० फीट है, परन्तु ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ यह सुन्दर स्थान है। यहीं महर्षि नारद राजा शीलनिधि की रूप-लावण्यमयी पुत्री पर मोहित होगए थे। भगवान विष्णु ने उन्हें बन्दर का रूप बना कर भेज दिया। सुन्दरी तो नहीं मिली, बेइज्जती और जग-हँसाई जरूर हुई।

वैसे बिना ठहरे, दूसरे दिन ही बदरीनाथ पहुँच सकते है, परन्तु मैं रास्ते के मुख्य तीर्थों को देखते हुए जाना चाहता था, इसलिए रात में बाबा काली कमली वाले के अतिथिगृह में ठहर गया।

दूसरे दिन सुबह की बस से २१ मील चल कर रुद्रप्रयाग पहुँचा। यह बदरी-केदार का केन्द्र-स्थल है। यहाँ अलकनन्दा और मन्दाकिनी का संगम है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काली कमली के सिवाय सरकारी यात्री-निवास भी यहाँ हैं। श्रीनगर में प्रेम-व्यापार में असफल होने से नारद जी का मन खराब होगया और वे यहाँ आकर शिवजी की आराधना करने लगे। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उनको संगीत-विद्या की शिक्षा दी।

रुद्रप्रयाग में बस केदारनाथ से आने वाले यात्रियों के लिए एक घण्टा ठहरती है। मैं उसी बस से २० मील आगे कर्णप्रयाग चला आया। यहाँ पिंडारक नदी अलकनन्दा से मिलती है। अलकनन्दा का पानी गंदला सफेद है, जबकि पिंडारक का हरित और साफ। नजदीक के पिंडारी ग्लेशियर से यह नदी निकलती है। सुना गया है कि कुछ साहसिक भारतीय पर्वतारोही इस ग्लेशियर तक पहुँच गए थे। स्कन्दपुराण के अनुसार, यहीं राजा कर्ण ने अपने पिता सूर्य का तप और यज्ञ किया था। सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे अभेद्य कवच, अक्षय तूणीर और अजेयत्व दिया।

१३ मील पर इस अंचल का प्रसिद्ध रमणीक स्थान नन्दप्रयाग है। यहाँ नन्दा नदी आकर अलकनन्दा में मिली है। यहीं पर कण्व ऋषि का आश्रम था, जहाँ कुमारी शकुन्तला से राजा दुष्यन्त ने गंधर्व विवाह किया था। आज भी यहाँ के हरित वन-प्रान्तर में नाना प्रकार के सुन्दर पशु-पक्षी दिखाई देते हैं।

मुझे एशिया, अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका के विभिन्न स्थानों को देखने का मौका मिला है। मेरी राय में गंगोत्तरी के रास्ते के हरिसिल और बदरीनाथ के नन्दप्रयाग के समान न तो स्वीट्जरलैण्ड का इण्टरलाकेनहै, न जापान का निक्को।

अगर इन स्थानों में अच्छे होटल-मोटल बना दिये जायें और विदेशों में पूरे तौर पर प्रचार किया जाय, तो देश की यात्रिक आय में यथेष्ट वृद्धि हो सकती हैं।

नन्दप्रयाग में कुछ देर ठहरा, इच्छा बहुत थी, परन्तु इस बार की यात्रा पर अकेला आया था, इसलिए मन अस्थिर रहा। मेरा सुझाव है कि दुरूह और लम्बी यात्राओं पर २-४ मित्रों के साथ जाना चाहिए।

यहाँ से आगे ऐसी मादक ठंडी हवा शुरू होजाती है कि उससे नारद, दुष्यन्त, पाण्डु तथा साक्षात भगवान शिव आदि के मन में भी उद्वेग उत्पन्न होगया, फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या ? जब जोशीमठ पहुँचा तब रात होगई थी। रास्ते की गोपेश्वर, चमौली, पीपलकोटि और गरुड़गंगा चोटियों को बिना देखे ही छोड़ आया था।

अगर अपनी मोटर हो तो इनमें से कई प्रसिद्ध स्थानों को थोड़ी देर ठहर कर देखा जा सकता है।

जोशी मठ ६१५० फीट की ऊँचाई पर है। रात ठंडी थी; सुबह उठा तब चारों तरफ हिमाच्छादित शिखरों को देख कर मन विमुग्ध होगया। मुझे राष्ट्रकवि दिनकरजी की यह कविता याद आगई:—

मेरे नगपति मेरे विशाल !
साकार दिव्य गौरव विराट;
मेरी जननी के दिव्य भाल !

यहीं से तो तिब्बत का पुराना मार्ग था। यह सारा प्रदेश महान भारत का अंग था— कैलास, मानसरोवर और राक्षसताल।

यहीं कुबेर की अलकापुरी थी। यक्ष, किन्नर, गंधर्व अपनी सुन्दरी प्रेयसियों के साथ प्रेमालाप करने में तल्लीन रहते थे। उनकी तो बात ही क्या ? इसी वन-प्रान्तर में तपोलीन महामुनि विश्वामित्र योग को छोड़कर मेनका के साथ भोग में लग गए और शकुन्तला का जन्म हुआ। १२०० वर्ष पहले जब शंकराचार्य देश के विभिन्न भागों की यात्रा करते हुए यहाँ पहुँचे, तब इस स्थान की पवित्रता और रमणीयता से प्रभावित होकर उन्होंने अपना उत्तर दिशा का मठ यहीं स्थापित किया। आज भी वह इसी रूप में है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जोशीमठ से १३ मील पर पाण्डुकेश्वर है। यहीं से विश्व-प्रसिद्ध "फूलों की घाटी" और सिखों के तीर्थ हेमकुण्ड लोकपाल जाने का रास्ता है। यहाँ राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री के साथ बहुत दिनों तक रहे थे। कहते हैं पाण्डु जन्म-रोगी थे, इसलिए वंश चलाने के लिए कुन्ती और माद्री ने विभिन्न देवताओं के नियोग से पाँचों पाण्डवों को इसी स्थान पर उत्पन्न किया था। यहीं पर गंधमादन और शतशृंग पर्वत हैं। पाण्डुकेश्वर से बदरीनाथ केवल १४ मील रह जाता है। पहले कठिन चढ़ाई थी; अब तो मोटरों और बसों से आराम से यात्री भगवान के मन्दिर के दूसरी तरफ पहुँच जाते हैं। हनुमान चट्टी में हनुमानजी राह देखते ही बैठे रहते हैं। बदरीनाथ की ऊँचाई १०३२५ फीट है; सारा शहर ६ महीनों तक बर्फ से ढका रहता है। ८वीं शताब्दी में श्री शंकराचार्य ने अलकनन्दा से निकाल कर इन मूर्तियों को मन्दिर में स्थापित किया था। वर्तमान मन्दिर इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होलकर का बनाया हुआ है।

इतनी पौराणिक कथाएँ इस पवित्र तीर्थ के साथ जुड़ी हुई हैं कि उनके वर्णन से एक अलग पुस्तक बन जायेगी। मैं तो नहीं जा पाया, परन्तु साहसिक यात्री ५ मील पर वसुधारा प्रपात और १६ मील सतोपंथ जाते हैं। कहते हैं कि प्रकृति की अद्भुत छटा उन स्थानों में है। पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी ने इसी रास्ते से स्वर्गारोहण किया था। यद्यपि अब बदरीनाथ बड़ा शहर होगया है, परन्तु किसी समय यह ऋषि-मुनियों की तपोभूमि थी। व्यासजीने महाभारत की रचना यहीं की थी; नर-नारायण ने भगवान शंकर की आराधना भी यहीं की थी। इसीके आसपास वशिष्ठाश्रम है, जहाँ विश्वामित्र के क्षात्रतेज को ब्रह्मतेज के सामने झुकना पड़ा था। पति द्वारा परित्यक्ता होकर शकुन्तला केदार-बदरी अंचल में ही रहने लगी थी। उसने यहीं प्रतापी भरत को जन्म दिया था।

बदरीनाथ से वापस लौटते समय कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की यह कविता याद आगई :—

"मानदण्ड भू के अखण्ड हे !
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण !
नैसर्गिक शोभा से परिवृत,
गुह्य अदृश्य शक्ति से रक्षित।
मानदण्ड भू के अखण्ड हे ! !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

केदारनाथ

स्कन्दपुराण में कथा है कि गोत्र-हत्या और गुरुजनों के वध से सन्तप्त पाण्डव व्यासजी की शरण में गए और उन्होंने उनसे इस पाप से मुक्ति का उपाय पूछा। व्यासजी के आदेशानुसार द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव केदारनाथ में भगवान शंकर की तपस्या करने चल दिए। शिवजी उनको दर्शन देना नहीं चाहते थे, परन्तु महाबली भीम और अर्जुन से वे डरते भी थे। वे पाताल में जाने लगे; भीम ने जोर से उनकी पीठ पकड़ ली, इसलिए पीछे के धड़ का हिस्सा केदारनाथ में रह गया, आगे का भाग नेपाल के पशुपतिनाथ के मन्दिर में है।

केदारनाथ की ऊँचाई ११,७५० फुट है। चारों तीर्थों में यह सबसे ऊँचा है। तीन तरफ बर्फ के ऊँचे गिरिशिखर हैं। सनसनाती ठंडी बर्फानी हवा चलती है, फिर भी श्रद्धालु यात्री यहाँ आकर जीवन को धन्य मानते हैं। मन्दिर में शिवलिंग नहीं है, केवल एक खुरदरा-सा बड़ा सारा पत्थर है, जिसको घी मल-मल कर भक्तों ने चिकना बना दिया है। जो यहाँ आता है, वही प्रेम और भक्ति से इस पर घी मलता है।

हजारों वर्षों से देश के सन्त-महात्मा यहाँ आते रहे हैं। यहाँ की भैरव-झाँप चोटी पर से गिर कर कुछ लोग शिवलोक-प्राप्ति के लिए कभी प्राण-विसर्जन भी किया करते थे। पिछले १५० वर्षों से यह कानूनन बन्द कर दिया गया है। कहते हैं, अगर पहाड़ लाँघ कर जाया जाए तो बदरीनाथ और गंगोत्तरी यहाँ से बहुत नजदीक है। परन्तु यह रास्ता हमेशा बर्फ से ढका रहता है—बीच के पहाड़ों की ऊँचाई भी २०-२२ हजार फुट है। स्वामी रामतीर्थ की तरह का महामानव ही सीधे रास्ते से जा सकता है। अगर इस क्षेत्र में देश-विदेश के लाखों यात्री आने लगें तो स्विटजरलैण्ड से इटली तक आल्पस पहाड़ के भीतर जो १२ मील लम्बी सिम्पलन सुरंग बनी है, वैसी ही शायद यहाँ भी बन जाय।

केदारनाथ में सर्दी इतनी थी कि हम एक रात भी नहीं रहे। मन्दाकिनी और सरस्वती के संगम में स्नान करने का बहुत बड़ा माहात्म्य है, परन्तु हड़कम्प ठंड थी। हमने थोड़ा-सा जल लेकर माथे से लगा कर ही सन्तोष कर लिया।

पाँचों पाण्डव और द्रौपदी यहाँ के ऊँचे पहाड़ लाँघ कर बदरीनाथ होते हुए स्वर्गारोहण के लिए गए थे। इस प्रकार जब मार्ग में चलते हुए युधिष्ठिर के चारों भाई एक-एक कर द्रौपदी समेत बर्फ में गल गए और अन्त में परम सत्यनिष्ठ होने के कारण केवल युधिष्ठिर उस अगम पथ पर आगे बढ़ते चले गए। तब उन्हें सदेह स्वर्ग लेजाने के लिए देवराज इन्द्र स्वयं विमान लेकर उनके सामने उपस्थित हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर उनसे अनुरोध किया कि वे विमान में आरूढ़ होकर उनके साथ इसी रूप में स्वर्ग चलें। उस समय युधिष्ठिर के साथ में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक कुत्ता भी था, जो उनको मार्ग-दर्शन कराता हुआ, उनके साथ आया था। इन्द्र ने युधिष्ठिर से उस अपवित्र पशु का साथ छोड़े देने को कहा, परन्तु युधिष्ठिर का उत्तर था कि 'जिसने ईमानदारी से संकट के समय में उनका साथ दिया है, उसे वे स्वर्ग-सुख के लिए भी कभी नहीं छोड़ेंगे।'

वस्तुत: यह आजीवन सत्यवादी युधिष्ठिर की अनन्य धर्मनिष्ठा तथा न्यायप्रियता की अन्तिम कठोर परीक्षा थी। इस परीक्षा को लेने के लिए स्वयं धर्म के अधिपति यमराज ने श्वान (कुत्ते) का रूप धारण किया था। इसी कुत्ते ने महाप्रस्थान के इस विकट, अगम्य एवं अज्ञात पथ पर, युधिष्ठिर को मार्ग-दर्शन कराते हुए, उन्हें आगे बढ़ते रहने में सहायता की थी। यह स्मरणीय है कि युधिष्ठिर को धर्म के देवता यमराज का पुत्र माना गया है और इसीलिए उनकी एक संज्ञा 'धर्मराज' भी है। पुत्र-स्नेह के कारण ही यमराज ने कुत्ते के रूप में युधिष्ठिर का पथ-प्रदर्शन किया। इस तरह जब इस अभिक्रमण के अन्त में युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए स्वयं इन्द्र देवता उपस्थित हुए और वे कुत्ते को यहीं छोड़ कर स्वर्गारोहण करने का आग्रह करने लगे, तब युधिष्ठिर ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कृतज्ञ भाव से उनसे निवेदन किया कि 'जो प्राणी इस अगम्य मार्ग पर संकटों के बीच उनको मार्ग-दर्शन कराता हुआ सुरक्षित रूप से यहाँ तक ले आया है, उसे यहीं छोड़ कर स्वर्गारोहण करना वे किसी प्रकार भी उचित नहीं समझ सकते।' उनकी यह उक्ति सुन कर देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके पथप्रदर्शक कुत्ते ने तत्क्षण अपने को 'यमराज' के रूप में प्रकट कर दिया। इस प्रकार स्वयं यमराज को अपने सामने पाकर युधिष्ठिर ने अत्यन्त भक्तिभाव से उनका नमन किया। यमराज ने भी युधिष्ठिर को पुलकित होकर अभिनन्दित किया। इस प्रकार परीक्षोत्तीर्ण युधिष्ठिर ने अपने पिता यमराज तथा देवाधिपति इन्द्र के साथ सदेह स्वर्ग के लिए प्रयाण किया।

आद्य शंकराचार्य यहाँ १२०० वर्ष पहले आए थे। उन्होंने देश के चारों कोनों पर चार मठ स्थापित किये। साधुओं और ब्रह्मचारियों के लिए उन्होंने उस समय जो व्यवस्था बनाई थी, वह आज तक कायम है। पुरी, भारती, तीर्थ एवं सरस्वती आदि सब नाम उन्हीं के दिए हुए हैं। वे पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथ पुरी, उत्तर में केदार-बदरी-जोशीमठ और दक्षिण में कांची तक तो गए ही, बनिहाल की ८५०० फुट की ऊँचाई को पार करके श्रीनगर में जाकर शारदा पीठ की भी स्थापना उन्होंने की।

जब गौतम बुद्ध के उपदेशों को भूल कर लोग राजमद में पागल हो रहे थे, तब राज्यशक्ति और श्रमणशक्ति की बिना परवाह किए शंकराचार्य ने वैदिक धर्म का प्रचार किया था। हठयोगी मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य गोरखनाथ की भी यही साधना भूमि रही है। वैसे १६०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा देवात्मा हिमालय कश्मीर से नेफा तक उत्तर भारत में प्रहरी की तरह खड़ा है; परन्तु जिसको देवभूमि कहते हैं, वह यह उत्तराखण्ड ही है। कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रारम्भ में इसी के बारे में कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥

—अर्थात पूर्व पश्चिम समुद्रों में एक साथ स्नान करने वाला (सिन्धु और ब्रह्मपुत्र में) हिमालय नामक पर्वतराज देवात्मा इस भूमण्डल को नापने वाले मानदण्ड की तरह उत्तर दिशा में खड़ा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरिद्वार और कनखल

उत्तराखण्ड के किसी भी तीर्थ की यात्रा हो, हरिद्वार में हरकी पौड़ी में स्नानपूजन करके ही यात्रा शुरू की जाती है। हरिद्वार बहुत बार आ चुका था। इस बार दक्ष-यज्ञ-स्थल कनखल के पास बस्तीराम की पाठशाला में ठहरा। यह जान कर खुशी हुई कि इसी स्थान पर कुछ दिनों तक स्वामी दयानन्द भी रहे थे। हरिद्वार और कनखल के बीच में गंगा किनारे विभिन्न पंथों के साधुओं के बड़े-बड़े आश्रम हैं, जहाँ यात्रियों के रहने की व्यवस्था है। किसी-किसी में भोजन भी मिलता है।

राजा दक्ष हिमालय के ही किसी खण्ड के निवासी थे; परन्तु जनसाधारण की सुविधा के लिए उन्होंने यज्ञ के लिए कनखल को चुना। सब देवताओं को बुलाया गया, परन्तु महादेव शिवजी को जान-बूझ कर निमन्त्रण नहीं भेजा गया। दक्ष-पुत्री सती को कैलास में इस यज्ञ की सूचना मिली। पति की मनाही के बावजूद वह कनखल आकर यज्ञोत्सव में शामिल हुईं। देखा पिता द्वारा अनुपस्थित शिवजी का बार-बार अपमान किया जा रहा है। अपशब्द भी कहे जा रहे हैं। वह दुःख, ग्लानि और पश्चात्ताप को नहीं सह सकीं। फलतः यज्ञकुण्ड की प्रज्ज्वलित आग में कूद कर भस्म हो गईं। फिर जिस प्रकार शिवजी के गणों ने यज्ञ-विध्वंस करके दक्ष का वध किया, उसकी कथा कनखल के साथ जुड़ी हुई है। सती के बलिदान की बात सुन कर शिवजी यहाँ आए। वे सती के शव को कंधे पर लेकर भारत के बहुत से हिस्सों में पागलों की तरह घूमते रहे, कनखल से लेकर सुदूरपूर्व कामरूप और नेपाल के काठमाण्डू तक। वह स्थान देखा, जहाँ सती माता भस्म हुई थीं। गंगा-किनारे उस पवित्र हवनकुण्ड को देख कर मन में सिहरन हो आती है। कुण्ड में से भस्म लेकर माथे में लगाई। कनखल से दो मील पर महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल कांगड़ी है। स्वामी श्रद्धानंद और स्वामी दर्शनानंद के ये अमर स्मारक हैं। दोनों ही संस्थाओं ने देश को बड़े-बड़े विद्वान दिए हैं।

रुद्र प्रयाग और गुप्त काशी

कनखल से मोटर-बस द्वारा ऋषिकेश होता हुआ १०४ मील पर रुद्रप्रयाग आगया। दूसरे दिन सुबह रुद्र प्रयाग से २६ मील चल कर गुप्तकाशी दोपहर के पहले ही पहुँच गया। रास्ते में बहुत वर्षा हो रही थी, कहीं-कहीं पानी के जोर से पहाड़ से पत्थर नीचे गिर रहे थे। आषाढ़-श्रावण में यह यात्रा नहीं करनी चाहिए। वैशाख-ज्येष्ठ में यात्रियों की बहुत भीड़ रहती है, इसलिए साधन-सम्पन्न लोगों को आश्विन-कार्तिक में आना चाहिए। उस समय रहने की जगह भी पर्याप्त मिलेगी और प्राकृतिक दृश्य भी ज्यादा लुभावने होंगे।

गुप्तकाशी की ऊँचाई ४५०० फुट है। यहाँ पर विश्वनाथ का बड़ा मन्दिर है। मन्दिर के पास में ही दो झरने मणिकर्णिका नाम के कुण्ड में गिरते हैं। इनमें स्नान करके दर्शन करने की प्रथा है। गुप्तकाशी से गौरीकुण्ड जाते हुए रास्ते से थोड़ा हट कर ६००० फुट ऊँचे पहाड़ पर त्रियुगी नारायण का मन्दिर है। यहाँ शिव-पार्वती का विवाह हुआ था। विवाह कुण्ड की अग्नि आज तक प्रज्ज्वलित है। यहाँ आने वाले यात्री अग्निकुण्ड में घी-लकड़ी या हवन-सामग्री अवश्य डालते हैं।

गुप्तकाशी से ८ मील आगे सोन-प्रयाग तक बस जाती है। उसके बाद १० मील पैदल जाना पड़ता है। रास्ते में गौरीकुण्ड नाम का प्रसिद्ध तीर्थ पड़ता है। यहाँ शिव-पार्वती का मन्दिर है। कहते हैं, यहाँ पार्वतीजी ने ऋतु-स्नान किया था। यहाँ पर गर्म पानी का कुण्ड है। यात्री थके-हारे आते हैं, इसलिए इस कुण्ड में स्नान करके तन-मन से स्वस्थ हो जाते हैं। गौरी कुण्ड के पहले मुण्ड कटे गणेशजी का मन्दिर है।

कहते हैं पार्वतीजी स्नान करने गईं। उन्होंने गणेशजी को द्वार पर बैठा दिया और कहा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि किसी को भीतर न आने देना। संयोग से शिवजी अपने गणों सहित इसी बीच आगए। गणेशजी ने उन्हें रोका। दोनों में युद्ध हुआ। शिवजी ने त्रिशूल से बालक गणेश का सिर काट लिया। पार्वतीजी की नाराजगी दूर करने के लिए देवता लोग उत्तर दिशा में गए। उन्हें एकदन्त हाथी मिला; उसका सिर काट कर उन्होंने बालक के धड़ पर लगा दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव बालक से बोले कि 'हमसे भी पहले तुम्हारी पूजा होगी और आज से तुम्हारा नाम श्रीगणेश होगा।'

केदारनाथ का दुर्गम पथ

यहाँ से केदारनाथ केवल ८ मील रह जाता है; परन्तु चढ़ाई ५२५० फुट की है। उत्तराखण्ड के अन्य तीर्थों पर इतनी सीधी चढ़ाई और कहीं नहीं। इस ८ मील में चीरवास, भैरव और रामबाड़ा चट्टी हैं। वैसे यहाँ बड़े तीर्थ नहीं हैं, परन्तु यात्री इतने थक जाते हैं कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर ठहरने का बहाना ढूँढ़ते रहते हैं। इसीलिए भैरव को केदारनाथ भगवान का द्वारपाल मान कर पूजा करते हैं और चीर चढ़ाते हैं।

मुझे उत्तराखण्ड के चारों तीर्थों के सिवाय वैष्णवदेवी और अमरनाथ भी जाने का मौका मिला; परन्तु जो दृश्य रामबाड़ा से आगे केदारनाथ के रास्ते में मिलते हैं, उनकी तुलना केवल अमरनाथ के रास्ते में शेषनाग से या गंगोत्तरी अंचल से ही की जा सकती है।

बहुत बार यात्री थक कर बैठ जाता है, मन में झुंझलाता है कि क्यों इस महाप्रस्थानके पथ पर आगया। परन्तु थोड़ी देर बाद ही उसे झुकी कमर की लाठी टेकती हुई, धीरे-धीरे चलती कोई वृद्धा दिखाई देती है। उससे प्रेरित होकर हिम्मत करके वह भी आगे बढ़ता है। चारों तरफ बर्फ के पहाड़, कहीं-कहीं रास्ते में बर्फ—न वृक्ष हैं, न हरियाली। साथी यात्री हिम्मत बँधाते हैं, अब तो आगए भगवान शिव के धाम में। इसी पहाड़ के पीछे तो हैं। पर वह पहाड़ तो जैसे आगे ही आगे सरकता जाता है।

गलती से भादों में आगया। टिपटिप वर्षा हो रही है; ठंड से शरीर सिहर उठता है। छप्पर, पड़ाव या चट्टी कहीं भी दिखाई नहीं देती। न कोई वृक्ष ही है, जिसके नीचे खड़ा होकर सुस्ता लिया जाय। छाता खोल कर चलने में डर लगता है—कभी-कभी तेज हवा भर जाने से वह कुछ दूर तक घसीट ले जा सकता है। इस 'कुछ दूर' का अर्थ पहाड़ का गर्त्त भी होसकता है, जिसमे गिरने के बाद सब समाप्त। फिर भी यात्री मन ही मन 'अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफला क्रिया' जपते हुए केदारनाथ से वापस आते हैं।

यद्यपि गौरीकुण्ड से केदारनाथ तक सीधी चढ़ाई है, परन्तु इन पहाड़ों की चढ़ाई में ख़तरा नहीं है, धीरे-धीरे सरकते हुए ऊपर चढ़ना पड़ता है। मन में एक प्रकार का उत्साह ही रहता है। परन्तु वापस आते समय उतराई में घुटनों पर बहुत जोर पड़ता है। अगर लाठी मजबूती से नहीं पकड़ी तो संकट की आशंका है; क्योंकि पीछे से धक्का-सा लगता है और मनुष्य संतुलन खो देता है।

पता चला है कि इस उतराई में भी बहुत बार दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। ठोकर लग कर कभी पैर तले का पत्थर नीचे सरक जाता है, कभी दौड़ते हुए-से यात्री का डग चूका कि नीचे खड्ड में लुढ़का! मगर तीर्थ यात्रा के पथ जितने ही कठिन होते हैं, उतने ही वह मनुष्य के साहस और पराक्रम को अधिकाधिक आकर्षित करते हैं।

अद्भुत आनन्द

यद्यपि यह पैदल रास्ता केवल ८ मील का है, परन्तु इससे जो उपलब्धि होती है, वह पहले के १५० मील में नहीं। जब कभी बस या कार से यात्रा की, न ऊपर से गिरते रुपहले प्रपात देख सका, न पाताल के समान दिल दहलाने वाले गर्त्त। रास्ते के बहुत से तीर्थ और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन्दिर, जिनके साथ अनेक प्रकार की कथाएँ जुड़ी हुई हैं, बिना देखे ही रह जाते हैं। कहते हैं, पैदल यात्रा में पूरा पुण्य मिलता है, जबकि आदमी के कन्धे पर यात्रा करने वाले को आधा। जो मोटर या बस में बैठ कर जाते हैं, उनका पुण्य नहीं के बराबर समझना चाहिए।

यह भी किंवदन्ती है कि हिमालय के इन तीर्थों में एक प्रकार का आकर्षण होता है, जिससे मनुष्य की बार-बार यहाँ आने की इच्छा बनी रहती है। मेरे मित्र गंगाशरण सिन्हा २५ या २७ बार आ चुके हैं। १० या १२ बार तो बहुत से लोग आए हैं।

मैंने उत्तरी ध्रुवांचल में बारहों महीने बर्फ से ढके किरुना और नारविक गाँव देखे हैं, परन्तु जो आनन्द अमरनाथ के रास्ते पर शेषनाग में या गंगोत्तरी में या केदारनाथ में आया, वह स्वीडन और नार्वे के सब तरह की सुविधाओं से पूर्ण उन स्थानों में नहीं आया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शेषनाग-पंचतरणी-अमरनाथ

काश्मीर के बारे में अनेक वर्षों से सुनता आरहा था; परन्तु संयोग से वहां जा नहीं पाया। सन् १९६० में जब स्विटजरलैण्ड जाकर आया और वहाँ के इण्टरलाकन और जंग्फ्राऊ की सुन्दरता के बारे में लिखा, तो मित्रों ने कहा कि "तुम काश्मीर देखकर आओ और फिर तुलना करो कि विश्व का 'नन्दन कानन' कहाँ है ?

इसके बाद तो कई बार काश्मीर हो आया। श्रीनगर की घाटी और यहाँ के पहाड़ों में एक प्रकार का आकर्षण है, जो बारम्बार यात्रियों को बुला लेता है। शायद इसीलिए बादशाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ अनेक कष्ट सह कर यहाँ बहुत बार आते रहते थे। उनके लगाए बाग-बगीचे अभी तक श्रीनगर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

काश्मीर पर अलग लिखूँगा ! यहाँ तो मैं परम पुनीत प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ पर लिखना चाहता हूँ।

सन् १९६५ की बात है—संसद का सत्र समाप्त हो गया था; दिल्ली में भयानक गर्मी थी। मैंने अचानक श्रीनगर जाने का प्रोग्राम बना लिया। वहाँ मेरे मित्र ईश्वरदासजी जालान (मंत्री-पश्चिम बंगाल) मिल गए। जुलाई का महीना था; अमरनाथ की यात्रा शुरू हो गई थी। मैंने उन्हें वहाँ चलने का सुझाव दिया; वे राजी हो गये; परन्तु काश्मीर सरकार ने मनाही कर दी, क्योंकि जोरों की वर्षा हो रही थी और पहाड़ धसकने का डर था।

मैंने जालानजी से छुट्टी ली और यात्रा के लिए रवाना हो गया। सोचा कि "होइहै वही जो राम रचि राखा, और भी तो इतने लोग जा रहे हैं, फिर तुम्हें ही यह डर क्यों है ?"

पहलगाँव तक ५९ मील बस से आया, रास्ते में अनन्तनाग और मट्टन (मार्तण्ड) नाम के सुन्दर ऐतिहासिक स्थान पड़ते हैं। यहाँ बसें थोड़ी देर ठहर कर यात्रियों को पुराने मन्दिर देखने का मौका देती हैं।

पहलगाँव में मध्य प्रदेश के मंत्री डा० शंकरदयालुजी शर्मा का साथ हो गया। अब वे केन्द्र में मंत्री हैं। वे काश्मीर सरकार के चेतावनी के बावजूद यात्रा पर चले आए थे।

चन्दनवाड़ी तक हम जीप से आए। यह अमरनाथ यात्रा का पहला पड़ाव है। ९५०० फ़ीट की ऊँचाई पर यह छोटा सा गाँव है। १०-५ चाय नाश्ते की दुकानें, दो-तीन ढाबे, यात्रियों के ठहरने के लिए १०-५ कोठरियाँ यहाँ हैं। शर्माजी जाते समय पैदल यात्रा करना चाहते थे; परन्तु मैंने एक घोड़ा ले लिया, ४-५ दूसरे यात्री भी घोड़ों पर जा रहे थे। ऐसी बीहड़ और खतरनाक यात्रा में लोग आपस में जान-पहचान कर लेते हैं और एक दूसरे की सहायता करते रहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चन्दनवाड़ी में पहली बार ठोस बर्फ का प्राकृतिक पुल देखा। इसमें मनुष्यों और मशीनों द्वारा मरम्मत किये जाने की जरूरत नहीं है, न मेहराब हैं और न खम्भे ही। नीचे नील गंगा उफनती हुई बह रही थी। हम पत्थर की तरह की ठोस बर्फ के पुल पर घोड़ों पर या पैदल जारहे थे।

वैसे पहलगाँव की लीदर नदी का पानी भी नीली आभा लिए हुआ-सा है; परन्तु यहाँ तो ऐसा लगता है जैसे नदी में किसीने गहरा नीला रंग घोल दिया है। इसके बारे में एक कथा है; वह यह कि 'एक बार भगवान शंकर और पार्वती आँखमिचौनी खेल रहे थे; संयोग से शंकरजी का मुँह पार्वतीजी के नेत्रों से छू गया। काला अंजन सारे मुँह पर लग गया। उन्होंने इस नदी में अपने मुँह को धोया। तब से इसका पानी नीला हो गया।' इस जल में आचमन का और नील गंगा में स्नान का बहुत महात्म्य है। चन्दनवाड़ी से दूर जाने पर इस यात्रा का सबसे कठिन मार्ग पिस्सू घाटी है। एक मील में २२०० फीट की चढ़ाई है। कहा जाता है कि 'एक बार बहुत से देवता और राक्षस भगवान शंकर के दर्शनों के लिए अमरनाथ जा रहे थे। पहले कौन चढ़े—इस बात को लेकर उनमें झगड़ा होगया और देवताओं ने राक्षसों को पीस कर उनका चूरा कर दिया। उनकी हड्डियों का यह ढेर है और तब से इनका नाम पिस्सू घाटी पड़ गया।'

यहाँ हमें सैकड़ों लम्बे बालों वाली भेड़-बकरियाँ मिलीं। चींटी की तरह रेंगती वे ऊपर चढ़ रही थीं। साथ में दो-तीन कुत्ते और गुज्जर स्त्री-पुरुष थे। पूछने पर पता चला कि जहाँ भी मैदानों में या पहाड़ों पर घास उपलब्ध होती है, अपने ढोरों को चढ़ाई के लिए वे ले जाते हैं। तम्बुओं में रहते हैं। मनुष्य को जीवन-यापन के लिए कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं, यह इन्हें देखकर पता चलता है।

थोड़ी दूर तक तो शर्माजी लाठी टेकते हुए साथ-साथ चलते रहे, परन्तु अभ्यस्त टट्टुओं के मुकाबले में इस कड़ी चढ़ाई में वे थक गए और पीछे छूट गए। सँकरा-सा टेढ़ा मेढा रास्ता, थोड़ा-सा पैर चूका और गर्त में गिर कर सब समाप्त! घाटी पार कर जब शिखर पर आए, सब लोग 'जय अमरनाथ' का घोष करने लगे। वहाँ करीब आधा घंटा ठहरे। इतने में शर्माजी तथा अन्य पैदल आने वाले यात्री भी पहुँच गए।

पिस्सू टाप से ४ मील पर जाजपाल है। टट्टू थक गए थे, आगे का रास्ता सीधा था; हम पैदल चलने लगे। वैसे सर्दी में पैदल चलना अच्छा भी लगता है।

हम पहाड़ों के बीच की सँकरी पगडंडी से चल रहे थे। बहुत नीचे शेषनाग नदी चाँदी की रेखा-सी नजर आती थी।

कुछ लोग थक कर ज़ाजपाल ठहर जाते हैं, परन्तु हम तीन मील आगे शेषनाग जाकर ठहरे। ११११५० फीट की ऊँचाई पर थोड़ी-सी मिट्टी की कोठरियाँ हैं यहां। कलकत्ते-बम्बई में तो हम ऐसी जगह में रहने की सोच भी नहीं सकते थे, परन्तु यहाँ तो एक-एक कोठरी में ५-७ व्यक्ति साथ-साथ ठहर गए। मिट्टी का टूटा हुआ-सा फर्श था; उस पर बिस्तरा लगा कर सुस्ताने लगे।

भूख जोरों से लग आई थी; यात्रा के दिनों में यहाँ कुछ दूकानें लग जाती हैं। भोजन करके झील के किनारे बैठ गए।

१२,००० फीट की ऊँचाई पर यह झील स्विट्जरलैण्ड के जिनेवा और ज्यूरिख की झीलों से कहीं ज्यादा सुन्दर है। उस पार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम की बर्फानी चोटियों को और आकाश के तारों को झील के स्वच्छ पानी में देख कर बरबस मुंह से निकल आता है—'जीवन अब सचमुच सफल होगया।' किन्तु यह अजीब बात है कि यहाँ की हवा में साँस लेते ही बेहोशी-सी होने लगती है। ऐसा लगता है वायु में किसी प्रकार का नशीलापन है। सम्भवतः इसी लिए उसमें श्वास लेने में तकलीफ होती है। इसके बारे में भी इस प्रकार की एक पौराणिक कथा है :—

'एक अत्यन्त पराक्रमी राक्षस यहाँ रहता था। भोले शिव ने भंग की तरंग में अपनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुरानी आदत के अनुसार उसे यह वरदान दे दिया कि वह किसी मनुष्य या देवता द्वारा नहीं मारा जा सकेगा। फिर क्या था! उसने निर्भय होकर देवताओं से अपने पुराने वैर का बदला लेना शुरू किया और देवताओं की धर-पटक करने लगा। इस पर त्रस्त होकर वे सब भगवान विष्णु के पास गुहार करते हुए पहुँचे। विष्णु नें बहुत सोच-विचार कर शेषनाग को बुला कर आज्ञा दी कि तुम यहाँ की सारी वायु अपने हजार फणों से भक्षण कर लो। हवा के नहीं रहने से राक्षस घुट-घुट कर मर जायेगा।

पता नहीं इस बात में कितनी सच्चाई है; परन्तु यह बात सही है कि अभी तक यहाँ की हवा में सन्तुलन नहीं है और शीत ऋतु में एक बड़े सर्प के फुङ्कार की सी आवाज होती रहती है। शेषनाग में रात में वर्षा होगई थी, इसलिए काफी सर्दी थी; सन-सन करती हवा चल रही थी। तीन ऊनी कम्बल ओढ़ने के बावजूद हमें ठंड लग रही थी। दूसरे दिन हमें ९ मील चल कर पंचतरणी पहुँचना था। सुबह ८ बजे नाश्ता करके "जय अमरनाथ बाबा की" घोष करते हुए हम आगे बढ़े। पहली चार मील की यात्रा में ३००० फीट की कड़ी चढ़ाई है। वायुजन और महागुनम तक १४७०० फीट की ऊँचाई तक जाते हैं। पर्वतारोहियों के सिवाय इतनी ऊँचाई पर शायद बहुत कम लोग जा पाते हैं। ऐसा लगता है कि सिर पर मनों बोझ रखा हुआ है। अगर ९ मील पर भगवान अमरनाथ के दर्शनों का लोभ न हो, तो लोग ऐसे बीहड़ और कठिन रास्तों पर आते ही नहीं। चारों तरफ चाँदी-सी बर्फ शायद बारहों महीना गिरती रहती है। कहीं-कहीं घोड़ों के पैर ऊपर तक बर्फ में धँस जाते हैं। ऊपर बैठा यात्री भय से सिहर उठता है; और आतंकित होकर सोचता है कि कहीं वह यहाँ बर्फ में न समा जाए। और वहीं उसकी सदा के लिए समाधि न बन जाए। घोड़े वाले ने बताया कि कभी-कभार पोली बर्फ में टट्टू अन्दर धँस जाते हैं। बड़ी मुश्किल से उन्हें बाहर निकाला जाता है। महागुनम के बाद पंचतरणी तक पाँच मील की ३००० फुट की उतराई है। आज चले तो कुल ९ मील पर इसीमें पाँच घण्टे लग गए। करीब एक बजे पंचतरणी पहुँचे। यह अमरनाथ-यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। कुछ साहसी यात्री सीधे अमरनाथ का दर्शन करके वापस यहाँ आकर ठहरते हैं, परन्तु हम लोगों ने दूसरे दिन जाने का तय रखा। पंचतरणी नदी के किनारे यहाँ दो चार घर हैं, जो ६ महीने बर्फ में दबे रहते हैं। सामने बर्फ के पहाड़ों में ग्लेशियर दिखाई देता है, जिससे यह नदी निकलती है। कहते हैं शिवजी ताण्डव नृत्य करते हुए इधर जा रहे थे। संयोग से उनकी जटा ढीली होगई और उससे निकल कर गंगा यहाँ पाँच धाराओं में बिखर गईं।

रात में यहाँ काफी सर्दी पड़ती है; ऐसे स्थानों पर अलग स्लीपिंग बैग साथ में ले लिया जाये तो सर्दी से बचाव रहता है। यह मोटे गर्म कपड़े का रुई भरा थैला होता है, जिसमें गले तक ढक कर आराम से सोया जा सकता है।

दूसरे दिन ८ बजे चलकर १२७५० फुट की ऊँचाई पर स्थित बहुचर्चित अमरनाथ की गुफा में पहुँच गए। रास्ते में भैरोघाटी नाम का बहुत ही खतरनाक स्थान पड़ता है। यह इतना संकरा है कि केवल एक व्यक्ति ही इस पर से जा सकता है। सावधानी के लिए घोड़ों पर से उतर कर पैदल चलना होता है। कभी-कभार चक्कर आकर नीचे गर्त में गिरने से दुर्घटनाएं होजातीं है।

हिमगंगा में स्नान करने के बाद अमरनाथ के दर्शनों का माहात्म्य है। परन्तु दो-चार श्रद्धालु हिम्मतवर व्यक्ति ही ऐसा कर पाते हैं। अधिकांश तो आचमन करके ही दर्शन-पूजन के लिए जाते हैं।

अमरनाथजी बर्फ-निर्मित गुफा-मन्दिर में विराजते हैं। गुफा की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई लगभग ५० फुट है;—हमारे बम्बई के आधुनिक मकानों के चार तल्लों इतनी ऊँची। गोलाकार मेहराबें हैं। न जाने कितने हजार वर्षों से यह इसी हालत में है न मनुष्य द्वारा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मरम्मत की दरकार और न टूटने का डर। सामने के चबूतरे में बर्फ के बने धवल स्वच्छ अमरनाथजी विराजमान हैं। जुलाई से सितम्बर तक यात्रा रहती है। शिवपिंडी की ऊँचाई घटती-बढ़ती रहती है—१ फुट से ७।। फुट तक। कहते हैं 'पार्वतीजी शिवजी से अमरत्व का रहस्य सुन रही थीं; इसी बीच उन्हें नींद आगई। वहाँ एक कबूतरों का जोड़ा भी था; उन्होंने वह कथा सुनली, फलतः वे अमर होकर यहाँ रहने लगे।' शुरू में तो मुझे वे कबूतर नहीं दिखाई दिये, परन्तु पीछे एक साथी ने बताया कि एक कोने में बैठे हुए वे गुटरगूं कर रहे थे। पता नहीं, ये शिव-पार्वती वाले कबूतर ही थे या दूसरे। परन्तु यह तथ्य है कि वे वहाँ मिलते जरूर हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी इस पवित्र स्थान पर जब दर्शनों के लिए आए तो वे भाव-विभोर होगए। उन्हें आभास हुआ कि साक्षात् शिव उन्हें वरदान देने के लिए उपस्थित हैं। उन्होंने लिखा है—"लिंग स्वयं ईश्वर है, यहाँ की हर वस्तु पूजनीय है; मैंने जीवन में ऐसा आनन्द-दायक पवित्र स्थान कहीं नहीं देखा।" भारतीय के सिवाय बहुत से विदेशी अन्य धर्मीय यात्री भी इस ईश्वरीय चमत्कार को देखने आते हैं। जम्मू-काश्मीर सरकार की तरफ से श्रावणी पूर्णिमा की यात्रा की व्यवस्था रहती है। उस समय हजारों यात्री भगवान अमरनाथ के दर्शन करते हैं।

दर्शन करके यात्री अपने जीवन को धन्य मानते हैं और वे वहाँ फिर आने का निश्चय करके लौटते हैं। परन्तु उनमें से जा कितने पाते हैं ?

जाते समय पूरे ढाई दिन लगे; परन्तु आती बार तो पैदल और सवार सब-दौड़ते-से चलते हैं और रात्रि में १६ मील चल कर शेषनाग जाकर ठहरते हैं।

दूसरे दिन चन्दनबाड़ी होते हुए वापस पहलगाँव आए। वहाँ का वही व्यस्त जीवन—बड़े-बड़े होटल-मोटल, तम्बू, क्लब और दूकानें! अगर अमरनाथ जैसा रमणीक स्थान विश्व के किसी उन्नत देश में होता तो शायद ही वहाँ का कोई व्यक्ति इसे बिना देखे रहता। इसके साथ ही वह विदेशों में नाना तरह का आकर्षक प्रचार करके वहाँ से भी लाखों यात्रियों को भगवान शिव के इस प्रतीक मन्दिर प्रकृति के इस मनोरम विचित्र दृश्य-चित्र को देखने के लिए खींच लाता।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजगिर

'रमणीक है राजगृह, रमणीक है गृद्धकूट, रम्य है सप्तपर्णि गुफा, रमणीक है आम्रवन और रम्य है मृगवन।'

जिस युग पुरुष ने ८५ वर्ष के जीवन में किसीकी निन्दा-स्तुति नहीं की, उन्हीं भगवान बुद्ध ने एक दिन आत्मविभोर होकर राजगिर के बारे में यह कहा था। उन्हें इस स्थान से बहुत प्यार था और वे लम्बे समय तक यहाँ के गृद्धकूट पर्वत पर तपस्या करते रहे थे।

विहार की पवित्र भूमि पर कई एक ऐसे स्थान हैं, जो जैन और हिन्दू दोनों धर्मावलम्बियों के तीर्थ हैं, परन्तु राजगिर तो जैन, बौद्ध और हिन्दू तीनों धर्मों की त्रिवेणी है।

महाभारत के प्रसिद्ध सम्राट जरासंध की यह राजधानी थी। भीम और अर्जुन के साथ भगवान् कृष्ण यहाँ चालीस दिन रहे थे। यहीं पर भीम और जरासन्ध का गदा-युद्ध हुआ था, जिसमें जरासंध मारा गया था। भगवान बुद्ध और जैनियों के २४ वें तीर्थङ्कर महावीर की यह तपस्थली रही है।

प्राचीन समय में राजगिर का नाम वसुमति, बार्हद्रथपुर, गिरिव्रज और राजगृह था। रामायण में उल्लेख है कि इसकी स्थापना ब्रह्मा के बेटे वसु ने की थी, इसलिए इसका नाम वसुमति हुआ।

महाभारत-काल के कुछ पहले राजा ब्रहद्रथ ने इसे राजधानी बना कर इसका नाम रखा बार्हद्रथपुर। इसी वंश में प्रतापी सम्राट जरासंध था।

चारों ओर पहाड़ों से घिरा हुआ होने के कारण बौद्ध-काल के पहले इसका नाम हुआ गिरिव्रज। पाँचवीं, चौथी-शताब्दी पूर्व मगध के सम्राटों की राजधानी होने से नाम होगया राजगृह। जरासंध मथुरा के राजा कंस का श्वशुर था। जब कृष्ण ने कंस को मार दिया, तब एक बड़ी फ़ौज लेकर इसने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि मागधी फौजों के मुकाबले में सैनिक बल में यादव बहुत कमजोर थे, परन्तु कृष्ण-बलराम के नेतृत्व में वे जी-जान से लड़े और बार-बार जरासंध को हार कर वापस लौट जाना पड़ा। पर प्रबल शत्रु की लगातार की चढ़ाइयों से तंग आकर सुरक्षा की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए यादवगण मथुरा से राजधानी हटा कर सुदूर पश्चिम द्वारका ले गये। इसी लिए कृष्ण का एक नाम 'रणछोड़' भी है। सिवाय काशी-मथुरा के दूसरे किसी शहर का इतना पुराना इतिहास नहीं मिलता।

२५०० वर्ष पहले यह मगध की राजधानी थी और विम्बसार यहाँ का राजा था। उसके पुत्र अजातशत्रु ने पिता को कैद करके मरवा डाला। जिस जेलखाने में उसको रखा गया था, वह आज भी टूटी-फूटी हालत में है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्राट अजातशत्रु ने बुद्ध की अस्थियों के एक भाग को यहाँ लाकर बड़े उत्सव के साथ एक स्तूप के रूप में स्थापित किया था । जैन धर्म के बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत की जन्मभूमि राजगिर है । चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने तो चौदह चातुर्मास राजगिर में किए थे । २५०० वर्षों के लम्बे समय तक यह पूर्व भारत की गौरवशाली राजधानी रही ।

अजातशत्रु का पुत्र उदाधि यहाँ से राजधानी हटा कर पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) लेगया । उस समय नौकाओं और जलवाहनों का विकास होगया था, इसलिए गंगा-किनारे होने के कारण वहाँ यातायात की सुविधा थी । आज से १५०० वर्ष पहले जब चीनी यात्री फ़ाहियान भारत आया, तब वह राजगिर गया था । उस समय राजधानी उजड़ चुकी थी, कुछ बुद्ध श्रमणों के संघाराम वहाँ थे । उसके दो सौ वर्ष बाद ह्वेनसांग आया । उस समय संघाराम भी समाप्त होकर खण्डहरों के रूप में पड़े थे ।

राजगिर तो फिर नहीं बस पाया, परन्तु इसके पड़ोस में ही नालन्दा गाँव में ६वीं शताब्दी में एक विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ, जहाँ हजारों छात्र और शिक्षक रहते थे ।

वहाँ के छात्रों के और शिक्षकों के निवास-भवन, शिक्षा-कक्ष और सभा-भवन के भग्नावशेषों को देख कर आश्चर्य होता है कि १२०० वर्ष पहले हमारे यहाँ शिक्षा-पद्धति में कितनी उन्नति हो चुकी थी ।

१६०५ से भारत सरकार ने राजगिर में खुदाई शुरू की । जितनी ऐतिहासिक सामग्री यहाँ मिली, वह अपने आपमें बहुत महत्वपूर्ण है । सिवाय मोहनजोदड़ो (अब पाकिस्तान में) के और कहीं भी इतने पुरातन अवशेष नहीं हैं ।

मैं सन् १६७५ के अगस्त में वहाँ गया था । इसके पहले भी तीन बार जा चुका हूँ । परन्तु इस बार कार पास में रहने से घूमने-फिरने की सुविधा थी ।

पिछले पाँच-सात वर्षों से भारत सरकार ने राजगिर को पर्यटन-केन्द्र बनाने की योजना चालू की है ।

गृद्धकूट पर्वत पर चढ़ने के लिए एक विद्युत-चालित रज्जु मार्ग की व्यवस्था है । आठ आने देकर आराम से चलती हुई कुर्सियों पर बैठ कर ऊपर पहाड़ पर चढ़ा-उतरा जा सकता है; ऊपर का सौन्दर्य तो वर्णनातीत है । ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध की वाणी अब तक वहाँ गूँज रही है ।

जापान में एक पहाड़ी पर बुद्ध-मन्दिर का निर्माण हुआ है, जहाँ हजारों दर्शक रोज जाते हैं; परन्तु उसका इस पवित्र स्थान से मुकाबला ही क्या ? यह तो तथागत की जीवन-घटनाओं और व्याख्यानों का केन्द्र-स्थल रहा है ।

राजगिर नए-पुराने दो हिस्सों में बँटा है, पुराना ५,००० वर्ष से लेकर २५०० वर्ष पहले तक का है, जबकि नया २४०० वर्ष पहले अजातशत्रु ने बसाया था । अब तो दोनों ही खण्डहर होगए हैं और उन पर नया शहर बस गया है ।

पाली टीकाकार बुद्ध घोष ने लिखा है कि राजगृह के दोनों विभागों की जनसंख्या १८ करोड़ है; यह निःसन्देह अत्युक्ति है, फिर भी पुराने नगर के चारों तरफ़ १५ फुट चौड़ी पत्थर की ऊँची दीवार को देख कर ऐसा लगता है कि किसी समय यह बड़ा नगर रहा होगा । अबतक की खुदाई में तीन स्तर (तल्ले) मिलते हैं । समयान्तर में नीचे के स्तर को पाट कर ऊपर मकान बनते गए । पतली ईंटों और मिट्टी का प्रयोग हुआ है । कुएँ तथा पानी जाने की नालियाँ भी हैं । ऐसा लगता है कि ४००० वर्ष पहले मिस्र और सिन्धुघाटी की तरह पूर्वी भारत में भी सभ्यता पनप चुकी थी ।

तप्त कुण्डों की दायीं ओर एक बहुत 'पुराना क्लंद निवाप' नामक सरोवर है, जिसका वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में है ।

पास में ही वैभार पहाड़ी पर एक बहुत बड़ा चबूतरा है, जिसे जरासंध की बैठक कहते हैं ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे दिन हम लोग गर्म कुण्डों में स्नान करके यहाँ के प्रसिद्ध स्थान "मणियार मठ" को देखने गये। १८६१-६२ में ही इस स्थान का पता प्रसिद्ध पुरातत्वविद कनिंघम को लग चुका था। उसने खुदाई शुरू की और जितनी महत्वपूर्ण वस्तुएं यहाँ निकलीं, उनकी तुलना केवल मिस्र के राजाओं की कब्रों में पाई गई वस्तुओं से ही की जा सकती हैं। मठ में लोहे की चादरों का भी उपयोग हुआ है। इससे पता चलता है कि उस समय तक हम लोग लोहे का उपयोग करना सीख गए थे।

यहाँ पर पलँग-लेटी माया की मूर्ति है; साँप लिपटे हुए गणेशजी की तथा छह भुजाओं वाली शिवमूर्ति है। उत्तरकालीन बनी हुई कुछ जैन-मूर्तियाँ भी हैं। अगर इन मूर्तियों में से कुछ को वाशिंगटन, लन्दन या पेरिस के म्युजियमों को बेंच दिया जाय, तो करोड़ों रुपये मिल सकते हैं।

यहीं पास में सोन भंडार की गुफाएँ हैं। इनका निर्माणकाल १७००-१८०० वर्ष पूर्व का है; इसमें जैन साधु रहते थे। थोड़ा ऊपर जाकर जरासंध का अखाड़ा है, इसकी मिट्टी चिकनी और सफेद है। यहीं भीम के साथ जरासंन्ध का २८ दिनों तक मल्ल-युद्ध हुआ था। दूसरों की तरह हमने भी बल-संचार के लिए मिट्टी को लेकर शरीर पर मला।

इन सबके सिवाय यहाँ शंखलिपि, अजातशत्रु स्तूप, बलराम मन्दिर, विभिन्न समय के जैन मन्दिर, आम्रवन और मर्दकुक्षि आदि इतनी पुरानी वस्तुएं देखने की हैं, जिनके लिए कम से कम दो-चार दिनों का समय चाहिए।

अप्रैल से जुलाई तक चार महीनों को छोड़ कर बाकी आठ महीनों में राजगिर में यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। रहने के लिए साधारण होटलों में और निजी मकानों के सिवाय चार बड़ी-बड़ी जैन और बौद्ध धर्मशालाएं हैं। अब तो १२ कमरों का सुसज्जित पर्यटन विभाग का अतिथिगृह बन गया है। दोहरे कमरे का चार्ज केवल ५) रुपये प्रतिदिन—वहीं भोजन-चाय-नाश्ते की व्यवस्था है। चार्ज भी बहुत कम। हमलोग यहीं पर ठहरे थे।

फ्रांस में विशी नाम का एक देहाती गांव है। वहां राजगिर की तरह का ही स्वास्थ्यप्रद पानी निकला। फ्रांस की सरकार ने विश्व भर में उस पानी का विज्ञापन करके करोड़ों रुपये वर्ष की आय कर ली। हमारे भारतीय धनी भी पेट की बीमारी के लिए प्रति बोतल पांच-छह रुपए देकर विशी वाटर खरीद कर पीते हैं।

राजगिर का पानी चर्म और पेट के रोगों के लिए हर दृष्टि से 'विशी', आस्ट्रिया और जर्मनी के चश्मों से ज्यादा स्वास्थ्यकर है; परन्तु राजगिर उपेक्षित-सा है, जब कि उन जगहों में बहुत से होटल-मोटल, क्लब और रेस्तरां खुल गए हैं। लाखों विदेशी यात्री प्रति वर्ष जाकर रहते हैं; यहाँ तक कि कुछ भारतीय पर्यटक या बीमार भी जाते हैं।

हमारे यहाँ कहावत है :—"घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गांधीजी का स्वराज्य

गांधीजी ने स्वराज्य मिलने के कुछ ही दिनों पहले कहा था कि अगर स्वराज्य मिल गया तो राष्ट्रपति भवन और राज्यपाल भवन अस्पताल, गरीब विद्यार्थियों के लिए आवासगृह तथा स्कूल व कालिजों के काम में लाये जायेगे। राष्ट्रपति और राज़्यपाल साधारण भवनों में रहेंगे।

हमे स्वराज्य मिले २० वर्ष हो गये लेकिन वे सब बड़े-बड़े प्रासाद आज भी उसी प्रकार हैं बल्कि उनपर होनेवाला खर्च पहले के अनुपात में दुगुना-तिगुना हो गया है। इस समय राष्ट्रपति भवन का कुल खर्च ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष है और राज्यपालों के आवास का औसत खर्च प्रतिवर्ष १ करोड़ रुपये है। इनके बारे में कुछ चर्चा होती है तो यह कहकर टाल दिया जाता है कि विदेशों के विशिष्ट अतिथियों को ठहराने के लिए इन बड़े-बड़े भवनों की आवश्यकता है।

भारत से बहुत अधिक सम्पन्न देशों में भी अतिथियों के लिए इस प्रकार के महलों की व्यवस्था नहीं है। हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री नेहरू जब इंग्लैंड जाते थे तो उन्हें वहाँ के किसी प्रसिद्ध होटल में ठहरा दिया जाता था। मैं जब सन् १९६० में मास्को में था.उस समय मैंने यह देखा कि केन्द्रीय मन्त्री श्री पाटिल को मास्को के एक होटल में ही ठहराया गया था।

हम राष्ट्रपति और राज्यपालों की बात छोड़ भी दें तो हमारे केन्द्र और राज्यों के मन्त्री, राज्य मन्त्री, उप-मन्त्री और संसदीय सचिव, जिनकी संख्या ३५० के करीब है, इन सब पर भी करदाताओं की एक बहुत बड़ी रकम प्रति वर्ष खर्च होती है। इनके दफ्तरों का काम प्राय: सचिव या अफसर देखते हैं, क्योंकि इन सबको तो विभिन्न प्रकार के जलसों और उद्घाटनों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती ज़ो ये कार्यालय के कामों में समय दे सकें। यहाँ तक की कई बार मन्त्री महोदय किसी पेट्रोल पम्प या बीड़ी के कारखानों का उद्घाटनकरने के लिए भी चले जाते हैं। इन दौरों के लिए मोटरों और अफसरों का खर्च तो सरकारी है ही, इसके अलावा डी० ए० और टी० ए० के रूप में भत्ता अलग से बनता है।

मेरी जान-पहचान के एक मित्र हैं, जिनके घर की स्थिति शुरू में बहुत ही साधारण थी। मित्रों की सहायता और छात्रवृत्ति से वह किसी प्रकार पढ़-लिख कर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में काम करने लगे। सन् १९५७ में उन्हें विधान सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र से वह चुन लिए गए। नए मन्त्रि-मंडल में उनको भी लिया गया। मैंने उनको बधाई का तार भेजा। उसके बदले में धन्यवाद ज्ञापनका जो उनका पत्र आया, उसमें मुझे थोड़ा सा अहंभाव लिए हुए कुछ औपचारिकता-सी लगी, लेकिन उस समय मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुछ दिनों बाद जब मैं राजधानी गया तो उनके बँगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको में बड़ी सी-मोटर। अर्दली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही हैं। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइंगरूम में प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाँच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

पुराना परिचय : नया रंग

ड्राइङ्गरूम का फरनीचर ऊँचे दर्जे का था। नीचे कीमती गलीचा बिछा था। कमरे में गांधीजी नेहरूजी की तसवीरें टँगी थीं, तीन-चार अपने अपने स्वागत-समारोहों की भी।

ड्राइङ्गरूम में बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि आखिर पिछले तीन महीनों में ऐसी कौनसी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन-सहन में इतना फर्क आ गया।

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वह भीतर से आए। कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होंने पूछा। मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातों में पुराने परिचय का अभाव और बड़प्पन का आभास है। हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहाँ बैठे थे, इसलिए उनके सामने उन्होंने इस ढंग से बात कहना जरूरी समझा हो।

थोड़े दिनों बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आए। उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आए हुए हैं और मुझे मिलने के लिए बुलाया है। मैं खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता। लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नहीं और मैंने नम्रतापूर्वक टाल दिया। इसके पहले उनके पहुँचने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि ये सूचनाएँ दूसरे कई लोगों को भी दी गई थीं।

कुछ दिनों बाद मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वह कह रहे थे कि आप कलकत्ता में न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आए और न उनसे मिले ही, इसलिए वह आप से कुछ नाराज हैं।

जब नया मन्त्रिमण्डल बना तो उसमें वह नहीं लिए गए। उसके बाद, जैसा कि आमतौर से लोग करते हैं, उन्होंने भी एक खादी की संस्था और सहकारी समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे।

एक दिन अचानक ही वह मुझे दिल्ली स्टेशन पर मिल गए। छोटा-सा बिस्तर उनकी बगल में था और थर्ड क्लास में जगह खोज रहे थे। वैसे मन्त्री बनने के पहले भी वह थर्ड क्लास में ही यात्रा करते थे, पर उसबार मुझे देखकर वह बहुत झेंप गए।

तीन वर्ष : तीन रूप

कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने तीन वर्षों में एक मनुष्य के तीन रूप देखे। पहला—खादी की ऊँची धोती, बिना इस्तिरी किए हुए कपड़े, अभावग्रस्त परिवार, लेकिन हर प्रकार के सेवा कार्य करने के लिए तैयार। दूसरा—बगुले के पंख से सफेद कपड़े, सजा हुआ ताप नियन्त्रित बंगला, बड़ी कार और तौर तरीकों में अभिमान की स्पष्ट झलक। अब तीसरा रूप था—बिगड़ी हुई आदतों के कारण बढ़े हुए खर्चे की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी संस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमें भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन सहन, पर अब झेंप के साथ। इनमें से कुछ अपवादस्वरूप उदाहरण भी हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत ही कम है।

मैं एक दिन स्टेट ट्रेडिंग के गैरिज में गया, जहाँ विदेशी दूतावास की मोटरें बिकतीं हैं। बहुत ही सुन्दर और बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ थीं। इम्पाला, कैडिलेक, मर्सीडीज और एक-दो रोल्स भी। जो सबसे कीमती और अच्छी गाड़ियाँ थीं, वे पहले ही से मन्त्रियों तथा उपमन्त्रियों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिए सुरक्षित हो गयी थीं और बाकी के टेण्डर लिए गए थे जो ५० हजार से १ लाख रुपए तक के थे ।

मारवाड़ी समाज की नई-पीढ़ी के सम्बन्ध में मैंने लिखा था कि आज के धनी युवक किस प्रकार विलासिता और बड़ी-बड़ी मोटरों में रुपया बरबाद करते हैं । लेकिन यहाँ आने पर मैं सोचने लगा कि वे तो सब वैसे वातावरण में ही पले हैं और बापदादों की कमाई का उनके पास धन है, लेकिन इन नेताओं और मंत्रियों में से तो बहुत से गांधीजी और सरदार पटेल के साथ रहे हैं, कई बार जेल भी गए हैं और अर्थ-सङ्कट के दिनों में कभी-कभी भूखे भी रहे हैं । फिर इन सबके मन में यह भोगलिप्सा कहाँ छिपी पड़ी थी ।

हमारा देश गरीब है । इसमें दो मत नहीं है । आए दिन हमें विदेशों से अन्न या दूसरी आवश्यक वस्तुएँ उधार या सहायता के रूप में मँगानी पड़ती हैं । इन दिनों में तो हमारी भुखमरी के बारे में विदेशों में बहुत लज्जापूर्ण प्रचार हो रहा है । केरल में अमरीका से भूखे लोगों की तसवीरें लेने के लिए पत्रकार आ रहे हैं । तो हालैण्ड के बच्चे भारत की भूखी जनता के लिए धन इकट्ठा करके भेज रहे हैं । इन्हीं सब बातों का उदाहरण देकर देश के नेता कम खर्च करके बचत करने का उपदेश देते रहते हैं और साथ ही गांधीजी के उपदेशों और सादे जीवन के बारे में भी बताते रहते हैं ।

मैं नम्रतापूर्वक इन नेताओं और उपदेशकों से पूछना चाहता हूँ कि धार्मिक या सामाजिक मान्यताएँ तो मनुष्य को नाममात्र के लिए समान रूप से लागू होती हैं फिर इनके लिए बड़े-बड़े बंगले, कीमती मोटरें, इनके बच्चों के लिए देहरादून और मसूरी के इङ्गलिश स्कूल, वर्ष में दो-तीन बार किसी-न-किसी बहाने इनकी विदेश यात्राएँ और इनके आए दिन के समारोह किस प्रकार औचित्यपूर्ण हैं जो इनके दूसरे साथियों के लिए नहीं जिन्होंने इन्हीं की तरह देश की सेवा की थी, जेल भी गए थे, पर वे मन्त्री नहीं बन पाए इसलिए हर प्रकार के अभावों से ग्रस्त हैं । उनके बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा तो दूर की बात है, साधारण स्कूल की फीस भी वे नहीं जुटा पाते ।

मुझे फ्रांस की साम्राज्ञी मेरी अंतोनिता की याद आती है, जिसके बरसाई के महलों में नित्य नए जलसे और नाच-गाने होते रहते थे, पर पेरिस की जनता भूख से मर रही थी । १९४६-४७ के चांगकाई शेक के समय चीन की भी याद आती है, जब वह और उसके मंत्री अमरीका के आए हुए अरबों रुपयों से मौज उड़ा रहे थे और चीन की जनता भूख, ठण्ड और पीड़ा से कराह रही थी ।

कहते हैं, इतिहास की पुनरावृत्ति अवश्यंभावी हैं । चाहे देश कोई भी हो फ्रांस, चीन या भारत । इसलिए आजके शासकों को समयानुसार इन सब बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए । इतिहास से सबक लेना चाहिए और उन्हें अपने रहन-सहन के तथा अन्य खर्चों को उसी सीमा और आदर्श-पद्धति के अन्तर्गत ले आना चाहिए जो स्वराज्य मिलने के पहले कांग्रेस ने निर्धारित की थी और जो गांधीजी की कल्पना और आकांक्षा थी ।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वामपंथी कांग्रेसी

विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञों का मत है कि अगर १९५४ में हम तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व स्वीकार न करते और इस बात को यू० एन० ओ० में ले जाते तो शायद चीन, जो आज इतना शक्तिशाली हो गया है, नहीं हो पाता। १९६२ में जो भारत पर हमला हुआ, वह भी नहीं होता। क्योंकि उनको तिब्बत होकर ही नेफा या लद्दाख आने का रास्ता मिला था और अब तो सदा के लिए ही हमारी उत्तरी सीमा पर खतरा हो गया है।

तिब्बत में चीन को अपार सोना मिला और उसकी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए बहुत सी जमीन भी। अगर उस समय हम डटकर विरोध करते तो अमेरिका, ब्रिटेन और शायद रूस और पाकिस्तान भी हमारा साथ देते, क्योंकि तिब्बत पर चीन का अधिकार होना इन सबके लिए भी समस्या की बात थी।

जानकार लोगों का कहना है कि उसके पीछे वामपंथी कांग्रेसी नेताओं की सलाह थी। वे पंडितजी के नजदीक तथा विश्वासपात्र लोगों में से थे।

१९६२ में नेफा में जिस प्रकार से चीनियों द्वारा हमारी फौजों को क्षति उठानी पड़ी, उसके लिए सारी जिम्मेवारी एक सर्वोच्च सैनिक अफसर की बताई जाती है—जो एकबार तो लड़ाई के बीच में ही बीमारी का बहाना करके दिल्ली चला गया था और दूसरी बार जब बोमडीला पर चीनी सैनिकों का कब्जा हो गया, तेजपुर खाली करने का ऐलान हो गया तथा जिलाधीश द्वारा करेंसी नोट जला दिए गए। उस समय अपने सुसज्जित बंगले में आराम से सो रहा था। इस अफसर को भी, उस समय के सुरक्षामन्त्री मि० मेनन ने दूसरे बड़े-बड़े अफसरों को नाराज करके किसी खास कारण से ही इतना ऊँचा ओहदा दिया था। जबकि प्रत्यक्ष लड़ाई का उसे कुछ भी अनुभव नहीं था। चीनी आक्रमण के बाद इन वामपंथियों का प्रभाव बहुत कुछ घट गया और मेनन को तो एक प्रकार से कांग्रेस संसदीय दल ने सुरक्षा मन्त्री के पद से हटने के लिए बाध्य किया। कुछ समय बाद श्री केशवदेव मालवीय को भी सिराजुद्दीन काण्ड के कारण मन्त्रीपद से इस्तीफा देना पड़ा।

१९६४ तक के १२ वर्षों में इन लोगों ने कुछ शक्ति संचय कर ली और नई दिल्ली से एक साप्ताहिक और एक दैनिक पत्र चालू कर दिया। इन पत्रों के भवन-निर्माण के लिए किस प्रकार सरकारी संस्थाओं द्वारा भाड़े के रूप में रुपया अग्रिम कर्ज दिया गया और किस प्रकार इनको इतना ज्यादा अखबारी कागजों का कोटा मिला, इन बातों को लेकर संसद में कई बार चर्चा हो चुकी है।

इन दोनों पत्रों के संचालकों में दो-तीन तो खुले तौर पर साम्यवादी विचारधारा के थे,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परन्तु उन्होंने शायद भीतर रहकर कार्य करने में ज्यादा सुविधा समझी, इसलिए ये कांग्रेस के सदस्य बन गए ।

इन दो पत्रों के सिवाय और भी छोटे बड़े कई साप्ताहिक पत्र बम्बई और दिल्ली से निकलते हैं, जिनका काम उन मंत्रियों और सदस्यों को—जो दक्षिण पंथी माने जाते हैं, गाली देना और उनके विरुद्ध गलत प्रचार करना है । यही नहीं, कुछ देशों की हर प्रकार से कटु आलोचना करना भी उनका एकमात्र ध्येय है । इनमें से एक साप्ताहिक तो कोर्ट में मुकदमा करने पर माफी माँगने के लिए मशहूर हो चुका है ।

स्वर्गीय शास्त्री जी यद्यपि बहुत थोड़े से समय ही प्रधान-मंत्री पद पर रहे, परन्तु उनके समय में इन लोगों ने अपनी गतिविधि को सीमित रखा, क्योंकि शास्त्रीजी ने इनको कभी भी बढ़ावा नहीं दिया । वे सुनते सबकी थे, परन्तु करते थे स्वयं सोच-विचार कर ।

इनमें से एक दो तो शास्त्रीजी के नजदीक के मित्रों में रह चुके थे और उनको आशा थी कि शास्त्रीजी से भी वे मन चाहा काम प्रगति और समाजवाद के नाम पर करा सकेंगे। परन्तु वे इनकी बातें मुस्कराते हुए ध्यान से सुनते । स्वयं बहुत कम बोलते थे और उनके जवाब से यह भी पता नहीं चल पाता था कि उनका मत 'हाँ' में है या 'ना' में ।

जब शास्त्रीजी को अपनी तरफ नहीं झुका सके तो इन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की खुशामद करनी शुरू की, क्योंकि इनकी धारणा थी कि कामराज का तथा उनके २-३ अन्य साथियों का शासन पर इतना बड़ा प्रभाव है कि उनकी राय के बिना किसी प्रकार का बड़ा क़दम प्रधान-मंत्री या दूसरे मंत्री नहीं उठा सकेंगे ।

परन्तु शास्त्रीजी ने १९६६ के बजट के केवल एक मास पहले श्री टी. टी. कृष्णमाचारी जैसे प्रभावशाली वित्तमंत्री को, यह जानते हुए भी कि उस पर श्री कामराज का वरद हस्त है, बिना किसी से सलाह लिए मंत्रिमण्डल से अलग कर दिया ।

प्रधान-मंत्री का पद संभालने के ६ मास के भीतर ही, उन्होंने अपनी स्थिति इतनी सुदृढ़ कर ली थी कि बिना किसी गुट विशेष के सहारे के उनका अपना कांग्रेस संसदीय दल में बहुमत हो गया था ।

दुर्भाग्य से शास्त्रीजी का असमय में ही ताशकन्द में देहान्त हो गया ।

१९६६ की जनवरी में जब श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान-मंत्री चुनी गयीं तो इन लोगों को आशा हुई कि अब इनके गुट को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस प्राप्त करने का मौका मिलेगा, क्योंकि इन्दिराजी, पंडितजी के साथ १७ वर्ष तक एक प्रकार से निजी सहायक की तरह रह चुकी थीं । और उनके बारे में लोगों में यह धारणा थी कि उनका झुकाव वामपंथी विचारधारा की तरफ है ।

जब नए मंत्रिमंडल का चुनाव हुआ और इनमें से किसी को भी उसमें शामिल नहीं किया गया तो इन्हें निराशा के साथ-साथ नाराजी भी हुई ।

दुर्भाग्य से देश में दो वर्षों से लगातार अकाल पड़ रहा है । दूसरी तरफ प्रतिवर्ष १ करोड़ जनसंख्या बढ़ती जा रही है । १९ वर्ष के लम्बे समय में भी हम अपनी खेती के उत्पादन के लिए सिंचाई और खाद की व्यवस्था भी नहीं कर पाए और हमें इस समय भी लगभग दो सौ करोड़ का आयात इन दोनों चीजों का करना पड़ता है । यही नहीं, हमें अपने सिक्के का भी अवमूल्यन इन्हीं सब कारणों से बाध्य होकर करना पड़ा है—चाहे उसका नतीजा आगे चलकर जैसा भी हो ।

यद्यपि हमारी अधिकांश समाजवादी देशों से मित्रता है और वे हमें वाजिब तौर पर हर प्रकार की सहायता भी देते हैं । परन्तु उनकी अपनी कठिनाइयाँ भी हैं, इसलिए इन्दिराजी ने बहुत सोच-विचार कर अमेरिका के साझे में एक बहुत बड़ा खाद का कारखाना बैठाना तय किया था । इस बात को लेकर साम्यवादियों ने तो विरोध किया ही—साथ-साथ वामपंथी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कांग्रेसियों ने भी कम शोर नहीं किया और नतीजा यह हुआ कि एक बार फिर यह अत्यन्त जरूरी मसला खटाई में पड़ गया।

हमें साम्यवादी पार्टी वालों की (चाहे वे रूसवादी हों या चीनवादी) देश के प्रति वफादारी है, इसमें संदेह है, क्योंकि वे अन्तर्राष्ट्रीय तरीकों पर सोचते हैं और ऐसी धारणा है कि उन्हें आदेश और खर्च के लिए रुपया भी बाहर से ही मिलता है।

हमें ज्यादा अफसोस तो इन कांग्रेसी वामपंथियों की हरकतों पर है—जो संस्था के भीतर रहकर इसकी जड़ों को कमजोर कर रहे हैं। परन्तु अब एक प्रकार से इनका असली रूप प्रकट हो गया है। श्री मेनन तो कांग्रेस छोड़कर बाहर चले गए और दो-दो बार अपने पुराने क्षेत्र उत्तर-बम्बई से हार गए। दूसरों में से भी अधिकांश सन् १९६७ के चुनावों में हार गए।

हमारे प्रधान-मंत्री ने बहुत ठीक कहा है कि बढ़ती हुई कीमतों को रोकने के लिए हमें हर प्रकार से अपना उत्पादन बढ़ाना होगा, चाहे सरकारी क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में।

सरकारी क्षेत्र की अपनी एक सीमा है। वे मध्यम और छोटे-छोटे कारखाने नहीं संभाल सकते, इसलिए इन सबको निजी क्षेत्र को ही देने होंगे। उनका उत्पादन जल्दी शुरू हो, इसके लिए दफ्तरों की देरी के लिए भी कुछ उपाय सोचना होगा।

भुवनेश्वर कांग्रेस के समाजवादी सिद्धान्तों का यह अर्थ तो कदापि नहीं था कि जनता आवश्यक वस्तुओं के लिए भी अभावग्रस्त रहे, क्योंकि उनके उत्पादन के लिए सरकारी कारखाने नहीं बैठ सकते। और अगर हमारे प्रधान-मंत्री ने इस दिशा में सही कदम उठाया है तो उसे हर प्रकार से सहयोग देना दूर रहा—उल्टा उनपर इल्जाम लगाया जाता है कि उनका झुकाव दक्षिण पंथ की तरफ हो रहा है।

हमारा लक्ष्य प्रजातान्त्रिक समाजवाद का है और हम उसके लिए हर प्रकार से प्रयत्नशील भी हैं। परन्तु इसकी आड़ में कतिपय व्यक्तियों द्वारा देश को अगर किसी गुट विशेष में ले जाने का प्रयत्न किया जाएगा तो हर समझदार और देशभक्त नागरिक उनका डट कर विरोध करेगा।

●

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय साम्यवादी

कहते हैं हिटलर ने अपने शासनकाल में कई लाख यहूदियों की हत्या करा दी थी। स्टालिन के बारे में भी इसी प्रकार की चर्चा है कि जो उसके विरोधी विचारों के थे उन सबको या तो साइबेरिया भेज दिया जहाँ वे ठण्ड और भूख से मर गए या गोली से मार दिए गए।

ख्रुश्चेव के समय में हङ्गरी में जिस नृशंसता से साम्यवादी विरोधी विचार वालों को खत्म किया गया, वह थोड़े वर्षों पहले की ही बात है।

चीन के बारे में यद्यपि सच्चे समाचार नहीं मिलते फिर भी जानकर लोगों और समाचार पत्रों की मान्यता है कि वहाँ साम्यवादी शासन के बाद लाखों व्यक्ति मौत के घाट उतार दिए गए हैं।

पिछले वर्षों में पूर्वी पाकिस्तान से भी जिस प्रकार बड़ी संख्या में हिन्दुओं को भागकर आना पड़ा, वह छिपी हुई बात नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि साम्यवाद और डिक्टेटरशिप में विचार स्वातंत्र्य को स्थान नहीं है।

हमने स्वतंत्रता मिलने के बाद अपने देश की मूलभूत नीति प्रजातंत्रीय समाजवाद की रखी और विभिन्न राजनैतिक दलों और समाचार-पत्रों को अपने विचार व्यक्त करने की पूरी स्वतंत्रता दी, परन्तु कतिपय लोगों ने और पत्रों ने इसका नाजायज फायदा उठाया और देश की सार्वभौमिक सत्ता को मजबूत न बनाकर उल्टा कमजोर और विश्रृङ्खल करने में लगे रहे।

मैंने एक बार बम्बई के दो साप्ताहिक पत्रों के बारे में स्वर्गीय नेहरूजी का ध्यान आकर्षित किया जिनमें से एक तो उनके और दूसरा मुरारजी भाई के बारे में बहुत ही झूठा और शरारती प्रचार करते रहते थे।

सब बातें सुनकर उन्होंने मुस्करा कर कहा कि हम समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश सरकार से इतने वर्षों तक लडते रहे हैं। अब क्या स्वाधीन होने के बाद उन विचारों से दूर हट जाएँगे ?

स्वर्गीय नेहरूजी के मन्त्रिमण्डल में कुछ ऐसे वामपंथी विचारों के व्यक्ति रहे जिन्होंने हर प्रकार से कम्युनिस्टों को बढ़ावा दिया। इनमें से एक मंत्री ने तो गोला बारूद और हथियार बनाने वाले सरकारी कारख़ानों में साम्यवादी मजदूर दल को मान्यता दे दी जबकि वहाँपर बहुमत भारतीय राष्ट्रीय मजदूर पार्टी (इन्टुक) का था। इतना ही नहीं, उसने साम्यवादी देशों और भारतीय कम्युनिस्टपार्टी को खुश करने के लिए प्रतिवर्ष अमेरिका जाकर वहाँ की सरकार को बिना वजह बुरा-भला कहने का एक प्रकार से नियम-सा बना लिया था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय राजनीति में दिलचस्पी रखने वाले यह जानते हैं कि चीन की नीयत सन् १९५६ से ही खराब थी। वह लद्दाखकी तरफ हमारी जमीन दबाता जा रहा था और साथ ही साथ सड़कें भी बनाता जा रहा था। उन सब महत्व की बातों के बारे में नेहरूजी को हमेशा अन्धेरे में रखा गया। क्योंकि इन सबको चीन की नेक नीति और मित्रता पर पूरा विश्वास था।

हमारे शस्त्रास्त्र बनाने वाले कारखानों की क्षमता कम नहीं थी, परन्तु उनमें गोलाबारूद और शस्त्र नहीं बनाकर काफी परक्यूलेटर और सिगरेट लाइटर बनाये गये।

सने १९६२ के सितम्बर में जब चीनियों ने अचानक ही देश की उत्तरी सीमा पर बड़े पैमाने पर हमला किया और उसका जो नतीजा हुआ उसके बारे में समाचार-पत्रों में और संसद में काफी चर्चा हो चुकी है, इसलिए हम उसको यहाँ दोहराना नहीं चाहते। ताज्जुब तो इस बात का है कि उस राष्ट्रीय सङ्कट में भी कुछ साम्यवादी नेता चीन को कसूरवार नहीं बता रहे थे और उन्होंने बड़ी-बड़ी मीटिंगों में इस प्रकार के विचार भी प्रकट किए।

हमें विश्वास है कि दूसरे देशों में इस प्रकार के देश-द्रोहियों को कड़ा से कड़ा दण्ड दिया जाता, परन्तु हमने केवल भारत सुरक्षा कानून बनाकर इनमें से कुछ को उसके अन्तर्गत पकड़कर जेल भेज दिया और उन्हें प्रथम श्रेणी दी।

आश्चर्य तो यह है कि इन सबसे कहीं ज्यादा इस धारा के अन्तर्गत दूसरे लोगों को जेल भेजा गया जिससे एक प्रकार से उस धारा का महत्व ही खत्म हो गया।

कुछ महीनों पहले इन वामपंथी साम्यवादियों को भी बिना शर्त के छोड़ दिया गया और आज वे न केवल नागरिक शान्ति और सुरक्षा के लिए ही खतरा उत्पन्न कर रहे हैं, अपितु देश के लिए आवश्यक वस्तुएँ बनाने वाले कारखानों में भी तोड़-फोड़ की साजिश कर रहे हैं।

इनके पास प्रचार, आए दिन के जुलूस, सभाएँ और चुनाव के लिए रुपया कहाँ से आता है? यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है। चार वर्ष पहले जब बैंक ऑफ चाइना के कागजों की जाँच हुई थी, तब इस बारे में बहुत से तथ्य वहाँ मिले थे, परन्तु उसके बाद क्या कार्रवाई की गयी, इसकी कोई जानकारी नहीं है।

जिन पार्टी की वफादारी देश के प्रति नहीं होकर दूसरे देशों के प्रति है (जिनमें से कुछ देश तो हमारे दुश्मन हैं) और वे अपनी गतिविधियों के लिए भी उन देशों से आदेश लेते रहते हैं, ऐसी पार्टियों को सरकार द्वारा मान्यता देना और उसके सदस्यों के कारनामों पर रोक-थाम नहीं लगाना, और वह भी इस सङ्कट के समय, जबकि हमारे अपने देश में ही नागा एवं मिजो हिंसात्मक कार्यवाही कर रहे हैं, और चारों तरफ से हम बाहर के दुश्मनों से घिरे हुए हैं, बहुत ही अवांछनीय है। इसबार के चुनावों में कांग्रेस के आपसी झगड़ों के कारण कई प्रान्तों में हार हुई। बंगाल और केरल में अन्य दलों के साथ साम्यवादियों ने मिलकर सरकार बनायी है। बंगाल भारत का प्रमुख औद्योगिक प्रान्त है, वहाँ जिस प्रकार से कारखानों पर मजदूरों द्वारा घेराव को खुले तौर पर प्रोत्साहन श्रम-मन्त्री द्वारा दिया जा रहा है, उसे साम्यवादियों का योजना-बद्ध तरीका कह सकते हैं।

देश सब वादों और मतों से बड़ा है। अगर इसकी अखण्डता पर किसी के द्वारा आँच आती है, तो वह चाहे कितना ही प्रभावशाली दल या व्यक्ति क्यों न हो, उसे सिर उठाने के पहले ही कुचल देना चाहिए। यही तो ऋषि चाणक्य का मत था, और यही भारत को सार्वभौमिक शक्ति दिलाने वाले सरदार पटेल का भी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डायरी के कुछ पृष्ठ

क्या खोया—क्या पाया

रामेश्वर टांटिया

रामेश्वरजी मेरे घनिष्ठ मित्रों में से एक थे। साधु प्रकृति, परोपकार में तत्पर, बुराइयों से निवृत्त, द्वेष से वैराग्य, स्पष्ट वक्ता, साहित्य में रुचि, साहित्यकारों से घनिष्ठता और सज्जनों से मैत्री यह उनकी सहज प्रकृति थी। व्यवसायी थे, पर मुझसे जब-जब साक्षात्कार होता, चर्चा होती थी राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक। वेदान्त में उनकी कोई विशेष गति नहीं थी, पर स्वभाव से वे धर्मभीरु और श्रद्धालु थे। सेवा का यदि आह्वान हो तो सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुविधा-असुविधा को वे नितान्त भूल जाते थे। ऐसे मित्र की अकाल मृत्यु से समाज में एक स्थान रिक्त हो गया, जिसकी पूर्ति दुर्लभ है।

पर संसार का रवैया ही ऐसा है कि कोई ठहरता नहीं। कृष्ण गये, राम गये, बुद्ध गये, शंकर गये और गांधी भी गये—संसार का प्रवाह जारी है और जारी रहेगा। इससे क्या कोई उद्विग्न हो और क्या शोक करे। हमारी जिम्मेदारी में भगवान ने जो काम हमें सुपुर्द किया, उसे जब तक श्वास है, निर्वाह करते जाओ। यही भगवान का संदेश है।

इस संसार-चक्र को जो यथावत् घुमाता रहता है, उसका जीवन सार्थक है। जो इस चक्र को घुमाये बिना ही खाता है वह गीता के शब्दों में पाप खाता है। रामेश्वरजी ने इस चक्र को घुमाते रखकर अपने जीवन को सफल किया, ऐसा मेरा मानना है।

जब जाने का समय आता है तो कोई टिक नहीं सकता। पर इसमें शायद कुछ अपवाद है। "विधि का लिखा को मेटन हारा।" "हानि लाभ जीवन मरन जस-अपजस विधि हाथ।" यह सब यथार्थ है इस पर विधि के जनक भी हम ही हैं—विधि का निर्माण हमारे कर्म ही करते हैं। योग वाशिष्ठ ने विधि की कटु आलोचना की है और पुरुषार्थ की महिमा गायी है। पर एक बार जब हमने विधि की रचना कर दी तो फिर उसके प्रहार को भुगतना ही पड़ेगा। ऐसा नियम है।

गीता में दो श्लोक हैं, जो पठन और मनन करने लायक हैं। ये श्लोक संसार-निर्वाह को सुगम बनाने के निमित्त ही श्री कृष्ण ने कहे हैं। संसार निर्वाह अध्यात्म से भिन्न नहीं है, यह भी समझ लेना चाहिए।

यद्यपि इन श्लोकों में अध्यात्म का विवेचन नहीं है, पर कुछ लोग कहते हैं कि हमारे सारे कर्म अध्यात्म से भिन्न नहीं।

जो कुछ करो सो सेवा।
खावो पीवो सो पूजा।

यह कबीर के वचन हैं—और सही हैं। क्योंकि परमार्थ भावना से किये गये सभी कर्म ईश्वर की पूजा हैं। प्रधान भावना है, न कि कर्म।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी दृष्टि से गीता के ये दो श्लोक भी संसार निर्वाह को सुगम बनाने के लिए ही कहे गये हैं और अध्यात्म से भिन्न नहीं :

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

न ज्यादा खाओ न कम । न ज्यादा सोओ, न अधिक जागो । युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, युक्त कर्म, युक्त सोना और युक्त ही जागना—यह क्रम संसार यात्रा के दुःख को हर लेता है । यह श्री भगवान् का कथन केवल पढ़ने की चीज नहीं, आचरण की चीज है । अति को त्याग के सहज काम और सहज विश्राम से संसार यात्रा सुगम होती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है और काम भी डटकर होता है—यह भगवान् की प्रतिज्ञा है ।

रामेश्वरजी की यह डायरी उनके जीवन की सम्पूर्ण झांकी नहीं है । मैंने उसका जो चित्र दिया है वह इस डायरी में नहीं मिलेगा । रामेश्वरजी का भौतिक शरीर गया पर आत्मा तो अमर है । जब तक उनका जस है, वह प्रेरणा देता रहेगा । ईश्वर उनके जस की प्रतिष्ठा को बनाये रखे ।

घनश्याम दास बिड़ला

७ जनवरी, १९८१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रस्तावना

रुपये के दो पहलू होते हैं। एक सामने का और दूसरा पीछे का। वे मैले हो सकते हैं। कभी-कभी साफ करके भी दिखाये जा सकते हैं। किन्तु रत्न में अनेक पहलू होते हैं। वह ऐसा काटा और तराशा जाता है कि उसमें अनेक पहलू बन जाते हैं। वे सब चमकते हैं। उनके कारण उसे जिस कोण से देखो, वह अपनी चमक से देखने वाले को आकर्षित और आनन्दित करता रहेगा। मनुष्यों में भी कुछ रत्न होते हैं, जिनके जीवन के अनेक पहलू होते हैं और नियति ने उन्हें इस प्रकार बनाया और संवारा तथा काटा और तराशा है कि हर देखने वाले को वे प्रभावित, आकर्षित और आनन्दित करते हैं। श्री रामेश्वर टाँटिया इसी प्रकार के पुरुष रत्न थे। श्री घनश्यामदास जी बिड़ला उन्हें अधिक निकटता से जानते थे। वे उनके चरित्र के कई पहलुओं से परिचित थे। प्रस्तावना में उन्होंने उनके व्यक्तित्व, सेवा भावना और राजनीतिक रुचि का इतना सजीव वर्णन दिया है; किन्तु मैं उनकी साहित्यिक अभिरुचि से ही परिचित होने का अवसर पा सका। उनके अन्य क्षेत्रों के कार्य से अपरिचित रहा। अतएव, मैं उनकी साहित्यिक गतिविधियों पर ही कुछ कह सकता हूँ।

श्री रामेश्वर जी टाँटिया का मेरा परिचय दिल्ली में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी गुप्त के यहाँ हुआ। गुप्त जी मेरे बहुत पुराने मित्र थे। मैं उन्हें उस समय से जानता था, जब उन्होंने 'सरस्वती' में लिखना आरम्भ किया था। अतएव उनसे काफी घनिष्टता थी। उन्होंने मुझे टाँटिया जी का परिचय बड़े प्रशंसापूर्ण शब्दों में कराया। उस समय टाँटिया जी भारत की संसद् के सदस्य थे और दिल्ली ही में अधिकतर रहते थे। मुझे राजनीति में रुचि नहीं है। मुझमें उनमें दो बातें सामान्य थीं: साहित्यिक अभिरुचि और भ्रमणप्रियता, मैं उत्तरी गोलार्द्ध के अनेक देशों की यात्रा कर चुका था। टाँटिया जी भी बड़े भ्रमणशील थे। किन्तु एक बात में वे मुझसे अधिक थे। मैंने अपनी यात्राओं का वर्णन नहीं लिखा। टाँटिया जी व्यवसायी भी थे। अतएव उनके सब काम सुव्यवस्थित होते थे। उन्होंने अपनी यात्राओं के अनुभव विवरण सहित लिख छोड़े थे। मैं उन दिनों 'सरस्वती' का सम्पादन करता था। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी यात्राओं के कुछ संस्मरण 'सरस्वती' के लिए लिखें। शायद मैथिली शरण जी ने भी उन्हें यह सलाह दी थी। उन्हें लेखन का अभ्यास ही न था, वे अच्छे लेखक भी थे, उन्होंने कृपाकर मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया और 'सरस्वती' के लिए वे अपनी यात्राओं के अनुभव लिखने लगे। उनके कई यात्रा-वर्णन धाराप्रवाह रूप से 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए और वे पाठकों को बड़े रुचिकर मालूम हुए। इसका कारण यह था कि एक तो उनकी भाषा बड़ी सरल और प्रवाहपूर्ण होती थी, दूसरे वे विदेशों के स्थानों और वस्तुओं को भारतीय दृष्टि से देखते थे और उन बातों पर प्रकाश डालते थे जो सांस्कृतिक, राजनीतिक या आर्थिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दृष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण हैं। उनके समान व्यस्त व्यक्ति के लिए ऐसे सुन्दर यात्रावर्णन लिखना बहुत बड़ी बात थी।

व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने वालों में कुछ लोगों को दैनन्दिनी (डायरी) लिखने की आदत पड़ जाती है। टाँटिया जी ने भी १९३२ से दैनन्दिनी लिखना आरम्भ कर दिया था, और सन् १९७७ तक लिखते रहे। शायद वे उसे नियमित रूप से प्रतिदिन नहीं लिखते थे; किन्तु दो-चार दिन का अन्तर भी कभी-कभी पड़ जाता था। उनका उद्देश्य इसे छपाने के लिए लिखना नहीं था। इसलिए इसमें अपने लिए महत्व की बातें—विशेषकर व्यवसाय और परिवार सम्बन्धी ही—अधिक लिखते थे। वर्तमान संस्करण सम्पादित संस्करण है। इसमें बहुत से अंश, जो पाठकों के लिए अनावश्यक समझे गये हैं, निकाल दिये गये हैं। किन्तु जो व्यक्तिगत प्रवृतियाँ हैं वे उनके चरित्र, दृष्टिकोण और व्यक्तित्व को आलोकित करती हैं। उनसे हम पाते हैं कि वे कुशल व्यापारी, सरल व्यक्ति, समाजसेवी, सद्‌गृहस्थ और सामाजिक प्राणी थे। उनकी समाज-सेवा बहुमुखी थी, वे शिक्षा और विधवा विवाह में विशेष रुचि लेते थे। पुस्तकें पढ़ने का शौक उन्हें आरम्भ ही से था और उनकी पठन-रुचि विस्तृत थी, किन्तु लेखन का शौक उन्हें बहुत बाद में पैदा हुआ। सन् १९४७ के २१ दिसम्बर को वे लिखते हैं—

"बंगाल एशियाटिक सोसायटी में महादेवी वर्मा का भाषण सुना। बहुत विदुषी हैं, कविता तो अच्छी करती ही हैं। मेरे मन में आता है मैं भी कुछ लिखूँ। कौन मुझे याद रखेगा? डायरी के आज वाले पन्ने पर लिखा है 'विदुषी पुजै सर्वत्र'। बात सही है। मुझे कुछ व्यापारी लोग जानते होंगे, परन्तु विद्वान् को तो गाँव-गाँव के बच्चे भी जानते हैं, इज्जत करते हैं, मुझे थोड़ा समय लिखने-पढ़ने में देना चाहिए।"

इस प्रकार वास्तव में टाँटिया जी श्रीमती महादेवी वर्मा के एकलव्य शिष्य प्रमाणित होते हैं। उन्हें महादेवी जी से प्रेरणा मिली, उसके कारण ही वे अपने व्यस्त जीवन में थोड़ा-बहुत लेखन कार्य कर सके।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह डायरी 'स्वान्तः सुखाय' थी। प्रकाशन के लिए नहीं। फिर भी उनकी तीव्र व्यावहारिक दृष्टि के कारण अनेक बातों पर प्रकाश पड़ता है और मालूम होता है कि वे कितने दूरदर्शी थे। १६ दिसम्बर, १९६२ को वे तेजपुर-गौहाटी की प्रविष्टि में लिखते हैं—

"यहाँ का ढंग ठीक है। लोग कारबार में जम रहे हैं। परन्तु सबने डिफेन्स को मजबूत बनाने पर जोर दिया। पूर्वी पाकिस्तान से बीच-बीच में हिन्दुओं का आना चालू है और मुसलमान भी सीमा में आकर बसते जा रहे हैं, इस बात की भी चर्चा हुई, आगे चलकर इससे प्राब्लम बढ़ेंगे।"

उन्होंने स्थिति को कितने सही ढंग से समझा था और कितनी सही भविष्यवाणी की थी, वह असम के वर्तमान आंदोलन और नाजुक स्थिति से भलीभाँति प्रमाणित है। जिस बात को एक यात्री के रूप में वे समझ गये, उसे वहाँ के शासक नहीं समझ सके और यदि समझे भी तो उन्होंने भावी विषम स्थिति को देखने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

टाँटिया जी राजस्थान से संसद् के सदस्य भी चुने गये थे। वैसे तो राजनीति से उनका पहले से ही सम्पर्क था। श्री जयप्रकाश नारायण और श्री लोहिया से उनकी घनिष्ठता थी, उनकी सहायता भी करते थे, किन्तु उन्होंने कभी राजनीति में प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया। संसद् के सदस्य होने के बाद उन्हें उसमें थोड़ी-बहुत रुचि लेनी पड़ती थी, किन्तु वे कभी राजनीति में डूबे नहीं, इसका कारण यह था कि उन्हें राजनीति का वातावरण प्रायः अप्रिय लगा। उन्होंने कहीं-कहीं लिखा है कि राजनीति में झूठ बहुत बोलना पड़ता है। उस वातावरण में वे रचपच नहीं सके। १३ मई, १९६२ को वे लिखते हैं—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"इन दिनों दिल्ली में घटनाएँ तेजी से बदली हैं, मन में बहुत तरह के विचार आते रहे। राजनीति में आना मेरे जैसों के लिए ठीक नहीं, न कोई अंकुश है और न ही नैतिकता। स्वार्थ का जोर ज्यादा चलता है। अब पीछे हटना सम्भव नहीं, देखें, क्या होता है।"

२० नवम्बर, १९५८ को लिखा है—

"मन में विचार आता है, व्यापार छोड़ राजनीति में आया, परन्तु इसमें ज्यादा उलझन है, झूठ ज्यादा बोलता हूँ, इससे बचकर रहना चाहिए।"

किन्तु मन की बात कभी-कभी निकल ही जाती थी। निजी वार्तालाप में भी सत्य कहने में संकोच होता था। ४ नवम्बर, १९५८ को लिखते हैं—

"भागीरथ जी के गया। वहाँ जे० पी० आये। फिर घर आ कर १०-१५ बजे से एक घंटा जे० पी० के पास रहा। वहाँ मैंने पंडित जवाहरलाल नेहरू की कड़ी आलोचना की। बात सही भले ही हो, पर यह उचित नहीं था, मैंने महसूस किया। आगे से सावधान रहूँगा।"

राजनीति में रहनेवालों को निजी कक्ष में भी मन की बात करने में कितना संयम रखना चाहिए, चाहे भीतर-भीतर घुटता ही क्यों न रहे। वाक्स्वतन्त्रता राजनीति में कितनी रह जाती है, यह इससे स्पष्ट है।

अपने ही को वे राजनीति के लिए अनुपयुक्त नहीं समझते थे, प्रत्युत साहित्यकारों को भी संसद् में लाना उन्हें ठीक नहीं मालूम हुआ। वे १ मार्च, १९६० को वे लिखते हैं—

"शाम को मैथिलीशरण गुप्त से मिलने गया। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से मिला। अग्नियुग के इन कवियों को राज्य सभा, लोकसभा में लाना ठीक नहीं हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि इनकी प्रतिभा कुंठित हो रही है। साहित्य के साधक को राजनीति से क्या मतलब ? कालिदास, सूर, तुलसी, भूषण ने राजनीति से अपने को दूर ही रखा था। रवीन्द्र, शरद, प्रेमचन्द ने भी।"

चीन के आक्रमण के समय की इनकी कुछ प्रविष्टियाँ ऐतिहासिक महत्व की हैं। इनमें से कुछ बानगी देखिए—

१३ अगस्त, १९६२ : "दिन में पार्लियामेंट गया। दिन में लद्दाख पर डिबेट था। एंथनी बहुत अच्छा बोले, पंडित जी के सामने भले ही कोई न बोले, मगर लाबी में चर्चा होती है कि उनकी फॉरेन पॉलसी फेल कर रही है। चीन के मामले में उनकी ढिलाई रही और बहुत-सी बातें छिपाई गयीं। परन्तु अब तो सब सहना पड़ेगा। चीन दबाता जाएगा।"

१४ अगस्त, १९६२ : "दो दिनों से पार्लियामेंट में क्वेश्चन कम हो रहे हैं। लाबी में चीन के मामले पर खूब बातें होती हैं। चीन बड़ी लड़ाई की तैयारी में है। पिछले महीने मुरारजी भाई ने दस हजार फुट से ऊपर रहने वाली मिलिट्री के लिए अतिरिक्त भत्ते की मंजूरी दे दी है। परन्तु मिलिट्री वाले आधुनिक हथियारों के लिए पाँच-छह अरब रुपयों की जरूरत बताते हैं। मुरारजी भाई ने कहा है कि रक्षामन्त्री (श्री कृष्ण मेनन) इस मामले को केबिनेट में रखें। पंडित जी का कहना है कि इसकी जरूरत नहीं, चीन हमला नहीं करेगा। समझ में नहीं आता कि क्या सही है और क्या गलत।"

९ अक्तूबर, १९६२ : "नेफा का कमाण्डर लेफ्टिनेंट-जनरल कौल को बनाया गया है। अनुभवहीन आदमी है। ऐसा लगता है, भारत के दुर्दिन आ रहे हैं।"

२१ अक्तूबर, १९६२ : "खबरें आई, चीन ने नेफा पर हमला कर दिया है। मन में बहुत दुःख हुआ। अपनी कुछ भी तैयारी नहीं है, हथियार भी नहीं, सेना ने पिछले जून महीने में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सातवीं बार रक्षा मन्त्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे में चेतावनी दी थी। हम लोगों ने कृष्ण मेनन से भी मिटिंगों में कहा, परन्तु उसने किसी की नहीं सुनी, पंडित जी ने उसका फेवर करके बहुत बड़ा खतरा उठा लिया है।"

२३ अक्तूबर, १९६२ : "पंडित जी के भाषण से लोगों में निराशा है। बाजार में शेयरों के भाव बहुत तेजी से टूटे, तरह-तरह की अफवाहे आ रही थी।"

२४ अक्तूबर, १९६२ : "सारे दिन लड़ाई की चर्चा कि क्यूबा में अमरीका और रूस तथा हिमालय में भारत तथा चीन लड़ रहे हैं, परन्तु रूस और अमेरिका तो आपस में नहीं लड़ रहे है, मुझे तो दिखावा लगता है। चीन ने हमारे ऊपर धावा बोल दिया है। दुनियाँ में कमजोर रहना अपराध है। बाजार में बहुत घट-बढ़ है। मन में अशान्ति है। पंडित जी के साथ-साथ सारे कांग्रेसी नेता, एम० पी० वगैरह भी नेफा काण्ड के लिए जिम्मेदार ठहराये जाएँगे। मन में दुख-सा हो रहा है।"

२५ अक्तूबर, १९६२ : "सुबह के० एल० ढाँढनिया के यहाँ गया, और लोग भी थे। ड्रॉफ्ट बनाया कि दीवाली पर रोशनी वगैरह न की जाए। पंडित जी की अपील है। मन में अपने को दोषी पाता हूँ, देश के लिए कुछ करने का मन हो रहा है। हमारे बहुत से जवान मरे और घायल हुए बताते हैं। हाथ में मामूली हथियार, बदन पर जरूरत के गरम कपड़े तक नहीं, ठंड में हाथ-पैर की उँगलियाँ गल गयीं।"

२६ अक्तूबर, १९६२ : "सुबह अखबारों में देखा कि टूएनसाँग चला गया। चीन की सेना बाढ़ की तरह आ रही है। आसाम पर खतरा उतरने से पाकिस्तान भी झमेला खड़ा कर देगा, मन में दुःख होता है। अपना देश हारता जा रहा है। हमारे जवानों की जान हमारी लापरवाही से जा रही है। कल जो स्टेटमेंट मैनें दिया था, वह अखबारों में आया।"

२७ अक्तूबर, १९६२ : "हम लोगों ने वार-फण्ड में एक लाख रुपया देने का तय किया। पिताजी को भी जँच गया।"

३ नवम्बर, १९६२ : "लड़ाई की हालत अच्छी नहीं है। नेफा के कमाण्डर कौल तो ११ तारीख को ही दिल्ली आ गये थे। उन्होंने पंडित जी और मेनन को बता दिया था कि चीन की घुसपैठ हो चुकी है और उन्हें दबाना बूते के बाहर है। इस बीच मैनें अखबारों को कई लेख भेजे और पत्र भी संसद् मित्रों को लिखे हैं। देखें क्या होता है। लद्दाख में हमारी सेना ने चीनियों को बढ़ने नहीं दिया। कौल को फिर से नेफा कमान पर भेजा गया है।"

६ नवम्बर, १९६२ : "सारे दिन मेनन के बारे में लोगों में चर्चा रही, ऐसा लगता है, पार्टी के सदस्य और संसद् सदस्यों को पछतावा है।"

७ नवम्बर, १९६२ : "शाम को पार्टी मीटिंग में पंडित जी ने मेनन को हटा दिया। एक प्रकार से मजबूर थे, मेनन के हटने से सबको खुशी हुई।"

८ नवम्बर, १९६२ : "कल पार्टी मीटिंग में पंडित जी ने मेनन को छोड़ देने को कह दिया। मेरा भी इसमें हाथ रहा। मुझे सन्तोष है। शायद पंडित जी नाखुश होंगे।"

२० नवम्बर, १९६२ : "दिन में लड़ाई के बारे में खबरें सुनता रहा। मन खिन्न हो रहा है, दुनियांवाले हम लोगों पर हँसते होंगे। ४ बजे नेहरू जी से मिला। और भी लोग थे। रात में महावीर त्यागी आये। नेफा के मामले से वे बहुत चिन्तित थे।"

२१ नवम्बर, १९६२ : "सुबह उठते ही अखबारों में देखा कि चीन ने "सीज़ फायर" कर दिया है, दिन में नेहरू जी का स्टेटमेंट सुना, कुछ दम नहीं था। दुनिया ने देख लिया, हमारी विदेश नीति कितनी कमजोर है और विदेशों में हमारा कितना प्रभाव है। पार्लियामेंट में डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ऐसा कोई जोरदार विरोध करने वाला होता तो पंडित जी सम्हले रहते और देश का भला होता। लोहिया जी बोलते हैं, परन्तु उनकी चोट पंडित जी पर व्यक्तिगत रहती है। चीन को जो करना था कर दिया, जमीन तो हड़प

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ली।"

अब ये इतिहास की बातें हैं, किन्तु इनका महत्व यह है कि ये बातें टाँटिया जी के समान कांग्रेसी संसद् सदस्य ने अपनी निजी डायरी में लिखी हैं, जो प्रकाशन के लिए नहीं लिखी जाती थी। इन प्रविष्टियों से मालूम होता है कि टाँटिया जी कितने देशभक्त थे, उन्हें देश का कितना दर्द था और उनकी दृष्टि कितनी स्पष्ट थी, नेहरू जी के अनुयायी होते हुए भी वे देश के हित में उनकी जिन बातों को उचित नहीं समझते थे, उन्हें अन्ध-भक्ति के कारण सही नहीं मान लेते थे। अनुशासन में रहते हुए वैधानिक रूप से उन बातों का खुल कर विरोध भी करते थे, जैसा कि पार्टी में उन्होंने कृष्ण मेनन का किया।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह डायरी मूलतः व्यक्तिगत है। इसमें सार्वजनिक घटनाओं और बातों को बहुत कम स्थान मिला है। फिर भी उपर्युक्त प्रकार की बातें यत्रतत्र बिखरी हुई मिलती हैं, जिनसे टाँटिया जी की कुशाग्र बुद्धि, देश-भक्ति और दूरदर्शिता का प्रमाण मिलता है।

इस डायरी को सम्पादित करा कर उनके सुपुत्र और परम स्नेहभाजन पुत्र श्री नंदलाल जी ने प्रकाशित कर पितृ-ऋण का केवल आंशिक परिशोध किया है। जैसा कि श्री रामेश्वर जी टाँटिया ने स्वयं लिखा है, उनकी कामना अपने यशःशरीर को जीवित रखने की थी, यह डायरी वह काम कुछ ही सीमा तक कर सकती है। मेरा उनका साहित्यिक परिचय और सम्बन्ध था। अनेक अवसरों पर मुझसे उनसे साहित्यिक विषयों, साहित्य की आवश्यकताओं और उनके लेखन तथा इसकी शैली में काफी चर्चा हुई। इस डायरी का प्रकाशन स्वागत करने योग्य है, किन्तु उनकी आत्मा के सन्तोष और शान्ति के लिए कुछ ऐसा स्थायी महत्व का साहित्यिक कार्य किया जाए, जो उनके यशःशरीर को जीवित रखे : "कीर्तिर्यस्य स जीवति"। मैं आशा करता हूँ कि उनके सुपुत्र इसी डायरी को प्रकाशित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझ लेंगे।

श्री रामेश्वर जी टाँटिया से मेरे मधुर सम्बन्ध थे। मैं उनके निस्पृह साहित्य प्रेम और हिन्दी साहित्य के उन्नयन की अभिलाषा का हृदय से आदर करता था। उनके प्रति अपनी भावना और सम्मान को व्यक्त करने के लिए अस्वस्थ होते हुए भी मैं यह भूमिका लिखने को राजी हो गया, और मुझे प्रसन्नता है कि इस प्रकार मैं अपने दिवगंत आदरणीय मित्र के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर पा सका।

—**श्रीनारायण चतुर्वेदी**

९ मार्च १९८१
५२, खुर्शेदबाग, लखनऊ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह रचना

रामेश्वर टांटिया से मेरा सम्पर्क सन् बयालीस के आन्दोलन के अन्तिम चरण में आन्दोलन के कार्यक्रम के सिलसिले में कलकत्ता जाने और रहने के समय हुआ। उसके बाद से यह सम्बन्ध निकटतर होता गया। बढ़ता गया।

रामेश्वर जी एक सफल व्यावसायी और उद्योगपति थे। राजनीति के क्षेत्र में भी वे सेवा की भावना से आये और उन्हें सुयश मिला। वे सहृदय थे। साहित्यिक सहृदय होता है। रामेश्वर जी की रचनाओं में उनका हृदय बोलता है। इस कारण वे अपनी साहित्यिक रचनाओं के लिए सर्वाधिक याद किये जाते हैं। मन को छू जाने वाली शैली और सरल शब्दों में बात कहने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। लेखक रामेश्वर टांटिया को जितने लोग जानते थे, उतने लोक सभा के सदस्य अथवा व्यापारी उद्योगपति के रूप में नही जानते।

साधारणतः व्यवसायी और राजनीतिक साहित्य से दूर हटते जाते हैं, कुछ तो परिस्थितियोंवश समयाभाव के कारण और कुछ रुचि परिवर्तन के कारण। रामेश्वर जी में ऐसा नहीं देखा गया। ज्यों-ज्यों उनका कार्य क्षेत्र विस्तृत होता गया साहित्य के प्रति उनकी रुचि बढ़ती गयी। अध्ययनशील वे शुरू से रहे, काफी पढ़ते थे। हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी की अच्छी जानकारी थी। विभिन्न भाषाओं के अनूदित साहित्य को भी पढ़ा करते थे। नई से नई पुस्तकें पढ़ डालते। रुचि के अनुकूल किताब लगी और मन में यह हुआ कि इसे और भी लोग पढ़ें तो उस पुस्तक की एकत्र प्रतियाँ खरीद कर मित्रों में बाँट देते।

डायरी वे नियमित रूप से लिखते थे। किन्तु इसकी जानकारी किसी को नहीं थी। शायद परिवार के कतिपय सदस्यों को छोड़कर बहुत कम ही लोग जानते हों कि वे जहाँ कहीं भी जाते, डायरी अवश्य साथ रखते और लिखते। घुमक्कड़ी और भुलक्कड़ी स्वभाव के थे ही। कभी-कभी इधर-उधर रख देते। कई दिनों बाद जब मिल जाती तो याद्दाश्त से पिछले दिनों की बातें नोट करते।

रामेश्वर जी की डायरियों में उनकी सहृदयता प्रकट होती है, अत्यन्त सूक्ष्म रूप में। विवरण या वर्णन नहीं मिलते। बड़ी से बड़ी घटनाओं के बारे में उन्होंने बहुत ही कम लिखा है। हाँ, यात्रा सम्बन्धी विवरण अपेक्षाकृत बड़े अवश्य हैं। इस प्रकार उनकी डायरियाँ नोट्स के रूप में हैं, किन्तु इनमें बहुत सार है। अन्तर्द्वन्द्व, अपनी दुर्बलताओं की स्वीकृति, उद्देश्य और लक्ष्य के लिए किये गए प्रयासों के अनेक उल्लेख हैं। किसी पर आक्षेप करना उनका स्वभाव नहीं था। व्यवसायी, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप में वे बहुतों के सम्पर्क में आये। सहमति-असहमति का होना या रहना स्वाभाविक है किन्तु ऐसा लगता है कि उन्होंने कार्य और उसके परिणाम को अधिक महत्व दिया, अपनी भावनाओं को बड़ा नहीं समझा। सम्भवतः इसी कारण वे व्यक्ति की आलोचना के प्रति उदासीन रहे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डायरियाँ व्यक्ति की मनोभावनाओं और अन्तर्मन की प्रतिक्रियाओं का सही परिचय प्रस्तुत करती हैं, बशर्ते कि ईमानदारी से लिखी गई हों। सन् १९४१ से १९७७ तक की डायरियाँ निःसन्देह एक विस्तृत काल खण्ड की हैं जिनमें समाज, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था की तेजी से बदलती तस्वीरें मिलती हैं। मोती के दानों सी घटनाएँ अलग-अलग बिखरी सी हैं, किन्तु सूत्र में पिरो देने पर बड़े काम की साबित हो सकती हैं। एक विशेषता यह भी है कि कुछ ऐसी बातें हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

श्री टांटिया ने सन् १९३७ तक कठोर परिश्रम कर व्यवसाय के क्षेत्र में पैर जमाया और सन् १९४७ आते-आते आर्थिक कठिनाइयों के प्रति वे आश्वस्त हुए। वे व्यापार में समृद्ध हुए और समाज में प्रतिष्ठावान। बड़े लोगों से सम्पर्क बढ़ने लगा। समाज सुधार और जनसेवा के कार्य में अधिकाधिक सक्रिय होने लगे। अनेक सामाजिक, शिक्षण और सेवा-संस्थाओं से जुड़ गये। कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के माध्यम से उन्होंने तन, मन, धन से जो सेवाएं अर्पित कीं उनका जिक्र डायरियों में नहीं मिलता। केवल कहीं कहीं उल्लेख भर है। हाँ, इसी दौरान राजस्थान में सूखा और अकाल के लिए राहत पहुँचाने के सन्दर्भ में उनके प्रयासों के कुछ विवरण मिल जाते हैं। इनके पढ़ने पर पता चलता है कि वे अखिल भारतीय स्तर के एवं राजस्थान के शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आते गये। परिणाम यह रहा है कि सन् १९५७ में वे लोकसभा के लिए सीकर निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित हुए।

यहीं से उनके जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ जो सन् १९६७ तक चलता रहा। इन दस वर्षों में रामेश्वर जी दो बार लोकसभा के लिए सदस्य निर्वाचित हुए और कांग्रेस की संसदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष के सम्मानित तथा दायित्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रहे। सरकारी और गैर-सरकारी कई आयोगों और समितियों के सदस्य भी बनाये गये। इन वर्षों की डायरियों में उनके अन्तर्द्वन्द्व की जो रेखाएँ मिलती हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि देश की राजनीति के अन्तःपुर का जो रूप उन्होंने देखा उससे उन्हें बड़ी निराशा हुई। सन् १९६७ के चुनाव में भारत के नौ राज्यों में कांग्रेस की हार जनता के असन्तोष एवं आक्रोश की एक प्रतिक्रिया थी। कांग्रेस की राजनीति राष्ट्र कल्याण से हटकर दलगत स्वार्थों में सिमटने लगी और फलस्वरूप श्री टांटिया इस चुनाव में निर्वाचित नहीं हो सके। उन्हें राज्यसभा अथवा लोकसभा के लिए उपचुनाव में खड़े होने के प्रस्ताव मिले किन्तु उन्होंने समय की गति को देखते हुए सक्रिय राजनीति से पृथक् रहना ही उचित समझा।

सन् १९६७ से १९७७ ई० तक का समय उनके जीवन का अन्तिम अध्याय है। दिल्ली की राजनीति ने उनके मन में वितृष्णा उत्पन्न कर दी थी। उनके लिए समाज-सेवा ही समाज-कल्याण का सशक्त माध्यम था। लोकनायक जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया आदि वरिष्ठ नेताओं के सान्निध्य और सम्पर्क में सन् १९४० से रहने के कारण उनका दृष्टिकोण स्वस्थ समाजवादी था। उनकी राजनीति दलबन्दी की पैंतरेबाजी नहीं थी। संसद सदस्य चुने जाने पर उन्हें आशा थी कि जहाँ से वे निर्वाचित हुए, जिन्होंने उन्हें अपना प्रतिनिधि चुना, कम से कम उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकेंगे। किन्तु दिल्ली की राजनीति मरीचिका-सी लगी और वे उससे जो हटे तो फिर कभी उधर नहीं मुड़े। उन्होंने भ्रमण, अध्ययन और लेखन पर अपने को केन्द्रित करना शुरू कर दिया। 'मेरा बचपन, मेरा गाँव' नाम से शैशव से किशोरावस्था तक के अपने भावभीने संस्मरण लिख डाले।

किन्तु अध्ययन और लेखन में बाधा पड़ ही गयी। उत्तर प्रदेश के और देश के विशाल उद्योग-समूह ब्रिटिश इंडिया कॉरपोरेशन, कानपुर में चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर नियुक्त हुए। भारत का यह एक बृहत् औद्योगिक संस्थान है। इसके अन्तर्गत सूती, ऊनी तथा चीनी मिलें हैं और चमड़े का तथा इंजिनियरिंग उद्योग भी। उन दिनों अव्यवस्था के कारण इस संस्थान की दुरव्यवस्था थी, काफी नुकसान लगता जा रहा था। श्री टांटिया ने अपनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूझ-बूझ और व्यापार-कौशल से इसे डूबने से बचा लिया और संचालन-प्रबन्ध को व्यवस्थित कर दिया।

रामेश्वर जी आत्मनिष्ठ उद्योगपति नहीं थे। वे सही अर्थों में समाज-सेवी थे और जन-जन में उनके सुख-दुख के बीच रहना चाहते थे। इसीलिए कानपुर में बी० आई० सी० का कार्यभार सम्हालने पर उन्हें स्थानीय नागरिक एवं स्नेही-जनों के आग्रह से कानपुर के नगर प्रमुख (मेयर) का गुरुतर भार सम्हालना पड़ा। यह दोहरी जिम्मेदारी अनेक समस्याओं से पूर्ण थी। चिन्ता, दौड़-भाग से मन और शरीर पर प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। डायरियों को पढ़ने पर आश्चर्य होता है कि वे कैसे इन सबके बीच डटे रहे, यद्यपि स्वास्थ्य गिरता जा रहा था।

रामेश्वर जी की इच्छा थी कि अपने राजनीतिक जीवन के भी संस्मरण लिख डालें। नाम भी सोच लिया था, 'मेरी राजनीति, मेरी दिल्ली' पर विधि को स्वीकार न हुआ। अप्रैल सन् १९७७ से वे लगभग अशक्त हो गये और उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकी। अब तो उनकी राजनीति और दिल्ली की कुछ झाँकी डायरियों के पन्नों में मिल सकती है जो अपने ढंग की निराली है।

एक विशेषता टांटिया जी की डायरियों में देखने में आयी कि उनके अनुमान सही उतरते। देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था के बारे में उनके अनुमान आज भी सही साबित होते जा रहे हैं। व्यापार में भी उनके अनुमान सही उतरते, शायद उनकी पैनी सूझ-बूझ के कारण उन्हें सफलता मिलती रही। बस एक क्षेत्र फाटका ही ऐसा था कि सही सोचने पर भी गलत हो जाते, घाटा उठाते। इसके लिए अपने स्वभाव की अधीरता और जल्दीबाजी को उन्होंने कारण बताते हुए अपनी दुर्बलता को स्वीकारा है। साथ ही, अपनी मानसिक एवं शारीरिक अस्वस्थता के लिए भी इसी को कारण माना है।

अच्छा होता यदि इन डायरियों की जानकारी उनके जीवनकाल में हो जाती। किन्तु डायरियों का जिक्र उन्होंने कभी किया नहीं। श्री टांटिया के देहान्त के बाद पता चला कि सन् १९४१ से १९७७ तक की प्रायः सब डायरिय़ाँ हैं। इसके पहले की भी रही होगीं क्योंकि सन १९३२ की भी डायरी मिली और बाकी कहाँ हैं, इसका पता नहीं चला।

हिन्दी में डायरी साहित्य कम ही है। जो मिलता है, उससे 'क्या खोया, क्या पाया ?' सम्भवतः अलग ढंग का है। शायद यह भी रामेश्वर जी की 'विश्वयात्रा के संस्मरण' के रूप में लोकप्रिय हो सकेगा।

गंगाशरण सिंह

बसन्तपंचमी, २०३७ वि०
राजेन्द्र नगर, पटना।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन् १९३२

१९ सितम्बर : कल से महात्मा जी व्रत रखेंगे इसी वास्ते पाट का, हेसियन का सब बाजार बहुत मंदा है।

२० सितम्बर : आज हड़ताल है। महात्मा जी आज से व्रत शुरू करेंगे। मैंने भी पूर्ण व्रत रखा। रात में थोड़ा पानी पिया।

सन् १९४१

२० फरवरी : सन् १९४१ 'विशाल भारत' की फाइल पढ़ता रहा। हिंदी में 'सरस्वती' ने एक समय में अपना स्थान बनाया था, उसी तरह 'विशाल भारत' काम कर रहा है। बहुत अच्छा निकल रहा है। रात में रेडियो सुना। अंग्रेजों के लिये लड़ाई भारी पड़ती जान पड़ी।

सन् १९४२

२१ जुलाई : लड़ाई में जरमनी रूस में जीत रहा है, पर मिस्र में अंग्रेज जीत रहें हैं। जापान की खास लगती नहीं। काम-काज थोड़ा बहुत हो रहा है।

१० सितम्बर : रूस हार रहा है। स्टालिनग्राड की पोजिशन सीरियसं है। पाँच बजे शाम को गद्दी आया।

३० दिसम्बर : याददाश्त (१) मनुष्य को मितभाषी होना चाहिए। इसमें झूठ कम बोला जाता है और जो कुछ कहा जाता है, सोचने-समझने का समय मिल जाता है। वाचाल का विश्वास कम हो जाता है तथा मान नहीं रहता है।

सन् १९४३

१५ फरवरी : महात्मा जी के उपवास का ६ठा दिन है। अखबारों में ज्यादा खबर मिलती नहीं। लोगों में कहना है कि गवर्नमेंट कड़ाई बरतेगी। विदेशों की खबर नहीं आती। जर्मनी हार रहा है, रूस जीत रहा है।

कलकत्ता

३० मार्च : अखबार में खबर पढ़ी कि फजलुल हक प्राइम मिनिस्टर ने रिजाइन दे दिया। मुस्लिम लीग की मिनिस्टरी होगी। लगता है, अब झमेला शुरू हो जायगा। हक कुछ समझदार तो था मगर लीग़ वाले एकदम उजड्ड हैं। लगता है, इस गोलमाल में गवर्नमेंट की चाल रही है। अंग्रेज चतुर होते हैं।

१२ जुलाई : अंग्रेजों ने सिसली पर हमला कर दिया और आगे बढ़ रहे हैं। ऐसा लगता है, जर्मनी की ताकत घट गयी। वह बुरी तरह हारेगा। अब तो इटली के निज के घर में अंग्रेज-अमेरिकन घुस गए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

९ अगस्त : सारे दिन वर्षा आती रही। बाढ़ चारों तरफ बढ़ रही है। रेल लाइनें उखड़ रही हैं। चारों तरफ अकाल तथा बाढ़ का प्रकोप हो रहा है। अन्न का अभाव और बीमारी फैलने की और भी तरह-तरह कीं खबरों का हल्ला है। बंगाल में अंग्रेजों से मिलकर लीग वाले हिंदुओं को तंग करने की तैयारी कर रहे हैं। व्यापारी भी नहीं बचेंगे।

१ सितंबर : अकाल्न की हालत बहुत खराब है। गोदामों में चावल है बताते हैं, पर अंग्रेजों ने मिलिटरी के लिए जमा कर रखा है, इधर लोग मर रहे हैं, शाम को ६ बजे भागीरथ जी कोनोड़िया के यहाँ गया; चेष्टा, सहायता हो रही है।

६ सितंबर : अकाल की वजह से कलकत्ता में बहुत लोग आ गये। रिलीफ कैंप चल रहे हैं मगर पूरा पड़ता नहीं। सड़कों पर भूखों और बीमारों की लाशें पड़ी रहती हैं। ऐसा दृश्य देखा नहीं जाता। वामन गाछी में झोपड़ियाँ बन रही हैं। उन्हें देखने गया।

२९ सितंबर : कलकत्ते में अकाल से मारे लोग चारों ओर से आ रहे हैं। आदमी सड़कों पर मर रहे हैं, भिखमंगे फिरते रहते हैं। छोटे बच्चे, बच्चियों का चेहरा देखा नहीं जाता। पैसे देने से कुछ होने का नहीं। सुनने में आता है, लड़कियाँ और औरतें बुरे काम के लिये मजबूर हो गयी हैं।

२६ अक्टूबर : इधर बंगाल में बहुत अकाल है।

भाव	गेहूँ	घी	तेल	चावल
मन का	२४)	१४०)	५०)	३०)

इससे कम में कुछ नहीं मिलता बल्कि ऊपर ही है। गरीब आदमी कैसे बचेगा, समझ में नहीं आता।

५ दिसंबर : सुबह ११ बजे से १२ बजे तक जापानियों ने जबर्दस्त बंबारी की। खिदिरपुर में प्रायः ५०० आदमी हताहत हुए। नुकसान विशेष नहीं हुआ।

सन् १९४४

२३ मार्च : जापान मणिपुर में उतर आया। खबर है, आजाद हिंद फौज भी साथ है। हिंदुस्तान में खुशी तो हैं पर अंग्रेजों की कड़ाई बहुत है। साहब लोग घबराये नहीं लगते। दिन में २०००० मन का काम किया। मेरा मन जसीडीह जाने को कहता है पर पिता जी इधर हैं, इसलिए जाना नहीं चाहता।

२२ सितंबर : शिलांग में अच्छी बस्ती है। पहाड़ी लोग खसिया जाति के हैं। भाषा समझ में नहीं आती। औरतों के चेहरे पर हँसी-मुस्कान रहती है। ईसाई मिशनरी वालों ने बहुतों को ईसाई बना लिया। बना रहे हैं, खुद भी यहाँ लोग बनते जाते हैं। इससे काम-काज का सुभीता इन्हें मिल जाता है। दवाई इलाज भी बिना खर्च हो जाता है। शाम को ६।। बजे काउंसिल हाउस में दो अमेरिकन मिले। उनसे वातचीत हुई। अपने को न्यूज कॉरिसपोंडेंट वताया। कहते थे, शिलांग में कोरप्शन बहुत है। हरेक औरत प्रॉस है। मुझको बुरा लगा। मगर चुप रह गया। अमेरिकन लोग अंग्रेजों को गरीब और पिछड़ा समझते हैं। लड़ाई के बारे में बताया कि जापान जल्दी हथियार डालेगा।

सन् १९४५

२६ जनवरी : सुबह अखबार पढ़ा। इधर रूस बहुत जोर से बढ़ रहा है, जर्मनी दब रहा है लड़ाई में जापान भी हार रहा है। ऐसा मालूम देता है, लड़ाई जल्द ही खतम हो जायगी। इस लड़ाई में खास बात देखने में आयी कि जिसके पास सामान और धन है और आदमी की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कमी नहीं, वह लंबी लड़ाई जीतेगा जरूर। फ्रांस और अंग्रेज अकेले रहते तो नहीं जीत सकते मगर उन्हें अमरिका और रूस का बहुत बड़ा सहारा मिला। जापान को तो बिलकुल ही अकेला लड़ना पड़ा। इनको पहले ही सोच लेना था।

३० अप्रैल : मुसोलिनी को गोली मार दी गयी। उसके साथ क्लारा पैटेची, उसकी प्रेमिका को भी। एक समय के शक्तिशाली का बड़ा ही बुरा अंत हुआ। हिटलर के बारे में भी तरह-तरह की बात फैल रही है। मन में सुभाष बाबू के लिये चिंता होती है। पकड़े गये तो अंग्रेज उन्हें छोड़ेंगे नहीं। मुसोलिनी को उसके देशवासियों ने मारा।

२.जून : कल सारे दिन शरद बाबू का 'शेष प्रश्न' पढ़ता रहा, राहुल जी की 'वोल्गा से गंगा' भी। आज भी पढ़ रहा हूँ। पूरा नहीं कर पाया, कमजोरी है। शरद बाबू की किताबों में मुझे नारी का जो रूप मिलता है, दूसरी किसी में नहीं मिला। 'पर्दे की रानी' और 'संन्यासी' अज्ञेय ने लिखी मगर शरद बाबू का सा रस नहीं दे पाये। 'शेष प्रश्न' पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखे गीली हो जाती हैं।

सन् १९४६

१३ जनवरी : सुबह आर्डिनेंस आया कि १०००), ५००) के नोट इल्लीगल टेंडर। हम लोगों के कुछ हैं, इन्हें पलटाना और सलटाना पड़ेगा। बट्टा लगेगा। बहुत से जमींदार, बड़े व्यापारी और अफसर के कसर लगेगी।

२६ जनवरी : मनुष्य की आयु अपने हाथ की बात है, आजकल इन दिनों मैं जिस तरीके से रहता हूँ, बहुत खराब है। अपना ध्यान नहीं रखता, रूपयों की चिंता। रुपये ५०-६० हजार, १-१॥ महीने में फाटके में तथा लाख और तरफ लग गये। फाटके के रुपयों की बेसी चिंता है। आदमी की तृष्णा मिटती नहीं फिर क्या उपाय ...... आदमी का क्या भरोसा, आज है, कल नहीं।

९ अप्रैल : अखबारों से मालूम होता है, केबिनेट मिशन फेल है। जिन्ना अपनी जिद पर अड़ा है, सिख भी अडंगा लगाते हैं। मुसलमान अपने को हिंदू और हिंदुस्तान से अलग कैसे मानते हैं, समझ में नहीं आता। इनके बाप-दादा तो हिंदू ही थे। सिख धर्म भी हिंदू नानक ने चलाया। इनके धर्म-ग्रन्थ में हिंदू देवी देवताओं की बातें हैं। ओंकार को बड़ा मानते हैं तो फिर अडंगा क्या ? सब झमेला स्वार्थ का है, इससे बहुत नुकसान पहुँचता है।

२० अप्रैल : अखबार पढ़ा। कांग्रेस ने एक रकम पाकिस्तान मंजूर कर लिया, इस तरह की खबर है। मन को कैसा-सा लगा। जिन्ना की जीत हुई। कांग्रेस ने एक रकम से अपने को हिंदुओं की संस्था मांनी और हिंदू तथा मुसलमानों को एक हिंदुस्तानी नहीं माना। अब तो हिंदुस्तान का बटवारा होगा ही। कांग्रेस ने शुरू में कम्युनल अवार्ड मानकर जो गलत बीज बोया, वह हाथ-पैर फैला रहा है। हिंदू महासभा की कौन सुनता है ! भले ही हल्ला करो हिंदू उसके साथ नहीं के माफिक हैं। कांग्रेस के इस निर्णय से काफी असंतोष-सा हो रहा है, सुनते हैं। बंगाली नेता लोग बंगाल का पार्टिशन चाहते हैं। इस मामले में श्यामा बाबू का कहना मुझे ठीक जँचता है। शायद कांग्रेस में भी दो मत हैं।

कलकत्ता

२ जून : सुबह झाझा में आँख खुली। स्नान वगैरह कर लिया। थकावट मिटी। सेकेंड क्लास में काफी आराम रहा। थर्डक्लास में तकलीफ तो होती है मगर बहुत तरह की बातचीत सुनने को मिलती है। धर्मशास्त्र और राजनीति वगैरह पर बात और बहुत रकम के विचार चलते रहते हैं। लखनऊ से एक आदमी बैठे थे, शायद गवर्नमेंट के भक्त थे, बताते थे अंग्रेज अगर चले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गये तो बिजली, रेलगाड़ी वगैरह अपना सब कुछ उठा लेंगे। हिंदुस्तानियों के पास इतना दिमाग कहाँ कि इन चीजों को बना सकें। हँसी तो आयी पर बहस में पड़ा नहीं।

कलकत्ता

२७जुलाई : सुबह मैदान नहीं गया, परंतु गंगाजी गया। अखबारों से पता चलता है ब्रिटिश गवर्मेंट हिन्दुस्तानी सरकार बनाने पर जोर दे रही है। कांग्रेस और लीग का अड़ंगा बाधा है। परंतु विचार आता है, अभी आजादी मिली नहीं, परंतु झंझट चालू हो गयी तो मिलने पर हालत कैसी बनेगी ? स्वराज्य, गुलामी, हंगामा की बातें इंटेरेस्टिंग लगती है मगर इसमें झमेला बहुत है। फिर भी स्वराज्य के लिए मन में ऊँचे विचार आते हैं। शायद इसलिए कि ये लोग औरों के लिए अपना सब कुछ छोड़े बैठे हैं। पंडित जी, राजेन बाबू, पटेल जी चाहते तो बहुत रुपये की कमाई कर सकते।

दिन में गद्दी आया, काफी पाट लिया, फाटका भी, परंतु मन बहुत डर रहा था। मालूम नहीं कौन क्या बोल दे। मेरी आदत तो छूटती नहीं, परंतु सौगंध इतनी कड़ी खायी है कि लाभ तो मैं लूँगा नहीं।

१३ अगस्त : वायसराय लार्ड वावेल ने सरकार बनाने के लिए कांग्रेस के प्रेसिडेंट को बुलाया है। पंडित जी शायद मंजूर कर लेंगे परंतु कांग्रेस के बहुत से नेता चाहते हैं कि सरदार पटेल काम-चलाऊ सरकार बनायें। मुझे भी कुछ जँचता है, जिन्ना से लोहे का ही आदमी टक्कर ले सकता है।

१६ अगस्त : बुखार-सा था। सुबह १० बजे आफिस गया। लीग वालों की बहुत बड़ी मीटिंग थी। वहाँ से लौटते हुए लीगवालों ने लूट-मार शुरू कर दी। चौरंगी, धर्मतल्ला, मौलाली वग़ैरह मुसलमानी मुहल्लों में हिंदुओं की दुकानें लूट ली गयीं, बहुत लोग मारे गये। हिंदू मुहल्लों से लोग जान बचाकर आ रहे हैं। पुलिस कुछ नहीं कर रही है। हालत खराब होती जा रही है। औरतों को बेइज्जत करते हैं, नंगा कर मार डालते हैं। कर्फ्यू लगा दिया गया है पर मुसलमान लोग 'अल्ला हो अकबर' वग़ैरह बोलकर रात में भी हमला कर रहे हैं।

१८ अगस्त : दंगा का काफी जोर है। इसे दंगा नहीं, कत्लेआम कहना चाहिए। १० अप्रेल को जिन्ना ने दिल्ली में लीग की कान्फ्रेंस बुलायी थी। बड़ी गरम मीटिंग हुई, पाकिस्तान के अलावा दूसरे किसी पायंट पर समझौता नहीं होगा। सुहरावर्दी ने कहा था। मुसलमान लोग बहुत सहन कर रहे हैं। फ़िरोज खान नून ने तो बड़े जोश के साथ कहा था कि यदि मुसलमानों के लिए अलग देश नहीं बनाया गया तो ऐसा कत्लेआम, खून-खराबा मचेगा कि मंगोल हलाकू भी पिछड़ जाएगा। बात सही निकली। उन लोगों की पूरी तैयारी थी जब कि हम इसे बकवास समझते रहे। पठान पुलिस वालों ने बहुत अत्याचार किया। मिलिटरी बुलायी गयी है।

२१ अगस्त : सुबह देखा, सड़कों पर लाशें पडी हैं। क्या कसूर था इनका ? धर्म मनुष्य ने बनाया और उसी के लिए अधर्म करता है! बुरों में भी अच्छे होते हैं। सना, हिन्दुओं ने मुहल्लों में मुसलमान छिपाये रखा, मुसलमानों ने भी ऐसा किया। खबर देकर पहरे के साथ बचाकर निकाला ऐसे काम के लिए इन पर मार भी पड़ी। कई मारे भी गये दीपचद वग़ैरह कई लोग आये। कहते हैं मुसलमान डरपोक होते हैं। सामने नहीं आते। पुलिस की लारी के पीछे से हमला करते हैं। रात में निकलते हैं।

२६ अगस्त : कांग्रेस और लीग के बीच समझौता नहीं हो पाया। लीगवालों ने गुस्सा उतारा बेकसूर लोगों पर। दंगे में ५००० के मारे जाने और १५००० के घायल होने की खबर है। कितनों की रिपोर्ट नहीं होगी, इसका क्या ठिकाना। वायसराय भी परेशान दिखता है। उसने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इंटरिम गवर्मेंट बनाने के लिए कांग्रेस को एक हफ्ता पहले कह दिया । शायद इसमें पंडित नेहरू, सरदार पटेल, राजेंद्र बाबू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, आसफ अली रहेगे । सिखों के बलदेव सिंह, ईसाइयों के जॉन मथाई भी होगें । शफात अहमद, अली जहीर, जगजीवन राम और शरदचंद बोस के भी लिए जाने की बात है ।

२ नवंबर : मेरे कारण फर्म को काफी नुकसान हो रहा है । आदत छूटती नहीं । भाई जी नाराज हैं, कुछ बोलते नहीं । मन में कैसा-सा होता है । सुबह गांधी जी से मिला । थोड़ी बहुत बात भी की । बहुत कुछ कहना चाहता था परन्तु उनके आगे कुछ बोल नहीं पाया । पता नहीं उनकी ताकत ज्यादा है या मेरी कमजोरी । साथ में लोहिया जी थे, केदार बाबू भी । मैं पूछना चाहता था कि गांधी जी हमें शांति रखने को कहते हैं जब कि मुसलमान अत्याचार करते जा रहे हैं । देवताओं को भी दानवों के खिलाफ हथियार उठाना पड़ा था । उन्होंने पहले ही कह दिया था कि अन्याय को अन्याय से नहीं दबाना चाहिए । कुछ बोलने के लिए रहा नहीं ।

सन् १९४७

२ फरवरी : ११ बजे देवानदपुर गया । साथ में चौदह आदमी थे । बंडेल का गिरजाघर देखा । १६वीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने बनाया बताते हैं । वहाँ का गंगातट बहुत सुन्दर है । सैर करने की जगह है । गिरजा साफ-सुथरा और शांत है । अच्छा लगा । पूजा के स्थान पर शांति भी होनी चाहिए, हम लोगों के मंदिरों में तो बहुत गदंगी और शोर होता है । मन उचटता है । इमामबाड़ा हुगली में देखा । बड़ा और अच्छा है । परंतु लखनऊ जैसा नहीं है । हाजी मुहम्मद मोहसिन ने बनवाया । अपनी सारी संपत्ति और पुस्तकें इसे दे दी थीं । इस्लामी पढ़ाई यहाँ होती है । देवानंदपुर ३ बजे पहुँचे । शरद की स्मृति में जलसा था । शरद ने सादा जीवन बिताकर ऊँचा साहित्य दिया ।

२ अप्रैल : गांधी जी और वायसराय की मीटिंग चल रही है । मेरी समझ में वावेल लीग का पक्ष लेने लगा था । बजट के मामले से यह बात साफ है । दंगे-हंगामें की शिकायत पर कोई कड़ा एक्सन नहीं लेता । लार्ड माउंटबैटन की नीयत ठीक लगती है । पुरानी डायरियाँ देखता रहा । समय कैसे बीत गया । परमात्मा ने बहुत कुछ करा दिया। मीटिंग में लोग मेरी तारीफ करते हैं । मैं जानता हूँ, पैसे की तारीफ है ।

२६ मई : कल रात ट्रेन में बहुत भीड़ थी । जगह मिल गयी । डब्बे में २-३ स्त्रियाँ थीं, देखने में सुन्दर और सभ्य । सब समय इनके चेहरे पर मुस्कान । कौन इनकी तरफ किस निगाह से देखता है, इसकी परवाह नहीं । मेरा मन इन्हें देखकर अपने में अभाव-सा महसूस करने लगा । मनुष्य गरीब होता हुआ भी आराम से रह सकता है । रुपया ही सुख का साधन नहीं है । मन बहुत बड़ी बात है ।

१५ अगस्त : रात में रेडियो सुना । १२ बजे के बाद १५ अगस्त की शुरूआत के साथ हिन्दुस्तान आजाद हुआ । पंडित जी, राजेंद्र बाबू और सरदार पटेल का भाषण हुआ । पंडित जी का भाषण बहुत ही भावना पूर्ण था, सरदार पटेल का तथ्यपूर्ण ठोस । राजेंद्रबाबू ने महात्मा जी की प्रशंसा की और आश्वासन दिया कि स्वतंत्र भारत में गरीबी, भुखमरी, शोषण और ऊँच-नीच के भेद-भाव मिटाने के लिए हमलोग कोशिश करेगें । मगर उन्होंने हिदुस्तान के टुकड़े होने पर खेद भी प्रकट किया । लार्ड माउंटबैटन को गवर्नर जनरल रहने दिया गया । पंडित जी प्रधान मंत्री बने । राजेंद्र बाबू संविधान परिषद के प्रेसिडेंट । दिल्ली में लाल किले पर हिन्दुस्तान का तिरंगा झंडा पंड़ित जी ने फहराया । बहुत बड़ी भीड़ थी । रेडियो से सारी बातें बतायी जा रही थीं । सुभाष बाबू का दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा फहराने का सपना पूरा हुआ । आज वह रहते तो कितनी खुशी होती । रेडियो सुनते समय भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, वीर सावरकर, खुदीराम बोस की तपस्या और त्याग की बातें याद आ गयीं । बस में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बैठ कर विभिन्न मुहल्लों में घूमा। बच्चे तिरंगा झंडा लिये 'जयहिंद' कह रहे थे। सभी जगह तिरंगे की धूम। रात में रंग-बिरंगी रोशनी में कलकत्ता बहुत सुंदर लग रहा था। आज का दिन याद रखने का है।

३१ अगस्त : सुबह ६ बजे एरोड्रोम पहुँचा। जहाज में बैठा। नीचे का दृश्य बहुत सुहावना लगा। हिंदुस्तान और पाकिस्तान की सीमा पहचानने की कोशिश की, मगर क्या पता चलता ? धरती एक है और देश बँट गया। एक घंटे में ढाका पहुँच गया। दिन में काम-काज सलटाने में रहा। शाम को रिक्शा में बैठकर शहर खूब घूमा। पाकिस्तान बन जाने से यहाँ के मुसलमान खुश हैं। बहुत से हिंदू तो पहले ही भाग गये। बचे-खुचे भी रह नहीं पायेंगे। अभी पूरी शांति है। व्यवहार भी ठीक है। पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली हिंदुओं के प्रति खास असंतोष है।

१० दिसम्बर : पाकिस्तान-इंडिया में समझौता हो गया है। कश्मीर का मामला मेरी समझ में नहीं आता। हम लोगों को कड़ा रुख रखना चाहिए, सरदार पटेल वाला।

२१ दिसंबर : बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में महादेवी वर्मा का भाषण सुना। बहुत विदुषी हैं, कविता तो अच्छी करती हैं। मेरे मन में आता है, मैं कुछ भी लिखूँ मुझे कौन याद रखेगा ? डायरी के आज वाले पन्ने पर लिखा है 'विदुष पुजै सर्वत्र' बात सही है। मुझे कुछ व्यापारी लोग जानते होंगे परंतु विद्वान को तो गाँव-गाँव के बच्चे भी जानते हैं, इज्जत करते हैं। मुझे थोड़ा समय पढने-लिखने में देना चाहिए।

२२ दिसंबर : बैजनाथ जी केडिया का बनारस में शरीर शांत हो गया। अच्छे कांग्रेसी थे। हिंदी में प्रेमचंद को उर्दू से लाये। बच्चों के लिए बहुत अच्छी-अच्छी किताबें लिखीं। बहुत ही उदार थे, समाज के लिए भी इन्होंने बहुत किया। भगवान् की मर्जी।

सन् १९४८

१४ मई : चीन में च्यांग काय शेक हार रहा है। चीजें बहुत महँगी हैं। कम्युनिस्ट बढ़ रहे हैं। हो सकता है, जीत जायें। हिंदुस्तान में भी कम्युनिस्ट प्रोपगंडा बढ़ा रहे हैं। तेलंगाना में गोलमाल बढ़ायेंगे, ऐसी खबर है। इन दिनों विदेश जाने की बहुत इच्छा जोर से हो रही है, पता नहीं क्यों ?

१७ सितंबर : निजाम हैदराबाद सरेंडर कर गया। लोगों में बहुत खुशी है। बहुत बड़े जुल्म वहाँ किये गये थे। रजाकारों ने बहुत उत्पात मचाया था। आतंक फैला दिया था। जनरल जे० एन० चौधरी का बहुत नाम हुआ। कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी जी ने बहुत समझदारी से काम लिया। इतने बड़े विद्वान और साहित्यिक होने पर भी राजनीति में बहुत अच्छा अनुभव दिखाया। बंबई में प्रधानमंत्री के रूप में भी शासन अच्छा चलाया था।

२४ सितंबर : डॉ० राममनोहर लोहिया का लेक्चर सुनने गया। काम की बात बोलते हैं। जब तक अमीर और गरीब की दूरी कम नहीं होगी, स्वाधीनता बेमतलब है। उन्होंने एक रकम कांग्रेस गवर्मेंट की आलोचना की। गांधी जी के सिद्धांत को छोड़कर हम लोग इंग्लैड, रूस, अमेरिका की नकल करना चाह रहे हैं, इससे पैसे वाले तो उन्नति करेंगे परंतु गरीब और भी कष्ट में फँसते जायेंगे। मुझे लगता है कि गाँव की उन्नति पर ज्यादा जोर देना चाहिए। छोटे-छोटे कारबार वहाँ खोलने चाहिए। गांधी जी की नीति इस मामले में ठीक थी।

२७ नवंबर : लखनऊ में नवाबी जमाने की सब इमारतें देखीं। दिल्ली आगरे के मुकाबले की नहीं लगीं। वड़ा इमामबाड़ा जरूर कुछ अच्छा लगा। नवाबों ने अपने मौज शौक के लिए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बहुत किया। थोड़ा बहुत अपने धर्म के लिए। परंतु अपनी प्रजा के लिए कितना किया ? फिर भी इनकी बातें बढ़ा-चढ़ा कर लोग कहते हैं। **वाजिदअली** नवाब बहुत ऐयाश रहा होगा। अपनी गद्दी बचाने की इन लोगों को फिक्र थी जिससे मौज-बहार चला करे। बादशाह और नवाब एक-से रहे। हिंदुस्तान को विदेश समझते थे और अपने को तुर्किस्तान, ईरान का। इसीलिए इनमें भारत के प्रति प्रेम नहीं रहा। पेंशन लेकर बादशाह नवाब बने रहे। ऐसे लोगों की तारीफ करना मेरी समझ में नहीं आता।

२८ नवंबर : झांसी आया। वृंदावन लाल जी वर्मा से मिला। आधे घंटे तक बात हुई। बहुत भले हैं, घमंड नहीं है। इतिहास के प्रति विशेष रुचि है। शिकार का भी शौक है। खूब घूमते हैं। मैंने पूछा इतना कैसे लिख लेते हैं ? हँसकर बोले, मैं नहीं लिखता, मेरा मन मुझसे लिखवाता है। उन्होंने यह भी बताया बुंदेलखंड और बघेलखंड के इतिहास के बारे में लोगों में जानकारी बहुत कम है। **मैथिलीशरण** गुप्त जी से मिला। बहुत ही सज्जन हैं। भगवान के प्रति भक्ति भी बहुत है।

सन् १९४९

१२ फरवरी : विधवा-विवाह में काफी इंटरेस्ट ले रहा हूँ। काम भी आगे बढ़ रहा है। लोग चर्चा करते हैं, अखबारों में नाम छपता है। परंतु बात भी बहुत रकम की सुननी पड़ती है। एक पंडित ने कहा, विधवाओं का ब्याह करवाते हो क्वाँरी कहाँ जायेंगी ? मैंने कह दिया कि समस्या विधवा की है, क्वाँरी की नहीं। ७ ता० के विधवा विवाह का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। खास काम पुरुषोत्तम जी और मैं, दोनों करते हैं। लोग कहते हैं, नन्दू की सगाई करेंगे क्या ?

१५ फरवरी : विधवा-विवाह था। लड़की वालों ने कुछ भी खरच नहीं किया। सभा के ५००)-६००) खर्च हुए। रात में घर जाकर मन में काफी सन्तोष हुआ। उत्साह भी बढ़ा। और भी विवाह होंगे। मुझे विधवा कन्या के विवाह पर उसके चेहरे से दुख हटता सा दिखाई पड़ता है, इससे खुशी होती है।

२० मार्च : रात ६॥ बजे डा० लोहिया आये। बहुत विद्वान हैं, पढ़ते रहते हैं। इसीलिए जो बोलते हैं, उसमें नुक्स नहीं होता। बहुत तरह की बातें हुईं। वे कहते हैं, शक्ति और अधिकार का एक जगह या कुछ लोगों के हाथ में रहना बहुत खतरनाक है। चाहे वह धन हो या शासन या विद्या। इससे शोषण बढ़ता है। कम्युनिज्म और सोशलिज्म में बहुत फर्क है। सोशलिज्म मनुष्य को विकास करने का जितना मौका देता है, कम्युनिज्म और कैपिटलिज्म उतना नहीं। बहुत अच्छी तरह समझाते रहे। मेरा मन करता है कि इनकी तरह कुछ करूँ। परंतु अच्छे काम अच्छे लोगों से होते हैं, सबसे नहीं।

सन् १९५१

२ दिसम्बर : सुबह ११॥ बजे केलवाड़ा पहुँचे। कोटा से लगभग ८० मील पर है। शाहपुरा तहसील की ऊँचाई वाले हिस्से का गांव है। इससे आगे ढलान है। गांव में गरीबी बहुत है। छोटी सी झोंपड़ी में पूरे परिवार फटेहाल किसी तरह रहते हैं। पेट भरने लायक भी नहीं मिलता। सदियों से यही हालत रही है। एक मील पर सूरजकुंड है, वहाँ स्नान किया। पानी गरम सा था। खूब नहाया, थकान मिट गयी। मन को शांति मिली। जगह बहुत अच्छी बन सकती है, यदि ध्यान दिया जाय। ३ बजे तक जंगलों में घूमता रहा। अंदाज ६ बजे वापस हम लौट आये। एक बासे में भोजन किया, साधारण था परंतु अच्छा। रात में दो मील घूमा, लोगों से बात करता रहा। केलवाड़ा में सहरिया एक जाति है। ज्यादातर जमीन इनके पास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है, पर ये कोई सम्हाल नहीं करते । इनमें हाली-गुवाली प्रथा सुनी । पेशगी लेकर मियादी नौकरी करते हैं । मियाद पूरी होने तक या नौकरी छोड़ने तक कर्ज नहीं सलटा सके तो मालिक बकाया रकम की पर्ची दे देता है। दूसरे के नौकरी करने पर पहले का हिसाब चुकता करना पड़ता है वरना नौकरी नहीं मिल सकती । उसका सारा जीवन अपने को गिरवी में रखकर बीत जाता है । शादी-व्याह पर ये लोग खर्च बहुत करते हैं । एक से ज्यादा औरतें भी रखते हैं।

६ दिसम्बर : ११ बजे अजमेर आये । गर्ग जी के साथ खाना खाकर अजमेर की दरगाह देखने गए । मुसलमान लोग इसे अपना तीर्थ स्थान मानते हैं । बहुत से हिंदू भी आते हैं, भेंट बगैरह चढ़ाते हैं।कहते हैं, मनोकामना यहाँ आने पर पूरी होती है, शांति मिलती है । मुझे कोई खास बात नहीं दिखाई पड़ी, अगर-धूप की सुगंध जरूर अच्छी लगी । पुरी के जगन्नाथ मंदिर की तरह यहाँ भी भोग-प्रसाद चढ़ता है इसे 'देग' कहते हैं । दरगाह के पास बहुत धन है, बाहर से आया भी करता है । शहर देखा, पुराने समय से प्रसिद्ध है । 'अजमीर' इसे साबित करता है । 'मीर' शब्द समुद्र या झील के लिए आता है । पुष्कर तीर्थ तो आज भी प्रसिद्ध है । अजमेर शहर में जहाँगीर की बारहदरी देखी । 'ढाई दिन का झोंपड़ा' देखा । पहले यह संस्कृत पाठशाला थी । कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे तुड़वा दिया और सात मेहराबों का एक स्मारक खड़ा कर दिया । इन पर कुरान की आयते लिखीं हैं । परंतु इस स्मारक के पीछे तोड़ी गयी पाठशाला का बचा-खुचा भाग अब भी है । इतने ऊँचे खम्मे हैं कि शायद ही कहीं हिंदू मंदिर में अब तक देखे होंगे । मुसलमानों के बाद अंग्रेजों ने भी ईसाई धर्म प्रचार के लिए अजमेर को ही राजपूताना में चुना था ।

२२ अप्रैल : सुबह जे० पी० के पास गया था । उनकी तबियत ठीक है । लगता है रुपयों की टान हो रही है, कुछ कहते नहीं । कुछ सहारा लगाना चाहिए ।

१७ मई : ३ बजे दहेज की मीटिंग में गया । उधर मारपीट हो गयी । परंतु मीटिंग होती रही । मैं भी बोला । गुस्सा दोनों तरफ था । मगर इस तरह समस्या का समाधान संभव नहीं । संयम रखना चाहिए ।

२५ मई : २२ सोसाइटी के, १३ प्रेस रिपोर्टर सुंदरबन इलाके में बढ़े । संदेशखाली और हसनाबाद वगैरह का बड़ा हृदयद्रावक दृश्य है । लोग भूखे रहते हैं, कपड़े भी नहीं हैं । अन्न वस्त्र बाँटे । काम शुरू करना ही है । बहुत बड़ी समस्या है । इसका कोई स्थायी समाधान ढूँढ़ना चाहिए । ऐसी मदद से कितने दिन, कितनी बार चल सकती है ?

३० जून : इस महीने में काफी काम सोसाइटी का किया । प्रायः एक लाख तीस हजार चंदा इकट्ठा किया । मन में एक संतोष होता है । अपने लिए करना और दूसरों के लिए करने में बहुत फर्क है । इस महीने में ६-७ जगह पब्लिक मीटिंगों में बोला । दान में प्रायः २५००) दिये । खुदरा का ठीक हिसाब नहीं रखा । रखना चाहिए ।

२४ जुलाई : बुखार है, पेट में आंव भी । किताब पढ़ता रहता हूँ । 'मनुष्य के रूप में' यशपाल का । ऐसा लगता है प्रच्छन्न रूप में कम्युनिज्म का प्रचार करने की कोशिश है । वैसे मनोरंजक है, शैली भी अच्छी और नये तरीके ।

सन् १९५३

८ फरवरी : कल नन्दू का विवाह है । घर में आज जमाई और जीमे । जीमनेवाला अड़ंगा कुछ वेशी हो गया । लोग नाना तरह की बातें करते हैं । गलती मेरी है, नहीं तो इतना कुछ नहीं होता । परन्तु पिता जी और बड़ो के आगे कुछ कहने की हिम्मत मुझमें नहीं है ।

९ फरवरी : सुबह मैदान आया । दिन में एक बजे जीमा । लोगों ने ५। बजे घर आना शुरू कर दिया । दिन में सी० एल० बाजोरिया भी आये थे । शाम को काफी आदमी आये । लोगों ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सादगी की बड़ाई की। आज से ३३ वर्ष पहले इन्हीं दिनों में मेरी शादी हुई थी। एक जमाना बीत गया। आज नन्दू की हो रही है, इसी तरह उसके लड़के की होगी।

१६ मई : जे० पी० आये। उस समय केवल मैं ही था। उनके साथ लोक सेवक ऑफिस में गया। पर्सनल खरचे के लिए ५००) उनको दिये, ले नहीं रहे थे। एक रकम जबर्दस्ती ही दे दिया। खर्च की तंगी रहती है, पर वे वोलते नहीं, रुपए लेने में संकोच करते हैं। परंतु बड़े-बड़े मिनिस्टर और अफसर इसके लिए बैठे रहते हैं। जे० पी० के वास्ते मैं कुछ नहीं करता, कितने त्यागी और महान हैं। रात में उनके साथ ६॥ बजे तक स्टेशन में था। मुझ पर बहुत स्नेह रखते हैं। दिल्ली की सीट को लेकर काफी चर्चा चल रही है। १०००) कृपालानी जी के चुनाव के लिए दिए। मेरा मन भी राजनीति में आने के लिए होता है, यह गलती है। मुझे सावधान रहना चाहिए।

२७ मई : सुबह ५॥ बजे दो मोटरों से हरदेव सहाय जी के साथ गया, रास्ते में अपने कैम्प देखे। काम ठीक चल रहा था। फिर जैसलमेर के बार्डर पर मियाकर गया। बावली एकदम उजाड़ है। पानी तो है ही नहीं। मन में कैसा सा दुख भर गया। हम प्रवासी राजस्थानी धन कमाते है, बगीचों में मौज-शौक करते हैं और यहाँ हमारे पूर्वजो की जमीन में गरीबी, भुखमरी और पीने को पानी नहीं! हमारी कमाई से क्या फायदा? लोंगों से मिला, हिम्मत बहुत है। एक बावड़ी की खुदायी हो रही है, वह देखी। आती दफे कोलायत ठहरा। मीठा पानी पिया। फिर गजनेर आये। मन में विचार आता है, अकाल तो मिट जायेगा परंतु हरियाली यहाँ कैसे आयेगी? खेती-बाड़ी नहीं होगी तो यह इलाका बढ़ेगा नहीं। कुछ पक्का बन्दोबस्त होना चाहिए।

८ अगस्त : राजस्थान में अच्छे राजाओं ने जो कुंवे, झील, तालाब बनवाये उनसे बहुत बचाव रहा, नहीं तो सारा इलाका बंजर रेगिस्तान हो जाता। बीकानेर के लालगढ़ के किले में ३६० फुट गहरे चार कुंओं से कितनी सुविधा हो गयी है। इसी तरह से जैसलमेर और दूसरी जगहों में झीलों से बहुत राहत मिलती रही है। महाराज गंगासिंह जी की सूझ-बूझ से १६२७ में नहर बीकानेर में आयी। आज तो विज्ञान के बहुत से साधन हैं। सरकार यदि उत्साह से काम करें तो बीकानेर क्या सारा राजस्थान हराभरा हो सकता है। मुझे लगता है कि इजरायल के विशेषज्ञों की सलाह इस मामले में ली जा सकती है।

सन् १६५५

२ जनवरी : उदयपुर आया। रात महिला मंडल में सी गया था। ६॥ बजे हम मातृ सदन गये। बहुत अच्छा काम हो रहा है। ऐसी संस्थाओं को मदद करने का मेरा मन होता है। पर कितना किया जाए? इतना साधन पास में नहीं है। अगर इस क्षेत्र में काम किया जाए तो अगले चुनाव तक अच्छी जमीन तैयार हो सकती है। मेरा मन भी एम० पी० की सीट लेने का सा हो रहा है। बीच-बीच में आकर रहना जरूरी है।

नीम का थाना, अजीतगढ़

१८ अप्रैल : ११ बजे नीम का थाना पूगे। कुछ गाँवों के काम देखने गए। भागीरथ जी, ज्ञानचद जी एम० एल० ए० और मातादीन साथ थे। काम अच्छे हुए हैं। ३॥ बजे पाटन की तरफ गए, काम देखे। भीलवाड़ा में लोहे की खान भी देखी। राजस्थान में भी यदि इसी तरह मिनरल्स निकलते आये तो इंडस्ट्री के बढ़ने में देर नहीं लगेगी। प्रयास से पानी की व्यवस्था भी जरूर हो सकती है। एक गाँव में गए, शादी के गीत गाए जा रहे थे। अच्छा लगा। १०॥ बजे अजीतगढ़ पूगे। गरमी पड़ती है। पर उतनी नहीं। कलकत्ते से बाहर मन लग जाता है। शरीर को आराम भले ही नहीं, परन्तु मन और दिमाग को शांति मिलती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जयपुर

२०अप्रैल: कल सुखाड़िया जी से बात हुई थी। अगले वर्ष का काम लेने का तय हो गया है। जिम्मेदारी का काम है। मातादीन कल रात में दिल्ली चले गए, उनको मैंने राजा से मिलने को कहा है। जयपुर में गर्मी कुछ ज्यादा पड़ने लगी है परंतु रात ठंढी होती है। २॥ बजे व्यापार मंडल की सभा में गए प्राय: ४००-५०० आदमी थे। भोगीलाल जी पंड्या आए, भाषण अच्छा रहा। मैं भी अच्छा बोल सका, लोगों ने पसंद किया। यहाँ उत्साह का वातावरण है। राजस्थान आगे बढ़ना चाहता है, बढ भी सकता है। परंतु आपस की खींच-तान नहीं होनी चाहिए।

झूंझनूं

२३ अप्रैल: सुबह जल्दी तैयार हो गए। राणी सती के मंदिर को देखा। वास्तव में देखने लयक बनाया है। दस-पन्द्रह लाख की सम्पत्ति है। ऐसे तीर्थ-स्थानों के माध्यम से संस्कृति और समाज की उन्नति के बहुत बड़े-बड़े काम हो सकते हैं। व्यवस्था ठीक रहनी चाहिए, नहीं तो आगे चलकर काशी, अयोध्या के मठों-मंदिरों जैसी हालत बन सकती है। ६॥ बजे वहाँ से चला। आगे चलकर काम देखा, आधे रुपए गाँवों वालों ने लगाए हैं। इस तरफ का काम काफी संतोषजनक है। ९ बजे मलसीसर देखा। मोती झुनझुनवाला के घर गए। १०॥ बजे राजगढ़ पूगे। एस० एम० मोहता के ठहरे। ३ बजे रिणी आए। दो जगह गए, काम देखा, एकदम खराब। मन कैसा हो गया। सामाजिक कार्य में धन, श्रम और समय की बरबादी एक अपराध है। शाम को चूरू आकर ठहर गए।

चुरू, सरदार-शहर, रतनगढ़

२४ अप्रैल: सुबह ५॥। में चूरू की तहसील के काम देखे, मेघराज जी साथ में थे। काम साधारणतया संतोषजनक है। १०। बजे सरदार शहर पूगे। दिन में काफी आदमी आए। ५००) रु० पूरन को, ५००) रु० पब्लिक लाइब्रेरी को, १००) रु० हरद्वारीलाल जी को दिए और भी ५०)-४०) रु० लग गए। संस्थाएँ देखीं। लोगों से मिला। शाम को ७ बजे वापस कार से रतनगढ़ आए।

सन् १९५६

कलकत्ता

३० अप्रैल: मिशन रो में सुबह ९ बजे पैदल चल रहा था। इसी तरह इस सड़क पर चलते-चलते तीस वर्ष हो गए। एक दिन १९२५ में शुरू किया था। प्राय: युग बीत गए। उस समय जो मन में विचार आते थे, आज भी याद हैं। सोचता था, किसी तरह एक-डेढ़ लाख रुपए हो जाएँ तो कर्ज मिट जाए और आराम से रहें। कौन जानता था कि समय का इस तरह से परिवर्तन होगा और करोड़ों रुपए मेरे पास हो जायेंगे। पर मन को शांति नहीं है, शरीर नाना रोगों से जर्जर हो रहा है, लालसा बढ़ती जा रही है और ऐसा मालूम देता है कि शांति इस जीवन में मिलने से रही। रुपयों से सुख नहीं होता। यह तो प्रमाणित हो गया परंतु कहीं भी तो ठहरने का और आराम करने का नाम नहीं। उस समय १५ वर्ष की आयु थी, बचपन था, पर चिंता थी कर्ज की। और आज ४ बच्चे हैं, ४६ वर्ष की आयु है, शरीर रोगी है और नाना तरह की चिंताएं हैं। अगर कुछ रुपये लेकर रिटायर्ड हो जाऊँ तो क्या हर्ज है? पर हो नहीं सकता।

सन् १९५७

२३ जनवरी: दिन में छुट्टी रही, नेताजी जन्म-दिवस है। नेताजी की यादगार में आज जलूस निकाले गए। कल फिर भूल जायेंगे। फारवर्ड ब्लाक वाले अपनी राजनीति के लिए नेताजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का नाम लेते हैं, परंतु उनमें एक भी नेताजी के आदर्श पर चलने वाला नहीं दिखता। यही हाल कांग्रेस का भी हो रहा है। आजकल राजनीति की यही विशेषता है।

१० मई : दिन में लोकसभा में गया। अतुल्य घोष, एस० एन० सिन्हा, ए० के० सेन, महाराजा बीकानेर, एम० एल० वर्मा आदि से मिला और भी बहुत से एम० पी० से मिला, जगजीवन जी से भी। पार्लियामेंट में करने के लिए काम बहुत है, ढंग से किया जाय तो बहुत बड़ी सेवा हो सकती है। बहुत तरह की बातें जानने में आयीं।

नयी दिल्ली

२८ मई : दिल्ली आ गया। १०॥ बजे पार्लियामेंट गया। दिन में बोलने की चेष्टा की बजट पर परंतु समय नहीं मिला। शायद कल मिल जायगा। राधेश्याम जी मुरारका और गज़ाधर जी सोमानी दोनों अच्छा बोले। दिन में गंगा बाबू ने एक उलाहना दिया, जगजीवन राम जी को मैंने उनके सामने पार्टी के लिए कुछ कहा था। ऐसी बात पर आइंदा के लिए निगाह चाहिए। गंगा बाबू ने अच्छा किया, मुझे सावधान कर दिया। मैं ज्यादा बोल जाता हूँ, गलत बात है।

नयी दिल्ली

१७ जुलाई : ११ बजे पार्लियामेंट गया। दिन में लोगों से मिलता रहा। आसाम के देवकांत बरुआ काफी प्रभावशाली हैं। ४ बजे मैं भी बजट पर बोला, शायद अच्छा ही रहा। मालिया से बात की। अतुल्य घोष, उपेन बर्मन, फिरोज गांधी सबसे बातें हुई। देश का काम पार्लियामेंट के माध्यम से अच्छा हो सकता है। परंतु इसके लिए काफी स्टडी करनी होगी। अभी मैं नया हूँ। जान-पहचान बढ़ रही है। तौर-तरीका सीख रहा हूँ।

११ सितम्बर : दिल्ली में इस बार अपने को इनफीरियर फील कर रहा हूँ। चाय पर डिबेट थी पर कुछ न बोल पाया। काम में दिलचस्पी नहीं लेने का दंड है।

१६ सितम्बर : अपने क्षेत्र के दौरे पर हूँ। सुबह खंडेला पहुँचा। १०००) रुपया एक छात्रावास में दिए और भी मांग तो बहुत थी, परन्तु मेरे पास नहीं थे। फिर कांवट और दूसरे गांवों से होते हुए अजीतगढ़ गया, वहाँ भी १०००) रुपया स्कूल को आलमारियों के लिए देने किए। इस तरह २२५०) रुपया इस यात्रा में लग गए। खर्च बहुत हो रहा है। कभी-कभी विचार आता है अगर मैं पैसेवाला एम० पी० नहीं होता तो क्या करता? इस तरह रुपये देने से लेने और देने वाले की कमजोरी बढ़ सकती है। परन्तु लोगों का ऑबलिगेशन चुनाव में बहुत हो जाता है तथा माँग भी बहुत ज्यादा रहती है, इसलिए बहुत से एम० पी० लोगों को गलत-सही काम के लिए ओबलाइज करते देखा।

सन् १९५८

२५ जनवरी : कल कन्हैयालालजी सेठिया के साथ मोटर में कई गाँवों मे गया। बड़रासर में एक बूढ़े ने कहा कि दरबार का हुक्म तो खतम हो गया। अब किसका हुकुम है? दस वर्ष हो गए, आजाद हुए। ऐसा प्रश्न सुनकर आश्चर्य हुआ। वह कहता था, 'पहले कुछ तो सुनवाई होती थी। अब लिखाई-पढ़ाई होती है सुनवाई नहीं।' आज सुबह रामनगर गया। गौरा बामणी से प्रायः २५ वर्ष बाद मिला। बूढ़ी हो गयी है। चेहरे पर झुर्रियां, चमड़ी पर सलें उभर आयी हैं। कितना समय निकल गया, कितना बदल गया सब कुछ! उसने मुझे पहचान लिया। हमारे यहां रसोई बनाती थी। मैंने उससे कहा कि कुछ खिला। हँसने लगी, दाँत नहीं थे। कहने लगी, 'मेरे हाथ का अब क्यों भायेगा?' बेसन के लड्डू खिलाये, छाछ पी। बहुत देर तक पिछली बातें करती रही। रात में शोभाचंद जी से भजन सुना।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१ फरवरी : सुबह १०० ब्राह्मण जिमाये, गोदान किया। सब १०००) रुपये खर्च हुए। कुछ ऊपर भी हुए होंगे। मेरी समझ में अब ये सब व्यर्थ हैं। दान की गाय बेच दी जाती है या दाने-चारे के अभाव में बीमार होकर मरती है। ब्राह्मण सतयुग में ब्रह्म साधता था, त्रेता में मंत्र, द्वापर में गुरु बनकर कान फूँकता था और अब रसोईया बनकर चूल्हा फूँकता है। पढ़ने-पढ़ाने, पूजन-पाठ के काम तो कब के छूट गए। परंतु मुझे अनचाहे सब करना पड़ता है, पिताजी, माँजी के आगे क्या बोलता ?

१३ फरवरी : शाम को ५ बजे कांग्रेस पार्टी की मीटिंग हुई। पंडितजी आदि थे। बैंक वाले मेरे प्रस्ताव पर थोड़े झल्लाए से। एस० एन० सिन्हा ने तो कहा कि ऐसा प्रस्ताव रखना ही नहीं चाहिए। मेरा प्रस्ताव बैंकिग-व्यवसाय के लिये उपयोगी था। धनिकों के स्वार्थ की बात नहीं थी। परंतु पंडित जी की मर्जी, शायद उन्हें इसके बारे में अच्छी रिपोर्ट नहीं दी गयी। मैंने ढंग से चुपचाप वापस ले लिया।

२२ फरवरी : मौलाना आजाद चले गये। भले थे। अरबी, फारसी के बहुत बड़े विद्वान। आजादी की लड़ाई में गांधी जी का साथ दिया। नेहरू जी इन्हें बहुत मानते थे। मुसलमानों ने इनको अपना नेता कभी नहीं माना, बड़े ताज्जुब की बात है। पंडितजी बेहद दुखी हैं। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये। सुनने में आया कि किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी जिस दिन कृष्णमाचारी रिजाइन करेंगे उसी दिन मौलाना को चोट आयेगी और चार दिनों बाद उनका देहांत होगा। चोट लगने पर कलकत्ते से डा० विधान राय देखने आये थे और उन्होंने कहा था कि कोई खतरा नहीं है। परंतु आश्चर्य है, ज्योतिषी की बात सही निकली। बड़ी चर्चा है।

११ जून : व्यास जी के साथ सुबह ११ बजे तक था। मैं महसूस करता हूँ कि चंदे के काम में मुझे कम जाना चाहिए। प्रेस्टिज घटती है पर उपाय क्या। आज राजनीति में देना-दिलाना, खाना-खिलाना नियम-सा है। इसके बिना चलता नहीं, भले ही पब्लिक वर्क हो या नहीं। रात में शांति प्रसाद जी के घर मालू जी जीमने गए थे, वहीं के तालाब में डूब कर मर गए। शायद हार्ट फेल कर गया।

१५ अगस्त : लगता है, स्वाधीनता दिवस का अब कोई खास महत्व नहीं रह जायेगा। तैयारी होती है, भाषण होते हैं। भीड़ आती है, चली जाती है, आसपास के गाँव से दिल्ली देखने के लिये। गलती तो हम लोगों की है। दिन में मुरारजी भाई के यहाँ खाने पर गया। शाम को राष्ट्रपति भवन गया, मैथिलीशरण जी और गंगाबाबू साथ में थे।

४ नवम्बर : तबीयत ठीक नहीं लगती। रात में बिना खाये १०॥ बजे सो गया था। भागीरथ जी के यहाँ गया। वहाँ जे० पी० आये। मैंने पंडित जवाहरलाल जी की कड़ी आलोचना की। बात सही भले ही हो पर यह उचित नहीं था, मैंने महसूस किया।

२० नवम्बर : मन में विचार आता है, व्यापार छोड़ राजनीति में आया, परन्तु इसमें ज्यादा उलझन है। झूठ ज्यादा बोलता हूँ। इससे बचकर रहना चाहिए परंतु यह कैसे हो ?

१९५९

१२ फरवरी : कुछ क्वेश्चन और सप्लिमेन्टरी की तैयारी की। कल का मेरा क्वेश्चन अच्छा रहा, पर पब्लिसिटी दूसरों को मिली। शायद मैं प्रभाव नहीं डाल सका। शाम को ढेबर भाई की पार्टी हुई, काफी आदमी थे। रात में मै० श० गुप्त, रायकृष्ण दास जी, डा० मोतीचन्द, डा० नगेन्द्र जीमने आये। १० बजे तक आपसी गोष्ठी चली। इनके बीच बहुत कुछ सीखने को मिल जाता है। जूट एक्सपोर्ट ड्यूटी को लेकर जो बातें मैंने की थी, उसका नतीजा नहीं निकला, ऐसा मालूम देता है।

११ अप्रैल : फिरोज गांधी से उनकी कांस्टिचुएंसी के बारे में बातचीत की। अच्छा अनुभव रहा। वायलेट अल्वा कलकत्ता में मेरे यहाँ ठहरी हैं। डॉ० रामसुभग सिंह से बात की। वे मुझे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ट्रेजरार के लिए खड़े होने को कहते हैं, मेरा भी मन है।
१५ अप्रैल : पार्लियामेंट में जूट और टी पर बोला, अच्छा बोला अंग्रेजी में। परंतु मनु भाई ने कहा फाइनांस मिनिस्ट्री को ऑफेंड नहीं करना चाहिए था। क्वेश्चन दिन में स्टडी करता रहा। कुछ चंदे की भी चेष्टा की। दम्माणीजी से ५०००) रु० श्री फिरोज गांधी दिलाए।

दिल्ली

१ मई : दिन में वर्मा जी ने कहा, आप विथड्रा कर लें, इसीलिए मैंने अपना ट्रेजररशिप के लिये नाम वापिस लेना उचित समझा। पार्लियामेंट का काम ही पूरी तौर पर नहीं कर पाता ऊपर से ट्रेजररशिप की जिम्मेदारी जरूर भारी पड़ेगी। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। परंतु ऐसा लगता है, विथड्रा नहीं कर पाऊँगा, प्रेशर पड़ेगा।

१८ नवम्बर : पार्लियामेंट बंद हो गयी, किसी का देहांत हो गया। वर्मा जी के घर गया, उनसे राजस्थान के बारे में बात की। चीन का दबाव बढ़ रहा है, शायद भारत को जमीन छोड़नी पड़ेगी। आनेवाली पीढ़ी हमें माफ नहीं करेगी। पार्लियामेंट के सदस्यों की गलती हैं, इस मामले पर पंडित जी को ढिलाई नहीं बरतने देते मगर हम लोगों को अपने से फुर्सत नहीं, स्टडी नहीं कर पाते इसलिए पंडितजी की नीति का विरोध भी ठीक से नहीं होता है। मैं भी उन्हीं में हूँ।
१२ दिसंबर : राष्ट्रपति भवन में शाम को गया, पार्टी थी। ५००० आदमी थे। मन में कैसा-सा महसूस करने लगा। हमारे देश में विदेशी प्रथा की नकल जोरों से चल पड़ी है। पानी तो ऊपर से नीचे बहता है। थोड़े दिनों में इस दिखावे की बाढ़ में गरीब भी डूबेगें।

सन् १९६०

१ मार्च : शाम को मैथिलीशरण जी के पास गया। बालकृष्ण शर्मा नवीन से मिला। अग्नियुग के इन कवियों को राजसभा, लोक-सभा में लाना ठीक नहीं हुआ। मुझे ऐसा लगता है, इनकी प्रतिभा कुंठित हो रही है। साहित्य के साधक को राजनीति से क्या मतलब ? कालिदास, सूर, तुलसी, भूषण ने राजनीति से अपने को दूर ही रखा था। रवीन्द्र, शरद, प्रेमचन्द ने भी।
२९ अप्रैल : रात में नींद नहीं आया। १०॥ बजे पार्लियामेंट गया। १५ मिनट में ही मेरी जीत का पता चलने लगा। आखिर, मैं जीता। रामसुभग जी भी जीते। प्रभुदयाल जी और सारे मित्र जीत गए। मन में अच्छा लगा। इज्जत बढ़ गयी। सब बधाई दे रहे थे।

सन् १९६२

२९ मार्च : दद्दा के गया, दिनकरजी थे। दिनकरजी ने अपने मन से 'व्याल विजय' सुनाया। बहुत अच्छा लगा। आवाज में बुलंदी है, पर्सनलिटी भी अच्छी है, कहने का ढंग भी जोरदार। गंगाबाबू का आज चुनाव था, वे यहीं हैं। जीत का चांस है।

३० मार्च : गंगाबाबू चुनाव जीत गए, खबर सुबह मिली। मन में बहुत खुशी हुई। दिन में पार्लियामेंट में अपनी तरफ से कोशिशें करता रहा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१३ अगस्त : दिन में पार्लियामेंट गया, लद्दाख पर डिबेट था, एंथोनी बहुत ही अच्छा बोले। पंडितजी सामने भले ही कोई न बोले, मगर लाबी में चर्चा होती है कि उनकी फॉरेन पालिसी फेल कर रही है। चीन के मामले में उनकी ढिलाई रही और बहुत सी बातें छिपाई गयीं। परंतु अब तो सब सहना पड़ेगा, चीन दबाता जायगा।

१४ अगस्त : दो दिनों से पार्लियामेंट में क्वेश्चन कम हो रहे हैं। लाबी में चीन के मामले पर खूब बातें होती हैं। चीन बड़ी लड़ाई की तैयारी में है। पिछले महीने मुरारजी भाई ने दस हजार फुट से ऊपर रहने वाली मिलिट्री के लिए अतिरिक्त भत्ते की मंजूरी दे दी है। परंतु मिलिट्री वाले आधुनिक हथियारों के लिए पाँच-छः अरब रुपयों की जरूरत बताते हैं। मुरारजी भाई ने कहा है कि रक्षा-मंत्री इस मामले को कैबिनेट में रखें। पंडितजी का कहना है कि इसकी जरूरत नहीं, चीन हमला नहीं करेगा। समझ में नहीं आता कि क्या सही और क्या गलत।

२८ अगस्त : आज अखबारों में मेरी स्पीच आयी, लोगों ने पसंद की। सुबह स्टेट मिनिस्टर्स की मीटिंग में गया, काफी भाग लिया। सिमेंट और लोहे के बारे में बोला। इनके वितरण की व्यवस्था ठीक होनी चाहिए। रुकावट से प्रोजेक्ट रुके रह जाते हैं। राजस्थान के लिए विशेष सुविधा रखनी होगी। देखें क्या होता है।

६ अक्तूबर : नेफा का कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल कौल को बनाया गया है। अनुभवहीन आदमी है। ऐसा लगता है, भारत के दुर्दिन आ रहे हैं। थिमैया की बात सही निकलेगी।

२१ अक्तूबर : खबर आयी, चीन ने नेफा पर हमला जोर से कर दिया है। मन में बहुत दुःख हुआ। अपनी कुछ भी तैयारी नहीं है, हथियार भी नहीं। सेना ने पिछले जून महीने में सातवीं बार रक्षा-मंत्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे में चेतावनी दी थी। हम लोगों ने कृष्णमेनन से भी मीटिंगों में कहा परंतु उसने किसी की नहीं सुनी। पंडितजी ने उसका फेवर कर के बहुत बड़ा खतरा उठा लिया है।

२२ अक्तूबर : पंडितजी के भाषण से लोगों में निराशा है। बाजार में शेयरों के भाव बहुत तेजी से टूटे। तरह-तरह की अफवाहें आ रही हैं।

२४ अक्तूबर : सारे दिन लड़ाई की चर्चा—कि क्यूबा में अमेरिका और रूस तथा हिमालय में भारत और चीन लड़ रहे हैं। परंतु रूस और अमेरिका तो आपस में नहीं लड़ रहे हैं, धमकियाँ हैं। मुझे तो दिखावा लगता हैं। चीन ने तो हमारे ऊपर धावा बोल दिया है। दुनिया में कमजोर रहना अपराध है। बाजार में बहुत घट-बढ़ है। मन में अशांति है, पंडितजी के साथ-साथ सारे कांग्रेसी नेता, एम० पी० वगैरह भी नेफा कांड के लिए जिम्मेदार ठहराये जायेंगे। मन में दुख-सा हो रहा है।

२५ अक्तूबर : सुबह के० एल० ढांडनिया के गया और लोग भी थे। ड्राफ्ट बनाया कि दीवाली पर रोशनी वगैरह न की जाय, पंडितजी की अपील है। शाम को मारवाड़ी सम्मेलन की मीटिंग में गया। मन में अपने को दोषी पाता हूँ। देश के लिए कुछ करने का मन हो रहा है। हमारे बहुत से जवान मरे और घायल हुए बताते हैं। हाथ में मामूली हथियार, बदन पर गरम कपड़े तक नहीं। ठंड से हाथ-पैर की उँगलियाँ गल गयीं।

२६ अक्तूबर : सुबह अखबारों में देखा, टुएनम्मांग चला गया। चीन की सेना बाढ़ की तरह आ रही हैं। आसाम पर खतरे उतरने से पाकिस्तान भी झमेला जरूर खड़ा कर देगा। मन में दुःख होता है। अपना देश हारता जा रहा है, हमारे बहादुर जवानों की जान हमारी लापरवाही से जा रही है। कल जो स्टेटमेंट मैंने दिया था, वह अखबारों में आया।

२७ अक्तूबर : हम लोगों ने वार फंड में एक लाख रुपये देने का तय किया। पिताजी को भी जँच गया।

३ नवम्बर : लड़ाई की हालत अच्छी नहीं है । नेफा के कमांडर कौल तो ११ तारीख को ही दिल्ली आ गए थे । उन्होंने पंडितजी और मेनन को बता दिया था कि चीन की घुस-पैठ हो चुकी है और उन्हें दबाना बूते के बाहर है । इस बीच मैंने अखबारों में कई लेख भेजे और पत्र भी संसद के अपने मित्रों को लिखे हैं । देखें क्या होता है । लद्दाख में हमारी सेना ने चीनियों को बढ़ने नहीं दिया । कौल को फिर से नेफा कमांड पर भेजा गया है ।

नयी दिल्ली

६ नवम्बर : सारे दिन मेनन के बारे में लोगों में चर्चा रही । ऐसा लगता है, पार्टी के सदस्य और संसद सदस्यों को पछतावा है ।

७ नवम्बर : शाम को पार्टी मीटिंग में पंडितजी ने मेनन को हटा दिया । इस प्रकार से मजबूर थे । मेनन के हटने से सब को खुशी हुई ।

८ नवम्बर : कल पार्टी मीटिंग में पंडितजी ने मेनन को छोड़ देने को कह दिया । मेरा भी इसमें हाथ रहा, मुझे सन्तोष है, शायद पंडितजी नाखुश होंगे ।

नयी दिल्ली

२० नवम्बर : दिन में लड़ाई के बारे में खबरें सुनता रहा । मन खिन्न हो रहा है । दुनियावाले हम लोगों पर हँसते होंगे । ४ बजे नेहरूजी से मिला, और भी लोग थे । तीन बजे मुरारजी भाई के साथ मीटिंग हुई थी । रात में महावीरजी त्यागी आए । नेफा के मामले से वे चिंतित थे ।

२१ नवम्बर : सुबह उठते ही अखबारों में देखा कि चीन ने 'सीज फायर' कर दिया है । दिन में नेहरूजी का स्टेटमैंट सुना । कुछ दम नहीं था । दुनिया ने देख लिया, हमारी विदेश नीति कितनी कमजोर है और विदेशों में हमारा कितना प्रभाव है । पार्लियामेंट में डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसा कोई जोरदार विरोध करने वाला होता तो पंडित जी सम्हले रहते और देश का भला होता । लोहियाजी बोलते हैं परंतु उनकी चोट पंडितजी पर व्यक्तिगत रहती है । चीन को जो करना था कर दिया, जमीन तो हड़प ही ली ।

४ दिसम्बर : ५ बजे बीजू पटनायक के यहाँ गया । वहाँ और भी बहुत से लोग आए थे । शास्त्रीजी वगैरह, नंदाजी आए थे । सोचने लगता हूँ, राजनीति भी कितनी रहस्यमयी है । ईमानदार को बेईमान और बेईमान को ईमानदार बनाने-बनने में देर नहीं लगती । बीजू का मान-सम्मान था, कितनी बदनामी हुई, फिर आज उन्हीं के घर पर सब आए ।

सन् १९६६

१८ जनवरी : कांति भाई को विश्वास है, वे जीतेंगे । चुनाव में झूठ-सच खुल कर चलता है । मेरा मन कहता है, मुरारजी भाई हार जायेंगे ।

१९ जनवरी : रिजल्ट आउट हुआ । मुरारजी भाई हार गए ।

खंडेला

२० फरवरी : सुबह मतदान हुआ । कांग्रेस के पक्ष में मालूम देता है । परेशान था । (१,०००)
रु० का ३,००० वोटों की जात पर सौदा किया । मदनजी के साथ रात में सीकर वापस आ
गया । परेशानी और चिंता है परंतु जीत की आशा है ।

२१ फरवरी : सुबह सीकर की गिनती शुरू हुई । दिन में भाव बढ़ते-घटते रहे । रात में १२
बजे नन्दू सुजानगढ़ से आया । ९,००० वोटों से वहाँ की हार सुनकर चित्त खराब हो गया ।
नन्दू यहाँ से उसी समय चला गया, नीम के थाने की काउंटिंग पर । सुजानगढ़ से मुझे ऐसी
आशा नहीं थी, बहुत बड़ा धक्का हुआ ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२२ फरवरी : सुबह उठा। थोड़ा बुखार था। नन्दू वगैरह आ गए हैं। सुजानगढ़ के रिजल्ट के बाद मेरी हार निश्चित हो गयी है। मन में काफी उदासी है। सारे दिन पड़ा रहा। भाईजी राजलदेसर जाकर रुपये ले आए। कार एक्सिडेंट होते-होते बची। मन में इतनी ज्यादा चिंता है कि कभी नहीं हुई। रात में जी० डी० बिरला का फोन आया। मुझे कभी भी इतनी चिंता नहीं हुई थी।

२३ फरवरी : सुबह मन कुछ ठीक हुआ। होना ही था, जो होना था, वह सामने आ गया। मन में काफी चिंता रही। नन्दू, राजू दिल्ली गए। मुझे रोना आ गया। साबूजी मिलने आए। १५,००० मतों से हार हुई। कामराज, अतुल्य घोष आदि भी हार रहे हैं। कांग्रेस काफी कमजोर होती जा रही है। मेरी हार के पीछे कांग्रेस की अंदरूनी दलबंदी और कमजोरी है, मैं महसूस कर रहा हूँ।

२४ फरवरी : सुबह से ही काम सलटाने की व्यवस्था करने लगा। ४६,०००) रु० कलकत्ते पर हुंडी की। पेमेंट किया। लोग मिलने आते रहे। मन में दुःख है, हूक-सी लगती है। त्यागीजी हार गए। मनु भाई, पाटिल आदि सब हार गए। इतना दुःख जीवन में शायद एक बार हुआ, ३० वर्ष पहले जब फाटका में रुपया खो दिया था। फाटका और राजनीति दोनों ही मेरे लिए माफिक नहीं। परंतु व्यापार में रुपया खोने का दुःख ऐसा नहीं होता।

नयी दिल्ली

२५ फरवरी : सुबह ६॥ बजे पूगा। मन में उत्साह नहीं था। ७॥। बजे तक बिस्तर पर पड़ा रहा। पैरों में दर्द है। १२॥। बजे तक घर में रहा। फिर पार्लियामेंट हाउस गया, लोगों से मिला। पी० डी० हिम्मतसिंहका से मिला, कुछ शांति मिली। मोरारजी भाई के गया, कांति भाई से बात की। मन में एक प्रकार की सुस्ती है, झेंप-सी आती है। उदासी का वातावरण छाया हुआ है। 'सरिता' के विश्वनाथ मिलने आए।

२६ फरवरी : सुबह थकावट और आलस सा था। मन में विचार आते हैं, कटी पतंग की तरह हूँ। कोई सूत्र नहीं रहा। किस काम के साथ अपने को जुड़ा समझूँ? इन वर्षों में व्यापार, काम-काज से एक रकम अलग ही रहा।

सन् १९६७

२ मार्च : बंगाल में बहुत हेर-फेर हो रहा है। कम्युनिस्टों की मिनिस्ट्री बन रही है। इतने वर्ष, समय और मेहनत लगा कर क्या मिला? सामाजिक कार्य करता तो ज्यादा सेवा होती, कुछ कर भी पाया था परंतु राजनीति तो बेमतलब की है। इसमें कुछ करना चाहे तो हो नहीं सकता बल्कि उल्टा हो जाता है।

६ मार्च : मनुष्य पर जब विपत्ति आती है, तब धैर्य नहीं रख पाता। दूसरों को धीरज देना आसान है पर अपने पर आने पर वश नहीं चलता है। इस महीने में जितनी चिंता और हैरानी हो रही है, वह कभी नहीं सोची थी, खासकर पंद्रह दिनों में तो हद से ज्यादा। दिन में ऑफिस में था। कामकाज तो देखना चाहिए परंतु मन स्थिर नहीं कर पाता हूँ।

१५ मार्च : मन करता है कि किसी अनजानी जगह चला जाऊँ। कितना प्यार किया राजस्थान को, कितनी कोशिशें की अपने क्षेत्र के लिए। लोगों ने गलत समझा। शायद धन मेरी हार का बहुत बड़ा कारण हो। सभी जगह रुपयों की माँग क्योंकि मैं पैसेवाला समझा जाता रहा। गलती मेरी भी थी, मैं देता रहा। धन की भूख बढ़ती है, मिटती नही, नहीं मिलने पर क्षोभ होता है। परन्तु मुझे संतोष है, यहाँ कुएं, तालाब, सड़कें, स्कूल, अस्पताल रहेंगे, मैं न भी रहूं तो क्या। १२॥ बजे की बस से ३ बजे सरदार शहर आया। लोग मिलने आए, पहली बार मिलने पर मन में एक प्रकार की झेंप और दुःख सा महसूस हुआ। मंदिर गया। मन के लिए ताकत की प्रार्थना की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन् १६६६

१ मई : सुबह घूमने गया। दिन में पार्लियामेंट में था। जगजीवन बाबू से मिला। कल हाथीजी से भी बात हुई थी। सुबह उमाशंकर जी दीक्षित से मिला—काफी नाराज थे, तिवारी को लेकर। कूपर एलेन का कुछ नहीं हो रहा है। दोपहर २ बजे एयर से लखनऊ पहुँचा। ४।। बजे गुप्ताजी से मिला। उन्होंने मेयरशिप के लिए कह दिया है। मन में खुशी हुई, सुबह बनारसीदास मिले थे, उन्होंने ही विक्टोरिया मिल्स के लिए कहा है। कुल मिलाकर सब ठीक रहा।

२ मई : दिन में सारे दिन काम में व्यस्त रहा। ४ बजे चमड़ा कारखाने वाले आए, बीस आदमी थे। शायद झंझट भी करते। किसी तरह उनको पार किया। उनकी बात-चीत से मन में क्लेश सा हुआ। हम लोगों ने यूरोप वालों की तरह यूनियन तो बना लिया पर संगठित होकर काम बढ़ाना नहीं सिखाते। बस एक बात पैसे बढ़ाने की जानते है, चाहे बरबादी करें, काम न करें, घाटा होता जाय। सारी इकानामी खराब होती जा रही है। कपड़े का बाजार समान है। सुबह जटाधर जी बाजपेयी, भागवत प्रसाद जी तिवारी से मिला। रात में रतनलाल जी शर्मा, विद्याधर जी और श्री भटनागर आए थे। मेयरशिप वाली बात आगे बढ़ रही है।

२२ मई : अभी भी कमर में थोड़ा दर्द है। दिन में भाई जी से बातें करता रहा। इस बार इतनी चिंताए हैं, न जाने क्यों? कभी-कभी तो मर जाने को जी चाहता है। देने में परमात्मा ने कमी नहीं की पर चिन्ताएं बढ़ गयीं। शायद दोष हमारा ही है। नाना प्रकार की समस्याएं एडवर्ड मिल, सीताराम मिल, लुकवा, भरतिया और रतनी के मुकदमें ही खास हैं।

३१ मई : सुबह भाई जी मोटर से पुरी के लिये रवाना हो गये। ओम शिलांग से आकर दिल्ली के लिए रवाना हो गया है। कपल्स के आर्डर मिलने वाले हैं। दोपहर का खाना नहीं खाया, पेट में दर्द और बदहजमी सी है। दिन में २ बजे ऑफिस में था। रेणु चक्रवर्ती से मिला, ज्योति बाबू से न मिल सका। शाम को थोड़ी देर अमेरिकन लाइब्रेरी में था। रात में ७।। बजे स्टेशन आया, बी० एल० मिले। ए० सी० सी० की टिकट ली है। शेयर बाजार काफी तेज है, मुझे लगता है ऊंचे से ऊंचे भाव आज हैं परन्तु मुझे फाटका करना आता है नहीं, बराबर घाटा देता जा रहा हूँ।

कानपुर

२ जून : एलगिन मिल गया। जैन ने कहा कि फाइबर के इम्पोर्ट लाइसेन्स बन्द हो गये हैं। चिन्ता हो रही हैं। रात में सी० बी० गुप्ता का फोन आया, उन्होंने बुलाया है। मेयरशिप वाली बात जोरों से चल रही है।

२५ जून : सुबह ६ बजे तिलक हॉल में गया। वहां सभासदों ने नाश्ता किया। १० बजे से गिनती शुरू हुई। कुल मिलकर ६१ मत मेरे और १५ राधेश्याम जी बाजपेयी के। काफी भीड़ थी। लोगों नें बधाइयां दी। मिल में जाकर थोड़ी देर काम देखा। शाम तक घर में लोगों की भीड़ लग गयी, मन में प्रसन्नता हुई।

२६ जुलाई : सुबह ग्वालटोली की तरफ निकल गया। काफी गंदगी है। मकबरे की बस्तियां, झुग्गियां अकेले ही हर तरह की बीमारियां और अपराध बढ़ाने के लिये काफी हैं। बड़ी समस्या है। विदेशों में इटली, मिश्र, टर्की वगैरह में भी इस ढंग की नहीं देखने में आयीं। कलकत्ते में भी नहीं। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता। बहुत बड़े रुपयों की जरूरत पड़ेगी, टाइम भी लगेगा। सबसे पहले सफाई और स्वास्थ्य के बारे में बताना जरूरी है।

६ सितम्बर : दिन में कारपोरेशन नहीं जा पाया। इन्दिराजी को लाने एयर पोर्ट गया। पहली माला मैंने पहनायी। कुछ नाराज सी लगीं। शायद मुझे मनुभाई, मुरारजी भाई, सी० बी०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुप्ताजी का आदमी समझती हैं। परंतु मेरे मन में अब तक किसी गुटबंदी में जाने की बात नहीं। अब तो एम० पी० भी नहीं रहा : जब था, तब भी गुट में नहीं जुड़ा। ५ बजे वर्कर्स मीटिंग थी। ७ बजे पब्लिक मीटिंग में इन्दिराजी को धन्यवाद मैंने दिया।

कानपुर

१७ नवम्बर : इन्दिरा जी का बहुमत पार्लियामेंट में हो गया, अब वह अपने को बहुत मजबूत बना लेंगी। पुराने लोग अब शायद कुछ नहीं कर पायेंगे। कुर्सी की बहुत बड़ी ताकत होती हैं।

सन् १९७०

१३ जनवरी : ऐसा लगता है कि एक वर्ष में शरीर काफी थक गया। लोग मुझे वृद्ध कहने लग गए हैं। सुन कर अच्छा नहीं लगता, उत्साह घटता है। शायद इसीलिए विलायत में बुजुर्गों को वृद्ध कहते नहीं।

२६ जनवरी : १ बजे तक ७-८ जगह झंडे फहराए। साधारण-सा बोला भी। आज मेरा जन्म दिन है। झूठ नहीं बोला। इन्दिराजी का जोर था। गुप्ताजी को लोग बुरा-भला कह रहे थे। ऐसा लगता है, गुप्ता जी की सरकार नहीं टिक पायगी।

१५ दिसम्बर : सुबह एक स्वामी जी के पास गया। आसन सीखने; अजीब से लगे। रुपया चंदे का माँगते हैं। गलती हम लोगों की है। कौपीन या गेरुआ पहन कर आसन सिखाने वालों से हम आसन सीख कर समझते हैं कि योगाभ्यास करते हैं। ऐसे आसन तो व्यायामशालाओं में सहज में सीखे जा सकते हैं। स्वामी जी लोग अध्यात्म का रस बीच-बीच में पिलाया करते हैं।

सन् १९७५।

२२ जून : नथमल केडिया के साथ विशुद्धानंद विद्यालय में कवि-सम्मेलन में गया, साधारण-सा था। अब पहले की तरह कविता में भावना नहीं मिलती। शब्द-योजना भी वैसी नहीं रही। ऐसा लगता है, समय और हमारे सोचने के ढंग में काफी फरक आ गया।

२८ अगस्त : सुबह ८ बजे ५० सरकारी आदमी आये। सारे घर को घेर लिया। रात में ११ बजे तक रहे। सब कुछ ले गये। मन एकदम खराब हो गया। वाइफ पर भी गुस्सा आता था, परंतु उससे क्या बनता है। हम लोगों का सिस्टम कुछ ऐसा ही है। गहने-पहनने नहीं परन्तु इन पर खर्च अनाप-सनाप लगायेंगे। बार-बार इन्हें गढ़वायेंगे, तुड़वायेंगे। रुपया फँसा रहता है, काम आता नहीं। लोगों की नजरों में पड़ता है। नाना प्रकार की दिक्कतें खड़ी हो जाती हैं। कुछ हो या न हो एक बखेड़ा बेकार का खड़ा हो गया। लोग क्या-क्या सोचेंगे? कैसा सा लगता है।

९ नवम्बर : सुबह तैयार हुआ, ८॥ जसलोक में भरती हो गया। डाक्टर मनी ने देखा। किडनी खराब होकर युरिया बढ़ गयीं है। भूख एकदम बन्द है। शरीर में सूजन है। साँस लेने में तकलीफ होती है। दवा दी, पानी कम कर दिया, थोड़ा निकाला भी। अच्छा हुआ, अस्पताल में आ गया। दवा एक प्रकार से बंद है। बंदोबस्त ठीक है।

२३ नवम्बर : आज डॉक्टर ने छुट्टी दे दी है। ६,२००) रु० लगे। इलाज तो हो गया, परंतु दोनों किडनी खराब हो गयी। जीवन एकदम सीमित हो गया। कल यहाँ से घर चला जाऊँगा। सोचता हूँ, प्रकृति जब मेरा साथ छोड़ चुकी है तो इलाज कितना कर पायेगी।

सन् १९७७

२६ जनवरी : आज ६७ वर्ष पूरे हो गए। एक प्रकार लम्बा समय हो गया। जो कुछ किया, उनमें से कुछ बातों को छोड़ कर मन में संतोष है। १० वर्ष पार्लियामेंट में रहा। कानपुर का मयरुणी बना। बी० आई० सी० का मैनेजिंग डायरेक्टर रहा। जितनी सेवा बनी, करता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
रहा। सार्वजनिक संस्थाओं में भी रह कर काम किया। गरीबी से उठ कर संपन्न बना। बच्चे भी इज्ज़त करते हैं। लड़की में यद्यपि दुख पड़ गया परंतु सम्पन्न हो गयी। आज वह लगभग करोड़पति है। नन्दू, शारदा दोनों का स्वभाव अच्छा है। बेला को अच्छा सम्बन्ध मिल गया। एक पोता, अशोक, वह पढ़ने में काफी होशियार है। भाई लोग सब मजे में हैं। भरा-पूरा परिवार है। अब मैं चला जाऊँ तो मन में फिकर नहीं।

१९ अप्रैल : मन स्थिर रहता नहीं। सारा जीवन भाग-दौड़ में खपा दिया। बाहर ही देखा, अन्दर की पुकार सुन कर भी अनसुनी करता रहा। आज तन जर्जर है, मन अस्थिर। उस पर काबू नहीं। लोग आते हैं आशा बंधाते हैं। मैं मुस्कुरा देता हूँ। जानता हूँ, भगवान् से तन पाया, मन पाया परंतु आज दोनों को खोया बैठा हूँ।

२१ अप्रैल : अब डायरी लिखी नहीं जाती। आँखों के आगे धुँधला छा जाता है। शायद अब अधिक कष्ट नहीं भोगना पड़े। जिस धन को कमाया, वह आज प्राण निकलने में बाधा पहुँचाता है। नसों में नली, सुई से खून चढ़ाना यह सब जबरदस्ती प्राण को रोकने की कोशिश है। इससे शरीर को कष्ट होता है। गरीब को यह सुविधा कहाँ ? इसलिए वह थोड़ी तकलीफ सह कर छुटकारा पा जाता है।

९ मई : डायलेसेस पर १० से ४ बजे तक। शरीर पर जो बीतता है वह अलग, मन में काफ़ी तकलीफ होती है। उम्र भर का रोग लग गया। इस जीवन से छुटकारा मिल जाय तो अच्छा। मनुष्य आखिर काम करने के लिये जिन्दा रहता है। जब काम ही नहीं कर सकता तो उसकी क्या जरूरत ? घर वालों पर १०,०००) महीना खर्च डालने से क्या फायदा ? मेरे पर तो भगवान की कृपा है परन्तु दूसरे गरीब तो मर जाते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

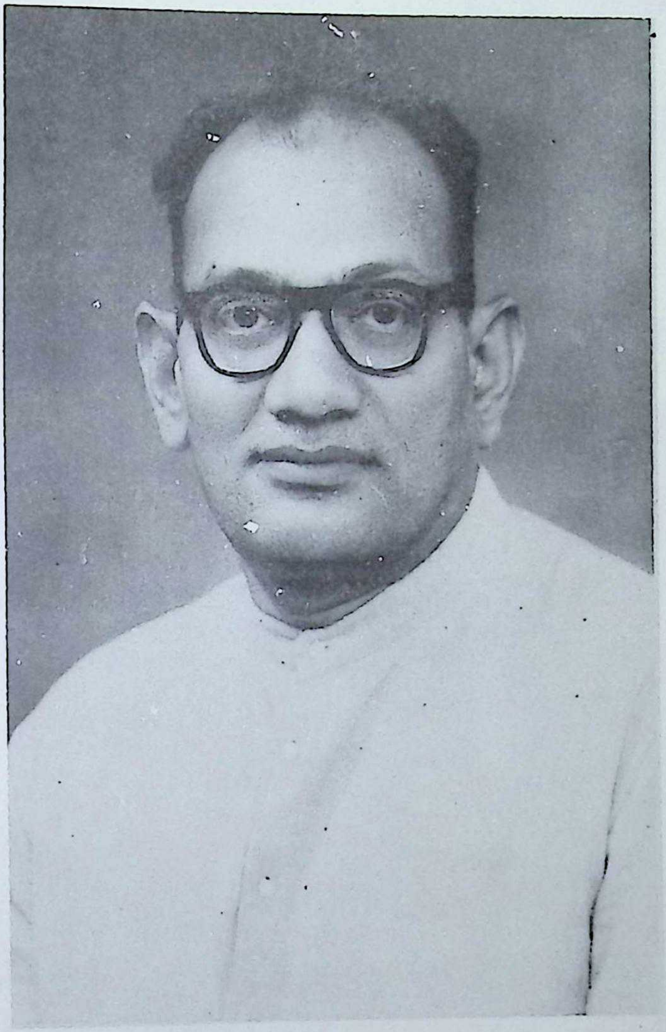

श्री रामेश्वर टांटिया युवावस्था में।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री शिवनारायण जी टांटिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दादा, स्व० श्री गिरधारी लाल जी टांटिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाना श्री हरचन्दराम सराफ़

श्रीमती गोरादेवी सराफ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

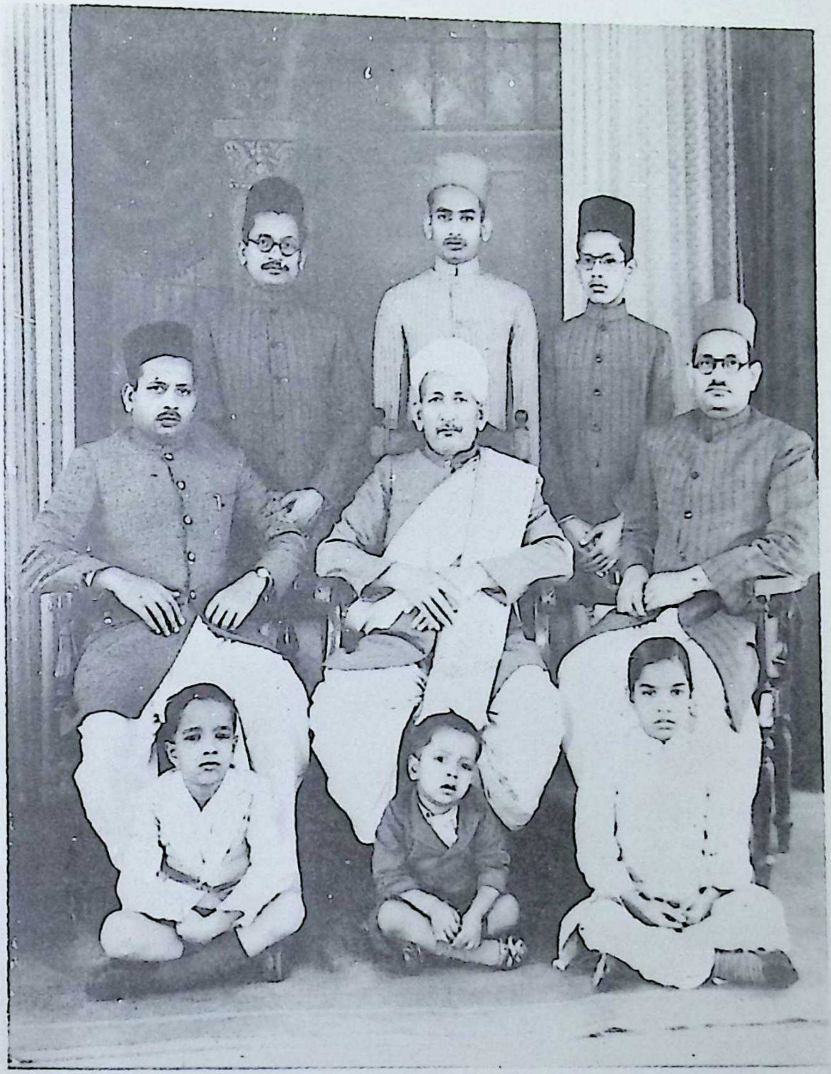

टांटिया परिवार—ऊपर-भाई सत्यनारायण, बृजलाल, मदनलाल। कुर्सी पर-बड़े भाई शिवप्रताप, पिता श्री शिवनारायण, समग्र के रचयिता रामेश्वर टांटिया। नीचे बैठे हुए-रामेश्वर टांटिया के पुत्र नन्दलाल, भतीजा भगवती प्रसाद एवं रतनी बाई।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बांयें से ज्येष्ठ पुत्री रतनी बाई, पत्नी दुर्गा देवी, भाई वृजलाल की पत्नी पार्वती देवी, भाई मदनलाल की पत्नी सावित्री देवी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

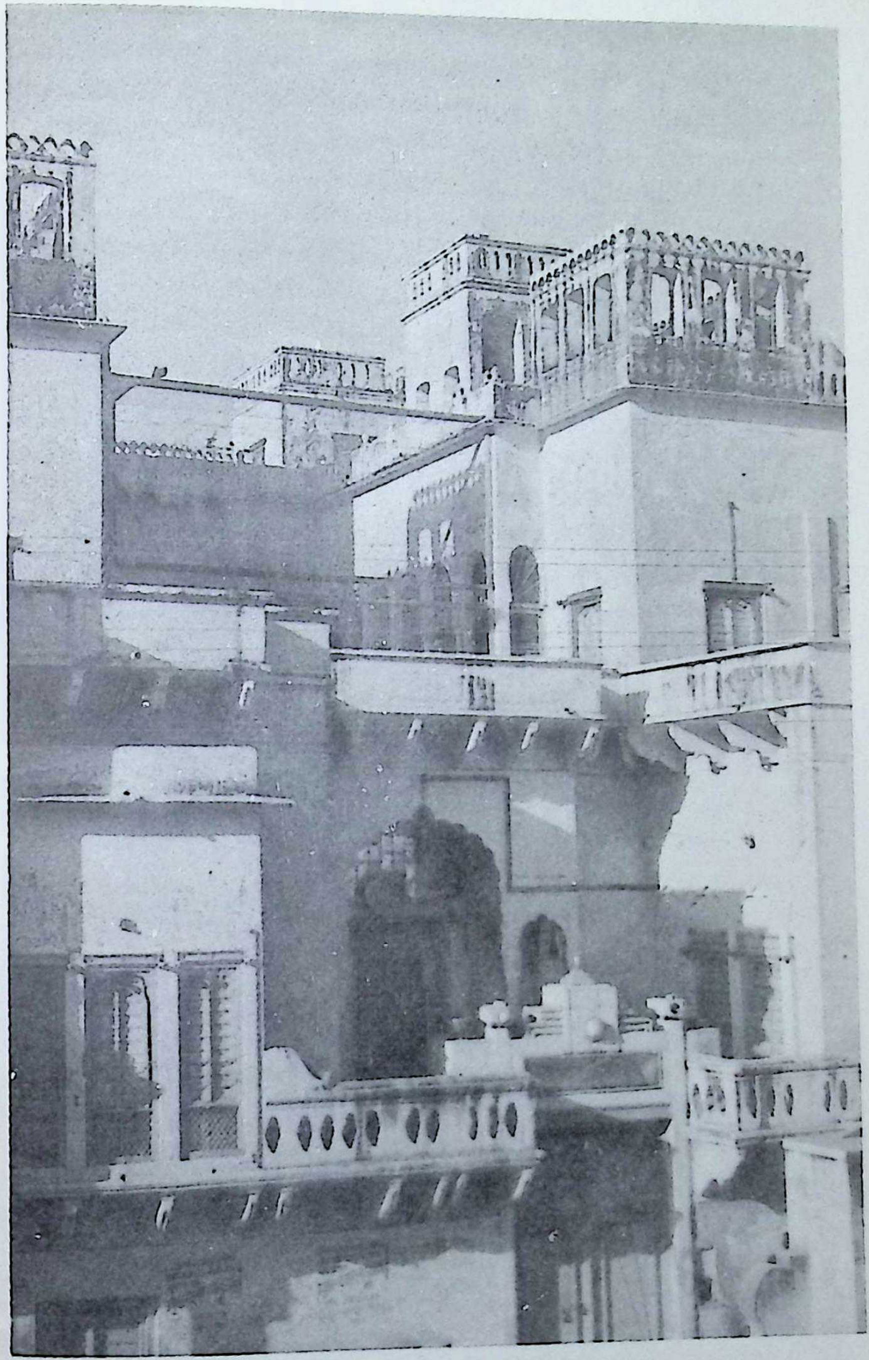

टांटियों की पुरानी हवेली, सरदार शहर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

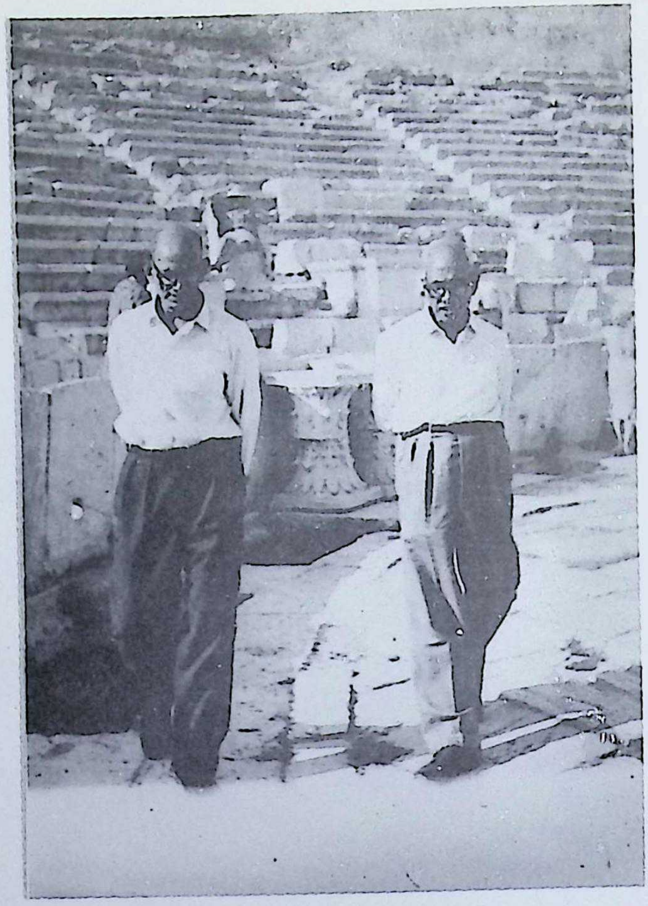

रोम के पार्सियोलिस के खंडहरों में श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका के साथ श्री रामेश्वर टांटिया।

श्री रामेश्वर टांटिया की बड़ी बहन स्व० श्रीमती मनोहरी देवी छोटड़िया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री दौलतराम दुधवेवाला।

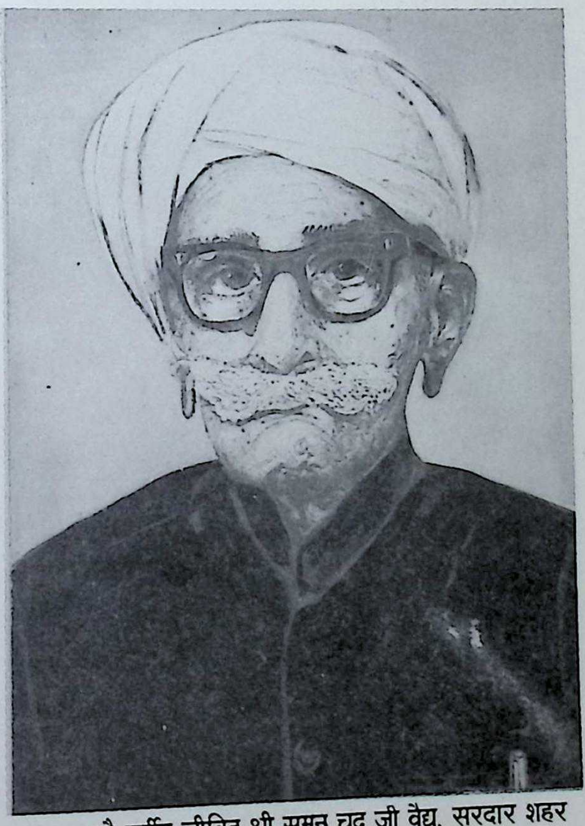

सौ वर्षीय जीवित श्री सुमन चद जी वैद्य, सरदार शहर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डेडराज भरतिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बीकानेर नरेश स्व० श्री गंगासिंह जी महाराज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कानपुर के नागरिकों द्वारा टांटिया जी का अभिनंदन

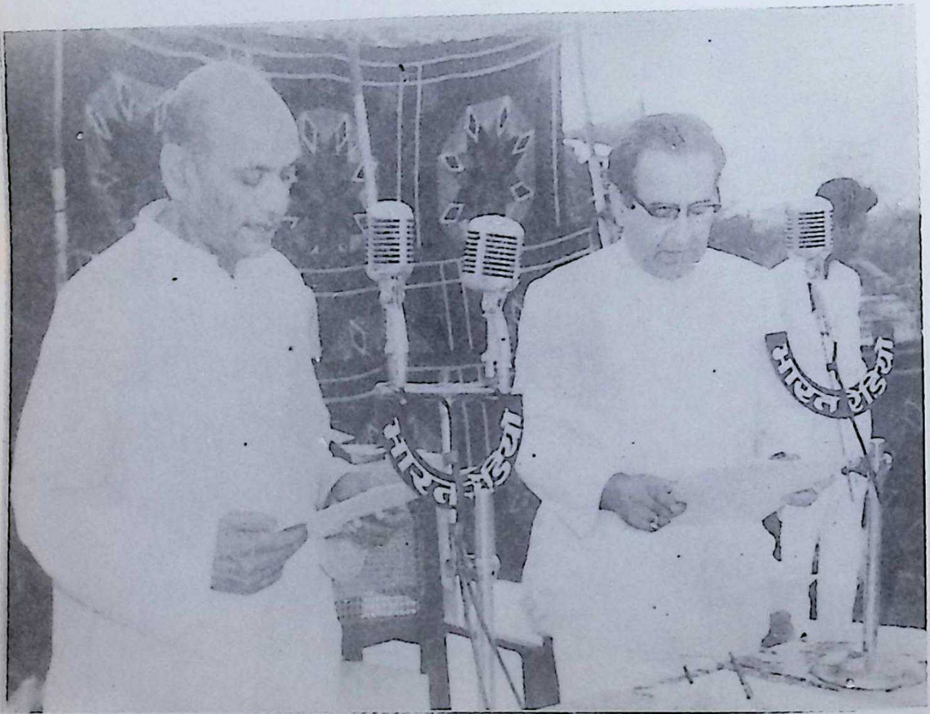

कानपुर में मेयर पद की शपथ ग्रहण करते हुए श्री रामेश्वर टांटिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सीमांत गांधी खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ का स्वागत करते हुए कानपुर के मेयर टांटिया जी।

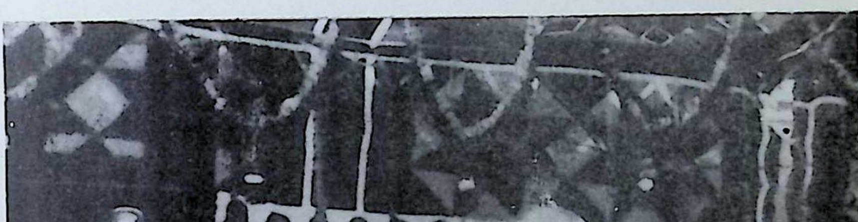

भूतपूर्व राष्ट्रपति वी०वी० गिरि का स्वागत करते हुए टांटिया जी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कवि सुमित्रानन्दन पंत का सम्मान करते हुए श्री रामेश्वर टांटिया।

राष्ट्र-कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का सम्मान करते हुए श्री रामेश्वर टांटिया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कानपुर में मेयर पद से महादेवी वर्मा का सम्मान करते हुए रामेश्वर टांटिया

- कानपुर नगर महापालिका के महापौर श्री रामेश्वर टांटिया द्वारा भारतरत्न श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमण का स्वागत तथा अभिनन्दन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

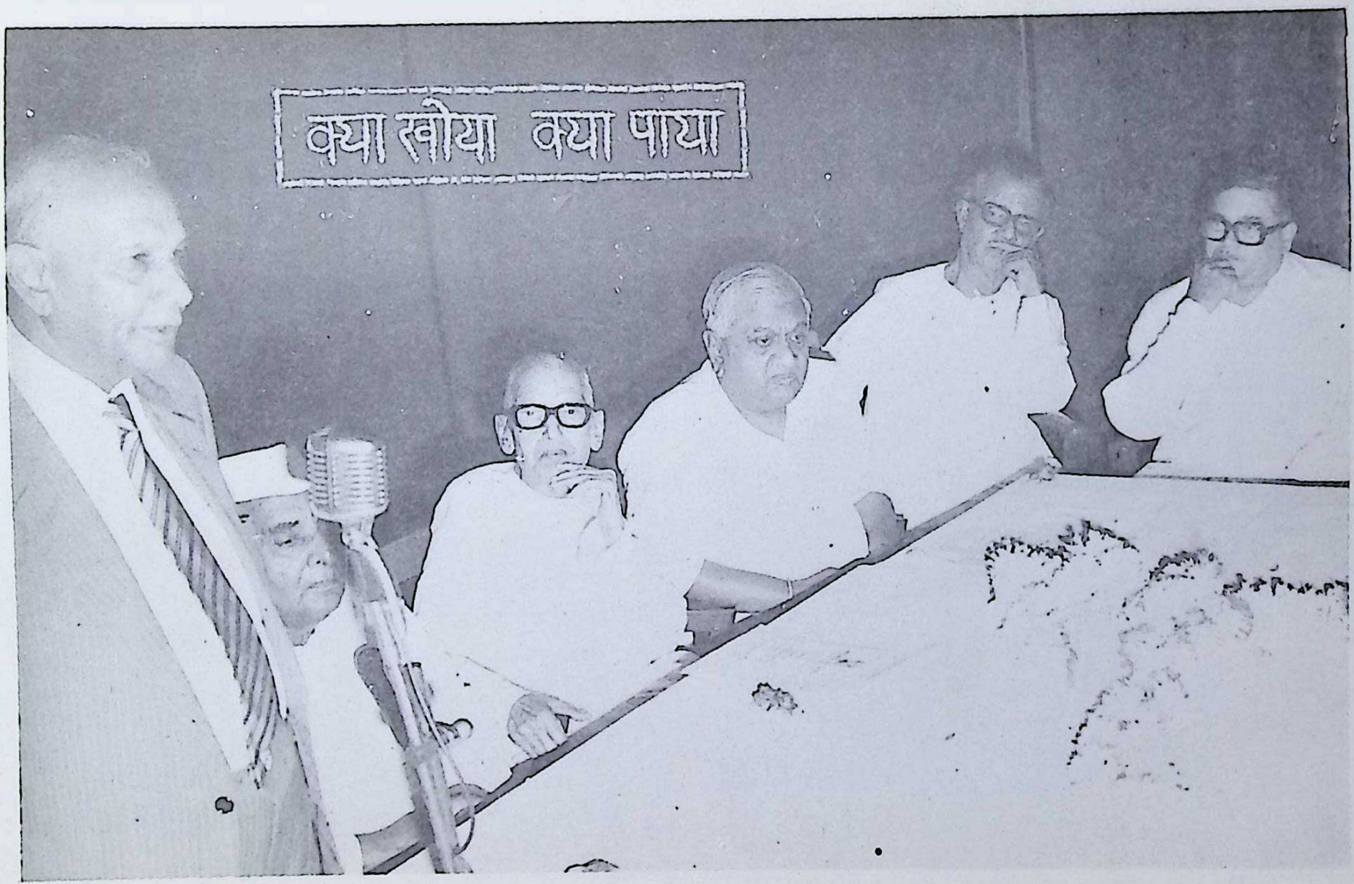

'क्या खोया क्या पाया' पर आयोजित विचार-गोष्ठी में बोलते हुए लक्ष्मीनिवास बिड़ला

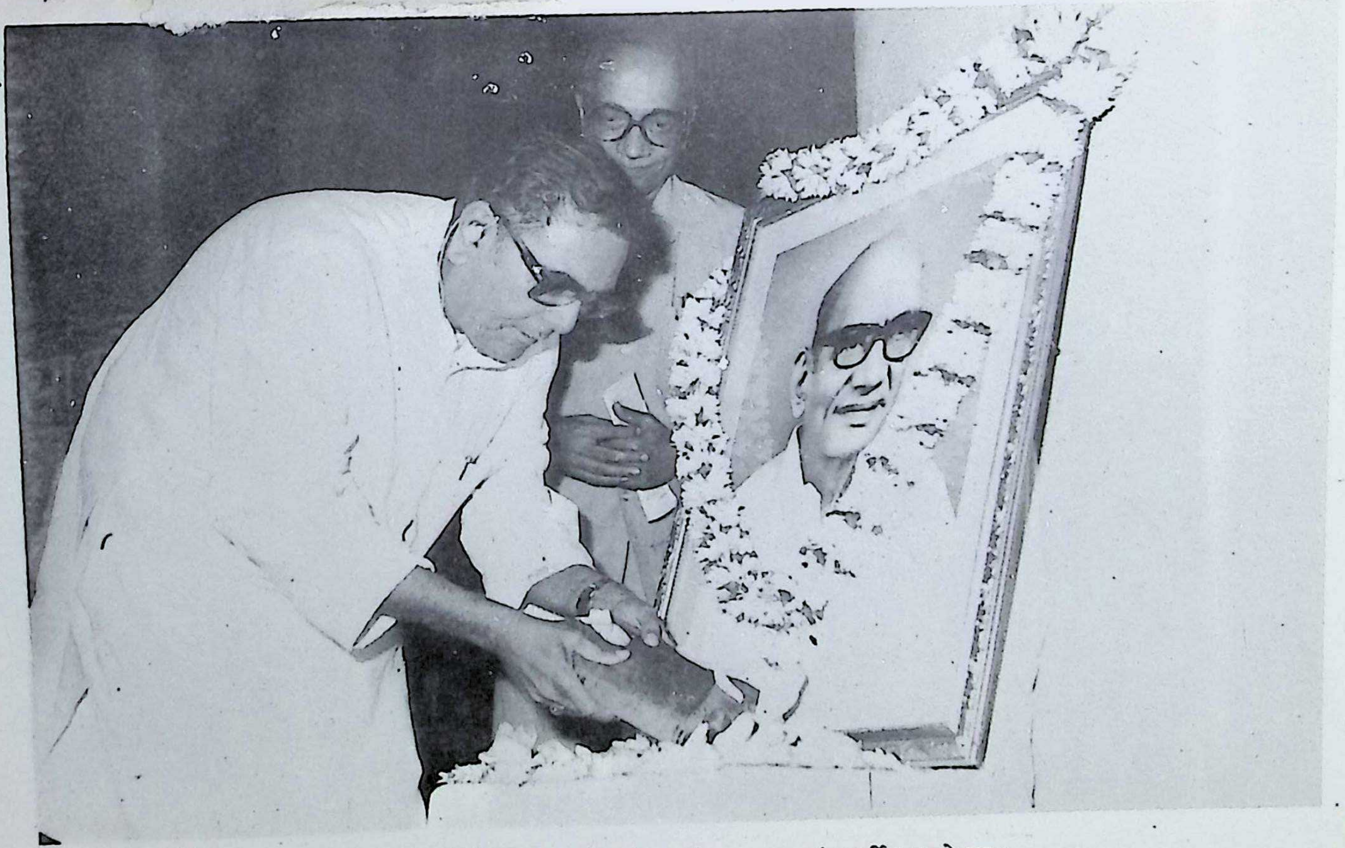

कथाकार अमृतलाल नागर 'क्या खोया क्या पाया' समर्पित करते हुए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

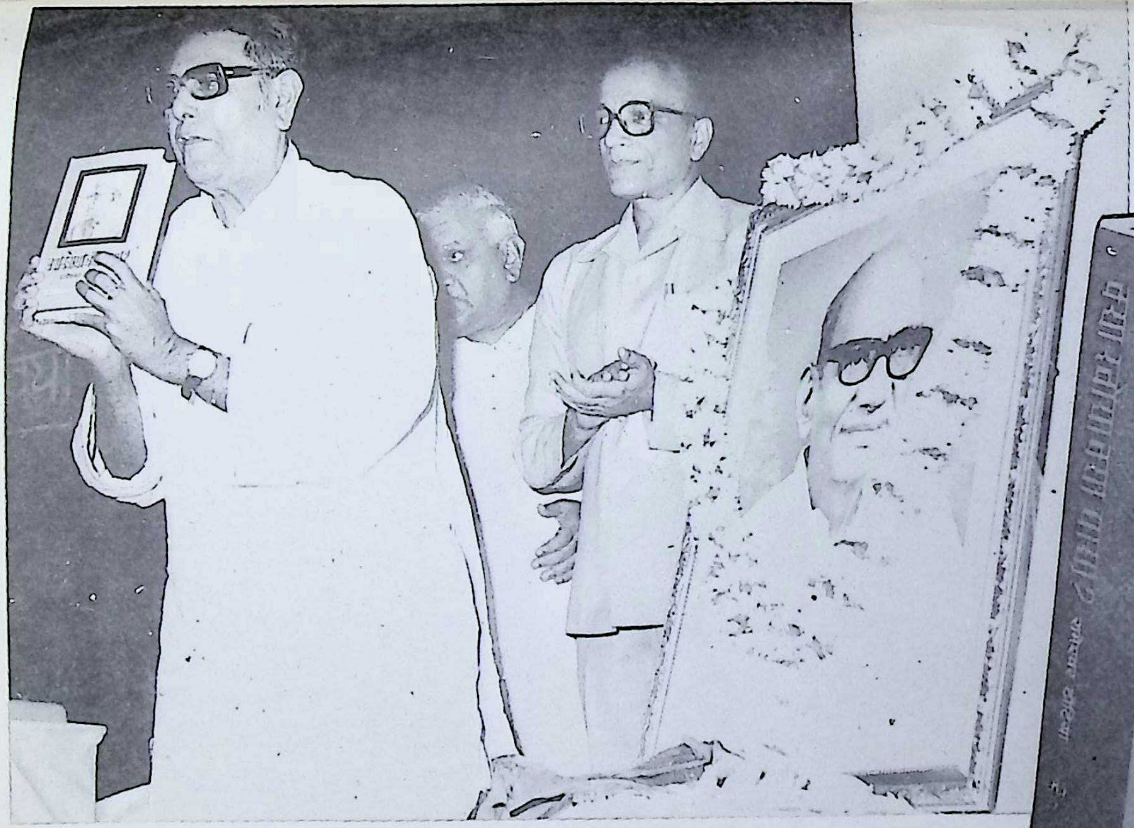

श्री अमृत लालनागर द्वारा 'क्या खोया क्या पाया' के स्मर्पण समारोह का एक दृश्य

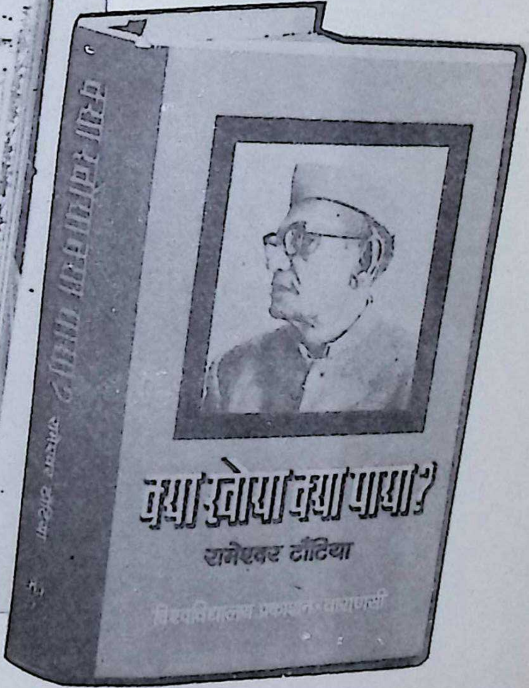

रामेश्वर टांटिया रचित 'क्या खोया क्या पाया' का आवरण चित्र।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

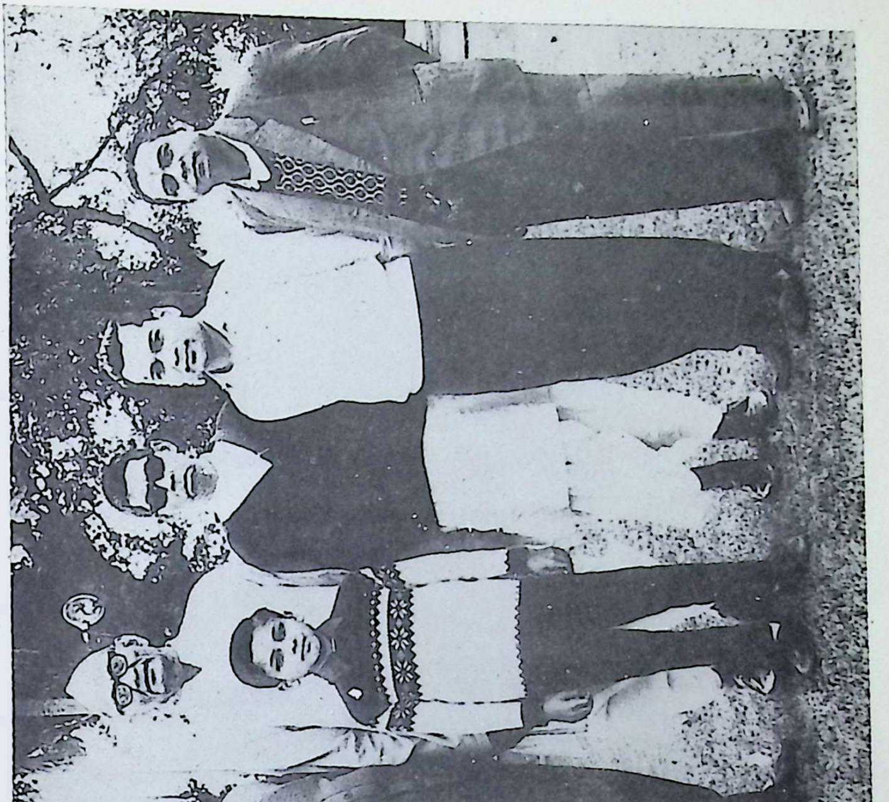

श्री रामेश्वर जी के साथ कानपुर में—दाहिनी ओर से—श्री विनोद मोदी, श्री सम्पत दूगड़, श्री रामेश्वर टांटिया, श्री आलोक चमड़िया, श्री रामादास दीक्षित, श्री चिरंजीलाल चमड़िया, श्री बालकृष्ण गर्ग।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

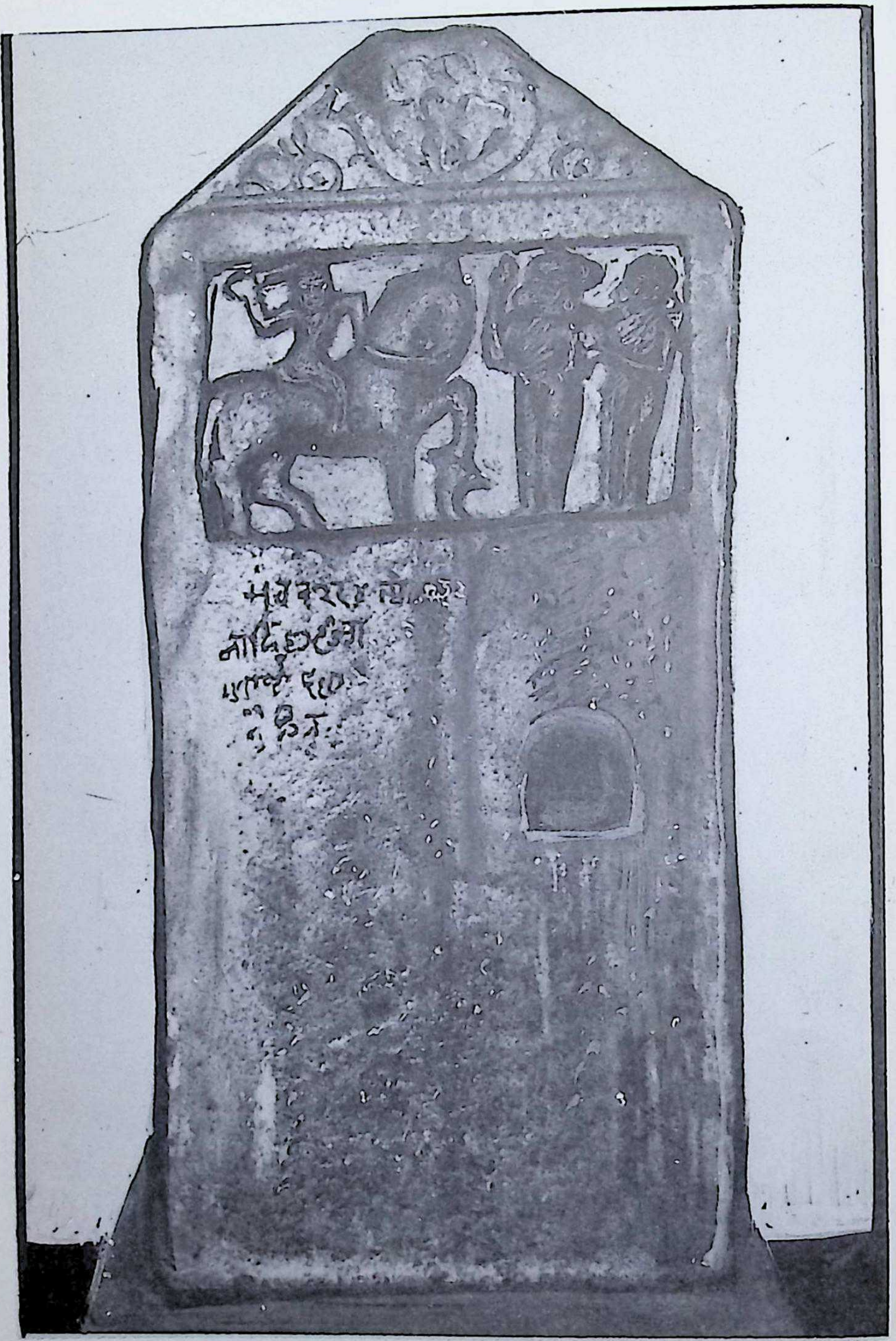

टांटिया शिवालय, सरदार शहर अपने शिवालय में मोहिलों के राज्य के समय का शिला लेख अभी मौजूद है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गणगौर का मेला. सरदार शहर

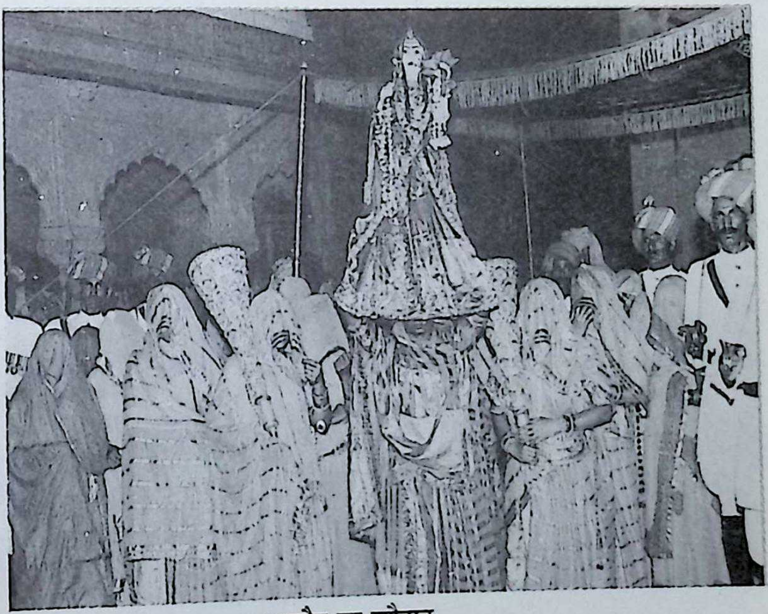

गणगौर का त्यौहार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजस्थान का लोक नृत्य

लोकनृत्य डांडिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

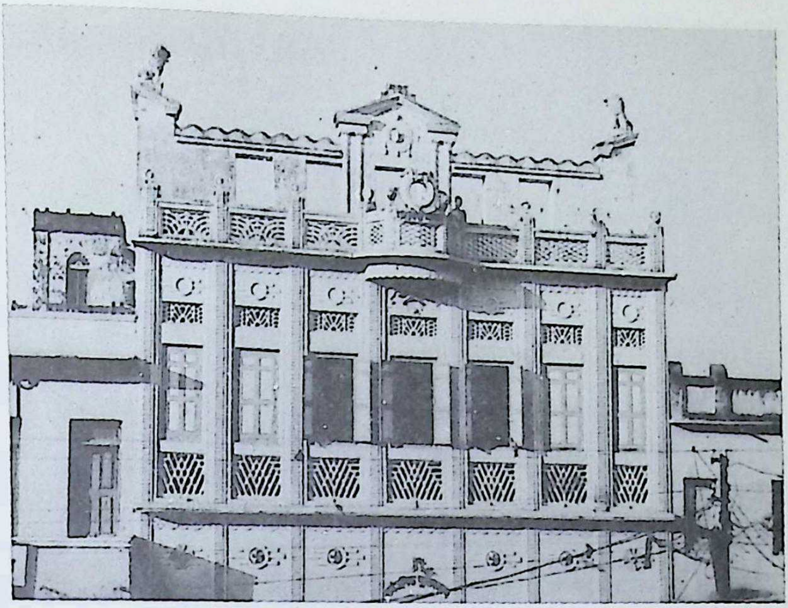

पब्लिक लाइब्रेरी, सरदार शहर

राजस्थान का बहुचर्चित अंगारों पर नृत्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तालाबस्थित ग्रामीण पनघट

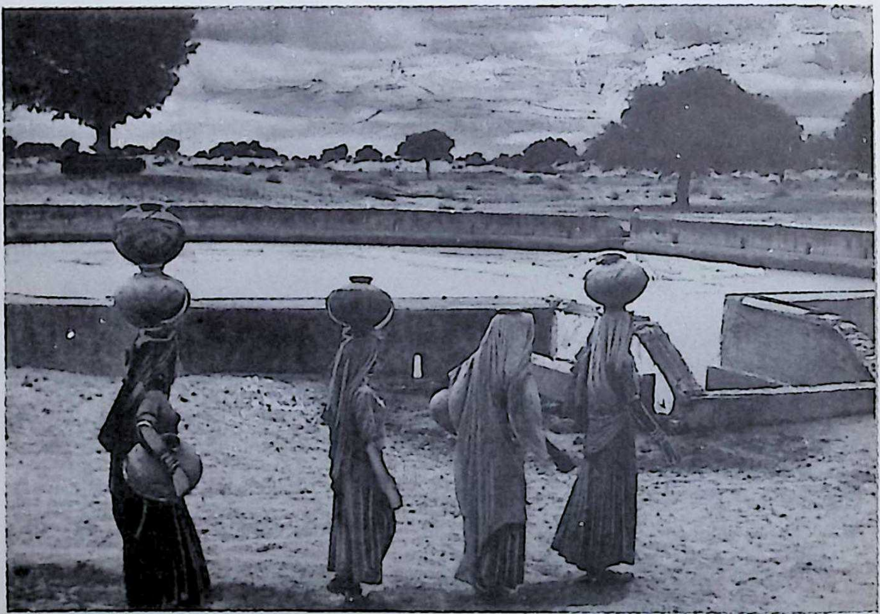

कुएं पर गर्मी में पानी की समस्या, घड़ों का जमघट, पानी भरती पनिहारिनें

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

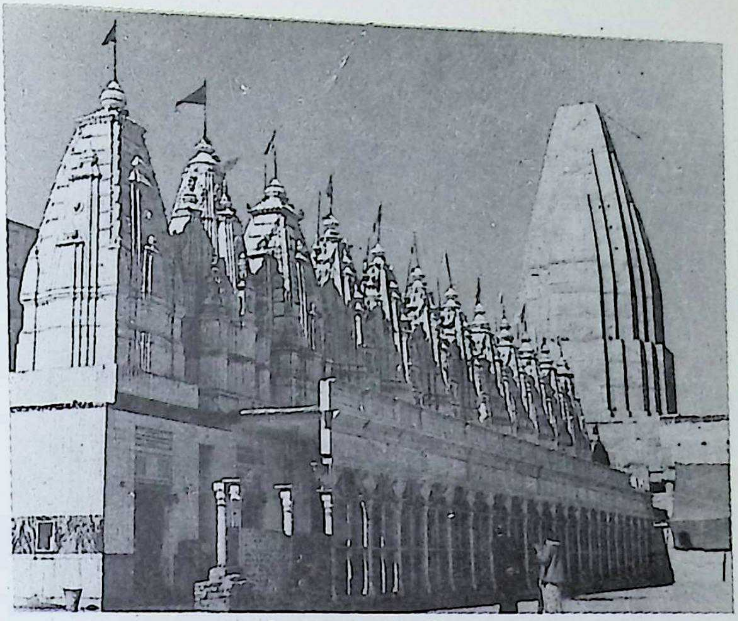

झुंझुनु स्थित राणी सती मंदिर

राजस्थान का रथ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

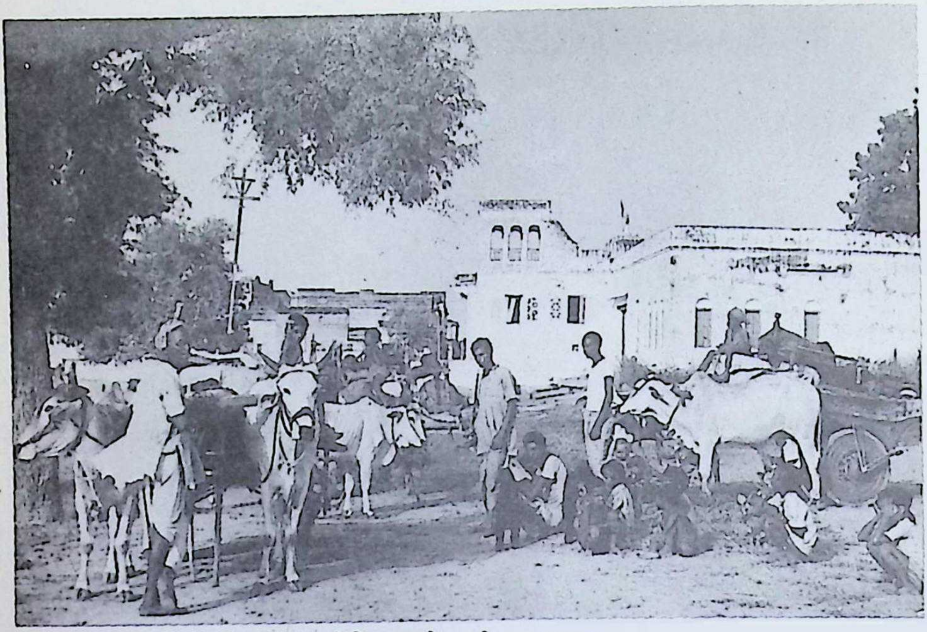

रेगिस्तान में गाड़ी पर लुहार

सर्दी के अन्त में (भैंपोड़) मरगोज उगे हुए हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

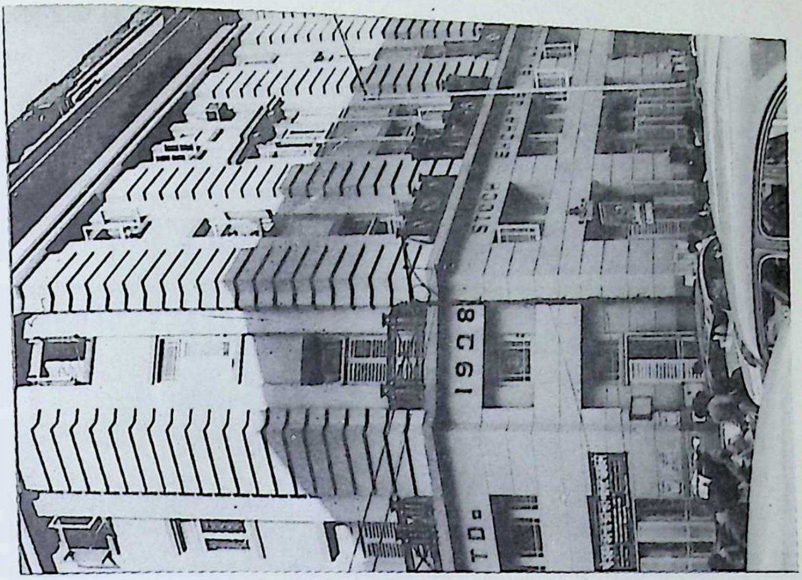

शेयर बाजार, कलकत्ता

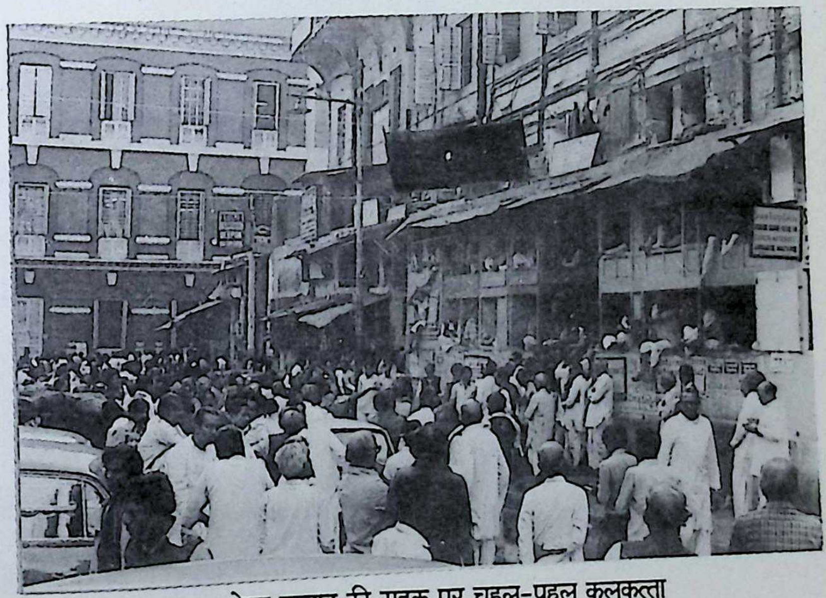

शेयर बाजार की सड़क पर चहल-पहल कलकत्ता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

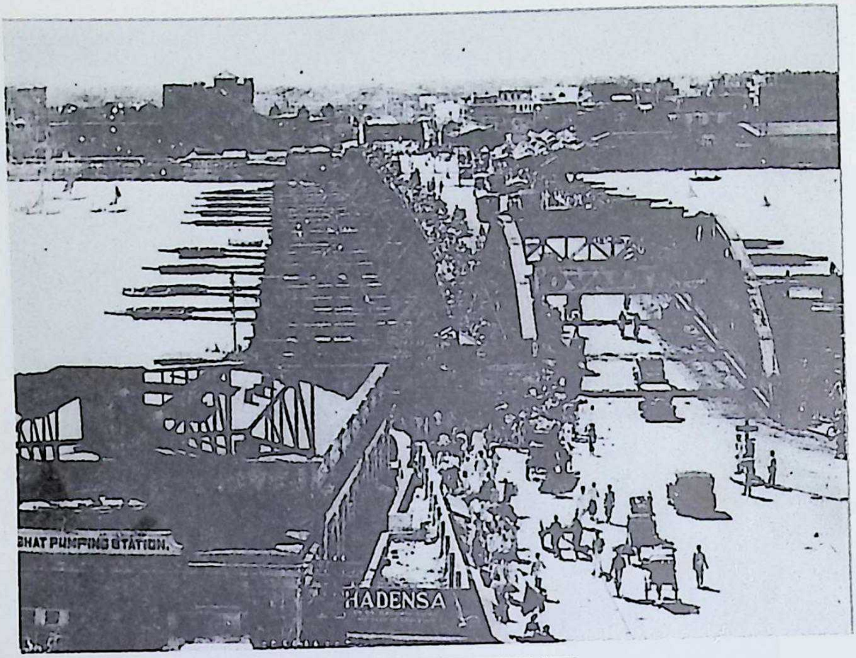

नावों पर बना हुआ पुराना हावड़ा पुल

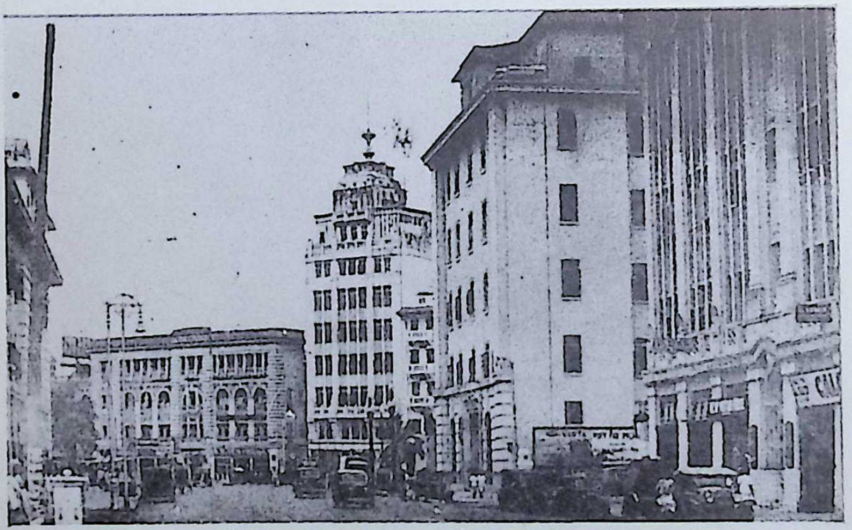

चौरंगी का एक दृश्य, सामने 'टावर हाउस'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

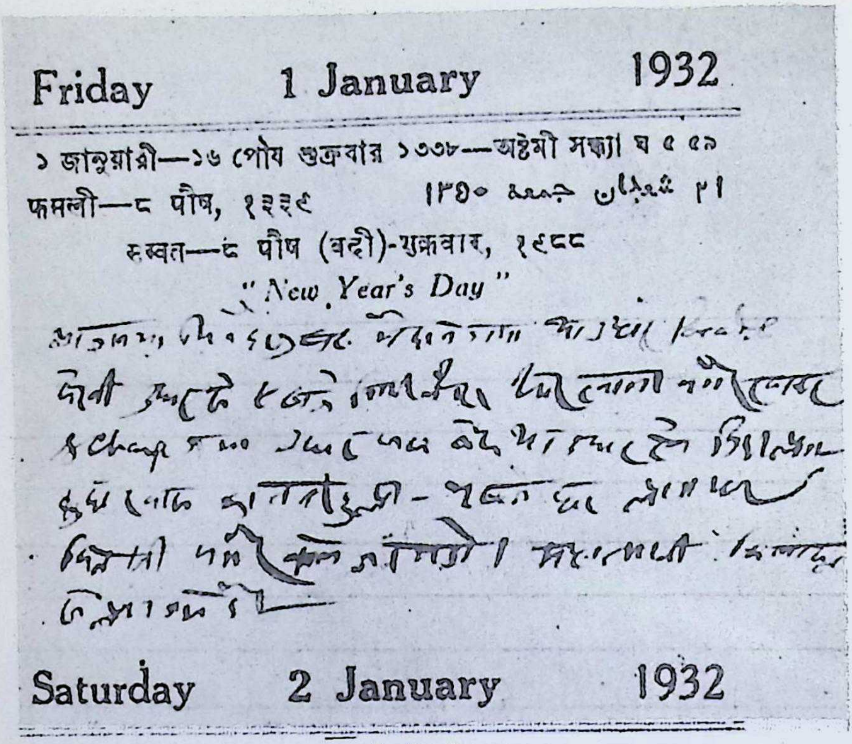

Friday 1 January 1932

১ জানুয়ারী—১৬ পৌষ শুক্রবার ১৩৩৮—অষ্টমী সন্ধ্যা ঘ ৫ ৫১

ফসলী—৮ পৌষ, ১৩৩৯ ١٣٥٠ جمعہ شعبان ٢١

সম্বত—৮ পৌষ (বদী)-শুক্রবার, ১৯৮৮

"New Year's Day"

Saturday 2 January 1932

डायरी की प्रति

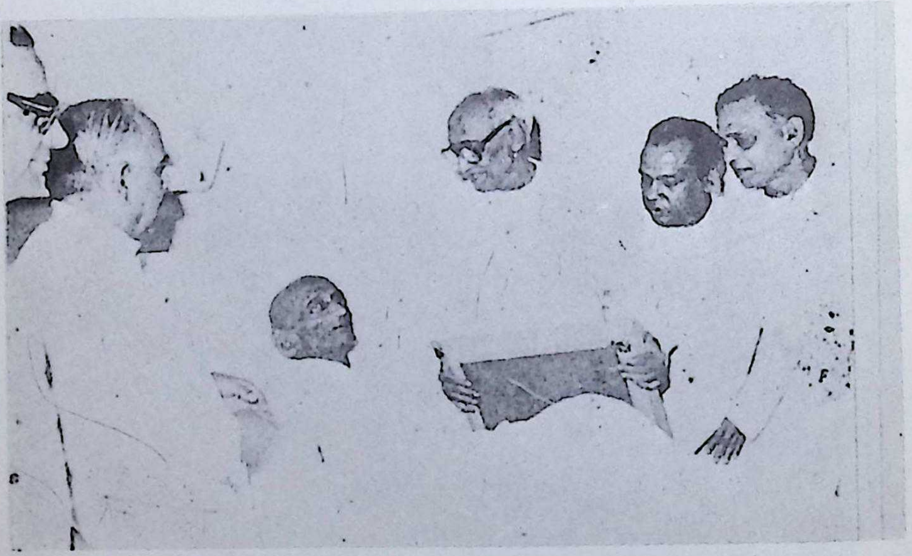

जसलोक अस्पताल बम्बई में टांटिया जी को अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुये सर्वश्री भागीरथ कानोड़िया, नथमल केडिया, पुरुषोत्तम केजड़ीवाल, भंवरलाल दवे तथा गंगाशरण सिंह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

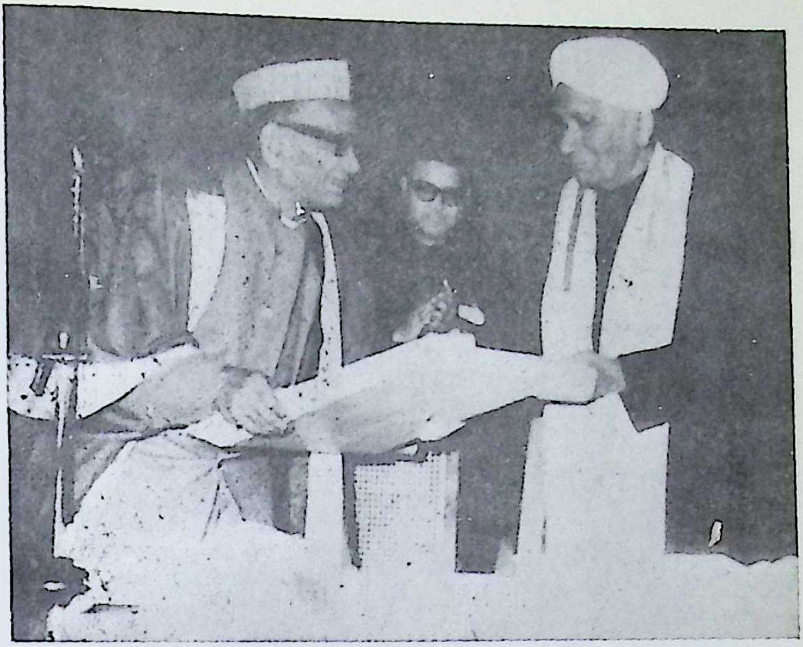

भारतरत्न श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमण

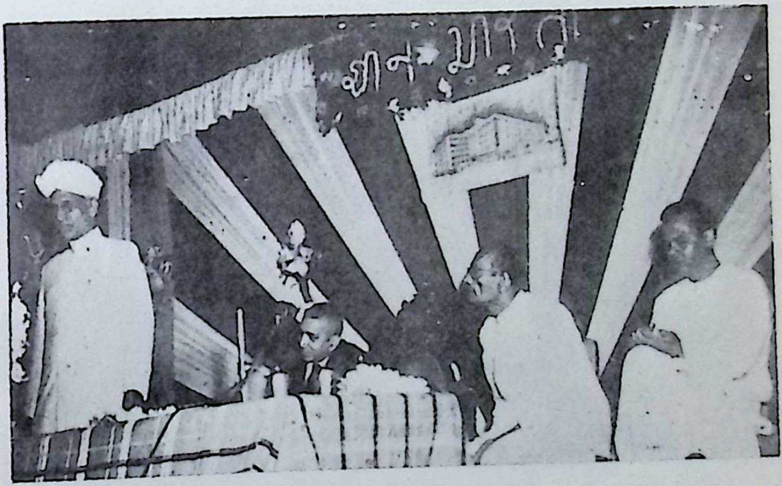

ज्ञान भारती विद्यापीठ, कलकत्ता का शिलान्यास करते हुए उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, साहू शान्तिप्रसाद जैन, टाँटिया जी अध्यक्ष तथा श्री नथमल केडिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री लालबहादुर शास्त्री के सान्निध्य में श्री रामेश्वर टांटिया तथा
उनके अनुज श्री सत्यनारायण और उनकी पत्नी

सीकर से दूसरी बार लोकसभा के लिए निर्वाचित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

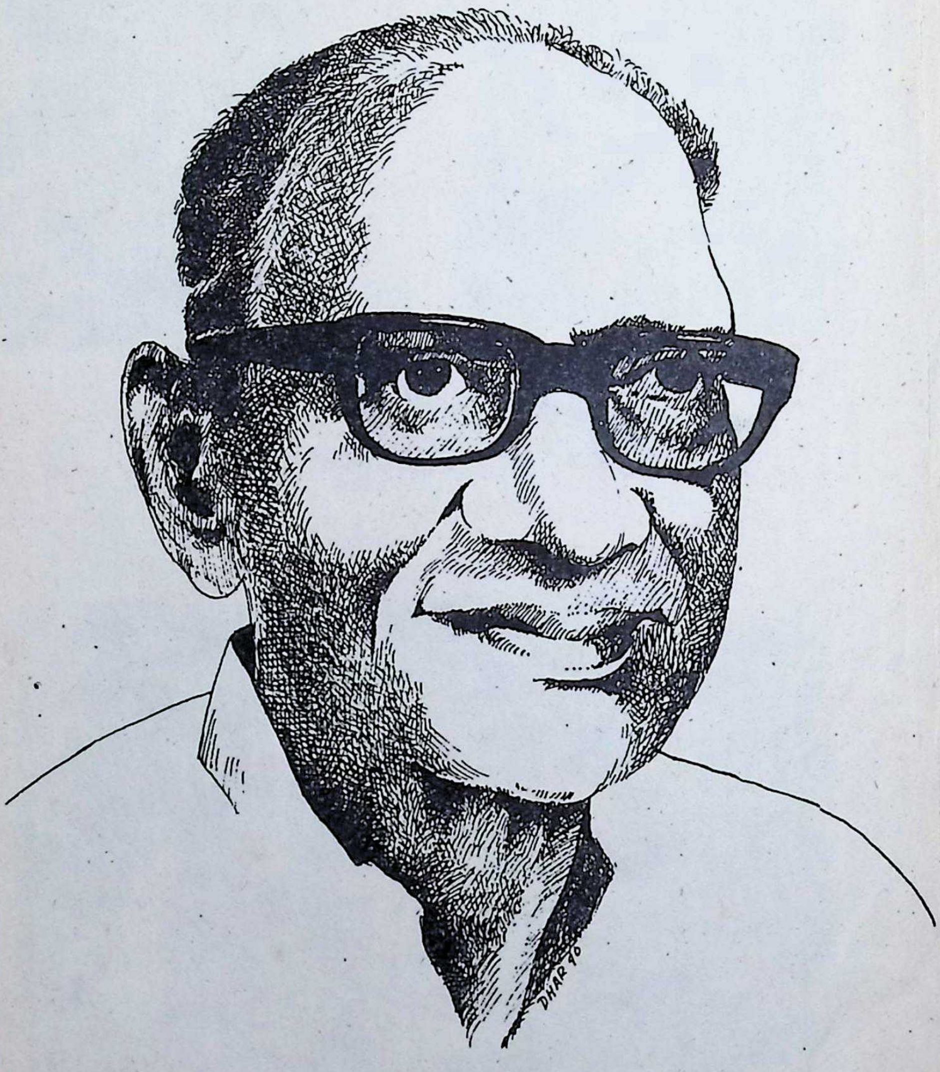

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

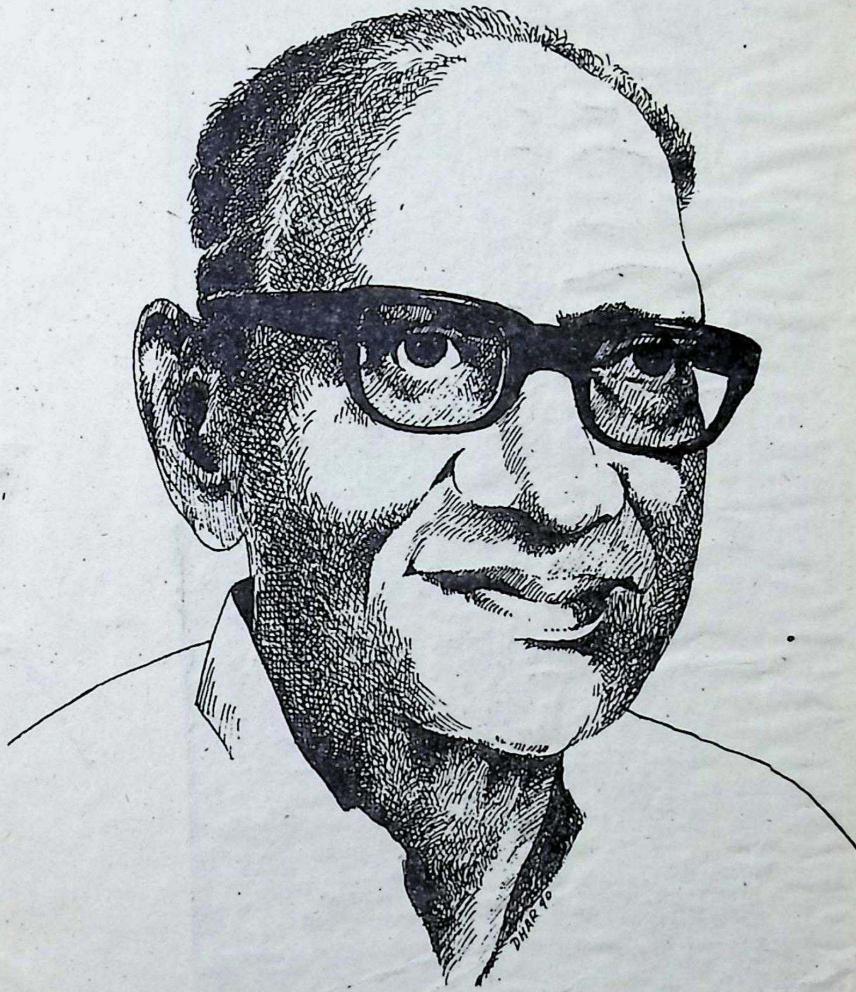

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो०ब० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० के लिए विजयप्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा मोनार्क इण्डस्ट्रीज जौनपुर में मुद्रित

©श्री नन्दलाल टांटिया

मूल्य ५०.००

प्रचारक ग्रंथावली योजना — ६

प्रकाशन तिथि · अप्रैल, १९९०

रामेश्वर टांटिया समग्र

RAMESHWER TANTIA SAMAGRA

COLLECTED WORKS OF RAMESHWER TANTIA

EDITED BY VISWANATH MUKHERJEE